67

माधुरी

विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र

मासिक पत्रिका

वर्ष ३, खंड १

श्रावण-पौष, ३०१ तुलसी-संवत् (१९८१ वि०)

अगस्त-जनवरी, १९२४-२५ ई०

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

प्रकाशक

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

वार्षिक मूल्य ६॥)]   [छमाही मूल्य ३॥)

लेख-सूची

१—पद्य

२—गद्य

संख्या लेख	लेखक	पृष्ठ

चित्र-सूची

क—रंगीन

ख—व्यंग्य

ग—सादे

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ३ खंड १	श्रावण-शुक्ल ७, ३०१ तुलसी-संवत् (१९८१ वि०)— ७ अगस्त, १९२४ ई०	संख्या १ पूर्ण संख्या २५

वर्षा

[१]

जाकी एक बूँद कौं बिरंचि, बिबुधेस, सेस,
सारद, महेस ज्यौं पपीहा तरसत हैं ;
कहै 'रतनाकर' रुचिर रुचि ही मैं जाकी,
मुनि-मन-मोर मंजु मोद सरसत हैं ।
लहलही होति उर-आनँद-लवंग-लता,
दुख-दंद जासौं ज्यौं जवासौ झरसत हैं ;
दामिनि-सी कामिनि समेत घनस्याम सोई,
सुरस-समूह ब्रज बीच बरसत हैं ।

[२]

पावस के प्रथम पयोद की परत बूँदैं,
औरै ओप उमड़ि अकास छिति छ्वै रहीं ;
रंग भयौ बूढ़नि, अनूढ़नि अनंग भयौ,
अंग बढ़ि आनँद-तरंगैं दुख ध्वै रहीं ।
सूहे साजि सुघर दुकूल, सुख फूलि-फूलि,
चौहरी अटा पैं चढ़ी चंदमुखी ज्वै रहीं ;
धूम सुखमा की, झूम-झूम अलि-पुंजनि की,
अंबनि की डार तैं कदंबनि पैं ह्वै रहीं ।

[३]

मान कै न मानति हौ, जानिकै न जानति हौ,
तुम बिन प्यारे मनमोहन दुखारे हैं ;
कहै 'रतनाकर' न जानैं कहा ठाने मन,
वृंदाबन-बीथिनि बिसूरत सिधारे हैं ।
बाल दिखराइकै मसाल के मिसाल दुति,
लीजिए बचाइ, ठाढ़े कुंज मैं बिचारे हैं ;

भावानुवाद

१—जो × × × अपने कुलवालों से × × × जिसका (?)...

२—जिसका

३—जिसने × × × अपने धनुष्टंकार से

४—फाड़ा × × × फैलाया × × × और छिटकाया

५—जिसका मन विद्वानों के साथ रहने से सुखी रहता था, जो शास्त्र के तत्त्वार्थ का भर्ता था, जो स्थिर

६—जो सत्काव्य की श्री के विरोधियों को विद्वानों के गुणित गुणों की आज्ञा से दबाकर (अब भी) × × × बहुतेरी स्फुट कविता की कीर्ति का राज्य भोग रहा है।

७-८—जिसको उसके कुलवाले म्लान मुखों से देखते थे, जिसके सभासद् सुख से साँस लेते थे, जिसके पिता ने उसको रोमांचित होकर गले लगाया, और कहा कि तुम आर्य हो, और अपने चित्त का भाव प्रकट करके चारों ओर स्नेह के आँसुओं से भरी दृष्टि से देखा, और यह प्रकट किया कि यह समस्त पृथ्वी का पालन कर सकता है।

९—जिसके अनेक अमानुष कर्मों को देखकर × × × सुखी होते थे।

१०—और कुछ लोग उसके प्रताप से उन्मत्त होकर उसकी शरण में आकर उसको प्रणाम करते थे।

११—और अपकार करनेवाले जिससे संग्राम में सदा विजित होते थे, और कल और कल मान ......

१२—आनंद से फूले हुए और बहुत-से रस और स्नेह के साथ प्रफुल्ल मन से × × × पश्चात्ताप करते हुए × × × वसंत में.........

१३—जिसने सीमा से बढ़े हुए अपने अकेले ही बाहुबल से अच्युत और नागसेन को जड़ से उखाड़ दिया।

१४—जिसने कोट-कुल में जो उत्पन्न हुआ था, उसको अपने दंड से पकड़वा लिया, और पुष्प नाम के नगर को खेल में स्वाधीन कर लिया, जब कि सूर्य × × × × × × तट × × ×

१५—धर्म के कोट के समान जिसकी कीर्ति चंद्रमा की किरणों की तरह निर्मल और चारों ओर फैली हुई थी, जिसकी विद्वत्ता अर्थ के तत्त्व तक को पहुँच जाती थी, और.........

१६—सूक्तियों के पढ़ने के योग्य मार्गों को और ऐसी कविता, जो कवियों की मति के विभव का उत्सारण करती थी × × × ऐसा कौन गुण था, जो उसमें न था; क्योंकि वही गुण और मति के विद्वानों का अकेला ध्यान-पात्र था।

१७-१८—विविध सैकड़ों समरों में उतरने में प्रवीण अपने भुजबल का पराक्रम जिसका अकेला साथी था, जो विक्रम के लिये अंकित था, और जिसके सुंदर शरीर पर परशु, बाण, शंकु, शक्ति, प्रास, तलवार, तोमर, भिंदिपाल, नाराच, वैतस्तिक आदि के अनेक सैकड़ों घाव थे।

१९-२०—और जिसका महाभाग्य कौशलक, महेंद्र, महाकांतारक, व्याघ्रराज, मंत्रराज, पैष्टपुरक, महेंद्रगिरि, कौट्टूरक, स्वामिदत्त, एरंडपल्लक, दमनकांचियक, विष्णुगोप और मुक्तक, नीलराज, वेंगेयक, हस्तिवर्म, पालक्कक, उग्रसेन, देवराष्ट्रक, कुबेर, कौस्थलपुरक, धनंजय आदि सारे दक्षिण के राजों के राज्य-ग्रहण और मोक्ष के अनुग्रह से उत्पन्न हुए प्रताप के साथ मिला हुआ था।

२१—और जिसने रुद्रदेव, मातलि, नागदत्त, चंद्रवर्म, गणपति, नाग, नागसेन, अच्युतनंदि, बलवर्मा आदि अनेक आर्यावर्त के राजों को जड़ से उखाड़कर अपना प्रभाव दिखलाया, और सारे जंगल के राजों को अपना चाकर बनाया।

२२—और जिसकी आज्ञा से प्रांत के अनेक राजा समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल, कीर्तिपुर, मालव, अर्जुनायन, यौधेय, माद्रव, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खर्परिक आदि सब जातियाँ कर देती थीं, उसकी आज्ञा मानती थीं, और उसको प्रणाम करती थीं।

२३-२४—जिसका प्रचंड शासन परितोषित था, और जिसका शांत यश अनीक-भ्रष्ट, राज्य से निकाले हुए अनेक राजवंशों को फिर प्रतिष्ठित करने से भुवन में फैला हुआ था, और जिसको दैवपुत्र शाहिशाहानुशाही शक, मरुंड, सैंहलक आदि सारे द्वीपों के निवासी आत्मनिवेदन किए हुए थे, अपनी कन्याएँ भेंट में देते थे, गरुड़ के चिह्न की ध्वजाएँ अर्पण करते थे, अपनी विषय-भुक्ति का शासन समर्पण करते एवं उससे आज्ञा माँगते थे। जिसका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं था, और जिसने अपने विक्रम के प्रभाव से सारी पृथ्वी को बाँध लिया था।

२५—जो सैकड़ों सच्चरितों से अलंकृत, अपने अनेक गुणगणों के लक्षणों से अन्य राजों की कीर्तियों को अपने तलवे से पोंछे हुए था। जो अचिंत्य पुरुष की भाँति साधु के उदय और असाधु के प्रलय का कारण था। जिसका कोमल हृदय भक्ति और प्रणति-मात्र से वश हो जाता था। जिसने लाखों गउएँ दान की थीं।

२६—जिसका मन कृपण, दीन, अनाथ, आतुर जनों के उद्धार में लगा रहता था। जो लोक के अनुग्रह का समृद्ध स्वरूप था। जो कुबेर, वरुण, इंद्र और यम के समान था। जिसके हज़ारों सेवक अपने भुजबल से जीते हुए राजों के विभव को फेर देने में लगे हुए थे।

२७—जिसने अपनी पैनी और विदग्ध बुद्धि और गाने-बजाने के ज्ञान से इंद्र के गुरु तुंबुरु, नारद आदि को लज्जित किया था। जिसने विद्वानों को जीविका देनेवाली अनेक काव्य-कृतियों से अपना कविराज-पद प्रतिष्ठित किया था। जिसके अनेक उदार चरित्र चिरकाल तक स्तुति करने के योग्य थे।

२८—जो संसार के काम करने-भर के लिये ही मनुष्य था, परंतु अपने तेज से देवता था। जो महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र, महाराज श्रीघटोत्कच का पौत्र और महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्त का पुत्र था।

२९—जो लिच्छवि-कुल का दौहित्र था, महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न था। उस महाराजाधिराज समुद्रगुप्त की सारी पृथ्वी की विजय से जनित संसार-भर में व्याप्त कीर्ति के यहाँ से स्वर्ग

३०—जाने में जो ललित सुख-विचरण को प्रकट करनेवाला, पृथ्वी के बाहु के समान यह स्तंभ है, वह उसके यश, दान, भुजविक्रम, प्रज्ञा और शास्त्र-वाक्य के उदय से ऊपर-ऊपर अनेक मार्ग में बढ़ता हुआ

३१—तीनों भुवनों को पवित्र करता है। महादेव के जटाजूट की अंतर्गुहा में रुककर निकलने से जल्दी बहते हुए गंगाजल की भाँति यह काव्य उन्हीं स्वामी के चरणों के दास के, जिनके समीप रहने के अनुग्रह से जिसकी मति उन्मीलित हो गई है,

३२-३३—महादंडनायक ध्रुवभूति के पुत्र खाद्यटपाकिक सांधिविग्रहिक कुमार अमात्य महादंडनायक हरिषेण का रचा यह काव्य सब प्राणियों के हित और सुख के लिये हो। परमभट्टारक के चरणों का ध्यान करनेवाले महा-भट्टनायक तिलभट्टक ने इसको अनुष्ठित किया है।

इस विषय पर अभी और लिखने का विचार है। पाठक धैर्य रक्खें।

श्रीअवधवासी सीताराम

गो० तुलसीदास की लिखी वाल्मीकीय रामायण

न्स कॉलेज, बनारस के सरस्वती-पुस्तकालय में गोस्वामी तुलसीदास के हाथ की लिखी वाल्मीकीय रामायण का उत्तरकांड रक्खा हुआ है। इसके अक्षर राजापुर के अयोध्याकांड (रामायण) से मिलते हैं। गोस्वामीजी के हाथ की लिखी होने के कारण उसकी रक्षक-पट्टिका पर बहुत-सा चंदन चढ़ा हुआ है, जिससे अनुमान होता है कि पुस्तकालय में भी बहुत दिनों तक उसकी पूजा होती रही है। सहायक पुस्तकाध्यक्ष पं० नारायणजी शास्त्री ने भी इसी बात का समर्थन किया है। कहा जाता है, काशी-नरेश के पुस्तकालय में भी गोस्वामीजी के हाथ के लिखे इसी रामायण के अन्य दो-एक कांड मौजूद हैं। इसके अक्षर बहुत ही सुडौल और एक ही साँचे में ढले हुए प्रतीत होते हैं। प्रत्येक पत्र में २२ पंक्तियाँ, और प्रत्येक पंक्ति में ४४ अक्षर हैं। कुल पृष्ठ १२६ तथा श्लोक ३,८०० हैं। रामायण के अंत में इस प्रकार लिखा हुआ है—

"इत्यार्षे रामायणे वाल्मीकीये चतुर्विंशति साहस्र्यां संहितायां उत्तरकाण्डे स्वर्गारोहणकं नाम सर्गः ॥ शुभमस्तु ॥ समाप्तं चेदं महाकाव्यं श्रीरामायणमिति संवत् १६४१ समये मार्ग सुदि ७ रवौ लि० तुलसीदासेन ॥

श्रीमदादिलशाहभूमिपसमासम्यैन्द्रभूमीसुरः !
श्रेणीमंडनमंडलीधुरि दयादानादिभाजि प्रभुः ॥
वाल्मीकेः कृतिमुत्तमां पुरद्विषोः पुर्यां पुरोगः कृतिः ।
दत्तात्रेयसमाह्वयो लिपिकृते कर्मत्वमाचीकरत्‌ (?) ॥"

संवत् १६४१ में यह प्रति गोस्वामीजी ने अपने हाथ से लिखी है। इसका यह अंतिम श्लोक दूसरी स्याही से पीछे का लिखा और अशुद्ध भी है। संभव है, यह लिपि भी गोस्वामीजी की ही हो, और पं० दत्तात्रेय को देते समय अंतिम श्लोक उनकी प्रशंसा में लिखकर समर्पित किया हो। मेरे विचार से भूमिपति आदिलशाह बीजापुर-नरेश के उच्चपदस्थ कर्मचारी पं० दत्तात्रेय को, उनके दया, दान, और अपनी श्रेणी को उत्कर्ष-प्रदान करने के कारण, काशी में यह वाल्मीकीय रामायण की प्रति समर्पित की गई थी।

आदिलशाह नाम के कई राजा बीजापुर (दक्षिण) में हो गए हैं। उनमें से इब्राहीम आदिलशाह (द्वितीय) संवत् १६४१ वि० में बीजापुर के सिंहासन पर था। यह राजा ब्राह्मणों का बड़ा सत्कार करता था। स्वामी शंकराचार्य को "जगद्गुरु" की उपाधि इसी ने दी थी। महाराष्ट्र ब्राह्मण भी इसके यहाँ अच्छे-अच्छे पदों पर थे। उन्हीं में से एक पं० दत्तात्रेय भी उच्च अधिकारी होंगे। जब पं० दत्तात्रेय महोदय काशी में आए होंगे, तो यहाँ भी उन्होंने अपनी उदारता का परिचय दिया होगा। वह गोस्वामीजी से भी मिले होंगे। गोस्वामीजी ने उदारता आदि उनके विशिष्ट गुण देखकर, सौजन्य से मुग्ध होकर, प्रसाद-स्वरूप (माँगने पर) यह रामायण दे डाली होगी।

पं० दत्तात्रेय की प्रशंसा में लिखे इस अंतिम श्लोक से भी यही अनुमान होता है। परंतु यह नहीं विदित होता कि गोस्वामीजी ने उनको संपूर्ण रामायण दी थी, या केवल यही उत्तरकांड।

यह भी संभव हो सकता है कि अंतिम श्लोक बनावटी हो और किसी दत्तात्रेय-नामक व्यक्ति ने अपनी प्रशंसा में स्वयं श्लोक बनाकर लिख लिया हो, अथवा बनवाकर लिखवा दिया हो। परंतु मेरा अनुमान तो यही है कि गोस्वामीजी ने स्वयं ही बीजापुर के पं० दत्तात्रेय की उदारता और सौजन्य आदि से प्रसन्न होकर प्रसाद-स्वरूप (माँगने पर) केवल उत्तरकांड दे दिया होगा।

राजापुर (बाँदा) में रक्खे हुए रामचरित-मानस के अयोध्याकांड को छोड़कर, अब तक गोस्वामीजी के हाथ का लिखा कोई विश्वसनीय लेख नहीं प्राप्त हुआ। उस अयोध्याकांड पर भी गोस्वामीजी के दस्तखत नहीं हैं। किंतु इस उत्तरकांड पर हस्ताक्षर और लिपि-काल, दोनों हैं।

यह प्रति पं० नारायणजी खर्स्ते शास्त्री (सहायक पुस्तकाध्यक्ष, सरस्वती-पुस्तकालय, काशी) की कृपा से मुझे देखने को मिली, अतः मैं उनका हार्दिक कृतज्ञ हूँ।

भागीरथप्रसाद दीक्षित

भूत

(१)

मुरादाबाद के पंडित सीतानाथ चौबे गत ३० वर्षों से वहाँ के वकीलों के नेता हैं। उनके पिता उन्हें बाल्यावस्था में ही छोड़ परलोक सिधारे थे। घर में कोई संपत्ति न थी। माता ने बड़े-बड़े कष्ट झेलकर उन्हें पाला और पढ़ाया। सबसे पहले वह कचहरी में १५) मासिक पर नौकर हुए। फिर वकालत की परीक्षा दी।

पास हो गए। प्रतिभा थी, दो ही चार वर्षों में वकालत चमक उठी। जब माता का स्वर्गवास हुआ, तब पुत्र का शुमार ज़िले के गण्य-मान्य व्यक्तियों में हो गया था। उनकी आमदनी एक हज़ार रुपए महीने से कम न थी। एक विशाल भवन बनवा लिया था; कुछ ज़मींदारी ले ली थी; कुछ रुपए बैंक में रख दिए थे, और कुछ लेन-देन में लगा दिए थे। इस समृद्धि पर चार पुत्रों का होना उनके भाग्य को आदर्श बनाए हुए था। चारों लड़के भिन्न-भिन्न दर्जों में पढ़ते थे। मगर यह कहना कि यह सारी विभूति चौबेजी के अनवरत परिश्रम का फल थी, उनकी पत्नी मंगला देवी के साथ अन्याय करना है। मंगला बड़ी सरल, गृह-कार्य में कुशल और पैसे का काम धेले में चलानेवाली स्त्री थी। जब तक अपना घर न बन गया, उसने ३) महीने से अधिक का मकान किराए पर नहीं लिया; और रसोई के लिये मिसराइन तो उसने अब तक न रक्खी थी। उसे अगर कोई व्यसन था, तो गहनों का; और चौबेजी को भी अगर कोई व्यसन था, तो स्त्री को गहने पहनाने का। वह सच्चे पत्नी-परायण मनुष्य थे। साधारणतः महफ़िलों में वेश्याओं से हँसी-मज़ाक़ कर लेना उतना बुरा नहीं समझा जाता; पर पंडितजी अपने जीवन में कभी किसी नाच-गाने की महफ़िल में गए ही नहीं। पाँच बजे तड़के से लेकर १२ बजे रात तक उनका व्यसन, मनोरंजन, पढ़ना-लिखना, अनुशीलन, जो कुछ था, क़ानून था। न उन्हें राजनीति से प्रेम था, न जाति-सेवा से। ये सभी काम उन्हें व्यर्थ-से जान पड़ते थे। उनके विचार में अगर कोई काम करने लायक़ था, तो बस, कचहरी जाना, बहस करना, रुपए जमा करना और भोजन करके सो रहना। जैसे वेदांती को ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् मिथ्या जान पड़ता है, वैसे ही चौबेजी को क़ानून के सिवा सारा संसार मिथ्या प्रतीत होता था। सब माया थी, एक क़ानून ही सत्य था।

(२)

चौबेजी के सुख-चंद्र में केवल एक कला की कमी थी। उनके कोई कन्या न थी। पहलौठी कन्या के बाद फिर कन्या हुई ही नहीं; और न अब होने की आशा ही थी। स्त्री और पुरुष, दोनों उस कन्या को याद करके रोया करते थे। लड़की बचपन में लड़कों से ज़्यादा चोचले करती है। उन चोचलों के लिये दोनों प्राणी विकल रहते। मा सोचती, लड़की होती, तो उसके लिये गहने बनवाती, उसके बाल गूँधती। लड़की पैजनियाँ पहने ठुमक-ठुमक आँगन में चलती, तो कितना आनंद आता! चौबे सोचते, कन्यादान के बिना मोक्ष कैसे होगी? कन्यादान महादान है। जिसने यह दान न दिया, उसका जन्म ही वृथा गया!

आख़िर यह लालसा इतनी प्रबल हुई कि मंगला ने अपनी छोटी बहन को बुलाकर कन्या की भाँति पालने का निश्चय किया। उसके मा-बाप निर्धन थे। राज़ी हो गए। यह बालिका मंगला की सौतेली मा की कन्या थी। बड़ी सुंदर और बड़ी चंचल थी। नाम था बिन्नी। चौबेजी का घर उसके आने से खिल उठा। दो ही चार दिनों में लड़की अपने मा-बाप को भूल गई। उसकी उम्र तो केवल चार वर्ष की थी, पर उसे खेलने की अपेक्षा कुछ काम करना अच्छा लगता था। मंगला रसोई बनाने जाती, तो बिन्नी भी उसके पीछे-पीछे जाती, उससे आटा गूँधने के लिये झगड़ा करती। तरकारी काटने में उसे बड़ा मज़ा आता था। जब तक वकील साहब घर पर रहते, तब तक वह उनके साथ दीवानख़ाने में बैठी रहती। कभी किताबें उलटती, कभी दावात-क़लम से खेलती। चौबेजी मुसकिराकर कहते—बेटी, मार खाओगी? बिन्नी कहती—तुम मार खाओगे; मैं तुम्हारे कान काट लूँगी, जूजू को बुलाकर पकड़ा दूँगी। इस पर दीवानख़ाने में ख़ूब क़हक़हे उड़ते। वकील साहब कभी इतने बालवत्सल न थे। अब बाहर से आते, तो कुछ-न-कुछ सौग़ात बिन्नी के वास्ते ज़रूर लाते, और घर में क़दम रखते ही पुकारते—बिन्नी बेटी, चलो। बिन्नी दौड़ती हुई आकर उनकी गोद में बैठ जाती।

मंगला एक दिन बिन्नी को लिए बैठी थी। इतने में पंडितजी आ गए। बिन्नी दौड़कर उनकी गोद में जा बैठी। पंडित ने पूछा—तू किसकी बेटी है?

बिन्नी—न बताऊँगी।

मंगला—कह दे बेटा, जीजी की बेटी हूँ।

पंडित—तू मेरी बेटी है बिन्नो कि इनकी?

बिन्नी—न बताऊँगी।

पंडित—अच्छा हम लोग आँखें बंद किए बैठे हैं; बिन्नी जिसकी बेटी होगी, उसकी गोद में बैठ जायगी।

बिन्नी उठी, और फिर चौबेजी की गोद में बैठ गई।

पंडित—मेरी बेटी है, मेरी बेटी है ; (स्त्री से) अब न कहना कि मेरी बेटी है।

मंगला—अच्छा, जाओ बिन्नी, अब मैं तुम्हें मिठाई न दूँगी, गुड़ियाँ भी न मँगा दूँगी !

बिन्नी—भैयाजी मँगवा देंगे, तुम्हें न दूँगी।

वकील साहब ने हँसकर छाती से लगा लिया, और गोद में लिए हुए बाहर चले गए। वह अपने इष्ट-मित्रों को भी इस बाल-क्रीड़ा का रसास्वादन कराना चाहते थे।

आज से जो कोई बिन्नी से पूछता कि तू किसकी बेटी है, तो बिन्नी चट कह देती—"भैया की।"

एक बार बिन्नी का बाप आकर उसे अपने साथ ले गया। बिन्नी ने रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा ली। इधर चौबेजी को भी दिन काटना कठिन हो गया। एक महीना भी न गुज़रने पाया था कि वह फिर ससुराल गए, और बिन्नी को लिवा लाए। बिन्नी अपनी माता और पिता को भूल गई। वह चौबेजी को अपना बाप और मंगला को अपनी मा समझने लगी। जिन्होंने उसे जन्म दिया था, वे अब ग़ैर हो गए।

(३)

कई साल गुज़र गए। वकील साहब के बेटों के विवाह हुए। उनमें से दो अपने बाल-बच्चों को लेकर अन्य ज़िलों में वकालत करने चले गए। दो कॉलेज में पढ़ते थे। बिन्नी भी कली से फूल हुई। ऐसे रूप-गुण-शील-वाली बालिका बिरादरी में और न थी—पढ़ने-लिखने में चतुर, घर के काम-धंधों में कुशल, बूटे-क़सीदे और सीने-पिरोने में दक्ष, पाक-कला में निपुण, मधुर-भाषिणी, लज्जाशीला, अनुपम रूप की राशि। अँधेरे घर में भी उसके सौंदर्य की दिव्य ज्योति प्रस्फुटित होती थी। उषा की लालिमा में, ज्योत्स्ना की मनोहर छटा में, खिले हुए गुलाब के ऊपर सूर्य की किरणों से चमकते हुए तुषार-बिंदु में भी वह सुषमा और वह शोभा न थी, श्वेत हिम-मुकुटधारी पर्वतों में भी वह प्राण-प्रद शीतलता न थी, जो बिन्नी अर्थात् विंध्येश्वरी के विशाल नेत्रों में थी।

चौबेजी ने बिन्नी के लिये सुयोग्य वर खोजना शुरू किया। लड़कों की शादियों में दिल का अरमान निकाल चुके थे। अब कन्या के विवाह में हौसले पूरे करना चाहते थे। धन लुटाकर कीर्ति पा चुके थे, अब दान-दहेज में नाम कमाने की लालसा थी। बेटे का विवाह कर लेना आसान है ; पर कन्या के विवाह में आबरू निबाह ले जाना कठिन है। नौका पर सभी यात्रा करते हैं; जो तैरकर नदी पार करे, वही प्रशंसा का अधिकारी है।

धन की कमी न थी। अच्छा घर और सुयोग्य वर मिल गया। जन्मपत्र मिल गए, बनाबंत बन गया। फलदान और तिलक की रस्में भी अदा कर दी गईं। पर हाय रे दुर्दैव ! कहाँ तो विवाह की तैयारी हो रही थी, द्वार पर दरज़ी, सुनार, हलवाई, सब अपना-अपना काम कर रहे थे, कहाँ निर्दय विधाता ने और ही लीला रच दी ! विवाह के एक सप्ताह पहले मंगला अनायास बीमार पड़ी, और तीन ही दिन में अपने सारे अरमान लिए हुए परलोक सिधार गई।

संध्या हो गई थी। मंगला चारपाई पर पड़ी हुई थी। बेटे, बहुएँ, पोते, पोतियाँ सब चारपाई के चारों ओर खड़े थे। बिन्नी पैताने बैठी मंगला के पैर दबा रही थी। मृत्यु के समय की भयंकर निस्तब्धता छाई हुई थी। कोई किसी से न बोलता था; दिल में सब समझ रहे थे क्या होनेवाला है। केवल चौबेजी वहाँ न थे।

सहसा मंगला ने इधर-उधर इच्छा-पूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—ज़रा उन्हें बुला दो ; कहाँ हैं ?

पंडितजी अपने कमरे में बैठे रो रहे थे। सँदेसा पाते ही आँसू पोछते हुए घर में आए, और बड़े धैर्य के साथ मंगला के सामने खड़े हो गए। डर रहे थे कि मेरी आँखों से आँसू की एक बूँद भी निकली, तो घर में हाहाकार मच जायगा।

मंगला ने कहा—एक बात पूछती हूँ—बुरा न मानना—बिन्नी तुम्हारी कौन है ?

पंडित—बिन्नी कौन है ? मेरी बेटी है, और कौन ?

मंगला—हाँ, मैं तुम्हारे मुँह से यही सुनना चाहती थी। उसे सदा अपनी बेटी समझते रहना। उसके विवाह के लिये मैंने जो-जो तैयारियाँ की थीं, उनमें कुछ काट-छाँट मत करना।

पंडित—इसकी कुछ चिंता न करो। ईश्वर ने चाहा, तो उससे कुछ ज़्यादा धूम-धाम के साथ विवाह होगा।

मंगला—उसे हमेशा बुलाते रहना, तीज-त्योहार में कभी मत भूलना।

पंडित—इन बातों की मुझे याद दिलाने की ज़रूरत नहीं।

मंगला ने कुछ सोचकर फिर कहा—इसी साल विवाह कर देना।

पंडित—इस साल कैसे होगा ?

मंगला—यह फागुन का महीना है। जेठ तक लगनें हैं।

पंडित—हो सकेगा, तो इसी साल कर दूँगा।

मंगला—हो सकने की बात नहीं, ज़रूर कर देना।

पंडित—कर दूँगा।

इसके बाद गोदान की तैयारी होने लगी।

(४)

बुढ़ापे में पत्नी का मरना बरसात में घर का गिरना है। फिर उसके बनने की आशा नहीं होती।

मंगला की मृत्यु से पंडितजी का जीवन अनियमित और विशृंखल-सा हो गया। लोगों से मिलना-जुलना छूट गया। कई-कई दिन कचहरी ही न जाते। जाते भी, तो बड़े आग्रह से। भोजन से अरुचि हो गई। विंध्येश्वरी उनकी दशा देख-देखकर दिल में कुढ़ती और यथासाध्य उनका दिल बहलाने की चेष्टा किया करती थी। वह उन्हें पुराणों की कथाएँ पढ़कर सुनाती, उनके लिये तरह-तरह की भोजन-सामग्री पकाती और उन्हें आग्रह अनुरोध के साथ खिलाती थी। जब तक वह न खा लेते, आप कुछ न खाती थी। गरमी के दिन थे ही। रात को बड़ी देर तक उनके पैताने बैठी पंखा झला करती, और जब तक वह सो न जाते, तब तक आप भी सोने न जाती। वह ज़रा भी सिर-दर्द की शिकायत करते, तो तुरत उनके सिर में तेल डालती। यहाँ तक कि रात को जब उन्हें प्यास लगती, तब खुद दौड़कर आती, और उन्हें पानी पिलाती। धीरे-धीरे चौबेजी के हृदय में मंगला केवल एक सुख की स्मृति रह गई।

एक दिन चौबेजी ने बिन्नी को मंगला के सब गहने दे दिए। मंगला का यह अंतिम आदेश था। बिन्नी फूली न समाई। उसने उस दिन खूब बनाव-सिंगार किया, गहने पहने। जब संध्या के समय पंडितजी कचहरी से आए, तो वह उनके सामने कुछ लजाती और कुछ मुसकिराती हुई जाकर खड़ी हो गई।

पंडितजी ने सतृष्ण नेत्रों से देखा। विंध्येश्वरी के प्रति अब उनके मन में एक नया भाव अंकुरित हो रहा था। मंगला जब तक जीवित थी, वह उनके पिता-पुत्री-भाव को सजग और पुष्ट करती रहती थी। अब मंगला न थी। अतएव वह भाव दिन-दिन शिथिल होता जाता था। मंगला के सामने बिन्नी एक बालिका थी। मंगला की अनुपस्थिति में वह एक रूपवती युवती थी। लेकिन सरल-हृदय बिन्नी को इसकी रत्ती-भर भी ख़बर न थी कि 'भैया' के भावों में क्या परिवर्तन हो रहा है। उसके लिये वह वही पिता के तुल्य भैया थे। वह पुरुषों के स्वभाव से अनभिज्ञ थी। नारी-चरित्र में अवस्था के साथ मातृत्व का भाव दृढ़ होता जाता है। यहाँ तक कि एक समय ऐसा आता है, जब नारी की दृष्टि में युवक-मात्र पुत्र-तुल्य हो जाते हैं। उसके मन में विषय-वासना का लेश भी नहीं रह जाता। पर पुरुषों में यह अवस्था कभी नहीं आती। उनकी कर्मेंद्रियाँ क्रिया-हीन भले ही हो जायँ, पर विषय-वासना संभवतः और भी बलवती हो जाती है। पुरुष वासनाओं से कभी मुक्त नहीं हो पाता; बल्कि ज्यों-ज्यों अवस्था ढलती है, त्यों-त्यों, ग्रीष्म-ऋतु के अंतिम काल की भाँति, उसकी वासना की गरमी भी प्रचंड हो जाती है। वह तृप्ति के लिये नीच साधनों का सहारा लेने को भी प्रस्तुत हो जाता है। जवानी में मनुष्य इतना नहीं गिरता। उसके चरित्र में गर्व की मात्रा अधिक रहती है, जो नीच साधनों से घृणा करती है। वह किसी के घर में घुसने के लिये ज़बरदस्ती कर सकता है, किंतु परनाले के रास्ते से नहीं जा सकता।

पंडितजी ने बिन्नी को सतृष्ण नेत्रों से देखा, और फिर अपनी इस उच्छृंखलता पर लज्जित होकर आँखें नीची कर लीं। बिन्नी इसका कुछ मतलब न समझ सकी।

पंडितजी बोले—तुम्हें देखकर मुझे मंगला की उस समय की याद आ रही है, जब वह विवाह के समय यहाँ आई थी। बिलकुल ऐसी ही सूरत थी—वही गोरा रंग, वही प्रसन्न मुख, वही कोमल गात, वे ही लजीली आँखें। वह चित्र अभी तक मेरे हृदय-पट पर खिंचा हुआ है, कभी नहीं मिट सकता। ईश्वर ने तुम्हारे रूप में मेरी मंगला मुझे फिर दे दी।

बिन्नी—आपके लिये क्या जल-पान लाऊँ ?

पंडित—ले आना, अभी बैठो, मैं बहुत दुखी हूँ। तुमने

मेरे शोक को भुला दिया है । वास्तव में तुमने मुझे जिला लिया, नहीं तो मुझे आशा न थी कि मंगला के पीछे मैं जीवित रहूँगा । तुमने मुझे प्राण-दान दिया । नहीं जानता, तुम्हारे चले जाने पर मेरी क्या दशा होगी ।

विन्नी—कहाँ चले जाने के बाद ? मैं तो कहीं नहीं जा रही हूँ ।

पंडित—क्यों, तुम्हारे विवाह की तिथि आ रही है । चली ही जाओगी ।

विन्नी—(सकुचाती हुई)—ऐसी जल्दी क्या है ?

पंडित—जल्दी क्यों नहीं है । ज़माना हँसेगा ।

विन्नी—हँसने दीजिए । मैं यहीं आपकी सेवा करती रहूँगी ।

पंडित—नहीं विन्नी, मेरे लिये तुम क्यों हलकान होगी । मैं अभागा हूँ, जब तक ज़िंदगी है, जिऊँगा ; चाहे रोकर जिऊँ, चाहे हँसकर । हँसी मेरे भाग्य से उठ गई । तुमने इतने दिनों सँभाल लिया, यही क्या कम एहसान किया । मैं यह जानता हूँ कि तुम्हारे जाने के बाद कोई मेरी ख़बर लेनेवाला नहीं रहेगा, यह घर तहस-नहस हो जायगा, और मुझे घर छोड़कर भागना पड़ेगा । पर क्या किया जाय, लाचारी है । तुम्हारे बिना अब मैं यहाँ क्षण-भर भी नहीं रह सकता । मंगला की ख़ाली जगह तो तुमने पूरी की, अब तुम्हारा स्थान कौन पूरा करेगा ?

विन्नी—क्या इस साल रुक नहीं सकता ? मैं इस दशा में आपको छोड़कर न जाऊँगी ।

पंडित—अपने बस की बात भी तो नहीं है । वे लोग आग्रह करेंगे, तो मजबूर होकर करना ही पड़ेगा ।

विन्नी—बहुत जल्दी मचावें, तो आप कह दीजिएगा, नहीं करेंगे । उन लोगों के जी में जो आवे, करें । क्या यहाँ कोई उनका दबैल बैठा हुआ है !

पंडित—वे लोग तो अभी से आग्रह कर रहे हैं ।

विन्नी—आप फटकार क्यों नहीं देते ?

पंडित—करना तो है ही, फिर विलंब क्यों करूँ । यह दुख और वियोग तो एक दिन होना ही है । अपनी विपत्ति का भार तुम्हारे सिर क्यों रक्खूँ ।

विन्नी—दुख-सुख में काम न आऊँगी, तो और किस दिन काम आऊँगी ?

(५)

पंडितजी के मन में कई दिनों तक घोर संग्राम होता रहा । वह अब विन्नी को पिता की दृष्टि से न देख सकते थे । विन्नी अब मंगला की बहन और उनकी साली थी । ज़माना हँसेगा, तो हँसे ; ज़िंदगी तो आनंद से गुज़रेगी । उनकी भावनाएँ कभी इतनी उल्लासमयी न थीं । उन्हें अपने अंगों में फिर जवानी की स्फूर्ति अनुभव हो रहा था ।

वह सोचते, विन्नी को मैं अपनी पुत्री समझता था, पर वह मेरी पुत्री है तो नहीं । इस तरह समझने से क्या होता है ? कौन जाने, ईश्वर को यही मंजूर हो, नहीं तो विन्नी यहाँ आती ही क्यों ? उसने इसी बहाने से यह संयोग निश्चित कर दिया होगा । उसकी लीला तो अपरंपार है ।

पंडितजी ने वर के पिता को सूचना दे दी कि कुछ विशेष कारणों से इस साल विवाह नहीं हो सकता ।

विंध्येश्वरी को अभी तक कुछ ख़बर न थी कि मेरे लिये क्या-क्या षड्यंत्र रचे जा रहे हैं । वह खुश थ कि मैं भैयाजी की सेवा कर रही हूँ, और भैयाजी मुझ प्रसन्न हैं । बहन का इन्हें बड़ा दुःख है । मैं न रहूँगी, तो यह कहीं चले जायँगे—कौन जाने, साधू-संन्यासी हो जायँ ! घर में कैसे मन लगे ।

वह पंडितजी का मन बहलाने का निरंतर प्रयत्न करती रहती थी । उन्हें कभी मन-मारे न बैठने देती । पंडितजी का मन अब कचहरी में न लगता था । घंटे-दो घंटे बैठकर चले आते थे । युवकों के प्रेम में विकलता होती है, और वृद्धों के प्रेम में श्रद्धा । वे अपनी यौवन की कमी को ख़ुशामद से, मीठी बातों से और हाज़िर-बाशी से पूर्ण करना चाहते हैं ।

मंगला को मरे अभी तीन ही महीने गुज़रे थे कि चौबेजी ससुराल पहुँचे । सास ने मुँह-माँगी मुराद पाई । उसके दो पुत्र थे । घर में कुछ पूँजी न थी । उनके पालन और शिक्षा के लिये कोई ठिकाना नज़र न आता था । मंगला मर ही चुकी थी । विन्नी का ज्यों ही विवाह हो जायगा, वह अपने घर की हो रहेगी । फिर चौबे से नाता ही टूट जायगा । वह इसी चिंता में पड़ी हुई थी कि चौबेजी पहुँचे, मानो देवता स्वयं वरदान देने आए हों ।

जब चौबेजी भोजन करके लेटे, तो सास ने कहा—
या, अभी कहीं बातचीत हुई कि नहीं ?

पंडित—अम्मा, अब मेरे विवाह की बातचीत
याँ होगी ?

सास—क्यों भैया, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है ?

पंडित—करना भी चाहूँ, तो बदनामी के डर से
हीं कर सकता। फिर मुझे पूछता ही कौन है ?

सास—पूछने को हज़ारों हैं। दूर क्यों जाओ, अपने
र ही में लड़की बैठी हुई है। सुना है, तुमने मंगला
े सब गहने बिन्नी को दे दिए हैं। कहीं और विवाह
हुआ, तो ये कई हज़ार की चीज़ें तुम्हारे हाथों से
निकल जायँगी। तुमसे अच्छा वर मैं और कहाँ
पाऊँगी। तुम उसे अंगीकार कर लो, तो मैं तर जाऊँ।

अंधा क्या माँगे, दो आँखें ! चौबेजी ने मानो विवश
होकर सास की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

(६)

बिन्नी अपने गाँव के कच्चे मकान में अपनी मा के
पास बैठी हुई है। अब की चौबेजी ने उसकी सेवा के
लिये एक लौंडी भी साथ कर दी है। विंध्येश्वरी के
दोनों छोटे भाई विस्मित हो-होकर उसके आभूषणों
को देख रहे हैं। गाँव की और कई स्त्रियाँ उसे देखने
आई हुई हैं, और उसके रूप-लावण्य का विकास
देखकर चकित हो रही हैं। यह वही बिन्नी है, जो
यहाँ मोटी फरिया पहने खेला करती थी ! रंग-रूप
कैसा निखर आया है ! सुख की देह है न !

जब भीड़ कम हुई, एकांत हुआ, तो माता ने पूछा—
तेरे भैयाजी तो अच्छी तरह हैं न बेटी ? यहाँ आए थे,
तो बहुत दुखी थे। मंगला का शोक उन्हें खाए जाता
है। संसार में ऐसे मर्द भी हैं, जो स्त्री के लिये प्राण
दे देते हैं। नहीं तो यहाँ स्त्री मरी, और चट दूसरा
ब्याह रचाया गया। मानो मनाते रहते हैं कि यह मरे,
तो नई-नवेली बहू घर लावें !

विंध्ये०—उन्हें याद करके रोया करते हैं। चली
आई हूँ, न-जाने कैसे होंगे।

माता—मुझे तो डर लगता है कि तेरा ब्याह हो
जाने पर कहीं वह घबराकर साधू-फ़क़ीर न हो जायँ।

विंध्ये०—मुझे भी तो यही डर लगता है। इसी
से तो मैंने कह दिया कि अभी जल्दी क्या है।

माता—जितने ही दिन उनकी सेवा करोगी, उतना
ही उनका स्नेह बढ़ेगा; और तुम्हारे जाने से उन्हें उतना
ही दुख भी अधिक होगा। बेटी, सच तो यह है कि
वह तुम्हीं को देखकर जीते हैं। इधर तुम्हारी डोली
उठी, और उधर उनका घर सत्यानास हुआ। मैं
तुम्हारी जगह होती, तो उन्हीं से ब्याह कर लेती।

विंध्ये०—हटो अम्मा, गाली देती हो ! उन्होंने मुझे
बेटी करके रक्खा है। मैं भी उन्हें अपना पिता......

माता—चुप रह पगली, कहने से क्या होता है ?

विंध्ये०—अरे सोचो तो अम्मा, कितनी बेढंगी बात है !

माता—मुझे तो इसमें कोई बेढंगापन नहीं देख
पड़ता।

विंध्ये०—क्या कहती हो अम्मा, उनसे मेरा...मैं
तो लाज के मारे मर जाऊँ, उनके सामने ताक न सकूँ।
वह भी कभी न मानेंगे। मानने की बात भी हो कोई !

माता—उनका ज़िम्मा मैं लेती हूँ। मैं उन्हें राज़ी कर
लूँगी। तू राज़ी हो जा। याद रख, यह कोई हँसी-खुशी
का ब्याह नहीं है, उस आदमी की प्राण-रक्षा की बात है,
जिसके सिवा संसार में हमारा और कोई नहीं है। फिर
अभी उनकी कुछ ऐसी उम्र भी तो नहीं है। पचास से
दो ही चार साल ऊपर होंगे। उन्होंने एक ज्योतिषी से
पूछा भी था। उसने उनकी कुंडली देखकर बताया है
कि आपकी ज़िंदगी कम-से-कम ७० वर्ष की है। देखने-
सुनने में भी वह सौ-दो सौ में एक आदमी हैं।

बातचीत में चतुर माता ने कुछ ऐसा शब्द-व्यूह रचा
कि सरल बालिका उसमें से निकल न सकी। माता
जानती थी कि प्रलोभन का जादू इस पर न चलेगा।
धन का, आभूषणों का, कुल-सम्मान का, सुखमय जीवन
का उसने ज़िक्र तक न किया। उसने केवल चौबेजी की
दयनीय दशा पर ज़ोर दिया। अंत को विंध्येश्वरी ने
कहा—अम्मा, मैं जानती हूँ कि मेरे न रहने से उनको
बड़ा दुख होगा; यह भी जानती हूँ कि मेरे जीवन में
सुख नहीं लिखा है। अच्छा, उनके हित के लिये मैं
अपना जीवन बलिदान कर दूँगी। ईश्वर की यही
इच्छा है, तो यही सही।

(७)

चौबेजी के घर में मंगल-गान हो रहा था। विंध्ये-
श्वरी आज वधू बनकर इस घर में आई है। कई वर्ष

पहले वह चौबेजी की पुत्री बनकर आई थी! उसने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि मैं एक दिन इस घर की स्वामिनी बनूँगी।

चौबेजी की सज-धज आज देखने योग्य है। तनज़ेब का रंगीन कुरता, कतरी और सँवारी हुई मूछें, ख़िज़ाब से चमकते हुए बाल, हँसता हुआ चेहरा, चढ़ी हुई आँखें—यौवन का पूरा स्वाँग था!

रात भीग चुकी थी। विंध्येश्वरी आभूषणों से लदी हुई, भारी जोड़े पहने, फ़र्श पर सिर झुकाए बैठी थी। उसे कोई उत्कंठा न थी, उत्सुकता न थी, भय न था; था केवल यह संकोच कि मैं उनके सामने कैसे मुँह खोलूँगी? उनकी गोद में खेली हूँ; उनकी पीठ पर सवार हुई हूँ; उनके कंधों पर बैठी हूँ; कैसे उन्हें मुँह दिखाऊँगी।—मगर वे पिछली बातें क्यों सोचूँ। ईश्वर उन्हें प्रसन्न रक्खें। जिसके लिये मैंने पुत्री से पत्नी बनना स्वीकार किया, वह पूर्ण हो। उनका जीवन आनंद से व्यतीत हो।

इतने में चौबेजी आए। विंध्येश्वरी उठ खड़ी हुई। उस इतनी लज्जा आई कि जी चाहा, कहीं भाग जाय, खिड़की से नीचे कूद पड़े।

चौबेजी ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोले—बिन्नी, मुझसे डरती हो?

बिन्नी कुछ न बोली। मूर्ति की तरह वहीं खड़ी रही। एक क्षण में चौबेजी ने उसे बिठा दिया; वह बैठ गई। उसका गला भर-भर आता था। भाग्य की यह निर्दय लीला, यह क्रूर क्रीड़ा, उसके लिये असह्य हो रही थी।

पंडितजी ने फिर पूछा—बिन्नी, बोलती क्यों नहीं? क्या मुझसे नाराज़ हो?

विंध्येश्वरी ने अपने कान बंद कर लिए। यही परिचित आवाज़ वह कितने दिनों से सुनती चली आती थी। आज वह व्यंग्य से भी तीव्र और उपहास से भी कटु मर्मांत होती थी।

सहसा पंडितजी चौंक पड़े; आँखें फैल गईं, और दोनों हाथ मेंढक के पैरों की भाँति सिकुड़ गए। वह दो क़दम पीछे हट गए। खिड़की से मंगला अंदर झाँक रही थी! मंगला थी—छाया नहीं, मंगला थी—सदेह, साकार, सजीव! उसकी आँखों में क्रोध और तिरस्कार भरा हुआ था।

चौबेजी काँपती हुई टूटी-फूटी आवाज़ में बोले—बिन्नी, देखो, वह क्या है?

बिन्नी ने भी घबराकर खिड़की की ओर देखा। कुछ था। बोली—क्या है? मुझे तो कुछ नहीं दिखाई देता

चौबेजी—अब ग़ायब हो गई; लेकिन ईश्वर जानता है, मंगला थी।

बिन्नी—बहन?

चौबे—हाँ, हाँ, वही। खिड़की से अंदर झाँक थी। मेरे तो रोएँ खड़े हो गए।

विंध्येश्वरी काँपती हुई बोली—मैं यहाँ नहीं रहूँगी

चौबे—नहीं, नहीं, बिन्नी, कोई डर नहीं है, मु धोखा हुआ होगा। बात यह है कि वह इसी घर में रहती थी, यहीं सोती थी, इसी से कदाचित् मेरी भावना ने उसकी मूर्ति लाकर खड़ी कर दी। कोई बात नहीं है। आज का दिन कितना मंगलमय है कि मेरी बिन्नी यथार्थ में मेरी हो गई ...

यह कहते-कहते चौबेजी फिर चौंके। फिर वही मूर्ति खिड़की से झाँक रही थी—मूर्ति नहीं, सदेह, सजीव, साकार मंगला! अब की उसकी आँखों में क्रोध न था, तिरस्कार न था; उनमें हास्य भरा हुआ था; मानो वह इस दृश्य पर हँस रही है—मानो उसके सामने कोई अभिनय हो रहा है।

चौबेजी ने काँपते हुए कहा—बिन्नी, फिर वही बात हुई। वह देखो, मंगला खड़ी है।

विंध्येश्वरी चीख़कर उनके गले से चिमट गई।

चौबेजी ने महावीर का नाम जपते हुए कहा—मैं किवाड़े बंद किए देता हूँ।

बिन्नी—मैं इस घर में नहीं रहूँगी। (रोकर) भैया-जी, तुमने बहन के अंतिम आदेश को नहीं माना, इसी से उनकी आत्मा दुखी हो रही है। मुझे तो किसी अमंगल की आशंका हो रही है।

चौबेजी ने उठकर खिड़की के द्वार बंद कर दिए, और कहा—मैं कल से दुर्गापाठ कराऊँगा। आज तक कभी ऐसी शंका न हुई थी। तुमसे क्या कहूँ, मालूम होता है ... होगा, उस बात को जाने दो। यहाँ बड़ी गरमी पड़ रही है। अभी पानी गिरने को दो महीने से क नहीं है। हम लोग मसूरी क्यों न चलें।

विंध्ये०—मेरा तो कहीं जाने को जी नहीं चाहता।

ज से दुर्गापाठ ज़रूर कराना। मुझे अब इस कमरे में द न आवेगी।

पंडित—ग्रंथों में तो यही देखा है कि मरने के बाद वल सूक्ष्म शरीर रह जाता है। फिर समझ में नहीं ाता, यह स्वरूप क्योंकर दिखाई दे रहा है। कुछ हीं, वह मेरी कल्पना का दोष है। कभी-कभी ऐसे भ्रम जाते हैं। मैं सच कहता हूँ बिन्नी, अगर तुमने मुझ पर ह दया न की होती, तो मैं कहीं का न रहता। शायद स वक्त मैं बद्रीनाथ की राह में पहाड़ों पर सिर टकराता ोता; या कौन जाने विष खाकर प्राणांत कर चुका होता!

विंध्ये०—मसूरी में किसी होटल में ठहरना पड़ेगा?

पंडित—नहीं, मकान भी मिलते हैं। मैं अपने एक मित्र को लिखे देता हूँ, वह कोई मकान ठीक कर रक्खेंगे। हाँ ...

बात पूरी न होने पाई थी कि न-जाने कहाँ से—जैसे आकाशवाणी हो—आवाज़ आई—"बिन्नी तुम्हारी पुत्री है!"

चौबेजी ने दोनों कान बंद कर लिए। भय से थर-थर काँपते हुए बोले—बिन्नी, यहाँ से चलो। न-जाने कहाँ से आवाज़ें आ रही हैं!

"बिन्नी तुम्हारी पुत्री है" यह वाक्य सहस्रों कानों से पंडितजी को सुनाई पड़ने लगा, मानो उस कमरे की एक-एक वस्तु से यही सदा आ रही है!

बिन्नी ने रोकर पूछा—कैसी आवाज़ थी?

पंडित—क्या बताऊँ, कहते लज्जा आती है।

बिन्नी—ज़रूर बहनजी की आत्मा है।—बहन, मुझ पर दया करो, मैं सर्वथा निर्दोष हूँ।

पंडित—फिर वही आवाज़ आ रही है। हाय ईश्वर! कहाँ जाऊँ। मेरे तो रोम-रोम में वे ही शब्द गूँज रहे हैं। बिन्नी, मैंने बुरा किया। मंगला सती थी, उसके आदेश की उपेक्षा करके मैंने अपने हक़ में ज़हर बोया। कहाँ जाऊँ, क्या करूँ?

यह कहकर पंडितजी ने कमरे के किवाड़े खोल दिए, और बेतहाशा भागे। अपने मरदाने कमरे में पहुँचकर वह गिर पड़े। मूर्च्छा आ गई। विंध्येश्वरी भी दौड़ी; पर चौखट से बाहर निकलते ही गिर पड़ी।

प्रेमचंद

महाकवि अकबर

"अगर ढूँढ़ो, तो अकबर में भी पाओगे हुनर कोई;
अगर चाहो, निकालो ऐब तुम अच्छे-से-अच्छे में।
जो महफ़िल में अकबर ने खोली ज़बाँ,
गुलिस्ताँ में बुलबुल चहकने लगा।"

जिस समय उर्दू-साहित्य का इतिहास लिखा जायगा, उस समय ख़ाँ-बहादुर सैयद अकबरहुसैन को उसके कवियों में निस्संदेह बहुत ऊँचा स्थान मिलेगा। यह सौभाग्य बहुत कम कवियों को मिला है कि अपने जीवन-काल में ही वे पुराने लब्धप्रतिष्ठ कवियों के-से सम्मान के अधिकारी हो जायँ। ऐसे लोग भी, जिनको उर्दू-काव्य का किंचिन्मात्र ज्ञान न था, अकबर की कविता से परिचित थे; और वे बड़े आनंद से उनके शेर पढ़ा करते थे। आज पाठकों को उन्हीं की कविता का रसास्वादन कराने का प्रयास करता हूँ।

सैयद अकबरहुसैन ने सन् १८६६ ई० से कविता-रचना शुरू की, और १९२१ में—७६ वर्ष की आयु प्राप्त करने पर भी—देहांत के कुछ दिन पहले तक आप काव्य-रचना करते रहे। आपके देहांत से महीना-भर पहले मैं, दो और मित्रों के साथ, इशरत-मंज़िल, प्रयाग में, आपसे मिला, और दो घंटे तक बातें करता रहा। मैं क्या जानता था कि कुछ ही दिनों में, अनेक मित्रों और साहित्य-प्रेमियों को छोड़कर, आप संसार के बंधन से मुक्त हो जायँगे? देखा, आपकी बातचीत पहले ही की-सी रसभरी, गद्य-पद्य-मिश्रित, साहित्य-विज्ञान-दर्शन के रत्नों से अलंकृत और हास्य-रस से परिपूर्ण थी। पहले ही का-सा आतिथि-सत्कार था। बुद्धि का वैसा ही चमत्कार, स्वभाव की वही सुशीलता, और विचारों की वैसी ही गंभीरता नज़र आई। व्यक्तिगत या धर्मगत द्वेष न उनमें स्वयं था, और न उनकी कविता में ही आने पाया। उर्दू में व्यंग्य-काव्य के निर्माता अथवा आदि-नेता की उपाधि यदि उन्हें दी जाय, तो कुछ अनुचित न होगा। बए क़ाफ़ियों का नज़्म करना अकबर ही का काम था। अँगरेज़ी और संस्कृत के शब्दों का जो उन्होंने अपनी

रचना में प्रयोग किया है, उससे वह फ़ारसी के भक्तों के कोप-भाजन तो अवश्य हुए, पर इसी कारण से जितना विस्तृत प्रचार उनकी रचनाओं का हुआ, और होता रहेगा, उतना प्रचार उनकी रचनाओं का संभव नहीं, जो अरबी और फ़ारसी के सिवा अन्य शब्दों का प्रयोग करना अनुचित या हराम समझते हैं, अथवा जो अपनी ग़ज़ल में 'लाज'-शब्द के आ जाने से क्षमा-प्रार्थना आवश्यक समझते हैं।*

अकबर की कविता स्वभावतः तीन भागों में विभक्त हो सकती है—प्रेम, ज्ञान और हास्य। इन तीनों प्रकार की कविताओं के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

मेरे इस विचार के प्रकट करने से संभव है, उर्दू के प्रेमी असंतुष्ट हों; परंतु मैं अवश्य यह कहूँगा कि उर्दू-कविता बड़ी संकुचित हो गई है। उसके लिये फ़ारसी का अनुकरण करना किसी हद तक स्वाभाविक ही था। पर फ़ारसी-कविता तो एक ही जगह रुककर नहीं रह गई—उसमें समयानुकूल परिवर्तन और ग्रहण-त्याग का सिलसिला जारी रहा है। आजकल की फ़ारसी-कविता (जिसके अनेक उदाहरण प्रोफ़ेसर ब्राउन और प्रोफ़ेसर निकलसन के ग्रंथों में मिलेंगे) सादी और क़आनी, उर्फ़ी और हाफ़िज़ की कविता से, भाषा और भाव में, बहुत ही भिन्न है। किंतु उर्दू में ऐसी उन्नति अथवा परिवर्तन का कोई चिह्न नहीं देख पड़ता। जिन गुल और बुलबुल, परवाना और शमा, तीर और जिगर, जाम और साक़ी, काफ़िर और बुतकदा, ख़िज़ाँ और बहार के विषय में हाफ़िज़ शीराज़ी कविता करते थे, उन विषयों पर, आज बीसवीं सदी में, फ़ारस नहीं, हिंदोस्तान के कवि कविता करते हैं। चाहे जिस किसी आधुनिक कवि की रचना को देखिए—

"सादगी की इंतहा कर दी, अर्जाजाने-चमन—
मुद्दतों रंगे-मिजाज-बाग़बाँ देखा किए।"
(सफ़ी)

"शमअ बुझकर रह गई, परवाना जलकर रह गया;
यादगारे-हुस्नो-इश्क़ इक दाग़ दिल पर रह गया।"
(अज़ीज़)

"फ़िक्रे-मीना क्यों है साक़ी, क्यों तलाशे-जाम है?
तू लगा दे मुँह से ख़ुम, पीना हमारा काम है।"
(चकबस्त)

"अंजामे-तजल्ली नज़र आ जायगा तुमको;
परवानो, रुख़े-शमए-सहर देखते रहना।"
(साक़िब)

"हो गई ख़िदमते-सैयाद में इतनी मुद्दत;
आशियाँ क्या है, हमें शक्ले-चमन याद नहीं।"
(महशर)

"एक आलम में बसर करते हैं, हम और बुलबुल;
कोई रुसवाए-ख़िज़ाँ है, कोई रुसवाए-बहार।"
(नासिरी)

इन आधुनिक उदाहरणों और ग़ालिब की रचनाओं की भाषा और भाव में क्या भेद है? इतने दिनों में उर्दू ने क्या उन्नति की है? उर्दू किस प्रकार से जनता के परिवर्तित भावों का दर्पण हुई है? उर्दू केवल भारत ही में बोली और लिखी जाती है; पर भारत के इतिहास, भारत के साहित्य, भारत के धार्मिक मतों और भारत-वासियों का इस पर क्या प्रभाव पड़ा है? इसी से मैं कहता हूँ कि उर्दू-साहित्य का क्षेत्र परम संकुचित और संकीर्ण है। जब यही सिद्धांत हुआ कि हाफ़िज़ और फ़िरदौसी के ही भाव दुहराए जायँ, तो नवीनता के लिये शब्द-विन्यास का ही एक सहारा रह गया। फिर उर्दू-कवि की रचना-प्रणाली भी तो विलक्षण है। उसका यत्न यही रहता है कि क़ाफ़िए और रदीफ़ की पाबंदी हो। एक ही ग़ज़ल में हिज्र का भी ज़िक्र है, और परवाने का भी; एक शेर में सैयाद है, तो दूसरे ही में आइनए-दिल। जिन्होंने बचपन से ऐसी कविता सुनी है, उनके लिये तो यही उत्तम है; पर विश्व-साहित्य में इसका क्या स्थान हो सकता है?

मैं प्रस्तुत विषय से दूर चला जा रहा हूँ। यह सब कहने का मतलब केवल यह है कि महाकवि अकबर ने अपनी कविता को इन दोषों से बचाने का प्रयत्न किया

---

* लखनऊ के 'अज़ीज़' कवि ने ऐसा ही किया है—
"चारगर चुप हैं क्यों, इलाज करें;
कुछ तो अपने किए की लाज करें।"
(गुलकदा, पृष्ठ ६२)
इस पर आप नोट लिखते हैं—"गो यह ज़बान (लाज) औरतों के लिये मख़सूस है, लेकिन चूँकि यह मतला बे-तकल्लुफ़ मौज़ूँ हो गया, मुसन्निफ़ ने रहने दिया।"

* यह कहना उचित है कि अज़ीज़ ने फिर भी अपनी कविता में बड़ी स्वतंत्रता का परिचय दिया है।

है। अब कुछ उनके काव्य के उदाहरण देता हूँ। सबसे पहली ग़ज़ल जो उन्होंने, सन् १८६६ ईसवी में, इक्कीस वर्ष की अवस्था में, मुशायरे में जाकर पढ़ी, और जिससे जनता को उनकी कवित्व-शक्ति का परिचय प्राप्त हुआ, उसका एक शेर और मकता यह है—

"अश्क आँखों में आ जाएँ एवज़ नींद के साहब,
ऐसा भी किसी शब सुनो अफ़साना किसी का।"
"हम जान से बेज़ार रहा करते हैं 'अकबर,'
जबसे दिले-बेताब है दीवाना किसी का।"

ऐसे ही कहते-कहते कविता का अभ्यास हो गया। और, फिर बाद को तो आपकी ग़ज़लें बड़ी ही अच्छी होने लगीं—

"ग़रूर उन्हें है, तो मुझको भी नाज़ है 'अकबर'
सिवा ख़ुदा के सब उनका है, और ख़ुदा मेरा।"

प्रेमपात्र तो बुत (मूर्ति) है ; सारे संसार का आधिपत्य, प्रेमी का हृदय, सब उसी का है ; स्वयं प्रेमी उसी का है ; पर प्रेमी इसी विचार से संतोष कर लेता है कि ईश्वर तो उसका नहीं है।

शेख़जी उपदेश बहुत दिया करते हैं—धर्म करो, ईश्वर का ध्यान धरो। पर जब मय-ख़ाने में, अथवा उसकी मजलिस में, बुत का सामना हुआ, तो वह भी, डरते-डरते, विवश होकर, प्रेम में मग्न हो गए ; सांसारिक स्नेह के मद से उन्मत्त हो गए—

"दिल भी काँपा, होंठ भी थर्राए, शर्माया भी ख़ूब;
शेख़ को लेकिन तेरी मजलिस में पीना ही पड़ा।"

इस ऊपर के शेर में 'मज़लिस' छोड़कर और कोई शब्द ऐसा नहीं है, जिसका प्रयोग संस्कृत के अनुरागी हिंदी-लेखक न करते हों। यह अकबर की कविता की एक विशेषता है।

पुराने रंग की कविता भी अकबर अच्छी करते थे। जैसे—

"जो नासिह मेरे आगे बकने लगा,
मैं क्या करता, मुँह उसका तकने लगा।
मुहब्बत का तुमसे असर क्या कहूँ,
नज़र मिल गई, दिल धड़कने लगा।
बदन छू गया, आग-सी लग उठी,
नज़र मिल गई, दिल धड़कने लगा।
रक़ीबों ने पहलू दिया, या तो चुप
मैं बैठा, तो ज़ालिम सरकने लगा।"

जिसको उर्दू में शोख़ी कहते हैं, उसके ये अच्छे दृष्टांत हैं—

"जब कहा मैंने 'मेरा दिल मुझको वापस कीजिए,'
नाज़ो-शोख़ी से वह बोले—'खो गया, मिलता नहीं'।"
"सुनते हैं कि 'अकबर' ने किया इश्क़े-बुताँ तर्क,
इस बात से तो ख़ुश न कभी होगा ख़ुदा भी।"
"मैं जो कहता हूँ कि मरता हूँ, तो फ़र्माते हैं—
कारे-दुनिया न रुकेगा तेरे मर जाने से।"
"मैंने कहा जो उससे, ठुकरा के चल न ज़ालिम
हैरत में आके बोला, क्या आप जी रहे हैं?"
"जब कहता हूँ, मरता हूँ मेरी जान, मैं तुम पर ;
फ़र्माते हैं, मरते हो, तो मर क्यों नहीं जाते?"
"जब कहा मैंने, भुला दो ग़ैर को, हँसकर कहा—
याद फिर मुझको दिलाना भूल जाने के लिये।"

अकबर प्रेममयी कविता के अन्य भावों का भी वर्णन अच्छा करते थे। यथा—जब तक सामर्थ्य है, और हृदय सजीव है, तब तक प्रेम ही करना चाहिए। आयु और काल के अनुसार सब काम करना उचित है। अभी तो वसंत है अभी प्रेममत्त हो लें—

"ख़िज़ाँ में होश जब आएगा, ख़ैर, रो लेंगे,
बहार तक तो हमें नश्शए-शराब रहे।"

विरह की व्यथा का वर्णन असंभव है—

"हाले दिल मैं सुना नहीं सकता,
लफ़्ज़ मानी को पा नहीं सकता।
इश्क़ नाज़ुक-मिज़ाज है बेहद,
अक़्ल का बोझ उठा नहीं सकता।
पोंछ सकता है हमनशीं आँसू,
दाग़े-दिल को मिटा नहीं सकता।"

प्रेम-मिलन हशर अथवा क़यामत है। इस पर ग़ालिब का यह मशहूर शेर है—

"जाते हुए कहते हो, क़यामत को मिलेंगे ;
क्या ख़ूब ! क़यामत का है गोया कोई दिन और !"

इसी पुरानी बात को अकबर नए ढंग से कहते हैं—

"एक दिन और क़यामत खिसक आएगी इधर ;
और क्या अर्ज़ करूँ आपसे कल क्या होगा !"

इस शेर में भी क़यामत और अर्ज़ को छोड़कर और सभी शब्द सादे हैं।

प्रेम का यह एक और ही रंग है—

"यों जल्द न रुख़सत हो जो गुल बाग़ से चुन लो,
इंसाफ़ यह कहता है कि बुलबुल की भी सुन लो।"

और—

"जो ज़िबह करता है, पर खोल दे मेरे सैयाद;
कि रह न जाय तड़पने की आरज़ू बाक़ी।"

इन उदाहरणों से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि अकबर प्रेममयी कविता बड़े मार्के की करते थे। अब उनकी ज्ञान-पूर्ण, अनुभवमयी कविता के कुछ दृष्टांत देता हूँ। कविता का मूल प्रेम है। आपमें बुद्धि है, तत्त्वज्ञान है, लेकिन जो हृदय में प्रेम नहीं, तो आप अच्छी कविता नहीं कर सकते—

"इश्क़ को दिल में दे जगह 'अकबर'
इल्म से शायरी नहीं आती।"

सरस हृदय हो, तो कविता के लिये और कोई वस्तु आवश्यक नहीं। स्वदेश-प्रेम उर्दू-शायरी में शायद कहीं देखा ही नहीं जाता। ब्रजनारायण चकबस्त के कुछ पद्यों और इक़बाल की दो नज़्मों में तो अवश्य भारत-गुण-गान है, पर और कवि बलख़ और बदख़्शाँ को ही देखते हैं; उनकी रचना में भारत का कहीं नाम भी नहीं। किंतु अकबर के हृदय में मातृभूमि के प्रति इतना वात्सल्य है कि वह कहते हैं—

"हिंद से आपको हिजरत हो मुबारक 'अकबर;'
हम तो गंगा ही पे अब मार के आसन बैठे!"

यही विचार उचित है। जब इतने दिनों से इस देश में आए हुए हैं, यहीं की भूमि से शरीर बना है और यहीं की भूमि में आ मिलेगा, तब गंगा और हिमालय कोई हिंदी और संस्कृत की ही जायदाद तो हैं नहीं? ज़मज़म छोड़कर गंगा पर कविता क्यों न की जाय?

संसार में शोर तो बहुत लोग मचाते हैं, चिल्लाते हैं, पुकारते हैं, पर उनके वचन कल के लोग नहीं सुनते। आज मेरी तूती बोल रही है; आज के बाद कोई मेरा नाम भी न जानेगा। आज मुझमें ज्योति है; मालूम होता है, यह ज्योति सदा बनी रहेगी। कल न मैं हूँ, न मेरी ज्योति है; दोनों अपार अनंत अंधकार में लीन हो गए। पर जिनमें सच्ची शक्ति है, उनका प्रकाश बना ही रहेगा—आज, कल, सदा पहले से भी अधिक प्रकाश होता जायगा। इसी भाव को कवि यों कहता है—

"जो गुबारे थे; वे आख़िर गिर गए;
जो सितारे थे, चमकते ही रहे।"

अँगरेज़ी के प्रसिद्ध गद्य-पद्य-लेखक स्टीविनसन का कहना है—

"There's so much good in the worst of us,
And so much ill in the best of us,
That it ill behoves any of us,
To speak ill of the rest of us."

दोष-रहित तो केवल ईश्वर है; नहीं, उस पर भी तो लोग अन्याय का दोषारोपण करते हैं। हम कौन ऐसे भले सज्जन गुणागार हैं कि औरों के दोष निकालने की धृष्टता करें?—

"क्या कहें औरों को, यह ऐसे हैं, वह ऐसे हैं;
सच जो पूछो, तो हमीं कौन बहुत अच्छे हैं?"

यह शेर हिंदी में है या उर्दू में, इसका निर्णय कौन करे? कितना बड़ा झगड़ा मिट जाता, अगर हिंदी और उर्दू, दोनों के लिखनेवाले ऐसी ही कविता लिखा करते!

ऊपर लिख आए हैं कि मतभेद की संकीर्ण-हृदयता अकबर में नहीं थी। आप कहते हैं—

"हकीम और बैद यकसाँ हैं, अगर तशख़ीस अच्छी हो;
हमें सेहत से मतलब है, बनफ़्शा हो कि तुलसी हो।"

निराकार या साकार, निर्गुण या सगुण, परमात्मा क्या है, इसका पता प्राचीन शास्त्रकारों को भी नहीं लगा; 'नेति-नेति' पर ही संतोष करना पड़ा। सृष्टि से आज तक धर्मशास्त्रों की, विज्ञान की, योग की, सबकी परम आकांक्षा यही रही है कि सृष्टिकर्ता के तत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो। आधुनिक वैज्ञानिक अपने आविष्कारों के क्षेतव्य गर्व में आकर 'इलेक्ट्रन', 'एटम', 'ईथर' इत्यादि को आदि-पदार्थ मानते हैं। कहते हैं, लो, अब कोई गुप्त वस्तु नहीं है, सब साफ़ हो गया। पर, फिर भी, मनुष्य की जिज्ञासा का अंत नहीं हुआ। मैं कौन हूँ? मेरा जन्म क्यों हुआ? मरण के पश्चात् मैं क्या होऊँगा? सृष्टि क्यों हुई? ये प्रश्न पूर्ववत् जटिल ही बने हैं—

"हज़ार 'सायंस' रंग लाए, हज़ार क़ानून हम बनाएँ;
ख़ुदा की क़ुदरत यही रहेगी, हमारी हैरत यही रहेगी।"

कर्म—कुछ काम करना—ही सबसे बड़ा धर्म है। लोकमान्य तिलक ने ठीक ही भगवद्गीता को कर्मयोग-शास्त्र कहा है। प्रकृति का नियम है कि एक स्वभाव दूसरे

भिन्न (विपरीत) स्वभाव की ओर आकर्षित होता है। जो शक्ति मुझमें नहीं है, उस शक्ति का मेरे हृदय में बड़ा आदर है। कवि योद्धा की ओर, बलवान् निर्बल की ओर, बुद्धिमान् सरल मनुष्य की ओर, और वक्ता लेखक की ओर आकृष्ट होता है। कवि अकबर इसी सिद्धांत के अनुसार कर्मवीर की प्रशंसा करते हुए यह भूल रहे हैं कि संसार में खूब कहनेवालों की भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी खूब करनेवालों की—

"जब 'खूब किया' का कोई मौक़ा न निकाला,
फिर क्या जो हुई धूम फ़क़त 'खूब कही' की ?"

आजकल के नवयुवकों में शिष्टता की कमी हो गई है। बड़ों का, विद्या-वयोवृद्धों का आदर उनके हृदय में कम हो गया है। इसी से कवि कहता है—

"जिससे मिलती थी उन्हें दिल में बुज़ुर्गों के जगह,
वह अदब लड़कों के दिल से आजकल जाता रहा।"

अकबर का सबसे प्रिय प्रधान गुण हास्य था। उनकी बातें सदा हास्य-पूर्ण होती थीं। कविता में भी इस विशेषता का—ज़राफ़त का—उन्होंने समावेश किया है। मगर तारीफ़ यह कि कभी उनका मज़ाक़ भद्दा या गिरा हुआ नहीं होता। उसमें अश्लीलता का लेश भी नहीं। अश्लीलता को हास्य-रस की कविता में न आने देना सुलभ नहीं है। कहते हैं—

"मज़हबी बहस मैंने की ही नहीं,
फ़ालतू अक़्ल मुझमें थी ही नहीं।"

"तुम-से उस्तादों में मेरी शायरी बेकार है,
साज़ सारंगी का बुलबुल के लिये दुशवार है।"

इस शेर में प्रसिद्ध कहावत बड़ी योग्यता से रख दी है—

"जब ग़म हुआ चढ़ा लीं दो बोतलें इकट्ठी ;
मुल्ला की दौड़ मसजिद, अक़बर की दौड़ भट्ठी।"

और कहते हैं—

"बोले चपरासी जो मैं पहुँचा ब-उम्मीदे सलाम,
फाँकिए ख़ाक आप भी, साहब हवा खाने गए।"

"फ़ुर्क़त ने कहा कि जागिए आप;
खटमल ने कहा कि भागिए आप।"

आगे कुछ उन पद्यों को उद्धृत करता हूँ, जिनमें अँगरेज़ी के शब्दों का प्रयोग होने के कारण उनका प्रभाव विशेष हो गया है—साथ ही क़ाफ़ियों की, नज़्म की ख़ूबी भी देखने योग्य है—

"ज़िंदगी और क़यामत में 'रिलेशन'[1] समझो,
इसको कॉलेज[2] और उसे 'कॉनवोकेशन'[3] समझो।"

"मुहल्ले में न की जब शेख़ की वक़त अज़ीज़ों ने,
तो बेचारा कमेटी ही में जाकर कूद-उछल आया।"

इस शेर में इशारा उनकी ओर है, जो कौंसिल और बोर्डों में चुने जाते हैं। अपने शहर में तो कोई पूछता नहीं, कौंसिल और कमेटी में देश के नेता बन जाते हैं। और, वहाँ काम केवल उछल-कूद करना है—कोई यथार्थ देश-सेवा नहीं।

"चार दिन की ज़िंदगी है, कोफ़्त से क्या फ़ायदा ?
खा डबलरोटी, क्लर्की कर, ख़ुशी से फूल जा।"

"मैं हुआ रुख़सत उनसे पे 'अकबर',
वस्ल के बाद 'थैंक यू'[4] कहकर।"

अधिकार का तिरस्कार और धर्म की अवहेलना जो नवयुवकों में आ गई है, और उन्हें जो मिथ्याभिमान हो गया है, उसी पर अकबर कहते हैं—

"हुक्काम पै बम[5] के गोले हैं, और मौलवियों पर गाली है ;
कॉलिज ने यह कैसे साँचों में लड़कों की तबीयत ढाली है?"

इस शेर में क़ाफ़िए को छोड़कर और कुछ नहीं है—

"मुझको है पसंद इस सबब से यू० पी०[6],
यानी यू० पी० का क़ाफ़िया है रूपी[7]।"

इसमें हास्य और व्यंग्य मिश्रित है—

"तालिब-इल्मों को ले जाओ कमेटी[8] में न तुम,
कहीं ऐसा न हो, ये क़ौम पै आशिक़ हो जायँ।"

"क्यों सिविल सर्जन[9] का आना रोकता है हमनशीं ;
इसमें है एक बात ऑनर[10] की, शफ़ा हो या न हो।"

---

१. Relation=संबंध।
२. College.
३. Convocation, जिसमें परीक्षोत्तीर्ण होने पर उपाधि मिलती है।
४. Thank you=धन्यवाद।
५. Bomb.
६. U. P.=संयुक्त-प्रांत।
७. Rupee=रुपया।
८. Committee.
९. Civil Surgeon.
१०. Honour=आदर।

"कमेटी में चंदा दिया कीजिए;
तरक़्क़ी के हिज्जे किया कीजिए।"

बात तो कवि ने ठीक ही कही है। पाठक स्वयं स्मरण करें, कितने लोग समाज, स्कूल, अस्पताल, समितियों में चंदा देते हैं, कितनी जगह उस चंदे का सदुपयोग होता है, और इन संस्थाओं के कारण समाज की कितनी उन्नति होती है?

"क्या वह दुरुस्त हो मेरी नज़्मों के फ़ोर्स[१] से;
फ़ुर्सत कहाँ है क़ौम को कॉलिज के कोर्स[२] से।"

जिन लोगों की आय चंदे पर निर्भर है, उन पर कवि कहता है—

"सर्विस[३] में मैं दाख़िल नहीं, हूँ क़ौम का ख़ादिम;
चंदों की फ़क़त आस है, तनख़ाह कहाँ है?"

धर्मचर्चा प्रिय नहीं है; पर नोक-झोंक करने, झगड़ने और परस्पर निंदा करने के लिये कमेटियों में समय नष्ट करना स्वीकार है—

"नहीं मंज़ूर नमाज़ों में गुज़ारें रातें;
हाँ, कमेटी हो, तो उलझे हुए बकबक में रहें।"

इस समय की शिक्षा-प्रणाली से जो नास्तिकता और धर्म के प्रति अवहेलना-बुद्धि हो गई है, उस पर यह शेर है—

"गिर्जा में लाट साहब, मसजिद में शेख़ साहब,
बुद्धू फ़िलॉसफ़ी[४] के कमरे में सड़ रहे हैं।"

फिर कमेटी के ऊपर—

"क्यों अपने सर पै ज़हमते-बेसूद लीजिए;
कौंसिल[५] के बदले घर में उछल-कूद लीजिए।
खा-पीके घर में बैठिए, और गाइए भजन;
काशी से जल, प्रयाग से अमरूद लीजिए।"

पुरानी रीतियों को छोड़कर नई प्रणाली के अनुयायियों पर शेर कहा है—

"हरचंद कि है मिस[६] का लवेंडर[७] भी बहुत ख़ूब;
बेगम का मगर इत्रे-हिना और ही कुछ है।"

१. Force=शक्ति।
२. Course=पाठ्य-विषय।
३. Service=नौकरी।
४. Philosophy.
५. Council.
६. Miss.
७. Lavender.

नीचे के शेर में, जिसे मेरे एक मित्र 'Intellectual companionship' (मानसिक सौहार्द) कहते हैं, उसका उदाहरण है—

"मैं भी ग्रेजुएट[१] हूँ, तू भी ग्रेजुएट,
इलमी मुबाहसे हों; ज़रा पास आके लेट।"

'देश-सेवकों' पर फिर एक चोट—

"शिमलाओ-नैनीताल जानेवाले,
रेल के पहले दर्जे के टिकट पानेवाले।"
"ख़ुदा की राह में पहले बसर करते थे सख़्ती से;
महल में बैठकर अब इश्क़े-क़ौमी में तड़पते हैं[२]।"

इस शेर में तसवीर के स्थान पर 'फ़ोटो' का प्रयोग करने से ख़ूबी आ गई है, और 'चाटो' से तो हास्य-रस की पूर्ति हो गई है—

"हिज्र की शब यों ही काटो भाइयो,
उनका फ़ोटो[३] लेके चाटो भाइयो।"

ऊपर के अनेक उदाहरणों से पाठकों का मनोविनोद तो हुआ ही होगा, साथ ही उन्होंने यह भी देखा होगा कि हास्यमय होते हुए भी इन पद्यों में उपदेश भरा हुआ है। अकबरहुसैन ने उर्दू-साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी दूर की; और नवीन प्रणालियों के पथ-प्रदर्शक का काम भी किया। उर्दू-साहित्य के उन थोड़े-से लेखकों में आपका नाम रहेगा, जिनसे साहित्य के गौरव की वृद्धि हुई है। आप अपनी एक ग़ज़ल में दूसरे भाव से कह चुके हैं—

"ज़िंदा हूँ, तो मुझ पै हँसनेवाले हैं बहुत,
मर जाऊँ तो कोई रोनेवाला न रहा।"

सच तो यह है कि इनके मरने पर उर्दू-साहित्य का एक अनोखा रत्न खो गया; एक देदीप्यमान ज्योति अस्त हो गई। पर एक चिरस्थायी कीर्ति-स्तंभ * अवश्य ही

१. Graduate.

२. इसी विषय पर विश्वंभरनाथजी कौशिक की मनोहर कहानी 'लीडरी का पेशा' भी पढ़ने लायक़ है।

गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ से प्रकाशित "चित्रशाला" में पढ़िए।

३. Photo.

* अकबर का कुल्लियाते-अकबर (तीन भाग) उर्दू-पढ़े पाठकों के पढ़ने की चीज़ है।

पद्धति से सहमत नहीं हैं। इस विषय में अभी हमें पादरियों से बहुत कुछ सीखना है।

कुछ भी हो, हिंदू-विश्वविद्यालय में हिंदूपन बहुत है। विद्यालयों तथा छात्रावासों के प्रत्येक भाग में हिंदूपन झलकता है। दरवाज़ों, खिड़कियों, कँगूरों तथा कलसियों से साफ़-साफ़ हिंदू-शैली व्यक्त होती है। भीतर जाने पर यत्र-तत्र हिंदू-ग्रंथों के वाक्य-रत्न दीवारों पर लिखे मिलेंगे। बड़े 'हाल' (Hall) में तो बड़े-बड़े अक्षरों में ज्ञान, धर्म, भक्ति आदि शब्द चारों ओर खुदे हुए हैं। सबसे ऊपर सरस्वतीजी का एक मंदिर है, जो अभी पूरा बन नहीं चुका। विश्वविद्यालय-गृह में लगी हुई प्रत्येक ईंट में "काशी-विश्वविद्यालय" का संक्षिप्त रूप "का०वि०वि०" खुदा है। दरवाज़ों तथा ज़ीनों में भी यही अंकित है। परमात्मा न करें, पर संभव है, किसी समय भविष्य के इतिहासकार को इन अक्षरों पर अनेक समस्याएँ हल करनी पड़ें। किंतु काशीपुरी बाबा विश्वनाथ के त्रिशूल पर बसी है। यह पुण्य-नगरी अमर है, और इसी से विश्व-विद्यालय का सिद्धांत-वाक्य भी अमरत्व का सूचक है— "विद्ययाऽमृतमश्नुते"। यही वहाँ की मोहर पर भी, जिसमें सरस्वती का चित्र है, और जो प्रत्येक सनद आदि पर रहती है, अंकित है। इसी प्रकार सेंट्रल हिंदू-कॉलेज का वाक्य है—"विद्या धर्मेण शोभते"। इसी प्रकार इंजीनियरिंग कॉलेज का वाक्य है—"कर्मयोगिनः"। यहाँ का यह वाक्य भगवान् विश्वकर्मा के चतुर्भुज चित्र के नीचे लिखा रहता है। मुझसे जो एक-आध मुसलमान और क्रिश्चियन विद्वान् मिले, वे इस विषय पर बातचीत होने पर इस हिंदूपन की शिकायत-सी करने लगे। मैंने उन्हें सारा सिद्धांत समझा दिया। न तो क्रिश्चियन संस्थाओं की भाँति यहाँ धार्मिक शिक्षा ही सबके लिये अनिवार्य है, और न अन्य-धर्मावलंबियों के लिये और कोई आपत्तिजनक बाधाएँ ही हैं।

विश्वविद्यालय की मोहर (देखिए, ऊपर से सुधाकर भगवान् सरस्वती पर अमृत-वर्षा कर रहे हैं)

मुसलमानी त्योहारों पर यद्यपि छुट्टी नहीं रहती, तथापि मुसलमान-छात्रों को उस दिन विशेष रूप से छुट्टी मिलती है। यहाँ अनुपस्थिति के लिये जुर्माना तो होता ही नहीं। वास्तव में जुर्माने की यह पद्धति विद्यार्थियों के लिये नहीं, उनके अभिभावकों के लिये हानिकर है। फ़ीस भी यहाँ सब विश्वविद्यालयों से कम ली जाती है। पहले तो केवल अविवाहित छात्रों से आधी फ़ीस ली जाती थी, किंतु फिर सबके लिये आधी से कुछ अधिक कर दी गई। जन्माष्टमी आदि त्योहारों के दिन खूब ही धूम रहती है। आर्ट्स कॉलेज की वसंत-पंचमी और इंजीनियरिंग कॉलेज की सरस्वती-पूजा प्रसिद्ध है। आक्सफ़ोर्ड-कैंब्रिज की बेयडिंग आदि की भाँति यहाँ की इन बातों की परंपरा (tradition)-सी बन रही है। पर ६०० और ६ वर्ष में बड़ा अंतर होता है; और इसी कारण इन विश्वविद्यालयों की परस्पर तुलना करना ठीक नहीं। दीपावली के दिन कई सहस्र दीपों से प्रकाश-ही-प्रकाश रहता है; होली की रात को होलिका-दहन और फाग होता है। प्रातःकाल रंग की छटा रहती है। यहाँ तक कि मालवीय-जी भी नहीं बचते। रंग लगाया जाता और मिठाई वसूल की जाती है। वसंत-पंचमी को तो सैकड़ों नवयुवक पीले ही कुर्ते पहने देख पड़ते हैं—वसंत का मूर्तिमान् रूप खड़ा हो जाता है। वार्षिक अधिवेशनों (Convocation) में उपाधि-वितरण के अवसर पर और स्थानों में 'हुड' पहनाया जाता है; पर यहाँ उसकी जगह ग्रेजुएट लोग पगड़ी बाँधते हैं। हाँ, स्त्रियों के लिये अलबत्ता हुड रहता है। पर इसमें कोई ढोंग और ढकोसले की बात नहीं है। इंजीनियरिंगवाले यदि पाजामा या नेकर पहनकर न जायँ, तो क्या करें? मशीनों में धोती फँसाकर दबने से क्या लाभ? उन्हें तो धूप में पैमाइश करनी होती है। यदि हैट न लगावें, तो अंधे ही हो जायँ। इसीलिये कहा भी है—

"यस्यास्ति सर्वत्र गतिः स कस्मात्स्वदेशरागेण हि याति नाशम्;
तातस्य कूपेऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।"

इन सब बातों में धर्म थोड़े ही है। ऐसी बातों से जातीयता भी नहीं नष्ट होती। अस्तु।

विश्वविद्यालय की स्थापना १ एप्रिल, सन् १९१६ ई० में हुई थी, और काम आरंभ हुआ था १९१७ के ऑक्टोबर से। प्राच्य विद्या-विभाग और ट्रेनिंग कॉलेज १९१८ में खुले,

और इंजीनियरिंग कॉलेज १९१९ से कार्य कर रहा है। लॉ-कॉलेज को खुले तो अभी पहला ही वर्ष पूरा हो रहा है; पर हैं उसमें सौ से भी अधिक विद्यार्थी। विश्वविद्यालय की दो बड़ी समितियाँ हैं, जो सारा कार्य करती हैं। एक तो है कोर्ट। यह सर्वोच्च अधिकार रखनेवाली समिति है। दूसरी है सिनेट। यह पठन-पाठन का निरीक्षण करती है। कोर्ट का मेंबर केवल हिंदू ही हो सकता है। अभी तक केवल डॉ० एनी बेसंट ही इस नियम का अपवाद हैं। यह समिति बहुत बड़ी है। इसमें अध्यापकों, जैनों, सिखों, संस्कृत और धर्मशास्त्र के विद्वानों, विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों तथा दाताओं के प्रतिनिधि काम करते हैं। सिनेट के तीन-चौथाई सदस्य हिंदू रहते हैं। [illegible] विश्वविद्यालय है। इसमें लगभग दो लाख रुपए लगेंगे। उक्त सर गंगारामजी इस प्रतिश्रुति के लिये धन्यवाद के पात्र हैं। सुना जाता है, महाराज दरभंगा-नरेश ने भी ५ लाख रुपए देकर एक ऐसा मंदिर बनवाने को कहा है, जिसके चारों ओर दस हज़ार मनुष्य सुख से रह सकें। नहर गंगाजी से आकर इस मंदिर के चारों ओर लहराती हुई फिर गंगाजी में ही जा मिलेगी। तब तो नगवे की छटा और ही कुछ हो जायगी।

विश्वविद्यालय का दृश्य बड़ा ही मनोरम है। कॉलेजों और छात्रावासों के बीच-बीच तालाब और बग़ीचे हैं। घास के मैदानों में भेड़ें, बकरियाँ और गउएँ चरती रहती हैं। चारों ओर तथा बीच-बीच में खेती होती है। दक्षिण ओर दृष्टि दौड़ाने पर विंध्य-गिरिमाला की धूसर

पद्धति से सहमत नहीं हैं। इस विषय में अभी हमें पादरियों से बहुत कुछ सीखना है।

कुछ भी हो, हिंदू-विश्वविद्यालय में हिंदूपन बहुत है। विद्यालयों तथा छात्रावासों के प्रत्येक भाग में हिंदूपन झलकता है। दरवाज़ों, खिड़कियों, कँगूरों तथा कलसियों से साफ़-साफ़ हिंदू-शैली व्यक्त होती है। भीतर जाने पर यत्र-तत्र हिंदू-ग्रंथों के वाक्य-रत्न दीवारों पर लिखे मिलेंगे। बड़े 'हाल' (Hall) में तो बड़े-बड़े अक्षरों में ज्ञान, धर्म, भक्ति आदि शब्द चारों ओर खुदे हुए हैं। सबसे ऊपर सरस्वतीजी का एक मंदिर है, जो अभी पूरा बन नहीं चुका। विश्वविद्यालय-गृह में लगी हुई प्रत्येक ईंट में "काशी-विश्वविद्यालय" का संक्षिप्त रूप "का० वि० वि०" खुदा है। दरवाज़ों तथा ज़ीनों में भी यही अंकित है। परमात्मा न करे, पर संभव है, किसी समय भविष्य के इतिहासकार को इन अक्षरों पर अनेक समस्याएँ हल करनी पड़ें। किंतु काशीपुरी बाबा विश्वनाथ के त्रिशूल पर बसी है। यह पुण्य-नगरी अमर है, और इसी से विश्व-विद्यालय का सिद्धांत-वाक्य भी अमरत्व का सूचक है— "विद्ययाऽमृतमश्नुते"। यही वहाँ की मोहर पर भी, जिसमें सरस्वती का चित्र है, और जो प्रत्येक सनद आदि पर रहती है, अंकित है। इसी प्रकार सेंट्रल हिंदू-कॉलेज का वाक्य है—"विद्या धर्मेण शोभते"। इसी प्रकार इंजीनियरिंग कॉलेज का वाक्य है—"कर्मयोगिनः"। यहाँ का यह वाक्य भगवान् विश्वकर्मा के चतुर्भुज चित्र के नीचे लिखा रहता है। मुझसे जो एकआध मुसलमान और क्रिश्चियन विद्वान् मिले, वे इस विषय पर बातचीत होने पर इस हिंदूपन की शिकायत-सी करने लगे। मैंने उन्हें सारा सिद्धांत समझा दिया। न तो क्रिश्चियन संस्थाओं की भाँति यहाँ धार्मिक शिक्षा ही सबके लिये अनिवार्य है, और न अन्य-धर्मावलंबियों के लिये और कोई आपत्तिजनक बाधाएँ ही हैं।

विश्वविद्यालय की मोहर
(देखिए, ऊपर से सुधाकर भगवान् सरस्वती पर अमृत-वर्षा कर रहे हैं)

मुसलमानी त्योहारों पर यद्यपि छुट्टी नहीं रहती, तथापि मुसलमान-छात्रों को उस दिन विशेष रूप से छुट्टी मिलती है। यहाँ अनुपस्थिति के लिये जुर्माना तो होता ही नहीं। वास्तव में जुर्माने की यह पद्धति विद्यार्थियों के लिये नहीं, उनके अभिभावकों के लिये हानिकर है। फ़ीस भी यहाँ सब विश्वविद्यालयों से कम ली जाती है। पहले तो केवल अविवाहित छात्रों से आधी फ़ीस ली जाती थी, किंतु फिर सबके लिये आधी से कुछ अधिक कर दी गई। जन्माष्टमी आदि त्योहारों के दिन ख़ूब ही धूम रहती है। आर्ट्स कॉलेज की वसंत-पंचमी और इंजीनियरिंग कॉलेज की सरस्वती-पूजा प्रसिद्ध है। आक्सफ़ोर्ड-केंब्रिज की बेयडिंग आदि की भाँति यहाँ की इन बातों की परंपरा (tradition)-सी बन रही है। पर ६०० और ६ वर्ष में बड़ा अंतर होता है; और इसी कारण इन विश्वविद्यालयों की परस्पर तुलना करना ठीक नहीं। दीपावली के दिन कई सहस्र दीपों से प्रकाश-ही-प्रकाश रहता है; होली की रात को होलिका-दहन और फाग होता है। प्रातःकाल रंग की छटा रहती है। यहाँ तक कि मालवीय-जी भी नहीं बचते। रंग लगाया जाता और मिठाई वसूल की जाती है। वसंत-पंचमी को तो सैकड़ों नव-युवक पीले ही कुर्ते पहने देख पड़ते हैं—वसंत का मूर्तिमान् रूप खड़ा हो जाता है। वार्षिक अधिवेशनों (Convocation) में उपाधि-वितरण के अवसर पर और स्थानों में 'हुड' पहनाया जाता है; पर यहाँ उसकी जगह ग्रेजुएट लोग पगड़ी बाँधते हैं। हाँ, स्त्रियों के लिये अलबत्ता हुड रहता है। पर इसमें कोई ढोंग और ढकोसले की बात नहीं है। इंजीनियरिंगवाले यदि पाजामा या नेकर पहनकर न जायँ, तो क्या करें? मशीनों में धोती फँसाकर दबने से क्या लाभ? उन्हें तो धूप में पैमाइश करनी होती है। यदि हैट न लगावें, तो अंधे ही हो जायँ। इसीलिये कहा भी है—

"यस्यास्ति सर्वत्र गतिः स कस्मात्स्वदेशरागेण हि याति नाशम्;
तातस्य कूपेऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।"

इन सब बातों में धर्म थोड़े ही है। ऐसी बातों से जातीयता भी नहीं नष्ट होती। अस्तु।

विश्वविद्यालय की स्थापना १ एप्रिल, सन् १९१६ ई० में हुई थी, और काम आरंभ हुआ था १९१७ के अॉक्टोबर से। प्राच्य विद्या-विभाग और ट्रेनिंग कॉलेज १९१८ में खुले,-

और इंजीनियरिंग कॉलेज १९१९ से कार्य कर रहा है। लॉ-कॉलेज को खुले तो अभी पहला ही वर्ष पूरा हो रहा है; पर हैं उसमें सौ से भी अधिक विद्यार्थी। विश्वविद्यालय की दो बड़ी समितियाँ हैं, जो सारा कार्य करती हैं। एक तो है कोर्ट। यह सर्वोच्च अधिकार रखनेवाली समिति है। दूसरी है सिनेट। यह पठन-पाठन का निरीक्षण करती है। कोर्ट का मेंबर केवल हिंदू ही हो सकता है। अभी तक केवल डॉ० एनी बेसेंट ही इस नियम का अपवाद हैं। यह समिति बहुत बड़ी है। इसमें अध्यापकों, जैनों, सिखों, संस्कृत और धर्मशास्त्र के विद्वानों, विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों तथा दाताओं के प्रतिनिधि काम करते हैं। सिनेट के तीन-चौथाई सदस्य हिंदू रहते हैं। इसमें विश्वविद्यालय के पदाधिकारियों के अतिरिक्त ५ सदस्य प्रांतीय गवर्नर के चुने हुए रहते हैं, और ग्रेजुएटों के कुछ प्रतिनिधि भी। इन दोनों समितियों से संबद्ध दो छोटी-छोटी कमेटियाँ हैं, जो इनकी कार्यकारिणी नलियाँ-सी हैं। कोर्टवाली का नाम है कौंसिल, और सिनेटवाली का सिंडिकेट।

स्वर्गीय सर आशुतोष मुखोपाध्याय ने लॉ-कॉलेज का उद्घाटन किया था। खेद है, वह इतनी जल्दी स्वर्ग को सिधार गए। अभी कृषि-कॉलेज, व्यापार-कॉलेज तथा आयुर्वेदिक कॉलेज भी खुलेंगे। इन सबके लिये बहुत-से रुपयों की आवश्यकता है। सुनते हैं, आयुर्वेदिक विभाग के लिये तो रुपए मिल भी गए हैं। उसके लिये एक औषधालय भी बन गया है, जिसमें वैद्यक पढ़नेवाले छात्र दवाएँ कूटते हैं।

दूर से विश्वविद्यालय के भवनों का एक दृश्य

इधर बंबई के एक सज्जन ने तीन लाख रुपए बालिकाओं की शिक्षा के लिये दिए हैं। उनके लिये एक छात्रावास बन रहा है, जिसमें शायद पढ़ने का भी प्रबंध रहे, और स्त्रियों को कॉलेजों में पढ़ने न जाना पड़े। एक अलग चिकित्सालय भी बन रहा है। यों तो एक छोटा-मोटा अस्पताल अब भी है। प्रसिद्ध इंजीनियर और विश्व-विद्यालय के निर्माण-विभाग के भूतपूर्व सुपरिंटेंडेंट सर गंगारामजी ने एक बड़ी नहर बनवाने की प्रतिज्ञा की है। इसमें लगभग दो लाख रुपए लगेंगे। उक्त सर गंगारामजी इस प्रतिश्रुति के लिये धन्यवाद के पात्र हैं। सुना जाता है, महाराज दरभंगा-नरेश ने भी ५ लाख रुपए देकर एक ऐसा मंदिर बनवाने को कहा है, जिसके चारों ओर दस हज़ार मनुष्य सुख से रह सकें। नहर गंगाजी से आकर इस मंदिर के चारों ओर लहराती हुई फिर गंगाजी में ही जा मिलेगी। तब तो नगवे की छटा और ही कुछ हो जायगी।

विश्वविद्यालय का दृश्य बड़ा ही मनोरम है। कॉलेजों और छात्रावासों के बीच-बीच तालाब और बग़ीचे हैं। घास के मैदानों में भेड़ें, बकरियाँ और गउएँ चरती रहती हैं। चारों ओर तथा बीच-बीच में खेती होती है। दक्षिण ओर दृष्टि दौड़ाने पर विंध्य-गिरिमाला की धूसर रेखा आकाश-मंडल में उठती देख पड़ती है। कॉलेजों के ऊपर चढ़कर देखिए, नीचे गंगाजी लहराती हुई, अर्धचंद्राकार बनकर, काशी-क्षेत्र को पवित्र करती हैं। त्योहारों के दिन तो विद्यार्थियों के झुंड-के-झुंड, स्नान करने के लिये, भगवती भागीरथी की सेवा में जाते देख पड़ते हैं। एक ओर पंचक्रोशी की सड़क है, जिस पर हज़ारों यात्री प्रतिदिन चलते रहते हैं। कभी-कभी तो स्त्रियों का मधुर गान भी यहाँ सुनने को मिल जाता

है। उत्तर ओर पवित्र विश्वनाथ की नगरी है, जिसके धौरहरे के दोनों गुंबद आकाश की ओर उठते हुए उसी का यशोगान करते-से जान पड़ते हैं। गंगा-पार, सामने, काशी-नरेश का प्रासाद है। आमने-सामने सरस्वती तथा लक्ष्मी के ये दोनों विशाल भवन परस्पर प्रतिस्पर्द्धा-सी करते देख पड़ते हैं। पर है इनमें बड़ी मैत्री। यह सारी भूमि बनारस के महाराज की ही कृपा से प्राप्त हुई है। विश्वविद्यालय का निर्माण वृत्तों के हिसाब से है। एक वृत्त में सब कॉलेज और प्रयोगशालाएँ रहेंगी, दूसरे में सभी छात्रावास, और एक तीसरे में अध्यापकों के लिये मकान। जो अध्यापक पंचक्रोशी के भीतर ही रहना चाहते हैं, उनके लिये वहीं प्रबंध होगा; क्योंकि विश्वविद्यालय का अधिकांश भाग इसके बाहर ही है।

विद्यालय के क्षेत्रफल-भर में सड़कों की कुल लंबाई प्रायः २० मील है। प्रतिदिन कितने ही दर्शक आते हैं। भारतवर्ष के बड़े नेताओं तथा धनी-मानियों को छोड़कर कितने ही तो विदेशों से आते हैं। जब कर्नल वेजवुड आए थे, तो उन्होंने विश्वविद्यालय को देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की थी। उन्होंने कहा था—"विद्यालय के लिये इस प्रकार की विराट् एवं मनोरम सौध-श्रेणी हमने और कहीं नहीं देखी।" इंजीनियरिंग कॉलेज की उन्होंने विशेष प्रशंसा की थी, और कहा था—"इस कॉलेज में एकाग्र-चित्त एवं कर्म-निरत नवीन कार्यकर्ताओं का जो दल देख पड़ता है, मुझे विश्वास है, वही एक दिन भावी भारतवर्ष को फिर से गढ़कर तैयार करेगा।" परमात्मा करे, वेजवुड महाशय के ये शब्द सत्य हों। एक बार डेनमार्क से बड़े नामी चित्रकार तथा उपन्यास-लेखक एब्बे कार्नेरप (Ebbe Kornerup) यहाँ आए हुए थे। इन्होंने भारतवर्ष-संबंधी कई उपन्यास लिखे हैं। आप बड़े ही विद्या-व्यसनी एवं मिलनसार हैं। मेरे पास आप कई दिन ठहरे। धोती पहनते और दाल-भात खाते थे। कद्दू की तरकारी आपको विशेष भाती थी। जब तक विश्वविद्यालय में थे, विद्यार्थियों का ही भोजन करते और वैसे ही रहते भी थे। जब जाने लगे, तो हमने उनसे कहा—"कहिए, विश्वविद्यालय आपको कैसा लगा?" (How do you *like* the University, Mr. Kornerup?) उत्तर में उन्होंने कहा—"I do not *like* it—(मैं तो सुनकर घबरा गया)—I *love* it." अर्थात् मैं इसे पसंद नहीं करता, इसे प्यार करता हूँ। जब अंतिम शब्द मैंने सुने, तब जाकर कहीं मेरा आश्चर्य दूर हुआ। चलते समय मैंने इन्हें उपहार में उमर ख़ैयाम का अँगरेज़ी-अनुवाद दिया। पुस्तक छोटी-सी, पर सुंदर थी। आपने पहले भी फ़ारसी के इस कवि का नाम सुना था। पुस्तक की एकआध पंक्ति पढ़कर आप रोने लगे। कभी-कभी तो उछल पड़ते थे। कार्नेरप महोदय का उत्तर-योरप में बड़ा नाम है, और इनके चित्रों का वहाँ बड़ा आदर होता है। उस समय भारतीय पत्रों में भी इनकी बहुत प्रशंसाएँ निकली थीं। ऐसे भावुक लेखक और चित्रकार का यह कहना कि I love it (the University), क्या कुछ कम है?

हज़ारों छात्रों के निवास-स्थान के अतिरिक्त गोशाला, नौकरों के क्वार्टर, होटल, दूकानें और अध्यापकों के रहने के लिये कई दर्जन बँगले भी हैं। ६ लाख रुपयों में यह सब ज़मीन ख़रीदी गई थी। भवनों तथा लेबोरेटरियों के बनाने में ३८ लाख रुपए ख़र्च हुए हैं। सैकड़ों अध्यापक हैं, जिनके वेतन में लगभग ३०,०००) मासिक का ख़र्च है। वार्षिक आय ६ लाख रुपए है, और व्यय भी इसी के लगभग। भारतीय सरकार से वार्षिक एक लाख रुपए मिलते हैं। राजा-महाराजा लोग भी ७४,०००) वार्षिक देते हैं। और भी जायदाद वग़ैरह मिलाकर विश्वविद्यालय की आर्थिक शक्ति का कुल तख़मीना १ करोड़ ८० लाख रुपए तक किया जाता है। खेद का विषय है कि प्रांतीय सरकार विद्यालय को कुछ भी सहायता नहीं देती। कहा जाता है, यह संस्था अखिल-भारतवर्षीय है। बात ठीक है; पर इसके साथ ही युक्त-प्रांत के जितने विद्यार्थी यहाँ पढ़ते हैं, उतने इस प्रांत के और किसी विश्वविद्यालय में नहीं पढ़ते। दूसरे प्रांतों के विद्यार्थियों की भी सबसे अधिक संख्या यहीं है। गत वर्ष प्रांतीय सरकार ने केवल ६,०००) यहाँ दिए थे, सो भी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज को, जिससे युक्त-प्रांत के सिवा और किसी को लाभ नहीं है, और जिसका देना सरकार के लिये आवश्यक ही है। इस विषय में, स्थानीय लेजिस्लेटिव कौंसिल में, प्रश्न भी हुआ था; पर मालूम नहीं, क्या हो रहा है। सुनते हैं,

शिक्षा-सचिव ने कुछ आशा दी है । नीचे की सूची से इस प्रांत के भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या और प्रांतीय सरकार की सहायता का पता लगेगा—

विश्वविद्यालय	विद्यार्थियों की कुल संख्या	युक्त-प्रांत के विद्यार्थियों की संख्या	प्रांतीय सरकार की गत वर्ष दी हुई सहायता
प्रयाग	१,०७८	७७२	६,६५,८६८)
लखनऊ	६३२	८५१	७,३०,०००)
काशी	१,८७३	६२४	६,०००) (ट्रेनिंग कॉलेज को)
अलीगढ़	७१७	४३०	६६,०७२)

डॉक्टर नगीनचंद जे० शाह बी० ए०, पी-एच्० डी०
(भारतीय अर्थ-शास्त्र के सर रतन ताता अध्यापक)

इन संख्याओं से विदित होगा कि हिंदू-विश्वविद्यालय में यही विशेषता नहीं है कि उसमें सबसे अधिक छात्र हैं, बल्कि यह भी विशेषता है कि सबसे अधिक युक्त-प्रांत तथा और प्रांतों के छात्र हैं। और जगह जितने छात्र कुल मिलाकर हैं, उतने यहाँ केवल युक्त-प्रांत ही के हैं। और, अन्य प्रांतों के तो उनसे भी अधिक हैं । यहाँ के छात्रों की संख्या अलीगढ़ से लगभग तिगुनी, लखनऊ से कईगुनी एवं प्रयाग से दुगुनी है । विश्वविद्यालय का जो अधिकार भारतीय सरकार पर है, वही प्रांतीय सरकार पर भी । फिर न-जाने क्यों इस ओर शिक्षा के कर्णधारों का ध्यान नहीं जाता ।

इस समय इस संस्था को धन की है भी बड़ी ही आवश्यकता । ५० लाख रुपए स्थायी कोष-स्वरूप इंपीरियल बैंक में जमा हैं सही, पर व्यय की अधिकता से १२ लाख रुपयों का ऋण हो गया है । दान के वचन लगभग ४० लाख रुपए के मिले हैं। यों तो देश के धनाढ्य लोग इसकी सहायता करते ही रहते हैं। दानवीर ताता ने ५,०००) रु० वार्षिक की सहायता भारतीय अर्थ-शास्त्र की पढ़ाई के लिये दी है । इस पद पर, थोड़े दिन हुए, डॉक्टर नगीनचंद

जे० शाह नियुक्त किए गए हैं। डॉ० शाह अभी नवयुवक हैं, और गत मास ही में इनका विवाह भी हुआ है। भारतीय करों पर History of Indian Tariff नाम की बड़ी विद्वत्ता-पूर्ण पुस्तक इन्होंने लिखी है, जिसके लिये इन्हें लंदन-विश्वविद्यालय से पी-एच्० डी० की उपाधि मिली है। यहाँ भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अन्य योरपियन भाषाओं के भी विद्वान् हैं। प्रोफ़ेसर मुकुंद-मोरेश्वर देसाई फ़्रेंच-भाषा के अध्यापक हैं। आप भी थोड़ी ही अवस्था के और अभी तक अविवाहित ही हैं। इन्हें बंबई-विश्वविद्यालय की बी० ए०-परीक्षा में, अँगरेज़ी में, ऑनर्स प्राप्त हुआ था, और यह बी० ए० तथा एम्० ए०, दोनों में, फ़्रेंच-भाषा में, प्रथम आए थे। वर्षों तक आपने स्कूल तथा कॉलेज में फ़्रेंच-भाषा का अध्ययन किया है, और उसके अच्छे लेखक हैं।

यों तो विश्वविद्यालय के लिये ८० लाख रुपयों से अधिक चंदा एकत्र हुआ था, पर अब २१,०००) वार्षिक की तो केवल पुस्तकें ही ख़रीदी जाती हैं। यहाँ के अध्यापक तैलंग के पिता स्वर्गीय जास्टिस काशिनाथ-त्र्यंबक तैलंग ने अपना जो पुस्तकालय हिंदू-कॉलेज को दे दिया था, वह अब बहुत बड़ा हो गया है। कुछ दिन पहले युक्त-प्रांत के गवर्नर ने २०,०००) पुस्तकालय के लिये दिए थे। कलकत्ते के स्वर्गीय रूड़मलजी गोयनका ने लगभग एक लाख बीस हज़ार रुपयों की संस्कृत-पुस्तकें दी हैं। पुस्तकें बड़ी ही अपूर्व हैं, और सब-की-सब सुनहरी जिल्दों में बँधी हैं। विश्वविद्यालय को ऐसे ही त्यागी और दानी पुरुष रत्नों की आवश्यकता है।

प्रोफ़ेसर मुकुंद-मोरेश्वर देसाई, एम्० ए० (ऑनर्स)
(अँगरेज़ी तथा फ़्रेंच के अध्यापक)

यहाँ के विशाल भवनों के विषय में बहुत लोग मालवीयजी को दोष देते हैं। वे कहते हैं, इतने बड़े-बड़े प्रासादों की क्या आवश्यकता? सरस्वती तो जंगल में ही प्रसन्न रहती है। कहते हैं, जब प्रयाग का हिंदू-बोर्डिंग-हाउस बन रहा था, तब एक सज्जन ने मालवीयजी से शिकायत की थी कि ऐसे-ऐसे महलों में रहकर जब विद्यार्थी घर लौटेंगे, तब उनसे तो देहात के साधारण घरों में न रहा जायगा। पंडितजी ने कहा—"नहीं, मेरा तो उलटा विचार है। ये विद्यार्थी जब इनमें रहकर घर जायँगे, तो ऐसे ही भवन घर पर भी बनवाने का प्रयत्न करेंगे।" यह उत्तर मालवीयजी के उच्च आदर्श के सर्वथा उपयुक्त था। ठीक है, इसी को तो अँगरेज़ी में Aesthetic sense (सौंदर्यानुभव का विकास) कहते हैं। रस्किन ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Seven Lamps of Architecture में इस विषय का विवेचन किया है। सुंदर भवनों से एक बड़ा लाभ यही है। यह बात ठीक है कि वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि ने तपोवनों में ही आत्मज्ञान प्राप्त किया था; पर आजकल के जगदीशचंद्र वसु तथा

डॉ० रमन तो अपने तत्त्वों को कर्म-कोलाहलाकुल कलकत्ते के राजप्रासादों में ही ढूँढ़ते हैं। तपोवन में भी साधना होती है, और उत्तुंग सौधों में भी। पर सबसे बड़ी बात तो है एक परंपरा की सृष्टि, जो ऐसे भवनों के विना हो नहीं सकती। स्थापत्य का मानव-हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि ऐसा न होता, तो आज दिन विश्वनाथ के मंदिर और पाटलिपुत्र के खँडहरों एवं अशोक के स्तंभों पर कौन ध्यान देता?

लोग विश्वविद्यालय की दूसरी शिकायत यह करते हैं कि मालवीयजी रुपए एकत्र करना जानते हैं, अच्छे-अच्छे योग्य विद्वानों को भी बुलाना जानते हैं, पर उन्हें रखना नहीं जानते। बात में कुछ तथ्य अवश्य है। डॉ० गणेशप्रसाद, डॉ० बीरबल साहनी तथा अध्यापक यदुनाथ सरकार के सदृश अद्वितीय विद्वान् विश्वविद्यालय में नहीं रह सके। इसका क्या कारण है? सर शिवस्वामी ऐयर तथा डॉ० ज्ञानेंद्रनाथ चक्रवर्ती-जैसे योग्य विद्वानों ने भी इससे अपना संबंध क्यों तोड़ लिया? बड़ी भारी बात यह है कि मालवीयजी में ब्राह्मणता प्रधान है। उनका हृदय भी ब्राह्मण-हृदय है। उनकी प्रतिज्ञाओं और आशाओं में भी आदर्श-वाद रहता है। उनका हृदय इतना कोमल है कि वह किसी को निराश नहीं देखना चाहते। इस सज्जनता के आधिक्य और कारुण्य के साम्राज्य ने ही उनकी बहुत प्रतिज्ञाओं को पूरा नहीं होने दिया। अनेक नवयुवक विद्वान् उनसे निराश हो गए। अन्य चाहे जो कारण हों, पर मैं समझता हूँ, यह स्वभावगत कारण बहुत बड़ा है। एक बार हम लोगों ने होली के अवसर पर पंडितजी के रंग लगाया, और मिठाई माँगी। आपने पचीस रुपए की मिठाई खिलाने को कहा। साथ ही यह भी कह दिया कि "भाई, मेरे पास अभी तो एक पैसा भी नहीं है; कहीं से माँग लाऊँगा, तो दूँगा। तब तक तुम लोग अपने पास से मिठाई खा न लो।" मिठाई के रुपए मिले अवश्य, पर कई महीने बाद।

यह छोटा-सा उदाहरण पंडितजी के स्नेहमय हृदय और सरलता का द्योतक है। रुपए की तंगी तो विद्यालय में है ही, पर कुछ हिंदुस्तानी विसविस भी है। एक ही वृद्ध महानुभाव प्रिंसिपल भी हैं, प्रो-वाइस-चांसलर भी हैं, संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष भी हैं, कोर्ट और कौंसिल के मंत्री भी हैं। दूसरे सज्जन रजिस्ट्रार भी हैं, होस्टलों के निरीक्षक भी हैं, और गणित के अध्यापक तथा परीक्षक आदि भी। रुपया बचाना कुछ और बात है। पर घिसघिस से काम अवश्य बिगड़ता है, और लोग अप्रसन्न भी रहते हैं। अन्य विश्वविद्यालयों में वैतनिक वाइस-चांसलर हैं। यहाँ के लिये भी कुछ लोगों ने ऐसी ही सम्मति दी थी। पर कुछ तो रुपयों की कमी, और कुछ मालवीयजी की त्याग-बुद्धि तथा कार्य-प्रियता ने इसे न होने दिया। वाइस-चांसलर ही विश्वविद्यालय के सर्वस्व और कर्ता-धर्ता होते हैं। जब तक वह अपना पूरा समय किसी संस्था को न दे सकें, तब तक कार्य ठीक कैसे हो सकता है? यह सब हम किसी दूसरे भाव से नहीं, इस संस्था के हित-चिंतन से प्रेरित होकर ही लिख रहे हैं।

यह सब ठीक है, पर सभी संस्थाओं में कुछ-न-कुछ गड़बड़ होती ही रहती है। यह तो अभी नई है, और नई शैली पर कार्य भी कर रही है। हम तो समझते हैं, यदि ईश्वर तक नहीं, तो ईश्वर के एक पद नीचे तक गड़बड़ अवश्य ही रहती है। फिर मनुष्य-कृत कार्यों की तो समालोचना करना सरल ही है। इसमें संदेह नहीं कि इस विद्यालय में अनेक बातें अनुकरणीय और अन्य संस्थाओं के लिये पथ-प्रदर्शक हैं। वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर उन सबका एकत्र प्रादुर्भाव होता है। डिग्रियाँ जब दी जाती हैं, तो प्रत्येक विद्यार्थी को वाइस-चांसलर के साथ-साथ उपनिषद् के "मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।" आदि वाक्य कहने पड़ते हैं। प्रिंस ऑफ़् वेल्स को जब यहाँ डिग्री दी गई थी, तो उन्हें भी साफ़ा बाँधना ही पड़ा था, सारे उपचार करने ही पड़े थे। उस समय तो पूरा एक सप्ताह ही इन्हीं सब उपचारों में लग जाता है। इसका नाम ही अधिवेशन-सप्ताह (Convocation week) होता है। अनेक विद्वानों के व्याख्यान होते हैं, दावतें दी जाती हैं, राग-रंग की भी धूम रहती है। इसी अवसर पर प्रतिवर्ष एक बड़ा भोज होता है। इसका सारा प्रबंध विज्ञान-विभागवाले करते हैं। इसका नाम होता है केमिकल डिनर (Chemical Dinner), अर्थात् रसायन-भोज। कारण, उस दिन की सभी बातें रसायन-शास्त्र के ही शब्दों में होती हैं। परोसनेवालों का एक पूरा दल ही रहता है; क्योंकि खानेवाले भी तो सैकड़ों रहते हैं। प्रत्येक परोसनेवाले

का नाम भी वैज्ञानिक ही होता है, जैसे Dynamite, Gun-powder इत्यादि। प्रत्येक मेहमान को एक छपा हुआ 'मीनू' दिया जाता है। उसमें उस अवसर का प्रोग्राम छपा रहता है, और खाने के सब सामानों की सूची भी होती है, जिसमें सभी नाम वैज्ञानिक ही रक्खे जाते हैं। जब तक आप वही कुछ अभाव है। और सब सामान मशीन आदि की बात तो जाने दीजिए, परोसनेवालों के वस्त्र ही पूरे [illegible] के होते हैं। भविष्य में शायद इस भोज का नाम विज्ञान-भोज (Science Dinner) हो जाय; क्योंकि रसायन तो सभी भोजों में सहायक होता है। फिर यहाँ तो विज्ञान के सभी विभागों का काम रहता है। इस
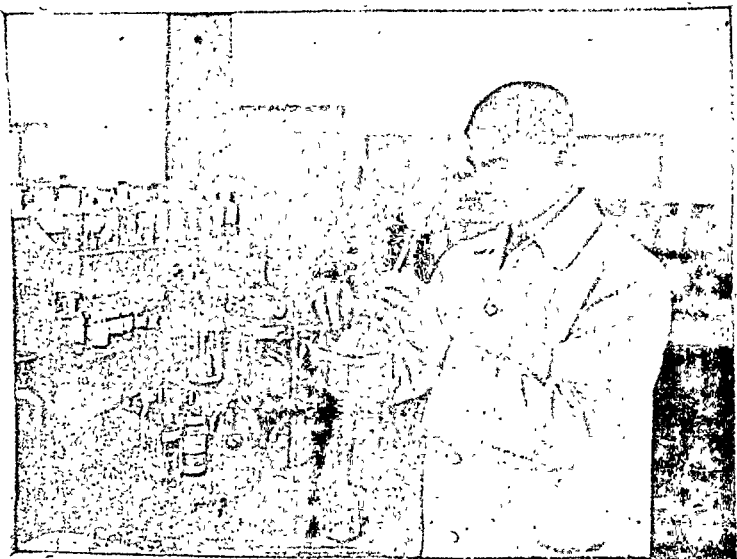
वैज्ञानिक प्रयोगशाला का एक कमरा
(प्रोफ़ेसर गोडबोले रसायनशाला में काम कर रहे हैं)

नाम कहकर कोई वस्तु न माँगें, तब तक वह नहीं मिलेगी। उस दिन वहाँ गाना-बजाना भी होता है, कुछ विनोदात्मक अभिनय भी होते हैं। भोज बहुत ही बड़ा होने के कारण बाहर शामियाने के नीचे होता है, और बहुत-सा प्रबंध बिजली के ही द्वारा होता है। गत वर्ष यह भोज बड़ा ही सुंदर हुआ था। यदि उसे कोई देखता, तो यह पता न चलता कि विश्वविद्यालय में धन का

सप्ताह में अनेक कवि-सम्मेलन तथा मुशायरों के अतिरिक्त एक अखिल-भारतीय व्याख्यान-विवाद भी होता है। उसमें भारतवर्ष के सभी कॉलेजों के वक्ता निमंत्रित किए जाते हैं। विश्वविद्यालय के ऑनरेरी कोषाध्यक्ष माननीय राजा मोतीचंदजी ने इसके लिये एक चाँदी की सरस्वती-ट्राफ़ी दी है। यह प्रतिवर्ष सबसे प्रथम आनेवाले कॉलेज को दी जाती है, और साल-भर उसके अधिकार में
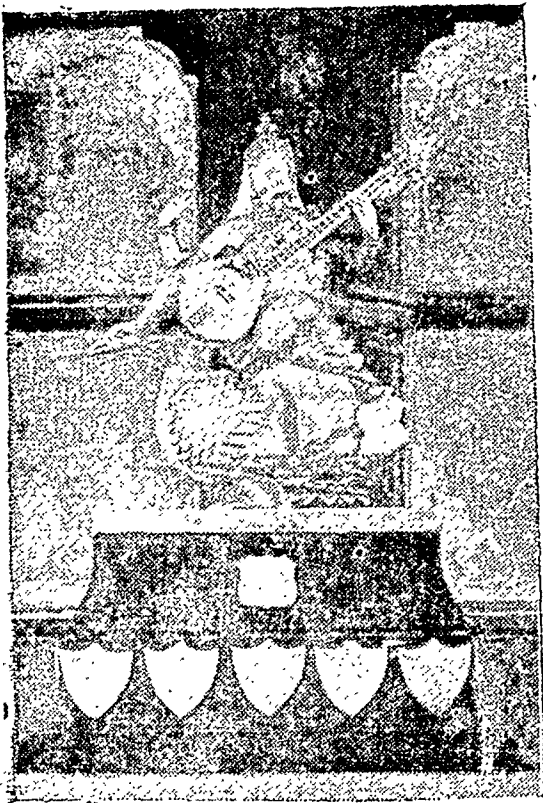
अंतर्विद्यालय-व्याख्यान के लिये राजा मोतीचंद की दी हुई चाँदी की सरस्वती-ट्रॉफ़ी

रहकर फिर दूसरे वर्ष दूसरे के पास जाती है। यह एक प्रकार की सरस्वती की विजय-पताका है। इसके अतिरिक्त अनेक पारितोषिक और पदक भी दिए जाते हैं। इसमें बालिकाएँ भी भाग लेती हैं। उनके लिये विशेष पारितोषिक रहते हैं। इस वर्ष से तो हिंदी में भी ऐसा ही एक सर्व-भारतीय विवाद होना आरंभ हुआ है। हिंदी के लिये यह सौभाग्य की बात है। ऐसे कार्यों की मातृभाषा को आवश्यकता भी है। एक बृहत् एकादशी-कथा के सिवा बहुत-से खेल-कूद होते और वार्षिक पारितोषिक बाँटे जाते हैं। विश्व-विद्यालय की एक मित्र-नाट्य-समिति(Dramatic Association) है, जो उक्त अवसर पर अपने विशेष अभिनय दिखलाती है। इसमें उर्दू, हिंदी तथा अँगरेज़ी के अच्छे-अच्छे नाटक खेले जाते हैं। गत वर्ष तो इसने, विद्यार्थियों की सहायता के लिये, कुछ अभिनय शहर में भी किए थे, जिनसे बहुत धन प्राप्त हुआ था। लोगों ने अभिनय की इतनी प्रशंसा की कि एक ही खेल कई दिन तक करना पड़ा। नाटक के पात्रों को कई पदक भी मिले थे। इस समिति के कार्यकर्ता अनेक अध्यापक भी हैं। बीच-बीच में भी इसके अधिवेशन होते रहते हैं।

नाट्य-समिति द्वारा अभिनीत 'चित्रा' का एक दृश्य
(चित्रा के रूप में एक छात्र)

'चित्रा' का एक दूसरा स्थल
(यह भी वही छात्र हैं। देखिए, भाव का परिवर्तन कैसा झलक रहा है)

इस अवसर पर विद्यालय के हिंदू-स्कूल में भी बड़ी धूम रहती है। यह स्कूल अभी नगर ही में है। उसी के

साथ ट्रेनिंग कॉलेज भी है, जहाँ अध्यापक लोग स्कूल में पढ़ाने का अभ्यास भी करने जाते हैं। स्कूल में ५०० विद्यार्थी हैं, और यहाँ छोटी कक्षाओं में, अन्य विषयों के अतिरिक्त, उद्यान-कला (Gardening), संगीत तथा दस्तकारी भी सिखाई जाती है। यहाँ एक छोटा-सा ऐतिहासिक अजायबघर भी है। इसमें कुछ सिक्के, मूर्तियाँ तथा लेख आदि के नमूने हैं। यह स्कूल इस प्रांत के सर्वोत्तम स्कूलों में गिना जाता है। विश्वविद्यालय में और कितनी ही छोटी-मोटी संस्थाएँ हैं। अनेक टेनिस-क्लब भी हैं। सारे विद्यालय का एक अलग ही व्यायाम-मंडल

व्यायाम-प्रदर्शिनी का एक दृश्य
(देखिए, ऊँची कुदान हो रही है)
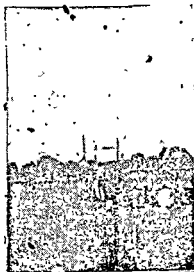
व्यायाम-प्रदर्शिनी का एक और दृश्य
(विद्यार्थी एक मील की दौड़ जीत रहे हैं)

व्यायाम-प्रदर्शिनी का दूसरा दृश्य
(विद्यार्थी जिम्नास्टिक कर रहे हैं)

१५ मील की साइकिल-दौड़ में प्रथम आए हुए एक विद्यार्थी
(अभी साइकिल ही पर हैं)

(Athletic Association) भी है। अध्यापकों का University Staff Club नाम का एक अलग क्लब है; महिलाओं की भी Lady's Club नाम की एक बैठक है। अतिथियों के ठहरने के लिये एक अलग अतिथि-मंदिर (Guest-House) है। उसमें विद्यालय के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ऑनरेरी प्रोफ़ेसर आदि आकर कभी-कभी रहते और व्याख्यान भी देते हैं। ऐसे अध्यापक भी तो यहाँ के बहुत हैं। सर प्रफुल्लचंद्र राय, सर तेजबहादुर सप्रू तथा डॉक्टर सी० वी० रमन-जैसे अद्वितीय आचार्य ऑनरेरी अध्यापक हैं। यहाँ की सबसे प्रसिद्ध संस्था है यूनिवर्सिटी-पार्लियामेंट। इसकी स्थापना डॉ० एनी बेसंट के समय में हुई थी। इससे यहाँ के छात्रों को अच्छी राजनीतिक शिक्षा प्राप्त होती है। नियमानुसार इसका सेशन खुलता है। उस समय बड़े-बड़े लोग बुलाए जाते हैं। इँगलैंड की पार्लियामेंट की तरह इसमें भी सम्राट् से लेकर प्रधान सचिव, समर-सचिव आदि तक सब पदाधिकारी होते हैं। हर शनिवार को इसकी एक बैठक होती है। उसमें अच्छे-अच्छे राजनीतिक एवं सामाजिक प्रस्तावों पर विचार होता है। बीच-बीच में हिंदी में भी प्रस्तावों पर वाद-विवाद होता है। इस संस्था की प्रसिद्धि दूर-दूर के देशों तक है। अभी थोड़े ही दिन हुए, इँगलैंड की विश्वविद्यालय-समिति (Universities Conference) की ओर से इसके पास, कुछ छात्र प्रतिनिधि भेजने के लिये, निमंत्रण भी आया है। मालवीयजी के कनिष्ठ पुत्र पं० गोविंदजी मालवीय बी० ए० उसके लिये प्रतिनिधि चुने गए थे, और वह शायद शीघ्र ही विलायत जायँगे।

छुट्टी के दिन का मनोविनोद
(कार्टर्स के कुछ विद्यार्थी एक सड़क बना रहे हैं)

यों तो विज्ञान-विभाग में कई अजायबघर हैं, पर समय-समय पर कॉलेज और होस्टलों में प्रदर्शिनियाँ भी हुआ करती हैं। उनमें विद्यार्थियों की चित्रकारी और दस्तकारी आदि के नमूने दिखाए जाते हैं। विश्व-विद्यालय में कितने ही चित्रकार हैं, और अध्यापकों तथा विद्यार्थियों में हिंदी के अधिकांश लेखक और कवि। हर्ष का विषय है कि हिंदी-रत्न पंडित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय भी यहाँ हिंदी के अध्यापक होकर आ गए हैं। हिंदी का यह पलड़ा अब तो और भी भारी हो गया। होस्टलों में कितनी ही मासिक तथा साप्ताहिक पत्रिकाएँ भी निकलती हैं। वे हस्त-लिखित होती और सचित्र भी रहती हैं। यहाँ तक कि संस्कृत के भी छात्र 'आयुर्वेदविज्ञानम्', 'सुधा' आदि पत्र संस्कृत में निकालते हैं। लॉ-कॉलेज के विद्यार्थी कनवोकेशन के समय एक मूट-कोर्ट (Moot-Court) अर्थात् अभिनय-अभियोग करते हैं। उसमें क़ानून के अच्छे-अच्छे विद्वान् दर्शक बुलाए जाते हैं। विद्यार्थी ही जज, वकील, असेसर, अपराधी तथा साक्षी, सभी कुछ बनते हैं। बड़ा आनंद आता है। अब पं० शिवप्रसादजी त्रिपाठी गायनाचार्य संगीत के अध्यापक हुए हैं। त्रिपाठीजी बड़े ही निपुण हैं। आप बड़ी योग्यता से, हिंदू-पद्धति के अनुसार, संगीत की शिक्षा देते हैं। इनका वेतन कलकत्ते के प्रसिद्ध सेठ घनश्यामदास-जी बिड़ला देते हैं। बिड़लाजी ने विश्वविद्यालय का एक पूरा छात्रावास भी बनवा दिया है। वह पंद्रह-पंद्रह रुपए की सौ के लगभग छात्र-वृत्तियाँ भी देते हैं। धन का सच्चा उपयोग इसी को कहते हैं। यह छात्र-वृत्ति पानेवाले विद्यार्थियों के लिये गीता-पाठ, मद्य-मांस-वर्जन एवं ब्रह्मचर्य-पालन परमावश्यक है, यद्यपि साधारणतः सभी विद्यार्थियों के लिये हिंदू-धर्म का पालन आवश्यक है। इनमें से अधिकांश वृत्तियाँ प्राच्य विद्या-विभाग एवं अब्राह्मण छात्रों के लिये हैं।

यहाँ के अध्यापकों और विद्यार्थियों का परस्पर व्यवहार बहुत ही प्रशंसनीय है। अध्यापक लोग पठन-पाठन के समय सच्चे गुरु और बाहर तथा घर पर बड़े भाई एवं पिता के तुल्य रहते हैं। सीधे-सादे जीवन

विश्वविद्यालय के एक ग्रेजुएट स्कॉउट नैनीताल की तराई में भ्रमण कर रहे हैं

और सीधी-सादी बातचीत—"Plain living and High thinking"—के कितने ही सच्चे उदाहरण यहाँ देखने को मिलते हैं। इन लोगों के घर जाइए, छात्रों को दूध भी पिलावेंगे, और उनके मनोविनोद के लिये गीत भी गाकर सुनावेंगे। मतलब यह कि प्राचीन भारत के गुरुओं के आदर्श की कुछ झलक यहाँ मिलती है।

यहाँ के विषय में बाहरवालों को एक भ्रम सा हो गया है। लोग कहते हैं, यहाँ की डिग्रियाँ बड़ी सस्ती और परीक्षाएँ बड़ी सरल होती हैं। बात सर्वथा निर्मूल है। कोर्स यहाँ के और स्थानों से कड़े और अधिक रक्खे गए हैं। एकआध विषय, जो और जगह बी० ए० में हैं, यहाँ एफ़० ए० में ही पढ़ाए जाते हैं। जो पुस्तकें और स्थानों में बी० ए० में हैं, वे यहाँ बी० ए० से पहले ही पढ़ाई जाती हैं। परीक्षा की बात यह है कि कोई भी विद्यालय, जो प्रयाग की भाँति केवल परीक्षा ही नहीं लेता, अच्छा परीक्षा-फल दिखावेगा। अध्यापक और छात्र जब दिन-रात एकत्र ही रहते हैं, तो परिश्रम क्यों न किया जाय, और विद्यार्थी क्यों फ़ेल हों? अमेरिका और योरप से भी किसी को फ़ेल होकर लौटते आपने देखा है? यह क्यों? वहाँ के लोग छात्रों को अपने यहाँ से विना डिग्री दिए लौटाना अपने लिये लज्जाजनक समझते हैं। यह ठीक भी है। जब छात्र धन और समय लगाकर वर्षों तक पढ़ता है, तब उसके फ़ेल होने में विद्यालय का दोष तो है ही। विद्यार्थी
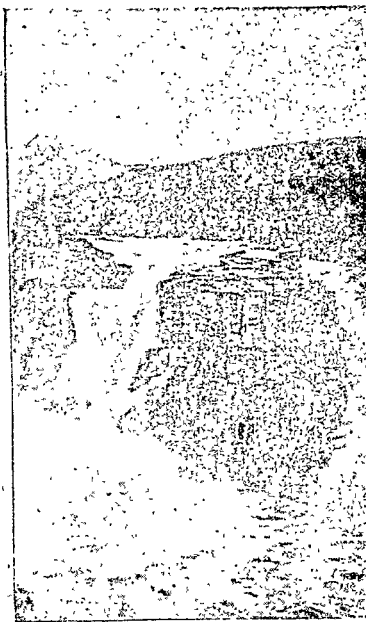
पहाड़ी झरने का एक दृश्य

(ऐसे ही स्थानों पर विश्वविद्यालय के स्कॉउट बो

क्यों ऐसा रहने पाता है कि उसका पढ़ने में मन नहीं लगता? यह देखना विश्वविद्यालयों का ही तो काम है। ऐसे विद्यार्थी रहते ही क्यों हैं? हिंदू-विश्वविद्यालय इस कार्य को यथेष्ट रूप से कर रहा है। दूसरी बात यह भी है कि सदैव इसका परीक्षा-फल उतना अच्छा होता भी नहीं, जितना कि लोग समझते हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय में भी देखिए, और कॉलेजों की अपेक्षा स्थानीय म्योर सेंट्रल कॉलेज का परीक्षा-फल कितना अच्छा होता है। बात यह है कि वहाँ की पढ़ाई अच्छी होती है, अधिक ध्यान दिया और परिश्रम किया जाता है। पढ़ानेवाले भी अन्यत्र से अच्छे हैं। यही हाल हिंदू-विश्वविद्यालय का भी है। पर यह समझना भी ठीक नहीं कि यहाँ का परीक्षा-फल सदैव बहुत अच्छा होता है। अभी गत वर्ष ही बी० एस्-सी० में लगभग २५ प्रतिशत छात्र पास हुए थे। इस वर्ष भी एम्० ए० के, गणित के, पर्चे इतने कठिन थे कि लड़के हताश ही हो गए थे।

इस वर्ष शिमले में भारत के विश्वविद्यालयों का जो सम्मेलन हुआ था, उसमें यहाँ से पाँच प्रतिनिधि गए थे। पर और स्थानों से एक ही-दो गए थे। इसी से यहाँ के अधिक कारोबार का पता लग सकता है। यहाँ नित्य कुछ-न-कुछ परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होता ही रहता है। परमात्मा करे, इसकी निरंतर उन्नति होती रहे। देशवासियों का धर्म यही है कि वे सभी अपनी-अपनी शक्ति-भर इसकी सहायता करते रहें।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी

मिस मेरी कॅरेली

उपक्रम

मिस मेरी कॅरेली की मृत्यु एक बड़ी शोकप्रद घटना है। आप इँगलिस्तान की ख्यातनामा उपन्यास-लेखिका थीं। परंतु उनकी ख्याति इँगलिस्तान तक ही परिमित नहीं थी। योरप के अन्य देशों में भी उनकी प्रसिद्धि थी। योरप की कई भाषाओं में उनकी रचनाओं के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। अटलांटिक-महासागर पार करके अमेरिका के संयुक्त-प्रांत और कनाडा तक उनकी प्रशंसा पहुँच गई थी। ब्रिटिश-साम्राज्य के उपनिवेशों में, जहाँ अँगरेज़ी-भाषा बोली या पढ़ी जाती है, उनकी रचनाएँ पहुँच गई थीं, और चाव से पढ़ी जाती तथा आदर पाती थीं। यदि यह कहा जाय कि इनकी रचनाओं का प्रचार संसार-व्यापी था, तो अनुचित न होगा। भारत-वर्ष में भी मिस कॅरेली के उपन्यासों का बहुत प्रचार है। भारत की भाषाओं में उनके कई उपन्यासों के अनुवाद छप चुके हैं। उनके पाठकों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। ऐसी प्रतिभाशालिनी लेखिका का स्वर्गवास निश्चय ही उनके पाठकों के लिये दुःखद समाचार है; और यह एक ऐसी क्षति है, जिसका लाखों पाठक निजी रूप से अनुभव करेंगे।

अधिकांश भारतीय पाठक श्रीमती की रचनाओं के प्रेमी ही नहीं, वरन् भक्त हैं। और, जब पाठक किसी लेखक का भक्त बन जाता है, तो वह उसकी न्यूनताओं या त्रुटियों पर ध्यान नहीं देता। वास्तव में हमें ध्यान रखना चाहिए कि इँगलिस्तान में ही श्रीमती के बहुत-से नुक़्ताचीन मौजूद हैं, जिन्होंने श्रीमती पर उनके जीवन-काल में ही नाना प्रकार के आक्षेप किए हैं। उन नुक़्ताचीनों में बहुत-से साहित्य के पारखी धुरंधर विद्वान् भी हैं, जिनकी सम्मति मूल्यवान् मानी जाती है। हम यहाँ पर स्वर्गीया श्रीमती की महिमा को घटाने का उद्योग नहीं कर रहे हैं। हम इस बात के उत्सुक हैं कि इनके विषय में पक्ष-विपक्ष की जो सम्मतियाँ हैं, उनकी यथार्थता पर ध्यान देते हुए साहित्य में श्रीमती के स्थान का निर्णय करें। इसमें संदेह नहीं कि आपका स्थान ऊँचा है। यदि कुछ कथनीय है, तो केवल यह कि अधिकांश भारतीय पाठक तुलनात्मक दृष्टि से, मिस मेरी कॅरेली की रचनाओं का अत्यधिक आदर करते हैं। यदि प्रचार-मात्र किसी लेखक की उत्कृष्टता की कसौटी है, तो निस्संदेह मिस मेरी कॅरेली को प्रथम स्थान मिलना चाहिए। परंतु साहित्य का अनुशीलन करनेवालों का यह अनुभव है कि किसी रचना का प्रचार उसकी उत्कृष्टता का सर्वथा निर्देशक नहीं है। यही कारण है कि इँगलिस्तान की अधिकतर साहित्यिक मंडलियों में श्रीमती का वैसा सम्मान नहीं है, जिसकी कि वह अपनी रचनाओं के प्रचार के कारण अधिकारिणी हो सकती हैं। कुछ भी हो, हमें निष्पक्ष होकर मत

निर्धारित करना चाहिए। लेखिका की मृत्यु के कारण हमारा उत्तरदायित्व और भी गहन हो जाता है।

इसके पूर्व कि हम अपना मत निर्धारित करें, मिस मेरी कॅरेली का कुछ परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए।

जन्म, वंश-परिचय तथा बाल्यावस्था

मिस मेरी कॅरेली का जन्म सन् १८६४ ई० में हुआ था। आपके शरीर में स्काटिश (हाइलैंड) तथा इटालियन रक्त का सम्मिश्रण था। आप प्रसिद्ध साहित्यिक तथा गीत-लेखक डॉक्टर चार्ल्स मैके की पोष्य-पुत्री थीं। आपने प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही पाई। आपके घर में बहुधा साहित्यिक चर्चा हुआ करती थी। आप जिस कुटुंब में पलीं, उस कुटुंब के लोगों में साहित्य-प्रेम पूर्ण रूप से समाया हुआ था। ऐसे कुटुंब में रहकर आपमें भी साहित्यिक अभिरुचि का विकास होना स्वाभाविक ही था। बचपन ही में आपने अपनी प्रखर बुद्धि तथा स्मृति का परिचय दिया। आप मननशील थीं। पुस्तकों से आपको प्रेम था। खेल-कूद में आपका विशेष मन न लगता था। बाल्यावस्था ही में आपकी धार्मिक प्रवृत्ति जाग्रत् हो गई। ईश्वर और उसके देवदूतों में आपका विश्वास था। आप साधारणतः अन्य बालक-बालिकाओं की तरह न थीं। आपके बाल्य-काल की यह एक घटना है। आपकी धाय ने आपसे कहा कि "छोटी कन्याओं को सदा सत्पथ पर चलना और परमात्मा को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करना चाहिए।" इसके उत्तर में आपने कहा—"केवल छोटी ही कन्याओं को क्यों, सभी व्यक्तियों और सभी वस्तुओं को ईश्वर को प्रसन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि ऐसा न हो, तो फिर जीवन से लाभ ही क्या ?" बाल्यावस्था ही में आपकी बातें अपने से बड़ों की-सी हुआ करती थीं। अपने जीवन के प्रथम दस वर्ष इन्होंने डॉक्टर मैके के घर में व्यतीत किए। इस बीच में इन्होंने एक शिक्षक की सहायता से बहुत कुछ पढ़ डाला। आपने इस उम्र में जिन बड़े लेखकों की रचनाओं से परिचय प्राप्त कर लिया था, उनमें डिकेंस, थैकरे, शेक्सपियर, स्कॉट और कीट्स-जैसे साहित्य-रत्न थे। आपने बाइबिल (इंजील) का भी अध्ययन इसी समय किया था। कुछ संगीत से भी प्रेम हो चला था। पुष्पों में आपकी अधिक अभिरुचि हो गई थी।

फ्रांस में शिक्षा

दस वर्ष की अवस्था में, शिक्षा की पूर्ति करने के लिये, आप फ्रांस भेजी गईं। वहाँ यह एक ईसाई-महिलाश्रम में प्रविष्ट हुईं। पढ़ने में इन्होंने खूब ही मन लगाया। बाइबिल आप पहले ही से पढ़ रही थीं। यहाँ पर आपने उस पुस्तक का प्रगाढ़ अनुशीलन किया। यहाँ इनकी धार्मिक प्रवृत्ति और भी पुष्ट हो गई। बाइबिल के अध्ययन का प्रभाव इन पर आजन्म रहा। ईसाई-धर्म में प्रवृत्ति के उदाहरण तथा उस धर्म के महत्त्व का दिग्दर्शन इनकी पुस्तकों में अनेकों स्थलों पर प्राप्त होता है। फ्रांसीसी महिलाश्रम में आपने धार्मिक शिक्षा तो पाई ही, साथ-ही-साथ साहित्यिक शिक्षा भी प्राप्त की। परंतु वहाँ आपका मुख्य ध्येय संगीत का अध्ययन था। पहले आपका लक्ष्य संगीत-कला को ही अपनी जीविका का आधार बनाना था। इसलिये आपने संगीत-शिक्षा में भी खूब मन लगाया। आपको इस महिलाश्रम में बहुत उच्च कोटि की संगीत-शिक्षा प्राप्त हुई। आपका संगीत-प्रेम आपके साहित्य-प्रेम से अधिक नहीं, तो कम भी न था। यह प्रेम भी आजन्म बना रहा। थोड़ा-बहुत लिखने का अभ्यास आपने बचपन से ही कर रक्खा था। १४ वर्ष की अवस्था में आपने एक 'आपेरा' की रचना आरंभ की थी ; परंतु वह पूर्ण न हो सकी। फिर ईसाई-महिलाश्रम के साथियों के संसर्ग से आपके हृदय में धार्मिक जोश भी उठा, और आपके मन में ईसाइयों का एक नया संप्रदाय स्थापित करने की अभिलाषा हुई। यह भी अभिलाषा कार्य-रूप में परिणत न हो सकी। फिर आपको साहित्य-मनन की धुन समाई। काव्य-निरीक्षण करने की मन में ठानी, तो इस धुन में आपने मिल्टन, शेली, कीट्स आदि की कविताओं के बड़े-बड़े अवतरण कंठस्थ कर डाले। इसके पूर्व ही, इसी प्रकार, इन्होंने शेक्सपियर के नाटकों के बहुत-से अंश कंठस्थ कर लिए थे। सारांश यह कि साहित्य और संगीत, दोनों में ही आपकी अभिरुचि थी। हाँ, यह अनिश्चित था कि दोनों में से किसे यह अपनी जीविका का ज़रिया बनावेंगी। ईसाई-महिलाश्रम में कुछ वर्ष व्यतीत हुए। इसके बाद इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया, और इन्हें पढ़ाई छोड़कर इँगलिस्तान लौट आना पड़ा।

पहली पुस्तक

अब डॉक्टर मैके भी वृद्ध हो गए थे। वह रुग्ण रहा करते थे, और मेरी कॅरेली का अधिकांश समय अपने वृद्ध परिपोषक की सुश्रूषा में व्यतीत होता था। जो समय बचता, उसमें यह लिखने का अभ्यास किया करतीं। आपकी आकांक्षाएँ बड़ी थीं। आप साहित्य-क्षेत्र में नाम कमाने के लिये व्याकुल थीं। बुद्धि आपकी अपनी अवस्थावालों के मुक़ाबिले में परिपक्व थी। परंतु आपकी साहित्य-सेवा स्वीकृत होने में अभी कुछ समय बाक़ी था। लेखनी इनकी मँजी नहीं थी। इन्होंने प्रकाशनार्थ एक कहानी लिखी। परंतु पत्र-संपादक के यहाँ से वह कहानी लौट आई, और उसके साथ ही यह शिक्षा भी आई कि "गल्प-लेखन का कार्य तुम्हारे मान का नहीं है।" इससे मिस कॅरेली का जी बहुत छोटा हो गया। उनका ध्यान एक बार फिर संगीत से जीविका चलाने की ओर गया। उन्होंने अपनी संगीत-शिक्षा को विशेष रूप से पूर्ण करने की ठानी। परंतु उनके पास इस समय रुपए-पैसे की कमी थी, अतएव लेखन-कार्य में मेहनत करना और उसी से संतुष्ट होना पड़ा।

सन् १८८६ ई० में, २१ वर्ष की अवस्था में, आपने 'ए रोमांस ऑफ़ दि टू वर्ल्ड्स'-नामक एक उपन्यास लिखा। यह आपकी प्रथम पुस्तक थी। आपने अपनी इस रचना को मिस्टर जॉर्ज बेंटले के पास प्रकाशनार्थ भेजा। जॉर्ज बेंटले ने इसका प्रकाशन करना स्वीकार कर लिया। कहा जाता है, जब जॉर्ज बेंटले के पास यह पुस्तक गई, तो उसके सलाहकारों ने उसे इस पुस्तक को प्रकाशित करने से रोका था। किसी प्रकार पुस्तक प्रकाशित हुई। इस उपन्यास के निकलते ही मिस कॅरेली का नाम चल निकला। हज़ारों की संख्या में पुस्तक खपी। आश्चर्य की बात तो यह है कि अधिकांश पत्रों ने इसकी समालोचना ही नहीं की। जिन पत्रों ने इसकी समालोचना लिखी—कहा जाता है, ऐसे केवल चार पत्र थे—उन सभी ने प्रतिकूल समालोचना की। प्रतिकूल समालोचनाएँ होने पर भी पुस्तक का चल निकलना एक विचित्र घटना थी। जो कुछ हो, इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही मिस कॅरेली की गणना तत्कालीन मुख्य उपन्यास-लेखकों में होने लगी। यह पुस्तक मिस कॅरेली के जीवन में एक ऐतिहासिक महत्व रखती है। इसने मिस कॅरेली का आगामी जीवन निश्चित कर दिया। आपने अब अपनी लेखनी को ही जीविका का आधार बना लिया, संगीत द्वारा जीविका चलाने का विचार छोड़ दिया, और यह अच्छा ही किया।

हाँ, समालोचकों ने जो इनकी पुस्तक की ख़बर ली थी, उससे इनके मन में सभी समालोचकों के प्रति वैर-भाव जाग्रत् हो गया। यदि यह समालोचकों की समालोचनाओं की पर्वा करतीं, तो इन्हें अपनी जीविका का साधन परित्याग कर देना पड़ता। इन्होंने उन समालोचनाओं को दूसरे ही विचार-केंद्र से देखा। इन्होंने कहा, समालोचक बिना पुस्तक पढ़े ही उसकी समालोचना कर डालते हैं; और यह सरासर अन्याय है। कवि कीट्स की प्रतिभा को प्रतिकूल समालोचनाओं से जो आघात पहुँचा था, उसका ध्यान आपको आया। आपने एक स्थल पर लिखा है—"कीट्स की कोमल प्रतिभा की निर्दयी समालोचकों द्वारा हत्या होने की कथा ने मुझ पर बड़ा असर डाला, और कदाचित् उसने मेरे मन में समालोचनाओं के विषय में उस लापरवाही का प्रथम बीज बोया, जो कि मुझमें सदा बनी रही है।"

अन्य रचनाएँ

क्या वास्तव में वह समालोचनाओं के विषय में इतनी लापरवाह थीं? इस पर संदेह किया जाता है। प्रतिकूल समालोचकों के रहते भी उनकी प्रथम पुस्तक का जैसा प्रचार हुआ, वैसा यदि न होता, तो कदाचित् वह अपना ध्यान संगीत की ओर देने के लिये बाधित होतीं। परंतु उनकी पुस्तक बिकी ख़ूब, जिससे उन्हें और पुस्तकें लिखने के लिये उत्साह मिला। अब वह निश्चित रूप से उपन्यास लिखने और नियमित रूप से लगभग प्रति दूसरे वर्ष एक उपन्यास समाप्त करने लगीं। समालोचनाएँ अधिकांश प्रतिकूल ही होतीं; परंतु पुस्तकें आपकी ख़ूब खपतीं। कई पुस्तकों के अनेकों संस्करण छपे। आपकी पुस्तकों की जितनी ही तीव्र समालोचनाएँ होतीं, उतनी ही उनकी अच्छी बिक्री होती। 'ए रोमांस ऑफ़ दि टू वर्ल्ड्स' के अनंतर आपने अन्य कई उपन्यास प्रकाशित किए। इनमें 'बरब्बास', 'वेंडेटा', 'थेल्मा', 'आर्डथ' तथा 'दि सोल ऑफ़ लिलिथ' हैं मुख्य। समालोचना सभी की तीव्र हुई। अंत में खीझकर आपने अपनी नवीन पुस्तक 'दि सॉरोज़

ऑफ़ सेटन' के साथ-साथ यह सूचना प्रकाशित की कि अब मेरी पुस्तकें समालोचनार्थ कहीं न भेजी जाया करें। अपने इस निश्चय पर मिस मेरी कॅरेली अंत तक डटी रहीं। 'दि सॉरोज़ ऑफ़ सेटन' के बाद प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों में निम्न-लिखित मुख्य हैं—

(१) 'दि माइटी ऐटम'
(२) 'दि मर्डर ऑफ़ डिलिशिया'
(३) 'ब्वाय'
(४) 'दि मास्टर क्रिश्चियन'
(५) 'टेंपोरल पावर'
(६) 'गाड्स गुडमैन'
(७) 'इन्नोसेंट'
(८) 'वार टाइम एवसपीरिएंसेज़'
(९) 'ज़िस्का'

कुछ अन्य पुस्तकें भी हैं—'दि ट्रेज़र ऑफ़ हेविन', 'ए रोमांस ऑफ़ रिचेज़', 'दि लाइफ़ एवरलास्टिंग', 'केमियॉस', 'वर्म उड', 'दि सीक्रेट पावर'।

आपने सब मिलाकर लगभग २५ पुस्तकें लिखी हैं। चालीस वर्ष तक आपकी लेखनी से बराबर ग्रंथ निकलते रहे। अपनी रचनाओं की आमदनी से आप अमीर हो गई थीं। आपकी एक-एक पुस्तक के दर्ज़नों संस्करण हो जाना तो साधारण बात थी। 'सॉरोज़ ऑफ़ सेटन', 'थेल्मा' और 'आर्डेथ' के तो क्रमशः ६०,५० और ४० से अधिक संस्करण हो गए थे। आपकी समस्त रचनाओं में ये ही तीन पुस्तकें सर्वोत्कृष्ट समझी जाती हैं। आपने अपने नाम के चल जाने का लाभ भी ख़ूब उठाया। कहते हैं, कई रद्दी पुस्तकें भी आपने छपा डालीं। परंतु इस कारण आपके नाम को धक्का भी पहुँचा। आपकी अधिकांश पुस्तकों का प्रकाशन लंदन की मेथ्युएंस कंपनी ने किया है।

समालोचक

यह बता चुके हैं कि आपके अधिकांश समालोचक बड़े तीव्र थे, और आपने अपनी पुस्तकों का समालोचनार्थ भेजा जाना बंद करा दिया था। सभी समालोचकों के प्रति इस प्रकार का रोष कुछ अनुचित जान पड़ता है। वास्तव में आपके समालोचक दो श्रेणियों में विभक्त किए जा सकते हैं। प्रथम तो वे, जो कि साहित्य के वास्तविक पारखी थे, जिन्हें आपसे कोई राग-द्वेष नहीं था, जो अपनी सच्ची सम्मति निर्भीकता से तथा जनता के हितार्थ दिया करते थे। मिस कॅरेली का इन लोगों से खीझना केवल उनकी कमज़ोरी प्रदर्शित करता है। मिस कॅरेली की रचनाओं में विशेष त्रुटियाँ हैं, और यदि समालोचक उन त्रुटियों का दिग्दर्शन करावें, तो मिस कॅरेली महोदया को रोष दिखाने का क्या अधिकार है? यह मानना पड़ेगा कि मिस कॅरेली इन समालोचकों के यथार्थ आक्षेपों के आगे निरुत्तर थीं। दूसरी श्रेणी के समालोचक ये थे, जिनके ऊपर स्वयं इनके आक्षेप प्रथम हुए थे। अपनी पुस्तकों में मिस कॅरेली उन संस्थाओं, वर्गों तथा अन्य वस्तुओं इत्यादि पर आक्षेप करती थीं, जो कि उन्हें नापसंद होतीं। अपनी राय को वह प्रधान मानतीं, और निस्संकोच तीव्र-से-तीव्र और कटु-से-कटु बातें लिख डाला करतीं। दूसरी श्रेणी के समालोचकों की समालोचनाएँ एक प्रकार से स्वयं उनके आक्षेपों का प्रत्युत्तर-मात्र होती थीं। हाँ, जोश में आकर कभी-कभी समालोचकगण उचित सीमा का उल्लंघन कर जाते और स्वयं कॅरेली महाशया के आक्षेपों के प्रत्युत्तर में तीव्रातितीव्र और कभी-कभी अनुचित तथा असभ्य बातें तक लिख डालते थे। परंतु अधिकांश में आप ही का तीव्र स्वभाव इन तीक्ष्ण समालोचनाओं का कारण रहा है। चूँकि मिस कॅरेली के आक्षेप अनेकों वर्तमान युग की संस्थाओं तथा वर्गों के विरुद्ध होते थे, इसी से, तदनुसार, आप पर भी भिन्न-भिन्न ओर से आक्रमण होने लगे। समालोचनार्थ पुस्तकों का भिजवाना तो आपने बंद ही करा दिया था, किंतु व्यक्तिगत आक्षेपों की अधिकता देखकर अपने चित्रों का भी प्रकाशन रोक दिया था।

कई प्रकार से आपने अपने समालोचकों का दमन भी करना चाहा। एक बार आपने अदालत में मान-हानि का दावा भी किया; परंतु क्षति-पूर्ति के रूप में आपको केवल आधा पेंस दिलाया गया, जिसे आपने लेना स्वीकार न किया। अंत में यह रक़म एक अस्पताल में जमा कर दी गई, और उसी के नाम पर एक "फ़ार-दिंग फ़ंड" खुल गया। इसमें बहुत धन आया।

जनता में प्रचार

यह भी कह चुके हैं कि यद्यपि समालोचकगण अधिकांश आपका विरोध ही करते रहे, तथापि जनता ने

आपकी रचनाओं का खूब ही आदर किया। लंदन के टाइम्स पत्र का अनुमान है कि यद्यपि आजकल, प्रचार के विचार से, उनका मुक़ाबिला करनेवाले कुछ और उपन्यास-लेखक उत्पन्न हो गए थे, तथापि अपने समय में उनकी पुस्तकों से अधिक प्रचार कदाचित् ही दूसरे उपन्यास-लेखक की पुस्तकों का रहा हो। सचमुच आपकी पुस्तकों की धूम रहा करती थी। तीक्ष्ण समालोचनाएँ होने पर भी इस असीम प्रचार का वास्तविक कारण क्या था? आधुनिक समय के अधिकांश पाठक कौतूहल-तृप्ति के लिये उपन्यास पढ़ते हैं। चरित्र-मनन अथवा विशेष सूक्ष्मता के साथ पढ़कर पुस्तक का ज्ञान प्राप्त करने की ओर उनका ध्यान नहीं होता। वे तो कहानी के भूके हैं। जितनी कौतूहलमयी, रहस्यमयी कथा हो, उतना ही वे उसे पसंद करेंगे। जितनी ही विचित्र बात हो, उतना ही वह उन्हें रुचिकर होगी। मिस कॅरेली आधुनिक पाठकों की इस कमज़ोरी को खूब जानती और उससे लाभ उठाती थीं। ललित तथा ज़ोरदार भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार था। कथा-वर्णन की शैली भी आपकी कम रोचक न थी। पाठकों के आगे वह सदा नई और विचित्र कहानी ढूँढ़कर उपस्थित करतीं। कहीं नार्वे-जैसे देश की कथा है, तो कहीं कथा का केंद्र नेपल्स अथवा पेरिस में है। कहीं मिसर का वर्णन है, तो कहीं अल-कीरिस का। इसी प्रकार वह अपने उपन्यासों में विचित्र रहन-सहन के, विचित्र आचार-विचार तथा आकार के लोगों का वर्णन करती थीं। प्रायः अद्भुत बातों का ही वर्णन रहता था। इसके अतिरिक्त आपकी वर्णन-शक्ति भी अच्छी थी। जो बात लिखतीं, वह दृढ़ता-पूर्वक। हाँ, आपकी सभी पुस्तकें एक-न-एक उद्देश्य लिए हुए अवश्य होती थीं। धर्म का निहोरा तथा वास्तविक ईसाई-धर्म का पक्षपात आपकी पुस्तकों में खूब रहता था। चाहे धर्म का विषय हो, चाहे समाज का, चाहे राजनीति का, सभी में आप अपनी सम्मति देतीं और अपने को उसका अधिकारी समझती थीं। साधारण पाठक इस प्रकार की निश्चयात्मक सम्मतियों से बहुत प्रभावित होते थे। अनेकों पत्र-प्रेषक निजी कठिनाइयों के बारे में भी आपसे सम्मति चाहते, अनेकों आपकी प्रशंसा के उद्गार करते। सारांश यह कि जनता में आपका अत्यधिक प्रचार था।

कुछ प्रधान समर्थक

यह न समझना चाहिए कि मिस मेरी कॅरेली का प्रचार केवल साधारण जनता में ही था। जहाँ एक ओर समालोचकगण उनकी तीक्ष्ण समालोचना में संलग्न थे, वहाँ दूसरी ओर कुछ ऐसे बहुत बड़े व्यक्ति भी थे, जिनके समर्थन से मिस कॅरेली को बहुत संतोष प्राप्त होता था। इनमें प्रथम गणना स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया की थी। महारानी मिस कॅरेली के ग्रंथों को बड़ी रुचि के साथ पढ़ा करती थीं। महारानी ने एक तार मिस कॅरेली के संपूर्ण ग्रंथों को मँगाने के लिये भेजा था। यह तार मिस कॅरेली ने आजन्म बड़े गर्व तथा यत्न से सुरक्षित रक्खा। स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्ड से भी आप भली भाँति परिचित थीं। इँगलिस्तान के भूतपूर्व प्रधान सचिव प्रसिद्ध ग्लैडस्टन भी आपको बराबर प्रोत्साहन दिया करते थे। उनके विचार में मिस कॅरेली एक बहुत अच्छी, होनहार तथा संसार को लाभ पहुँचानेवाली लेखिका थीं। मिस कॅरेली को प्रोत्साहन देते हुए ग्लैडस्टन ने एक पत्र लिखा था, जिसमें से कुछ अंश आगे दिया जाता है। ग्लैडस्टन ने लिखा था—"तुम्हें एक अद्भुत दैवी गुण प्राप्त है, और मैं आशा करता हूँ, तुम उसका दुरुपयोग न करोगी। तुम्हारी लेखनी में एक ऐसी शक्ति है, जो बहुतों पर प्रभाव डालेगी। सावधानी के साथ अपनी शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग करना। जिस प्रकार तुम सुंदरी तथा नेक स्त्री हो, उसी प्रकार वीर और सच्ची लेखिका भी बनो। मेरी प्रिय बालिका, ईश्वर तुम्हारा मंगल करे! वीर बनो। तुम्हारे सम्मुख एक उज्ज्वल भविष्य है। रास्ते में अपना जी छोटा न करना।" आपकी पहली पुस्तक के प्रकाशक मिस्टर जॉर्ज बेंटले को भी आपसे बड़ी आशाएँ थीं। उन्होंने आपको जो पत्र लिखा था, उसमें लिखा था—"तुमने योग्यता-मात्र नहीं प्रदर्शित की है, तुम्हें विविध विषयों की जानकारी है, और तुम एक ही बात प्रत्येक पुस्तक में नहीं दुहराती हो।" इँगलिस्तान के भूतपूर्व कवि-सम्राट् स्वर्गीय लॉर्ड टेनीसन भी आपको प्रोत्साहन दिया करते थे। लॉर्ड सालसबरी भी आपके ग्रंथों पर मुग्ध थे। एक दूसरे बड़े आदमी, जो आपकी पुस्तकों को बहुत पसंद किया करते थे, "रिव्यू ऑफ़ रिव्यूज़" के भूतपूर्व प्रसिद्ध संपादक स्वर्गीय मिस्टर डब्ल्यू० टी० स्टेड थे। इसके अतिरिक्त

प्रोटेस्टेंट-मत के पादरी लोग भी आपकी रचनाओं से प्रेम करते थे। आपकी पुस्तकों पर हज़ारों व्याख्यान गिरजाघरों में दिए गए होंगे।

रचनाओं के गुण-दोष

आपकी रचनाओं के गुण-दोष-निरूपण का कार्य सहज नहीं है। भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न-भिन्न रूप से आपके महत्त्व का अनुमान किया है। किसी ने आपकी प्रशंसा की है, तो औरों ने आपको गालियाँ भी सुनाई हैं। साहित्य के पारखी लोगों ने आपको उच्च आसन नहीं दिया है। लंदन के 'टाइम्स' पत्र ने आपकी मृत्यु पर टिप्पणी करते हुए लिखा था—"चाहे कितनी भी रिआयत करे, पर कोई समालोचक इनकी रचनाओं को अधिक साहित्यिक महत्त्व की नहीं समझ सकता।" एक दूसरे लेखक का कथन है—"पहली श्रेणी के उपन्यासकारों में आपका स्थान नहीं है।" मुझे मिस मेरी कॅरेली की ख्याति से कोई वैर नहीं है, तो भी विचार-पूर्वक मेरी भी यही राय है। दूसरी श्रेणी के लेखकों में मिस कॅरेली का स्थान उच्च है। प्रथम श्रेणी के लेखकों में आपकी गणना करना आपके साथ पक्षपात है। यह सत्य है कि आपकी भाषा ओजस्विनी होती थी; आपका मत सदा धर्म का पक्ष लिए हुए होता था; आप में जोश तथा उत्साह था; आपकी कथा का ढंग अच्छा होता था। परंतु ये ही बातें प्रथम श्रेणी के लेखक के लिये पर्याप्त नहीं हैं। आपमें हास्य का नितांत अभाव था। मानव-चरित्र तथा हृदय में आपकी गहरी पैठ नहीं थी। किसी-न-किसी संस्था अथवा वर्ग का खंडन ही आपका सदा लक्ष्य रहा करता था। और, जिसकी बुराई पर आप तुल जातीं, उसके पीछे पड़ जाती थीं। फिर यदि उसमें गुण भी हों, तो वे उन्हें नहीं नज़र आते थे। वह मनुष्यों, वर्गों तथा संस्थाओं को केवल दो भागों में—अच्छे और बुरे में—विभाजित करती थीं। यह कदाचित् वह समझ ही नहीं सकती थीं कि इस प्रकार का विभाजन अन्याय-पूर्ण होगा। संसार में सर्वत्र अच्छे-बुरे का मेल है। उनका आदर्श-वाद उनके यथार्थ-वाद को ढक लेता था। या तो तारीफ़ के पुल या फिर बुराई की झड़ी—उनकी लेखनी से इन्हीं दो में से एक बात निकलती। उनमें वह सूक्ष्मता तथा सहानुभूति की दृष्टि ही न थी, जो अच्छी बातों की भी न्यूनताओं और आपत्तियोग्य वस्तुओं में भी अच्छी बातों को देख सके। एक समालोचक का कथन है कि "या तो वह किसी वस्तु को सफ़ेद ही बना देंगी, या फिर स्याह ही।" और रंगों का निरीक्षण न करना बहुत बड़ा दोष है।

इसके अतिरिक्त यह भी आपमें बहुत बड़ा दोष था कि चाहे किसी विषय का आपको पूर्ण ज्ञान हो चाहे नहीं, पर आप उस पर निश्चयात्मक सम्मति दे डालती थीं; और फिर इस बात की आशा करती थीं कि उनके वचन शास्त्र-वाक्य की भाँति माने जायँ। इस शताब्दी में उनकी ऐसी आशा, स्पष्ट ही है कि विफल हुई।

हाँ, उन्होंने अपनी तीव्रता द्वारा अपने पाठकों का ध्यान पाश्चात्य समाज-व्यवस्था की बुराइयों की ओर अवश्य खींचा। वर्तमान युग के जड़-वाद पर आपके बड़े बेढब आक्षेप हुए। अनात्मवादी योरप को संसार के प्राचीनतम आदर्शों पर ले जाने का उन्होंने प्रयास किया। नई रोशनीवालों से उन्हें बड़ी चिढ़ थी। वर्तमान काल की बुराइयों का कारण वह धार्मिक प्रवृत्ति का ह्रास समझती थीं। सच्चे ईसाई-धर्म में कुछ जान डालने का प्रयास आपने अवश्य किया। आप प्राचीन बातों की भक्त तथा उपासक थीं; और संसार को उसी सनातन मार्ग का प्रदर्शन भी कराती थीं। यदि उनमें इतनी तीव्रता, इतनी उद्दंडता और इतनी चिढ़ न होती, तो उन्हें अपने आदर्श में बहुत कुछ सफलता होती। उनके लेखों से उनका गर्व टपकता है। इसी गर्व को कुछ समालोचक प्रमाद समझते हैं। उपन्यासों द्वारा जनता का जितना सुधार हो सकता है, उतना साहित्य के किसी अन्य अंग द्वारा नहीं। परंतु उपन्यास द्वारा दी गई शिक्षा इस प्रकार की नहीं होनी चाहिए कि पाठक अपने को उपदेशक के वाक्यों को सुनता हुआ समझे। उपन्यास द्वारा दी गई शिक्षा, कथा के परिणाम तथा गति से, पाठक के हृदय में अनायास समा जानी चाहिए। उपन्यास-लेखक को उपदेशक के रूप में न प्रकट होना चाहिए। किंतु मिस मेरी कॅरेली में एक बड़ी त्रुटि यही थी कि क़दम-क़दम पर आप उपदेशक का रूप धारण कर लेती थीं। यदि आप अपनी कथाओं में मानव-चरित्र की कुछ अधिक जानकारी दिखातीं, उग्रता कुछ कम कर देतीं, तो

साहित्यिक दृष्टि से भी आपका महत्त्व प्रायः उतना ही हो जाता, जितना कि प्रचार की दृष्टि से है।

शेक्सपियर पर श्रद्धा

महाकवि शेक्सपियर पर आपकी असीम श्रद्धा थी। बतला चुके हैं कि बाल्यावस्था और विद्यार्थी-अवस्था से ही आपको शेक्सपियर में अभिरुचि थी, तथा शेक्सपियर के बहुत-से अंश आपको कंठाग्र थे। बड़े होने पर यह रुचि किसी प्रकार भी नहीं घटी, वरन् बढ़ती ही गई। शेक्सपियर के नाटकों तथा काव्यों का आपने विशेष रूप से मनन किया, और उनके नाटकों तथा काव्यों के विषय में आपकी पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त हो गई थी। आपने शेक्सपियर की जन्मभूमि, स्ट्रैटफ़ोर्ड-अन्-एवन को ही अपनाया। वहीं पर आपने अपना घर बनाया। जीवन के अंतिम २५ वर्षों में मिस मेरी कॅरेली वहीं रहीं। उस स्थान की प्राचीनता तथा महत्त्व को चिरस्थायी करने के लिये आपने बहुत उद्योग किया। आपकी स्मृति भी उस स्थान से सदा जड़ित रहेगी।

चरित्र तथा अभिरुचि

आपका चरित्र पवित्र तथा निष्कलंक था। वर्तमान युग के समाज की बुराइयों को वह समझती और उनसे दूर रहने का प्रयत्न करती थीं। एकांत-सेवन उन्हें बहुत प्रिय था। वह अध्ययनशील तथा श्रमशील थीं। शारीरिक परिश्रम से आप कभी न थकती थीं। अध्ययन, मनन और यात्रा द्वारा आपने अपने विचारों का विस्तार किया था। आप ऐसी गर्वशीला थीं कि आपके चरित्र में लोगों को प्रमाद का आभास होता था। आप आजन्म अविवाहित रहीं। साहित्य तथा संगीत से तो आपको प्रेम था ही, कला में भी आपकी अभिरुचि थी। नाना प्रकार के मूल्यवान् तथा उत्कृष्ट कला के नमूने आपने जमा कर लिए थे, और फूलों से आपको अत्यंत प्रेम था। भाँति-भाँति के फूल भी आपने जमा कर रक्खे थे। हस्त-लिखित पुस्तकों का भी संग्रह जो आपके पास था, वह बड़ा मूल्यवान् था। यद्यपि आपमें देश-भक्ति अनन्य थी, तथापि एकदेशीयता आपको छू भी नहीं गई थी।

स्फुट

मिस मेरी कॅरेली का प्रचार अमेरिका में बहुत ही था। यहाँ तक कि कोलोरेडो में उनके स्मरणार्थ एक नगर का नामकरण उन्हीं के नाम पर हो गया। यह नगर कॅरेली-सिटी के नाम से प्रसिद्ध है। सिनेमा, अर्थात् बायसकोप, के द्वारा भी आपके कई उपन्यास जनता में प्रदर्शित किए जा चुके हैं। इसके द्वारा भी आपकी पुस्तकों तथा नाम के प्रचार को सहायता मिली है।

उपसंहार

मिस मेरी कॅरेली का शरीर-पात गत २१ एप्रिल को हुआ। आप स्ट्रैटफ़ोर्ड-अन्-एवन की क़ब्र-गाह ही में दफ़न हुईं। भगवान् आपकी आत्मा को शांति दें! मिस मेरी कॅरेली का नाम संसार से शीघ्र न मिटेगा। उनकी मृत्यु के उपरांत हमें उनके विषय के सब विवादों को शांत कर देना चाहिए। हमें चाहिए कि उनके यथार्थ महत्त्व का निर्णय करें। यद्यपि न्याय की दृष्टि से हम उनको सर्वोपरि आसन नहीं दे सकते, तथापि उनका स्थान बहुत ऊँचा है। हम अंतःकरण से इच्छुक हैं कि उनके प्रदर्शित आदर्शों की पूर्ति संसार में हो। वे आदर्श बड़े उच्च हैं। हमें कटु बातों को भुला देना चाहिए, और केवल उन्हीं बातों पर ध्यान देना चाहिए, जो मान्य हैं।

रामचंद्र टंडन

जल-कण का जीवन-संगीत

जब जग-जीवन से विभिन्न हो गिरता हूँ नीचे की ओर;
मधुर मल्लिका की सुगंध से हो उठता तब मत्त विभोर।
सांध्य सूर्य निज अयुत करों से करते हैं मेरा शृंगार;
कृषक, सीप, चातक, रंभा का मुझ पर है अनुराग अपार।
वृक्ष, लताओं द्वारा होता मेरा सदा मूक आह्वान;
इन्हें मिला करता है शायद मुझसे सुख या जीवन-दान।
झंझा-पवन मनोरथ-गति से मुझे उड़ाए जाता है;
सम्मुख सीमा-हीन महासागर देखो, लहराता है।
यद्यपि मैं अबाध द्रुत गति से नीचे गिरता जाता हूँ,
पर भावी उन्नति की आशा से अपूर्व सुख पाता हूँ।

* * *

प्रबल पवन क्यों मुझे उड़ाए उधर लिए जाता है, आह!
चातकादि तो ताक रहे होंगे रो-रोकर मेरी राह।
क्या अपने को भूल शीघ्र ही महागान गाना होगा?
जिसकी एक बूँद हूँ, उसमें क्या अब मिल जाना होगा?

मोहनलाल महतो गयावाल "वियोगी"

कलिकाल के कवि

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महतो गयावाल "वियोगी"]

पिंगल, भाव, शत्रु हैं, इनको पहले गोली मार—
करो धड़ाधड़ रबड़-छंद में कविता का विस्तार । हरगंगा ।

"वियोगी"

मनोव्यथा

कुम्हला गया हमारा फूल ;
अति सुंदर, युग नयन-विमोहन, जीवन-सुख का मूल ।
विकसित वदन, परम कोमल तन रंजित, चित अनुकूल ;
अहह सका मन-मधुप न उसकी अति अनुपम छवि भूल ॥१॥

बंद हुई आँखों को खोलो ;
अभी बोलते थे तुम प्यारे, बोलो, बोलो, कुछ तो बोलो ।
देखो भाग न मेरा सोवे, चाहे मीठी नींदों सो लो ;
एक तुम्हीं हो जड़ी सजीवन, तुम न हाथ जीवन से धो लो ॥२॥

खोजें तुम्हें कहाँ हम प्यारे ;
ए मेरे जीवन-अवलंबन, ए मेरे नयनों के तारे ।
नहीं देखते क्यों दुख मेरा, मुझ दुखिया के एक सहारे ;
ललक रहे हैं लोचन पल-पल मुख दिखलाओ लाल हमारे॥३॥

इतने बने लाल, क्यों रूखे ;
तुम-सा रुचिर रत्न खो करके आज हुए हम रूखे ।
कैसे विकल बनें न विलोचन छवि-अवलोकन-भूखे ;
मृतक न क्यों मन-मीन बनेगा प्रेम-सरोवर सूखे ॥ ४ ॥

प्यारे कैसे मुँह दिखलाएँ ;
लेती रही बलैया सब दिन, ले नहिं सकीं बलाएँ ।
जिस पर भूली रही भूल है, उसे भूल जो पाएँ ;
धिक है जीवन-धन बिन जग में जो जीवित रह जाएँ ॥५॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

पथ-प्रदर्शन

मूक विश्व के नीरव पथ से विचलित तनिक न होना ;
पथिक, निरंतर क्रंदन-रव से सहसा धैर्य न खोना ।
दृढ़ रहना, जग के कृत्यों पर कुछ भी ध्यान न देना ;
दिन रहते कंटक-पथ को तुम शीघ्र पार कर लेना ।
फूँक-फूँक पग धरना,
भय से भूल न करना,
कुहू-निशा में, बीहड़ वन में, शांत-हृदय हो गाना—
"नीरव जग में शांति नहीं"—बस, आगे कहीं न जाना ।

"रसिकेश"

सोने और चाँदी का व्यापार

(ज्येष्ठ की संख्या से आगे)

ने की पैदावार यद्यपि दिन-दिन बढ़ती गई, परंतु लोगों में आपस की अनबन कुछ कम न हुई; बल्कि बढ़ती ही गई । जिन लोगों ने पूँजी लगाकर खानों का काम बढ़ाया था, वे अधिकांश ही नहीं, बल्कि सब-के-सब विदेशी ही थे । वे रैंड के आदिम निवासी बोअर लोगों से कई प्रकार के नागरिक अधिकार माँगने लगे, जिन्हें देने को बोअर लोग तैयार न थे । बोअर लोग अधिकतर मज़दूरी करनेवाले थे । इसी अनबन ने अंत में जाकर प्रसिद्ध बोअर-युद्ध का विकराल रूप धारण किया, जिसमें प्रजातंत्र-राज्य की इतिश्री ही हो गई, और रैंड का स्वामित्व अँगरेज़ों के हाथ में चला गया । इस युद्ध के कारण संवत् १९५७ में रैंड की सोने की पैदावार, जो संवत् १९५६ विक्रमीय में २२ करोड़ ३१ लाख २५ हज़ार रुपयों के लगभग थी, घटकर केवल डेढ़ करोड़ ही रह गई । परंतु पूर्वोक्त युद्ध समाप्त होने पर फिर यह पैदावार बढ़ने लगी, और बढ़ते-बढ़ते संवत् १९७३ विक्रमीय में प्रतिवर्ष लगभग ६० करोड़ रुपए तक पहुँच गई । यही बड़ी-से-बड़ी रैंड की सोने की पैदावार अंदाज़ी जाती है । लोगों का अनुमान है कि रैंड की सोने की कुल आमदनी संवत् १९७४ तक लगभग ८ अरब रुपयों की हो चुकी है । बोअर-युद्ध में विजयी होने पर अँगरेज़-सरकार ने रैंड की सोने की खानों पर, भारत की खानों की भाँति, अपना आधिपत्य नहीं स्थापित किया । खानों के मालिक वे ही लोग रहे, जो युद्ध के पूर्व थे । स्थानीय उपनिवेश-सरकार उन लोगों से सदा की भाँति रायल्टी लेती रही । रैंड की सोने की खानों की पैदावार, सोना निकालने के ख़र्च और बचे हुए मुनाफ़े की एक सूची आगे दी जाती है । उसे देखकर हमें अच्छी तरह उनके लाभ का अनुभव हो सकेगा । यह सूची प्रतिवर्ष वहाँ की खानों के सरकारी महकमे की ओर से प्रकाशित की जाती है । दूसरे ख़ाने में जो कुल खोदे गए सोने की तौल दी गई

है, वह शुद्ध सोने की नहीं, किंतु कच्चे सोने की है, जिसे रासायनिक तथा अन्यान्य प्रयोगों के द्वारा शुद्ध करके विशुद्ध सोना प्राप्त किया जाता है। इस कच्चे सोने से प्राप्त हुए शुद्ध सोने का मूल्य तीसरे ख़ाने में दिया गया है।

अफ्रिका की सोने की पैदावार

संवत्	खोदा गया सोना (टन)	मूल्य	खर्च		मुनाफ़ा		डिविडेंड	
		कुल रु०	फ़ी टन	फ़ी टन	कुल रु०	फ़ी टन	कुल रु०	फ़ी
१९४४	१२,०००	८,१०,४५०	६७||)	,,	,,	,,	१,२९,७६०	१०|
१९४५	१,८०,०००	७२,५३,८४०	४०|)	,,	,,	,,	११,२८,०२०	६
१९४६	३,८०,०००	१,२८,७५,६८०	३३|||)	,,	,,	,,	४३,०६,६९०	११|
१९४७	७,५०,०००	१,६८,७८,९००	२२||)	,,	,,	,,	२५,४५,५७०	३|
१९४८	१२,४०,०००	२,४८,९३,२९०	२०||-)	,,	,,	,,	३३,६९,४८०	३|
१९४९	१९,६१,३२४	४,१०,४३,१९०	२०|||≡)	,,	,,	,,	८०,५५,५३०	४
१९५०	२१,९३,१४०	७,५४,३४,५९५	३४|=)	,,	,,	,,	१,३२,६३,३४५	६
१९५१	२८,०५,३७५	१०,१७,७३,११०	३६|-)	,,	,,	,,	२,१८,०८,३८५	७||
१९५२	३४,२७,२८१	११,५४,९३,५३५	३३||≡)	,,	,,	,,	३,०३,२१,७८०	८|||
१९५३	३९,८४,२३८	११,६७,५०,४४५	२९|-)	,,	,,	,,	२,२८,०४,२३०	५||≡
१९५४	५३,१४,८६०	१५,८१,८६,९२५	२९|||)	,,	,,	,,	४,०७,०६,७१५	७||
१९५५	७२,८२,०७८	२२,५०,९१,२००	३०|||=)	,,	,,	,,	७,२८,२२,५७०	१
१९५६	६८,००,०००	२२,३१,२५,०००	३२|||-)	,,	,,	,,	४,३७,९५,४१०	६|≡
१९५७	४,६५,०००	२,२६,५०,०००	४८|||)	,,	,,	,,	९९,०००	[illegible]
१९५८	४,१२,०००	१५,०२,२०,३०५	३६|||≡)	,,	,,	,,	६३,३६,१९५	१५|
१९५९	३४,१०,७३५	१०,७३,०६,२५०	३१||)	,,	,,	,,	३,१९,१५,८९०	९|
१९६०	६०,७१,९०८	१८,०४,६५,५५५	२९||≡)	१८||)	६,७५,००,०००	११≡)	५,०१,१४,२०५	८≡
१९६१	८०,२२,७३६	२३,१५,१६,३३०	२८|||=)	१८|)	८,४०,००,०००	१०||=)	५,७४,९२,२८५	७≡
१९६२	१,११,६०,४२२	२९,८८,७४,८७०	२५|||=)	१७||)	१०,५०,००,०००	९|=)	७,१३,४७,९०५	६|≡
१९६३	१,३५,७१,५५४	३५,४२,३१,०००	२६-)	१६||≡)	१२,७५,००,०००	९|≡)	८,३५,८८,५३५	६≡
१९६४	१,५५,२३,२२९	३९,६३,२७,५५५	२५||-)	१५||=)	१५,४५,००,०००	९|||≡)	१०,३९,३५,३००	६||≡
१९६५	१,८१,९६,५८९	४३,३६,५५,८९५	२३|||)	१३|||-)	१८,०१,६८,३७५	९|||≡)	१२,८१,५०,५९५	७
१९६६	२,०५,४३,७५९	४४,८५,०५,३८५	२१|||-)	१३≡)	२७,६६,१५,१४०	८||=)	१३,९९,३८,७६५	६|||-
१९६७	२,१५,३३,५४१	४६,०५,५८,६८०	२१||-)	१३||=)	१६,८२,४१,५७५	७|||=)	१३,३३,०७,७७५	६≡
१९६८	२,३८,८८,२५८	५०,३१,५३,१८५	२१-)	१३|||=)	१७,१२,३७,९१५	७≡)	११,६४,४६,२९०	४|||=
१९६९	२,५४,८६,३५१	५०,७७,४१,९२५	२१||≡)	१४|≡)	१९,०१,७१,४२५	७||)	११,९४,०५,९१०	४||≡
१९७०	२,५६,२८,४३२	५३,७१,८९,०७५	२०|||≡)	१३|||-)	१८,२८,३६,५७५	७=)	१२,१९,११,४८५	४|||-
१९७१	२,५७,०१,९५४	५१,१८,६६,११०	१९|||=)	१३=)	१७,४८,०३,९५५	६|||)	१२,१०,०१,५४०	४||≡
१९७२	२,८३,१४,५७९	५५,८९,७४,८८०	१९||≡)	१३|=)	१७,८९,६५,९३०	६|-)	११,२७,९१,२४०	४
१९७३	२,८३,२५,२५२	५७,१६,१८,५३५	२०-)	१३|||≡)	१७,४४,५०,०१५	६=)	१०,६४,२५,९९०	३|||
१९७४	२,७२,५१,९६०	५५,५२,६४,४९५	२०|-)	१४||≡)	१५,३३,८४,५७०	१|||≡)	९,८३,४२,८२०	३|||

वर्षा-विहार

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]

ऊँची अटा पै लसैं घटा दोऊ, दुहून की ह्वै रही रूप-कला-सी ;
'बेनी' बड़े-बड़े बूँदन ते इक बार ही बारिधि कीन हला-सी ।
चौंकि चली बिचली गच पै लचकी करिहाँ कुच-भार छला-सी ;
त्यों घनस्याम गही अबला, फिरि कै गरे लागि गई चपला-सी ।

(कविवर बेनी)

N. K Press, Lucknow.

पैदावार		मुनाफ़े और डिवीडेंड का संबंध प्रतिशत	नए निकाले गए हिस्से की अधिकृत पूँजी	
मुनाफ़े का संबंध प्रतिशत	डिवीडेंड का संबंध प्रतिशत			
	१६·००			
	१५·५०			
	३३·५०			
	१५·२०			
	१३·५०			
	१६·६०			
	१७·६०			
	२१·४०			
	२६·२०			
	१६·५०			
	२५·७०			
	३२·३०			
	१६·६०			
	०·४०			
	४१·७०			
	२६·७०			
३७·५०	२७·८०	७४·००		
३६·३०	२४·८०	६६·००		
३५·००	२३·८०	६८·००	२३,१०,००० पौंड	३,४६,५०,००० रुपए
३६·००	२३·७०	६६·५०	२,००,००० ,,	३०,००,००० ,,
३६·००	२६·२०	६७·२०	१,७७,००० ,,	२६,५५,००० ,,
४१·६०	२६·६०	७१·१०	६,८२,००० ,,	१,४७,३०,००० ,,
३६·४०	३१·२०	७६·००	७८,४४,००० ,,	११,७६,६०,००० ,,
३६·६०	२६·००	७६·२०	४३,२७,००० ,,	६,४६,०५,००० ,,
३४·००	२३·१०	६८·००	१६,८७,००० ,,	२,६८,०५,००० ,,
३४·००	२१·४०	६३·००	१७,८५,००० ,,	२,६७,७५,००० ,,
३३·६०	२२·८०	६७·३०	११,७८,००० ,,	१,६६,७०,००० ,,
३३·६०	२३·७०	६६·८०	१,६५,००० ,,	२४,७५,००० ,,
३२·००	२०·४०	६३·६०	१,३८,००० ,,	२०,७०,००० ,,
३०·५०	१८·६०	६१·१०	५,३२,००० ,,	७६,८०,००० ,,
२७·६०	१७·७	६४·२०		

सरकारी रिपोर्ट में यह मूल्य पौंडों में दिया हुआ है। परंतु हमने सुबीते के लिये १५) रु० प्रति पौंड के हिसाब से उसे रुपयों में बदल दिया है। सरकारी रिपोर्ट में पाँचवें स्थान में वर्किंग प्रॉफ़िट (working profit) दिया है, जिसको हमने अपनी सूची में मुनाफ़ा लिखा है। खानों से निकले हुए खार से शुद्ध सोना निकालने में जितना ख़र्च पड़ता है, वह सब बाद देकर जो मुनाफ़ा बाक़ी रहता है, उसे वर्किंग प्रॉफ़िट माना गया है। इस वर्किंग प्रॉफ़िट में से कुछ हिस्सेदारों में बतौर डिवीडेंड के प्रति वर्ष बाँट दिया जाता है। बाक़ी स्थायी कोष आदि के रूप में जमा रहता है। इसको हमने सूची में डिवीडेंड ही लिखा है।

संसार की आज तक की सोने की उत्पत्ति का अंदाज़ लगाना एकदम असंभव है; क्योंकि प्राचीन लेखकों ने इस विषय की ओर जैसा चाहिए, वैसा ध्यान नहीं दिया। इतना ही नहीं, उस समय देशों के पारस्परिक संबंध भी इतने कम और विच्छिन्न थे कि इस बात का पता रहना ही एक प्रकार से असंभव था। इसी प्रकार यह बतलाना भी एक प्रकार से असंभव ही है कि किन-किन देशों में सोना आज तक मिलता रहा है। जो सुवर्णाभूषण प्राचीन खँडहरों या भग्नावशेषों में दबे हुए मिलते हैं, उन्हीं के आधार पर उन देशों में सोने की उत्पत्ति का अनुमान या कल्पना कर लेना भारी भूल है; क्योंकि अति प्राचीन समय में भी सुवर्ण आजकल की भाँति अपना घर छोड़कर दूरस्थ देशों में जाता था। चाहे जो हो, हमारा यह अनुमान करना किसी प्रकार अनुचित नहीं है कि संसार के प्रत्येक युद्ध ने सोने की पैदावार पर सदैव, उसे कम करने का, अपना प्रभाव डाला है। कारण, युद्ध के समान अशांति के समय में, जब प्रत्येक मनुष्य को अपनी जान और माल का भय बना रहता है, ऐसी देश की संपत्ति-स्वरूप खानों की खुदाई जारी रहना कठिन ही नहीं, वरन् असंभव था, और अब भी है। इतना ही नहीं, बल्कि सैनिकों की कमी पूरी करने के लिये ऐसे अवसर पर खानों से मज़दूर तक हटा लिए जाते हैं। हाँ, पिछले ४०० वर्षों में सोने की कितनी पैदावार हुई है, इसका अनुमान लगाने के लिये कई मध्यकालीन लेखकों के ग्रंथों में अंक प्राप्त होते हैं। ये अंक यद्यपि कई कारणों से पूर्णतया विश्वास-योग्य नहीं हैं, तथापि स्थूल रूप से एक अंदाज़ा लगाने में हमारी सहायता अवश्य करते हैं। विक्रम की २०वीं शताब्दी के प्रारंभ से इन अंकों के रखने के यथोचित प्रयत्न किए गए हैं, और तब से हमें सोने की आमदनी ठीक-ठीक मिल जाती है। इन अंकों के एकत्र करने और सिलसिलेवार रखने का सबसे अधिक श्रेय अमेरिका के संयुक्त-राष्ट्र को है। वहाँ प्रतिवर्ष टकसाल की ओर से इन मूल्यवान् धातुओं के ये अंक प्रकाशित किए जाते हैं। उसी रिपोर्ट के आधार पर श्रीयुत बेंजमिन वाइट ने अपनी 'सुवर्ण'-नामक पुस्तक में एक सूची दी है, जिसे पाठकों के जानने के लिये यहाँ उद्धृत किया जाता है। कई वर्षों की पैदावार ठीक-ठीक नहीं मालूम हुई, इस कारण उसे पिछले वर्ष की पैदावार ही के बराबर मान लिया है। सोने की क़ीमत लगाने में एक डालर तीन रुपए के बराबर माना गया है।

संवत् १५५० (सन् १४९३ ई०) से समस्त संसार की सोने की पैदावार

संवत्	सोने की पैदावार				मूल्य प्रति तोला
	शुद्ध आउंस	मूल्य डालर में	शुद्ध तोले ३ आउंस = ८ तोले	मूल्य रुपयों में १ डालर=३ रुपए का	
१५५०-१५७७	५२,२१,१६०	१०,७९,३१,०००	१,३९,२३,०९३	३२,३७,९३,०००	२३।)॥१½
१५७८-१६०१	५५,२४,६५६	११,४२,०५,०००	१,४७,३२,४१६	३४,२६,१५,०००	
१६०२-१६१७	४३,७७,५४४	९,०४,९२,०००	१,१६,७३,४५१	२७,१४,७६,०००	
१६१८-१६३७	४३,९८,१२०	९,०९,१७,०००	१,१७,२८,३२०	२७,२७,५१,०००	
१६३८-१६५७	४७,४५,३४०	९,८०,९५,०००	१,२५,९४,२४०	२९,४२,८५,०००	
१६५८-१६७७	५४,७८,३६०	११,३२,४८,०००	१,४५,९५,६२७	३३,९७,४४,०००	

१६७८-१६९७	५३,३६,६००	११,०३,२४,०००	१,४२,२१,७३३	३३,०९,७२,०००
१६९८-१७१७	५६,३९,११०	११,६५,७१,०००	१,५०,३७,६२७	३४,९७,१३,०००
१७१८-१७३७	५९,५४,१८०	१२,३०,८४,०००	१,५८,७७,८१३	३६,९२,५२,०००
१७३८-१७५७	६९,२१,८९५	१४,३०,८८,०००	१,८४,५८,९८७	४२,९२,६४,०००
१७५८-१७७७	८२,४३,२६०	१७,०४,०३,०००	२,१९,८२,०२७	५१,१२,०९,०००
१७७८-१७९७	१,२२,६८,४४०	२५,३६,११,०००	३,६०,४९,१७३	७६,०८,३३,०००
१७९८-१८१७	१,५८,२४,२३०	३२,७१,१६,०००	४,२१,९७,७४६	९८,१३,४८,०००
१८१८-१८३७	१,३३,१३,३१५	२७,५२,११,०००	३,५५,०२,१७३	८२,५६,३३,०००
१८३८-१८५७	१,१४,३८,९७०	२३,६४,६४,०००	३,०५,०३,२५३	७०,९३,९२,०००
१८५८-१८६७	५७,१५,६२७	११,८१,५२,०००	१,५२,४१,६७२	३५,४४,५६,०००
१८६८-१८७७	३६,७९,५६८	७,६०,६३,०००	९८,४५,५१५	२२,८१,८९,०००
१८७८-१८८७	४५,७०,४४४	९,४४,७९,०००	१,२१,८७,८५१	२८,३४,३७,०००
१८८८-१८९७	६५,२२,८१३	१३,४८,४१,०००	१,७३,९४,४३५	४०,४५,२३,०००
१८९८-१९०७	१,७६,०५,०१८	३६,३९,२८,०००	४,६९,४६,७१५	१,०९,१७,८४,०००
१९०८-१९१३	३,२०,५१,६२१	६६,२५,६६,०००	८,५४,७०,९८९	१,९८,७६,९८,०००
१९१४-१९१७	३,२४,३१,३१२	६७,०४,१५,०००	८,६४,८३,४९९	२,०१,१२,४५,०००
१९१८-१९२३	२,९७,४७,९१३	६१,४९,४४,०००	७,९३,२७,७६८	१,८५,४८,३२,०००
१९२४-१९२७	३,१३,५०,४३०	६४,८०,७१,०००	८,६२,६७,८१३	१,९४,४२,१३,०००
१९२८-१९३२	२,७९,५५,०६८	५७,७८,८३,०००	७,४५,४६,८४८	१,७३,३६,४९,०००
१९३३-१९३७	२,७७,१५,५५०	५७,२९,२१,०००	७,३९,०८,१४७	१,७१,८७,६३,०००
१९३८-१९४२	२,३९,७३,७७३	४९,५५,८२,०००	६,३९,३०,०६१	१,४८,६७,४६,०००
१९४३-१९४७	२,७३,०६,४११	५६,४४,७४,०००	७,२८,१७,०९६	१,६९,३४,२२,०००
१९४८-१९५२	३,९४,१२,८२३	८१,४७,३६,०००	१०,५१,००,८६१	२,४५,४२,०८,०००
१९५३-१९५७	६,२२,३४,६९८	१,२८,६५,०५,४००	१६,५९,५९,१९५	३,८५,९५,१६,२००
१९५८-१९६२	७,८०,३३,६५०	१,६१,३०,९९,१००	२०,८०,८९,७३३	३,२२,९२,९७,३००
१९६३	१,९४,७१,०८०	४०,२५,०३,०००	५,१९,२२,८८०	१,२०,७५,०९,०००
१९६४	१,९९,७७,२६०	४१,२९,६६,६००	५,३२,७२,६९३	१,२३,८८,९९,८००
१९६५	२,१४,२२,२४४	४४,२८,३६,९००	५,७१,२५,९८४	१,३२,८५,१०,७००
१९६६	२,१९,६५,१११	४५,४०,५९,१००	५,८५,७३,६२९	१,३६,२१,७७,३००
१९६७	२,२०,२२,१८०	४५,५२,३९,१००	५,८७,२५,८१४	१,३६,५७,१७,३००
१९६८	२,२३,४८,३१३	४६,१९,३९,७००	५,९५,९५,५०१	१,३८,५८,१९,१००
१९६९	२,२५,४९,३३५	४६,६१,३६,१००	५,९३,३१,५६०	१,३९,८४,०८,३००

१६७०	२,२३,४६,४६६	४५,६६,४१,१००	५,६३,३२,२४६	१,३७,६८,२३,३००	
१६७१	२,२०,३६,५४६	४५,५६,७६,६००	५,८७,७२,१२८	१,३६,७०,२६,८००	
१६७२	२,२६,७४,५६८	४६,८७,२४,६१८	६,०५,६८,८४५	१,४०,६१,७४,७५४	
१६७३	२,२१,०७,६६६	४५,७०,१६,०४५	५,८६,५३,७८४	१,३७,१०,१८,१३५	
१६७४	२,१२,४०,४१६	४३,६०,७८,२६०	५,७३,०७,७७६	१,३१,७२,३४,७८०	
१६७५	२,२७,५८,८०८	४७,०४,६६,२१४	६,०६,६०,१५५	१,४१,१३,६८,६४२	
१६७६	२,१६,७०,७८८	४४,४१,७६,५००	५,८५,८८,७६८	१,३३,२५,२६,५००	
१६७७	२,०४,६१,१७६	४२,३५,६०,२००	५,४६,४३,१३६	१,२७,०७,७०,६१०	
	८२,३५,५८,६०६	१७,०१,२३,६२,२७४	२,१६,६१,५६,२८३	५१,०३,७०८६८२२	

विक्रम-संवत् १६७३ (सन् १६१६ ई०) में भिन्न-भिन्न देशों की सोने की पैदावार

नाम देश.	पैदावार		पैदावार		प्रतिशत
	शुद्ध सोना आउंस	मूल्य डालर में	शुद्ध सोना तोला ३ आउंस=८ तोले	मूल्य रुपयों में १ डालर=३ रुपए	
उत्तर-अमेरिका					
संयुक्त-राष्ट्र	४४,७६,०५७	६,२५,६०,३००	१,१६,४४,१५२	२७,७७,७०,६००	२०.२६
कनाडा	६,२०,४६२	१,६२,३४,६७६	२४,८१,३१२	५,७७,०४,६२८	४.२०
मेक्सिको	३,७२,०३८	७६,६०,७०७	६,६२,१०१	२,३०,७२,१२१	१.६१
योग	५७,८१,५८७	११,६५,२५,६८३	१,५४,१७,५६५	३५,८५,४७,६४६	२६.१५
मध्य अमेरिका	१,७०,१६४	३५,१७,५६७	४,५३,७७१	१,०५,५२,७११	०.७७
दक्षिण-अमेरिका					
अरजंटाइना	३०६	६,३३०	८१६	१८,६६०	-
बोलिविया और चिली	१६,२०१	३,६६,६२२	५१,२०३	११,६०,७६६	.०.०६
ब्रेज़िल	१,१७,२८६	२४,२४,५१५	३,१२,७६३	७२,७३,५४५	०.५३
कोलंबिया	२,६८,६६१	६१,७३,८६७	७,६६,४२६	१,८५,२१,६०१	१.३४
इक्वेडार	२६,३६७	५,४५,६७४	७०,३६२	१६,३७,०२२	०.११
पेरू	५७,०६०	११,७६,५३७	१,५२,१६०	३५,३८,६११	०.२६
उरुग्वे	५७३	११,८३६	१,५२८	३५,५०८	
गायना-अँगरेज़ी	३७,१२६	७,६७,५२५	६६,०११	२३,०२,५७५	०.१६
„ डच	२१,१६६	४,३८,२२३	५६,५३१	१३,१४,६६६	०.१०
„ फ़रासीसी	६४,८०५	१६,५६,७६३	२,५२,८१३	५७,७६,३७६	०.४२
वेनेज़ुला	६८,६३१	१४,२४,६३०	१,८३,८१६	४२,७५,७६०	०.३१
योग	७,४१,५४८	१,५३,२६,१५२	१६,७७,४६२	४,५६,८७,४५६	३.३५

योरप					
आस्ट्रिया-हंगरी	६७,३६०	१३,६२,४६५	१,७६,६२७	४१,७७,३६५	०·३०
फ्रांस	४८,३७५	१०,००,०००	१,२६,०००	३०,००,०००	०·२२
ग्रेट ब्रिटन	६२६	१६,१४२	२,४६६	५७,४२६	—
ग्रीस	—	—	—	—	—
इटाली	१११	२,२६५	२६६	६,८८५	—
नार्वे	—	—	—	—	—
पुर्तगाल	३२	६६१	८५	१,६८३	—
रूस	१२,७३,३६२	२,६३,२२,७४६	३३,६५,६३२	७,८६,६६,२३८	५·७६
स्पेन	—	—	—	—	—
स्वीडन	१,२२५	२५,३२३	३,२६७	७५,६६६	—
तुर्की	—	—	—	—	—
योग	१३,६१,३६१	२,८७,७२,६३२	३७,१०,३७६	८,६३,१७,८६६	६·२६
आस्ट्रेलिया	२६,५४,७७४	४,०४,०८,७५५	५२,१२,७३१	१२,१२,२६,२६५	८·८४
एशिया महाद्वीप					
भारतवर्ष	५,४२,६१५	१,१२,०६,५०६	१४,४५,६४०	३,३६,१६,५२७	२·४५
चीन	२,३५,६७७	२८,०४,६६२	३,६१,८०५	८४,१४,०७६	०·६१
कोरिया	२,६६,४१६	४१,२२,३५१	५,३१,७८४	१,२३,६७,०५३	०·६८
ईस्टइंडीज अँगरेज़ी	२,४६,६६३	३१,००,०००	३,६६,६००	६३,००,०००	०·६८
,, डच	—	—	—	—	—
मलाया-राज्य	१५,८६१	३,२७,८७१	४२,२६६	६,८३,६१३	००७
फ़ारमोसा (टाइ-वान)	४८,४३२	१०,०१,१७८	१,२६,१५२	३०,०३,५३४	०·२१
इंडोचायना	३,१७४	६५,६२०	८,४६४	१,६६,८६०	—
जापान	२,६०,५५१	५३,८६,०६६	६,६४,६०३	१,६१,५८,१६८	१·१४
योग	१३,५५,१६२	२,८०,१४,२८७	३६,१३,८४८	८,४०,४२,८६१	६·१४
आफ्रिका					
बेलजियन कांगो	४६,७८७	१०,२६,१८६	१,३२,७६५	३०,८७,५६७	०·२३
मिसर	७,०६०	१,४४,६१०	१८,६६४	७,२४,५५०	—
फ़रासीसी पूर्वी आफ़्रिका	२,१००	४३,४१४	५६,००	२,१७,०७०	—
मडगास्कर	४६,६८१	६,६४,६८०	१,२४,४८३	२८,६४,६४०	०·२१
रोडेशिया	६,३०,३५६	१,६२,३२,१६५	२४,८०,६५०	५,७६,६६,४६५	४·२१
ट्रांसवाल, केपकालोनी और नेटाल	६२,६६,८४८	१९,२१,८२,६०२	२,४७,६१,५६६	५७,६५,४८,७०६	४२·०७
पश्चिमी आफ़्रिका	३,८०,२३१	७८,६०,०७६	१०,१३,६५०	२,३५,८०,२३७	१·७२
योग	१,०७,१३,०१३	२२,१४,५७,६३६	२,८५,६८,०४१	६६,४३,७२,६१७	४८·४६
कुल योग	२,२१,०७,६६६	४५,७०,१६,०४५	५,८६,५७,११८	१,३७,१०,४८,१३५	१००·००

कस्तूरमल बाँठिया

मेरी भारत-यात्रा

गत २७ दिसंबर, १६२२ ई० को, शाम के पाँच बजे के समय, मैंने चनाव-जहाज़ द्वारा सूवा फ़िजी से भारत को प्रस्थान किया। वह बहुत ही अच्छी शाम थी। प्रिय सहोदर भ्राता और मित्रों से अंतिम नमस्कार करने का साहस नहीं होता था। दूसरे दिन सबेरे मैं, प्रशांत महासागर में, उठा। वहाँ ज़मीन नहीं देख पड़ती थी। इस जहाज़ में सब स्त्री, पुरुष और बच्चे मिलाकर ६६७ भारतीय यात्री थे, जो कि भारत से फ़िजी द्वीप में, पाँच वर्ष की शर्त-बंदी से, नौकरी करने आए थे, और अब अपनी अवधि पूरी करके सरकारी भाड़े से अपनी मातृभूमि को वापस जा रहे हैं। मैं तो केवल छः मास की छुट्टी लेकर भारत की सैर करने जा रहा था। सब-के-सब यात्रियों को सामुद्रिक रोग या उलटी (Sea-sickness) हो रही थी। ऐसी हालत में जहाज़ की दुर्दशा का अनुमान किया जा सकता है। सामुद्रिक जीवन आरंभ हुआ। सब प्रवासी भारतीयों को प्रातःकाल साढ़े पाँच बजे उठना और खारी पानी से हाथ-मुँह धोने के बाद सवा सात बजे जहाज़ के गीले डक पर हाज़िरी के लिये खड़ा होना पड़ता है। हाज़िरी के बाद नीचे जाकर नव बजे सबेरे भोजन और मीठा जल लेने के लिये वे अपनी-अपनी टीन की थालियाँ और लोटे लेकर एक लंबी पंक्ति में ऊपर आते हैं। कलेवा करने के बाद उन्हें जहाज़ के ऊपरी तल पर ठहरना पड़ता है; क्योंकि नीचे साफ़ किया जाता है। एक बजे सब नीचे जा सकते हैं। तीन बजे वे भोजन और जल के लिये फिर ऊपर आते हैं। अँधेरा होने तक उन्हें ऊपर के तल पर ही ठहरना पड़ता है।

यात्रियों को प्रतिदिन दो दफ़े भोजन और मीठा जल मिलता है—प्रातःकाल नव बजे, और शाम को तीन बजे। भोजन की सामग्री इस प्रकार दी जाती है—रोज़ दाल, भात, आलू और लौकी की तरकारी, और इमली की चटनी; मांसाहारियों को सप्ताह में एक बार सूखी मछली, एक दफ़े विदेश से टिनों में बंद होकर आनेवाला भेड़ का मांस (tinned mutton), इतवार को ताज़ा भेड़ का मांस। सप्ताह में दो दफ़े रोटी, और इतवार को सबेरे चिड़वे, चीनी और बिस्कुट भी मिलते हैं। छोटे-छोटे बच्चों को, जो नाज खाने के लायक़ नहीं हैं, टिन का दूध और साबूदाना दिया जाता है।

फ़िजी-द्वीप-निवासी श्रीयुत दुखहरन

एस० एस० चनाब-नामक जहाज पर लेखक
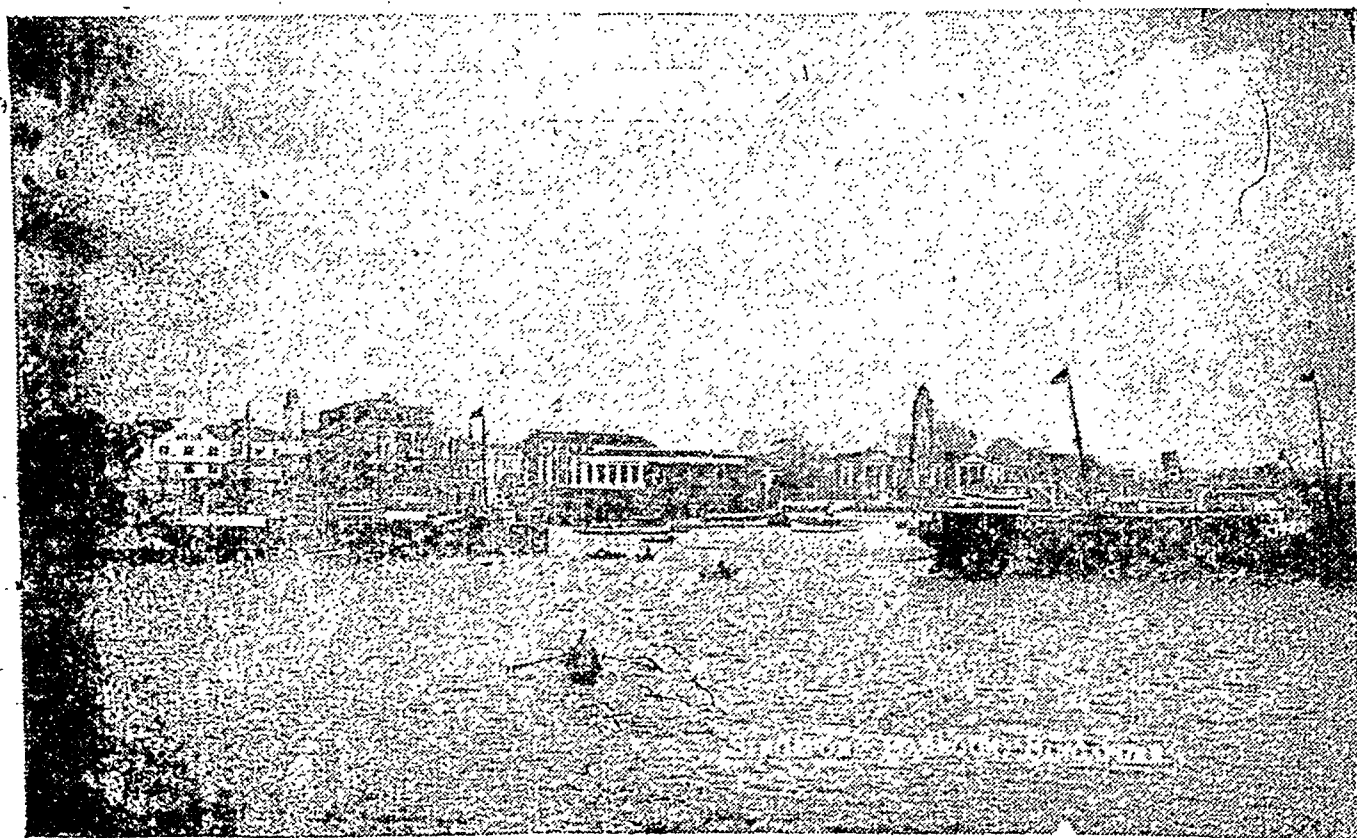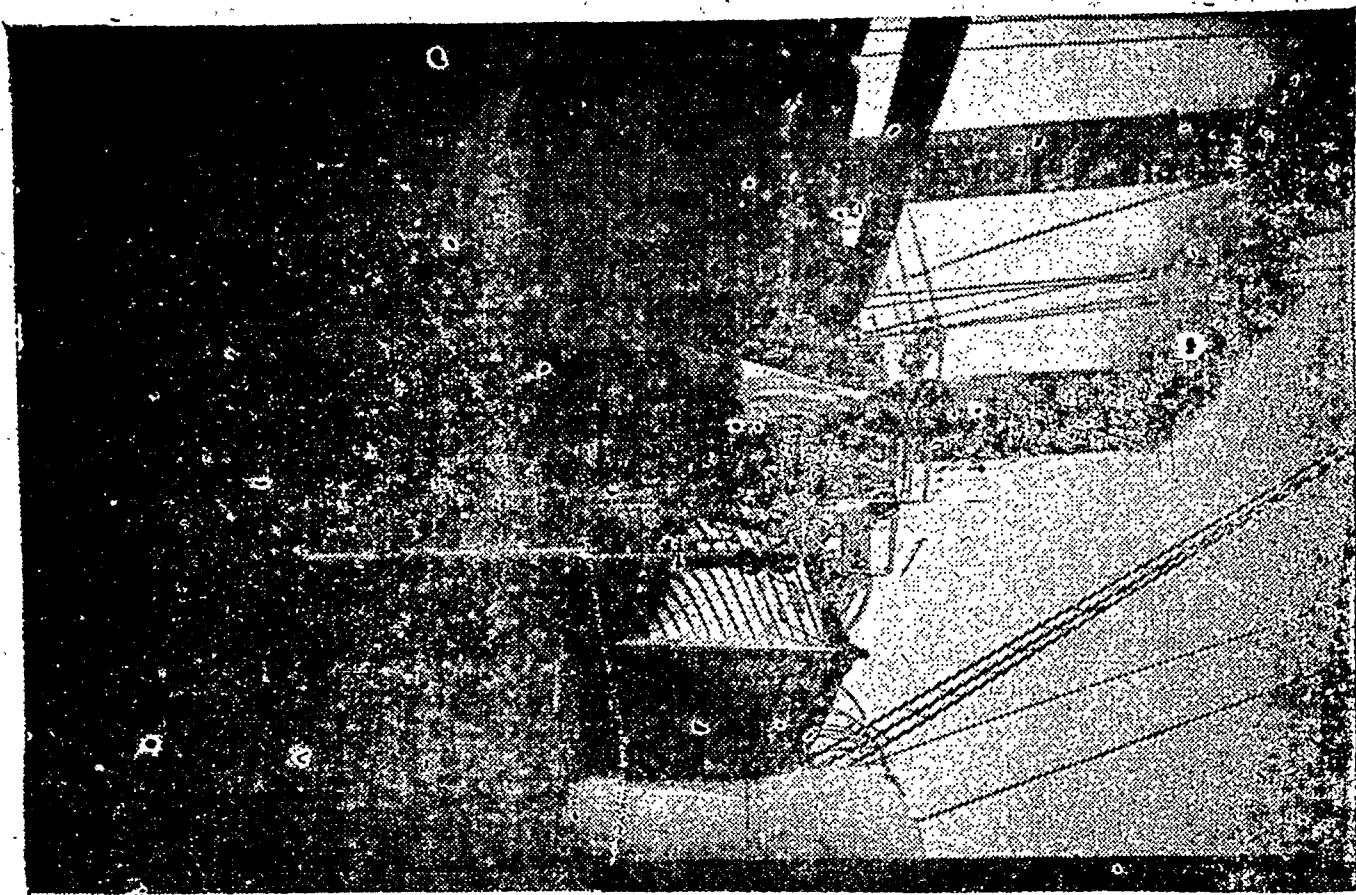
सिंगापुर का बंदरगाह

स्त्रियों को सिर में लगाने के लिये नारियल का तेल भी मिलता है। हरएक प्रवासी भारतवासी को एक टिन की थाली, एक लोटा और एक कंबल मिलता है, जो फिर वापस नहीं लिया जाता। हरएक बात का आराम है, केवल मीठे जल की बड़ी कमी है।

जहाज़ पर पुरुषों को अगले और स्त्रियों को पिछले

भाग में रक्खा जाता है। छः बजे शाम को सब नीचे जा सकते हैं। आठ बजे रात को डॉक्टर और जहाज़ के बाबू (ship compounder) लोग उन्हें देखने जाते हैं। विवाहित पुरुष जहाज़ के अगले भाग में और अविवाहित दूसरे भाग में सोते हैं।

पीछे दीवार है। सब दरवाज़े रात को बंद कर दिए
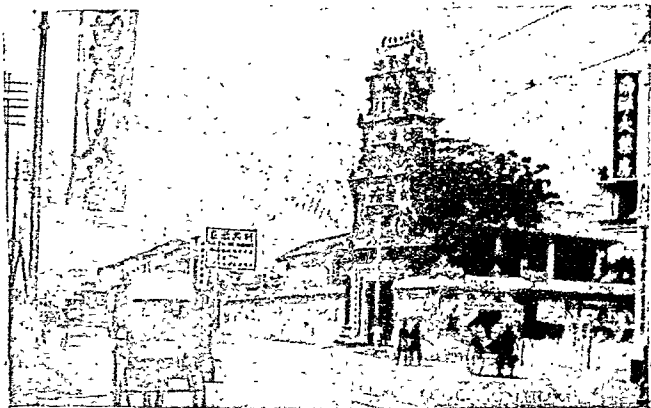
सिंगापुर का हिंदू-मंदिर
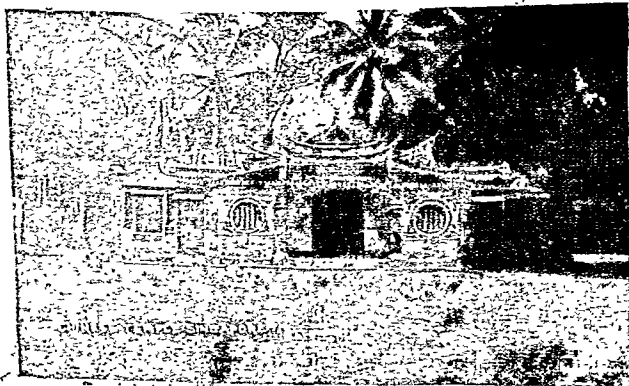
सिंगापुर का एक चीनी मंदिर

जाते हैं। रात को पहरा भी रहता है। यात्रा में स्त्री-पुरुष दिल-बहलाव में तथा नाच-गाकर समय व्यतीत करते हैं। जहाज़ पर जाति-पाँति का कुछ भेद-भाव नहीं रहता। हिंदू और मुसलमान, सबके लिये एक ही भंडारे में भोजन पकता है। भंडारी हिंदू और मुसलमान, दोनों रहते हैं। छुआछूत का विचार सब भूल जाते हैं।

भारत जाते समय हम लोगों ने स्ट्रेट सेटलमेंट, सिंगापुर, पिनांग, जावा, सुमात्रा, बोर्निओ, थर्सडे आईलैंड और अंडमन (कालापानी) आदि देखे; पर जहाज़ कहीं खड़ा नहीं हुआ।

२० जनवरी, १६२३ ई० को, १० बजे प्रातःकाल, हम लोग कलकत्ते पहुँचे। गंगा-नदी का दृश्य और उसके दोनों किनारों पर कपड़े और जूट आदि की भिन्न-भिन्न मिलें देखने से भारत की सफलता की याद आने लगी। लंगर डाले हुए अनेक स्टीमरों, असंख्य मछली मारनेवाली नावों और चींटियों की तरह अपार जन-संख्या का शुमार करना असंभव था। लगभग ११ बजे उसी दिन इमीग्रेशन-ऑफ़िस से दो बंगाली बाबू आए, और उन्होंने सब प्रवासी भारत-वासियों की हाज़िरी ली। इसके बाद अँगरेज़ डॉक्टर आए, और सब यात्रियों की डॉक्टरी जाँच हुई।

आज शनिवार के दिन सब प्रवासी भारत-वासियों को जहाज़ ही पर ठहरना पड़ा। सवेरे (२१। १। २३ को) इमीग्रेशन-ऑफ़िसर (कुली-एजेंट) आया, और जिन बेचारे प्रवासी भारतीयों के पास कुछ भी रुपए न थे, उन सबको एक पंक्ति में खड़ा किया। इनकी संख्या लगभग ४०० के थी। इन दरिद्रों में से कुछ लोगों से फ़िज़ी-सरकार के एजेंट साहब यह सवाल करते थे कि "तुम लोग अपना देश छोड़कर परदेश को रुपए कमाने गए थे, और आज दस-पंद्रह वर्ष के बाद लौटे हो। फिर क्या कारण है कि कुछ रुपए कमाकर नहीं लाए ?" कोई उत्तर देता है—"साहब, वेतन केवल एक या दो शिलिंग रोज़ मिलता था। खाने-पान की चीज़ें बहुत महँगी थीं। जो कुछ कमाते थे, वह सब ख़र्च हो जाता था।" फिर एजेंट साहब कहते हैं—"बाक़ी और लोग तो कुछ-न-कुछ रक़म कमाकर लाए हैं। मालूम होता है, तुम सब शराबी, जुआरी या सुस्त होगे।" इसी तरह दो-चार बुरी-भली बातें सुनाते थे। आख़िरकार इन दरिद्रों में से हरएक को पाँच-पाँच रुपए देकर जहाज़ से बिदा कर दिया गया। २२ जनवरी, सोमवार को एजेंट साहब फिर सवेरे जहाज़ पर आए, और सब मदरासियों ने, जिन्होंने अपने रुपए फ़िज़ी के सरकारी ख़ज़ाने में जमा किए थे, अपनी रक़म वापस पाई। वे मदरास तक का टिकट मुफ़्त लेकर बिदा हुए। २३ जनवरी, मंगलवार को उत्तर-भारत के प्रवासी

सिंगापुर के चीनी-मंदिर की एक मूर्ति

भाइयों को अपने जमा किए हुए रुपए मिले, और वे जहाज़ से विदा होकर अपने-अपने ज़िलों को रवाना हुए। मुझे और मेरे प्रिय मित्र बाबू एम्० श्रीरमन को इसी दिन—शनिवार ही को—जहाज़ से उतरने की आज्ञा
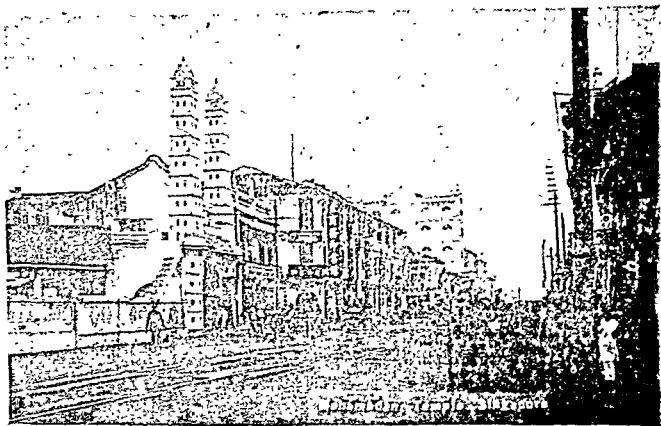
सिंगापुर में मुसलमानों की एक मसजिद

बीच स्ट्रीट, पिनांग

मिल गई थी ; पर हम दोनों जहाज़ पर प्रवासी भारत-वासियों को, अंतिम छुटकारे के दिन तक, देखने जाया करते थे। कलकत्ते में उतरने पर मैंने अपने को एक ऐसे देश में पाया, जहाँ फ़िज़ी की कोई भी बात नहीं मिलती। फ़िज़ी और कलकत्ते के रस्म-रवाज, चाल-ढाल, पोशाक-पहनावे, बोली और धर्म में बड़ा अंतर देख पड़ा।

भारत को अच्छी तरह जानने में जीवन व्यतीत हो जाता है। जो जितने अधिक समय तक वहाँ रहे, उसे उतना ही अधिक ज्ञात होगा कि वहाँ का हाल उसे कितना कम मालूम है।

लगभग ४ बजे शाम को मैं और मेरे प्रिय मित्र श्रीरमनजी गाड़ी पर बैठकर सियालदह-स्टेशन से लोअर सरकुलर रोड के 'आर्य-निवास'-नामक एक बंगाली होटल में गए। पाँच रुपए रोज़ भाड़े पर एक कमरा (कोठरी) लिया, जिसमें दो खटिया, एक टेबिल, दो कुर्सियाँ, एक बिजली की बत्ती और पंखा था। एक बार के भोजन का मूल्य ॥≈) देना पड़ता था।

और कोलाहल ने सबसे पहले मेरा ध्यान अपनी ओर खींचा। बाज़ार में जाने पर मैंने देखा, दूकानदार लोग लंबी क़तारों में बैठे थे। बीच में ग्राहकों के सौदा ख़रीदने के लिये आने-जाने को तंग जगह छूटी हुई थी। बहुधा ख़रीदारों को एक रुपए की चीज़ के दाम दो या तीन रुपए बतलाए जाते थे। कुछ देर तक ज़ोर-शोर से मोल-भाव करने के बाद वही सामान, ग्राहक की होशियारी के अनुसार, एक रुपए में, अथवा इससे कुछ कम में भी, मिल जाता था। मेरे-जैसे नए यात्रियों को तो बड़ी सावधानी के साथ सौदा ख़रीदना चाहिए ; क्योंकि ठगे जाने का बड़ा भय है। यद्यपि सभी दूकानदार ठग नहीं होते, तथापि छोटे-छोटे दूकानदारों में ८० फ़ी सैकड़े ठगने की चेष्टा करते हैं।

बाज़ार में साग से लेकर पुस्तकें और बर्तन आदि तक, सब कुछ ख़रीदा जा सकता है। वहाँ लुहार, बढ़ई, मोची आदि सब हैं। भारतीय गृहस्थों के लिये नित्य की ज़रूरी हरएक चीज़ ख़रीदी जा सकती है।
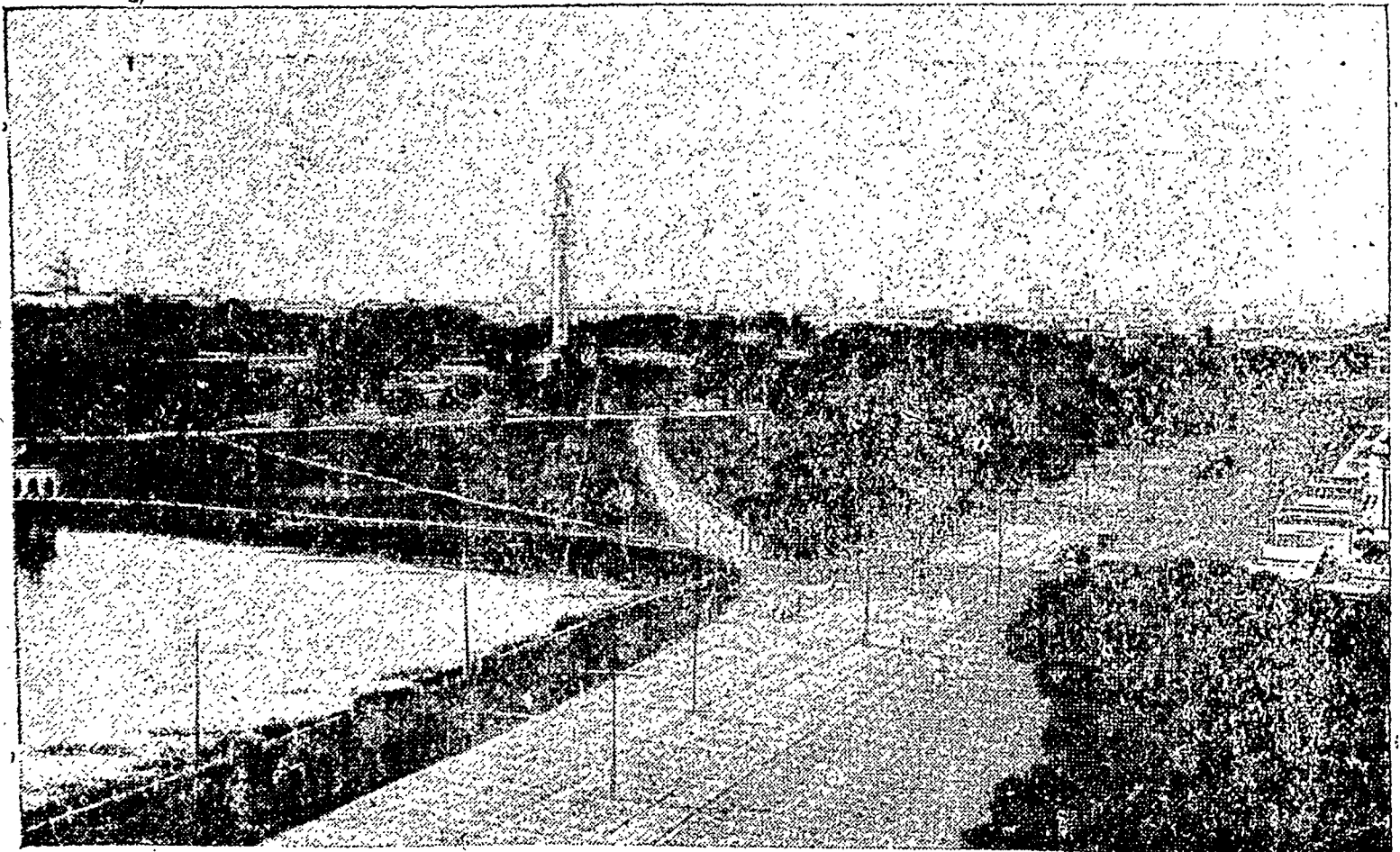
कलकत्ते की चौरंगी-सड़क से क़िले के मैदान और नगर का दृश्य

क़रीब छः बजे शाम को बौबाज़ार आदि में हम दोनों मित्र घूमने गए। शहर के प्रत्येक भाग में भीड़

कलकत्ते में मैं छः दिन ठहरा, और मुख्य-मुख्य स्थान देखे, जैसे अजायबघर (Museum),

चिड़ियाख़ाना (zoological garden), विक्टोरिया-स्मारक-भवन आदि। २७ जनवरी, शनिवार को, शाम को, प्रिय मित्र श्रीरमनजी के साथ मेल ट्रेन द्वारा मदरास को प्रस्थान किया।

श्रीरमनजी फ़िजी के सरकारी कर्मचारी हैं। एक वर्ष की छुट्टी लेकर परिवार-सहित अपने गाँव को जा रहे हैं। मेरी इच्छा मदरास-प्रांत की सैर करने की भी थी। इसलिये मैंने इन्हीं महाशय के साथ भ्रमण करना उचित समझा।

दूसरे दिन, इतवार को, आठ बजे रात को, हम सब राजमंदरी स्टेशन (ज़िला गोदावरी) पर पहुँचे, और यहीं पर गाड़ी से उतर गए। कारण, श्रीमती रमन की माता का मकान इसी ज़िले के एक गाँव में, यहाँ से २० मील के फ़ासले पर, है; और वह पहले अपनी माता के यहाँ जाना चाहती थीं। हम सब बैल-गाड़ी पर सवार होकर एक धर्मशाला में गए, और वहीं ठहरे। यहाँ की बोली मैं बिलकुल नहीं समझ जिसको लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे। यह देखकर तुरंत बाज़ार जाकर धोती, पगड़ी ख़रीदी, और पोशाक बदली। यहाँ, राजमंदरी में, हम सब दो दिन ठहरे। सेंट्रल जेल, सेशनजज-कोर्ट आदि देखकर ३१ जनवरी को श्रीमती रमन अपने भाई के साथ अपनी माता के यहाँ चली गईं; और हम दोनों मित्र मदरास को, ६½ बजे शाम की रेल से, रवाना हुए। गाड़ी जब गोदावरी और कृष्णा-नदी के पुलों पर से गुज़र रही थी, तब मैंने अपने कंपार्टमेंट की खिड़की से झाँककर देखा। अनेकों यात्री भक्ति-पूर्वक कपूर और पैसे नदी में छोड़ते और सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर प्रणाम करते थे। अपने मित्र से पूछने पर मालूम हुआ कि वे सब नदी की पूजा करते हैं। १ फ़रवरी को, सबेरे ८ बजे, हम मदरास सेंट्रल स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ श्रीरमन के भाई के मकान पर, क़स्बा 'वाशरमेनपेठ' में, ठहरे। यहाँ, मदरास में, मैं दो हफ़्ते ठहरा। जो मुख्य-मुख्य स्थान देखने योग्य थे, वे सब हमारे मित्र ने दिखाए, जैसे

मदरास की माउंट-रोड (ऊँची सड़क)

पाता। हमारे मित्र की तो यह मातृभाषा ही है। वह मुझे समझा दिया करते हैं। हम दोनो अभी तक अँगरेज़ी पोशाक—कोट, पतलून और हैट-टोपी—पहने थे, अजायबघर, चिड़ियाख़ाना, मूर-मारकेट, एकुइरम (acquiram)। यहाँ नाना प्रकार की मछलियाँ और जल के कीड़े-मकोड़े दर्शकों के मनोरंजनार्थ रक्खे

हैं। अँगरेज़ी दैनिक पत्र 'स्वराज्य' के संपादक मि० टी० प्रकाशम् और 'इंडियन रिव्यू' मासिक पत्रिका के संपादक मिस्टर जी० ए० नटेसन से मुलाक़ात होने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। फ़िजी के प्रवासी भारतवासियों के विषय में कुछ देर तक वार्तालाप भी हुआ। मदरास-विश्वविद्यालय और कन्या-मेडिकल कॉलेज यहाँ देखने योग्य हैं। कन्या-मेडिकल कॉलेज में लड़कियाँ २० वर्ष से अधिक अवस्था तक की भी हैं। अभी तक वे विद्याभ्यास करती और ख़ूब टेनिस और गेंद आदि खेलती हैं। मदरास में अँगरेज़ी-शिक्षा का प्रचार बहुत अधिक है। आर्य-समाज और राष्ट्रीय पाठशाला भी स्थापित हैं। इनमें उत्तर-भारत के अध्यापक मदरासी बालकों को हिंदी की शिक्षा देते हैं।

हिंदी में 'हिंदी-प्रचारक'-नामक एक मासिक पत्र भी निकलता है। शहर में शाम के वक़्त अँगरेज़ी में राज-नीति और समाज-सुधार के विषय पर बहुत-से लेक्चर सुनने में आते हैं। इतवार को तो लेक्चरों की भरमार रहती है। यहाँ अत्यंत अधिक नई सभ्यता और अँगरेज़ी-शिक्षा का प्रभाव देखकर मैं अवाक् रह गया। जाति-सेवा के भाव और स्वाधीन विचार नित्यप्रति बढ़ते ही जाते हैं।

भारतवर्ष के अन्य प्रांतों की अपेक्षा मदरास का जल-वायु कुछ अधिक उष्ण है। यहाँ के निवासियों में हिंदू अधिक दिखलाई देते हैं। अन्य प्रांतों की अपेक्षा यहाँ देसी ईसाई भी अधिक हैं। मैंने कृष्णा ज़िले तक भ्रमण किया। भीमवरम्-गाँव में श्रीमती रमन की माता के यहाँ दो हफ़्ते ठहरा। इस क़स्बे में अमेरिकन ईसाई-मिशन का काम बहुत बड़ा है। सुनता हूँ, केवल एक क़स्बे में ८,००० देसी ईसाई हैं। गोरे ईसाई अपना धर्म फैलाने के लिये बड़े परि-श्रम के साथ काम कर रहे हैं। वे स्त्री और पुरुष, दोनों देसी वस्त्र पहनकर गली-गली और गाँव-गाँव बाजे बजा-बजाकर ईसामसीह के भजन और उपदेश गाते और लोगों को सुनाते फिरते हैं। अँगरेज़ पुरुषों को धोती और स्त्रियों को साड़ी पहने देखकर मैं तो आश्चर्य-चकित हो गया; क्योंकि अँगरेज़ नर-नारियों का ऐसा पहनावा यह पहली ही बार मैंने अपने जीवन में देखा था। दो सप्ताह तक हम दोनों वहाँ ठहरे। भीमवरम् में दक्षिण के गाँवों का कुछ अनुभव प्राप्त हुआ। १ मार्च को हम फिर मदरास वापस आ गए। यहाँ पर शहर की सैर करने और नाटक आदि देखने में १०-१२ दिन और व्यतीत किए। अब उत्तर-भारत की ओर भ्रमण करने का विचार हुआ। हमारे मित्र तो अब कुछ दिन, अपनी छुट्टी का समय, यहीं, अपनी माता और भ्राता के यहाँ बितावेंगे।

१३ मार्च को मैं अकेला ही मदरास से बंगलोर (मैसूर-राज्य) को, शाम की गाड़ी से, रवाना हुआ। दूसरे दिन ११ बजे वहाँ पहुँचा। बाज़ार आदि घूमकर रात्रि को एक धर्मशाला में टिका, और दूसरे दिन सबेरे की गाड़ी से पूने की ओर चल दिया। पूने में १० बजे रात को पहुँचा। एक धर्मशाला में टिका, और प्रातःकाल स्नान आदि से छुट्टी पाकर पार्वती-मंदिर के दर्शन करने गया।

मेरी इच्छा यरवदा के सेंट्रल जेल में—जहाँ उन दिनों महात्मा गाँधीजी विराजमान थे—जाने की थी। मैंने जेल-सुपरिंटेंडेंट के पास निवेदन-पत्र लिख भेजा। उसका उत्तर मिला—"Your request cannot be granted." अर्थात् आपकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की जा सकती। पूने से १८ मार्च को, शाम की गाड़ी से, बंबई रवाना हुआ और ६ बजे रात को बंबई-सेंट्रल स्टेशन पर पहुँचा। स्टेशन पर बिजली की बत्तियों की चमचमाहट और असंख्य भीड़ देखकर आश्चर्य हुआ।

मेरे पास केवल एक छोटा संदूक़ और बिस्तर था। मैं एंपायर-हिंदू-होटल में जाना चाहता था। स्टेशन से पैदल ५ मिनट का रास्ता था। वहाँ सामान ले जाने के लिये कुली ने एक रुपया माँगा। कुछ देर में, वाद-विवाद करने पर, चार आने में राज़ी हुआ। उसी होटल में जाकर टिका। रोज़ का ख़र्च ढाई रुपए पड़ता था। दो वक़्त भोजन, और सोने के लिये कमरा। होटल में हर बात का आराम था। सफ़ाई वग़ैरह में यह होटल किसी योरपियन होटल से कम नहीं है।

बंबई-शहर का व्यापार में दूसरा नंबर है। पहला नंबर कलकत्ते का है। शहर की इमारतें बड़ी ऊँची और रम-णीय हैं। यहाँ का बंदरगाह बहुत सुंदर है। जहाज़ों का दृश्य देखने योग्य होता है। यहाँ कपड़ा बुनने के बड़े-बड़े कारख़ाने हैं, जिनमें कलों से काम किया जाता है।
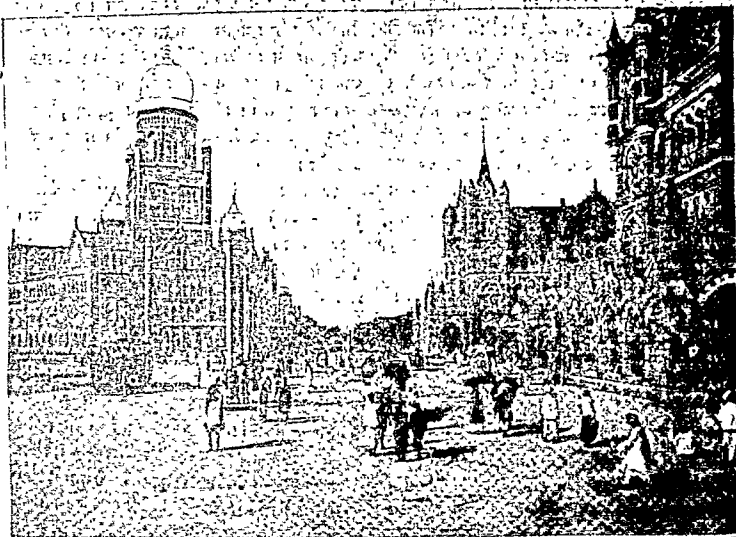
बंबई का म्युनिसिपल ऑफ़िस और विक्टोरिया-टर्मिनस-रेलवे-स्टेशन

विक्टोरिया-टर्मिनस-स्टेशन, सरकारी कचहरियाँ, हाईकोर्ट, राजबाई का मीनार, अजायबघर, चिड़ियाघर, फ़ीरोज़शाह मेहता-गार्डन, ताजमहल-होटल और विश्व-विद्यालय देखने योग्य स्थान हैं। शाम को ४ बजे, समुद्र-तट के किनारे, चौपाटी में, पारसी नर-नारियों की शोभा देखने योग्य होती है। वहाँ बेशुमार नर-नारी हवा खाने के लिये जमा होते हैं। वह स्थान साक्षात् इंद्र की पुरी जान पड़ता है। श्रीवेंकटेश्वर-प्रेस बहुत बड़ा है। सैकड़ों कंपोज़ीटर काम करते हैं। प्रेस के मालिक के दर्शनों का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। संटों फ़िजी के संबंध में बातें हुईं। बंबई में छः दिन ठहरकर २४ मार्च को, शाम की गाड़ी से, मैं प्रयाग के लिये रवाना हुआ। रात-भर और दिन-भर रेल चलती रही। २५ मार्च को, १२ बजे रात को, इलाहाबाद-स्टेशन पर पहुँचा। यहाँ मेरे फ़िजी के नवयुवक मित्र मिस्टर जे० बैरागी, जिन्हें मैं तार द्वारा अपने आने की सूचना दे चुका था, स्टेशन पर मिले। नैनी में कृषि-विद्यालय के छात्रालय में वह रहते हैं। वहीं घोड़ा-गाड़ी पर हम दोनों गए। छात्रालय में विद्यार्थियों के साथ में एक सप्ताह ठहरा। सेवा-समिति, बालचर-मंडली और क़िला आदि स्थान देखे।

३१ मार्च को अपने पिता के गाँव बरईपुर (ज़िला जौनपुर) पहुँचा। अपने आने की सूचना मैं अपने चचेरे भाई, रामनिहोर अहीर, को भेज चुका था। वह मेरी राह देख रहे थे। मेरे भाइयों और उनकी स्त्रियों ने बड़ा आदर-सत्कार किया। अपने जीवन में हम लोगों की यह पहली ही भेंट थी। कारण, मेरे पिता और माता को भारतवर्ष छोड़े ३८ वर्ष हो गए। मैंने फ़िजी में ही जन्म लिया है। हमारे पिताजी कभी भारत से पत्र-व्यवहार भी नहीं करते थे। मगर भारत को प्रस्थान करते समय मेरी पूज्य माताजी ने सब
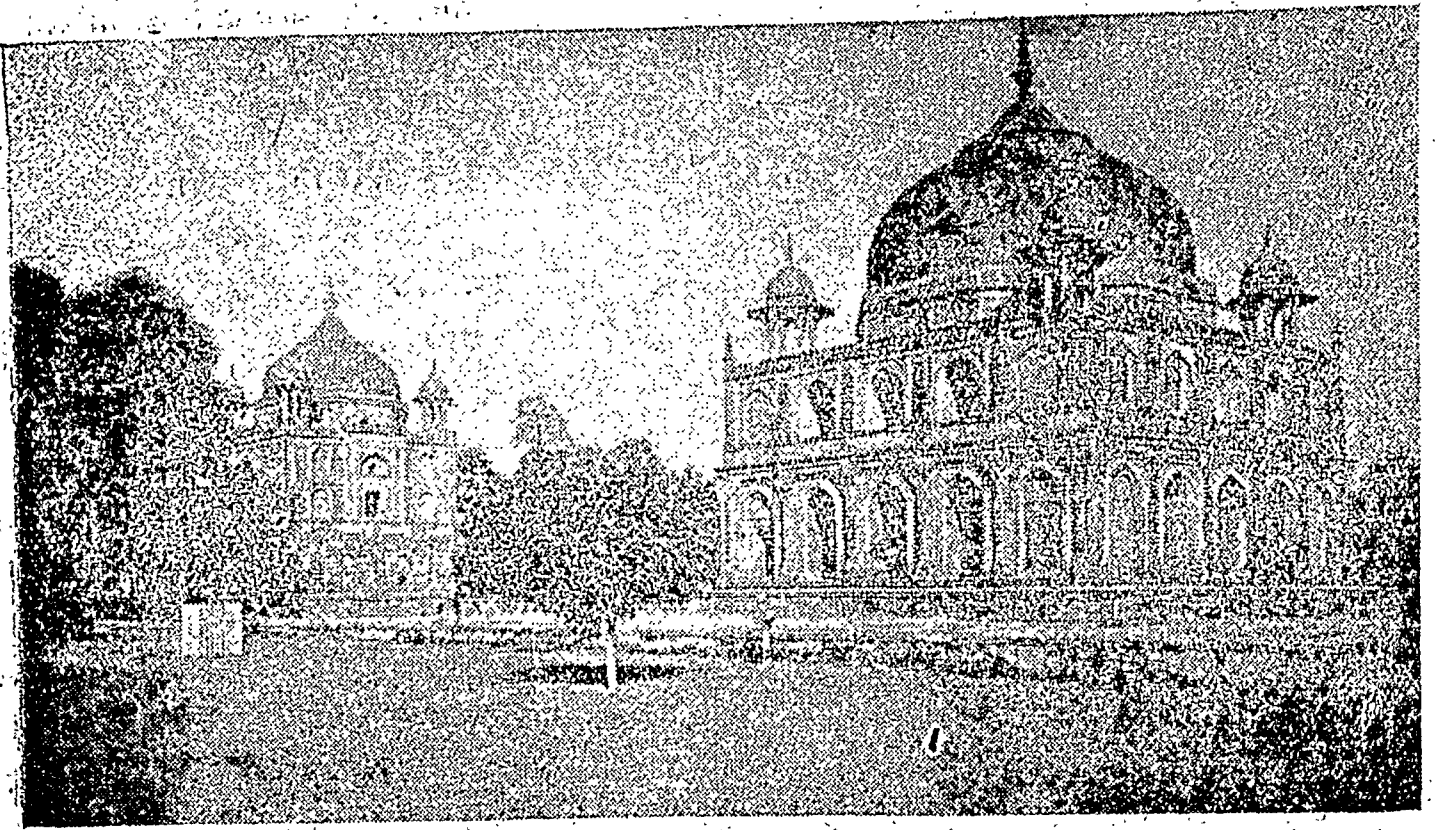
इलाहाबाद का खुसरू-बाग़

पता-ठिकाना बता दिया था। गाँववालों की भीड़ लग गई। लोगों ने सब समाचार पूछना शुरू किया।

दो-एक घंटे के बाद कुछ वृद्ध पुरुषों ने कहा—समुद्र-यात्रा का प्रायश्चित्त करना चाहिए। प्रायश्चित्त करने के बाद भाइयों के साथ भोजन किया। शाम को आस-पास के गाँवों में बहुधा सैर करने जाता और हरवाहों से उनके जीवन-निर्वाह के बारे में वार्तालाप किया करता था। उनका जीवन घोर परिश्रम करके भी बड़ी मुसीबत में बीतता है। बेचारे दिन-भर हल चलाने पर केवल ढाई सेर मोटा नाज पाते हैं। उसी में स्त्री तथा बाल-बच्चे, सबका पालन-पोषण करते हैं। नीच जाति के मनुष्यों—चमार, धरकार, भंगी, भर, पासी, आदि—का जीवन अति कठिनता से व्यतीत होता है। इन जातियों के मनुष्यों को गेहूँ, जव आदि की रोटियाँ तो स्वप्न में भी नहीं नसीब होतीं। गेहूँ, अपने खेत में पैदा करके भी, खाना असंभव हो जाता है। कारण, ज़मींदार ज़मीन के पोत में गेहूँ के आगे जव-मटर-चने आदि दूसरे नाज कदापि नहीं लेता। जब मैं इन लोगों के जीवन की फ़िज़ी-प्रवासी भारतीयों के जीवन से तुलना करता हूँ, तो मुझे ज्ञात होता है कि फ़िज़ी में ये नीच जाति के भारतीय यहाँ से मज़े में ही हैं।

लगभग तीन सप्ताह मैं गाँव में रहा। उस समय प्लेग की बीमारी आसपास के गाँवों में फैल रही थी। भयंकर प्लेग के कारण मैंने गाँव में रहना नहीं पसंद किया, और तुरंत ज़िला आज़मगढ़ के क़स्बा मऊ में पादरी एफ़० एल० लन के यहाँ चला गया। दो हफ़्ते तक वहीं ठहरा रहा। उक्त पादरी साहब पाँच वर्ष फ़िज़ी में रह चुके थे। मुझसे अच्छी तरह उनका परिचय था। ज़िला आज़मगढ़ में आस्ट्रेलेशियन ईसाई-मिशन का हाईस्कूल देखा। प्लेग शांत होने पर बनारस गया। बनारस में एक हफ़्ते रहा। एक काश्मीरी हिंदू-होटल में टिका। सोने के लिये कोठरी का किराया एक रुपया रोज़ लगता था। एक वक़्त के भोजन का ॥) अलग।

बनारस में, मान-मंदिर, विश्वनाथजी का मंदिर, काशी-करवट, माधवराव का धौरहरा, सारनाथ में बुद्धों की पुरानी मूर्तियाँ, राजा अशोक का स्तंभ (archæological museum), डी० ए० वी० कॉलेज, हिंदू-विश्वविद्यालय आदि को देखा।

यहाँ मंदिरों की संख्या बहुत है। सारे भारत की भिन्न-भिन्न जातियों के लोग यहाँ स्नान-दर्शन करने आते हैं। बाज़ार में पुजारी-पंडों के आदमी फिरा करते हैं। यात्रियों को समझा-बुझाकर अपने साथ स्नान-दर्शन

स्वामी भास्करानंद का समाधि-मंदिर, काशी

भोले-भाले अशिक्षितों को तो ख़ूब लूटते होंगे। रात की गाड़ी से लखनऊ के लिये रवाना हुआ, और एक बजे रात ही को पहुँच गया।

स्टेशन पर गाड़ी लगते ही कुलियों ने नाक में दम कर दिया। ये कुली अधिकतर मुसलमान थे। मैंने पूछा—इक्के तक मेरा संदूक़ और बिछौना ले जाने का क्या लोगे? एक ने झट संदूक़ और दूसरे ने बिछौना उठा लिया, और कहा—चलो-चलो, पाँच रुपए दे देना। मैं उनकी बातें सुनकर बहुत घबराया। अंत को =) में इक्के के पास आकर सामान रखना मंज़ूर किया। मगर इक्के पर आकर जब मैं =) देने लगा, तो उसने लेने से इनकार किया। कहा—दो रुपए से कम न लूँगा। आख़िर को घंटे-भर तक झक-झक करके पुलीस की धमकी देने पर ≈) में छुटकारा मिला। अब पारी आई इक्केवाले की। वह मनोरमा-हिंदू-होटल तक के ३) माँगने लगा। आख़िर को ॥।) में उक्त होटल में पहुँचा दिया। यात्रियों को यहाँ के कुलियों और इक्केवालों से सावधान रहना चाहिए। यहाँ पाँच दिन रहा। अजायबघर, इमामबाड़ा, छतर-मंज़िल, अमीनाबाद-पार्क, हज़रतगंज वग़ैरह देखा। शहर की सुंदरता अत्यंत मनोहर है। सफ़ाई अव्वल दरजे की है। फल, सब्ज़ी-तरकारी आदि के लिये लखनऊ विख्यात है।

कराने के लिये ले जाते हैं। अगर इनके पंजे में कोई न आवे, तो उसे लानत-मलामत करते, ईसाई-आर्या बनाते और अपनी राह लेते हैं।

काशी से अयोध्या गया। यहाँ केवल एक दिन ठहरा। यहाँ गुलाब-बाड़ी, कनक-भवन, हनुमान्-गढ़ी और ददुआ साहब का राजभवन देखने योग्य है। ब्राह्मण, पुजारी आदि यहाँ भी यात्रियों को ख़ूब लूटते हैं। कनक-भवन में अंदर जाकर श्रीरामचंद्र के दर्शन की दक्षिणा पाँच रुपए मुझसे माँगे जाते थे। आख़िर को बड़ी मुश्किल से ।) में अंदर जाने की आज्ञा हुई।

लखनऊ से सीधे कानपुर आया, और चंपाराम-लक्ष्मणदास की धर्मशाला में टिका। यह धर्मशाला बहुत ही सुंदर बनी हुई है। मुसाफ़िरों को यहाँ हर तरह का आराम है।

यहाँ काँच का मंदिर, वैकुंठमंदिर, कैलास, प्रयागनाथ का ठाकुरद्वारा, और फूलबाग़ देखा। उत्तर-भारत में कलकत्ते को छोड़कर अन्य सब नगरों से बड़ा व्यापारिक स्थान यही है। कपड़ों की कई मिलें हैं। कलकत्ते-बंबई की तरह बिजली की ट्रामगाड़ी भी

चलती है। चमड़े का काम अच्छा और अधिकता से होता है।

यहाँ एक सप्ताह व्यतीत करके आगरे को रवाना हुआ। यहाँ कन्हैयालाल के होटल में ठहरा। इस होटल के स्वामी कन्हैयालाल से वार्तालाप हुआ। उन्हें जब मालूम हुआ कि मैं फ़िजी से आया हूँ, तो उन्होंने कहा—फ़िजी को फिर कुलियों की भरती कब होगी? यह भी कहा कि मैं हज़ारों स्त्री-पुरुष भरती करके, पाँच वर्ष की शर्तबंदी पर, वहाँ भेज चुका हूँ। बहुत लाभ होता था, हर मर्द के लिये ४५ रुपए तक मिलते थे। स्त्रियों के लिये तो ६०) फ़ी औरत पाता था। जब से कुलियों की भरती बंद हुई, तब से मेरी आर्थिक हानि बहुत हुई है।

इसी घृणित कमाई से उस पिशाच ने आज आगरे में कई होटल क़ायम कर लिए हैं। उस रात को तो मैं उसी होटल में रहा। लाचार था। सबेरे बाज़ार में घूमने गया, तो एक सज्जन से पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ, आर्य-मंदिर में मुसाफ़िरों के ठहरने का अच्छा प्रबंध है। शाम को मैं वहीं चला गया। एक सप्ताह इसी मंदिर में व्यतीत किया।

लखनऊ का छतर-मंज़िल

आगरे का विश्व-विख्यात ताजमहल

आगरे में क़िला, ताजमहल, इतमादुद्दौला, सिकंदरा, जुम्मा-मसजिद, राम-बाग़, चीनी का रोज़ा, फ़तेहपुर-सीकरी और आर्य-समाज का अनाथालय देखा। शाहजहाँ बादशाह ने जो अपनी बीबी की यादगार में ताजमहल बनवाया है, वह संसार-प्रसिद्ध और अपूर्व है। इसमें शक नहीं कि सारे संसार में इससे सुंदर और कोई इमारत न होगी। इसकी कारीगरी दर्शक को चकित कर देती है। इमारत में संगमरमर ही लगा है, उसके सिवा लोहा-लकड़ी नहीं है। सिकंदरे में अकबर बादशाह का मक़बरा है। आगरे का क़िला और फ़तेहपुर-सीकरी की टूटी-फूटी इमारतें देखने से प्राचीन हिंदू-राजों के
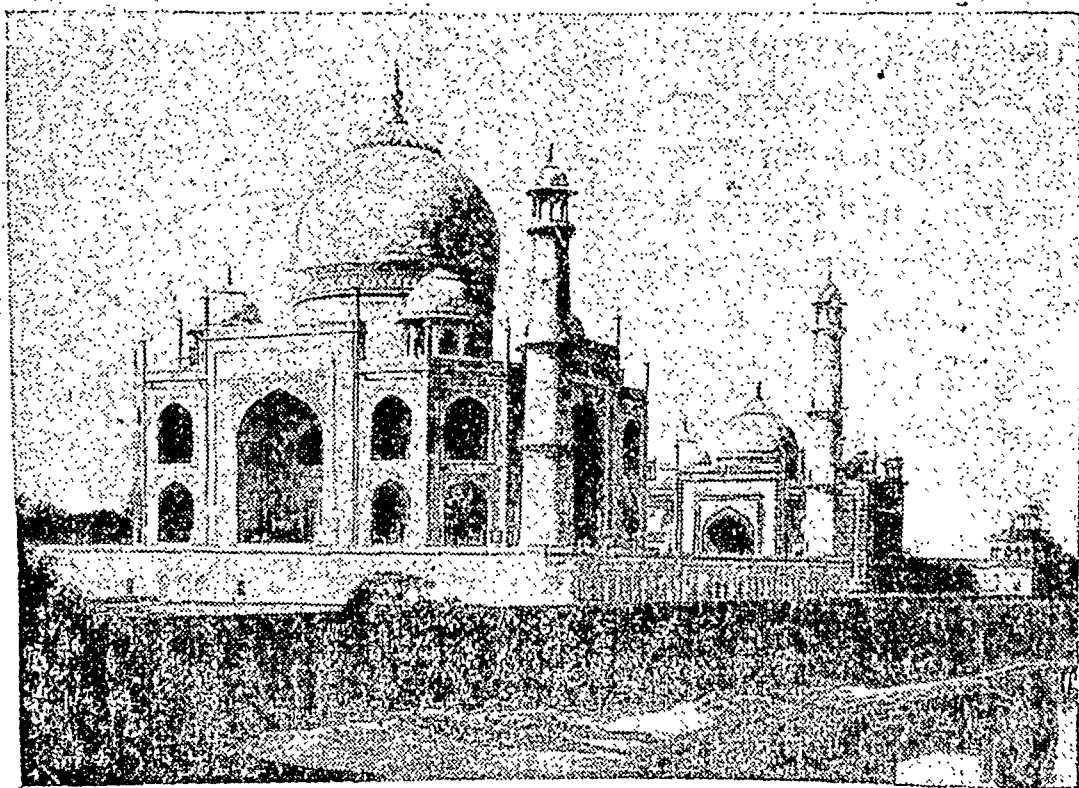
समय की कारीगरी और सभ्यता का पता लगता है। अवश्य ही भारतवर्ष किसी समय संसार के देशों में एक उच्च देश माना जाता था। आर्य-समाज का काम यहाँ अच्छी तरह चलता है। विधवा-आश्रम भी स्थापित है। शुद्धि का कार्य भी खूब हो रहा है। यहाँ से मैं मथुरा गया। दो दिन एक धर्मशाला में ठहरा।

यहाँ के मंदिर बड़े प्रसिद्ध हैं। वृंदावन, मथुरा से ६ मील दूर पर, उत्तम नगर है। पंजाब के आर्य-समाज का गुरुकुल यहीं पर स्थापित है। एक ब्रह्मचारी, सुधाकर पांडेय, ने कष्ट उठाकर गुरुकुल की सारी इमारत मुझे दिखाई। यहीं पर राजा महेंद्र प्रतापसिंह का एक राष्ट्रीय विद्यालय है, जो प्रेम-महाविद्यालय कहलाता है। इस विद्यालय का विस्तृत वर्णन माधुरी के पाठक किसी पिछली संख्या में पढ़ ही चुके हैं।

ताजमहल के उद्यान का मुख्य द्वार

आगरे की मोती-मसजिद का भीतरी भाग

मथुरा से दिल्ली आया, और कॉरोनेशन-होटल में ठहरा। दिल्ली का लाल क़िला, कौरवों-पांडवों का क़िला, कुरुक्षेत्र में कौरवों-पांडवों का युद्ध-स्थान, जुम्मा-मसजिद, हुमायूँ का मक़बरा, कुतुब-मीनार आदि के दर्शन किए। हुमायूँ का मक़बरा अति सुंदर है। सन् १५६५ में इसे हमीदाबानू बेगम उर्फ़ हाजी बेगम—हुमायूँ की बीबी और अकबर की मा—ने बनवाया था। इसके बनने में १५ लाख रुपए ख़र्च हुए थे। अंदर १७५ क़बरें, मुग़ल-घरानों की, मौजूद हैं। अंतिम मुग़ल-बादशाह बहादुरशाह ग़दर (१८५७) में इस इमारत में छिप गया था। बाद को पकड़ लिया गया। हाजी बेगम की क़ब्र भी यहीं है। निज़ामुद्दीन औलिया की समाधि भी अभी तक बनी है। उनके नाम का एक कुआँ भी है। कहते हैं, प्राचीन काल में लोग बहुत दूर-दूर से इस कुएँ के जल में स्नान करने के लिये आते थे। बीमारी से छुटकारा पाने की आशा से ही वे स्नान करते और अच्छे भी हो जाते थे। यह कुआँ ६५० वर्ष का पुराना है।

दिल्ली से मैं अपने गाँव लौट आया। दो हफ़्ते आराम करने के बाद बलिया, गोरखपुर, मुज़फ़्फ़रपुर होते हुए मोतिहारी गया। वहाँ डॉ० मणिलालजी बैरिस्टर के यहाँ चार दिन तक ठहरा। उक्त महाशय फ़िज़ी में कुछ दिन वकालत कर चुके हैं। मुझसे अच्छी तरह मित्रता थी।

यहाँ कई वैदिक व्याख्यान सुने। मौलाना आज़ाद सुभानी के दर्शन मिल गए। यहाँ हिंदू-मुसलमानों की एकता के लिये भारी सभा हुई थी, और मौलाना के स्वागत में भारी जुलूस निकाला गया था। पटने के प्रसिद्ध नेता बाबू राजेंद्रप्रसादजी के भी दर्शन हो गए। मोतिहारी से अपने भाई के मकान पर लौट आया। फिर कलकत्ते के शिपिंग ऑफ़िस के उत्तर की राह देखने लगा। फ़िज़ी के लिये कलकत्ते से स्टीमर कब जायगा, यही पूछा था। शिपिंग कंपनी ने ६ सप्ताह तक जहाज़ के विषय में कोई संतोष-जनक उत्तर न दिया। तब मैं अगस्त के आरंभ में, अपने भाई और गाँववालों से आज्ञा लेकर, कलकत्ते को रवाना हो गया। तीन दिन गया में ठहरा। बुद्ध आदि के मुख्य मंदिर देखे। ७ अगस्त को कलकत्ते पहुँचा। बौबाज़ार के एक मदरासी-होटल में ठहरा। उक्त शिपिंग कंपनी से मालूम हुआ कि सीधे फ़िज़ी को जानेवाला जहाज़ सितंबर के अंत तक मिलेगा। तब तक कलकत्ते में ही रहने का निश्चय किया। 'भारतमित्र'-पत्र के संपादक पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे और प्रोप्राइटर यशोदानंदन अखौरीजी से कई दफ़े मुलाक़ात हुई। वे फ़िज़ी-प्रवासी भारतवासियों के समाचार जानने के लिये बड़े उत्सुक थे। 'स्वतंत्र' के संपादक वाजपेयीजी से भी मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ५ सितंबर को पादरी एफ़० एल्० नन का एक पत्र मुझे मिला, जिसमें लिखा था—
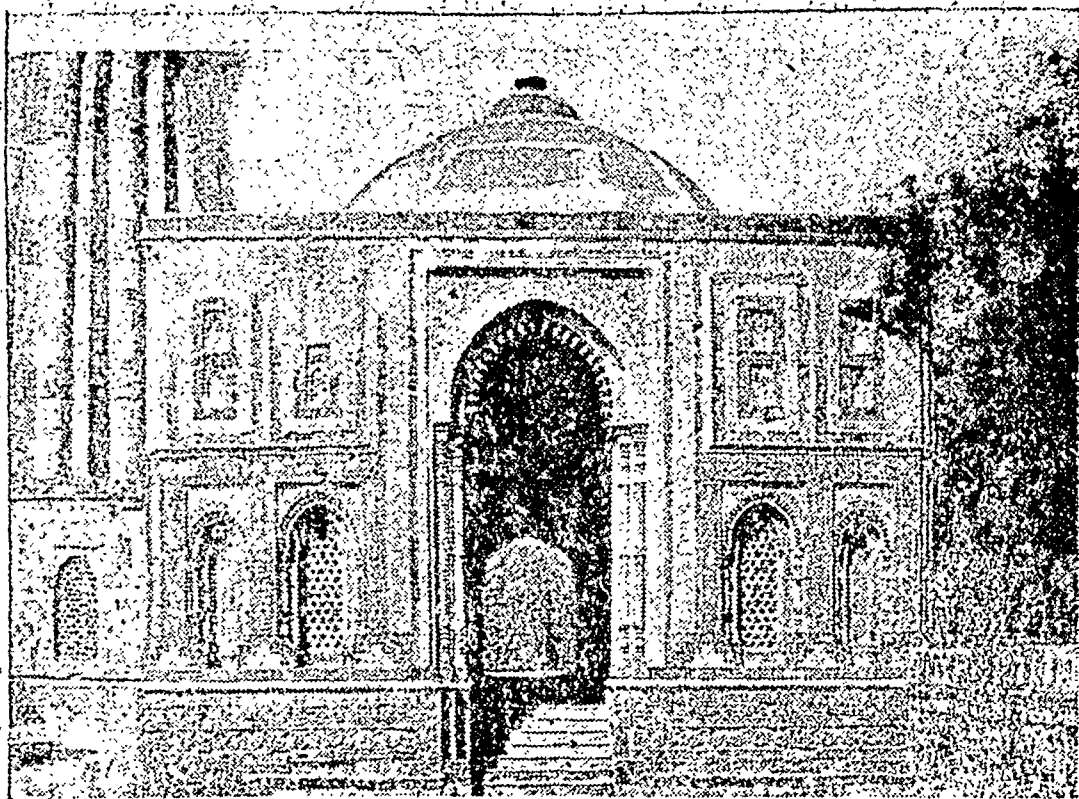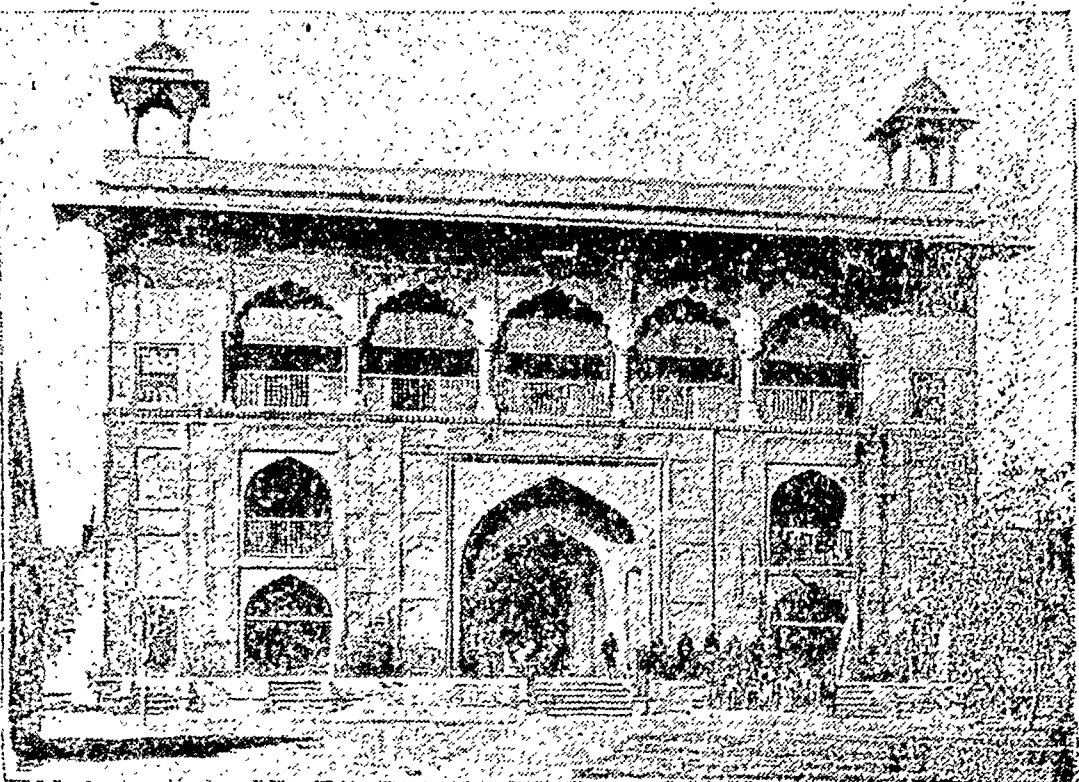
दिल्ली का अलाउद्दीन फ़ाटक

दिल्ली के क़िले का नौबतख़ाना

"खुफ़िया पुलीस आपके विषय में जाँच कर रही है। मऊ का पुलीस-ऑफ़िसर मेरे पास आपकी पूछ-ताछ के लिये आया था। मैं नहीं जानता, क्यों पूछ-ताछ करता था। शायद यही कारण हो कि आप मोतिहारी की सभा में उपस्थित थे। मैं आपको सलाह देता हूँ कि हर राजनीतिक सभा से दूर रहना। मैंने पुलीस को समझा दिया है कि आप कौन हैं, और क्या करने भारत आए हैं। आपका वर्तमान पता भी मैंने बता दिया है।"
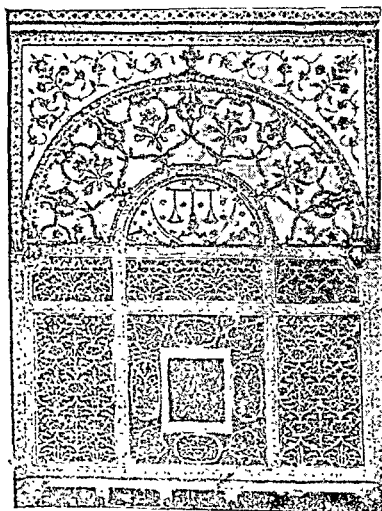
दिल्ली की एक बादशाही इमारत में संगमरमर पर की गई बारीक नक़्क़ाशी

मैं यह समाचार पाकर बहुत घबराया। लेकिन बाद को फिर कुछ सुनने में नहीं आया। मैं लगभग दो मास तक कलकत्ते में रहा। इसी अवसर में मिस्टर सी० आर० दास, मिस्टर सी० एफ़० एंड्रूज़ और रवींद्र बाबू आदि के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस आठ मास की भारत-यात्रा में जो कुछ ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ, वह मैं समाचारपत्र आदि पढ़कर कदापि नहीं प्राप्त कर सकता था।

यात्री को चाहिए कि कलकत्ता, बंबई और मदरास अवश्य देखे। भारतवर्ष के बड़े शहर ये ही हैं। तीर्थों में काशी, मथुरा, अयोध्या, हरद्वार और गया मुख्य हैं। आगरे और दिल्ली में प्राचीन काल के हिंदू-राजों की ऐतिहासिक इमारतें देखने से हिंदू-सभ्यता का पता लगता है। भारत में मुसाफ़िरों के आराम के लिये धर्मशालाओं की भरमार है। हरएक बड़े शहर में धर्मशालाएँ हैं। उनमें यात्री तीन दिन तक मुफ़्त टिक सकता है। ये धर्मशालाएँ बड़े बड़े सेठ-साहूकारों की अपूर्व धार्मिक प्रवृत्ति का निदर्शन हैं। एक चीनी यात्री अपनी भारत-यात्रा के वर्णन में लिखता है—"India is a land of charity." (भारत उदारता का देश है) यह बिलकुल सत्य है। जनता के लाभ के लिये बहुत-सी संस्थाएँ स्थापित हैं। जैसे बालचर-सेवा-समिति (Boys Scout), विधवा-आश्रम, गोशाला, अनाथालय, धर्मार्थ औषधालय और पुस्तकालय आदि। शिक्षा का द्वार सबके लिये समान रूप से खुला है। चमार, भंगी भी पढ़कर उत्तम-उत्तम पदों पर पहुँच सकते हैं। सरकारी, सामाजिक तथा भिन्न-भिन्न ईसाई संस्थाओं की ओर से पाठशाला, विश्वविद्यालय, अनाथालय आदि स्थापित हैं। नई सभ्यता और अँगरेज़ी-शिक्षा का प्रभाव भारतवासियों पर बहुत पड़ा है, इसमें संदेह नहीं। किंतु उससे अधिकांश में लाभ ही हुआ है।

कुरीतियाँ और कुसंस्कार धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। लोगों में स्वाधीन विचार और जाति-सेवा की लालसा नित्यप्रति बलवती हो रही है। अब लोग संकीर्ण विचारों के कूप से निकल-निकलकर उदारता तथा उन्नति के गहन समुद्र और महासागर में तैरने की कल्पना कर रहे हैं।

भारतवर्ष में आलस्य और बेकारी की बीमारी बहुत बढ़ी हुई है। तीर्थ-स्थानों में असंख्य संड-मुसंड, बेकार बैठे-बैठे पूरी-कचौरी, मिठाई-मालपुए छकते और गुलछर्रे उड़ाते हैं। कलकत्ते, मदरास और बनारस-जैसे शहरों में भिखमंगों की बड़ी भीड़ देख पड़ती है। भारत में भिखमंगों की जातियाँ ही बन गई हैं। वे भीख माँग-

कर ही अपना निर्वाह करती हैं। उनकी संतान भी इसी पेशे को अपनाती जाती है। वे अगर खेती या मेहनत-मज़दूरी करें, तो देश को बड़ा लाभ हो।

दिल्ली की कलेर-मसजिद

भारतवर्ष में दो वस्तुओं की—सत्य और न्याय की—बड़ी आवश्यकता है। ज़मींदार अपनी प्रजा का अच्छा खाना-पहनना नहीं देख सकते। पुलीस और रेलवे-कर्मचारियों से लेकर अदालत के कर्मचारियों तक में अनुचित आमदनी का बाज़ार गरम है, जिसे वे अपना 'हक़' कहकर माँगते हैं। विना नज़राना दिए सरकारी दफ़्तरों में छोटे-से-छोटा काम भी होना महाकठिन है। अनुचित नज़राना लेनेवाले ये कर्मचारी अधिकांश हमारे भारतवासी भाई ही हैं!

एक अपने रिश्तेदार के लिये पासपोर्ट बनवाना था। उसके लिये मुझे इतनी कठिनाई हुई कि मैं ही जानता हूँ। इस कष्ट का मुख्य कारण यह था कि मैंने नज़राना बनाम रिशवत देने से इनकार कर दिया था। आख़िरकार मुझे एक गोरे मिशनरी की शरण लेनी पड़ी। तब उन्हीं तहसीलदार साहब ने मेरे काम को तुरंत कर दिया। केवल गोरे की सिफ़ारिश से रेल में सफ़र करनेवाले यात्री को सेकिंड या इंटर क्लास में आराम मिल सकता है। तीसरे दरजे का सफ़र कैसा तकलीफ़ देनेवाला होता है, उसमें कैसी भीड़ और गंदगी रहती है, यह भुक्तभोगी ही जान सकता है। तीसरे दरजे में बैठने की जगहें बड़ी ही तंग रहती हैं। यहाँ तक कि बहुतों को मीलों तक खड़े-खड़े सफ़र करना पड़ता है। जिन लोगों को हज़ार मील या उससे ज़्यादा का सफ़र करना पड़ता है, उनके लिये भी सोने का कोई बंदोबस्त नहीं है। तीसरे दरजे की टट्टियाँ साफ़ करने के लिये कोई बंदोबस्त नहीं रहता। अक्सर रात के वक़्त कोई रोशनी भी नहीं की जाती; और की भी जाती है, तो बहुत कम। गाड़ियाँ बड़ी मैली और गंदी रक्खी जाती हैं। इसके लिये केवल मुसाफ़िरों ही को दोष नहीं दिया जा सकता। अगर गाड़ियाँ साफ़-सुथरी रक्खी जायँ, अगर सफ़र में, बीच-बीच में, उनकी सफ़ाई होती रहे, अगर मुसाफ़िरों से बराबर ज़ोर देकर कहा जाय कि गाड़ी में सफ़ाई रक्खें, तो अवश्य सुधार हो सकता है। मुसाफ़िरख़ाने भी बड़े गंदे और तंग होते हैं। गाड़ी में एक तीसरे दरजे के मुसाफ़िर को जितनी जगह बैठने के लिये मिलती है, उससे चौदहगुनी जगह एक पहले दरजे के मुसाफ़िर को दी जाती है। लेकिन तीसरे दरजे का मुसाफ़िर जितना किराया देता है, उससे केवल छःगुना अधिक किराया पहले दरजे का मुसाफ़िर देता है। वास्तव में उसे देना चाहिए चौदहगुना ज़्यादा किराया। तीसरे दरजे के मुसाफ़िरों की सुविधा के लिये अवश्य कुछ सुधार होने चाहिए। कलकत्ते में भ्रमण करते समय मुझे फ़िजी से लौटे हुए अनेक भारतीय मिले। उनमें से ७० फ़ी सदी लौट जाना चाहते थे। वे भारत की महँगी, कम वेतन, छोटे-छोटे कर्मचारियों का घूस लेना, जाति-भेद, गरमी-सरदी आदि असुविधाओं की शिकायतें करते थे। मेरे ख़याल में उनकी शिकायतें ठीक थीं। भारत में ग़रीब दुर्दशा से दबे तथा धनाढ्य अपनी महिमा में मस्त देख पड़ते हैं। महलों के पास झोपड़ियाँ बनी हुई हैं।
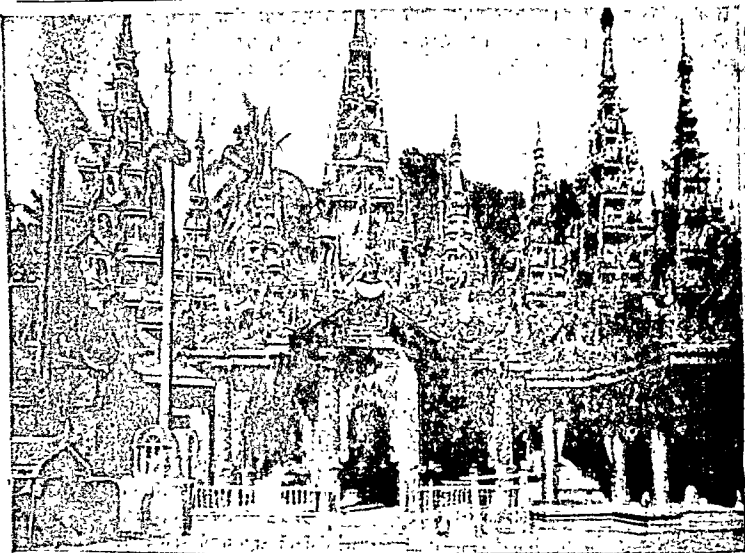
रंगून का बौद्ध-मंदिर
(लकड़ी में विचित्र बारीक नक़्क़ाशी और शीशे की सुंदर जड़ाई)

मुझे इस बात का अंदेशा था कि भारत मेरे लिये एक नवीन देश है, और मुझ पर जल-वायु के परिवर्तन का बुरा असर अवश्य पड़ेगा। पर परमात्मा की कृपा से मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहा। मेरे मदरासी मित्र मिस्टर एम्० श्रीरमन अपने परिवार-सहित मुझसे फिर कलकत्ते में मिले। २८ सितंबर, १९२३ ई० को हम सब, एलोरा-जहाज़ द्वारा, प्रातःकाल, भारत-माता को अंतिम प्रणाम करके फ़िजी के लिये चल दिए। इस जहाज़ में सब १८० फ़िजी के यात्री सवार थे। अधिकांश फ़िजी को वापस जा रहे थे। उनमें लगभग २० गुजराती और पंजाबी सौदागर, मोची, नाई और दरज़ी थे। समुद्र का जल-वायु अच्छा था। यात्रियों को ज़्यादा तकलीफ़ नहीं हुई। रास्ते में तीन दिन रंगून (बरमा) में ठहरा। रंगून-शहर घूमने और बरमीज़ पैगोडा देखने का मौक़ा भी मिल गया। बरमियों के पैगोडों की सुंदरता का वर्णन करने के लिये बहुत स्थान चाहिए। रंगून से चलकर दो दिन पिनांग-टापू में ठहरे। पिनांग में इतने चीनी-आदमी हैं कि मानो वह चीनियों का देश ही है।

पिनांग से चलकर सिंगापुर पहुँचा। यहाँ जहाज़ की बदली हुई। जिस-नामक जहाज़ पर सवार हुआ। यहाँ भी दो दिन तक रुकना पड़ा था। कप्तान से शहर में घूमने की इजाज़त लेकर जाना पड़ता था। यहाँ भी ६० फ़ी सदी चीनी बसते हैं।

हमारा जहाज़ जावा, सुमात्रा, बोर्निओ आदि टापुओं को रास्ते में छोड़ता हुआ ३१ ऑक्टोबर की रात को १० बजे सूवा-घाट (फ़िजी) के निकट पहुँचा।

प्रातःकाल डॉक्टर आदि आए। डॉक्टरी के बाद १२ बजे दिन को सब यात्री एक छोटे-से टापू (नुकूलाऊ-क्वारंटिन-स्टेशन) को सरकारी लंच द्वारा गए। यहाँ हम सबको ४ दिन रहना पड़ा। कस्टम-ऑफ़िसर ने सब सामान
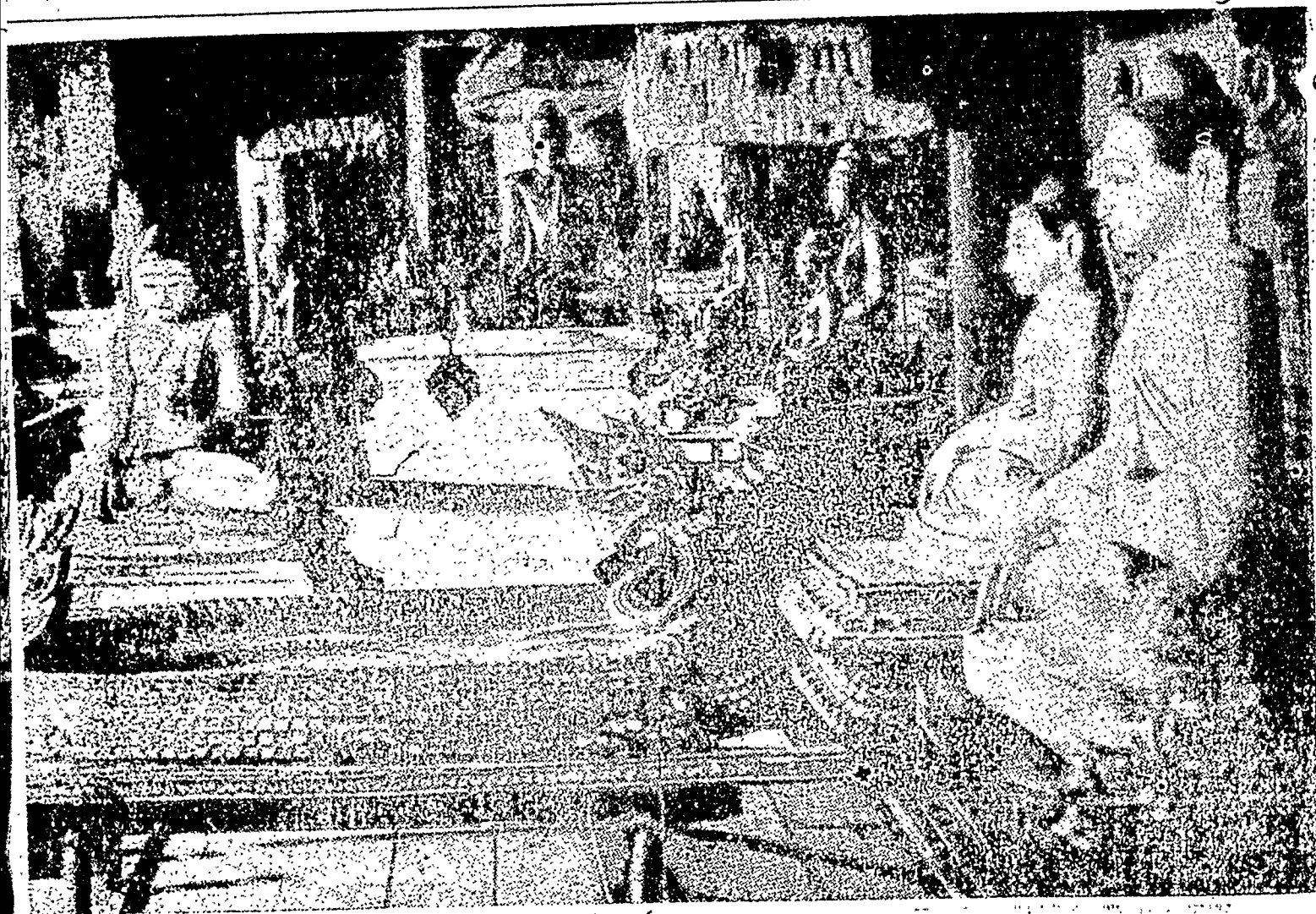
बुद्धदेव की मूर्तियाँ और पवित्र पद-चिह्न

लगाओ, पर प्रोफ़ेसर राममूर्ति को तो मैं ही पछाड़ूँगा !"; किंतु परीक्षा-स्थल पर उसका कृतकार्य होना कहाँ तक संभव है, यह श्रीलक्ष्मणसिंहजी भी जानते होंगे। बड़े-बड़े दक्ष विद्यार्थी, जिन्हें सोलहो आने सफलता की आशा होती है, परीक्षा में फ़ेल होकर रोते देखे गए हैं। वैसे ही *गाथा की नायिका ने भी अपनी सफलता की* भविष्यद्-वाणी ही की है; परीक्षा में उत्तीर्ण होने का तो उसे अभी अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ। कौन जानता है, परीक्षा के समय भाग्य-चक्र उलटा घूम जाय। पर इधर देखिए, यहाँ तो दोहे की नायिका ने परीक्षा पास कर ली है—"सबै मरगजे मुँह करी, वहै मरगजे चीर।" *सफलता* भी ऐसी-वैसी नहीं, सौतें बुरी तरह पछड़ गई हैं। "वहै मरगजे चीर सबै मरगजे मुँह करी"—उस मैले वस्त्र ने ही सौतों की सारी बन-ठन को धूल में *मिला दिया ! काले-काले बादलों से घिरे हुए दिवाकर ने* रत्न और विह्वार आदि के जड़ाव से चमकीली दामिनी के दिमाग़ को दूर कर दिया ! कहिए लक्ष्मणसिंहजी, गाथा की नायिका परीक्षा में शरीक हुई या नहीं ? वह जब शरीक होकर प्रमाण-पत्र पा लेगी, तब उसकी श्रेष्ठता की चर्चा करना। अभी तक तो दोहे की नायिका ही शिरोमणि है।

आप लिखते हैं, गाथा की नायिका आर्या है, अतः वह फूहड़ या आलसी नहीं हो सकती। हम भी तो यही कहते हैं कि गाथा के कवि ने 'आर्या'-शब्द का कितना दुरुपयोग किया है। क्या लक्ष्मणसिंहजी यह बतला सकते हैं कि आर्या के हृदय में स्नानानादर का घृणित भाव आ सकता है ? आर्या की कितनी मिट्टी ख़राब की है ! बिना नहाए भी गाथा की नायिका उत्तम वस्त्र पहने होगी। यदि आपके कथनानुसार वह कँगली नहीं है, तो वह स्नानानादर के समय भी कुछ-न-कुछ रेशम आदि के सुंदर वस्त्र पहने ही होगी, जो उसके आनन की शोभा को कुछ-न-कुछ ज़रूर बढ़ा रहे होंगे। परंतु दोहे की नायिका तो कँगली थी (आपने लिखा है कि वह निर्लज्ज, मैली-कुचैली, कँगली होगी)। उसके पास वस्त्र कहाँ ! वही रति-मर्दित मैला-कुचैला वस्त्र ! तिस पर भी बाज़ी ले गई। पर गाथा की नायिका उत्तम वस्त्रों की ओट में केवल धमकी ही दे गई है। हमारी राय में तो यदि वह परीक्षा में कहीं उत्तीर्ण हो गई, तो भी दोहे की नायिका से हीन ही रहेगी ! सोचिए तो, दोहे में केवल नायिका के सौंदर्य की प्रशंसा की गई है; वहाँ पर उसके वर्ण, कर्मकांड तथा धनादि का कुछ वर्णन नहीं है—दोहा संध्या, अग्निहोत्रादि की स्तुति नहीं करता, वह तो नायिका के सौंदर्य का द्योतक है। वहाँ निर्लज्जता, कँगलेपन या मैलेपन की कुछ चर्चा नहीं है। हम यह भी नहीं कह सकते कि दोहे की नायिका आर्या है या अनार्या ? कारण, दोहा यह कुछ भी नहीं बताता। परंतु *गाथा की नायिका* आर्या होकर भी स्नानानादर कैसे करती है, यह हम नहीं समझ सके। संभव है, श्रीलक्ष्मणसिंहजी की आर्या अभिमानवश ऐसा कर गई हो। लेकिन तब तो *गाथा* में 'आर्यया' न होकर 'अनार्यया' होना चाहिए था। दोहे की नायिका को श्रीलक्ष्मणसिंहजी जितनी नीच, कँगली, मैली-कुचैली बतलाते जायँगे, उसके सौंदर्य का गौरव उतना ही बढ़ता जायगा; क्योंकि उस महामैली-कुचैली के ही—"सबै मरगजे मुँह करी, वहै मरगजे चीर।" कहीं तुलना है इस सौंदर्य की ? दोहे की नायिका के सौंदर्य में कितना चमत्कार है ! परंतु गाथा की आर्या नायिका तो केवल धमकी देने में ही एक पाप कर गई है ! श्रीलक्ष्मणसिंहजी ने अपनी आर्या से स्नानानादर का प्रायश्चित्त न कराकर कितना स्पष्ट पक्षपात किया है, यह पाठकों को क्या अब भी बतलाना पड़ेगा ?

(क्रमशः)

हरगुलाल वाशिष्ठ

पर्यवसान

(१)

पश्चिम-पयोधि के सुवर्ण-रेणुमय दुकूल पर भगवान् अंशुमाली अपने पूर्ण प्रतापोज्ज्वल तेज से प्रोद्भासित हो रहे थे। उनके रत्न-खचित कांचन-किरीट की रश्मि-राशि नर्मदा की निर्मल तरंग-माला पर नृत्य कर रही थी। सुगंधित, शीतल सांध्य समीर के मृदुल हिलोलों से महामाया प्रकृति देवी का हरित्-श्यामल अंचल चंचल हो रहा था।

नर्मदा-तटवर्ती मालती-मंडप एक अपूर्व शोभामयी रंगभूमि में परिणत हो गया था। लताएँ आनंद से झूम रही थीं; विहंग-मंडली मधुर स्वर से अलाप रही थी; मधुप वीणा बजा रहा था; कली चुटकी बजाकर ताल दे रही थी; और नर्मदा की कलकल-नादिनी धारा रस की सरिता-सी बही जा रही थी।

ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो रंगभूमि किसी के स्वागत के लिये हर्षमयी, संगीतमयी एवं उल्लासमयी हो रही है। प्रत्येक पल्लव से प्रेम की विमल आलोकच्छटा प्रस्फुटित हो रही थी; प्रत्येक कुसुम मद का पूर्ण पात्र हो रहा था; प्रत्येक लता अपने आंतरिक अनुराग से प्रफुल्लित हो रही थी। कोई इष्ट अतिथि, कोई वांछित सौंदर्य, कोई पूर्ण प्रेम पदार्पण करनेवाला था; और प्रकृति स्वयं शृंगारमयी होकर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

उसी समय, संध्या के उस अरुण-स्निग्ध प्रकाश में, प्रकृति के उस परम रम्य विलास में, नर्मदा के उस विमल संगीत-परिहास में, पश्चिम-प्रांत की ओर से चार सुंदरी किशोरियों ने प्रवेश किया। रंगभूमि आनंद से उन्मत्त, हर्ष से रोमांचित एवं मद से प्रोल्लसित हो गई। वे धीरे-धीरे, मंद मातंग की गति से, उसी कोमल कुंज की ओर अग्रसर हुई। पक्षिगण और भी उच्च स्वर से चहचहा उठे; नर्मदा की तरंगराजि और भी आनंद से कलोल करने लगीं; प्रकृति का श्यामल अंचल और भी अधिक वेग से चंचल हो उठा। उन चारों में की मध्यमणि निर्जन निकुंज के तोरण द्वार पर पड़े हुए विमल स्फटिक-स्वच्छ शिलाखंड पर विराज गईं, और शेष तीनों में से एक उसके दक्षिण-देश में, दूसरी उसके वाम-पार्श्व में और तीसरी उसके सम्मुख-प्रांत में खड़ी हो गई। निकुंज आनंद से प्रदीप्त हो उठा।

वह एक अपूर्व दृश्य था। मानो आराधना, साधना एवं सिद्धि के मध्य में महामाया की विमल आनंदमयी अक्षय ज्योति प्रोद्भासित हो रही थी; मानो विलास-श्री, आनंद की आभा एवं वैभव की विभा के मध्य में सौंदर्य की सजीव शोभा विलसित हो रही थी; मानो कल्पना, चिंता एवं अनुभूति के मध्य में कविता की कलित कांति स्फुरित हो रही थी; मानो ताल, लय एवं मूर्च्छना के मध्य में मूर्तिमती वसंत-रागिनी सरसित हो रही थी; मानो स्वर्ग की शोभा, पृथ्वी की प्रभा एवं रसातल की रमणीयता के मध्य में साक्षात् राजराजेश्वरी महामाया त्रिपुरसुंदरी देदीप्यमान हो रही थीं। कैसा पावन, कैसा प्रोज्ज्वल, कैसा मनोरम एवं कैसा शांतिमय सजीव चित्र था!

सामने तरंगित हो रही थी निर्मल विंध्य-नंदिनी नर्मदा; गगन-प्रांत में प्रवाहित हो रही थी अरुण-रागमयी सांध्य-सरिता; एवं उन चारों की सम्मिलित सौंदर्य-श्री से कल्लोलित हो रही थी शृंगार की रस-तरंगिणी।

विमल शिलाखंड पर आसीन थीं अनूपकुमारी जयंती, और उनके इधर-उधर खड़ी थीं उनकी तीन सखियाँ—श्यामा, शारदा एवं रत्नमाला।

राजकुमारी जयंती ने कहा—"श्यामे, आज सांध्य-श्री की इस स्निग्ध आभा में प्रकृति का यह परम पवित्र सौंदर्य और भी प्रोज्ज्वल हो गया है।"

श्यामा—"हाँ राजकुमारी, ठीक वैसे ही देदीप्यमान हो रहा है, जैसे सहज स्नेह की स्निग्ध सुषमा से तुम्हारा चंद्र-निंदक मुख-मंडल सदा प्रदीप्त रहता है।"

राजकु०—"शारदे, माधवी-लता की यह विकास-लीला भी कैसी ललित, शांत एवं आमोदमयी है! मानो आंतरिक आनंद का सजीव उदाहरण है।"

शारदा—"हाँ, राजकुमारी, ठीक वैसी ही, जैसी तुम्हारे कमल-नयनों की शोभा अनुराग से अरुण, करुणा से कोमल एवं सरलता से सदा पवित्र रहती है।"

राजकु०—"तुम दोनों तो जैसे कवि-सी हो गई हो। पर रत्नमाले, तुम्हीं देखो, नर्मदा की यह कलकलमयी तरंग-माला कैसे अनंत आनंद-संगीत गाती हुई अपने उद्दिष्ट पथ पर निरंतर प्रधावित हो रही है।"

रत्नमाला—"हाँ राजकुमारी, तुम्हें यह प्रेम का रसमय राग सुना रही है। तुम्हें बता रही है कि मैं जैसे आनंद-रागिणी गाती हुई अपने प्रणय-पात्र सागर की ओर अविश्रांत गति से प्रवाहित हो रही हूँ, वैसे ही एक दिन तुम्हारे हृदय की भी प्रवृत्ति उद्दाम गति से किसी महाभाग प्रेमी की ओर प्रधावित होगी। वह मानो तुम्हारे यौवन वन में शीघ्र ही गूँजनेवाली वंशी-ध्वनि की मंगलमयी सूचना दे रही है; वह मानो तुम्हारे कांति-कुंज में गाई जानेवाली कविता की आदि-कल्पना का आभास-सा दे रही है, वह मानो हमारे हृदयों की अभिलाषा को अस्पष्ट रूप में उद्घोषित कर रही है।"

राजकु०—"हो सकता है रत्नमाले, पर जानती हो,

राजकुमारी—"सो सर्वांश में सत्य है बहन! तुम यह भी जानती होगी कि कुमारी जयंती की रहस्यपात्री एक-मात्र तुम्हीं हो। तुम्हारे ही निर्मल स्वच्छ हृदय-दर्पण में मैं अपने भावों की छाया को प्रतिबिंबित करती हूँ। तुम्हीं मेरी विश्वास-भूमि हो।"

रत्नमाला—"इस सहज-सुंदर सौजन्य के लिये मैं राजकुमारी की चिरकृतज्ञ रहूँगी। राजकुमारी को अपने इस विश्वास-स्थापन के लिये कभी पश्चात्ताप न करना पड़े, इसके लिये मैं भी सदा सचेष्ट रहती हूँ। राजकुमारी का रहस्य मेरे हृदय में, प्राणों की भाँति, चिरजीवित, किंतु चिरनिहित रहेगा।"

राजकुमारी—"मुझे ऐसी ही आशा, ऐसा ही निश्चय है। बहन, आज मैं एक बड़े गुप्त व्यापार में तुम्हारी सहायता की याचना करती हूँ। मुझे विश्वास है कि तुम सहोदरा की भाँति मेरे अनुरोध की रक्षा करोगी। बहन, यह मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है।"

रत्नमाला—"हृदय का बलिदान करके भी मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगी। राजकुमारी, मैं जानती हूँ, किस रहस्यमय व्यापार में तुम मेरी सेवा चाहती हो। मैं उसके लिये प्रसन्नता-पूर्वक प्रस्तुत हूँ। मेरी तुच्छ सेवा का इससे अधिक अच्छा अवसर और क्या होगा?"

राजकुमारी—"जानती हो? असंभव! अच्छा, कहो सखी, किस व्यापार की सिद्धि में मैं तुम्हें नियुक्त करना चाहती हूँ?"

रत्नमाला—"उस स्निग्ध संध्या-काल में, नर्मदा-तट पर, जिन परम सुंदर तापसकुमार का दर्शन तुम्हें प्राप्त हुआ था, उन्हीं के समीप तुम अपनी प्रणय-स्वीकृति का शुभ-समाचार भेजना चाहती हो। राजकुमारी, मेरी कल्पना कदाचित् असंगत नहीं है?"

राजकुमारी—"नहीं। पर तुमने यह अनुमान कैसे किया रत्नमाले?"

रत्नमाला—"तुम्हारी इस अनुराग-अरुण लोचन-श्री से, तुम्हारे इस स्नेह-सरस स्वर-भंग से, तुम्हारे प्रीति-प्लावित भाव-विकास से। राजकुमारी, मैं इस रहस्य की प्राण-पण से रक्षा करूँगी। क्षमा करना राजकुमारी, मैंने स्पष्ट रूप से तुम्हारे इस प्रणय-रहस्य को तुम्हारे राग-रंजित कपोलों पर सलज्ज भाषा में लिखा हुआ देखा था। तुम्हारी प्रत्यक्ष स्वीकृति से पहले ही मैंने इस रस के परिपाक की समुचित आयोजना भी कर ली है।"

राजकुमारी—"सो कैसे? स्पष्ट रूप से कहो रत्नमाले।"

रत्नमाला—"राजमाता की पूजा के लिये नित्य-नियमानुसार आज भी मैं जल लेने के लिये नर्मदा-तट पर, उषा-काल में, गई थी। उस समय तट पर कोई नहीं था। केवल आकाश में पतितप्राय तारकावली क्षीण ज्योति से जगमगा रही थी। उस समय, हृदय की किसी गुह्यतम प्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने उन महाभाग तापसकुमार की पर्णकुटी में प्रवेश किया।"

राजकुमारी—"पर्णकुटी में प्रवेश किया? क्यों?"

रत्नमाला—"अपनी सहोदरा-समान राजकुमारी की आंतरिक अभिलाषा की परिपूर्ति-साधना के लिये। मैंने क्या अक्षम्य अपराध किया राजकुमारी?"

राजकुमारी—"नहीं। फिर क्या हुआ?"

रत्नमाला—"मुझे देखते ही तापसकुमार का मुख-कमल प्रफुल्ल हो गया। उन्होंने बड़े ही प्रेम एवं आग्रह से तुम्हारे कुशल-समाचार पूछे; और अस्पष्ट भाषा में, व्यंग्यमयी वाणी में, अपने हृदय के अनुराग की कथा भी कही। चलते समय उन्होंने मुझे एक वन-पुष्प-माला भी दी है। राजकुमारी की शृंगार-लीला के लिये मैं उसे लाई हूँ। तापसकुमार ने उसे मंत्र-पूत आशीर्वाद-सलिल से अभिषिक्त किया है। उन्होंने कहा—यह अक्षय है, यह कभी परिम्लान नहीं होगी। इसकी सुगंध तथा सुंदरता उसी दिन नष्ट होगी, जिस दिन हम दोनों में से एक का भी प्रणय-बंधन शिथिल होगा।"

रत्नमाला ने कमल-पत्र में रक्खी हुई वही प्रफुल्ल माला अपने अंचल से निकाली। सारा मंदिर स्वर्गीय सौरभ से परिपूर्ण हो गया। राजकुमारी ने बड़े प्रेम और बड़े उल्लास से वह प्रिय-गुंफित वनमाला अपने मुक्ता-माला-विभूषित कंठ-देश में डाल ली। वह उनके प्रणय का पुण्य चिह्न और उनके अनुराग की भविष्य-वाणी थी।

राजकुमारी ने सस्नेह रत्नमाला को आलिंगन कर लिया। प्रेम-पूर्वक कहने लगीं—"प्यारी बहन! तुम्हारे इस ऋण से मैं आजन्म उऋण नहीं हो सकती। बहन, तुम्हें इसका मैं क्या समुचित पुरस्कार दूँ?"

रत्नमाला—"राजकुमारी, वर दो कि यदि कभी मुझे किसी विशेष वस्तु की आवश्यकता हो, तो वह तुम्हें अदेय न होगी।"

राजकुमारी—"न होगी। मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगी।"

रत्नमाला—"और कुछ सेवा?"

राजकुमारी—"हाँ, उन तापसकुमार से आज निवेदन कर देना कि पूर्णिमा की रात्रि को, उसी निकुंज में, द्वितीय प्रहर के प्रारंभ में, मुझे अपने शुभ दर्शन दें।"

रत्नमाला—"आज ही उन तक राजकुमारी का संवाद पहुँच जायगा।"

रत्नमाला के विशाल लोचनों में एक कुटिल कटाक्ष आविर्भूत हुआ।

अक्षय कल्प-मंजरी निःस्वार्थ प्रेम के प्रफुल्ल उद्यान ही में प्रस्फुटित होती है, और उसी का नाम है नंदन-निकुंज।

(४)

उस विशाल, उन्मुक्त, कौमुदी-धौत नभोमंडल के निम्न देश में, विशालकाय पवित्र विंध्याचल के पद-प्रांत में, प्रकृति के श्यामल सौंदर्य से विभूषित नर्मदा-दुकूल पर, शीतल समीर से विकंपित मालती-मंडप के कुसुम-तोरण-द्वार पर, स्फटिक-स्वच्छ कुसुमाकीर्ण विमल शिला-खंड पर, आसीन होकर रत्नमाला गाने लगी—

गान

आजु मोहिं सूनो सब संसार।
वृंदावन के वन-उपवन में,
वरवेलिन के नव-यौवन में,
अलिन-कलिन के नित चुंबन में,
नहिं कोउ रस में सार। आजु०।
मंजुल मंजु कुंज-पुंजन में,
मधु-गंजन मधुकर-गुंजन में,
खंजन, मृग-से दृग-कंजन में,
रतिरंजन की मार। आजु०।

गान के मधुर स्वर ने उस शांति के पवित्र पाद-प्रांत में माधुर्य-लहरी को प्रवाहित कर दिया। आकाश में मधुर चंद्र और भी हँसने लगा; मंद समीर भी मादक हो-कर झूम-झूम कर नाचने लगा; कुसुम-कलियों की अवलियाँ चटक-चटक कर खिलने लगीं; और नर्मदा की कलकलमयी तरंग-श्रेणी पर विमल चंद्रिका विभिन्न भावों के साथ और भी उन्मत्त नृत्य में प्रवृत्त होने लगी। ठीक उसी समय वहाँ तापसकुमार पीछे से प्रकट होकर रत्नमाला के सम्मुख खड़े हो गए। रत्नमाला भी ससंभ्रम खड़ी हो गई। उसने कृतांजलि होकर प्रणाम किया।

तापसकुमार ने प्रश्न किया—"रत्नमाले, रात्रि के इस द्वितीय प्रहर में तुम यहाँ कहाँ?"

रत्नमाला—"यों ही देव। प्रकृति के सौंदर्य की मैं उपासिका हूँ। प्रासाद में आज चित्त नहीं लगा—चंचल हो उठा। राजकुमारी शयनागार में चली गईं; मैं अपनी वीणा लेकर नर्मदा-निकुंज में आ गई, और यहाँ इस विमल लावण्य पर परिमुग्ध होकर एक पद गाने लगी। सौभाग्य से आपके शुभ दर्शन भी मिल गए।"

तापसकुमार—"वास्तव में तुम बड़ी प्रवीण गायिका हो। इस समय ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो स्वयं उर्वशी पारिजात-वन से उतरकर रेवा-तट पर आ गई हो।"

रत्नमाला—"पर उर्वशी तो वारांगना है देव?"

तापसकुमार—"ठीक है। मेरी भूल थी। तुम उर्वशी नहीं, साक्षात् महेंद्रप्रिया शची हो।"

रत्नमाला—"पर मैं तो कुमारिका हूँ।"

तापसकुमार—"पराजय स्वीकार करता हूँ। तुम अनुपमेय हो। तुम्हारे योग्य उपमा मिलना कठिन है। तुम साहित्य की सरस कल्पना, संगीत की विमल रागिनी, एवं स्नेह की निर्मल, विशुद्ध नर्मदा हो। तुम सदानंदमयी हो रत्नमाले।"

रत्नमाला—"पर इस समय मैं एक विशेष समाचार की वाहिका भी हूँ देव।"

तापसकुमार—"समाचार? राजकुमारी जयंती की क्या आज्ञा है?"

रत्नमाला—"परंतु समाचार प्रकट करने के पहले मैं उसके पुरस्कार का निर्णय कर लेना चाहती हूँ देव! इस शुभ प्रणय के आनंद में कुछ मेरा भी भाग है भगवन्!"

तापसकुमार—"तुम्हारे लिये तो मुझे कुछ भी अदेय नहीं है रत्नमाले।"

रत्नमाला—"कुछ भी नहीं? सोच लीजिए देव। आपने अपने इस सरल, उदार आवेश में कुमारी जयंती के विस्तृत साम्राज्य को विस्मृत कर दिया है क्या?"

तापसकुमार—"हाँ रत्नमाले, भूल गया था। हृदय की संपत्ति पर मेरा अधिकार अवश्य नहीं है; पर और सर्वस्व सब तुम्हारे कर-कमल में समर्पित है।"

रत्नमाला—"और क्या देव ?"

तापसकुमार—"मेरी सिद्धि का मधुर फल, योग-प्राप्त निधि का निखिल विलास, एवं आंतरिक कृतज्ञता की सौरभमयी पुष्पांजलि।"

रत्नमाला—"पर यदि मैं आपसे प्रतिज्ञा करा लेती, और फिर वही माँगती, जिस पर राजकन्या जयंती का एकच्छत्र आधिपत्य है, तो आप क्या करते देव ?"

तापसकुमार—"वही, जो प्रण-भ्रष्ट को करना चाहिए। हृदय के विनिमय में प्राणों का उत्सर्ग कर देता। यही कलकल-नादिनी, निर्मल-सलिला नर्मदा मेरी चिरविश्राम-शय्या बन जाती।"

रत्नमाला—"यह मैं जानती थी प्रभो ! इसीलिये मैंने आपको प्रतिज्ञा-बद्ध नहीं किया।"

तापसकुमार—"उदारता की परा काष्ठा है। पर हो चुकी यह परिहास-लीला—अब कहो रत्नमाले, राजकुमारी जयंती की क्या आज्ञा है ?"

रत्नमाला—"पूर्णिमा के पूर्ण चंद्र की प्रभा से प्रोद्भासित नर्मदा-निकुंज में राजकिशोरी जयंती इन पुण्य श्रीचरणों के दर्शन की प्रार्थना करती हैं।"

तापसकुमार—"मेरे अहोभाग्य ! राजकन्या से निवेदन कर देना कि उनका उपासक ठीक समय पर निकुंज-भवन में उनके शुभागमन की प्रतीक्षा करेगा।"

रत्नमाला—"प्रणाम करती हूँ देव !"

तापसकुमार—"जाओ रत्नमाले, यदि इस लोक में तुम्हारी इस सहायता का समुचित पुरस्कार न दे सका, तो अक्षय स्वर्ग में अवश्य दूँगा।"

रत्नमाला—"प्रतिश्रुत होते हैं देव ?"

तापसकुमार—"हाँ, जगज्जननी साक्षी हैं।"

रत्नमाला—"जय हो देव की !"

प्रणय की अंतर्लीला का रहस्य अंधकार से नहीं, किंतु अभेद्य आलोक से आवृत रहता है। दिव्य लोचन ही उस अक्षय सुधा-स्रावी सौंदर्य को देख सकते हैं।

(२)

प्रफुल्ल पुंडरीक की भाँति, आकाश-मानस में पूर्ण चंद्र विलसित हो रहा था; और चंचरीक-राजि की भाँति उसके बीच विकसित हो रही थी कलंक-कालिमा। एक ही पुंडरीक प्रस्फुटित होकर समस्त सरोवर को अपनी आभा से समुद्दीप्त कर रहा था; नर्मदा अपने दर्पण-निर्मल वक्षःस्थल में उसका मधुर प्रतिबिंब धारण किए बही जा रही थी। सारी प्रकृति एवं समस्त पृथ्वी धवल विमल साड़ी पहने सो रही थी। राजकुमारी जयंती और उनके हृदयेश तापसकुमार का रहस्यालाप नर्मदा की कलकलमयी तरंग-राशि में विलीन हो रहा था।

राजकुमारी ने स्नेह-नम्र स्वर में कहा—"देव, मैंने आपकी साधना में विघ्न डाला।"

तापसकुमार ने अनुराग-सरस वाणी में उत्तर दिया—"नहीं देवि, तुम तो मेरी साधना की संपूर्ण सफलता हो। तुम्हें पाकर मैंने विशुद्ध आनंद की अनुभूति पाई है।"

राजकुमारी—"पर प्रभो, रमणी—विशेष कर रूपवती, युवती रमणी—तपोनिष्ठा के मार्ग में प्रत्यक्ष बाधा बनकर खड़ी होती है। कम-से-कम शास्त्रों का तो यही मत है।"

तापसकुमार—"उन्हीं के पथ में, जो रमणी को काम-वासना की परितृप्ति की मदिरा-मात्र मानते हैं। जो रमणी को परिपूर्णता का अनिवार्य साधन मानते हैं, रमणी में विशुद्ध आत्मिक सौंदर्य की कल्पना करते हैं, रमणी को निःस्वार्थ त्याग की चरम सीमा—भागवती इच्छा की साकार प्रतिमा—गार्हस्थ्य की पुण्यमयी अधीश्वरी मानकर उसकी आराधना करते हैं, उनके लिये रमणी की प्राप्ति इष्ट है, अनिष्ट नहीं।"

राजकुमारी—"पर मैं इस उच्च आदर्श का पालन कर सकूँगी या नहीं, इसमें संदेह है।"

तापसकुमार—"अणु-मात्र भी नहीं। मैं तुम्हारे सहज-सुंदर मुख-मंडल पर जो पवित्र सौंदर्य, उज्ज्वल आत्म-त्याग एवं विमल संकल्प की ज्योति देख रहा हूँ, वह कुछ और ही प्रमाणित कर रही है। मेरा विश्वास है कि तुम्हें पाकर मैं कठोरतर तप का अनुष्ठान कर सकूँगा; और मेरी कल्पना, अभिलाषा एवं साधना तुम्हारे पुण्य संसर्ग से और भी अधिक उज्ज्वल, पवित्र एवं प्रसादमयी हो जायगी। तुम मेरे प्राणों का परिमल, कविता की मधुर कल्पना, आत्मसंगीत की स्वर-लहरी, साधना की चिर-सहचरी, एवं मेरे संकल्प की उत्साह-धारा बनकर, मेरे कल्याण के लिये, इस धरा-धाम पर अवतीर्ण हुई हो। यह मेरी अटल, ध्रुव धारणा है।"

राजकुमारी—"और तुम देव ? तुम्हारे अवतार का क्या उद्देश्य है ?"

तापसकुमार—"मैं तुम्हारे प्रेम का पात्र, तुम्हारे सुख का सखा, तुम्हारे दुःख का भागी, तुम्हारे मंत्र का अर्थ, तुम्हारे इष्ट का स्वरूप, तुम्हारे व्रत का विषय, एवं तुम्हारे आश्रम का अवलंब बनकर नित्य तुम्हारे सुख-सहवास में जीवन व्यतीत कर सकूँ, यही मेरी सृष्टि का एक-मात्र उद्देश्य है।"

राजकुमारी—"मेरे अहोभाग्य ! सौभाग्य की यही चरम सीमा है।"

तापसकुमार—"तो आओ, इस मंगल-मुहूर्त में अनंत, निर्मुक्त नभोमंडल के नीचे, इस पवित्र नर्मदा के दुकूल पर, चंद्रदेव की समुपस्थिति में, प्रकृति के आशीर्वाद में, हम दोनों परस्पर चिर मधुर संबंध में आबद्ध हो जायँ। तुम्हें स्वीकार है देवि ?"

राजकुमारी—"स्वीकार है आर्यपुत्र।"

"पर मुझे स्वीकार नहीं है!" यह वज्र-सी वाणी सहसा सुन पड़ी, और चार सशस्त्र सैनिकों के साथ अनूपेश्वर ने उस निकुंज में सरोष प्रवेश किया। राजकुमारी और तापसकुमार स्तब्ध हो गए। दोनों ने उनके चरण-तल में घुटने टेक दिए। पर अनूपेश्वर ने कुलिश-कठोर स्वर में कहा—"सैनिको ! इस भंड ब्रह्मचारी को बाँध लो, और त्रिकूट-शिखर पर जो कारागार है, उसमें ले जाकर बंद कर दो। और, जयंती ! सामनेवाला नर्मदा-प्रासाद ही तेरे लिये कारागार-रूप में परिणत कर दिया गया है। तेरी चिरसखी रत्नमाला के अतिरिक्त तेरे पास और कोई नहीं रहेगा।"

प्रेम का पथ बड़ा भयंकर एवं दुर्गम है। सहस्र-सहस्र बिच्छुओं का तीव्र दंशन, अमंगल का कठोर कुलिश-प्रहार, एवं दुर्भाग्य का निष्ठुर नियंत्रण, इन तीनों की सम्मिलित व्यथा भी उसके परिताप के सामने परमाणु के समान तुच्छ है। इसीलिये उस पर विचरण करनेवाला योगीश्वर की संज्ञा को प्राप्त होता है।

(६)

अंधकारमयी यामिनी, पर्वत के भयंकर दुर्गम मार्ग, एवं हिंसक जंतुओं के कठोर निनाद की कुछ भी पर्वा न करके, अतुल साहस, अमित तेज और निश्चित संकल्प से बलवती होकर, रत्नमाला त्रिकूट-शिखर पर पहुँच गई। उसने धीरे से अपनी कंचुकी के भीतर से चाबी निकाली, और कारागार के कपाट खोल दिए।

प्रकाश के सारे साधन उसके पास प्रस्तुत थे। कारागार आलोकमय हो गया। तापसकुमार जाग्रत् थे। वह आश्चर्य-चकित होकर रत्नमाला को देखने लगे। रत्नमाला ने उन्हें प्रणाम किया, और धीरे-धीरे उनके बंधन काट दिए।

रत्नमाला—"देव, मैं आपको इस कारागार से मुक्त करने आई हूँ।"

तापसकुमार—"धन्यवाद। पर किसकी आज्ञा से, किसकी प्रेरणा से ?"

रत्नमाला—"अपने प्रेम की प्रेरणा से, अपने कर्तव्य के अनुरोध से, अपनी आत्मा की आज्ञा से। देव, आप क्या मेरे साथ इस कारागार से बाहर चलने के लिये पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं ? विलंब का समय नहीं है।"

तापसकुमार—"पर रत्नमाले, तुम्हें यह सब कष्ट उठाना न पड़ता, यदि मैं इस कारागार से मुक्त होना चाहता। पाषाण-प्राचीर एवं लौह-कपाट मुझे नहीं रोक पाते। पर मैं इस कारागार से मुक्त होकर ही क्या करूँगा ? मेरा हृदय तो मुक्त न होगा। वह तो चिर-व्यथा का निर्मम नियंत्रण ही सहा करेगा। नहीं रत्नमाले, मैं न जाऊँगा; यहीं रहूँगा; यहीं मुझे सुख है।"

रत्नमाला—"नहीं देव, मेरी यह अतुल रूप-राशि, मेरा प्रफुल्ल यौवन, मेरी आत्मा की अपार संपत्ति एवं मेरी तन्मयी साधना, सब आपके श्रीचरण-तल में सादर समर्पित है। उसे स्वीकार कीजिए देव।"

तापसकुमार—"पर चातक मंदाकिनी-जल से परितृप्त नहीं होता। उसे तो घनश्याम का एक बिंदु ही परम अभीप्सित है।"

रत्नमाला—"सो ठीक है देव। पर जो अलभ्य है, एकांत अप्राप्य है, उसके लिये व्यर्थ ही प्राणोत्सर्ग करना बुद्धिमत्ता नहीं है।"

तापसकुमार—"तो क्या सहज-प्राप्य के लिये, एकांत करतल-गत के लिये परम-प्रिय प्राणों की आहुति दी जाती है ? साधारण भोजन-पाकी अग्नि में कोई अपनी आहुति नहीं देता; पवित्र यज्ञ की मोक्षदायिनी प्रोज्ज्वल ज्वाला ही में देह को भस्मावशेष कर देने की शास्त्रीय परिपाटी चली आती है रत्नमाले। दुष्कर ही के लिये दुस्साहस किया जाता है।"

रत्नमाला—"मेरा दुर्भाग्य ! तो क्या मेरा प्रस्ताव आपको अस्वीकृत है ?"

तापसकुमार—"एकांत रूप से । राजकन्या जयंती के बिना यह विशाल विश्व मेरे लिये एक महान् कारागार ही के समान है । मैं इस छोटे कारागार ही में सुखी हूँ । तुम्हारे इस प्रणयानुरोध की मैं अवहेलना कर रहा हूँ, इसका मुझे दुःख है रत्नमाले । पर मैं विवश हूँ; प्रवृत्ति की प्रबलता के सम्मुख निर्बल हूँ । जाओ रत्नमाले, लौट जाओ । कारागार के कपाट फिर से अवरुद्ध कर दो ।"

रत्नमाला—"पर देव, राजकुमारी जयंती तो अब इस संसार में नहीं हैं । फिर उनके लिये कष्ट उठाना नितांत निरर्थक है ।"

तापसकुमार—"नहीं हैं ? छोड़ ? गईं इस विनश्वर विश्व को । आह ! प्राणेश्वरि ! तुमने मुझे नहीं बताया, और चली गईं ! अच्छा रत्नमाले ! इस समाचार के लिये भी मैं तुम्हें धन्यवाद ही देता हूँ । यदि तुम मुझे यह समाचार न देतीं, तो नहीं मालूम, राजकुमारी कब तक नंदन-वन में मेरी प्रतीक्षा करतीं । मुझे विश्वास है, स्वर्ग-किशोरिकाओं से परिवेष्टित होकर भी, अप्सराओं की ललित संगीत-लहरी सुनकर भी, वह मेरे बिना आह्लादित न होती होंगी । अच्छा रत्नमाले, वहीं जाता हूँ, जहाँ प्रेम का अक्षय साम्राज्य है, जहाँ रस का अविरल स्रोत प्रवाहित होता है, जहाँ विच्छेद का भय नहीं, व्यथा की आशंका नहीं, जहाँ चिरसंगीत, चिदानंद एवं चिर-उल्लास का सदा वसंतोत्सव रहता है, जहाँ मेरे हृदय की अधीश्वरी राजकुमारी जयंती के मधुर हास्य का प्रोज्ज्वल प्रकाश है । वहीं जाता हूँ रत्नमाले । कौशांबी के युवराज के लिये यह संसार अब असार है—शून्य है ।"

रत्नमाला—"क्या, कौशांबी के युवराज ?"

तापसकुमार—"हाँ, मैं कौशांबी का युवराज हूँ । रत्नमाले, आज तुम्हें यह रहस्य बताता हूँ । तुम इस रहस्य को महाराज अनूपेश्वर से भी निवेदन कर देना, जिसमे उनकी आत्मग्लानि दूर हो, और वह अपनी दुखिया दुहिता को आशीर्वाद दें कि वह मेरे साथ स्वर्ग में अक्षय आनंद को प्राप्त करे । विदा रत्नमाला !"

रत्नमाला स्तंभित, चकित एवं मूक हो गई । उसी समय तापसकुमार योगासन में आसीन हो गए । उनके ब्रह्म-रंध्र को विदीर्ण करके एक महाप्रकाश निकला, और वह उन्मुक्त आकाश में जाकर विलीन हो गया ।

संसार केवल प्रेम की लीला-भूमि है । वह दिन-भर यहाँ केलि-क्रीड़ा करके सायंकाल होते-होते अपने अक्षय कल्प-कुटीर में आनंद से विहार तथा विश्राम करने के लिये चला जाता है ।

प्रेम आत्मा का पर्याय है, और आत्मा आख्यान है महामाया राजराजेश्वरी कल्याणसुंदरी की विमल विभूति की स्निग्ध रश्मि का ।

(७)

प्रभाकर की प्रोज्ज्वल बाल-किरणमाला नर्मदा-प्रासाद के सर्वोच्च सुवर्ण-मंडप पर केलि-क्रीड़ा कर रही थीं । सारा प्रासाद सुवर्ण-प्रकाश-धारा में स्नान कर रहा था ।

प्रासाद के एक कक्ष में सुवर्ण-निर्मित, रत्न-खचित सिंहासन पर आसीन थे अनूपेश्वर, और उनके सामने ही घुटने टेके बैठी थी आलुलायितकेशा, विक्षिप्तप्राय राजकन्या जयंती ।

अनूपेश्वर ने कहा—"जयंती, आज तूने मुझे यहाँ प्रातःकाल ही क्यों बुलाया है ?"

राजकन्या ने रुँधे कंठ एवं कंपित स्वर में कहा—"पिता, मैंने जाना है, मुझे स्पष्ट सूचना मिली है कि उन तापस-कुमार ने कल रात्रि को उस कारागार में प्राण-त्याग किया है ।"

अनूपेश्वर ने चकित होकर कहा—"तुझे कैसे ज्ञात हुआ जयंती ?"

जयंती—"मैंने स्वप्न देखा था । वह स्वयं यहाँ पधारे थे । उन्होंने मुझसे कहा कि वह स्वर्ग को जा रहे हैं, और वहाँ कल्पवृक्ष-कानन में, मेरी प्रतीक्षा करेंगे । प्रभो, पिताजी, मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ, कृपा करके मुझे यह बता दीजिए कि क्या यह समाचार सत्य है ? मैं जानती हूँ, यह सत्य है । पर, तो भी, इसका पूर्ण निश्चय कर लेना चाहती हूँ । पिता, मेरे पूज्य पिता, दया करके सत्य बताना ! मैं तुम्हारी ही पुत्री हूँ ।"

अनूपेश्वर—"हाँ, यह समाचार सत्य है । पर तो भी—तो भी तेरा इस समाचार से क्या संबंध है ? तू क्या करेगी ? तेरे मन में क्या और कोई विचार उठा है ?"

जयंती—"मेरा ? मेरा इस समाचार से यदि कोई संबंध नहीं, तो और किसका होगा ? मैं सती होऊँगी ।

पिताजी, उनके शव को लेकर चिता पर जल जाऊँगी। आज्ञा दीजिए मुझे, मैं अपने इस व्रत का पूर्ण करूँ।"

अनूपेश्वर—"पर तेरा तो उसके साथ विवाह नहीं हुआ? तूने तो उसके कंठ में जय-माला नहीं डाली? समाज और धर्म ने उसे तेरा पति कहकर स्वीकार नहीं किया?"

जयंती—"तो भी उनके साथ मेरा विवाह हो चुका है। नर्मदा की मंत्र-माला के मधुर निनाद में, प्रकृति की परमोज्ज्वल वेदी पर, उस निर्जन मालती-मंडप के नीचे, मैंने उन्हें पति-रूप में वरण किया है। अब न रोकिए पिताजी, चलने दीजिए। प्रसन्न चित्त से अनुमति दीजिए। उनके प्रतीक्षा-काल को बढ़ाना समुचित नहीं।"

अनूपेश्वर—"पर इससे मेरे यश में कलंक लगेगा जयंती।"

जयंती—"और मुझको रोकने से आपके और मेरे धर्म का विनाश होगा। आप जानते हैं, हिंदू-ललना का संकल्प चिरस्थायी होता है। वह केवल वासना की कंदुक-क्रीड़ा नहीं है। वह अक्षय, अटल, अमिट है।"

अनूपेश्वर—"पर यदि तुझे मैं सती न होने दूँ?"

जयंती—"रोक नहीं सकेंगे पिताजी! पाषाण-प्राचीर पर प्रहार करने से कपाल भग्न हो सकता है; उन्मुक्त वातायन से नीचे अभेद्य अंधकारमयी कंदरा में पतित होना क्षण-भर का काम है। और, इन साधनों के छिन जाने पर भी अंतरात्मा में प्रज्वलित होनेवाली प्रेमाग्नि में प्राणों की आहुति दी जा सकती है। पिता, मैं जाऊँगी, वहीं जाऊँगी, जहाँ वह गए हैं, जहाँ उनकी चरण-रज से पृथ्वी पवित्र हो रही है, जहाँ उनकी मंद मुसकान से विलास-कुंज विकसित हो रहे हैं, जहाँ उनकी श्री से आनंद की धारा प्रवाहित हो रही है। वह मेरे प्रभु हैं, ईश्वर हैं, चक्रवर्ती सम्राट् हैं।"

अनूपेश्वर—"बेटी, क्या यह तेरा निश्चित संकल्प है? किसी भाँति भी टल नहीं सकता क्या?"

जयंती—"नहीं पिता, यह विधाता के विधान से, ऋषि के वचन से, एवं महामाया की इच्छा से भी अधिक अटल है। मैं अवश्य प्राण-त्याग करूँगी। यदि आपकी शुभ अनुमति मिल गई, यदि उनके पवित्र शव को गोद में लेकर मैं भस्म हो सकी, तो मुझे विशेष संतोष होगा, और शास्त्रीय आदेश तथा लौकिक धर्म का भी पूर्ण रूप से परिपालन हो जायगा। मेरा सहमरण तो निश्चित ही है।"

अनूपेश्वर—"अच्छा बेटी, जाओ, जाओ उस अक्षय आलोकमय पतिलोक को। मैं नहीं जानता था; मैं विमूढ़ था। यदि तुम दोनों के इस पवित्र, प्रोज्ज्वल प्रेम के इस रहस्य को जानता होता, तो मैं कदापि बाधा न डालता; यह घोर घटना कदापि घटित न होती। पर महामाया की महाव्यवस्था के रहस्य को कौन जानता है। वह अमिट है। जाओ बेटी, यहाँ तुम सुखी न हो सकीं, मैं आशीर्वाद देता हूँ, अपने आराध्य पति के साथ स्वर्ग में आनंद-पूर्वक रहो।"

जयंती ने पितृदेव की पद-धूलि अपने सुर-वंद्य ललाट पर लगा ली।

प्रणय का प्रण पूर्ण हो गया। संसार, देख इस पुनीत दृश्य को, और स्वर्ग, तुम हाथ बढ़ाकर इस प्रेम के प्रोज्ज्वल स्वरूप का स्वागत करो।

(८)

जहाँ तापसकुमार एवं राजकन्या जयंती ने एक दूसरे को वरण किया था, वहीं आज वे सहमरण के लिये समुपस्थित हुए। अनूप-राज्य की सारी प्रजा इस दृश्य को देखने तथा सती की पूजा करने को जमा हुई।

नर्मदा के उसी निकुंज के द्वार-देश पर, विमल शिला-खंड के पास, प्रकांड चंदन-चिता प्रस्तुत हुई। राजकन्या जयंती पूर्ण शृंगार करके, पूज्य प्राणेश्वर के शव को लेकर, स्वर्गयात्रा के लिये समुद्यत हुई।

सब संस्कार हो चुके थे—केवल चिता में अग्नि-संस्कार अवशिष्ट था। उसी समय एक ओर से आकर रत्नमाला ने चिता के सामने घुटने टेक दिए। रत्नमाला उन्मादिनी हो रही थी। उसके गुलाब से अरुण लोचन तप्त अंगार-से जल रहे थे। उसकी केश-राशि बिखरी हुई तथा धूलि-धूसरित थी। मुख पर तीव्र व्यथा के सारे लक्षण परिलक्षित हो रहे थे। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त थे।

रत्नमाला ने चिता के सामने घुटने टेक दिए। हाथ जोड़कर कहा—"सती, तुम्हें स्मरण होगा, एक दिन तुमने मुझे एक वर देने को कहा था। आज मैं वही वर माँगने आई हूँ।"

राजकुमारी—"तुम्हें तब भी कुछ अदेय न था, और अब भी नहीं है। माँगो बहन।"

रत्नमाला—"क्षमा! दया! बस, केवल क्षमा! मैं अपने पाप के लिये क्षमा माँगती हूँ। देवि, दया करो।"

राजकुमारी—"तुमने कोई पाप नहीं किया बहन, कौन-से पाप के लिये मुझसे क्षमा माँगती हो ?"

रत्नमाला—"किया है, अक्षम्य अपराध किया है। पर पहले क्षमा कर दो, तब निवेदन करूँगी।"

राजकुमारी—"क्षमा करती हूँ बहन! इस अंतिम समय में क्या तुम्हारा मुख मलिन देख सकूँगी? कभी नहीं। क्षमा करती हूँ। कहो, क्या रहस्य है? अब अधिक समय नहीं है, विलंब ठीक नहीं।"

रत्नमाला—"सुनो बहन, मैंने ही यह सब कांड किया है। यह—यह तापसकुमार तुम्हारे भी हृदयेश्वर हैं, और मेरे भी हृदय-धन। मैंने सोचा था, मैं सरल सत्य भाव से नहीं, तो कुटिल नीति से इन्हें अपना सकूँगी। पर मैं मूढ़ थी, प्रेम की प्रबलता का अनुभव करके भी स्वार्थ से अंधी हो गई थी। मैंने ही तुम्हारे पिता को सूचना दी। मैं परिणाम जानती थी, और मुझे विश्वास था कि तापसकुमार को मैं कारागार से विमुक्त कर दूँगी। पर हाय, तुम्हारी आज्ञा के बिना वह कारागार से बाहर चलने को प्रस्तुत नहीं हुए। तब मैंने अपने अंतिम कुटिल अस्त्र का प्रयोग किया। तब मैंने उनसे तुम्हारे प्राण-त्याग की झूठी बात कही। मैंने कल्पना की थी कि वह तापसकुमार तुम्हारी मृत्यु का संवाद पाकर—तुम्हें अलभ्य मानकर—कदाचित् मेरे प्रणय को स्वीकार कर लें। पर उन्होंने—उन उदार सच्चे प्रेमी तापसकुमार ने—मेरा तिरस्कार और तुम्हारे काल्पनिक वियोग में योग-बल द्वारा प्राण-त्याग कर दिया। इस प्रकार मैंने मूढ़ता-वश तुम्हें और अपने को विधवा बना दिया। राजकुमारी, वह तापसकुमार कौशांबी के युवराज थे।"

राजकुमारी—"आह! कौशांबी के युवराज?"

रत्नमाला—"हाँ, कौशांबी के युवराज थे। स्वर्ग के लिये प्रस्थान करते समय उन्होंने यह रहस्य मुझसे कहा था। पर हाय, मैं मूर्ख थी, स्वार्थ से अंधी हो रही थी! यदि माँगती—हाथ जोड़कर माँगती, तो तुम इतनी उदार थीं कि मुझे भी उनके प्रणय-पद्म की पराग का एक कण अवश्य दे देतीं। पर अब क्या हो सकता है? घटना अब अघटित नहीं हो सकती मेरी बहन।"

राजकुमारी—"ठीक है बहन, जो होना था, सो हो चुका। पर बहन, तुम उन्हें प्यार करती थीं—उनके चित्र-पट की पूजा करती थीं। बस, मेरे क्षमा-दान के लिये इतना ही बहुत है। बहन, मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ स्वर्ग के मंदाकिनी-चुंबित निकुंज में जब आओगी, तब तक भी अगर तुम उन्हीं की उपासना में रत रहीं, तो मैं सहर्ष अपना अर्द्धासन तुम्हें दूँगी, यह प्रण करती हूँ।"

रत्नमाला—"उदार देवी, धन्य हो तुम! पर मैं तुम्हारे साथ ही चलूँगी—तुम्हें वहाँ दासी की आवश्यकता होगी। उनका सिर स्थापित होगा तुम्हारी गुलाब-सी कोमल गोद में, और उनके पाद-पद्म प्रस्थापित होंगे मेरे उन्मुक्त क्रोड़ में। देवि, एक दिन उन्होंने भी प्रसन्न होकर मुझे वर दिया था कि वह स्वर्ग में मुझे अपनी सेवा में स्वीकार कर लेंगे। मैं उनसे वही वर माँग लूँगी। तुम मेरी ओर से प्रार्थना कर देना बहन!"

राजकुमारी—"अवश्य!—तो यह तुम्हारा निश्चित संकल्प है?"

रत्नमाला—"निश्चित! अटल!"

राजकुमारी—"फिर विलंब क्यों? आओ चलें। वह प्रतीक्षा करते होंगे।"

चिता की पवित्र प्रोज्ज्वल प्रज्वलित शिखा-माला पर आरूढ़ होकर दोनों अक्षय पतिलोक में पहुँच गईं।

प्रेम की त्रिपथ-गामिनी मंदाकिनी वक्र मार्ग से प्रवाहित हो, चाहे सरल पथ से, वह अंत में विलीन होती है उसी अनंत महासागर में—उसी अतल, नित्य-परिपूर्ण विशाल सौंदर्य-रत्नाकर में।

चंडीप्रसाद "हृदयेश"

सर्वव्यापी

(१)

रहते हो तुम, नाथ, सदा नयनों के आगे;
पर न तुम्हें पहचान सके हम परम अभागे।
नाहक तुमको खोज-खोज हैरान हुए हम;
दृग-युत भी क्या, हाय! न अंध-समान हुए हम?

(२)

होते हो तुम कभी न पल-भर हमसे न्यारे;
पर भ्रम होता छद्म-वेश को देख तुम्हारे।
अहो! वृथा ही विरह-दाह से थे हम जलते;
थे हरदम ही, हाय! स्वयं अपने को छलते!

(३)

जो कुछ जग में देख पड़े विरचित विधि द्वारा ;
सबमें अनुपम रूप-रंग छा रहा तुम्हारा।
किंतु कहें क्या, धन्य तुम्हारी थी वह माया ;
कुछ-का-कुछ था हमें सदा जिसने दिखलाया।

(४)

जिधर देखते, उधर तुम्हीं को हैं हम पाते ;
बार-बार भी तुम्हें देखकर नहीं अघाते।
नयन तुम्हारे रूप-जाल में हैं फँस जाते ;
छवि-सागर में डूब-डूबकर गोते खाते।

(५)

बदल-बदलकर वेश प्रकृति सुंदर, मनमाना ;
दिखलाती है रूप तुम्हारे हीं नव, नाना।
क्षण-भर में कर नाश अपरिमित तम-कलाप का ;
देता परिचय भानु तुम्हारे ही प्रताप का।

(६)

छः ऋतुओं की भिन्न-भिन्न शोभा सुखकारी ;
विहगों की छवि मंजु, मनोहर, न्यारी-न्यारी।
कुसुमों की कमनीय क्यारियाँ प्यारी-प्यारी ;
सबमें सुषमा समा रही है सतत तुम्हारी।

(७)

हरियाली हर समय हृदय को हरनेवाली ;
फल-फूलों से लदी हुई पल्लवित द्रुमाली।
भाँति-भाँति की लता-बल्लियाँ शोभाशाली ;
दिखलाती हैं छटा तुम्हारी निपट निराली।

(८)

वन-बागों से कभी दृष्टि जाकर है लड़ती ;
कभी मनोहर शैल-शिखर पर है वह पड़ती।
जहाँ देखती तुम्हें, वहीं जाकर है अड़ती ;
प्रेम-पाश में उसे तुम्हारी छटा जकड़ती।

(९)

लगे रात को नित्य गगन में सभा तुम्हारी ;
खिल जाते नक्षत्र प्राप्त कर प्रभा तुम्हारी।
सुखद सुधाकर सुधा तुम्हीं से संतत पाकर ;
हरे भूमि का ताप, सतत उसको बरसाकर।

(१०)

जो तुम गाते, वही गीत हैं सिंधु सुनाते ;
वही राग अनुराग-पूर्ण पक्षीगण गाते।
गूँज रही है तान तुम्हारी नभ, जल, थल में ;
सुन पड़ती है वही विश्व के कोलाहल में।

(११)

हो तुम एक, अनेक काम करके दिखलाते ;
कर्मयोग का मर्म कर्म द्वारा सिखलाते।
अंकित है प्रतिरूप तुम्हारा नभ, जल, थल में ;
शतदल-दल में, जलद-पटल में, तथा अनल में।

(१२)

प्राणों का आधार, सभी को है जो प्यारा ;
है वह शीतल पवन प्रेममय श्वास तुम्हारा।
वह सौरभ सर्वत्र तुम्हारी ही फैलाता ;
वन-उपवन में, सुमन-सुमन में है बिखराता।

(१३)

तुमने रचकर विश्व परम चातुर्य दिखाया ;
रूप अनूप विराट स्वयं अपना उपजाया।
सब पदार्थ को भिन्न रूप-गुण-युक्त बनाया ;
पर अपना प्रतिबिंब सभी में है झलकाया।

गोपालशरणसिंह

राजशेखर और काव्यमीमांसा

संस्कृत तथा प्राकृत-भाषा के साहित्य-सेवियों में कौन ऐसा है, जिसने कविराज राजशेखर का नाम न सुना हो, उनके दृश्य तथा श्रव्य-काव्यों को न पढ़ा हो ? काव्य-जगत् में इनका अत्यंत उच्च स्थान है । यह महाराज कान्यकुब्जाधिपति महेंद्रपाल तथा उनके पुत्र महीपाल के सभासद् थे। 'उपाध्याय' इनकी पदवी थी । सायदोनी के शिला-लेख से विदित होता है कि महेंद्रपाल का राजत्व-काल [illegible] महीपाल का ९१७ ई० है । [illegible] मीमांसा में ([illegible] प्रकरण [illegible] के महाराज

सभासद् वाक्पतिराज का उल्लेख किया है। उक्त महाराज का शासन-काल ७७९ से ८१३ ई० तक है। सोमदेव ने यशस्तिलक-चंपू में राजशेखर का वर्णन किया है। यशस्तिलक-चंपू की रचना ९६० ई० में हुई है। अतः कल्पना होती है कि राजशेखर का समय ८८० और ९२० ई० के बीच में रहा होगा। राजशेखर के पिता का नाम दौर्दुकि और माता का नाम शीलवती था। अकालजलद, सुरानंद और तरल इनके पूर्वजों में से थे। इनकी स्त्री का नाम अवंतिसुंदरी था। वह परम-विदुषी और चौहान*-कुल की लड़की थीं। स्वयं राजशेखर ने स्थल-स्थल पर इनका मत लिखा है। राजशेखर की जाति में संदेह है; क्योंकि उपाध्याय की पदवी से तो यह ब्राह्मण प्रतीत होते हैं, पर स्त्री के क्षत्रिय-कन्या होने से इनके क्षत्रिय होने का संदेह होता है। बहुत संभव है, यह ब्राह्मण ही हों और अवंतिसुंदरी-जैसी विदुषी के गुणों पर लुब्ध हो, पंडितराज जगन्नाथ की भाँति, इन्होंने भी असवर्ण-विवाह कर लिया हो। क्षेमेंद्र-विरचित औचित्य-विचार-चर्चा के एक पद्य † से ज्ञात होता है कि इनकी जन्मभूमि दक्षिण-भारत में थी। बाल-रामायण में राजशेखर ने अपने परदादा अकालजलद को महाराष्ट्र-चूड़ामणि लिखा है। इसलिये इनका महाराष्ट्र होना तो सिद्ध ही है।

राजशेखर को संस्कृत की अपेक्षा भाषा पर विशेष प्रेम था। एक जगह पर लिखते हैं—

"परुसा सक्कअबन्धा पाउअबन्धो विहोइ सुउमार
पुरुसमहिलाणं जेत्ति अत्ति इन्तरं तेत्ति अमिमाणम्

अर्थात् संस्कृत की रचना कठोर, और प्र की सुकुमार होती है। इन दोनों में उतन अंतर है, जितना पुरुष और महिलाओं में।

राजशेखर का नाम प्राकृत-भाषा के इति में सुवर्णाक्षरों से अंकित रहेगा। इन्होंने मा साहित्य की बड़ी सेवा की। इनसे प्रथम अनुष्टुप्, आर्या आदि छोटे-छोटे छंदों की र की ही प्रणाली थी। इन्होंने ही शार्दूलविक्री जैसे बड़े-बड़े वृत्तों की रचना कर प्राकृ नवीनता उत्पन्न की। इनके बनाए बाल-रामा बाल-भारत, विद्धशाल-भंजिका, कर्पूरमंजरी काव्यमीमांसा आदि ग्रंथ हैं। यद्यपि कवित्व दृष्टि से इनके सभी ग्रंथ महत्त्व के हैं, पर क मीमांसा संस्कृत-साहित्य के लक्षण-ग्रंथों में र रत्न है। इसमें केवल काव्य-विषयक निबंध ही वर्णन नहीं, किंतु प्राचीन भारत का भौगो वृत्त, भिन्न-भिन्न प्रांतों के रहनेवालों का उच्चा तत्कालीन कवियों की समृद्ध दशा और सा प्रेम, प्राचीन साहित्यिक राजों का इतिवृत्त, शिक्षा आदि अनेक ज्ञातव्य विषयों का सम है, जिनका कुछ परिचय नीचे दिया जाता है

काव्यमीमांसा की रचना की रीति वात्स्य के कामसूत्र तथा कौटिल्य-प्रणीत अर्थशास्त्र तरह गद्य में ही है। यह अठारह अधिकरण विभक्त है। अठारह अधिकरण एक पौरा आख्यायिका के आधार पर बने हैं, जिस उल्लेख इस प्रकार है—

---

* "चउहाणकुलमोलिमालिआ, राजसहरकइन्दगेहिणी।"
(कर्पूरमंजरी)

† कार्णाटीदशनाङ्कितः शितमहाराष्ट्रीकटाक्षाहतः
प्रौढान्ध्रीस्तनपीडितः प्रणयिनीभ्रूभङ्गवित्रासितः।
लाटीबाहुविवेष्टितः मलयजस्त्रीतर्जनीतर्जितः
सोऽयं सम्प्रति राजशेखरकविर्वाराणसीं वाञ्छति।
(औ० वि० चर्चा)

[illegible]

श्रीकंठ ने परमेष्ठी आदि ६४ शिष्यों को काव्य-शास्त्र की शिक्षा दी। उन ६४ शिष्यों में सरस्वती का पुत्र 'काव्यपुरुष' अत्यंत श्रेष्ठ तथा देवतों का वंद्य हुआ। प्रजापति ने उसे तीनों लोकों के कल्याण की कामना से काव्य-प्रवर्तना के लिये नियुक्त किया। काव्यपुरुष ने अठारह शिष्यों को अठारह विषय पढ़ाए। काव्यमीमांसा में उन्हीं विषयों पर अठारह अधिकरण हैं।

भारतीय काव्य-रचना का प्रथम श्रेय महाकवि वाल्मीकिजी को है। वह काव्य-शास्त्र के प्रवर्तक तथा आदि कवि कहलाते हैं। रामायण में ही लिखा है कि वह एक बार, मध्याह्न के समय, तमसा-नदी पर, स्नानार्थ जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक क्रौंच-मिथुन (कुलंग-पक्षी के जोड़े) को देखा। उसी समय एक व्याध ने उनमें से एक को बाण से मार डाला। यह दुर्घटना देखकर ऋषि का कोमल हृदय करुणा से द्रवित हो गया, और एकाएक उनके मुख से—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः;
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।"

यह पद्य निकल पड़ा। अपने मुख से इस अनुष्टुप् के सहसा निकलने पर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने में देवदेव ब्रह्माजी आए, और बोले—"मेरे ही प्रभाव से तुम्हारे हृदय में कवित्व-शक्ति जाग्रत् हुई है। अब तुम्हें पद्यात्मक रामचरित का प्रणयन करना चाहिए।" यह कहकर वह अंतर्हित हो गए। महाकवि भवभूति ने भी उत्तर-चरित में ऐसा ही उल्लेख किया है। पर राजशेखर ने काव्यमीमांसा में पद्य-रचना का प्राथमिक आविष्कार काव्यपुरुष के द्वारा इस प्रकार लिखा है कि सरस्वती देवी हिमालय पर पुत्र-प्राप्ति के लिये तप कर रही थीं। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर सरस्वती से कहा—"मैं तुम्हारे लिये अभी एक पुत्र उत्पन्न करता हूँ।" उसी समय एक दिव्य बालक प्रकट हुआ, और उसने तत्काल निम्न-लिखित पद्य के द्वारा सरस्वती की स्तुति की—

"यदेतद्वाङ्मयं विश्वमर्थमूर्त्या विवर्तते;
सोऽस्मि काव्यपुमानम्ब पादौ वन्देय तावकौ।"

अर्थात् यह जो वाङ्मय विश्व अर्थ-रूप में परिणत होता है, माता, वही मैं काव्यपुरुष तुम्हारे चरणों की वंदना करता हूँ।

सरस्वती ने प्रसन्न हो उसे गोद में उठा लिया, और कहा—"हे छंदोमयी वाणी के बनानेवाले पुत्र! तूने मुझ वाङ्मयी माता को भी हरा दिया। लोग यह बहुत ठीक कहते हैं कि 'पुत्रात्पराजयो द्वितीयं पुत्रजन्म', अर्थात् अपने पुत्र से हारना मानो दूसरे पुत्र का जन्म होना है। तुझसे पहले, वेदों के अतिरिक्त, विद्वानों ने गद्य देखा था, पद्य नहीं।"

प्राचीन आर्य-ऋषियों के मस्तिष्क आधिदैविक विज्ञान से परिपूर्ण थे। वे प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में अधिष्ठात्री देवता की प्रतिकृति देखते थे। वेदों में सूर्य को ब्रह्मा, उषा को सरस्वती, रात्रि को अहल्या, तथा सूर्य को इंद्र माना है। पौराणिकों ने उन भावों को आख्यान के रूप में विकसित किया है। वैदिक साहित्य ही नहीं, किंतु लौकिक साहित्य भी इन्हीं भावों से ओतप्रोत है। मालूम होता है, राजशेखर ने भी तदनुसार काव्य को पुरुष-रूप में माना और आख्यान-रूप में उसका वर्णन किया है। काव्यपुरुष के समर्थन में ऋग्वेद का निम्न-लिखित मंत्र भी उन्होंने उद्धृत किया है—

"चत्वारि शृंगास्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य ;
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां३आविवेश ।*"

राजशेखर ने इस मंत्र की व्याख्या नहीं की। पर नाट्य-शास्त्र के रचयिता भरत मुनि ने इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है कि साहित्य-रूप वृषभ मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ। उसके चार वर्ण चार सींग, तीनों स्थान (उरःस्थल, कंठ और शिर) तीन पैर, दो प्रकार के (साकांक्ष और निराकांक्ष) काकु सिर और सातों स्वर हस्त हैं।

काव्यमीमांसा में राजशेखर ने लिखा है—कवि को चाहिए कि काव्य-रचना में तब प्रवृत्त हो, जब काव्य-विद्या में भली भाँति योग्यता प्राप्त कर ले। नाम-धातु, अभिधान-कोश, छंदोविचिति, अलंकार-तंत्र, ये काव्य-विद्याएँ, तथा ६४ कलाएँ और देशवार्ता, विदग्धवाद, लोक-यात्रा, विद्वद्गोष्ठी, प्राचीन कवि-निबंध, ये उपविद्याएँ कहलाती हैं।

"स्वास्थ्यं प्रतिभाभ्यासो भक्तिर्विद्वत्कथा बहुश्रुतता ;
स्मृतिर्दार्ढ्यमनिर्वेदश्च मातरोऽष्टौ कवित्वस्य ।"

स्वास्थ्य, प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वत्कथा, बहुश्रुतता, स्मृति, दृढ़ता, अनिर्वेद (न ऊबना), ये आठ बातें कवित्व की जननी हैं।

कवि को नित्य शुचि रहना चाहिए। शौच तीन प्रकार का होता है—वाक्शौच, मनःशौच और कायशौच। वाक्शौच और मनःशौच शास्त्र के अनुशीलन से होता है। कायशौच के लिये कवि को चाहिए कि वह सदा हजामत बनवाए रहे ; हाथ-पैरों के नाखून न बढ़ने दे ; शरीर में अंग-राग-लेपन किए रहे ; क़ीमती और स्वच्छ वस्त्र पहने ; बालों में फूल लगावे। कवि का जैसा स्वभाव होता है, उसका काव्य भी तदनुरूप होता है। लोक में कहावत है—"जैसा चितेरा वैसा चित्र।" कवि और काव्य पर भी यही कहावत चरितार्थ होती है। कवि का भवन खूब स्वच्छ होना चाहिए। उसमें अनेक लताओं और वृक्षों से व्याप्त ऐसा उपवन हो, जिसमें छहों ऋतुओं के कुसुम खिल रहे हों। उपवन में सरोवर, क्रीड़ा-शैल, धारागृह, कुंज, निकुंज-दोला आदि बने हों ; चकोर, क्रौंच, शुक, मयूर आदि पक्षी पले हों। कवि को पहले सोच लेना चाहिए कि मेरा कैसा संस्कार है, किस भाषा पर मेरा पूर्ण अधिकार है, समाज की रुचि कैसी है, और किस विषय में मेरा जी लगता है। इन बातों को खूब विचारकर फिर किसी भाषा का आश्रय लेना चाहिए। पर यह नियम एकदेशी कवि के लिये है। जो स्वतंत्र कवि हैं, उनके लिये सभी भाषाएँ एक-सी ही हैं।

कवि को अपने समीप सदा एक संदूक़, एक स्याह तख़्ता, खरिया मिट्टी, ताड़-पत्र, भूर्ज-पत्र और क़लम-दावात रखनी चाहिए। समीप ही लौह-कंटक-सहित तालपत्र तथा सम्मृष्ट (चिकनी) भित्तियाँ होनी चाहिए*। दशमाध्याय की राज-चर्या में वह लिखते हैं कि राजा को अवश्य कवि होना चाहिए। राजा के कवि होने पर काव्य-शास्त्र को खासी उत्तेजना मिलती है। राजा को काव्य-परीक्षार्थ साहित्य-परिषद् करनी चाहिए। सभाभवन जो काव्य-परीक्षा के लिये बनाया जाय, वह राजा के केलि-गृह (Pleasure-house) से मिला हुआ हो। उसमें १६ स्तंभ (खंभे), चार

* यह मंत्र साहित्य-शास्त्र पर ही नहीं घटित होता। यास्क ने निरुक्त में इस मंत्र की यज्ञपरक और पतंजलि ने महाभाष्य में शब्दपरक व्याख्या भी की है।

* तस्य सम्पुटिका सफलकखटिका समुद्गकः सलेखनी मषी-भाजनानि ताडिपत्राणि भूर्जत्वचो वा सलोहकण्टकानि तालदलानि सुसम्मृष्टा भित्तयः सततसंनिहिताः स्युः। (का० मी०)

द्वार और आठ मत्तवारणी (Turrets) हों। सभा के मध्य में, चार खंभों के बीच, हाथ-भर ऊँची मणिमय वेदी बनानी चाहिए। उसी पर राजा को बैठना चाहिए। वेदी के उत्तर ओर संस्कृत-कवियों को और उनके पीछे मीमांसक, पौराणिक, स्मार्त, भिषक् तथा ज्योतिषियों को विठलाना चाहिए। इसी तरह पूर्व-दिशा में प्राकृत के कवियों को और उनके पीछे नट, नर्तक, गायक, वादक, कुशीलव आदि को बिठलाना चाहिए। पश्चिम-दिशा में अपभ्रंश-भाषा के कवियों को और उनके पीछे चित्रकार, माणिक्य-बंधक (मणि जड़नेवाले), स्वर्णकार, बढ़ई, लुहार आदि शिल्पियों को स्थान देना उचित है। दक्षिण-दिशा में पैशाची-भाषा के कवियों को और उनके बाद भुजंग (वेश्यागामी), गणिका, बाज़ीगर, मल्ल तथा आयुध-जीवी (सैनिक) आदि को आसन देना चाहिए। सबके यथास्थान बैठ जाने पर काव्य-चर्चा होनी चाहिए। कवियों का आदर करने में राजा को वासुदेव, सातवाहन, शूद्रक एवं साहसांक के चरित्र का अनुकरण करना चाहिए। परीक्षोत्तीर्ण कवियों को ब्रह्म-रथ पर चढ़ाना और उनका पट्ट-बंधन (?) करना चाहिए। राजशेखर लिखते हैं—

"श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा—
इह कालिदासमेण्ठावत्रामररूपसूरिभारवयः ;
हरिचन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम् ।"

अर्थात् उज्जयिनी में कालिदास, मेंठ *, अमररूप, सूरि, भारवि, हरिचंद्र * और चंद्रगुप्त की परीक्षा हुई थी।

"श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा—
अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिंगलाविह व्याडिः ;
वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः ।"

अर्थात् सुना जाता है, किसी समय पाटलिपुत्र (पटना) शास्त्रकारों की परीक्षा के लिये बहुत प्रसिद्ध था। यहीं उपवर्ष (पाणिनि के गुरु), वर्ष, पाणिनि (अष्टाध्यायी के रचयिता), पिंगल (छंदःशास्त्र के प्रवर्तक), व्याडि (लक्षश्लोकात्मक संग्रह-ग्रंथ के कर्ता), वररुचि (वार्तिककार) और पतंजलि (महाभाष्यकार) की परीक्षा ली गई थी, और यहीं से परीक्षित हो उनका यश संसार में फैला।

कवि राजा को अपने अंतःपुर में भाषा का नियम अवश्य करना चाहिए। नियमित भाषा होने से उसका सौष्ठव भली भाँति रक्षित रहता है। राजशेखर इस विषय में कुछ साहित्यिक राजों का इतिहास बतलाते हैं।

यथा—"मगध-देश में शिशुनाग-नामक राजा ने अपने अंतःपुर में नियम किया था कि ट, ठ, ड, ढ, श, ष, ह और क्ष का कोई उच्चारण न करे। शूरसेन-देश के राजा कुविंद के अंतःपुर में कठोर और संयुक्त अक्षर कोई नहीं बोलने पाता था। कुंतल-देश के राजा सातवाहन के रनिवास में प्राकृत-भाषा और उज्जयिनी के महाराज साह-

* मेंठ भर्तृमेंठ का ही संक्षिप्त रूप है। भर्तृमेंठ ने हयग्रीववध-नामक महाकाव्य बनाया है।

वक्रोक्त्या मेण्ठराजस्य वहन्त्या सृणिरूपताम् ;
आविद्धा इव धुन्वन्ति मूर्द्धानं कविकुञ्जराः ।
(सूक्तिमुक्तावली)

अर्थात् मेंठराज की वक्रोक्तियाँ अंकुश के समान हैं, जिनकी चोट खाकर कविकुंजर मानो शिर हिलाते हैं।

* महाकवि हरिचंद्र की प्रशंसा बाणभट्ट ने अपने हर्ष-चरित्र में की है—

पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः ;
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते ।
(हर्षचरित्र)

सांक* (विक्रमादित्य) के यहाँ संस्कृत-भाषा ही बोली जाती थी।"

काव्यमीमांसा के १७वें अधिकरण में प्राचीन आर्यावर्त का भौगोलिक वर्णन है। पूर्व और पश्चिम-समुद्र के तथा हिमालय और विंध्य पर्वत के मध्य को आर्यावर्त कहते हैं। आर्यावर्त को पाँच देशों में विभक्त किया है। वे देश पूर्व-देश, दक्षिणापथ, पश्चाद्देश, उत्तरापथ और मध्य-देश हैं। वाराणसी से पूर्व पूर्व-देश और माहिष्मती से पश्चिम का देश दक्षिणापथ है। ऐसे ही देवसभा का पश्चिम-प्रदेश पश्चाद्देश और पृथूदक का उत्तरापथ है। और, इन चारों के मध्य-भाग को मध्य-देश कहते हैं। उपर्युक्त पाँच भागों के पर्वतों, नदियों एवं जनपदों का वर्णन लेख-विस्तार-भय से यहाँ नहीं किया जाता।

तत्कालीन भारतीयों के रंग तथा उच्चारण एवं पाठ-प्रणाली के विषय में राजशेखर लिखते हैं—

"तत्र पौरस्त्यानां श्यामो वर्णः, दाक्षिणात्यानां कृष्णः, पाश्चात्यानां पाण्डुः, उदीच्यानां गौरः, मध्यदेश्यानां कृष्णः श्यामो गौरश्च।"

पूर्वियों का साँवला, दाक्षिणियों का काला, पश्चिम-वासियों का पीला और उत्तर में रहने-वालों का गोरा रंग होता है। पर मध्य-देश में रहनेवालों का रंग काला, साँवला और गोरा होता है।

"पठन्ति संस्कृतं सुष्ठु कुण्ठाः प्राकृतवाचि ते ;
वाराणसीतः पूर्वेण ये केचिन्मगधादयः।"

अर्थात् काशी से पूर्व रहनेवाले मागध आदि का संस्कृत पढ़ने का ढंग अच्छा है ; पर प्राकृत-भाषा के उच्चारण में बेढंगे हैं।

"गौडस्त्यजतु वा गाथामन्या वाऽस्तु सरस्वती ;
नातिस्पष्टो न चाश्लिष्टो न रूक्षो नातिकोमलः।
न मन्द्रो नातितारश्च पाठो गौडेषु वाडवः।"

अर्थात् गौड़ लोग प्राकृत-भाषा नहीं बोल सकते। गौड़ों को चाहिए कि वे या तो प्राकृत भाषा को छोड़ दें, और या प्राकृत-भाषा ही दूसरी हो जाय। गौड़-निवासी ब्राह्मण न अत्यंत स्पष्ट, न अस्पष्ट, न रूक्ष, न कोमल, न मंद और न उच्च पाठवाले हैं।

"गद्ये पद्येऽथवा मिश्रे काव्ये काव्यमना अपि ;
गेयगर्भे स्थितः पाठे सर्वोऽपि द्राविडः कविः।"

अर्थात् गद्य हो, या पद्य हो, अथवा मिश्र काव्य (गद्य-पद्यात्मक) हो, सभी को द्रविड-कवि गा-गाकर पढ़ते हैं।

"पठन्ति लटभं लाटाः प्राकृतं संस्कृतद्विषः ;
जिह्वया ललितोल्लापलब्धसौंदर्यमुद्रया।"

अर्थात् संस्कृत-द्वेषी लाटदेशीय कवि ल, ट भवाली प्राकृत को ऐसी मधुर भाषा में पढ़ते हैं मानो उस पर ललित आलाप से सौंदर्य की मुहर लगी हो।

"सुराष्ट्रत्रवणाद्या ये पठन्त्यर्पितसौष्ठवम् ;
अपभ्रंशावदंशानि ते संस्कृतवचांस्यपि।"

अर्थात् सुराष्ट्र और त्रवण आदि अपभ्रंश की भाँति संस्कृत-वाक्यों को भी अच्छे ढंग से बोलते हैं।

"शारदायाः प्रसादेन काश्मीरः सुकविर्जनः ;
कर्णे गुडूचीगण्डूषस्तेषां पाठक्रमः किमु।"

---

* केऽभूवन्नाढ्यराजस्य राज्ये प्राकृतभाषिणः ;
काले श्रीसाहसांकस्य के न संस्कृतवादिनः।
(सरस्वती-कंठाभरण)

आढ्यराज के राज्य में कौन प्राकृत-भाषी न हुआ, और साहसांक के समय में कौन संस्कृत न बोलता था ?

अर्थात् शारदा देवी के प्रसाद से काश्मीरी लोग तो सुकवि होते ही हैं। उनके पाठ क्रम का क्या कहना, मानो कानों में गिलोय की ही कुल्ली कर देते हैं।

"ततः पुरस्तात्कवयो ये भवन्त्युत्तरापथे ;
ते महत्यपि संस्कारे सानुनासिकपाठिनः ।"

अर्थात् उत्तरापथ के कवियों का चाहे कितना ही संस्कार क्यों न हो, उनका पाठ सानुनासिक ही होता है।

"मार्गानुगेन निनदेन निधिर्गुणानां,
सम्पूर्णवर्णरचनो यतिभिर्विभक्तः ।
पाञ्चालमण्डलभुवां सुभगः कवीनां,
श्रोत्रे मधु क्षरति किञ्चन काव्यपाठः ।"

अर्थात् पांचाल-मंडल के कवियों का सुंदर काव्य-पाठ कुछ अपूर्व ही है। वह यतियों से विभक्त और गुणों की निधि है। उसमें वर्ण रचना के अनुकूल होते हैं, और वह श्रोताओं के कानों में मधु की वृष्टि-सी करता है।

राजशेखर स्त्री-शिक्षा के बड़े प्रक्षपाती थे। इस विषय में उनके विचार बड़े उदार हैं। वह कहते हैं—

"पुरुषवत् योषितोऽपि कवी भवेयुः। संस्कारो ह्यात्मनि समवैति न स्त्रैणं पौरुषं वा विभागमपेक्षते । श्रूयन्ते दृश्यन्ते च राजपुत्र्यो महामात्रदुहितरो गणिकाः कौतुकिभार्याश्च शास्त्रप्रहतबुद्धयः कवयश्च ।"

अर्थात् पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी कवि हो सकती हैं। संस्कार का आत्मा से संबंध होता है। वह स्त्री और पुरुष के विभाग की अपेक्षा नहीं करता। सुनते और देखते भी हैं कि राजकुमारियाँ, मंत्रियों की कन्याएँ, वेश्याएँ और विदूषकों की स्त्रियाँ विदुषी और कवि हैं।

राजशेखर विदेश-यात्रा के भी विरोधी न थे। वह काव्यमीमांसा में लिखते हैं—

"किञ्चन महाकवयोऽपि देशद्वीपान्तरकथा पुरुषादिदर्शनेन तत्रत्यां व्यवहृतिं निबध्नन्ति ।"

अर्थात् महाकवि भी विदेश और द्वीपांतरों में घूमकर अपनी रचना में वहाँ का आचार-व्यवहार लिखते हैं। लेख बहुत बढ़ गया, अतः यहीं लेखनी को विश्राम दिया जाता है।

रामसेवक पांडेय

दो बूँदें

(१)

शरद का सुंदर नीलाकाश,
निशा निखरी, था निर्मल हास ;
बह रही छाया-पथ में स्वच्छ,
सुधा-सरिता लेती उच्छ्वास।
पुलककर लगी देखने धरा,
प्रकृति भी सकी न आँखें मूँद ;
सुशीतलकारी शशि आया,
सुधा की मनो बड़ी-सी बूँद।

(२)

हरित किसलयमय कोमल वृंत,
झुक रहा जिसका पाकर भार ;
उसी पर रे मतवाले मधुप,
बैठकर करता तू गुंजार।
न आशा कर इतनी तू धीर,
कुसुम-रज, रस से लूँगा गूँद ;
फूल है नन्हा-सा नादान,
भरा मकरंद एक ही बूँद।

जयशंकर "प्रसाद"

गौड़ मलार—तीन ताल

स्वरकार—"निपाद"] [शब्दकार—गोविंदवल्लभ

गीत

श्याम घन, हे सुंदर सुकुमार !

[१]

विश्व-जननी के हास समान
कौन तुम अनुपम दयानिधान ?
तुम्हारा धन्य अयाचित दान !
ताप से तप्त भूमि है आज,
बहा दो शीतल जल की धार,
श्याम घन, हे सुंदर सुकुमार !

[२]

दुखी, निर्वासित, दुर्बल वेश—
यक्ष का लेकर दारुण क्लेश—
अश्रु औ' विरहपूर्ण संदेश,
दूत बन जाते हो क्या आज,
विरह-विधुरा बाला के द्वार ?
श्याम घन, हे सुंदर सुकुमार !

[३]

कौन तुम, किसके हो संताप ?
दीन विधवा के करुण विलाप,
या कि दलिता नारी के शाप ?
ताड़ित-गति से जाते हो कहाँ,
—डुबाने को सारा संसार ?
श्याम घन, हे सुंदर सुकुमार !

[४]

भूल कर अपना तन-धन-धाम
रट रहा है वह तेरा नाम,
बहा दे एक बूँद घन श्याम !
बुझा दे उस चातक की प्यास,
जिसे है तेरा ही आधार,
श्याम घन, हे सुंदर सुकुमार !

[५]

इधर तुम बरसाते रस-धार,
प्रकृति ने किया उधर शृंगार ।
आज गाऊँगा राग मलार—
खो चुका हूँ मन का संकोच,
मिल गए हैं वीणा के तार,
श्याम घन, हे सुंदर सुकुमार !

स्थायी

	२				०				३				×			
ग	--	रे	म	ग	ग	री	सा	—	रे	रे	ग	ग	गम	प	म,	ग
श्या	—	म	घ	न	हे	—	सुं	—	द	र	सु	कु	मा-	—	र,	श्या
	—	प	म	प	ध	सां	ध	प	रे	ग	रे	म	गम	प	म,	ग
	—	म	घ	न	हे	—	सुं	—	द	र	सु	कु	मा-	—	र,	श्या

अंतरा

प	—	प	प	प	नी	—	नी	—	सां	ध	सां	रें	सां	—	रें,	रें
वि	—	श्व	ज	न	नी	—	के	—	हा	—	स	स	मा	—	न,	कौ
	ध	नी	म	प	ध	ध	सां	सां	ध	नी	—	प	म	री	प,	म
	—	न	तु	म	अ	नु	प	म	द	या	—	नि	धा	—	न,	तु
	सांध	रे	सां	—	सां	—	रें	सां	रें	मं	रें	मं	गं	—	रें,	सां
	म्हा-	—	रा	—	ध	—	न्य	अ	या	—	चि	त	दा	—	न,	ता
	निसां	रीं	सां	नि	धनि	सां	ध	प	रीग	म	ग	री	गम	प	म,	ग
	--	प	से	—	त-	—	प्त	भू	--	मि	है	—	आ-	—	ज,	ब
	रे	—	म	ग	ग	री	सा	सा	रे	रे	ग	ग	गम	प	म,	ग
	हा	—	दो	—	शी	—	त	ल	ज	ल	की	—	धा-	—	र,	श्या
	—	प	म	प	ध	सां	ध	प	रे	ग	रे	म	गम	प	म,	ग
	—	म	घ	न	हे	—	सुं	—	द	र	सु	कु	मा-	—	र	श्या

नोट—अंतरा आरंभ करते समय स्थायी के अंतिम स्वर (ग / श्या) के बदले (प / वि) लीजिए । शेष अंतरे भी इसी तरह ।

सुमन-संचय

१. धन-कुबेरों के उत्तराधिकारी

हज़रत हाली ने रईसों के सपूतों की महिमा गाई है। बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने भी हाली का अच्छा उपयोग किया है। किंतु भारत में रईसों के सपूतों की करतूतों से सब अभिज्ञ हैं। क्या गाँव का छोटा रईस, क्या शहर का बड़ा रईस, दोनों अपने लल्ला का लालन-पालन एक ही तरह से करते हैं। है भी ठीक। जब हमारा प्रारब्ध-वाद ठीक है, तो धनियों के वंशजों का कर्तव्य ग़रीबों के लड़कों की तरह परिश्रम करना नहीं है। किंतु योरप नास्तिक है। वहाँ धनियों के विचार बदल रहे हैं। वे साम्य-वादियों के सुर में सुर मिलाकर कहने लगे हैं कि बाप-दादों की संपत्ति का भोग करना लज्जा की बात है। इसलिये उत्तराधिकारी का कर्तव्य है कि वह पहले अपने को इस योग्य बना ले कि बिना बाप-दादों की संपत्ति की सहायता के संसार में अपनी गुज़र कर सके। स्वेडन के नोबेल ने अपनी सारी संपत्ति की आय नोबेल-पुरस्कार के लिये दे दी। नोबेल ने कहा है कि मैंने दो कारणों से ऐसा किया। मुख्य कारण यह है कि मेरे बाहु-बल से उपार्जित संपत्ति का उपभोग मेरे लड़के करें, इसे मैं अनुचित समझता हूँ। उनमें जितनी योग्यता है, उतना धन वे कमा लेंगे। दूसरा कारण स्पष्ट है। अमेरिका के अतुल-संपत्तिशाली धनी भी ऐसा कहने लगे हैं। उनमें से अधिकांश के उत्तराधिकारी वास्तव में योग्य हैं। राकफ़ेलर (Rockfeller) संसार के किरासिन तेल का राजा है। इसके सामने भारत का बड़े-से-बड़ा नरेश भी कुछ हस्ती नहीं रखता। भारत-सरकार की साल-भर की आय और इसकी महीने की आय बराबर है! इसके अतिरिक्त जैसे स्वाधीन राजा अपना राज्य बढ़ाने के लिये लड़ाई करते हैं, वैसे ही यह भी बड़ी-बड़ी शक्तियों को लड़ा देता है। अमेरिका के ये व्यवसायी राजे-महाराजे जब इँगलैंड से कहते हैं कि हमारा क़र्ज़ चुका दो, तो पौंड का भाव गिर जाता है। जब जर्मनी से कहते हैं कि हम तुम्हें क़र्ज़ देंगे, तो मार्क का भाव चढ़ने लगता है। तात्पर्य यह कि इनके हाथ में दंड-बल है, जो बक़ौल कौटिल्य के राजा की एक-मात्र शक्ति है। जो हो, राकफ़ेलर का पुत्र जान० डी० राकफ़ेलर जुनियर उतना ही योग्य है, जितना उसका बाप। राकफ़ेलर तो अब अस्सी साल पार कर चुका है, इसलिये उसका लड़का ही सब काम-काज करता है। फ़ोर्ड का नाम भला किसने न सुना होगा? फ़ोर्ड-मोटरकार भारत के देहातों तक में पहुँच गई है। इस हेनरी फ़ोर्ड ने अपनी बुद्धि और बाहु-बल से मोटर का कारख़ाना खोला, और इतना धन कमाया है कि आज वह संसार का सबसे बड़ा धनी पुरुष गिना जाता है। प्रायः तीन साल हुए, उसने काम से छुट्टी ले ली है। दस लाख डालर की पूँजी से उसने

एक समाचारपत्र निकाला है, और अब वह राजनीति के क्षेत्र में आ कूदा है । उसका लड़का अपने काम का बड़ा पक्का है, और कारख़ाने की बड़ी तरक़्क़ी कर रहा है। किंतु है वह बड़ा झेंपू । वह शेर का सामना भले ही कर ले, पर सिवा मज़दूरों के, भले आदमियों की संगति में नहीं रह सकता । उसको कपड़े पहनने और खड़े होने तक का शऊर नहीं है । लेकिन इससे क्या ? अपने विषय का तो वह उस्ताद है । हरिमन रेलों का राजा गिना जाता है । इसने आँख मूँदकर ग़रीबों का रक्त चूसा है । चाहे जिस प्रकार हो, इसे मुनाफ़ा बढ़ाने की चिंता रहती है । किंतु इसके लड़के डब्ल्यू० ए० हैरिमन ने ऐसे उपाय निकाले हैं कि बिना मज़दूरों को अधिक सताए ख़ूब मुनाफ़ा हो रहा है । आस्टोर के हाथ में अमेरिका के बड़े-बड़े बैंक और तारघर हैं । यह भी राकफ़ेलर, फ़ोर्ड आदि की जोड़ है । किंतु इसका उत्तराधिकारी गुलछर्रे उड़ाता है । उसे खेल-कूद, घोड़े-कुत्ते वग़ैरह पालने और शिकार करने का शौक़ है । विन्सेंट आस्टोर का हाल भी पढ़ लीजिए । धन-कुबेर वाडरविल्ट का पुत्र विन्सेंट आस्टोर का दोस्त है । यह भारत के रईसों के सपूतों की तरह रहता है, और 'यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता' का अवतार है । जर्मनी का ह्यूगो स्टिनेस * ग़रीब नहीं, धनी है । धनाढ्य भी ऐसा कि सभी धनियों से टक्कर ले सकता है । अपनी ही खानों से कोयला निकालता है, और अपने ही कारख़ाने में जहाज़ तैयार करता है । साथ ही अपने जंगलों से लकड़ी लाता और अपनी तेल की खानों से जहाज़ चलाने के लिये माज़ुट (Mazut)-नामक तेल पाता है । इसकी यह कैफ़ियत है । इसने चुपके-चुपके अमेरिका के तेल के व्यापार में भी अपना हाथ घुसेड़ दिया है । जर्मनी में तो इसके अगणित कारख़ाने हैं ; किंतु आस्ट्रिया, रूस, रूमानिया, बलगेरिया, पोलैंड, ब्रेज़िल, आरजेंटाइन आदि संसार के अनेक स्थानों में इसके कारख़ाने और खानें हैं । शत्रु के देश फ़्रांस में भी इसकी संपत्ति है । भारत के नीतिज्ञों ने 'किं दूरं व्यवसायिनाम्' कहा है । यह इस उक्ति को चारितार्थ कर रहा है । योरप के व्यवसायी स्टिनेस के उत्तराधिकारी को भगवान् ने सूरत अच्छी नहीं दी तो क्या, सीरत तो दी है । इस समय बंगाल में इसकी औरत है । भारत में ताता की संतान भी अयोग्य नहीं कही जा सकती । मारवाड़ी-समाज में बाबू घनश्यामदास बिड़ला भी वास्तव में योग्य व्यवसायी हैं । जिस समाज में सट्टे का राज्य है, उसको यह व्यवसाय का मार्ग दिखा रहे हैं । किंतु भारत के इन धनियों का योरप और अमेरिका के उन धन-कुबेरों से क्या मुक़ाबला, जो एक-एक दिन में करोड़ों रुपयों की आय रखते हैं ।

* अभी हाल ही में इसकी मृत्यु हो गई है ।—संपादक

× × ×

२. पंचस्नानी महाज्ञानी

भारत में जाड़े के मारे न नहा सकनेवाले लड़के कहा करते हैं—पंचस्नानी महाज्ञानी; जो नित्य नहाय, निश्चय नरक को जाय । हम सयाने लोग इस बात की हँसी उड़ाते हैं । किंतु आयर्लैंड के प्रसिद्ध लेखक बर्नार्ड शा (Barnard Shaw) बूढ़े होकर यह बात कहने लगे हैं । बर्नार्ड शा अपने ढंग के एक ही मनस्वी हैं । आप मौलिकता और हास्य-रस के अवतार, हलके साम्य-वाद के प्रचारक, और नई बात कहने के लिये प्रसिद्ध हैं । सो सबसे बढ़कर नई बात जो उन्होंने कही है, वह यह कि "बिना नहाए रहना स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है ।" यह सिद्धांत उन्होंने विज्ञान के आधार पर नहीं निकाला है । वह साहित्यिक खोजी ठहरे, उन्हें विज्ञान के कोरे क्षेत्र से क्या मतलब ? किंतु वह कहते हैं 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्'—एस्किमो-जाति को देखो, और उससे सबक़ सीखो । इस जाति के लोग नहाना पाप समझते हैं, पर तंदुरुस्ती में अपना सानी नहीं रखते । इसके अतिरिक्त एस्किमो लोग गंदगी को प्यार करते हैं । बच्चे का मुँह जब मैला हो जाता है, तो मा सारा मैल चाट जाती है । यह ठीक कुत्ते और बिल्लियों का रवाज है । मैल चाट जानेवाली मा बड़ी हट्टी-कट्टी होती है । शा अपने व्याख्यान में कहते हैं—"सभ्यता का अर्थ आराम और जीवन-सुख है । किंतु वर्तमान सभ्यता कष्ट-प्रद और हानिकर है । * * * * हमारी (पाश्चात्य) सभ्यता में मानव-जाति कपड़ों के बोझ और हद से ज़्यादह साबुन तथा पानी के नीचे दबी

जा रही है। एस्किमो-जाति, जो सभ्यता के इन अंगों का उपभोग नहीं करती, वास्तव में सबसे अधिक स्वास्थ्ययुक्त और सुखी जाति है।" शा ने तिब्बत के लोगों को संभवतः नहीं देखा। उनका स्वास्थ्य एस्किमो-जाति के लोगों से किसी तरह बुरा नहीं है, और गंदगी में वे सबसे बाज़ी मार ले जायँगे। इन पंक्तियों के लेखक ने कई तिब्बती ऐसे देखे हैं, जिन्होंने आठ-आठ साल तक मुँह नहीं धोया, पर उनका बदन ऐसा मालूम होता था, गोया इस्पात का बना है। इनके डील-डौल के सामने नाटे चीनी और जापानी कोई हस्ती नहीं रखते। इस कलियुग में भी जो आजानुबाहु देखने हों, तो इन गंदे लोगों का दर्शन कीजिए। कपड़ों में जन्म-भर का मैल जम गया है, बदन कभी धुला नहीं, और सिर के बाल कंघी-तेल के बिना एक दूसरे से सट गए हैं। पर चेहरे से तेल टपकता है। मालूम होता है, हमारे पुरखे गंदगी का माहात्म्य भी जानते थे। इसीलिये तो औघड़ पूजनीय गिने जाते हैं। वाम-मार्ग का आदर आज भी है। पुराणों में पाया जाता है कि वाल्मीकिजी जब तपस्या कर रहे थे, तो उनके ऊपर वल्मीकों का पहाड़-सा खड़ा हो गया था। उसके भीतर खुली हवा और सफ़ाई का जाना असंभव था। तो क्या इस गंदगी के प्रताप से ही उनकी बुद्धि इतनी तीव्र हो गई थी कि उन्होंने संसार का पहला काव्य-ग्रंथ रचा? कौन कह सकता है कि भारत के साधु-संन्यासी गंदगी का महत्त्व नहीं समझते। बदन में राख मलना संभवतः स्वास्थ्य ठीक रखने के लिहाज़ से ही हो। हमारे पहलवान कुश्ती लड़ने के वक़्त बदन में मिट्टी मलते हैं। अतः वे भी जानते हैं कि गंदगी से ताक़त बढ़ती है। किंतु भारत में नित्य न नहानेवाले शायद ही मिलें। हाँ, योरप में साल-दो साल तक न नहानेवाले बिना ढूँढ़े भी मिल जाते हैं। उनका स्वास्थ्य भी बुरा नहीं होता। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम भारतवासियों को भी सभ्यता के इस नए अनुवाद का अनुकरण करना चाहिए। संभव है, कुछ नव्य भारतीय आचार्य शा को गुरु मान लें। पर हम तो कहेंगे—सावधान! हमने एक ऐसे अनुकरण का दुष्परिणाम अपनी आँखों से देखा है। गाँधीजी ने आरोग्यदर्शन-नामक एक पुस्तक लिखी है। उसे पढ़कर हमारे एक बी० एल्० सी० मित्र ने सारा साइंस ताक पर रख दिया, और सुबह कड़ाके की सरदी में नंगे पैरों चलना, ठंडे पानी से नहाना और सू[खी] मूँगफली खाना शुरू कर दिया। फल यह हुआ [कि] महीने-भर के भीतर ही दुनिया से चल बसे! गाँधीज[ी] महात्मा हैं। वैद्य तो नहीं हैं। पर यह पूछता कौन है? जो हो, बर्नार्ड शा का कथन भले ही शीत-प्रधान देशों [के] लिये लागू हो, किंतु भारत में उसका प्रयोग सफल न[हीं] हो सकता। जिस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में लॉ[र्ड] मॉर्ले ने कहा था कि एस्किमो लोगों के कपड़े भारत[-] वासी सहन नहीं कर सकते, उसी प्रकार हम भी न[म्र] निवेदन करेंगे कि उनकी गंदगी भी हम सहन नहीं क[र] सकेंगे। हाँ, शीत-प्रधान योरप सहन कर सकता है। [उ]से यह नया आविष्कार मुबारक हो।

जर्मनी से] धुरंध[र]

× × ×

३. अछूत की पुकार

चूक थी क्या मेरी करतार,
हुआ जो मैं भारत का भार।

नित श्रम कठिन करूँ, तो भी भर-पेट मिले न अहा[र]
सभ्य-समाज अनादर करता, कह अछूत, दुतका[र]
विविध यंत्रणा पाता मेरा दीन, दुखी परिवा[र]
आर्तनाद करता हूँ, कोई सुनता नहीं गुहा[र]
चरण-कमल-रज सिर पर रखते जिनकी कर सत्का[र]
वे ही, आह, घृणा करते हैं! कैसा है सुविचा[र]
उत्सव, सभा, कूप, मंदिर में जाने पर फटका[र]
करने का शुभ कर्म न हमको कुछ भी है अधिका[र]
कष्ट-कथा मैं कहूँ कहाँ तक तुमसे करुणागा[र]
मनुष्यत्व की मर्यादा को मिटा रहा आचा[र]
या तो अब अस्तित्व मिटा दो, अथवा अत्याचार
"विकल" जाति-अपमान उठाकर जीने को धिक्का[र]

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव "विकल"

× × ×

४. पांडेयजी का प्रमाद

गत फाल्गुन-मास की माधुरी में हमारा 'वर्षा-ऋतु औ[र] चक्रवाक'-शीर्षक एक छोटा-सा नोट छपा था। इस नोट [में] हमने श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के आधार पर यह प्रम[ा]णित किया था कि वर्षा-ऋतु में चक्रवाक भारत से अन्य[त्र] चले जाते और शरद्-ऋतु में फिर यहाँ आ जाते हैं[।] गत वैशाख की माधुरी में विद्वद्वर पं० रामसेवक[जी]

पांडेय ने 'साहित्यभूषणजी की भूल'-शीर्षक एक लघु लेख लिखकर हमारी भूल दिखलाई है। हमने अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार पांडेयजी के लेख पर बहुत विचार किया; पर हमें अपनी भूल नहीं समझ पड़ी। हमारे लेख के विरुद्ध पांडेयजी ने यह लिखने की कृपा की है—"मेरी तुच्छ सम्मति में यहाँ पर साहित्यभूषणजी से अर्थ समझने में भूल हुई है। उपर्युक्त पद्यों का अर्थ यों है कि इस समय (वर्षा-ऋतु में) मानस-वास के लोभी हंस चल दिए, और चक्रवाक अपनी प्रियाओं से समन्वित हो रहे हैं। 'सम्प्रस्थिताः' इस पद्य के पूर्वार्द्ध में दो वाक्य हैं। 'मानसवासलुब्धाः' हंसों के लिये आया है, 'चक्रवाकाः' का विशेषण नहीं है। द्वितीय वाक्य में 'भवन्ति' क्रिया का अध्याहार होता है।"

इस पर निवेदन है कि विज्ञवर पांडेयजी ने गोविंद-राज प्रभृति टीकाकारों के आधार पर, विना अधिक विचार किए, ऐसा लिख दिया है। यदि पांडेयजी ने श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के इस स्थल का ध्यान-पूर्वक अध्ययन करने की कृपा की होती, तो आप इन (प्रकृति-पर्यवेक्षणानभिज्ञ) टीकाकारों के अर्थ को कदापि युक्ति-संगत न मान बैठते। पांडेयजी से निवेदन है कि कृपा करके कम-से-कम एक बार इस पर फिर गंभीरता-पूर्वक विचार करने की कृपा करें।

यहाँ 'मानसवासलुब्धाः' विशेषण है, संज्ञा नहीं। 'चक्रवाकाः' के लिये ही यह विशेषण दिया गया है। हंसों का यहाँ कहीं नाम नहीं है। यदि आदि-कवि 'मानसवासलुब्धाः' हंसों के लिये लिखते, तो उनको 'चक्रवाकाः' के स्थान में 'राजहंसाः' लिख देने में क्या अड़चन थी?

मेरी समझ में यहाँ 'सम्प्रस्थिता मानसवासलुब्धाः' और 'अभ्यागतैः' ये दोनों वाक्य चक्रवाकों के लिये ही आए हैं, हंसों के लिये नहीं। 'सम्प्रस्थिताः' को हंसों के लिये अलग कर लेने से चक्रवाकों के लिये 'अभ्यागतैः' का प्रयोग ठीक नहीं समझ पड़ता। 'अभ्यागतैः' का 'आभिमुख्येन सङ्गतैः' अर्थ खींच-खाँचकर लगाना, क्लिष्ट-कल्पना-दोषापत्ति के कारण, किसी तरह ठीक नहीं। और, 'भवन्ति' क्रिया का अध्याहार तो नितांत अनर्गल है; क्योंकि 'सम्प्रति चक्रवाकाः प्रियान्विता भवन्ति' से यह समझ पड़ता है कि वर्षा-ऋतु के सिवा अन्य ऋतुओं में चक्रवाक प्रियान्वित नहीं होते; किंतु यह किसी तरह ठीक नहीं। यह बात सर्वसाधारण में प्रसिद्ध है कि चक्रवाक सभी ऋतुओं में प्रियान्वित रहते हैं। इसीलिये इनको 'द्वंद्वचर' कहते हैं।

'अभ्यागतैः' इस श्लोक में पांडेयजी ने 'स्मरप्रियैः' के स्थान में 'सरःप्रियैः' पाठ लिखा है। यदि यही पाठ मान लिया जाय, तो भी हमारी कुछ क्षति नहीं; प्रत्युत 'सरःप्रियैः' यह पाठ 'मानसवासलुब्धाः' इस विशेषण को चक्रवाकों के लिये ही स्पष्टतया पुष्ट करता है। हमारे लेख में 'पुलिनोपघातैः' यह पाठ प्रेस के कर्मचारियों की भूल से प्रकाशित हुआ है। हमने 'पुलिनोपयातैः' ही लिखा था।

आगे चलकर पांडेयजी लिखते हैं—"रामाभिरामीय नोट के आधार पर 'अभ्यागतैः' का अर्थ मानस से आए हुए युक्ति-युक्त नहीं प्रतीत होता; क्योंकि वास्तव में मूल-ग्रंथ से मानस का कुछ भी संबंध नहीं है।"

पांडेयजी की यह बात हमारी समझ में नहीं आई। 'मानसवासलुब्धाः' में मानस का स्पष्ट उल्लेख है, और 'सम्प्रस्थिताः' से यह स्पष्ट प्रमाणित है कि चक्रवाक मानस को ही संप्रस्थित हो गए; क्योंकि वे मानस-वास के लोभी हैं। जब वे मानस-वास के लिये संप्रस्थित हो गए थे, तब मानस से ही आए थे, अतः मूल-ग्रंथ से मानस का प्रत्यक्ष संबंध है। यह बात इतनी स्पष्ट है कि यदि दुराग्रह और पक्षपात-परित्याग-पूर्वक विचार किया जाय, तो इसमें किसी तरह के भ्रम की गुंजाइश ही नहीं है। हमारी समझ में यहाँ रामाभिरामीय नोट ही ठीक है, गोविंदराजीय और रामानुजीय नहीं।

पांडेयजी लिखते हैं—"साहित्यभूषणजी का 'सम्प्रस्थिता मानसवासलुब्धाः' का अर्थ इसलिये ठीक नहीं है कि वाल्मीकिजी स्वयं किष्किंधा-कांड के २८वें सर्ग के ३९वें श्लोक में पुनः चक्रवाकों का वर्णन करते हुए कहते हैं—

"नद्यः समुद्वाहितचक्रवाकास्तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा ;
दृप्ता नवप्राभृतपूर्णभोगा द्रुतं स्वभर्तारमुपोपयान्ति।"

अर्थ—नवीन पुष्प-फलादि उपहारों से पूर्ण ऐश्वर्य-वाली, चक्रवाक-रूप स्तनों को उठाए हुए नदियाँ टूटे-फूटे किनारों को हटाकर अपने पति समुद्र के पास जा रही हैं।

चक्रवाक यदि मानस सरोवर को उड़ गए होते, तो फिर नदियाँ स्तन-स्थानीय चक्रवाकों को कैसे समुद्वाहित कर रही हैं ? साहित्यभूषणजी के ये प्रबल प्रमाण तो वर्षा में चक्रवाकों की स्थिति के साधक ही हैं, न कि बाधक।"

हम पांडेयजी से फिर नम्र निवेदन करते हैं कि आप श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के इस स्थल को विचार-पूर्वक पढ़ने की कृपा करें, तो आपको स्पष्ट ही समझ पड़ेगा कि रामायण के इन टीकाकारों का उक्त अर्थ नितांत भ्रम-पूर्ण है। 'समुद्वाहितचक्रवाकाः' का चक्रवाक-रूपी स्तनों को वहाए हुए, यह अर्थ किसी तरह युक्ति-संगत नहीं। मेरी मंद-मति में तो इसका यह अर्थ समझ पड़ता है—'(सम्) सम्यक्प्रकारेण (उत्) उर्ध्वः (वाहिताः) नीताः (चक्रवाकाः) कोकाः याभिस्ताः समुद्वाहितचक्रवाकाः।' अर्थात् नदियों ने चक्रवाकों को बहुत ऊँचे स्थान पर पहुँचा दिया, यानी चक्रवाक बहुत ऊँचे उड़ गए। प्रायः पक्षियों के उड़ने के विषय में यह बात प्रमाणित है कि जो पक्षी जितना अधिक दूर जाने की इच्छा करता है, वह आकाश में उतना ही ऊँचा चढ़ जाता है। यहाँ मानस के सुदूर मार्ग को तय करने के लिये चक्रवाकों का बहुत ऊँचे उड़ जाना सर्वथा युक्ति-युक्त है। अब इस बात के बतलाने की आवश्यकता नहीं कि आदि-कवि ने वर्षा-ऋतु में चक्रवाकों के चले जाने का ही उल्लेख किया है। अतः मेरे प्रबल प्रमाण वर्षा-ऋतु में चक्रवाकों की स्थिति के बाधक ही हैं, न कि साधक।

इसके आगे पांडेयजी ने श्रीरामानुजाचार्य के प्रमाण से चक्रवाकों को हंसों का विरोधी बतलाया है; किंतु इसका कोई दृढ़ प्रमाण नहीं। श्रीयुक्त रामानुजाचार्य का कथन कि 'शरद्गुणसञ्जातहर्षवशात् वैरं विस्मृत्य विहरन्ति न विरोधः' ठीक नहीं समझ पड़ता; क्योंकि आदि-कवि ने हंसों और चक्रवाकों का वसंत-ऋतु में भी साथ-साथ वर्णन किया है। कदाचित् इसके लिये पांडेयजी 'वसन्तगुणसञ्जातहर्षवशात्' कह दें। अस्तु।

पांडेयजी लिखते हैं—"संस्कृत-साहित्य के कवि-समय में वर्षा में हंसों के ही मानस जाने का वर्णन है, चक्रवाकों के नहीं।"

इस पर निवेदन है कि जब संस्कृत-साहित्य में, वर्षा-ऋतु में चक्रवाक-स्थिति-साधक कोई प्रमाण नहीं, तब वर्षा-ऋतु में चक्रवाकों का चला जाना स्वतःसिद्ध है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में तो वर्षा-ऋतु में चक्रवाकों के मानस चले जाने का स्पष्ट ही उल्लेख है। अतः इस विषय में अब और अधिक प्रमाण की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

अपना लेख समाप्त करते हुए पांडेयजी ने लिखा है—

"इस दोहे में ख्याति-विरुद्धता-दोष नहीं है। तब प्रकृति-निरीक्षण में ग़लती कैसे मानी जा सकती है, जब पर्वत और जंगलों के नित्य निवासी प्रकृति-पर्यवेक्षक स्वयं आदि-कवि ही वर्षा में चक्रवाकों का वर्णन करते हैं।"

पांडेयजी का यह कथन सर्वथा असंगत है। आदि-कवि ने वर्षा-ऋतु में चक्रवाक-स्थिति का कहीं वर्णन नहीं किया, उनके चले जाने का अवश्य किया है। वर्षा-ऋतु के बाद शरद्-ऋतु में आदि-कवि ने चक्रवाकों का बार-बार वर्णन किया है। देखिए—

"निःस्वनं चक्रवाकानां निशम्य सहचारिणाम्।
पुण्डरीकविशालाक्षी कथमेषा भविष्यति ॥ १०॥
(श्रीमद्वा० रा०, कि० कां०, ३० सर्ग)

"अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः
स्मरप्रियैः पद्मरजोऽवकीर्णैः।
महानदीनां पुलिनोपयातैः
क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः ॥ ३१ ॥
(श्रीमद्वा० रा०, कि० कां०, ३० सर्ग)

"विदार्य कारण्डवचक्रवाकान् महारवैर्भिन्नतटा गजेन्द्राः।
सरस्सु बद्धाम्बुजभूषणेषु विक्षोभ्य विक्षोभ्य जलं पिबन्ति ॥४३॥
(श्रीमद्वा० रा०, कि० कां०, ३० सर्ग)

"सचक्रवाकानि सशैवलानि काशैर्दुकूलैरिव संवृतानि।
सपत्ररेखाणि सरोचनानि वधूमुखानीव नदीमुखानि ॥ ५५ ॥
(श्रीमद्वा० रा०, कि० कां०, ३० सर्ग)

"प्रसन्नसलिलाः सौम्य कुररामिनिनादिताः।
चक्रवाकगणाकीर्णा विभान्ति सलिलाशयाः ॥५७॥
(श्रीमद्वा० रा०, कि० कां०, ३० सर्ग)

"हंससारसचक्राह्वैः कुररैश्च समन्ततः।
पुलिनान्यवकीर्णानि नदीनां पश्य लक्ष्मण ॥६३॥
(श्रीमद्वा० रा०, कि० कां०, ३० सर्ग)

इसी तरह वसंत-ऋतु में भी आदि-कवि ने चक्रवाकों का वर्णन किया है; किंतु लेख-वृद्धि-भय हमें उसके उद्धृत

करने से विरत रखता है। पाठकगण उसे किष्किंधा-कांड के प्रथम सर्ग में पढ़ने की कृपा करें। अब वाचकवृंद विचारें कि 'पावस०' इस दोहे में ख्याति-विरुद्धता के साथ ही प्रकृति-निरीक्षण में भी ग़लती है या नहीं? पर्वत, जंगल और नदियों के रहनेवालों, विशेष कर शिकारियों, से यदि पांडेयजी ने दर्याफ़्त किया होता, तो वे आपको स्पष्ट बतला देते कि वर्षा-ऋतु में चक्रवाक यहाँ कहीं नहीं दिखाई देते। इस प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं समझ पड़ती। इन सब बातों पर विचार करने से सिद्ध है कि इसमें हमारी भूल नहीं, पांडेयजी का ही प्रमाद है।

श्रीलक्ष्मणसिंह क्षत्रिय

× × ×

५. स्मृति

घूमकर घूँघट जब खोला,
मौन मुख हँसकर क्या बोला?
दिखाकर झलक ओट में किया,
न कुछ कहने का अवसर दिया।
लाज से झिझका—सिर झुक गया,
न-जाने क्या सोचा, रुक गया।
सकुचकर लौटा रहा न और,
गड़ाई दृष्टि एक उस ठौर।
"लौट जा," कहा हृदय ने वहीं,
हाथ धर लज्जा बोली "नहीं।"
द्वार आशा के आश्रय लिया,
अधर में उसने लटका दिया।
धैर्य का दिया हिंडोला डाल,
चली वह गई वहीं बैठाल।
लटकती अलक, नुकीले नैन,
न लेने देते पल-भर चैन।
मंद मुसकान, मनोहर मूर्ति,
करे उद्विग्न चित्त की स्फूर्ति,
रही है मन-मंदिर में झूल,
नहीं स्मृति उसको सकती भूल!

"कोई"

× × ×

६. महाकवि वृंद

माधुरी की किसी पिछली संख्या में महाकवि वृंद के ऊपर श्रीयुत भागीरथप्रसादजी दीक्षित का लेख अकस्मात् देख पड़ा। इससे पहले का जो लेख था, वह मैंने नहीं देखा; परंतु यह मैं कह सकता हूँ कि दोनों महाशयों के लेखों में महाकवि के विषय में कुछ त्रुटि अवश्य है। वृंदजी का जन्म मेड़ता (जोधपुर-राज्य) में हुआ था, यह सही है। लेकिन इन्हें सेवक-जाति का ब्राह्मण जो लिखा गया है, और उक्त जाति को गौड़-ब्राह्मणों की शाखा बतलाया गया है, सो सही नहीं है। महाकविजी के वंश में इस समय विजय-दयाल नाम के एक नवयुवक विद्यमान हैं। अजमेर के गवर्नमेंट हाई स्कूल में, नाइंथ क्लास में, आप पढ़ते हैं। इनको इस समय बहुत सहायता की आवश्यकता है। इनसे मैंने महाकवि का चित्र तथा सही जीवन-चरित्र माँगा है। माधुरी में प्रकाशित कराऊँगा।

सेवक-जाति गौड़-ब्राह्मणों की कोई शाखा नहीं है। शाकद्वीपी ब्राह्मण, जो कि बिहार और उड़ीसे की तरफ़ ज़्यादा हैं, उन्हीं की यह शाखा है। एक समय था, जब इस जाति में बड़े मेधावी और विद्वान् सत्पुरुष थे, और इनके द्वारा संसार के हर कोने में वैदिक धर्म का प्रचार होता था। कालांतर में इस जाति के बहुत-से विद्वानों को दूसरे ब्राह्मणों ने अपना लिया। इस जाति का सच्चा इतिहास लुप्तप्राय हो जाने के कारण उन विद्वानों के विषय में जिसने जो चाहा, वह लिख मारा। इन ब्राह्मणों के शाक-द्वीप से भारतवर्ष में आने का कारण कृष्णतनय सांब के कुष्ठ की बीमारी थी, यह भविष्यपुराण में लिखा है। भारतवर्ष में आने के बाद उनको यहाँ के राजा लोग बड़े आदर से अपने यहाँ बुलाते और ग्राम, धन-रत्न दिया करते थे, जिस संपत्ति के कुछ निदर्शन आज भी विद्यमान हैं। यहाँ यह कहना ज़रूरी मालूम होता है कि जैसे राजा लोग आजकल हैं, वैसे ही पहले भी थे। राज्य-संस्था के बदलने पर जैसे आजकल एक राजा के कृपापात्र दूसरे राजा के कृपापात्र नहीं होते, वैसे ही इस जाति की दशा सांब के बाद होती गई। यहाँ तक कि इनको अपने अस्तित्व तक का ज्ञान न रहा, और सेवक-जाति कहलाने लगे।

समय के हेर-फेर से हरएक के मान और प्रतिष्ठा में

फ़र्क़ था जाया करता है। यदि इस बात का कोई उदाहरण देखना हो कि किसी जाति का इतिहास लुप्त हो जाने पर वह कैसी हीनावस्था को प्राप्त हो जाती है, तो इसी जाति को देख लीजिए।

राजपूताने में चौहानों और पँवारों तथा राठौरों के साथ इन लोगों का बहुत पुराना संबंध है। यहाँ के हर-एक देशी राज्य में सबसे प्राचीन राजमंदिर इन्हीं के पास हैं।

हमारा अनुमान है कि इस तरफ़ इन लोगों के लिये 'सेवक'-शब्द का प्रयोग जैनियों के साथ संसर्ग रहने के कारण किया जाता है। वास्तव में बिहार और उड़ीसे के शाकद्वीपी ब्राह्मण और ये एक ही हैं। बहुत दूर अलग-अलग बस जाने से आने-जाने का या अन्य प्रकार का पारस्परिक संबंध टूट-सा गया है। सं० १७६१ में यह महाकवि राजपूताने से ढाके गए थे। उन्होंने वृंद-विनोद-सतसई वहीं बनाई थी। इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि इस जाति के भद्र पुरुष, जिनकी आर्थिक अवस्था अच्छी होती थी, बिहार-प्रांत की तरफ़ आते-जाते रहते थे। राजों के साथ सदा से इस जाति का संसर्ग चला आता है। महाराजा राजसिंहजी और श्रीराजकुँअरि बाई तथा महाराजा सवंतसिंह आदि से भी महाकवि का संबंध था।

रामप्रसाद शर्मा

× × ×

७. भारत की पैदावार

गत वर्ष भारतवर्ष से कच्ची कपास (Raw Cotton) ९१,७०० टन विदेश गई थी। उसका ब्योरा इस प्रकार है—

जापान	भेजी गई	३८,८४१ टन
इटली	,,	११,८०० ,,
चीन	,,	८,००० ,,
जर्मनी	,,	५,६०० ,,
संयुक्त राज्य	,,	६,२०० ,,
स्पेन	,,	५,६०० ,,
बेलजियम	,,	५,२०० ,,
अन्यान्य देशों को	,,	९,०५९ ,,
		९१,७०० टन

गत वर्ष, अर्थात् सन् १९२२-२३ ई० में, भारतवर्ष में गेहूँ ३,०५,५१,००० एकड़ भूमि में बोया गया था उपज १,१३,६१,००० टन हुई थी। सन् १९२३-२४ ई० में ३,०७,२५,००० एकड़ भूमि में गेहूँ बोया गया था, पर १,००,५५,००० टन ही पैदा हुआ!

सन् १९२२-२३ ई० में २,१०,९२,००० एकड़ भूमि में कपास बोई गई थी। किंतु पैदावार केवल ५०,७५,००० गाँठ (Bales) हुई थी। सन् १९२३-२४ ई० में २,२०,८८,००० एकड़ ज़मीन में बोई जाने पर भी कपास की उपज प्रायः बराबर ही है।

सन् १९२२-२३ ई० में ४६,९२,००० एकड़ भूमि में तिल बोए गए थे। उनकी पैदावार ४,८१,००० टन हुई थी। किंतु सन् १९२३-२४ ई० में ५०,१८,००० एकड़ ज़मीन में बोए जाने पर भी उसकी उपज केवल ४,२१,००० टन ही हुई है।

नंदकिशोर अग्रवाल "चौधरी"

× × ×

८. जाग्रत् का स्वप्न

रहस्य जीवन का क्या यही है
कि आवे-जावे मनुष्य जग में;
भँवर में 'आवागमन' के ऐसे
कि ग़ोते खावे मनुष्य जग में।
क़दम-क़दम पर बिछे हैं फंदे,
जगह-जगह दलदलें बनी हैं;
यही सबब है न जीते-जी फिर
निकलने पावे मनुष्य जग में।
विचित्र चौसर है ज़िंदगी की,
कि जिसकी गोटें ये रात-दिन हैं;
जो खेल में एक-एक करके
विफल गँवावे मनुष्य जग में।
तरंग में जब थिरक-थिरक कर
तरंगें इच्छा की नाचती हैं;
तो उनके स्वागत को नेत्र दिल के
स्वयं बिछावे मनुष्य जग में।
है स्वप्न जाग्रत् का ज़िंदगी यह,
मगर न समझे वह देखकर भी;
हृदय की वीणा के शुद्ध स्वर से
कि स्वर मिलावे मनुष्य जग में।

यह जीव क्या है पवन का झोंका ,
इधर से आया, उधर गया यह ;
रहस्य जानेगा वह हि इसका
जो फिर न आवे मनुष्य जग में ।
करे न खुद यत्न जानने का ,
न पूछे अज्ञान जौहरी से ;
अमोल जीवन का रत्न "शैदा" ,
वृथा लुटावे मनुष्य जग में ।
"शैदा"

× × ×

९. साधारण से असाधारण किस प्रकार बन जाता है ?

सुना जाता है, प्रतिभा सर्वसाधारण के बाँटे की वस्तु नहीं होती ; उसे कोई बिरले ही पाते हैं । पर जो उत्साह और उद्यम के पुजारी हैं, वे छाती ठोककर, बड़े साहस के साथ, उच्च स्वर से इस सत्य की घोषणा करते हैं कि प्रतिभावान् व्यक्ति जो चाहे हो सकता है । प्रतिभा सबके बाँटे की वस्तु है । जो कोई उस शक्ति का व्यवहार करेगा, जो कोई प्रतिभा का पुजारी बनेगा, वही उसका अनायास अधिकारी हो जायगा । प्रतिभा की बदौलत वह सभी कामों में दक्ष बन जायगा । एक पंडित की भाँति, प्रतिभा, अनेकांश में, चेष्टा द्वारा अर्जन की जा सकती है ।

फ़िलिप्स का कथन है—"हमारे मनोमंदिर में दो कोठरियाँ हैं । उनमें से एक तो हमारे विचारों के एक-त्रित होने का स्थान है । दूसरी कोठरी हमारे क़ाबू का रोग नहीं । उससे हम हमेशा बेख़बर रहते हैं ; क्योंकि उस हमारी बेख़बरी में, स्वयमेव अनेक प्रकार की चिंताएँ उत्पन्न होती रहती हैं । जो व्यक्ति इस कोठरी में संचित संपत्ति को विशेष परिमाण में ग्रहण कर सकता है, वही अपने कर्मक्षेत्र में पारदर्शिता दिखा सकता है ।

"प्रतिभा, कोई ऐसा धन नहीं है, जिसे पाने के लिये, पूर्व जन्म में तपस्या करनी पड़े ; न वह कोई ऐसी विशे-षता ही लेकर उत्पन्न होती है, जो सर्वसाधारण के लिये अलभ्य हो । बरन् वह एक ऐसी शक्ति है, जो अपने अधिकारी पर, उसकी उन्नतावस्था में, प्रसन्न होती और उसे संसार में असाधारण सिद्ध कर देती है ।"

हमारे बालक-बालिकाओं को जिस अवस्था में लिखना-पढ़ना सिखाया जाता है, यदि उससे भी कम अवस्था में उन्हें लिखाया-पढ़ाया जाय, यदि उनके सामने यथार्थ उन्नत आदर्श स्थापित किए जायँ, यदि उनकी पार्श्व-वर्ती अवस्था और सामग्री नियंत्रित रहें, तो वे केवल नीति-मान् ही नहीं, बुद्धि वृत्ति और मानसिक शक्ति में भी प्रतिभावान् व्यक्तियों के समीप खड़े हो सकते हैं । संसार में अनेक श्रेष्ठ कवि, दार्शनिक और विज्ञानवेत्ता जन्म लिया करते हैं । उनके जन्म का यह उद्देश्य नहीं होता कि साधारण मनुष्य उनके कार्यों को देख विस्मित दृष्टि से उनकी ओर ताका करें । उनके उत्पन्न होने का उद्देश्य यह होता है कि वे जन-साधारण को बतावें कि एक साधारणतम व्यक्ति भी चेष्टा करने और उद्योग का उपासक होने से कुछ-न-कुछ बन जा सकता है !

पीछे हम जिस अज्ञात कोठरी का ज़िक्र कर आए हैं, जिसमें हमारी अज्ञात चिंता या विचारों का घात-प्रतिघात होता रहता है, मनस्तत्त्वविद् लोग उसका श्रेष्ठ प्रमाण यह दिखाते हैं कि जाग्रत्-अवस्था में जिन विषयों की मीमांसा नहीं होती, वे कभी-कभी स्वप्नावस्था में स्वयं सुलझ जाते हैं । गणित-शास्त्र के अनेक कठिन तत्त्व महीनों सिर मारने पर भी हल नहीं होते ; पर स्वप्न में कभी-कभी उनकी भी मीमांसा होती हुई देखी गई है । सुना गया है, अमुक ख़ज़ांची साहब, अपने व्यापारिक हिसाब-किताब की गड़बड़ को एक दिन बहुत चेष्टा करने पर भी न सुलझा सके ; पर उसी दिन रात को वह स्वयं सुलझ गई ।

औपन्यासिक, संगीतकार और चित्रकारों के जीवन में ऐसी-ऐसी अनेक घटनाएँ घटा करती हैं । कालरिज की कविता "कुबलख़ाँ" स्वप्न में ही रची गई थी । टॉर्टिनी नाम के संगीतकार की विख्यात 'गत' "The Devils Sanata" स्वप्न में बँधी थी । सर बेंजिमिन फ्रेंकलिन ने अपने अनेक तत्त्व स्वप्न में ही खोजे थे । राबर्ट लुई ... सन के लिखे "Doctor Jekyll and Mr. Hyde" नामक उपन्यास का प्लॉट स्वप्न में ही बँधा था कवि-सम्राट् रवींद्रनाथ की अनेक कहानियों के प्लॉट भी स्वप्न में ही बँधे हैं ।

कहने का सारांश यह कि प्रतिभावान् व्यक्ति या निद्रित अवस्था में अपने मन की अज्ञात कोठरी

ही वे प्रेरणाएँ 'inspirations' पाया करते हैं, जिनसे जन-साधारण को प्रचुर आनंद और शिक्षा मिलती है।

ऐसे अनेक दृष्टांत पाए जाते हैं, जिनसे यह सत्य सहज में ही सिद्ध हो जाता है कि प्रतिभावान् व्यक्ति जब किसी विशेष विचार-धारा में बहा करते या मन को विश्राम दिया करते हैं, अथवा यों कहिए कि कोई चिंता या विचार ही नहीं करते, उस समय उनके मन पर, कोई विराट् चिंता आकर, सहसा अज्ञात युग की विचारवती धारा बहा देती है, जिसे वे लिपि-बद्ध कर जनता के आगे रखते और फलतः असाधारण की ख्याति पा जाते हैं।

अनेक श्रेष्ठ कवियों का कथन है कि काव्य-विषय का अभ्यास करते-करते जब वह स्वभाव-सिद्ध हो जाता है, तब अनेक उत्तम भाव और कभी-कभी भाषा भी स्वयं मस्तिष्क में उत्पन्न होने लगती है, और हम उसे तत्काल लिपि-बद्ध कर लेते हैं। मेजर्ट ने अपनी एक पुस्तक की भूमिका में इस बात को स्पष्ट स्वीकार किया है कि मेरी जो रचनाएँ असाधारण कहलाकर संसार में मेरी ख्याति फैला रही हैं, उन्हें मैं तनिक भी महत्त्व की दृष्टि से नहीं देखता; क्योंकि वे एक समय अपने वर्तमान स्वरूप में स्वयं उद्भूत हुई थीं। कवि-गुरु रवींद्र अपनी इस अज्ञात शक्ति को "जीवन-देवता" कहा करते हैं।

मन की उक्त गुप्त कोठरी मानो एक कारख़ाना है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति की पूर्व-प्राप्त अभिज्ञता के स्मृतिफलक घात-प्रतिघात किया करते हैं, और उसके परिणाम-स्वरूप नई-नई चिंता-धाराएँ उत्पन्न होकर सहज ही उसे एक स्थिर सिद्धांत पर पहुँचा देती हैं। स्मृतिफलक ही मानव-प्रतिमा है। जो इसकी तन-मन से पूजा करता है, वह साधारण होकर भी एक दिन असाधारण बन बैठता है।

नरोत्तम व्यास

× × ×

१०. माया

(१)

छिपाऊँ कैसे अपना वेश ?
जब कि चंद्र ही देख रहा है हो करके अनिमेष !
किस मलय-वायु ने घूम-घूम,
किस बकुल-वृक्ष पर झूम-झूम,
किस विकच कुसुम को चूम-चूम,
इस कुटीर में आज अचानक आकर किया प्रवेश !

(२)

होता है अंचल पर स्पंदन,
कहाँ गया सुंदर भोलापन,
कैसा था वह मुग्ध लड़कपन,
यौवन के उल्लास-गर्व में भूली हूँ प्राणेश !

(३)

आज मौन होकर मैं प्रियतम,
देख रही रजनी का कुंकुम,
पर, कैसा है यह निष्ठुर क्रम—
जिसने मेरा गृह-प्रदीप ही बुझा दिया हृदयेश।

(४)

क्या सुनती हूँ अब जीवन-धन—
"अहो कौन?—यह किसका चुंबन?
यह विपक्ष कैसा आलिंगन?"
प्रियतम, यह क्या समझूँ, बोलो, भूलो पिछले क्लेश।

मंगलप्रसाद विश्वकर्मा

× × ×

११. एक मनोरंजक श्लोक

"इतो मनुष्यजातेर्न परे नः प्रत्ययोऽधिकम्;
अत आदेस्तत्र साधुर्धर्मं चरति रक्षति।"

अर्थात् इस मनुष्य-जन्म से अन्यत्र हम लोगों को अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इसी कारण (यही सोचकर) साधु लोग इसमें (मनुष्य-जन्म में) धर्म का आचरण और उसकी रक्षा करते हैं।

इस श्लोक में—

इतो मनुष्यजातेः। न परे नः। प्रत्ययः। अधिकम्।
अत आदेः। तत्र साधुः। धर्मं चरति। रक्षति।

ये जो आठ टुकड़े हैं, सब पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्र हैं। उन्हीं को जोड़कर यह श्लोक मैंने रचा है।

नित्यानंद शास्त्री दाधीच

× × ×

१२. महमूद ग़ज़नवी का विद्या-प्रेम

विद्या-प्रेमी लोग सुल्तान महमूद ग़ज़नवी के नाम से अपरिचित नहीं हैं। वस्तुतः वह एक बड़ा रत्न-प्रिय

बादशाह था। पर कविता के प्रति भी उसका प्रेम कुछ कम न था। इसमें संदेह नहीं कि फ़िरदौसी के मामले में सुलतान ने जो कुछ किया, वह सर्वथा अनुचित और अन्याय था। यह कलंक का दाग़ इतिहास के पृष्ठों से मिट नहीं सकता। परंतु अन्य अवसरों पर विद्वानों और कवियों के संबंध में सुलतान की जो बातें पाई जाती हैं, वे भी अमिट ही होकर रहेंगी। अनेक ऐतिहासिकों का कहना है कि सुलतान के द्वारा बहुत-से कवियों का पालन होता था। एक लेखक का मत स्पष्ट रूप से यह है कि सुलतान के आश्रित कवियों की संख्या ४०० थी। पर मुख्य और सुप्रतिष्ठित कविवर, उंसरी, फ़िरदौसी, असरी, असजदी, गुजारी और फ़र्रुख़ी ही ऐसे थे, जो सुलतानी-दरबार के कवि-रत्न समझे जाते थे।

उंसरी का मान सबसे अधिक था। बादशाह ने उसे कवि-सम्राट् की उपाधि दे रक्खी थी। उसकी स्थिति कवि-मंडली में सूर्य के समान थी। सारे कवियों को हुक्म था कि वे अपनी कविता संशोधन के निमित्त उंसरी को दिखावें, और उंसरी के द्वारा संशोधित होकर ही प्रत्येक की कविता दरबार में पेश हुआ करे। इस बात का नतीजा यह भी हुआ कि बड़े-बड़े कवि उंसरी की प्रशंसा में भी कविता लिखते और अच्छा पुरस्कार प्राप्त करते थे। यहाँ पर यह भी जता देना उचित प्रतीत होता है कि उंसरी को सुलतान ने कितनी संपत्ति दे रक्खी थी। इसका पता बहुत कुछ इसी से लग सकता है कि उंसरी के साथ ऐसे चार सौ दास चला करते थे, जिनकी कमरों में सुनहरी पेटियाँ बँधी रहा करती थीं। जब कभी यह कवि-सम्राट् यात्रा के लिये चलता था, तब इसका सारा सामान चार सौ ऊँटों पर लदकर जाता था। सामान में अधिक वस्तुएँ सोने या चाँदी की ही हुआ करती थीं। यहाँ तक कि देगें भी सोने या चाँदी की ही होती थीं। वास्तव में उंसरी के ऐसे ऐश्वर्य ही के कारण बहुतेरे कवियों ने इसके विषय में बहुत कुछ कहा है।

अयाज़ नाम के अपने एक दास पर सुलतान की बड़ी कृपा थी। एक बार सुलतान शराब के नशे में खूब चूर हो गया था। उस बेहोशी की हालत में सुलतान अयाज़ के गले में हाथ डाल दिए, किंतु तुरंत ही सँभल गया, और अयाज़ को आज्ञा दी कि अपने बाल काट डाल। अयाज़ ने तुरंत ही आज्ञा का पालन किया। प्रातःकाल जब सुलतान सोकर उठा, और अयाज़ को देखा, तो बड़ा व्याकुल हुआ। अंत में एक शाही दरबार में उंसरी को बुलाया, और सारी घटना बयान कर दी। उंसरी ने तुरंत ही एक चतुष्पदी कही—

گر عیب سر زلف تو از کاستن است
نہ جاے بغم نشستن و خاستن است
وقت طرب و نشاط و مے خواستن است
کاراستن سرو ز پیراستن است

भावार्थ—

"यदि प्रिया के बाल कट गए हैं, तो यह कोई बुरी बात नहीं, और न दुःख में ग्रस्त होने ही की है। बल्कि यह बात बड़ी प्रसन्नता की है; क्योंकि सरो का वृक्ष जब छाँट दिया जाता है, तो और अधिक सुंदर हो जाता है।"

सुनकर सुलतान बहुत प्रसन्न हुआ। उसने आज्ञा दी कि उंसरी का मुँह रत्नों से भर दिया जाय। कहते हैं, ऐसे ही तीन बार उंसरी को कविता का पुरस्कार मिला। किंतु एक लेखक कहता है कि मुँह नहीं, उंसरी का दामन रत्नों से भरा गया था। चाहे जो कुछ हुआ हो, यह बात निर्विवाद रूप से सर्वथा सिद्ध है कि सुलतान ने उंसरी को बहुत कुछ दे रक्खा था, और बराबर प्रत्येक अवसर पर दिया ही करता था। एक बार का ज़िक्र है कि शाहज़ादा मसऊद एक अवसर पर खुरासान से ग़ज़नी में आया। सभी कवियों ने दरबार में कविताएँ उपस्थित कीं। सुलतान ने प्रत्येक को बीस-बीस हज़ार रुपए दिए, पर उंसरी और एक अन्य कवि को पचास-पचास हज़ार दिरम (अशर्फ़ी) का पुरस्कार दिया।

इसमें संदेह नहीं कि कोई अन्य कवि उंसरी के समान ऐश्वर्य का अधिकारी नहीं था; पर अपने पद के अनुसार बहुतेरे कवि बड़ी अच्छी स्थिति में थे, और उनको भी पर्याप्त पुरस्कार मिला करता था। उदाहरण-स्वरूप फ़र्रुख़ी कवि का वैभव इतना हो गया था कि जब उसकी सवारी निकलती थी, तो बीस दास, कमर में सुनहरी पेटी बाँधे हुए, उसके साथ चला करते थे। सुलतान ने एक अवसर पर उसे एक बढ़िया घोड़ा दिया था। ग़ज़ारी राज़ी नाम के एक कविवर के विषय में यह लिखा है कि जब वह अपने निवासस्थान में था, तब प्रत्येक कविता पर उसे एक हज़ार अशर्फ़ियाँ मिला करती

थीं। पर दरबार में आने पर उसे, केवल दो पदों के लिये, एक अवसर पर, सुल्तान ने दो हज़ार अशर्फ़ियाँ इनाम में दी थीं। इस प्रकार अपने देश तथा फ़ारसी-भाषा के कवियों के संबंध में सुल्तान की जितनी बातें इतिहासों में पाई जाती हैं, वे सब इस लघु लेख में लिखी नहीं जा सकतीं।

फ़ारसी-कवियों के प्रति प्रेम के अनेक उदाहरणों के सिवा, सुल्तान के विषय में, इतिहास में, एक घटना ऐसी भी है, जिससे इस बात का पता स्पष्ट रूप से चलता है कि एक भारतीय भाषा के पद सुनकर भी वह बहुत प्रसन्न हुआ था।

सन् ४१३ हिजरी में, सुल्तान ने कालिंजर के क़िले को घेर रक्खा था। राजा नंदा ने सुल्तान के पास एक पत्र पद्य में लिख भेजा। वह पद्य क्या था, अथवा उसका भाव क्या था, इसका कुछ पता नहीं। किंतु उस पद्य का असर अवश्य यह हुआ कि सुल्तान ने केवल कालिंजर का घेरा ही नहीं उठा लिया, बल्कि कालिंजर-नरेश के राज्य में भी अपनी ओर से कुछ वृद्धि कर दी।

इसके सिवा यह भी जान लेना चाहिए कि सुल्तान के दरबार (ग़ज़नी) में हिंदू, ईसाई और यहूदी आदि प्रत्येक धर्म के गुणी पुरुष उपस्थित रहते थे। सारा दरबार केवल मुसलमानों से ही भरा नहीं था।

संभव है, कुछ लोग इससे यह नतीजा निकालें कि सुल्तान ने कवियों तथा विद्वानों की जो एक सेना एकत्र कर रक्खी थी, और उस पर असीम द्रव्य की जो वृष्टि होती थी, इसका कारण यह था कि स्तुतिकर्ताओं और ख़ुशामदियों का एक अच्छा जमघट सदैव उसके दरबार में रहे, और राजकाज में बाधा-विघ्न न पड़े। किंतु सच तो यह है कि सुल्तान उक्त प्रकार के किसी भी विचार से यह कार्य नहीं करता था और इतना अधिक व्यय भी व्यर्थ ही नहीं किया जाता था। यह सब कुछ इसलिये था कि साहित्य, इतिहास तथा विद्या की अन्य शाखाओं की उन्नति हो। कवि-शिरोमणि फ़िरदौसी को शाहनामा लिखने का जो महान् कार्य सौंपा गया था, उसी से निःसंशय इस बात का पता चल जाता है कि विद्वानों को धन देने में सुल्तान का उद्देश्य क्या था।

कवि-शिरोमणि फ़िरदौसी के सिवा कुछ कवियों और विद्वानों के कार्यों का वर्णन भी सुनिए। कवि-सम्राट् उंसरी ने सुल्तान की सारी लड़ाइयों का हाल पद्य में लिखा था। बलख़-देश के एक कवि ने न्यायमूर्ति नौशेरवाँ का नसीहतनामा (अर्थात् 'शिक्षाप्रद ग्रंथ') कविता में कर दिया था। कविवर असदी ने फ़ारसी-कोष और 'अलंकार-शास्त्र' की भी एक-एक पुस्तक लिखी थी। इसके सिवा क्या यह कुछ कम महत्त्व की बात है कि ईरान तथा उसके समीप की बहुत-सी बातें जो हम जान सके हैं, उसमें सुल्तान के आश्रित कवियों की रचना से बहुत कुछ सहायता प्राप्त हुई है। फ़ारसी-कविता, जो सुल्तान से पहले से उन्नति पर थी, उसके समय में पूर्ण रूप से उन्नति के शिखर पर पहुँच गई।

यह बात सर्वथा सत्य है कि जिसकी रुचि जिस ओर होती है, अथवा जो जैसा—पंडित या मूर्ख—होता है, वह उसी प्रकार के लोगों का सम्मान करता है। सुल्तान समर-शूर होने के सिवा एक अच्छा विद्वान् भी था। यही कारण है कि वह विद्वानों तथा गुणियों का बड़ा आदर करता था। राज्य में जो बड़े-बड़े विद्वान् थे, उनमें से बहुतों को बुलाकर उसने दरबार में स्थान दिया था। भारत का सुप्रसिद्ध यात्री 'अबू रेहान अलबेरूनी' भी सुल्तान के दरबार में था। जगत्-विख्यात नैयायिक अबू अली सीना (Aviciena) को भी सुल्तान ने निमंत्रित किया था। किंतु वह नहीं आया।

सुल्तान ने ग़ज़नी में एक बड़ा भारी विद्यालय भी स्थापित किया था। उसके साथ ही एक अजायबघर भी था, जिसमें संसार की अद्भुत वस्तुएँ रक्खी गई थीं। इसके सिवा इस बात का भी पता चलता है कि सुल्तान ने "फ़िक़:" (अर्थात् 'स्मृति-शास्त्र') पर एक विस्तृत ग्रंथ रचा था। अंत में यह कहना, संभवतः अनुचित न होगा कि सुल्तान की अपनी विद्वत्ता और विद्या के विषय में जो उदाहरण पाए जाते हैं, वे वास्तव में ऐसे हैं, जिनकी प्रत्येक पक्षपात-रहित मनुष्य अवश्य भूरि-भूरि प्रशंसा करेगा।

महेशप्रसाद

× × ×

१३. फूल

हे फूल ! कहाँ तू भटका, किन काँटों में आ अटका !
हैं सूखी-सूखी डालें, जो तुझे छिपा लें पालें।

ऐसी सुंदरता देकर, पत्तों का दिया तुझे घर।
कैसा विपरीत विधाता, जो जोड़ा ऐसा नाता।
क्या तेरी मधुर हँसी है? सुषमा स्वर्गीय लसी है।
जब इधर-उधर तू हिलता, आनंद दृगों को मिलता।
यह रंगत और कहाँ है, जो तुझमें बसी यहाँ है।
तू चुप होकर वह कहता, कवि जिसे न कह चुप रहता।
कैसा है जादू तुझमें, यह आता नहीं समुझ में।
हैं चेतन जड़ हो जाते, जड़ चेतन-दृश्य दिखाते।
देखा है जब से तुझको, कुछ नहीं सुहाता मुझको।
कुछ ऐसा मस्त हुआ हूँ, देता मैं तुझे दुआ हूँ।
अब आता है यह जी में, तेरी ही वनस्थली में—
रहकर, कर तेरे दर्शन, दे धन्यवाद मेरा मन।

वंशीधर

× × ×

१४. जयपुर की कैबिनेट

आमेर (जयपुर) के राजों में महाराजा पृथ्वीराज बहुत विख्यात हुए हैं। उनकी सच्चरित्रता और उच्च विचार भी प्रसिद्ध हैं। आमेर-राज्य को १२ भागों में बाँटकर प्रधानाध्यक्ष को प्रेसीडेंट मानने का नियम पहले-पहल उन्हीं ने नियत किया था। उनके उन्नीस पुत्रों में से उदार-चरित गोपालजी चौथे बेटे थे। उनसे 'नाथावत'-वंश चला है। कछवाहों में नाथावत बड़े ही विख्यात और राजरक्षक माने जाते हैं। पृथ्वीराज के अंश से उत्पन्न होने के कारण नाथावतों और आमेर के राजों में पिता-पुत्र का संबंध माना जाता है। नाथावतों में चौमूँ और सामोद के सरदार उच्च श्रेणी के हैं। आरंभ (सं० १६२१) से लेकर अब (सं० १६८१) तक ये सच्चे 'स्वामिभक्त' तथा अद्वितीय 'राजरक्षक' माने जाते हैं। इस गुण की प्रधानता से इनको अलभ्य अधिकार प्राप्त हैं। 'जयपुर-राज के पटेल' नाम का उच्च अधिकार इन्हीं के हस्तगत है। पटेल का अर्थ यह किया जाता है कि राज्यासन रूढ़ होनेवाले राजों की स्वीकृति-जैसे प्रधान कामों में इनके हस्ताक्षरों का प्राधान्य होता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जयपुर-राज्य के वर्तमान सामंतों में चौमूँ के ठाकुर साहब श्रीमान् देवीसिंह महोदय शिक्षित, सुयोग्य, सच्चरित्र और सत्यवक्ता सरदार हैं। गत संवत् १६७८ के फाल्गुन में स्वर्गीय जयपुर-नरेश ने जिस समय जयपुर के लिये उत्तराधिकारी का प्रस्ताव किया, उस समय उक्त ठाकुर साहब ने उस पर हस्ताक्षर करते समय महाराज से कुछ निवेदन किया था; किंतु महाराज को उसमें भ्रांति हुई, और उन्होंने ठाकुर साहब के हस्ताक्षरों की अवहेलना कर दी। उसका फल यह हुआ कि जयपुर के धन, धर्ता, विधाता वर्तमान महाराजा मानसिंहबहादुरजी, जो कुछ दिन पीछे प्रकट होते, तत्काल प्रकट हो गए, और मोर-मुकुट की मनोहर छवि से जयपुरी प्रजा आनंद-पुलकित हो गई। ऐसा होने से चौमूँ के ठाकुर साहब की कड़वी गिलोय के मीठे गुण को देखकर महाराजा माधवसिंह ने उक्त ठाकुर साहब के अपराध क्षमा करने का निश्चय किया; किंतु दुर्भाग्यवश उसी अवसर में वह परलोक सिधार गए, और उनका सद्विचार मन ही में रह गया। लोग जानते हैं, उन्होंने अपनी बीमारी के दिनों में 'महकमा ख़ास' स्थापित करके अपने अधिकार के प्रायः सभी काम पंच मुसाहबों के हस्तगत कर दिए थे। उसी महकमा ख़ास के सुयोग्य अधिकारियों ने महाराज की मृत्यु के पीछे पूर्वोक्त मनोमालिन्य मिटा दिया, और स्वर्गीय महाराज के मन में चौमूँ के ठाकुर साहब को क्षमा करने की जो वासना बाक़ी रह गई थी, उसे पूर्ण किया। हमको यह सुनकर संतोष होता है कि महकमा ख़ास के दूरदर्शी और उदार-पदाधिकारियों ने चौमूँ तथा डिग्गी के जो गाँव ज़ब्त थे, वे वापस दे दिए, और चौमूँ-नरेश को जो 'रनथंभोर' के दुर्गाध्यक्ष होने का परंपरागत अधिकार था, वह फिर प्रदान कर दिया। एतदर्थ हम वर्तमान महाराजा मानसिंहबहादुर और कैबिनेट के उच्चाधिकारियों को धन्यवाद देते हैं, और चौमूँ-नरेश श्रीमान् ठाकुर देवीसिंह महोदय को बधाई। यदि हो सका, तो आगामी किसी संख्या में हम इनका सचित्र चरित्र प्रकाशित करेंगे, जिससे पाठकों को इनके आदर्श गुण ज्ञात हो सकेंगे।

हनुमान शर्मा

विज्ञान-वाटिका

१. एक निर्भय तैराक के आविष्कार

न और फ़्रांस के बीच में पीरिनीज नाम का एक पहाड़ है, जिसमें १,२०० फ़ीट घेरे की एक कंदरा है। इस कंदरा के भीतर एक छोटी-सी नदी बहती है, जो घूम-घामकर पहाड़ी के मध्य में लौट आती है। कई स्थानों में कंदरा की छत इस नदी के पानी के भीतर तक चली गई है, जिससे कंदरा के आगे घुसकर यह पता लगाना कि उसके भीतर क्या है, बड़ा कठिन काम समझा जाता था। इस बात का भी ठीक-ठीक पता नहीं था कि पानी के अंदर कंदरा की छत कितनी गहरी गई है। इसलिये किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उसके नीचे से तैरकर आगे जा सके।

मोशियर कैस्टेरेट फ़्रांस के बड़े भारी तैराक हैं। यह टूलू (Toulouse)-विश्वविद्यालय के पुरातत्त्ववेत्ता हैं। इन्होंने प्रण किया कि पानी के भीतर डुबकी लगाकर तैरेंगे, और पता लगावेंगे कि आगे क्या है। इन्होंने अपने साथ रबड़ के थैले में दियासलाई और मोमबत्ती रख ली, और जहाँ कंदरा की छत पानी के अंदर गई थी, वहीं डुबकी लगाई।

एक मील के लगभग तैरने के बाद यह एक सूखी गैलरी (मार्ग) में पहुँचे, जो २२० फ़ीट के लगभग लंबी थी। इसकी दीवारों पर चकमक-पत्थर के औज़ारों से प्रागैतिहासिक काल के जानवरों के चित्र खुदे हुए थे। इन जानवरों के नाम हैं—बाइसन (bison=भैंस की जाति का जानवर), हिरन (stag), मम्मथ (mammoth=बृहदाकार प्राचीन हाथी, जिनकी जाति अब नष्ट हो गई है), रेनडियर (rein deer) और जंगली घोड़े। जानवरों की मिट्टी की मूर्तियाँ भी पाई गई हैं। एक बड़ी मूर्ति रीछ की है, और २० छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं, जिनमें अधिकांश घोड़े की हैं। ऊपर से पानी टपकने के कारण ये मूर्तियाँ बहुत बिगड़ गई हैं। पास ही एक स्त्री के आधे शरीर की मिट्टी की मूर्ति और कुछ बाघ की मूर्तियाँ थीं। दीवार में खिंचे हुए भद्दे चित्र, उँगली की छाप, रीछों के पंजों के चिह्न और गेरू के बने हुए दुर्बोध चित्र भी पाए गए हैं, जो प्रागैतिहासिक काल के होने के कारण बहुमूल्य हैं।

विद्वानों का अनुमान है कि ये २५,००० वर्ष के पुराने हैं।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

× × ×

२. नींद हराम हो जायगी!

साधारणतः मनुष्य दिन-रात में आठ घंटे सोता है,

किंतु यदि बड़े-बड़े मनुष्यों की जीवनी पर ध्यान दिया जाय, तो देख पड़ेगा, उनमें से बहुत-से केवल ४-५ घंटे सोते थे। उनके बड़े होने के कारणों में एक कारण यह भी है कि वे अपने सोने के समय में कमी करके उसी बचे हुए समय को अपनी तथा संसार की उन्नति में लगाते थे। जर्मन दार्शनिक कैंट, नेपोलियन बोनापार्ट, ग्रेट फ्रेडरिक, शिलर, मिरावयू, टेल्सा, एडिसन आदि ऐसे मनुष्य हो गए हैं, या हैं, जो आठ घंटे के बजाय तीन से पाँच घंटे ही सोते थे, या सोते हैं। तीस वर्ष के एक साधारण व्यक्ति की ज़िंदगी का एक-तिहाई हिस्सा (अर्थात् दस वर्ष) सोने ही में कट जाता है। कुछ विद्वान् आयु बढ़ाने का एक उपाय यह भी बतलाते हैं कि सोने के समय में कमी करो। किंतु अब ऐसे उपायों के अवलंबन की आवश्यकता ही नहीं रही। कारण, वेज्ञान 'निद्रा का स्थानापन्न' होकर संसार के सामने आया है।

सबसे पहले हमें यह विचार करना है कि निद्रा क्या है? Psychology आज भी निद्रा को एक रहस्यमय पदार्थ बतलाती है। निद्रितावस्था में मनुष्य क्यों और कैसे बेहोश हो जाता है, स्वप्न क्या हैं, उस समय हमारा चेतन मस्तिष्क क्या करता रहता है, ये सब ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर विज्ञान काफ़ी प्रकाश नहीं डाल सका। किंतु भौतिक (Physical) मस्तिष्क निद्रा-काल में क्या करता है, इसका पता लग गया है। विज्ञान को बहुत दिनों से यह बात मालूम है कि निद्रा-काल में हमारे शरीर में एक प्रकार का परिवर्तन होता है। उस समय हमारा सिर हलका और पैर भारी हो जाते हैं। परीक्षा द्वारा यह भी जाना गया है कि निद्रा-काल में हमारे समूचे शरीर का वज़न कम हो जाता है। किंतु ये परीक्षाएँ निद्रा का रहस्य खोलने में असमर्थ ही रहीं।

इसके बाद कई परीक्षाओं द्वारा यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य का मस्तिष्क कोषों द्वारा बना है। इन कोषों का संबंध मनुष्य के शरीर के प्रत्येक हिस्से से है। अभी पिछले कुछ दिनों तक इन कोषों के विषय में वैज्ञानिकों को बहुत ही थोड़ा ज्ञान था। वे कोषों को अणुवीक्षण-यंत्र द्वारा देख सकते थे, उनका फ़ोटो ले सकते थे, मस्तिष्क के अन्य पदार्थों से उन्हें अलग कर सकते थे; किंतु यह नहीं बतला सकते थे कि वे क्या हैं? तुरंत के मरे हुए मनुष्यों के, लड़ाई में मरे हुए सैनिकों के और जिन ख़रगोशों को बहुत दिनों तक सोने नहीं दिया जाता था, उनके मस्तिष्कों की परीक्षा करके जाना गया कि अनिद्रा-काल में मस्तिष्क के कोषों से कुछ रासायनिक पदार्थ निकल जाता है। पीछे यह भी पता लगा कि कोषों की शक्ति को लौटा लाने के लिये एक-मात्र निद्रा ही की आवश्यकता होती है।

आजकल के डॉक्टर फ्रेज़र हैरिस और डॉक्टर ए० डब्लू० क्रील आदि बहुत-से वैज्ञानिकों का विश्वास है कि मस्तिष्क के कोषों में केवल रासायनिक परिवर्तन ही नहीं होता, बल्कि वैद्युतिक रासायनिक (Electro-Chemical) परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन ऐसा है, जो विद्युत् के द्वारा घटित होता है, किंतु रासायनिक होता है, अर्थात् परिवर्तन का कारण विद्युत् होने पर भी वह रासायनिक ढंग का होता है। यदि यह बात ठीक हो, तो शारीरिक विद्युत् के बदले में कृत्रिम विद्युत् के द्वारा यदि रासायनिक परिवर्तन किया जाय, तो वह वही काम करेगा, जो निद्रा करती है, अर्थात् उससे कोषों में शक्ति का पुनः संचार हो सकता है।

प्रोफ़ेसर आर्थर काटन ने एक ऐसा यंत्र बनाया है, जो कृत्रिम विद्युत् के द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क-कोषों की खोई हुई शक्ति को पुनः ला देता है। मनुष्य को सोने की आवश्यकता ही नहीं होती। दिन-भर का थका मनुष्य—जिसके शरीर की प्रायः सभी शक्ति नष्ट हो गई है—बिस्तरे पर जाकर सोने और आराम करने के बदले एक विद्युत्-विन्यस्त (Insulated) घर में जाकर कुर्सी पर बैठ रहता है। बिजली का एक तार उसके पहुँचे में बाँध दिया जाता है। दूसरे तार का संबंध उसके सिर से कर दिया जाता है। इसके बाद बटन दबाते ही उसके मस्तिष्क-कोष में विद्युत् प्रवेश करती है। पंद्रह मिनट बाद वह घर से ऐसी स्फूर्ति लेकर निकलता है, जैसे वह आठ घंटे सोकर आया हो। वह शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम करने के भी योग्य हो जाता है। फिर उसे सोने की आवश्यकता नहीं रहती।

इस यंत्र से हमारा बड़ा उपकार होगा। हमारा जीवन-काल एक-तिहाई बढ़ जायगा, और उस समय
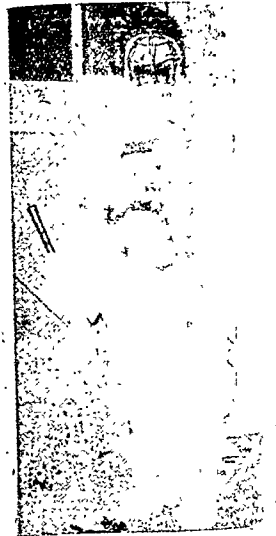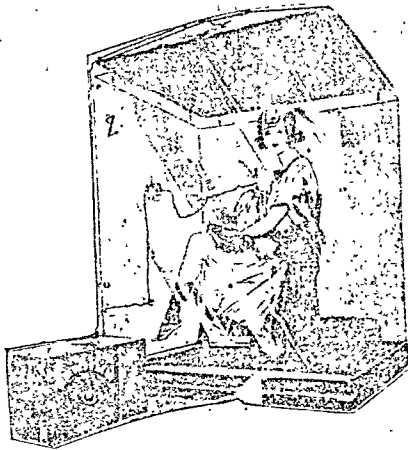
विद्युत्-विन्यस्त घर में एक थकी-माँदी स्त्री बैठी है

(उसके पहुँचे तथा सिर से एक विद्युत-यंत्र का संबंध है । इस यंत्र के द्वारा उसके मस्तिष्क-कार्पों की खोई हुई शक्ति का पुनः संचार होता है)

भेड़ियों से युद्ध करनेवाला योद्धा

में हम अपनी तथा संसार की उन्नति के बहुत-से कार्य कर सकेंगे।

× × ×

३. भेड़ियों से युद्ध की तैयारी

युद्ध करने के कई तरीक़े होते हैं। भिन्न-भिन्न पशुओं के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार से युद्ध किया जाता है। सब पशुओं का सामना एक ही प्रकार से नहीं किया जा सकता; क्योंकि मनुष्य अपनी घात सोचेगा, और पशु अपनी। बुद्धिमानी इसी में है कि शत्रु को कभी ऐसा मौक़ा ही न दिया जाय, जिसमें वह चोट कर सके। सेंट पाल के रुटेनले कार्लसन अपने समूचे शरीर को—सिर से पैर तक—एक काँटदार आवरण से ढककर उत्तरी मानटेरिया के जंगलों में भूके भेड़ियों से युद्ध करने जाना चाहते हैं। यह आवरण गऊ के चमड़े का बना हुआ है। उसमें १,००० से अधिक काँटे जड़े हुए हैं, जिनका नुकीला हिस्सा बाहर निकला हुआ है। सम् आवरण का वज़न १३½ सेर है। हाथ के दस्ताने शिरस्त्राण भी काँटेदार ही है। दाहने हाथ में दो वाली कुल्हाड़ी और एक बड़ा-सा छुरा छाती के बाँधकर कार्लसन भेड़ियों के दल में जायँगे। कुल्हाड़ी तथा छुरे की सहायता से उनका काम तमाम करके लौटेंगे। उन्हें आशा है कि गवर्नमेंट की तरफ़ से इस काम के लिये पुरस्कार मिलेगा।

× × ×

४. कीड़ों की भाव-भंगी

हमारे समान ही कीड़े भी दुःख, शोक, भय, क्रोध, प्रसन्नता आदि में अपने चहरे का भाव बदला करते हैं; किंतु छोटे होने के कारण हम लोग उनके भावों को देख नहीं सकते। अणुवीक्षण-यंत्र द्वारा देखने से उनका सारा भेद खुल जाता है। कोई खूँखार और रक्त
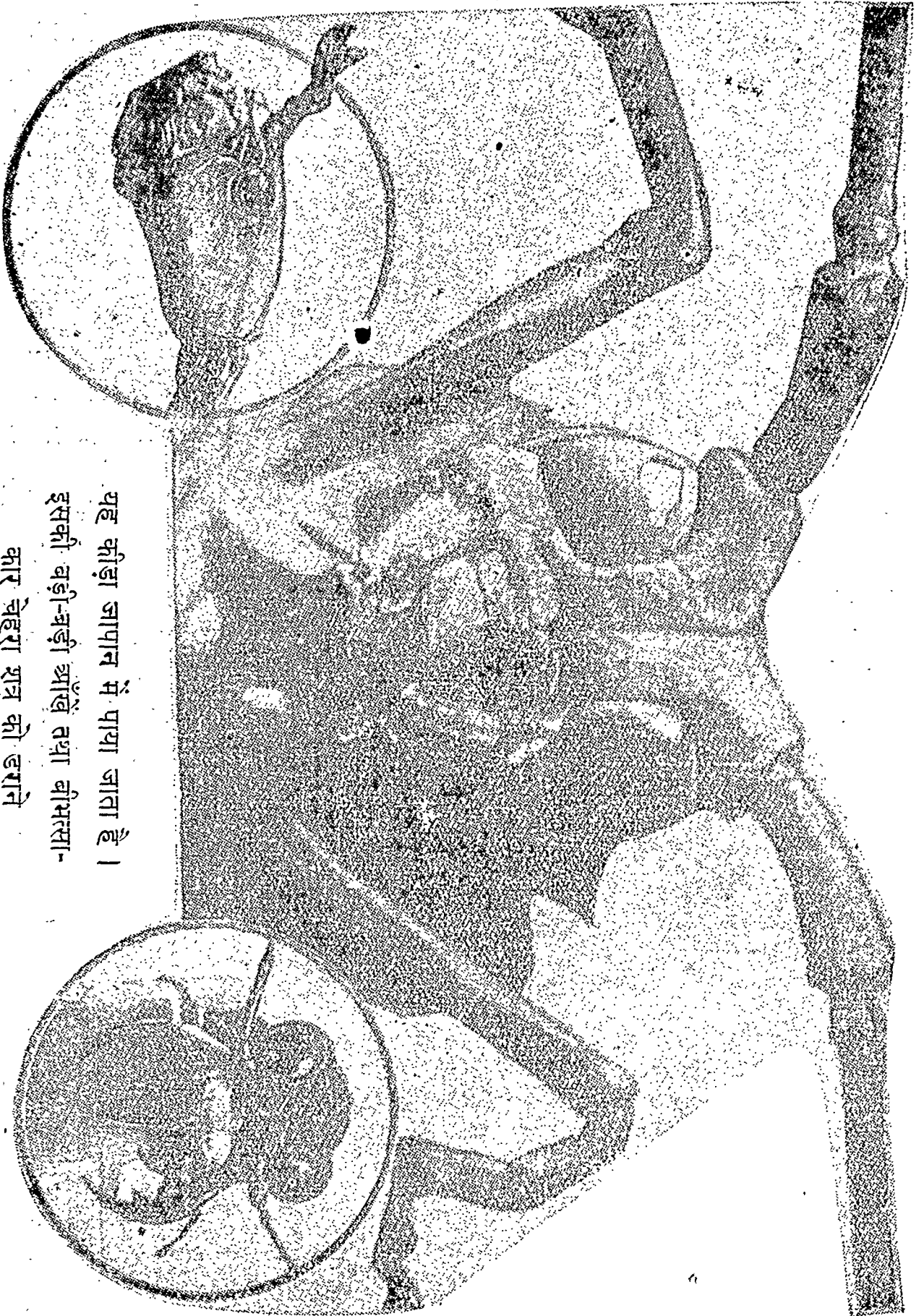
यह कीड़ा बड़ा भयानक और खून का प्यासा होता है

यह कीड़ा जापान में पाया जाता है। इसकी बड़ी-बड़ी आँखें तथा बीभत्सा-कार चेहरा शत्रु को डराने के लिये काफ़ी है

बघ-मुँहे कीड़े की आँखें तथा चेहरे का आकार देखिए, कैसा भयानक है
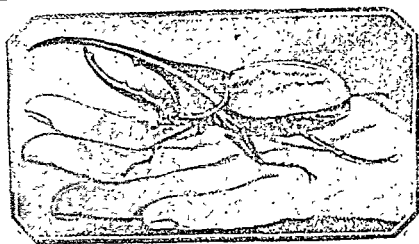
हाथ की तुलना में इस कीड़े का आकार देखिए। इसका नुकीला मुँह केवल शत्रु को डराने के लिये है। असल में वह खुलता नहीं है

प्यासे देख पड़ते हैं, कोई शांत शिष्ट जान पड़ते हैं। कोई उत्तेजित होकर इस प्रकार की आकृति बना लेते हैं, जिसे देखकर डर मालूम होता है। कोई चोट पहुँचाए जाने पर करुण-भाव प्रकट करते हैं। कोई उछल-कूद मचाकर प्रसन्नता का भाव प्रदर्शित करते हैं। कोई सुमधुर शब्दों में गीत गाकर आनंद में मग्न देख पड़ते हैं। कोई शत्रु द्वारा आक्रांत होकर बीभत्साकार धारण करते हैं। चित्रों में कीड़ों के कुछ भाव दिखलाए गए हैं।

× × ×

५. रेकार्ड साफ़ करने का ब्रश

ग्रामोफ़ोन पर नई-नई चूड़ियों को बजाने और सुनने का शौक़ बहुतों को है; किंतु उनमें से बहुत ही कम ऐसे हैं, जो चूड़ियों को बजाने के पहले और पीछे एक बार मुलायम कपड़े से पोंछ लेते हों। जो पोंछते भी हैं, वे जैसे-तैसे कपड़े का व्यवहार करते हैं, जिससे चूड़ियाँ बड़ी जल्दी ख़राब हो जाती हैं। अमेरिका के एक मनुष्य ने रेकार्डों को साफ़ करने का एक ऐसा
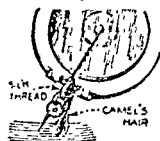
रेकार्ड साफ़ करने का ब्रश

ब्रश बनाया है, जिसे प्रत्येक मनुष्य अपने घर पर बना सकता है। ऊँट के बालों को रेशम के तागे से ग्रामोफ़ोन के उस हिस्से में बाँध दीजिए, जहाँ सुई लगाई जाती है। वे बाल इतने लंबे हों कि सुई लगाकर बजाते समय रेकार्ड को छूते रहें, और सुई से आगे-आगे चलें। यह ब्रश रेकार्ड को बजने के पहले और पीछे साफ़ करता है। चूड़ी शेष हो जाने पर एक स्थान पर जमे हुए मैल को फूँक दीजिए, वह साफ़ हो जायगा।

रमेशप्रसाद

---

१. जापान की स्त्रियाँ और शुद्ध वायु

जापानी स्त्रियों को पहला पाठ यही पढ़ाया जाता है कि शुद्ध वायु-सेवन ही जीवन है। वायु जितनी अधिक शुद्ध रहेगी, जीवन भी उतना ही स्वस्थ और दीर्घ होगा। जापान के घरों की खिड़कियों में शीशे नहीं जड़े जाते। उनके बदले वहाँ तेल का कागज़ लगा रहता है, जो वायु के संचार में किसी प्रकार की अड़चन नहीं डालता। रात में स्त्रियाँ किवाड़ खोलकर सोती हैं, जिससे शुद्ध वायु रात-भर उनके शरीर में लगती है। यदि सरदी पड़ती है, तो वे कुछ ओढ़ लेती हैं, पर किवाड़ नहीं बंद करतीं। वे प्रातःकाल शुद्ध वायु-सेवन के लिये घूमने जाना अपना प्रथम कर्तव्य समझती हैं। वहाँ पर वे यथाशक्ति शुद्ध वायु का सेवन करती हैं। इसको वे प्रातःकाल के स्नान से अधिक आवश्यक समझती हैं। रसोईघर और दूसरे कमरों के किवाड़ सदा खुले रहते हैं। जब बहुत जाड़ा पड़ता है, तो कभी-कभी बंद कर दिए जाते हैं। जापानी स्त्रियाँ शुद्ध वायु का अभाव कभी नहीं सह सकतीं। शुद्ध वायु का सेवन ही उनको सदा स्वस्थ और मज़बूत बनाए रखता है। यही कारण है कि जापान में क्षय-रोग से कोई बिरला ही पीड़ित होता है। जाड़े में भी बिरले ही को खाँसी आती है। बहुत जाड़ा पड़ने पर वे गरम कपड़े पहन लेते हैं; पर शुद्ध वायु के आने-जाने का मार्ग नहीं रोकते।

जापान में शुद्ध वायु का सेवन अन्न से भी अधिक उपयोगी माना जाता है। जो कोई किसी कारण से बाहर नहीं जा सकता, वह खिड़की में खड़ा होकर दीर्घ श्वास लेकर उसका उपभोग करता है।

हिंदुस्तान की स्त्रियाँ यदि जापानी स्त्रियों की तरह शुद्ध वायु-सेवन की ओर यथेष्ट ध्यान दें, और उसका उपभोग करें, तो क्या वे जापानी बहनों की तरह स्वस्थ और बुद्धिमती नहीं हो सकतीं? जिस रोज़ हिंदुस्तानी स्त्रियों के मन में यह बात जम जायगी कि शारीरिक शक्ति पर ही मनुष्य की और सब शक्तियाँ अवलंबित हैं, उसी पर उनका विकास निर्भर है, उसी दिन हिंदुस्तान से सब व्याधियाँ भाग जायँगी, और फिर सुख तथा समृद्धि का साम्राज्य स्थापित हो जायगा।

× × ×

२. चीन की स्त्रियाँ

भारतवर्ष की तरह चीन में भी एक समय ऐसा था, जब वहाँ की स्त्रियों ने अनेक अद्भुत कार्य कर दिखाकर अमर कीर्ति प्राप्त की थी। किसी ने युद्ध में वीरता दिखाई थी, तो किसी ने साहित्य-क्षेत्र में। परंतु ज्यों ही उनके प्रति पुरुषों के विचार में कुछ अंतर पड़ा कि उनके घर की चहारदीवारी में क़ैद होने की नौबत आई। अब तो यह हालत है कि कहीं किसी के यहाँ कन्या का जन्म हुआ कि उसके ऊपर वज्र-सा गिर पड़ा। भारतवर्ष

की तरह वहाँ भी कन्या का जन्म एक बला समझा जाता है। शंघाई में एक फ़्रांसीसी मठ है, जो अनाथ बालिकाओं को आश्रय देता है। वहाँ पूछने से पता लगा कि वहाँ कितनी ही लड़कियाँ जो अच्छे और सुसंपन्न कुल की हैं। जिस लड़की के ग्रह अच्छे नहीं होते, या उसमें और कोई दोष होता है, उसे वहाँ छोड़ दिया जाता है। उसके पालन-पोषण के लिए एक पाई भी नहीं दी जाती। अतः उसका जीवन किसी की दया पर ही निर्भर रहता है। इनकी गुलामी की निशानी इनके छोटे पैर हैं। चीनी कन्याओं के पैर लड़कपन ही से कसकर बँधे रहते हैं, जिससे वे बड़े होने पर भी बहुत छोटे ही रहते हैं। फल यह होता है कि ये स्वच्छंदता से घूम-फिर नहीं सकतीं। चीन में पैर छोटे होना कुलीनता का चिह्न है। चीन में पुरुष विवाहिता स्त्री के रहते हुए भी, अपनी आमदनी के मुताबिक़, अनेक स्त्रियाँ रख सकता है। ऐसी रखैल स्त्रियों की दशा तो बहुत ही बुरी समझनी चाहिए। यद्यपि चीन में पुनर्विवाह का निषेध नहीं है, तथापि वहाँ पतिभक्ति एक महत्त्व-पूर्ण कार्य समझी जाती है। पाश्चात्य देशों की तरह चीन में तलाक़ की प्रथा अधिक नहीं प्रचलित है, पर निम्न-लिखित सात कारणों से वहाँ स्त्री को तलाक़ दी जा सकती है। यथा—बंध्या, ख़राब चाल-चलन की, सास और ससुर का कहा न करनेवाली, बहुत बात करनेवाली, चोरी करने की लतवाली, शंकाशील स्वभाव की अथवा असाध्य रोग से पीड़ित। ऐसी दशाओं में पुरुष उसको तलाक़ दे सकता है। जहाँ की स्त्रियों को न शिक्षा दी जाती है, और न स्वतंत्रता है, वह देश यदि अधम दशा को पहुँचे, तो उसमें आश्चर्य ही क्या?

योरप आदि सुशिक्षित कहे जानेवाले देशों की स्त्रियों में, इधर पचीस वर्षों में, बड़ी जागृति उत्पन्न हो गई है। गत पाँच वर्षों से तो वे अपने अधिकार प्राप्त करने के लिये घोर परिश्रम कर रही हैं। इसका प्रभाव पूर्व पर भी पड़ा है। भारत और चीन, दोनों की कुंभकर्णी निद्रा टूट गई है। चीन में तो आज स्त्रियों की अनेक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। स्त्री-सुधार का श्रीगणेश भी इन्होंने ठीक रीति से किया है। पहले इनका अज्ञान दूर करने का उद्योग किया गया। इनके लिये अनेक पाठशालाएँ स्थापित की गईं। जो स्त्रियाँ पहले ड्योढ़ी के बाहर पैर नहीं रखती थीं, वे आज पुरुषों के साथ विश्वविद्यालय में पढ़ती हैं। कितनी ही स्त्रियाँ तो अपने इष्ट विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिये विदेश गई हैं। केवल युनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ अमेरिका ही में इस समय २०० स्त्रियाँ ज्ञानार्जन कर रही हैं। योरप के और-और देशों का तो हिसाब ही अलग है। परंतु भारतवर्ष की मुश्किल से पचास स्त्रियाँ विदेश गई होंगी। चीन की स्त्रियाँ अधिकतर दो कार्य पसंद करती हैं, एक वकालत का और दूसरा अध्यापिका का। डॉक्टरी भी वे करती हैं; पर दाई (नर्स) के कार्य में उनको विशेष अनुराग है। चीन के १९११ के बलवे में वहाँ की कितनी ही स्त्रियों ने योग दिया था, और ज़ख़्मी सिपाहियों की सेवा-सुश्रूषा की थी। वकालत करनेवाली स्त्रियाँ तो बहुत अधिक हैं। एकआध ने तो हवाई जहाज़ चलाना तक सीख लिया है। कितनी ही स्त्रियाँ, स्त्री-समाज की उन्नति तथा उनको उत्तेजित करने के ध्येय से पत्र-संपादन का कार्य भी करती हैं। 'गर्ल्स डेली' के इस अवतरण से पाठक भली भाँति जान जायँगे कि वहाँ की स्त्रियाँ अपनी उन्नति करने के लिये कितनी तत्पर हैं—"क्या स्त्रियाँ मनुष्य नहीं हैं? फिर उनके प्रति इतनी क्रूरता का व्यवहार क्यों किया जाता है? हाँ, इसके लिये कुछ अंश में स्त्रियाँ आप ज़िम्मेदार हैं। अभी तक उन्होंने अपने अधिकार माँगे ही नहीं। अपने कल्याण के लिये अभी तक उन्होंने कोई उपाय सोचा ही नहीं। उनको चाहिए कि वे समाज में अपनी मान-मर्यादा रखने के लिये कोई आयोजन करें।"

बड़े-बड़े नगरों में स्त्रियों की देशप्रेमी संस्थाएँ स्थापित हुई हैं, जो कि भिन्न स्थानों में स्त्रियों को व्याख्यान देने के लिये भेजती हैं। अब स्त्रियाँ राजकीय विषय में बेधड़क भाग लेती हैं। आज से चार हज़ार वर्ष पूर्व चीन में स्त्रियाँ मंदिर या किसी सार्वजनिक स्थान में एकत्रित नहीं होने पाती थीं, जिसमें वे किसी राजकीय विषय पर चर्चा न कर सकें। पर आज तो वहाँ की बात ही दूसरी है। आज वहाँ के समाज की कुप्रथाओं को दूर करने के लिये वहाँ के नवयुवक और स्त्रियाँ घोर परिश्रम कर रहे हैं।

छन्नूलाल द्विवेदी

× × ×

३. पाश्चात्य समाज में महिलाओं का स्थान

पाश्चात्य समाज की स्त्रियों के स्थान तथा सम्मान की कुछ बातें लिखकर अपने समाज की बातें लिखेंगे। पाश्चात्य समाज की बात उठाते ही सबसे पहले यही कहना पड़ता है कि वहाँ स्त्री और पुरुष, दोनों को लेकर समाज की सृष्टि होती है; केवल पुरुष को लेकर नहीं। वहाँ यदि पुरुष सहयोग न भी करें, तो स्त्रियों में इतनी योग्यता तथा शक्ति होती है कि वे कितने ही अंशों में समाज का परिचालन अच्छी तरह कर सकें। अतः पुरुष स्त्री के ऊपर बेजा दबाव डालकर उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम करा नहीं सकते। जहाँ पर स्त्री और पुरुष में स्वार्थ तथा अधिकार को लेकर झगड़ा उठ खड़ा होता है, वहाँ स्त्री को पुरुष से अलग होकर रहना पड़ता है; क्योंकि पुरुष उस समय स्त्री का प्रतिद्वंद्वी हो उठता है। ऐसी अवस्था में उन्हें भी सामाजिक परिचालन-योग्यता से पूर्ण अभिज्ञ रहना अनिवार्य-सा है। यदि ऐसा न हो, तो उन्हें समाज में 'एकांगी' होकर रहना पड़े। आदर्श समाज वही है, जहाँ नर-नारी परस्पर मेल से रहते हों और जहाँ पर स्वार्थ-संघर्ष की बू-बास तक न हो। पुरुष यदि समाज में निष्कपट भाव से स्त्रियों के स्वत्व तथा मान की रक्षा करते रहें, तभी आदर्श की उत्पत्ति होगी। ऐसा होने पर उन कोमलांगी सुकुमारी रमणियों को इस कठिन संग्राम में प्रवृत्त होकर अपनी सुकुमारता को नष्ट नहीं करना पड़ेगा।

इसके पश्चात् पाश्चात्य देश की महिलाओं के सम्मान की बात सुनिए। हम इसे मानते हैं कि वहाँ स्त्रियों का मान बहुत है; किंतु वह हमारे देश के सामाजिक आदर्श से कुछ भिन्न है। आजकल के नारी-समाज को देखकर कहना पड़ता है कि वे केवल नारी (womanhood) के नाम से ही अपनी प्रतिष्ठा चाहती हैं, समाज या परिवार में रहकर नहीं। वे माता, भगिनी, पत्नी इत्यादि कोई भी नहीं हैं। वे स्वाधीन, बंधनहीन, मानव-समाज का एक अंग-मात्र, केवल नारी हैं। स्त्री-पुरुषों में कोई दल ऐसा भी है, जो परिवार या समाज के बंधन से अलग रह स्वच्छंद विचरण करना चाहता है। इस मतवाद का प्रचार चारों ओर फैल रहा है। इससे समाज का कुछ विशेष मंगल होने का कोई लक्षण नहीं देख पड़ता। तत्काल इसका जो फल प्रत्यक्ष देखने में आ रहा है, वह यह है कि स्त्रियाँ विवाह-बंधन को अस्वीकार करती हुई उसका अनुचित उपयोग कर रही हैं। इनमें एक अविवाहिता मातृसमस्या (unmarried mother's problem) है। यह और कुछ नहीं, केवल ऊँची शिक्षा तथा उत्कट स्वतंत्रता का फल है। कह नहीं सकते, ऐसी स्त्रियों का समाज में कितना आदर होता है। किंतु यह उन्नति-परिचायक है या अवनति-कारक (Retardation), इसके विचार का समय अब आ पहुँचा है। इसी स्वतंत्रता का एक और फल वोट के अधिकार का (Suffragatic agitation) आंदोलन उठ खड़ा हुआ है। पुरुषों की संकीर्णता भी अनेक अंशों में इस नाजुक अवस्था के लिये उत्तरदायी है। किंतु सफ्रेजेट जिस प्रकार काम कर रही हैं, उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि इनकी यह अनधिकार-चेष्टा अधिक दिनों तक चल नहीं सकती। प्रकृति देवी कहाँ तक इसे सहन करेगी, यह विवेचना का विषय है। जीवन में इस आंदोलन से अपेक्षाकृत अधिक सुख-शांति की वृद्धि होना भी तो देखने में नहीं आता। भारतीय महिलाओ, थोड़ा सब्र से काम लेकर देखो तो सही। इसमें संदेह नहीं कि समाज में प्रत्येक स्त्री सचेत होकर रहेगी, इसमें भी शक नहीं कि न्याय करने तथा न्याय पाने में भी वे पीछे नहीं रहेंगी, किंतु केवल इसी के बल पर समाज में हलचल मच जायगी, ऐसी कोई बात नहीं। व्यावहारिक संसार को ध्यान में न लाकर केवल न्याय-शास्त्र का ढोंग रच देने में ही लौकिक काम नहीं चलते। सामाजिक कुरीतियों को छोड़ने तथा सुरीतियों को अपनाने में विशेष सावधानी से काम लेना चाहिए। इतना लिखने का तात्पर्य यही है कि पश्चिम की हवा पूर्वमुखी होकर बह रही है और आँख बंदकर उस हवा के रुख़ की ओर अपनी पीठ फेर देने के हम अभ्यासी होते जा रहे हैं।

× × ×

४. भारतीय समाज में नारी

अब आइए, अपने इस देश की सामाजिक अवस्था का भी निरीक्षण कीजिए। अपने देश के समाज को यदि केवल पुरुष-समाज ही के नाम से पुकारें, तो

हमारी समझ में अनुचित न होगा। हमारे देश के प्रायः प्रत्येक प्रांत में जहाँ कहीं थोड़ी-बहुत भी स्त्री-स्वाधीनता की सत्ता विद्यमान है, वहाँ पुरुषों की ही शासन-नीति चलती है, स्त्रियों की कोई पूछ नहीं। यों तो प्रायः सभी देशों में सामाजिक नियम के बनानेवाले बहुधा पुरुष ही होते हैं, किंतु स्त्रियों का भी उसमें कुछ अधिकार अवश्य रहता है। यही कारण है कि स्त्रियाँ उन-उन देशों में अन्याय के विरुद्ध आंदोलन करने से बाज़ नहीं आतीं, और इस प्रकार पुरुषों का एकच्छत्र शासन वहाँ नहीं चलने पाता। हमारे देश (भारत) में पुरुषों के काम में हमारी स्त्रियाँ हस्तक्षेप नहीं करतीं। पुरातन काल से प्रेम तथा स्वार्थ से प्रेरित होकर पुरुषों ने जो कुछ नियम स्त्रियों के लिये बना दिए हैं, स्त्रियाँ नत-मस्तक हो उनका पालन करती चली आती हैं। इतना होने पर भी पुरुष स्त्रियों की आत्ममर्यादा की रक्षा बराबर नहीं करते आए हैं। पाठक तथा पाठिकाओं में अनेक बोल उठेंगे, वाह साहब! आपने खूब कहा! क्या यह भी कभी संभव है कि पुरुष अपनी प्रेममयी स्त्री के स्वार्थ में आघात पहुँचावे? किंतु हम तो यहाँ तक कहने को तैयार हैं कि संभव सभी है। क्षमता-रूपी मदिरा में एक अजीब शक्ति का समावेश है, इसके लिये मनुष्य संभव, असंभव, सभी कर सकता है। अमेज़न (Amazon) लोग अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये अपना अंग-भंग तक करने में आनाकानी नहीं करते थे। आश्चर्य तो यह है कि भारतीय स्त्री-पुरुषों का पार्थक्य कब से और क्योंकर हुआ? संभव है, भारतीय नारियों ने अपनी कोमलता तथा सुकुमारता के कारण मिली हुई शक्ति को छोड़ दिया हो। अथवा यह भी हो सकता है कि किसी ज़माने में स्त्रियों को अधिकार-च्युत कर दिया गया हो, और उसी का फल उनकी बेटियों को हज़ारों वर्षों से भोगना पड़ रहा है।

भारतीय इतिहास साक्षी है कि महिलाओं के अधिकार छिनते समय उन्हें एकाएक अंधा या पंगु नहीं बना दिया गया। जिस प्रकार धीरे-धीरे समाज के नियम संकीर्ण होते गए, महिलाओं के अधिकार भी उसी प्रकार धीरे-धीरे छिनते गए। उनके इस अधःपतन का दायित्व सर्वांश में पुरुषों पर ही नहीं है। वे स्वयं भी किसी-न-किसी अंशों में उत्तरदायी अवश्य हैं। जहाँ तक मालूम होता है, उनकी उदासीनता तथा आलस ही इसका प्रधान कारण है। जो हो, आज हमारे समाज की जो अवस्था है, उसे देख यह संदेह होने लग गया है कि नारी-शक्ति का अस्तित्व हमारे यहाँ है या नहीं। इस सुअवसर को पाकर पुरुषों ने स्त्रियों पर जो अत्याचार किए हैं, उनका परिणाम यह हुआ कि समाज आज आधा मुर्दा हो रहा है, उसके आधे अंग में लक़वा मार गया है। इस विषय को लेकर समाज में इन दिनों आंदोलन चल रहा है। इसकी और विस्तृत आलोचना करने की आवश्यकता नहीं। सामाजिक प्रश्न न होने पर भी दो-एक बातें यहाँ पर लिख देने को हम बाध्य हुए हैं। जिस दिन महाराज मनु ने अपनी स्मृति में कहा, "पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने; रक्षन्ति स्थाविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।"—अर्थात् बाल्यावस्था में पिता, यौवनावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करे, स्त्रियों को स्वतंत्रता कभी नहीं देनी चाहिए, उसी दिन से स्त्रियों पर विधाता वाम हुए।* परतंत्रता की बेड़ी में स्त्रियों को जकड़कर समाज को कितना लाभ हुआ, सो तो कुछ समझ में नहीं आता, किंतु इतना तो अवश्य हुआ कि समाज का अर्द्धांग—स्त्रियाँ निराश्रय हो गईं। संभव है, उस समय समाज में उदारता का अंश विद्यमान रहा हो, किंतु आज पति-पुत्र-विहीन अबलाओं के लिये कहाँ आश्रय है?

गोपीनाथ वर्मा

---

* लेखक महाशय ने यह किसी बँगला लेख का अनुवाद कर दिया है। इसमें बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिनसे हम सहमत नहीं हैं। हम यह मानते हैं कि समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं है—उसके सुधार की ज़रूरत है। पर इसके हम विरोधी हैं कि पुरुषों को स्वार्थवश स्त्री-जाति के अधिकार हरनेवाला कहकर कोसा जाय, या भगवान् मनु को गालियाँ दी जायँ। स्त्रियों की दशा इस तरह कटु वाक्य-बाण-वर्षा से नहीं सुधर सकती। केवल पुरुषों और स्त्रियों में मनोमालिन्य ही बढ़ेगा। जो मर्द स्त्रियों के पक्षपाती होने का ढोंग दिखाकर ऐसे लेख लिखते या आंदोलन मचाते हैं, वे स्त्रियों का अपकार ही करते हैं। इस विषय पर विस्तृत रूप से हम फिर लिखेंगे।—संपादक

१. कोष

'अभिधानप्पदीपिका'—संपादक, श्रीयुत मुनि जिनविजयजी, आचार्य, गुजरात-पुरातत्त्व-मंदिर, अहमदाबाद। प्रकाशक, किशोरलाल-घनश्यामलाल मशरूवाला, महामात्र गुजरात-विद्यापीठ, अहमदाबाद। छपाई आदि उत्तम। काग़ज़ बढ़िया, सुंदर जिल्द। पृष्ठ-संख्या १६२ ; मूल्य ५)

यह पाली-भाषा का कोष है। इसकी रचना ठीक संस्कृत के अमरकोष के ढंग की है। छोटे-छोटे श्लोकों (अधिकांश अनुष्टुप्) में नामों और लिंगों का दिग्दर्शन किया है। रचना के नियम भी अमरकोष से मिलते-जुलते हैं। निम्न-लिखित पद्यों के देखने से यह स्पष्ट हो जायगा—

भीयो रूपन्तरा साहचरियेन च कत्थचि ;
कचाहध विधानेन भेय्यं थी पुन्नपुंसकम्।
(अभिधानप्पदीपिका)

प्रायशो रूपभेदेन साहचर्याच्च कुत्रचित् ;
स्त्रीपुंनपुंसकं ज्ञेयं साहचर्याच्च कुत्रचित्।
(अमरकोष)

पुमित्थियं पदं द्वीसु सब्बलिंगं च तीस्विति ;
अभिधानन्तरारम्भे भेय्यं त्वन्तमथादि च।
(अ० प०)

त्रिलिङ्ग्यां त्रिष्विति पदं मिथुने तु द्वयोरिति ;
निषिद्धलिङ्गं शेषार्थं त्वन्ताथादि न पूर्वभाक्।
(अमर०)

इसके लेखक हैं मोग्गलानथेर-नामक कोई बौद्ध भिक्षु। इन्होंने ग्रंथ के अंत में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

महाजेतवनाख्यम्हि विहारे साधुसंमते ;
सरोगामसमूहम्हि वसता सन्तवुत्तिना।
सद्धम्मट्ठितिकामेन मोग्गल्लानेन धीमता ;
थेरेन रचिता एसा अभिधानप्पदीपिका।

इन पद्यों का संस्कृत-रूप इस प्रकार होगा—

महाजेतवनाख्ये हि विहारे साधुसम्मते ;
सरोग्रामसमूहे वसता शान्तवृत्तिना।
सद्धर्मस्थितिकामेन० इत्यादि।

इसी परिचय में लिखा है कि लंका में पराक्रमभुज-नामक राजा के राज्य में श्रीयुत मोग्गल्लानथेरजी महाजेतवन-नामक विहार में रहते थे। यह ईसा की बारहवीं शताब्दी के मध्य-भाग की बात है। 'जेतवन' शब्द संस्कृत के जैत्रवन से उत्पन्न हुआ है। विहार का 'महाजैत्रवन' नाम ही सूचित करता है कि उस समय उसमें धुरंधर बौद्ध विद्वान् मौजूद थे। 'मोग्गल्लान'-शब्द संस्कृत के मौद्गलायन से बना है, और 'थेर' स्थविर का पाली-रूपांतर है। मौद्गलायन गोत्रोपाधि है। लेखक का नाम कुछ और रहा होगा। परंतु जैसे आज भी लोग पूज्य-पुरुषों का नाम न लेकर गोत्रोपाधि आदि से ही उनका व्यवहार करते हैं, इसी प्रकार वह उस समय इसी

उपाधि से लोक-विश्रुत रहे होंगे। बौद्ध भिक्षु लोग विहार के नेता के लिये अन्वर्थ स्थविर शब्द का प्रयोग करते थे। यह प्रतिष्ठा और वयोवृद्धत्व का सूचक है। इस प्रकार इस कोष के लेखक एक बहुज्ञ महापुरुष हैं। इसका संपादन श्रीयुत मुनि जिनविजयजी ने बड़ी योग्यता से किया है। पाठकों की सुविधा के लिये आपने संस्कृत के प्रधान नामों का निर्देश भी साथ-साथ कर दिया है। अमरकोष की ही तरह इस ग्रंथ में भी तीन कांड हैं—

(१) 'सग्गकण्डो' (स्वर्गकांड), (२) 'भूकण्डो' (भूमिकांड) और (३) 'सामञ्जकण्डो' (सामान्य-कांड)। पुस्तक के अंत में एकाक्षर-कोष (पाली) विभक्त्यर्थ-प्रकरण पाली और सबकी अकारादि-क्रम-सूची है। अंतिम दोनों पुस्तकें संस्कृत-भाषा से अनूदित की गई हैं। एकाक्षर-कोष के अंत में लिखा है—"सद्धम्मकित्ति नाम महाथेरेन सक्कतभासातो परिवत्तेत्वा विरचितं एकक्खरकोसं" अर्थात् "सद्धर्मकीर्तिनाममहास्थविरेण संस्कृतभाषातः परिवर्त्य विरचितम्"। परंतु संस्कृत में आज कोई ऐसा उत्तम एकाक्षर-कोष उपलब्ध नहीं है, जिसका यह रूपांतर कहा जा सके। यदि मुसलमानी हम्माम की ज्वालाओं से बचा होगा, तो शायद किसी दिन मिल जाय। यह पुस्तक पाली-भाषा के जिज्ञासुओं और पुस्तकालय आदि के लिये सर्वथा उपादेय है। सब बातों पर ध्यान देते हुए मूल्य की अधिकता क्षंतव्य है।

× × ×

२. आध्यात्मिक और वेदांत

अद्वैत-सिद्धि (दो भाग)—श्रीयुत ब्रह्मचारि रामेश्वरदत्त-कृत सरला-नामक हिंदी-टीका-सहित। सुपर-रॉयल आकार। सुंदर, नयन-मनोहर जिल्द। दो भागों में विभक्त। बढ़िया चिकना काग़ज़। छपाई-सफाई अतिरमणीय। पृ०-सं० (दोनों भागों की) १,०४६। पारिभाषिक शब्द-कोष और प्रस्तावना की पृष्ठ-संख्या इससे अलग है। मूल्य १०); "प्राप्ति-स्थान—राज्यरत्न नगरसेठ नारायण भाई केशवलाल पेट लाद, बड़ोदा-स्टेट, देश—गुजरात।"

संस्कृत में 'अद्वैत-सिद्धि', वेदांत-शास्त्र के चोटी के ग्रंथों में से है। यद्यपि चित्सुखी और खंडन-खंड-खाद्य भी शांकर मत के पोषक वेदांत के अत्यंत उद्भट ग्रंथ हैं, परंतु वर्णन-शैली की विशदता और प्रांजलता एवं नव्य न्याय के मार्ग का अनुगमन करनेवाली तर्कानुमान-प्रधान विषय-विवेचन-शैली की दृष्टि से 'अद्वैत-सिद्धि' वस्तुतः अद्वितीय है। इसके सूक्ष्म, गंभीर, परिष्कृत विचारों को ठीक-ठीक समझने की यथार्थ योग्यता रखनेवाले विद्यार्थी काशी-जैसे विद्यापीठ में भी दो ही चार निकलेंगे। और, इसके गहनतम विचारों को आमूलचूल हृदयंगम करा सकनेवाले आचार्यों की संख्या तो इससे भी कम होगी। ऐसे उत्कृष्ट ग्रंथ की भी हिंदी-टीका बनेगी, इसकी हमें आशा नहीं थी। हम समझते हैं कि भारत की किसी भी प्रचलित भाषा में इस ग्रंथ की टीका अब तक नहीं बन सकी है। यह गौरव पहले-पहल हिंदी-भाषा को ही प्राप्त हुआ है। इसके लिये टीकाकार ब्रह्मचारीजी समस्त हिंदी-भाषियों के धन्यवाद-भाजन हैं। हिंदी-भाषा के सहारे ऐसे गहन कानन को पार करके ब्रह्मचारीजी ने वस्तुतः ब्रह्मवर्योचित धैर्य का प्रदर्शन किया है। टीका आपने इस प्रकार लिखी है, जिससे विद्यार्थी को मूल की संगति और समन्वय समझने में सुविधा हो, अतएव भाषा में संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य है, जो अनिवार्य है। टीका की शैली ठीक वैसी ही है, जैसी अध्यापकों को विद्यार्थियों के समझाने के लिये अवलंबन करनी पड़ती है। जिन लोगों को अन्य शास्त्रों के प्रमेयों का परिचय और वेदांत के सिद्धांतों का ज्ञान है, वे इस टीका की सहायता से बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। ग्रंथ के आरंभ में ब्रह्मचारीजी की लिखी प्रस्तावना भी है, जिससे आपकी बहुज्ञता और सामयिक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। यद्यपि आपकी भाषा टकसाली नहीं है, तथापि तात्पर्य समझने में कहीं अड़चन नहीं पड़ती। हम हिंदी-संसार का गौरव बढ़ानेवाली इस टीका का हृदय से अभिनंदन करते हैं। 'अद्वैत-सिद्धि' की बातें सुनने के लिये हिंदी में इसके सिवा कोई साधन नहीं है। अच्छे पुस्तकालयों और ज्ञान-पिपासुओं को यह पुस्तक अवश्य अपनानी चाहिए।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

अध्यात्मतत्त्वालोक—लेखक, न्यायविशारद, न्याय-तीर्थ, मुनि श्रीन्यायविजयजी। मूल संस्कृत-पद्य। गुर्जर-भाषा-

नुवाद, अँगरेज़ी-भाषानुवाद तथा उपोद्घात-सहित। गुजराती-अनुवादक स्वयं मूल-लेखक हैं। अँगरेज़ी-अनुवाद के कर्ता तथा उपोद्घात के लेखक हैं श्रीयुत मोतीचंद झवेरचंद मेहता, फ़र्स्ट असिस्टेंट मास्टर, हाईस्कूल, भावनगर।

मूल संस्कृत में छः प्रकरण हैं, उनमें क्रमशः प्रकीर्णक उपदेश, पूर्वभवा, अष्टांगयोग, कषायजय, ध्यान-सामग्री तथा ध्यानसिद्धि का विवेचन है। गुजराती और अँगरेज़ी-अनुवाद के साथ-साथ विषय को स्पष्ट करने के लिये उदाहरण, कथा आदि भी दी गई हैं, जिनसे उपदेश सुबोध तथा मनोरम हो गया है। उपोद्घात में यह भी सिद्ध किया गया है कि लोग भ्रम-वश जैन-धर्म को नास्तिक मानते हैं, वह वास्तव में नास्तिक नहीं, आस्तिक है। जैन लोग पूर्वजन्म और पुनर्जन्म मानते हैं, ईश्वर को भी मानते हैं। हाँ, ईश्वर का कर्तृत्व नहीं मानते। जैन-सिद्धांत के अनुसार संसार का प्रवर्तक केवल कर्म है; किंतु कर्म को ही प्रवर्तक मानने से नास्तिकता का आरोप करना न्याय नहीं है। इसके प्रमाण में भगवद्गीता से 'न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः' उद्धृत किया गया है। पुस्तक सर्वथा उपदेश-पूर्ण है। छपाई-सफ़ाई भी प्रशंसनीय है।

× × ×

ब्रह्म-विज्ञान (ईश तथा श्वेताश्वतरोपनिषद् का पद्यानुवाद)—रचयिता, सत्यप्रकाश विशारद। प्रकाशक, कला-कार्यालय, प्रयाग। मूल्य =)

अनुवाद खड़ी बोली के पद्यों में है, और अच्छा है। केवल हिंदी जाननेवालों को संस्कृत के कठिन तथा सांकेतिक शब्द समझने में अड़चन न हो, इसलिये कहीं-कहीं नीचे अर्थ स्पष्ट करने के लिये नोट भी दिए गए हैं। पुस्तक संग्रहणीय है।

× × ×

गोपाल-प्रकाश—लेखक तथा प्रकाशक, श्रीनारायण, जलेसर (एटा)। मूल्य ॥)

इस छोटी-सी पुस्तक में, पति और पत्नी के संवाद-रूप में, संसार की अनित्यता तथा ब्रह्म की सत्यता का प्रतिपादन किया गया है। वर्णन-शैली अच्छी है; पर भाषा अनेक स्थलों में चिंत्य है। पति रामरूप और उसकी पत्नी इंद्रावती, दोनो ही अंत में ब्रह्म-सुख का रसास्वादन करते और शांति पाते हैं।

× × ×

कैवल्य-शास्त्र—लेखक, ज्वालाप्रसाद सिंहल एम्० ए०, सत्ज्ञान-प्रकाशक-मंदिर, मामूभांजा, अलीगढ़ सिटी (युक्तप्रदेश)। मूल्य ५)

प्रथम अध्याय में जड़ व चैतन्य का विवेचन है। सबसे पहले शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं अथवा एक, इस पर विचार किया गया है, तथा यह प्रतिपादन किया गया है कि शरीर से आत्मा भिन्न है। द्वितीय अध्याय में पूर्णात्मा (ईश्वर) का विवेचन है, तथा ईश्वर को सृष्टिकर्ता अथवा संचालक मानने में अनेक प्रकार की आपत्ति की गई है। तृतीय अध्याय में आदि-तत्त्व (परब्रह्म) का सम्यग्विवेचन है। ब्रह्म की सर्वव्यापकता, अपरिमितता आदि का युक्ति-युक्त प्रतिपादन है। द्वैत-सिद्धांत का खंडन तथा अद्वैत का मंडन वैज्ञानिक युक्ति से किया गया है। चतुर्थ अध्याय में सृष्टि-रचना-विधि का वर्णन है। यहाँ भी पुराणादि में वर्णित सृष्टिक्रम को न मानकर वैज्ञानिक युक्ति का सहारा लिया गया है। आदि-तत्त्व (परब्रह्म) में स्वभावतः क्षोभ उत्पन्न होता है, और उसी क्षोभ के कारण सृष्टि होती है। क्षोभ क्यों होता है, इसके लिये कोई समीचीन कारण नहीं दिया गया। केवल लिखा है—"क्रियात्मक चेतनता आदि शक्ति है। अतएव यह स्वभाव से ही सदैव एक दशा में एकाग्र अथवा विस्तृत नहीं रह सकती।" आगे चलकर जीवात्मा, मनुष्य-शरीर, अमरता, आवागमन, मुक्ति अथवा निर्वाण का विवेचन है। अवतारों का रहस्य वैज्ञानिक, युक्ति-पूर्ण और मनोरम है। 'जीवनोद्देश्य'-शीर्षक अध्याय भी बड़े महत्त्व का है। पुस्तक सर्वथा उपादेय है। वर्णन-शैली पांडित्य-पूर्ण और हृदयंगम होने लायक़ है। ब्रह्म अथवा आदि तत्त्व का सिद्धांत यद्यपि नया नहीं है, तथापि पूर्वापर-सामंजस्य दिखाकर, शृंखलाबद्ध करके, सरल रीति से, विषय-प्रतिपादन करने की लेखक की शैली नवीन और स्तुत्य है। इसके ध्यान-पूर्वक पढ़ने से लोगों का बहुत उपकार संभव है। प्रारंभ में जो नास्तिकता की गंध आती है, वह भी विचार-पूर्वक पढ़ने से दूर हो जाती है। दार्शनिक विवेचन जहाँ होते हैं, वहाँ सर्वत्र ही इस प्रकार के विचार मिलते हैं। पूर्वापर-विचार करने से, ध्यान पूर्वक इसका मनन करने से, दर्शन-शास्त्रों के परस्पर विरोध का भी परिहार होता है, पौराणिक आख्यानों का रहस्य भी समझ

में आ जाता है। लेखक का श्रम सर्वथा प्रशंसनीय है। छपाई और जिल्द भी बहुत अच्छी है। परंतु छापे की अशुद्धियों की भरमार है, इससे पुस्तक की मनोहरता में बहुत कुछ दोप आ जाता है। पुस्तक का मूल्य पाँच रुपए भी बहुत अधिक है। विश्व-प्रेम के उपदेशक का इस तरह अत्यंत अधिक मूल्य रखना असंगत है। विशेष करके ऐसी अमूल्य पुस्तक का इतना अधिक मूल्य रखना खलता है। बीच में कुछ समय के लिये मूल्य कुछ कम किया गया था सही, पर वह थोड़ी ही अवधि के लिये था।

आद्यादत्त

× × ×

३. उपन्यास

सुघड़ बेटी—यह एक मुसलमान-महिला की उर्दू-रचना का हिंदी-अनुवाद है। अनुवादक हैं प्रो० रामस्वरूप कौशल एम्० ए०। पुस्तक का मूल्य ॥) है, जो बहुत उचित है। पृष्ठ-संख्या १२२।

यह पुस्तक पुत्रियों के लिये बहुत उपयोगी है। लेखिका २० वर्ष तक स्त्रियों की सर्व-प्रधान उर्दू-पत्रिका का संपादन करती रही थीं, और बालिकाओं की शिक्षा से उन्हें बड़ी दिलचस्पी थी। पुस्तक की भाषा ऐसी सरल और चित्ताकर्षक है, जैसी कि एक महिला ही लिख सकती है। पुत्रियों की शिक्षा का कोई अंग आपने नहीं छोड़ा। माता-पिता का आदर, भाई-बहनों से प्रेम, गुरुजनों का सत्कार से लेकर स्वास्थ्य-रक्षा, सफ़ाई, गृह-प्रबंध, पुस्तकावलोकन, पत्र-रचना, पाक-शिक्षा आदि समग्र विषयों पर बड़ी रोचक शैली में छोटे-छोटे निबंध लिखे गए हैं। इससे पुत्रियों को केवल शिक्षा ही न मिलेगी, उनका मनोरंजन भी होगा। पुत्री-शिक्षा के विषय में अब तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं थी, जो थोड़े-से पृष्ठों में शिक्षा के सभी अंगों पर प्रकाश डाले। 'सुघड़ बेटी' ने इस अभाव को पूरा किया है। हम तो उनकी भाषा की सरसता पर मुग्ध हो गए। जिन महाशयों को अपनी पुत्रियों के लिये किसी उपयुक्त पुस्तक की तलाश हो, उनसे हम ज़ोरों के साथ इस पुस्तक के लिये सिफ़ारिश करते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि हमारा और मुसलमानों की शिक्षा तथा सभ्यता का एक ही आदर्श है। इस पुस्तक में एक प्रसंग भी ऐसा नहीं है, जो हिंदू-बालिकाओं के लिये उतना ही ग्राह्य न हो, जितना किसी मुसलमान-बालिका के लिये।

× × ×

वंग-विजेता—यह स्वर्गवासी रमेशचंद्र दत्त-कृत बँगला-उपन्यास "वंग-विजेता" का हिंदी-रूपांतर है। अनुवादक, पंडित भगवानदीन पाठक विशारद। प्रकाशक, अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग। मूल्य १), पृष्ठ-संख्या २००।

रमेश बाबू धुरंधर राजनीतिज्ञ और कार्यदक्ष सरकारी अफ़सर होने के साथ-साथ उच्च कोटि के साहित्य-सेवी भी थे। ऐसे बहुज्ञ मनुष्य बहुत कम होते हैं। वह इतिहास, काव्य, उपन्यास, समालोचना, सभी विषयों में कुशल थे। वंग-विजेता उनका अपूर्व उपन्यास है। इसका उर्दू-अनुवाद बहुत दिन पहले हो चुका है। अब हिंदी में भी हो गया। अनुवाद के विषय में हम इतना ही कह सकते हैं कि उसका बंगालीपन कहीं नहीं खटकता, यद्यपि कहीं-कहीं अनुवादक महोदय ने क़िस्से को संक्षिप्त कर दिया है।

× × ×

प्राणघातक माला—अनुवादक, 'अभ्युदय'-संपादक पंडित कृष्णकांत मालवीय बी० ए०। अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित। मूल्य ॥=)

श्रीमती स्वर्णकुमारी देवी ने कई उपन्यास बँगला में लिखे हैं, और उन्हें ख्याति भी प्राप्त है; पर इस प्राण-घातक माला में बहुत उद्योग करने पर भी हमें कोई ऐसी बात नहीं मिली, जिसकी हम सराहना करते। माडर्न रिव्यू में इसका अनुवाद क्रमशः प्रकाशित हुआ था। इसके सिवा हमें इसमें कोई ख़ूबी नहीं दिखाई दी। संभव है, मूल पुस्तक अच्छी हो; क्योंकि इस अनुवाद की भाषा दोषों से भरी हुई है, और अच्छी भाषा का पुस्तक की सुंदरता पर कुछ-न-कुछ असर पड़ता ही है। घटना उस समय की है, जब बंगाल में अफ़ग़ानों का राज्य था। विशेष कर महिलाओं का इससे मनोरंजन हो सकता है। यह कथा है, पर उपन्यास नहीं है, जिसका आधार चरित्र और भावों ही पर होता है। कहीं-कहीं प्रेम और भक्ति के भाव उत्तेजना-पूर्ण शब्दों में चित्रित किए गए हैं, जो सर्वथा कृत्रिम जान पड़ते हैं। श्रीकृष्णकांत मालवीय इसके

अनुवादक हैं, इसलिये हम यह नहीं कह सकते कि लेखिका के भाव नहीं व्यक्त हो सके। हाँ, जैसा उन्होंने स्वयं लिखा है, अनुवाद सावधानी से नहीं किया गया। चरित्र-चित्रण में, भावों में, वर्णन-शैली में, कहीं प्रौढ़ता का आभास नहीं मिलता। कहीं-कहीं प्रकृति का वर्णन परिमार्जित भाषा में करने की चेष्टा की गई है, जो सफल नहीं होने पाई।

प्रेमचंद

× × ×

४. हास्य और व्यंग्य

स्वर्ग में महासभा—लेखक, पं० रुद्रदत्त शर्मा संपादकाचार्य। प्रकाशक, पं० शंकरदत्त शर्मा, वैदिक-पुस्तकालय, मुरादाबाद। पृष्ठ-संख्या ५४। मूल्य ।)

यह एक पुराने लेखक की पुरानी पुस्तक की पुनरावृत्ति और विनोद-पूर्ण व्यंग्य-साहित्य है। स्वर्ग में महासभा हो रही है, और उसके विचार का सारांश उक्त सभा के सभापति के शब्दों में यही है कि "पुराण के बनानेवालों ने आप लोगों पर (देवतों पर) सहस्रों मिथ्या दोष लगाए हैं, अतएव आप लोगों की सम्मति है कि उन सब पुराणों को रद्दीख़ाने में फेंक दिया जाय। यह भी सिद्ध हो गया है कि भगवान् विष्णु और शिव महाराज भी आप लोगों से सहमत हैं।" ऐसी पुस्तक की खूबियाँ पढ़ने ही से मालूम हो सकती हैं। इस पर अपनी राय देना व्यर्थ है। धार्मिक सुधार के युग में प्रत्येक देश में इस प्रकार की पुस्तकें निकली हैं, जिनमें अपने प्रति-द्वंद्वियों का मज़ाक़ उड़ाया गया है। यह भी आर्य-समाज के आरंभिक युग की यादगार है। पुस्तक की भाषा महावरेदार है। विराम-चिह्न का उपयोग लंका में सज्जनों की संख्या के अनुरूप ही किया गया है। १९२४ की आवृत्ति में तो कम-से-कम यह ठीक कर दिया जाना चाहिए था।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

५. जीवनी

श्रीमीराबाई की जीवनी और प्रीति—श्री-अयोध्यावासी श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसाद "रूप-कला"-विरचित, रायबहादुर श्रीरामरणविजयसिंह (खड्ग-विलास प्रेस, पटना) द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ-संख्या ७६। मूल्य ।≡)

इस पुस्तक में श्रीमीराबाई की जीवनी तथा प्रीति का बहुत श्रम और खोज के साथ वर्णन किया गया है।

कृष्णबिहारी

× × ×

जगदीशचंद्र वसु—लेखक, सुखसंपत्तिराय भंडारी। प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास, पंजाब-संस्कृत-पुस्तकालय, सैदमिट्ठा-बाज़ार, लाहौर। अच्छे कागज़ के डिमाई-अठपेजी साइज़ के ८० पृष्ठों पर साफ़ छपाई। मूल्य राम जानें!

यह जगत्प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता डॉक्टर सर जगदीशचंद्र वसु की जीवनी है। इसमें उनके आविष्कारों का भी वर्णन किया गया है। संतोष की बात है कि भंडारीजी ने इस द्वितीय संस्करण को संवर्द्धित और सामयिक बना दिया है। यह पुस्तक अनेक ज्ञातव्य विषयों से पूर्ण है। लेखन-शैली अच्छी है, पढ़ने में जी लगता है। स्वदेशाभिमानियों और ज्ञान-पिपासुओं के बड़े काम की है।

× × ×

महादेव गोविंद रानाडे—लेखक, पं० श्यामसुंदरलाल त्रिपाठी। प्रकाशक, हिमालय-डिपो, मुरादाबाद। पृष्ठ ३२, छपाई बहुत साधारण और मूल्य चार आने बहुत अधिक है।

आदर्श देशभक्त महात्मा रानाडे का सुचारु चरित मनुष्य-मात्र के लिये उपदेशप्रद है। इन महापुरुष की बड़ी जीवनियाँ निकल चुकी हैं। यह उनमें सबसे छोटी और कुछ सरल भी है। बालकों के लिये यह बहुत अच्छी है।

शिवपूजनसहाय

× × ×

६. भ्रमण

मेरी कैलास-यात्रा—लेखक, स्वामी सत्यदेव परि-व्राजक। प्रकाशक, श्रीकृष्णलाल लवानियाँ, दी लवानियाँ पब्लिशिंग-हाउस, आगरा। पृष्ठ-संख्या १४० और चित्र-संख्या ७। द्वितीय संस्करण। चार खंडों में विभक्त। मूल्य बारह आने।

इस पुस्तक के लेखक स्वामीजी हिंदी के एक सुयोग्य लेखक और विख्यात व्याख्याता हैं। आपके उद्योग से अनेक स्थानों में हिंदी का ख़ासा प्रचार हुआ है। आप-की बदौलत कितनी ऐसी जगहों में पुस्तकालयों और

बुढ़ापे में शृंगार

[चित्रकार—श्रीयुत चौधरी रमाशंकरदत्त]

सावन सजे सिंगार सब, बुढ़िया सहित हुलास ;
बुढ़ऊ मिलिबे को मगन, मूर्तिमान मनु 'हास'।

N. K. Press, Lucknow.

स्कूलों के विद्यार्थियों तथा गाँव में रहनेवाली अल्प शिक्षित जनता को अँगरेज़ी-राज्य में होनेवाली उनकी दीनता और हीनता के कारण का ज्ञान कराने के लिये यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें राज्य-पद्धतियाँ, नौकर-शाही, महासभा, असहयोग, स्वदेशी, बोल्शेविज़्म, राष्ट्रीय शिक्षा, अस्पृश्यता, हिंदू-मुसलिम ऐक्य, गोरक्षा, ग्राम-पंचायत, म्युनिसिपलिटी और लोकल बोर्ड, भूमि-कर, कचहरी और स्वराज्य आदि विषयों की संक्षिप्त, पर सुंदर, विवेचना की गई है। भारतवर्ष के प्रत्येक युवक को कम-से-कम उक्त विषयों का अवश्य ज्ञान रहना चाहिए। उक्त अनुभव के अभाव ही के कारण हमको अपनी अवस्था का पूरा ज्ञान नहीं होता, और हम उत्तरोत्तर गिरते जा रहे हैं। पुस्तक संग्रहणीय है। हरएक घर में इसकी एक प्रति होनी चाहिए।

× × ×

रथयात्रा—कवींद्र रवींद्र के इसी नाम के नाटक का गुजराती में अनुवाद। प्रकाशक, वही। मूल्य -) पृष्ठ-संख्या ३०।

पुस्तक अच्छी और पढ़ने लायक़ है। अनुवाद भी अच्छा हुआ है।

× × ×

कारावास की कहानी (तृतीयावृत्ति)—अनुवादक, नवलरामजी त्रिवेदी। प्रकाशक, राष्ट्रीय साहित्य-कार्यालय, अहमदाबाद। पृष्ठ-संख्या १७८। छपाई-सफ़ाई सुंदर। मूल्य ।॥)

यह तपस्वी अरविंद घोष के व्याख्यानों, पत्रों और लेखों का गुजराती-अनुवाद है। अनुवाद सरल और सुंदर है। पुस्तक पढ़ने और मनन करने योग्य है।

× × ×

अनंता—लेखक, आरण्यक। प्रकाशक, युग-धर्म-कार्यालय, अहमदाबाद। छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या २०४। मूल्य ।॥)

इस निगूढ़ नाटक की निगूढ़ता पहले ही पृष्ठ से शुरू होती है। इसमें न लेखक के ही ठीक नाम का परिचय मिलता है, न प्रस्तावनाकार का ही। प्रकाशक महोदय को कहाँ फ़ुरसत कि इस ओर ध्यान दें। ख़ैर, पुस्तक के संबंध में कौतूहल बढ़ाने का यह भी एक अच्छा साधन है। पर हाँ, सूत्रधार और कलावती में नाटकों की वर्तमान स्थिति पर जो चर्चा होती है, वह अवश्य ही यथार्थ, प्रभावशाली और कला की दृष्टि से भी अच्छी है।

कथानक यह है—समुद्रगढ़ के राजा की नई रानी युवराज को मारकर अपने कुमार को गद्दी पर बिठाना चाहती और इसके लिये प्रधान मंत्री से मिलकर षड्यंत्र रचती है। राजा यह सब जानता है। वह मर्मभेदी शब्दों में सब बातें कह डालता और पागलपन का ढोंग करता है। युवराज एक वनवासिनी युवती को अपनी धर्मपत्नी बनाता है। रानी का षड्यंत्र सफल होता है। अनंता की मृत्यु होती है। षड्यंत्र का पता लगता और अपराधियों को प्राण-दंड मिलता है। अंत में युवराज की मृत्यु होती है। इस नाटक की एक विशेषता यह भी है कि नाटककार ने सब दृश्य प्रायः रात्रि में ही दिखाए हैं।

× × ×

खेड़ा की लड़त—लेखक, श्रीयुत शंकरलाल द्वारिकादास पारीख। प्रकाशक, वही। छपाई-सफ़ाई सुंदर। पृष्ठ-संख्या ५६८। मूल्य १॥)

खेड़ा ज़िले के सत्याग्रह से शायद ही कोई अपरिचित हो। यह सत्याग्रह अँगरेज़ी शासन के नहीं, उस शासन की एक धारा के विरुद्ध था। इस सत्याग्रह से इसके उन्नायक महात्मा गाँधी को यही सिद्ध कर दिखाना था कि प्रजा की इच्छा के प्रतिकूल शासन कभी नहीं हो सकता। इस सत्याग्रह ने शासक-वर्ग को प्रजा की शक्ति का पूरा ज्ञान करा दिया। भारत-माता की स्वतंत्रता के इतिहास में खेड़ा के सत्याग्रह का इतिहास भी एक मुख्य स्थान पावेगा। इधर-उधर के अश्लील उपन्यासों के बदले यदि भारत के युवक ऐसी पुस्तकें पढ़ें, तो उनका तथा देश का बहुत उपकार हो। इसकी भाषा भी बड़ी सरल और सरस है। स्त्रियाँ भी उसे मज़े में समझ सकती हैं। पुस्तक संग्रहणीय है।

× × ×

चंपारण्य मा महात्मा गाँधीजी—मूल-लेखक, श्रीयुत बाबू राजेंद्रप्रसाद एम्० ए०। अनुवादक और प्रकाशक, वही। पृष्ठ-संख्या ३०४। छपाई-सफ़ाई अच्छी। मूल्य १।), खद्दर की जिल्द १॥)

इस पुस्तक के पूर्वार्द्ध में राजेंद्र बाबू की पुस्तक का अनुवाद है, और उत्तरार्द्ध में महात्मा गाँधी के सन् १९२१ में दिए हुए व्याख्यान, लड़ाई का क्रम तथा तारीखें

आदि हैं। इससे चंपारण्य की लड़ाई का पूरा हाल मालूम हो जाता है। अनुवाद भी अच्छा है। राजनीति तथा इतिहास के प्रेमियों को अवश्य इसकी एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए।

छन्नूलाल द्विवेदी

× × ×

हिंद-स्वराज्य—लेखक, महात्मा गाँधी। प्रकाशक, नवजीवन-प्रकाशन-मंदिर, अहमदाबाद। मूल्य खादी की जिल्द २॥), तथा कपड़े की जिल्द १॥।); उसमें से ॥) तथा ।) क्रमशः तिलक-स्वराज्य-फ़ंड में दिए जाते हैं।

पुस्तक गुजराती-भाषा तथा गुजराती-अक्षरों में होने पर भी प्रत्येक भारतीय के लिये आदर की वस्तु है। महात्माजी के भक्त लोग इसे अपने पास रखकर अपने को कृतार्थ समझेंगे। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि यह महात्माजी के हस्त-लिखित लेखों की ही प्रतिलिपि है। इससे लोग महात्माजी के गुजराती हस्त-लेख का भी परिचय पा सकेंगे। महात्माजी ने अपने असंख्य सद्गुणों के द्वारा आबालवृद्धवनिता, सभी के हृदय-मंदिर में स्थान प्राप्त कर लिया है। ऐसी स्थिति में अनेक जन, गुजराती-भाषा न जानते हुए भी, अपने संग्रह में इस पुस्तक को रखना चाहेंगे, इसमें संदेह नहीं। हमारी तो धारणा यह है कि केवल इन लेखों को पढ़ने के लिये महात्माजी के अनेक भक्त गुजराती-भाषा सीखने का भी प्रयत्न करेंगे। पुस्तक की उपयोगिता तथा महत्ता के संबंध में कुछ कहना अनावश्यक है। महात्माजी का नाम-निर्देश ही इस संबंध में पर्याप्त है। शायद इसका हिंदी-अनुवाद भी हमने कहीं देखा है।

आद्यादत्त

× × ×

९. अँगरेज़ी

सनराइज़ ऐंड अदर पोएम्स (Sunrise and other poems)—लेखक, Enesem और प्रकाशक, London, Arthur H. Stockwell, 29, Ludgate Hill, E. C. 4. पृष्ठ-संख्या २०। बहुत अच्छा काग़ज़ और सुंदर छपाई। ऊपर कपड़े की जिल्द। पुस्तक पर मूल्य नहीं लिखा है। प्रकाशक से प्राप्य।

यह पुस्तक अँगरेज़ी-पद्यों में है। इसमें Sunrise (सूर्योदय), The worshipper (उपासक), Laws (क़ानून), Milky way (आकाश-गंगा), Devotion (उपासना), To false love (झूठा प्रेम), Hope (आशा), Our song (हमारा गीत), Soul's heritage (आत्मा की विरासत), Rubaiyat (रुबाइयाँ), Phantasy (कल्पना), Supplication (याच्ञा) तथा Rubaiyat (रुबाइयाँ), ये ११ कविताएँ हैं। लेखक का नाम कल्पित-सा जान पड़ता है। संदेह होता है कि आप कोई भारतीय सज्जन हैं; क्योंकि सभी कविताओं में पूर्वीय, विशेष करके भारतीय, भाव भरे हुए हैं। प्रथम पद्य Sunrise में लेखक ने अपनी कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। देखिए—

Has come a new awakening
Of our inmost soul and being :
We yearn for clearer sight ;
Our minds are turning fast
To luminous realms of Past—
We seek for New-Old light
The Light by which the seers of old
Did the Supreme Truth behold !

इसी प्रकार Soul's Heritage की अंतिम चार पंक्तियाँ कितनी सुंदर हैं—

But Love and Sacrifice and Faith,
Like snow-ball for ever roll ;
Time stares in awe, Death growls in vain,
These are heritage of the soul !

× × ×

रेमिनिसेंसेज़ ऑफ़ विजयधर्म सूरि—लेखक, श्रीविजयइंद्र सूरि। प्रकाशक, सेठ टोडरमल भंडावट, मंत्री श्रीविजयधर्म सूरि-स्मारक कोश, शिवपुरी, ग्वालियर-राज्य। पृष्ठ-संख्या १३२। छपाई एवं काग़ज़ उत्तम। पाँच चित्र भी हैं। पहला रंगीन चित्र स्वर्गीय विजयधर्म सूरिजी का है। मूल्य पुस्तक पर नहीं लिखा है। संभवतः प्रकाशक से प्राप्य।

शास्त्र-विशारद जैनाचार्य विजयधर्म सूरि अपने समय के बहुत बड़े धर्मात्मा और विद्वान् पुरुष थे। जैन-धर्म और उसके साहित्य में आपका ज्ञान असाधारण था। इनका जन्म सन् १८६८ ईसवी में हुआ था। इनके पिता रामचंदजी काठियावाड़ में रहते थे। जैन-

धर्म में दीक्षित होने के पूर्व विजयधर्म सूरिजी का नाम मूलचंद्र था। लड़कपन में इनका मन पढ़ने-लिखने में न लगता था। इनको जुआ खेलने की बुरी आदत भी पड़ गई थी। इनके पिता इस कारण इनसे बहुत असंतुष्ट रहते थे। एक बार उन्होंने इनको बहुत पीटा भी। इसके बाद ही इनको वैराग्य हो गया, और कुछ समय बाद यह जैन-धर्म में दीक्षित हो गए। फिर तो इन्होंने खूब ही भारत-भ्रमण किया। काशी की पंडित-मंडली ने इनको 'शास्त्र-विशारद जैनाचार्य' की उपाधि दी। इनका कहना था कि हिंदू और जैन-धर्म के मूल-सिद्धांतों में कोई भेद नहीं है। योरपियन पुरातत्त्व-वेत्ताओं से भी इनका परिचय था। जैकोबी, डॉक्टर विंटरनिज़ तथा नारीमैन-जैसे विद्वान् इनके अगाध ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। इन्होंने जैन-धर्म और जैन-साहित्य की उन्नति के लिये बड़े-बड़े काम किए हैं। इनकी लिखी और संपादित पुस्तकों की संख्या २२ है। सन् १९२२ ईसवी में इनका देहांत हो गया। समालोच्य पुस्तक में इन्हीं जैनाचार्यजी का परिचय, बड़ी योग्यता के साथ, दिया गया है। सूरिजी के विषय में विद्वानों ने जो लेख लिखे हैं, उनका भी इसमें संग्रह किया गया है। बहुत-से ऐसे ही पत्र भी इसमें मौजूद हैं। इस पुस्तक के लिखने और संग्रह करने में श्रीविजयधर्म सूरिजी के प्रधान शिष्य श्रीविजयइंद्र सूरि ने अच्छा परिश्रम किया है। एक योग्य विद्वान् की स्मृति-रक्षा करने में यह पुस्तक अवश्य सफल होगी।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

१०. विविध

मनुष्य-मात्र को सत्याग्रह की आवश्यकता—लेखक तथा प्रकाशक, गदाधर साहु, संचालक, दयाप्रचारिणी सभा, काशी। पता—तहसील मुँगेली, ज़िला बिलासपुर (सी० पी०)। मूल्य नहीं लिखा।

लेखक के ही शब्दों में "संपूर्ण मत-भेदों को त्याग मनुष्य-मात्र की आत्मा प्रसन्नता-पूर्वक सत्याग्रह करने को तैयार होवे, जिससे सबकी असल ग़रज़ पूरी हो"—यह इस पुस्तक में प्रकट किया गया है। पुस्तक प्रश्नोत्तर रूप में लिखी गई है। प्रथम प्रश्न है—समस्त संसार के मनुष्य नाना प्रकार के कार्यों को क्यों करते हैं? इसके उत्तर का सार यह है कि मनुष्य-मात्र अपनी ग़रज़ पूरी होने के लिये ही नाना प्रकार के कार्यों को करते हैं। परमात्मा ने मनुष्य-मात्र की एक ही असल ग़रज़ 'शरीर-रक्षा होकर आत्मिक सुख शांति प्राप्त होना' रक्खी है। हमें यह लिखते यथार्थ में दुःख होता है कि लेखक ने 'प्रतिज्ञा' में जो कुछ कहा है, उसका वह उचित प्रतिपादन नहीं कर सके, और 'सत्याग्रह' की आवश्यकता के कारणों का विवेचन समीचीन रीति से नहीं हुआ है। एक-मात्र कारण, जिस पर अनेक बार पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया गया है, 'मनुष्य-मात्र की ग़रज़' है; परंतु शरीर-रक्षा और आत्मिक सुख, इन दोनों में से एक ही जहाँ प्राप्त हो सकता है, वहाँ किसका प्राधान्य है? शरीर का अथवा आत्मा का? इसका विचार कहीं नहीं किया गया।

× × ×

प्रकाश अर्थात् यथार्थ दर्शन—लेखक तथा प्रकाशक, पं० विद्याधर शास्त्री, मंगलेश्वर-मंदिर, चूरू। मूल्य ।1), पुस्तक मिलने का पता—पंडित देवीप्रसाद शास्त्री चूरू, वाया जे० बी० रेल्वे।

लेखक के मन में समय-समय पर भिन्न-भिन्न विषयों पर जो तरंगें उठी हैं, उनका इस पुस्तक में समावेश किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि अनेक विषयों पर इसके द्वारा अच्छा प्रकाश डाला गया है। लेखक की विद्वत्ता तथा सहृदयता का परिचय पद-पद पर प्राप्त होता है। किसी मत या संप्रदाय से द्वेष न रखते हुए भी सनातन वैदिक धर्म को आधार मानकर विषय की विवेचना की गई है। साथ ही पाश्चात्य लेखकों के ग्रंथों से भी प्रमाण-संग्रह किया गया है। प्रारंभ में ही ॐ शब्द की व्याख्या विशद रूप से की गई है। स्वामी दयानंद को ही अवतार मानकर 'अवतार' का प्रतिपादन किया गया है। "सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।"—इस भगवद्वाक्य के आधार पर सृष्टि-रचना का तत्त्व भी अच्छी तरह प्रतिपादित हुआ है। शब्द-तत्त्व पर भी बहुत कुछ लिखा गया है। अंत में विदेशी भाषाओं को भारत की अवनति का अन्यतम हेतु मानते हुए लेखक कहते हैं—"जब से ब्राह्मणों तथा भारतीय अन्य जातियों ने अपने धर्म के अनुशीलन का

परित्याग कर अन्य विदेशीय भाषाओं को अपनाया है, तभी से भारतवर्ष में द्वेष-कलहादि का जन्म हुआ है। यह स्वाभाविक है कि शब्दों का प्रभाव मनुष्य-वृत्ति पर अत्यधिक होता है।" भारतीय शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो, विदेशी भाषा नहीं, इस पर भी लेखक ने अपना मत प्रकट किया है। पुस्तक की समाप्ति के शब्द बड़े उत्साहवर्द्धक हैं।

पुस्तक बड़े श्रम से लिखी गई, और सर्वथा उपादेय है।

आद्यादत्त

× × ×

शुद्ध नामावलि—लेखक, गणेशदत्त शर्मा गौड़ (इंद्र)। प्रकाशक, पं० शंकरदत्त शर्मा, वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद। पुष्ट अक्षरों में साफ़ छपे हुए ८८ पृष्ठ हैं। मूल्य आठ आने अधिक है।

हिंदू-धर्म में नामकरण भी एक संस्कार माना जाता है। सुंदर नाम में प्रसाद-गुण होता है। अरुचिकर नाम अनिष्टकर होता है। पुस्तकारंभ में लेखक ने १२ पृष्ठों का जो प्राक्कथन लिखा है, उसमें इस पुस्तक की रचना का कारण स्पष्ट बतलाते हुए यह दिखलाया है कि आजकल लोग अपने लड़के-लड़कियों के कैसे अशुद्ध नाम रखते हैं, और अशुद्ध तथा भ्रष्ट नामों के उच्चारण से धर्मशास्त्रानुसार क्या-क्या हानियाँ होती हैं। बंगाल में सुंदर नामों का ख़ासा प्रचार है। कारण, वहाँ उन्नत शिक्षित समाज है। उत्तर-भारत के हिंदी-प्रधान प्रांतों में अभी शिक्षा की बहुत कमी है। जो शिक्षित हैं, वे भी समाज के अज्ञानांधकार में पड़े हुए हैं। इसीलिये अभी हिंदी-भाषी प्रांतों में शुद्ध नामों का यथेच्छ प्रचार नहीं हो पाया है। ऐसी दशा में इस हिंदी-पुस्तक का प्रचार अवश्य होना चाहिए। पुस्तक का विषय नया और उपादेय है। हिंदुओं के चारों वर्णों के लिये अलग-अलग नामावली दी गई है। पुस्तकांत में स्त्रियों की नामावली भी है। नाम बहुत अच्छे चुने गए हैं। उनकी शुद्धता या सार्थकता में संदेह नहीं। किंतु बहुत-से नाम ऐसे भी हैं, जिनका प्रचार असंभव है। जैसे—ऋत्विज्, और्द्ध्व, नैध्रुव, व्यूहभेत्ता, समप्रज्ञयाल, वीरस्, ह्री इत्यादि।

शिवपूजनसहाय

× × ×

११. प्राप्ति-स्वीकार

निम्न-लिखित पुस्तकें, रिपोर्टें और पत्र-पत्रिकाएँ मिल गई हैं। प्रेषक महाशयों को धन्यवाद—

अँगरेज़ी-हिंदी-तार-दर्पण (उच्चारण-सहित) और प्रकाशक, सेठ रामस्वरूप, बिसाऊ, जयपुर-राज्य। पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य ।); व्यापारियों के लिये लाभदायक।

जेबी तार-शिक्षक (उच्चारण-सहित) और प्रकाशक, कन्हैयालाल गार्गीय, ब्यावर। पृष्ठ-संख्या ४४; सजिल्द; मूल्य ।।); यह भी व्यवसायियों के लिये लिखा गया है।

अभिभाषण—लेखक, बलिया की हिंदी-प्रचारिणी सभा के स्वागताध्यक्ष प्रोफ़ेसर पं० बलदेव उपाध्याय एम्० ए०, विशारद। प्रकाशक, उक्त सभा। पृष्ठ-संख्या ३२, छपाई शुद्ध, स्वच्छ और सुंदर। इसमें बलिया (यू० पी०) का पुरातत्त्व, ऐतिहासिक महत्त्व, और प्राचीन गौरव बहुत ही अच्छे ढंग से वर्णन किया गया है। भोजपुरी-भाषा और उसके साहित्य के विषय में जो कुछ लिखा गया है, वह भी गवेषणापूर्ण, सरस और मनोरंजक है। पठनीय और संग्रहणीय है।

प्रथमवार्षिक रिपोर्ट (१३-२-२३ से ३१-१२-२[illegible] तक)—भारतीय हिंदू शुद्धि सभा (आगरा)। प्रेषक श्रीयुत देवप्रकाश, मंत्री।

भिन्न-भिन्न ज़िलों के १७६ ग्रामों में शुद्धि हुई। लगभग पचास हज़ार मलकाने और नायर तथा [illegible] आदि शुद्ध किए गए। शुद्धि-फ़ंड में ६६८ सज्जनों ने दान दिया। गुप्त दान में १४८१।=) मिले। दस रुपये से कम देनेवालों ने १५६६।।≡)।। दिए। बे-नाम और बे-पते के लोगों से ४०) मिले। कुआँ-फ़ंड में २११[illegible] की आय हुई। शुद्धि-कार्य के लिये अन्य आवश्यक वस्तुएँ देनेवाले कुछ विशेष दाताओं के भी नाम हैं। दाताओं के पते भी उनके नाम के साथ दिए गए हैं। कुआँ-फ़ंड में अछूतोद्धारक महात्मा गाँधी ने भी [illegible] हज़ार रुपए दिए हैं। शुद्धि-कोष की कुल आय १२[illegible] २७=) है। १४३३।-) की सूद से और ३८२) की शुद्धि-सभा के स्थायी सदस्यों से आय हुई है। वैतनिक कार्यकर्ताओं की संख्या २६५, प्रधान शाखाओं की संख्या २० के लगभग और शुद्धि-पाठशालाओं की संख्या आरंभ में ३७ और वर्षांत में २६।

संवत् १९८१ का पंचांग (सचित्र)—प्रेषक, डॉक्टर एस्० के० बर्मन्, ४ ताराचंददत्त-स्ट्रीट, कलकत्ता । कवर पर शिव-पार्वती का अतीव सुंदर रंगीन चित्र । नवदुर्गा के नव नेत्ररंजक चित्रों से सुसज्जित ।

रँगीला—संपादक और प्रकाशक, हरिहरप्रसाद जिंजल, अग्रवाल-प्रेस, गया । पृष्ठ ६ । बारीक रंगीन कवर । वार्षिक मूल्य २) बहुत अधिक है । विनोद-पूर्ण साप्ताहिक पत्र है, पर व्यंग्य का रंग फीका है ।

हितचिंतक—संपादक और प्रकाशक, प्रभुदयाल शर्मा वैद्य, हितचिंतक-कार्यालय, इटावा । पृष्ठ-संख्या २२ । छपाई साधारणतः साफ़ । वार्षिक मूल्य १॥), एक प्रति का मूल्य =) ; यह मासिक पत्र नुस्ख़ा-प्रेमी व्यापारियों और रोगियों के बड़े काम का है ।

परवार-बंधु—संपादक, पं० दरबारीलाल साहित्य-रत्न, न्यायतीर्थ । प्रकाशक, मास्टर छोटेलाल जैन, जबलपुर । पृष्ठ ६४ । छपाई आदि साधारण । कवर सचित्र । अखिल भारतवर्षीय दिगंबर जैन परवार-सभा का मासिक मुखपत्र । वार्षिक मूल्य ३), एक प्रति का ।-) ; परवार-जैनियों के लिये उपयोगी है ।

वैदिक-सर्वस्व—श्रीवैष्णव-संप्रदाय का मासिक मुख-पत्र । श्रीकांची-प्रतिवादि-भयंकर मठ के धर्मप्रचार-विभाग से प्रकाशित । पृष्ठ-संख्या ३६, छपाई साफ़, कवर सचित्र, लेखादि सांप्रदायिक, वार्षिक मूल्य २॥), एक प्रति का ।), पता—कांजीवरम् (मदरास) ।

युगांतर—संपादक, पं० जगदीशनारायण तिवारी और पं० रामदहिन ओझा । पता—७८ काटन-स्ट्रीट, कलकत्ता । पृष्ठ-संख्या ८, हिंदी का एक नया राजनीतिक साप्ताहिक, छपाई साफ़, वार्षिक मूल्य ३), छः महीने का २)

बालविनय (प्रथम भाग)—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत धर्मचंद्र खेमका "चंद्र", गोविंदराम कालूराम, ४६ मर्चेंट-स्ट्रीट, रंगून (बर्मा) । इसमें बालकों के गाने योग्य प्रार्थनात्मक पद्य हैं । पद्य भावमय, सरल और शिक्षाप्रद हैं । मूल्य -)

महात्मा गाँधी और आर्यसमाज—लेखक, श्री-सत्यकेतु विद्यालंकार । प्रकाशक, एस्० सी० जैन, बारा-बंकी । मू० -)

महात्मा गाँधी को चैलेंज—लेखक और प्रकाशक, स्वामी मंगलानंदपुरी, आर्यसमाज, कानपूर । मूल्य -)॥

हिंदू-महासभा—संग्रहकर्ता, किशोरीलाल केडिया । प्रकाशिका, हिंदू-महासभा, कलकत्ता । मूल्य 'प्रेम' ।

भोजन-विधि—लेखक और प्रकाशक, पं० हनुमान शर्मा, जयपुर ।

जगत्गुरू (?) की जीवनी—लेखक, श्रीमान् सुतीक्ष्ण मुनी (?) उदासीन । प्रकाशक, श्रीमान् पूजारी (?) अमरदासजी, श्रीचंद्र ट्रैक्ट-सोसायटी अमर-प्रेस के पास, सक्खर (सिंध); मूल्य =)

प्राकृतिक स्नान के संबंध में आवश्यक नियम—लेखक, पं० गणेशप्रसाद शर्मा । प्रकाशिका, लक्ष्मीदेवी, निगोहाँ, ज़िला लखनऊ । मूल्य =)

भूपाल-राज्य में धार्मिक स्वतंत्रता का ख़ून—लेखक और प्रकाशक, स्वामी सत्यदेव, मोहिनी-भवन, देहरादून । मूल्य 'सदुपयोग' ।

सिख(खालसा)-धर्म-सिद्धांत—व्याख्यानकर्ता, श्रीयुक्त संत खालसाभाई अवतारसिंहजी । प्रकाशक, बाबू शमशेरसिंह माफ़ीदार । मौज़ा—नेतनगर । रियासत—रायगढ़ (विलासपुर); मूल्य =)

बालकवितावली—संकलनकर्ता, श्रीयुत कृष्ण विनायक फड़के एम्० ए०, हेडमास्टर, श्रीमारवाड़ी-विद्यालय, कानपूर । मूल्य -)

आर्यजाति का घोर अपमान और आर्यसपूतों के बलिदान की आवश्यकता—लेखक और प्रकाशक, रामशरण गुप्त, मंत्री, तिलक-हिंदू-सभा, फ़तहपुरी, देहली ।

उत्तम धर्मिष्ठ पुत्र होने की रीति—लेखक और प्रकाशक, पंडित हिम्मतराम चुड़साना, कपासन (मेवाड़); मूल्य -)

प्रोसीडिंग्ज़ मजलिस आम—लेजिस्लेटिव ऐंड जुडीशियल डिपार्टमेंट, हुज़ूर दरबार, ग्वालियर ।

प्रॉसपेक्टस ऑफ़ कॉमर्स क्लासेज़—श्रीमारवाड़ी-विद्यालय, कानपूर ।

रिपोर्ट (१-४-१९२३ से ३१-३-१९२४ तक)—प्रकाशक, मंत्री—श्रीविशुद्धानंद सरस्वती, मारवाड़ी-अस्पताल, ११८, एमहर्स्ट-स्ट्रीट, कलकत्ता ।

अभिनंदन—नागपुर के मारवाड़ी-समाज की ओर से नागपुर-सत्याग्रह के कर्णधार श्रीयुत सेठ जमनालालजी बजाज़ को समर्पित । प्रकाशक, हीरालाल रामचंद्र चांडक, समाजसेवक-प्रेस, धनतोली, नागपुर ।

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रतिमास नई और उत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "हिंदी-नवरत्न", मिश्रबंधु-लिखित। संशोधित और संवर्द्धित द्वितीय संस्करण। सादी जिल्द ४॥), रंगीन, रेशमी, सुनहरी जिल्द ५)

(२) "सुकवि-संकीर्तन", पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी-लिखित। मूल्य सादी १), सुनहरी रेशमी जिल्द १॥)

(३) "मनोविज्ञान", पं० चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी०-लिखित। मूल्य ॥), सुनहरी रेशमी जिल्द १)

(४) "कविता-कौमुदी तृतीय भाग", एक साहित्याचार्य द्वारा संपादित। संस्कृत-कवियों की संक्षिप्त जीवनी। मूल्य सजिल्द ३)

(५) "प्राचीन मुद्रा", बाबू रामचंद्र वर्मा द्वारा अनुवादित। ऐतिहासिक ग्रंथ। मूल्य सजिल्द ३)

(६) "वृक्ष में जीव है", (सचित्र) श्रीमंगलानंदपुरी-लिखित। विज्ञान का ग्रंथ। मूल्य १॥)

(७) 'गीतारहस्य', स्व० लोकमान्य तिलक-लिखित। चतुर्थ संस्करण। मूल्य ४)

(८) "व्यभिचार", आयुर्वेदाचार्य प्रोफ़ेसर श्रीयुत चतुरसेनजी शास्त्री-लिखित। सामाजिक पुस्तक। मूल्य सजिल्द २)

(९) "सरल शरीर-विज्ञान", शरीर-शास्त्र के एक विद्यार्थी द्वारा अनुवादित। मूल्य ॥)

(१०) "दयानंद-दिग्दर्शन", श्रीनारायणप्रसाद बेताब-रचित। स्वामी दयानंद की संक्षिप्त जीवनी। मूल्य ।)

(११) "रामायण-नाटक", श्रीनारायणप्रसाद बेताब-रचित। पौराणिक नाटक। मूल्य १)

(१२) "शैतानी पंजा", श्रीदेवव्रतीसिंह-लिखित। सचित्र जासूसी उपन्यास। मूल्य २॥), ३)

(१३) "चीना सुंदरी", पं० कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय-लिखित। सचित्र जासूसी उपन्यास। मूल्य १॥), २)

(१४) "महासती अनसूया", श्रीजगदीश झा "विमल"-लिखित। स्त्रियों के लिये उपयोगी सचित्र पौराणिक उपाख्यान। मूल्य ॥)

(१५) "तिलोत्तमा", बाबू मैथिलीशरण गुप्त-लिखित। नवीन संस्करण। पौराणिक काव्य। मूल्य ॥)

(१६) "अभिज्ञानशकुंतला-नाटक", संशोधित और प्रस्तावना-सहित नूतन संस्करण। स्व० राजा लक्ष्मणसिंह-लिखित। मूल्य १)

(१७) "शंख की शरारत", श्रीनारायणप्रसाद बेताब-लिखित। प्रहसन। मूल्य ।-)

विविध विषय

१. क्या महात्मा गाँधी मुसलमान होंगे ?

दिल्ली के मौलाना ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब ने महात्मा गाँधी को मुसलमान बनाने के लिये जो पत्र लिखा था, उस पर इधर हिंदी के पत्रों में ख़ूब चर्चा चल रही थी। हम भी आज इसी के संबंध में अपनी दो-चार बातें माधुरी के पाठकों की भेंट करना चाहते हैं।

महात्मा गाँधी आज सर्वमान्य राजनीतिक नेता समझे जाते हैं। आपने अपनी तपश्चर्या और त्याग के बल से संसार के हृदय में जो उच्चतर पद प्राप्त किया है, वह आज तक किसी राजनीतिक नेता को नहीं प्राप्त हुआ। जितने लोग आज आपके अनुगामी और प्रेमी हैं, उतनों का नेतृत्व प्राप्त करने का सौभाग्य अब तक किसी एक पुरुष को नहीं मिला। हिंदू हो या मुसलमान, ईसाई हो या बौद्ध, जैन हो या सिख, अथवा और कोई हो, आपकी प्रतिभा की ओर श्रद्धा रखनेवाले सभी धर्मों और संप्रदायों में, प्रचुर संख्या में, पाए जाते हैं। हिंदोस्तान, चीन और जापान की तरह ही योरप और अमेरिका में भी आपके भक्त—अनन्य भक्त—मौजूद हैं। इसके सिवा मित्रों ही की भाँति आप शत्रुओं के भी आदरभाजन हैं। महात्मा गाँधी का घोर-से-घोर विरोधी या शत्रु भी उनकी अहिंसा और सत्य-निष्ठा पर न संदेह करता है, न कर ही सकता है। यही एक अपूर्व विशेषता है, जिसके कारण आपके विरोधी भी मुक्तकंठ से आपकी प्रशंसा किए विना नहीं रह सकते। भारत के तो आप हृदयाधिष्ठातृदेव ही हो रहे हैं। आप नेताओं के भी नेता समझे जाते हैं। आपकी आवाज़ भारत के हृदय की प्रतिध्वनि समझी जाती है। इसका कारण क्या है ?

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि महात्माजी के इस महत्त्व का कारण क्या है ? अगाध विद्वत्ता और अटल सिद्धांतों की दृष्टि से स्व० लोकमान्य तिलकदेव अब तक सब नेताओं के शिरोमणि समझे जाते हैं ; परंतु महात्मा गाँधी पक्ष और विपक्ष के हृदयों पर विजय प्राप्त करने और अधिकार जमाने में उनसे भी आगे बढ़ गए हैं। आख़िर इसका कारण क्या है ?

हिंदू-धर्म के रहस्यों पर दृष्टि डालने से इस प्रश्न का उत्तर देना कुछ कठिन नहीं है, परंतु इसके विना इसका समाधान संभव भी नहीं है। हिंदू-धर्म में, अधिकारियों की शक्ति और भावना के अनुसार, धार्मिक अंगों के अनुष्ठानों और उपासनाओं के अनेक भेद हैं। यही इस धर्म की लोकोत्तर विशेषता है। एक साधारण कुली

से लेकर महानिष्ठ तपस्वी तक को, अपने अंतःकरण की शक्ति और सामर्थ्य के अनुरूप, उपासनाओं के प्रकार इसी धर्म में मिल सकते हैं। हिंदू-धर्म सब छोटे-बड़े अधिकारियों को एक लाठी से हाँकने का उपहसनीय प्रयत्न कभी नहीं करता।

महात्मा गाँधी कर्मयोगी हैं, अतएव आपने अपने लिये योग-मार्ग, अहिंसा और सत्य ही की साधना चुनी है। योग-दर्शन का सूत्र है—

"अहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः।"

योग के आठ अंगों में से सर्वप्रथम यमों का वर्णन इस सूत्र में किया है, जिनमें अहिंसा को प्रथम और सत्य को दूसरा स्थान मिला है। भाष्यकारों ने इस पर विचार करते हुए लिखा है कि 'अहिंसा' ही सत्य का आधार है। जिसके मन में हिंसा का भाव विद्यमान है, वह सत्यवादी नहीं हो सकता। पूर्ण सत्यवक्ता वही हो सकता है, जो पूर्णतया अहिंसक हो। जिस प्रकार सत्य अहिंसा पर अवलंबित है, वैसे अहिंसा सत्य के आश्रित नहीं है। अतएव सूत्रकार ने सत्य से पूर्व अहिंसा को स्थान दिया है।

"अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ;
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः।"
(५—५१)

इस मनु के वचनानुसार हिंसा आठ प्रकार की होती है। शरीर, वाणी और मन से इन सब प्रकारों का परित्याग करने पर मनुष्य अहिंसक होता है। अहिंसा के उपासकों के मन में भी कभी-कभी हिंसा के भाव उत्पन्न होते रहते हैं। जब वे एकदम बंद हो जायँ, मन में से हिंसा के संस्कारों का बीज-नाश हो जाय, कभी स्वप्न में भी हिंसा के भाव का उदय न हो, तभी अहिंसा की 'चरम सीमा' समझनी चाहिए। कोई साधक यदि यह देखना चाहे कि उसकी अहिंसा चरम सीमा तक पहुँचती है या नहीं, तो उसके लिये योग-शास्त्र में परीक्षा भी बताई है—

"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।"

अर्थात् जब अहिंसा की 'प्रतिष्ठा' (चरम सीमा) तक योगी पहुँच जायगा, तब उसके पास पहुँचने पर स्वाभाविक बैरी जीव भी वैर का त्याग कर देंगे। केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि बिल्ली और चूहा, न्योला और साँप, भेड़िया और बकरी, सिंह और हाथी, सब-के-सब अपना स्वाभाविक वैर भूलकर प्रेम-पूर्ण व्यवहार करने लग जायँगे। इसका उदाहरण देखना हो, तो मार्कंडेय-पुराणांतर्गत 'दुर्गासप्तशती' में लिखे मुनि के आश्रम का वर्णन पढ़िए। उसमें लिखा है—"प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम्।" अर्थात् आश्रम की हद में पहुँचकर 'श्वापद' (व्याघ्र आदि हिंस्र जीव) भी सब शांत हो जाते थे। इसी चरम सीमा की अहिंसा के वर्णन में प्रसिद्ध कवि केशवदास ने एक ऋषि के आश्रम का वर्णन यों किया है—

"केशौदास मृगज बछेरू चोखें बाघिनि को,
चाटत सुरभि सिंह-सावक-बदन है ;
सिंह की सटान ऐंचै करटि करन कर,
सिंहन को आसन गयंद को रदन है।
फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मदन कदन है ;
बानर फिरत डोले डोले अंध तापसन,
ऋषि को भवन मानो शंभु को सदन है।"

संसार में हिंदू-धर्म के सिवा कोई और ऐसा धर्म नहीं है, जिसमें अहिंसा की ऐसी क्रम-बद्ध मीमांसा की गई हो। महात्मा गाँधी इसी अहिंसा के उपासक हैं। यही कारण है कि आपके सन्निधान में लोगों का वैर-भाव छूट जाता है, और इसी कारण आप सपक्षों और विपक्षों के हृदयों में इतना अधिकार प्राप्त करने में सफल हुए हैं। मौलाना मुहम्मदअली ने जब महात्माजी की भलाई (?) के लिये उन्हें मुसलमान देखना चाहा था, तब उन्होंने 'यंग इंडिया' में जो उत्तर दिया था, उससे यही बात स्पष्ट हो चुकी है। आपने कहा था—"मेरा क्रीड चरम सीमा की अहिंसा और सचाई है।........ यदि मैं अपने मित्रों की भलाई चाहता हूँ, तो इसके अतिरिक्त मेरी और कोई भी इच्छा नहीं हो सकती कि मेरे मित्रों का भी वही क्रीड हो। जब तक मैं उसे सर्वोत्तम मानता हूँ, मैं हिंदू-केंद्र के अंदर हूँ ; क्योंकि मेरे क्रीड के अनुसार यही धर्म मेरे लिये सबसे अच्छा है।"

हमने जिस चरम सीमा की अहिंसा का दिग्दर्शन ऊपर कराया है, महात्माजी उसी को अपना साध्य बताते हुए हिंदू-धर्म को उसकी साधना का सर्वोत्तम केंद्र बताते हैं ; और साथ ही अपने मित्रों को भी अपने क्रीड का आमंत्रण

देते हुए पर्याय से उन्हें सर्वोत्तम साधना-केंद्र की ओर आने का इशारा कर रहे हैं।

मौलाना मुहम्मदअली तो शायद यह उत्तर पाकर शांत हो गए, परंतु कुछ दिन बाद हठ या अज्ञान के कारण ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब ने फिर उसी प्रश्न को विस्तृत रूप में उठाया है। यदि आप महात्मा गाँधी-जी की बात को समझ सके होते, तो स्वयं शुद्ध होकर हिंदू-धर्म में आने का उद्योग करते; परंतु आज आप उलटा उपदेश देने चले हैं। महात्माजी ने मौलाना के पत्र का उत्तर नहीं दिया। यह ठीक भी है। उत्तर देकर एक क्षुद्र बात का महत्त्व बढ़ाना उचित नहीं था। इसके सिवा जिस बात का उत्तर एक बार दिया जा चुका, उसका पिष्टपेषण अनावश्यक भी था। परंतु अन्य कई सज्जनों ने उक्त पत्र का उत्तर अपने-अपने ढंग से दिया है। हम इस समय धार्मिक और तार्किक दृष्टि से मौलाना साहब के पत्र पर विचार करेंगे।

सबसे पहले हम मौलाना साहब के साहस की प्रशंसा करना चाहते हैं। महात्मा गाँधी किस दर्जे के महापुरुष हैं, उनका आदर और प्रतिष्ठा तथा व्यक्तित्व कितना ऊँचा है, वह अपने विचारों और धार्मिक भावों पर कितने दृढ़ रहते हैं, यह बात आज भारत का बच्चा-बच्चा जानता है। उक्त मौलाना साहब से भी ये बातें छिपी नहीं हो सकतीं। और, मौलाना साहब स्वयं कितने पानी में हैं, यह बात वह खुद सबसे ज़्यादा जानते होंगे। लेकिन, फिर भी आपने महात्माजी को मुसलमान बनने के लिये आमंत्रण देने का जो साहस किया है, उसके लिये हम आपको बधाई देना चाहते हैं। हमारी समझ में दूसरे धर्म का कोई भी समझदार आदमी ऐसी हिम्मत हरगिज़ न करता।

मुसलमानी धर्म के इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ मार-काट और खून-ख़राबी से रँगा हुआ है। यदि मुसलमानी-धर्म के इतिहास से तलवार को अलग कर लिया जाय, तो वहाँ फिर कुछ बचता ही नहीं। अब भी शांति की वहाँ कोई चर्चा ही नहीं है। मुसलमानों में त्योहारों के नाम से जो रसूम अदा किए जाते हैं, उनमें अधिकांश रोना-पीटना और हाय-हाय ही हुआ करती है। हमारी समझ में नहीं आता कि एक 'चरम सीमा की अहिंसा' के उपासक, शांत-चित्त, महापुरुष को मौलाना साहब किस मुँह से ऐसे धर्म की दावत देने का साहस करते हैं, जिसकी नींव ही हिंसा, खून-ख़राबी और मार-काट के आधार पर खड़ी की गई है। 'क़तलुल-काफ़िर' के माननेवालों की समझ में यह कैसे आ सकता है कि क़ातिल का दिल मक़तूल से अधिक पापी हुआ करता है।

संसार अशांति का स्थान है। यहाँ की प्रत्येक परिस्थिति, प्रत्येक परिवार और प्रत्येक क्रिया में अशांति का पुट लगा हुआ है। इस अशांति के आगार में कुछ क्षण के लिये अंतःकरण को शांति देने का अवलंब यदि कुछ है, तो धर्म ही। धर्म का वास्तविक स्वरूप एक ही है; परंतु उसका वर्णन करने और अनुष्ठान बतानेवाले मार्ग अनेक हैं। वे ही आज धर्म, मत और संप्रदाय के नाम से प्रचलित हैं। जो धर्म अंतःकरण को जितनी अधिक शांति दे सकता है, वस्तुतः उसका महत्त्व उतना ही अधिक है। हिंदुओं के योग और वेदांत-शास्त्रों में जिस अनंत शांति का भांडार भरा है, उसकी छाया भी अभी संसार के किसी धर्म को नसीब नहीं हुई है। मौलाना साहब ने महात्माजी को मुसलमान बनने के लिये यह तो प्रलोभन दिया कि आप एशिया और योरप की मुसलमान-जातियों के सरदार बन जायँगे, तमाम मुसलमानों के ख़लीफ़ा बन जायँगे इत्यादि, पर यह न बताया कि मुसलमानी-धर्म में आने से आपके अंतःकरण को कितनी शांति मिलेगी, जो कि एक धर्म का प्रधान उद्देश्य है। बताते तो तब, जब वहाँ सबको एक लाइन में खड़ा कर नमाज़ की एक लाठी से हाँकने के सिवा और कुछ होता। हम पूछते हैं, जो सैकड़ों वर्षों से मुसलमानों के ख़लीफ़ा थे, उन्हें आज कितनी शांति प्राप्त है? जो ख़िलाफ़त सैकड़ों वर्षों में रत्ती-भर भी शांति न दे सकी, उसका सच्चे धर्म से कितना संबंध हो सकता है? एक शांति के उपासक, अहिंसा के व्रती को ऐसी तुच्छ वस्तु का प्रलोभन देना मूर्खता नहीं, तो और क्या है? धार्मिक दृष्टि से देखने पर मौलाना साहब का पत्र एक रद्दी के टुकड़े से अधिक हैसियत नहीं रखता। अब हम मौलाना साहब के प्रधान-प्रधान तर्कों पर विचार करेंगे।

मौलाना साहब का सबसे बड़ा और प्रधान तर्क यह है कि "यदि गाँधीजी मुसलमान हो जायँ, तो उनके नेतृत्व में एशिया, योरप और आफ़्रिका की असंख्य

मुसलमान-जातियाँ संगठित होकर जीवित हो सकती हैं ; और उससे सारे संसार में शांति तथा संतोष का साम्राज्य स्थापित हो जायगा । उस दशा में उनका व्यक्तित्व सब इसलामी दुनिया का केंद्र बन जायगा, एवं वह ख़लीफ़ा की गद्दी पर बिठाए जायँगे ; क्योंकि प्रकृति को ही यह मंज़ूर है । ख़िलाफ़त का पद इसीलिये ख़ाली हुआ है कि गाँधीजी उस पर बिठाए जायँ ।"

इस तर्क के दो अंश हैं । एक यह कि समस्त सुसंगठित मुसलमान-जातियों से ही संसार में शांति और संतोष का साम्राज्य स्थापित होगा ; और दूसरा यह कि महात्माजी उन सबके नेता और ख़लीफ़ा बनाए जायँगे । हम पहले कह चुके हैं कि मुसलमानी-धर्म का सारा इतिहास ख़ून-ख़राबी से भरा है । कोई एक भी दृष्टांत ऐसा नहीं दिया जा सकता, जहाँ मुसलमानी-सभ्यता ने पहुँचकर मार-काट न मचाई हो । संसार के अनेक देशों का इतिहास इसका साक्षी है । महमूद ग़ज़नवी और नादिरशाह आदि राक्षसी कर्म करनेवाले लुटेरों के नाम भारत-भूमि की छाती पर ख़ूनी अक्षरों में सदा लिखे रहेंगे । आज यहाँ न मुसलमानों का राजत्व है, न प्रभुत्व, फिर भी आज-दिन इस जाति के लोग (जिन्हें गुंडा कहकर टाल दिया जाता है) घोर-से-घोर उपद्रव करते ही रहते हैं । सहारनपुर, अमृतसर, अजमेर, दिल्ली, आदि के घाव अभी बिलकुल ताज़े हैं । ख़ुद इन्हीं मौलाना साहब ने धूर्तता और मक्कारी से हिंदुओं के स्त्री-बच्चों को बहँकाकर मुसलमान बनाने के लिये मनिहारों, फ़क़ीरों, नौकरों और रंडी-भडुओं तक को सुसंगठित प्रयत्न करने का आदेश देते हुए दाइए-इसलाम नाम की पुस्तक का ख़ूब प्रचार किया है । सुना जाता है, उसके अनुसार काम भी बहुत हो रहा है । पंजाब में अनेक मक्कार मुसलमान-गुंडे हिंदू-फ़क़ीरों का रूप बनाकर हिंदू-स्त्रियों और बच्चों को बहँका ले जाते और ज़बरन् मुसलमान बनाते हैं । हम पूछते हैं, जिस जाति के संगठन ने सदा संसार में अशांति ही फैलाई है, जो जाति आज भारत में असंगठित होने पर भी घोर उपद्रव कर रही है, उस मुसलमान-जाति के संगठन से संसार में शांति और संतोष का साम्राज्य कैसे स्थापित हो सकेगा? जब अभी कुछ ही डाकुओं के मारे नाक में दम है, तब उनका संसारव्यापी संगठन होने से शांति का साम्राज्य हो जाने की बात पर कौन मूर्ख विश्वास करेगा ? सबसे पहले मौलाना साहब को इतिहास से यह सिद्ध करना चाहिए कि मुसलमानों ने कहाँ-कहाँ अन्य-धर्मियों में शांति स्थापित की है । उसके बाद मुसलिम-संगठन से संसार की शांति का ठेका लेना चाहिए ।

अब रही गाँधीजी को संसार-भर के मुसलमानों का नेतृत्व दिलाने की बात । हम जानना चाहते हैं, क्या मौलाना साहब को संसार-भर के मुसलमानों ने अपना प्रतिनिधित्व इसलिये सौंप दिया है कि वह गाँधीजी को उनका नेता बनावें ? यदि नहीं, तो इन्हें संसार-भर के मुसलमानों की ओर से दावा करने का क्या हक़ है ? क्या अन्य स्वतंत्र देशों के मुसलमान ग़ुलाम भारत के एक ग़ुलाम मुसलमान को अपना प्रतिनिधि बनाना पसंद करेंगे ? विजय-गर्व से मत्त मुस्तफ़ा कमालपाशा ने विपत्ति के समय की हुई भारतीय मुसलमानों की सहायता को यह कहकर ठुकरा दिया है कि "हम सबल थे, इसलिये हिंदोस्तान के मुसलमानों ने हमारी सहायता की ।" शायद किसी तुर्क अफ़सर ने भारत के मुसलमानों को 'बकवासी' भी कहा है । क्या उन्हीं तुर्कों ने मौलाना साहब को गाँधीजी के लिये ख़लीफ़ा बनाने के लिये अपना प्रतिनिधि चुना है ? वास्तव में अब ख़िलाफ़त का स्थान संसार से सदा के लिये मिट चुका । जिस तुर्किस्तान में वह कई सदियों से पाली-पोसी गई थी, वहाँ से दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंकी गई । एक घंटे के अंदर रोते हुए ख़लीफ़ा को, विलाप करते हुए परिवार के साथ, देश-निकाला दे दिया गया । उनकी सब जायदाद ज़ब्त कर ली गई । उनकी पेंशन बंद कर दी गई । उनके राजमहल में अजायबघर बना दिया गया । उनका बैंड-बाजा अनाथों के विनोद के लिये दे दिया गया । स्कूलों और राजकीय स्थानों से उनकी तसवीरें तक निकलवा दी गईं । ग़रज़ यह कि ख़लीफ़ा और ख़िलाफ़त का नाम-निशान तक मिटा दिया गया । क्या इसी ख़िलाफ़त के तख़्त पर मौलाना साहब गाँधीजी को बिठाना चाहते हैं ?

जिसका घर जलकर ख़ाक हो रहा हो, वह यदि उसी घर के भरोसे किसी को ठंडे होने की आशा करे, तो वह या तो पागल है, या मक्कार ।

तुर्कों ने पहले तो ख़िलाफ़त और ख़लीफ़ा का

मूलोच्छेद कर डाला, और फिर अपनी-अपनी दाढ़ियाँ मुँडवाना शुरू किया। उसके बाद, परदे का रवाज हटाकर, अपनी बीवियों को, लेडियों की तरह, साथ लेकर घूमना शुरू किया। अब वहाँ की सरकार ने शराब का ठेका भी अपने हाथों में ले लिया है। मौलाना साहब ज़रा मज़हबी किताबों के पन्ने उलटकर देखें तो सही कि कुरानशरीफ़ और तुर्कों के बीच में कितनी बड़ी खाईं बनती जा रही है? पुराने ख़लीफ़ा ने तो टर्की को काफ़िर होने का फ़तवा भी दे दिया है। क्या इन्हीं काफ़िर तुर्कों ने मौलाना साहब को अपने लिये ख़लीफ़ा ढूँढ़ लाने का ठेका दिया है?

ईराक़ आदि कई देशों के मुसलमान अब स्वतंत्र तुर्कों की कुछ-कुछ नक़ल करने लगे हैं। रहे आफ़्रिका के हबशी और हिंदोस्तान के गुलाम, सो वे किस गिनती में हैं? वस्तुतः ख़िलाफ़त तो संसार से उठ चुकी। परंतु जैसे बँदरिया अपने मरे हुए बच्चे को भी कुछ दिन तक पेट से चिमटाए घूमा करती है, उसी तरह भारत के कुछ पुराने ढर्रे के मुल्ला लोग उसके लिये हाय-तोबा मचा रहे हैं। नवशिक्षित, समझदार और दूरदर्शी मुसलमानों में उसकी कोई क़दर नहीं है। मौलाना साहब को चाहिए कि अब गाँधीजी को ख़लीफ़ा बनाने की फ़िक्र छोड़कर तुर्किस्तान में दफ़न की गई ख़िलाफ़त के नाम पर मर्सिए बनाया करें।

आप फ़रमाते हैं—"अगर मैं महात्मा गाँधी होता, और मुझे सारी दुनिया की भलाई हिंदू या ईसाई बन जाने में मालूम होती, तो मैं एक मिनट की भी देर न कर फ़ौरन् हिंदू या ईसाई हो जाता।" इस पर हम मौलाना साहब से बड़े अदब के साथ यही अर्ज़ करना चाहते हैं कि "गंजे को ख़ुदा नाख़ून नहीं देता"।

उक्त कथन से आपके धार्मिक विश्वास का महत्त्व भी स्पष्ट हो जाता है। जो आदमी 'एक मिनट के अंदर' अपना धर्म बदलने को तैयार है, उसकी धर्म-श्रद्धा ही क्या? जो धर्म-हीन ढुलमुल-यक़ीन 'फ़ौरन्' धर्म छोड़ने को तैयार है, उसे 'सारी दुनिया की भलाई' का ज्ञान ही कब हो सकता है? आप यह भी कहते हैं कि "आपका (गाँधीजी का) मुसलमान होना हिंदू-धर्म के बिलकुल विरुद्ध नहीं।" हमें आपकी इस नादानी और चालबाज़ी पर तरस आता है। क्या आपने हिंदू-धर्म का यह वाक्य कभी सुना है—"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"

मौलाना साहब लिखते हैं—"आप (गाँधीजी) जगत्-भर की भलाई चाहते हैं। पर आपका विचार तभी पूरा हो सकता है, जब आप मुसलमान हो जायँ।" देखा आपने! कैसी माक़ूल दलील है! आप समुद्र के पार जाना चाहते हैं? अच्छा, आपका विचार तभी पूरा हो सकता है, जब आप एक ऐसे अंधे कुएँ में गिर पड़ें, जिसमें पानी की बूँद न हो! कैसा सुंदर तर्क है! हम तो इस अक़्लमंदी के क़ायल हैं।

आप कहते हैं—"मैं आपको इसलिये मुसलमान नहीं बनाना चाहता कि आप हिंदू-धर्म की संतोष-जनक बातें न मानें, या ईसाई-धर्म की मानने योग्य बातें न सुनें, बल्कि इसलिये बनाना चाहता हूँ कि आपके हिंदू-धर्म तथा ईसाई-धर्म को आपके द्वारा वह लाभ प्राप्त हो सके, जिसे आप चाहते हैं—और यह तभी हो सकता है, जब आप मुसलमान हो जायँ। मुसलमान ही सच्चा ईसाई, यहूदी और हिंदू हो सकता है, अगर वह इसलाम के सच्चे सिद्धांत को समझता हो।"

हम पूछते हैं, मौलाना साहब ख़ुद इसलाम के सच्चे सिद्धांत को समझते हैं, या नहीं? यदि नहीं, तो आप गाँधीजी को सच्चा मुसलमान कैसे बनावेंगे? जो चीज़ जहाँ नहीं है, वह वहाँ से कभी नहीं मिल सकती। एक अंधा किसी को आँखोंवाला नहीं बना सकता; एक वेश्या किसी को पतिव्रता नहीं बना सकती। इसी प्रकार एक झूठा मुसलमान किसी को सच्चा मुसलमान नहीं बना सकता। किंतु यदि आप उक्त सिद्धांत को समझते हैं, तो अपने ही कथनानुसार आप सच्चे ईसाई, सच्चे यहूदी और सच्चे हिंदू सिद्ध होते हैं। क्या एक सच्चे हिंदू का यही काम है कि वह किसी सर्वश्रेष्ठ हिंदू महापुरुष को मुसलमान बन जाने की सलाह दे? आप ही की तरह और भी हज़ारों 'सच्चे हिंदू' यहाँ होंगे। फिर उनके द्वारा यहाँ की हिंदू-जनता आए-दिन क्यों सताई जा रही है? क्या यही लाभ मौलाना साहब हिंदुओं को दिलाना चाहते हैं?

आपने हिंदुओं को धोके में डालकर मुसलमान बनाने के लिये जो धूर्तता और मक्कारी से भरी किताब लिखी है, वही क्या एक सच्चे हिंदू का काम है? अभी उस दिन दिल्ली की एक सभा में आपने कहा है कि "जब तक

एक-एक मुसलमान दस-दस हिंदुओं को मुसलमान न बना ले, तब तक वह अपने मज़हब से गिरा समझा जायगा।" क्या यही एक 'सच्चे हिंदू' का काम है ? क्या गाँधीजी को भी आप इसी प्रकार का 'सच्चा हिंदू' बनाना चाहते हैं ?

आप फ़रमाते हैं, महात्माजी के मुसलमान होते ही हिंदू-मुसलमानों की फूट दूर हो जायगी। यथा—"जिस दिन आप मुसलमान होने की घोषणा करेंगे, उसी दिन मुसलमान-जाति हिंदू-धर्म की प्रत्येक कथा की रक्षा अपने कंधों पर ले लेगी। गो-वध बिलकुल बंद हो जायगा। सब देवालय पहले से अधिक सुरक्षित हो जायँगे। हम सब श्रीरामचंद्रजी, श्रीकृष्णजी और महात्मा गौतम बुद्ध तथा प्रत्येक प्रतिष्ठित हिंदू की प्रतिष्ठा करना अपना कर्तव्य समझेंगे। हम गीता, रामायण और वेदों की प्रतिष्ठा करने में कोई कसर उठा न रक्खेंगे।"

मतलब यह कि महात्माजी के मुसलमान होते ही सारे-के-सारे मुसलमान हिंदू हो जायँगे। असंगति का क्या ही अच्छा उदाहरण है ! वास्तव में यदि मुसलमान-जाति इतनी मूर्ख है कि एक प्रतिष्ठित हिंदू के आते ही अपना सब धर्म-कर्म छोड़कर दूसरों की नक़ल करने में ही लग जायगी, तब तो ऐसे मूर्ख-संप्रदाय में कोई निकृष्ट हिंदू भी जाना पसंद न करेगा, महात्माजी की तो बात ही क्या ?

मौलाना साहब ने यद्यपि यह बात मक्कारी से कही है, परंतु है वह सच्ची भविष्यद्वाणी। दूरदर्शी और समझदार मुसलमान अब समझने लगे हैं कि हिंदोस्तान के हित-अहित के साथ ही उनका हित-अहित संबद्ध है। उन्हें यहीं रहना और यहीं मरना है, यहीं के अन्न-जल पर निर्भर रहना है। टर्की की सल्तनत और मुसलमान-साम्राज्य के स्वप्न के भरोसे अपने पड़ोसी हिंदू भाइयों से वैर बिसाहना निरी मूर्खता और जल में रहकर मगर से वैर करने के समान है। यदि हिंदुओं से मसजिदों की इज़्ज़त करानी है, तो मुसलमानों को मंदिरों की प्रतिष्ठा करनी ही होगी। अब नवशिक्षित सच्चे मुसलमान मौलाना-जैसे धूर्त मौलवियों को इसलाम का शत्रु समझने लगे हैं। मौलाना ने अपनी धूर्तता का जो कुचक्र चलाया है, उससे मुसलमानों का घोर नैतिक पतन होगा। मक्कारी फिर मक्कारी ही है—छिप न सकेगी। धोके से मुसलमान बनानेवालों की लीला सुनकर अब कट्टर हिंदू भी शुद्धि के पक्षपाती होते जा रहे हैं। साथ ही सच्चे, सीधे मुसलमानों को भी वे संदेह की दृष्टि से देखने लगे हैं। वे मुसलमान फ़क़ीरों, मुसलमान नौकरों, मनिहारों तथा इसी परंपरा से समग्र मुसलमान-जाति को सतर्क, सभय और घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं। और, यह सब फल है मौलाना साहब के बोए हुए पाप-बीजों का। इसीलिये समझदार मुसलमान उन्हें इसलाम का शत्रु और मुसलमानों का नैतिक पतन करानेवाला समझते हैं। मौलाना की यह चिट्ठी भी उसी की मददगार है। इससे महात्माजी तो मुसलमान क्या होंगे, हिंदू-मुसलमानों के परस्पर वैमनस्य में और एक आहुति अवश्य पड़ेगी। हम मुसलमानों को सलाह देते हैं कि वे इस नवीन युग में बहुत सोच-समझकर ऐसे लोगों से बचते रहें। इसी में मुसलमानों, हिंदुओं और हिंदोस्तान का कल्याण है।*

× × ×

२. वर्षारंभ

अघटन-घटन-पटु परम पिता की अपार अनुकंपा से आज माधुरी अपनी आयु के दो वर्ष सकुशल समाप्त करके तीसरे वर्ष में पदार्पण करती है। आरंभ में हमारे इष्ट-मित्रों और सहायकों को माधुरी की सफलता पर संदेह हो रहा था। कारण चाहे जो हो, हिंदी-संसार में अनेक अच्छे पत्र भी प्रकाशित होकर कुछ ही समय में नाम-शेष होने के लिये विवश हुए हैं। यह स्थिति देखकर एक बड़ा पत्र निकालने की सलाह देने में हिचकना स्वाभाविक ही था। इसके अतिरिक्त उनके शंकित होने का मुख्य कारण हमारी अयोग्यता और अल्पज्ञता का अनुभव ही था। हम भी जानते थे कि एक उच्च कोटि के पत्र का संपादन करने के लिये जिस कोटि की योग्यता, अनुभव, अध्ययन और अध्यवसाय की आवश्यकता हुआ करती है, उसका सर्वथा अभाव न होने पर भी हममें उक्त विशेषताओं की मात्रा बहुत कम है। फिर भी हमने ऐसा साहस क्यों किया ? इस प्रश्न के उत्तर में हमारा वक्तव्य यही है कि योग्यता न रहने पर भी हिंदी की

* अर्सा हुआ, यह लेख मित्रवर पं० शालग्रामजी शास्त्री ने लिखकर भेजा था। स्थानाभाववश प्रकाशित न हो सका। इस बार भी रहा जाता था। अगली संख्या तक असामयिक हो जाता। अतः विविध विषय में ही प्रकाशित किया जाता है।—संपादक

सेवा करने का उत्साह हममें किसी से कम नहीं है। उसी ने हमें इसके लिये विवश किया कि जब तक अन्य सुयोग्य, अनुभवी विद्वान् इस क्षेत्र में नहीं आगे बढ़ते, तब तक हमीं अपनी अल्प विद्या बुद्धि लेकर ऐसे पत्र के अभाव की आंशिक पूर्ति करें। माता की पूजा के लिये स्वर्ण-पुष्पोपहार चढ़ाने की क्षमता न रहने पर क्या साधारण फूलों से उसकी पूजा न करनी चाहिए? माता तो देखती है केवल भक्ति, सामग्री का आडंबर नहीं। अस्तु।

गूँगों को वाचाल और पंगुओं को गिरि-लंघन-समर्थ बनानेवाले जगदीश्वर की कृपा के भरोसे माधुरी निकाली गई, और उन्हीं की कृपा-दृष्टि से सफल-काम होती हुई आज वह तीसरे वर्ष में प्रवेश करती है। इस अवसर में उसके सहायकों, प्रशंसकों और उत्साहित करनेवालों की अधिकता के साथ ही उसके दोष-दर्शकों और विरोधियों की भी कमी नहीं रही। हम दोनों प्रकार के कृपालु सज्जनों के कृतज्ञ हैं, और विरुद्ध-वादियों को भी अपने हितचिंतकों की श्रेणी में ही रखते हैं। माधुरी के संपादन और संचालन में अनेक त्रुटियाँ रही हैं, अब भी हैं, और आगे भी उनका अत्यंताभाव होना सर्वथा असंभव ही है। मनुष्य-मात्र की कृति सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकती। तथापि हरएक मनुष्य अपने दोषों और त्रुटियों को दूर करने की चेष्टा करता रहता है। तदनुसार हम भी अपने यथार्थ दोषों को दूर करने की चेष्टा करते रहे हैं, और आगे भी करते रहेंगे। रह गई उन आक्रमणों और आक्षेपों की बात, जो कि अकारण या किसी विशेष कारण से हुए हैं। उनके संबंध में हमारी नीति उपेक्षा की ही रही है, और रहेगी। ऐसे आक्षेपों का उत्तर देने में प्रायः बुराई ही पैदा होते देखी गई है।

आरंभ से ही हिंदी-जगत् के लब्धप्रतिष्ठ लेखकों और कवियों की कृपा-दृष्टि माधुरी पर रही है, जिसका माधुरी को गर्व और गौरव है। यहाँ तक कि जिन लेखकों की लेखनी ने संन्यास ले रक्खा था, वे भी हमारी प्रार्थना को टाल नहीं सके। सच तो यह है कि इन लेखकों और कवियों की अपार अनुकंपा और सहयोग ही माधुरी की सफलता का मूल-कारण है। अतः हम सब लेखकों और कवियों के हृदय से कृतज्ञ हैं। पुराने लेखकों के साथ ही नवीन लेखकों और कवियों की कृपा भी कम नहीं रही। हमें खेद है कि उनमें से अधिकांश की इच्छा पूर्ण करने में हम असमर्थ रहे। परंतु जिनकी प्रतिभा अभिनंदनीय थी, उनकी उपेक्षा भी नहीं की गई। आशा है, इस वर्ष भी नए-पुराने कवियों और लेखकों की कृपा से हम वंचित न होंगे। यहाँ पर यह कह देना भी उचित है कि माधुरी में जो कविताएँ प्रकाशित हुई हैं, उनमें उच्च कोटि की रचनाएँ उतनी नहीं हैं, जितनी होनी चाहिए थीं। उत्कृष्ट रचनाएँ प्राप्त करने का यथेष्ट उद्योग करने पर भी हम संपूर्ण कृतकार्य नहीं हो सके, और इसी कारण हमें कभी-कभी काम-चलाऊ रचनाएँ छापने के लिये विवश होना पड़ा। हमारे इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि हिंदी में प्रथम श्रेणी के कवि हैं ही नहीं। हैं अवश्य, पर एक तो उनकी संख्या इनी-गिनी ही है, दूसरे वे अपनी उमंग से स्वयं लिखते भी बहुत ही कम हैं। तक़ाज़ा करके लिखवाने पर उनकी भी रचना वैसी नहीं होती, जैसी कि स्वतः प्रवृत्त होकर लिखने से हो सकती। नवीन कवियों में भी कई कवि प्रतिभा-संपन्न हैं, और उनसे आगे चलकर अच्छी आशा है। इस वर्ष हम प्रथम श्रेणी की उत्कृष्ट कविताएँ प्राप्त करने का और भी अधिक उद्योग करेंगे, और आशा है, उसमें कृतकार्य भी होंगे। इस प्रकार माधुरी का पद्य-भाग भी हीन न रहने पाने की पूरी चेष्टा होती रहेगी।

चित्रकारों में बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा, खातूजी और हीरालाल-बब्बनजी की विशेष कृपा रही है। इन सज्जनों के चित्रों से भी माधुरी की लोक-प्रियता बढ़ती रही है। इन चित्रकारों ने तो आगे और भी अच्छे चित्र देने का वादा किया ही है, इनके अलावा और भी कई उत्कृष्ट शिल्पियों की सहायता मिलने की आशा है। मतलब यह कि माधुरी का चित्र-विभाग भी उत्तरोत्तर उन्नति करता रहेगा।

माधुरी के अनुग्राहक ग्राहकों ने जिस अनुराग, उत्सुकता और प्रेम का परिचय दिया है, वह अवर्णनीय है। उन्हें माधुरी के निकलने में एक दिन की देर भी अखरने लगती है। उनके पत्रों के ढेर लग जाते हैं। ग्रा जिस तेज़ी से बढ़े हैं, और उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं, उसे देखकर हमारा उत्साह बहुत बढ़ गया है। सच तो है कि किसी पत्र या पत्रिका की उन्नति ग्राहकों पर निर्भर है। ग्राहकों की इस गुणग्राहकता के लिये उन्हें बधाई और साधुवाद देते हुए आशा करते हैं उनकी यह कृपा माधुरी पर बराबर बनी रहेगी।

अंत में हम अपने कृपालु सहयोगियों, समालोचकों और मान्य मित्रों को भी उनकी असीम कृपा के लिये धन्यवाद देते हैं, और प्रार्थना करते हैं कि इसी तरह कृपा बनाए रखकर, हमारे गुण-दोषों की सूचना हमें देते रहकर, अपनी उदारता और स्नेह का परिचय देते रहें।

× × ×

३. गोस्वामीजी की पुण्य स्मृति

आज श्रावण-शुक्ला सप्तमी का दिन है। यही दिन, जिस दिन श्रीरामचंद्र-चरणारविंद-चंचरीक, प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजी इस नश्वर पांचभौतिक शरीर के साथ ही अमर, अनंत, अक्षय, अमल कीर्ति यहाँ छोड़कर ब्रह्मलीन हुए थे, जिस दिन राम-गुण-गाथा गानेवाली जिह्वा से शायद यह अंतिम छंद निकला था—

राम-नाम-जस गाइके भयो चहत अब मौन;
तुलसी के मुख दीजिए अब ही तुलसी-सौन।

महात्मा पुरुषों में अग्रगण्य, कवि-मंडली की मध्यमणि, भगवद्भक्तों के दासानुदास, हिंदी-जननी के बहुमूल्य लाल और साहित्य के सर्वमान्य स्रष्टा गोस्वामीजी क्या थे, उनकी प्रतिभा किस श्रेणी की थी, उनकी रचना में क्या-क्या गुण और दोष हैं, इन बातों की विवेचना अथवा निर्णय करने का न हम दुस्साहस ही कर सकते हैं, और न हमें इतनी विद्या-बुद्धि का दावा ही है कि हम तुलसीदासजी की तुलनात्मक समालोचना यहाँ पर करने बैठें। हम तो गोस्वामीजी के अकिंचन उपासकों में हैं। तुलसी ने रामचरित की रचना करके देश का जो उपकार किया है, धर्म की जो सेवा की है, साहित्य की जो संपत्ति बढ़ाई है, हिंदी-भाषा को जिस गौरव की अधिकारिणी बनाया है, उसका परिचय जिस हिंदू को नहीं है, उसे हम क्या कहें! तुलसीदासजी यदि भाषा में रामायण न बनाते, तो रामचरित का इतना प्रचार और परिचय साधारण श्रेणी के जनसमूह में कदापि न देख पड़ता। आज एक अल्पशिक्षित अहीर, कहार, चमार और भंगी तक तुलसी की कृपा से राम-चर्चा करके सत्य की महिमा, पिता की भक्ति और भ्रातृस्नेह की माधुरी का अभिनंदन करता है। वह कैकेयी और मंथरा के चरित्र से यह शिक्षा ग्रहण करता है कि कुपरामर्श पाकर अच्छी प्रकृति में भी कैसी कुत्सित विकृति पैदा हो जाती है, और नीच-संसर्ग का परिणाम कभी अच्छा नहीं होता। इस तरह रामायण के प्रत्येक चरित्र से मिलनेवाली शिक्षा सर्व-साधारण को सुलभ कर देने के कारण गोस्वामीजी ने देश और धर्म का बड़ा उपकार

गोस्वामी तुलसीदासजी

किया है। रामायण का पाठ करनेवाला नीच जाति का हिंदू भी ईसाइयों और मुसलमानों के झाँसे में नहीं आता। कारण, वह केवल रामायण पढ़कर ही अपने धर्म की खूबियाँ बखूबी समझ जाता है। साहित्य की दृष्टि से भी रामायण एक अनुपम रचना है। वह उन्नत-से-उन्नत साहित्य के लिये गर्व और गौरव की सामग्री हो सकती है। हिंदी के प्रचार में तो जितनी सहायता रामायण से मिली है, उतनी अन्य किसी भी पुस्तक से नहीं। इस रामायण को पढ़ने के लिये हज़ारों अन्य भाषा-भाषी विभिन्न-प्रांत-वासी लोगों ने हिंदी का अध्ययन किया है। इस प्रकार विचार करके देखने पर गोस्वामी एक प्रातःस्मरणीय, अद्वितीय महापुरुष सिद्ध होते हैं। उनकी निधन-तिथि को एकत्र होकर उनके गुणों का वर्णन करना, उनके किए उपकारों को स्वीकार करते हुए कृतज्ञता प्रकट करना, उनके पदांकानुसरण के लिये यथा-शक्ति थोड़ी-बहुत चेष्टा करना, उनकी वंदना करना प्रत्येक हिंदू का, प्रत्येक हिंदी-भाषा के प्रेमी का प्रधान कर्तव्य है। हमें विश्वास है कि जिस उत्साह के साथ हिंदी-प्रेमी हिंदुओं ने इधर कुछ दिनों से तुलसीदास की वर्षी मनाना शुरू किया है, वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायगा। हम भी आज गोस्वामीजी की पवित्र स्मृति में ये शब्द लिखकर उनके प्रति अपनी हार्दिक भक्ति और आदर प्रकट करते हैं।

× × ×

४. पंद्रहवाँ हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

हमारे पाठकों को मालूम ही होगा कि गत अधिवेशन के अंतिम दिन दिल्ली में देहरादून से आया हुआ निमंत्रण स्वीकृत हुआ था। पं० नरदेव शास्त्रीजी वेदतीर्थ के उत्साह, अध्यवसाय और परिश्रम पर ही इस अधिवेशन की सफलता सर्वथा निर्भर है। आप एक कर्मनिष्ठ, निपुण कार्यकर्ता हैं। अतएव आप इस अधिवेशन को इतने अल्प समय में ही अगर असाधारण सफलता के गौरव से अभिनंदनीय बना दें, तो कोई आश्चर्य की बात न होगी। इस संख्या में स्थान-संकोच के कारण विस्तार के साथ लिखने में असमर्थ होकर भी हम दो-एक आवश्यक विषयों पर अपनी सम्मति देते हैं। पहला विषय है सभापति निर्वाचन। पाठकों को स्मरण होगा, माधुरी शुरू से ही विद्वद्वर गोस्वामी राधाचरणजी महाराज के लिये सम्मति देती आ रही है। गत अधिवेशन का विवरण देते समय भी हमने एक नोट में गोस्वामीजी को पंद्रहवें अधिवेशन का अधिपति अवश्य बनाने की सलाह दी थी। हर्ष की बात है कि इस बार हिंदी-संसार का ध्यान उधर गया है, अपनी भूल उसे सूझ पड़ी है। कई माननीय सह-योगियों ने गोस्वामीजी के लिये ही सम्मति दी है। हमें आशा है, साधारण हिंदी-प्रेमी जनता भी इसका समर्थन करेगी। उक्त गोस्वामीजी, पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझाजी, श्रीयुत अमृतलाल चक्रवर्तीजी, सप्रेजी, पं० पद्मसिंहजी आदि को क्रमशः सभापति बनाना आवश्यक है। दूसरी बात है सम्मेलन के कार्य-क्रम को रोचक बनाना। इस संबंध में हमारी सम्मति यह है कि भिन्न-भिन्न भाषाओं के महारथी साहित्यिकों को विशेष रूप से निमंत्रण देकर बुलाया जाय, उनके विचारों से लाभ उठाया जाय। सभापतियों के भाषण बहुत लंबे-चौड़े होने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। उनके भाषण थोड़े शब्दों में बहुत अर्थ प्रकट करनेवाले हों। उनमें साहित्य की किसी समस्या को हल करने की चेष्टा भी की जाय, तो अच्छा हो। साल-भर में साहित्य की जो उन्नति, अवनति और प्रचार हुआ हो, उसके महत्त्व-पूर्ण अंशों का उल्लेख रहे। कोई ख़ास पुस्तक, निबंध या काव्य लिखा गया हो, तो उसका विवेचना-पूर्ण परिचय कराया जाय। इसके अतिरिक्त पास किए गए प्रस्तावों की पूर्ति कितनी हो सकी है, इसकी सूचना देना उचित होगा। प्रस्ताव अगर पूरे नहीं हो सके, तो क्यों? बाधा-विघ्न-विपत्तियों की चर्चा की जाय, और उनके प्रतिकार की राह सुझाई जाय। साहित्य के अभाव-अभियोग और आवश्यकताओं का दिग्दर्शन कराया जाय। अगर साहित्य-निर्माण और लिपि-प्रचार की कोई नई स्कीम सूझ पड़े, तो वह भी सबके आगे उपस्थित की जाय। इस तरह सभापति का भाषण अधिकतर उपयोगी और रोचक बनाया जा सकता है। एक बात और। संपादक-समिति का पुनरुज्जीवन अत्यंत आवश्यक हो गया है। समिति को एक कार्यकरी संस्था बनाना होगा। संपादक-मंडली अगर परस्पर सौहार्द और सहानुभूति से संपन्न रहे, तो बहुत अच्छा हो। देख पड़ता है, कभी-कभी कोई-कोई जोशीले संपादक समर्थन, वाद-विवाद या खंडन-मंडन के अवसर पर शिष्टता की सीमा के बाहर

होकर दूसरे को अपशब्दों का लक्ष्य बनाने में तनिक भी संकोच नहीं करते। कोई सहयोगी भी उन्हें ऐसा करने से नहीं रोकता। प्रायः हिंदी-पत्र-संसार में ऐसी स्थिति उपस्थित हो जाया करती है। इस पर नियंत्रण रखने के लिये संपादक-समिति की अत्यंत आवश्यकता है। समिति अपने सभ्यों के लिये एक नियम ही ऐसा बना दे कि ऐसे लेख कोई न लिख सके। शिष्ट शब्दों में प्रतियोगी के मत और युक्तियों का खंडन-मंडन किया जाय। अब की बार इतना ही। आगामी संख्या में इस विषय पर और लिखा जायगा।

× × ×

५. हिंदी-साहित्य-सेवियों से आवश्यक निवेदन

हिंदी के सामयिक पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित सूचनाओं से आपको मालूम हुआ होगा कि मिश्र-बंधु-लिखित हिंदी-साहित्य-संसार के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'मिश्र-बंधु-विनोद' का संशोधित एवं संवर्द्धित संस्करण दूसरी बार खूब सजधज से निकालने का विराट् आयोजन हो रहा है। उक्त सूचना के अनुसार कुछ महानुभावों ने अपनी जीवनियाँ तथा स्व-रचित ग्रंथों के नाम आदि भेजने की उदारता दिखाई है। परंतु वर्तमान लेखक-समुदाय पर दृष्टिपात करते हुए प्रस्तुत उपलब्ध सामग्री पर्याप्त नहीं कही जा सकती। अतः हिंदी के समस्त लेखकों और कवियों से हमारी विनीत प्रार्थना है कि निम्न-लिखित क्रमानुसार आप अपनी जीवनी तथा ग्रंथों का विवरणात्मक परिचय शीघ्र ही हमारे पास भेजने की अनुकंपा करें। समय अब थोड़ा रह गया है। ऐसे पवित्र साहित्यिक कार्य में हिंदी के प्रत्येक भक्त की सहायता आवश्यक है। आपके प्रांत या ज़िले में यदि कोई हिंदी-लेखक या कवि महाशय मौजूद हों, या पहले हो चुके हों, तो उनके विषय में भी अपनी जानकारी-भर सभी महत्त्व-पूर्ण बातें लिखने की कृपा कीजिए—

१. लेखक या कवि का नाम, निवास-स्थान, ज़िला, प्रांत आदि।

२. लेखक या कवि के पिता का नाम, वंश-परिचय आदि।

३. जन्म-संवत्। (यदि मृत हैं, तो मृत्यु-संवत् भी)

४. ग्रंथों के नाम; उनके विषय और उनका निर्माण-काल तथा उनके संबंध में जानने के योग्य अन्य आवश्यक बातें।

५. ग्रंथ मुद्रित हैं अथवा अमुद्रित? यदि मुद्रित हैं, तो प्रकाशक और छापेख़ाने का पूरा पता क्या है?

६. कविता-काल, अथवा ग्रंथ-लेखन किस संवत् से आरंभ हुआ?

७. रचनाओं के चुने हुए नमूने।

८. अन्यान्य विशेष ज्ञातव्य विषयों का उल्लेख।

× × ×

६. हंस और चक्रवाक

इधर 'माधुरी' की पिछली कई संख्याओं में चक्रवाक और हंस के विषय में अच्छी चर्चा चली है। प्रश्न केवल दो हैं—(१) क्या चक्रवाक और हंस एक जाति के पक्षी हैं? (२) क्या हंसों के समान ही चक्रवाक भी वर्षा-ऋतु में भारतवर्ष के बाहर चले जाते हैं? इन दोनों ही प्रश्नों पर हम यहाँ पर संक्षेप से विचार करते हैं। दोनों पक्षी एक जाति के हैं या नहीं, इस संबंध में यह निवेदन करना है कि दोनों का आकार एक ही प्रकार का होता है। उनके शरीर की गठन, डैनों का विस्तार, चोंच की सूरत, पैरों के बीच का जाल, गर्दन, मुख, आँखें तथा पक्ष-समूह, सभी में साम्य है। केवल परों के रंग में भेद है। चक्रवाक का रंग लाल-कत्थई होता है। इस एक भेद को छोड़कर आकार और रूप में चक्रवाक और हंस समान ही होते हैं। यदि सफ़ेद रंग का हंस उसी रंग में रँग दिया जाय, जो चक्रवाक का होता है, तो फिर दोनों में कोई भेद नहीं रह जाता। तब यह जानना कठिन होगा कि कौन चक्रवाक है, और कौन हंस। देखिए 'कर्पूर-मंजरी'-सट्टक में राजा हंसी को कुंकुम से रँगकर बेचारे हंस को कैसा धोखा देता है। हंस अपनी हंसी को कुंकुम से रँगी पाकर उसे चक्रवाकी समझता है, और उसके निकट नहीं जाता—

"हंसिं कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरतणुं काऊण जं वञ्चिदो,
तब्भत्ता किल चक्कआअघरिणी पसत्ति मएणन्तओ;
एदं तं मह दुक्किदं परिणदं दुक्खाए सिक्खावणं,
एक्करयो वि ण जासि जेण विसअं दिट्ठीतिहाअस्सदि।"

(कर्पूर-मंजरी, २ जवनिकान्तरम्, श्लोक ८)

तात्पर्य यह कि रूप और आकार में दोनों पक्षी एक ही-से हैं। इनकी खाद्य-सामग्री और उड़ने का ढंग भी एक ही-सा है। जाड़े की ऋतु में दोनों ही पक्षी भारतवर्ष में बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। कवियों और

वैज्ञानिकों का इस बात में एक मत है कि जाड़ा इन्हें बहुत प्रिय है, और शरद्-ऋतु में ये जलाशयों की शोभा बढ़ाते हैं। विहंग-विद्याविशारदों ने नैटेटोरीज़-विभाग (Natatories) के अंतर्गत एक उपभेद हंसों का रक्खा है, और एक उपभेद चक्रवाकों का। सितेतर हंसों को धार्तराष्ट्र कहते हैं। महाभारत के आदि-पर्व का ६६वाँ अध्याय देखने से मालूम होता है कि हंस, कलहंस और चक्रवाक की उत्पत्ति धृतराष्ट्री (सितेतर हंसी) से है—

धृतराष्ट्री तु हंसांश्च कलहंसांश्च सर्वशः।
चक्रवाकांश्च भद्रा तु जनयामास सैव तु ॥ ५८ ॥*

इस प्रकार पक्षिशास्त्रवेत्ताओं के मतानुसार चक्रवाक और हंस चचेरे भाई हैं, और महाभारत के अनुसार सगे भाई। प्रत्यक्ष में देखने से उनके रूप, आकृति और स्वभाव भी यही सूचित करते हैं। ऐसी दशा में हंसों और चक्रवाकों के समान-जातीय होने की ही अधिक संभावना समझ पड़ती है।

दोनों पक्षियों के समान-जातीय होने की बात पर विचार कर चुकने के बाद इस प्रश्न का उत्तर रह जाता है कि क्या चक्रवाक वर्षा के अवसर पर भारतवर्ष में पाए जाते हैं? सौभाग्य से प्रावृट्-काल उपस्थित है। अपने नेत्रों की सहायता से यदि हम चक्रवाकों को इस समय आकाश में विचरते अथवा जल-परिपूर्ण जलाशयों में कल्लोल करते देखें, तो मानना ही होगा कि वर्षा-काल में चक्रवाक भारत में अवश्य पाए जाते हैं। पर यदि यथेष्ट उद्योग करने पर भी हमें उनके दर्शन दुर्लभ ही रहें, तो इसके विपरीत निर्णय को मानने में भी हमें किसी प्रकार का संकोच न होना चाहिए। प्रकृति-निरीक्षण के मामले में तो प्रत्यक्ष प्रमाण ही सर्वोपरि है। इस संबंध में हमने अपने नेत्रों की सहायता ली, अपने मित्रों के नेत्रों की सहायता ली, चक्रवाक का मांस खाने को लालायित, बंदूक़ बाँधे शिकारियों के नेत्रों की सहायता ली, और पक्षियों का व्यापार करनेवाले चिड़ीमारों के नेत्रों की सहायता ली। इस संयुक्त सहायता से हमें तो यही अनुभव प्राप्त हुआ कि वर्षा-काल में, भारतवर्ष में, चक्रवाक नहीं पाए जाते। अपने समान-जातीय हंसों के साथ ही इस समय वे भारत के उत्तर में मानस की ओर चले जाते और उन्हीं के साथ, शरद्-ऋतु का प्रारंभ होते ही, फिर आ जाते हैं। लाखों रुपए ख़र्च करके, घोर परिश्रम तथा अध्यवसाय के साथ, विहंग-विद्याविशारदों ने जो भारतीय पक्षिशास्त्र तैयार किया है, उसमें भी यही बात लिखी हुई है। हमारा विश्वास है, और प्रत्यक्ष में हम देखते भी हैं कि वर्षा-काल में चक्रवाक दिखलाई नहीं पड़ते। इसी बात को हम सही मानते हैं। चक्रवाक, हंसों के समान ही, न तो भारत में घोंसले बनाते हैं, न अंडे देते हैं, और न यहाँ उनके बच्चे उत्पन्न होते हैं।

संस्कृत के एक-आध कवि ने वर्षा-काल में चक्रवाकों का वर्णन किया है। इस बात को लेकर एक पक्ष कहता है कि जब हमारे प्राचीन कवियों ने पावस में इन पक्षियों का वर्णन किया है, तब वे इस समय भारत में अवश्य होते हैं। चाहे प्रावृट्-काल में चक्रवाक प्रत्यक्ष न भी दिखलाई पड़ें, चाहे विहंग-विद्याविशारद तथा अन्य ज्ञाता लोग भी उनके न होने का ही समर्थन करें, पर इन लोगों के ये प्रमाण तुच्छ हैं। इन प्रमाणों की अवहेलना करके ये लोग कुछ प्राचीन संस्कृत-कवियों के प्रमाण को ही ठीक मानने के लिये तैयार हैं। अपने प्राचीन कवियों के कथनों को, प्रत्यक्ष के विरुद्ध होते हुए भी, ठीक मानना गंभीर आदर का परिचायक अवश्य है। हम इस भाव की सराहना करते हैं। पर खेद यही है कि वह ज्ञान-वृद्धि का बाधक है, साधक नहीं। प्रकृति-निरीक्षण एवं कवि-संप्रदाय, इन दोनों ही प्रकारों से यह बात सर्व-सम्मत है कि हंस वर्षा-काल में भारत के बाहर चले जाते हैं। पर हमें कुछ ऐसे भी प्राचीन संस्कृत-श्लोक मिले हैं, जिनमें वर्षा में हंसों का वर्णन है। हमें भय है कि प्राचीन कवियों के कथनों को सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माननेवाला दल उन श्लोकों को देखकर वर्षा में हंसों की सत्ता के संबंध में भी आग्रह न करने लगे। कवि-जगत् की सम्मति में, कवि-समय-ख्याति के अनुसार, हंस प्रावृट्-काल में भारत में नहीं रहते। चक्रवाकों के संबंध में न तो यही समय-ख्याति है कि वे रहते हैं, और न यही कि वे चले जाते हैं। बस, हंसों और चक्रवाकों की वर्षा-कालीन स्थिति में यही भेद है। चक्रवाकों के संबंध में यह एक और समय-ख्याति है कि उनका जोड़ा रात में बिछुड़ा रहता और दिन में मिल जाता है। यह समय-ख्याति प्रकृति-निरीक्षण के विरुद्ध है। यथार्थ में चक्रवाकी और चक्रवाक रात में भी साथ-ही-साथ रहते

* वाल्मीकीय रामायण के आरण्य-कांड में भी यह श्लोक इस रूप में, कुछ साधारण शाब्दिक परिवर्तन के साथ, है।

हैं, बिछुड़ते नहीं। इसीलिये उनका नाम भी द्वंद्वचर पड़ा है। फिर भी कवि-जगत् में, इस कोक-कोकी-वियोग की बात असत्-निबंधन (असतोऽपि क्रियार्थस्य निबन्धनम्, यथा—चक्रवाकमिथुनस्य भिन्नतटाश्रयणं, चकोराणां चन्द्रिकापानं च।) होते हुए भी, माननीय है। जो कविगण समय-ख्याति के फेर में पड़कर, प्रकृति-निरीक्षण के विरुद्ध, कोक-कोकी-वियोग का वर्णन करने में बिलकुल नहीं हिचकते, उन्हीं में के दो-एक ने यदि वर्षा में भी चक्रवाक का वर्णन कर दिया, तो क्या हुआ? प्रकृति-निरीक्षण के विचार से रात्रि में कोक-कोकी-वियोग का वर्णन भूल है। वर्षा में वही वर्णन दुहरी भूल है। पहली भूल समय-ख्याति के कारण कवि-जगत् में क्षम्य है, पर प्रकृति-जगत् में नहीं। हमारे एक मित्र की राय है कि वर्षा में जहाँ कहीं संस्कृत के कवियों ने चक्रवाक का उल्लेख किया है, वहाँ पर उसका अर्थ बतख (Duck) है। आपटे ने अपने प्रसिद्ध कोष में यह अर्थ दिया भी है। अस्तु, हमारी राय में हंस और चक्रवाक समान जाति के पक्षी हैं, और वे वर्षा में भारतवर्ष के बाहर चले जाते हैं। प्रकृति-निरीक्षण के मामले में प्रत्यक्ष प्रमाण ही सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। बड़े-से-बड़े कवि के यदि ऐसे वर्णन मिलें, जो प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध हों, तो वे भी माननीय नहीं हो सकते।

× × ×

७. मतिराम और भूषण

प्रायः देखा जाता है कि दो भाइयों की बोल-चाल, रहन-सहन और स्वभाव आदि में अद्भुत साम्य पाया जाता है। एक भाई को जो बात पसंद होती है, दूसरा भाई भी प्रायः वही बात पसंद करता है। जिन वस्तुओं में एक भाई की रुचि दिखलाई पड़ती है, उन्हीं में दूसरा भाई भी अनुरक्त पाया जाता है। परंतु ऐसा नहीं है कि यह नियम सभी अवस्थाओं और सभी भाइयों पर अवश्य ही लागू हो। कभी-कभी सहोदर भाइयों के विचार, रुचि और स्वभाव भिन्न-भिन्न प्रकार के ही नहीं, बल्कि परस्पर विरोधी भी होते हैं। एक भाई जिस चीज़ को पसंद करता है, दूसरा भाई उसी से घृणा करता भी देखा गया है। पर ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं। अधिक उदाहरण तो ऐसे ही उपलब्ध हैं, जिनमें भाइयों की रहन-सहन, बोल-चाल, शील-स्वभाव, रुचि आदि में साम्य होता है, विरोध नहीं। ऐसी दशा में साम्य की बात व्यापक नियम के अंतर्गत आती है, और विरोध की बात अपवाद के।

कविता-क्षेत्र में भी हमें यह साम्य का व्यापक नियम देख पड़ता है। हम देखते हैं, जो कवि भाई-भाई हैं, उनकी कृतियों में भाषा, भाव और रुचि का सादृश्य प्रायः हुआ करता है। पुराने कवियों को जाने दीजिए, जो कवि इस समय जीवित हैं, उनमें भी इस सादृश्य का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है। अवश्य ही, जैसा हम ऊपर कह आए हैं, अपवादों का अभाव नहीं है; पर व्यापक नियम तो यही है कि भाइयों की कविता में समान भाव, समान भाषा और समान रुचि का पद-पद पर पता चलता है। जिन कवियों में भ्रातृ-संबंध है, उनकी भाषा में ही औरों से अधिक सादृश्य पाया जाता है। इसका कारण स्पष्ट है। बचपन से साथ-ही-साथ रहने, साहित्यिक जीवन में संसर्गज प्रभाव पड़ने, तथा स्वाभाविक भ्रातृ-अनुकरण की प्रेरणा से यह साम्य कभी-कभी बहुत ही गहरा हो जाता है। भाव-सादृश्य उपस्थित करने में भी इन्हीं कारणों का आधिपत्य है; पर उतना नहीं, जितना भाषा के मामले में। रुचि पर इन कारणों का प्रभाव सबसे कम पड़ता है। ये रुचि को उद्दीपित कर सकते हैं, अथवा उसे दबा सकते हैं, पर उसका आमूल परिवर्तन नहीं कर सकते। भाई न होने पर भी दो कवियों की भाषा और भावों में सादृश्य पाया जा सकता है; पर ऐसा बहुत कम दिखलाई पड़ता है। जहाँ कहीं ऐसे उदाहरण मिलें, उन्हें भी अपवाद के ही अंतर्गत मानना चाहिए। व्यापक नियम तो यही है, जो ऊपर कहा गया है। पर अकेले एक इसी व्यापक नियम के सहारे हम दो प्राचीन कवियों को भाई नहीं सिद्ध कर सकते; क्योंकि इस नियम के अपवादों के रहते हुए बात का सदा भय बना रह सकता है कि संभव है, यह उदाहरण अपवाद का ही हो। हाँ, जब दो प्राचीन कवियों के भाई होने के और भी कारण विद्यमान होते हैं, तब भाषा-सादृश्य और भाव-सादृश्य की सहायता भी परम उपयोगी सिद्ध होती है। मान लीजिए, दो पुराने कवि बहुत समय से भाई-भाई कहकर प्रसिद्ध हैं; पर उक्त प्रसिद्धि का कोई लिखित प्रमाण नहीं है। ऐसी दशा में उन दोनों कवियों के भाषा-सादृश्य और भाव-सादृश्य से उक्त प्रसिद्धि का बहुत कुछ समर्थन

हो जायगा। पर यदि वे दोनों कवि भाई-भाई नहीं प्रसिद्ध हैं, और न उनके भाई होने का कोई लिखित प्रमाण ही है, तो, उस दशा में, केवल भाव और भाषा-सादृश्य के बल पर उनको भाई कहना बड़े साहस का काम होगा।

मतिराम और भूषण चिरकाल से भाई-भाई प्रसिद्ध हैं। कुछ प्राचीन लिखित प्रमाण भी इस प्रसिद्धि का समर्थन करते हैं। ऐसी दशा में यदि इन दोनों कवियों की भाषा और भावों में सादृश्य दिखलाई पड़े, तो इनके भ्रातृ-संबंध का समर्थन एक अन्य प्रकार से भी हो जाता है। इन दोनों कवियों के बीच ऐसा सादृश्य बड़े महत्त्व का है। कुछ उदाहरण लीजिए—

१. अली चली नवलाहि लै पिय पै साजि सिंगार;
ज्यों मतंग अँड़दार को लिए जात गँड़दार।
(मतिराम)

दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय,
जैसे गँड़दार अँड़दार गजराज को।
(भूषण)

२. दान-हीन कलम कदलि-दल कंप-जुत,
राव भावसिंहजी के राज मैं निहारिए।
(मतिराम)

कंप कदली मैं, बारि-बुंद बदली मैं,
सिवराज अदली के राज मैं यों राजनीति है।
(भूषण)

३. दिल्ली के दिनेस के प्रचंड तेज आँच लागे,
पानिप रह्यो न काहू भूपति-तलाव मैं।
(मतिराम)

भूषन तीछन तेज तरन्नि-सो वैरिन को कियो पानिप-हीनो।
(भूषण)

४. मूछनि सों राव-मुख लाल रंग देखि, मुख
औरन को मूछन बिना ही स्याम रंग भो।
(मतिराम)

तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि, भए
स्याम-मुख नौरँग, सिपाह-मुख पियरे।
(भूषण)

५. जहाँ एक उपमेय के होत बहुत उपमान ;
तहाँ कहत मालोपमा कवि मतिराम सुजान।
(मतिराम)

जहाँ एक उपमेय के होत बहुत उपमान ;
ताहि कहत मालोपमा भूषन सुकवि सुजान।
(भूषण)

ऊपर दिए हुए प्रथम चार उदाहरणों में भाव और भाषा के सादृश्य पर पाठकगण ग़ौर करें। दोनों कवियों के ग्रंथों में ऐसे ही सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं। माधुरी की किसी पिछली संख्या में प्रकाशित 'मतिराम का गज-गौरव'-नामक लेख पढ़ने से भी विदित होगा कि हाथियों का वर्णन दोनों ही कवियों ने एक ही प्रकार से, एक ही प्रकार की भाषा में, किया है। अभी हाल में, माधुरी की गत संख्या में, जो भूषण-कृत शृंगार-रस के छंद छपे हैं, उनकी भाषा तो मतिराम की भाषा से और भी अधिक मिलती है। पाँचवें उदाहरण में 'मालोपमा' का लक्षण है। 'शिवराज-भूषण' और 'ललितललाम' के इन लक्षणों को सदृश न कहकर यदि एक ही कहें, तो अनुचित न होगा। दोनों ग्रंथों में ऐसे बीसों एक-से लक्षण मौजूद हैं। 'मतिराम-मति-मुकुर' में—जो गंगा-पुस्तकमाला में शीघ्र छपनेवाला है—ऐसे बहुत-से लक्षण और भाव खोजकर एकत्र किए गए हैं। इस सादृश्य-चमत्कार से निष्कर्ष यही निकलता है कि मतिराम और भूषण भाई-भाई थे।

× × ×

८. प्रकाशक लांगमैन्स

सन् १७१९ में विलियम टेलर नाम के प्रकाशक ने जगत्प्रसिद्ध रॉबिन्सन क्रूसो-नामक उपन्यास प्रकाशित करके ख़ूब धन बटोरा था। इस रक़म से उसने प्रकाशन का काम बड़े ज़ोर-शोर से चलाया। टेलर के इसी प्रकाशन-कार्य को, आज से २०० वर्ष पूर्व, टामस लांगमैन साहब ने ख़रीद लिया था। तब से अब तक वहीं—'पैटेनास्टर रो' में—लांगमैन का वह कारख़ाना चल रहा है। उन्नति करते-करते इस समय इस कारख़ाने की ख्याति संसार-भर में फैल गई है। सभी देशों में इसकी शाखा-प्रशाखाएँ हैं। भारत में भी, कलकत्ते और मदरास में, इसकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ हैं। इस कारख़ाने के संचालन की बागडोर आज भी टामस लांगमैन के वंशधरों के ही हाथ में है। सफल व्यवसाय और संगठित कार्य का यह उत्कृष्ट निदर्शन है। इँगलैंड के साहित्यिक इतिहास में, इन दो सौ वर्षों में, जितने अच्छे लेखक, कवि और वैज्ञानिक आदि हुए हैं, प्रायः उन सभी के ग्रंथ प्रकाशित करने का सौभाग्य इस कारख़ाने को प्राप्त है। जानसन के प्रसिद्ध कोश के प्रकाशकों में लांगमैन

भी थे। सद्री और वर्ड्सवर्थ की कविताएँ भी इन्होंने प्रकाशित कीं। लैंब, स्कॉट, मेकाले, फ्राउड, मैक्समूलर, ल्होकी, विलियम मॉरिस, कहाँ तक गिनावें, प्रायः सभी विद्वानों ने इस कारख़ाने से सहयोग कर रक्खा था। लिंडले मरे, अमेरिका के क्रैकर अमेरियन और लॉर्ड मेकाले की बदौलत इस कारख़ाने को बहुत बड़ा आर्थिक लाभ हुआ। लॉर्ड मेकाले के इतिहास के तीसरे और चौथे भाग की बिक्री तो इतनी अधिक हुई कि सन् १८५६ में प्रकाशकों ने लॉर्ड महोदय को एक २०,००० पौंड का चेक भेंट किया। एक बार लॉर्ड महोदय ने अपनी बनाई 'लेज़ ऑफ़ दि एंशंट रोम'-नामक पुस्तक के प्रकाशन का स्वत्व इस कंपनी को यों ही दे दिया; क्योंकि उनका ख़याल था कि इस पुस्तक की बिक्री बहुत कम होगी। पर इस कारख़ाने से प्रकाशित होते ही वह पुस्तक बात-की-बात में बिक गई। इस कारख़ाने के सौजन्य को तो देखिए! पहला संस्करण जैसे ही समाप्त हुआ, वैसे ही प्रकाशकों ने पुस्तक के प्रकाशन का स्वत्वाधिकार लेखक को वापस कर दिया। इस संस्था की ओर से एक 'लांगमैन्स-मैगज़ीन' भी निकाली गई थी। पर अब वह बंद हो गई है। जहाँ अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करके प्रकाशक लोग ख़ूब रुपए पैदा करते हैं, वहाँ कभी-कभी दुर्भाग्य से वे ऐसी अच्छी किताबों को छापना भी अस्वीकृत कर देते हैं, जिसका बाद को उन्हें सदा खेद रहता है। लांगमैन-जैसे प्रकाशकों से भी ऐसी भूलें कई बार हुई हैं। इस प्रकार की जो सबसे बड़ी भूल लांगमैन से हुई है, वह विद्वद्वर कारलाइल की 'सारटर-रिसारटस' पुस्तक न छापने की है। स्थायी साहित्य में इस पुस्तक का स्थान बहुत ऊँचा है। इसकी बिक्री भी बहुत हुई है। पर जब यही पुस्तक पहले-पहल लांगमैन के यहाँ छपने गई, तो उन्होंने उसे छापना स्वीकार न किया।

लांगमैन के प्रकाशन-कार्य को चलते इस साल २०० वर्ष पूरे होते हैं। इसलिये इँगलैंड में बड़े समारोह के साथ इसका जयंती-उत्सव मनाया जायगा। अभी से उसके लिये तैयारियाँ हो रही हैं। संभवतः लांगमैन के कारख़ाने का पूरा इतिहास भी प्रकाशित होगा। जिस देश में दो सौ वर्ष से बराबर चलते रहनेवाले प्रकाशन-कार्य के करनेवाले सज्जन प्रकाशक हों, और जिनका उद्देश्य लेखकों को ठगना नहीं, बल्कि साहित्य का प्रचार हो, उस देश के उन्नत साहित्य की चर्चा ही क्या? धन्य प्रकाशक लांगमैन्स! इस द्विशत वार्षिक उत्सव के उपलक्ष्य में हम भी उक्त प्रकाशक को बधाई देते हैं।

× × ×

९. युक्त-प्रदेश में शिक्षा की दशा

एप्रिल, सन् १९२२ से मार्च, १९२३ तक युक्त-प्रदेश में शिक्षा की जो कुछ दशा रही, उसके संबंध में सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। उसे पढ़ने से मालूम होता है कि यहाँ १०,८०,६९१ विद्यार्थियों की शिक्षा का प्रबंध है। इस वर्ष के पहले इस संख्या में ४०,००० की कमी थी। शिक्षा की मद में प्रांतीय फ़ंड से सरकार १,६९,८७,००० रुपए ख़र्च करती है। प्रयाग-विश्वविद्यालय से अभी तक कुछ बाहरी कॉलेज भी संबद्ध हैं; पर भविष्य में वे अलग कर दिए जायँगे। आगरे में एक नया विश्वविद्यालय बनेगा। एप्रिल, सन् १९२२ से सन् १९२१ का युनाइटेड प्रोविंसेज़ इंटरमीडिएट एजुकेशन ऐक्ट काम में लाया गया है। पहले इंटरमीडिएट तक शिक्षा देनेवाले कॉलेजों की संख्या केवल ३ थी; पर इस समय १४ है। देशी भाषाओं में शिक्षा देनेवाले मिडिल-स्कूलों की संख्या बढ़ रही है। इन स्कूलों में अँगरेज़ी पढ़ाने का भी प्रबंध कर दिया गया है, और उसकी ओर लोगों का ध्यान भी अच्छी तरह आकृष्ट हुआ है। कृषि की शिक्षा देनेवाले मिडिल-स्कूलों के खोलने का प्रस्ताव भी महत्त्व-पूर्ण है। मिडिल-स्कूलों के लिये छात्रागारों (बोर्डिंग-हाउसों) की बहुत बड़ी आवश्यकता है। प्राइमरी कक्षाओं की शिक्षा के संबंध में अधिक उल्लेख-योग्य बात यह है कि इस समय ६ और ११ वर्ष की अवस्थावाले लड़कों को बाध्य रूप से शिक्षा देने के लिये ८ म्युनिसिपलिटियों ने नियम बना दिए हैं। तदनुसार काम भी शुरू हो गया है। अध्यापकों को अध्यापन-कार्य सिखलानेवाली संस्थाओं की दशा भी संतोष-जनक है। कैंब्रिज-परीक्षाओं की बढ़ रही लोक-प्रियता को देखकर यह कहना पड़ता है कि योरपियन स्कूल अच्छी उन्नति कर रहे हैं। मुसलमानी मदरसों और मकतबों की दशा भी अच्छी है। इन सेकंडरी और प्राइमरी स्कूलों में मुसलमान छात्रों की संख्या १,९९,७२८ है। सभी स्कूलों में बालचर-आंदोलन बढ़ रहा है। अछूत जातियों के लिये अलग पाठशालाएँ स्थापित करने में भी सफलता प्राप्त

हुई है। इन जातियों के छात्रों के लिये अलग छात्र-वृत्तियों का भी अच्छा प्रबंध हो गया है। अधिक अवस्थावाले अपढ़ों के लिये कई म्युनिसिपलिटियों ने रात्रि-पाठशालाएँ खोल दी हैं। उनसे बड़ा लाभ हो रहा है।

यद्यपि ऊपर दिए हुए विवरण को पढ़ने से जान पड़ता है कि शिक्षा की दशा अच्छी है, पर जब यह विचार करते हैं कि वह प्रांत की समस्त जन-संख्या को लक्ष्य में रखते हुए केवल २·२८ प्रतिशत है, तब घोर निराशा होती है। यदि शिक्षा का प्रचार इसी मंद गति से होता रहा, तो भारत के ही अन्य प्रांतों का मुक़ाबला करने में इस प्रांत को बहुत समय लगेगा। मुसलमान लोग यद्यपि शिक्षा में उन्नति कर रहे हैं, फिर भी प्राइमरी और सेकंडरी शिक्षा में अभी हिंदू उनसे बहुत आगे हैं। जहाँ मुसलमान-छात्रों की संख्या में ३·४ प्रतिशत वृद्धि हुई है, वहाँ हिंदुओं की संख्या में ४·३ हुई है। नए इंटरमीडिएट कॉलेजों के प्रति सर्व-साधारण में अच्छे भाव नहीं हैं। बात यह है कि अभी अच्छी प्रयोगशालाएँ न होने से इनमें वैज्ञानिक शिक्षा देने का ठीक प्रबंध नहीं है; ऊँचे और नीचे दरजों की देख-रेख ठीक तौर से नहीं हो पाती; तथा प्रिंसिपल प्रायः ऊँचे दरजों की उन्नति पर ही अधिक ध्यान देते हुए पाया गया है। प्राइमरी शिक्षा में सरकार ख़र्च तो बहुत करती है, पर उससे विशेष लाभ नहीं हो रहा है। कारण, अधिकांश बालक प्राइमरी कक्षाओं के आगे पढ़ते ही नहीं हैं। सरकारी रिपोर्ट के पढ़ने से यह भी पता चलता है कि सरकार इन सब आक्षेपों पर विचार कर रही है, और यथा-साध्य सुधार करने के लिये तैयार रहेगी।

× × ×

१०. प्रेतात्मवाद

मृत्यु के पश्चात् आत्मा की क्या दशा होती है, इस विषय को लेकर आजकल योरप और अमेरिका में ख़ूब आलोचना चल रही है। शरीर नष्ट हो जाने के बाद भी आत्मा की पृथक् सत्ता बनी रहती है, इस कथन पर बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को बहुत कम विश्वास है। पर पाश्चात्य देशों में इस समय एक ज़बरदस्त विद्वन्मंडली इस बात को ध्रुव सत्य समझती है कि मृत्यु के बाद आत्मा इस लोक से भिन्न एक दूसरे लोक में जाती है, जिसे प्रेत-लोक कहते हैं। इन प्रेतात्माओं से बातचीत का भी प्रबंध किया गया है, और उनके द्वारा जो बातें मालूम हुई हैं, वे प्रायः सच्ची भी पाई गई हैं। प्रेतात्मवाद के संबंध में इस समय बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे जा रहे हैं, मासिक पुस्तकें निकलती हैं, तथा बड़ी-बड़ी सभा-समितियाँ स्थापित हैं, जिनके द्वारा प्रेतात्माओं से बातचीत कराने के साधनों को सहज और सुलभ बनाने का प्रयत्न होता रहता है। स्वर्गवासी मिस्टर स्टेड की प्रेतात्मा से बातचीत करने के बाद से तो अब इस ओर लोगों का अनुराग बहुत बढ़ता जा रहा है। अभी हाल ही में, लंदन में, नव्य रूस के भूतपूर्व राष्ट्र-पति स्व० लेनिन की प्रेतात्मा से भी बातचीत हुई है। यों तो भूत और प्रेतों का अस्तित्व भारत में बहुत प्राचीन समय से माना जाता है, पर पाश्चात्य देशों के इस नवीन ढंग के प्रेतात्मवाद में भी इस समय भारतवासियों की दिलचस्पी बढ़ती जाती है। स्वर्गवासी बाबू शिशिर-कुमार घोष तथा बाबू मोतीलाल घोष को प्रेतात्मवाद में पूर्ण विश्वास था। वे प्रेतात्माओं से संबंध रखनेवाली एक पत्रिका भी निकालते थे। थोड़े दिन हुए, समाचार-पत्रों में निकला था कि उन दोनों भाइयों की प्रेतात्माओं से भी बातचीत की गई है। बंगाल के प्रसिद्ध नेता श्रीयुत भूपेंद्रनाथ वसु महाशय ने भी अमृतबाज़ार-पत्रिका में एक चिट्ठी छपवाकर अपने पुत्र की प्रेतात्मा से बात-चीत कर सकने के अपने सच्चे अनुभव को सर्व-साधारण के सामने रक्खा था। अभी थोड़े ही दिन की बात है, प्रयाग के माडर्न हाईस्कूल के मिस्टर घोष की प्रेतात्मा से जो बातचीत हुई थी, वह विस्तार के साथ 'लीडर'-पत्र में प्रकाशित हुई थी। प्रेतात्माओं से संबंध रखने-वाली और भी ऐसी ही अनेक घटनाएँ समय-समय पर भारतीय पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। गत वर्ष 'कोकोनडा' में कांग्रेस के साथ-साथ एक सम्मेलन ऐसा भी हुआ था, जिसमें प्रेतात्मवाद पर विश्वास रखनेवाले लोग एकत्र हुए थे। उक्त अवसर पर इस विषय से संबंध रखनेवाले अनेक व्याख्यान हुए थे, कई विद्वत्ता-पूर्ण लेख भी पढ़े गए थे। इसके अतिरिक्त, प्रेतात्माओं से बातचीत करने के कई सफलता-पूर्ण प्रयोग भी दिख-लाए गए थे। पाश्चात्य देशों में आर्थर कोनन डायल इस प्रेतात्मवाद-आंदोलन के नेता हैं। भारत में इस आंदोलन में सबसे अधिक भाग लेनेवाले श्रीयुत वी० डी०

ऋषि बी० ए०, एल्-एल्० बी० हैं। 'कोकोनडा' के प्रेतात्मवाद-सम्मेलन के सभापति आप ही थे। आप महाराष्ट्र सज्जन हैं। आपने प्रेतात्मविद्या में इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि सहज ही प्रेतात्माओं से मनमानी बातचीत कर सकते हैं। माधुरी में, अगली किसी संख्या में, इसी विषय पर आपका एक लेख प्रकाशित होगा। उसको पढ़कर पाठकगण समझ सकेंगे कि इस विषय में ऋषि महोदय की कितनी सूक्ष्म गति है।

आगामी २८ और २६ सितंबर को फ्रांस की राजधानी पेरिस में प्रेतात्मवादियों का एक विशाल अंतरराष्ट्रीय संघ स्थापित होगा। जिसमें भिन्न-भिन्न देशों के प्रेतात्मवादी मिलकर काम कर सकें, खूब गहरे अध्ययन का अवसर मिले, तथा आंदोलन का भली भाँति प्रचार किया जाय, इन्हीं सब उद्देश्यों की सफलता के लिये संघ की स्थापना हुई है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रेतात्माओं से बातचीत करने की समस्या हल हो जाने से संसार के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घटेगी। इससे केवल मृत्यु से संबंध रखनेवाले भय और करुणा के भावों में कमी ही न होगी, बल्कि संसारव्यापी धार्मिक मतभेदों की परिधि भी बहुत कुछ संकुचित हो जायगी। इसके अतिरिक्त, इस लोक का नैतिक जीवन भी बहुत कुछ पवित्र और उच्च हो जायगा। पेरिस में जो 'संघ' स्थापित होनेवाला है, उसमें भारत के भी एक प्रतिनिधि आमंत्रित हुए हैं, और वह हैं हमारे परिचित श्रीयुत बी० डी० ऋषि महोदय। आप शीघ्र ही उक्त संघ में सम्मिलित होने के लिये भारत से प्रस्थान करेंगे। इसके लिये आपने आर्थिक सहायता की अपील भी सर्व-साधारण से की है। आशा है, आपको यथेष्ट सहायता प्राप्त होगी। हमारा विश्वास है कि 'संघ' अपने उद्देश्यों में सफल होगा।

× × ×

११. रूप की स्वर-लिपि और स्वर का रूप

रूप-रेखा और स्वर का संकेत

बेसुरे संगीत का रूप
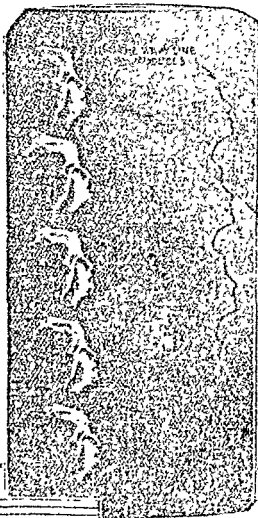
स्वर के रूप की कल्पना कुछ दिन पहले पागल के असंगत प्रलाप के सिवा और कुछ न समझी जाती। किंतु आज अमेरिका के अंतर्गत ओहियो-नगर के क्लेवलैंड-विज्ञान-विद्यालय में शब्द-तत्त्व के अध्यापक प्रोफ़ेसर डेटन मिलर ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक सुंदर स्त्री के मुख का आकार जैसा मनोहर होता है, वैसा ही, उसी के अनुरूप, स्वर का आकार भी उसके साथ-साथ वायुमंडल में विचरण करता रहता है। उन्होंने एक सुंदरी तरुणी के सुंदर मुख की लहराती हुई रेखाएँ पियानो के स्वर में बजाकर दिखा दिया है कि रूप के बीच कैसा मधुर संगीत ध्वनित होता है। इस आविष्कार में ज़रा भी धोकाधड़ी या ग़लती नहीं है। संपूर्ण वैज्ञानिक उपाय और संगीत-शास्त्र के नियम के अनुसार उन्होंने सुंदरी युवती के मनोहर मुख की जो स्वर-लिपि तैयार की है, उसका चित्र देखिए। उसकी प्रत्येक रेखा एक अपूर्व स्वर का संकेत कर रही है। इससे यह सिद्ध हुआ कि रमणी का रमणीय रूप केवल नेत्रों
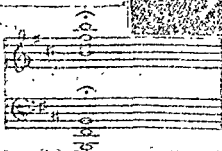
को ही आनंद देनेवाला नहीं होता, उसमें संगीत का जो स्वर निरंतर बजता रहता है, वह भी पुरुष के मन को, बज रही बीन की स्वर-लहरी में मस्त नाग की तरह, आपे से
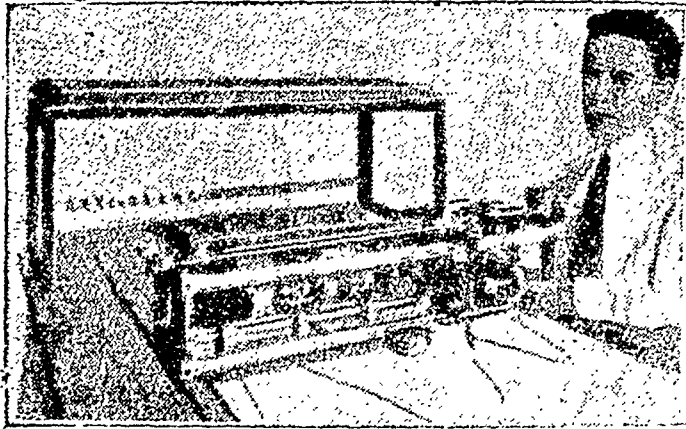
प्रोफ़ेसर मिलर और उनका स्वर-मंथन यंत्र

बाहर कर देता है । संगीत बेसुरा होने पर जैसे कानों को पीड़ा पहुँचाता है, और वह गाना किसी को संतुष्ट नहीं कर सकता, वैसे ही बदसूरत औरत के मुख की बेडौल रेखाएँ भी बिलकुल बेसुरी बजती हैं; और इसी कारण कोई भी मर्द कुरूप स्त्री की ओर आकृष्ट नहीं होता । इस सिद्धांत को प्रोफ़ेसर मिलर ने अच्छी तरह उदाहरणों और प्रमाणों से सिद्ध कर दिखाया है । मिलर साहब इस प्रकार रूप के
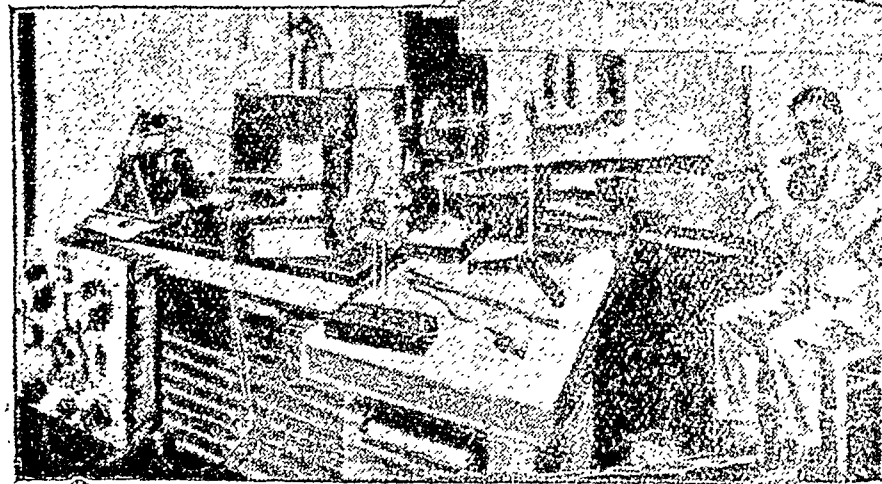
वंशी का स्वर

(प्रोफ़ेसर मिलर वंशी के स्वर को अपने यंत्र में भर-कर उसका रूप देखने की चेष्टा कर रहे हैं)

सहचारी स्वर का आविष्कार करने के उपरांत प॰ स्वर के रूप को देखने की भी चेष्टा कर रहे हैं।

This comparative analysis of the bass flute (at left) and concert flute (at right) explains that the superiority of the tone of the bass flute is due to its greater number of overtones. Each analysis shows the complete wave form produced by the flute and its component parts, including the fundamental "C" form and the waves of its harmonics
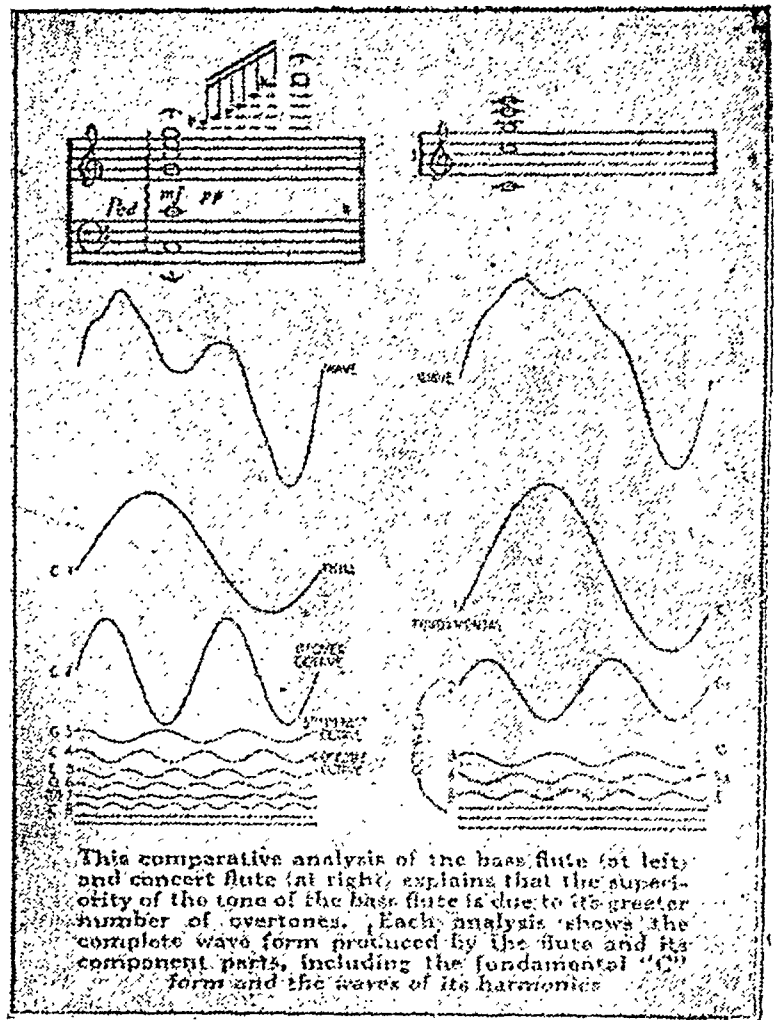
वंशी बनाम मुरली

(वंशी [Bass Flute] और मुरली [Concert Flute], इन दोनों में प्रतियोगिता होने पर देख पड़ेगा कि वंशी के स्वर में जैसी सुंदरी स्त्री की आवाज़ सुन पड़ती है, मुरली के स्वर में वैसी सुंदरी स्त्री की आवाज़ नहीं सुन पड़ती । मतलब यह कि मुरली के स्वर की अपेक्षा वंशी का स्वर अधिक मधुर एवं सुंदर होता है । प्रोफ़ेसर मिलर ने दोनों प्रकार के स्वरों की रूप-रेखाओं से ऐसा अनुमान किया है)

वंशी या बेहाला से जो प्रसिद्ध स्वर निकलकर सुननेवालों के कानों में अमृत की वर्षा करते हैं, उनके हृदय को मुग्ध बना देते हैं, उन स्वरों की रेखाएँ कैसी मनोमोहिनी सुंदरी के मनोहर मुख की आकृति से मिलती हैं, इसी की खोज में आजकल आप लगे हुए
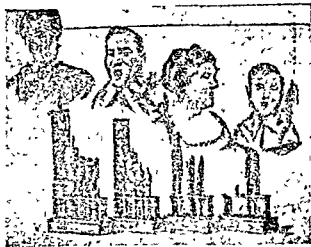
स्वर का रूप

(चार भिन्न प्रकार के स्वरों ने जिन चार प्रकार के गलों का परिचय दिया है, इस चित्र में उनके रूप की कल्पना की गई है)

हैं । आशा है, आप शीघ्र ही इसमें भी सफलता प्राप्त करके यशस्वी होंगे । हमारे यहाँ के शास्त्रकार लोग राग-रागिनियों के रूप की कल्पना बहुत पहले ही कर गए हैं । अब देखना है, उनकी उस कल्पना से आज का आविष्कार मिलता है, या नहीं । हाँ, रूप की स्वर-लिपि की कल्पना बेशक नई है । इस नोट के साथ दिए हुए चित्रों से हमारे पाठक इस विषय को अच्छी तरह समझ सकेंगे ।

× × ×

१२. विश्राम की आवश्यकता

जो नर-नारी धन के लोभ या अन्य किसी कारण से लगातार दिन-भर या रात-भर परिश्रम करते रहते हैं, उनका स्वास्थ्य बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है, यह सर्व-जन विदित है। परिश्रम के बाद यथेष्ट विश्राम की बड़ी आवश्यकता होती है, चाहे वह मानसिक परिश्रम हो, चाहे शारीरिक । इस विश्राम के संबंध में बड़े बड़े नामी डॉक्टर अब तक जिस तत्त्व की खोज कर रहे थे, आज विज्ञान की सहायता से उन्हें उस तत्त्व का पता लग गया है । अभी तक थके हुए आदमी की थकन का हिसाब और उसके शारीरिक सामर्थ्य की मात्रा जानने का कोई उपाय विदित न था । अब ऐसा एक यंत्र बन गया है, जिसकी सहायता से, जाँच करने पर, उक्त दोनों बातें ठीक-ठीक जानी जा सकती हैं । आज साधारण डॉक्टर भी उक्त यंत्र के द्वारा हरएक आदमी की जाँच करके बतला सकता है कि उसके शरीर की दशा परिश्रम करने के बाद कैसी है; उसका शरीर-यंत्र थकन के कारण कितना शिथिल हो गया है; उसकी शक्ति कितनी क्षीण हुई है; उसे विश्राम की ज़रूरत है या नहीं; अगर है, तो कितने समय के लिये और किस लिये । इसकी जाँच कुछ ऐसी कठिन भी नहीं है । कोई आदमी जब सीधा तनकर खड़ा होता है, तब माध्याकर्षण-शक्ति उसके शरीर के रक्त-प्रवाह को नीचे

की ओर खींच लाने की चेष्टा करती है। उस समय उस आकर्षण के विरुद्ध मनुष्य की शारीरिक शक्ति रुकावट डालती है। वह रु\ावट डालने में जो ज़ोर पड़ता है, उसका ठीक परिमाण अगर मालूम कर लिया जाय, तो उस मनुष्य के मस्तिष्क और मांस-पेशियों की क्षमता की मात्रा जान लेना कुछ कठिन न होगा। उसी औसत
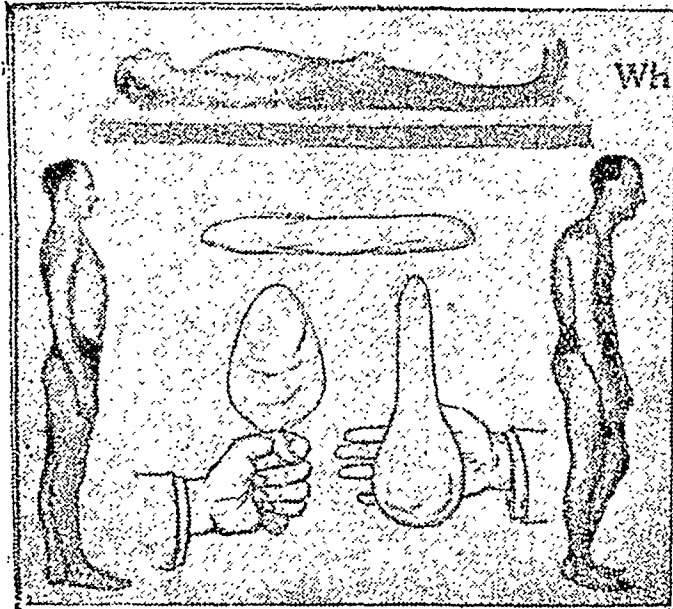
कुबड़ेपन का कारण

से उसके शरीर की थकन कितनी है, यह भी ज्ञात हो जाता है। उस दशा में यह सहज में जाना जा सकता है कि वह थकन दूर करने के लिये कितने विश्राम की ज़रूरत है। देह की भीतरी हालत का यह गुप्त रहस्य जान लेने से यह लाभ हुआ कि कुली, मज़दूर, क्लर्क, मास्टर, विद्यार्थी, खिलाड़ी, पहलवान आदि मानसिक अथवा शारीरिक परिश्रम करनेवाले सभी आदमी थकन की मात्रा के अनुसार विश्राम करके अपने स्वास्थ्य को ठीक रख सकेंगे। वे कम विश्राम करके स्वास्थ्य न बिगाड़ डालेंगे, और अधिक अनावश्यक विश्राम करके समय भी न नष्ट करेंगे।

जाँचने से मालूम हुआ है कि साधारणतः दिन-भर परिश्रम करने से जितनी थकन पैदा होती है, वह रात को आठ घंटे सोकर विश्राम करने से भी अच्छी तरह दूर नहीं होती। शरीर के पूर्ववत् सुस्थ, सबल होने के लिये साधारण आदमी को आठ घंटे से अधिक विश्राम करना चाहिए। हाँ, विशेष शक्तिशाली की बात और है। मान लो, दिन-भर परिश्रम करने से किसी के शरीर की शक्ति

स्नायु-पेशियों के साथ रक्त-संचार का संबंध

का सौ में दस भाग क्षय हो जाता है। वह आदमी अगर ठीक नव बजे रात को सोकर सबेरे पाँच बजे उठ बैठे, तो उस आठ घंटे के विश्राम और सुनिद्रा के बाद अपने
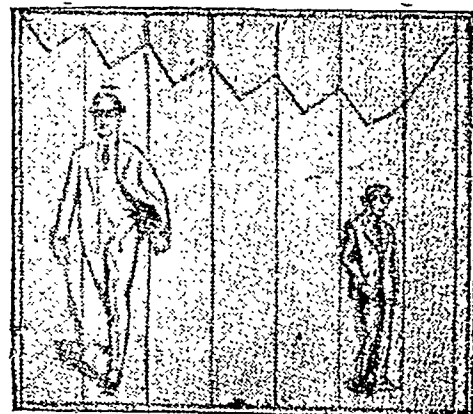
छुट्टी के पहले और पीछे की हालत

शरीर की क्षीण हुई जीवनी-शक्ति का प्रतिशत सात भाग ही उसे पुनः प्राप्त होता है। अब हिसाब लगाकर देखिए, अगर वह इस तरह नित्य प्रतिशत तीन भाग के

योरपियन फ़र्म की ओर से हो रहा है। भारत में इतने धनी रहते हैं। यहाँ के प्रतिभाशाली युवक भी व्यापार-शिक्षा के लिये योरप में बराबर जाया करते हैं। क्या कोई या कई धनी मिलकर इस लाभदायक कार्य को शुरू नहीं कर सकते? योरप जानेवाले युवक अगर रंग बनाने का शिल्प योरप से सीख आवें, और यहाँ के धनी पूँजी लगाकर उनकी सहायता से रंग, वार्निश आदि बनाने के कारख़ाने खोलें, तो उन्हें यथेष्ट सफलता होने में कोई संदेह नहीं। उसी प्रकार का कारख़ाना खुलने में भारत का लाभ है, और उसी पर हम गर्व कर सकते हैं। आशा है, कुछ दिनों में हमें ऐसे देशी कारख़ाने की स्थापना का शुभ-समाचार देने का सुअवसर भी अवश्य प्राप्त होगा। तथास्तु।

× × ×

१५. एक नया धूमकेतु

हाल में, विलायती पत्रों में, एक नए धूमकेतु के प्रकट होने की ख़बर प्रकाशित हुई है। यह धूमकेतु बड़े प्रचंड वेग से पृथ्वी की ओर दौड़ा चला आ रहा है। उसने अनेक ग्रह-उपग्रहों को भी चूर्ण कर डाला है। अब से पहले पृथ्वी पर इसकी शुभ-दृष्टि कभी नहीं पड़ी। इधर यह उसका पहला ही धावा है। पाश्चात्य ज्योतिषी बड़े ग़ौर से इसकी गति देख रहे हैं। यह भी ख़बर है कि उक्त ज्योतिषियों ने हिसाब लगाकर देखा है कि जल्दी हो या देर में, यह धूमकेतु एक बार पृथ्वी से टक्कर अवश्य लेगा। अगर यह बात ठीक निकली, तो पृथ्वी की ख़ैर नहीं! ज्योतिष जाननेवालों के साथ ही वैज्ञानिकों का भी यह कहना है कि इस धूमकेतु में विष-वाष्प या ज़हरीली गैस भरी पड़ी है। पृथ्वी के साथ इसका संघर्षण होने पर, उस गैस से दम घुटने के कारण, तत्काल सब मनुष्य और जीव काल-कवलित हो जायँगे! घास-फूस तक की कुशल नहीं! पृथ्वी के एक सिरे पर इस धूमकेतु का धक्का लगने के बाद केवल ४८ घंटों में ही इसकी ज़हरीली भाप पृथ्वी के दूसरे सिरे तक पहुँच जायगी! ईश्वर ही इस आकाशचारी राक्षस से संसार की रक्षा करनेवाले हैं।

× × ×

१६. हिंदू-मुसलमानों में मेल कैसे हो?

भारत में बसनेवाली दो बड़ी जातियाँ, सैकड़ों बरस से साथ-साथ समान सुख-दुःख भोगकर भी, परस्पर सुहृद्भाव से—हिल-मिलकर—देश की दुर्दशा, दारिद्र्य, दैन्य दूर करने के लिये कंधे-से-कंधा भिड़ाने की कौन कहे, एक दूसरे को लूटने या मारने-पीटने के लिये तैयार रहें, और वह भी धर्म के नाम पर! कैसा आश्चर्य है! कैसा अनर्थ है! इधर अर्से से लगातार जगह-जगह पर हिंदू ही लुट-पिट रहे हैं; देव-मूर्तियों और मंदिरों का अपमान सह रहे हैं; मा-बहनों की बेइज़्ज़ती भी ऐक्य, स्वराज्य और देश के नाम पर बरदाश्त कर रहे हैं! किंतु मुसलमान भाइयों का रुख़ दिन-दिन झगड़े ही की ओर होता जा रहा है। गुंडों को कौन कहे, डॉ० किचलू-सरीखे माननीय नेता का व्यवहार भी लो० तिलक-सदृश पूज्यतम महापुरुष के पवित्र स्मारक (चित्र) के प्रति निंदनीय देखा जाता है। मेल के लिये कमेटियाँ बनीं, शर्तें तय की गईं, पैक्ट बने। फ़ी सदी ८० तक नौकरियाँ देकर मुसलमानों को राज़ी करने की चेष्टा की जा रही है। फिर भी उधर से बुरा व्यवहार बंद नहीं होता। इसका कारण क्या है? गोवध, मसजिद के सामने बाजे बजाना या नौकरियाँ कम मिलना, यह कुछ भी झगड़े का कारण नहीं है। झगड़े का कारण हृदयों में है। वह हार्दिक द्वेष दूर करने से सभी प्रश्न स्वयं हल हो जायँगे। जब तक मुसलिम-मंडली और धर्मांध मौलाना साहबान के विचार हिंदुओं के विरुद्ध भयानक भावों से ओत-प्रोत रहेंगे, जब तक हिंदू काफ़िर समझे जायँगे, एक काफ़िर को मारना, लूटना या धर्मभ्रष्ट करना सवाब समझा जायगा, भारत को मातृभूमि न मानकर अरब, ईरान, टर्की, काबुल आदि को महत्त्व दिया जायगा, उक्त राष्ट्रों की सहायता से भारत में फिर मुसलमानी सल्तनत क़ायम होने के सपने देखना बंद न होगा, तब तक कभी मुसलमान हिंदू-प्रेमी न बन सकेंगे। हिंदू-नेताओं में से अधिकांश समझते हैं कि भरसक दबने से, मुसलमानों की अनुचित माँग स्वीकार कर अपना भारी-से-भारी और पुराने-से-पुराना अधिकार छोड़ देने से, सभी नौकरियाँ अर्पण कर देने से, हिंदू-संगठन और शुद्धि को छोड़कर मुसलमानों के संगठन और तबलीग़ का अनुमोदन करने से मुसलमान भाई अपनाए जा सकते हैं। पर यह उनकी भूल है। असमर्थ की उदारता का समर्थ की दृष्टि में कुछ भी मूल्य नहीं होता। उस उदारता का अर्थ दबना ही लगाया जाता है। इस समय यही हो रहा है। हिंदू जितनी

उदारता दिखाते हैं, मुसलमान उतना ही सिर चढ़ते हैं। हिंदू-जाति को पहले आत्मरक्षा में समर्थ, सबल, सुसंगठित और सब बातों में मुसलमानों के समकक्ष बनना चाहिए। फिर उदारता दिखाकर मेल की कोशिश करना ठीक होगा। अन्यथा सैकड़ों पैक्ट और प्रस्ताव यह दुर्भाव मिटाने में असमर्थ ही रहेंगे। हिंदुओं और मुसलमानों में एक बड़ा भारी अंतर है। मुसलमानों में धार्मिक बंधन इतना दृढ़ है कि किसी कट्टर धर्मांध साधारण मौलाना की बात के आगे बड़े-से-बड़े राजनीतिक नेता की भी बात नहीं सुनी जाती। किंतु हिंदुओं में धार्मिक बंधन इतना सड़ गया है कि अदना, अल्पशिक्षित छोकरे भी बड़े-से-बड़े धर्माचार्य और महर्षि की बातें नहीं सुनना चाहते। मनु भगवान् भी स्वार्थी कहे जाते हैं। इसी का परिणाम यह है कि हिंदुओं में संगठन के लिये कोई सुदृढ़ सूत्र नहीं देख पड़ता। एक मुसलमान पर कोई संकट पड़ता है, तो दीन के नाम पर राह-चलते मुसलमान उसकी मदद को खड़े हो जाते हैं। उधर हिंदुओं की दशा यह है कि भाई की हत्या की जा रही है, और दूसरा भाई देखकर भी कुछ नहीं बोलता। ताज़ा उदाहरण सामने है। दिल्ली की कांग्रेस-कमेटी ने कांग्रेस के हिंदू-मुसलमान मेंबरों को शुद्धि-संगठन आदि से अलग रहने का आदेश दिया है। उधर डॉ० किचलू (आल इंडिया कांग्रेस-कमेटी के मंत्री!) मुसलिम-संगठन कर रहे हैं, हिंदुओं को मुसलमान बनाकर प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं। मतलब यह कि मुसलमान मेंबर तो इन कामों से बाज़ न आवेंगे, हाँ, हिंदू मेंबर अवश्य हिंदू-संगठन और शुद्धि के काम में शरीक होने, धन आदि से उनकी सहायता करने और सहानुभूति दिखाने को हराम मान बैठेंगे। कितना हानिकर अंतर है! हम अपनी जाति के सच्चे कार्य-कर्ताओं से यही प्रार्थना करते हैं कि यदि वे हिंदुओं और मुसलमानों का चिरस्थायी मेल और उनमें परस्पर सच्चा प्रेम चाहते हैं, तो विना विलंब जाति को जगाकर, उसका संगठन करते हुए, उसे आत्मरक्षा-समर्थ, सबल बनाने के उद्योग करते हुए, उसे आत्मरक्षा-समर्थ, सबल बनाने के उद्योग ही को अपने जीवन का एक-मात्र लक्ष्य बना लें। अकारण दबना छोड़ दें। अपने अधिकारों की रक्षा करने से न चूकें। हिंदू-महासभा का अधिवेशन शीघ्र होनेवाला है। इसमें उपस्थित प्रतिनिधियों को अपनी वर्तमान स्थिति पर खूब विचार करके आत्मरक्षार्थ सुदृढ़ संगठन का ही समर्थन करना चाहिए। इसके विना न परस्पर सच्चा मेल ही होगा, और न सौहार्द ही बढ़ेगा।

× × ×

१७. हिंदुओं की हीनावस्था

दिल्ली के दंगे की याद अभी तरोताज़ा थी ही कि इधर मोहर्रम में मुरादाबाद के संभल-स्थान में, पीलीभीत में, और निकटवर्ती अमेठी में हिंदुओं पर मुसलमानों के हमले होने का हाल पढ़ने को मिला। हम ऊपर के नोट में कह चुके हैं कि हिंदू-मुसलमानों का मनोमालिन्य ही मूल है, अन्य बहाने केवल बहाने हैं। जब तक हिंदू ऐसे हिंसात्मक हमलों का जवाब आत्मरक्षा की अटल अजेय संघ-शक्ति के द्वारा नहीं दे सकते, भीरुता के भाव प्रकट करते हुए मुसलमानों के आगे गिड़गिड़ाना और 'जान बची लाखों पाए' का इष्ट-मंत्र जपना नहीं छोड़ते, तब तक उनका अपमान, अप्रतिष्ठा अवश्य ही अनिवार्य है। हम इतने भोले हैं कि औरों के स्वार्थसाधन-मूलक ज़बानी मेल की बातें सुनकर अपनी जाति के अधिकारों को तिलांजलि देने पर तुल जाते हैं। सहयोगी मुसलमानों के बड़े-बड़े नेताओं से लेकर एक बच्चे और जाहिल जुलाहे तक के हृदय में यह भाव बद्धमूल है कि वह पहले मुसलमान है, बाद को और कुछ। किंतु हमारे यहाँ हिंदूपन की, हिंदू धर्म और हिंदू-आचार-विचारों की मिट्टी पलीद है। मुसलमानों को मज़हबी मामले में किसी का विरोध असह्य हो उठता है। वे समझते हैं, हम अपने धार्मिक अधिकार अक्षुण्ण रक्खेंगे, चाहे उससे औरों के अधिकार पर आँच भी आती हो। कारण, मुसलमानी मत ही एक सच्चा है, और अन्य सब मत कृत्रिम और झूठे। बस, इसी विश्वास की दृढ़ता से मुसलमानों में अपूर्व संगठन, अनुकरणीय सहानुभूति तथा अनंत धर्मानुराग दृष्टिगोचर होता है। इसी विश्वास के कारण मौ० महम्मदअली महात्माजी तक को मुसलमान देखना चाहते हैं, और ख़्वाजा हसन निज़ामी उन्हें ख़लीफ़ा के पूज्य पद का प्रलोभन देने में भी तनिक नहीं सकुचते। इसमें संदेह नहीं कि यह मज़हबी अंधविश्वास ही हिंदुओं पर हमला करने, काफ़िरों का क़त्ल करने, उन्हें बेरहमी से लूटने-पीटने एवं बुतशिकनी का सवाब कमाने के लिये उत्तेजना और उत्साह उनमें उत्पन्न करता है। इसी अंधविश्वास

का आश्रय लेकर अनेक ज्ञान-हीन मज़हबी दीवाने अथवा हिंदू-द्वेषी मुल्ला, मौलाना आदि समय पाकर अक्सर मुसलमान-मंडली को उन्मत्त बना देते हैं। कम-से-कम आजकल तो सभी जगह शुद्धि के कारण क्रुद्ध मौलाना लोग हिंदुओं के विरुद्ध युद्ध करने के लिये अनुरुद्ध क्षुब्ध मुसलमानों से दंगा कराते हैं। अस्तु। इधर हिंदुओं में धर्म का बंधन तोड़ फेंकनेवाले लोग स्वदेश, स्वराज्य आदि के संरक्षक स्वयंसिद्ध नेता बनकर कहते हैं—हम पहले भारतीय हैं, फिर हिंदू। हिंदुओं के आचार-पालन के नियमों को कुसंस्कार और देश के सुधार में बाधा समझकर धता बतानेवाले इन नव्य हिंदुओं के धर्म का कुछ पता ही नहीं चलता। ये शुद्धि के हामी होकर भी गोमांस-भक्षक मुसलमान के साथ जेल-तीर्थ में रोटी-दाल खाना बड़ी बहादुरी का काम समझते हैं। देव-मूर्तियों की पूजा तो इनकी दृष्टि में अनावश्यक और असभ्यता का चिह्न है। इसी प्रकार के नामधारी हिंदुओं की करतूत से आज हिंदू-मंदिरों और देव-मूर्तियों का अपमान होना एक साधारण बात हो रहा है। हिंदू-समाज अपाहिज की तरह केवल हाय हाय करके चुप हो रहता है। हिंदुओं को जिस अवसर पर प्राण देकर अपने धर्म की रक्षा करनी चाहिए थी, उस अवसर पर वे केवल प्रतिवाद-सभा करके, व्याख्यानों में खूब क्रोध प्रकट करके, अपने कर्तव्य का पालन करते हैं! अगर आज किसी मसजिद का ऐसा अपमान किया गया होता, तो क्या परिणाम होता, यह बताने की कोई ज़रूरत नहीं है। हमारा मतलब यह नहीं है कि हिंदू भी धर्मांध बनकर मुसलमानों का अनुकरण करें। हमारा कहना यही है कि वे धर्म-रक्षा और आत्मरक्षा से ग़ाफ़िल न रहें, और दिखाऊ 'मेल' की मरीचिका में मुग्ध होकर संगठन और शुद्धि के विरोधी न बनें। तभी हिंदुओं की हीनावस्था दूर होगी, देव-मंदिरों और मूर्तियों का अपमान करने की हिम्मत कोई न कर सकेगा।

× ×

१८. मतिराम के ग्रंथों की आवश्यकता

आजकल हम महाकवि मतिराम के ग्रंथों का संपादन कर रहे हैं। मतिराम के जो ग्रंथ छप चुके हैं, उनके संस्करण प्रायः अशुद्ध हैं। बड़ी छान-बीन से हम पाठ भी शुद्ध करते जाते हैं, फुटनोट में पाठांतर भी दे रहे हैं। इस महत्त्व-पूर्ण कार्य की सफलता के लिये मतिराम के हस्त-लिखित ग्रंथों की बड़ी आवश्यकता है। जिन सज्जनों के पास रसराज, ललितललाम, फूल-मंजरी, छंदसार, अलंकारपंचाशिका, लक्षणशृंगार और साहित्यसार आदि ग्रंथों की पुरानी हस्त-लिखित प्रतियाँ मौजूद हों, वे उदारता-पूर्वक उन्हें हमारे पास भेजने की कृपा करें। इसके अतिरिक्त 'रसराज' पर कई प्राचीन टीकाएँ भी हुई हैं। उनकी भी आवश्यकता है, विशेष करके सुकवि प्रताप साहि-रचित टीका की। जो हस्त-लिपियाँ हमें प्राप्त होंगी, उन्हें कार्य समाप्त होते ही हम धन्यवाद-पूर्वक वापस कर देंगे। प्रतियाँ खूब सुरक्षित रहेंगी। विश्वास है, हिंदी-प्रेमी हमारे इस नम्र निवेदन पर ध्यान देंगे, और इस कार्य को महत्त्व-पूर्ण समझकर हमारा हाथ बटावेंगे।

"भाषाभूषण" का भी संपादन किया जा रहा है। उसकी जितनी टीकाएँ मिल सकेंगी, उतना ही संपादन-कार्य सुचारु रूप से किया जा सकेगा। आशा है, हिंदी-प्रेमी इस ओर भी ध्यान देंगे।

× × ×

१९. कुछ जानने योग्य बातें

१—गत ४ वर्षों में भारत की गउओं की संख्या ४ लाख २० हज़ार कम हो गई है। फल यह हुआ कि सन् १९०२ में जहाँ विदेशों से ४० लाख पौंड जमा हुआ दूध आया था, वहाँ सन् १९२१ में १० लाख पौंड आया।

२—भारतीय व्यवस्थापक सभा में एक प्रश्न के उत्तर में विदेश प्रवासी भारतीयों की संख्या इस प्रकार बतलाई गई है—कनाडा में १,२००; आस्ट्रेलिया में २,०००; न्यूज़ीलैंड में ६०६; दक्षिण आफ्रिका में १,६१,६३९; स्ट्रेट्स सेटलमेंट में ३०,०१,०४,६२८; फ्रेंच मलाया में ३,०५,२११; ब्रिटिश मलाया में ६१,८१९; सिंहल में ७,२०,०००; मारिशस द्वीपों में २,६४,४२७; कीनिया में २२,८२२; ट्रिनीडाड में १,२१,४२०; ब्रिटिश गायना में १,२४,२३८; फ़िजी-द्वीपों में ६०,६३४; जमैका में १८,४०१; अमेरिका में (सन् १९१० में थे) २,१७५। कुल हुए २०,०२,०२८!

३—पार्लियामेंट के प्रश्नोत्तर से मालूम हुआ है—भारत में विदेशों से सन् १६२२-२३ में ११ लाख २० हज़ार गैलन शराब आई, जिसका मूल्य था २० करोड़ रुपए के लगभग! गत कई वर्षों में इसके टैक्स में गवर्नमेंट को २२ करोड़ १० लाख २ हज़ार ८० रुपए मिले!! इसमें से ७ लाख गैलन ग्रेट ब्रिटन से ही आई। एक गैलन ५ सेर का होता है।

४—भारतीय व्यवस्था-परिषद् में श्रीयुत डोराई स्वामी ऐयंगर ने भारत में भिक्षुक कितने हैं, यह प्रश्न किया था। इसके उत्तर में सर माल्कम हेली ने बतलाया था कि संपूर्ण भारत में २८ लाख २ हज़ार ६४१ भिक्षुक हैं। इनमें से ब्रिटिश भारत में २० लाख १८ हज़ार ५०५ हैं।

५—जान पड़ता है, वैज्ञानिक लोग किसी काम को असंभव न रहने देंगे। एक पाश्चात्य वैज्ञानिक ने एक अद्भुत यंत्र की रचना की है। उसका नाम रक्खा है थाटोग्राफ़र। इसका नाम ही यह सूचित करता है कि इस यंत्र के द्वारा मनुष्य की चिंता का फ़ोटो लिया जा सकता है। किसी के मस्तिष्क में क्या चिंता आ-जा रही है, यह सिवा अंतर्यामी के और कौन जान सकता था? पर अब यह जानना सहज हो जायगा। फ़ोटो लेने की रीति भी अद्भुत और नई है। काले काग़ज़ के भीतर फ़िल्म भरकर उसे एक ज़र्द लिफ़ाफ़े में रखकर उसे आँखों के आगे दस मिनट तक लटकाए रखते हैं। उसी में मनुष्य के मन की बातों का चित्र फ़िल्म में उतर आवेगा। किसी कैमरे की ज़रूरत न होगी। पहले जिसके मन की बातों का चित्र लिया गया, उसने गुप्त रूप से एक काग़ज़ में लिख रक्खा था कि वह क्रूस के बारे में सोचेगा। उक्त नियम के अनुसार उसकी चिंताधारा का फ़ोटो लिया गया, तो देख पड़ा, फ़िल्म में क्रूस का चिह्न उठ आया है। उस आदमी ने दस मिनट तक क्रूस के बारे में सोचा था। फ़िल्म उसने छुआ भी न था। कई बार जाँच करके देखा गया, फल ठीक निकला। इस यंत्र का आविष्कार २३ वर्ष के परिश्रम का फल है। आविष्कारक का कहना है कि उन्होंने ३८ वर्ष की अवस्था से ६१ वर्ष की अवस्था तक इसमें परिश्रम करके सफलता पाई है। इस लगन और तत्परता को तो देखिए!

६—मनुष्य हवाई जहाज़ आदि पर चढ़कर शीघ्र-से-शीघ्र जाता-आता है। कई उड़ाके आश्चर्यजनक तेज़ी से पृथ्वी-परिक्रमा कर रहे हैं। किंतु पाठकों को सुनकर आश्चर्य होगा कि अब भी मनुष्य तेज़ चाल में साधारण पक्षियों से भी पीछे है। उत्तर मेरु के आस-पास के देशों में एक प्रकार के पक्षी रहते हैं। वे प्रतिवर्ष अंडे देने की जगह से २२,००० मील दूर जाकर भोजन की सामग्री प्राप्त करके लौट आते हैं!

७—योरप के एक ६२ वर्ष के बूढ़े की सनक तो देखिए! उसने एक पेड़ के ऊपर अपने हाथों एक मकान छोटा-सा बनाया है, और उसी में रहता है। घर के भीतर वर्तमान समय की सभी आराम और व्यवहार की चीज़ों का संग्रह किया गया है। यह घर ज़मीन से ३० फ़ीट की ऊँचाई पर बना है!

८—ईस्ट इंडिया कंपनी के अमल में रेशम भारत की पुण्य वस्तुओं में मुख्य समझा जाता था। किंतु इस समय यहाँ रेशम के व्यापार की दशा हीन हो रही है। इस समय दक्षिण मैसूर, उत्तर-पश्चिम बंगाल, काश्मीर और जंबू तथा उत्तर-पश्चिम पंजाब में यह पैदा होता है। अधिकांश, रेशम का व्यवहार हाथ के शिल्प में ही होता है। १६२२-२३ सन् में भारत से विदेश को १२ लाख पौंड कच्चा रेशम भेजा गया है। इसके पहले के ३ वर्षों का हिसाब करने से मालूम होता है कि प्रतिवर्ष जितना रेशमी सूत विदेश गया, उसकी अपेक्षा इस वर्ष उससे अधिक रफ़्तनी हुई। इस साल ३८ लाख १७ हज़ार रुपए का रेशम भेजा गया। इसके अलावा रेशमी कपड़े वग़ैरह २ लाख ४२ हज़ार रुपए का भेजा गया। उधर विदेश से भी रेशमी कपड़ा भारत को आया है। वह ३ करोड़ १५ लाख ५४ हज़ार रुपए का यहाँ मँगाया गया। इसमें से आधे के लगभग माल जापान से आया। मतलब यह कि अब भारत विदेश से रेशम अधिक मँगाने लगा है, और पहले के तरह स्वयं रेशम अधिक पैदा करने की कोशिश नहीं करता।

१. मुख-पृष्ठ

पाठकों को स्मरण होगा, माधुरी के मुख-पृष्ठ की कल्पना के लिये १००) रु० के पुरस्कार की घोषणा की गई थी। उसके लिये कई चित्रकारों ने चित्र बनाकर भेजने की कृपा की। वे चित्र निर्णयार्थ श्रीयुत रामेश्वर-प्रसादजी वर्मा के पास भेज दिए गए थे। आपने जिस चित्र को पुरस्कार-योग्य सर्वश्रेष्ठ बतलाया, वह इस संख्या से मुख-पृष्ठ पर छापा जाता है। इसके चित्रकार हैं श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा के शिष्य श्रीयुत एन्० बी० सिंह। अन्य चार चित्र भी हमने क्रमशः २, ३, ४, ५ नं० के रख लिए हैं। उनके चित्रकारों को भी उत्साह-वर्द्धनार्थ कुछ पुरस्कार देने का निश्चय किया गया है। वे चित्र भी बारी-बारी से बदलकर मुख-पृष्ठ पर छपेंगे। उनके चित्रकार हैं क्रमशः श्रीयुत महावीरप्रसाद वर्मा; श्रीयुत ललितमोहन सेन; श्रीयुत काशिनाथ-गणेश सातू; लहरी-स्टूडियो, बनारस।

२. रंगीन चित्र

पहला चित्र श्रीगणेशजी का है। प्राचीन चित्र है। श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्माजी की कृपा से यह प्राप्त हुआ है। चित्र का सौंदर्य देखने ही योग्य है।

दूसरा चित्र है वर्षा-विहार। चित्रकार हैं श्रीयुत रामेश्वरप्रसादजी वर्मा। नायक नायिका को वर्षा का मनोहर दृश्य दिखा रहा है। थोड़े-से स्थान में बहुत कुछ दिखा देने की कारीगरी के अलावा इसमें नायक-नायिका के सौंदर्य और हृद्गत भाव का प्रदर्शन भी बड़ी खूबी से किया गया है।

तीसरा चित्र है राधा-कृष्ण। श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्माजी ने इसे भी बनाया है। वर्षा-काल है। पानी गिर रहा है। कृष्णचंद्र अपनी कमली उढ़ाकर छाता लगाए इधर राधाजी को भीगने से बचा रहे हैं, उधर उनके हृदय को प्रेम-रस से शराबोर कर रहे हैं। पाठक देखें, और मुग्ध हों।

चौथा चित्र—जो प्रसन्न में एक व्यंग्य-चित्र है—बुढ़ापे में शृंगार भी दर्शनीय बना है। इसके बनानेवाले हैं श्रीयुत चौधरी रमाशंकरदत्त। ऐसी बुढ़ाई में भी बनी-ठनी रहनेवाली स्त्रियाँ कहाँ नहीं हैं?

३. व्यंग्य-चित्र

पहला व्यंग्य-चित्र है कलिकाल के कवि। इसमें उन आधुनिक कवियों का स्वरूप अंकित किया गया है, जो काव्य के रीति-ग्रंथ गुरु से नहीं पढ़ते, न श्रेष्ठ कविताओं का अध्ययन, मनन, परिशीलन करने की ही आवश्यकता समझते हैं, किंतु जब लिखने बैठते हैं, तब पृष्ठ-के-पृष्ठ घसीटकर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेज देते हैं। उनकी रचना में भाव का अभाव और भाषा का सत्यानास होने पर भी वे अपने को कभी स्वयं और कभी अपने इष्ट-मित्रों की मार्फत युगप्रवर्तक महाकवि प्रसिद्ध करने में नहीं हिचकते। चित्रकार हैं श्रीयुत मोहनलाल महतो गयावाल। आपके व्यंग्य-चित्र विशेषता-पूर्ण बनने लगे हैं। आशा है, आप उत्तरोत्तर उन्नति करते जायँगे।

Registered No. A. 1127.

Printed and Published by K. D. Seth, at the Newul Kishore Press, Lucknow.

वर्ष ३ ; खंड १] भाद्रपद, ३०१ तुलसी-संवत [संख्या १ ; पूर्ण-संख्या २६

संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥) छमाही मूल्य ३॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

स्त्री-रोगों का ठेका (शर्तिया इलाज)

हमारे देश में स्त्रियों के लिये एक भी देशी स्त्री-औषधालय ऐसा नहीं था जहाँ स्त्रियाँ अपने गुप्त रोगों का खुलासा हाल कहकर या लिखकर तथा वहाँ जाकर बता सकें। श्रीमती यशोदादेवी के स्त्री-औषधालय ने इस महान् कमी को पूराकर यह बात प्रत्यक्ष दिखला दी कि हमारी देशी औषधियों अर्थात् जड़ी-बूटी आदि में रोगों को नष्ट करने के विचित्र गुण भरे हैं। एक बार परीक्षा कर देखिए, श्रीमती यशोदादेवी को रोग का पूरा हाल लिखकर औषधियाँ मँगाइए। यदि रोग असाध्य न हुआ, तो अवश्य दूर कर दिया जावेगा।

श्रीमती यशोदादेवी ने बाल्यावस्था से ही अपने पिता से वैद्यक-शास्त्र की शिक्षा पाई और १६ वर्ष तक स्वयं लाखों स्त्रियों का इलाज करके अनुभव प्राप्त किया है, बड़ी-बड़ी धनी-मानी रानी-महारानी धनी-निर्धन और अनाथ सभी स्त्रियों ने श्रीमती यशोदादेवी के इलाज से अनेक भयंकर पुराने रोगों से छुटकारा पाया है। सब तरह से इलाज कर निराश हो गए हों, तो एक बार यहाँ जाकर अवश्य दिखलाइए। अब तक लाखों स्त्रियाँ आराम हो चुकी हैं। हजारों संतान-हीन स्त्रियाँ संतानवती हो गई हैं।

स्त्रियों को संदेशा

स्त्रियोंकेलिये भारतवर्ष में एकमात्र प्रसिद्ध

श्रीमती यशोदादेवी करनलगञ्ज इलाहाबाद का

२० वर्षों से जगत् विख्यात देशी—

स्त्री औषधालय

किसी स्त्री को कोई भी रोग हो मासिक धर्म में खराबी हो गुप्त स्थान से सफेद या लाल पानी जाता हो जिसे प्रदर कहते हैं या जिस स्त्री के सन्तान न होती हो स्त्री या उसके पति के दोष से जिसके गर्भ रहकर गिर जाता हो या सन्तान होकर रोगी निर्बल दुर्बल रहती हो या कोई भी कैसाहो रोग हो सैकड़ों वैद्य हकीम और डाक्टरों का इलाज करके हैरान व परेशान होगये हों तो एक बार श्रीमती यशोदादेवी को लाकर दिखलाइये या उस रोगी स्त्री का पूरा हाल लिखिये औरतों की तमाम बीमारियां यहां वैद्यक तथा वैज्ञानिक विधि से श्रीमती यशोदादेवी के इलाज से दूर हो जाती हैं लाखों स्त्रियां आराम हो चुकी हैं।

पता:-यशोदादेवी स्त्री औषधालय इलाहाबाद

तारका पता:—"देवी" इलाहाबाद। "Devi" Allahabad.

औषधालय में आने का पता:—कर्नलगंज चौराहे के पास भारद्वाज आश्रम की तरफ़ पूर्ववाली सड़क पर यशोदादेवी का स्त्री-औषधालय।

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ३ खंड १ | भाद्रपद-शुक्ल ७, ३०१ तुलसी-संवत् (१९८१ वि०)— ५ सितंबर, १९२४ ई० | संख्या २ पूर्ण संख्या २६

गीतिः

(१)

जय, मृत्युञ्जय, देव, पुरारे !
निगम-गमित, विपदेकनिवारण,
मदन-मथन, कलि-कलुष-विदारण,
प्रणत-भुवन, गिरिजेश, गजारे !

(२)

शशि-मण्डन, भव-भव-भय-खण्डन,
मोद-सदन, हर, दुरित-विकण्डन,
गङ्गाधर, भूतेश, यमारे !

(३)

जन-रञ्जन, मद-मोह-विभञ्जन,
करुणाकर, शिति-गल, गद-गञ्जन,
वरद, निरञ्जन, पाहि मखारे !

(४)

श्रुतिरपि ते न गुणौघमनन्तम्
-गणयति, को नु वेद भगवन्तम्,
निटिल-नयन, वचसामसि पारे !

शालग्रामशास्त्रिणः

खोज और समस्या

शून्य गगन में खोजता, जैसे चंद्र निराश ;
राका में रमणीय यह, किसका मधुर प्रकाश ?
हृदय, तू खोजता किसको, छिपा है कौन-सा तुझमें ;
मचलता है, बता क्या दूँ, छिपा तुझसे न कुछ मुझमें।
रस-निधि में जीवन रहा, मिटी न फिर भी प्यास ;
मुँह खोले ! मुक्ता-भरी सीपी स्वाती-आस।
हृदय, तू है बना जल-निधि, लहरियाँ खेलतीं तुझमें ;
मिला अब कौन-सा नव रत्न, जो पहले न था मुझमें ?

* * *

भाव-निधि में लहरियाँ उठती तभी,
भूलकर भी जब स्मरण होता कभी ;
मधुर मुरली फूँक दी तुमने भला,
नींद मुझको आ चली थी बस अभी।
सब रगों में फिर रही हैं बिजलियाँ,
नील नीरद क्या न बरसोगे कभी ?
एक झोंका और मलयानिल, अहा,
क्षुद्र कलिका है खिली जाती अभी।
कौन मर-मर कर जिएगा इस तरह,
यह समस्या हल न होगी क्या कभी ?

जयशंकर "प्रसाद"

मध्य-भारत में रावण की लंका

विद्वद्वर सर रामकृष्ण-गोपाल भांडारकर के सम्मानार्थ पूना-नगर में एक ओरियंटल इंस्टीट्यूट नाम की संस्था स्थापित की गई है। उसी के संबंध में, दो-तीन सालों में, भारतवर्ष के समस्त विद्वानों की एक बैठक हो जाया करती है, जिसमें देश-देश के पंडितों को अपने नवीन आविष्कार या कल्पनाएँ प्रकाशित करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार की पहली बैठक सन् १९१९ ई० में, पूने में, और दूसरी १९२२ ई० में, कलकत्ते में, हुई थी। इन दोनों बैठकों में कई बड़े महत्त्व-पूर्ण और जटिल प्रश्नों की चर्चा की गई थी। उनमें एक लंका का अन्वेषण भी था। दो सहस्र वर्षों से अधिक समय हो गया, तब से लोगों का यह मत चला आ रहा है कि लंका की स्थिति समुद्र के भीतर थी। अनेक जन उसे वर्तमान सिंहल-द्वीप या सीलोन मानते हैं, यद्यपि कोई-कोई कहते हैं कि पुरानी लंका डूब गई है। परंतु इंदौर-दरबार के रावबहादुर सरदार कीबेजी एम्० ए० ने पूने की उक्त ओरियंटल कानफ़रेंस में एक निबंध लिखकर भेजा था, जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया है कि लंका मध्य-भारत में थी। उक्त निबंध अँगरेज़ी में छपा है। इसी से जान पड़ता है, हिंदी जाननेवालों को सरदार साहब के तर्क जानने का अवसर नहीं मिला। मैंने बहुत लोगों से इस विषय में बातचीत भी की, उनको कीबे महाशय की खोज का कुछ पता ही न था। विषय के महत्त्व पर विचार करने से इस संबंध में वाद-विवाद की आवश्यकता जान पड़ती है। इसलिये यहाँ पर उनके निबंध का सारांश प्रकाशित किया जाता है, जिसमें हिंदी-प्रेमी ऐतिहासिक विद्वानों को भी उसके खंडन-मंडन का अवसर मिल सके।

कीबे महाशय की खोज का आधार किष्किंधा की स्थिति है। वर्तमान विश्वास के अनुसार यह स्थान प्राचीन विजयनगर और वर्तमान अनगुंडी के आस-पास का भाग माना जाता है, जो निज़ाम-राज्य के दक्षिण कोने में पड़ता है। यह नर्मदा-नदी से कम-से-कम ५०० मील दक्षिण में है। परंतु कीबे महोदय कहते हैं, वाल्मीकीय रामायण से स्पष्ट जान पड़ता है कि किष्किंधा नर्मदा के उत्तर में कहीं पर थी। जिस समय सीता-हरण हुआ, उस समय किष्किंधा-निवासी सुग्रीव ने चारों दिशाओं में अपनी सेना के वानर भेजे, और प्रत्येक दिशा में जानेवाली टोली को आज्ञा दी कि अमुक-अमुक पर्वत, नदी, देश इत्यादि में पता लगाया जाय। उन स्थानों की स्थिति पर ध्यान देने से सुग्रीव का स्थान नर्मदा के उत्तर ही में प्रतीत होता है, अनगुंडी के पास मानने से मेल नहीं खाता। यथा—एक टोली से सुग्रीव ने कहा कि तुम लोग दक्षिण को जाओ। वहाँ तुम्हें विंध्य, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, मेखल, उत्कल, दशार्ण, आब्रवंती, अवंती, विदर्भ, ऋष्टिक, महिषक, मत्स्य, कलिंग, कौशिक, दंडकारण्य, आंध्र, पुंड्र, चोल, पांड्य, केरल, अयोमुख पर्वत, कावेरी और ताम्रपर्णी * आदि देश और नदियाँ मिलेंगी।

---

* सहस्रशिरसं विन्ध्यं नानाद्रुमलतायतम्।
नर्मदां च नदीं रम्यां महोरगनिषेविताम्॥ ८॥
ततो गोदावरीं रम्यां कृष्णवेणीं महानदीम्।
मेखलानुत्कलांश्चैव दशार्णनगराण्यपि॥ ९॥

इनमें अच्छी तरह से ढूँढ़ना। जब सुग्रीव ने नर्मदा को दक्षिण में बताया, तो यह स्पष्ट है कि वह ऐसे स्थान में था, जो नर्मदा के उत्तर में था।

इसी तरह पूर्व-दिशा को जानेवालों से कहा कि तुमको गंगा, यमुना, सरयू, कौशिकी, सरस्वती, सिंधु, सोन, मही, कालमही आदि नदियाँ, महागिरि-पर्वत, और ब्रह्ममाल, विदेह, मालव, काशी, कौशल, मगध, महाग्राम, पुंड्र, अंग, कोशकार-भूमि (आसाम) और रजताकर(बर्मा)-देश मिलेंगे। इन सबमें अच्छी तरह सीताजी की खोज करना। पश्चिम जानेवाली टोली से कहा कि सौराष्ट्र, वाह्लीक, चंद्रचित्र आदि में देखना। यथा—

"गिरिजालवृतां दुर्गां मार्गित्वा पश्चिमां दिशम्;
ततः पश्चिममागम्य समुद्रं द्रष्टुमर्हथ।"

आव्रवन्तीमवन्तीं च सर्वमेवानुपश्यत।
विदर्भानृष्टिकांश्चैव रम्यान्महिषकानपि ॥ १० ॥
तथा मत्स्यकलिङ्गांश्च कौशिकांश्च समन्ततः।
अन्वीक्ष्य दण्डकारण्यं सपर्वतनदीगुहाम् ॥ ११ ॥
नदीं गोदावरीं चैव सर्वमेवानुपश्यत।
तथैवान्ध्रांश्च पुण्ड्रांश्च चोलान्पाण्ड्यांश्च केरलान् ॥१२॥
अयोमुखश्च गन्तव्यः पर्वतो धातुमण्डितः।
ततस्तामापगां दिव्यां प्रसन्नसलिलाशयाम् ॥ १३ ॥
तत्र द्रक्ष्यथ कावेरीं विहृतामप्सरोगणैः।
तस्यासीनं नगस्याग्रे मलयस्य महौजसः ॥ १४ ॥
द्रक्ष्यथादित्यसंकाशमगस्त्यमृषिसत्तमम्।
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातः प्रसन्नेन महात्मना ॥ १५ ॥
ताम्रपर्णीं ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम्।
सा चन्दनवनैश्चित्रैः प्रच्छन्नद्वीपवारिणी ॥ १६ ॥
कान्तेव युवती कान्तं समुद्रमवगाहते।
ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणिविभूषितम् ॥ १७ ॥
युक्तं कवाटं पाण्ड्यानां गता द्रक्ष्यथ वानराः।
ततः समुद्रमासाद्य संप्रधार्यार्थनिश्चयम् ॥ १८ ॥
अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः।
चित्रसानुमयः श्रीमान्महेन्द्रः पर्वतोत्तमः ॥ १९ ॥

अंत में उत्तर जानेवाली टोली को आज्ञा दी कि वे लोग म्लेच्छ, पुलिंद, शूरसेन, प्रस्थल, भरत, कुरु, मद्र, कंबोज, यवन, शकनगर, वरद और हिमालय में पता लगावें।

इन सब स्थलों की स्थिति का विचार करके कीबे महाशय अनुमान करते हैं, शायद उचहरा के निकट, भरहुत के आस-पास का स्थान किष्किंधा कहलाता रहा होगा। इस प्रकार किष्किंधा विंध्य से उत्तर और रावण की राजधानी लंका उसी पर्वत से दक्षिण ओर, अमरकंटक के निकट, बतलाई गई है। अमरकंटक विंध्य-पर्वत की एक चोटी है, जहाँ से नर्मदा और सोन-नदियाँ निकली हैं। वहाँ से थोड़ी दूर पर बकावली के फूल होते हैं, और कहा जाता है कि गुलबकावली का स्थान वही है। वहाँ एक क़िला बना है, जो दुर्गम है; क्योंकि उसके तले एक दलदल है, जिसको कोई नाँघ नहीं सकता। इसी को कीबे महाशय रावण का गढ़ बतलाते हैं। उनका अनुमान है कि रावण के समय में, इस दलदल में, कदाचित् एक-दो मील तक पानी भरा रहा होगा। बड़े-बड़े जलाशयों को सागर कहने की पुरानी प्रथा है। इसलिये इसको सागर की संज्ञा देना अनुचित नहीं कहा जा सकता। वानरों की दक्षिण की टोली ने पहले विंध्य में खोजना शुरू किया। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे एक बिल में घुस गए, और मार्ग भूल गए। तब एक तपस्विनी उन्हें सागर के तट पर ले गई, जो विंध्य की तली तक भरा हुआ था। वहाँ ले जाकर उसने कहा—

"एष विन्ध्यो गिरिः श्रीमान्नानाद्रुमलतायुतः;
एष प्रस्रवणः शैलः सागरोऽयं महोदधिः।"

यह विंध्याचल है, यह प्रस्रवण पर्वत है, और

यह सागर है। थोड़ी देर बाद इसी स्थान पर जटायु का भाई संपाति आया, और उसने सीता-जी की खबर दी। कहा—

"इतःस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा।"

यहाँ से मैं रावण और जानकी को देख रहा हूँ। इससे जान पड़ता है, जहाँ पर ये लोग बातें करते थे, वहाँ से लंका बहुत निकट थी, न कि सैकड़ों मील दूर।

इस विवेचना में जो बड़ी भारी आपत्ति उपस्थित की जा सकती है, वह है द्वीप-शब्द की। रामायण में लिखा है—

"इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने ;
तस्मिन् लङ्कापुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा।"

अमरकंटक के चारों ओर जलाशय नहीं था, जिससे उसे द्वीप की संज्ञा दी जाती। इसका समाधान यों किया गया है कि द्वीप का अर्थ इस जगह वैसा ही होता है, जैसा 'जंबू-द्वीप'-शब्द में द्वीप का। मेरी समझ में द्वीप कहने का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि जिस ओर से लंका देख पड़ती थी, उस ओर पानी भरा था, और अन्य दिशाएँ, ऊँची पहाड़ियों के कारण, दिखाई ही नहीं पड़ती थीं। जनता को वह सागर के बीच द्वीप-सा ही दिखाई देता रहा होगा, इसलिये उसे द्वीप कहना असंगत नहीं कहा जा सकता। वास्तव में लंका-शब्द का अर्थ ही द्वीप होता है ; परंतु वह संस्कृतेतर भाषा का शब्द है, इस कारण उसका पर्यायवाची संस्कृत-शब्द द्वीप उसके साथ जोड़ दिया गया जान पड़ता है। सरलता से समझ में आने के लिये भी कभी-कभी दो समानार्थक शब्दों का प्रयोग एकसाथ किया जाता है, जैसे विंध्याचल पर्वत। अचल और पर्वत का अर्थ एक ही है, परंतु विंध्याचल और कुछ न समझ लिया जाय, इसलिये, स्पष्टीकरण के लिये, कभी-कभी पर्वत-शब्द उसके आगे जोड़ दिया जाता है। लंका तिलंगी या उड़िया-शब्द है, इस कारण अर्थ-दर्शक द्वीप-शब्द जोड़ने की अधिक आवश्यकता समझी जानी चाहिए। अमरकंटक के आस-पास लंका की स्थिति पुष्ट करनेवाली जो अन्य बातें बतलाई गई हैं, वे ये हैं—

सीता-हरण के बाद राम और लक्ष्मण उनकी खोज करने निकले। वे जिन-जिन स्थानों को गए, उनकी दूरी का प्रमाण रामायण में मिलता है। उस हिसाब से उनके मध्य-भारत में भ्रमण करने की संभावना हो सकती है। यदि सीता-हरण का स्थान बस्तर की पर्णशाला या नासिक ही समझा जाय, तो राम और लक्ष्मण अनगुंडी के निकट स्थित किष्किंधा को इतनी जल्दी और इतने कम कोसों का मार्ग चलकर नहीं पहुँच सकते। दूसरे, अमरकंटक के निकट रहनेवाले गोंड़ लोग अपने को रावण वंशी बतलाते हैं। तीसरे, रावण का पारिवारिक नाम सालकंटक अमरकंटक-शब्द से ध्वनि में एक विशेष प्रकार का सादृश्य रखता है। इन दलीलों के अलावा यह भी स्मरण रहे कि दंडक-वन ही में राक्षस लोग तपस्वियों को सताते थे, और वहीं राम को उनके अत्याचारों के चिह्न दिखलाए गए थे।

"पम्पानदीनिवासानामनु मन्दाकिनीमपि ;
चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत्।"

इस श्लोक से जान पड़ता है, पंपा-नदी मंदाकिनी और चित्रकूट के मध्य की भूमि ही तपस्वियों के रहने की जगह थी। वहीं उन्हें राक्षसों द्वारा पीड़ा पहुँचती थी। यह भूमि मध्य-भारत में ही है। कावे महाशय ने यह नहीं बतलाया कि पंपा और मंदाकिनी नदियाँ हैं कहाँ।

परंतु वह इतना इंगित अवश्य करते हैं कि पंपा-नदी के उस पार वानर-जाति का निवास-स्थान था। बाबू शरच्चंद्र राय ने उराँव नामक जंगली-जाति पर एक पुस्तक लिखी है। उसमें लिखा है कि वे लोग राम की सेना के वानर थे। उराँव-शब्द भी वानर के अपभ्रंश वनराँउ से बना ज्ञात होता है। ये लोग अमरकंटक से कुछ दूर, बिलासपुर के पूर्व में, अर्पा-नदी के उस पार, छोटा नागपुर की रियासतों में, विशेष पाए जाते हैं। अब भी इनकी संख्या प्रायः नव लाख है। कहीं अर्पा-नदी का नाम पहले पंपा-नदी तो न था? राम के वानर उराँव और रावण-वंशी गोंड़ अड़ोसी-पड़ोसी जान पड़ते हैं। इसके सिवा बिलास-पुर-ज़िले ही में शबरी का स्थान (वर्तमान शबरीनारायण में) बतलाया जाता है। वहाँ से दो मील पर खरौद है, जहाँ, लोग कहते हैं, खर और दूषण मारे गए थे। अमरकंटक से शबरी-नारायण स्थान केवल ७ मील है। इसलिये उसके निकट शबरी की वानरों से भेंट हो जाना असंगत नहीं है। तब तो उसका उँगली से "एष विन्ध्यो गिरिः, एष प्रस्रवणः, सागरोऽयं महोदधिः" आदि बतलाना निस्संदेह ठीक जँचता है। छत्तीसगढ़ में तालाबों की भरमार है। उसके एक ही नगर—रतनपुर—में १,४०० तालाब होने की किंवदंती प्रसिद्ध है। अब भी वहाँ दो-ढाई सौ तालाब मौजूद हैं। कलचुरियों के शिला-लेखों में तालाबों के सागर नाम से प्रसिद्ध होने का प्रमाण मिलता है। मध्य-प्रदेश का एक बड़ा शहर तालाब ही के कारण 'सागर' कहलाता है। यदि अमर-कंटक के नीचे का सागर अन्य सागरों से बड़ा रहा हो, तो लोगों का उसको महोदधि या महा-सागर कहना कोई आश्चर्य या अत्युक्ति की बात नहीं मानी जा सकती। उस अवस्था में इस शब्द को केवल तुलनात्मक समझना चाहिए।

मंदाकिनी-नदी चित्रकूट ही के पास पयोष्णी की सहायक नदी है। परंतु ऋषियों के निवास-स्थान की सीमा बतलानेवाली इसी नाम की कोई अन्य नदी होनी चाहिए। यदि वह पश्चिम-दिशा में रही हो, तो उसका छिंदवाड़ा-ज़िले में जुन्नरदेव-स्टेशन के पास होना संभव हो सकता है। मंदाकिनी का गोंड़ी नाम जुन्नरदेव है। अभी तक वह तीर्थ-स्थान है। अब नदी तो मिट गई-सी जान पड़ती है, परंतु पानी का स्रोत अवश्य विद्यमान है। कीथे महाशय का अनुमान है कि मंदाकिनी पूर्व-सीमा पर थी। उत्तर की सीमा चित्रकूट, और दक्षिण की पंपा-नदी थी। पश्चिम में सघन वन था। इसलिये उसकी सीमा बतलाई नहीं गई। परंतु उस ओर रहनेवाली कोरकू-नामक जंगली जाति के प्राचीन गीतों से जान पड़ता है कि रावण उनकी ओर चक्कर लगाया करता था। उनमें से एक गीत यों है—

"लंका टेनका हेइकेन रावना आखड़ी वाह्लान टेंगनारे।
बोमाड़ो आई बाई हेटे रावना डोडारे।
पैरी बांडो सुनरा बांडो चोपराटेनमा डोयोगेज।
लंका टेनका०।"

इस गीत का अर्थ है—लंका से रावण आया है, और अखाड़े में खड़ा है। आओ मा, आओ बहन, रावण को देख लो। हमारे पाँवों में न पैरी है, न सुतरे। कैसे रावण को देख लें? गले में न हार है न हाथों में चूड़ियाँ, कैसे रावण को देख लें इत्यादि। सारांश यह कि राजा के सामने पहनकर जाने योग्य वस्त्र आभूषण नहीं हैं, फिर उसके सामने कैसे निकलें?

सीताजी का हरण गोदावरी के किनारे से

हुआ। गोदावरी अमरकंटक से दक्षिण की ओर सैकड़ों मील की दूरी पर है। इसके विषय में कीवे महाशय का कथन है कि वह गोदावरी, जिसके तीर से सीता-हरण हुआ, चित्रकूट-पर्वत से निकली है। अब भी वहाँ की एक कंदरा में इस नदी की स्थिति इसी नाम से बतलाई जाती है। यद्यपि कंदरा में इसका लोप हो गया है, तथापि लोग कहते हैं कि कुछ दूर चलकर फिर वह वह निकली है। कीवे महाशय ने यह बात कहाँ से प्राप्त की है, इसका प्रमाण नहीं बतलाया। यदि यह सही है, तो इससे आगे के क्रौंच-पर्वत का भी कुछ-कुछ पता लग जाता है। कीवे महाशय ने पर्वत की स्थिति का विचार नहीं किया। यदि क्रौंच का अपभ्रंश केंजुआ हो सकता है, तो यह विंध्य की एक शाखा है, जो रीवाँ होकर युक्त-प्रांत में घुस गई है। तीन कोस आगे जाकर मतंग-ऋषि का आश्रम था। कदाचित् यह बिलासपुर-ज़िले के उत्तरीय भाग का 'मातिन' हो। इस मातिन-ज़मींदारी में अब भी जंगली हाथी मिलते हैं। स्थान ऐसा जंगली है कि कहावत हो गई है—"ज़हर पियै ना माहुर खाय। मरै के होय तो मातिन जाय।" प्रश्न हो सकता है कि मतंग ऋषि का यह नाम मतंगजों की भूमि में रहने से तो नहीं पड़ा था? मतंग के आश्रम में ही पंपा नाम की पुष्करिणी थी। उसी के सामने ऋष्य-मूक-पर्वत था, जिसकी चोटी पर सुग्रीव रहता था। यदि यह मान लिया जाय, तो कीवे महा-शय की किष्किंधा-नगरी को मातिन-ज़मींदारी में कहीं पर खिसकना पड़ेगा। परंतु इस तरह उसके खिसकने से नाना देशों की दिशाओं में, जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है, कुछ अंतर नहीं पड़ सकता। अमरकंटक दक्षिण ही में रहता है। यदि ऋष्यमूक के निकट ही किष्किंधा थी, तब तो अमरकंटक उसके निकट आ जाता है। मातिन-ज़मींदारी चित्रकूट और अमरकंटक के बीच में पड़नेवाली जगह है। अतः ऋष्यमूक निवासी के लिये रावण को सीता-हरण करके जाते हुए देखना सहज-सिद्ध स्वाभा-विक हो जाता है। सुग्रीव ने राम से, मिलने पर, कहा था—

"अनुमानात्तु जानामि मैथिली सा न संशयः;
ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा रौद्रकर्मणा।"

फिर भी सुग्रीव यह नहीं जानता था कि रावण सीता को कहाँ ले गया, और उसका घर कहाँ है; क्योंकि उसने राम से स्पष्ट कहा था—

"न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः।"

उसने कदाचित् इतना ही सुन रक्खा था कि वह कहीं दक्षिण में रहता है। इसलिये दक्षिण जानेवाली वानर-सेना को आज्ञा दी थी कि रावण के निवास-स्थान में भी खोज लेना। इस भूगोल से कीवे महाशय की योजना बैठ तो खूब जाती है, परंतु पंपा-पुष्करिणी का पता नहीं चलता। उसके सामने ऋष्यमूक था—

"तस्यां वसति धर्मात्मा सुग्रीवः सह वानरैः;
कदाचिच्छिखरे तस्य पर्वतस्याभितिष्ठति।"

वर्तमान स्थिति के अनुसार सुग्रीव का निवास मातिन में होने से "सह वानरैः" ठीक बैठता है; क्योंकि उराँव लोगों की बस्तियाँ उसी ओर हैं, न कि भरहुत की ओर। अर्पा-नदी का मुहाना मातिन से बहुत दूर नहीं है। यदि अर्पा प्राचीन पंपा-नदी है, तो जिस तालाब से वह निकली है, उसका पंपा-पुष्करिणी नाम होना अत्यंत युक्ति-युक्त सम-झना चाहिए। प्रसंगवश यहाँ एक और बात का उल्लेख कर देना आवश्यक जान पड़ता है। वह

यह है कि लंका त्रिकूट-पर्वत पर थी। अमरकंटक का दूसरा नाम आम्रकूट बतलाते हैं। बालाघाट से इसी पर्वत-श्रेणी की एक चोटी साले टेकड़ी कहलाती है, जो पूर्व-काल में कदाचित् सालकूट कहलाती रही हो। ढूँढ़ने से वहीं एक मधुकूट भी मिल जायगा। आम, साल, महुआ आदि के वन बड़े मूल्यवान् होते रहे हैं, और अब तक हैं। जहाँ ये तीनों हों, उसको त्रिकूट कहना क्या युक्ति-युक्त नहीं जँचता? छत्तीसगढ़ के यशस्वी राजा कलचुरि अर्थात् हैहयवंशी थे। इनका मूल-वंश त्रैकूटक बतलाया जाता है। त्रिकूट का कहीं ठीक पता नहीं चलता। यदि सचमुच लंका अमरकंटक में ही थी, तो उस पर्वत-श्रेणी का त्रिकूट नाम आप-से-आप सिद्ध हो जाता है, और कलचुरियों की असल जड़ का पता भी लग जाता है।

सीलोन को रावण की लंका मानने में डॉक्टर जैकोबी-जैसे विद्वानों को भी बड़ी आपत्ति है, यद्यपि उन्होंने उसकी स्थिति कहाँ थी, यह बतलाने का प्रयत्न नहीं किया। परंतु अब कीबे महाशय के लेख से इस प्रश्न ने ऐसा रूप धारण कर लिया है कि उसकी जाँच ध्यान देकर की जानी चाहिए। छत्तीसगढ़-निवासियों को इसमें विशेष भाग लेना चाहिए; क्योंकि चित्रकूट के आगे के प्रायः सभी भौगोलिक स्थल उन्हीं की सीमा के भीतर आ पड़ते हैं। विशेष रूप से स्थानिक वृत्तांत उन्हीं को ज्ञात है, और उनके द्वारा या उन्हीं की सहायता से सहज में उसका संकलन किया जा सकता है। यदि राम और रावण का युद्ध छत्तीसगढ़ में ही हुआ हो, तो कुल झगड़ा उत्तर और दक्षिण-कोशल के बीच ही निपट जाता है।

हीरालाल

दीक्षा

(१)

जब मैं स्कूल में पढ़ता था, गेंद खेलता था, और अध्यापक महोदयों की घुड़कियाँ खाता था, अर्थात् जब मेरी किशोरावस्था थी, न ज्ञान का उन्मेष हुआ था और न बुद्धि का विकास, उस समय मैं टेंपरेंस एसोसिएशन (नशा-निवारिणी सभा) का उत्साही सदस्य था। नित्य उसके जलसों में शरीक होता, उसके लिये चंदा वसूल करता। इतना ही नहीं, व्रतधारी भी था, और इस व्रत के पालन का अटल संकल्प कर चुका था। प्रधान महोदय ने मेरे दीक्षा लेते समय जब पूछा—"तुम्हें विश्वास है कि जीवन-पर्यंत इस व्रत पर अटल रहोगे?", तो मैंने निश्शंक भाव से उत्तर दिया—"हाँ, मुझे पूर्ण विश्वास है।" प्रधान ने मुसकिराकर प्रतिज्ञा-पत्र मेरे सामने रख दिया। उस दिन मुझे कितना आनंद हुआ था! गौरव से सिर उठाए घूमता फिरता था। कई बार पिताजी से भी बे-अदबी कर बैठा; क्योंकि वह संध्या-समय थकन मिटाने के लिये एक गिलास पी लिया करते थे। मुझे यह असह्य था। कहूँगा ईमान की। पिताजी ऐब करते थे, पर हुनर के साथ। ज्यों ही ज़रा-सा सरूर आ जाता, आँखों में सुर्ख़ी की आभा झलकने लगती कि ब्यालू करने बैठ जाते—बहुत ही सूक्ष्माहारी थे—और फिर रात-भर के लिये माया-मोह के बंधनों से मुक्त हो जाते। मैं उन्हें उपदेश देता था! उनसे वाद-विवाद करने पर उतारू हो जाता था! एक बार तो मैंने ग़ज़ब ही कर डाला था। उनकी बोतल और गिलास को पत्थर पर इतनी ज़ोर से पटका कि भगवान् कृष्ण ने कंस को भी इतनी ज़ोर से न पटका होगा। घर में काँच के टुकड़े फैल गए, और कई दिनों तक नग्न चरणों से फिरनेवाली स्त्रियों के पैरों से खून बहा। पर मेरा उत्साह तो देखिए! पिता की तीव्र दृष्टि की भी परवाह न की। पिताजी ने आकर अपनी संजीवन-प्रदायिनी बोतल का यह शोक-समाचार सुना, तो सीधे बाज़ार गए, और एक क्षण में ताक़ के शून्य-स्थान की फिर पूर्ति हो गई। मैं देवासुर-संग्राम के लिये कमर

कसे बैठा था। मगर पिताजी के मुख पर लेश-मात्र भी मैल न आया। उन्होंने मेरी ओर उत्साह-पूर्ण दृष्टि से देखा—अब मुझे मालूम होता है कि वह आत्मोल्लास, विशुद्ध सत्कामना, और अलौकिक स्नेह से परिपूर्ण थी—और मुसकिरा दिए। उसी तरह मुसकिराए, जैसे कई मास पहले प्रधान महोदय मुसकिराए थे। अब उनके मुसकिराने का आशय समझ रहा हूँ, उस समय न समझ सका था। बस, इतनी ही ज्ञान की वृद्धि हुई है। उस मुसकान में कितना व्यंग्य था, मेरे बाल-व्रत का कितना उपहास और मेरी सरलता पर कितनी दया थी, अब उसका मर्म समझा हूँ!

मैं कॉलेज में अपने व्रत पर दृढ़ रहा। मेरे कितने ही मित्र इतने संयमशील न थे। मैं आदर्श-चरित्र समझा जाता था। कॉलेज में उस संकीर्णता का निर्वाह कहाँ? बुद्धू बना दिया जाता था—कोई मुल्ला की पदवी देता था, कोई नासेह कहकर मज़ाक़ उड़ाता था। मित्रगण व्यंग्य भाव से कहते—"हाय अफ़सोस, तूने पी ही नहीं!" सारांश यह कि यहाँ मुझे उदार बनना पड़ा। मित्रों को कमरे में चुसकियाँ लगाते देखता, और बैठा रहता। भंग घुटती, और मैं देखा करता। लोग आग्रह-पूर्वक कहते—"अजी ज़रा लो भी", तो विनीत भाव से कहता—"क्षमा कीजिए, यह मेरे सिस्टम को सूट नहीं करती।" सिद्धांत के बदले अब मुझे शारीरिक असमर्थता का बहाना करना पड़ा। वह सत्याग्रह का जोश, जिसने पिता की बोतल पर हाथ साफ़ किया था, ग़ायब हो गया था। यहाँ तक कि एक बार जब कॉलेज के चौथे वर्ष में मेरे लड़का पैदा होने की ख़बर मिली, तो मेरी उदारता की हद हो गई। मैंने मित्रों के आग्रह से मजबूर होकर उनकी दावत की, और अपने हाथों से ढाल-ढालकर उन्हें पिलाई। उस दिन साक़ी बनने में हार्दिक आनंद मिल रहा था। उदारता वास्तव में सिद्धांत से गिर जाने, आदर्श से च्युत हो जाने, का ही दूसरा नाम है। अपने मन को समझाने के लिये युक्तियों का अभाव कभी नहीं होता। संसार में सबसे आसान काम अपने को धोखा देना है। मैंने ख़ुद तो नहीं पी, पिला दी, इसमें मेरा क्या नुक़सान? दोस्तों की दिलशिकनी तो नहीं की! मज़ा तो जभी है कि दूसरों को पिलावे, और ख़ुद न पिए!

ख़ैर, कॉलेज से मैं बेदाग़ निकल आया। अपने शहर में वकालत शुरू की। सुबह से आधी रात तक चक्की में जुतना पड़ता। वे कॉलेज के सैर-सपाटे, आमोद-विनोद, सब स्वप्न हो गए। मित्रों की आमद-रफ़्त बंद हुई। यहाँ तक कि छुट्टियों में भी दम मारने की फ़ुरसत न मिलती। जीवन-संग्राम कितना विकट है, इसका अनुभव हुआ। इसे संग्राम कहना ही भ्रम है। संग्राम की उमंग, उत्तेजना, वीरता और जय-ध्वनि यहाँ कहाँ? यह संग्राम नहीं, ठेलमठेल, धक्का-पेल है। यहाँ 'चाहे धक्के खाएँ, मगर तमाशा घुसकर देखें' की दशा है। माशूक़ का वस्ल कहाँ, उसकी चौखट को चूमना, दर्बान की गालियाँ खाना, और अपना-सा मुँह लेकर चले आना है। दिन-भर बैठे-बैठे अरुचि हो जाती। मुशकिल से दो चपातियाँ खाता, और मन में कहता—"क्या इन्हीं दो चपातियों के लिये यह सिर-मग़ज़न और यह दीदा-रेज़ी है! मरो, खपो, और व्यर्थ के लिये! इसके साथ यह अरमान भी था कि अपनी मोटर हो, विशाल भवन हो, थोड़ी-सी ज़मींदारी हो, कुछ रुपए बैंक में हों। पर यह सब हुआ भी, तो मुझे क्या? संतान उनका सुख भोगेगी, मैं तो व्यर्थ ही मरा। मैं तो ख़ज़ाने का साँप ही रहा। नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं दूसरों के लिये ही प्राण न दूँगा, अपनी मेहनत का मज़ा ख़ुद भी चखूँगा। क्या करूँ? कहीं सैर करने चलूँ? नहीं, मुवक्किल सब तितर-बितर हो जायँगे। ऐसा नामी वकील तो हूँ नहीं कि मेरे बग़ैर काम ही न चले, और कतिपय नेताओं की भाँति असहयोग-व्रत धारण करने पर भी कोई बड़ा शिकार देखूँ, तो झपट पड़ूँ। यहाँ तो पिद्दी, बटेर, हारिल, इन्हीं सब पर निशाना मारना है। फिर क्या रोज़ थिएटर जाया करूँ? फ़िज़ूल है। कहीं दो बजे रात को सोना नसीब होगा, बिना मौत मर जाऊँगा। आख़िर मेरे हमपेशा और भी तो हैं? वे क्या करते हैं, जो उन्हें बराबर ख़ुश और मस्त देखता हूँ? मालूम होता है, उन्हें कोई चिंता ही नहीं है। स्वार्थ-सेवा अँगरेज़ी-शिक्षा का प्राण है। पूर्व संतान के लिये, यश के लिये, धर्म के लिये मरता है; पश्चिम अपने लिये। पूर्व में घर का स्वामी सबका सेवक होता है। वह सबसे ज़्यादा काम करता, दूसरों को खिलाकर खाता, दूसरों को पहनाकर पहनता है। किंतु पश्चिम में वह सबसे अच्छा खाना, अच्छा पहनना

अपना अधिकार समझता है। यहाँ परिवार सर्वोपरि है, वहाँ व्यक्ति सर्वोपरि है। हम बाहर से पूर्व और भीतर से पश्चिम हैं। हमारे सत् आदर्श दिन-दिन लुप्त होते जा रहे हैं। मैंने सोचना शुरू किया, इतने दिनों की तपस्या से मुझे क्या मिल गया? दिन-भर छाती फाड़कर काम करता हूँ, आधी रात को मुँह ढाँपकर सो रहता हूँ। यह भी कोई ज़िंदगी है। कोई सुख नहीं, मनोरंजन का कोई सामान नहीं। दिन-भर काम करने के बाद टेनिस क्या ख़ाक खेलूँगा? हवाख़ोरी के लिये भी तो पैरों में बूता चाहिए! ऐसे जीवन को रसमय बनाने के लिये केवल एक ही उपाय है आत्मविस्मृति, जो एक क्षण के लिये भी मुझे संसार की चिंताओं से मुक्त कर दे, मैं अपनी परिस्थिति को भूल जाऊँ, अपने को भूल जाऊँ, ज़रा हँसूँ, ज़रा क़हक़हा मारूँ, ज़रा मन में स्फूर्ति आवे। केवल एक ही बूटी है, जिसमें ये गुण हैं, और वह मैं जानता हूँ। कहाँ की प्रतिज्ञा, कहाँ का व्रत, वे बचपन की बातें थीं। उस समय क्या जानता था कि मेरी यह हालत होगी? तब स्फूर्ति का बाहुल्य था, पैरों में शक्ति थी, घोड़े पर सवार होने की क्या ज़रूरत थी? तब जवानी का नशा था। अब वह कहाँ? यह भावना मेरे पूर्व-संचित संयम की जड़ों को हिलाने लगी। नित्य नई-नई युक्तियों से सशस्त्र होकर आती थी। क्यों, क्या तुम्हीं सबसे अधिक बुद्धिमान् हो? सब तो पीते हैं। जजों को देखो, इजलास छोड़कर जाते और पी आते हैं। प्राचीन काल में ऐसे व्रत निभ जाते थे, जब जीविका रहनी प्राणघातक न थी। लोग हँसेंगे ही न कि बड़े व्रतधारी की दुम बने थे, आख़िर आ गए न चक्कर में! हँसने दो, मैंने नाहक़ व्रत लिया। उसी व्रत के कारण इतने दिनों तपस्या करनी पड़ी। नहीं पी, तो कौन-सा बड़ा आदमी हो गया, कौन सम्मान पा लिया? पहले किताबों में पढ़ा करता था, यह हानि होती है, वह हानि होती है। मगर कहीं तो नुक़सान होते नहीं देखता। हाँ, पियक्कड़, बद-मस्त हो जाने की बात और है। उस तरह तो अच्छी-से-अच्छी वस्तु का दुरुपयोग भी हानिप्रद होता है। ज्ञान भी जब सीमा से बाहर हो जाता है, तो नास्तिकता के क्षेत्र में जा पहुँचता है। पीना चाहिए एकांत में, चेतना को जाग्रत् करने के लिये, सुलाने के लिये नहीं। बस, पहले दिन ज़रा झिझक होगी। फिर किसका डर है। ऐसी आयोजना करनी चाहिए कि लोग मुझे ज़बरदस्ती पिला दें, जिसमें अपनी शान बनी रहे। जब एक दिन प्रतिज्ञा टूट जायगी, तो फिर मुझे अपनी सफ़ाई पेश करने की ज़रूरत न रहेगी, घरवालों के सामने भी आँखें नीची न करनी पड़ेंगी।

(२)

मैंने निश्चय किया, यह अभिनय होली के दिन हो। इस दीक्षा के लिये इससे उत्तम मुहूर्त कौन होगा? होली पीने-पिलाने का दिन है। उस दिन पीकर मस्त हो जाना क्षम्य है। पवित्र होली अगर हो सकती है, तो पवित्र चोरी, पवित्र रिश्वत-सितानी भी हो सकती है।

होली आई। अब की बहुत इंतज़ार के बाद आई। मैंने दीक्षा लेने की तैयारी शुरू की। कई पीनेवालों को निमंत्रित किया। केलनर की दूकान से ह्विस्की और शामपेन मँगवाई; लेमनेड, सोडा, बर्फ़, गज़क, ख़मीरा तंबाकू वग़ैरह सब सामान मँगवाकर लैस कर दिया। कमरा बहुत बड़ा न था। क़ानूनी किताबों की अलमारियाँ हटवा दीं, फ़र्श बिछवा दिया, और शाम को मित्रों का इंतज़ार करने लगा, जैसे चिड़िया पंख फैलाए बहेलियों को बुला रही हो।

मित्रगण एक-एक करके आने लगे। नव बजते-बजते सब-के-सब आ विराजे। उनमें कई तो ऐसे थे, जो चुल्लू में उल्लू हो जाते थे। पर कितने ही कुंभज ऋषि के अनुयायी थे—पूरे समुद्र-सोख, बोतल-की-बोतल गटगटा जायँ, और आँखों में सुर्ख़ी न आवे! मैंने बोतल, गिलास और गज़क की तश्तरियाँ सामने लाकर रक्खीं।

एक महाशय बोले—यार, बर्फ़ और सोडे के बग़ैर लुत्फ़ न आवेगा।

मैंने उत्तर दिया—मँगवा रक्खा है, भूल गया था।

एक—तो फिर बिसमिल्लाह हो।

दूसरा—साक़ी कौन होगा?

मैं—यह ख़िदमत मेरे सिपुर्द कीजिए।

मैंने प्यालियाँ भर-भरकर देना शुरू किया, और यार लोग पीने लगे। हू-हक़ का बाज़ार गर्म हुआ; अश्लील हास-परिहास की आँधी-सी चलने लगी। पर मुझे कोई न पूछता था। ख़ूब, अच्छा उल्लू बना! शायद मुझसे कहते हुए सकुचाते हैं। कोई मज़ाक़ से भी नहीं कहता,

मानो मैं वैष्णव हूँ। इन्हें कैसे इशारा करूँ? आख़िर सोचकर बोला—मैंने तो कभी पी ही नहीं।

एक मित्र—क्यों नहीं पी? ईश्वर के यहाँ आपको इसका जवाब देना पड़ेगा।

दूसरा—फ़रमाइए जनाब, फ़रमाइए, फ़रमाइए, क्या जवाब दीजिएगा। मैं ही उसकी तरफ़ से पूछता हूँ—क्यों नहीं पीते?

मैं—अपनी तबीयत, नहीं जी चाहता।

दूसरा—यह तो कोई जवाब नहीं। कोड़ी देकर वकालत पास की थी क्या?

तीसरा—जवाब दीजिए, जवाब। दीजिए, दीजिए, आपने समझा क्या है? ईश्वर को आपने ऐसा-वैसा समझ लिया है क्या?

दूसरा—क्या आपको कोई धार्मिक आपत्ति है?

मैंने कहा—हो सकता है।

तीसरा—वाह रे धर्मात्मा! क्यों न हो, आप बड़े धर्मात्मा हैं। ज़रा आपकी दुम देखूँ?

मैं—क्या धर्मात्मा आदमियों के दुम होती है?

चौथा—और क्या, किसी के एक हाथ की, किसी के दो हाथ की। आप हैं किस फेर में? दुमदारों के सिवा आज धर्मात्मा है ही कौन? हम सब पापात्मा हैं।

तीसरा—धर्मात्मा वकील, ओहो, धर्मात्मा वेश्या, ओहो!

दूसरा—धार्मिक आपत्ति तो आपको हो ही नहीं सकती। वकील होना धार्मिक विचारों से शून्य होने का चिह्न है।

मैं—भाई मुझे सूट नहीं करती?

तीसरा—अब मार लिया, मूज़ी को मार लिया, आपको सूट नहीं करती? मैं सूट करा दूँ?

दूसरा—क्या किसी डॉक्टर ने मना किया है?

मैं—नहीं।

तीसरा—वाह-वाह! आप ख़ुद ही डॉक्टर बन गए! अमृत आपको सूट नहीं करता! अरे धर्मात्माजी, एक बार पीके देखिए।

दूसरा—मुझे आपके मुँह से यह सुनकर आश्चर्य हुआ। भाईजी, यह दवा है, महौषधि है, यही सोम-रस है। कहीं आपने टेंपरेंस की प्रतिज्ञा तो नहीं ले ली है?

मैं—मान लीजिए, ली हो, तो?

तीसरा—तो आप बुद्धू हैं, सीधे-सादे, कोरे बुद्धू।

चौथा—

"जाम चलने को है सब अहले-नज़र बैठे हैं;
आँख साक़ी न चुराना, हम इधर बैठे हैं।"

दूसरा—हम सभी टेंपरेंस के प्रतिज्ञाधारी हैं, पर जब हम ही नहीं रहे, तो वह प्रतिज्ञा कहाँ रही? हमारे नाम वही हैं, पर हम वह नहीं हैं। जहाँ लड़कपन के और बातें गईं, वहीं वह प्रतिज्ञा भी गई।

मैं—आख़िर इसमें फ़ायदा क्या है?

दूसरा—यह तो पीने ही से मालूम हो सकता है। एक प्याली पीजिए, फ़ायदा न मालूम हो, तो फिर न पीजिएगा।

तीसरा—मारा, मारा मूज़ी को, अब पिलाकर छोड़ेंगे।

चौथा—

"ऐसे मैख़्वार हैं दिन-रात पिया करते हैं;
हम तो सोते में तेरा नाम लिया करते हैं।"

पहला—तुम लोगों से न बनेगा, मैं पिलाना जानता हूँ।

यह महाशय मोटे-ताज़े आदमी थे। मेरा टेंटुआ दबाया, और प्याली मुँह से लगा दी। मेरी प्रतिज्ञा टूट गई; दीक्षा मिल गई; मुराद पूरी हुई। किंतु बनावटी क्रोध से बोला—आप लोग अपने साथ मुझे भी ले डूबे।

दूसरा—मुबारक हो, मुबारक!

तीसरा—मुबारक, मुबारक, सौ बार मुबारक।

(३)

नवदीक्षित मनुष्य बड़ा धर्मपरायण होता है। मैं संध्या समय दिन-भर की वाग्वितंडा से छुटकारा पाकर जब एकांत में, अथवा दो-चार मित्रों के साथ, बैठकर प्याले-पर-प्याले चढ़ाता, तो चित्त उल्लसित हो उठता था। रात को निद्रा ख़ूब आती थी। पर प्रातःकाल अंग-अंग में पीड़ा होती, अँगड़ाइयाँ आतीं, मस्तिष्क शिथिल हो जाता, यही जी चाहता कि आराम से पलँग पर लेटा रहूँ। मित्रों ने सलाह दी कि ख़ुमारी उतारने के लिये सबेरे भी एक पेग पी लिया जाय, तो अति उत्तम है। मेरे मन में भी बात बैठ गई। मुँह-हाथ धोकर पहले संध्या किया करता था। अब मुँह-हाथ धोकर चट अपने कमरे के एकांत में बोतल लेकर बैठ जाता। मैं इतना जानता था कि नशीली चीज़ों का चसका बुरा होता है, आदमी धीरे-धीरे उनका दास

हो जाता है। यहाँ तक कि वह उनके बग़ैर कुछ काम ही नहीं कर सकता। परंतु ये बातें जानते हुए भी मैं उसके वशीभूत होता जाता था। यहाँ तक नौबत पहुँची कि नशे के बग़ैर मैं कुछ काम ही न कर सकता। जिसे आमोद के लिये मुँह लगाया था, वह साल ही-भर में मेरे लिये जल और वायु की भाँति अत्यंत आवश्यक हो गई। अगर कभी किसी मुक़द्दमे में बहस करते-करते देर हो जाती, तो ऐसी थकावट चढ़ती थी, मानो मंज़िलों चला हूँ। उस दशा में घर आता, तो अनायास ही बात-बात पर झुँझलाता। कहीं नौकर को डाटता, कहीं बच्चों को पीटता, कहीं स्त्री पर गरम होता। यह सब कुछ था, पर मैं कतिपय अन्य शराबियों की भाँति नशा आते ही दून की न लेता था; अनर्गल बातें न करता था; हल्ला न मचाता था। न मेरे स्वास्थ्य पर ही मदिरा-सेवन का कुछ बुरा असर नज़र आता था।

बरसात के दिन थे। नदी-नाले बढ़े हुए थे। हुक्काम बरसात में भी दौरे करते हैं। उन्हें अपने भत्ते से मतलब, प्रजा को कितना कष्ट होता है, इससे उन्हें कुछ सरोकार नहीं। मैं एक मुक़द्दमे में दौरे पर गया। अनुमान किया था कि संध्या तक लौट आऊँगा। मगर नदियों का चढ़ाव-उतार पड़ा, १० बजे पहुँचने के बदले शाम को पहुँचा। जंट साहब मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मुक़द्दमा पेश हुआ। लेकिन बहस ख़तम होते-होते रात के ९ बज गए। मैं अपनी हालत क्या कहूँ। जी चाहता था, जंट साहब को नोच खाऊँ। कभी अपने प्रतिपक्षी वकील की दाढ़ी नोचने को जी चाहता था, जिसने बरबस बहस को इतना बढ़ाया। कभी जी चाहता था, अपना सिर पीट लूँ। मुझे सोच लेना चाहिए था कि आज रात को देर हो गई, तो? जंट मेरा गुलाम तो है नहीं कि जो मेरी इच्छा हो, वही करे। न खड़े रहा जाता, न बैठे। छोटे-मोटे पियक्कड़ मेरी दुर्दशा की कल्पना नहीं कर सकते।

ख़ैर, ९ बजते-बजते मुक़द्दमा समाप्त हुआ। पर अब जाऊँ कहाँ? बरसात की रात, कोसों तक आबादी का पता नहीं। घर लौटना कठिन ही नहीं, असंभव। आस-पास भी कोई ऐसा गाँव नहीं, जहाँ वह संजीविनी मिल सके। गाँव हो भी, तो वहाँ जाय कौन? वकील कोई थानेदार नहीं कि किसी को बेगार में भेज दे। बड़े संकट में पड़ा हुआ था। मुवक्किल चले गए, दर्शक चले गए, बेगारी चले गए। मेरा प्रतिद्वंद्वी मुसलमान वकील एक मुसलमान चपरासी के दस्तरख़ान में शरीक होकर डाक-बँगले के बरामदे में पड़ रहा। पर मैं क्या करूँ? यहाँ तो प्राणांत-सा हो रहा था। वहीं बरामदे में टाट पर बैठा हुआ अपनी क़िसमत को रो रहा था। न नींद ही आती थी कि इस कष्ट को भूल जाऊँ, अपने को उसी की गोद में सौंप दूँ। गुस्सा अलबत्ते था कि वह दूसरा वकील कितनी मीठी नींद सो रहा है, मानो सुसराल में सुख-सेज पर सोया हुआ है।

इधर तो मेरा यह बुरा हाल था, उधर डाक-बँगले में साहब बहादुर गिलास-पर-गिलास चढ़ा रहे थे। शराब के ढालने की मधुर ध्वनि मेरे कानों में आकर चित्त को और भी व्याकुल कर देती थी। मुझसे बैठे न रहा गया। धीरे-धीरे चिक के पास गया, और अंदर झाँकने लगा। आह! कैसा जीवन-प्रद दृश्य था। सफ़ेद बिल्लौर के गिलास में बर्फ़ और सोडावाटर से अलंकृत अरुण-मुखी कामिनी शोभायमान थी। मुँह में पानी भर आया। उस समय कोई मेरा चित्र उतारता, तो लोलुपता के चित्रण में बाज़ी मार ले जाता। साहब की आँखों में सुर्ख़ी थी, मुख पर सुर्ख़ी थी। एकांत में बैठा पीता और मानसिक उल्लास की लहर में एक अँगरेज़ी गीत गाता था। कहाँ वह स्वर्ग का सुख, और कहाँ यह मेरा नरक-भोग! कई बार प्रबल इच्छा हुई कि साहब के पास चलकर एक गिलास माँगूँ; पर डर लगता था कि कहीं शराब के बदले ठोकर मिलने लगे, तो यहाँ कोई फ़रियाद सुननेवाला भी नहीं है।

मैं वहाँ तब तक खड़ा रहा, जब तक साहब का भोजन समाप्त न हो गया। मन-चाहे भोजन और सुरा-सेवन के उपरांत उसने ख़ानसामा को मेज़ साफ़ करने के लिये बुलाया। ख़ानसामा वहीं मेज़ के नीचे बैठा ऊँघ रहा था। उठा, और पलेट लेकर बाहर निकला, तो मुझे देखकर चौंक पड़ा। मैंने शीघ्र ही उसको आश्वासन दिया—डरो मत, डरो मत, मैं हूँ।

ख़ानसामा ने चकित होकर कहा—आप हैं वकील साहब! क्या हुज़ूर यहाँ खड़े थे?

मैं—हाँ, ज़रा देखता था कि ये सब कैसे खाते-पीते हैं। बहुत शराब पीता है।

ख़ान०—अजी, कुछ पूछिए मत। दो बोतल दिन-रात

में साफ़ कर डालता है। २०) रोज़ की शराब पी जाता है। दौरे पर चलता है, तो चार दर्जन बोतलों से कम साथ नहीं रखता।

मैं—मुझे भी कुछ आदत है; पर आज न मिली।

ख़ान०—तब तो आपको बड़ी तकलीफ़ हो रही होगी?

मैं—क्या करूँ, यहाँ तो कोई दूकान भी नहीं है। समझता था, जल्दी से मुक़द्दमा हो जायगा, घर लौट जाऊँगा। इसीलिये कोई सामान साथ न लाया।

ख़ान०—मुझे तो अफ़ीम की आदत है। एक दिन न मिले, तो बावला हो जाता हूँ। अमलवाले को चाहे कुछ न मिले, अमल मिल जाय, तो उसे कोई फ़िक्र नहीं, खाना चाहे तीन दिन में मिले।

मैं—यही हाल है भाई, भुगत रहा हूँ। ऐसा मालूम होता है, बदन में जान ही नहीं है।

ख़ान०—हुज़ूर को कम-से-कम एक बोतल साथ रख लेनी चाहिए थी। जेब में डाल लेते।

मैं—इतनी ही तो भूल हुई भाई, नहीं तो रोना काहे का था!

ख़ान०—नींद भी न आती होगी?

मैं—कैसी नींद, दम लबों पर है, न-जाने रात कैसे गुज़रेगी।

मैं चाहता था, ख़ानसामा अपनी तरफ़ से मेरी अग्नि को शांत करने का प्रस्ताव करे, जिसमें मुझे लज्जित न होना पड़े। पर ख़ानसामा भी चंट था। बोला—अल्लाह का नाम लेकर सो जाइए, नींद कब तक न आवेगी।

मैं—नींद तो न आवेगी। हाँ, मर भले जाऊँगा। क्या साहब बोतलें गिनकर रखते हैं? गिनते तो क्या होंगे?

ख़ान०—अरे हुज़ूर, एक ही मूज़ी है। बोतल पूरी नहीं होती, तो उस पर निशान बना देता है। मजाल है कि एक बूँद भी कम हो जाय।

मैं—बड़ी मुसीबत है। मुझे तो एक गिलास चाहिए। बस, इतनी ही चाहता हूँ कि नींद आ जाय। जो इनाम कहो, वह दूँ।

ख़ान०—इनाम तो हुज़ूर देंगे ही, लेकिन ख़ौफ़ यही है कि कहीं भाँप गया, तो फिर मुझे ज़िंदा न छोड़ेगा।

मैं—यार, लाओ, अब ज़्यादा सब्र की ताब नहीं है।

ख़ान०—आपके लिये जान हाज़िर है; पर एक बोतल १०) में आती है। मैं कल किसी बेगार से मँगाकर तादाद पूरी कर दूँगा।

मैं—मैं एक बोतल थोड़े ही पी जाऊँगा।

ख़ान०—साथ लेते जाइएगा हुज़ूर। आधी बोतल ख़ाली मेरे पास रहेगी, तो उसे फ़ौरन् शुबा हो जायगा। बड़ा शक़्क़ी है, मेरा मुँह सूँघा करता है कि इसने पी न ली हो।

मुझे २०) मेहनताने के मिले थे। दिन-भर की कमाई का आधा देते हुए क़लक़ तो हुआ, पर दूसरा उपाय ही क्या था। चुपके से १०) निकालकर ख़ानसामा के हवाले किए। उसने एक बोतल अँगरेज़ी शराब मुझे ला दी। बरफ़ और सोडा भी लेता आया। मैं वहीं अँधेरे में बोतल खोलकर अपनी परितप्त आत्मा को सुधा-जल से सिंचित करने लगा।

क्या जानता था कि विधना मेरे लिये कोई दूसरा ही षड्यंत्र रच रहा है, मुझे विष पिलाने की तैयारियाँ कर रहा है।

(४)

नशे की नींद का पूछना ही क्या। उस पर ह्विस्की की आधी बोतल चढ़ा गया था। दिन चढ़े तक सोता रहा। कोई ८ बजे झाड़ू लगानेवाले मेहतर ने जगाया, तो नींद खुली। शराब की बोतल और गिलास सिरहाने रखकर छतरी से छिपा दिया था। ऊपर से अपना गाउन डाल दिया था। उठते-ही-उठते सिरहाने निगाह गई। बोतल और गिलास का पता न था। कलेजा धक-से हो गया। ख़ानसामा को खोजने लगा कि पूछूँ, उसने तो नहीं उठाकर रख दिया। इस विचार से उठा, और टहलता हुआ डाक-बँगले के पिछवाड़े गया, जहाँ नौकरों के लिये अलग कमरे बने हुए थे। पर वहाँ का भयंकर दृश्य देखकर आगे क़दम बढ़ाने का साहस न हुआ!

साहब ख़ानसामा का कान पकड़े हुए खड़े थे। शराब की बोतलें अलग-अलग रक्खी हुई थीं। साहब एक, दो, तीन, करके गिनते थे, और ख़ानसामा से पूछते थे, एक बोतल और कहाँ गया? ख़ानसामा कहता था, हुज़ूर, खुदा मेरा मुँह काला करे, जो मैंने कुछ भी दग़ल-फ़सल की हो। [illegible]

साहब—क्या, हम झूठ बोलता है? [illegible] बोतल नहीं था? [illegible]

ख़ान०—हुजूर, ख़ुदा की क़सम, मुझे नहीं मालूम, कितनी बोतलें थीं।

इस पर साहब ने ख़ानसामा के कई तमाचे लगाए। फिर कहा—तुम गिने, तुम न बतावेगा, तो हम तुमको जान से मार डालेगा। हमारा कुछ नहीं हो सकता। हम हाकिम है, और हाकिम लोग हमारा दोस्त है। हम तुमको अभी-अभी मार डालेगा, नहीं तो बतला दे, एक बोतल कहाँ गया?

मेरे प्राण सूख गए। बहुत दिनों के बाद मुझे ईश्वर की याद आई। मन-ही-मन गोवर्द्धनधारी का स्मरण करने लगा। अब लाज तुम्हारे हाथ है! भगवन्! तुम्हीं बचाओ, तो नैया बच सकती है, नहीं तो मँझधार में डूबी जाती है! अँगरेज़ है, न-जाने क्या मुसीबत ढा दे। भगवन्! ख़ानसामा का मुँह बंद कर दो, उसकी वाणी हर लो, तुमने बड़े-बड़े द्रोहियों और दुष्टों की रक्षा की है। अजामिल को तुम्हीं ने तारा था। मैं भी द्रोही हूँ, द्रोहियों का द्रोही हूँ। मेरा संकट हरो। अब की जान बची, तो शराब की ओर आँख न उठाऊँगा।

मार के आगे भूत भागता है। मुझे प्रतिक्षण यह शंका होती थी कि कहीं यह लोकोक्ति चरितार्थ न हो जाय। कहीं ख़ानसामा खुल न पड़े। नहीं तो फिर मेरी ख़ैर नहीं। सनद छिन जाने का, चोरी का मुक़द्दमा चल जाने का, अथवा जज साहब से तिरस्कृत किए जाने का इतना भय न था, जितना साहब के पदाघात का लक्ष्य बनने का। ज़ालिम हंटर लेकर दौड़ न पड़े। यों मैं इतना दुर्बल नहीं हू, हृष्ट-पुष्ट और साहसी मनुष्य हूँ। कॉलेज में खेल-कूद के लिये पारितोषिक पा चुका हूँ। अब भी बरसात में दो महीने मुगदर फेर लेता हूँ। लेकिन इस समय भय के मारे मेरा बुरा हाल था। मेरे नैतिक बल का आधार पहले ही नष्ट हो चुका था। चोर में बल कहाँ? मेरा मान, मेरा भविष्य, मेरा जीवन ख़ानसामा के केवल एक शब्द पर निर्भर था—केवल एक शब्द पर! किसका जीवन-सूत्र इतना क्षीण, इतना जीर्ण, इतना जर्जर होगा!

मैं मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर रहा था—शराबियों की तोबा नहीं, सच्ची, दृढ़ प्रतिज्ञा—कि इस संकट से बचा तो फिर शराब न पिऊँगा। मैंने अपने मन को चारों ओर से बाँध रखने के लिये, उसके कुतर्कों का द्वार बंद करने के लिये एक भीषण क़सम खाई।

मगर हाय रे दुर्दैव! कोई सहाय न हुआ। न गोवर्द्धनधारी ने सुध ली, न नृसिंह भगवान् ने। वे सब सत्ययुग में आया करते थे। न प्रतिज्ञा कुछ काम आई, न शपथ का कुछ असर हुआ। मेरे भाग्य, या दुर्भाग्य में जो कुछ बदा था, वह होकर रहा। बिधना ने मेरी प्रतिज्ञा को सुदृढ़ रखने के लिये शपथ को यथेष्ट न समझा।

ख़ानसामा बेचारा अपनी बात का धनी था। थप्पड़ खाए, ठोकर खाई, दाढ़ी नुचवाई, पर न खुला, न खुला। बड़ा सत्यवादी, वीर पुरुष था। मैं शायद ऐसी दशा में इतना अटल न रह सकता, शायद पहले ही थप्पड़ में उगल देता। उसकी ओर से मुझे जो घोर शंका हो रही थी, वह निर्मूल सिद्ध हुई। जब तक जिऊँगा, उस वीरात्मा का गुणानुवाद करता रहूँगा।

पर मेरे ऊपर दूसरी ही ओर से वज्रपात हुआ।

(४)

ख़ानसामा पर जब मार-धाड़ का कुछ असर न हुआ, तो साहब उसके कान पकड़े हुए डाक-बँगले की तरफ़ चले। मैं उन्हें आते देख चटपट सामने के बरामदे में आ बैठा, और ऐसा मुँह बना लिया मानो कुछ जानता ही नहीं। साहब ने ख़ानसामा को लाकर मेरे सामने खड़ा कर दिया। मैं भी उठकर खड़ा हो गया। उस समय यदि कोई मेरे हृदय को चीरता, तो रक्त की एक बूँद भी न निकलती।

साहब ने मुझसे पूछा—वेल वकील साहब, तुम शराब पीता है?

मैं इनकार न कर सका।

"तुमने रात शराब पी थी?"

मैं इनकार न कर सका।

"तुमने मेरे इस ख़ानसामा से शराब ली थी?"

मैं इनकार न कर सका।

"तुमने रात को शराब पीकर बोतल और गिलास अपने सिर के नीचे छिपाकर रखा था?"

मैं इनकार न कर सका। मुझे भय था कि ख़ानसामा न कहीं खुल पड़े। पर उलटे मैं ही खुल पड़ा।

"तुम जानता है, यह चोरी है?"

मैं इनकार न कर सका।

"हम तुमको गिरफ़्टार कर सकता है, तुम्हारा सनद छीन सकता है, तुमको जेल भेज सकता है।"

यथार्थ ही था।

"हम तुमको ठोकरों से मारकर गिरा सकता है। हमारा कुछ नहीं हो सकता।"

यथार्थ ही था।

"तुम काला आदमी वकील बनता है, हमारे ख़ानसामा से चोरी का सराब लेता है। तुम सुअर! लेकिन हम तुमको वही सज़ा देगा, जो तुम पसंद करे। तुम क्या चाहता है?"

मैंने काँपते हुए—हुज़ूर, मुआफ़ी चाहता हूँ।

"नहीं, हम सज़ा पूछता है?"

"जो हुज़ूर मुनासिब समझें।"

"अच्छा यही होगा।"

यह कहकर उस निर्दयी, नर-पिशाच ने दो सिपाहियों को बुलाया, और उनसे मेरे दोनों हाथ पकड़वा दिए। मैं मौन धारण किए इस तरह सिर झुकाए खड़ा रहा, जैसे कोई लड़का अध्यापक के सामने बेत खाने को खड़ा होता है। इसने मुझे क्या दंड देने का विचार किया है? कहीं मेरी मुश्कें तो न कसवावेगा, या कान पकड़कर उठा-बैठी तो न करावेगा। देवतों से सहायता मिलने की कोई आशा तो न थी, पर अदृश्य का आवाहन करने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या था।

मुझे सिपाहियों के हाथों में छोड़कर साहब दफ़्तर में गए, और वहाँ से मोहर छापने की स्याही और ब्रश लिए हुए निकले। अब मेरी आँखों से अश्रुपात होने लगा। यह घोर अपमान, और थोड़ी-सी शराब के लिये! वह भी दुगने दाम देने पर!

साहब ब्रश से मेरे मुँह में कालिमा पोत रहे थे, वह कालिमा, जिसे धोने के लिये सेरों साबुन की ज़रूरत थी, और मैं भीगी बिल्ली की भाँति खड़ा था। उन दोनों यमदूतों को भी मुझ पर दया न आती थी, दोनों हिंदोस्तानी थे, पर उन्हीं के हाथों मेरी यह दुर्दशा हो रही थी। इस देश को स्वराज्य मिल चुका!

साहब कालिख पोतते और हँसते जाते थे। यहाँ तक कि आँखों के सिवा तिल-भर भी जगह न बची। थोड़ी-सी शराब के लिये आदमी से बनमानुस बनाया जा रहा था। दिल में सोच रहा था, यहाँ से जाते-ही-जाते बचा पर मानहानि की नालिश कर दूँगा; या किसी बदमाश से कह दूँगा, इजलास ही पर बचा की जूतों से ख़बर ले।

मुझे बनमानुस बनाकर साहब ने मेरे हाथ छुड़वा दिए और तालो बजाता हुआ मेरे पीछे दौड़ा। ६ बजे का समय था। कर्मचारी, मुवक्किल, चपरासी, सभी आ गए थे। सैकड़ों आदमी जमा थे। मुझे न-जाने क्या शामत सूझी कि वहाँ से भागा। यह उस प्रहसन का सबसे करुणा-जनक दृश्य था। आगे-आगे मैं दौड़ा जाता था, पीछे-पीछे साहब, और अन्य सैकड़ों आदमी तालियाँ बजाते "लेना-जेना, जाने न पावे" का गुल मचाते दौड़े आते थे, मानो किसी बंदर को भगा रहे हों।

लगभग एक मील तक यह दौड़ रही। वह तो कहो मैं कसरती आदमी हूँ, बचकर निकल आया, नहीं मेरी न-जाने और क्या दुर्गति होती। शायद मुझे गधे पर बिठाकर घुमाना चाहते थे। जब सब पीछे रह गए, तो मैं एक नाले के किनारे बेदम होकर बैठ रहा। अब मुझे सूझी कि यहाँ कोई आया, तो पत्थरों से मारे बिना न छोड़ूँगा, चाहे उलटी पड़े या सीधी। किंतु मैंने नाले में मुँह धोने की चेष्टा नहीं की। जानता था, पानी से यह कालिमा न छूटेगी। यही सोचता रहा कि इस अँगरेज़ पर कैसे अभियोग चलाऊँ? यह तो छिपाना ही पड़ेगा कि मैंने इसके ख़ानसामा से चोरी की शराब ली। अगर यह बात साबित हो गई, तो उलटा मैं ही फँस जाऊँगा। क्या हरज है, इतना छिपा दूँगा। शत्रुता का कारण कुछ और ही दिखा दूँगा। पर मुक़द्दमा ज़रूर चलाना चाहिए।

जाऊँ कहाँ? यह कालिमा-मंडित मुँह किसे दिखाऊँ! हाय, बदमाश को कालिख ही लगानी थी, तो क्या तवे में कालिख न थी, लैंप में कालिख न थी? कम-से-कम छूट तो जाती। जितना अपमान हुआ है, वहीं तक रहता। अब तो मैं मानो अपने कुकृत्य का स्वयं ढिंढोरा पीट रहा हूँ। दूसरा होता, तो इतनी दुर्गति पर डूब मरता।

ग़नीमत यही थी कि अभी तक रास्ते में किसी से मुलाक़ात नहीं हुई थी; नहीं तो उसके कालिमा-संबंधी प्रश्नों का क्या उत्तर देता? जब ज़रा थकन कम हुई, तो मैंने सोचा, यहाँ कब तक बैठा रहूँगा। लाओ, एक बार यत्न करके देखूँ तो, शायद स्याही छूट जाय। मैंने बालू से मुँह रगड़ना शुरू किया। देखा, तो स्याही-

छुट रही थी। उस समय मुझे जितना आनंद हुआ, उसकी कौन कल्पना कर सकता है। फिर तो मेरा हौसला बढ़ा। मैंने मुँह को इतना रगड़ा कि कई जगह चमड़ा तक छिल गया। किंतु वह कालिमा छुड़ाने के लिये मुझे इस समय बड़ी-से-बड़ी पीड़ा भी तुच्छ जान पड़ती। यद्यपि मैं नंगे सिर था, केवल कुर्ता और धोती पहने हुए था, पर यह कोई अपमान की बात नहीं। गाउन, अचकन, पगड़ी डाक-बँगले ही में रह गई, इसकी मुझे चिंता न थी। कालिख तो छुट गई।

लेकिन कालिमा छुट जाती है, पर उसका दाग़ दिल से कभी नहीं मिटता। इस घटना को हुए आज बहुत दिन हो गए हैं। पूरे पाँच साल हुए, मैंने शराब का नाम नहीं लिया, पीने की कौन कहे। कदाचित् मुझे सद्मार्ग पर लाने के लिये वह ईश्वरीय विधान था। कोई युक्ति, कोई तर्क, कोई चुटकी मुझ पर इतना स्थायी प्रभाव न डाल सकती थी। सुफल को देखते हुए तो मैं यही कहूँगा कि जो कुछ हुआ, बहुत अच्छा हुआ। वही होना चाहिए था। पर उस समय दिल पर जो गुज़री थी, उसे याद करके आज भी नींद उचट जाती है।

अब विपत्ति-कथा को क्यों तूल दूँ। पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। ख़बर तो फैल ही गई, किंतु मैंने झेपने और शरमाने के बदले बेहयाई से काम लेना अधिक अनुकूल समझा। अपनी बेवक़ूफ़ी पर खूब हँसता था, और बेधड़क अपनी दुर्दशा की कथा कहता था। हाँ, चालाकी यह की कि उसमें कुछ थोड़ा-सा अपनी तरफ़ से बढ़ा दिया, अर्थात् रात को जब मुझे नशा चढ़ा तो मैं बोतल और गिलास लिए साहब के कमरे में घुस गया था और उसे कुरसी से पटककर खूब मारा था। इस क्षेपक से मेरी दलित, अपमानित, मर्दित आत्मा को थोड़ी-सी तस्कीन होती थी। दिल पर तो जो कुछ गुज़री, वह दिल ही जानता है।

सबसे बड़ा भय मुझे यह था कि कहीं यह बात मेरी पत्नी के कानों तक न पहुँचे, नहीं तो उन्हें बड़ा दुःख होगा। मालूम नहीं, उन्होंने सुना या नहीं; पर कभी मुझसे इसकी चर्चा नहीं की।

प्रेमचंद

हज़रत अज़ीज़ लखनवी

अठारहवीं शताब्दी में उर्दू-कविता

अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में, दिल्ली के उजड़ते हुए खँडहरों में, मुग़ल-साम्राज्य का चिराग़ झिलमिला रहा था; उसकी धुँधली रोशनी में ग़ालिब, ज़ौक़, मोमिन और शेफ़ता अपने तरानों से सर्द दिलों को गरमा रहे थे; और अंतिम मुग़ल-सम्राट्—बहादुरशाह (ज़फ़र)—मुग़ल-साम्राज्य का डूबता हुआ सितारा देखकर करुण स्वर से कह रहा था—

"गई एक-ब-एक जो हवा पलट नहीं दिल को मेरे क़रार है।"

दिल्ली में ज़ौक़ उर्दू-शायरी की ज़बान को साफ़, सुलझी और टकसाली बनाने की चेष्टा कर रहे थे; और नासिख़ लखनऊ की ज़बान पर से दिल्ली के आधिपत्य की छाप हटाकर उसे स्वतंत्र करने के नए उद्योग में तत्पर थे। लखनऊ के महावरे, पूरब की ज़बान (देहलीवाले लखनऊ के लोगों को भी पूरबी कहते थे। मीर ने लखनऊवालों को अपना परिचय यों दिया था—'क्या बूदोबाश पूछो हो पूरब के साकिनो') के वे शब्द, जो ख़ास लखनऊवालों ने ग्रहण कर लिए थे, लखनऊ की उर्दू-शायरी में प्रवेश करने लगे। नासिख़ ने दिल्ली के कई महावरों और इस्तलाहों से असहयोग शुरू कर दिया, और लखनऊ की ज़बान में, साधारण बोलचाल में, जिसे दिल्लीवाले तो क्या, नासिख़ के पहले खुद लखनऊ में मसहफ़ी और इंशा ने तर्क कर रक्खा था, शायरी शुरू की। इस प्रकार साहित्य में अछूतोद्धार हो गया, जो अंत को इस हद तक पहुँच गया कि दिल्ली के सैकड़ों महावरों पर, बल्कि दिल्ली की भाषा पर, लखनऊवालों की तरफ़ से खुली चोटें होने लगीं। उस उर्दू को, जो जामा-मसजिद की सीढ़ियों की लौंडी थी, लखनऊ की बेग-मात की बातों में कुछ कहने का हक़ न रह गया। वह अछूत कर दी गई। नासिख़ ने यह काम शुरू किया। नासिख़ के अर्थ ही हैं सँवारनेवाला, संस्कार करनेवाला। नासिख़ को लखनऊ की ज़बान पर इतना घमंड था कि लखनऊ ही के एक रईस जब एक बार

नासिख़ से एक फ़ारसी शेर का मतलब पूछने गए, तो नासिख़ ने, फ़ारसी के अच्छे विद्वान् और खुद इतने सुकवि होते हुए भी, यह जवाब दिया कि मैं उर्दू का शायर हूँ, फ़ारसी से मुझसे क्या मतलब ?

नासिख़ उर्दू को लखनऊ की उर्दू बनाने के उद्योग में तल्लीन हुए, तो सारा लखनऊ इस भँवर में खिंच आया, और भाषा की कटार पर सान चढ़ने लगी। नासिख़, आतश, वज़ीर, सबा, रश्क, बहर, क़लक और ख़लील ने उस कटार पर ऐसा सैक़ल किया कि उसकी धार से बाल की खाल निकालने लगे। और, उसकी नोक तो ऐसी थी कि बाल की खाल की खाल निकाल ले। मीर, मसहफ़ी, सौदा और ग़ालिब के काढ़े हुए बेल-बूटों पर वह बारीक मीनाकारी की कि खुर्दबीन के बिना उनकी दस्तकारी कोई देख ही नहीं सकता था। हाँ, इन कवियों ने, ख़ासकर आतश और सबा ने, जहाँ मीनाकारी छोड़कर उस कटार से अपने या दूसरों के दिलों पर घाव किया है, वहाँ ऐसे दामनदार ज़ख़्म पड़े हैं, जो रूप-रंग और सुगंध में खिले हुए फूलों को लज्जित करते हैं। भाषा की कटार को इन उस्तादों ने घिसते-घिसते तीर बना दिया था; और आतश के हाथों से तो अक्सर यह तीर कमान से छूटकर चिनगारियाँ उड़ाता, स्वर्ग की ओर संकेत करता हुआ, आँखों के सामने से निकल जाता है। लेकिन औरों ने तो केवल मीनाकारी ही की, ऐसी मीनाकारी कि बेल-बूटों की भूलभुलैयों में सुई की नोक खुद गुम हो गई है। अस्तु।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, लखनऊ में, अमीर मीनाई और दिल्ली में दाग़, ये उर्दू की शायरी के दो बड़े उस्ताद गुज़र गए हैं। इन दोनों का भाषा पर पूरा-पूरा अधिकार था। मीर और ग़ालिब की भाषा को, जो पुरानी हो चली थी और अपूर्ण थी, और आतश और नासिख़ की ज़बान को, जो अभी बोलचाल की भाषा में पूरी तरह घुली-मिली नहीं थी, अभी फ़ारसी की तरकीबों और महावरों से पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हुई थी, इन कवियों ने बिलकुल टकसाली करके दिखा दिया। लेकिन जहाँ भाषा सरल, स्वाभाविक, व्यावहारिक और लचकदार हो गई, वहाँ भाव अब कृत्रिम और अश्लील हो रहे थे। ये लोग अक्सर कविता की धुन में बाज़ारी ज़बान बोल जाते थे, अर्थात् जो कुछ मुँह में आता था, कह जाते थे। उन्नति हुई, खूब हुई; लेकिन एकतर्फ़ा रही। फिर भी इन कवियों का भाषा पर आधिपत्य देखकर चकित हो जाना पड़ता है। अमीर के अंतिम दिनों में यह स्वप्न टूटने लगा, उर्दू-शायरी के सिर से यह नशा उतरने लगा। १६०० में अमीर का स्वर्गवास हुआ। इस टूटे हुए खुमार के कुछ चिह्न अमीर के आख़िरी कलाम में मिलते हैं, जिसमें भाषा-लालित्य के साथ-साथ भाव भी बड़े नाज़ुक झलक रहे हैं। अमीर के आख़िरी ज़माने के दो शेर ये हैं—

उन्हीं से ग़मज़े करती है, जो तुझ पर जान देते हैं,
अजल, तुझको भी कितना नाज़े-माशूक़ाना आता है।
हम बड़ी दूर से आए हैं, तुम्हारा यह हाल:
घर से दरवाज़े तक आना कई मंज़िल ठहरा !

नया दौर

१६०० ईसवी में अमीर के हाथ से क़लम छूटता है। उसके बाद से लखनऊ के उन मौजूदा कवियों की गुल-कारी शुरू होती है, जो आज उर्दू-कविता की वाटिका में नए रंग-रूप के फूल खिला रहे हैं। एक बात इस बारे में ग़ौर करने की है। लखनऊ के प्रायः सभी वर्तमान कवि शिया-मज़हब के हैं। वे एक ओर तो अमीर और दाग़ की उन्नत भाषा के विरासतदार हैं, और दूसरी ओर अनीस के मर्सियों का रंग भी उनकी ग़ज़लों पर चढ़ा हुआ है। साथ ही करुण-रस के प्रेम ने महाकवि मीर के अनुकरण की ओर भी इन कवियों का ध्यान फेर दिया है। वर्तमान शिक्षा की उन्नति ने ग़ालिब की दार्शनिक कविता की तरफ़ भी इनका ध्यान आकर्षित किया। फिर पूर्वीय सभ्यता की पुनर्जागृति (Indian Renaissance) और रवींद्रनाथ ठाकुर की विश्व-व्यापी ख्याति ने अध्यात्म-वाद को उर्दू-कविता में जगह देने के लिये भी इन कवियों को उत्साहित किया है। सरलता, स्वाभाविकता और भाषा में चटीलापन, करुणा, दार्शनिक और आध्यात्मिक संकेत, भावों में व्यापकता—ये ही उर्दू के वर्तमान कवियों की कल्पना के मुख्य अंग हैं। वर्तमान कवियों में अज़ीज़ का स्थान बहुत ऊँचा है।

अज़ीज़ का संक्षिप्त परिचय

आपका नाम मिर्ज़ा मुहम्मद हादी है। आपका जन्म सन् १८८२ ईसवी में, लखनऊ में, हुआ था। सात ही साल

के थे कि पिता का देहांत हो गया। इन्होंने अपने परिवार-वालों के साथ रहकर अरबी और फ़ारसी की उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त की। क्रमशः अध्यात्म, दर्शन और साहित्य में आपकी अच्छी गति और रुचि हो गई। आज-कल उर्दू के यह सर्व-श्रेष्ठ कवि और विद्वान् अमीनाबाद हाईस्कूल (लखनऊ) में चालीस-पचास रुपए महीने की नौकरी पर ज़िंदगी बसर कर रहे और अपनी कविता में अपनी आत्मा के लिये अनंत सांत्वना ढूँढ़ रहे हैं। ग़ालिब ने यह शेर ऐसों ही के लिये कहा था—

सख़ुन क्या हम नहीं रखते कि जोयाँ हों जवाहिर के;
जिगर क्या हम नहीं रखते कि खोदें जाके मादन को।

मिर्ज़ा मुहम्मद हादी साहब अज़ीज़

अज़ीज़ की तबियत शुरू से ही कविता के अनुकूल थी। शुरू में कुछ बुज़ुर्गों और दोस्तों को अपनी कविता दिखाई। उसके बाद उस्तादों के कलाम के अध्ययन और अपने मनन से इनकी काव्य-शक्ति ऐसी चमक गई कि कलाम में एक उस्तादाना रंग पैदा हो गया। आपके कलाम की शोह-रत धीरे-धीरे बढ़ने लगी। उसका चुटीला-पन, भाव-गांभीर्य और विद्वत्ता-पूर्ण, चमत्कार-पूर्ण तथा भाव-पूर्ण शैली दिलों पर असर करने लगी। लखनऊ के सहकारी कवियों ने इनके कलाम को इज़्ज़त की निगाह से देखा। जो शिक्षित समाज दाग़ और अमीर की अश्लील कविता से झिझ-कता था, बल्कि यों कहना चाहिए कि उनके भावों को नीरस, कृत्रिम और बाज़ारी समझकर उर्दू-शायरी से नफ़रत करने लगा था, उसको भी अज़ीज़ की कविता ने लुभाया। उसने उसे उच्च कोटि का और अपनी रुचि के अनुकूल पाया। अकबर और इक़बाल पर अज़ीज़ के कलाम का बहुत प्रभाव पड़ा, और इनकी निगाहों में अज़ीज़ की सच्ची इज़्ज़त हो गई *। आज-कल, जब उर्दू का बाज़ार इतना बुझा हुआ है, जब गद्य और पद्य की किताबों का एक संस्करण भी नहीं खपता—बरसों पड़ा सड़ा करता है, तब अज़ीज़ के दीवान का तीन साल के अंदर दो-दो बार छपना बतला रहा है कि आजकल की नई रोशनी में अज़ीज़ के कलाम की चमक बढ़ती जा रही है।

अज़ीज़ की कविता की विशेषताएँ

कविता में वाणी का मौन से, अनित्य का नित्य से, साकार का निराकार से, चपलता का विश्राम से मिलाप होता है। कवि का हृदय अत्यंत चंचलता और अगाध

* सुप्रसिद्ध कवि यास अज़ीमाबादी, जो दो-एक कवियों को छोड़कर उर्दू के तमाम कवियों के पीछे पड़े रहते हैं, उन्होंने स्वीकार किया है कि अगर लखनऊ में कोई कहने-वाला है तो अज़ीज़ है।

शांति का केंद्र होता है। कवि की कल्पना यह अद्भुत यंत्र है, जिसका सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और महान्-से-महान् तत्त्वों और अभिप्रायों पर समान आधिपत्य होता है। लौकिक को अलौकिक बना देना और अलौकिक को लौकिक कर दिखाना कविता का ही काम है। कवि की आँखों में यह संसार स्वर्ग की ओर खिंचता है, और स्वर्ग साकार होता हुआ पृथ्वी की ओर उतरता नज़र आता है। इन प्रगतियों से जो एक शृंखला-बद्ध झनकार निकलती है, कविता उसी की प्रतिध्वनि है। अगर दिलों को बेचैन कर देना और बेचैन दिलों को सांत्वना-प्रदान करना कविता का काम है, तो अज़ीज़ की कविता में यह असर है। कहते हैं—

बना दिया न ज़माने को दास्ताँ जब तक,
मिली न इश्क़ को फ़ुरसत फ़सानासाज़ी से।

इश्क़ की अब इससे अच्छी और इससे सच्ची तारीफ़ क्या हो सकती है कि वह ज़माने को एक कहानी बना दे। फिर कहते हैं—

हुस्ने-ख़ुद्दार मोजिज़ाते-इश्क़ का क़ायल नहीं;
क़तरहाए-अश्के ख़ूनीं, जमा होकर दिल बनो!

अर्थात् स्वाभिमानी सौंदर्य प्रेम के अद्भुत करतबों का क़ायल नहीं है। ऐ ख़ून के आँसुओं के क़तरो, फिर जमा होकर दिल बन जाओ। आपकी एक ग़ज़ल के कुछ शेर सुनिए—

मए-सरजोशे-तजल्ली की हिफ़ाज़त मालूम;
मेरे किस काम का टूटा हुआ पैमानए-दिल।
दिल यहाँ मायए-नाज़ और क़यामत यह है;
आलमे-हुस्न की हर चीज़ है बेगानए-दिल।
दिल-फ़रोशों को निगाहे-ग़लत-अंदाज़ है बस,
यों तो सरमायए-कौनैन है बैयानए-दिल।
कभी जन्नत, कभी दोज़ख़, कभी काबा, कभी दैर;
अजब अंदाज़ से तामीर हुआ ख़ानए-दिल।

पहले शेर में कहते हैं कि मैं जानता हूँ, जलवए-यार की छलकती हुई शराब कहाँ-तक छलक जाने से बची रहेगी। यह टूटा हुआ दिल का पैमाना मेरे किस काम का?

दूसरे शेर का अर्थ है कि ले-देके मुझे एक दिल ही पर सारा घमंड है, और क़यामत है हुस्न की दुनिया की हर चीज़ दिल की ओर से लापरवाह है।

तीसरे शेर में कहते हैं कि दिल बेचनेवालों के लिये एक वह निगाह बहुत है, जो भूल से दिल पर पड़ जाय, और यों तो लोक, परलोक, दोनों इस दिल के बयाना या पेशगी क़ीमत हैं।

चौथे शेर में कहा है कि यह दिल कभी स्वर्ग, कभी नरक, कभी काबा और कभी बुतख़ाना हो जाता है। दिल का घर अजब अंदाज़ से तामीर किया गया है।

प्रेम और सौंदर्य के अस्तित्व के गुप्त और सूक्ष्म संबंध इन शेरों में प्रकट किए गए हैं—

दिल की चमक में जब तेरी सूरत नज़र पड़ी,
साबित हुआ कि हुस्न का पर्दा ही दर्द था।
उड़ूँगा मैं बुतों की निगाहों के साथ-साथ;
रोज़-अलस्त * दिल से यह पैमाने-दर्द † था।
इश्क़ ने सींचा लहू से अपने यों गुलज़ारे-हुस्न;
होते-होते ख़ूने-दिल अहदे-शबाब आ ही गया।
ज़िक्रे ख़रामे-नाज़ करो, मशविरा यह है,
बढ़े-अज़ीर नब्ज़ की रफ़्तार देखकर।
शिगाफ़ एक हो चला तुरबत में, जान आने लगी मुझमें;
ज़रा ऐ जानेवाले, क़ब्र पर फिर मुसकिरा देना।
एक अदा थी, जिसे हस्ती मेरे दिल ने जाना;
एक निगह थी, जिसे इमान रगे जाँ समझा।
तूने इस लुत्फ़ से देखा था अज़ल ‡ में उसको,
मर भी जाते, तो कभी दिल न हमारा होता।

इन शेरों की भाषा कठिन नहीं है। पढ़नेवाले देखें कि आध्यात्मिकता में एक-एक शेर डूबा हुआ है, लेकिन कितनी रंगीनी, कितनी मृदुलता इन शेरों में भरी हुई है। क्या यहाँ निराकार को साकार करके, मौन को वाणी में प्रतिध्वनित करके अज़ीज़ ने नहीं दिखाया? सब शेरों के अर्थ लिखने की ज़ुरूरत नहीं है, न स्थान ही है। सिर्फ़ तीसरे और चौथे शेर के संबंध में कुछ कहना है—

तीसरे शेर का अर्थ यह है कि सौंदर्य और प्रेम का विकास साथ-साथ होता है। जैसे-जैसे प्रेम बढ़ता है,

* सृष्टि का प्रथम दिन।
† दर्द का वादा।
‡ सृष्टि के प्रारंभ में।

वैसे-वैसे सौंदर्य भी चमकता जाता है। कहते हैं, गुलज़ारे-हुस्न को इश्क़ ने इस खूबी से सींचा कि दिल का खून होते-होते उनकी जवानी आ ही गई। ग़ौर करने से मालूम होगा कि सौंदर्य की सृष्टि प्रेम ही कर रहा है—

"होते-होते खूने-दिल अहदे शबाब आ ही गया"।

चौथे शेर की नज़ाकत की तारीफ़ नहीं हो सकती। कहते हैं, मरते समय जब नाड़ियाँ डूब रही और मंद-मंद चल रही हों, तो किसी की मतवाली चाल का ज़िक्र करो। नब्ज़ की मंद गति और माशूक़ का ख़रामे-नाज़, दोनों में जो नाज़ुक संबंध है, उसे सूक्ष्म भाव रखनेवाले ही समझ सकते हैं। किसकी वह चाल होगी, और कैसी चाल होगी, जिसकी चर्चा नब्ज़ों के डूबने के समय करना सुखकर है? यह तो माना हुआ है कि उस चाल की आहट मिलना नब्ज़ की आहट मिलने से कम दुर्लभ नहीं। उस मंद-मंद गति में वह विश्राम है, जिसकी बीमार की नब्ज़ों की चाल परछाहीं-भर है।

अज़ीज़ के कुछ और शेर, जो आध्यात्मिकता में डूबे हुए और शराबोर हैं, ये हैं—

आगे खुदा को इल्म है, क्या जानें क्या हुआ;
बस, उनके रुख़ से याद है उठना नक़ाब का।

तुम-सा भी कोई दिखा ही देंगे;
अब पर्दए-दिल उठा ही देंगे।

मूसा की बेखुदी ने वह नक़्शा मिटा दिया;
तसवीर खिंच चली थी तेरी जलवागाह की।

कहती है रूह, आई हैं जितनी कि हिचकियाँ *,
उतनी ही मैंने ठोकरें खाई हैं राह की।

वों तड़पके कहते हैं, झुक जा सरे-नयाज़ †;
कुछ राज़ बंदगी के कहेंगे ज़बाँ से हम।

उड़े वह तूर के पुर्ज़े, गिरे वह हज़रते मूसा;
असर तुमने भी देखा कुछ तबस्सुमहाय-पिनहाँ का ‡।

हिचकी का तार टूट चुका, रूह अब कहाँ?
ज़ंजीर खुलके गिर पड़ी, दीवाना छुट गया।

ये हैं कुछ मिसालें अज़ीज़ के आध्यात्मिक शेरों की। कवि की कल्पना कितनी ऊँचाई और गहराई की सैर कर आई! लेकिन यह शक्ति बराबर ऐसी ही स्थिर नहीं रहती। कल्पना थक जाती है, और स्वर्ग की वंदना करके मनुष्य की आत्मा फिर संसार में उतर आती है। कुछ देर पृथ्वी और स्वर्ग में इशारेबाज़ियाँ हो जाती हैं, फिर परदा पड़ जाता है। रचनात्मक-शक्ति परिमित है। सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ बहुत नहीं हो सकतीं। भगवान् के कई अवतार हुए; लेकिन सोलहों कलाएँ एक ही बार श्रीकृष्ण के रूप में दिखाई पड़ी थीं। जब सारी प्रकृति यह भार नहीं उठा सकती, तो मनुष्य की निर्बल आत्मा उसे कब तक सँभाल सकती है।

माया-छवि

स्वर्ग से बिछड़कर कवि की आत्मा निराशा में डूब जाती और बेचैनियों का शिकार हो जाती है। कवि की आत्मा माया-छवि में उस अलौकिक सौंदर्य को ढूँढ़ती है, और इस वियोग में जो आवाज़ दिल से निकलती है, असर में डूबी हुई होती है। स्वर्ग को अपने सौंदर्य पर घमंड है, तो कवि के लिये जुदाई का ग़म कम नहीं है। वह घाव, जो कवि के दिल पर लगा हुआ है, रूप-रंग और सुगंध में स्वर्ग के खिले हुए फूलों से कम नहीं। व्यंग्य और करुण-रस का मज़ा यहीं आता है। फिर माया-छवि भी कम मन-मोहिनी नहीं है। जब कोई हसीन सूरत सौंदर्य का साक्षात् करा देती है, तो कवि का हृदय बेचैन हो जाता है। फिर सांसारिक प्रेम की अठखेलियाँ शुरू हो जाती हैं। थोड़ी देर के लिये स्वर्ग भी भूल जाता है, और कवि की आत्मा की अग्नि-परीक्षा शुरू हो जाती है। साक्षात् और प्रत्यक्ष का वियोग, सामने की चीज़ का हाथ न आना, कम महत्त्व-पूर्ण घटना नहीं है। हुस्न और इश्क़ की छेड़छाड़ भी देखते ही बनती है। मीरा, सूर, तुलसीदास, रसखानि आदि कविवर पहले सांसारिक सौंदर्य से ही पागल हुए थे। उनकी आँखें लौकिक सौंदर्य ही ने खोली थीं। यह ज़रूर है कि ऐसे अवसरों पर भावों के विकारमय हो जाने का भय है। लेकिन चोट खाए हुए दिल को नम्र, पवित्र बनने और बहुत कुछ सीख जाने का अवसर यहीं मिलता है। बादशाह बहादुरशाह (ज़फ़र) कहते हैं—

न कुछ हम हँसके सीखे हैं, न कुछ हम रोके सीखे हैं;
जो कुछ थोड़ा-सा सीखे हैं, किसी के होके सीखे हैं।

प्रेम और शृंगार-रस के अत्यंत सुंदर और चुटीले शेर अज़ीज़ के कलाम में मिलते हैं, और माया-छबि का

---

* मरते समय।

† ललाट।

‡ छिपी हुई मुसकिराहट।

वर्णन भी उनके यहाँ ख़ूब है। उनके कुछ शेर इस रंग के हैं—

अँगड़ाई लेके किसने ये चटकाई उँगलियाँ ;
दो हिचकियों में ख़तम जो बीमार हो गए।

इधर देख नीची नज़र करनेवाले ;
यही तीर हैं दिल में घर करनेवाले।
इलाही, सलामत रहें ता क़यामत ;
अदावत से मुझ पर नज़र करनेवाले।
किसी बात पर मुसकिराते चले हैं ;
मेरी ख़ाक पर से गुज़र करनेवाले।

मैंने माना आपसे तलवार उठी, ख़ंजर उठा ;
हाय मुझ-से नीमजाँ पर आपका क्योंकर उठा ?
हँस रहा है देखकर यह कौन तुझको देर से ;
सर उठा, ऐ दिल से बातें करनेवाले, सर उठा।

गर्दन है झुकी देर से, अब सर न उठेगा ;
अफ़सोस मगर आपका ख़ंजर न उठेगा।
सब देख रहे हैं मेरे क़ातिल की निगाहें ;
यह ज़ुल्म तो ऐ दावरे-महशर, न उठेगा।

निसार इस बचपने के और इस नाज़ुक-दिमाग़ी के,
सियह बालों से अपने नींद में ख़ुद आप डर जाना।

क़त्ल, और मुझ-से सख़्त-जाँ का क़त्ल ;
तेग़ देखो, ज़रा कमर देखो।
कह के बीर से यह बुझ गई शमा ;
रात होती है यों बसर देखो।
यों आप रुला के जानेवाले ;
जैसे कि हमें हँसा ही देंगे।

करुण-रस

अज़ीज़ की तबियत बड़ी पुर-दर्द और चुटीली वाक़ा हुई है। इसके साथ, जैसा कहा जा चुका है, अज़ीज़ शिया-मज़हब के हैं, और *मर्सियों का रंग उनके* कलाम पर चढ़ा हुआ है। अब तक अज़ीज़ के जितने शेर उद्धृत किए गए हैं, उनमें करुण-रस अधिकतर झलक रहा है। लेकिन मर्सियों में जो कमी है, वह कमी यहाँ भी *नज़र आती है।* यह कमी है दुःख-पूर्ण घटनाओं को साफ़-साफ़ और खुला-खुला बयान करना। क़त्ल होना, तड़पना, तड़प-तड़पकर जान देना, प्राण-पीड़ा, रोना-चिल्लाना, जनाज़े का उठना, दफ़न होना, क़ब्रों पर हसरत बरसना आदि बातें मर्सियों में बहुत स्पष्ट ढंग से बयान की गई हैं। अगर दर्द-भरी बात *बिना दर्द* का नाम लिए बयान कर दी जाय, तो साफ़-साफ़ कहने से ज़्यादा पुर-असर होती है। जैसे सौदा कहते हैं—

मत पूछ यह कि रात कटी क्योंकर * तुझ बग़ैर ;
इस गुफ़्तगू से फ़ायदा, प्यारे, गुज़र गई।

मीर कहते हैं—

मेरे तग़ईरे-हाल † पर मत जा ;
इत्तिफ़ाक़ात हैं ज़माने के।

हज़रत अज़ीज़ दर्द और घाव को छिपाते नहीं। यही ज़रा-सी कमी है। लेकिन फिर भी उनके शेर सदमाए बग़ैर नहीं रहते। यह ख़ुद कहते हैं कि मेरे कलाम का पढ़ना गोरे-ग़रीबाँ की सैर है। उनके कुछ शेर, जिनमें करुण-रस बहुत अधिक मात्रा में है, ये हैं—

शमा बुझकर रह गई, परवाना जलकर रह गया ;
माजराए हुस्नो-इश्क़ एक दाग़ दिल पर रह गया।
शौक़ में करता क्यों किस तरह आख़िर दर्दे-दिल ;
आपका बीमार एक करवट बदलकर रह गया।

आओ, आज उस दिले-नाकाम की तुरबत पे चलें,
ज़िंदगी-भर जो हरएक काम को आसाँ समझा।

यह शेर करुण-रस में कितना डूबा हुआ है। नाकाम (असफल) का अर्ज़ उस दिल के लिये, जो ज़िंदगी-भर हरएक काम को आसाँ समझा! फिर कहते हैं—

अरे मुँह ढाँप के रोनेवाले,
दम उखड़ जायगा, फ़रियाद तो कर।

किसी तरह शबे-फ़ुरक़त की सुबह हो जाय,
मरीज़े-हिज्र को चादर ज़रा उढ़ा देना।

दूसरे मिसरे में कितनी बातें भरी हुई हैं।

उम्रे-अज़ीज़ गुज़री हसरत-परस्तियों में ;
ऐसी भी ज़िंदगी का, या रब, हिसाब होगा ?

कहीं-कहीं तो ऐसे साफ़ शेर निकल गए हैं कि मीर की याद आ जाती है—

दिल का छाला फूटा होता ;
काश, यह तारा टूटा होता।
शीशए-दिल को यों न उठाओ ;
देखो, हाथ से छूटा होता।

---

* कैसे।

† बदली हुई हालत।

कैसे-कैसे सितम हुए तुझ पर ;
क्यों मेरे दिल, तुझे ख़बर न हुई।
दिल ने दुनिया नई बना डाली,
और हमें आज तक ख़बर न हुई!
हिज्र की रात काटनेवाले,
क्या करेगा, अगर सहर न हुई?

रात का कटना, सुबह का सन्नाटा अज़ीज़ की दृष्टि में बड़ा प्रभावशाली दृश्य है। कहते हैं—

सब पिछली रात सुबह के आसार देखकर,
रोए सपी दिए रुख़-बीमार देखकर।
थी सुबह, और सितारे कुछ झिलमिला रहे थे;
बीमारे-ग़मे-फ़ुरक़त दुनिया से जा रहे थे।

समाप्ति

ये कुछ पंक्तियाँ पाठकों के अध्ययन, मनन और रसास्वादन के लिये उद्धृत कर दी गई हैं। शेर ख़ुद बता रहे हैं कि हज़रत अज़ीज़ किस कोटि के कवि हैं ; उनकी कल्पना कितनी चमत्कार-पूर्ण है ; भाव कितने गहरे हैं ; कलाम में कितना दर्द है ; बयान में कितनी रंगीनी है ; भाषा कितनी ललित और उसमें शब्द-संगीत कितना मौजूद है। यह सच है कि फ़ारसी के शब्दों, इस्तलाहों और तरकीबों की मात्रा अज़ीज़ के कलाम में बहुत है, और हर जगह भाषा टकसाली नहीं है; लेकिन दार्शनिक, आध्यात्मिक और अतिसूक्ष्म तत्त्वों को बोलचाल की भाषा में वहीं तक पद्य-बद्ध किया जा सकता है, जहाँ तक संभव है। अँगरेज़ी में कविवर वर्ड्सवर्थ ने भी बोलचाल की भाषा (natural diction) में कविता करना अपना आदर्श रक्खा था। लेकिन प्रिल्यूड (Prelude) नाम के काव्य में जब दार्शनिक बातें उनको कहनी पड़ीं, तो भाषा गंभीर हो गई, और उनकी शैली अकस्मात् बदल गई।

यह सब होने पर भी ऐसे शेरों की भाषा कहीं अस्वाभाविक, बेमज़ा या कानों को खटकनेवाली नहीं है। फ़ारसी-शब्दों का क्रम इन शेरों में एक तीव्र झनकार पैदा कर देता है, मानो सार-शब्द की प्रतिध्वनि सुनाई दे रही है। यह काम बहुत सादे शब्दों से नहीं निकल सकता। कविता और संगीत में कुछ अंतर है। गान में स्वर और अलाप सीधे-सादे शब्दों को संगीतमय कर देते हैं। कविता में शब्द के उच्चारण से ही संगीत पैदा करना होता है। फिर चित्रकार का काम भी तो कवि को करना पड़ता है। प्रकृति के नियमों, दार्शनिक सिद्धांतों, आध्यात्मिक तत्त्वों और अद्वैत-वाद के गूढ़ रहस्यों को तर्क-वितर्क का विषय बनाना या केवल लिख देना ही कवि का काम नहीं है। इन सूक्ष्म तत्त्वों, इन निराकार सत्यों को साकार कर दिखाना भी कवि का काम है। प्रेम और सौंदर्य की असलियत एक ही है। प्रेम सत्य का चपल स्वरूप है, और सौंदर्य विश्राममय स्वरूप। वह उसी सत्य का एक जलाल है, एक जमाल है। एक उसी शोले की तड़प है, तो दूसरा उसी की दमक, जो हर लपट के साथ बढ़ती जाती है। बिना रंगीनी पैदा किए, बिना झनकार पैदा किए कविता सत्य का साक्षात् नहीं करा सकती। उसके परे जाकर वाणी मौन में लीन हो जाती है, और कवि के होंठ काँप-काँपकर रह जाते हैं।

यह सच है कि कहीं-कहीं अज़ीज़ की कल्पना शिथिल पड़ जाती है। वह उपमाएँ देते हैं, रंगीन शब्दों का प्रयोग करते हैं, लेकिन विचार भली भाँति तरंगित नहीं होता, कल्पना विचार के बोझ से दब जाती है, और उनकी बात में वह स्फूर्ति नहीं रहती। उस समय अज़ीज़ तर्क-वितर्क में पड़ जाते हैं। फिर भी उनके जो सादे और साफ़ शेर निकल जाते हैं, उनमें लखनऊ की टकसाली भाषा का पूरा-पूरा आनंद आता है। मालूम होता है, बातें कर रहे हैं। बात सादी, लेकिन असर में डूबी हुई होती है। उनमें दार्शनिक विचार न सही, लेकिन वे सीधी-सादी बातें ख़ून में डूबी हुई होती हैं, और करुणा उनमें कूट-कूटकर भरी होती है। ऐसे शेर एक चोट खाए हुए दिल की धड़कन मालूम होते हैं। कविवर का एक चित्र भी इस लेख के साथ प्रकाशित किया जाता है, जिसमें पाठक कवि के दर्शनों के सौभाग्य से वंचित न रहें। आपकी प्रतिभा चेहरे पर झलक रही है।

रघुपतिसहाय

तुलसीदास

त्रिशत वर्ष पहले श्रावण में जो नव नीरद निर्मल—
हुआ तिरोहित था, भारत को करके शुचि स्निग्धोज्ज्वल,
अब भी हृदय हरित है उसके सुकृत-सुधा-सिंचन से ;
हे सुकवे, कृतकृत्य हुए हम तव संस्कृति-कीर्तन से।

तुम्हें तीन सौ वर्ष हुए, यह इतिहासज्ञ बताते ;
अपने बीच किंतु तुमको हम वर्तमान हैं पाते।
आगे भी यदि इसी भूमि पर जन्म कहीं पावेंगे,
तो निश्चय है, हम अवश्य ही तुम्हें यहीं पावेंगे।
अंतर्बाह्य-प्रकाशक तुमने दिव्य दीप दिखलाया ;
तुमने हमें मुक्त होने का राम-मंत्र सिखलाया।
पर तुमको इस मृत्युलोक से कैसे मुक्त करें हम ?
इसी जगह तुम अमर हो गए, यह बंधन है दृढ़तम।
सरयू और जह्नुतनया, ये उसी जगह हैं बहती ;
कल-कल करके उसी भाव से मर्म-कथा-सी कहती।
इनके तट पर किंतु बहाई जो तुमने रस-धारा,
सब-का-सब हो गया देश यह प्लावित उसके द्वारा।
रम्य राम-चरितामृत से यह मानस तुमने भरकर,
किया पुनीत प्रेममय इसको पाप-ताप सब हरकर।
बार-बार पीते हैं, पर यह अतुल अमृत है कैसा ;
इसके लिये तृपातुर यह मन है जैसे-का-तैसा !
बसे हुए हैं रोम-रोम में प्रिय उपदेश तुम्हारे ;
सहचर, सखा और सद्गुरु भी हो तुम सदा हमारे।
सुख में गीत तुम्हारे गाकर सुख विशेष हम पाते ;
दुख में हमें सांत्वना देने वाक्य तुम्हारे आते।
तुम परिवार-मुक्त हो मानो संख्यातीत जनों के ;
तुमने कलि-कल्मष काटे हैं *अगणित मलिन मनों के*।
बैठ एक निर्जन कुटीर में कालिंदी के तट पर—
भक्ति-तत्त्व लिख गए असंख्यक मनुजों के हृत्पट पर।
हे निस्पृह, निज मातृभूमि का प्रेम तुम्हें भी भाया ;
अपने छोटे-से बस पुर को राजापुर कहलाया !
उसके दीन कुटीर-गृहों से हुई तुम्हें भी ममता ;
तब तो उन्हें बिना माँगे ही दी तीर्थों की समता।
ऐसे श्रेष्ठ शब्द-सुमनों को, देव, कहाँ हम पावें,
जिन्हें समर्पित कर हम तुमको अपनी प्रीति जनावें।
तुम्हें प्राप्त कर सीस हमारा है अति गर्वोन्नत यह,
भक्ति-भार से पद-कमलों में होता स्वयं प्रणत वह। *

सियारामशरण गुप्त

---

* देर से मिलने के कारण यह रचना श्रावण की संख्या में न प्रकाशित हो सकी, इसका हमें खेद है।—संपादक

मतिराम का एक छंद

"दूसरे की बात सुनि परत न, ऐसी जहाँ,
कोकिल-कपोतन की धुनि सरसाति है ;
छाई रहै, जहाँ द्रुम-बेलिन सों मिलि,
'मतिराम' अलि-कुल में अँध्यारी अधिकाति है।[1]
नखत-से फूलि रहे फूलन के पुंज, घन
कुंजन में होति जहाँ दिन हीं में राति है ;[2]
ता बन की बाट, कोऊ संग न सहेली साथ,[3]
कैसे तू अकेली दधि बेचन को जाति है ?"*

इस छंद में नायिका के प्रति नायक की उक्ति है। परंतु इसका जो सीधा-सादा अर्थ फ़ुटनोट में, नीचे, दिया हुआ है, वह यथेष्ट भाव-व्यंजक नहीं है। इसके शब्दों में कुछ गूढ़ अर्थ भी है। यह 'वचन-चतुर' नायक की उक्ति है। गोपिका से जिस वन में एकांत साक्षात् करना निश्चित हुआ है, उस वन का पूरा पता नायक

---

१. पाठांतर—
छाई रहै द्रुम बहु बेलिन सों मतिराम,
अलि-कुल कलित अँध्यारी अधिकाति है।

२. "नखत-से फूले हैं सु फूलनि के पुंज बन
कुंजनि में होति मनो दिन हूँ में राति है।"
नखत के स्थान में कई प्रतियों में तखत-से पाठ भी है। पर हमें वह अशुद्ध जान पड़ता है।

३. 'संग न सहेली साथ' के स्थान पर 'संग न सहेली कहि' पाठ भी है।

* जहाँ कोकिलाओं और कपोतों का कलरव इतना गूँजा करता है कि दूसरे की बात नहीं सुन पड़ती, जहाँ वृक्षों और बेलों के परस्पर सम्मिलन से होनेवाला अंधकार भारी भ्रमर-भीर के कारण और भी अधिक हो जाता है, जहाँ के घने कुंजों में दिन के समय ही रात-सी हो जाया करती है, और ढेर-के-ढेर फूल नखतों के समान फूले रहते हैं, उस वन की राह में बिना किसी साथी-सहेली के अकेली तू कैसे दही बेचने जाती है ?

ने वचन-चातुरी करके नायिका को बता दिया है। असल में गोपिका किसी वन के मार्ग में नहीं जा रही थी; पर नायक ने ऐसे ढंग से कहा, जैसे वह वहाँ जा ही रही है। इस प्रकार के कथन का अभिप्राय यह था कि यदि और कोई इस वचन-विलास को सुने, तो वह यही समझे कि गोपी भयानक वन की राह से जाने को है, और उसका शुभचिंतक नायक उसे उधर जाने को मना कर रहा है, पर चतुर नायिका समझ ले कि नायक मुझको अमुक निर्जन वन में मिलने का संकेत कर रहा है।

जहाँ पर दोनों प्रणयी छिपकर चुपके-चुपके सशंक रहकर मिलते हैं, उस स्थान को 'सहेट' कहते हैं। उपर्युक्त छंद में वचन-चतुर नायक ने नायिका को सहेट का पूरा पता दिया है।

पिंगल

वर्णिक-दंडकांतर्गत कुछ मुक्तक छंद हैं। इनमें गणों का विचार नहीं होता, अक्षरों की संख्या का ही परिमाण रहता है। ऐसे ही छंदों में 'घनाक्षरी'-छंद की भी गणना है। इसका दूसरा नाम मनहर या मनहरन भी है, और यही 'कवित्त' के नाम से अत्यंत प्रचलित और लोक-प्रिय हो रहा है। इसमें ३१ अक्षर होते हैं, और क्रमशः १६ तथा १५ अक्षरों के बाद विश्राम होता है। इसी विश्राम को 'यति' कहते हैं। मतिराम का ऊपर उद्धृत छंद ऐसी ही एक घनाक्षरी है।

रस

नायिका को देखकर नायक के चित्त में मनो-विकार उत्पन्न हुआ है, इस कारण 'नायिका' आलंबन विभाव है। नायिका के अंग-प्रत्यंग का दर्शन, उससे बातें कर सकने का अवसर और स्थान, ये उद्दीपन विभाव हैं। स्थायी भाव रति है। सहेट में मिलने के लिये नायक का चतुरता-पूर्ण कथन कायिक अनुभाव है। इस प्रकार विभाव, भाव और अनुभाव के समुचित समावेश से छंद में संयोग-शृंगार-रस का चमत्कार आ गया है। नायक रूप, यौवन, विद्या आदि गुणों से संपन्न है। उसकी वचन-चातुरी का फ़ोटो तो यह छंद ही है। इस प्रकार नायक वचन-चतुर है। वह उपपति है; क्योंकि अपनी विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्री को सहेट में बुलाकर उससे रमण करने की अभिलाषा रखता है। नायिका परकीया है; क्योंकि सहेट में उपपति से मिलने की इच्छा रखती है। वह प्रौढ़ा है; क्योंकि अकेले निर्जन स्थान में प्रियतम से मिलने के लिये जाने में उसे हिचकिचाहट नहीं है। अभिसार करके वह उपपति से मिलेगी, इसलिये अभिसारिका भी है। यद्यपि स्वयं उसने कुछ नहीं कहा, फिर भी वचन-चतुर नायक उसे इस योग्य समझता है कि वह उसके विदग्धता-पूर्ण वचन समझ लेगी, और इससे नायिका के वचन-विदग्धा, और क्रिया-विदग्धा भी, होने की बहुत कुछ संभावना है।

ध्वनि

वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न व्यंग्यार्थ से ही छंद का यथार्थ भाव व्यक्त होता है। "तू ऐसे निर्जन प्रदेश में दधि बेचने क्यों जाती है?"— इस वाक्य के वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ में कोई चमत्कार नहीं है; पर व्यंग्यार्थ मनोहर है। कहने का अभिप्राय यह है कि "तू ऐसे ही निर्जन प्रदेश में दधि बेचने के बहाने मुझसे मिलना"। यह व्यंग्यार्थ इष्ट होने से इसमें 'ध्वनि' सिद्ध हुई। इस ध्वनि को साहित्य-वेत्ता और प्रवीण पुरुष ही समझ सकते हैं, इस कारण यह गूढ़ ध्वनि है। फिर भी इसमें वाच्यार्थ का संपूर्ण परित्याग नहीं हुआ, बल्कि व्यंग्यार्थ द्वारा एक घटना-विशेष का बोध

हेनरीले हंट (James Leigh Hunt) ने अपने "कविता क्या है, इस प्रश्न का उत्तर" (An answer to the question what is poetry?)-शीर्षक गवेषणा-पूर्ण निबंध में सत्काव्य के लिये किन-किन बातों को परम आवश्यक माना है, यह पहले जान लीजिए। वह कहते हैं—"प्रत्येक कवि पद्य-रचयिता है, और प्रत्येक अच्छा कवि उत्कृष्ट पद्य-रचयिता है। सर्वोत्तम कवि वही है, जिसके पद्यों में सामर्थ्य (पद्य-सामंजस्य और अर्थ-व्यक्ति-गुण), माधुर्य, व्यर्थ पद का अभाव (भरती के पद न होना), रोचकता (अरुचि उत्पन्न करने-वाला चर्वित-चर्वण या पिष्ट-पेषण न होना), सहज पद्य-प्रवाह एवं पद्य और भाव की सामंजस्य-पूर्ण एकता हो।" *

उक्त काव्य-गुणों पर दृष्टि रखते हुए मतिराम के इस छंद की परीक्षा करनी होगी। तभी इस पद्य की बारीकियाँ समझ में आवेंगी। पहले सामर्थ्य को लीजिए। इस घनाक्षरी के दूसरे चरण में यति-भंग अवश्य है, पर शेष पद्य न तो कहीं से विकलांग है, और न अपेक्षित अक्षरों की कहीं पर अधिकता होने पाई है। पढ़ने में कहीं पर जिह्वा को कष्ट नहीं होता। अर्थ के लिये व्यंग्य का आश्रय अवश्य लिया गया है, पर पद्य का अर्थ-व्यंजक-गुण नष्ट नहीं हुआ है। अतः पद्य में 'सामर्थ्य'-गुण का सन्निवेश पूर्ण रूप से है। ब्रज-भाषा की माधुरी यों ही प्रसिद्ध है, फिर सूर, देव और मतिराम की रचनाओं का पीयूष-पान करके किसको संतोष न होगा? सुकुमार विचार, पद्य-संगठन, सरलता एवं शब्द-संगीत, सभी से संपन्न माधुर्य-गुण के दर्शन इस पद्य में सहज-सुलभ हो रहे हैं। सहज पद्य-प्रवाह के विषय में हमें यही कहना है कि मतिराम-जैसे सुकवि के काव्य में इस गुण का अभाव ढूँढ़ निकालना ही बड़ा कठिन काम है। फुटकर पद्यों में रोचकता नष्ट होने का भय कम रहता है। सहेट स्थान की निर्जनता का नग्न वर्णन वास्तव में अरोचक हो जाता; पर सुकवि मतिराम ने वहाँ कोकिल-कपोतों के कलरव, प्रकृति-प्रसन्नता-प्रदर्शक भ्रमरावली से परिपूर्ण और कुसुमित ललित लताओं से घिरे हुए वृक्षों और सघन कुंजों का उल्लेख करके मार्मिकता के साथ रोचकता-गुण का प्रस्फुटन किया है। अव्यर्थ-पदत्व एवं पद्य और भाव की सामंजस्य-पूर्ण एकता के संबध में कुछ विस्तार-पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है; क्योंकि इन गुणों में मतिराम-जी हिंदी के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों से भी आगे बढ़ गए हैं। मतिराम की वर्णन-चातुरी देखिए—प्रणयियुग्म के छिपकर एकांत-सम्मिलन के लिये वही स्थान श्रेष्ठ है, जो निर्जन हो, जहाँ यदि एकाएक कोई आ जाय, तो प्रेमियों के छिपने का अवसर हो, तथा संभाषण सुन लेने का भी भय न हो। यदि ऐसा स्थान प्रकृति-सौंदर्य से युक्त हो, तो संयोगियों के लिये उद्दीपन-सामग्री का भी प्रबंध ठीक समझना चाहिए। मतिराम ने अपनी घनाक्षरी में ऐसे ही सहेट का चित्र खींचा है। प्रत्येक चरण पर विचार कीजिए—

(१) "दूसरे की बात सुनि परत न, ऐसी जहाँ
कोकिल-कपोतन की धुनि सरसाति है।"

* *Every poet, then, is a versifier; every fine poet an excellent one; and he is the best whose verse exhibits the greatest amount of strength, sweetness, unsuperfluousness, variety, straightforwardness and oneness.*

Leigh Hunt's What is poetry?

कोकिल और कपोत-पक्षियों का कलरव इतना अधिक है कि दूसरे की बात नहीं सुनाई पड़ती, इस कथन के कई अभिप्राय हैं—

(अ) वह स्थान बिलकुल जन-शून्य है, इस कारण निर्भय होकर पक्षियों के झुंड खूब कलरव करते हैं।

(आ) यदि किसी कारण से कोई आदमी भूला-भटका उधर से निकल भी जायगा, तो प्रेमी और प्रणयिनी के प्रेम-संभाषण को कलरव की अधिकता के कारण सुन न सकेगा।

(इ) कोकिल और कपोत का कूजन उद्दीपन की सामग्री है, जो चित्त में एक विशेष रस का संचार करती है। कपोत-कूजन संयोग-दशा का स्मरण दिलाता है। अन्य पक्षियों के कूजन में इस भाव का साहचर्य न होने से केवल कोकिल-कपोत-कूजन का उल्लेख हुआ है। यह कूजन तीव्र होने पर भी प्रणयियुग्म के आनंद-वर्द्धन का हेतु है; उनको बुरा नहीं लगता। 'सरसाति' क्रिया इसी भाव को अभिव्यक्त करती है।

इस पद में एक शब्द भी व्यर्थ नहीं है। प्रयुक्त शब्दों का संगठन इतना सुंदर और सुदृढ़ है कि यदि इस चरण का एक भी शब्द उठाकर उसके स्थान में दूसरा शब्द रक्खा जाय, तो पद की रमणीयता को अवश्य आघात पहुँचेगा। 'अव्यर्थ-पदत्व'-गुण की यही खूबी है।

(२) "छाई रहै जहाँ द्रुम बेलिन सों मिलि
'मतिराम' अलि-कुल मैं अँध्यारी अधिकाति है।"

किसी बीहड़ स्थान पर भी, जहाँ दो-एक वृक्ष फुटकर उगे हों, कोकिल-कपोत-ध्वनि की संभावना है। प्रायः पर्वतों की दरारों, टूटे-फूटे खँडहरों एवं अन्य ऐसे ही सूनसान अरमणीय स्थानों में भी कबूतरों का निवास देखा जाता है। मतिराम का सहेट ऐसा नहीं है। पहला पद पढ़कर कदाचित् कोई ऊपर लिखे 'भयंकर' सहेट का अनुमान करे, अतः इस दूसरे पद के द्वारा कवि ने स्पष्ट कर दिया कि सहेट-स्थान में प्राकृतिक सुंदरता का अभाव भी नहीं है। लता-वेष्टित वृक्षों का उल्लेख संयोग और उद्दीपन का बोध कराता है। अलि-कुल के आधिक्य से अँधियारी का बढ़ना प्रणयियुग्म के लिये हितकारी है, एवं (पराग-मकरंद के आकर्षण से) भ्रमरों का सहेट में पाया जाना पहले ही से पुष्प-प्रचुरता का अनुमान दृढ़ कराता है। उद्दीपन के लिये यह भाव भी खूब उपयोगी है। इस पद में भी कोई शब्द व्यर्थ नहीं आया है। सब शब्द अपने-अपने स्थान पर स्थित भाव को जगा रहे हैं। 'मतिराम'-शब्द कवि का नाम होने से यदि अन्य प्रकार से भाव की सहायता न करता हो, तब भी क्षम्य है।

(३) "नखत-से फूलि रहैं फूलन के पुंज घन,
कुंजन मैं होति जहाँ दिन हूँ मैं राति है।"

जिन फूलों का उल्लेख कवि ने द्वितीय चरण में स्पष्ट रूप से नहीं किया था, वे ही इस चरण में नक्षत्रों के समान छिटक रहे हैं। पर नक्षत्र तो रात्रि में ही होते हैं। रात्रि की सुरम्यता, निस्तब्धता एवं आनंद-दायिनी शीतलता का भाव संयोगी नायक-नायिकाओं के लिये कैसा है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। दिन में इस चमत्कार का अभाव समझकर ही कुशल कवि ने सहेट-स्थान के कुंजों में रात्रि का अंधकार दिखला दिया, और उस अंधकार के ईषत् भय-प्रद भाव को प्रसून-पुंज के तारे छिटकाकर बिलकुल कम कर दिया है। सहेट-स्थान के तमोमय कुंजों में किसी के आ जाने पर भी प्रणयियुग्म को अपने तईं छिपा लेने का जैसे अवसर

है, वैसे ही लज्जा-भाव से प्रेरित अखिल काम-कला-केलि का उपयुक्त स्थान भी। उद्दीपन का इससे उत्कृष्ट और कौन-सा साधन होगा? इस प्रकार इस चरण का व्यवहृत कोई भी शब्द व्यर्थ नहीं है।

(४) "ता बन की बाट कोऊ संग न सहेली कहि
कैसे तू अकेली दधि बेचन को जाति है?"

उत्कृष्ट सहेट का पूरा पता देकर वचन-चतुर नायक का यह इशारा कि 'किसी सखी को अपने साथ न लाना' बड़ा ही विदग्धता-पूर्ण है। दधि बेचने के बहाने जाना कई भावों का द्योतन करता है। माता, पिता, गुरुजन इत्यादि किसी को भी गोपिका को दधि बेचने के लिये जाने देने में आपत्ति न होगी। संशय का भी कोई अवसर नहीं है। फिर दधि का यात्रा के समय रहना शुभ है। इससे कार्य-सिद्धि के विषय में उत्साह रहता है। यदि आवश्यकता हो, तो दधि भोजन के लिये भी बड़ी ही उपयुक्त वस्तु सिद्ध होगा। इस चरण में भी कोई शब्द व्यर्थ नहीं है।

भाव की सामंजस्य-पूर्ण एकता का निर्वाह छंद-भर में जिस कौशल से संगठित हुआ है, वह भी मनोरम है। 'सहेट में मिलन' प्रधान भाव है। सहेट के अपेक्षित सभी उत्तम गुणों का उल्लेख होना उपयुक्त ही है। किस प्रकार मिलें, इसका उत्तर भी कवि ने साफ़ दे दिया है कि अकेले मिलो। किस बहाने से मिलें, इसका भी उत्तर वैसा ही स्पष्ट है कि दही बेचने के बहाने मिलो। छंद के चारों पदों में क्रम-क्रम से इस भाव ने विकास पाया है, और अंतिम पद में तो वह सुंदरता की चरम सीमा पर पहुँच गया है।

कृष्णविहारी मिश्र

दारजिलिंग

उपक्रम

पुराने ज़माने में भी मुग़ल-बादशाह गरमी के महीनों में काश्मीर की सैर करने जाया करते थे। लेकिन भारत में जब से अँगरेज़ों का राज्य हुआ, तब से गरमी में पहाड़ों में घूमने जाने की चाल बहुत ज़ोर पकड़ने लगी; और अब तो भारत-सरकार के साथ ही क़रीब-क़रीब सभी प्रांतीय सरकार गरमी के ऋतु में पहाड़ों पर ही अपना अड्डा जमाती हैं। दारजिलिंग, मसूरी, शिमला, नैनीताल

इत्यादि पहाड़ों में पहले बड़े-बड़े जंगल थे, और जंगली जातियाँ रहती थीं। जब भारत में अँगरेज़ों का पूर्ण रूप से अधिकार जम गया, तब उन्होंने समतल भूमि की गरमी से बचने के लिये इन पहाड़ों पर नज़र डाली, और धीरे-धीरे जंगलों को साफ़ कर पहाड़ों को आबाद किया। केवल आबाद ही नहीं किया, किंतु उन जंगलों और पहाड़ों में तार, टेलीफ़ोन, सड़क आदि की स्थापना करके उन्हें सुंदर नगरों के रूप में बदल दिया। आज पाठकों के चित्त-विनोदार्थ दारजिलिंग-पहाड़ का कुछ वर्णन लिखते हैं। यह पहाड़ बंगाल-सरकार की ग्रीष्म-ऋतु की राजधानी है। भारत के पहाड़ी-नगरों में शिमले का प्रथम स्थान है। उसके बाद ही दारजिलिंग की गणना की जाती है।

यहाँ नहीं हैं। यह पहाड़ हिमालय के निकट होने के कारण कुछ नम है। इसलिये यहाँ सरदी से होनेवाली भिन्न-भिन्न बीमारियों से अवश्य बचना पड़ता है। हर साल अनेक प्रकार के रोगी यहाँ आते और स्वस्थ हो जाते हैं। उनके रहने के लिये यहाँ लॉविस जुबली सेनीटेरियम (Lowis Jubilee Sanitarium) है, जहाँ का प्रबंध बहुत अच्छा है। यह स्थान दारजिलिंग-रेलवे-स्टेशन के निकट है। दारजिलिंग का पहाड़ बहुत ही रमणीय और हरा-भरा है। हरियाली की ऐसी बहार शायद ही भारत के दूसरे पहाड़ों में देखने को मिले।

दारजिलिंग का संक्षिप्त इतिहास

पहले दारजिलिंग सिकिम-राज्य के अधीन था। सन्
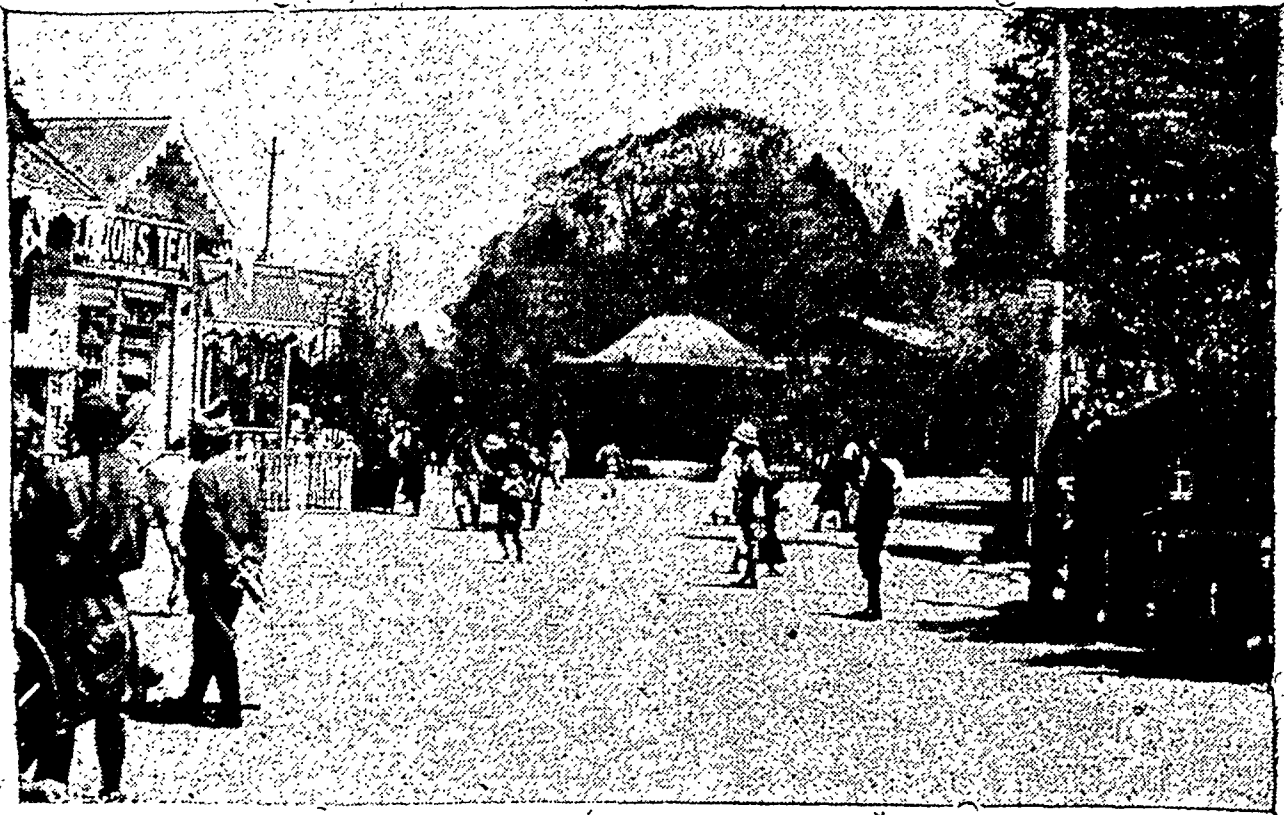
दारजिलिंग का चौराहा

भारतवर्ष के उत्तर-पूर्व के कोने में यह पहाड़ है। इसकी ऊँचाई समुद्र से लगभग ८,००० फ़ीट है। इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि यहाँ की आब-हवा बहुत अच्छी है; प्लेग, मलेरिया, कालाआज़ार वग़ैरह बीमारियाँ, जो बंगाल तथा भारत के अन्य प्रांतों में बहुत होती हैं,

१७८० में, नेपाल में, गोरखों का आधिपत्य हुआ। उस समय से सन् १८१४ तक बराबर गोरखे सिकिम पर आक्रमण करते रहे, और वर्तमान दारजिलिंग और सिकिम के एक बहुत बड़े भूमि-भाग पर उन लोगों ने अपना अधिकार जमा लिया। सन् १८१४ में अँगरेज़ों

और गोरखों में युद्ध हुआ, जिसमें गोरखे हारे, और सुगौली की संधि हुई। इसी संधि के अनुसार सिकिम की भूमि, जिस पर गोरखों ने अपना अधिकार जमा लिया था, कंपनी-सरकार ने सिकिम-राज्य को लौटा दी। उसी समय से सिकिम में अँगरेज़ों का आधिपत्य भी स्वीकार किया।

सन् १८२६ में जनरल लायड नाम के कंपनी के एक सैनिक अफ़सर कुछ बंदोबस्त करने सिकिम गए। उन्हें दारजिलिंग की भूमि बहुत पसंद आई। अँगरेज़ों के रहने के लिये तो दारजिलिंग की ठंडी आब-हवा अच्छी ही थी, लेकिन सैनिक तथा व्यापार की दृष्टि से भी दारजिलिंग पर अँगरेज़ों का अधिकार होना आवश्यक था। नेपाल और भूटान की सरहद पर दारजिलिंग बसा है। यहाँ एक मज़बूत छावनी बनाने से इन दोनों देशों पर दृष्टि रक्खी जा सकती है। तिब्बत का मार्ग भी दारजिलिंग से ही है। तिब्बत के व्यापार का यह एक केंद्र स्थान भी है। अतएव सन् १८३५ में कंपनी ने दारजिलिंग को सिकिम-सरकार से वापस ले लिया। सिकिम के राजा ने भेंट के रूप में यह प्रदेश ईस्ट इंडिया कंपनी को दे दिया। इस प्रकार सहज ही में कंपनी की इच्छा पूर्ण हो गई।

दारजिलिंग के निवासी

यहाँ के अधिकांश निवासी नेपाल के नेपाली हैं। लेपचा तथा भोटिया-जाति के लोग भी यहाँ रहते हैं। ये लोग नाटे, मज़बूत तथा परिश्रमी होते हैं। अविद्या के अंधकार में पड़े रहने तथा सभ्यता के अमृत-स्रोत से वंचित होने के कारण इन लोगों का नैतिक जीवन भ्रष्ट है। दारजिलिंग में पहले लेपचा तथा तिब्बत के भोटिया लोग रहते थे। दारजिलिंग नाम ही से मालूम होता है कि यह भोटियों का पवित्र स्थान है। भोटियों की भाषा में 'दोर्जे' वज्र को, और 'लिंग' स्थान को कहते हैं। इसी भोटियासंयुक्त शब्द 'दोर्जेलिंग' का अपभ्रंश रूप इस पहाड़ का वर्तमान नाम—दारजिलिंग—है। आजकल जो पहाड़ ऑबज़रवेटरी-हिल (Observatory Hill) के नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ दोर्जेलिंग-नामक भोटियों का गुंबा (भोटिया-भाषा में मठ को गुंबा कहते हैं) पहले था। अब तो वहाँ केवल स्थान की पूजा होती है, गुंबे

एक भोटिया-रमणी

का तो नाम-निशान भी नहीं है। जब से दारजिलिंग पर अँगरेज़ों का अधिकार हुआ, तब से नेपाल-राज्य के नेपाली लोग यहाँ आकर बसने लगे हैं। नेपाल एक पहाड़ी देश है, और वहाँ उर्वरा भूमि बहुत कम है। नेपाल की बढ़ती हुई जन-संख्या के लिये न तो वहाँ काफ़ी खेती करने के लिये भूमि ही है, और न मज़दूरी करके धन कमाने का उपाय ही; क्योंकि राज्य में उद्योग-धंधों की बड़ी कमी है। अतएव नेपाली लोग यत्र-तत्र जहाँ कहीं स्थान या रोज़गार पाते हैं, वहीं जाकर बस जाते हैं। दारजिलिंग की वर्तमान जन-संख्या में आधे से अधिक नेपाली ही हैं। सन् १८७२ की मनुष्य-गणना के अनुसार इस ज़िले की कुल जन-

जाति बड़ी प्राचीन जाति है। इन लोगों की भाषा का शब्द-भांडार बड़ा विस्तृत है। प्रत्येक बरसाती कीड़े, पौदे तथा फूल के पृथक्-पृथक् नाम इनकी भाषा में हैं। लेपचा जंगल में रहना पसंद करता है। वह प्रकृति देवी के सौंदर्य का बड़ा उपासक होता है। लेपचा-जाति का प्रधान व्यवसाय खेती है। इनकी रहन-सहन बहुत सरल है। ये लोग गुफाओं तथा पहाड़ों में, जहाँ मनुष्यों का गमनागमन कम होता है, रहना पसंद करते हैं। अपनी आवश्यकता-भर का कपड़ा ये स्वयं बना लेते हैं। ये पक्के शिकारी भी होते हैं। अतएव इनके लिये सदा जंगल में मंगल रहता है। शोक का विषय है कि आज-

सूर्यास्त के समय, जब अस्ताचल की लालिमा हिमालय के श्वेत हिम पर पड़ती है, उस समय की सुंदरता का वर्णन करना असाध्य है। सर जोज़फ़ हुकर ने अपनी किताब में हिमालय के सौंदर्य का वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए एक जगह यों लिखा है—"जब मैं इन हिमाच्छादित पहाड़ों को अपने सामने देखता हूँ, उस समय इनके रूप तथा रंग के जो ओजस्वी वर्णन मैंने पढ़े हैं, वे सब हिमालय के वास्तविक स्वरूप के वर्णन नहीं मालूम पड़ते। हिमालय के दर्शन करने पर जो भाव मेरे हृदय में उत्पन्न हुए हैं, उनका उन वर्णनों में आभास भी नहीं मिलता। अतएव मैं हिमालय का
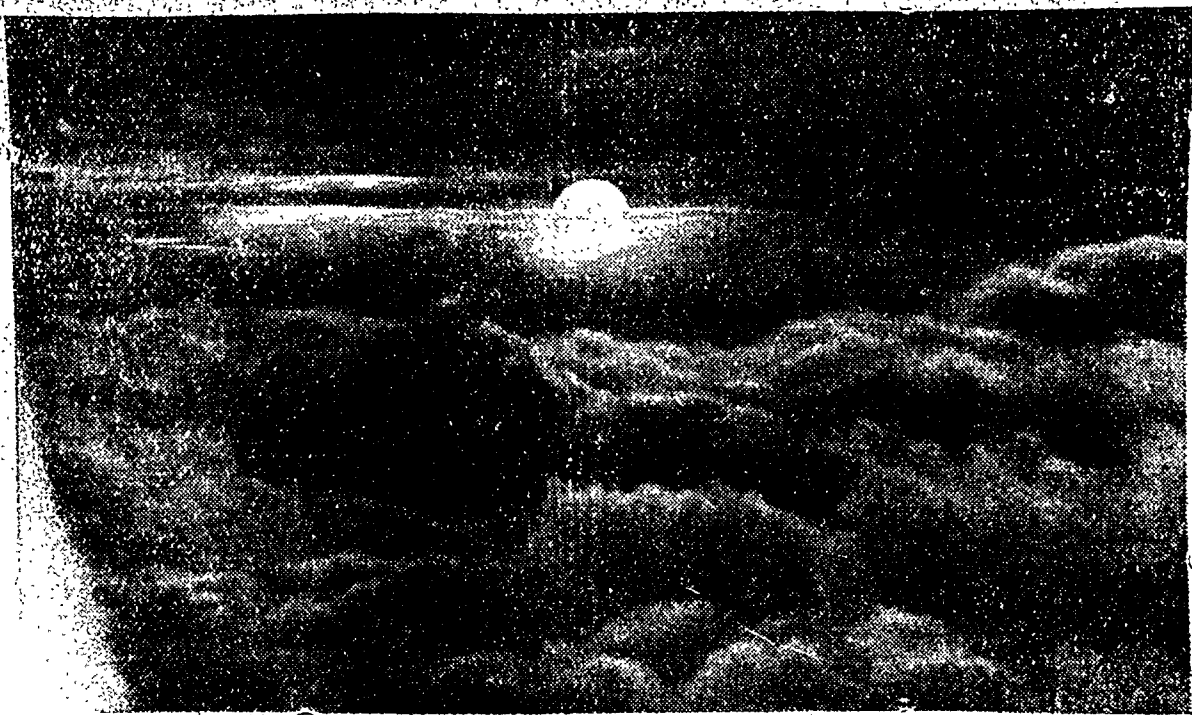
टाइगर-हिल से सूर्योदय का दृश्य

...ी संख्या घट रही है। इनकी भाषा ...ती जा रही है। एक जर्मन-विद्वान् ...षा का कोष तथा व्याकरण बनाया ...-बहुत साहित्य भी मिलता है। ... नहीं हुआ, और न होने की ... लेपचा लोग स्वयं ही अपनी ...सका उद्धार करेगा?

...सौंदर्य

...मालय के दिव्य दर्शन ...मय, तथा सायंकाल,

इस प्रकार का वर्णन लिखकर अपने पाठकों को कष्ट न दूँगा।" सचमुच सर हुकर का उपर्युक्त उद्गार अक्षरशः ठीक है। प्रातःकाल तथा सायंकाल की हिमालय की सुंदरता वर्णनातीत है। वह तो स्वयं देखने तथा देखकर अपने हृदय में आनंदानुभव करने की चीज़ है। सायंकालीन सूर्य की रक्ताभ किरणें जब हिमालय में पड़ती हैं, तो वह हलके लाल रंग के हीरे के पर्वत के समान चमकने लगता है। उस समय हृदय यह चाहता है कि यदि पंख होते, तो उस पहाड़ की चोटी पर जा बैठते। कभी तो हिमालय की ऐसी निराली शोभा देख-

भोटिया-बस्ती का गुंबा
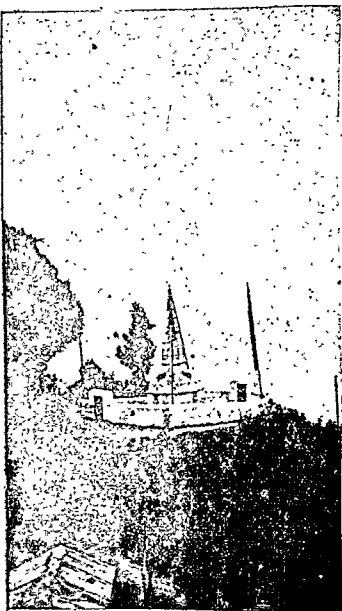
एक भोटिया लामा

इनके धर्म में बड़े महत्त्व का समझा जाता है। झंडों में अनेक मंत्र लिखे जाते हैं।

भोटिया-भाषा में वर्तमान साहित्य तो है ही नहीं। किंतु इसका प्राचीन साहित्य अत्यंत महत्त्व-पूर्ण है। भारतीय पुरातत्त्व का अध्ययन करनेवालों के लिये तो उसका ज्ञान नितांत आवश्यक है। बहुत-से प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों का, जो भारत में दुष्प्राप्य हैं, भोटिया-भाषा में अनुवाद मिलता है। इधर कुछ समय से भारतीय विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है, और इसका श्रेय कलकत्ता-विश्वविद्यालय तथा उसके प्राण-स्वरूप स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जी को है। स्वर्गीय आशु बाबू ने ही पहले-पहल भोटिया-भाषा को कलकत्ता-विश्वविद्यालय के पाठ्य क्रम में स्वीकार किया, और इस भाषा का व्याकरण, कोष तथा और कई ग्रंथ कलकत्ता-विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित करवाए। शायद आजकल वहाँ नियम-पूर्वक इस भाषा की शिक्षा देने की व्यवस्था भी है।

लेपचा

दार्जिलिंग के आदि-निवासी लेपचा लोग हैं। ये लोग अपने को रोंग कहते हैं। इनका लेपचा नाम, जो आजकल बहुत प्रसिद्ध है, नेपालियों का रक्खा हुआ है, जिसका अर्थ तुच्छ भाषा बोलनेवाला होता है। लेपचा-

जाति बड़ी प्राचीन जाति है। इन लोगों की भाषा का शब्द-भांडार बड़ा विस्तृत है। प्रत्येक बरसाती कीड़े, पौदे तथा फूल के पृथक्-पृथक् नाम इनकी भाषा में हैं। लेपचा जंगल में रहना पसंद करता है। वह प्रकृति देवी के सौंदर्य का बड़ा उपासक होता है। लेपचा-जाति का प्रधान व्यवसाय खेती है। इनकी रहन-सहन बहुत सरल है। ये लोग गुफाओं तथा पहाड़ों में, जहाँ मनुष्यों का गमनागमन कम होता है, रहना पसंद करते हैं। अपनी आवश्यकता-भर का कपड़ा ये स्वयं बना लेते हैं। ये पक्के शिकारी भी होते हैं। अतएव इनके लिये सदा जंगल में मंगल रहता है। शोक का विषय है कि आज-

टाइगर-हिल से सूर्योदय का दृश्य

कल लेपचा लोगों की संख्या घट रही है। इनकी भाषा भी दिन-दिन लुप्त होती जा रही है। एक जर्मन-विद्वान् ने अँगरेज़ी में इस भाषा का कोष तथा व्याकरण बनाया है। इस भाषा का थोड़ा-बहुत साहित्य भी मिलता है। लेकिन वह अभी प्रकाशित नहीं हुआ, और न होने की आशा ही है; क्योंकि जब लेपचा लोग स्वयं ही अपनी भाषा भूल रहे हैं, तो कौन उसका उद्धार करेगा?

प्राकृतिक सौंदर्य

दारजिलिंग से पर्वतराज हिमालय के दिव्य दर्शन होते हैं। प्रातःकाल, सूर्योदय के समय, तथा सायंकाल, सूर्यास्त के समय, जब अस्ताचल की लालिमा हिमालय के श्वेत हिम पर पड़ती है, उस समय की सुंदरता का वर्णन करना असाध्य है। सर जोज़फ़ हुकर ने अपनी किताब में हिमालय के सौंदर्य का वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए एक जगह यों लिखा है—"जब मैं इन हिमाच्छादित पहाड़ों को अपने सामने देखता हूँ, उस समय इनके रूप तथा रंग के जो ओजस्वी वर्णन मैंने पढ़े हैं, वे सब हिमालय के वास्तविक स्वरूप के वर्णन नहीं मालूम पड़ते। हिमालय के दर्शन करने पर जो भाव मेरे हृदय में उत्पन्न हुए हैं, उनका उन वर्णनों में आभास भी नहीं मिलता। अतएव मैं हिमालय का इस प्रकार का वर्णन लिखकर अपने पाठकों को कष्ट न दूँगा।" सचमुच सर हुकर का उपर्युक्त उद्गार अक्षरशः ठीक है। प्रातःकाल तथा सायंकाल की हिमालय की सुंदरता वर्णनातीत है। वह तो स्वयं देखने तथा देखकर अपने हृदय में आनंदानुभव करने की चीज़ है। सायंकालीन सूर्य की रक्ताभ किरणें जब हिमालय में पड़ती हैं, तो वह हलके लाल रंग के हीरे के पर्वत के समान चमकने लगता है। उस समय हृदय यह चाहता है कि यदि पंख होते, तो उस पहाड़ की चोटी पर जा बैठते। कभी तो हिमालय की ऐसी निराली शोभा देख-

टाइगर-हिल से हिमालय का दृश्य

हिमालय का किंचिनजंगा-शिखर

कर हृदय में गौरव का भाव उत्पन्न होता है ; और जिस भूमि में यह पर्वतराज है, उसमें जन्म देने के लिये परमात्मा को धन्यवाद देने की इच्छा होती है।

सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय हिमालय के दर्शन करने के लिये लोग आबज़रवेटरी-हिल के ऊपर चढ़ते हैं। वहाँ से किंचिनजंगा आदि हिमालय के बड़े शिखर दिखाई देते हैं। इस पहाड़ से हिमालय का सबसे ऊँचा शिखर गौरीशंकर, जिसे अँगरेज़ी में 'माउंट एवरेस्ट' कहते हैं, नहीं दिखाई देता। इसे देखने के लिये दारजिलिंग से तीन मील दक्षिण 'घूम'-नामक

स्थान में आकर 'टाइगर-हिल'-नामक पहाड़ पर—जो समुद्र से ८,००० फ़ीट ऊँचा है—चढ़ना होता है। वहाँ से संसार के सबसे ऊँचे शिखर की भव्य झाँकी दृष्टिगोचर होती है।

यों तो यहाँ राह चलते भी इधर-उधर पहाड़ों में हरियाली की बड़ी बहार देख पड़ती है, लेकिन बर्च हिल पार्क में तो प्रकृति देवी खुद खेलती हुई मालूम पड़ती है। इसे पार्क नहीं, जंगल समझना चाहिए। इस तरफ़ आदमियों की बस्ती कम है। अतएव यह भूमि, सभ्यता के आक्रमण के पूर्व दारजिलिंग की जो अवस्था थी, उसी रूप में अब तक है, और अपने लुप्तप्राय गौरव का कुछ परिचय देती है।

साप्ताहिक बाज़ार

हर रविवार को दारजिलिंग में एक बाज़ार लगता है, जिसमें साग-भाजी, चावल, दाल, बर्तन इत्यादि बिकते हैं। इस बाज़ार में लगभग सभी एशियाई जातियों के लोग दिखाई देते हैं। चीनी, भोटिया, नेपाली, मुसलमान, बिहारी, बंगाली, अँगरेज़ इत्यादि अनेक जातियों के लोगों को एक जगह शांति-पूर्वक लेन-देन करते देखकर हृदय में नाना प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं। इस दृश्य को देखकर यह बात अच्छी तरह मालूम होती है कि जाति-पाँति कुछ नहीं है, मनुष्य ही सबसे बड़ा है; और जाति-पाँति को लेकर कैसे मनुष्य परस्पर लड़ता-झगड़ता है, इस पर आश्चर्य होता है।

चाय की खेती

दारजिलिंग की चाय की खेती विख्यात है। यहाँ की चाय लोगों को बहुत पसंद है। यह अधिकतर विलायत को भेजी जाती है। इस ज़िले में चाय के बग़ीचे अधिक हैं। उनमें लगभग ४६,००० कुली काम करते हैं। प्रायः सभी कुली नेपाली हैं। इसमें कुछ संदेह नहीं कि चाय की खेती में बड़ा नफ़ा है। अभी उस दिन भारत-सचिव लॉर्ड ओलिवियर ने कहा था कि दारजिलिंग और आसाम के चाय के व्यापारी सौ में सौ या डेढ़ सौ डिवीडेंड (मुनाफ़ा) बाँटते हैं। यहाँ के चाय के कुलियों को साधारणतः ।=) रोज़ मिलते हैं। समस्त संसार में श्रमजीवियों की उन्नति के लिये नाना प्रकार की चेष्टाएँ की जा रही हैं। स्वयं श्रमजीवी भी संगठित होकर अपने लिये मनुष्योचित अधिकार माँग रहे हैं। मगर भारत में, विशेषकर दारजिलिंग में, तो यह बात बिलकुल नहीं है। इसलिये यह कोई नहीं कह सकता कि इतने वेतन से वे संतुष्ट हैं या नहीं; इससे उनका वह ख़र्च, जो मनुष्य के लिये आवश्यकीय है, चलता है या नहीं; और वे खा-पीकर इस वेतन से अपनी बुढ़ौती तथा बाल-बच्चों के लिये कुछ बचा सकते हैं या नहीं। इन चाय-बग़ीचों के कुलियों की वास्तविक अवस्था कैसी है, यह जानने के लिये न तो यहाँ एंड्रूज़ साहब-जैसे महात्मा ही कभी आते हैं, न खुद रोकर अपना दुखड़ा संसार को सुनाने की शक्ति ही इनमें है। चाय-बग़ीचों के मालिक साहब लोग तो इनकी अवस्था अच्छी बतलाते हैं, मगर वास्तव स्थिति क्या है, यह कुलियों का हृदय ही जानता होगा।

ईसाई-धर्म का प्रचार

यहाँ ईसाई-धर्म-प्रचार का कार्य बड़े संगठित रूप में किया जाता है। उनके इस कार्य का विरोध करने के लिये न तो यहाँ आर्य-समाज ही है, और न हिंदू-सभा। हाँ, मुसलमान अवश्य हैं, जो कभी-कभी शिकार फँसा ही लेते हैं। अतएव यहाँ पादरियों का कार्य निर्विघ्न चल रहा है। पादरियों को अपने कार्य में कितनी सफलता हुई है, यह निम्न-लिखित अंक देखने से विदित हो जायगा। इस ज़िले में, सन् १८८१ में, केवल ८४२ क्रिस्तान थे। सन् १८९१ में क्रिस्तानों की संख्या १,५०२ हुई। सन् १९०१ में ४,४६७ क्रिस्तान थे, सन् १९११ में बढ़कर ७,६८९ हुए, और सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार इनकी संख्या ८,०९८ हो गई है। दारजिलिंग में स्कॉच मिशन, रोमन कैथलिक मिशन, अमेरिकन मिशन इत्यादि कई ईसाई-संस्थाएँ काम करती हैं। इन्होंने समस्त ज़िले का आपस में बटवारा कर लिया है। एक मिशन के लोग दूसरे मिशन के कार्य-क्षेत्र में प्रचार करने कभी नहीं जाते। सब मिशनों में स्कॉच मिशन यहाँ बड़ी उन्नति पर है। इस मिशन का अपना बैंक भी है। उसका कार्य बड़ी योग्यता के साथ होता है। यहाँ हिंदुओं की कोई भी धार्मिक संस्था नहीं है; और संभव है, क्रिस्तानों की सफलता का प्रधान कारण यही हो।

शिक्षा

इन्हीं मिशनरियों ने ज़िले-भर में प्रारंभिक पाठशालाएँ खोल रक्खी हैं। कालिंपोंग में लड़कों और

लड़कियों के लिये अलग-अलग हाई स्कूल भी हैं। शिक्षकों को शिक्षा-कार्य सिखलाने के लिये मिशनरियों के ट्रेनिंग स्कूल भी हैं। स्थान-स्थान पर इन्होंने कन्या-पाठशालाएँ भी खोली हैं। युक्त-प्रांत की तरह बंगाल में कांशंस क्लॉज़ (धार्मिक स्वतंत्रता-संबंधी नियम) पास नहीं हुआ है। अतएव, इन मिशन स्कूलों को यद्यपि सरकार तथा म्युनिसिपलिटी से आर्थिक सहायता दी जाती है, तथापि इनमें बाइबिल की शिक्षा अनिवार्य है। जब कच्ची उमर में ही बालक-बालिकाओं के हृदय में इस धर्म का संस्कार पड़ जाता है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है, जो बड़े होकर ये लोग इसी धर्म को स्वीकार कर लेते हैं। दारजिलिंग में एक सरकारी हाई स्कूल भी है। इस हाई स्कूल में हिंदी, उर्दू, भोटिया, बँगला और नेपाली-भाषा पढ़ाने का प्रबंध है। बंगाल में इतनी देशी भाषाओं की शिक्षा देने का शायद ही किसी दूसरे स्कूल में प्रबंध हो। अँगरेज़ों के लड़के-लड़कियों को पढ़ाने के लिये यहाँ कई स्कूल और कॉलेज हैं। ब्राह्म-समाजियों का भी, कन्याओं को पढ़ाने के लिये, यहाँ एक हाई स्कूल है।

शासन

दारजिलिंग सुधार-स्कीम के बाहर है। जब भारत में सुधार जारी हुआ, तब यहाँ के लोगों ने उसके विरुद्ध अपना मत प्रकट किया। अतएव यह ज़िला रिफ़ार्म के बाहर रक्खा गया। अभी यहाँ केवल स्थानीय स्वराज मिला है। सुधार या रिफ़ार्म से अलग होने के कारण यहाँ का राजनीतिक वातावरण शांत है। यहाँ किसी प्रकार के उग्र आंदोलन की गति नहीं है। शहर की म्युनिसिपलिटी ही यहाँ की एक मुख्य राजनीतिक संस्था है। इसके सभापति स्थानीय डिप्टी कमिश्नर हैं, और उपसभापति रायसाहब हरिप्रसाद प्रधान एम्० ए०, बी० एल्०। आप एक सुयोग्य नेपाली सज्जन हैं। आपका अधिकांश समय समाज-सेवा में ही बीतता है। किसी को कुछ भी दुःख हो, अगर वह आपके पास आता और अपनी राम-कहानी सुनाता है, तो आप उसकी सहायता करते हैं। आप स्थानीय डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के भी उपसभापति हैं। यहाँ स्थानीय पहाड़ी जातियों की हिलमेन्स एसोसिएशन-नामक राजनीतिक संस्था है। उसके आप प्राण-स्वरूप हैं। मंत्री भी आप ही हैं। नव-स्थापित नेपाली-साहित्य-सम्मेलन के आप सभापति हैं। आप सिकिम-राज्य

रायसाहब हरिप्रसाद प्रधान एम्० ए०, बी० एल्०

मींदार तथा स्टेट कउंसिल के सदस्य हैं। इसी साल म्राट् के जन्मदिन के अवसर में आपको 'रायसाहब' की उपाधि मिली है।

यहाँ के दूसरे योग्य नागरिक सरदार बहादुर एस्० डब्ल्यू० लेडन ला हैं। आप भोटिया हैं, और इस समय स्थानापन्न रूप से इंडियन पुलीस सर्विस में काम करते हैं। आपने अपना जीवन एक सब-इंस्पेक्टर की हैसियत से आरंभ किया था। केवल अपनी योग्यता के बल पर आज आप इतने ऊँचे ओहदे पर पहुँच गए हैं। आप विशेष कार्य करने के लिये कई बार भारतीय राजनीतिक विभाग में भी बुलाए गए हैं। सन् १९०४ ई० में कर्नल यंग हसबेंड का जो मिशन तिब्बत गया था, उसके एक सदस्य आप भी थे। तिब्बत की राजनीति के आप बड़े भारी जानकार हैं। इस समय भारत-सरकार ने तिब्बत-सरकार की इच्छा के अनुसार वहाँ की सेना का सुधार करने के लिये आपको तिब्बत भेजा है। आपको वहाँ 'जस्सा' (जेनरल) की उपाधि मिली और आपका बड़ा आदर हुआ है। दलाई लामा के साथ आपने योरप की खूब सैर की है। आप विलायत की रॉयल जियोग्राफ़िकल सोसाइटी के सदस्य भी हैं। गत वर्ष बंगाल के भूतपूर्व गवर्नर लॉर्ड रोनल्डशे की लिखी लैंड ऑफ़ थंडरबोल्ट-नामक एक पुस्तक छपी थी। वह पुस्तक लॉर्ड रोनल्डशे ने आप ही को समर्पित की है। उसमें कई जगह आपके उत्कृष्ट कार्यों का उल्लेख हुआ है। आप बड़े धर्मात्मा हैं। अपनी जाति के लोगों के हितार्थ आपने कई संस्थाएँ स्थापित की हैं। कई गुंबे भी आपने अपने उद्योग से बनवाए हैं। तिब्बत से आप कब लौटेंगे, यह अभी मालूम नहीं है। अब मैं इस लेख को यहीं पर समाप्त करता हूँ।

जेनरल जस्सा सरदार बहादुर एस्० डब्ल्यू० लेडन ला

इस लेख में दारजिलिंग के दृश्यों के जो चित्र प्रकाशित किए जाते हैं, वे फ़ोटोग्राफ़र दारजिलिंग के एम्० सेन तथा एस्० सिंह नाम के सज्जनों की कृपा से प्राप्त हुए हैं। तदर्थ उन्हें धन्यवाद।

सूर्यविक्रम ज्ञवाली
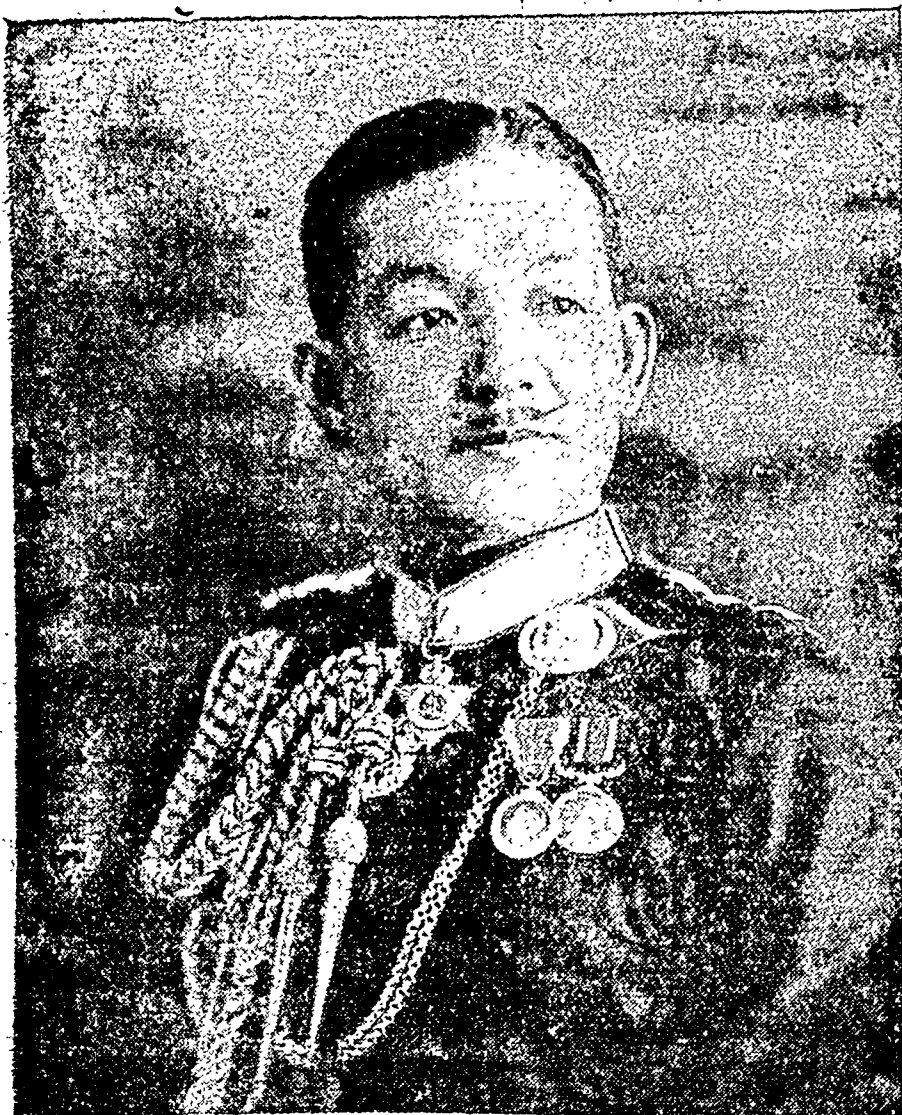
सेठजी का धर्म

[चित्रकार—श्रीयुत बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा]

साहब—सेठजी, आपकी उँगली में यह क्या कोई बीमारी हो गई है ?

साहब—किस रोज़गार में इतना रुपया कमाया, जो रुपए गिनने से आपकी उँगली ऐसी टेढ़ी हो गई है ?

साहब—तब तो आप हिंदू होकर अपने देश के भाइयों के साथ दग़ा की ?

साहब—मन-ही-मन It is only bepocracy हीपोक्रेसी (भंड) अच्छा बोलिए आपके लिये क्या काम करूँ ?

सेठजी—नहीं साहब, यह रुपए गिनने की बीमारी हो गई है।

सेठजी—जब घी का बाज़ार गर्म था, घी में चर्बी मिलाकर हमने धन कमा लिया।

सेठजी—इसमें दग़ा क्या है, हमारे भाइयों ने बहुत-सी धर्मशालाएँ भी तो बनवा दी हैं।

सेठजी—कंट्राक्ट (Contract) पर मौरस चीनी जावा-सुगर के लिये सही।

विकास-वाद

(१)

सृष्टि की कथा

आजकल विकास-वाद का बोलबाला है। विकास-शब्द हरएक की जिह्वा पर है। पढ़े और अपढ़, पंडित और गँवार, सभी लोग इस शब्द का प्रयोग करते हैं। कोई मनुष्य—वैज्ञानिकों और पंडितों की बात तो छोड़ दीजिए, साधारण मनुष्य भी—इसमें शंका करता हुआ नज़र नहीं आता। इसे लोग ध्रुव सत्य की तरह हृदयंगम करते नज़र आते हैं। ऐसी अवस्था में इस विषय पर कुछ लिखने के लिये किसी प्रकार की क्षमा-प्रार्थना की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। निस्संदेह किसी विद्वान् या वैज्ञानिक की क़लम से ही ऐसे महत्त्व-पूर्ण विषय की व्याख्या अच्छी प्रतीत होती है, और वर्तमान लेखक के लिये ऐसे विषयों को न छूना ही उत्तम है, तथापि इस लेखक का विश्वास है कि चाहे इन लेखों से विद्वानों का कोई उपकार न भी हो, परंतु साधारण लोगों को इनसे बहुत कुछ लाभ पहुँच सकता है; क्योंकि उसका विश्वास है कि ऐसे और भी लोग अवश्य होंगे, जो उसी की तरह इस विज्ञान के संबंध में जानने के लिये उत्सुक होंगे, और जिन्हें लेखक के प्रयत्न से बहुत कुछ लाभ पहुँच सकता है। दूसरी बात यह है कि इन पंक्तियों का लेखक स्वयं विशेषज्ञ नहीं है, इसलिये उसे साधारण व्यक्तियों की कठिनाइयाँ मालूम हैं; क्योंकि उसकी यह धारणा है कि स्वयं उसे इस शास्त्र के पढ़ने में जो कठिनाइयाँ होती थीं, वे अन्य साधारण मनुष्यों को भी अवश्य होती होंगी। विशेषज्ञों की बातों को समझने में अक्सर साधारण मनुष्यों को कठिनाई होती है; परंतु साधारण मनुष्यों की साधारण बातें सभी की समझ में आ जाती हैं।

इन पंक्तियों का लेखक साधारण विद्यार्थी है, विज्ञान का पंडित नहीं, अतएव वह जो कुछ लिख रहा है, वह केवल अपने अध्ययन और परिश्रम के ही बल पर। वर्णन का ढंग उसका अपना हो सकता है, परंतु कुल बातों का वर्णन पुस्तकों के ही आधार पर किया गया है क्योंकि साधारण व्यक्तियों को स्वयं निरीक्षण और ... की सुविधाएँ प्राप्त नहीं हो सकतीं। साधारण ... को विज्ञान की बहुत-सी बातें बिना परीक्षा के, ... के कहे अनुसार, मान लेनी पड़ती हैं। अतएव इस ... में पग-पग पर प्रमाण और युक्ति का ढूँढ़ना निरर्थक है क्योंकि यदि वे दी भी जायँ, तो साधारण लोगों ... समझ से बाहर होंगी। पुनः इन पंक्तियों में ... नूतन सिद्धांतों को पाने की आशा करना तथा ... वर्णित प्रत्येक बात को ध्रुव-रूप से सत्य अनुमान ... भी भूल ही है; क्योंकि विज्ञान की बातों में सदा वितर्क और वाद-विवाद का कुछ-न-कुछ समावेश ... ही करता है, और विज्ञान की दिन-दिन उन्नति करती है, जिसके कारण एक साधारण आदमी ... के प्रत्येक नूतन सिद्धांत का ज्ञान सदा कदापि नहीं ... सकता, और साधारण आदमी की विज्ञान-व्याख्या अप-टू-डेट न होना भी स्वाभाविक ही है।

इस छोटी-सी भूमिका के पश्चात् अब मैं अपने ... पर आता हूँ। आजकल अँगरेज़ी के Evolutio... का, सर्वसम्मति से, हिंदी-अनुवाद "विकास" किया ... है। विकास का अर्थ प्रकाश या खिलना है। कली ... विकास पुष्प में और बीज का विकास वृक्ष में होता है ... इस प्रकार देखने से यह शब्द अँगरेज़ी के "Evol...tion" -शब्द के भाव को शायद ठीक-ठीक व्यक्त कर... है। "Evolution" लैटिन-भाषा का शब्द है। ... अर्थ था खोलना। रोमन पुस्तकें आजकल के सदृश ... हुए छोटे-छोटे पृष्ठों पर लिखी हुई तथा जिल्द-बँधी होती थीं। वे चर्म-पट पर, अर्थात् पशुओं की शुद्ध साफ़ की हुई खाल पर, लिखी जातीं और बीच में ... या हाथी-दाँत की छड़ी देकर लपेटी जाती थीं।

इसे समझने के लिये हम लोग आजकल स्कूलों ... व्यवहृत दीवारों में लटकाए जानेवाले बड़े-बड़े नक़्शों याद करें। जिस प्रकार ये नक़्शे एक लकड़ी की छड़ी लपेटे हुए रहते हैं, उसी प्रकार प्राचीन रोम की पुस्तकें लपेटी जातीं और ज़रूरत के वक़्त इन नक़्शों ही के ... खोली भी जाती थीं। पढ़ने के लिये इनके खोलने ... ही "Evolution" कहते थे। इसके पश्चात् और ... अर्थों में व्यवहृत होता हुआ यह शब्द आज "...

के अर्थ में व्यवहृत होता है। अर्थात् रहस्यमयी प्रकृति की लपेटी हुई पुस्तक के खोलने का नाम विकास-वाद है। तात्पर्य यह है, बीज-रूप से किसी वस्तु के विकसित होने तथा एक अवस्था से किसी दूसरी अवस्था में परिणत होने को—अर्थात् उसकी उत्क्रांति या विवर्तन को—विकास या Evolution कहते हैं। इसी अर्थ में यह कहा जाता है कि एक साधारण पशुपालक जाति से सभ्य जातियों का—साधारण जीवाणुओं से ही उन्नत जीवधारियों का—विकास हुआ है।

इस शब्द के अर्थ की अधिक व्याख्या करने की अब कोई ज़रूरत नहीं है। दूसरा प्रश्न यह है कि विकास-सिद्धांत के इतने प्राबल्य, इसके इतने महत्त्व, के लाभ करने का क्या कारण है? इसके उत्तर में इतना ही कहना काफ़ी होगा कि अकेले इस एक सिद्धांत के द्वारा विश्व की जितनी समस्याएँ हल होती हैं, उतनी अन्य किसी सिद्धांत के द्वारा हल होती हुई नज़र नहीं आतीं। प्राकृतिक रहस्य के परदे के हटाने में जितना विकास-शास्त्र समर्थ हो सका है, उतना अब तक और कोई विज्ञान समर्थ नहीं हो सका। इसीलिये अक्सर वैज्ञानिक विकास-शास्त्र की तुलना तिमिरनाशक, प्रहेलिकामय वायु-मंडल को उद्भासित करनेवाले सूर्य के साथ करते हैं। सचमुच यह शास्त्र ज्ञानाकाश का सूर्य है। अकेले इसी सिद्धांत के द्वारा हज़ारों शंकाओं का समाधान हो जाता है।

फिर वास्तव में यह सिद्धांत इतना सहज और सुबोध है कि हमें सचमुच यह आश्चर्य होने लगता है कि इतने दिनों तक यह लोगों की समझ में क्यों नहीं आ सका। ज़रा ग़ौर करके देखने से ही यह विदित होता है कि विकास का काम हर वक़्त जारी है। हमारे चारों ओर विकास का काम चल रहा है। प्रकृति परिवर्तन-शील है। नियम, क़ानून, रस्म-रवाज, रीति-नीति, समाज-शासन, मज़हब-धर्म, वस्त्र-परिच्छद, रहन-सहन इत्यादि सभी बातें विकसित हो रही हैं। अधिक प्राचीन युग-युगांतर के इतिहास को छोड़कर यदि हम कुछ वर्षों के ही इतिहास पर नज़र डालें, तो भी हमें विकास और परिवर्तन का क्रम निरंतर चलता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

यह सिद्धांत पूर्णतः नया नहीं है। अत्यंत प्राचीन समय में भी कुछ दार्शनिकों ने इसकी किंचित् व्याख्या की थी, यद्यपि यह उस समय कल्पना या आनुमानिक सिद्धांत-मात्र समझा जाता था, और इसे वैज्ञानिक सिद्धांत का महत्त्व न प्राप्त हुआ था। हमारे अपने यहाँ के वेदांत आदि दर्शनों की, जो सृष्टि और स्रष्टा में कोई भेद नहीं मानते, समस्त विश्व के अंतर्गत एक ही मूल-भूत परब्रह्म तथा एक ब्रह्म से ही अनेक की उत्पत्ति में विश्वास करते हैं, और इसलिये स्पष्ट ही विकास-वादी हैं—तो बात ही करना व्यर्थ है, योरप के भी कुछ प्राचीन विद्वानों को विकास-वाद का आभास मिल चुका था। यह भी निःसंकोच कहा जा सकता है कि यदि बीच में विश्वास-प्रधान तथा हठवादितामय क्रिस्तानी मज़हब का साम्राज्य उपस्थित न हुआ होता, तो यह शास्त्र कब का प्रौढ़ावस्था को पहुँच गया होता, और इसने पूर्ण "विकास" प्राप्त कर लिया होता। ग्रीक और रोमन-विचारकों का ध्यान बहुकाल पूर्व इस शास्त्र की ओर आकृष्ट हुआ था। परंतु वैज्ञानिकों में राहु-रूप क्रिस्तानी मज़हब के प्रकोप ने ज्ञान-ज्योति को तनिक भी न फैलने दिया, और समस्त योरप में अंधकार छा गया। विकास-वादी गार्डानो ब्रूनो के समान कितनी ही वीर आत्माएँ हिंस्र और पाशविक मज़हब के उदरस्थ हुईं। कितने ही वैज्ञानिक बलि-वेदी पर न्योछावर हो गए। परंतु पुण्यात्माओं की तपस्या और मनीषियों का बलि-प्रदान निष्फल न गया। धीरे-धीरे ज्ञान का प्रसार होता गया, और मज़हब को हारकर चुप हो बैठना पड़ा।

विकास-वाद के समर्थन में सभी ओर से प्रमाण मिलने लगे। विशेषकर भू-गर्भ-शास्त्र के द्वारा इस शास्त्र का बहुत कुछ पुष्टीकरण हुआ। पृथ्वी ने अपने हृदय के मध्य सुरक्षित प्राचीन इतिहास को—पूर्वकालीन वनस्पति और जीवों इत्यादि के नमूने को—वैज्ञानिकों की आँखों के सम्मुख समुपस्थित किया। इसके फल-स्वरूप सन् १८३६ में इस सिद्धांत ने डार्विन के हृदय में घर कर लिया। लेकिन प्रमाणों को एकत्र करने और सिद्धांत के पूर्ण समर्थन के तैयार करने में डार्विन को २० वर्ष लगे, और उसकी पुस्तक The Origin of Species सन् १८५९ में प्रकाशित हुई।

बस, अब क्या था? मानो संसार को प्रकृति के अवरुद्ध भांडागार की कुंजी मिल गई! विद्वद्गण प्रकृति के प्रत्येक विभाग में इस सिद्धांत से काम लेने लगे, और देख पड़ा कि विकास का सिद्धांत प्रत्येक स्थान पर सत्य

निकलता है। जीवन एक वृक्ष है, जिसकी हज़ारों शाखाएँ एक ही तने से निकलकर दिग्-दिगंत तक फैली हुई हैं। प्रकृति के बीच देख पड़नेवाली सभी वस्तुओं का विकास हुआ है। दूर-दूर के सूर्यों—क्योंकि ज्योतिष-शास्त्र ने हमारे इस सूर्य से हज़ारगुने बड़े अनेक सूर्यों का पता लगाया है!—से लेकर हमारी धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं तक, रत्नाकर के अगाध जल-राशि तथा खान के हीरों से लेकर आज के असंतोष और आंदोलन तथा भविष्य की आशा और आदर्श तक, सभी वस्तुओं का विकास हुआ है। सभी की जड़ अनंत काल के अनंत गर्भ में है।

संक्षेप में, विकास-शास्त्र का सिद्धांत और इतिहास यही है; और यह निर्विवाद है। विकास के सिद्धांत में कोई वैज्ञानिक शंका नहीं करता। इस संबंध में सभी एकमत हैं। विकास का साधन क्या है, अर्थात् विकास किस प्रकार होता है, केवल इसी प्रश्न के उत्तर में विभिन्नता है। विकास किस ज़रिए से, किस प्रकार कौन-से कारणों के द्वारा होता है, इसी विषय में मत-भेद है। चर्म-पट पर लिखी गई पुस्तक का खोला जाना सर्वमान्य है; परंतु वह कौन-सा हाथ (कारण) है, जो इस पुस्तक को खोलता है, इतनी ही विवादास्पद बात है।

इस विषय में वैज्ञानिक जगत् के बीच कितने ही सिद्धांत प्रचलित हैं। डार्विन का सिद्धांत "जीवन-संग्राम" और "प्राकृतिक निर्वाचन" के सिद्धांत के नाम से विख्यात है। अध्ययन और परीक्षा के द्वारा डार्विन ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रकृति ज़रूरत से ज़्यादह प्राणियों की सृष्टि करती है, अर्थात् वह इतने जीवों को जन्म देती है, जिनका पालन करना उसके लिये असंभव है—वह इतने जीवों को संसार में लाती है, जिनको आहार देना उसकी सामर्थ्य के बाहर है। इसलिये संसार में समग्र वनस्पतियों से लेकर प्राणियों तक में—पशु-संसार से लेकर मानव-संसार तक में—असभ्य-समाज से लेकर सभ्य-समाज तक में—जीवन-संग्राम जारी है। उसमें शिष्ट तथा योग्य जीव और प्राणी तो बचते हैं, परंतु दुर्बल, अशिष्ट और अयोग्य जीव मृत्यु को प्राप्त होते हैं। संक्षेप में, इस सिद्धांत का यही अर्थ है; और इसे समझने में हमें तनिक भी कठिनाई नहीं हो सकती। कारण, इस भीषण जीवन-संग्राम—कीड़ों-मकोड़ों से लेकर मनुष्यों तक में रोटी के लिये लड़ाई—को हम नित्य अपनी आँखों से देखते हैं। वृक्ष और वनस्पति भी प्रकाश और खाद्य पदार्थों के लिये लड़ते हैं। पशुओं की तो बात ही क्या, धन, आराम, रोज़गार-धंधे तथा नौकरी के लिये मनुष्यों में भी सदा द्वंद्व चलता रहता है। यद्यपि मनुष्य पशुओं की तरह दाँतों और नखों से नहीं लड़ता—और नहीं क्यों, लाखों की संख्या में मनुष्य एक बार युद्ध-क्षेत्र में एकत्र होकर रण-चंडी की रक्त-पिपासा को शांत करता है!—तथापि मनुष्यों के द्वंद्व का भी नतीजा कम बुरा नहीं होता। पशुओं के युद्ध के सदृश इस युद्ध में भी विजय शिष्टों और योग्यों की ही होती है। इसी प्रकार समष्टि-रूप से भी मानव-जाति की भिन्न-भिन्न उपजातियों में युद्ध और द्वंद्व सदा चलता रहता है, और निर्बल तथा अयोग्य जातियाँ मृत्यु को प्राप्त होती हैं।

डार्विन के सिद्धांत के अतिरिक्त इस विषय में और भी सिद्धांत प्रचलित हैं। प्रोफ़ेसर वीज़मैन का कथन है कि प्राणियों की उत्क्रांति या विकास में परिस्थिति की अपेक्षा परंपरा का ही अधिक प्रभाव पड़ता है, और परंपरा का यह प्रभाव उसी समय आरंभ हो जाता है, जब प्राणी वीर्यावस्था में ही रहते हैं। अर्थात् विकास शीघ्र ही, दो-एक पीढ़ी में ही, नहीं होता, बल्कि धीरे-धीरे, बहुत काल के पश्चात्—प्रत्येक पीढ़ी में अत्यंत सूक्ष्म परिवर्तन होते-होते—होता है। शायद वैज्ञानिक जगत् में अब इस सिद्धांत को पूर्ववत् महत्त्व नहीं प्राप्त है। परंपरा के ही संबंध में मेंडल का सिद्धांत भी किंचित् आदर की दृष्टि से देखा जाता है। मेंडल का कथन है कि केवल बड़े-बड़े परिवर्तन ही आगंतुक पीढ़ियों में आरोपित होते हैं, और इन्हीं के कारण भिन्न-भिन्न और नूतन उपजातियों की सृष्टि होती है; पिता-माता के छोटे-छोटे परिवर्तनों का आगंतुक पीढ़ियों में कुछ असर नहीं होता। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि वैज्ञानिक विवेचन इस लेख का उद्देश नहीं है। इसलिये इन सिद्धांतों के सत्यासत्य पर कोई विचार न करके हम संक्षेप में और रोचक ढंग से सृष्टि की कथा आरंभ करते हैं। पहले हम अपने सूर्य-संप्रदाय की उत्पत्ति को लेते हैं। इसके पीछे क्रमशः प्राणियों का इतिहास वर्णन करेंगे।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि अनंत आकाश में अनेकों ब्रह्मांड और प्रत्येक ब्रह्मांड में अगणित सूर्य-संप्रदाय हैं। अँगरेज़ी ज्योतिष-शास्त्र में "Universe"-शब्द एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। हम लोग साधारणतः समझते हैं कि सभी वस्तुओं के योग का नाम Universe है। परंतु "Universe" का वैज्ञानिक अर्थ दूसरा है। ज्योतिषी लोग तारों के उस संप्रदाय को "Universe" कहते हैं, जिनका, आकर्षण-शक्ति के द्वारा, परस्पर प्रभाव पड़ता हो। हम यहाँ पर ब्रह्मांड-शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में करते हैं, और विश्व-शब्द को व्यापक अर्थ देते हैं। अर्थात् एक ब्रह्मांड क्या, सभी ब्रह्मांडों में पाए जानेवाले पदार्थों, वस्तुओं, प्राणियों इत्यादि के योग को हम विश्व कहते हैं। हमारी पृथ्वी जिस ब्रह्मांड में अवस्थित है, उसमें प्रायः दो अरब से अधिक सूर्य हैं। निस्संदेह हमारे सूर्य के सदृश इनमें से बहुतों के साथ कितने ग्रह और उपग्रह भी आबद्ध हैं। यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि बहुत-से ग्रहों और उपग्रहों पर बहुत-से सेंद्रिय, बुद्धिमान्, सभ्य और उन्नत जीव भी निवास करते होंगे। अनंत के सामने मनुष्य एक अत्यंत ही क्षुद्र जीव है, और अनंत अंतरिक्ष—आकाश—में उसकी पृथ्वी को कौन-सा स्थान और महत्त्व प्राप्त है? ठीक वही, जो दीवार पर लटकाए जानेवाले संसार के नक़्शे में स्याही के एक बिंदु को प्राप्त हो सकता है!

इसी प्रकार जब हम ब्रह्मांड में अपने सूर्य-संप्रदाय के और विश्व में अपने ब्रह्मांड के स्थान और महत्त्व का पता लगाने की चेष्टा करने लगते हैं, तो हमें अनंत के सामने सिर झुकाकर अवाक् होना पड़ता है। प्रोफ़ेसर पिकरिंग नाम के एक ज्योतिषी ने अनुमान करके स्थिर किया है कि "राइजल" (Rigel) नाम का नक्षत्र हमारे सूर्य से सत्तासी हज़ारगुना अधिक तेज और प्रकाश विकीर्ण करता है। केनोपस नाम के नक्षत्र में हमारे सूर्य से २०,०००गुना अधिक तेज विद्यमान है। शायद हमारे पुराणों के कर्ता इस तथ्य से पूर्णतः परिचित थे। तभी तो उन्होंने राम और कृष्ण के मुख में असंख्य सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि देखकर कौशल्या और यशोदा के चकित होने की बात लिखी है! शायद इसी बात के आधार पर हमारे पुराणों में यह कथा लिखी गई है, जिसके अनुसार एक समय हमारे ब्रह्मांड के ब्रह्मा के हृदय में गर्व अंकुरित होने पर उनके उस गर्व को चूर्ण करने के लिये उन्हें लाखों और करोड़ों ब्रह्मांडों का दृश्य दिखलाया गया था! अतएव विश्व कितना बड़ा है, जगत् कितने हैं, सृष्टि कितनी बड़ी है, इसका पता लगाना मानव की सामर्थ्य के बाहर है। इस अनंत विश्व में ग्रहों और उपग्रहों की कौन कहे, कितने ही सूर्य-संप्रदाय नित्य विनष्ट हुआ करते हैं, और कितनों ही की नित्य सृष्टि हुआ करती है! प्रलय और सृष्टि मानो एक खेल है!

अनंत आकाश में भिन्न-भिन्न रंग के असंख्यों सूर्यों, नक्षत्रों और ग्रहों इत्यादि पर विचार-पूर्वक दृष्टिपात करने के साथ ही हमें विकास-सिद्धांत का आभास मिलने लगता है। पता लगता है कि जो नियम हमारे इस संसार में काम कर रहा है, समस्त विश्व में भी उसी का साम्राज्य है। नक्षत्रों के भिन्न-भिन्न रंगों के अनेक कारण हो सकते हैं; परंतु साधारणतः इसका मुख्य कारण उनका ताप-परिमाण है। कुछ नक्षत्र नीले हैं, कुछ उजले हैं, कुछ पीले (हमारे सूर्य के सदृश) और कुछ लाल वर्ण के हैं। तात्पर्य स्पष्ट ही है। मानो धातुओं के बड़े-बड़े पिंड ठंडे हो रहे हैं। ज्योतिषियों ने आज एक ऐसे यंत्र का आविष्कार किया है, जिसके द्वारा अचानक हमारे हृदय में उठनेवाला यह विचार समर्थित होता है। इस यंत्र का नाम स्पेक्ट्रोस्कोप है। इसके द्वारा आकाशस्थ पिंडों की बनावट तथा उनके स्वभाव का पता पूर्ण रूप से लग जाता है। मानो हमारे अध्ययन के लिये आकाश के पिंड हमारी प्रयोगशाला में आकर उपस्थित हो जाते हैं। यदि हमें इन नक्षत्रों को भट्ठी में डालकर देखने तथा निकट से निरीक्षण करने का सुअवसर प्राप्त होता, तो उस समय हमारे निष्कर्ष जितने सत्य और असंदिग्ध होते, शायद इस यंत्र द्वारा अध्ययन करके निकाले गए निष्कर्ष भी उतने ही सत्य और निर्विवाद हैं। इसके द्वारा हम नक्षत्रों के भूतकालीन इतिहास को उसी प्रकार पढ़ सकते हैं, जिस प्रकार पुस्तकों में लिखे हुए मज़मून को। अध्ययन की रीति इतनी सरल है कि हम साधारण अवैज्ञानिक मनुष्यों की भी समझ में वह सुगमता के साथ आ जाती है। भिन्न-भिन्न प्रकार के द्रव्यों और पदार्थों से भिन्न-भिन्न

प्रकार का प्रकाश होता है। इसी बात के सहारे वैज्ञानिकों ने नक्षत्रों के प्रकाश का अध्ययन करके यह स्थिर किया है कि नक्षत्रों की बनावट भी ठीक हमारे संसार की ही तरह है, तथा वे भी उन्हीं पदार्थों से बने हुए हैं, जिन पदार्थों से हमारा संसार। "स्पेक्ट्रोस्कोप" (रश्मि-विश्लेषक यंत्र) के द्वारा हम किसी किरण-केंद्र से आनेवाली रश्मियों की परीक्षा कर सकते हैं। प्रत्येक तत्त्व की एक ख़ास तरह की रोशनी होती है। यही बात हमारी परीक्षा का आधार है। इस यंत्र के द्वारा सम्मिलित द्रव्यों की रोशनी का विश्लेषण भी किया जाता है। आकाशस्थ पिंडों के प्रकाश के अध्ययन से यह साफ़ मालूम होता है कि वे गैसों से ढके हुए धातुओं के गोल हैं। इनका ताप-परिमाण ३०,००० सेंटीग्रेड तक पहुँचता है। इन पिंडों के निरीक्षण-मात्र से हमें जो अनुमान हुआ था, स्पेक्ट्रोस्कोप भी हमारी उस धारणा का समर्थन करता है। हमें पता चलता है कि ये आकाशस्थ पिंड धीरे-धीरे ठंडे हो रहे हैं। जिनका ताप-परिमाण सबसे अधिक है, वे नील-श्वेत रंग के हैं। ताप-परिमाण घटने पर ये आकाशस्थ पिंड क्रमशः श्वेत, पीत और लाल रंगों को धारण करते हैं। सभी की आयु समान नहीं है। इसीलिये इनके रंगों में इतना अंतर है। कोई अभी एकदम शैशवावस्था में है, कोई जवान है, तथा कोई (हमारे सूर्य की तरह) अधेड़ हो गया है। ज्योतिषी लोग कहते हैं कि कितने ही नक्षत्र न-जाने कब मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं।

परंतु हमें इस रोचक प्रसंगांतर को यहाँ पर बंद करना पड़ता है। जहाँ तक पता चला है, वहाँ तक अब हम अपने सूर्य-संप्रदाय के भूतकालीन जीवन का वर्णन शुरू करते हैं।

आपने कोई बड़ी आँधी उठने पर समस्त वायु-मंडल को गर्द से ढक जाते, तथा हवा कम होने पर आकाश को धीरे-धीरे साफ़ होते, और ज़मीन पर गर्द जमा होते अवश्य देखा होगा। आपको रात के समय अपना कमरा बंद करके कहीं जाने का मौक़ा भी अवश्य हुआ होगा। फिर सुबह लौटकर आपने कमरे में मेज़, फ़र्श और कुर्सियों वग़ैरह पर गर्द की एक बारीक तह जमी हुई अवश्य देखी होगी। इसका क्या कारण है? पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति से खिंचकर गर्द ज़मीन की सतह पर आ गई, या पृथ्वी ने गर्द को खींच लिया? इसी से आप वहाँ का अनुमान कीजिए, जहाँ अनंत आकाश में, ग्रह-नक्षत्रों से करोड़ों और अरबों मील दूर—२ कि जहाँ किसी ग्रह या नक्षत्र की आकर्षण-श[illegible] कोई प्रभाव न पड़ सके—करोड़ों-अरबों मील ल[illegible] इसी तरह की एक बदली फैली हो, और गर्द [illegible] बदली में कणों के स्वरूप में सभी प्रकार के [illegible] गैस विद्यमान हों। अब आप स्वयं अनुमान कर [illegible] हैं कि वायु-मंडल से पृथ्वी की सतह पर या [illegible] की फ़र्श पर गर्द जमनेवाली बात यहाँ भी [illegible] होगी। अर्थात् इस विराट् बदली के आपेक्षिक [illegible] अपेक्षाकृत कम सघन भागों से कणों को खींचने [illegible] नतीजा क्या होगा, सो स्पष्ट ही है। इस आकर्षण के होने के कारण यह विराट् बदली कई टुकड़ों [illegible] जायगी, और इसके द्वारा कई स्थूल पिंडों [illegible] होगी; क्योंकि यह स्पष्ट ही है कि इतनी बड़ी [illegible] में पदार्थ के कणों की घनता सर्वत्र एक तरह [illegible] होगी, बल्कि कुछ स्थानों पर यह बदली और [illegible] अपेक्षा अधिक सघन होगी, और उन सभी सघन [illegible] में आकर्षण के नियम अपना काम अवश्य आ[illegible] देंगे। अतएव इस बदली में जितने सघन स्थान [illegible] उतने ही इसके सघन पिंड बनेंगे। यदि हम अनुमान कर लें कि इस बदली का घनत्व सर्वत्र [illegible] तरह का है, अर्थात् कणों का वितरण समान हुआ है, या यों कहें कि दूसरे कणों से प्रत्येक [illegible] फ़ासला बिलकुल समान है, जिस वजह से [illegible] क्रिया एकदम बंद है, शुरू ही नहीं हो सकती, हमें मानना पड़ेगा कि शीघ्र ही इस तुल्यावस्था [illegible] उपस्थित होगा, जिसके कारण आकर्षण-क्रिया [illegible] जायगी। हम लोगों में से सभी ने उल्का-पात [illegible] का टूटना—ज़रूर देखा होगा। प्रत्येक रात्रि [illegible] असं[illegible] तारों को टूटते, अत्यंत वेग से वायु-[illegible] जाते एवं घर्षण से जलते देखते हैं। ज्यो[illegible] कहना है कि ये उल्काएँ भी धातुओं के टुकड़े [illegible] समस्त आकाश इनसे उसी प्रकार भरा हुआ है [illegible] प्रकार मछलियों से समुद्र। अब हमें यह [illegible] तनिक भी कठिनाई नहीं हो सकती कि [illegible] मील तक फैली हुई एक बदली में निरंतर उल्का-पात हुआ करेंगे, और उसके कारण इस

के कणों की तुल्यावस्था का विनाश होगा, अर्थात् कहीं पर इस बदली का घनत्व ज़रूर बढ़ जायगा, जिसके कारण आकर्षण-क्रिया आरंभ हो जायगी।

अतएव इस बदली में यदि शुरू से नहीं, तो बाद को अपेक्षाकृत घने केंद्र ज़रूर बन जायँगे, और वे चारों ओर से गर्द और धातु के कणों को उसी प्रकार खींचने लग जायँगे, जिस प्रकार हमारे कमरे की सतह गर्द के सूक्ष्म कणों को खींचने लगती है। अतएव ये केंद्र बड़े और सघन होने लगेंगे, और इन केंद्रों के बीच के स्थान पतले और ख़ाली होने लग जायँगे। तब ये केंद्र स्थूल पिंडों का स्वरूप धारण करने लग जायँगे, और चूँकि ये चारों ओर से कणों को खींचेंगे, इसलिये इनका गोल आकार धारण करना भी स्वाभाविक ही है। इसीलिये सभी ग्रह, नक्षत्र इत्यादि गोल होते हैं। अब यदि यह काम करोड़ों-अरबों वर्षों तक लगातार चलता रहे, तो हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि पदार्थ के सभी कण कई बृहत्काय पिंडों में खिंच जायँगे, और एक पिंड और दूसरे पिंड के बीच ख़ाली स्थान रह जायगा। हम यह भी अनुमान कर सकते हैं कि भारी होने के कारण धातुओं के कण बीच में चले जायँगे, और गैसों के अपेक्षाकृत हलके कण ऊपर, अर्थात् तल पर, जमा होंगे, अर्थात् धातुओं के गोलाकार पिंडों के चारों ओर गैस का आवरण होगा। आकर्षण-नियम की क्रीड़ा के द्वारा आकाशस्थ पिंडों के बनने और उनके घनत्व-संपन्न होने की बात हम वर्णन कर चुके। अब गणितज्ञों और ज्योतिषियों द्वारा वर्णन की गई इसके आगे की बातें सुनिए—

भौतिक विज्ञान का यह एक नियम—और निर्विवाद नियम—है कि दबाव (Compression) या संकोचन (Contraction) के द्वारा ताप की उत्पत्ति होती है। अतएव हमारी बदली (नीहारिका) द्वारा पैदा हुए आकाशस्थ पिंडों के कणों के गाढ़े होने पर इन पिंडों में गरमी पैदा हो जायगी। हम सहज ही समझ सकते हैं कि करोड़ों-अरबों टन धातु-कणों—क्योंकि एक-एक आकाशस्थ पिंड का तौल करोड़ों-अरबों टन है—के संकोचन और संलग्नता के द्वारा बहुत बड़े ताप का जन्म होगा। भीषण गरमी से ये पिंड तपकर प्रज्वलित हो उठेंगे। आकाश के ये पिंड इसी प्रकार तारों का रूप धारण करते हैं। ऐसी अवस्था में वैज्ञानिक नियम के अनुसार ये अग्निमय धातु-कणविशिष्ट आकाशस्थ पिंड अपनी धुरी पर घूमने लग जायँगे। यहाँ भी डार्विन के द्वारा वर्णित जीवन-संग्राम उपस्थित होगा, और तारों को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिये अत्यंत द्रुत गति से एक *व्यवस्थित मार्ग में घूमना पड़ेगा*, *अन्यथा* अपेक्षाकृत बड़े पिंडों द्वारा आकृष्ट होकर वे विनष्ट हो जायँगे। हम समझ सकते हैं कि हमारी बदली से प्रथम-प्रथम जितने पिंड बनेंगे, वे सब-के-सब जीवित न बचेंगे। उनमें से बहुत-से छोटे-छोटे तथा अव्यवस्थित पथ से चलनेवाले पिंड जीवन-संग्राम में परास्त होकर मृत्यु को प्राप्त और बड़े-बड़े पिंडों के उदरस्थ होंगे। केवल कुछ शिष्ट और योग्य पिंड ही इस मृत्युमय भीषण जीवन-संग्राम से—वह संग्राम जिसमें लाखों और करोड़ों मन भारी, हमारे तेज़-से-तेज़ वायुयानों से भी हज़ारोंगुना तेज़ चलनेवाले पिंड अनंत आकाशरूपी रण-क्षेत्र में दौड़ते और परस्पर टकराकर प्राण-विसर्जन करते हैं—जीवित बच निकलेंगे। निस्संदेह पूर्व-कथित बृहत्काय सूर्यों की उत्पत्ति इसी प्रकार—अर्थात् अन्य पिंडों को भक्षण करने से ही—हुई है। अंत को इस बदली से पैदा हुए पिंडों में से केवल कुछ बड़े-बड़े, एक दूसरे से काफ़ी, और इसलिये निर्भय, दूरी पर स्थित एवं नियमित वृत्ताकार पथ में घूमनेवाले अग्निमय गोल पिंड ही शेष रह जायँगे। इनमें से केंद्रस्थ और सबसे बड़ा पिंड सूर्य होगा, और उसके चारों ओर घूमनेवाले अन्य अपेक्षाकृत छोटे पिंड उसके ग्रह होंगे।

संक्षेप में, विज्ञान के अनुसार, सृष्टि की कथा इसी प्रकार है। इस सिद्धांत को वैज्ञानिक लोग Nebular theory या नीहारिका-वाद के नाम से अभिहित करते हैं। हम समझते हैं, यहाँ पर, पाठकों के हृदय में, स्वभावतः यह प्रश्न उठ रहा होगा कि उपर्युक्त मत केवल कोरी कल्पना ही है, या इसके कुछ प्रमाण भी हैं? उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि दूरबीनों के द्वारा वैज्ञानिकों ने वास्तव में ऐसी हज़ारों नीहारिकाओं का पता लगाया है, जिनके द्वारा हमारे सूर्य-संप्रदाय-जैसे कई सूर्य-संप्रदायों की सृष्टि हो सकती है। आज के ज्योतिषी क़रीब दो लाख नीहारिकाओं से परिचित हैं। उदाहरणार्थ हमारी पृथ्वी और सूर्य के बीच जो अंतर है, उससे पचास लाखगुने से भी अधिक उस नीहारिका का व्यास है, जो एंड्रोमेडा (उत्तरभाद्रपद ?) नक्षत्र में

अवस्थित है। हमारे सूर्य में जितना घनत्व है, यदि उस घनत्व का $\frac{1}{20000000}$ अंश भी इसमें विद्यमान होता, तो यह हमारी पृथ्वी को उतनी ही शक्ति से खींचती, जितना कि सूर्य। परंतु इन नीहारिकाओं का घनत्व इतना कम है कि देखा गया है, निकट के नक्षत्रों की गति पर भी इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इतना ही नहीं, नीहारिकाओं के वास्तविक निरीक्षण से तो इस सिद्धांत की बेहद पुष्टि होती है। अनंत आकाश में ऐसी कितनी ही नीहारिकाओं का पता चलता है, जो एकदम क्षीण और पतली हैं, तथा दूरबीनों से देखे जाने पर ये सिर्फ़ उच्छृंखल और अव्यवस्थित बदली के स्वरूप में नज़र आती हैं। परंतु बाज़ नीहारिकाओं में एक केंद्र, अर्थात् अपेक्षाकृत सघन स्थान, विद्यमान पाया जाता है। बहुत-सी नीहारिकाओं में ये केंद्र अत्यंत स्पष्टता के साथ दृष्टिगोचर होते हैं। ठीक चक्रव्यूह के स्वरूप की भी कुछ नीहारिकाएँ देखी गई हैं। बाज़ नीहारिकाओं का केंद्र तो ठीक तारे के सदृश चमकता हुआ भी पाया गया है। अतएव नीहारिकाओं के संकोचन और उनके द्वारा संसार की सृष्टि का पता हमें उसी प्रकार चलता है, जिस प्रकार किसी बड़े जंगल में छोटे, बड़े, तथा सभी प्रकार और सभी आयु के वृक्षों को देखकर हमें यह मालूम हो सकता है कि वृक्ष बढ़ते हैं, तथा छोटे ही वृक्षों से बड़े वृक्षों की उत्पत्ति हुई है।

मैं यह नहीं कहता कि वैज्ञानिक जगत् में, सृष्टि के संबंध में, यह सिद्धांत एकदम निर्विवाद रूप से ग्रहण किया जाता है। नहीं, मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि विज्ञान के क्षेत्र में छोटी-छोटी बातों की भी विशद व्याख्या की जाती है, तथा ज़रा-ज़रा-सी बातों पर भी बड़ी-बड़ी आलोचनाएँ होती हैं। सभी तथा दूर-से-दूर की आपत्तियों एवं प्रत्येक शंका का जवाब दे चुकने पर ही कोई वैज्ञानिक सिद्धांत (theory) नियम (Scientific Law) का स्वरूप धारण करता है। यह नीहारिका-वाद भी अभी प्रथमोक्त अवस्था में ही है। अभी यह नियम की अवस्था में परिणत नहीं हुआ। तो भी ज्योतिषियों में इस सिद्धांत का बहुत आदर है, और इसमें शंका करनेवाले बहुत कम नज़र आते हैं; क्योंकि उल्का-वाद (Meteoritic theory, जिसके अनुसार यह अनुमान किया जाता है कि बहुत-सी उल्काओं के द्वारा संसारों की सृष्टि होती है) या नक्षत्र-संघर्षण-वाद (Planetesimal theory, जिसके अनुसार यह अनुमान किया जाता है कि किसी मरे हुए सूर्य के साथ किसी नक्षत्र का संघर्षण होने से वह मृत सूर्य पुनः प्रज्वलित एवं तरल और नीहारिकामय अवस्था में परिणत हो जाता है, और उसके द्वारा संसारों की सृष्टि होती है)* इत्यादि सिद्धांतों को भी नीहारिका-वाद की ही शरण लेनी पड़ती है। उन्हें भी यह मानना ही पड़ता है कि आदिम अवस्था में हमारा सूर्य-संप्रदाय नीहारिका ही के स्वरूप में था। इसके पहले क्या अवस्था थी, मत-भेद इसी बात में है। क्या नीहारिका आदिम वस्तु है, या दो सूर्यों या ग्रहों के टकराने से इसकी उत्पत्ति होती है, इत्यादि बातें विवादास्पद हैं।

अतएव नीहारिका-वाद अभी अभ्युपगत सिद्धांत-मात्र है। इसका आधार तर्क और अनुमान—निस्संदेह कोरी कपोल-कल्पना, या भँगेड़ी की बहक नहीं, बल्कि शुद्ध वैज्ञानिक तर्क और अनुमान—है। इस सिद्धांत के द्वारा जितनी शंकाओं का समाधान होता है, तथा संसारों की उत्पत्ति पर जितना प्रकाश पड़ता है, उतना

* हम अक्सर किसी नए तारे के दृष्टिगोचर और प्रकाशमान होने की बात सुनते और पढ़ते हैं। इसका तात्पर्य क्या है? कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि दो नक्षत्रों के आंशिक संघर्षण से ऐसा होता है, अर्थात् मरे और अप्रकाशमान तारे भी घर्षण के कारण दीप्तिमान् हो जाते हैं। वास्तव में मृत तारे चमक उठते हैं, नए तारों की सृष्टि नहीं होती; परंतु कुछ लोग इस मत को भ्रामक अनुमान करते हैं। उनका कथन है कि तारों का टकराना यदि कभी संघटित भी होता हो, तो उसे एकदम आकस्मिक ही समझना चाहिए। परंतु नए तारे अक्सर देखे जाते हैं; इसलिये संघर्षण का अनुमान भ्रममूलक है। इनके मतानुसार जब कोई मृत तारा किसी नीहारिका से होकर गुज़रता है, तो उसमें रगड़ के कारण प्रकाश आ जाता है, और नए तारों के नज़र आने का यही कारण है। बात चाहे जो हो, यह घटना विचारणीय अवश्य है। हमारे विश्व के करोड़ों तारों में जीवन, मृत्यु, जन्म, मरण और पुनर्जन्म का क्रम सदा चल रहा है!

किसी और सिद्धांत के द्वारा नहीं। इसीलिये, पूर्णता के साथ प्रमाणित न हो सकने पर भी, प्रायः समस्त ज्योतिषी इस सिद्धांत को आदर से देखते हैं। ग्रहों की गति पर इस सिद्धांत के द्वारा प्रकाश पड़ता है। यदि और कुछ नहीं, तो केवल यही एक बात इस सिद्धांत की सत्यता की काफ़ी दलील है। हमारे सूर्य-संप्रदाय के सभी ग्रह एक ही दिशा तथा एक ही धरातल में वृत्ताकार रास्ते से चक्कर लगाते हैं। फिर सभी ग्रहों के उपग्रह भी (केवल एक यूरेनस के उपग्रहों को छोड़कर, जिसका कोई असाधारण कारण ज़रूर होगा) अपने ग्रहों के चारों ओर उसी प्रकार चक्कर लगाते हैं, जिस प्रकार स्वयं ये ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। हमारे सौर-मंडल में प्रायः पाँच सौ से भी अधिक पिंडों और ग्रहों (इनमें हम केतुओं को शामिल नहीं करते; क्योंकि उनके द्वारा इस सिद्धांत की सत्यता या असत्यता पर कोई असर नहीं पड़ता) का पता चला है; और ये सब-के-सब, जैसा कि हम अभी वर्णन कर चुके हैं, एक ही प्रकार से भ्रमण करते हैं। क्या यह बात एकदम निष्कारण या आकस्मिक है? क्या इसके द्वारा इस बात का पता नहीं चलता कि सभी ग्रहों की उत्पत्ति का कोई एक ही ज़रिया है, या इनके बीच कोई हेतुक-संबंध है? क्या हम इन बातों के आधार पर यह सिद्धांत स्थापित करने का साहस नहीं कर सकते कि दूरबीनों से नज़र आनेवाली नीहारिकाओं के ही सदृश किसी नीहारिका के द्वारा सूर्य तथा सभी ग्रहों की सृष्टि हुई है, तथा आदिम नीहारिका की जो गति थी, वही गति पीछे से बननेवाले ग्रहों ने भी धारण कर ली? अतएव इस सिद्धांत में अद्भुत संगति विद्यमान है। इसके द्वारा प्रायः सभी शंकाओं का समाधान होता है।

इस सिद्धांत की सत्यता एक और रीति से भी प्रमाणित होती है। प्रतिदिन सूर्य से निकलनेवाली गरमी पर जब हम विचार करते हैं, तो हमें इस सिद्धांत के पक्ष में बहुत बड़ी दलील मिलती है। सूर्य के द्वारा निकलनेवाली गरमी का ज्योतिषियों ने जो हिसाब लगाया है, उससे पता चलता है कि हमारी पृथ्वी को प्रतिदिन सूर्य से निकलनेवाली गरमी का केवल $\frac{1}{2000000000}$ अंश प्राप्त होता है; शेष सब गरमी अनंत आकाश में इधर-उधर फैलकर रह जाती है। मैंने अभी ऊपर तारों को अग्निमय तथा गैस से ढके हुए धातु-पिंड कहा था। मैंने यह भी कहा था कि ये पिंड धीरे-धीरे ठंडे हो रहे हैं। इससे पाठक स्वभावतः यह अनुमान करेंगे कि सूर्य की गरमी कम हो रही है। पर क्या हमारे पास इसका कोई प्रमाण है? क्या हम साबित कर सकते हैं कि सूर्य की किरणों में आज वह प्रखरता नहीं है, जो कि उनमें पहले विद्यमान थी? नहीं, अपनी इंद्रियों से अनुभव करने की तो बात ही दूर रही, हमारे पास इसके कोई ऐतिहासिक प्रमाण भी नहीं हैं। हम नहीं कह सकते कि दो हज़ार वर्षों के पहले सूर्य आज से अधिक प्रखरता के साथ चमका करता था। तो भी यदि सूर्य एक तप्त पिंड है, और अन्य तप्त पिंडों के सदृश ही ताप-वितरण कर रहा है, तो वह निस्संदेह प्रतिवर्ष अपनी कुछ डिगरी गरमी खोकर और ठंडा हो रहा है। ऐतिहासिक समय में वह ज़रूर कई हज़ार डिगरी गरमी खो चुका है। फिर इस समस्या का क्या उत्तर है? हमें विवश होकर कहना पड़ता है कि सूर्य की गरमी का मुख्य और अकेला कारण उसका जलना ही नहीं है। क्या सूर्य को सदैव किसी दूसरे स्थान से ईंधन प्राप्त होता रहता है, और इसी कारण उसकी गरमी में अंतर नहीं उपस्थित होता? कुछ ज्योतिषी यह सोचते थे कि सूर्य में सदा उल्काओं की वृष्टि होती रहती है, और इसी संघर्षण के कारण उसकी गरमी ज्यों-की-त्यों बनी रहती है, अर्थात् गरमी की क्षति इसी प्रकार पूरी होती जाती है। परंतु यह मत ठीक नहीं जान पड़ता। सूर्य में उल्काओं की वृष्टि होती है, और ज़रूर होती है, पर क्या इतनी उल्काओं का गिरना संभव है? या इतनी उल्काएँ विद्यमान हैं? सूर्य के धरातल के प्रत्येक वर्ग-फुट स्थान पर बीस टन, अर्थात् ३०० मन से भी अधिक, कोयला यदि जलाया जा सके, तब कहीं हमें उतनी गरमी प्राप्त होगी, जितनी सूर्य से प्रतिदिन निकला करती है। फिर उल्काओं के द्वारा कहाँ तक क्षति-पूर्ति की आशा की जा सकती है? ज्योतिषियों का कहना है कि यदि प्रतिवर्ष हमारे चंद्रमा के बराबर बड़ी उल्काओं का समूह सूर्य में गिरा करे, तब कहीं सूर्य के इस ताप की क्षति की पूर्ति हो सकती है। परंतु हमारे पास इसका कोई प्रमाण नहीं है कि सूर्य को

ईंधन के तौर पर इतनी उल्काएँ प्राप्त हो जाया करती हैं।

असल बात यह है कि सूर्य निस्संदेह एक तप्त पिंड है, और वह गरमी भी अवश्य ही खो रहा है। परंतु उसके प्रकांड कलेवर तथा ताप-क्षय के अद्भुत नियम के कारण उसके ठंडे होने में बहुत विलंब हो रहा है।

हम सहज ही समझ सकते हैं कि सूर्य की गरमी ज्यों-ज्यों कम होगी, त्यों-त्यों वह संकुचित होगा; क्योंकि गरमी से पदार्थ फैलते और सरदी से सिकुड़ते हैं, यह भौतिक विज्ञान का एक साधारण नियम है। अतएव सूर्य की गरमी का जितना ह्रास होगा, उतना ही वह संकुचित होगा। अर्थात् सूर्य के प्रत्येक कण आपस में अपेक्षाकृत कहीं समीप पहुँच जायँगे। इस दबाव या संकोचन से स्वभावतः गरमी का जन्म होगा, और इस प्रकार गरमी मिलते रहने के कारण सूर्य की गरमी में विशेष अंतर न उपस्थित होगा। हमारी कठिनाई इस प्रकार पूर्णतया हल हो जाती है, और यह सिद्ध हो जाता है कि यद्यपि सूर्य की गरमी सदा ख़र्च होती रहती है, तो भी हम उसकी इस कमी का अनुभव नहीं कर सकते।

ज्योतिषियों ने यह अनुमान किया है कि ताप-क्षय और संकोचन के कारण हर शताब्दी में सूर्य का व्यास दस मील कम होता है। यद्यपि यह बात कुछ विचित्र प्रतीत होती है, तो भी जब हम सूर्य के विस्तृत व्यास पर, जो १० लाख मील के लगभग है, विचार करते हैं, तो हमें इसके मानने में कोई कठिनाई नहीं होती। अतएव सौ वर्ष पहले सूर्य आज से दस मील बड़ा था। इसी प्रकार हज़ार वर्ष पहले सूर्य का व्यास आज से सौ मील अधिक चौड़ा रहा होगा। इसी प्रकार दस हज़ार वर्ष पहले सूर्य एक हज़ार मील अधिक चौड़ा होगा। हम नहीं कह सकते कि यह संकोचन-कार्य सदैव इसी हिसाब से चला आ रहा है, या चलता रहेगा। हमारा तात्पर्य यही है कि यह संकोचन-कार्य होता ज़रूर है, तथा सूर्य की चौड़ाई अवश्य घट रही है। अतएव बहुत-बहुत वर्षों पहले सूर्य इतना बड़ा होगा कि वह बुध की समस्त कक्षा (भ्रमण-पथ) को घेरे हुए होगा, तथा उस समय बुध सूर्य के ही गर्भ में निहित रहा होगा। इसी प्रकार हम करोड़ों-अरबों वर्ष पहले उस समय की भी कल्पना कर सकते हैं, जब यह सूर्य शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस तथा नेपचून की कक्षाओं तक को घेरे होगा, अर्थात् उस समय सिवा सूर्य के और कोई ग्रह न होगा। संकोचन का अर्थ ही सिकुड़ना या घनत्व-युक्त होना है। अतएव सूर्य अपनी आदिम अवस्था में—जब कि वह समस्त सौर-मंडल-भर में फैल रहा था—घनत्व रहित बदली ही की तरह होगा। अतएव, इस दूसरे विवेचन के द्वारा भी, हम उसी नतीजे पर पहुँचते हैं, जिस पर नीहारिकाओं के निरीक्षण और वर्गीकरण से पहुँच चुके हैं।

इस सिद्धांत की सत्यता या असत्यता के संबंध में एक लेखक ने ठीक ही लिखा है—"इस समय हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि नीहारिका-वाद के सिद्धांत का समर्थन प्राकृतिक नियमों द्वारा होता है, तथा किसी वस्तु-स्थिति के साथ इसकी असंगति प्रमाणित नहीं की जा सकी है, और हमें सूर्य-ताप की उत्पत्ति और क्षय-निवारण का जो केवल एक सिद्धांत मालूम है, उसका यह नीहारिका-सिद्धांत अनिवार्य निष्कर्ष है। परंतु इस नीहारिका-सिद्धांत का अवलंब वह अनुमान है, जिसके द्वारा हम यह समझते हैं कि ताप-क्षय की बात को हम अपने जाने हुए प्राकृतिक नियमों के द्वारा हल कर सकते हैं। अब यदि कोई संशय-वादी स्वयं इन नियमों (तथा इनकी सर्वव्यापकता और एकाधिपत्य) में संशय करे, तो विज्ञान उसे क़ायल नहीं कर सकता, और न उसे शंका-निवारण के योग्य कोई प्रमाण ही दे सकता है। कारण, नापकर सूर्य की चौड़ाई को कम होते दिखला देना या नीहारिकाओं को ग्रहों और उपग्रहों इत्यादि में आँखों के सामने परिणत कर देना उसकी सामर्थ्य के बाहर है।

विज्ञान जहाँ तक निश्चित कर सका या पता लगा सका है, वहाँ तक हम सृष्टि की कथा वर्णन कर चुके। इसके पहले की बात विज्ञान की दृष्टि से परे है। वह दर्शन-शास्त्र और मज़हब के अंतर्गत है।

जिस पदार्थ के द्वारा संसारों की सृष्टि होती है, वह पदार्थ कहाँ से आया, इसके बारे में विज्ञान कुछ नहीं कह सकता। हम यहाँ पर एक जगन्नियंता परमेश्वर पर विश्वास की बात तथा इस विश्वास की सत्यता या

असत्यता के प्रश्न को नहीं छेड़ना चाहते; क्योंकि यह सवाल दर्शन-शास्त्र या मज़हब के अंतर्गत और आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र से बाहर है। अधिकांश वैज्ञानिक इस प्रश्न के वैज्ञानिक उत्तर को अप्राप्य समझकर इस प्रश्न पर विचार करना ही व्यर्थ समझते हैं। तथापि इस संबंध में विज्ञान की प्रगति शायद उसी मार्ग की ओर है, जिसे हमारे वेदांत-दर्शन ने बहुत समय पहले प्रदर्शित किया था। वैज्ञानिक जगत् में यह निर्विवाद माना जाता है कि एक वस्तु, जो "ईथर" कही जाती है, समस्त विश्व में एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक व्याप्त है। वह ठोस-से-ठोस पदार्थों के अंदर भी विद्यमान है। लोहे-जैसे कठिन पदार्थ में भी ईथर विद्यमान है,—लोहे का टुकड़ा मानो ईथर का समुद्र है, जिसमें धातु के कण तैरते फिर रहे हैं! इसी प्रकार विश्व के ग्रह, नक्षत्र इत्यादि भी मानो "ईथर" के समुद्र में पड़े हुए "स्पंज" के सदृश हैं। अतएव इस सर्वव्यापी ईथर को देखकर क्या हम यह कह सकते हैं कि शायद इसी एक मूल-कारण या पदार्थ से समस्त ग्रहों, उपग्रहों, संसारों, नक्षत्रों और नीहारिकाओं इत्यादि की उत्पत्ति हुई है? बात एकदम बेसिर-पैर की नहीं है। यह केवल हमारा अनुमान नहीं है। सभी वैज्ञानिक अब इस बात के क़ायल हैं कि एक परमाणु के अंदर बहुत-से अति सूक्ष्म अणु विद्यमान हैं, और इन शक्ति-केंद्रों, अर्थात् अणुओं, के बीच के स्थान में "ईथर" फैला हुआ है। जो बात बड़ी चीज़ों के साथ चरितार्थ होती है, वही छोटी-से-छोटी चीज़ों के साथ भी लागू होती हुई पाई जाती है। ईथर के समुद्र में अणु मानो तैर रहे हैं। साधारण-से-साधारण परमाणु के बीच भी हज़ारों अणु पाए जा सकते हैं, जो सदैव भ्रमणशील रहते हैं। अभी हमने ऊपर ग्रहों और नक्षत्रों की तीव्र गति के संबंध में कुछ लिखा था। परंतु इन अणुओं की गति तो उनसे भी निराली है। इनकी गति फ़ी सेकेंड १ लाख मील के हिसाब से है। बड़े और छोटे, करोड़ों-अरबों टन भारी और सैकड़ों-हज़ारों कोस लंबे-चौड़े नक्षत्रों तथा सूक्ष्म परमाणुओं में भी ये अरबों की संख्या में हैं। ये एक पिन के सिरे पर करोड़ों अँट सकते हैं—क्या ही विचित्र सादृश्य है! मानो अणु परमाणु-रूपी आकाश के नक्षत्र हैं! अनंत आकाश में तारों की गति और भ्रमण की जो व्यवस्था और क्रम दृष्टिगोचर होता है, वही बात परमाणु-रूपी आकाश में ग्रह-नक्षत्र-रूपी अणुओं को भयानक गति से भ्रमणशील होते हुए देखकर याद आ जाती है! सर्वत्र एक ही बात है। हर जगह अनंत का साम्राज्य है। कोई वस्तु सीमा-बद्ध नहीं है। कण और नक्षत्र में कोई भेद नहीं है। अनंत चारों ओर लहरा रहा है। सभी वस्तुएँ अनंत में लीन हैं। सब एक ही बात है। इस ज़ाहिरी भिन्नता के मौजूद रहते हुए भी सर्वत्र सबमें अद्भुत एकता विद्यमान है। द्वैत-वाद का नाम कहीं नहीं, सर्वत्र अद्वैत-वाद का ही साम्राज्य है। एक ही वस्तु, पदार्थ या ब्रह्म भिन्न-भिन्न रूपों से व्यक्त हो रहा है! सब कुछ वही है, सर्वत्र वही है। *उसके सिवा अन्य कोई वस्तु है ही नहीं!—*

"दरया से हुबाब[१] की है यह सदा[२], तुम और नहीं, हम और नहीं;
मुझको न समझ अपने से जुदा, तुम और नहीं, हम और नहीं।
जब ग़ुंचा[३] चमन[४] में सुबह को खिला, तब कान में गुल[५] के यह कहने लगा;
हाँ आज यह अक़दः[६] है हमपै खुला, तुम और नहीं, हम और नहीं।
आईना मुक़ाबिल-रुख़[७] जो रखा, झट बोल उठा यों अक्स[८] उसका;
क्यों देख के हैराँ यार हुआ, तुम और नहीं, हम और नहीं।
नासूत[९] में आके यही देखा, है मेरे ही ज़ात[१०] से नश्वोनुमा[११];
जैसे पुँबाँ[१२] का तागे से हो निस्बत[१३], तुम और नहीं, हम और नहीं।
तू क्यों समझा मुझे ग़ैर बता, अपना रुख़े-ज़ेबा[१४] न हमसे छुपा;
चिक-परदः उठा टुक सामने आ, तुम और नहीं, हम और नहीं।
दाने ने भला ख़िरमन[१५] से कहा, चुप रह, इस जाँ[१६] नहीं चूँ वो चेरा[१७];
वहदत[१८] की झलक कसरत[१९] में दिखा, तुम और नहीं, हम और नहीं।"

गोवर्द्धनलाल

---

१. पानी का बुलबुला। २. आवाज़, शब्द। ३. कली। ४. वाटिका। ५. पूर्ण विकसित प्रसून। ६. भेद। ७. चेहरे के सामने। ८. परछाँहीं, प्रतिरूप। ९. संसार। १०. अस्तित्व। ११. पैदा होना और बढ़ना। १२. रुई। १३. संबंध। १४. सुंदर मुखड़ा। १५. खलिहान। १६. जगह, स्थान। १७. तर्क-वितर्क। १८. एकता, अद्वैत। १९. बहुत, अनेक।

ध्यान

[चित्रकार—श्रीयुत लोकपालसिंहजी]

तीन पैर जाके मध्य त्रिभुवन में न समाहिं ,

जैसे को तैसा

(१)

सहसराम के ज़बरदस्त हाकिम डिक्रूज़ साहब रंग में अँगरेज़ न होने पर भी पहनाव-पोशाक और मज़हब में किसी अँगरेज़ से कम न थे। हिंदोस्तानी दो ही पीढ़ियों का क्रिस्तान कहकर उनकी हँसी उड़ाते और उनके दादा चमारी साहु का बखान करते हुए कहते थे कि इस डिक्रूज़ ने तो उनका वंश बोर दिया। लेकिन डिक्रूज़ साहब अपने तईं पक्का अँगरेज़ ही समझते थे।

डिक्रूज़ साहब अपनी आन के आगे काले हिंदोस्तानियों को तो आदमी ही नहीं समझते थे। वह जब दो-चार क्रिस्तान संगी-साथियों में बैठते, तब एक क़िस्सा कहा करते थे। कहते थे—एक अँगरेज़ जब सारी दुनिया की सैर करके अपने देश लंदन को लौट गए, तब उनकी स्त्री ने पूछा—"कहो सारा संसार देख आए ?" साहब ने कहा—"हाँ सब देख आए ?" बीबी ने पूछा—"अरे वह हिंदोस्तान भी देखा कि नहीं, जहाँ पचीस करोड़ आदमी हैं, और उन पर थोड़े-से अँगरेज़ हुकूमत करते हैं।" साहब ने कहा—"उस देश को तो मैंने बहुत अच्छी तरह देखा ; क्योंकि वह हमारी जाति के ताबे है। मैं बहुत दिनों से उसका हाल अख़बारों में पढ़ता आता था। बहुत दिनों से उसको देखने की मन में लालसा थी। इस सफ़र में वह पूरी हो गई।" बीबी ने कहा—"अच्छा किया, जो तुम उस हिंदोस्तान को अच्छी तरह देख आए। लेकिन यह तो कहो कि पचीस करोड़ आदमियों पर थोड़े-से अँगरेज़ कैसे हुकूमत करते हैं ? वहाँ के वे आदमी किस तरह के जीव हैं ?" साहब ने कहा—"यह तुमने कहाँ सुना कि वहाँ पचीस करोड़ आदमी हैं ?" बीबी बोलीं—"क्यों, यह तो सेंसस की रिपोर्ट ही में लिखा है।" साहब ने कहा—"अरे, वह सब सेंसस की अपोट-रपोट जाने दो। वहाँ आदमी पचीस करोड़ काहे को, पचीस हज़ार भी मुशकिल से मिलेंगे। यह जो पचीस करोड़ की गिनती तुमने सुनी है, सो वे आदमी नहीं, बैल हैं।"

यही क़िस्सा कहकर डिक्रूज़ साहब काले हिंदोस्तानियों को बैल बताते और उनको सदा अपने हुक्म से हाँकने का अभिनय किया करते थे। उनके एक रोग बड़ा विकट था। सामने से अगर कोई हिंदोस्तानी छाता लगाए चला जाता, तो वह जलते तेल के बैंगन हो जाते थे। वह सहसराम सब-डिवीज़न के अफ़सर थे। पर अपने बँगले से पाँव-पैदल कचहरी आते थे। एक चपरासी छाता लगाकर उनके पीछे-पीछे चला करता था। डिक्रूज़ साहब का छातेवाला रोग सब लोगों को मालूम हो गया था, इस कारण जब वह आते थे, तब सब लोग अपना-अपना छाता तुरत उतार डालते थे।

छाते के सिवा डिक्रूज़ साहब को सलाम का भी बड़ा शौक़ था। जो हिंदोस्तानी उनको देखकर सलाम न करता था, उस पर वह आग-बबूला हो जाते थे।

एक दिन डिक्रूज़ साहब, जेठ की लू में, ग्यारह बजे के बाद, कचहरी बरख़ास्त करके बँगले को आ रहे थे। दमड़ी मियाँ चपरासी साबिक़-दस्तूर छाता लगाए चल रहा था। इतने में एक बंगाली छाता लगाए उधर से आ टपके। उनके साथ सामान-लदी गाड़ी देखने से मालूम होता था कि स्टीमर से उतरकर कहीं बाहर से आते हैं। साहब उनको देखते ही ब्लडी-फ़ूल कहते हुए झपटे, और अपने हाथ से छाता छीनकर बंद कर दिया। बंगाली बाबू साहब की यह लीला देखकर अवाक् रह गए।

साहब ने पूछा—"टुम कौन है ?" बाबू ने जवाब में बतलाया कि वह डॉक्टर हैं। वहाँ के अस्पताल में तैनात होकर आ रहे हैं।

साहब ने कहा—"You should learn manners. Go your way."

इतना सुनने पर बाबू अस्पताल की ओर चले गए। दूसरे दिन उनको मालूम हुआ कि वही साहब उस परगने के मालिक और जेल के भी सुपरिंटेंडेंट हैं।

चार्ज ले चुकने पर बंगाली बाबू को पता लगा कि साहब को छाता और सलाम का बड़ा विकट रोग है ; और उन्होंने उस दिन साहब के सामने डबल क़सूर किया था।

डॉक्टर का नाम था नगेंद्रनाथ चटर्जी। उमर बावन बरस की थी। वह गंभीर और नम्र स्वभाव के होने पर भी हठी आदमी थे। अपने काम में पक्के और कर्तव्यपरा-

यथा होने के साथ ही जाति के अभिमान या स्वाभिमान में भी कच्चे नहीं थे। इसके अलावा वह वहमी भी थे। सदा, रात हो या दिन, छाता लगाकर चलते थे। बारहो महीने गले में एक गुलूबंद लपेटे रहते थे। कहा करते थे—रोग होने से पहले ही रोग का रास्ता बंद करना उचित है।

यह दोहा उनकी ज़बान पर रहता था—

"दुख में सुमिरन सब करैं, सुख में करै न कोय;
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय।"

इसी से वह सदा ठंडक से बचने के लिये सिर पर छाता लगाते थे। बादल-वर्षा, धूप अथवा शीत का समय जब नहीं रहता, तब भी वह छाता नहीं छोड़ते थे। माथे पर आसमान फट पड़ने का उनको डर था या नहीं, यह किसी ने उनसे कभी पूछा नहीं, न उन्होंने इसका कुछ कारण ही बताया।

(२)

दमड़ी मियाँ डिक्सन साहब का बड़ा प्यारा और पुराना नौकर था। वह दमड़ी साहब का चपरासी, बटलर, सब कुछ था, और कचहरी के वकील-मुख़्तार उसको साहब से भी अधिक मानते थे। फ़ौजदारी मामलों में किसी इज़्ज़तदार असामी को ज़मानत पर छुड़ाने के लिये जब वक़्त-बेवक़्त वकील-मुख़्तार लोग साहब के बँगले पर पहुँचते थे, तब दमड़ी मियाँ को ख़ुश किए बिना उनका वैतरणी-पार होना मोहाल था।

साहब का सौदा-सुलुफ़ ख़रीदना दमड़ी मियाँ का रोज़ का काम था। बाज़ार के पास फ़ुनियाँ नाम की एक भठियारिन रहती थी। दमड़ी बाज़ार जाते समय फ़ुनियाँ के यहाँ कुछ देर बैठता और पान-तमाकू खा-पी करके फिर जाता था।

डिक्सन साहब के दमड़ी मियाँ की सहसराम में बड़ी चलती थी। बाज़ार में बढ़िया-से-बढ़िया चीज़ उठा लेना और अपने मन के मुताबिक़ पैसा देना दमड़ी का रोज़ का धंधा था। इसमें सहसराम का कोई आदमी चीं-चपड़ नहीं कर सकता था। दमड़ी उस ख़रीद में से कुछ चीज़ें फ़ुनियाँ को दे दिया करता था। उसको इसी में संतोष था। दमड़ी से कभी फ़ुनियाँ को एक पैसा भी नक़द नसीब नहीं होता था। फ़ुनियाँ इसी लाभ में प्रसन्न थी। इसके सिवा फ़ुनियाँ का बाज़ार-भर के दूकानदारों पर रोब भी रहता था। पुलीस के सिपाही भी और रंडियों और भठियारिनों की तरह फ़ुनियाँ पर कुछ ज़ोर-ज़ुलम नहीं कर सकते थे; क्योंकि सबको यह ज़ाहिर हो चुका था कि दमड़ी की फ़ुनियाँ पर छत्र-छाया है।

एक दिन दमड़ी ने एक मछलीवाले के लड़के से एक बड़ी रोहू-मछली के दाम पूछे। उसने दस आने कहे। मियाँ ने एक दुअन्नी उसके आगे फेककर मछली उठा ली। लेकिन लड़के ने दुअन्नी सामने फेककर उनके हाथ से मछली छीन ली। उसका बाप होता, तो दमड़ी के साथ ऐसा बरताव शायद न करता।

अब तो दमड़ी मियाँ को तैश आ गया। वह मछलीवाले को गाली देने लगा। इतने में उस लड़के का बाप टेंगरी भी आ पहुँचा।

दमड़ी ने देखा, टेंगरी नया आदमी है। पिलही से तना हुआ पेट लिए जब वह सामने आया, तब उसने बेटे को तो डाँटा नहीं, उलटे दमड़ी की ही लानत-मलामत करने लगा। इससे दमड़ी के मिज़ाज का पारा और चढ़ गया। वह अगनित गालियाँ देता हुआ वहाँ से चला गया।

टेंगरी के पास बैठे हुए दूसरे मछलीवाले ने कहा—"आज तुमने उसके हाथ से मछली छीनकर अच्छा काम नहीं किया। वह साहब का ख़ानसामा है।"

लेकिन पिलही के पेटवाले टेंगरी को इससे कुछ पछतावा नहीं हुआ। उसने लापरवाही से कहा—"साहब का ख़ानसामा है, तो क्या लाट साहब है?"

उसकी बात का उस मछलीवाले ने कुछ जवाब नहीं दिया। थोड़ी ही देर बाद दमड़ी फ़ुनियाँ के साथ लौट आया। फ़ुनियाँ ने टेंगरी के आगे दुअन्नी फेककर मछली उठा ली, और बड़े गर्व से जाने लगी। यह घमंड टेंगरी से नहीं सहा गया। वह पेट सँभालकर उठा, और झट फ़ुनियाँ के हाथ से मछली छीन लाया। दुअन्नी पड़ी ही रही।

अब दमड़ी की सलाह से फ़ुनियाँ ने थाने में जाकर रपट लिखाई कि टेंगरी ने एक मछली उसके हाथ दो आने की बेची थी; लेकिन अब लेकर वह लौट रही थी, तब किसी दूसरे गाँहक ने उसको अधिक दाम देना चाहा, और इसी लोभ में उसने शरारत करके उसके हाथ से मछली छीन ली।

दारोगाजी ने रपट लिख चुकने पर झुनियाँ से दो-चार जिरह करके असल मामला समझ लिया। इसी से असामी को पकड़ा नहीं, न चालान ही किया।

(३)

"अरे दमड़ी, आज मछली का डिश नहीं है।"

"हुज़ूर, मछली आज मिली नहीं। एक बढ़िया रोहू थी। मैंने मुनासिब दाम पर ख़रीदी, लेकिन एक औरत ने मुझसे कुछ ज़ियादा दाम देकर ले ली। इतने में एक तीसरे आदमी ने उससे भी बढ़कर दाम लगाए। तब मछलीवाले ने उस औरत से भी छीनकर उसको दे दी। मैं समझता हूँ, वह मुक़द्दमा लड़ेगी। थाने में उसने रपट लिखाई है। अगर मुझको गवाह बनावेगी, तो गवाही में जाना ही पड़ेगा; लेकिन खोदावंद इन मछलीवालों को जो ठीक न करेंगे, तो हुज़ूर के वास्ते यहाँ मछली मिलना मोहाल हो जायगा।"

दमड़ी ने ये बातें डिक्रूज़ साहब से खाने के समय पर कही थीं। दूसरे ही दिन झुना बीबी ने साहब के बँगले पर जाकर नालिश कर दी कि टेंगरी ने उसकी ख़रीदी हुई मछली छीन ली है।

दमड़ी ने झुनियाँ को मछलीवाले का नाम बता दिया था, और उसी के प्रसाद से एक मक्खीमार मुख़्तार भी झुनियाँ की ओर से खड़े हो गए थे।

डिक्रूज़ साहब ने तारीख़ बढ़ाकर पुलीस को तहक़ीक़ात का हुक्म दे दिया। एक हफ़्ते के बाद थाने की रिपोर्ट आई कि मुद्दइया अपने मन से दो आने फेंककर दूकानदार टेंगरी की रज़ामंदी के बिना उसकी मछली लिए जाती थी। इसी से असामी ने उसके हाथ से मछली छीन ली। मुद्दइया अपना दिया हुआ दाम वापस न लेकर वहीं छोड़ गई। यानी घटना सही होने पर भी यह बात सही नहीं है कि वह मछली मुद्दइया की ख़रीदी हुई थी। असामी ने इसमें कुछ ज़बरदस्ती या बेईमानी नहीं की। ज़बरदस्ती सरासर मुद्दइया की है।

इस रिपोर्ट पर मुद्दई की ओर से 'जुडीशियल इन्क्वायरी" अर्थात् अदालत की तहक़ीक़ात के लिये अर्ज़ी दी गई।

डिक्रूज़ साहब ने अर्ज़ी मंज़ूर कर ली, और दूसरे ही दिन मुद्दई के गवाह दमड़ी मियाँ का हलफ़न् इज़हार लिया।

ऐसे भी लोग इस देश में अब बहुत बढ़ गए हैं, जो अदालत में "सच के सिवा झूठ नहीं कहेंगे" कहते हुए हलफ़ लेकर झूठ के सिवा सच नहीं कहते। दमड़ी वैसे ही इज़हारवालों में था। उसने हलफ़ लेकर वही सब झूठी बातें बयान कीं, जिनसे झुनियाँ की सब बातें मज़बूत हो गईं।

दमड़ी ने हलफ़ लेकर धर्मावतार हाकिम और अपने मालिक के सामने झूठा बयान देकर डबल पाप किया। इसमें पाप-पुण्य का उसने कुछ भी ख़याल नहीं किया। उधर डिक्रूज़ साहब ने अपने नौकर दमड़ी की बातों पर विश्वास करके टेंगरी की गिरफ़्तारी का वारंट जारी कर दिया। उस दिन शनिवार था। दूसरे दिन रविवार को बीच बाज़ार में टेंगरी गिरफ़्तार कर लिया गया। उसको हथकड़ी लगाकर सिपाही ले चले।

एक मुख़्तार उसको ज़मानत पर छुड़ाने की अर्ज़ी लेकर डिक्रूज़ साहब के बँगले पर पहुँचे। दमड़ी ने दो-चार बातें पूछकर उनके आने का कारण समझ लिया, और कह दिया कि साहब की तबीयत बहुत ख़राब हो गई है। डॉक्टर आए थे, वह चारपाई से उठने को मना कर गए हैं। अब यह दरख़्वास्त आज तो पेश नहीं हो सकती।

मुख़्तार साहब उदास चेहरा लिए बँगले से लौट गए। उधर खाने के समय टमलर में ह्विस्की का पेग डालकर सोडावाटर उँडेलता हुआ दमड़ी अपने साहब से बोला—"उस बदमाश मछलीवाले को ज़मानत पर छुड़ाने के वास्ते एक मुख़्तार घोड़े पर सवार आए थे। हुज़ूर उस वक़्त ग़ुसलख़ाने गए थे। जब उनसे थोड़ी देर ठहरने को कहा, तो वह ऐसे बिगड़े कि सिर पर आसमान उठा लिया। बोले, हम जजी में जाते हैं, तार करके वहीं से ज़मानत का हुक्म मँगा लेंगे।"

दमड़ी की बात सुनकर साहब बोले—"अच्छा, जब तार आवेगा, तब देखा जायगा।"

(४)

सोमवार को पेशी में मुख़्तार ने पहले ही असामी को ज़मानत पर छोड़ने की अर्ज़ी दी; लेकिन डिक्रूज़ साहब ने यह कहकर इनकार किया कि चोरी ननबेलेब्ल अफ़ेंस है। इसमें ज़मानत नहीं हो सकती।

मुख़्तार ने कहा कि यह एक टेक्निकल थेफ़्ट केस (नाम-मात्र को चोरी का मामला) है।

साहब बोले—"हम ऐसा नहीं समजटा, इससे असामी को जमानत पर न छोड़ने के लिये मजबूरी है।"

जब मुख़्तार निराश होकर लौटने लगे, तब डिक्रूज़ साहब ने ताने से कहा कि वह चाहें, तो तार में इस हुक्म की अपील कर सकते हैं।

इस ताने से मुख़्तार साहब विचलित नहीं हुए। गंभीर होकर बोले—"जी नहीं, मैं इस हुक्म की अपील के लिये ऊपर की अदालत में नहीं जाना चाहता; लेकिन इतनी अर्ज़ है कि मुक़द्दमे की सुनवाई जल्दी हो जाती, तो असामी को हवालात में सड़ना न पड़ता।"

साहब ने यह बात मंजूर की, और दो दिन बाद पेशी की तारीख़ नियत करके यह भी कह दिया कि उसी दिन फ़ैसला भी हो जायगा।

दमड़ी मियाँ की काररवाई से टेंगरी को चार दिन तक हवालात में रहना पड़ा। पाँचवें दिन मुक़द्दमा पेश हुआ। फूना बीबी और दमड़ी मियाँ का इज़हार और जिरह हुई। लेकिन डिक्रूज़ साहब ने सब बयान पूरे नहीं लिखे। मुक़द्दमा सरसरी तौर पर करना शुरू कर दिया। साहब ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि ऐसा करने का उनको उस अवसर पर अधिकार नहीं था।

दमड़ी का इज़हार हो चुकने पर डिक्रूज़ साहब ने असामी के गवाहों का बयान माँगा। मुख़्तार ने कहा, यह वारंट-केस है, इसलिये इस काम के लिये एक और तारीख़ दी जाय, तो सफ़ाई के गवाह पेश हों।

साहब ने यह अर्ज़ी नामंजूर कर दी, और सामने सवाल-जवाब का हुक्म फ़रमाया। मुख़्तार ने देखा, नाम कमाने का ख़ासा मौक़ा है। आपने बड़ी संजीदगी से डिक्रूज़ साहब के सामने स्पीच शुरू कर दी। लेकिन साहब ने उनको पग-पग पर रोका, और कोशिश में उनको नाकामयाब कर दिया। अंत को साहब ने टेंगरी को बीस जल्द बेंत मारने की सज़ा सुना दी। सब लोग मामले का कच्चा हाल जानते थे। बेगुनाह की ऐसी सख़्त सज़ा सुनकर थाने के दारोग़ा भी काँप गए। असामी जेल पहुँचाया गया।

(२)

यह सब हुआ, लेकिन जेल के डॉक्टर चटर्जी ने रिपोर्ट की कि असामी टेंगरी दायमुल-मरीज़ है। उसके पेट में पिलही इतनी बढ़ी है कि वह बेंत की मार नहीं सह सकता। इस घड़ी वह मलेरिया की चपेट में है। अगर उसको बेंत की सज़ा दी जायगी, तो उसके मर जाने का ख़तरा है।

जब डॉक्टर की यह रिपोर्ट सरकार डिक्रूज़ साहब के सामने पहुँची, तब उन्होंने असामी को जेल ही में रहने का हुक्म दिया। उधर बार-लाइब्रेरी के कुछ वकील-मुख़्तारों ने उस मुक़द्दमे की अपील करने की कोशिश शुरू कर दी। हाईकोर्ट में मोशन के लिये नक़ल की दरख़्वास्त भी पड़ गई। पेशकार साहब ने अपने हाकिम डिक्रूज़ साहब को यह सब ख़बर सुना दी।

दूसरे दिन जेल के सुपरिंटेंडेंट की हैसियत से डिक्रूज़ साहब जेलख़ाना देखने गए। उस समय उनका असामी टेंगरी एक खाट पर सोया हुआ था। साहब को देखते ही उठ बैठा। साहब ने पूछा—"टुम अब कैसा है टेंगरी?"

टेंगरी ने कहा—"अच्छा हूँ।" इसी समय सिर पर छाता लगाए डॉक्टर चटर्जी भी वहाँ आ धमके।

डॉक्टर को छाता लगाए सामने ही देखकर डिक्रूज़ साहब आपे से बाहर हो गए। चिल्लाकर बोले—"Shut up your umbrella Babu."

डॉक्टर ने झट छाता उतार लिया। उनको आज साहब के स्वभाव का ख़याल नहीं रहा था; और इस तरह की भूल उनसे अक्सर हो जाया करती थी।

साहब ने डॉक्टर चटर्जी से पूछा—"इस असामी को क्या ऐसी सख़्त बीमारी है कि बेंत नहीं लग सकता?"

डॉक्टर ने कहा—"इसकी पिलही बेतरह बढ़ गई है, और ख़ून की कमी से दिल की हरकत भी बहुत घट गई है। ऐसी हालत में बेंत मारने से जान जाने का ख़तरा है। हाँ, दो-चार हफ़्ते इलाज हो ले, और तंदुरुस्ती ठीक हो जाय, तब बेंत लगाए जा सकेंगे।"

साहब ने कहा—"नहीं, नहीं! आज ही फ़िट-सर्टीफ़िकेट दे देना चाहिए कि कल इसको बेंत लगा दिया जाय।"

डॉक्टर ने कहा—"जी नहीं सरकार, मैं आज फ़िट-सर्टीफ़िकेट हरगिज़ नहीं दे सकता। अगर मर जायगा, तो मेरे ऊपर जवाबदेही आवेगी।"

जब डिक्रूज़ साहब ने देखा कि यह बंगाली डॉक्टर हाथ नहीं आता, तब मन में बहुत बिगड़े, और "डैम-निगर" कहते हुए वहाँ से चले गए।

उसी दिन डिक्रूज़ साहब ने ज़िला-मैजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट लिख भेजी। उसमें इस बात का इशारा भी किया कि नेटिव डॉक्टर लोग अक्सर मौक़ों पर असामी के नातेदारों से घूस लेकर उसको रोगी बना रखते और इसी बहाने अदालत की दी हुई सज़ा मंसूख़ कर दिया करते हैं।

(६)

ज़िला-मैजिस्ट्रेट ने वह रिपोर्ट सिविल-सर्जन के पास भेज दी। सिविल-सर्जन एक अँगरेज़ थे। वह चटर्जी बाबू को पहले से जानते और उनको सच्चा और भला-मानस समझते थे।

सिविल-सर्जन साहब एक दिन सहसराम पहुँचे, और चटर्जी बाबू को साथ लिए हुए जेल में गए। यहाँ उन्होंने टेंगरी को देखकर विज़िटर्स बुक में लिख दिया कि असामी बिलकुल बेंत लगाने के क़ाबिल नहीं है; और सब-डिवीज़नल ऑफ़िसर ने यहाँ के इंचार्ज मेडिकल ऑफ़िसर के ख़िलाफ़ जो रिपोर्ट की है, वह एकदम बेबुनियाद है।

दूसरे दिन डिक्रूज़ साहब सिविल-सर्जन की रिपोर्ट पढ़कर लाल हो गए। उन्होंने आरे के मैजिस्ट्रेट को लिख भेजा कि ज़िले के सिविल-सर्जन ने उनको ख़बर दिए बिना ही उनकी ग़ैरहाज़िरी में यह तहक़ीक़ात की है, और एकतरफ़ा रिपोर्ट देकर अपने मातहत मेडिकल ऑफ़िसर की अनुचित रूप से सफ़ाई दी है। इसके लिये मैं सिविल-सर्जन की इस तरफ़दारी का घोर प्रतिवाद करता हूँ।

डिक्रूज़ साहब ने इसकी नक़ल कमिश्नर साहब को भी भेज दी, और यह मामला बहुत तूल खींच गया।

दो हफ़्ते बाद ख़ुद इंस्पेक्टर जेनरल ऑफ़ सिविल-हॉस्पिटल्स सहसराम के इस केस की जाँच करने के लिये पहुँचे। हो सकता है कि सिविल-सर्जन ने भी उनको डिक्रूज़ साहब के विरुद्ध लिख भेजा हो। अमावास्या का दिन था। पिछली दो रातों से टेंगरी को ज़ोर का बुख़ार था। इंस्पेक्टर जेनरल जेल में टेंगरी को देखने गए। थर्मामिटर लगाया, तो १०४ डिगरी का बुख़ार उसके था। उसकी पिलही भी घटी नहीं थी। उस घड़ी कुछ राय ज़ाहिर न करके वह चुपचाप वहाँ से चले गए।

अब शहर-भर में इस मामले की चर्चा होने लगी। लोग कहने लगे, परगने के हाकिम टोपीवाले हैं, और डॉक्टर है बंगाली धोतीवाला। इस झगड़े में ज़रूर बाबू की नौकरी में ख़लल आवेगा।

एक दिन बार-लाइब्रेरी में डॉक्टर चटर्जी को छाता लगाए देखकर एक वकील ने कहा—"अरे साहब आए, साहब!"

डॉक्टर ने झट छाता उतार लिया। लेकिन जब वकील ने हँस दिया, तब फिर तान लिया।

वकील तिलकधारीलाल ने कहा—"डिक्रूज़ साहब ने जब घूस का इलज़ाम आप पर लगाया है, तब आप सिविल-कोर्ट में एक डैमेज-सूट क्यों नहीं फ़ाइल कर देते? बस, साहब को भी आटे-दाल का भाव मालूम हो जाय।"

डॉक्टर ने कहा—"क्या कहूँ साहब, मैं तो बावन बरस का बूढ़ा हो गया, लेकिन क़ानून की दफ़ाओं का मतलब अभी तक वैसा समझ नहीं सका, जैसा आप लोग समझते हैं। इतना मैं देखता हूँ कि क़ानूनों की टीका-टिप्पणी और नज़ीरों की जितनी बाढ़ हो रही है, उतना ही अदालत और जेलख़ानों का नंबर बढ़ता जा रहा है, उतनी ही समाज में पाप-कर्म और कुनीति की भी बढ़ती हो रही है। गुस्ताख़ी माफ़ हो, मैं आप लोगों के आईन-क़ानून और अदालत को दूर ही से नमस्कार करता हूँ। अगर डैमेज-सूट लाना होगा, तो उसी भगवान् की अदालत में लाऊँगा, जहाँ वकील-मुख़्तारों की दाल नहीं गलती।"

इधर शहर के सब मछलीवालों ने चंदा करके टेंगरी की सज़ा के ख़िलाफ़ हाईकोर्ट में मोशन कर दिया था। अब दमड़ी मियाँ और झूना बीबी मछली ख़रीदने आतीं, तो मछलीवाले दूने दाम माँगते और कहते थे कि इन दोनों ने झूठा मुक़दमा चलाकर हमारे एक ग़रीब भाई को फँसाया है। उन दोनों के ख़िलाफ़ एक तरह से सब मछलीवालों ने हड़ताल कर रक्खी थी। एक दिन एक मछलीवाली से झुनियाँ झगड़ पड़ी, तो वह गुस्से में हँसुए से झुनियाँ की नाक काटने दौड़ी। झुनियाँ ने भागकर अपनी नाक बचा ली; लेकिन थाने में इस बार रपट नहीं लिखाई।

(७)

पंद्रह दिन बाद हाईकोर्ट से उस मुक़द्दमे की राय निकली। उसमें यह लिखा था कि मातहत अदालत के हाकिम ने अधिकार न होने पर भी इस मुक़द्दमे का सरसरी विचार किया, यह ग़ैर-क़ानूनी कारखाई हुई है। फिर वारंट-केस में असामी को अपनी सफ़ाई के लिये और तारीख़ न देना दूसरी ग़ैर-क़ानूनी बात हुई

है। इन दो कारणों से हाईकोर्ट ने वह मुक़द्दमा फिर तजवीज़सानी के लिये मातहत अदालत को भेज दिया।

इस बार वकील-मुख़्तारों ने एकराय होकर बेचारे टेंगरी को बेगुनाह साबित करने के लिये कोशिश शुरू की। इधर मानो बिल्ली के नसीब से छींका टूट पड़ा। डिक्ज़ साहब के लिये सुपौल सब-डिवीज़न की बदली का हुक्म आ गया।

इसी हफ़्ते में वहाँ का चार्ज देकर डिक्ज़ साहब सुपौल जानेवाले थे। इससे उन्होंने चाहा कि मुक़द्दमे का फ़ैसला करके जायँ। लेकिन जेल के डॉक्टर ने लिख भेजा कि असामी अभी आरोग्य नहीं हुआ, इस वास्ते वह अदालत में हाज़िर नहीं हो सकता। डिक्ज़ साहब ने समझा कि मेडिकल ऑफ़िसर बहानेबाज़ी करके काम बिगाड़ रहा है। लेकिन अब की आगा-पीछा सोचकर उनको चुप रह जाना पड़ा।

जब नए सब-डिवीज़नल ऑफ़िसर राधामोहन चक्रवर्ती सहसराम पहुँच गए, तब डिक्ज़ साहब ने चार्ज दे दिया, और दूसरे दिन अपना सामान लादकर स्टीमर-घाट पहुँचे।

पुराने मालिक को विदा करने के लिये सब वकील-मुख़्तार घाट पर गए। डॉक्टर एन्० सी० चटर्जी भी छाता लगाए हुए जा धमके। उस समय धूप या पानी कुछ न होने पर भी डॉक्टर चटर्जी को छाता लगाए देखकर डिक्ज़ साहब ने समझा कि यह बेहूदा नेटिव डॉक्टर चलती बेर उनको चिढ़ाने आया है। और लोगों ने भी सलाम किया, लेकिन किसी ओर ध्यान न देकर डिक्ज़ साहब डॉक्टर पर ही टूट पड़े। उनसे गुस्सा सम्हालते नहीं बना। फल यह हुआ कि डॉक्टर का छाता टूट-फूट गया। 'मारे मेहर भागे पड़ोसिन' की तरह और मुख़्तार-वकील भी हू-हा करके भागे। एक भागते हुए मुख़्तार पर डिक्ज़ साहब ने बेतरह हमला किया, और ख़ासी मुक्का-वर्षा कर दी। मगर वह मुख़्तार साहब लड़कपन के कसरती जवान थे। उन्होंने साहब का हमला बड़ी गंभीरता से सह लिया।

(८)

यह मामला भी अदालत तक पहुँचा। डिक्ज़ साहब ने जिस मुख़्तार पर वार किया था, उनका नाम गबदूलाल था। अपने सब सहयोगियों के कहने से लाचार होकर गबदूलाल ने उसी दिन डिक्ज़ साहब के नाम ३५२ दफ़ा के मुताबिक़ नालिश ठोंक दी। नए हाकिम ने अपने प्रीडिसेसर पर समन देने में पहले तो बहुत नाहीं-नहीं की, लेकिन जब सब वकील-मुख़्तारों ने मिलकर सर्वसम्मति से अनुरोध किया, तब पूरे दो घंटे की घटाटोप बहस के बाद उन्हें समन निकालने की मंज़ूरी देनी पड़ी।

समन ठीक समय पर सुपौल पहुँचा। नए हाकिम चक्रवर्ती बाबू की बहुत कोशिश पर भी असामी की ग़ैरहाज़िरी में मामला रफ़ा-दफ़ा न हो सका। गबदूलाल मुख़्तार ने कहा कि खुली अदालत में जब तक डिक्ज़ साहब माफ़ी नहीं माँगेंगे, तब तक मुक़द्दमा नहीं उठावेंगे।

लाचार होकर डिक्ज़ साहब को पेशी के दिन राधा-मोहन चक्रवर्ती के इजलास पर आना पड़ा। वह हाकिम के पास ही एक कुर्सी पर बैठे। उस समय टेंगरी मछुए का मुक़द्दमा पेश था। एक दिन पहले से वह मुक़द्दमा चल रहा था। दोनों ओर के सवाल-जवाब और जिरह सुन लेने पर चक्रवर्ती बाबू ने टेंगरी को बेक़सूर कहकर छोड़ दिया; और झूना बेवा और दमड़ी को अदालत में हलफ़ लेकर झूठा बयान देने के लिये फ़ौज-दारी-सिपुर्द किया।

उसके बाद गबदूलाल मुख़्तार का मुक़द्दमा शुरू किया गया। असामी डिक्ज़ साहब ने 'आई रिग्रेट' कहकर माफ़ी माँगी, और बाहर मुख़्तार से हाथ मिलाया। फिर हाकिम के ख़ास कमरे में जाकर डिक्ज़ साहब ने टेंगरी के मुख़्तार को बुलाकर नरम-गरम अच्छी तरह समझाया, और विनती करके चाहा कि दमड़ी और झूना का मामला भी यहीं निपट जाय। साहब ने अपने पास से सौ रुपए देकर टेंगरी को ख़ुश किया। नए हाकिम की भी वही राय हुई, इस कारण वह बखेड़ा भी मिट गया। डिक्ज़ साहब उसी दिन सुपौल को रवाना हो गए। पीछे ख़बर मिली कि सुपौल जाने पर डिक्ज़ साहब का छाता-रोग जड़ से जाता रहा। कारण, जैसे को तैसा मिल गया था।

गोपालराम गहमरी

"हिंदू-संगठन"*

भाई परमानंदजी भारतवर्ष के उन विचारशील पुरुषों में हैं, जिनसे देश का गौरव है। उन्होंने देश के लिये जितनी तकलीफ़ें सही हैं, केवल उन्हीं के कारण उनका कथन सुनना उनके देशवासियों का कर्तव्य है। किंतु भाई परमानंदजी प्रतिभाशाली विद्वान् भी हैं; और साथ-ही-साथ, सब तरह के अनुभव के कारण, आपके विचारों में ऐसी प्रौढ़ता आ गई है, जो एकाएक अन्यत्र कम मिलती है। प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य और विषय नाम ही से प्रकट है। इस पुस्तक में १६ अध्याय हैं। सबसे पहले "जातीय भाव क्या है?" इस विषय का विवेचन किया गया है। आपने दिखलाया है कि अंध-धार्मिक भाव जातीयता के भाव का सबसे बड़ा शत्रु है। आप लिखते हैं—"धर्म और जातीयता एक तरह से दो उलटी बातें हैं।" आपकी राय में—"जहाँ धर्म-भाव प्रबल होता है, वहाँ मत-भेद पर इतना ज़ोर दिया जाता है कि देश-प्रेम सर्वथा नष्ट हो जाता है।" अतएव आपका कहना है—और वह ठीक भी है—कि जातीयता के विकास के लिये विचार-स्वातंत्र्य की बड़ी आवश्यकता है। आप कहते हैं—"वह झूठ बोलता है, जो यह कहता है कि मैं उसे (ईश्वर को) जानता हूँ। केवल गीता है, जो विचार-स्वातंत्र्य का आदर करती है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्;
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।

गीता के रचयिता के सामने सिद्धांत थे। लोक के लिये एक-दो सिद्धांत आवश्यक बताकर वह विचार-स्वातंत्र्य का अंत कर सकता था। परंतु उसने विचार-स्वातंत्र्य को अच्छा समझा। मनुष्य का हित भी इसी में था।"

इसके बाद दूसरे अध्याय में भाईजी ने 'हिंदू'-शब्द की व्याख्या और परिभाषा लिखी है। आपने 'हिंदू'-शब्द की कईएक परिभाषाओं की परीक्षा करके उन्हें निकम्मा ठहराया है; और अंत में एक अँगरेज़ी-पुस्तक—Hinduism—में दी हुई परिभाषा के पक्ष में अपनी सम्मति दी है। वह परिभाषा यह है कि "हिंदू वह है, जो भारत को अपनी पुण्य-भूमि और मातृभूमि समझता है।" इस परिभाषा में भी कई त्रुटियाँ हैं। इसके अनुसार ब्रह्म-देश के बौद्ध तो हिंदू हैं, किंतु चीन के बौद्ध हिंदू नहीं हो सकते। इसी प्रकार आफ़्रिका, डमरा या ब्रिटिश गायना में बसे हुए हिंदू 'हिंदू'-श्रेणी में नहीं लाए जा सकते; क्योंकि भारत उनके लिये पुण्य-भूमि होने पर भी मातृभूमि नहीं है। यदि हिंदुत्व का संबंध धार्मिक विचारों या धार्मिक भावों से है, तो अवश्य ही इस परिभाषा में से संकुचित स्थानीय भाव हटाना पड़ेगा। वास्तव में हिंदू-शब्द की परिभाषा करना बड़ा कठिन है। हमारी राय में तो इसकी केवल यही एक परिभाषा संभव है कि जो अपने को हिंदू समझता है, वही हिंदू है। आगे चलकर भाईजी भी इससे सहमत हो जाते हैं।

भाईजी आर्य-समाजी होने पर भी हिंदू-शब्द से प्रेम करते हैं। वह लिखते हैं—"हिंदू हमारे लिये केवल एक नाम ही नहीं है। इसके साथ तो आरंभ से अब तक का हमारी जाति का इतिहास बँधा है। इसके साथ हमारे सब विचार, आदर्श, सफलता और असफलता ऐसे बँधे हैं कि इनकी एक परिभाषा करना कठिन है। इस नाम की कथा बतानेवाले हमारे कवि और अवतार हुए। इसके लिये शास्त्रों और दर्शनों के रचयिता हुए। इसकी मान-रक्षा के लिये हमारे वीर और क्षत्रिय युद्ध करते रहे, इसके लिये उन्होंने अपने प्राणों को वार दिया।"

तीसरे अध्याय में भाईजी ने बौद्ध-धर्म के ऊपर विचार किया है। आगे भी आपने इस पर कुछ लिखा है। इस संबंध में आपके विचार स्वामी सत्यदेवजी के विचारों के बिलकुल विपरीत हैं। आप लिखते हैं—"एक ज़माने में भारतवर्ष ने अपनी सारी शक्ति को इसी बात में लगा दिया कि किसी प्रकार यह संसार अहिंसा और शांति का स्थान बन जाय। यह प्रयोग एक महाप्रयोग था। बौद्ध इस बात के लिये प्रयत्न कर रहे थे कि किसी पक्की नींव पर अपने विशाल धर्म को स्थापित किया जाय।

---

* लेखक, देवस्वरूप भाई परमानंदजी। प्रकाशक, आकाशवाणी-पुस्तकालय-कार्यालय, मोहनलाल-रोड, लाहौर। पृष्ठ-संख्या २१२, मूल्य १); कवर पर लेखक का हाफ़टोन-चित्र।

चिह्न है। अतएव हिंदुओं का धर्म है कि अपनी निर्बलता को दूर करें।"

"किंतु हिंदुओं में अपने को सबल बनाने की इच्छा जैसे उत्पन्न हुई, वैसे ही मुसलमान आग-बबूला हो गए। यह बात प्रकट करती है कि उनका दिल साफ़ न था।" हिंदुओं के शक्ति-संपन्न हो जाने से मुसलमान लोग अपने लिये जो भय की बातें बतलाते हैं, भाईजी ने उनमें से प्रत्येक पर विचार किया है, और उनके बहुत ही अच्छे मुँह-तोड़ उत्तर दिए हैं।

अंत में भाईजी ने उन उपायों पर विचार किया है, जिनसे हिंदुओं का संगठन हो सकता है। आपकी राय में देशी राज्यों का सुधारना उन उपायों में से मुख्य है। किंतु सबसे अधिक ज़ोर इस बात पर दिया गया है कि समाज में, जातीयता के भाव का संचार किया जाय, समाज में आपस में प्रेम फैले। भाईजी कहते हैं—"वह कौन-सा सिमेंट है, जो इस बालू के कणों को लोहा बना दे? वह सिमेंट इस नाम (हिंदू) के साथ हमारा प्रेम है, इश्क़ है! वह प्रेम क्या, जिसमें स्वार्थ हो? प्रेम करने में ही अपने को अर्पण करना पाया जाता है। × × × हिंदुओ, अपनी जातीयता को एक चमत्कार समझकर उस पर इस तरह क़ुरबान होना सीखो, जैसे पतंग दीप पर होता है। × × × हम राधा के प्रेम का वर्णन करते हैं। रात बड़ी अँधेरी है। मेघों की घनघोर घटा छाई हुई है। बड़ा घना वन है। बूँदें पड़नी शुरू हो गई हैं। कृष्ण इस वन में घूम रहा है। नंद राधा को संबोधित करके कहता है—"यह नवयुवक इन काले मेघों में, घने वृक्षों में और अँधेरी रात्रि में डरता होगा। जाओ पुत्री, उसे बुला लाओ। अपने घर में उसे ले आओ, ताकि वह आराम करे।" राधा ने देखा, और उसके अंदर प्रेम-प्रवाह बहने लगा। कृष्ण इस जाति की आत्मा है। हिंदुओ, इसके साथ वह प्रेम करो, जो राधा ने किया! प्राण-रूपी कमल-फूल को अपने हाथों में लेकर कृष्ण के अर्पण करो।"

जैसा कि हमने प्रारंभ में कहा है, भाईजी एक अनुभवी और विचारशील विद्वान् हैं। उनकी इस पुस्तक में विचार के लिये यथेष्ट सामग्री है। भाषा ज़ोरदार है। भावों में विचित्र नवीनता और ताज़गी है। इन गुणों के सामने पुस्तक की अशुद्धियों पर ध्यान भी नहीं जाता। हिंदू-संगठन की आवश्यकता, उसका इतिहास और उस की प्राप्ति के उपायों पर इससे अच्छा प्रकाश पड़ता है। प्रत्येक हिंदू को यह पुस्तक पढ़नी ही चाहिए, इसकी बातों पर मनन करना चाहिए। *हिंदू-विद्यालयों में यदि यह नवयुवकों को पढ़ाई जाय, तो इससे बहुत लाभ की संभावना है।* आशा है, इस उत्तम पुस्तक की हज़ारों-लाखों प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक जायँगी, और इसे पढ़कर यह मुर्दा हिंदू-जाति जीवित होकर अपने हिताहित को समझ सकेगी। तथास्तु।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

अन्योक्तियाँ

जो न भले हैं, तो भले फले दें फल-फूल।
काँटे बोवें क्यों नहीं, काँटे-भरे बबूल?
है छाया पाया नहीं, हैं फल चढ़े पहाड़;
ऊँचा बन पाया नहीं, सिर ऊँचा कर ताड़।
काँटे बिध-बिधके न क्यों बेध-बेध दें पैर;
बैर नाम है बेर का, कैसे करे न बैर?
भली रही, होती अगर भौंरे ही से भूल;
बेला पर, फूले नहीं क्यों बेला के फूल?
पत खोकर होती नहीं सुखद सुखों की प्यास;
क्या फूले, दल-रहित हो, फूले अगर पलास!
अधिक मधुर जो कर सका तेरे फल को पाल;
क्या रसालता तो रही तेरी अरे रसाल,
रह समीर सुत से हिले बारि-कण दिन-रात;
क्यों विदलित होता रहे कदली-दल का गात।
विपुल धर्लों को स-रुचिकर बन बहु मंगल-धाम;
बड़े हुए हैं कदलि-दल बड़े-बड़े कर काम।
कटुता में पटुता मिली, है हित-पटु कटु नीम;
दल है नर-दुख-दलन-रत, फल हैं फलद असीम।
ऊँचा होकर भी सका तू बच भलो न बाज;
चंचल दल तेरे रहें, क्यों चलदल *, सब काज।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

---

* चलदल पीपल का नाम है।

इष्टदेव

यदि एक बार तेरा दर्शन ललाम पाऊँ,
तो मैं प्रसन्नता से फूला नहीं समाऊँ।
तब मैं सहर्ष सारी निज संपदा लुटाऊँ;
मन की, बहुत दिनों की, सब साध भी मिटाऊँ।
तेरे पुनीत मग में दग-पाँवड़े बिछाऊँ;
आसन बना हृदय को सादर तुझे बिठाऊँ।
कर स्वच्छ मन-भवन को, तुझको वहीं टिकाऊँ;
गाकर तथा बजाकर तुझको सदा रिझाऊँ।
पद-रज पवित्र तेरी निज शीश में लगाऊँ;
निज नैन-नीर से मैं तेरे चरण धुलाऊँ।
उर-प्रेम-ज्योति की मैं शुचि आरती जलाऊँ;
फल-फूल जन्म-तरु के सब मैं तुझे चढ़ाऊँ।
तेरी सुखद टहल में मैं सब समय बिताऊँ;
बस, देख-देख तुझको लोचन सफल बनाऊँ।
सुख से सदैव तेरी आज्ञा सभी बजाऊँ;
तजकर तुझे कभी मैं तो स्वर्ग भी न जाऊँ।

गोपालशरणसिंह

उत्तरी ध्रुव के रॉबिंसन क्रूसो

"Cowards die many times before their deaths.
The Valiant tastes of death but once."

Shakespeare.

ते-जागते राष्ट्र के मुख्य लक्षण ये हैं—स्वदेश-प्रेम के लिये आत्म-बलि, अदम्य साहस, उत्कट धैर्य, विज्ञान और खोज के लिये जीवन को हथेली पर लिए फिरना। अँगरेज़, अमेरिकन और जर्मन लोगों में ये गुण भरे पड़े हैं। इसी से वे सजीव और उन्नत जातियाँ हैं। एक अँगरेज़ का बच्चा अपने देश के लिये अपना सिर, अपना सर्वस्व तक देने को उद्यत रहता है। जो लोग हाथ-पर-हाथ रक्खे, केवल भाग्य के भरोसे, बैठे रहते हैं, यथार्थ काम न करके लंबी-चौड़ी हाँकते हैं, स्वार्थी हैं, अपनी मातृभूमि पर भक्ति नहीं रखते और 'दास मलूका' के इस सिद्धांत के अनुयायी हैं कि—

"पंछी करै न चाकरी, अजगर करै न काम;
दास मलूका यों कहै, सबके दाता राम।"

वे सर्वदा दास ही रहते हैं, घर और बाहर ठुकराए जाते हैं। 'एवरेस्ट'-पहाड़ की चोटी पर पहुँचने के उद्योग में अभी हाल में दो अँगरेज़ वीरों ने अपनी जानें गँवा दीं। बहुत-से लोग इस काम को पागलपन की सनक भी कह सकते हैं। पर ये जीवन के चिह्न हैं, और इस बात के द्योतक हैं कि अँगरेज़-जाति एक जीवित जाति है। जब तक खोज और दुस्साहस का भाव (Love of adventure) किसी जाति में नहीं पैदा होता, तब तक उसे मुर्दा ही समझना चाहिए। स्वतंत्र-देश-वासी साहस-पूर्ण खोजों के लिये अपने जीवन की आहुति

क्रॉफ़र्ड और उसकी बिल्ली
(इसकी अवस्था केवल २० वर्ष की थी। नेता और खोजी बनने की अभिलाषा ने इसे उत्तरी ध्रुव की यात्रा के लिये प्रेरित किया था)

तब तक देते रहते हैं, जब तक वे किसी ख़ास खोज या देश के कार्य-विशेष में सफल न हो जायँ। पंद्रहवीं

शताब्दी में भारतवर्ष के समुद्र-मार्ग को ढूँढ़ने के लिये कितने ही आदमियों ने अपने प्राण गँवाए, और मृत्यु की तनिक भी पर्वा न करके अंत को वे लोग सफलता पा ही गए। उत्तरी ध्रुव की ही बात ले लीजिए। उत्तरी ध्रुव की खोज और वहाँ पहुँचने के लिये यात्रा करके राह में कितने ही वीर गल गए। बहुतों का अब तक पता नहीं कि क्या हुए। पर स्वतंत्र देशवालों ने वहाँ पहुँचने के लिये मृत्यु को चुनौती दे रक्खी है! इस बलिदान का फल यह हुआ है कि शीघ्र ही उत्तरी ध्रुव की समस्या हल हो जायगी, और वहाँ होकर वायुयानों का मार्ग बनाया जायगा। हाल ही में उत्तरी ध्रुव की ओर की एक अतीव दुःखांत घटना का समाचार मिला है। घटना बड़ा हृदयविदारक, रोमांचकारी तथा शिक्षा-प्रद है। आशा है, माधुरी के पाठक उससे कुछ लाभ उठावेंगे।

उत्तरी ध्रुव में, एलास्का के उत्तर की ओर, रैंगल नाम का एक टापू है। इसकी भौगोलिक स्थिति बड़े महत्त्व की है। बहुत वर्षों से इसको उपनिवेश बनाने का प्रयत्न हो रहा था। इस काम के लिये जापान, अमेरिका और इँगलैंड में घोर स्पर्द्धा चल रही थी; क्योंकि रैंगल-टापू के अधिकार से योरप और एशिया के बीच वायुयानों का मार्ग बहुत ही सुगम और सस्ता हो जाने की संभावना है। इसीलिये वहाँ एक खोज करनेवाला दल (Expedition) गया भी; परंतु फल कुछ न हुआ। ग्यारह मनुष्यों के प्राण अवश्य गए। गत तीन वर्ष की बात है कि चार नवयुवकों ने इतिहास में अपना नाम अमर करने और अपने देश के गौरव की वृद्धि के लिये रैंगल-टापू की खोज का निश्चय किया, और एक एस्किमो-रमणी को साथ लेकर वे रैंगल-टापू की ओर चल दिए। दो वर्ष बाद इन पाँच प्राणियों में केवल एस्किमो-स्त्री ही जीवित मिली। इस उत्साही खोजी-दल का नेता एलन क्रॉफ़र्ड-नामक एक कनाडियन नवयुवक था। वह टॉरॉटो-विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था। उस समय उसकी आयु केवल बीस वर्ष की थी। रैंगल-टापू की खोज की उमंग में वह मस्त था। संसार उसकी अनुसंधान-प्रियता और आपत्तियों की पर्वा न करने की वीर-प्रवृत्ति के लिये उसकी प्रशंसा करेगा—यही विचार उसकी आकांक्षाओं के क्षितिज को और भी विशाल बना रहा था। उस दल का एक दूसरा सदस्य था मिल्टन गैले। उसकी आयु केवल उन्नीस वर्ष की थी। तीसरा एक तरुण युवा था मोरर। चौथा साथी था २८ वर्ष की अवस्था का युवक ई० लॉर्न नाइट। यह इस दल का उपनेता था। इनके साथ ऐडा ब्लैक जैक नाम की एक तेईस वर्ष की एस्किमो-स्त्री भी थी। उत्तरी ध्रुव की यात्रा में किसी एस्किमो को साथ ले जाना अत्यंत आवश्यक होता है; क्योंकि सीने, पिरोने, झोपड़ा बनाने और शिकार खेलने का काम एस्किमो लोगों को ही सौंपना पड़ता है। रैंगल-टापू को, उसकी भयानकता के कारण, 'शीत-कटिबंध का मृत्युपाश' कहते हैं। ये छोकरे नोम-स्थान से चुपचाप रैंगल-टापू की ओर चल पड़े। इनकी कुछ ख़बर न मिलने से, दो वर्ष बाद, मि० स्टॉफ़्रेंसन के नेतृत्व में, एक सहायक दल भेजा गया। बहुत दिनों तक मि० स्टॉफ़्रेंसन हिमाच्छादित प्रदेश में टोकरें खाते रहे। अंत को एक दिन उनके जहाज़वालों ने एक जर्जित तंबू देखा, और मिट्टी और बर्फ़ में दबी हुई एक बोतल भी पाई। उसमें एक काग़ज़ मिला। उसमें लिखा था—"सम्राट् जॉर्ज के नाम पर यह टापू"। काग़ज़ पर चारों लड़कों के हस्ताक्षर थे, और तारीख़ थी—१६ सितंबर, सन् १९२१। कुछ और पता न पाकर

खोजी बालक मिल्टन गैले

(इसकी अवस्था केवल १९ वर्ष की थी। युवावस्था और अनुभव-हीनता के कारण इसे अपने जीवन से हाथ धोने पड़े)

सहायक दल घोर शीत, बर्फ़ और तूफ़ान का सामना करता रहा। चार दिन बाद अकस्मात् उसकी दृष्टि एक तंबू पर पड़ी। शीघ्र ही उसमें से एक स्त्री निकलती हुई दिखाई पड़ी। इस पर सहायक दल का नेता झटपट उसकी ओर बढ़ा। उसके पास जाकर उसने देखा, स्त्री के मुख पर शिकार के चिह्न थे। उसका हाथ लड़ाकों का-सा था। गले में उसके दूरबीन पड़ी हुई

उत्साही युवक मोरर
(रैंगल-टापू की यात्रा पर जाने से कुछ ही दिन पूर्व इसका विवाह हुआ था)

थी। वह फ़र और रेन डियर की खाल ओढ़े हुई थी। ज्यों ही उसने अपना मुँह खोला, त्यों ही सहायक दल के नेता ने उसे पहचानकर कहा—"ऐडा!" उसने टूटी-फूटी अँगरेज़ी में कहा—"क्रॉफ़र्ड, गैले और मोरर कहाँ हैं?" सहायक दल के नेता के दिल को एक ठेस लगी। उसने कहा—"मुझे कुछ नहीं मालूम। मैं तुम लोगों की ही तलाश में तो आया हूँ।" ऐडा ब्लैक जैक ने कहा—"यहाँ पर मेरे सिवा और कोई नहीं जीवित है। नाइट २२ जून को इस संसार से चल बसा। मैं अब अपनी मा के पास जाना चाहती हूँ।" यह कहकर वह मूर्च्छित हो गिर पड़ी। होश आने पर वे लोग उसे उसके तंबू में ले गए। वहाँ जाकर उन्होंने एक भीषण दृश्य देखा। एक ओर नाइट की लाश रक्खी हुई थी, और तंबू के भीतर कारतूस, राइफ़ल, बंदूक़, टाइपराइटर, लिखे हुए काग़ज़, सील, वालरस और अन्य वस्तुएँ पड़ी हुई थीं। बर्फ़ के भालू से बचने के लिये द्वार पर टूटे पीपे आदि अड़ाए हुए थे। ज्यों ही तंबू में अग्नि प्रज्वलित की गई, त्यों ही एक कोने से एक भूरी बिल्ली निकली, और ऐडा ब्लैक जैक की गोद में आकर बैठ गई। यह बिल्ली क्रॉफ़र्ड ही की थी, और उस दो वर्ष के नीरव काल में ऐडा की सहेली रही थी। ऐडा ने कहा—यदि यह बिल्ली उसके साथ न होती, तो वह पागल हो जाती। फिर ऐडा ने अपनी राम-कहानी इस प्रकार वर्णन की—

"ग्रीष्म-काल हम लोगों ने खोज और अन्वेषण में बिताया। फिर हम लोगों ने शीत-काल की भयंकरता और कठिनाइयों का सामना करने की तैयारी की। हम लोगों ने तंबू और बर्फ़ के मकान बना लिए। परंतु खाद्य-सामग्री की कमी थी। इधर नाइट और मैं, दोनों बीमारी के कारण बहुत शिथिल हो गए थे। इसलिये नाइट को मेरी संरक्षता में छोड़कर क्रॉफ़र्ड, मोरर और मिल्टन गैले साइबेरिया की ओर शिकार के लिये चले।

खोजी-दल का वास्तविक नेता
लॉर्न नाइट
(इसकी आयु २८ वर्ष की थी)

जब वे चलने लगे, तब मैंने रोकर उन्हें रोकना चाहा, पर उन्होंने न माना। उनके जाते ही हिम और वायु का ऐसा प्रकोप हुआ कि मानो प्रलय हो रहा हो। रात्रि के सोने से पूर्व मैं नित्य बाइबिल पढ़ती और उनके भले की प्रार्थना करती हूँ। हममें से सब बच सकते थे, यदि हमारे पास ६ वालरस होते। इन वालरसों से संपूर्ण शीत-काल का कार्य चल जाता। एक वालरस का बोझ एक टन से अधिक होता है। यहाँ पर शिकार के सिवा और कोई चीज़ खाने को है ही नहीं। एक मनुष्य के लिये ढाई सेर शिकार यथेष्ट होता

अदम्य साहस और उत्कट धैर्य की मूर्ति
वीर रमणी ऐडा ब्लैक जैक
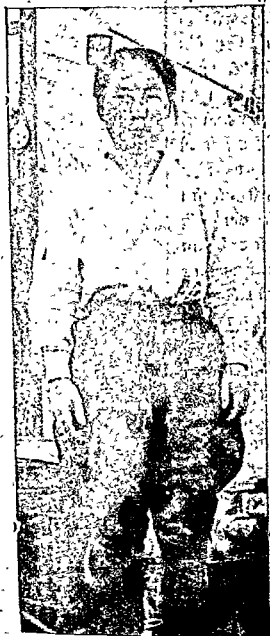
है। वालरस दिखाई भी पड़े; परंतु हमारे पास खाल की नौका या वालरस-अंकुश नहीं था। हमने यह ख़याल भी नहीं किया कि बिना इसके कार्य ही नहीं चलेगा। अंत में नाइट का भार मुझ पर पड़ा। साथियों के चले जाने के उपरांत मेरी बड़ी दुर्दशा हुई। भोजन की कमी थी। राइफ़ल, बंदूक़ और कारतूस थीं, पर मुझको शिकार खेलना नहीं आता था। इधर नाइट की दशा दिन-दिन शोचनीय होती गई। जंगली पशुओं के पकड़ने के लिये जाल भी थे; परंतु मुझे तो उनका लगाना ही न आता था। जब कभी लगाए भी, तो उनमें कोई नहीं फँसा। प्रत्येक क्षण ध्रुव-प्रदेश के श्वेत भालुओं का आतंक मेरे निकट था, और भय था कि न-जाने कब वे आकर नाइट का और मेरा अंत कर देंगे। अंत में परिस्थितियों ने मुझे कड़ा बना दिया, और धीरे-धीरे मैं लकड़ी काटना, बर्फ़ काटना और बर्फ़ पिघलाने का कार्य करने लगी। परंतु यहाँ खाने के लिये कुछ भी न था। मुझको राइफ़ल चलाना नहीं आता था। परमात्मा से नाइट प्रार्थना करता था कि वह उनके स्थान के निकट एक श्वेत भालू भेज दे, ताकि वह उसे वहीं से पड़े-पड़े मार दे। हिलने-डुलने की भी शक्ति उसमें नहीं थी। धीरे-धीरे नाइट की दशा बिगड़ती गई, और २२ जून सन् १९२३ को वह चल बसा।"

नाइट ने जो अपनी डायरी छोड़ी है, वह बड़े काम की है। उसमें रैंगल-टापू के जीवन का वर्णन भी है। अंत की पंक्तियाँ, जो नाइट ने अपनी डायरी में लिखी हैं, बड़ी भाव-भरी और दिल हिलानेवाली हैं। दो-चार उदाहरणार्थ दी जाती हैं—

"Here lies a polar explorer, so valiant and bold,
Who devoted his life to snow, storms and cold.
× × ×
For nourishment he had snow and scenery,
Which reminded him of the grim bravery."

ऐडा ब्लैक जैक नाइट की मृत्यु के बाद अकेली रह गई। उस सुनसान निर्जन स्थान में उसने पहले निशाना लगाना सीखा, और धीरे-धीरे शिकार का भी अभ्यास किया। अपनी डायरी में वह लिखती है— "औरों की भाँति मैंने भी दैनिक डायरी लिखी। मैं बंदूक़ लेकर चिड़ियों का शिकार करती और उनके अंडे बीन लाती। मैंने एक दिन चार ध्रुव-प्रांत के भालू

रैंगल-टापू

(रैंगल-टापू की दुर्घटना इसी टापू की खोज के कारण हुई। इस पर अब ब्रिटिश-सरकार का अधिकार है और ध्रुव के प्रदेशों के वायु-मार्गों के लिये यह केंद्र बनाया जायगा)

भी देखे ; परंतु मेरा साहस उन पर गोली चलाने का नहीं हुआ। मैंने सील का भी शिकार खूब खेला। मेरा समय खाल और फ़र के वस्त्र सीने, शिकार खेलने, खाना बनाने और बाइबिल पढ़ने में बीतने लगा। एक दिन मैं अपनी प्रातःकाल की अग्नि जला रही थी कि मुझे एक विचित्र ध्वनि सुन पड़ी। अपनी दूरबीन उठाकर देखा, तो मुझे एक जहाज़ दिखाई पड़ा। मैंने समझा, क्रॉफ़र्ड आदि आ गए। पर वह जहाज़ सहायक दलवालों का निकला।" ऐडा ब्लैक जैक अब भी जीवित है, और एलास्का के नोम-स्थान में रहती है।

जिस कार्य के लिये इन वीरों ने अपना जीवन दिया, वह पूर्ण हो गया। रैंगल-टापू में अब ब्रिटिश-पताका फहरा रही है। वहाँ बारह एस्किमो लोगों के साथ एक अँगरेज़ उन बालकों के कार्य को समाप्त कर रहा है। व्यापारिक दृष्टि से तो रैंगल-टापू का महत्त्व है ही, क्योंकि फ़र के लिये तो इसे गोदाम ही समझना चाहिए; पर राजनीतिक दृष्टि से भी कदाचित् वह स्थान, जहाँ ऐडा शिकार खेला करती थी और जहाँ नाइट की अंतिम जीवन-लीला समाप्त हुई, मनुष्य की चहल-पहल से शीघ्र ही गूँजने लगेगा। आज क्रॉफ़र्ड और नाइट आदि नहीं हैं ; पर वे अमर हो गए। अपने देश के लिये प्राण देकर उन्होंने अपने देश की विमल विभूति को उज्ज्वल बना दिया।

श्रीराम शर्मा

महाकवि माघ

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ;
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।" *

भारतवर्ष में, उच्च कोटि के प्रसिद्ध महाकाव्यों में, 'शिशुपाल-वध' या 'माघ' के नाम से प्रसिद्ध ललित काव्य के कर्ता महाकवि माघ को कौन संस्कृतज्ञ नहीं जानता। संस्कृत के सभी विद्वान् तो माघ से परिचित ही हैं। पर उनके अतिरिक्त जो सज्जन संस्कृत से अनभिज्ञ होने पर भी साहित्य-रसिक तथा माधुरी के प्रेमी पाठक हैं, उनकी ज्ञान-वृद्धि एवं मनोविनोद के लिये माघ का परिचय देनेवाला छोटा-सा यह लेख लिखा जाता है। आशा है, यह लेख पाठकों के लिये मनोरंजक होगा।

साधारणतः भारत के कालिदास, भारवि आदि प्राचीन संस्कृत-कवियों की जीवनी लिखने के लिये सामग्री नहीं

* कालिदास की रचना में उत्कृष्ट उपमाएँ, भारवि की रचना में अर्थ-गौरव और दंडी की रचना में पद-लालित्य है ; किंतु माघ की रचना में ये तीनों गुण पाए जाते हैं।

मिलती। उनके ग्रंथों से उनका कुछ भी परिचय न मिलना बड़े ही दुर्भाग्य की बात है। किंतु कविवर माघ के विषय में यह बात नहीं है। उनके "शिशुपाल-वध"-काव्य के अंत में पाँच श्लोक ऐसे हैं, जिनसे कवि का साधारण वंश-परिचय मिल जाता है। वह परिचय मैं आगे प्रकट करूँगा। उसके पहले निम्न-लिखित अनोखी तथा उदारता-पूर्ण घटना लिखे बिना मैं नहीं रह सकता। उसके बाद क्रमशः लेख के ऊपर उद्धृत किए गए श्लोक के अनुसार माघ के काव्य में उपमा, अर्थ-गौरव और पद-लालित्य, इन तीनों गुणों का समावेश दिखाते हुए कवि का परिचय दिया जायगा। अच्छा तो उस अनोखी घटना का हाल सुनिए—

कहते हैं, माघ कवि एक समय दुर्भिक्ष से पीड़ित होकर, अपना देश छोड़कर, धारा-नगरी के निकट आए। वहाँ से उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को राजा के नाम का एक पत्र देकर राजभवन में भेजा। उनकी स्त्री ने जाकर द्वारपाल से कहा—"मुझे राजा के पास ले चलो।" द्वारपाल ने राजा के पास जाकर कहा—"महाराज, माघ-नामक एक कवि और बड़े विद्वान् सज्जन दुर्भिक्ष से पीड़ित होकर गुजरात से यहाँ आए हैं। वह नगर के बाहर ठहरे हैं। उनकी आज्ञा से उनकी स्त्री यहाँ आई है, जो द्वार पर खड़ी है।" राजा ने कहा—"कवि-पत्नी को यहाँ बुला लाओ।" माघ की पत्नी ने राजा के सामने जाकर उसको वह पत्र दे दिया। राजा ने पत्र को पढ़ा। उसमें यह श्लोक लिखा था—

"कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं
त्यजति मदमुलूकः प्रीतिमाँश्चक्रवाकः;
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां हा विचित्रो विपाकः।"

(माघ, सर्ग ११, श्लो० ६४)

अर्थात् कुमुद-वन (कोकावेली के वन) की शोभा मिट गई। कमल-कुसुम शोभायमान हो उठे। उल्लूक (उल्लू-पक्षी) मद को त्याग करता है (कारण, दिन को वह अंधा बन जाता है), और चक्रवाक-पक्षी प्रसन्न हो रहा है (कारण, रात को वह अपने जोड़े से बिछुड़ जाता है, और सूर्य के निकलते ही उसकी प्रिया उस पार से वह आकर इस पार उससे मिल जाती है); क्योंकि सूर्यदेव इधर उदय को प्राप्त हो रहे हैं, और उधर चंद्रमा अस्त होने जा रहे हैं। हा नष्ट विधाता के कार्यों का परिणाम विचित्र है।

यह *स्वभावोक्ति-गुण-विशिष्ट प्रातःकालिक परिणाम-*सूचक पद्य पढ़कर भोजराज अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने तत्काल तीन लाख रुपए माघ की पत्नी को देकर कहा—"माता, यह मैंने केवल भोजनार्थ दिया है। प्रातःकाल मैं स्वयं कविवर की सेवा में उपस्थित हूँगा।" माघ की पत्नी वहाँ से रुपए लेकर राजधानी से निकल अपने डेरे को चली। किंतु मार्ग में याचक-वृंदों के मुख से अपने पति के शरत्कालीन चंद्र-किरण के समान उज्ज्वल कीर्ति-कलाप का वर्णन सुनकर उसने उन याचकों को राजा का दिया हुआ सब धन दे डाला। डेरे पर पहुँचकर वह अपने पति से बोली—"नाथ, राजा भोज ने मुझे बड़े ही आदर के साथ प्रचुर परिमाण में धन दिया था। वहाँ से जब मैं लौटी, तो याचकों के मुँह से आपकी अलौकिक गुण-गाथाएँ सुनकर मुझसे रहा न गया, और मैंने राजा का दिया हुआ सब धन उन्हीं याचकों में बाँट दिया।" यह सुनकर माघ बोले—"देवि, तुमने बहुत अच्छा किया। पर अब समस्या यह है कि प्रबर पाकर और जो याचक आ रहे हैं, उनको क्या दिया जायगा?" इसी समय माघ कवि को किसी याचक ने वस्त्र-मात्रावशेष स्थिति में देखकर इस प्रकार कहा—

"आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्मतप्तं
उद्दामदावविधुराणि च काननानि;
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमा श्रीः।"

अर्थात् हे मेघ, सूर्य की गरमी से तपे हुए पर्वतों तथा दुस्सह दावाग्नि से जल रहे जंगलों को आश्वासन देकर, अब सैकड़ों नदों और नदियों को परिपूर्ण करने के बाद जो तू रिक्त (खाली) हो गया है, सो वही तेरी सर्वोपरि शोभा है।

तब यह सुनकर उदारचेता माघ ने कहा—

"अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा
त्यागात् संकुचति दुर्ललितं मनो मे;
सेवा च लाघवकरी स्ववधे च पापं,
प्राणाः स्वयं व्रजत किं नु विलम्बितेन।"

अर्थात् पास धन नहीं है, पर दुराशा मुझे नहीं छोड़ती और मेरा मूढ़ मन दान देने से नहीं हिचकता।

याचना बुरी है, और आत्महत्या में पाप है। अरे प्राणो ! तुम स्वयं निकल जाओ ; अब देर करने से क्या लाभ ?

और—

"दारिद्र्यानलसन्तापः शान्तः सन्तोषवारिणा ;
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति।"

अर्थात् दारिद्र्य-रूप अग्नि का संताप तो संतोष-रूप जल से बुझ गया, पर अब याचकों की आशा टूटने से उत्पन्न यह अंतर्दाह कैसे शांत हो ?

अंत में कवि ने यह कहकर प्राण-त्याग कर दिया—

"व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थतां गते ;
पश्चादपि हि गन्तव्यं क सार्थः पुनरीदृशः।"

अर्थात् अरे प्राणो ! जब याचक-वृंद निराश होकर चले गए, तब तुम भी उनके साथ चल दो। पीछे से भी तो जाना ही है, मगर फिर ऐसा साथ कहाँ मिलेगा ?

माघ कवि के परलोक सिधारने पर उनकी स्त्री ने राजा भोज के यहाँ ख़बर पहुँचाई। यह समाचार सुनते ही राजा वहाँ आए। तब माघ की पत्नी ने निवेदन किया—"राजन् ! वह आपके देश में आए, और आप ही के नगर में उनका प्राणांत हुआ। अतः उनका शेष कार्य अब यहीं होना चाहिए।" राजा ने शव को नर्मदा के किनारे भेजा, और उनकी स्त्री अपने पति के साथ चिता में बैठकर सती हो गई। यह कथा बल्लाल-कृत 'भोजप्रबंध' में पाई जाती है। जैन-कवि मेरुतुंगाचार्य-रचित 'प्रबंधचिंतामणि' (१३६१ वि० संवत् की लिखी) में भी उक्त कथा लिखी हुई है।

अब मैं माघ कवि के 'शिशुपाल-वध' के कुछ ललित श्लोक उद्धृत कर उनके विविध विचार-सार सुनाता हूँ। माघ कवि के अर्थ-गौरव-युक्त राजनीतिक विचार सुनिए—

'शिशुपाल-वध' के द्वितीय सर्ग में उद्धव, बलराम, कृष्ण और युधिष्ठिर इन सबकी युद्ध-मंत्रणा के प्रकरण में माघ लिखते हैं—

"उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता ;
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च।"

अर्थात् हित चाहनेवाले पुरुष को चाहिए कि बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा न करे ; क्योंकि शिष्टों ने कहा है, बढ़ रहा शत्रु और रोग दोनों ही समान भयानक और हानि पहुँचानेवाले होते हैं।

संपत्ति के विषय में माघ इस प्रकार कहते हैं (जैसा कि आजकल अमेरिकावालों का सिद्धांत है। भारत के तो वे दिन गए !)—

"सम्पदा सुस्थिरम्मन्यो भवति स्वल्पयाऽपि यः ;
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्द्धयति तस्य ताम्।"

अर्थात् थोड़ी-सी भी संपत्ति पाकर उसे सुस्थिर समझकर जो इतने ही से संतुष्ट हो जाता है, मेरी समझ में, विधाता अपने कर्तव्य का पालन हुआ जानकर ही फिर उसकी संपत्ति को नहीं बढ़ाता। मतलब यह कि पुरुषार्थ को सदैव जारी रखना चाहिए।

मानापमान के विषय में आप कहते हैं—

"मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति ;
तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः।"

अर्थात् जो शत्रु-कृत अपमान के दुःख से जलता हुआ भी जीता है, उसके जीने से मरना ही भला ! बल्कि मैं तो कहूँगा कि माता को केवल क्लेश पहुँचानेवाले ऐसे मनुष्य का जन्म ही न हो।

सज्जनता का दंड किस प्रकार मिलता है, इसको महाकवि इस प्रकार कहते हैं—

"तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत् ;
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्।"

अर्थात् सूर्य और चंद्र, दोनों राहु के एक-से अपराधी हैं ; किंतु वह सूर्य को तो बहुत दिनों पर ग्रसता है, पर चंद्र को जल्दी-जल्दी ग्रसता है। इसका कारण केवल चंद्रमा की मृदुता ही है (सूर्य-ग्रहण की अपेक्षा चंद्र-ग्रहण शीघ्र-शीघ्र हुआ करता है)। सारांश यह कि अत्यंत शांत सज्जनों को ही अधिकतर कष्ट झेलने पड़ते हैं, उन्हीं पर शत्रु अधिक आक्रमण करते हैं।

राजा के विषय में भी उनके विचार सुनिए। वह राजा का परिचय यों देते हैं—

"बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो घनसंवृतिकञ्चुकः ;
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः।"

अर्थात् राजा वही है, जिसकी बुद्धि ही शस्त्र है, प्रकृति* ही जिसके अंग हैं, घन अर्थात् दुर्भेद्य मंत्रगुप्ति (परामर्श को प्रकट न होने देना) ही जिसका कवच है, चार (अर्थात् खुफ़िया का विभाग) जिसकी आँखें हैं, दूत ही जिसका मुख है, वही पुरुष यथार्थ राजा है।

* कामंदकीय नीति-शास्त्र में ये सात प्रकृति लिखी हैं—स्वामी, मंत्री, क़िला (दुर्ग), राष्ट्र, कोश, सैन्य और मित्र।

अब माघ कवि के कुछ मनोरंजक श्लोक लिखे जाते हैं—

'शिशुपाल-वध' के एकादश सर्ग में प्रभात-वर्णन में मनोरंजक श्लोकों की संख्या यथेष्ट है। उनमें प्रथम श्रेणी का पद-लालित्य भी पाया जाता है। कुछ देखिए—

विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृङ्गमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वातः;
प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा-
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः।

इसका मेरा पद्यानुवाद यों है—

सुरभित-मकरंदों से सना वायु प्यारा
विचलकर भ्रमरों को अंध-सा है बनाता।
प्रमद-मदन से जो नारियाँ मत्त होतीं,
प्रिय-सुरत-पसीना खेद भी मेटता है।

अब उपमा की भी बानगी लीजिए—

विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः;
कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभि-
र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः।

अर्थात् सूर्य भगवान् के उदय-काल में जो कोमल किरणें फैल गई हैं, वे ही मानो रस्सी हैं। दिशाएँ स्त्री हैं, जो भारी कलश के समान सूर्य को उस रस्सी के द्वारा सागर के बीच से ऊपर खींच रही हैं। उस समय हो रहा पक्षियों का कलरव ही उनका कोलाहल है (कोई भारी चीज़ उठाने या खींचने के समय लोग चिल्ला-चिल्लाकर ज़ोर लगाते हैं)। कितनी सुंदर और नई उपमा है! कैसी सूझ है! कैसा सांग रूपक है!

और भी—

पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः
स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्नेः;
यदयमिदमिदानीमङ्गमुद्यन्दधाति
ज्वलितखदिरकाष्ठाङ्गारगौरं विवस्वान्।

यह सूर्य रात को समुद्र में डूब गए थे, और अवश्य ही बाडवानल की ज्वालाओं से रात-भर तपते रहे हैं। इसी से तो इस समय जलते हुए खदिर-काष्ठ (कत्था) के अंगारे की तरह लाल शरीर लिए वहाँ से निकल रहे हैं।

अब कवि के वंश का परिचय सुनिए—

"सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः
श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः;
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव
देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा।
तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः
क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः;
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रो-
र्वचो गुणग्राहि जनैः प्रतीये।
श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु;
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयाऽदः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्।"

इसका सारांश यह है कि सुप्रभदेव श्रीवर्मल-नामक राजा के सर्वाधिकारी, धर्माधिकारी और सेनापति थे। वह निष्पाप और देव-तुल्य थे। उनकी दृष्टि (अंतर्दृष्टि=प्रतिभा) किसी विषय में अटकती न थी, अर्थात् कठिन-से-कठिन प्रश्न उपस्थित होने पर उसे हल करने में कुंठित नहीं होती थी। उनके पुत्र बड़े उदार, क्षमाशील, निग्रहानुग्रह-समर्थ और धर्मनिष्ठ हुए, जिनका नाम दत्तक था। उनका पुत्र माघ कवि हुआ, जिसने 'श्री'-शब्द से रम्य और लक्ष्मीपति के कीर्तन-मात्र से सुरम्य (गुणों से नहीं, क्योंकि इतना होने पर भी उनको सुकवि कहलाने की पूरी आशा नहीं थी; अथवा विनयावनत होकर ऐसी उक्ति लिखी है) यह शिशुपाल-वध-नामक काव्य सुकवियों की कीर्ति पाने की दुराशा से बनाया।

अस्तु। उनके निवास-स्थान के विषय में इतना तो अवश्य मानना पड़ता है कि वह गुजरात के निवासी थे; क्योंकि उन्होंने अपने काव्य के तृतीय सर्ग में द्वारका से कृष्ण के प्रस्थान का बड़ी खूबी के साथ वर्णन किया है, और द्वारका-नगरी के भी बहुत-से स्थानों का विस्तृत वर्णन किया है। फिर चतुर्थ सर्ग में रैवतक-पर्वत का वर्णन भी अत्यंत मनोहर किया है। मालूम पड़ता है, जैसे उन्होंने उसे आँखों से प्रत्यक्ष देखकर ही लिखा है। इस काव्य में वीर-रस की प्रधानता सर्वत्र है, शृंगार आदि गौण हैं। माघ कवि कृष्णजी के परम भक्त थे, जैसा कि उनके काव्य में सर्वत्र स्पष्ट है। इस समय भी गुजरात में भारत-भर की अपेक्षा विशेष कृष्ण-भक्त पाए जाते हैं।

अब मैं पाठकों का विशेष समय लेना नहीं चाहता; क्योंकि माघ के विषय में जितना लिखा जाय, थोड़ा है। जब तक माघ कवि का 'शिशुपाल-वध' किसी-न-किसी

रूप में भारतवासियों के हृदय में स्थान पाता रहेगा, तब तक वह इस लोक में अमर रहेंगे।

राजधर झा

जैनों का श्वेतांबर-आगम *

जैसे वर्तमान काल में जैन-मतावलंबियों के मुख्य दो भेद हैं, उसी प्रकार जैन-साहित्य के भी मुख्य दो भेद हैं—दिगंबर और श्वेतांबर। निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इनमें से कौन-सा भेद प्राचीन है, और कौन-सा नवीन †। तथापि, यह प्रत्यक्ष है कि दिगंबर-साहित्य की अपेक्षा श्वेतांबर-साहित्य अधिक प्राचीन और विस्तृत होने के साथ ही इतिहास और भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अधिक रुचिकर और उपयोगी भी है। इसलिये श्वेतांबर-साहित्य का वर्णन पहले किया जाता है।

साहित्य-वर्णन के पहले उन भाषाओं के रूप का कुछ दिग्दर्शन असंगत न होगा, जिनमें उक्त साहित्य इस समय मिलता है। श्वेतांबर-साहित्य प्रायः तीन भाषाओं में पाया जाता है—संस्कृत, प्राकृत और गुजराती। यद्यपि साधारणतः संस्कृत कहने से पाणिनीय संस्कृत का बोध होता है, जिसमें कालिदास, भवभूति आदि कवियों तथा शंकराचार्य, सायण आदि अन्य लेखकों ने अपने ग्रंथ लिखे, परंतु जैन-साहित्य में पाणिनीय संस्कृत के अतिरिक्त एक और प्रकार की संस्कृत भी पाई जाती है, जिसे 'जैन-संस्कृत' कहना चाहिए। जैन-संस्कृत और पाणिनीय संस्कृत में कुछ सूक्ष्म भेद है। अधिक भेद शब्दकोश में है, अर्थात् जैन-लेखकों ने अपनी संस्कृत में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो ब्राह्मण-लेखकों की संस्कृत में नहीं पाए जाते। पाश्चात्य विद्वानों ने जिन जैन-संस्कृत के ग्रंथों का संपादन किया है, उनमें ऐसे शब्दों की अनुक्रमणिका लगा दी है। ऐसे ग्रंथ प्रो० हर्मन जेकोबी-द्वारा संपादित उपमिति-भवप्रपंच कथा, डॉ० हर्टल द्वारा संपादित पूर्णभद्राचार्य का पंचतंत्र इत्यादि हैं। मैंने भी कुछ ऐसे शब्द नोट कर रक्खे हैं, जो अंत में, परिशिष्ट में, दिए हैं। पाणिनि-व्याकरण के विरुद्ध 'वीरमती', 'इमैः' इत्यादि शब्द हेमचंद्र-कृत परिशिष्टपर्वन् (स्थविरावली) में आए हैं, जिन पर प्रो० जेकोबी ने कहा है कि ये व्याकरण-विरुद्ध हैं। पं० हरगोविंद और पं० बेचरदासजी ने 'शांतिनाथ-चरित्र' की भूमिका में इनका समाधान किया है। 'कारित' के स्थान में 'कारापित' प्रायः आता है।

'प्राकृत'-शब्द की व्युत्पत्ति है—"प्रकृतेरयं प्रकृत्या निर्वृत्तो वा इति अण्"। प्रकृत का या प्रकृति का बना हुआ। इसके प्रधान दो अर्थ हैं—एक मौलिक=मूल कारण का, और दूसरा प्राकृतिक=स्वाभाविक; साधारण लोगों का। शायद इसी दूसरे अर्थ को लेकर 'प्राकृत'-शब्द साधारण लोगों की भाषा के लिये प्रयुक्त होता है, और उसको 'संस्कार की हुई' या 'सँवारी हुई' संस्कृत-भाषा से पृथक् करता है। *

लेकिन प्राकृत-वैयाकरण प्राकृत-शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं—"प्रकृतिः संस्कृतं, तत्र भवं, तत आगतं वा प्राकृतम्"

(हेमचंद्राचार्य-कृत प्राकृत-व्याकरण पाद १, सूत्रवृत्ति १)

प्रकृति अर्थात् मूल भाषा संस्कृत है, उसमें उत्पन्न होनेवाली या उससे निकली हुई भाषा प्राकृत है।

चाहे यह व्युत्पत्ति वास्तव में सत्य न हो, तथापि

---

* इस लेख का बहुत-सा अंश लेखक ने अपनी 'अर्ध-मागधी-रीडर' से लिया है। यह पुस्तक पंजाब-युनिवर्सिटी की तरफ़ से छपी है। रजिस्ट्रार, पंजाब-युनिवर्सिटी से ३) रु० में मिलती है।

† श्वेतांबर-दिगंबर-मत-भेद के लिये देखो—

(क) 'प्राचीन श्वेतांबर, अर्वाचीन दिगंबर'। लेखक, मुनि श्रीविद्याविजयजी। बनारस। सं० १९७० (गुजराती भाषा)।

(ख) 'तत्त्व-निर्णय-प्रासाद'। ३३वाँ स्तंभ। लेखक मुनि श्रीविजयानंद सूरि (अपर नाम श्रीआत्मारामजी)।

(ग) 'मोक्ष-मार्ग-प्रकाश'। पृ० २२२-२५८। लेखक, पं० टोडरमलजी, लाहौर। सं० १९५४।

(घ) प्रो० जेकोबी का लेख Z. D. M. G. के सन् १८८४ के अंक में (जर्मन-भाषा)।

* अर्धमागधी को छोड़ अन्य प्राकृतों का स्वरूप लेखक ने अपने लौकिक विद्या-गुरु श्री ए० सी० वुलनर-कृत *Introduction to Prakrit* से अनुवाद किया है। यह पुस्तक प्राकृत-ज्ञान के लिये अति उपयोगी है। ३) रु० में राय साहब मुंशी गुलाबसिंह ऐंड सन्स, लाहौर से मिलती है।

प्रकट में सत्य ही प्रतीत होती है, क्योंकि व्यवहार में हम प्राकृत-शब्दों की व्युत्पत्ति करते समय संस्कृत-शब्दों को उनका मूल मानकर उन्हीं में से प्राकृत-शब्द सिद्ध करते हैं। ऐसा करते हुए भी आधुनिक भाषा-वैज्ञानिकों का यह मत है कि "प्राकृत-शब्दों का मूल संस्कृत-शब्द है", यह कथन वहीं तक ठीक है, जहाँ तक कि संस्कृत-शब्द प्राचीन आर्य-भाषा के शब्द-रूप हैं। क्योंकि बहुधा ऐसा होता है कि प्राकृत-शब्द का मूल संस्कृत में या तो पाया ही नहीं जाता, या किसी आधुनिक ग्रंथ में मिलता है, जहाँ यह संभावना होती है कि वह शब्द प्राकृत से ही संस्कृत में रूपांतरित कर लिया गया होगा।

यदि वैदिक तथा उस समय की अन्य आर्य-भाषाओं को संस्कृत के अंतर्गत मानें, तो यह कहना ठीक होगा कि सभी प्राकृत-भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं। लेकिन यदि संस्कृत से केवल पाणिनीय संस्कृत का तात्पर्य हो, तो यह कहना ठीक नहीं कि कोई भी प्राकृत संस्कृत से निकली है। हाँ, मध्य-देश की शौरसेनी-प्राकृत उसी प्राचीन आर्य-भाषा से निकली है, जिससे कि संस्कृत। इसीलिये शौरसेनी-प्राकृत संस्कृत से अधिक मिलती-जुलती है।

प्राकृत-शब्द निम्न-लिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है।—

(१) परंपरा से प्राकृत-शब्द उन भाषाओं का द्योतक है, जिनमें संस्कृत-नाटकों के विदूषक, स्त्री-पात्र या दूसरे नीच पात्र बोलते हैं। जैसे महाराष्ट्री, मागधी आदि।

(२) विक्रम-संवत् के पाँच-सात सौ वर्ष पहले और पीछे की बोलचाल की आर्य-भाषाएँ।

(३) साधारण बोलचाल की भाषाएँ, जिनमें से धीरे-धीरे लिखने की भाषाएँ निकल पड़ती हैं।

(४) कभी-कभी प्राकृत-शब्द पाली तथा अशोक-लिपियों की भाषा के लिये भी आ जाता है।

(५) केवल महाराष्ट्री के लिये।

प्राकृत के प्रधान भेद ये हैं।—

१. महाराष्ट्री २. शौरसेनी ३. मागधी	ये विशेषकर संस्कृत-नाटकों में प्रयुक्त होती हैं। इन्हें नाटकीय प्राकृत कहना चाहिए।
४. अर्धमागधी ५. जैन-महाराष्ट्री ६. जैन-शौरसेनी ७. अपभ्रंश	जैन-साहित्य अधिकतर इन्हीं भाषाओं में पाया जाता है। ये जैन-प्राकृत हैं।

महाराष्ट्री महाराष्ट्र-देश की प्राचीन भाषा थी, और सबसे उत्तम प्राकृत गिनी जाती थी, जैसा कि काव्या-दर्श के कर्ता दंडी कवि लिखते हैं—"महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।" (का० १।३) प्राकृत व्याकरणों में सबसे पहले महाराष्ट्री के नियम दिए होते हैं। बाक़ी प्राकृतों के विशेष नियम देकर लिख देते हैं—"शेषं प्राकृतवत्।" प्राकृत से यहाँ महाराष्ट्री समझना चाहिए।

नाटक के स्त्री-पात्र परस्पर बातचीत शौरसेनी में करते हैं, लेकिन गाते महाराष्ट्री में हैं। महाराष्ट्री के गीत दूर-दूर के देशों में गाए जाते थे, जैसे कि आजकल तुलसीदास और कबीर के दोहे उत्तरीय भारत में प्रसिद्ध हैं। इस प्राकृत में कई स्वतंत्र ग्रंथ भी मिलते हैं, जैसे बप्पइराअ (वाक्पतिराज)-कृत 'गउडवहो', कवि हाल-कृत 'सत्तसई', जयवल्लभ-कृत 'विज्जालय' * इत्यादि।

अन्य प्राकृतों की अपेक्षा महाराष्ट्री में व्यंजन-लोप अधिक होता है। जैसे उचित=महा० उइअ, माग० शौर० उइद ; इतर=महा० इअर, माग० शौर० इदर। कई शब्द तो स्वर-समूह ही हो गए हैं। जैसे उदक=महा० उअअ ; उचित=महा० उइअ। राग में मधुरता और रस प्रधान हैं, न कि शब्द। इस कारण राग के लिये महाराष्ट्री विशेष उपयोगी है। इससे यह न समझना चाहिए कि महाराष्ट्री केवल कवि-कल्पित है। यह किसी समय महाराष्ट्र-देश की प्रचलित भाषा थी, जैसा कि मराठी से सिद्ध होता है।

शौरसेनी-प्राकृत मथुरा-नगरी के इर्द-गिर्द शूरसेन-देश से संबंध रखती थी। संस्कृत-नाटकों के प्राकृत-भाषी पात्र अधिकतर इसी को बोलते हैं। पश्चिमी हिंदी अर्थात् व्रज-भाषा की यह प्रकृति मानी जाती है।

मागधी-प्राकृत पूर्व-भारत या मगध-देश की भाषा

---

* वुलनर साहब ने अपनी *Introduction to Prakrit* (पृ० ७४) में इसका नाम 'वज्जालग्ग' लिखा है। अंबाले के जैन-भंडार में एक हस्त-लिखित प्रति है। उसमें 'विज्जालय' नाम लिखा है। 'जैन-ग्रंथावली' पृ० ३४१ में लिखा हुआ 'विद्यालय' (प्राकृत) शायद यही ग्रंथ है। वुलनर साहब ने इसकी श्लोक-संख्या ७०० लिखी है। लेकिन ग्रंथावली में २,३००-ही हैं।

थी। बँगला, बिहारी आदि आधुनिक भाषाएँ इसी से निकली हैं। इसमें ल, श और य का प्रयोग बहुत होता है। जैसे सं० सो राजा=माग० शेलाश्रा।

जैन-शौरसेनी में दिगंबर-साहित्य के प्राचीन ग्रंथ, 'पवयणसार', समयसार, दव्वसंगह आदि मिलते हैं। यह प्राकृत नाटकीय शौरसेनी से बहुत कुछ मिलती है। जैन-महाराष्ट्री, जिसमें श्वेतांबरों का अर्वाचीन साहित्य-निर्युक्ति, कथा, चरित्र आदि पाए जाते हैं, नाटकीय महाराष्ट्री से मिलती है। अपभ्रंश-भाषाएँ देश-भेद से कई प्रकार की हैं। वे अपने-अपने देश की प्रचलित भाषाओं के प्राचीन रूप हैं। जिस अपभ्रंश में जैन-साहित्य है, उसे गुजराती का प्राचीन रूप समझना चाहिए।

(क्रमशः)

बनारसीदास

आलोचना का उत्तर

(गत संख्या से आगे)

(२)

"अजौं न आए सहज रँग विरह-दूबरे गात ;
अबहीं कहा चलाइयत, ललन, चलन की बात।"

इस दोहे की तुलना—

अव्वो दुक्कार आरअ पुणोक्कि तंतिं करोसी गमणस्स ;
अज्ज विण होंति सरला वेणीअ तरंगिणो चिउरा।
(अव्वो दुष्करकारक पुनरपि चिंतां करोषि गमनस्य;
अद्यापि न भवन्ति सरला वेण्यास्तरंगिणश्चिकुराः।)

इस गाथा के साथ की गई है। श्रीलक्ष्मणसिंहजी गाथा की यों वकालत करते हैं—"गाथा की नायिका अपने नायक को बहुत अल्प समय के लिये ठहराना चाहती है। वह कहती है, तनिक मेरे बालों की गुलझट तो छूट जाने दीजिए, तब आप जाने की बात करें, और यह गुलझट अति अल्प समय में (दो-चार बार कंघी डालने से) दूर हो जायगी, तब आप चले जाइएगा।" इससे जान पड़ता है, गाथा की नायिका की इच्छा शृंगार करके नायक से रमण-मात्र की है; फिर वह खुशी से उन्हें बिदा कर देगी। उसे अपने नायक से कुछ विशेष प्रेम नहीं है। वह नायक के वियोग में एक रत्ती-भर वजन में नहीं घटी। परंतु दोहे की नायिका—श्रीराधाजी—वंशीवाले के वियोग में—"बिरह-दूबरे गात—" सूखकर काँटा हो गई है। यदि कहीं अभी वियोग हो गया, तो फिर प्राण न बचेंगे! राधाजी की सखियाँ कहती हैं—"जब तक इनका शरीर हृष्ट-पुष्ट न हो जाय, तब तक आप जाने का नाम भी न लीजिएगा। 'मैं जाऊँगा' यह सुनते ही इनका जीवन संकट में पड़ जायगा।" कहाँ दोहे की नायिका राधाजी! और कहाँ गाथा की एक साधारण स्त्री! यदि वह नायक की प्रेयसी है, तो उसके हृदय में प्रेम का सर्वथा अभाव है।

आगे चलकर श्रीलक्ष्मणसिंहजी लिखते हैं—"शायद शर्माजी कहें कि दोहे की नायिका की यह इच्छा है कि 'वह बिरह-दूबरे गात' ऐसा कहकर नायक को अधिक दिनों तक अटकाना चाहती है।" श्रीलक्ष्मणसिंहजी, शर्माजी ऐसा नहीं कहते, किंतु दोहा स्वयं कह रहा है। आपका यह कथन कि "यद्यपि वह इस बात को साफ़-साफ़ नहीं कहती" निर्मूल है; क्योंकि दोहे की नायिका "अजौं न आए सहज रँग बिरह-दूबरे गात" में यह साफ़ बतला गई है। कहिए, कौन-से शब्द की और आवश्यकता है, जो इसका पूर्णतया स्पष्टीकरण कर दे?

श्रीलक्ष्मणसिंहजी शर्माजी के हृदय के भावों की कल्पना करते हैं, और उनके अनुकूल अपने भावों की भी कल्पना करते हैं। आप लिखते हैं—"इसके उत्तर में निवेदन है कि अगर दोहे का यही अभिप्राय समझा जाय, ऐसे अलौकिक और अनुपम अर्थ की उद्भावना की जाय, तो गाथा में भी ऐसे ही अर्थ की कल्पना क्या नहीं हो सकती?" हम नहीं समझ सकते कि "अजौं न आए सहज रँग बिरह-दूबरे गात" कहनेवाले का यह भाव—"जब तक मेरा शरीर पूर्ववत् पुष्ट न हो जाय, कृपया न जाइए"—कहाँ तक अलौकिक है? संभव है, लक्ष्मणसिंहजी इसके मर्म को समझ गए हों। परंतु उनकी इस कल्पना ने—"गाथा की नायिका की सखी यह अच्छी तरह जानती है कि नायिका के केश सहज कुटिल हैं, वे कभी सीधे हो ही नहीं सकते। यही समझकर नायक से केशों के सरल होने तक के लिये ठहरने की प्रार्थना की गई है, और केश सरल कभी न होंगे, अतः नायक आजन्म विदेश न जायगा।"—तो अनर्थ ही कर डाला! कैसा सरल, सुंदर भाव-पूर्ण अर्थ है?

हम ऐसे भाष्यकारों को कोटि-कोटि बार प्रणाम करते हैं ! श्रीलक्ष्मणसिंहजी ने यह नहीं सोचा कि इस कल्पना ने उनकी मवक्कल 'गाथा' के सिर एक नया दोष आरोपित कर दिया है। ऐसी दशा में गाथा निस्सार और युक्ति-हीन रह गई है। हम यह कहने का साहस नहीं कर सकते कि गाथा की नायिका कोई बाज़ारू वेश्या है, और नायक अचानक आँख-झपौनी में उसका प्रेम-पात्र हो गया है; इतने अल्प समय में उसे यह पता नहीं लगा है कि इस प्यारी (वेश्या) के बाल सहज कुटिल (घुँघराले) हैं, और वे कभी सरल न होंगे, और यही समझकर वेश्या की सखी बालों के सरल होने का बहाना करके नायक को सदा के लिये ठहराना चाहती है। पर हमें तो दोनों अवस्थाओं में गाथा की नायिका कोई वेश्या ही मालूम होती है; क्योंकि उपर्युक्त कथन के अनुसार वह केवल दो-तीन घंटे ही ठहराना चाहती है, और दूसरी (लक्ष्मणसिंह की कल्पित घुँघराले बालोंवाली) आज ही नायक को फँसा पाई है। इसके बालों से नायक अपरिचित है। शायद लक्ष्मणसिंहजी जोश में आकर कहें कि नायिका नायक की गृहपत्नी है, तो यह बात हो ही नहीं सकती कि नायक यह न जाने कि मेरी गृहिणी के बाल सहज-कुटिल हैं। और, यदि वह जानता है कि इसके केश कभी सरल न होंगे, तो पाठक समझ लेंगे कि गाथा कितनी युक्ति-हीन और अस्वाभाविक है! गाथा की नायिका कितनी मूर्ख है! क्या नायक यह जानकर कि "ये तो कभी सरल न होंगे" ठहरने पर राज़ी होगा? वह तो एक क्षण भी विलंब नहीं करेगा। गाथा की नायिका कैसी मूर्ख है कि वह ऐसा बेहूदा कारण नायक के रोकने के लिये बताती है, जिस पर महामूढ़ भी बिना हँसे नहीं रह सकता! लक्ष्मणसिंहजी गाथा का समर्थन तो क्या करते, बल्कि उस बेचारी पर उलटी डिगरी करा बैठे! हम लक्ष्मणसिंहजी से प्रार्थना करते हैं कि वह अपने उस कल्पित अर्थ को वापस ले लें, अन्यथा गाथा उपहसनीय हो जायगी। हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि श्रीलक्ष्मणसिंहजी गाथा के अनुचित पक्षपात से जिस अघटित अर्थ की कल्पना करते हैं, उससे गाथा का रहा-सहा सौंदर्य भी नष्ट हो जाता है!

आगे आप लिखते हैं—"और एक बात है। विहारी का यह दोहा, जिसकी यहाँ आलोचना हुई है, विहारी ही के इस दोहे का, जिसे हम नीचे लिखते हैं, प्रबल विरोधी है—

"जो वाके तन की दसा देख्यो चाहत आप;
तौ बलि, नैकु बिलोकियै चलि औचक चुपचाप।"

हमारी समझ में दोनों दोहे एक रूह और दो क़ालिब हैं; दोनों में विरोध की गंध नाम को भी नहीं। नायिका की सखी नायक से नायिका के प्रबल अनुराग को बता रही है। वह कह रही है कि यदि आप उसके तन की दशा देखना चाहते हैं, तो कृपया, तनिक 'चुपचाप' चलकर देख लीजिए कि वह कितनी कृश हो गई है। 'चुपचाप' इसलिये कहा गया है कि कहीं उसे आहट न मिल जाय, वह यह जान न जाय कि आप आ गए हैं; क्योंकि आपके अचानक दर्शन हो जाने से उसे असीम आनंद होगा, और ऐसी कृश-अवस्था में इतने अधिक आनंद से कहीं मृत्यु न हो जाय। जब कोई अत्यंत दुखी हो जाता है, तो अचानक प्रसन्नता होने से उसकी मृत्यु हो जाती है। मान लो, किसी मनुष्य को दरिद्रता ने बहुत दुखी कर दिया है। वह दाने-दाने के लिये भटकता फिरता है। अचानक उसके हाथ सोने का एक ढेर लग गया, या उसे कहीं का राज्य मिल गया, तो उसकी उसी क्षण मृत्यु हो जायगी। दोहे में 'चुपचाप' इसीलिये कहा गया है कि कहीं नायिका का अशुभ न हो जाय। आगे चलकर जब नायक और नायिका का चुपके से मिलन करा दिया गया, तब सखी ने, यह जानकर कि अब नायक जाना चाहता है, यह विनती की—

"अजौं न आए सहज रँग बिरह-दूबरे गात;
अबहीं कहा चलाइयत, ललन, चलन की बात।"

दोनों दोहों में कितनी एकता है। परंतु लक्ष्मणसिंहजी न-जाने किस शब्द का अर्थ न समझकर दोनों में प्रबल विरोध समझ बैठे हैं। पाठक विचार करने से यह भी समझ जायँगे कि लक्ष्मणसिंहजी की समझ का ऐसा रहस्य किस बात पर निर्भर है। बात यह है कि लक्ष्मणसिंहजी की समझ विद्युत् की लहर की तरह दोहे के सर्वांग में फिर गई, और उसने 'बलि' और 'औचक' के बाद रक्खे हुए अर्ध-विराम का अद्भुत अर्थ कर डाला। आपने भाष्य किया है—"यदि उसे (नायिका को) आपके पहुँचने की ख़बर हो गई, तो उसकी कृशता दूर हो

जायगी"। बलिहारी है इस भाष्य की! हमारी समझ में यह अर्थ लक्ष्मणसिंहजी ने दोनों विरामों का किया है; क्योंकि और कोई भी शब्द दोहे में ऐसा नहीं है, जिससे ऐसे अर्थ की संभावना हो सके। परंतु लक्ष्मण-सिंहजी 'चुपचाप' को कहाँ खपावेंगे? भला, क्या नायक छू-मंतर है, जो नायिका के सामने जाते ही उसकी कृशता को काफ़ूर कर देगा, और नायिका क्षण-मात्र में पुनः हृष्ट-पुष्ट हो जायगी। श्रीलक्ष्मणसिंहजी को चाहिए कि वह एक बार फिर दोहे को पढ़ें, और 'चुपचाप' को गुम करने की चेष्टा न करें। यदि वह ऐसा करने की कृपा करेंगे, तो दोहे का यही अर्थ निर्धारित कर सकेंगे—"आप ज़रा चुपचाप चलें, कहीं आपके आने की आहट पाकर वह उमंग में मूर्च्छित या मृत न हो जाय।" पाठक उपर्युक्त कथन से समझ गए होंगे कि लक्ष्मणसिंहजी कितने निष्पक्ष तथा युक्ति-प्रिय भाष्यकार हैं।

(क्रमशः)

हरगुलाल वाशिष्ठ

बिंदी-महिमा

सहज, सलोनी, सुमुखि, सुलोचनि, सुंदरि, श्यामा,
भूषण-भूषित भूरि, छबीली, ललित ललामा—
देती है जब भव्य भाल में बिंदी प्यारी,
छिति पर छटकी छटा चौगुनी हो चितहारी।
ज्यों 'मयंक' के अंक लसे 'मंगल' छवि छाकर,
त्यों कल-कुंकुम की बिंदी सुखमा सरसाकर।
वर कपोल पर दिए श्याम बिंदी अति सुंदर,
मानो शालग्राम सुहाए हों 'शशि'-पट पर।
फबे चिबुक पर एक नील तिल, शोभा न्यारी,
ज्यों पाटल पर लसे नीलमणि की द्युति भारी।
बाल-भाल का बिंदु दिठौना हो बहु सोहे,
ज्यों शिशु-शशि पर निविड़ श्यामता जन-मन मोहे।
भक्त जनों के भाल विभूषित चंदन-बिंदी,
हो मानो, राकेश सुधा-वर्षा-कन बिंदी।
कुल-सपूत-सा दिखे आँख में बिंदी काली,
तब तक ही सुख-सृष्टि, अन्यथा है सब ख़ाली।
कुच पर बिंदी-श्याम काम की मंजु मुहर है,
जो रसिकों के लिये महासुख-कर, मन-हर है।
विलसे गुदना-बिंदु प्रिया के मुख, कर, पद पर;
मानो मधु-हित मधुप बसे हों अमल कमल पर।
मंजु बिंदियाँ लसें मेंहदी की यों कर में,
इंद्र-बधू ज्यों दिखें नगर की डगर-कगर में।
सुरँग चूनरी-बिंदु चमक यों छटा बढ़ावें,
यथा बेल को घेर दमक खद्योत सुहावें।
पीत बिंदियाँ दिखें मांगलिक पत्री-ऊपर,
हों मनका ज्यों कनक-माल के हृदय-स्थल पर।
अस्पताल में दिखी बिंदियों की वर पट्टी,
दृष्टि-जाँच के लिये अजब वह हितकर पट्टी।
जैसे गुरु-जन बैठ परीक्षा लें शिशु-गन की,
वैसे जाँचें शीघ्र बिंदियाँ दृष्टि स्वजन की।
तास-बिंदियाँ, खेल-खिलावें बड़े-बड़ों को;
बाल हठी ज्यों नाच नचावें बड़े-बड़ों को।
घातक ने जो घात किया है सूने थल पर,
पकड़े उसको पुलिस एक बिंदी के बल पर।
ज्यों 'रवि-शशि' ने 'राहु-केतु' पहचाने दानव,
त्यों बिंदी बतला देती हत्यारा मानव।
वृत्तादिक का केंद्र-बिंदु भी अद्भुत देखा;
उस पर से जो खिंचें, तुल्य हों वे सब रेखा।
ईश-दृष्टि में जीव बड़े, छोटे, सब सम हैं;
केंद्र-बिंदु से खिंची न त्यों रेखाएँ कम हैं।
पद्म-पत्र पर स्वच्छ बूँद मोती-सी भावे;
वही सीप के बीच मंजु मुक्ता बन जावे।
जैसा होगा संग, बनोगे वैसे भाई;
इससे करो सुसंग, बनो मुक्ता सुखदाई।
हो अमृत की बूँद हरे बहु रोग हमारे,
'राम-नाम' ज्यों मेटे भक्तों के अघ सारे।
देता पूरे वस्त्र हमारे धोबी धोकर,
करे नहीं वह भूल बिंदियों के ही बल पर।
पुलिस-जरायम-पत्र बूँदियों के ही द्वारा,
देता है अभियोग-खोज में बड़ा सहारा।
पढ़ते समय विराम पूर्ण दे बिंदी प्यारी,
ज्यों वर स्टेशन होय रेल-यात्री-सुखकारी।
करे एक को कई बैठ शब्दों के ऊपर;
देखा बिंदी बीच अजब जादू यह भू पर।
किए बिना हो जायँ एक के दस तक टुकड़े,
हो बिंदी सिर अंक मिलें फिर-फिर वे अँकड़े।

करे दसगुना मान अंक के दाएँ रहकर,
रखते हैं जब गणक शून्य, बिंदी को कहकर।
अंतर करते समय नहीं बचता कुछ ज्यों ही,
कर्ता लिखकर शून्य बताता उसको त्यों ही।
शून्य बिना 'जग असत्', 'शून्य ही सत्' बतलावें,
जिनके मुख्याचार्य 'माध्यमिक' से कहलावें।
बिंदी है शुचि सार सानुनासिक वर्णों का;
अनुस्वार विख्यात—नियम यह व्याकरणों का।
जब वर्णों के शीर्ष बैठती मन मेला कर।
कर्णशूल-सा होता उनके उच्चारण पर।
सिर 'विरंचि' के रहे सीस 'शंकर' के सोहे;
'विश्वंभर' के भाल बैठ बिंदी मन मोहे।
चंद्र, इंद्र, मार्तंड, चंद्रिका आदि निरंतर—
गाते इसका सुयश इसे अपने सिर पर धर।
ध्यान रात-दिन 'भंग', नाम रख अपना 'नंगा',
ले मस्तक पर 'चंद्र', जटा में सुंदर 'गंगा',
कंठ लपेट 'भुजंग', दिया बिंदी को आदर,
हुए इसी से 'शंभु' जगद्वंदित, करुणाकर।
'हिंदी', 'संस्कृत', दोनों प्यारी पावन वाणी;
बिंदी देकर भाल बनीं जग की गुरुरानी।
'अँगरेज़ी' या 'हिंद', 'फ़ारसी', 'उर्दू', 'अरबी',
बिंदी ही की कृपा-कोर से सब हैं गरबी।
'ॐ'-मंत्र तक धरे सीस पर बिंदी सादर,
वेद-शास्त्र सम कहें जिसे कवि, कोविद, नागर।
हिंदी के ही भाल नहीं यदि बिंदी होती,
तो उसकी अपकीर्ति बड़ी ही गंदी होती।
बिंदी बिन जग शून्य, सुखद जीवन दुखदाई,
वे ही देखें सुखी, जिन्होंने यह अपनाई।
बिंदी को दो छोड़, करो इनका उच्चारण—
कुंदी, फंदा, बंधु, अंग, मंसूर, निरंजन।
बेंदी, बूँदी, बिंदु, बूँद, बुँदकी या बिंदी,
सजातीय सब शब्द कहें, जानें जो हिंदी।
रेखाएँ या वर्ण, सभी बिंदी की माया;
चींटी से हाथी तक सब बिंदी की काया।
बिंदी ही में बसें लोक, मह, जनमह सारे,
भिन्न-भिन्न नय-नीति, रीति-रस, प्रीति पसारे।
एक बूँद ही करे जगत की रचना सारी;
कह सकता है कौन बूँद की महिमा न्यारी?

हिंदी अपना-जाति जिन्हें भू पर है प्यारी,
उन पर दीनानाथ कृपा करते हैं भारी।
इससे हे कवि-वृंद, विनय मेरी मन धरिए;
लघुओं के प्रति घृणा भूलकर आप न करिए।
किंतु कीजिए मान जहाँ तक होवे संभव,
सिर पर शशि स-कलंक, हुए भव-वंदित 'श्रीभव'।
कृष्णचंद्र ने टेक सुदामा को अपनाया;
रामचंद्र ने ज्यों निषाद को हृदय लगाया।
दीन-बंधु होकर प्रसिद्ध प्रिय हुए इसी से;
करते ममता नहीं कहो, यह प्रीति किसी से।
चरणों पर जो झुके, उसी सिर को सिर जानो,
मित्र, अन्यथा उसे भार ही भारी मानो।
अणुवीक्षण से क्षुद्र कीट भैंसा-सा देखें;
सुजन सभी को श्रेष्ठ बड़ा अपने से लेखें।
वामन प्रभु ने तीन पगों में पृथ्वी नापी;
शेष नाग ने वही महत्ता निज सिर थापी।
कृष्ण, राम थे बाल, कंस, रावण थे भारी;
पर नन्हों ने उन्हें हराकर बाज़ी मारी।
खटमल, मच्छड़ और मक्खियों की चालाकी,
है ऐसा जन कौन, जानता जिसको बाक़ी?
महारोग-कीटाणु सूक्ष्म हैं भूरि भयंकर;
बचते उनसे सभी, बने जब रक्षक शंकर।
गीता-पुस्तक अल्प, किंतु है गुण में भारी;
राम-नाम दो वर्ण, हरें भव-बाधा भारी।
सुई देखिए नन्ही-सी ढकती तन सारा;
मिटें रोग सब तुरत सूक्ष्म मात्रा के द्वारा।
अंकुश से गजराज वश्यता दिखलाता है;
अणु दीप से नष्ट निविड़ तम हो जाता है।
देखो, हैं चींटियाँ कार्य करने में गुरु-सम;
उनकी भी गुरु सदृश स्व-स्तुति में बिंदी अनुपम।
लघुक, सूक्ष्म, अति अबल, सबल हों, तंतु गठन कर;
पहले से भी कहीं शक्ति-धारी हों मिलकर।
माप न सकते जिसे, खंड कर सकें न जिसके,
उस ईश्वर के सिवा अन्य है तुल्य न इसके।
जहाँ दृष्टि यह पड़े, वहाँ बिंदी ही पावें;
किसको छोड़ें, किसे त्यागकर तोष मनावें?
इसी बिंदु का विस्तृत तनु है यह भूमंडल;
जहाँ तत्त्व हैं पाँच पवन, पावक, नभ, जल, थल।

यों बिंदी-विस्तार करें विभु ललित कला कर ;
अद्भुत गति है अकथ, कह सके कौन गुणी नर ?
कालांतर में करें वही प्रभु जब संकोचन ,
बिंदी ही रह जाय, अन्य का हो आकर्षण ।
अहि-कुंडलिका बीच लसे जैसे मणि उज्ज्वल ,
लघु बिंदी के बीच रहे त्यों अणु, विभु मंजुल ।
लघु को करे महान बैठ सिर उसकी 'लघिमा',
कर सकता है कौन 'गुणाकर' "बिंदी-महिमा" ?

सुखराम चौबे (गुणाकर)

बरार का प्रश्न

आजकल बरार का प्रश्न जनसाधारण के सामने उपस्थित है। निज़ाम-सरकार ब्रिटिश-सरकार से बरार वापस माँग रही है। इसके लिये निज़ाम की ओर से भारत में तथा विलायत में भी आंदोलन जारी है। प्रसिद्ध सर अली-इमाम आजकल विलायत में जनता तथा मंत्रि-मंडल, दोनों को समझाने-बुझाने की चेष्टा कर रहे हैं। अख़बारों और सामयिक पत्रों में भी लेख लिखाए जा रहे हैं। भारतवर्ष में भी लेजिसलेटिव एसेंबली तथा कौंसिल ऑफ़ स्टेट में धीरे-धीरे काररवाई हो रही है। उधर बरारियों को भी ख़ुश करने की कुछ कम चेष्टा नहीं हो रही है। उन्हें तो निज़ाम-सरकार की ओर से पूरा 'स्वराज्य' ही देने का लालच दिखाया जा रहा है। पर ये बरारिए कुछ ऐसे बोदे मालूम पड़ते हैं कि स्वराज्य भी नहीं चाहते ! उलटा निज़ाम-राज्य में लौट जाने से साफ़ इनकार करते हैं। तब तो मामला ज़रा बेढब-सा जान पड़ता है। और, ऐसा होना नामुमकिन भी नहीं। अभी उस दिन जब संत निहालसिंह निज़ाम-राज्य में घूम-घूमकर राज्य-प्रबंध-विषयक लेख लिख रहे थे, उस समय उन्होंने वर्तमान निज़ाम की नीति की कुछ थोड़ी-सी मीठी आलोचना की थी। उन्हें राजकाज में हिंदू-कर्मचारियों की कमी कुछ खटकती थी; और इसी विषय पर उन्होंने कुछ लिख मारा था ! भला यह एक स्वेच्छाचारी नरेश को कब पसंद आ सकता है ? झटपट निज़ाम ने हुक्म दे दिया कि वह मदरासी पत्र, जिसमें संत निहालसिंह के लेख निकल रहे हैं, निज़ाम-राज्य में घुसने ही न पावे। तभी तो बरारिए निज़ामी स्वराज्य से दूर ही रहना चाहते हैं; उन्हें ब्रिटिश-राज्य की परतंत्रता ही अच्छी लगती है। ख़ैर।

अब यह देखना चाहिए कि बरार का यह मामला है क्या चीज़। आज कितने वर्षों से समय-समय पर बरार के लिये निज़ाम की ओर से आंदोलन हो जाया करता है। सन् १९०३ में जब लॉर्ड कर्ज़न ने बरार की अंतिम संधि की थी, तो लोगों ने समझा था, चलो, अब इस मामले का अंत हुआ। पर वह न होने पाया। पाठको, अब आप ज़रा अपना ध्यान मुग़लों के ज़माने की ओर ले जाइए। उस समय भारतवर्ष सूबों में बँटा हुआ था। दक्खिन में छः सूबे थे, जिनमें बरार भी एक था। मुग़लों के अधःपतन के दिनों में—अठारहवीं सदी के आरंभ-काल में—चिंकलीज़ख़ाँ दक्खिन का मुग़ल-वायसराय था। यही निज़ाम-वंश का संस्थापक और आजकल के निज़ामों का पुरखा था। यही चिंकलीज़ख़ाँ आगे चलकर आसफ़जाह के नाम से मशहूर हुआ, और समूचे दक्खिन का—जिसमें बरार भी शामिल था—एक तरह से बादशाह बन गया। यों कहने को तो निज़ाम-ख़ानदान हमेशा दिल्लीपति के अधीन ही रहा, पर वह कोरा शिष्टाचार-मात्र था। जिस समय आसफ़जाह बढ़ रहा था, उसी ज़माने में और लोग भी सुयोग पाकर सिर उठा रहे थे। मरहठों ने तो दक्षिण और उत्तर-भारत में अपना झंडा फहराया था ही, उधर मदरास में अँगरेज़ और फ़रासीसी भी चढ़ा-उपरी कर रहे थे। इसी ज़माने में, मैसूर में, हैदरअली और उसका बेटा टीपू सुलतान अपनी गद्दी क़ायम कर रहे थे। इन सबमें से किसी से भी निज़ाम की नहीं पटती थी। अठारहवीं सदी के अंत में यदि निज़ाम उत्तर और पश्चिम में भोंसला तथा पेशवा के मारे दबे जाते थे, तो दक्षिण में टीपू सुलतान ने उनके नाकों-दम कर रक्खा था, तथा पूरब में अँगरेज़ और फ़रासीसियों के झगड़ों के कारण उन्हें सशंकित रहना पड़ता था ! धीरे-धीरे अँगरेज़ों ने फ़रासीसियों को हराया, और टीपू सुलतान के राज्य का विध्वंस किया।

पर मरहठों के मारे निज़ाम की तबाही होती ही रही। निज़ाम को क्रमशः समूचा बरार या तो पेशवा को सौंपना पड़ा, या भोंसला की फ़ौज की मर्ज़ी पर छोड़ना पड़ा। अब निज़ाम को निश्चय हो गया कि अँगरेज़ों की सहायता के बिना उबार नहीं। सन् १८०० ई० में कंपनी और निज़ाम के बीच संधि होकर यह तय पाया कि कंपनी की एक फ़ौज निज़ाम-राज्य में रक्खी जायगी, और समय पड़ने पर निज़ाम अपनी सेना से भी इस अँगरेज़ी फ़ौज की सहायता करेंगे। उसी समय से सिकंदराबाद की छावनी चली आती है। सन् १८०३ में अँगरेज़ों और मरहठों के बीच जो लड़ाई हुई थी, उसमें मरहठे ही हारे। निज़ाम ने जैसी चाहिए वैसी तो मदद नहीं दी, पर फिर भी कंपनी को ही मदद दी। इसके इनाम में उन्होंने कंपनी से बरार वापस पाया। निज़ाम की फ़ौज से पूरी मदद नहीं मिली थी, इसी लिये १८१३ में यह शर्त हुई कि निज़ाम की एक फ़ौज कंपनी के अफ़सरों की देख-रेख में यहाँ रहे। यह पल्टन 'रसलब्रिगेड' के नाम से मशहूर थी। फिर पीछे इसका नाम 'हैदराबाद-कंटिंजंट' पड़ा। निज़ाम तो इस फ़ौज का ख़र्च जुटाते थे, और कंपनी बहादुर इसके अफ़सरों को बहाल करती और उसे हमेशा एक आला दरजे की पल्टन के मुक़ाबले में तैयार रखती थी। पर निज़ाम का प्रबंध ढीला था। वह फ़ौज का ख़र्च नहीं चुका सकते थे। इसलिये अक्सर कंपनी बहादुर को अपने ख़ज़ाने से फ़ौज को वेतन देना पड़ता था। इस तरह निज़ाम पर क़र्ज़ चढ़ता गया; और उन्नीसवीं सदी के बीच में तो यह बढ़ते-बढ़ते कोई ४५ लाख रुपए हो गया! अब मामला बिगड़ गया। निज़ाम को क़र्ज़ में थोड़ा-सा राज्य-भर देना पड़ा। १८५३ में जो संधि हुई, उसके अनुसार पेनगंगा के उत्तर का बरार का सूबा रायपुर का दोआब और धरसेव का ज़िला कंपनी के हाथ सौंपना पड़ा। यही तय पाया कि अब से इन इलाक़ों का प्रबंध कंपनी करेगी; जो आमदनी होगी, उसमें से पहले तो प्रबंध का ख़र्च जायगा, फिर हैदराबादी कंटिंजंट (फ़ौज) का मुशाहरा दिया जायगा, फिर कंपनी की क़िस्त वसूल होगी, और उसके बाद जो बचेगा, वह निज़ाम-सरकार को लौटा दिया जायगा। सन् १८५७ में सिपाही विद्रोह हुआ। इस अवसर पर निज़ाम ने कंपनी का ख़ूब साथ दिया। बदले में कंपनी ने पचास लाख रुपए माफ़ कर दिए, और साथ ही सूरापुर का राज्य, रायपुर का दोआब और धरसेव का ज़िला भी लौटा दिया। पर बरार का इलाक़ा कंपनी ने अपने पास ही रक्खा। हाँ, एक बात नई हुई। १८६० में यह निश्चय हुआ कि अब से अँगरेज़-सरकार को हिसाब का समझौता नहीं देना पड़ेगा; क्योंकि इससे निज़ाम और अँगरेज़ अफ़सरों में अक्सर अनबन हो जाया करती है।

यही सिलसिला १९०३ तक जारी रहा। पर निज़ाम को कभी संतोष न हुआ। बरार का निकल जाना उनको हमेशा अखरता रहा। बरार लौटा लेने के लिये आंदोलन बराबर जारी रहा। निज़ाम के वकील और दूत विलायत में पैरवी करते रहे। इन लोगों ने पार्लियामेंट को समझाने, विलायती नेताओं को पक्ष में लाने तथा अख़बारों को ख़ुश करने के बहाने ख़ूब माल उड़ाया। कुछ लोग तो विलायत से आकर ख़ास हैदराबाद में जम गए, और वहाँ निज़ाम को ठगते रहे, साज़िश, षड्यंत्र का बीज बोते रहे, तथा हैदराबाद को बरबाद करते और अँगरेज़ी नाम पर धब्बा लगाते रहे। इधर अँगरेज़ी सरकार ने एक न सुनी, वह बरार लौटा देने को किसी तरह राज़ी न हुई। पहले तो लोगों का ख़याल था कि सरकार को रुपए डूब जाने का डर है; क्योंकि निज़ाम का इंतज़ाम ठीक नहीं। पर जब रुपए की ज़मानत का पूरा भरोसा दिलाया गया, तब भी बरार लौटाना स्वीकार न हुआ। अब तो लोगों ने तरह-तरह की ख़याली वजहें बताना शुरू किया। पर बात असल में दूसरी थी। सन् १८७८ में ही भारत-सचिव सालसबरी ने अपने ख़रीते में भारत-सरकार को लिख दिया था कि इन पचीस लाख बरारियों को, जो पचीसों वर्ष से अँगरेज़ी सुशासन का सुख भोग रहे हैं, निज़ाम के यहाँ भेज देना सरासर अन्याय होगा। इसलिये यदि निज़ाम के प्रति कोई कर्तव्य है, तो उससे भी बढ़कर इन बरारियों के प्रति अँगरेज़ी सरकार का दायित्व है। पर यह बात थी पोशीदा; इसे खोलना वायसराय या रेज़िडेंट के लिये असंभव था, और यही कारण था कि १९०३ तक दोनों ओर से नोक-झोंक होती रही, फिर भी सच्ची बात न खुली। आख़िर लॉर्ड कर्ज़न ने १९०२ में इसको खोलकर स्पष्ट कर दिया। [illegible]

अब प्रश्न यह उठता है कि लॉर्ड सालसबरी को यह कहने का क्या अधिकार था ? क्या सचमुच यह इलज़ाम वाजिब था । यदि सोचकर देखते हैं, तो उसे कितने ही अंशों में सत्य पाते हैं । निज़ाम का बरार-शासन दोष से ख़ाली नहीं रहा है । १८०३ में सर आर्थर वेलसली ने लिखा था कि गोदावरी से लेकर हैदराबाद तक सारे देश में अराजकता फैली हुई है; कोई किसी का नहीं है । वहाँ जिसकी लाठी है, उसकी भैंस है । प्रजा की जान और माल का रक्षक कहीं नज़र नहीं आता। खेती-बारी बरबाद हो गई है, लोग भूखों मर रहे हैं । अवस्था ऐसी करुणोत्पादक है कि प्राण रो उठते हैं । केवल लड़ाई-भिड़ाई के कारण ऐसा हुआ हो, सो भी नहीं । जब मरहठों का राज्य चला गया, तब भी बरार की वही दुर्दशा बनी रही । भील और पिंडारियों से प्रजा की रक्षा करने में राजा असमर्थ ही रहा ! इधर तो प्रजा की यह दुर्दशा, और उधर राजकाज का ख़र्च दिन-दिन बढ़ता ही गया । निज़ाम-सरकार का ख़र्च बेइंतिहा था । ख़र्च के लिये आमदनी कभी काफ़ी नहीं थी । जब तक दीवान चंदूलाल साहब रहे, क़र्ज़ लेते गए, और सैकड़े २५) का सूद लिखते गए । सूद में इलाक़े-के-इलाक़े महाजनों के हवाले होते गए । महाजनों ने भी मौक़ा देखकर जहाँ तक पाया, प्रजा को पीसा । तन पर वस्त्र तक न रहने दिए । लोग तंग आकर आसपास के अँगरेज़ी इलाक़े में जा बसे । आख़िर राज्य का दिवाला निकालकर दीवान चंदूलाल साहब, सन् १८४३ में, अलग हुए । सन् १८३३ और १८३६ के अकाल ने और ग़ज़ब किया । कटे पर नमक छिड़का ! बरार-जैसा हरा-भरा इलाक़ा श्मशान बन गया ! आप कह सकते हैं कि यह तो पुरानी बात है ; आजकल अवस्था सुधर गई है । हाँ, सच है, तब में और अब में फ़र्क़ ज़रूर है । पर फिर भी नवाबी अमलदारी है । अभी सन् १६०० को ज़्यादा दिन नहीं हुए हैं । इस साल दक्खिन में ज़ोरों का अकाल था । बरार में तो ब्रिटिश-सरकार की ओर से अकाल-निवारण का पूरा प्रबंध था, पर निज़ाम के यहाँ कोई बंदोबस्त नहीं । फल यह हुआ कि निज़ामी प्रजा झुंड-की-झुंड बरार में आ घुसी, और सरकार का सारा इंतिज़ाम ही गड़बड़ा दिया ।

कहा जाता है, बरार का अँगरेज़ी प्रबंध भी बड़ा ख़र्चीला है ; ज़रूरत से ज़्यादा ख़र्च किया जाता है । इसमें शक नहीं कि १६०० तक ख़र्च ज़्यादा होता रहा था । पर इतने पर भी निज़ाम को १८६० से १६०० तक औसत नव लाख सालाना की बचत बराबर मिलती रही । न हाथ हिलाए, न पैर, बैठे-बिठाए नौ लाख का माल पाते रहे ! यही क्या कुछ कम था ? १६०० में सर डेविड बार साहब हैदराबाद के रेज़िडेंट हुए । उन्होंने बरार का सवाल हल करना चाहा । उनकी योग्यता विख्यात थी । उन्होंने कठिन परिश्रम करके सब बातों की जाँच-पड़ताल की, और आख़िर सलाह दी कि 'हैदराबादी कंटिजंट' भारत-सरकार की सेना में मिला ली जाय ; और जब ज़रूरत पड़े, निज़ाम-सरकार की ख़िदमत करती रहे । बदले में निज़ाम-सरकार सूबे-बरार का दायमी बंदोबस्त भारत-सरकार के हाथ में दे दे । लोगों ने इनकी सलाह की पहले तो हँसी उड़ाई, पर लॉर्ड कर्ज़न को यह बात पसंद आ गई, और उन्होंने निज़ाम के साथ बातचीत करने का हुक्म दे दिया । पर निज़ाम कहाँ माननेवाले थे । उन्हें तो आशा थी कि एक-न-एक दिन बरार ज़रूर वापस मिलेगा । जब कर्ज़न ने साफ़-साफ़ कह दिया, जब लॉर्ड साहब ने भारत-सचिव सालसबरीवाला ख़रीता दिखाया, तब तो निज़ाम का मोह भंग हो गया—बरार के लौटाने का स्वप्न टूट गया। उन्होंने और कोई उपाय न देखकर ६ लाख की जगह सालाना २५ लाख लेकर दायमी बंदोबस्त कर दिया । यह सन् १६०३ की बात है ।

अब वर्तमान निज़ाम का कहना है कि यह शर्तनामा लॉर्ड कर्ज़न की घुड़कियों में आकर लिखा गया था । मेरे पिता अवश्य ही राज़ी न थे । मेरे पिता पर दबाव न डाला गया होता, तो यह दायमी बंदोबस्त कभी न किया जाता। ख़ैर, बात जो हो, यह न मृत निज़ाम की शान के ही लायक़ है, और न वर्तमान निज़ाम को ही शोभा देती है । लॉर्ड कर्ज़न तो अभी तक ज़िंदा हैं । वह अपने पक्ष का आप समर्थन कर सकते हैं । पर यह प्रश्न केवल ब्रिटिश-सरकार और निज़ाम-दरबार का ही नहीं है । इनसे भी अधिक स्वत्व बरारियों का है । उनकी मर्ज़ी के बिना दो में से किसी को भी कुछ करने का अधिकार नहीं हो सकता । अब वह ज़माना नहीं है कि घर की ज़मींदारी या निजी संपत्ति समझकर राजा लोग इलाक़े-का-इलाक़ा

दहेज में दे डालें या ख़रीद-फ़रोख़्त कर लें। प्रजावर्ग कुछ शतरंज के प्यादे नहीं हैं कि जहाँ चाहा, हटा दिया। आज निज़ाम को रुपयों का टोटा है, तो बैल-बधियों की तरह बरारियों को बंधक रख डाला, और कल निज़ाम की अवस्था अच्छी हुई, तो फिर उन्हें छुड़ा लिया!

क्या यह प्रबंध किसी भी सभ्य जाति को अच्छा लगेगा? कहाँ तो सभ्य दुनिया 'स्वभाग्य-निर्णय' के लिये लड़ रही है, इस इष्ट-सिद्धि के लिये लाखों की आहुति चढ़ा रही है, और कहाँ यह प्रस्ताव! कोई-कोई कह सकते हैं कि निज़ाम ने 'स्वराज्य' देने का वचन दिया है। पर इसकी कौन ग्यारंटी कर सकता है? निज़ाम की अपनी प्रजा को कितने अधिकार मिले हुए हैं, जो बरारियों को एकदम अधिकार दे दिए जायँगे? फिर निज़ाम के दिए स्वराज्य तथा ब्रिटिश-सरकार के दिए स्वराज्य में कौन अच्छा है, इसका निश्चय बरारियों के ऊपर ही छोड़ देना चाहिए। उन्हें, उनके मत के विरुद्ध, उनकी राय लिए बिना, निज़ाम-राज्य में भेज देना कभी न्याय्य न होगा। हाँ, यदि रुपए के लिये यह सब प्रपंच रचा गया हो, यदि निज़ाम यह सोचते हों कि बरार की आमदनी ज़्यादा है, तो इसके लिये एक कमीशन बिठालें, आमद-ख़र्च की पूरी जाँच हो। यदि हिसाब करने पर ज़्यादा पावना निकले, तो ब्रिटिश-सरकार ज़्यादा देने को बाध्य की जाय। पर यह कभी उचित न होगा कि निज़ाम के इस वादे पर कि बरारियों को स्वराज्य दे देंगे, बरार का समूचा प्रजावर्ग एक स्वेच्छाचारी नरेश के हाथों में सौंप दिया जाय।

इधर गुलबर्गे का दंगा देखकर तो हरएक समझदार निज़ाम की उक्त माँग का विरोध ही करेगा। जो राजा इतना असहिष्णु है कि 'बांबे क्रानिकल'-जैसे नरम पत्रों की टीका-टिप्पणी बरदाश्त नहीं कर सकता, अपनी आलोचना करनेवाले पत्रों का अपने यहाँ आना बंद करता जाता है, उसकी अधीनता कदापि वांछनीय नहीं हो सकती। अब वह समय नहीं रहा, जब देशी राज्य के मोह में लोग फँसा करते थे। राजपूताने में रोज़ क्या हुआ करता है? प्रजा की आकांक्षाएँ किस प्रकार चूर-चूर कर डाली जाती हैं, इसकी ख़बर तो सभी को है।

राधाकृष्ण झा

पंजासाहब

(हसन अब्दाल)

वैशाखी का शुभ त्योहार वर्ष में एक बार आता है। हमारा विचार हुआ कि हम भी इस बार 'पंजासाहब' जाकर यह शुभ दिवस मनावें। हमने रात को जाने का विचार किया था; पर ट्रेन में बहुत भीड़ होने के कारण रह गए। दूसरे दिन, अर्थात्

लेखक

(जयदेव-राजपाल)

वैशाखी के दिन, प्रातःकाल पाँच बजे उठे। देखा, बादल गरज रहे हैं, बिजली कड़क रही है, वर्षा मूसलधार हो रही है। हम समझे, हमारी सारी आशाएँ मन-की-मन ही में रह गईं। बहुत प्रतीक्षा की। अंत को परमात्मा ने हमारी प्रार्थना स्वीकार की। वर्षा समाप्त हुई, और हम अपने घर से ११½ बजे निकले। समय बहुत हो जाने से प्रातःकाल की सब स्पेशल ट्रेनें जा चुकी थीं। इस समय और कोई ट्रेन न थी, जिस पर पंजासाहब जायँ। अंत को विचार किया कि शहर में चलकर मोटर इत्यादि का प्रबंध करें; क्योंकि हमने पक्का इरादा कर लिया था कि अगर चले, तो पंजासाहब ही जायँगे, नहीं तो घर बैठेंगे। शहर में घंटे-भर घूमते रहे। आखिर एक मोटर-लारी देख पड़ी, जिसमें १६ आदमी बैठे हुए थे। वह लारी पंजासाहब को जा रही थी। शहर में बहुत भीड़-भाड़ होने के कारण लारी आहिस्ता-आहिस्ता चल रही थी। हम पाँच आदमी भी उस चलती हुई लारी पर चढ़ गए। ड्राइवर हमको रोकता ही रहा, परंतु हम न माने, बैठे ही रहे। शहर के बाहर उसको पाँच सवारियाँ और लेनी थीं, जो कि प्रातःकाल से उस लारी की प्रतीक्षा कर रही थीं। परंतु अब स्थान न होने के कारण हमने उनको न चढ़ने दिया, जिसका हमको बड़ा अफ़सोस हुआ; क्योंकि वे बेचारे सबेरे से बैठे थे, और हम दिन के १२ बजे पहुँचे और जगह खाली देखकर बैठ गए थे। इसलिये हमने अपने को बहुत अपराधी समझा।

लारी १२½ बजे रावलपिंडी से चल दी। वर्षा होने के कारण आज का दिन बहुत ठंडा था। मार्ग में बहुत अच्छा दृश्य था। कभी बादल सिर पर आ जाते, और कभी धूप निकल आती। सबसे मज़े की बात मार्ग में यह देखी कि एक लारी मार्ग में बिगड़ी खड़ी थी, और २५ आदमी उसके इर्द-गिर्द हताश भाव से खड़े थे। हमारे पहुँचने पर वे सब जगह के लिये प्रार्थना करने लगे। परंतु
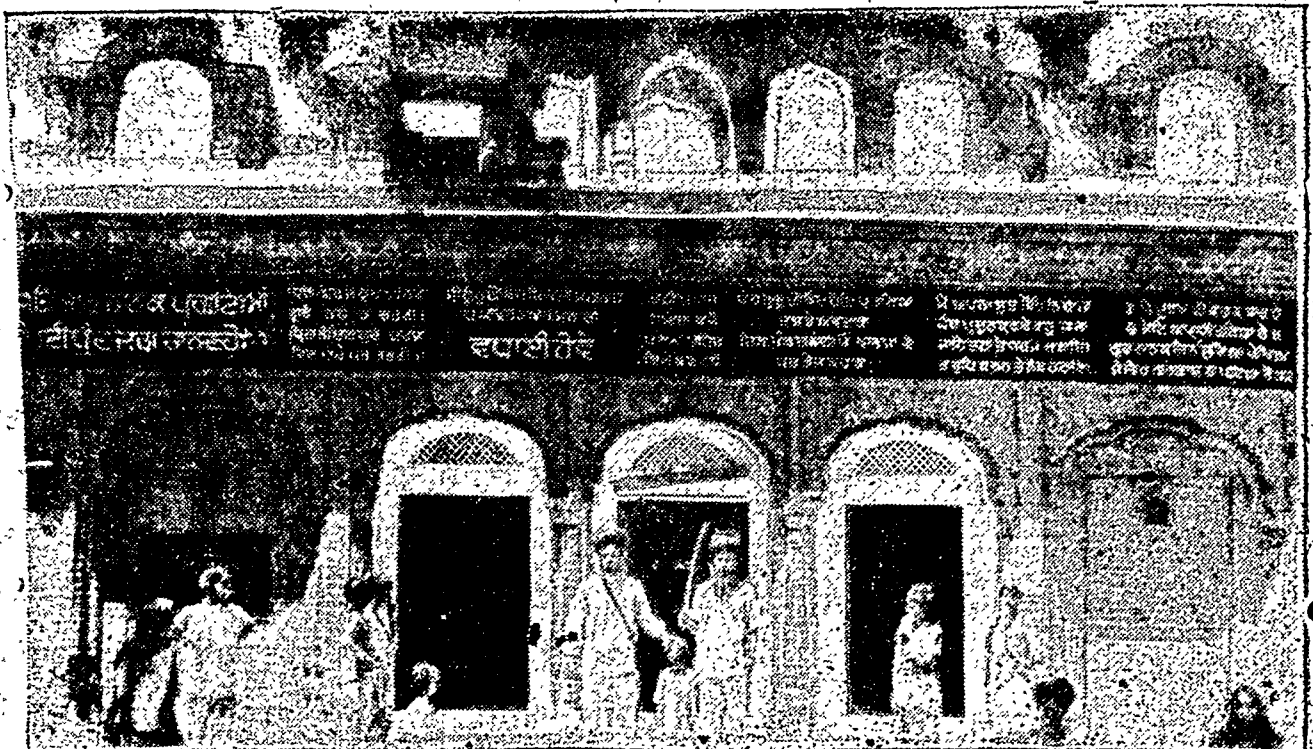
मंदिर का मध्य-भाग, जिसमें, गुरुमुखी-भाषा में, गुरु-वाक्य खुदे हुए हैं

स्थान था ही कहाँ। उनको वहाँ ठहरना पड़ा। वे सुबह के चले वहाँ शाम को जाकर पंजासाहब पहुँचे होंगे। हमारी लॉरी ने हमको ११ बजे पंजासाहब पहुँचा दिया। पंजासाहब हमारे यहाँ से ३६ मील है। मार्ग में पहले, पंजासाहब से १०० क़दम के फ़ासिले पर, एक पहाड़ मिला। यह पहाड़ पूरा एक मील लंबा है। इसमें वृक्ष का तो नाम-निशान ही नहीं है। सिर्फ़ चोटी पर एक पीपल का

कर लिया। पर उसका शरीर शुद्ध नहीं था, इसलिये सब जल सूख गया, और हौज़ में उस दिन से आज तक फिर जल नहीं आया।

जब हम वहाँ से वापस आए, तो पहाड़ के नीचे साफ़ जल के, छोटे-छोटे नाले बहुत ही शोभायमान दिखाई दिए। उनकी गहराई छः इंच से अधिक थी। जल बड़ा ही शीतल था। निकट के निवासी मनुष्य गरमियों में यहाँ पर, प्रायः प्रति

पंजासाहब और सामने का तालाब

बड़ा वृक्ष है। वहाँ एक क़ब्र बनी हुई है, जिसका नाम 'वली कंधारी' मशहूर है। सुना जाता है, इसमें एक फ़क़ीर रहता था। जब उसकी मृत्यु हुई, तो उसको फ़रिश्ते उठाकर ले गए, और यहाँ से २० मील पर दफ़न किया, जहाँ उसकी क़ब्र बना दी गई है। हमने उस वली कंधारी में देखा, पत्थर का एक छोटा सा हौज़ बना हुआ है। हमने पूछा, इस हौज़ का क्या मतलब है?

उत्तर मिला—इसमें जल भरा रहता था। एक समय एक स्त्री वली कंधारी आई। उसको बड़ी गरमी लगी। उसने इस हौज़ में स्नान

सप्ताह, रविवार को, स्नान के लिये आया करते हैं। थोड़ी दूर आगे चलकर मेले में पहुँचे। आज बहुत दूर-दूर से लोग आए हुए थे। बड़ी भारी भीड़ थी। हम भी लड़ते-झगड़ते, ठेलते-ठालते तालाब पर पहुँचे। तालाब ६ फ़ीट गहरा और २० फ़ीट मुरब्बा लंबा और चौड़ा है। जल बहुत साफ़ और शीतल है। इसके इर्द-गिर्द संगमरमर की सीढ़ियाँ हैं। तालाब के पूर्व और पश्चिम ओर लोगों के आने-जाने के लिये मार्ग है। दक्षिण में बड़ा भारी मंदिर बना है, जिसमें ग्रंथसाहब रक्खे हुए हैं। इस मंदिर के सब बुर्ज
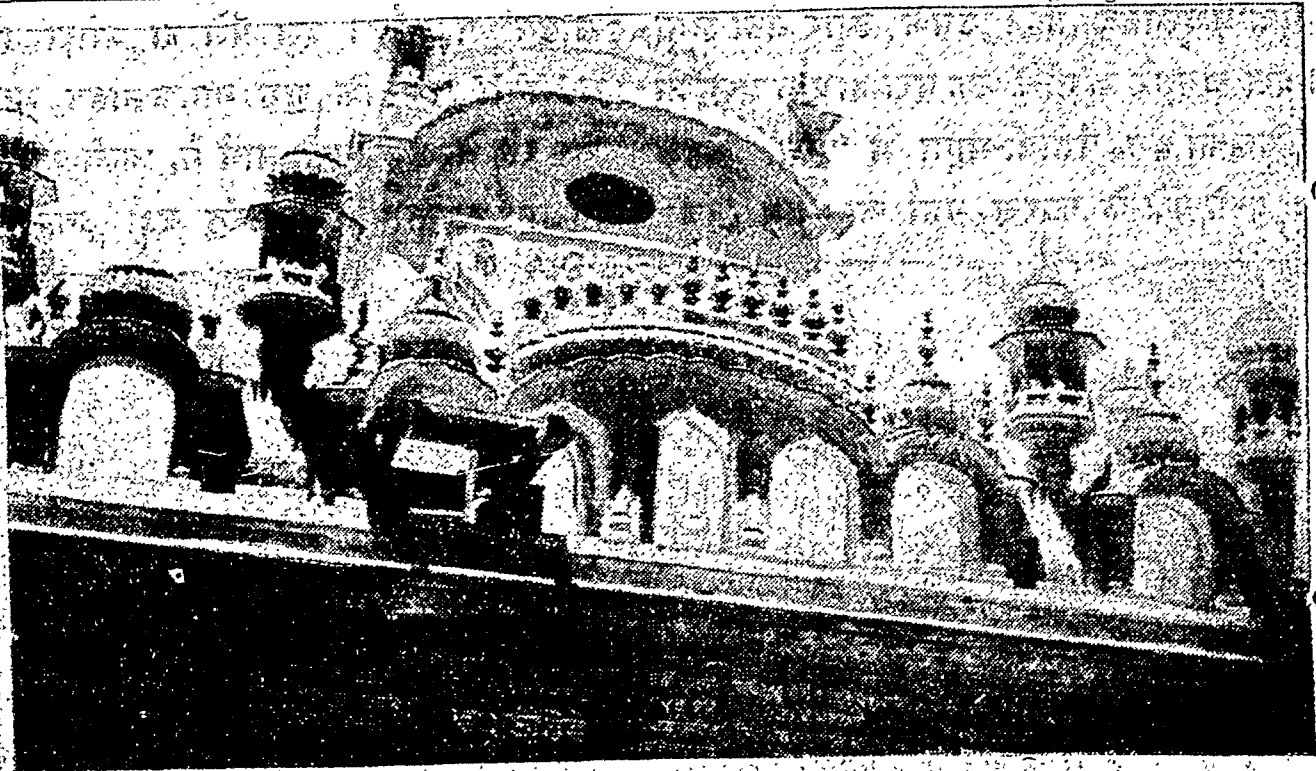
पंजासाहब का सामने का सबसे ऊपरवाला हिस्सा

सोने की चद्दरों से मढ़े हुए हैं। मंदिर के बीच में गुरु-वाणी के कुछ शब्द संगमरमर के ऊपर खुदे हुए हैं। इस तालाब के पास चारों ओर अकाली लोग नंगी तलवारें लिए पहरा देते रहते हैं। पहले यहाँ पर महंत रहता था। परंतु अब अकालियों का अधिकार है। यहाँ का प्रबंध बहुत अच्छा है। सुबह-शाम गरीबों के लिये लंगर (भोजनालय) खुला रहता है।

इस मंदिर के सामने (अर्थात् तालाब के उत्तर ओर) एक और चबूतरा बना है। इसमें

वली कंधारी

भी एक ग्रंथसाहब हैं। उनके ऊपर घंटा लगा है। इस चबूतरे के नीचे एक पूरा हाथ बना हुआ है, जिसको हम पंजाबी-भाषा में 'पंजा' कहते हैं। इसी पंजे के कारण यहाँ का नाम 'पंजा-साहब' पड़ा है। इस पंजे का ब्योरा हमें यह बतलाया गया कि गुरु नानकसाहब जब यात्रा कर रहे थे, तो उनको मार्ग में, 'वली कंधारी' में, विश्राम करना पड़ा। परंतु वहाँ उनको जल न

पंजासाहब का अगला भाग
(तालाब के दक्षिण ओर का दृश्य)

झरना

मिला। वह बहुत ही प्यास होने की दशा में ही वहाँ से उस पहाड़ के नीचे तक चले आए। वहाँ उन्होंने एक हाथ मारा, जिससे पीने को जल निकल आया। तभी से उनका यह 'पंजा' यहाँ बना है। इस पंजे की तसवीर हमने जल में खड़े होकर ली। इस तालाब में बड़ी-बड़ी बहुत-सी मछलियाँ हैं। इनको पकड़ने का किसी को अधिकार नहीं है। हमने एक नई बात जो सुनी, वह यह है कि जिस स्त्री ने 'वली कंधारी' में स्नान करने का पाप किया था, उसने इस चश्मे में भी, जो गुरु नानकसाहब के हाथों से निकला था, स्नान किया। यहाँ स्नान करते ही वह मछली बन गई, और आज तक उसकी संतान यहाँ विद्यमान है। यहाँ पर बहुत-सी सुंदर-सुंदर मछलियाँ हैं। यहाँ के लोग कहते हैं, इन मछलियों के कोई हड्डी नहीं होती। इनके शरीर में सिर्फ़ खून ही भरा रहता है। यहाँ की सैर करने में शाम हो गई। समय बहुत थोड़ा था; परंतु हमने सब जगहें
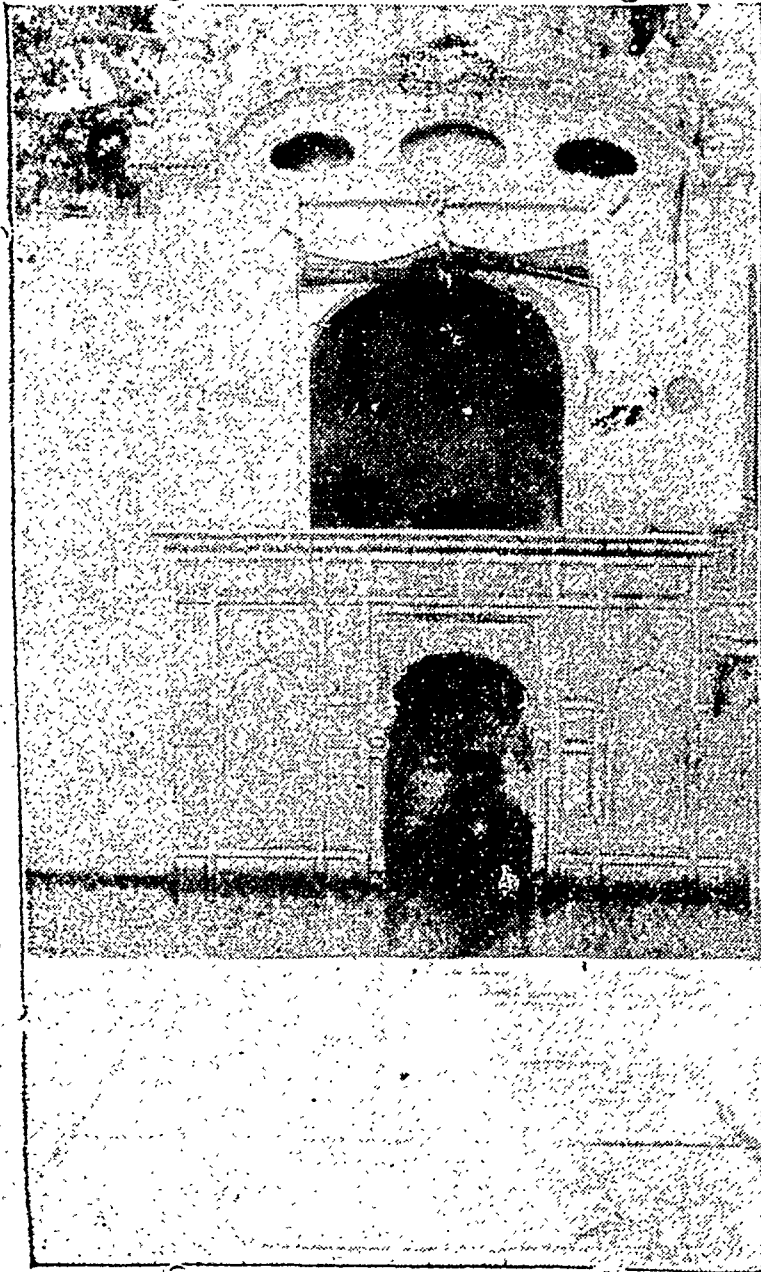
पंजासाहब में ऊपर की ओर गुरु ग्रंथसाहब के दिव्य दर्शन

पंजासाहब के आगे के तालाब का दृश्य

देख डालीं। इस शहर का असल नाम हसन अब्दाल है। यहाँ मेन लाइन का रेल्वे-स्टेशन भी है। यह तालाब स्टेशन से ४ फ़र्लांग पर है, और रावलपिंडी से पेशावर जाते समय राह में पड़ता है। इस स्थान में यात्रियों के रहने का बड़ा अच्छा प्रबंध है।

हरएक यात्री को एक-एक कमरा मिल जाता है। यहाँ पर बाग़ भी बहुत हैं। 'लुकाट'-फल यहाँ की बड़ी मशहूर मेवा है। तसवीर में जो आपको पहाड़ दिखाई देता है, उसका पूरा वृत्तांत फिर लिखने का विचार है। कोई एक वर्ष हुआ, जब से इस पर्वत से एक लाख रुपए की मासिक आमदनी होती है। हम सब शाम के ६ बजे ट्रेन पर चढ़कर रात को १२½ बजे कुशल-पूर्वक रावलपिंडी पहुँच गए।

जयदेव-राजपाल

एक अद्‌भुत घटना

मेरा जन्म एक बहुत ही छोटे-से गाँव में हुआ है। यह गाँव इतना छोटा है कि इसकी जन-संख्या, बच्चे-बूढ़े और स्त्री-पुरुष सब मिलाकर, तीन सौ से अधिक न होगी। यह होशियारपुर से ढाई मील पूर्व की ओर और बहुत पुराना है। इसलिये इसका नाम ही पुरानी बस्ती है। इसमें खँडहर-ही-खँडहर पड़े हैं। किसी समय यह पहाड़ी राजों को रोकने के लिये मुसलमान-पठानों की छावनी थी। इसके चारों ओर क़ब्रें-ही-क़ब्रें हैं। तीन ओर पहाड़ी नाला बहता है। आज से कोई सत्तर वर्ष पूर्व इसके इर्द-गिर्द एक बड़ा वन था। अँगरेज़ी-सरकार ने उसे कटवा डाला है। अब वहाँ नंदन-वन नाम का एक छोटा-सा गाँव बस गया है।

जब मैं छोटा-सा था, तो अपने यहाँ के किसानों—विशेषकर उनकी स्त्रियों—से सुना करता था कि अमुक जामुन के पुराने वृक्ष पर चुड़ैल रहा करती थी; अमुक फ़क़ीर ने अपने 'कलाम' के ज़ोर से भूत और चुड़ैलों को वशीभूत करके एक कूज़े में बंद कर दिया था; और तीन चुड़ैलें नाले के अमुक स्थान में गड़ी पड़ी हैं, ताकि वे गाँव में न आ जायँ। एक आदमी तो मेरे बड़े भाई के पास आकर आँखों-देखी बातें भी सुनाया करते थे। वह कहते थे कि कल वृहस्पतिवार था। रात सुनसान थी। मैंने अमुक क़ब्रस्तान से भूतों और चुड़ैलों की एक बारात निकलती देखी थी। उनके साथ मशालें थीं; बाजे बज रहे थे; चुड़ैलें नाच रही थीं। चुड़ैलों के पैर पीछे की तरफ़ मुड़े हुए थे; स्तन कंधों पर से पीठ की ओर लटक रहे थे; और केश बिखरे हुए थे, इत्यादि। मेरे भाई उनसे कहते थे—चौधरीजी, यदि यह अद्‌भुत बारात आप हमें भी कभी दिखावें, तो हम सच मानें। चौधरीजी अगले ही वृहस्पतिवार को दिखाने का वचन देते थे। परंतु आज तक वह कभी दिखा नहीं सके। नबी गड़रिए ने अनेक बार मुझे भूतों और चुड़ैलों के आँखों-देखे वृत्तांत सुनाए, और रात को दिखाने की प्रतिज्ञा भी की। परंतु अंत को यह कह देता था कि आपका इनमें विश्वास नहीं, इसलिये ये आपको नहीं दिखलाए जा सकते।

मैं जब बच्चा था, तब इन भूत-बेतालों की बातें सुनकर बहुत डरा करता था। परंतु बड़ा होकर जब स्कूल में पढ़ने लगा, तो मेरा वह डर विस्मय

और आश्चर्य में बदल गया। फिर जब कॉलेज में पदार्थ-विज्ञान की शिक्षा पाई, विद्वानों का सत्संग किया, तो इस आश्चर्य ने मनोरंजन का रूप धारण कर लिया। गाँव के लोगों से भूतों की बातें सुनने में मुझे उपन्यास का-सा मज़ा मिलने लगा। पर मन-ही-मन मैं उन लोगों के मूढ़ विश्वास पर हँसता था। कारण, सत्यार्थप्रकाश आदि सद्ग्रंथों के पाठ और भौतिक विज्ञान की शिक्षा से मुझे यह निश्चय हो गया था कि भूत-प्रेत आदि का अस्तित्व ही नहीं है; ये अज्ञानी लोगों के निर्बल मन की कल्पना या सृष्टि-मात्र हैं। अनेक बार मुझे अकेले आधी रात को होशियारपुर से घर आना पड़ता था। रास्ते में पहाड़ी नाला और क़ब्रस्तान पड़ता था। जब मैं वहाँ से गुज़रता था, तो, भूत-प्रेत आदि को मूढ़ लोगों की कल्पना-मात्र समझने पर भी, स्वतः मेरे मन में भय-सा होने लगता था। पर मेरे मन में यह दृढ़ विश्वास था, और अब भी है, कि पहले तो भूत-प्रेत आदि कोई अमूर्त प्राणी हैं ही नहीं; क्योंकि श्रीभगवद्गीता के अनुसार दूसरा चोला तैयार होने पर ही आत्मा अपने पहले शरीर को छोड़ती है। किंतु भूत-प्रेत के रूप में घूमने के लिये उसके पास कोई शरीर होना चाहिए, जिससे दुबारा मरकर उसे दूसरी योनि में जाना पड़ेगा। दूसरे, यदि कोई ऐसे प्राणी हों भी, तो वे निरपराध मनुष्यों का कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते। यदि वे अनिष्ट करना भी चाहें, तो भगवती गायत्री के जप का कवच उनके आक्रमण को विफल कर सकता है। इसलिये मैं गायत्री का जप शुरू कर देता था। इससे डर बिलकुल जाता रहता था। उस डर को मैं अपने मन की निर्बलता समझता था। मुझे किसी भूत-प्रेत के कभी दर्शन नहीं हुए थे।

ऊपर की सब बातें आगे लिखी जानेवाली आश्चर्यजनक घटना के लिये भूमिका-मात्र हैं। इस भूमिका के बिना उस घटना का वास्तविक स्वरूप समझ में नहीं आ सकता। अब वह घटना सुनिए।

पुरानी बस्ती से कोई पौन मील के अंतर पर, पश्चिम की ओर, नाले के पार, हमारा एक बड़ा-सा बाग़ है। उसके चारों ओर दूर-दूर तक गोचर-भूमि है। उसमें सरकंडे और कास के बड़े-बड़े असंख्य झुंड हैं। वसंत में नई घास उगने लगती है, और वर्षा-काल में वह सारी भूमि एक घना वन बन जाती है। कास के फूलने पर वहाँ का दृश्य बड़ा ही रमणीय हो जाता है। चारों ओर विस्तृत निर्जन-मैदान में हवा से उन झुंडों के विकंपित होने पर जो गंभीर मरमर-ध्वनि निकलती है, वह अंतरात्मा के अंतस्तल में पहुँचकर, अंधकारमयी रजनी में, भय और विस्मय दोनों उत्पन्न करती है। बाग़ के एक कोने पर एक छोटी-सी कुटिया है। वहाँ कभी एक साधु रहा करता था। परंतु जिन दिनों की बात मैं करता हूँ, उन दिनों वहाँ कोई साधु न था। सन् १६१७ का एप्रिल-मास था। मेरा भतीजा बीमार था। उसे वह कुटिया बहुत पसंद थी। इसलिये वह दिन-रात वहीं रहता था। उसके साथ रात को मैं भी वहीं सोता था।

एक दिन—तिथि मुझे याद नहीं रही—सायं-काल का भोजन गाँव में करके मैं रोगी के लिये एक लोटे में दूध लेकर कुटी को चला। उस समय आकाश में काली घटाएँ छाई हुई थीं। हवा बड़े ज़ोर से चल रही थी। कृष्ण-पक्ष की काली रात मेघों के कारण और भी काली हो रही थी। मैं दूध लेकर गाँव से बाहर हुआ ही था कि बूँदा-

बाँदी होने लगी। वायु की प्रचंडता भी बढ़ने लगी। घने अंधकार में हाथ-मारा न सूझता था—रास्ता दिखाई न देता था। उस पर हवा के थपेड़े और भी ग़ज़ब ढा रहे थे। मैं पथ-भ्रष्ट होकर एक स्थान पर ठहर गया। परंतु बूँदा-बाँदी में ठहरना भी कुछ सुखदायक न था। मैं सोच रहा था कि क्या करूँ? आगे चलूँ या पीछे लौट जाऊँ? इतने में कुछ दूर पर मुझे आग की लपट देख पड़ी। कुछ ही देर में उस आग की शिखाएँ बढ़कर वृक्ष के बराबर ऊँची हो गईं। वे वायु के भँवर के सदृश चक्राकार घूम रही थीं। मैं उस ज्योतिर्मय भँवर की ओर चला। उस समय मेरे मन में नाना प्रकार के विचार उठ रहे थे। बुद्धि भूत-प्रेत के अस्तित्व को मानने के लिये तैयार न थी। परंतु क़ब्रस्तान समीप था, इसलिये बचपन के संस्कार जाग्रत् होकर ग्रामवासियों की बातों को सत्य मानने के लिये विवश कर रहे थे। यह भी सुन रक्खा था कि दूध लेकर बेतालों की भूमि में जाना अच्छा नहीं होता। मेरे पास इस समय दूध भी था। अंत को मैं गायत्री का कवच धारण कर, बेधड़क हो, इस उद्देश्य से उस अद्भुत ज्योति की ओर बढ़ा कि आज भूतों और चुड़ैलों की सचाई की परीक्षा करके छोड़ूँगा। भागकर अब प्राण बचाना कठिन है। परंतु ज्यों ही मैं उस ज्योति-स्वरूप के निकट पहुँचा, वह घूमता-घूमता आगे चल दिया। मैंने भी उसका पीछा किया। अब की जब मैं उसमें प्रवेश करने ही को था कि वह बिलकुल ग़ायब हो गया। कुछ देर तक मैं चकित-स्तंभित खड़ा रहा। मुझे अब तक यह भी न मालूम होता था कि मैं इस समय कहाँ हूँ। सहसा कुछ दूर पर वही ज्योति फिर प्रकट हुई। मैं फिर उसके पास जाने का प्रयत्न करने लगा। मुझे ऐसा दिखाई पड़ रहा था कि पृथ्वी में से धधक-धधककर आग की शिखाएँ निकल रही हैं। पर ज्यों ही मैं उसके पास पहुँचा, वह ज्योतिर्मय भँवर फिर आगे चल दिया। कुछ दूर तक मैंने उसका अनुगमन किया। परंतु वह फिर अंतर्द्धान हो गया, और दुबारा देख न पड़ा।

अब मैं अपने बाग़ में जाने का यत्न करने लगा। मगर उस तमोराशि में कुछ भी न सूझता था। अंत को, बड़ी कठिनता से, एक बाग़ में एक दीपक टिमटिमाता दिखाई दिया। मैं उसे ही लक्ष्य करके चल पड़ा। वहाँ पहुँचने पर जान पड़ा कि मैं अपने बाग़ से बहुत दूर आगे निकल आया हूँ। माली की सहायता से लौटकर मैं फिर अपने बाग़ में पहुँचा, और कुटी में जाकर रोगी को दूध पिलाया।

वह ज्योति क्या थी, इसका मैं अभी तक कुछ भी निश्चय नहीं कर सका। इँगलैंड से "बुकमैन" नाम की एक मासिक पत्रिका निकलती है। उसके सन् १९२३ के क्रिसमिसवाले विशेषांक में बेतालों, परियों और स्वप्नों के विषय में बहुत-से विचारकों की सम्मतियों का संग्रह प्रकाशित हुआ है। विज्ञानाचार्य सर ऑलिवर लॉज ने भूत-बेतालों के विषय में जो सम्मति लिखी है, उसी को यहाँ उद्धृत करके मैं इस लेख को समाप्त करता हूँ। पाठकों को उनकी सम्मति पढ़कर उपर्युक्त घटना का विवेचन करने में सुबीता होगा।

आचार्य लॉज लिखते हैं—

"भूतों की कहानियों का गढ़ना परिकथा (fiction) का एक अपेक्षाकृत सुकर रूप है। जब तक ऐसी बातों के लिये कोई आधार नहीं प्रतीत हुआ था, तब तक परिकथा का यह प्रकार निरुपद्रव और संभवतः कौतुकमय था। परंतु अब हमें

अनेक ऐसी अद्भुत घटनाओं के घटित होने का ज्ञान है, जिनका कोई समाधान नहीं हो सकता। उनके अन्वेषण और सचाई को छानकर झूठ से अलग करने के लिये भारी प्रयत्न किया जा रहा है। इसलिये काल्पनिक क्षोभकारी घटनाओं के गढ़ने की अब आवश्यकता नहीं है। इससे जो लोग साक्षी के विषय में शंकाशील नहीं हैं, उनके गड़-बड़ में पड़ जाने का डर है।

जिस बात में वस्तुतः जनता की रुचि है, वह लोकोत्तर अनुभवों में अंतर्निहित सत्य की मात्रा और उनमें लिपटे हुए अर्थ हैं। निर्दोष परिणामों पर पहुँचने के लिये प्रयत्न, निरंतर और पक्षपात-रहित अध्ययन का प्रयोजन है; कल्पनात्मक वृत्तांतों को गढ़ना इस काम के लिये निष्फल है। इसकी जनता को वास्तव में आवश्यकता नहीं।

फिर भी जो जानकारी हमने अब तक प्राप्त की है, उसके निदर्शन के लिये, साहित्यिक क्षमता और पर्याप्त ज्ञान रखनेवाले लोगों का विश्व के अपेक्षाकृत कम परिचित पक्ष के विषय में अपनी वर्तमान विभावना को, कल्पनात्मक आलेख्य के वेष में, या नाटकीय वर्णन के रूप में प्रदर्शित करना या उसकी व्याख्या करना यथार्थ है। जनता को जानना चाहिए कि ऐसे प्रयत्न शिल्पी या लेखक के वर्तमान विचारों से बढ़कर और किसी गंभीर बात को नहीं दिखलाते।

सत्य घटनाओं के पूर्ण सूत्र निकालने के लिये समय अभी पूरी तरह से परिपक्व नहीं हुआ। परंतु जब वह समय आवेगा, तो मुझे आशा है कि सचाई परिकथा से अधिक अद्भुत मालूम होगी, और कल्पना, कदाचित् वाह्य रूप से ही नहीं, बल्कि गंभीरता-पूर्वक भी, सत्यता से नीचे गिर पड़ेगी।"

संतराम

बलिदान

भव्य, भावुक, भारत-संतान,
बढ़ो, अपना दे दो बलिदान।
जगत् में जिससे आदर हो,
न उसके करने में डर हो।
तुम्हें क्या डर, अजरामर हो,
शेर नर हो, क्या कायर हो?
अगर है कुछ भी तुममें जान,
बढ़ो, अपना दे दो बलिदान।
शांति की शक्ति हृदय में हो;
अभय अभ्युदय विनय में हो।
सुदृढ़ विश्वास विजय में हो;
पूर्ण कर्तव्य समय में हो।
न हो कुछ करने का अभिमान,
बढ़ो, अपना दे दो बलिदान।
मोह-ममता में मत मन दो;
दमन को अपना जीवन दो।
देश-हित को सारा धन दो;
यही उन्नति के साधन दो।
तुम्हीं पर निर्भर है उत्थान।
बढ़ो, अपना दे दो बलिदान।
कष्ट हों जितने, सब थोड़े;
तौक को समझो तुम तोड़े।
हथकड़ी-बेड़ी पर कोड़े—
घृणा से फिर भी मुँह मोड़े—
जेल जाने को मानो मान,
बढ़ो, अपना दे दो बलिदान।
जेल क्या, फाँसी भी गर हो;
हृदय उत्फुल्ल, न कुछ डर हो।
अगर मरने का अवसर हो—
कहो—"भारत यह, ईश्वर, हो—
हमारा फिर भी जन्मस्थान।"
बढ़ो, अपना दे दो बलिदान।

"भारत-भक्त"

मिस्टर अलफ़ाबेट्स्

[चित्रकार —श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू]
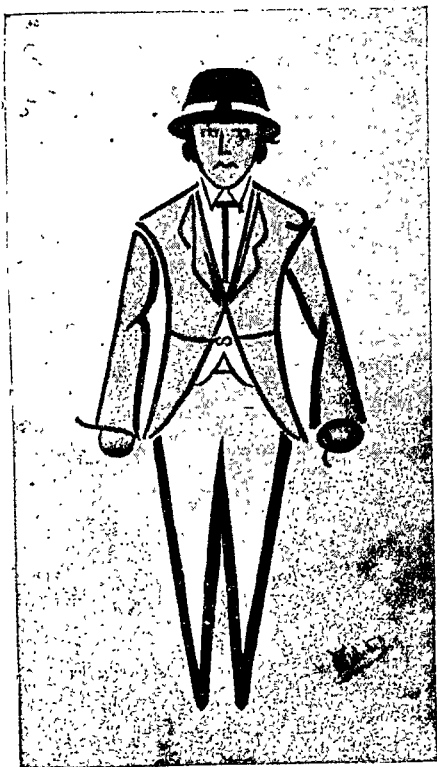
इस चित्र में अँगरेज़ी-वर्णमाला के A से लेकर Z तक छब्बीसो अक्षर देख पड़ते हैं। चित्रकार की यह कारीगरी अवश्य ही दर्शनीय और मनोरंजक विनोद की सामग्री है।
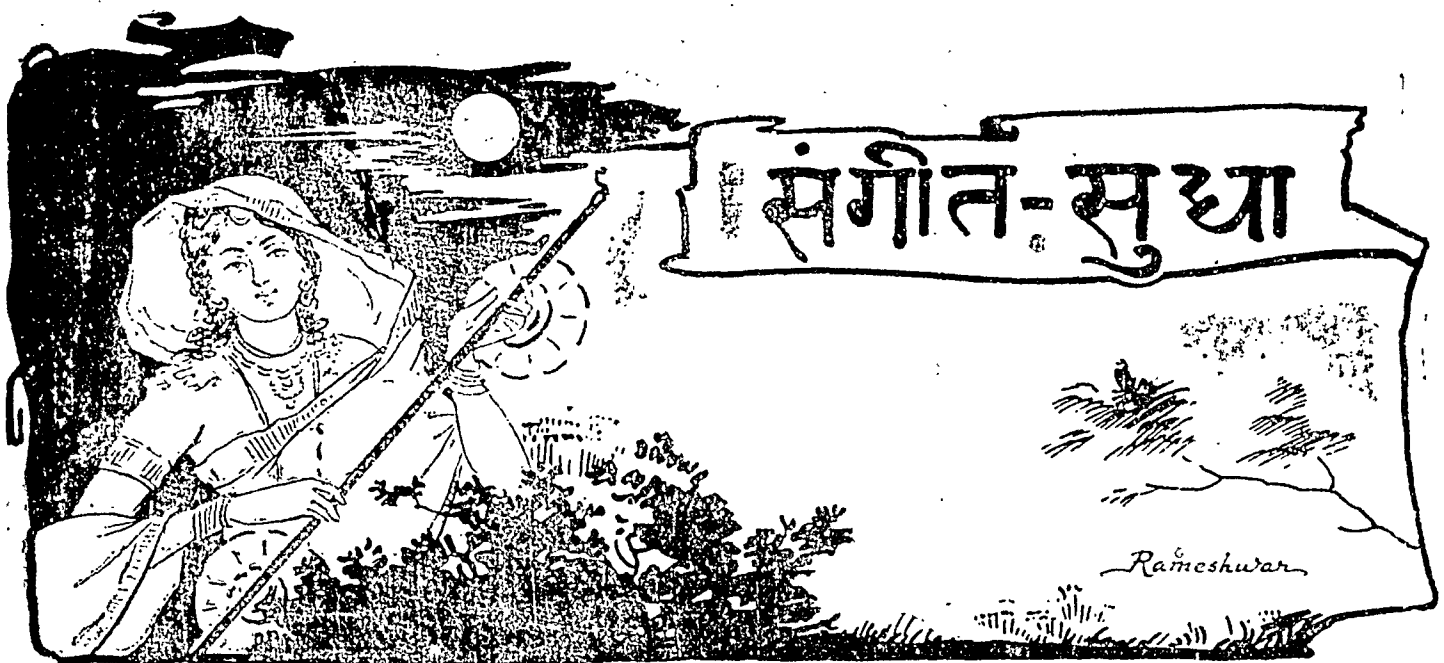
स्वरकार—श्रीविश्वंभरसहायजी "व्याकुल"] **[शब्दकार**—श्रीविश्वंभरसहायजी "व्याकुल"

मलार

[पीलू बरवा—तीन ताल]

छाए री उमँड-घुमँड बादर।
अकेली समझ मोहें दामिनि डराए, आए ना पिया।
कोयल, पपिहा कूक सुनावें,
हूक फूँक उर अगन लगावें,
व्याकुल पिया बिन जिया अकुलाए॥

स्थायी

०				१				+				३			
								नी	सा	नीसा	रेगा	—	गारे	गारे	नी
								छा	ए	री	—	—	—	उ	मँ
सा	रेपा	धा	मा	गारे	गारे	सा	सा	नी	सा	नीसा	रेगा	—	गारे	गारे	नी
ड	घु	मँ	ड	बा	—	द	र	छा	ए	री	—	—	—	उ	मँ
गा	रे	मा	मा	पा	पा	पा	पा	धापा	मागा	रेगा	पा	मा	—	—	धापा
अ	के	ली	स	म	झ	मो	हें	दा	मि	नि	ड	रा	—	—	ए
रेमा	पाधा	पा	गा	रेसा	रेनी	सा	सा								
आ	—	ए	ना	पि	—	या	—								

अंतरा

नी धा पा नी	सा सा रे पा	मा गासा रे गा	गारे गारे सा —
को — य ल	प पि हा —	कू — क सु	ना· ओं· वें —
गा रे नी सा	रे पा धा मा	गा सा रे गा	गारे गारे सा —
हू — क फूँ	— क उ र	अ ग न ल	गा· ओ· वें —
गा रे मा मा	पा पा पा पा	धापा मागा रेगा पा	मा — — धापा
व्या — कु ल	पि या बि न	जि या· अ· कु	ला — — ए
रेमा पाधा पा गा	रेसा रेनी सा सां		
आ — ए ना	पि — या —		

१. कृष्ण-मंदिर

(रजिया)

न्माष्टमी का दिन, आधी रात का समय है । नगर के बाहर, सघन वन के बीच, कृष्ण-मंदिर में धूम मची है । भीतर के प्रकाश से जान पड़ता है, सूर्यदेव ने आज रात को इसी मंदिर में विश्राम किया है । कितने ही स्थानों पर कृष्ण-गुण-गान हो रहा है । एक ओर भगवद्गीता का पाठ हो रहा है । ढोल और मँजीरों की ध्वनि तथा लोगों के जय-नाद के आगे किसी की बात सुनाई नहीं देती । मंदिर की सजावट देखकर आनंद से चित्त प्रफुल्लित हो जाता है । श्वेत वस्त्र तथा पीतांबर धारण किए ब्राह्मण हुलस-हुलसकर कृष्ण-जन्म की तैयारी कर रहे हैं । दर्शकों की भीड़ लगी है । अच्छे-अच्छे वस्त्र पहने पुरुष अपने-अपने फूल लिए खड़े हैं । स्त्रियाँ बहु-मूल्य वस्त्राभूषण धारण किए कृष्ण-जन्म की बाट जोह रही हैं । जान पड़ता है, आज इस मंदिर में भक्ति, श्रद्धा और उत्साह की त्रिवेणी बह रही है ।

बाहर काली घटाएँ घहरा रही हैं ; वायु, अपने वेग को न रोक सकने के कारण, पागलों के समान इधर-उधर फिर रही है । बड़े-बड़े वृक्षों की डालियाँ अपने मस्तक को बार-बार भूमि तक नवा रही हैं । जल-वृष्टि सोते हुए पौदों को जगाने के लिये उनके मुँह पर छींटे मार रही है । सारी प्रकृति भगवान् के जन्म की प्रतीक्षा में मानो उनके स्वागत के लिये उत्सुक और उन्मत्त हो रही है ।

वन के भयंकर अँधियारे में, पानी से भीगी हुई, एक अछूत-जाति की अनाथ, दरिद्र बालिका, हाथों में फूल लिए, हाँपती हुई, मंदिर के द्वार पर आई । अपनी दशा का स्मरण करके बाहर पानी ही में ठिठककर रह गई । भगवान् के जन्म का समय निकट था । बालिका का हृदय हाथों उछलने लगा । इधर-उधर देखा, कोई आने-जानेवाला पानी में न देख पड़ा । घड़ियाल बजने का शब्द हुआ । लोग अपने-अपने फूल लेकर कृष्ण को अर्पण करने चलने लगे । बालिका से न रहा गया । दो सीढ़ी चढ़ आई । दरिद्र देखकर पुजारी ने नीचे हटा दिया । बालिका ने अपने फूल उसकी ओर बढ़ाए ; पर उसने दृष्टि फेर ली । हताश बालिका ने अपने फूल खींच लिए । सारे मंदिर में धूम मच गई । भगवान् का जन्म हो गया । भीतर पुष्पों की वृष्टि हो रही थी । बालिका की आँखों से आँसू निकल पड़े । अपने फूलों को आँचल में रखकर, किनारे हटकर, वह फूट-फूटकर रोने लगी ।

सहसा प्रकाश हुआ । बालिका ने आँसू-भरी आँखों से देखा, प्रभु सामने खड़े हैं । यही मूर्ति तो उसने

सदा से अपने हृदय में धारण की थी। दौड़कर उनके चरणों पर गिर पड़ी। बालिका को उठाकर कृष्ण ने गले से लगा लिया। जिस समय वेदपाठी ब्राह्मण कृष्ण की पत्थर की मूर्ति की पूजा कर रहे थे, उस समय यह दरिद्र अछूत बालिका साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों पर पुष्प चढ़ा रही थी। दीनबंधु, पतितपावन कृष्णचंद्र की भक्तवत्सलता की बलिहारी!

प्रकृति भी कृष्ण के दर्शन पाकर मानो मुग्ध हो खड़ी हो गई। पानी थम गया। हवा बंद हो गई। लोग प्रसाद लेकर अपने-अपने घर को लौटने लगे। बालिका ने कातर दृष्टि से प्रभु के मुँह की ओर ताका। कहीं कोई उसको उनके पास से हटा न दे! कृष्ण ने मुसकिराकर अपना हाथ उसके सिर पर रख दिया। सारी भीड़ छँट गई। प्रभु को सामने देखकर भी किसी ने न पहचाना! वृक्षों की ओट में से निकलकर एक अपूर्व सुंदरी ने कहा—"क्या नाथ, इन्हीं के लिये अवतार लोगे? जो तुम्हें सम्मुख पाकर भी न पहचानें, उनके लिये वैकुंठ छोड़कर यहाँ आओगे?" कृष्ण ने हँसकर कहा—"हाँ राधे, यदि और नहीं, तो अपनी रजिया के लिये मैं वैकुंठ छोड़ दूँगा।" रजिया के नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। कृष्ण के चरणों पर अपना सिर रख दिया। उसे उठाकर, मुख चूमकर राधा-सहित नाथ अंतर्द्धान हो गए। पृथ्वी काँप उठी—चारों दिशाएँ गूँज उठीं—

"बचा लो, अब तो आओ नाथ!"

रामगोपाल मिश्र

× × ×

२. पूर्वीय चित्रों का एक संग्रह

यह प्रायः सभी जानते हैं कि बाँकीपुर की ओरियंटल-पबलिक-लाइब्रेरी में, जिसको बहुत लोग उसके संस्थापक के नाम पर खुदाबख़्श-लाइब्रेरी भी कहते हैं, फ़ारसी के कवियों और इतिहासज्ञों की बहुत-सी सचित्र हस्त-लिखित पुस्तकें हैं। ये पुस्तकें अपने सुंदर, सूक्ष्म चित्रों (Miniature) के लिये, तथा अप्राप्य होने के कारण, इन दिनों बहुत बहु-मूल्य हो रही हैं। इस पुस्तकालय में पुस्तकों के अतिरिक्त फ़ारस और भारत की शैली के चित्रों का एक बड़ा संग्रह भी है। किंतु बहुतों को शायद यह मालूम नहीं कि पटने को एक और संग्रह का अभिमान है। इस बहु-मूल्य संग्रह में भारत के सब तरह के चित्रों के प्रतिनिधि हैं। इनमें कुछ तो रंग, सुंदरता और भाव-प्रदर्शन में राजपूत और मुग़ल-कला की चरम सीमा तक पहुँच गए हैं। लोगों का अनुमान है कि इस संग्रह का मूल्य कम-से-कम ७ लाख रुपए है। पटना-हाईकोर्ट के बैरिस्टर मि० पी० सी० मानुक इसके स्वामी हैं।

जनसाधारण को इस संग्रह के विषय का ज्ञान न होने का यह कारण नहीं है कि मानुक साहब इसे किसी को दिखलाते नहीं। जो कोई इसे देखकर अपने नेत्रों को तृप्त करना चाहता है, उसे वह बड़ी प्रसन्नता से दिखलाते हैं। उनका विचार है कि इन चित्रों से हरएक मनुष्य को बहुत कुछ शिक्षा और साथ-ही-साथ आनंद भी मिल सकता है। किंतु, जैसा कि उन्होंने बिहार ऐंड ओरीसा रिसर्च सोसाइटी के वार्षिक अधिवेशन (मार्च, १९२३) में, जिसके सभापति बिहार के गवर्नर सर हेनरी ह्वीलर थे, कहा था, वह अपने चित्रों को अपने घर के बाहर कभी नहीं जाने देते। सबसे बढ़कर बात तो यह है कि एक मनुष्य का यह निज का संग्रह है। इसलिये सर्वसाधारण को इसकी जितनी जानकारी होनी चाहिए, उतनी नहीं हुई।

इन चित्रों का संग्रह आरंभ करने के पहले मानुक साहब को चीन के पुराने बरतनों का बड़ा शौक़ था। वह उन्हीं के संग्रह में लगे हुए थे। इस समय इन बरतनों का भी उनके पास एक अच्छा संग्रह है। किंतु ओरियंटल-पबलिक-लाइब्रेरी के चित्रों को देखकर इन्हें स्वयं पूर्वी ढंग के चित्रों का संग्रह करने का उत्साह हुआ, और शीघ्र ही यह उसमें दत्तचित्त हो गए। इन्होंने बड़े परिश्रम और व्यय से पूर्वी कला के चित्रों का संग्रह आरंभ कर दिया। उपर्युक्त वार्षिक अधिवेशन में आपने कहा था—"इन पारसी और भारतीय चित्रकारों के चित्रों का अध्ययन और अनुशीलन करने के पश्चात् हम यह कहने में बिलकुल नहीं हिचकते कि ये चित्र उच्च श्रेणी की सभ्यता की सूचना देते हैं। हाँ, इसमें कोई संदेह नहीं कि इस सभ्यता का विकास पश्चिमी सभ्यता से भिन्न आदर्श पर हुआ था।"

मानुक साहब ने बड़े परिश्रम और सौभाग्य से इन चित्रों को प्राप्त किया है। वास्तव में इस संग्रह के बहुत-से उत्तम-उत्तम चित्र ख़रीदे नहीं गए, बल्कि मानुक साहब को, इनकी खोज में भ्रमण करते समय, यों ही मिल गए। एक समय किसी ने ठीक ही कहा था कि उनकी दृष्टि में चित्र प्राप्त करने के लिये कोई भी स्थान दूर नहीं था, कोई भी जगह गंदी नहीं थी, और कोई भी कष्ट दुःसह नहीं था। कुछ दिन हुए, पटने में बाढ़ आई थी। तब मैंने स्वयं मानुक साहब को घुटनों तक या इससे भी अधिक पानी मँझाकर चित्रों को बचाने के लिये जाते देखा था। इनके लिये उन्होंने सारे भारत में भ्रमण किया—लखनऊ, आगरे, दिल्ली, लाहौर, बंबई और पूने गए।

मैं पहले ही कह आया हूँ, मानुक साहब के संग्रह में सब शैली के चित्र हैं। उनके पास मुग़ल-शैली के चित्रों का अच्छा संग्रह है। एक तिरंगा सुनहला चित्र (शाहजहाँ की परलोक-यात्रा) इसी संख्या में अन्यत्र प्रकाशित है। यह मुग़ल-शैली फ़ारस के राजा वेहीजेद के समकालीन अकबर को बहुत पसंद थी, और उसने इसे बहुत उत्साहित किया था। निरक्षर, किंतु समझदार अकबर ने मुग़ल-चित्रकारों को बहुत ही अधिक उत्साह दिया था।

इस संबंध में मानुक साहब का कहना है कि यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि फ़ारस के प्राचीन चित्रकारों के वंशजों ने इस देश में आकर हिंदू-राजसभा के चित्रकारों के साथ काम किया; इन चित्रकारों के नियम और रीति को, जिसे उन्होंने अपने हिंदू-सहयोगियों से सीखा था, अपना लिया। इस हेर-फेर की व्याख्या वह इस प्रकार करते हैं—अपने चित्रों को सुंदर बनाने के लिये फ़ारसी चित्रकारों ने पहले सुंदर लेखन-कला की बड़ी उन्नति की। इसमें उन्हें अपनी लेखन-शैली से बहुत कुछ सहायता मिली; क्योंकि उनके अक्षर बड़ी सुंदरता से लिखे जा सकते हैं। इसके बाद उन्होंने इन पर रंग चढ़ाया, और तब इन्हें चित्रों में परिवर्तित कर दिया। इसके उपरांत वे अपने कुरानशरीफ़ की आज्ञा के विरुद्ध पशुओं और मनुष्यों के चित्र बनाने लगे। किंतु, यद्यपि ये चित्र बहुत ही सुंदर थे, नेत्रों को इनसे बहुत आनंद मिलता था, लेकिन इनसे उनकी आत्मा को संतोष नहीं हुआ। कारण, आत्मा विशेषकर धर्म-संबंधी चित्रों ही से संतुष्ट होती है। मगर उनके हिंदू-सहयोगियों को कोई ऐसी अड़चन नहीं थी; क्योंकि उनके लिये देवी-देवतों के चित्र परमावश्यक थे, और उनके रंग-रूप भी प्रायः पहले ही से पुराणों में निश्चित थे। इसका फल यह हुआ कि हिंदू-चित्रकारों के चित्र आत्मा को अधिक संतुष्ट कर सके, और उत्तम कला का वास्तव में यही एक बहुत बड़ा प्रमाण है।

मानुक साहब के पास राजपूत-शैली के बहुत-से उत्तमोत्तम चित्र हैं। यद्यपि इन चित्रों के रंग मुग़ल-शैली के चित्रों के समान भड़कीले नहीं हैं, और न ये विस्तार ही में उनकी समता कर सकते हैं, तथापि इनका माधुर्य ही कुछ दूसरा है। कंगरा-घाटी के ढंग के चित्रों ने भी, जिनमें केवल हिंदू-पौराणिक कथाओं के दृश्य बड़ी कोमलता से दिखलाए गए हैं, इस संग्रह में स्थान पाया है। मानुक साहब अपने स्थानीय, अर्थात् पटने के, ढंग के चित्रों को भी नहीं भूल गए हैं। इस तरह के कई चित्र तो उन्होंने ख़ुद बनवाए हैं।

हाँ, यह कहा जा सकता है कि मानुक साहब के पास बंगाली ढंग के चित्र बिलकुल नहीं हैं। मानुक साहब की राय में बंगाली चित्रकारी पर जापान का, जिसने योरपियन ढंग को बहुत कुछ अपना लिया है, प्रभाव बहुत पड़ा है। आप इस बात से बहुत दुःखित हैं कि विदेशियों का प्रभाव बंगाल में दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। वह कहते हैं, मैं भारत की अपनी चित्रकारी से इतना अधिक प्रेम करता हूँ कि यह कदापि नहीं चाहता कि उस पर योरप और जापान की छाप पड़े। आपके कथन से जान पड़ता है कि वह पक्के स्वदेशी हैं; और वास्तव में यदि आधुनिक भारत अपने पुनर्जन्म के लिये चेष्टा करना चाहता है, तो उसे कम-से-कम इस कला के संबंध में अपने ही आचार्यों के मार्गों का अवलंबन करना चाहिए।

श्रीयोगींद्रनाथ समाद्दार

× × ×

३. तारे

क्या निशा के हार से हैं टूटकर,
व्योम में मोती पड़े बिखरे खरे ?
दिग्वधूदल या निशा पर प्रेम से,
पुष्प-रत्नों की घनी वर्षा करे ?

नील-सागर की विशाल उरस्थली,
फेन-कण से व्याप्त कैसी राजती ?
या किसी वर भामिनी की ओढ़नी,
बूटियों के हास की छवि सोहती ?
राहु ने क्या द्वेष से अभिभूत हो,
चंद्र-कण हैं व्योम में बिखरा दिए ?
गेंद हैं या मणि-जड़े मुक्ता-मढ़े,
खेलने को सुर-वधू-जन के लिये ?
क्रोध से उद्विग्न अथवा, विष्णु के—
हैं सुदर्शन-चक्र की चिनगारियाँ ?
या सुधा के बूँद शशधर के लिए,
हैं जुगोती प्रेम से दिङ्नारियाँ ?
या नभस्थल के अपूर्व वितान में,
जगमगाता दीपकों का पुंज है ?
यामिनी वर भामिनी के लास्य का—
विमल पुष्पों से लदा या कुंज है ?
नील तृण-दल से भरे मैदान में,
कुंद की कलियाँ बिछी क्या राजतीं ?
दीप-श्रेणी की प्रभा को जीतकर,
पंक्तियाँ खद्योत की या राजतीं ?
हर्ष से उत्फुल्ल अथवा इंद्र के,
नेत्र तारा-व्याज से छवि पा रहे ?
पुंज या घनसार के इस लोक से,
व्योम में उड़कर गई छवि छा रहे ?
मानसर के शांत नीरागार में,
क्या कमल-कुल हैं प्रभा बिखरा रहे ?
हंस-मालाएँ पड़ीं या सो रहीं,
शंख-दल हैं या पड़े उतरा रहे ?
हे प्रभा के पुंज तारो , यश-कथा—
का तुम्हारी पार पा सकते नहीं ?
बहुत ढूँढ़ा—ढूँढ़ हारे सब कहीं,
पर भला तुलना तुम्हारी कब कहीं ?
पश्चिमी लवणांबु की या वीचियाँ,
दिवस-मणि को अंक में जब भर रहीं ;
चंद्र जब क्षय-क्षीण राजत तंतु-सा,
ढूँढ़ने पर भी कहीं मिलता नहीं ;
कालिमा से पोतकर संसार को,
मत्त हो जब नाचता है तम बली ;
तब तुम्हारी ही कृपा से विश्व में,
देख पड़ती स्वर्ग की दीपावली।
रात की काली घटा के साथ क्यों,
मेल है इतना तुम्हारा बढ़ गया ?
स्नेह कालों और गोरों का सुनो,
दृश्य है इस लोक में बिलकुल नया।
स्नेह अथवा यह नहीं—यह स्वार्थ है,
स्नेह से क्या स्वार्थ छिप सकता कहीं ?
कौन तुमको इस जगत् में जानता,
साथ यदि तुम रात का करते नहीं ?
जब उषा पूर्वी झरोखे में खड़ी,
आगमन की सूर्य के कहती कथा।
मुँह छिपाकर भागते हो तुम तभी,
कौशिकों के झुंड रवि-भय से यथा।
तुम बहुत, रवि एक, सबकी हर प्रभा,
व्याप्त करता तेज से संसार को।
एकता होती अगर तुममें कहीं,
सैकड़ों रवि विजित थे—निस्सार हो।
ध्रुव तुम्हारे वंश ही का रत्न है,
कीर्ति जिसकी त्रिपथगा-सी है बही।
अटलता की मूर्ति वह संसार में,
अटलता का गीत अब तक गा रही।
जन्म से ले मृत्यु तक हर जीव के
क्या बँधे बंधन तुम्हारे साथ हैं ?
सत्य है क्या, प्राणियों के भाग्य की,
डोरियाँ रहतीं तुम्हारे हाथ हैं ?
सत्य है क्या, इस जगत् के जाल के—
दुःख-पारावार के—कारण तुम्हीं ?
विमल मानव-जाति को उसमें भला
क्या डुबोते तारते क्षण-क्षण तुम्हीं ?
क्या तुम्हीं मद-मत्त अत्याचारियों—
की भुजाओं में अनोखी शक्ति दो ?
क्या तुम्हीं अन्यायियों को न्याय से,
मोड़ने में मुख, विलक्षण भक्ति दो ?
क्या तुम्हीं चिंता-चिता की दाह में—
जीव को दुख के दिखाते शूल हो ?
क्या तुम्हीं संपत्ति-तरु के बीज बो,
सलिल दे, सुख के खिलाते फूल हो ?

सत्य यदि यह, तो विनय मेरी सुनो,
दीन भारत पर दया कुछ तो करो।
दुःख और दरिद्रता के शाप को,
इस अभागे देश से अब तो हरो।

भूपनारायण दीक्षित

× × ×

४. विदेशों में भारतीयों की संख्या

देश	भारतीय	वर्ष
ब्रिटिश-साम्राज्य के अंतर्गत—		
१. लंका	७,५०,०००	१९२०
२. स्ट्रेट्स सेटलमेंट्स	१,०४,६२८	१९२१
३. F. M. S.	३,०५,२१९	,,
४. ब्रिटिश मलाया	६१,८१९	,,
५. हांगकांग	२,५५५	१९११
६. मॉरिशस	२,६४,५२७	१९२१
७. सिकेलस	३३२	१९११
८. जिब्राल्टर	५० (लगभग)	१९२०
९. निलजेरिया	१०० ,,	,,
१०. कैनिया	२२,८२२	१९२१
११. उगंडा	३,५००	१९२०
१२. न्यासालैंड	४०७	१९१८
१३. जंजीबार	१२,८४१	१९२१
१४. टैंगानिका	६,४११	,,
१५. जमैका	१८,४०१	१९२२
१६. ट्रिनीडाड	१,२१,४२०	१९२१
१७. ब्रिटिश गायना	१,२४,९३८	१९१८
१८. फ़िज़ी	६०,६३४	१९२१
१९. बसुतोलैंड	१७९	१९११
२०. स्वीज़लैंड	७	,,
२१. उत्तरी रोडेशिया	५६ (एशियाई)	१९२१
२२. दक्षिणी ,,	१,२५० ,,	,,
२३. कनाडा	१,२०० ,,	,,
२४. आस्ट्रेलिया	२,००० (लगभग)	१९२२
२५. न्यूज़ीलैंड	६०६	१९२१
२६. नेटाल	१,४१,३३६	,,
२७. ट्रांसवाल	१३,४०५	,,
२८. केपकलोनी	६,४९८	,,
२९. ऑरेंज फ्रीस्टेट	१००	,,
३०. न्यू फ़ाउंड लैंड		१९२१
अँगरेज़ी-साम्राज्यांतर्गत भारतीयों का टोटल	२०,३०,२४१	
अन्यान्य देशांतरों में—		
३१. अमेरिका (संयुक्त-प्रदेश)	३,१७५ (एशियाई)	१९१०
३२. मडागास्का	५,२७२ (हिंदू)	१९१७
३३. रीयूनियन	२,१९४	१९२१
३४. डच ईस्ट इंडीज़	८,२२,६६७ (५०,००० हिंदुस्तानी, शेष चीनी और जापानी)	१९२०
३५. सुरीनाम	३४,९५७	
३६. मोज़ेमबिक्यू	१,१००	
३७. पर्सिया (ईरान)	३,८२७	१९२२
ऊपर लिखे अन्यान्य देशांतरों के भारतीयों का टोटल	८,८३,१५२	
फुटकल	१,१७,३७३	
कुल	१,००,५२५	

इस प्रकार सर्वत्र, विदेशों में, भारतीय जनता २१,३०,७६६ के लगभग निवास कर रही है।

नंदकिशोर अग्रवाल चौधरी

× × ×

५. प्रभात-चंद्र

दीन, हीन, मलीन शशि, वह शुभ्र कांति कहाँ गई?
विकल वैभव-हीन शशि, वह पूर्ण शांति कहाँ गई?
दीप निर्वापित किया किसने तुम्हारे सदन का?
हर लिया है तेज-बल किसने तुम्हारे वदन का?
मुख कहाँ वह, कुमुद का जो प्राण था, अभिमान था?
मुख कहाँ वह, जो कि सुमुखी का उचित उपमान था?
दीर्घ-यात्रा-श्रांत हो क्या हे निशा के पथिक वर!
सुप्त हो सुप्रभात में या रात-भर तुम जागकर?
रात्रि को निज भवन में तुमने जलाया जो दिया,
क्या उसे निशि-शेष में तुमने निशेश! बुझा दिया?
रात्रि को दिननाथ से जो तेज था तुमने लिया,
या अहो सब आज उसने ले लिया है वह 'दिया'?

गोविंदवल्लभ पंत

× × ×

६. "पी कहाँ ?"

(गद्य-काव्य)

आषाढ़ के दौंगरे पड़ने लगे। काली बदलियाँ पश्चिम की ओर से उठकर आकाश को घेरने लगीं। सूखी पृथ्वी पर, गोचर-भूमि पर, पानी के पहले झोंके से दूब के पीले अंकुरों ने अपना मुँह ऊपर उठा दिया। सूखे हुए सरोवर के किनारे पपीहा ने काले घने बादल को देखकर पुकारा—"पी कहाँ ?"—यह क्या ? जैसे पृथ्वी, वन, उपवन, सरोवर—सभी स्थानों में एक लहर फैल गई। पुकार मचने लगी—"पी कहाँ ?"

गरमी की कड़ी धूप में, दुपहरिया के झकोरों में, जब मैदान की ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं जाता था, कोयलिया व्यथित होकर, अपने निराश प्रणय को लिए, कभी इस डाली से उस डाली पर, इस टहनी से उस टहनी पर, आम के बग़ीचे में महकती हुई मंजरी की ओट में, कभी कुंजों में, कभी ऊँचे पीपल के पेड़ पर अपनी कूक सुनाया करती थी। बड़ी बुरी दशा थी ! सबेरे की कातरता, दोपहर की लपटें, संध्या की विह्वलता जब गरमी में अत्यंत विह्वल बना देती थीं, तब यह कोयल की कूक हृदय में एक हूक पैदा कर देती थी। प्रियतम पास नहीं है। दूर पर, पथ में, मैदान में, वन-वीथी में केवल लपटें उठा करती थीं। आँख उठाकर देखने से आँखें जलने लगती थीं। तब प्रतीक्षा का कार्य वातायन-पार्श्व पर बैठकर नहीं किया जा सकता था—किसी की आराधना नहीं की जा सकती थी। तब छाती मसोसकर बैठे रहना—किसी से अपने दुःख की बातें न कहना ही अभीष्ट था ; जैसे इसके लिये देवता का अभिशाप था। किंतु अब ?—अब तो वह गरमी नहीं रही। रह-रहकर काली बदलियाँ घिरने लगीं। दो-चार दौंगरे गिरने लगे। पहाड़ी पर, पत्थरों के नीचे की दूब और विविध बेलों ने लहलहाकर परस्पर आलिंगन किया। एक पुकार—विरह की एक पुकार—चारों ओर छा गई। प्रतीक्षा-पथ की ओर एकटक होकर वातायन-पार्श्व से किसकी प्रतीक्षा होने लगी ? बेचारे पपीहे ने इसी समय पुकारा—"पी कहाँ ?"

समय जैसे हंस की गति की तरह शीघ्र-गामी होकर, मानसरोवर के तट पर, उत्तराभिमुख जाने लगा। धीरे-धीरे आषाढ़ निकल गया। सावन की झड़ी शुरू हो गई। खिड़की के पास बैठकर उस पार की झड़ी देखने के लिये जी बहुत चाहने लगा। केले के बड़े-बड़े पत्ते हिल-हिलकर एक दूसरे को गले लगाने लगे। पास की तलैया में पानी भर गया। दूर पहाड़ी पर केवल श्वेत शुभ्र अविराम वर्षा-धारा की झंकार सुनाई पड़ने लगी। ऊँचे-ऊँचे कठोर पत्थर जैसे करुणा के आँसू बहाने लगे। इसीलिये लताओं ने पतिव्रता नारी की तरह अपनी भुजाएँ फैलाकर शरीर से उन्हें लपेट लिया। इच्छा होने लगी कि ज़रा पानी रुके, और पहाड़ी पर चढ़कर एक बार चारों तरफ़ आँख पसारकर देखने लगें। कौन जाने, इसका क्या कारण है ? रह-रहकर वही ध्वनि कानों में सुनाई पड़ती है—"पी कहाँ ?" यह कैसी व्याकुल पुकार है ? कैसे भाव के आवेग से भरा हुआ कंठ है ? कैसी मर्मवेदना है ? केवल एक ही पुकार—"पी कहाँ ?"

जैसे थोड़ी देर के लिये सावन की झड़ी रुक गई। दूर रास्ते पर कोई पथिक उन्मुक्त कंठ से कुछ गाता हुआ जा रहा है। वह क्या गाता है ? कुछ समझ भी तो नहीं पड़ता। फिर क्यों जी चाहता है कि उसके ही गाने को बैठकर सुनूँ। कौन बतावेगा ? उसको क्या वेदना है ? किस लिये वह इस प्रकार गाता हुआ जा रहा है ? एक उमंग से भरे हुए गीत ने मुझे क्यों अपनी ओर आकर्षित कर लिया ? मुझे उससे क्या ? फिर भी वह जैसे मुझे खींच रहा है ! बैठकर—निश्चिंत होकर जैसे वह पथिक अपना गान सुनाना चाहता है—अपने मर्म की गूढ़ व्यथा की कथा को सुनाना चाहता है, जैसे मुझसे सहानुभूति पाने के लिये—अपनी करुण स्थिति पर दो आँसुओं की भिक्षा चाहने के लिये। मगर मेरे पास है क्या ? मैं उसे दे क्या सकता हूँ ? मैं क्षुद्र हूँ, कीट हूँ, नीच हूँ। फिर भी वह मुझे क्यों पुकार रहा है ? क्या मेरी सांत्वना, मेरी सहानुभूति, मेरी समवेदना, उसे अभीष्ट होगी—उसे सुखप्रद या शांतिकर होगी ?

धीरे-धीरे पथिक इसी ओर आ रहा है। उसने अपने उस गान की ध्वनि को अत्यधिक स्पष्ट कर दिया है। समझ में आने लगा। उन्मुक्त कंठ से, अपनी स्वाभाविक उमंग में वह अब कजरी गा रहा है। उसने गाया—"पिया के कारन सभी देस डाले छान

रे, साँवलिया।" वही क्रंदन है—वही पुकार है—"पी कहाँ?" प्रियतम कहाँ हैं? आज उनके लिये वह उत्सुक है। इतना उत्सुक है कि अपना घर-बार सब छोड़कर प्रियतम की खोज में जा रहा है। फिर वही गान—"पिया के कारन सभी देस डाले छान रे, साँवलिया।" पिया के लिये सभी देश छान डाले, पर प्रियतम का कहीं पता न पाया। कोई आशा नहीं है! फिर भी उसी की खोज में अपनी लगन लगाए हुए—अपना वही करुण, सरस गान गाते हुए—वह चला जा रहा है। केवल यही आशा रखकर कि कदाचित् वह कहीं मिल जाय। उसके दर्शन प्राप्त कर जैसे उसे किसी दिन जीवन का धन—जीवन का सर्वस्व अनायास ही मिल जायगा। इस कजरी में निराश प्रणय नहीं है। वह तो केवल अनंत काल तक जैसे प्रियतम के लिये भिखारी होकर घूमने के लिये निकला है। उसमें निराशा नहीं है, औदास्य नहीं है, कपट नहीं है, उच्छृंखलता नहीं है। उसमें है केवल करुण कथा की व्यथा, एक सच्ची लगन। यही कारण है कि उसकी सच्ची लगन, उसका वह गीत बड़ा ही करुण, बड़ा ही मर्मस्पर्शी मालूम पड़ता है। इसलिये उसने आज के दिन अपनी ओर मन को आकर्षित कर लिया है। यही कारण है कि उसकी दो बातें सुनने को जी चाहता है। मैं पतित हूँ, पापी हूँ, क्षुद्र हूँ; तथापि वह मेरी उपेक्षा नहीं करेगा। दो बातें, दिल का दुखड़ा एक घड़ी बैठकर सुना देगा। परंतु—परंतु उसे अवकाश कहाँ है? उसने तो मेरा ध्यान अपनी ओर खींच लिया—और इसके विपरीत वह अपने मार्ग का अनुसरण करता हुआ चला गया! कहाँ जा रहे हो पथिक?—"पिया के कारन......!" काली घटा उठी। पपीहा ने फिर पुकारा—"पी कहाँ?" कैसा सामंजस्य है! पथिक प्रियतम की खोज में जा रहा है। पपीहा भी अपने पिया की खोज कर रहा है। कैसी अद्भुत सृष्टि है! सभी आज पुकार रहे हैं—"पी कहाँ?"

रात हुई। दिन-भर झड़ी लगी रही। रात को भी झकोरे चलने लगे। पानी फिर से हहर-हहरकर बरसने लगा। विरहिणी स्त्री अपने मलिन, कृश शरीर को लेकर अस्त-व्यस्त सेज पर लेट रही। प्रियतम नहीं हैं! आज उसे नींद कहाँ? सावन के दिनों में परदेसी अपने-अपने काम समाप्त कर घर लौट आए। परंतु इस विरहिणी का परदेसी बटोही नहीं आया। चित्त व्याकुल हो रहा है। पानी का हहर-हहरकर बरसना वज्रपात-सा लग रहा है—जैसे सेल-सी मार रहा है। नींद नहीं है। आँखें जल रही हैं। नींद की झपकी भी नहीं। किसी पड़ोसिन प्रोषित-भर्तृका स्त्री के कंठ से गाना निकल पड़ा—

"पवन बहे पुरवया, नींद नहीं बिन सैंया।"

चित्त को कैसे धैर्य मिलेगा? कैसे सांत्वना मिलेगी? प्रियतम कहाँ हैं? पवन के झकोरों के साथ पपीहा पुकार रहा है—"पी कहाँ?"

सवेरा हुआ। दक्षिण पवन डोलने लगी। काले मत्त मातंग-से मेघों को दक्षिण दिशा से उठते देखकर, रामगिरि पर बैठे हुए, कालिदास के दुर्बलकाय यक्ष ने आतुरता के साथ कहा—"ठहरो मेघ, अलकापुरी-वासिनी, विरहिणी, कृशांगी पत्नी के लिये मेरा संदेश लेते जाओ।" मेघ जैसे क्षण-भर के लिये ठहर गया, और संदेश लेकर अलकापुरी की ओर चला गया। बेचारा यक्ष अपनी विरह-विधुरा, कृशांगी पत्नी के लिये, आज इस सुंदर-सलोने सावन के दिन में वर्षा-ऋतु का अभिसार न कर सका। परित्यक्त, निर्वासित, अपमानित यक्ष यों ही कुंठित निराशा के भाव से रामगिरि की गुहा में बैठकर सिर धुनने लगा। अलकापुरी-वासिनी यक्ष-रमणी कैसे संदेश भेज सकती थी? उसे तो केवल यही रट लगी है—"प्रियतम कहाँ हैं?" उसे कुछ आश्वासन-सा मिलता है। पपीहा उसी के पास पुकारता है—"पी कहाँ?"

बेचारी विधवा नगर में, अपनी ससुराल में रहकर, एक समय भोजन कर कितने समय से अपने स्वर्गवासी आराध्य देव की आराधना में निरत है। कैसी वेदना से उसका जी दुख रहा है। कितनी परम पुनीत स्मृतियों में उसने आँसुओं की गंगा-जमुना बहाई हैं। कितने अवसरों पर उसने नगर के कामुक लोगों के चंचल आवेशमय कटाक्षों से, अपने हृदय में स्थित परम पावन प्रियतम की मूर्ति पर पाप की काली छाया नहीं पड़ने दी है। कितनी कठिनाई से उसके दिन बीते। इतने दिनों तक शिथिल शरीर लिए वह प्रत्येक घड़ी गिना करती थी। आज सावन के दिन में वह अपने नैहर के गाँव में आई। वही चिरपरिचित स्थान उसे मिल गया। वही टूटा-फूटा कच्चा मकान, वही आम का बग़ीचा, उन्हीं आमों

के काले-काले पत्ते, उसी छोटी-सी पगडंडी का घुमाव देखकर, उन्हीं स्नेहशील पड़ोसिन सखियों से मिलकर उसके सारे शरीर की शिथिलता नष्ट हो गई। वह सबेरे से नित्य-नियम के अनुसार सरोवर पर नहाने के लिये गई। घाट पर, उन पुरानी सखियों के कल-हास्य से उसे बड़ा सुख मिला। आज बेचारी इस गाँव में करुणा का पात्र होकर आई है। घर लौटने लगी। सामने हरी-भरी पहाड़ी देखकर उसने सोचा—वही चिरपरिचित पर्वत-श्रेणियाँ हरी-भरी होकर मुझे अपने स्नेह से घेरे हुए हैं। बाल्य-बंधु के समान पत्थरों से भरी, हरे-भरे पत्तों से लदी, वन-वीथी को देखकर बेचारी विधवा को अपनी संपूर्ण वैधव्य-वेदना जैसे क्षण-भर के लिये भूल गई। सामने हरियाली से भरा मैदान है। लाल-लाल बीरबहूटियाँ हरी घास पर रेंग रही हैं। किसान कंधे पर हल रखकर बैलों को लिए खेत जोतने जा रहे हैं। दूर पर—पेड़ों के उस पार कई किसान-दंपति धान बो रहे हैं। हरवाहों की स्त्रियाँ पानी से भरे खेतों की घास को हँसिया लेकर काट रही हैं। आज विधवा को यह सब देखकर वैधव्य का दुःख भूल गया। नगर के कठोर तपस्या में निरत रहने के दिन उसे भूल गए। आज उसका चित्त नैहर में आकर अपनी वेदना को, अपनी व्याकुलता को अनायास ही भूल गया। रह-रहकर पास ही पपीहा पुकारता है—"पी कहाँ ?" विधवा उस तरफ़ देखकर मुसकिरा देती है। इसका क्या कारण है ? पपीहा पुकारता है—"पी कहाँ ?" उसका चित्त जैसे इसकी पुकार सुनकर हलका हो जाता है—विह्वल प्रेम से भर उठता है। उसे जैसे दुःख के दिनों में कोई समवेदना प्रकट करनेवाला सहोदर बंधु प्राप्त हो गया। इसीलिये आज वह प्रसन्न है। वह बड़े ध्यान से सुनती है। पपीहा पुकार रहा है, प्रियतम की खोज कर रहा है। उसकी लगन बड़ी पवित्र है—सुखप्रद है। अच्छा है, उसे पुकारने दो—"पी कहाँ ?"

रिमझिम करके पानी बरस रहा है। आम के बग़ीचे के भीतर गहरी छाया में खड़ी भीग रही हैं। घर के पास लगे हुए, निबौरी से लदे हुए, हरे-भरे नीम के पेड़ पर झूला डालकर गाँव की दो हमजोली की सखियाँ झूल रही हैं। पवन की गति से दोनों का दुपट्टा उड़ रहा है। दोनों सखियाँ पानी से भीग रही हैं। घर के बाहर आकर मा ने पुकारा—"क्यों बिटिया, नहीं सुनती। पानी बरस रहा है। चल, घर में चलकर खाना खा।" सखियों ने जैसे सुना ही नहीं। वे दोनों गले से गला मिलाकर, झूले पर झूलती हुई कजरी गाने लगीं—"हरि-हरि कृष्णचंद्र प्रिय, प्यारे, लौट नहिं आए रे रामा; जब से गए मोरी सुध हु न लीनी सूरत हू न दिखाई रामा।"

आज सावन के उत्सव-दिवस में सभी प्रसन्न-मुख हैं। हरियाले मैदानों का अविकसित मौन हास्य, झरनों का अज्ञेय कलकल तथा पर्वत-श्रेणियों की मनोरम कमनीय छटा बिखरी पड़ी है। एक आनंद-उल्लास-हिल्लोल जैसे इस अपूर्व दिवस में बहा जा रहा है। चराचर जगत् स्वाभाविक उमंग में प्रियतम के मिलन के लिये उत्सुक है। सभी स्थानों से जैसे एक विराट् समारोह का औत्सुक्य जाग्रत् हो रहा है—एक कातर, करुण-विरह की पुकार उठ रही है। बटोही उसी प्रियतम की खोज में जा रहा है। काले-काले मेघ अपने अंतस्तल में स्नेह का उभार लेकर उसी प्रियतम का संदेश लिए जा रहे हैं। विधवा कामिनी उसी की स्मृति से प्रसन्न है। अबोध सखियाँ उसी प्रियतम के लिये, निश्छल आनंद-रागिनी में, उन्मुक्त कंठ से, कजरी गा रही हैं। ऐसा मिलन-दिवस कहाँ मिलेगा ? ऐसा अभूतपूर्व उच्छ्वासमय एवं आकुल प्रणय-प्रदर्शन कहाँ, किस अभिनय में है ? आज प्रियतम की इतनी खोज हो रही है ! अब क्षण-मात्र के लिये न रुककर पपीहा पुकार रहा है—"पी कहाँ ?" *

मंगलप्रसाद विश्वकर्मा

× × ×

७. "प्रेमघन"

आया पावस पुनः "प्रेमघन" की सुध आई :
गगन सघन घन घेर घटा उमड़ी लख छाई।
हरा हुआ वह हृदय-घाव, जो सूख रहा था ;
नेत्र-नदी बह चली, स्रोत जो मंद बहा था।
चपल चंचला-सा चित चंचल इत-उत धाया ;
गरज उठा हिय मेघ कहीं न गरज लख पाया।

* यह किसी बँगला-लेख का अनुवाद जान पड़ता है। लेखक ने सूचना नहीं दी। फिर भी सामयिक और अच्छी रचना होने से हमने इसे प्रकाशित कर दिया। लेखकों को अनुवाद की स्पष्ट सूचना दे देनी चाहिए।—संपादक

कुहुक-कुहुककर दुख से तब मन-कोकिल बोला—
कविता-सरिता-तट का हंस इतै तैं डोला ।
श्रीराधा-माधव-पद मानसरोवर-तीरे ;
बसहु प्रेमघन प्रेमसहित करुणा-जल-पूरे ।
प्रभाकरेश्वरप्रसाद उपाध्याय

× × ×

८. स्वर्ग का अपराध

(१)

उसे कुछ काम-काज तो था नहीं । दिन-भर हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहता था । शौक़ीन वह बेशक बहुत था । आठ पहर अपन रंग में ही मस्त रहता और कुछ-न-कुछ खिलवाड़ किया ही करता । काठ की छोटी-छोटी पटरियों पर मिट्टी गूँधता, मानो ब्राह्मणों के लिये पूरियों का सामान कर रहा हो । कभी कचौड़ियाँ बनाता और कभी लड्डू । फिर मन में आता, तो सिपाहियों की पलटन तैयार करता, और सूखी-सूखी घास और पत्तियों के घर बनाता । पहाड़ खड़ा करने के लिये इधर-उधर से खपटे और कँकड़ियाँ बटोर लाता । उन पर तिनके गाड़कर जंगल की हरियाली दिखाता और चरने के लिये दो-चार मिट्टी की गउएँ भी रख देता । जान पड़ता था, उसे और कुछ काम ही नहीं था ।

घर के लोग भी उससे तंग आ गए थे । उसकी कोई दवा थी ही नहीं । उसे स्वयं कभी-कभी यह बात खटकती । कई बार उसने अपना पागलपन छोड़ने की ठानी थी; पर शायद पागलपन ही उसे नहीं छोड़ना चाहता था । सारा जीवन उसका ऐसे ही कट गया ।

(२)

एकआध लड़के ऐसे ही होते हैं । साल-भर बेचारे पढ़ते-लिखते कुछ नहीं, पर परीक्षा में न-जाने कैसे पास हो जाते हैं । उसकी भी ठीक यही गति हुई ।

भाग्य की बात इसी को कहते हैं । चोला छूटने पर उसे ख़बर मिली कि मुझे स्वर्ग में जाना पड़ेगा । पहले तो उसने कुछ चीं-चपड़ की, फिर कहा—"चलो, जो कुछ बदा है, होगा ।" उसके लिये स्वर्ग सचमुच दुखड़ा ही था ।

चाहे परलोक में ही क्यों न रहे, होनी आदमी का पीछा नहीं छोड़ती । दूत लोग भूल गए । सबने ले जाकर उसे कार-बारवाले स्वर्ग में रख दिया ।

यहाँ तो और सब कुछ था, पर छुट्टी साँस लेने को भी नहीं थी । सभी को अपनी ही पड़ी थी । एक-एक आदमी पर सात-सात भूत सवार थे । लड़के कहते—"अभी तो कुछ किया ही नहीं ।" लड़कियाँ कहतीं—"क्या करें, अभी सब काम ही पड़ा है ।" कोई भी यह न कहता कि समय अमूल्य है । यहाँ तो सभी के लिये समय का मूल्य था । "काम करते-करते तो मर गए"—यही वहाँ का मधुर संगीत था ।

वहाँ जाकर यह बेचारा तो नक्कू बन गया । इसकी कोई बात ही न पूछता । रास्ते में जहाँ होता, रूख-जैसा पड़ा रहता । भीड़ इतनी थी कि एकआध कामकाजी तो इससे टकराकर गिर पड़ते । क्या करता, कुछ सूझता ही न था । जहाँ बैठता, वहीं सुनता कि खेती होती है । जहाँ चद्दर बिछाकर लेटता, वहीं कोई आकर कहता—"उठो, उठो, यहाँ तो धान बोया जायगा ।" क्या करता, भाग ही फूटे थे, उठकर चला जाता ।

बस, कहीं छिपा पड़ा रहता । नींद तो आती न थी, निगाह बचाकर लोगों को देखा करता । इसी में उसे सुख मिलता था ।

(३)

प्रतिदिन एक छोटी-सी लड़की उधर से निकलकर पानी भरने जाया करती थी । ठीक उसी समय वह आती, और झट से चली जाती । देखत-देखते बेचारा थक गया—आँखें दुखने लगीं । पर वह आती, और सितार की ध्वनि की नाईं झनकार करके चली जाती ।

स्वर्ग के मार्ग में वह ऐसा पड़ा था, जैसे बहते सोते के जल में पत्थर का टुकड़ा । झरोखे से भिखमंगे को देखकर जैसे किसी राजकुमारी को दया आवे, वैसे ही एक दिन लड़की का जी भर आया । बोली—"क्यों भाई, तुम्हें कुछ करना नहीं है ?"

ठंडी साँस लेकर बेकार ने कहा—"करना क्यों नहीं है, समय ही नहीं मिलता ।"

लड़की की समझ में यह बात नहीं आई । उसने पूछा—"चाहो, तो मैं तुम्हें कुछ काम दे सकती हूँ ।"

"अच्छा तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए, अपने घड़ों में से एक मुझे दे दो ।"

"इसे क्या करोगे ?"

"इस पर चित्र बनाऊँगा । तुम्हारा घड़ा सुंदर हो जायगा।"

"नहीं, नहीं, मेरे पास इतना समय नहीं है ।" यह कहकर वह चलती बनी ।

रोज़ प्रातःकाल वह आती, और बेकार उससे यही कहता । बेकारों के आगे कामकाजियों की कहीं चलती है ? निदान हारना ही पड़ा । घड़ा बेकार को मिल गया। पर लड़की ने कहा—"तब तक तुम इस पर काम बनाओ, मैं दूसरा भर लाती हूँ ।"

(४)

चित्रकारी हो गई । रंग-रंग की चिड़ियाँ बनीं और फूल-पत्ती खींची गई । लड़की ने जो कहा—"इसका मतलब क्या है ?", तो उत्तर मिला, "कुछ नहीं।" लड़की को अपने जीवन में शायद यह पहली ही निरर्थक बात देखने में आई थी ।

एक दिन वह फिर आ रही थी । एकाएक रुक गई ।

"कहो, क्या हुआ ? चला क्यों नहीं जाता ?"

"न-जाने क्या हो गया उँगलियों में ।"

देखने पर ज्ञात हुआ, उसके पैर में एक काँटा चुभ गया है । बेकार सोचने लगा, स्वर्ग में काँटा कहाँ से आया ।

जितनी देर में उसने काँटा निकाला, उतनी देर में उसने महावर से लड़की के पैरों में कुछ बेल-बूटे बना दिए । काँटा निकलते ही वह फिर अपने काम पर चली गई । उसे क्या पता था कि पैरों में भी चित्रकारी की गई है ।

एक दिन लड़की जो फिर आई, तो बेकार ने देखा, उसके पैर उतनी जल्दी-जल्दी नहीं पड़ रहे थे । वह कुछ रुक-रुककर चलती थी ।

उसने पूछा—"आज क्या चाहते हो ?"

"कुछ और काम चाहता हूँ ।"

"बोलो, क्या करोगे ?"

"यदि कहो, तो वेणी बाँधने के लिये तुम्हें एक रंगीन डोरा तैयार कर दूँ । तुम्हारे बाल तभी से बिखरे हुए हैं ।"

"उससे क्या होगा ?"

"होगा क्या ? ज़रा अच्छा लगेगा ।"

फिर क्या था, लड़की ने अपनी रानी के यहाँ से चुराकर रंगीन रेशम भी दिया । डोरा तैयार हो गया ।

पर तभी से दर्पण देखने में ही उसका सारा दिन बीतता था । कभी घड़ों की तसवीरें देखती, कभी पैरों के महावर पर ही मुग्ध हो जाती । मुख देख-देखकर वेणी बाँधती ही रह जाती; ठीक न बँधती—उसे जँचती ही न थी ।

(५)

स्वर्ग के काम में बट्टा लगने लगा । दिन-भर राग-रंग होता, और रात को एक और भी अच्छे स्वर्ग की कल्पना में नींद ही न आती ।

स्वर्गीय कर्मचारी चिंतित हो गए । वहाँ के कार-बार में अब तक ऐसी बाधा कभी नहीं पड़ी थी । बस, सभा की गई । लोगों ने एक स्वर से कहा—"यहाँ के इतिहास में आज तक ऐसा नहीं हुआ था । क्या बात है ?"

चपरासी बुलाया गया, और दूत की गवाही ली गई । उसने अपना अपराध स्वीकार किया । उसने कहा—"महाराज, मुझसे बड़ी भूल हुई । मैंने एक दूसरे ही आदमी को यहाँ लाकर डाल दिया ।"

बेकार की तलबी हुई । उसकी सतरंगी पगड़ी और सुनहरा कमरबंद देखकर ही लोग समझ गए कि दूत ने गड़बड़ की है ।

सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास हुआ । सभापति ने उससे कहा—"देखो, तुम्हें मर्त्य-लोक को लौट जाना होगा ।"

बेकार ने मूछों पर ताव दिया । जीवन-भर में शायद इतना आनंद उसे कभी नहीं मिला था । पगड़ी उसने फिर से लपेटी, और कमरबंद कसते हुए कहा—"यह लो, मैं चला । मैं तो यही चाहता था ।"

लड़की इतने में दौड़कर आगे आई । घड़ा तो घर पर रक्खा था । पैर में चित्र खिंचे थे, और बाल उसी रेशमी डोरे से बँधे थे । स्वर्ग के लोगों ने उसे इस रूप में कभी नहीं देखा था ।

बेकार को जाते देख उसने कहा—"मैं भी चलूँगी ।"

सभापति ने पूछा—"कहाँ ?"

"न-जाने कहाँ ।"

सब-के-सब अपना-सा मुँह लेकर रह गए । सब चकरा गए, किसी से कुछ कहा ही न गया ।

स्वर्गीय सभा के लिये यह पहली ही घटना थी, जिसका अर्थ सभापति तक की समझ में नहीं आया।*

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी

× × ×

* रवींद्रनाथ ठकुर की एक बँगला-कहानी के आधार पर।

९. निद्रा में चैतन्य

जब तेरी आनंद-सुधा में मैं अपने को भूल गया;
दिव्य तेज से सजग हो उठे नैन, देख प्रिय मिला नया।
हृदय-कमल खिल उठा, गगन में झनक उठे वीणा के तार;
बरस पड़ी सावन-भादों की झड़ियों-सी मीठी रस-धार।
उस अनंत की सुखमय निद्रा में मुझको चैतन्य हुआ;
लीन हुआ, मैं चूर हुआ, सब अंधकार विच्छिन्न हुआ।
इस माया के इंद्रजाल से जग-माया के जाल कटे;
रहा एक आनंद, दुःख के पर्दे सारे दूर हटे।

वंशीधर

× × ×

१०. भूषण की शृंगार-रसात्मक रचना

'भूषण' के विषय में अधिकतर लोगों को यही मालूम है कि इन्होंने वीर-रस ही की कविता की है। इनके जाति को उत्तेजित करनेवाले वीर-रस के ग्रंथों में शृंगार-विषयक कोई छंद नहीं मिलता। इनके वीर-रस के ग्रंथों को पढ़कर सहसा यही अनुमान होता है कि वीर 'भूषण' ने कदाचित् कोई भी शृंगारात्मक छंद न लिखा होगा। किंतु साथ-ही-साथ यह भी असंभव जान पड़ता है कि शृंगार-रस-भूषण मतिराम तथा चिंतामणि के भाई * होकर इन्होंने शृंगार-रस में कविता ही न की हो। यह ठीक है कि प्रत्येक कवि की रुचि भिन्न हुआ करती है; किंतु परिस्थिति का कवि के हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ता है। बँगला का अनुसरण कर खड़ी बोली के नवीन मुक्तक-छंद में कविता करनेवालों में से बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो इसके योग्य हों, और इसमें संपूर्ण सफलता प्राप्त कर सकते हों; परंतु हम देखते हैं, कितने ही नवयुवक बलात् इसकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं। इस आकर्षण का क्या कारण है? केवल परिस्थिति का प्रभाव! जब कोई प्रथा रीति में सम्मिलित हो जाती है, तो कवियों के लिये उसका अनुसरण करना अनिवार्य-सा हो जाता है। 'भूषण' के कविता-काल में शृंगार-रसात्मक कविता का प्रचंड प्रचार था। अतएव यह बात सहसा हम लोगों के ध्यान में नहीं आती थी कि 'भूषण' ने वैसे समय में उत्पन्न होकर भी शृंगारात्मक कोई छंद ही न लिखा हो। हम समझते थे, जिस प्रकार मतिराम ने वीर और शृंगार, दोनों रसों की कविता की है, किंतु उनकी कविता में शृंगार-रस प्रधान है, वैसे ही 'भूषण' ने भी वीर-रस-प्रधान कवि होते हुए भी शृंगार-रस में कुछ कविता अवश्य की होगी। हम लोगों की अभी तक केवल ऐसी धारणा ही थी; किंतु हमें कोई प्रमाण नहीं मिला था। यह देखकर कि विद्वान् मिश्र-बंधुओं ने भी अपनी भूषण-ग्रंथावली में इनका एक शृंगारात्मक छंद दिया है, हम लोगों की धारणा और भी दृढ़ होती जाती थी। अतएव हम लोगों ने इस विषय में गवेषणा आरंभ की। ईश्वर की कृपा से हम लोगों को अपनी धारणा की पुष्टि के लिये प्रबल प्रमाण भी मिल गया। अभी हाल ही में हमको हिंदी की एक हस्त-लिखित पुस्तक प्राप्त हुई है, जिसका नाम है 'रस-प्रकाश'। इसके प्रणेता सरयूपारीण ब्राह्मण द्विवेद रामसेवक मिश्र 'रसराज' हैं। यह पुस्तक सं० १७९३ में समाप्त की गई थी। इसकी वह लिपि, जो हम लोगों के पास है, सं० १८२० में लिखी गई थी। लिपिकार हैं श्रीयुत श्यामदासजी। इस पुस्तक में हमें भूषण के शृंगारात्मक कई छंद मिले हैं, जिससे यह प्रमाणित होता है कि 'भूषण' शृंगार-रस में भी कविता करते थे, और उनके शृंगारात्मक छंद प्रसिद्ध भी थे। भूषण का कविता-काल अनुमानतः १६९०-१७७२ था। जो पुस्तक हम लोगों को मिली है, वह भूषण की मृत्यु के

* हम लोगों को पं० भागीरथप्रसाद दीक्षित का यह मत ग्रहण करने में बड़ी परिशंका है कि भूषण और मतिराम भाई न थे, और वे एक ग्राम के निवासी भी न थे। वास्तव में वृत्त-कौमुदी से तो पता चलता है कि उसके निर्माता 'मतिराम' त्रिविक्रमपुर के रहनेवाले तक न थे। वह स्वयं कहते हैं कि वह वनपुर के रहनेवाले थे। और, दीक्षितजी का यह विचार है कि वनपुर त्रिविक्रमपुर के अतिरिक्त कोई दूसरा गाँव है। पंडित विहारीलाल ने, जो मतिराम के प्रपौत्र थे, त्रिविक्रम-सतसई पर एक टीका लिखी है, जिसका नाम 'रस-चंद्रिका' है। इसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि भूषण और मतिराम, दोनों त्रिविक्रमपुर के रहनेवाले थे। यह टीका कानपुर के साहित्य-नामक पत्र में छप रही है। देखिए—

"बसत त्रिविक्रमपुर-नगर कालिंदी के तीर;
बिरच्यो भूप हमीर जनु मध्यदेश को हीर।
भूषण, चिंतामणि तहाँ कविभूषण मतिराम;
नृप हमीर-सनमान ते कीन्हे निज-निज धाम।

२१ वर्ष पश्चात्, अर्थात् १७१३ में, समाप्त हुई है। अतएव यह जान पड़ता है कि पुस्तक के प्रणेता रसराज तथा भूषण कुछ समय तक अवश्य समकालीन रहे होंगे।

इस रसप्रकाश-नामक पुस्तक में रसों का वर्णन है, जिनके उदाहरण में रसराजजी ने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों के छंद उद्धृत किए हैं। यह बात असंभव-सी जान पड़ती है कि भूषण की मृत्यु के पश्चात् २० ही वर्ष में कोई अन्य भूषण-नामधारी कवि हो गया हो, जिसकी प्रसिद्धि इतनी हो गई हो कि उसके छंद विद्वान् लोग अपने ग्रंथों में उद्धृत करने लगे हों। भूषण की विशद कीर्ति उनके जीवन-काल ही में फैल गई थी। उनके छंदों का 'रसप्रकाश' में उद्धृत किया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। लब्धप्रतिष्ठ कवियों के सुंदर छंदों से कौन अपने ग्रंथ अलंकृत करना नहीं चाहता? अतः जहाँ तक हम लोगों का अनुमान है, जो छंद हम उद्धृत कर रहे हैं, वे वीर-रस-प्रधान कवि भूषण ही के हैं। हम पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं। हमारा निवेदन है कि यदि और किसी महानुभाव को भूषण के शृंगारात्मक पद्य मालूम हों, तो कृपा करके हम लोगों को उनकी सूचना दें। रसप्रकाश में अभी तक भूषण के निम्न-लिखित शृंगारात्मक पद्य हमको देख पड़े हैं।

> कारो जल जमुना को काल-सो लगत आली,
> जानियत फल रह्यो बिस कारे नाग को;
> बैरिनि भई है कारी कोयल निगोड़ी, पुनि
> तैसोई भँवर कारो बासी बन बाग को।
> 'भूषन' भनत कारे कान्ह के बियोग हमैं
> सबै दुखदाई भए, करै अनुराग को?
> कारो घन घेरि-घेरि मारचौ अब चाहत है,
> एतै पर पूरत भरोसो कारे काग को।

उपर्युक्त छंद का वर्णन 'भूषण की कुछ नई कविताएँ'-शीर्षक लेख में, जून, सन् १९२४ की 'प्रभा' में, श्री-रामनरेश त्रिपाठीजी ने भी किया है। किंतु उनके पाठ में और हम लोगों के पाठ में कुछ अंतर है। त्रिपाठी-जी का छंद इस प्रकार है।

> कारो जल जमुना को काल सो लगत है री,
> छाइ रह्यो मानो यह बिष काली नाग को;
> बैरिनि भई है काली कोयल निगोड़ी यह,
> जैसो हो भ्रमर कारो बासो बन बाग को।
> 'भूषन' भनत कारे कान्ह के बियोग हिये
> सबै दुखदाई जो करैया अनुराग को;
> कारो घन घेरि-घेरि मारचो अब चाहत है,
> एते पर करति भरोसो अब काग को।

त्रिपाठीजी के पाठ की शिथिलता प्रत्यक्ष ही है। हमारे विचार में इस पाठ में बहुत अशुद्धियाँ हैं। कवित्त की छठी पंक्ति में 'सबै' बहुवचन सर्वनाम के पश्चात् 'जो' एकवचन सर्वनाम रखकर त्रिपाठीजी ने जो अशुद्धि की है, वह कवित्त के अर्थ ही को भ्रष्ट कर देती है। वास्तव में यह पंक्ति तो ऐसी है—

> "सबै दुखदाई भए, करै अनुराग को?"

इसी पाठ से अर्थ में भी सुंदरता आती है। त्रिपाठी-जी के छंद में इसके अतिरिक्त एक ऐसी अशुद्धि है, जिससे यह स्पष्ट विदित होता है कि आपने कवित्त के अर्थ की संगति लगाने का किंचिन्मात्र प्रयत्न नहीं किया। 'शिवराजशतक' में जैसे अशुद्ध छंद दिए हुए थे, उनको बिना समझे-बूझे वैसे ही लिख दिया है। वास्तव में यह बात त्रिपाठीजी के गौरव को गिरानेवाली है। त्रिपाठीजी ने छंद के ऊपर लिखा है—"आगमिष्यत्पतिका नायिका से सखी का वचन" (देखिए 'प्रभा' जून, १९२४ पृष्ठ ४६६) इन वाक्यों को पढ़कर हमको आश्चर्य—महदाश्चर्य होता है! भला यह सखी का वचन नायिका के प्रति कैसे हो सकता है? क्या नायिका ने दासी-भाव और सखी ने स्वामिनी-भाव ग्रहण कर लिया था? भला कभी ऐसा भी हुआ है कि दासी ने स्वामिनी को 'है री' करके पुकारा हो? यदि ये वचन सखी के हैं, तो सखी अपनी विरह-दशा का वर्णन कर रही है; किंतु वह तो आगमिष्यत्पतिका नहीं! आगमिष्यत्पतिका तो नायिका है। अथवा क्या ऐसा हुआ है कि विरह तो हुआ है नायिका को, और दुःख हुआ है सखी को? त्रिपाठीजी की 'सखी' अत्यंत धृष्ट जान पड़ती है। देखिए, कवित्त की अंतिम पंक्ति में वह नायिका को 'करति' से संबोधित कर उसका कैसा सुंदर आदर कर रही है! प्रभा में दिए हुए त्रिपाठीजी के २५ छंदों में से समता हो जाने के कारण हमने केवल इसी छंद की जाँच-पड़ताल की है; किंतु यदि त्याली-

पुलाक-न्याय का अवलंब लिया जाय, तो हमें भय है कि कहीं सभी छंद ऐसे ही 'सुंदर' और 'शुद्ध' न निकलें। अस्तु।

हम लोगों को मिला हुआ भूषण का दूसरा शृंगार-रसात्मक छंद देखिए—

सुने हू जे बेसुधि बिना हू सुने कल नाहिं
याही सोच सकल बिहाती दिनराती हैं;
'भूषन' सुकबि देखि बिकल बिकार काज
भूलिबे के मिस सास, ननँद अनखाती हैं।
सोई गति जानै, जाके भिदी होय कानैं सखि
जेती कढ़ैं तानैं तेती छेदि-छेदि जाती हैं;
हूँक पाँसुरी मैं क्यों भरयौ न आँसुरी मैं थोरे
छेदि बाँसुरी मैं घने छेद किए छाती हैं।

उपर्युक्त छंद जिस भाँति पुस्तक में है, हम लोगों ने उसको उसी भाँति लिख दिया है; किंतु हमारे विचार में छंद की चौथी पंक्ति में "सास, ननँद" के स्थान पर "सास, नंद" होना चाहिए। और, सातवीं पंक्ति को इस भाँति लिखने से अर्थ बिलकुल स्पष्ट हो जाता है—

"हूँक पाँसुरी मैं क्यौं भरयौ न आँसुरी मैं ?"

ये सब अशुद्धियाँ अनुमानतः लिपिकार की हैं। यहाँ पर यह भी बात विचारणीय है कि उपर्युक्त छंद की भाषा भूषण की भाषा से बहुत कुछ मिलती है।

गुरुप्रसाद पांडेय
कुबेरनाथ सुकुल

× × ×

११. अन्योक्ति

है कली जो आज, क्योंकर वह न कल खिल जायगी ?
खिल रही जो आज है, क्योंकर न कल मुरझायगी ?
देख पड़ता जो कि अंकुर, वह न क्यों बढ़ जायगा ?
उठ रहा जो वाष्प है, क्यों घन न बन चढ़ जायगा ?
वृक्ष जो पुष्पित हुआ, क्योंकर न वह फल जायगा ?
रम्य रुचिरावास पर, क्योंकर न मन चल जायगा ?
वस्तु सुंदर प्राप्त कर दृग क्यों न देखेंगे, कहो !
तोड़ना आशा-लता को क्या तुम्हें समुचित अहो !

"मधुवनी"

१. बेतार के द्वारा देखना

प्टोफ़ोन' के आविष्कारक डॉक्टर फ़ॉर्नियर डि एल्बे ने श्रीग्रिंडल मैथ्युस की सहायता से 'टेलीविज़न' का एक नया तरीक़ा दर्याफ़्त किया है। टेलीविज़न (Television) का अर्थ है बेतार के तार द्वारा देखना। नीचे दिए चित्रों से इस नए तरीक़े का पूर्ण ज्ञान हो जायगा।

इसमें वक्ता का प्रतिबिंब एक ताल (लेंस) से गुज़रकर छिदी हुई नलियों (Grids) पर, जो भिन्न-भिन्न चालों पर परिभ्रमण करती हैं, डाला जाता है। वहाँ से निकलकर कटी हुई किरणें, एक अन्य ताल से गुज़रती हुई, सिलेनियम सेल (Silenium Cell) के संदूक़ में पहुँचती हैं। वहाँ पर वे किरणें ध्वनि-तरंगों में परिवर्तित होती हैं।

साधारण बेतार-संक्रामक (Wireless Transmitter) द्वारा भेजी हुई और ग्राहक (Receiver)

TRANSMITTING

सांक्रमण

(१) वक्ता ।

(२) ताल या लेंस ।

(३) संदूक़ की उतारी गई एक तरफ़ ।

(४) भिन्न-भिन्न चालों पर परिभ्रमण करनेवाली छिदी हुई नलियाँ (Grids), जो audiofrequencies उत्पन्न करती हैं ।

(५) पट्टा ।

(६) छिदी हुई नलियों को घुमानेवाला मोटर ।

(७) मोटर की क़ैंची ।

(८) मोटर के तार ।

(९) सटी हुई किरणें ।

(१०) ताल ।

(११) सेलेनियम सेल का संदूक़, जहाँ पर प्रकाश-तरंगें ध्वनि-तरंगों में परिवर्तित होती हैं ।

(१२) साधारण बेतार के सांक्रमण-स्थान को जानेवाले तार ।

ग्रहण

(१३) बेतार-ग्राहक ।

(१४) ध्वनि-तरंग-ग्रहण ।

(१५) संदूक़, जिसके अंदर ध्वनि-प्रतिरोधक मसाला लगा है ।

(१६) ऊँचा आवाज़ निकालनेवाला बनावटी मुँह ।

(१७) अनुनादक ।

(१८) अनुनादकों के परावर्तक रूप्य-सिरे, जिनमें से हरएक अपने स्वर का उत्तरदायी होता है और वर्ण-आभा के रूप में उसे (स्वर को) पुनरुद्भावित करता है ।

(१९) अनुनादकों पर डाली गई प्रकाश-छटा ।

(२०) परावर्तक ।

(२१) भारी प्रकाश ।

(२२) परदे पर वक्ता का प्रतिबिंब ।

से ग्रहण की गई ध्वनि-तरंगें अनुनादकों (Resonators) पर पड़ती हैं । अनुनादक नलियों से रूप्य-सिरों पर भारी प्रकाश डाला जाता है । इससे ध्वनि-तरंगें एक बार फिर प्रकाश-तरंगें बनकर छोटे छोटे बिंदुओं के रूप में परदे पर पहुँचती हैं । इन बिंदुओं से वहाँ पर चित्र बन जाता है ।

धर्मवीर

× × ×

२. समय का मूल्य

अमेरिका के मनुष्य समय का जितना मूल्य समझते हैं, उतना शायद अन्य देश के मनुष्य नहीं समझते । वे अपने समय का एक मिनट भी बेकार नहीं जाने देते। गाड़ी, मोटर, ट्राम आदि में बैठकर कहीं जाते समय वे अख़बार, उपन्यास या अन्य पुस्तकें पढ़ा करते हैं । स्त्रियाँ मोज़ा, नेकटाई आदि बुना करती हैं । किंतु इन

मोटर-साइकिल में यात्रा करते समय हजामत बनवाना

कामों को मात करनेवाला काम यात्रा करते समय हजामत बनवाना है। लास एंजिलस् का एक नाई अपनी मोटर-साइकिल में यात्रियों को बिठाकर उनके नियत स्थान को पहुँचाया करता है। इसी समय में उनकी हजामत भी बनाया करता है। यात्री मोटर-साइकिल की 'साइड-कार' में बैठते हैं। मोटर-चालक के बैठने के स्थान के पीछे एक और बैठने का स्थान बना हुआ है, जिस पर नाई बैठकर अपना काम करता है। पानी गरम करने के लिये बिजली का एक चूल्हा भी मोटर-कार में लगा हुआ है। इस प्रकार मोटर-साइकिल में यात्रा करनेवाले मनुष्यों को हजामत के पैसों के अलावा मोटर का भाड़ा भी देना पड़ता है; किंतु समय की बचत के हिसाब से वह कुछ भी नहीं है।

× × ×

३. बालकों को गिरने से बचानेवाला यंत्र

बालक जब पहले-पहल हाथ और पैर से चलना आरंभ करते हैं, तब वे एकाधिक बार गिरकर मुँह, नाक, मस्तक आदि में चोट खाते हैं। उन्हें गिरने से बचाने के लिये एक ऐसे यंत्र का आविष्कार हुआ है, जो उनकी कमर में बाँध दिया जाता है। इस यंत्र को बाँधकर चलते समय बालकों के गिरने का डर एकदम नहीं रहता।

गिरने से बचानेवाले यंत्र को बाँधे हुए एक बालक

रमेशप्रसाद

× × ×

४. एक और चंद्रमा

टूटनेवाले तारों की चर्चा गत पौष की माधुरी में की जा चुकी है, जिसमें यह लिखा गया है कि इनमें से कुछ ऐसे हैं, जो पृथ्वी की तरह सूर्य की परिक्रमा करते और अंत को पृथ्वी में आकर समा जाते हैं। इसी श्रेणी का एक पिंड पृथ्वी में समा जाने की जगह चंद्रमा की तरह इसकी परिक्रमा करने लग गया है। अभी इसके विषय में जो कुछ जाना गया है, उसमें अनुमान की मात्रा अधिक है; परंतु ज्योतिषी लोग इसकी देख-भाल बहुत ध्यान से कर रहे हैं, जिससे आशा है, इसका पूरा-पूरा पता शीघ्र ही लगा लिया जायगा। अभी तक तो केवल यह जान पड़ा है कि यह लोहमय पाषाण का पिंड है, जिसका व्यास कोई ४०० या ५०० फ़ीट है, और जो जमकर ठोस हो गया है।

इसकी एक परिक्रमा ३ घंटे में पूरी हो जाती है। यह भूतल से कोई २,५०० मील दूर है। पश्चिम से पूर्व की गति कोई ३½ मील फ़ी सेकिंड है। हमारे चंद्रमा की दूरी भूकेंद्र से कोई २,४०,००० मील है, और इसकी परिक्रमा २७ दिन ८ घंटे में होती है। नवीन पिंड इतना छोटा है कि ख़ाली आँख से नहीं देख पड़ता। हाँ, दूरबीन के सहारे सहज ही देखा जा सकता है। आविष्कारकों का ऐसा ही मत है। जिनको दूरबीन मिल सके, उनको चाहिए कि इस अद्भुत आविष्कार का पूरा-पूरा पता लगावें।

जब यह ३ घंटे में अपनी परिक्रमा पूरी कर लेता है,
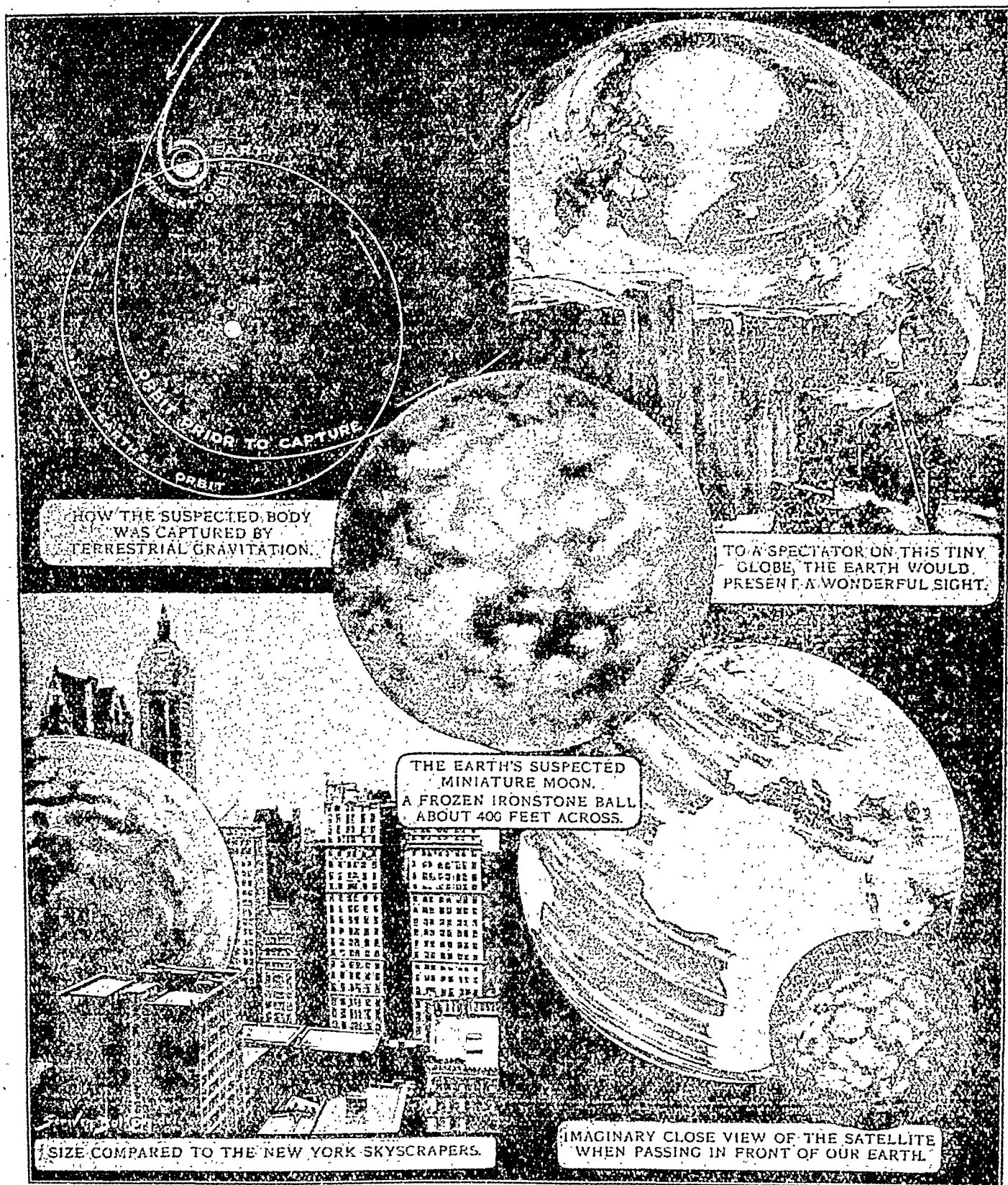
पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से नवीन पिंड कैसे खिंचकर पृथ्वी की परिक्रमा करने लग गया

पृथ्वी का अनुमित (Suspected) लघु चंद्रमा
जमे हुए लोहमय पाषाण का ४०० फ़ीट व्यास का गोला

लघु चंद्रमा का कल्पित दृश्य, जब कि वह पृथ्वी के सामने जाता हुआ समझा गया है

तब यह अनुमान करना सहज है कि जिस समय यह पश्चिम क्षितिज में देख पड़ेगा, उस समय से कोई ४८ घंटे में तारों के बीच चलता हुआ पूर्व क्षितिज पर पहुँच जायगा, अर्थात् कोई १८० अंश का कोण चल चुकेगा। इसलिये १ मिनट में कोई दो अंश चलेगा, जो चंद्रमा के व्यास का चौगुना के लगभग है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि भूतल से चंद्रमा जितना बड़ा देख पड़ता है, उसकी चौगुनी दूरी को यह पिंड एक मिनट में तय कर लेगा, इसलिये मिनट-आध मिनट में ही दर्शक को उसके चलने का अनुभव हो सकेगा। यह कब तक पृथ्वी की परिक्रमा करता रहेगा, तथा इसका अंत क्या होगा, ये सब बातें बड़ी मनोरंजक और अद्भुत होंगी। आशा है, इससे प्रकृति के रहस्य की बहुत-सी नवीन बातें जानी जायँगी।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

× × ×

५. टेलीफ़ोन में उन्नति

संपादक महाशय, आपके ऑफ़िस में टेलीफ़ोन तो अवश्य लगा होगा; किंतु यह तो बतलाइए कि जिस समय आप ऑफ़िस से कहीं बाहर चले जाते हैं, उस समय यदि टेली-फ़ोन द्वारा आपसे कोई कुछ बातें करना चाहे, तो कैसे कर सकता है? आप भी जर्मनों की तरह क्यों नहीं अपने यंत्र के साथ 'टेलीग्राफ़ोन' लगवा लेते हैं? आपकी अनुपस्थिति में टेलीफ़ोन द्वारा यदि कोई कुछ कहेगा भी, तो यह यंत्र उसे 'रेकार्ड' कर रक्खेगा। आप आकर ज्यों ही टेलीफ़ोन के चोंगे को अपने कान से लगावेंगे, आपको वे सब बातें, जो आपकी अनुपस्थिति में कही गई हैं, सुन पड़ेंगी।

अनुपस्थिति में जो बात कही गई थी, उसे सुन रहे हैं

'माइक्रोफ़ोन'-संयुक्त टेलीफ़ोन-यंत्र

इस नए प्रकार के टेलीफ़ोन में एक और यंत्र लगा रहता है, जिसे 'माइक्रोफ़ोन' कहते हैं। यह भी आपके लिये एक आवश्यक वस्तु है। प्रतिदिन आपको बहुत-सी चिट्ठियों का उत्तर देना पड़ता है। जब तक चिट्ठियों का लिखनेवाला आपके पास आकर नहीं बैठता, तब तक आप उसका इंतज़ार करते हैं। फिर भी आप जितना जल्द बोलते हैं, वह बेचारा उतना जल्द नहीं लिख सकता। 'माइक्रोफ़ोन' इन असुविधाओं को दूर कर देगा। आपको जो कुछ कहना हो, कह डालिए, मशीन उन्हें अंकित कर रक्खेगी। पत्र-लेखक आने पर मशीन के एक हिस्से को अपने कान से लगा लेगा, और आपने जो कुछ कहा था, उसे सुनकर पत्र लिख डालेगा। इस प्रकार एक ही यंत्र में बहुत-से पत्रों का उत्तर कहकर आप रख छोड़ सकते हैं।

× × ×

६. अदाह्य वस्त्र

'माधुरी' में अदाह्य वस्त्र पर एक 'नोट' निकल चुका है, किंतु इस बार जिस वस्त्र का ज़िक्र करूँगा, वह पहले से भिन्न है। यह वस्त्र एक सस्ते पदार्थ से तैयार होता है, और ऊन-सा गरमी को रोकनेवाला भी है। घर की दीवारों को इस वस्त्र से ढक देने से घर की गरमी बाहर नहीं निकलती। इसलिये शीत-प्रधान देशों में कोयले की खपत पहले से केवल एक-तिहाई होने लगी है। यह वस्त्र गरमी को उसी प्रकार रोक रखता है, जिस प्रकार ऊन। ऊन क़ीमती पदार्थ होने के कारण उससे घर की दीवारों को ढकने का काम नहीं ले सकते। इसके अतिरिक्त आग का इस पर कुछ भी प्रभाव नहीं होता। जलती हुई अँगीठी में डालकर इसकी परीक्षा की गई। जलना तो दूर रहे, आग से निकालने के चार ही मिनट बाद यह ऐसा ठंडा हो गया, जैसे
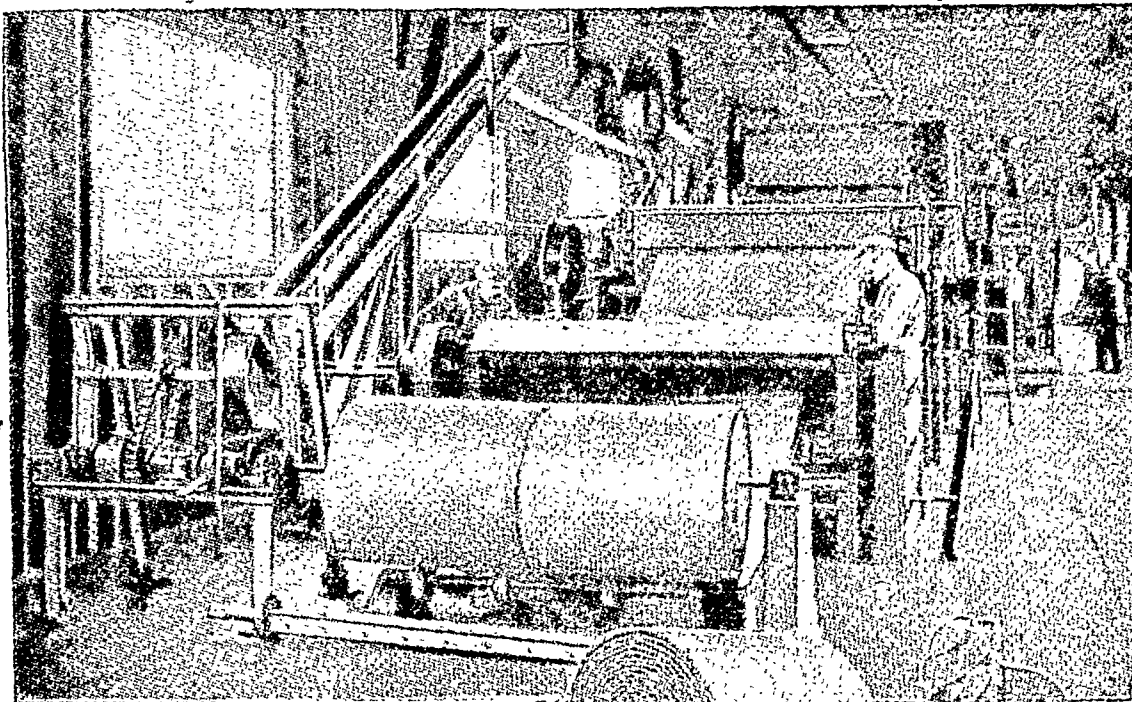
अदाह्य वस्त्र तैयार करने का कारखाना

अदाह्य वस्त्र की परीक्षा

७. एक अद्भुत यंत्र

अमेरिका के फ्रैंसिस डनमोर ने एक ऐसा यंत्र बनाया है, जो रेडियो द्वारा भेजे गए शब्दों को अंकित करता है। रेडियो-संबंधी हाल के आविष्कारों में यह एक महत्त्व-पूर्ण आविष्कार है। डनमोर महाशय का कहना है कि इस यंत्र द्वारा किसी भी दूरस्थित मशीन को वश में रखना संभव है।
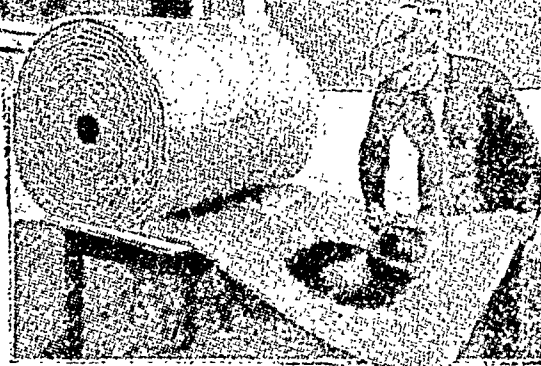
अदाह्य वस्त्र से घर की दीवारें ढकी जा रही हैं

वह कभी आग में डाला ही न गया था। जिन स्थानों में आग लगने का डर रहता है, वहाँ इस वस्त्र का उपयोग हो रहा है।

× × ×

फ्रैंसिस डनमोर और उनका यंत्र

रमेशप्रसाद

१. बालों की बहार

सौंदर्य स्त्रियों का एक गुण है। जो स्त्रियाँ सुंदर नहीं होतीं, वे भिन्न-भिन्न उपायों से अपने को सुंदर बनाने की चेष्टा करती हैं। इसके अतिरिक्त, एक देश की स्त्रियाँ जिस पदार्थ में सुंदरता पाती हैं, दूसरे देश की स्त्रियों को उसमें लेश-मात्र भी सुंदरता नहीं देख पड़ती। किंतु यह कहना अत्युक्ति न होगा कि संसार की सभी स्त्रियाँ अपनी-अपनी दृष्टि से सौंदर्य-वृद्धि के लिये लालायित रहती हैं। योरप रूपवती

मेडूसा-यंत्र

बाल सँवारने का और एक यंत्र

बनने के लिये सब कुछ करने और कष्ट सहने को तैयार रहती हैं। वे इसके लिये जो धन ख़र्च करती हैं, उसका अंदाज़ लगाना हम ग़रीब भारतवासियों के लिये कठिन है। स्त्रियों के घुँघरवाले बाल सौंदर्य का एक प्रधान

साधन हैं। किंतु बाल रखने के भी कई फ़ैशन हैं। जिस फ़ैशन के बाल जिसे पसंद आ जाते हैं, वह अपने बालों को उसी प्रकार का बनाने की चेष्टा करती है।

भिन्न-भिन्न फ़ैशन के बाल बना देने के लिये योरप में गली-गली दूकानें खुली हुई हैं। इस काम में बिजली का भी प्रयोग किया जाता है। बिजली की कलों में सर्वोत्कृष्ट 'मेडूसा'-नामक एक यंत्र है। चित्र में देखने से जान पड़ता है कि यह यंत्र झाड़ की तरह लटकाकर रक्खा रहता है। उसके नीचे फ़ैशनेबुल बाल रखने की

बाल सँवारने का एक दूसरा यंत्र

इच्छुक स्त्री एक कुर्सी पर बैठती है। उसके बाल यंत्र से लगा दिए जाते हैं। सात मिनट में बाल इच्छानुसार घूँघरवाले बन जाते हैं। इस प्रकार बालों में जो मरोड़ आ जाती है, वह चिरस्थायी होती है।

इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के यंत्र हैं, जिनके द्वारा बाल केवल एक हफ़्ते तक मुड़े हुए रह सकते हैं। ये यंत्र बड़े सीधे-सादे होते हैं। बालों को पानी से भिगोकर इन यंत्रों की सहायता से पानी सुखा दिया जाता है, और बालों में इच्छानुसार लहरें बन जाती हैं।

खूबसूरती का चिराग़

पेरिस में एक प्रकार का चिराग़ बना है, उसे 'खूबसूरती का चिराग़' कह सकते हैं। इस चिराग़ की तेज़ नीली रोशनी चहरे और बालों के ऊपर पड़कर मुँह के रंग को युवा सुंदरी के समान बना देती है, और उस स्त्री के बाल मुलायम होकर रेशम-जैसे चिकने हो जाते हैं; किंतु दुःख की बात है कि वह रंग-रूप चिरस्थायी नहीं होता।

केदारनाथ मिश्र

× × ×

२. हार

(१)

नाथ, हार गूँथ गया; हाय, फिर क्यों मेरा मन कँपता है?
"आओगे क्यों मम [illegible] तम?" प्रश्न यही वह
यदि आओगे न[illegible], तब मैं क्या मर
नहीं, पाप [illegible] री उसे हार

(२)

आते हो यदि, आओ प्रियतम ! देखो, हार गुँथा कैसा ?
देखो फिर साथ ही उसी के मेरा मन उलझा कैसा ?
आना जब, तब नाथ, बताकर, नहीं अश्रु आ जावेंगे ;
दर्शन-मार्ग रूँध वह लेंगे, नेत्र न दर्शन पावेंगे ।

(३)

आओ, शीघ्र प्राणधन, देखो, सुमन-हार कुम्हलाता है ;
क्यों करते हो देर नाथ तुम ? हृदय बैठता जाता है ।
हार पहनना जो इच्छा हो, नहीं फेंकना उसको तोड़ ;
किंतु मसोसे जब मन, प्रियतम तब तुम लेना उसको जोड़ ।

भगवतीदेवी

× × ×

३. प्रेम का सत्य रूप

माधुरी अधिकतर प्रेम-छाप नहीं करती, पर अब की वैशाख और ज्येष्ठ-मास की माधुरी में दंपति-प्रेम की कुछ महत्ता देख पड़ी । वह कुछ ठीक ही है । इसके बाद एक गोरे की बात का हवाला दिया गया है कि संसार में प्रेम और क्षुधा को निकालने पर कुछ नहीं रह जाता । फिर म० गाँधीजी के स्वर्गीय प्रेम का बखान किया है । उसमें सत्य का बहुत कुछ अंश है । मगर प्रायः वैसा होना असंभव-सा ही है । संसार में वह देख भी नहीं पड़ता । हाँ, स्वार्थ से लबालब भरा प्रेम आपको अवश्य दृष्टिगोचर होगा । यदि आप उसमें से स्वार्थ को निकाल देंगे, तो वहाँ फिर प्रेम रहेगा ही नहीं । ऐसे प्रेम को स्वार्थ का ही दूसरा रूप कहा जाय, तो कुछ झूठ नहीं । प्रेम-प्रेम सभी चिल्लाते हैं, और उनका ऐसा करना ज़रूरी भी होता है ; क्योंकि जिस चीज़ में प्रेम नहीं, वह नाचीज़ है । जिस किताब में प्रेम-कथा न होगी, उसे प्रेमी लोग देखेंगे भी नहीं । जिस काव्य में प्रेम का रस नहीं, वह निस्सार ही है । मगर प्रेम का सत्य रूप किसी ने नहीं जाना । यह तो प्रेम का बीभत्स विकृत रूप है, जो शैतान की तरह सबके सिर पर सवार है । पहले तो वह कुछ थोड़ा बहुत सांसारिक सुख (सुखाभास) ज़रूर देता है, मगर पीछे से हृदय में गहरा घाव करता है । उसकी पीड़ा से मनुष्य जीवन-भर तड़पता रहता है ।

संसार में दुःख का मूल-कारण आसक्ति ही है, और मनुष्य स्वभाव से ही सभी चीज़ों से प्रेम रखता है । वह धन से, पुत्र से, कुत्तों तक से प्रेम करता है । यही प्रेम संसार के दुःख-चक्र में घुमानेवाला होता है । एक से प्रेम किया, वह चीज़ खो गई । उसके लिये रोया, तलमलाया, पछताया । फिर दूसरी से किया, वह भी साथ न दे सकी । उसके लिये लड़ाई-झगड़ा किया, कचहरी-अदालत दौड़े । ऐसे-ही-ऐसे अज्ञानी मनुष्य अपनी सारी उमर प्रेम के झमेले में बिता देते हैं, नाना प्रकार के कष्ट उठाते हैं, तो भी प्रेम को छोड़ नहीं सकते । अंत को इसी दशा में मृत्यु हो जाती है, और जो उसमें प्रेम बाक़ी रह जाता है, वही फिर संसार में लानेवाला होता है । जितना ही जिस चीज़ से प्रेम होगा, उतना ही उसके छूटने से कष्ट होगा । सब प्रेमों से बढ़कर दंपति-प्रेम ही है, मगर इसमें भी अतिशय कष्ट है । जैसा यह बढ़ा हुआ है, वैसा ही दुःखदायी है । इसमें तो मृत्यु के सिवा बचाव ही नहीं है । अगर जीता भी रहा, तो बड़ी बुरी दशा में । यह प्रेम का पहाड़ अधिकतर औरतों के सिर पर ही टूटता है ; मरद उसमें कुछ भी हिस्सा नहीं लेता, यद्यपि फँसाता वही है ; क्योंकि पुरुष के बिना दंपति-प्रेम हो नहीं सकता । स्त्रियों का हृदय कोमल होने से उनमें प्रेम की जड़ें बहुत गहरी चली जाती हैं, और वे ही अपार कष्ट उठाती हैं । ऐसे ही जितना विचार किया जाय, सांसारिक प्रेम में कष्ट के सिवा कुछ नहीं है । वे लोग अज्ञानी हैं, जो प्रेम में सुख और अप्रेम में कुछ नहीं मानते । बल्कि नक़ली प्रेम से हीन जीव ही सुखी है । जिसको जितनी कम आसक्ति हो, उतना ही उसका सौभाग्य समझना चाहिए । सत्य प्रेम की बात और है, मगर बनावटी प्रेम से बढ़कर मनुष्य के लिये कोई भयानक चीज़ नहीं है ।

भगवतीदेवी

× × ×

४. लज्जा

लाज एक ऐसा गुण है, जो स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, सबकी आँखों में विद्यमान है । विशेषकर स्त्रियों का तो यह आभूषण ही है । पर स्त्रियों के लिये भी वृथा लाज का करना अत्यंत दुःखदायी है । लज्जा का तात्पर्य केवल इतना ही है कि बड़े-बूढ़ों के सामने मन, वाणी या शरीर कोई ऐसा कार्य न करे, जिससे उनकी मान-हानि हो । लज्जा तो कुलीनता की एक-मात्र कसौटी है ।

परदा दुराचारीगण से रक्षा करने के लिये है । बहू-बेटियों को ऐसे लोगों से अवश्य परदा कर अपनी रक्षा करनी चाहिए। दया, उदारता, शील, संतोष आदि गुणों की भाँति यह भी चित्त की एक वृत्ति है, जो रात-दिन सब स्थानों में और सभी प्रकार के लोगों में विद्यमान है। कोई भी स्त्री सात तालों के अंदर बंद ही क्यों न रक्खी जाय, पर वह लाजवती कदापि नहीं कहला सकती, जब तक कि उसके आचरण भी वैसे न हों। लाजवती तो वास्तव में वही है, जो अपनी हद में रहकर कार्य को करती है।

प्राचीन काल में स्त्रियाँ भी पुरुषों की भाँति राजसभा में जाती और बड़े-बड़े धुरंधर पंडितों से शास्त्रार्थ करती थीं। यहाँ तक कि अनेकों महारानियों ने राज्य की बागडोर तक अपने हाथ में ले ली है, और उसे पुरुषों से कहीं अच्छा कर दिखाया है। जब देवों और दानवों में युद्ध हुआ था, तो देवियों ही ने आकर दानवों को परास्त किया है। क्या उस काल की स्त्रियों ही में यह शक्ति विद्यमान थी, अब नहीं है ? अब भी हमारे पास एक ऐसा अभिनव उदाहरण मौजूद है । महारानी अहल्याबाई ने अपने राज्य का ऐसा उत्तम प्रबंध किया था कि बड़े-बड़े राजे-महाराजों को दाँतों-तले अँगुली दबानी पड़ी। उनका राज्य-प्रबंध ऐसा अच्छा था कि आज भी लोग उनका यश गाते हैं । क्या इससे महारानी अहल्याबाई के आचरण में कुछ ख़राबी आ गई, या लज्जावाला गुण ही जाता रहा ? नहीं ! कदापि नहीं ! इससे तो उनके गुणों का और भी विकास हुआ।

परदे का चलन इस देश में मुसलमानों के ज़माने से ही हुआ है । इसका कारण यह था कि बहुधा मुसलमान लोग दुराचारी और दुष्ट होते थे । जब वे किसी भी रूपवती को देख पाते, वे उसका धर्म भ्रष्ट करने पर तुल जाते और उनके धर्म को भ्रष्ट करके ही छोड़ते थे। यह अनुचित व्यवहार उस काल के लोगों से न देखा गया; उन्होंने बाल-विवाह और परदे की प्रथा प्रचलित की। ये दोनों चलन उस समय के लिये उपयोगी थे, पर इस समय के लिये तो दुःखप्रद ही हैं । हाँ, एकदम उक्त दोनों रिवाजों को त्याग देना भी बुरा है; पर उसमें कुछ संशोधन की अवश्य ही आवश्यकता है। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि घर की बहू-बेटियाँ ससुर, जेठ या पति के सामने तो लज्जा करती हैं और सवा हाथ का घूँघट काढ़ लेती हैं; पर नाई, धोबी, माली, कहार, कुम्हार, पुरोहित या पुजारी आदि से कुछ परदा या लाज नहीं करतीं। ये लोग किसी अवस्था या चाल-चलन के क्यों न हों, पर उन्हें घर में आने-जाने की कोई भी रोक-टोक नहीं। वे बेधड़क भीतर आ-जा सकते हैं। पर ससुर, जेठ, या पति को घर में आते समय दरवाज़ा खटखटाकर या खखारकर ही आना पड़ता है, और बहूजी भी उनके आने की आहट पाते ही ऐसी भागती हैं, मानो भारी विपत्ति में वे आ पड़ी हों। इस भागने के कारण ही क्यों न उनका सिर फूट जाय, पैर में चोट लग जाय, शरीर पर से वस्त्र ही क्यों न अलग हो जाय, पर उनके सामने आ जाने में तो उनकी लाज उतर जाती है । क्या ही उत्तम परदा है ? वे बेचारे प्यासे ही क्यों न बैठे हों ; पर बहूजी निकलकर उन्हें पानी तक नहीं दे सकतीं, मगर उन संड-मुसंड बाबा-जी की सभी सेवा कर सकती हैं। क्या यही लज्जावती को उचित है ?

आज तक जितने भी स्त्री-जाति के प्रति अन्याय या दुराचार हुए हैं, उन सबका कारण ये ही मूर्ख, पाखंडी हैं । फिर भी हमारी बहनें और माताएँ उनसे परदा न कर, बेचारे घर के बड़े-बूढ़ों से परदा करें, यह कहाँ तक न्यायसंगत है? ससुर, जेठ या पति से उनकी मान-रक्षा के लिये भली भाँति अंगों को ढक लेना बुरा नहीं है। पर उनका अदब या लिहाज करने की भी सीमा है। सगे-संबंधी जो इज़्ज़तदार हैं, वे कभी कुचेष्टा नहीं कर सकते; क्योंकि उन्हें अपनी इज़्ज़त का अधिक ख़याल रहता है। वे अपवाद से बहुत ही डरते हैं। पर जिसकी आबरू है ही नहीं, वह भला दूसरों की आबरू के बिगाड़ने में क्या डरेगा । वह तो थोड़े ही में दूसरों की आबरू उतार लेगा।

स्त्रियाँ इसी वृथा लाज और परदे के कारण अपना स्वास्थ्य भी खो बैठती हैं; क्योंकि ऐसा बहुधा देखा गया है कि स्त्रियाँ रोग हो जाने पर उसे छिपाती हैं, और जब अत्यंत बढ़ जाता है, तो प्रकट करती हैं, जिससे वे बहुधा अकाल मृत्यु का ग्रास बन जाती हैं। सीलन और ठंडी आब-हवा में रहने के कारण बहुधा स्त्रियों

को क्षय-रोग हो जाता है, और उस पर ध्यान न देने के भी कारण नित्य-प्रति अनेक स्त्रियों की मृत्यु देखी जाती है। इसका मुख्य कारण बेजा परदा और वृथा लाज है। स्त्री-समाज को इसे दूर करने का प्रबंध करना चाहिए।

परदे ही के कारण बहू-बेटियाँ विद्यार्जन भी नहीं कर पातीं, जिससे वे निरी मूढ़ बनी रहती हैं, और उनका गार्हस्थ्य जीवन आनंदमय नहीं होता। बहुत-सी अपने घर पढ़ाने, लिखाने या कोई कला सीखने का प्रबंध नहीं कर सकतीं और पाठशाला में आने को अँगरेज़ी रिवाज समझकर बुरा समझती हैं, या परदा के कारण ही बाहर नहीं जा पातीं। पर यह बुरा है। इससे स्त्रियों ही की हानि होती है। वे कला का ज्ञान नहीं प्राप्त कर पातीं, और बड़ी होने पर दूसरों की गुलाम बनकर कलहमय जीवन व्यतीत करती हैं। अच्छी पाठशालाओं में अच्छे प्रबंध के साथ बहू-बेटियों को विद्यार्जन करने भेजना कुछ बुरा नहीं है।

प्रायः स्त्रियाँ झनकदार गहनों को पहनकर दर्शनार्थ या सगे-संबंधी के यहाँ जाया करती हैं। उस समय रास्ते में दुष्टगणों की दृष्टि उन पर पड़ती है या चोर उनके गहनों की ताक लगाता है। इससे बहुधा स्त्रियाँ अपनी लाज और ज़ेवर तक खो बैठती हैं। अतः स्त्रियों को चाहिए कि ज़ेवर से अधिक प्रीति न करें।

विवाहादि उत्सवों में स्त्रियाँ अश्लील गीत गाया करती हैं। पर उस समय उनका सवा हाथ का घूँघट और बड़ों को देख घर में भागनेवाली लाज न-मालूम कहाँ चली जाती है। उस समय उनकी समझ पर न-मालूम क्यों परदा पड़ जाता है। वे इसका कुछ ध्यान तक नहीं रखतीं कि किन बातों से उनकी लाज उतरती है और किनसे नहीं। वे झूठी लाज को ही लाज समझती हैं।

लाजवती तो वही है, जो अपने-आप सच्ची लाज को करे और दिखाव को छोड़ दे। बहुधा स्त्रियाँ जाली या महीन तनज़ेब के वस्त्र पहनती हैं, जिसमें उनका प्रत्येक अंग बाहरवालों को देख पड़ता है। इसके दो कारण होते हैं, या तो वे शौक़िया ही ऐसा पहनती हैं कि अन्य लोग भी उसके अंग की छवि को निहारें, और उस पर लट्टू हों। पर यह सच्ची लाजवती का कर्तव्य नहीं है। या वे ऐसे महीन कपड़े पहनना ही नहीं जानतीं। यदि वास्तव में ऐसा हो, तो बिना जाने ऐसे कपड़ों को पहनना न चाहिए। इससे उनके चाल-चलन पर ख़राबी पहुँचने की बहुत आशंका रहती है। केवल मुँह छिपाने से कोई स्त्री लाजवती नहीं हो सकती। उसे अपने प्रत्येक अं[illegible] को भी अच्छी तरह ढक लेना चाहिए। जहाँ तक सके, मोटा वस्त्र पहने। चोली या कुर्ती का पहन[illegible] भी अत्यंत आवश्यक है।

स्त्रियों को अधिक चिल्लाकर बोलना न चाहिए। [illegible] स्वर से, मधुर बोलना ही स्त्रियों का धर्म है। विवाह[illegible] शुभ अवसरों पर गाली-गलौज को छोड़ सुंदर म[illegible] भगवद्भजन के गाने गाना चाहिए। इसी में उन[illegible] लाज है और परदा भी।

एकांत में किसी अन्य नवयुवक के पास नवयुवती [illegible] न बैठना चाहिए। इसमें उनके बेइज़्ज़त होने [illegible] अधिक संभावना रहती है। बहुधा ऐसा देखा गया [illegible] कि एकांत में रहकर बेचारी भोली-भाली अनेक नवयुव[illegible] ठगी जा चुकी हैं। नाच-तमाशों में तो शरीक होना इन[illegible] लिये अत्यंत हानिकारक है; क्योंकि बहुधा नाच-तमा[illegible] में गुंडे और लुच्चे अधिक शरीक होते हैं, और उनसे ब[illegible] बचाना मुश्किल होता है।

बुरी पुस्तकों या अश्लील उपन्यासों को तो, लाजव[illegible] को छूना तक न चाहिए। इनके पढ़ने से उनके आ[illegible] रण भ्रष्ट होते देर नहीं लगती। यदि उन्हें पढ़ना ह[illegible] तो उत्तमोत्तम स्त्री-शिक्षा-संबंधी या कला-संबंधी पुस्त[illegible] पढ़ें, जिससे उन्हें जीवन को उपयोगी बनाने [illegible] अभ्यास हो।

बहुधा दूतियाँ और व्यभिचारिणी स्त्रियाँ उनका म[illegible] टटोलने आती हैं। लाजवती को चाहिए कि उनकी संग[illegible] से हमेशा अलग रहे। इनकी संगति स्त्रियों के लिये बहु[illegible] ही हानिप्रद होती है।

यदि उक्त आचरणों को स्त्रियाँ अपनावेंगी, तो वे स[illegible] लाजवती कहलाने योग्य हो सकेंगी; अन्यथा उन्हें [illegible] आधुनिक स्त्रियों-सा झूठा दिखाव करना पड़ेगा, और स्वयं जीवन में दुःख प्राप्त करेंगी।

उमाशंकर मेहता

सुदामा

[चित्रकार—श्रीयुत ठाकुर भरतसिंह]

द्वार खरो द्विज दुर्बल एक, रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा,
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा।
(नरोत्तमदास)

N. K. Press, Lucknow.
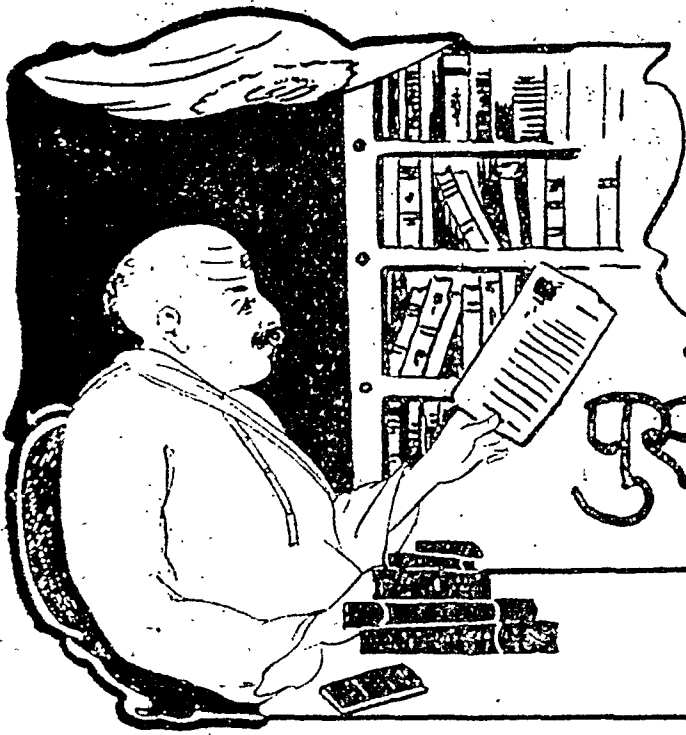
१. धर्म और दर्शन

जगद्गुरु का आविर्भाव या होनेवाला अवतार—अनुवादक, पं० लल्लीप्रसाद पांडेय। प्रकाशक, ब्रह्म-विद्या-पुस्तकमाला-कार्यालय, क़िसरौल, मुरादाबाद। स्कूली साइज़; छपाई, काग़ज़ आदि साधारण; पृष्ठ-संख्या ८०; मूल्य ।=)

यह श्रीयुत बा० हीरेंद्रनाथ दत्त एम्० ए०, बी० एल्०, वेदांतरत्न की किसी बँगला-पुस्तक का अनुवाद है। इसका संबंध थियॉसोफ़िकल सोसाइटी के सिद्धांतों से है। प्रतिपाद्य विषय का संक्षिप्त सार यह है कि यह वर्तमान पृथ्वी समुद्र में डूब जायगी, और प्रशांत महासागर के भीतर एक नया द्वीप निकलेगा, जिसका नाम शाक-द्वीप होगा। लेखक की समझ में वर्तमान संपूर्ण पृथ्वी का नाम जंबू-द्वीप है। इस द्वीप के डूबने से पहले जगद्गुरु—मैत्रेयदेव—का आविर्भाव होगा। आविर्भाव कैसे होगा, सो भी सुन लीजिए।—"वह (मैत्रेयदेव) भी किसी भक्त शिष्य के योग-शुद्ध साधना-पूत शरीर में प्रवेश करेंगे।" परंतु किसी 'भक्त शिष्य' का नाम अभी नहीं बताया गया। मैत्रेयदेव इस समय "हिमालय के किसी दक्षिणाभिमुखीन शिखरस्थ योगोद्यान में अवस्थित हैं।" इत्यादि।

थियॉसोफ़िकल सोसाइटी की ऐसी अनेक बातें प्रसिद्ध हैं, जिन्हें विचारवान् तार्किक लोग तर्क-हीन और प्रमाण-शून्य कहा करते हैं। जन्मांतरीय वृत्तांतों का कौतूहल-पूर्ण 'गँठजोड़ा' करने में तो यह सोसाइटी सिद्धहस्त है। इस प्रकार की अनेक बातें सभी लोगों ने सुनी होंगी। मरुदेव और देवापि की पौराणिक गाथा का उल्लेख करके इस पुस्तक में कहा गया है कि "आजकल मरुदेव राजपूत-शरीर में और देवापि काश्मीरी ब्राह्मण के देह में अधिष्ठित हैं।" परंतु इन राजपूत और काश्मीरी ब्राह्मण का पौराणिक गाथा से 'गँठजोड़ा' करने के लिये न किसी तर्क की आवश्यकता समझी गई, न प्रमाण की। "मैत्रेयदेव हिमालय के किसी दक्षिणमुख शिखर पर बैठे हैं", यह बात भी स्वयंभू सत्य है। हाँ, मैत्रेय-ऋषि की चर्चा में प्राचीन ग्रंथों के कई अंश उद्धृत किए हैं; परंतु थियॉसोफ़िकल सोसाइटी के किसी 'भक्त शिष्य' के शरीर में उनका आवेश होना स्वयंसिद्ध है। एक बात और भी है। मैत्रेयदेव की प्रशंसा में जहाँ-तहाँ सुश्रुत आदि के उद्धरण तो हैं, परंतु—

"न स मैत्रेयतुल्यानां मिथ्याबुद्धिं प्रकल्पयेत्"

इत्यादि वचनों की कहीं चर्चा नहीं है। पुस्तक देखने से साधारण बुद्धि के लोग इस 'ब्रह्मविद्या' को पुराण-समर्थित समझ सकते हैं। इसी अवतार के समर्थन में अदयार, मदरास से एक "अवतार" नाम का पत्र भी निकलने लगा है।

× × ×

सुधारणा और प्रगति—अनुवादक, सूरजमल जैन। प्रकाशक, श्रीराजपूताना-हिंदी-साहित्य-सभा, झालरापाटन। आकार मँझोला ; कागज़, छपाई आदि उत्तम ; पृष्ठ-संख्या २९० ; मूल्य २॥)

सन् १८४१ ई० में 'जॉन वोएटी क्रोज़ियर' नाम के एक विद्वान् का जन्म कनाडा-देश में हुआ था। इन्होंने समाज-शास्त्र और उसके अवांतर अनेक अंगों के विषय में बहुत कुछ मनन एवं प्राचीन पाश्चात्य ग्रंथों की सहायता से एक पुस्तक लिखी। उसका अनुवाद, महाराष्ट्र-भाषा में, श्रीयुत दाजीनागेश आपटे बी० ए०, एल्-एल्० बी० ने किया है। यह पुस्तक उसी अनुवाद का हिंदी-अनुवाद है। हिंदी में हम समझते हैं, यह अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और धार्मिक उन्नति तथा सुधार के संबंध में इस प्रकार का गंभीर, मार्मिक, दार्शनिक विवेचन बहुत कम मिलेगा। श्रीयुक्त आपटे महाशय ने मूल-ग्रंथकार के परिश्रम-पूर्ण अन्वेषण के साथ भारतीय समाज और इतिहास की गवेषणाओं का संयोग करके इस पुस्तक की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। पुस्तक सर्वथा उपादेय और मनन करने योग्य है।

परंतु इसका हिंदी-अनुवाद ध्यान देकर विचार-पूर्वक नहीं किया गया। मालूम होता है, अनुवादक महाशय ने मराठी-भाषा की पुस्तक सामने रखकर 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' के मार्ग का अवलंबन किया है। पुस्तक का नाम ही देखिए। 'सुधारणा और प्रगति' इस शब्द को सुनकर पुस्तक के प्रतिपाद्य विषय को समझ लेना टेढ़ी-खीर है। सुधारणा का लक्षण भी सुन लीजिए—"हेतु-मूलक कृति के द्वारा सुख की अवस्था के प्रति जाने की पद्धति को सुधारणा अथवा संस्कृति कहते हैं"। और सुनिए—"समाज के अनेक प्रकार के व्यवहार मानवीय अंतःकरण के सर्वांगीन (?) व्यापारों पर—अवलंबित होने से उस अंतःकरण का संपूर्ण आंकलन किए सिवाय सुधारणा की चिकित्सा (?) नहीं की जा सकती।" अनुवादकजी (हिंदी के) को यह 'चिकित्सा' की बीमारी बुरी तरह चिपटी है। यथा—"क्रोज़ियर ने समाज की चिकित्सा करना प्रारंभ की है", "अपने से पहले के समाज-चिकित्सकों द्वारा निकाली हुई सुधारणा की उपपत्तियों को", "वहाँ जाने पर समाज-संस्कृति की चिकित्सा करनेवाले अनेक ग्रंथों का परिशीलन किया", "समाज की सर्वांगीन (?) चिकित्सा करने और संस्कृति का अभ्यास करने" इत्यादि। यदि 'सुधारणा और प्रगति' के स्थान में इस पुस्तक का नाम 'सुधार और उन्नति' रक्खा जाता, तो लोग आसानी से मतलब समझ सकते। 'विचार' और 'मीमांसा'-शब्दों की जगह आपने 'चिकित्सा'-शब्द का अशुद्ध प्रयोग किया है। और भी अनेक शब्द इस प्रकार के हैं। आशा है, अगले संस्करण में इन्हें ठीक करने का प्रयत्न होगा। जैन होने के कारण, अनुवादकजी ने अपनी छोटी-सी भूमिका केवल सृष्टि-कर्ता ईश्वर का खंडन करने के अभिप्राय से लिखी है, और मूल-ग्रंथकार से मतभेद के बहाने आपने अपना उक्त अभिप्राय सिद्ध किया है—बेचारे ईश्वर को खूब फटकारा है। परंतु युक्तियाँ आपकी वे ही, पुराने ग्रंथों में बीसों बार पिष्टपेषित और समालोचित, हैं। हमारी समझ में यदि यह अंश न रहता, तो पुस्तक की उपादेयता में कोई कमी न होती। यह अनावश्यक और हेय अंश है। इन सब बातों के होते हुए भी प्रकृत ग्रंथ अत्यंत उत्तम और उपादेय है। भाषा की कठिनता कहीं-कहीं है, सर्वत्र नहीं।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

दर्शन-परिचय (संसार-भर के दर्शनों का संक्षिप्त विवरण)—लेखक, श्रीयुत रामगोविंद त्रिवेदी वेदांतशास्त्री। प्रकाशक, निहालचंद ऐंड कंपनी १, नारायणप्रसाद बाबू-लेन, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या २६०। सचित्र। मूल्य २), रेशमी जिल्द २॥), छपाई-सफ़ाई सुंदर।

यद्यपि इस पुस्तक के ऊपर 'प्रथम भाग' नहीं लिखा है, तथापि इस पुस्तक को एक बृहत् पुस्तक का प्रथम खंड ही समझना चाहिए। इस प्रथम खंड में 'विषय-प्रवेश'-नामक एक गवेषणा-पूर्ण भूमिका है। उसके पढ़ने से दर्शन का सिंहावलोकन-सा हो जाता है। विषय-प्रवेश के अतिरिक्त इसमें कपिल के सांख्य-दर्शन और पतंजलि के योग-दर्शन का वर्णन है। प्रत्येक के आरंभ में इन महर्षियों का चित्र और चरित्र दिया हुआ है। दर्शन-संबंधी गंभीर पुस्तकों में भी महर्षियों के कल्पित चित्र देने से पता चलता है कि इस देश में 'रुचि' और 'सच्ची कल्पना' का अभी अभाव है। महर्षियों

के चरित्र थोड़े में हैं, किंतु खोज और परिश्रम के साथ लिखे हुए हैं। सांख्य-दर्शन और योग-दर्शन के ऊपर जो अध्याय हैं, उनसे लेखक के अनुशीलन, परिश्रम और विषय-ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। हम निःसंकोच भाव से कह सकते हैं कि हिंदी में यह पुस्तक अपने विषय की अद्वितीय है। विषय की गंभीरता देखते हुए इसकी भाषा सरल और बोध-गम्य है, और लेखन-शैली तथा तर्कों के संग्रह करने का ढंग बहुत उत्तम। हम आशा करते हैं, शीघ्र ही इसके अन्य खंड भी निकल जायँगे, और हिंदी-भाषा-भाषी विद्वान् इसका समुचित आदर करेंगे।

इसमें कुछ दोष भी हैं, जो बड़ी सरलता से दूर हो सकते हैं। एक तो इसमें सूचीपत्र नहीं है, जिससे पढ़नेवालों को बड़ी दिक़्क़त होगी। दूसरे इसमें बाज़-बाज़ अँगरेज़ी शब्दों का उच्चारण ठीक-ठीक नहीं लिखा गया। यथा—Absorption (एब्ज़ॉर्पशन) को 'आबज़र्पशन', Pantheism (पैंथीइज़्म) को पांथेइज़्म। आशा है, लेखक महाशय 'दर्शन' की गंभीरता में भी इन छोटी-छोटी बातों को न भूलेंगे।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

जीवनादर्श—लेखक, पं० ज्योतिःशरण (रतूड़ी) शर्मा (गोदि) टिहरी, गढ़वाल, हिमालय-निवासी। प्रकाशक, पं० सुदर्शनाचार्य बी० ए०, गृहलक्ष्मी-कार्यालय, प्रयाग। मूल्य अज्ञात।

जीवन में मनुष्य का क्या आदर्श होना चाहिए, इस विषय को लेकर लेखक महाशय ने एक अच्छा निबंध लिख डाला है। सर्वप्रथम 'मानसिक व्यवहार'-शीर्षक में, वेद, उपनिषद् तथा महाभारतादि के प्रमाणों से, यह सिद्ध किया है कि "जब तक देह में से अपनापन न मिट जाय, चित्त से नीच स्वार्थपरता न हट जाय, और मनुष्य प्रकृति के साथ अपना ऐक्य न कर ले, तब तक आनंद की सीमा बहुत दूर है।" शरीर को केवल साधन माना गया है, साध्य नहीं। साध्य है परमात्मप्राप्ति।

लौकिक व्यवहार का विवेचन भी बड़ा मनोरम है। इसमें अहिंसा, वाक्संयम, दान, संपत्ति तथा सामाजिक सुख का विशेष उल्लेख है। स्त्रियों की शिक्षा तथा उनके सम्मान के विषय में भी बहुत कुछ कहा गया है। गार्हस्थ्य जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। सार यह कि पुस्तक परिश्रम से लिखी गई और लेखक के पांडित्य की परिचायिका है।

× × ×

बाह्य वस्तु-मीमांसा—अनुवादकर्ता तथा प्रकाशक, श्रीरामनारायणसिंह जायसवाल पेंशनर, सब-डिप्टीइंस्पेक्टर ऑफ़ स्कूल्स यू० पी०, बीरपुर, गाज़ीपुर। मूल्य ।।।≈)

यह एक बँगला-पुस्तक का अनुवाद है। प्रथम अध्याय में विवेचित विषय है—"धर्म-विषयक नियम उल्लंघन करने पर मनुष्य को कितना दुःख भोगना पड़ता है, उसका विचार"। यहाँ पर धर्म अपने एक-देशीय अर्थ में व्यवहृत न होकर व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। तदनंतर सामाजिक नियमों का विवेचन है। पुस्तक का विषय अच्छा है; परंतु भाषा अनेक स्थलों में चिंत्य है। यथा—"जिस समय भारत में नरमेध, सती का होना और बलिदान आदि प्रथा ने आरंभ होकर प्रबल रूप धारण किया था, उस समय कुप्रथा-संस्थापकों की जिघांसा-वृत्ति प्रबल और उपचिकीर्षा-वृत्ति की गति धीमी हो गई थी।" यह वाक्य अशुद्ध है। इसी तरह वरं या वरन् की जगह बार-बार 'बरुक'-शब्द का प्रयोग प्रांतीयता का प्रदर्शक होने के कारण खटकता है।

आद्यादत्त ठाकुर

× × ×

२. उपन्यास और गल्प

प्रेम-प्रसून—लेखक, प्रसिद्ध गल्प-रचयिता श्रीयुत प्रेमचंदजी। प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ। काग़ज़, छपाई, आकार, जिल्द इत्यादि बड़े मनोहर और दिल लुभानेवाले। मूल्य सादी का १), और जिल्ददार का १।।।)

यह तो हिंदी-संसार भली भाँति जानता है कि प्रेमचंदजी गल्प-लेखन-कला के विशेषज्ञ हैं; क्योंकि इनकी गल्पें केवल रोचक ही नहीं होतीं, बल्कि गल्प-लेखन-कला के सभी गुणों से परिपूर्ण भी होती हैं। आप पहले उर्दू के प्रधान मासिक पत्र 'ज़माना' और 'अदीब' में लिखा करते थे। उस समय उर्दू के गल्प-लेखकों में भी आप सरताज माने जाते थे। यह हिंदी का सौभाग्य है कि कुछ दिनों से हिंदी-संसार में भी आप अपनी लेखनी की करामात दिखा रहे हैं। हिंदी में आपकी गल्पों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

सभी अपने-अपने ढंग के निराले और लाजवाब हैं। प्रस्तुत संग्रह में उनकी चुनी हुई उत्तमोत्तम गल्पें हैं। निम्न-लिखित गल्पें उच्च कोटि की और एक-से-एक बढ़कर हैं। रोचकता तो इतनी है कि पुस्तक एक बार हाथ में लेकर विना समाप्त किए छोड़ने को जी ही नहीं चाहता। हरएक का प्लॉट भी निराला है। सबसे बड़ी बात यह है कि हर गल्प में कोई-न-कोई ऐसा विशेष गुण है, जिसका आनंद शिक्षित-समाज खूब दिल खोलकर ले सकता है।

'शाप' नाम की आख्यायिका पौराणिक कथाओं के ढंग पर लिखी गई है। कहानी अत्यंत रोचक और भाव-पूर्ण तथा चित्त पर उत्तम प्रभाव डालनेवाली है। इसमें पतिव्रत-धर्म की महिमा और शक्ति दिखाने का उद्योग किया गया है। ऐसा करने में लेखक महोदय ने एक ऐसी घटना का सहारा लिया है, जो अस्वाभाविक या अनहोनी कही जा सकती है। परंतु इसका वर्णन इतनी अच्छी रीति से किया गया है कि पढ़ते समय अस्वाभाविकता नहीं खटकती। अनहोनी घटनाओं द्वारा रोचकता पैदा करना प्रशंसनीय नहीं है। इसी कारण बहुधा तिलिस्म और ऐयारी के उपन्यास साहित्य में ओछी दृष्टि से देखे जाते हैं। किंतु अँगरेज़ी में रिडर हैगर्ड के उपन्यास, जो अस्वाभाविक घटनाओं से भरे हुए हैं, उत्तम माने जाते हैं; क्योंकि उनका सिद्धांत दूसरा और भीतरी आशय कुछ और ही है। इसी तरह संस्कृत में भी कादंबरी बहुत ऊँचा स्थान रखती है। अतएव, मुझे 'शाप' को उच्च कोटि की कहानी कहने में कोई संकोच नहीं होता।

यहाँ पर यह भी प्रश्न हो सकता है कि 'शाप' में कुछ शक्ति है या नहीं। यदि है, तो कितनी, और वह अपना प्रभाव कहाँ तक दिखा सकती है। यह एक ऐसी समस्या है, जो विज्ञान या तर्क द्वारा नहीं सुलझाई जा सकती। तथापि इतना कहने का अवश्य साहस करता हूँ कि यदि 'शाप' में कुछ-न-कुछ असर न होता, तो संसार के प्रायः सभी धर्म उसका उल्लेख न करते। मैं स्वयं अपनी आँखों देख चुका हूँ। एक औरत ने झूठी क़सम खाई थी। उसी दिन उसका लड़का बीमार पड़ा, और छठे दिन मर गया! कालिदास ने भी शकुंतला में शाप का प्रभाव दिखलाया है। पौराणिक कथाओं में तो इसकी बड़ी भरमार है। इसलिये 'शाप' में कुछ-न-कुछ असर ज़रूर है; क्योंकि 'शाप' जले हुए हृदय की भीतरी आँच है, जिसमें इच्छा-शक्ति का पूरा प्रयोग होता है। विज्ञान से यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य में सबसे बड़ी शक्ति इच्छा-शक्ति है। इच्छा-शक्ति का प्रमाण योगबल, Mesmarism और Hypnotism में पाया जाता है। पतिव्रत-धर्म का भी यही आदेश है कि मनसा-वाचा-कर्मणा पति की उपासना करना सती का धर्म है। इस आदेश का प्रतिपालन ही सती की इच्छा-शक्ति को दृढ़ करते हुए उसे आत्मबलप्रदान करता है। जब योग में इतनी शक्ति है कि शाप द्वारा स्त्री को शिला कर दे, तो पतिव्रत-धर्म में तो इससे भी कहीं बढ़कर शक्ति होनी चाहिए। इच्छा-शक्ति को थोड़ा-बहुत साधने से हम बड़े-बड़े चमत्कार दिखा सकते हैं।

सीताजी का अग्नि में पड़कर न जलना और सावित्री का अपने मृत पति को जीवित कर देना यदि सत्य और संभव है, तो विद्याधरी के अटल, अटूट और अथाह पति-प्रेम की शक्ति द्वारा शाप का अद्भुत प्रभाव पड़ जाना मैं कैसे असंभव कह सकता हूँ? यह बात और है कि ऐसी इच्छा-शक्ति आजकल संसार से लुप्त हो गई है। वायुयान निकलने के पहले जिस प्रकार विमानों का आकाश में उड़ना एक पहेली था, उसी तरह जब तक वर्तमान संसार के लोगों को इच्छा-शक्ति की पूरी थाह नहीं मिलती, तब तक पौराणिक घटनाओं की तरह इस कहानी की घटना न तो संभव ही कही जा सकती है, और न असंभव ही।

'त्यागी का प्रेम'-नामक गल्प भी अत्यंत मनोहर, रोचक, भाव-पूर्ण और स्वाभाविक है। त्यागी का धीरे-धीरे प्रेम-पाश में फँसना बड़ी ही उत्तम और स्वाभाविक रीति से दिखाया गया है। गल्प के अंतिम खंड की बाबत यह कहा जा सकता है कि लेखक यदि प्रेमियों को निराशा की अग्नि में भस्म करके प्रेम को पवित्र ही रखते, तो कोई हानि न थी। परंतु वैसा करने से पाठक प्रेमियों के दुर्भाग्य पर चुपके से दो आँसू बहाकर रह जाते, समाज के हत्यारेपन और पाखंड पर ध्यान न जाता। इसमें लेखक का असली उद्देश्य समाज के उन ऐबों का भंडाफोड़ करना था, जो हमारी जाति को

दिन-दिन सत्यानाश कर रहे हैं। लेखकों का कर्तव्य ऐब छिपाना नहीं है, बल्कि ऐबों का चित्र इस सफ़ाई से खींचना है कि लेख भद्दा न हो, और ऐब भी जनता के हृदय पर चोट पहुँचा दे, ताकि सुधार की संभावना हो। इस बात में लेखक महोदय को पूर्णतया सफलता हुई है।

इसी प्रकार अन्य गल्पें भी स्वाभाविकता, सरसता, रोचकता और उपदेश से भरी हुई हैं।

× × ×

चित्रशाला—गंगा-पुस्तकमाला का सत्ताईसवाँ पुष्प। लेखक, पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक। संपादक, पं० दुलारेलाल भार्गव, प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ। बढ़िया काग़ज, सुंदर छपाई, सुनहली रेशमी जिल्द। पृष्ठ-संख्या लगभग ४००, मूल्य सादी का १॥।) और सजिल्द का २।)

इस पुस्तक में कौशिकजी की २५ अनूठी गल्पों का संग्रह है। गल्पों को पढ़कर कौशिकजी की लेखनी का वास्तव में दम भरना पड़ता है। मुझे यह देखकर बड़ा ही हर्ष होता है कि हिंदी में गल्प-लेखन-कला में विशेष उन्नति होती जा रही है। कौशिकजी ने तो इस कला को पूर्ण रूप से अपना लिया है; क्योंकि मैदान में लाठी चलाना उतना मुशकिल नहीं है, जितना एक तंग कोठरी में। कौशिकजी की छोटी-छोटी कहानियों में भी प्लॉट की विचित्रता, भावों की मौलिकता, चरित्र-चित्रण की खूबी, भाषा की सरलता, शैली की बहार इत्यादि सभी गुणों का विकास देखकर चकित हो जाना पड़ता है।

हिंदी में बहुधा गल्पों का एक ही तरह का पिटा हुआ प्लॉट हुआ करता है। जैसे, माता-पिता का अपनी लड़की के विवाह के लिये चिंतित रहना, लड़की का किसी युवक से गुप्त प्रेम होना, कुछ सामाजिक अड़चनों के कारण उसका विवाह किसी दूसरे से तय पाना, बीच ही में लड़की का आत्महत्या कर लेना और प्रेमी महाशय का साधु-वैरागी अथवा देश-सेवक बन जाना, अथवा विवाह के बाद देश-सुधारक होकर घर से निकल जाना, या लड़की के भाई के उद्योग से प्रेमी-प्रेमिका का गठबंधन हो जाना इत्यादि। परंतु कौशिकजी की गल्पों के प्लॉट बिलकुल अनोखे और बड़े रोचक हैं। यह उनकी अपूर्व कल्पना-शक्ति की खूबी है, जिसकी थाह इस संग्रह की पहली गल्प 'स्वाभिमानी नमक-हलाल' के पढ़ने से लग जाती है। दूसरी गल्प 'उद्धार' का उठान रेनाल्ड्स के एक उपन्यास (शायद Seamstress) के ढंग पर है। परंतु कौशिकजी ने प्लॉट बाँधने में कुछ ऐसी खूबी दिखलाई है कि मैं उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। तीसरी गल्प 'ताई' में चरित्र-रचना की कुशलता खूब दिखाई है। चौथी गल्प 'लीडरी का पेशा' है। इसमें शैली की बहार का पूरा आनंद मिलता है। इसी तरह सभी गल्पें विशेषता-पूर्ण हैं। विशेषकर भावी गल्प-लेखकों को इस पुस्तक के अध्ययन से बड़ा लाभ पहुँच सकता है; क्योंकि यह 'चित्रशाला' वास्तव में संसार की लीलाओं के सजीव चित्रों का भंडार है।

जी० पी० श्रीवास्तव

× × ×

चाणक्य और चंद्रगुप्त—अनुवादक, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी। प्रकाशक, सरस्वती-भंडार, मुरादपूर, पटना। पृष्ठ-संख्या ५३१; मूल्य २॥); छपाई सुंदर।

यह स्वर्गीय हरिनारायण आपटे के चंद्रगुप्त-नामक ऐतिहासिक उपन्यास का हिंदी-अनुवाद है। अनुवाद बुरा नहीं है, हालाँकि कहीं-कहीं बेमुहावरा शब्दों का प्रयोग हो गया है। मूल-उपन्यास उच्च कोटि की रचना है, इसमें संदेह नहीं। आपटे महोदय मराठी के कुशल उपन्यासकार थे, और चंद्रगुप्त उनकी सर्वोत्तम रचना है। मुरादेवी और चाणक्य का चरित्र बड़ी कुशलता से चित्रित किया गया है। मुरादेवी का अपने नवजात पुत्र की हत्या का अपने शत्रुओं से बदला लेने के लिये कौशल करना, राजा घनानंद पर मोहिनी-मंत्र डालना, उस पर अपनी सहृदयता और क्षमाशीलता की धाक बिठाना, चाणक्य के षड्यंत्र में योग देकर राजा घनानंद का वध कराने के लिये तैयार हो जाना, और ठीक उस वक़्त, जब कि षड्यंत्र पूरी तरह रचा जा चुका था, उसका अपने घृणित कृत्य पर पश्चात्ताप करना, राजा को सतर्क करने का संकल्प-विकल्प, प्राण-भय से रहस्योद्घाटन करने में असमर्थ होना और नंद-वंश का विध्वंस होते देखकर मनस्ताप से पीड़ित हो उसी प्राणघातक कुंड में कूदकर प्राण दे देना आदि सभी घटनाएँ बड़ी मनोरंजकता और मार्मिकता से चित्रित की गई हैं। चाणक्य की कूट-नीति-ज्ञता तो विख्यात ही है। यहाँ उसका खूब विकास हुआ

है। राक्षस की गंभीरता और राजभक्ति के सामने चाणक्य की कुटिलता दुराग्रह-पूर्ण प्रतीत होती है। हमें चाणक्य से महानुभूति नहीं होती, वरन् राजा धननंद की सरलहृदयता पर दया आती है। मुरा ने अंतिम समय अपने दुष्कृत्य पर पश्चात्ताप करके अपने को सँभाल लिया है; अन्यथा हम उसे कुटिला और मायाविनी कहते। ऐतिहासिक उपन्यास में एक बड़ा गुण यह होता है कि वह अतीत को वर्तमान बना देता है। वह उस समय के रहन-सहन, आहार-व्यवहार, रस्म-रवाज, शासन-विधान का ऐसा चित्र खींचता है, जो उनको हमारे आँखों के सामने मूर्तिमान् कर दे। इस उपन्यास में यह अभाव खटकता है, और इससे इसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत न्यून हो जाता है।

× × ×

कर्मवीर—अनुवादक, पंडित कृष्णकांत मालवीय, प्रकाशक, अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ७६; मूल्य ।)

स्वदेशी आंदोलन के समय की लिखी हुई दो बँगला-कहानियों का अनुवाद। कहानियाँ अच्छी हैं।

× × ×

सुशीलकुमारी—लेखक, प्रो० रामस्वरूप कौशल एम्० ए०। प्रकाशक, दाउलअशाअत, लाहौर। पृष्ठ-संख्या १०२; मूल्य ।=); मिलने का पता—सरस्वती-प्रेस, बनारस।

यह छोटा-सा उपन्यास है, जिसमें लेखक ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि बिना कन्याओं की अनुमति के उनका विवाह कर देना, तथा कुपात्र से विवाह करना कितना हानिकर होता है। हमारी विवाह-पद्धति बिगड़ी हुई है, उसके सुधार के लिये जितना प्रयत्न किया जाय, थोड़ा है। क़िस्सा दिलचस्प है, और परिणाम अत्यंत करुणोत्पादक।

प्रेमचंद

× × ×

३. नाटक

दागी माल तथा वैवाहिक अत्याचार—लेखक, श्रीयुत वासुदेव। संपादक, श्रीकृष्णकांत मालवीय, प्रकाशक, अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग। मूल्य ।=)

'दागी माल' एक छोटे-से फ्रेंच ड्रामा का अनुवाद है, जिसमें लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि कुत्सित बीमारियों का संतान पर क्या असर पड़ता है। 'वैवाहिक अत्याचार' भी उसी नाट्यकार की एक रचना का अनुवाद है, जिसमें यह सिद्ध किया गया है कि मादक-वस्तु-सेवी माता-पिता अपनी संतानों के स्वयं वैरी होते हैं। दोनों ही रचनाएँ मनोरंजक हैं, और यद्यपि नाटक की दृष्टि से उनका मूल्य कुछ नहीं है (संवाद द्वारा कोई बात कहना ड्रामा नहीं है); पर उपयोगिता की दृष्टि से यह बहुत मूल्यवान् है। योरप में और उसके संसर्ग से भारत में भी यह एक कठिन सामाजिक समस्या उपस्थित हो गई है कि अयोग्य, रोगी और दुर्बल-चरित्र संतान की वृद्धि क्योंकर कम की जाय। इसका कारण तो यही है कि हमारे समाज की वर्तमान प्रणाली के अनुसार प्रत्येक स्त्री-पुरुष संतान उत्पन्न करने का अधिकारी हो। यह नहीं देखा जाता कि वह किसी ऐसे रोग से तो नहीं ग्रस्त है, जिसका असर उसकी संतान पर अनिवार्य रूप से पड़ेगा, अथवा वह मादक आदि वस्तुओं का आदी है, जिसका प्रतिफल यह होगा कि संतान दुर्बल-चरित्र होगी। ऐसा बहुत कम देखा गया है कि उपदंश, दमा आदि असाध्य रोगों के रोगियों को अपना विवाह करने में कोई विशेष अड़चन पड़ती हो। लड़की का पिता उसकी शिक्षा, उसकी स्थिति, उसके परिवार की पूछ-ताछ खूब करता है; पर यह कभी नहीं पूछता कि तुम्हें कोई रोग भी है। इस भाँति अपनी हीनताओं को संसार में चिरस्थायी करने का सुयोग मनुष्यों को प्राप्त हो जाता है। हमें आशा है, इन पुस्तकों के प्रचार से माता-पिता का ध्यान इस ओर आकर्षित होगा। अभी तक बहुत कम प्राणी यह समझते हैं कि मादक वस्तुओं के सेवन से संतान पर बुरा असर पड़ता है। हमें आशा है, अपने हित के लिये नहीं, तो संतान के हित के लिये यह बात जान लेने पर वे नशे का परित्याग कर देंगे।

प्रेमचंद

× × ×

४. वैद्यक

रजस्वला के समय (?) पालन करने के आरोग्यता के नियम—लेखक, व्यास पूनमचंद-तनसुख वैद्य। पं० मीठालाल व्यास, ब्यावर, राजपूताना से प्राप्य। स्कूल-साइज़। पृष्ठ-संख्या ३६; कागज़, छपाई आदि साधारण। मूल्य ।)

पुस्तक का विषय उसके नाम से ही स्पष्ट है। भाषा सरल और लेखन-शैली उत्तम है। आयुर्वेद के प्राचीन

ग्रंथों और पाश्चात्य डॉक्टरों के प्रामाणिक वचनों का संग्रह भी उपयुक्त रीति से यथेष्ट किया गया है। पुस्तक स्त्रियों के लिये उपकारी है। यद्यपि इस देश की प्राचीन स्त्रियों का ज्ञान इन नियमों के संबंध में साधारण चिकित्सकों से अधिक उत्तम होता है, परंतु नवीन शिक्षा-प्राप्त स्त्रियाँ, जो इस विषय में प्रायः कोरी होती हैं, और प्राचीन स्त्रियों के वचनों पर जिनकी आस्था नहीं है, इस पुस्तक से यथेष्ट लाभ उठा सकेंगी। अन्य स्त्रियाँ भी इस पुस्तक में अनेक ज्ञातव्य बातें पा सकेंगी।

व्यासजी 'रजस्वला' का अर्थ शायद रजोधर्म समझे हैं। अतएव 'रजस्वलावाली स्त्रियाँ' (पृ० १७) और 'रजस्वला के समय' इत्यादि प्रयोग आपने किए हैं। भाषा में गुजरातीपन का संपुट बहुत है। 'शिकायत चलु रहती हैं', 'बेदरकारी करती है', 'अभड़ी जाना', 'जीवलेय', 'कुसुवावड़', 'रहवास', 'घट्टी' आदि शब्दों का शुद्ध हिंदी-रूप होने से पुस्तक की उपयोगिता बढ़ सकती है। पृ० ३ पर मासिक धर्म का समय ४० वर्ष तक बताया है। संभव है, छापे की ग़लती से ५० की जगह ४० बन गया हो। सुश्रुत में लिखा है—

'तत्सराद्द्वादशाद्धूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम्।'

× × ×

पथ्य—इसके लेखक और प्रकाशक पूर्वोक्त ही हैं। स्कूली साइज़; पृष्ठ-संख्या २६९। क़ाग़ज़, छपाई, सफ़ाई उत्तम। मूल्य १)

इसमें पथ्यों की उपयोगिता, प्रशंसा और रोगों के अनुसार रोगी के लिये हितकर पथ्यों का वर्णन है। दिनचर्या और ऋतुचर्या-संबंधी अनेक उपयोगी बातें भी लिखी हैं। साथ-ही-साथ अपथ्यों का भी दिग्दर्शन है। कुछ नुस्ख़े और द्रव्यों का गुण-वर्णन भी है। यह संस्कृत के पथ्यापथ्य के आधार पर लिखी गई है। पुस्तक अच्छी है। परंतु भाषा-संबंधी दोषों की बहुलता इसमें भी खटकती है।

हिंदीवालों को 'ओरी', 'खुलखुलिया', 'गेहूँ का अंगारवारिया रोटा', 'सोगरा', 'घाट', 'खीच', 'खारिया', 'वाटी', 'चीलड़ा', 'सीरा', 'कैर', चंदलिया आदि शब्दों की एक ही जगह भरमार खटके बिना नहीं रह सकती। आशा है, व्यास महाशय अगले संस्करण में इस दोष को दूर करने का यत्न करेंगे।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

५. इतिहास

सिराजुद्दौला—लेखक, श्रीयुक्त बाबू अक्षयकुमार मैत्रेय। अनुवादक, पं० भगवानदीन पाठक विशारद। प्रकाशक, अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ३५०। छपाई आदि साधारण। मूल्य सजिल्द २॥), सादी २)

बाबू अक्षयकुमार मैत्रेय बँगला के प्रसिद्ध विद्वान् और सुलेखक हैं। यह पुस्तक उन्हीं के मूल-पुस्तक सिराजुद्दौला का अनुवाद है। बँगला में इस पुस्तक के चार संस्करण हो चुके हैं। इसी से विदित है कि इसका बंगाली पाठकों ने कितना आदर किया है। है भी आदर के योग्य पुस्तक। पुस्तक की लेखन-शैली इतनी सरस, मधुर और आकर्षक है कि बिना समाप्त किए छोड़ने को जी नहीं चाहता। ऐसे ही अनुवादों से हिंदी का कोष भरा जाय, तो क्या कहना। इतिहास इतना सरस और विनोदमय हो सकता है, यह पुस्तक इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अँगरेज़ इतिहास-लेखकों ने औरंगज़ेब, शिवाजी और टीपू की जितनी मिट्टी ख़राब की है, उससे ज़्यादा सिराजुद्दौला की की है। मैकाले ने तो उसे नर-पिशाच चित्रित करने में क़लम तोड़ दिया है। लेकिन यथार्थ यह है, जैसा कि एक विद्वान् अँगरेज़ इतिहास-लेखक का मत है, कि "सिराज दुष्ट होने की अपेक्षा अभागा ही अधिक था।" इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि सिराज विलासी, विषयी और क्रोधी था। पर यह आक्षेप ऐसा है, जो समान सत्यता के साथ अन्य एकाधिपतियों पर भी रक्खा जा सकता है। अकबर, शाहजहाँ, जहाँगीर, रणजीतसिंह आदि किस-किसका नाम गिनावें। ये सभी समय-समय पर कामांध हो गए थे। इनकी काम-वासना ने बड़े अनर्थ घटित कर दिए। सिराजुद्दौला में भी यह दुर्गुण मौजूद था; लेकिन वह इतना बड़ा धूर्त, दुष्ट, क्रूर, नर-पिशाच न था, जितना अँगरेज़ लेखकों ने लिखा है। अक्षय बाबू ने ऐतिहासिक प्रमाणों से युक्त उसका जो चरित्र अंकित किया है, उसे पढ़कर हमें इस अभागे नवाब से सहानुभूति हो जाती है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उसकी पराजय उसकी ग़लतियों का फल थी। उस समय बंगाल की राजनीतिक परिस्थिति ही कुछ ऐसी हो रही थी कि उसमें कोई राजनीति-निपुण व्यक्ति भी वही करने पर बाध्य होता, जो सिराज ने किया। हम तो यह कहेंगे कि उसने

अँगरेज़ों के साथ, देश की परिस्थिति से परिचित होने के कारण जितनी सहिष्णुता दिखाई, उतनी कोई दूसरा आदमी शायद न दिखा सकता। यद्यपि अलीवर्दीख़ाँ ने उसे अपना युवराज अभिषिक्त किया था, पर अलीवर्दी ही के भाई-भतीजे भिन्न-भिन्न प्रांतों के शासन पर नियुक्त थे। ये सभी अपने-अपने सूबे में इसलिये धन और शक्ति एकत्र कर रहे थे कि सिराज को नीचा दिखा दें। चारों तरफ़ षड्यंत्र रचा जा रहा था। राजवल्लभ, निवाज़िश, घसीटी बेगम, शौकतजंग, सभी इस षड्यंत्र में शरीक थे। सिराज को नीचा दिखाने के लिये ये लोग अँगरेज़ों से हर तरह की रियायत करते थे, और इनके धन से अपना उद्देश्य पूरा करना चाहते थे। इन्हीं की शह पाकर अँगरेज़ सौदागरों को भी सिराज को आँखें दिखाने का हौसला होता था। फिर अँगरेज़ों के निश्शुल्क वाणिज्य से देशी व्यापारियों का कचूमर निकला जाता था। शर्त तो यह थी कि कंपनी विना कर दिए व्यवसाय करे, पर कंपनी के नौकर, नौकरों के नौकर, और उनके भाई-भतीजे, मामा, फूफा विलायत से आकर व्यक्तिगत भाव से कंपनी के नाम पर विना कर दिए व्यवसाय करके धन कमा रहे थे। यह कुव्यवस्था देखकर कोई भी राजा चुप नहीं रह सकता था। अँगरेज़ों की सिराज से इसी-लिये दुश्मनी थी कि वह उन्हें दिल खोलकर लूटने नहीं देता था। अलीवर्दीख़ाँ के समय में भी यह लूट हो रही थी, पर उसे मराठों के धावों के मारे इन बातों की ओर ध्यान देने का अवकाश कहाँ था? पर बुड्ढा चतुर राजनीतिज्ञ था। अँगरेज़ों का दुस्साहस, दक्षता और सुव्यवस्था देखकर उसे शंका हो गई थी कि सिराज को भविष्य में अगर किसी से शंका है, तो अँगरेज़ों से। उसका सिराज को अंतिम उपदेश था कि अँगरेज़ों को जमने न देना, इनसे चौकस रहना, इन्हें शक्ति का संचय न करने देना, इन्हें क़िला बनवाने अथवा सेना एकत्रित करने का मौक़ा कभी मत देना। अगर दिया, तो समझ लो कि यह देश फिर तुम्हारा नहीं होगा।

अलीवर्दी तो यह उपदेश करते-करते मरा, इधर अँगरेज़ों को यह धुन थी कि क़िला बने, और ज़रूर बने। सिराज ने बार-बार मना किया। लिखा, अपने दूत भेजे, पर अँगरेज़ों ने हीले-हवाले किए। यहाँ तक कि राजदूत का अपमान तक किया, और क़िला बनाना बराबर जारी रक्खा। सिराजुद्दौला ने समझ लिया कि ये अँगरेज़ सौदा-गर केवल हमारी घरू लड़ाई और पारस्परिक विद्रोह के कारण ही अपने उद्दंड और उच्छृंखल स्वभाव का परिचय दे रहे हैं, अन्यथा इनमें इतनी हिम्मत कहाँ थी। इसलिये अँगरेज़ों पर रोष न प्रकट करके वह पहले पारस्परिक कलह को शांत करने पर कटिबद्ध हुआ। लेकिन अंत में विवश होकर उसे कलकत्ते पर आक्रमण करना ही पड़ा। अँगरेज़ों ने क़िला बनवाने की क़सम खा ली थी। सिराज को अपनी रक्षा के लिये क़िले को तोड़ना पड़ा। उसका प्रधान अपराध यही था कि अपमान, हानि, निरंकुशता, सब कुछ चुपचाप बैठा क्यों न सहता गया।

सिराजुद्दौला पर सबसे बड़ा और भीषण दोष यह लगाया गया है कि उसने काल-कोठरी में अँगरेज़ों की हत्या की। प्रायः सभी अँगरेज़ इतिहासकारों ने इस दुर्घटना पर बड़े ज़ोर से आँसू बहाए और सिराज को खूब जी भरकर गालियाँ दी हैं। पर बाबू अक्षयकुमार ने भली भाँति सिद्ध कर दिया है कि यह सिराज पर मिथ्या दोषारोपण है। वास्तव में काल-कोठरी की दुर्घटना हुई ही नहीं। वह केवल कल्पना-ही-कल्पना है। हाल-वेल, जिसने इस कल्पना की सृष्टि की, और जो अपने को भी बंद किए हुए क़ैदियों में रखता है, दग़ाबाज़ और झूठा आदमी था, यह प्रमाणों द्वारा सिद्ध है। ऐसे धूर्त की बातों पर अँगरेज़ इतिहास-लेखकों ने विश्वास क्योंकर कर लिया, समझ में नहीं आता। शायद इसलिये कि किसी बेगुनाह के खून का इलज़ाम लेते हुए न्याय-बुद्धि को संकोच होता है। शेर ने भी तो हिरन पर इलज़ाम लगाया था। रही यह बात कि सिराज ने यह हत्या न की होती, तो पलासी की लड़ाई न होती, इसमें कुछ सार नहीं। सिराज को तो जाना ही था, अँगरेज़ों का तो बहाना-मात्र था। सिराज को पलासी ने नहीं, स्वार्थियों ने मटियामेट किया। देश का पहले नैतिक पतन होता है, राजनीतिक पतन तो केवल उसका बाह्य रूप है। इस ग्रंथ की और ज़्यादा प्रशंसा न करके हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि इसे अवश्य पढ़िए।

प्रेमचंद

× × ×

६. नीति और शिक्षा

रामायणी कथा—अनुवादक, बाबू भगवानदास हालना और साहित्योपाध्याय पं० बदरीनाथ शर्मा वैद्य। प्रकाशक, अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या २४०+२६। छपाई साधारण। मूल्य १)

श्रीयुक्त बाबू दीनेशचंद्र सेन बंगाल के सुविख्यात विद्वान् हैं। उनका रचा हुआ बँगला-साहित्य का इतिहास बड़ा सम्मानित ग्रंथ है। उसका अँगरेज़ी-अनुवाद भी हो चुका है। रामायणी कथा आप ही की एक सुंदर रचना है। यह उस पुस्तक का हिंदी-रूपांतर है।

इस पुस्तक में दीनेश बाबू ने रामायण के प्रधान चरित्रों की बड़ी मार्मिक, सरस, विद्वत्ता-पूर्ण, भक्तिमय आलोचना की है। भाषा इतनी मधुर और करुणरस-पूर्ण है कि पढ़कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। आलोचना यद्यपि भक्ति-पूर्ण है, पर आलोचना के आदर्श को हाथ से नहीं जाने दिया गया है। गुणों के साथ दोष भी दिखा दिए गए हैं। चरित्रों का चित्रण वाल्मीकीय रामायण के आधार पर ही किया गया है। गोसाईं तुलसीदासजी के रामचंद्र में देवगुणों की प्रधानता है, पर वाल्मीकि कहीं यह बात नहीं भूले कि वह एक 'नरचंद्र' की कथा कह रहे हैं। अतएव उन्होंने उनके चरित्र और वैराग्य को इतना नहीं उठाया है कि उसमें दोष का लेश भी न रहने पावे। वाल्मीकि ने रामचंद्र के मुख से कई अवसरों पर भरत, और दशरथ के प्रति ऐसे वाक्य कहलाए हैं, जिनसे रामचंद्र के मन की दुर्बलता सिद्ध होती है। पर हम तो यही कहेंगे कि सर्वांगसुंदर चरित्र वे ही होते हैं, जिनमें मनोभावों को आदर्श-रक्षा के भय से लेखक ने दबा न दिया हो। रामचंद्र भरत को प्राणों से भी प्यारा समझते हों, लेकिन उनका सीता से यह कहना कि "तुम भरत के सामने हमारी प्रशंसा मत करना; क्योंकि ऐश्वर्यशाली पुरुष दूसरे की प्रशंसा नहीं सह सकते।" दुर्बलता-सूचक होते हुए भी अत्यंत स्वाभाविक है, और इससे रामचंद्र के मानव-चरित्र-ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। भरत का चरित्र अत्यंत करुणरस-पूर्ण और किसी अंश में रामचंद्र के चरित्र से भी सुंदर है। यद्यपि यह अनूदित ग्रंथ है, पर इसे हम हिंदी-भाषा का एक रत्न समझते हैं।

प्रेमचंद

× × ×

निबंध-नवनीत (स्वर्गीय पंडित प्रतापनारायण मिश्र के स्फुट लेखों का संग्रह, भाग १)—प्रकाशक, अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या १९०; छपाई साफ़; मूल्य ।।।)

आरंभ के ३९ पृष्ठों में मिश्रजी का 'चरित्र-चित्रण' है। सरस्वती में प्रकाशित मिश्रजी की जीवनी उद्धृत कर ली गई है। संगृहीत लेखों की संख्या ४१ है। प्रायः सभी लेख छोटे हैं; पर उनमें चोज और ओज की मात्रा पूरी है। कई लेखों में मिश्रजी की प्रखर प्रतिभा का अद्भुत चमत्कार भरा हुआ है। आप, नारी, दाँत, भौं, द, ट, मरे का मारैं शाहमदार, इनकमटैक्स, देशी कपड़ा, कांग्रेस की जय, होली है, पंच-परमेश्वर, विलायत-यात्रा, उर्दू बीबी की पूँजी, ककाराष्टक और मुक्ति के भागी आदि लेख अत्यंत मनोरंजक हैं। खड़ी बोली का पद्य, नागरी-महिमा का एक चोज, बाल-विवाह-विषयक एक चोज, किस पर्व में किसकी बन आती है, किस पर्व में किस पर आफ़त आती है, ऊँच निवास नीच करतूती, भारत पर भगवान् की अधिक ममता है, कलि-कोष, और पड़े पत्थर समझ पर आपकी समझे तो क्या समझे, इन विनोद-पूर्ण लेखों में हास्य के साथ-साथ उपदेश की भी लहर है। 'समय का फेर'-नामक लेख में मिश्रजी ने बड़ी सहृदयता से आज से सौ-पचास वर्ष पूर्व के भारत का बड़ा स्वाभाविक चित्र अंकित किया है। 'हमारे उत्साहवर्द्धक'-नामक लेख में मिश्रजी के जीवन की एक ज्वलंत घटना का दर्शनीय चित्र है।

यह पुस्तक केवल चित्ताकर्षक ही नहीं, शिक्षा की खान भी है। हिंदी-संसार के नवयुवक इससे बहुत कुछ सीख सकते हैं। पुस्तक में तीन परिच्छेद हैं। प्रथम में 'साहित्यिक अंश', द्वितीय में 'सामयिक अंश' और तृतीय में 'सामाजिक अंश' है। तीनों अंशों में रोचकता और भावुकता की बहुलता है। रचना-शैली पर मिश्रजी की ख़ास छाप है। उनके कितने शब्द तो ऐसे विचित्र, उपयुक्त, भाव-पूर्ण और अनूठे हैं कि सहृदय-हृदय में चुभ-से जाते हैं। मिश्रजी की ठेठ भाषा भी इतनी मँजी हुई है कि उसके चुस्त और दुरुस्त वाक्यों के सरल भाव सहज ही हृदयंगम हो जाते हैं। उनकी ठेठ भाषा में एक अविरल आनंद है। उसमें भी काव्य के बड़े सुंदर भाव अंतर्निहित हैं। ग्राम्य वधू को उन्होंने नवल-नागरी बना डाला है। धन्य है उनका लेखन-कौशल!

बँगला में कलकत्ते के वसुमती-साहित्य-मंदिर से

प्राचीन बँगला-लेखकों की सस्ती और सुसंपादित ग्रंथावलियाँ प्रकाशित हुई हैं। उनके सुलभ संस्करण प्रायः 'वसुमती'-पत्र के वार्षिक उपहार में वितरित होते हैं। हिंदी-पत्रों के वार्षिक उपहार में अनुवाद किए हुए मामूली उपन्यास बाँटे जाते हैं। यदि पुराने लेखकों की कृतियों का प्रचार किया जाय, तो साहित्य का बड़ा उपकार हो सकता है। तुलसी-ग्रंथावली और भारतेंदु-ग्रंथावली की तरह अन्य ग्रंथावलियों का प्रकाशन भी होना चाहिए। भट्टजी के 'साहित्य-सुमन' और गुप्तजी का 'गुप्त-निबंधावली' आदि के रहते हुए भी, भट्ट-ग्रथावली और गुप्त-ग्रंथावली का अभाव अनुभव किया जा सकता है। यदि प्राचीन ग्रंथावलियों के सस्ते संस्करण निकाले जायँ, तो साहित्य की शक्ति और संपत्ति की बहुत कुछ रक्षा हो सकती है। धनी-मानी प्रकाशकों को इस तरफ़ ध्यान देना चाहिए।

यह "निबंध-नवनीत" विद्यालयों की पाठ्य पुस्तक होने योग्य है। नौसिखुए लेखकों को तो इसे अपना चिरसहचर बनाना चाहिए। प्राचीन लेखकों की ग्रंथावलियों के अभाव में यदि ऐसी-ऐसी निबंधावलियाँ ही निकलें, तो भी छिपे पड़े हुए अमूल्य रत्नों के प्रकट होने से साहित्य की श्री-वृद्धि हो सकती है।

शिवपूजनसहाय

× × ×

७. बालकोपयोगी

बाल रामायण—लेखक और संपादक, पंडित रामदहिन मिश्र। प्रकाशक और विक्रेता, रामनरायनलाल, प्रयाग। मूल्य ।~)

इस छोटी-सी पुस्तक में रामायण की कथा, संक्षेप में, अत्यंत सरल भाषा में, लिखी गई है। रामायण की कथा बालकों के लिये चरित्र-शिक्षा की दृष्टि से बड़े महत्त्व की वस्तु है। उसे सरल और सुबोध भाषा में लिखकर मिश्रजी ने बालकों का बड़ा उपकार किया है। पुस्तक प्रत्येक बालक के पास रहनी चाहिए। मूल्य भी अधिक नहीं है।

आद्यादत्त ठाकुर

× × ×

मनमोदक—प्रकाशक, सरस्वती-प्रेस, काशी। पृष्ठ-संख्या १६०; मूल्य ।।।)

बालकवृंद विनोदशील होते हैं। उनका मन ऐसी कहानियों में खूब लगता है, जिनमें हँसने का मसाला हो। इस पुस्तक में संग्रहकर्ता ने ऐसी ही उत्तम, मनोरंजक और हास्यजनक कथाओं का संग्रह कर दिया है। कहानियाँ सभी बालोपयोगी हैं, मनोरंजन के साथ कुछ शिक्षा भी अवश्य मिलती है। बहुत-सी कहानियाँ तो ऐसी हैं कि बच्चे पढ़कर हँसते-हँसते लोट जायँगे। इसके साथ ही कहानियों में कहीं अश्लील शब्द या भाव नहीं आने पाया। और, जब किसी हास्य-रस की पुस्तक के विषय में हम इतना कहते हैं, तो बहुत कहते हैं। भाषा अत्यंत सरल और सरस है। जिन महाशयों की इच्छा हो कि अपने बालकों को घर बैठे मनोरंजन की कोई सामग्री दें, उनके लिये यह पुस्तक बड़े काम की है।

प्रेमचंद

× × ×

८. महिलोपयोगी

भारत की विदुषी नारियाँ—संपादिका, श्रीमती कृष्णकुमारी। प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ। टाइटिल पर माधुरी के प्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत काशिनाथ गणेश खातू द्वारा अंकित रंगीन चित्र। छपाई, सफ़ाई, कागज़ आदि उत्तम। मूल्य ।।)

इस छोटी-सी, १०० पृष्ठों की, पुस्तक से इस बात का परिचय मिलता है कि प्राचीन समय में, हमारे भारत-वर्ष में, स्त्री-शिक्षा-विषयक क्या आदर्श था, तथा किस प्रकार की शिक्षा आर्य-ललनाओं को दी जाती थी। जो देश उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होता है, वह एक अंग को ही उन्नत करके उस स्थान की प्राप्ति नहीं कर सकता, वरन् उसके लिये सर्वांग उन्नत होना अत्यंत आवश्यक होता है। जो बात देश के लिये, वही समाज के लिये भी लागू होती है। समाज के संचालक कुटुंब हैं, जिनकी अबाधित, अस्खलित एवं सुचारु गति स्थिर रखने का काम चक्र-रूपी स्त्री-पुरुषों को करना पड़ता है। जिस प्रकार एक ही पहिए से गाड़ी नहीं चलती, उसी तरह केवल पुरुषवर्ग का शिक्षित हो जाना ही कौटुंबिक एवं सामाजिक उन्नति नहीं कर सकता। यही समझकर हमें भी अपनी महिलाओं तथा कन्याओं को सुशिक्षित बनाना चाहिए।

क्योंकि कुटुंब के सुशिक्षित होने से ही समाज एवं राष्ट्र सुशिक्षित हो सकता है।

इसी ध्येय को सामने रखकर श्रीमती कृष्णकुमारी ने भारत की प्राचीन विदुषी नारियों का, इस चरित्र-चित्रण द्वारा, परिचय कराया है। श्रीमतीजी का यह उद्योग स्तुत्य तथा उत्साह सराहनीय है। प्रस्तुत स्त्री-शिक्षण-प्रणाली की पाठ्य पुस्तकों में ऐसी पुस्तकों का समावेश होना वांछनीय है। चरित्र-शोधक ग्रंथों का पठन-पाठन पाठकों को केवल चरित्रवान् ही नहीं बनाता, वरन् एक आदर्श की परंपरा स्थापित करता है। पुस्तक उपादेय और श्लाघ्य है। इसमें वेदों के समय से लेकर उच्च स्त्रियों के चरित्र अच्छे दिए गए हैं।

मिश्रबंधु

× × ×

९. उर्दू

श्रीमीराबाईजी (सचित्र)—लेखक, श्रीअयोध्यावासी सीतारामशरण भगवानप्रसादजी 'रूपकला' अथवा प्रपन्ना सियसहचरी 'रूपकला'। प्रकाशक, बी० रामगणेशप्रसाद, ० ए०, एल्-एल्० बी०, फ़ैज़ाबाद। आकार डिमाई यल अठपेजी। पृष्ठ-संख्या कुल ९०। छपाई-सफ़ाई और ाग़ज़ अच्छा। मूल्य नहीं लिखा है।

पुस्तक का विषय नाम ही से स्पष्ट है। मीराबाई के वेषय में बहुत-सी सामग्री हिंदी-भाषा की अनेक पुस्तकों में पाई जाती है; किंतु उर्दू में मीरा के संबंध में बहुत ही कम, बल्कि कुछ भी सामग्री न थी। लेखक महोदय ने इस कमी को वास्तव में पूरा किया है। सारी पुस्तक भक्ति-भाव से भरी हुई है। पुस्तक के चारों चित्रों में भी भक्ति-भाव की झलक दिखलाई गई है। पर चित्रों में श्रृंगार की मात्रा अधिक है। पुस्तक की मर्दानी तसवीरें ज़नानेपन से भरपूर हैं।

मेरा ख़याल है कि पुस्तक में यदि केवल मीरा ही के चरित्र और विचार होते, तो पुस्तक केवल १०-१२ पृष्ठों में ही समाप्त हो जाती। परंतु लेखक ने बीच-बीच में फ़ारसी, उर्दू, हिंदी, अँगरेज़ी और संस्कृत-भाषाओं के विचारों की अत्यंत भरमार कर दी है। जैसे, मीरा का एक वाक्य लेखक ने लिखा है—

"श्रीभगवत्-रूपी नीलम को हृदय में जड़ रक्खो।"

इसके साथ ही लेखक की भरती है—

इष्ट सिद्ध प्रभुता सब त्यागें;
केवल श्रीहरिपद अनुरागें।
प्रभुता को सब कोउ चहै, प्रभु को चहै न कोय;
तुलसी जे प्रभु को चहैं, आप हि प्रभुता होय।

निदान इस प्रकार की भरती का ही फल है कि पुस्तक की पृष्ठ-संख्या बहुत बढ़ गई है। इसके सिवा ऐसा प्रतीत होता है, मानो मीरा के जीवन और विचारों पर Comparative Study अर्थात् तुलनात्मक अनुशीलन की पुस्तक रची गई है।

हाँ, भाषा के विषय में यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि लेखक की लिखी हुई उर्दू-भाषा कहीं-कहीं तो फ़ारसी या अरबी-शब्दों के आधार पर इस प्रकार है कि साधारण उर्दू जाननेवाले बेचारों की समझ में ठीक-ठीक नहीं आ सकती, और कहीं ऐसे हिंदी-शब्दों की पुट है कि वहाँ भी केवल उर्दू जाननेवाला विवश ही रहेगा। अस्तु, किसी-किसी स्थान पर अरबी, फ़ारसी तथा हिंदी के शब्दों को इस प्रकार मिलाया गया है, मानो तेल और पानी को मिला दिया है। जैसे—"हालाँकि हम लोग तलज़्ज़ुज़-ज़ायक़ः व शिकमपुरी के पीछे कितने मुतफ़क्किर व मुतरद्दिद व हैरान व अति भोजन के क़बूह में परेशान रहा करते हैं और याद नहीं रखते कि ज़्यादा ख़ोरी बीमारियों की जड़ व मूरिस व कारनों की कारन है।"

अंत में यह कहना उचित प्रतीत होता है कि साधारणतः यह पुस्तक उन समस्त लोगों के लिये, जो मीरा से परिचित नहीं हैं, अच्छी ही है। किंतु पुस्तक में फ़ारसी के शेर अधिक हैं, और उनका अनुवाद भी नहीं दिया गया है, अतः अच्छी फ़ारसी जाननेवालों के लिये ही यह पुस्तक विशेषकर हितकर है। यदि उनमें भक्ति का भाव हो, और काम-काज कुछ न हो, तो फ़ुरसत के समय पढ़ने के लिये बड़ी बढ़िया रचना है।

महेशप्रसाद

× × ×

१०. गुजराती

असहकार (असहयोग)—महात्मा गाँधी के लेखों और व्याख्यानों का संग्रह। प्रकाशक, युगधर्म-कार्यालय, अहमदाबाद। पृष्ठ-संख्या ८१४। छपाई-सफ़ाई अच्छी। मूल्य ३)

कलकत्ते की महासभा में असहयोग का प्रस्ताव पास होने के बाद महात्मा गाँधीजी ने देश-देश में घूमकर असहयोग का झंडा फहराया था। इसमें तब से लेकर उनके जेल जाने तक के व्याख्यानों और लेखों का संग्रह है। इस असहयोग के इतिहास की एक-एक प्रति प्रत्येक देशाभिमानी हिंदू को अपने पास रखनी चाहिए।

छन्नूलाल द्विवेदी

× × ×

११. पत्र-पत्रिकाएँ

प्रणवीर का तिलकांक—संपादक, श्रीराधामोहन गोकुलजी। पृष्ठ-संख्या ५६; छपाई साफ़; काग़ज़ बढ़िया; लोकमान्य के भिन्न-भिन्न चित्र ३८; अन्य नेताओं के चित्र २२; बहुवर्ण आवरण अत्यंत सुंदर एवं चित्ताकर्षक; भावमयी कविताएँ २२; ओजस्वी गद्य-लेख ३७; सजावट सराहनीय; सुपाठ्य एवं संग्रहणीय; मूल्य ॥); वार्षिक मूल्य ६); पता—नागपुर।

माधुरी के पाठकों के लिये 'प्रणवीर' के परिचय की आवश्यकता नहीं। वह हिंदी का एक उत्तम अर्द्ध-साप्ताहिक राष्ट्रीय पत्र है। उसकी नीति स्पष्ट और निर्भीक है। उसकी 'प्रण-वीरता' हिंदी-संसार में काफ़ी प्रसिद्ध है। ऐसे सुंदर और सुसंपादित पत्र का घर-घर में प्रचार होना चाहिए। हम अपने इस सहयोगी की दिन-दिन उन्नति चाहते हैं। इसका सर्वांगसुंदर 'प्रताप'-अंक भी शीघ्र ही निकलनेवाला है।

× × ×

आकाशवाणी का तिलकांक—संपादक और प्रकाशक, लाला जगत्नारायण बी० ए०, मोहनलाल-रोड, लाहौर। पृष्ठ-संख्या १४; चित्र-संख्या ४। छपाई और काग़ज़ आदि साधारणतः अच्छा। उद्देश्य—हिंदू-संगठन तथा हिंदी-प्रचार। वार्षिक मूल्य ४)

इस अंक में लोकमान्य-संबंधी कई अच्छे लेख हैं। इस साप्ताहिक पत्र में माननीय भाई परमानंदजी एम्० ए० प्रायः अपने सामयिक विचार प्रकट किया करते हैं। पहले आप ही इसके संपादक भी थे। संपादन योग्यता-पूर्वक होता है। उपयोगी समाचारों का चुनाव तथा विचार-पूर्ण टिप्पणियाँ प्रशंसनीय होती हैं। हिंदी-प्रेमियों को इसे अपनाना चाहिए।

× × ×

संदेश—संपादक, पं० नेकीराम शर्मा, भिवानी (पंजाब)। 'प्रताप' के आकार के १६ पृष्ठ हैं। छपाई साफ़-सुथरी है। वार्षिक मूल्य ३॥)

इस राष्ट्रीय साप्ताहिक का संपादन भी बड़ी योग्यता से हो रहा है। इसमें पाठकों के पढ़ने के लिये काफ़ी और अच्छा मसाला रहता है। यह प्रति सप्ताह महात्माजी के 'नवजीवन' का उत्तमांश उद्धृत करता है। आशा है नवयुग का शुभ संदेश सुनाकर यह देश में नवीन जागृति का भाव भरता रहेगा। भगवान् इसे उन्नत करें।

× × ×

१२. प्राप्ति-स्वीकार

निम्न-लिखित पुस्तकें, रिपोर्टें और पत्र-पत्रिकाएँ मिल गई हैं। प्रेषक महाशयों को धन्यवाद—

स्वतंत्र-वनिता-विनाश—लेखक, मुंशी पन्नालाल "प्रेमपुंज"। प्रकाशक, महावीर-ग्रंथ-कार्यालय, हिंग बाज़ार, आगरा। पद्य-बद्ध। मूल्य ≈)॥

सती शीलवंती नाटक—लेखक और प्रकाशक स्वामी बुधचंद्रपुरी, श्रीरामेश्वर-पुस्तकालय, उदा का हरीवाला, पो० गवें, शुजाबाद (मुलतान), मूल्य ≈)

आत्मा और मन—अनुवादक, श्रीरामाज्ञा द्विवेदी एम्० ए०। प्रकाशक, श्रीअक्षयकुमार मुखोपाध्याय, महामंडल-प्रेस, काशी। छोटा गुटका-साइज़; मूल्य।)

मेरी भावना—लेखक, पं० जुगलकिशोर मुख़्तार। प्रकाशक, महावीर-ग्रंथ-कार्यालय, आगरा। पद्य-बद्ध 'राष्ट्रीय नित्यपाठ'। मूल्य सदुपयोग।

कवित्तावली—लेखक, जी० आर० 'भक्त' विशारद। प्रकाशक, पं० राजाराम त्रिपाठी, काशी। स्फुट कवित्त। मूल्य ⁀)॥

दिल्ली के फ़िसाद—लेखक, श्रीयुत इंद्र विद्या-वाचस्पति। प्रकाशक, दैनिक 'अर्जुन'-कार्यालय; दिल्ली। प्रामाणिक और निष्पक्ष विवरण। पृष्ठ ४८; मूल्य ≈)

तालुका अस्कोट—ए० वी० प्रेस, रानीखेत, अलमोड़ा। प्रजा पर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन।

श्रीनीलकंठ-स्तोत्र—प्रकाशक, पं० गौरीशंकर मिश्र, राममोहन का हाता, कानपुर। विना मूल्य वितरित।

जल-चिकित्सा का भजन और भावार्थ—लेखक यानी कविताकार और प्रकाशक, कमलाकांत श्रीवास्तव, ग्राम कारा, ज़िला ग़ाज़ीपुर। मूल्य ⁀)॥

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रतिमास नई और उत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "अपना और पराया", ठाकुर युगुलकिशोर नारायणसिंह द्वारा अनुवादित उपन्यास। मूल्य ।)

(२) "हृदय-श्मशान", पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी द्वारा अनुवादित उपन्यास। मूल्य ।=)

(३) "बलिदान", गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा अनुवादित उपन्यास। द्वितीय संस्करण। मूल्य २)

(४) "साहित्य-सिद्धांत", विद्यामार्तंड पंडित सीताराम शास्त्री-लिखित। मूल्य २)

(५) "गीता-विमर्श", श्री० नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ (जेल-तीर्थ)-लिखित। मूल्य १॥)

(६) "विधवोद्वाह-मीमांसा", पं० बदरीदत्त जोशी-लिखित। मूल्य १।)

(७) "सती-सारंधा", रसिकेंद्र-लिखित सचित्र ऐतिहासिक खंड-काव्य। मूल्य ॥=)

(८) "व्यंग-कौतुक", डॉक्टर रवींद्रनाथ ठाकुर-लिखित हास्यरस-पूर्ण निबंधावली। मूल्य ॥)

(९) "मेघदूत", पंडित केशवप्रसाद मिश्र-कृत पद्य-बद्ध सरल सरस अनुवाद। मूल्य ।)

(१०) "प्राणनाथ", श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव द्वारा अनुवादित उपन्यास। मूल्य २)

(११) "गल्पांजलि", पं० मोहनलाल नेहरू-लिखित कहानियाँ। मूल्य १।)

(१२) "तरुण तापसी", श्रीपंडित व्रजनाथ भट्टाचार्य-रचित उपन्यास। मूल्य १)

(१३) "ध्रुवतपस्या", श्रीरामनारायणसिंह जायसवाल-लिखित नाटक। मूल्य ॥)

(१४) "वैदिक धर्म और इस्लाम", श्री० पं० शिवशर्माजी उपदेशक-लिखित। मूल्य १)

(१५) "सम्राट् अशोक", श्रीयुत संपूर्णानंद-लिखित गवेषणा-पूर्ण जीवनी। मूल्य १)

(१६) "उमासुंदरी", श्रीमती शैलकुमारी-लिखित उपन्यास। मूल्य ॥।)

(१७) "मुक्ति का मार्ग", श्रीयुत बाबू दयाचंद्रजी गोयलीय, बी० ए०-लिखित। तृतीय संस्करण। मूल्य ।≈)

(१८) "वीरांगना वीरा", ठा० भगवतीसिंह विशारद-लिखित पद्यबद्ध ऐतिहासिक खंड-काव्य। मूल्य ॥)

(१९) "शांता", पंडित रामकिशोर मालवीय-लिखित उपन्यास। मूल्य ॥।)

(२०) "ग्राम-संस्था", शंकरराव जोशी (नायब-अमीन)-लिखित ग्राम-सुधार-योजना। मूल्य १)

विविध विषय

१. हिंदू-संगठन कौन कर सकता है ?

हर शहर, हर ज़िले और हर प्रांत के लोग देश-भर में हिंदुओं पर हमले होने का हाल सुन-सुनकर हैरान हैं। किसी को कोई ऐसा उपाय नहीं सूझता, जिसके द्वारा धर्मांध; असहिष्णु, उन्मत्तप्राय मुसलमान गुंडों के हृदय से हिंसा का भाव दूर किया जाय, और वे अकारण या अल्प और कल्पित कारणों से उत्तेजित होकर हिंदू-बच्चों और असहाय अबलाओं तक की हत्या के लिये हाथ उठाते हिचकें, हिंदुओं को हानि पहुँचाना और उचित अनुचित सभी उपायों से उनका ह्रास करना अपना धार्मिक कर्तव्य न समझें। इसमें संदेह नहीं कि भारत की भलाई और स्वतंत्र होने में मुख्य बाधा है हिंदू मुसलमानों का परस्पर द्वेष। इस सर्वसम्मत सत्य को, समझदार मुसलमान नेता भी उतना ही समझते हैं, जितना कि हिंदू-समाज के नेता लोग। परंतु केवल समझने या मान लेने से ही कुछ लाभ नहीं हो सकता। उसके लिये हृदय से, तत्परता के साथ, अपनी बड़ी-से-बड़ी हानि पर ध्यान न देकर—ज़बर्दस्त-से-ज़बर्दस्त विरोध और बाधा से विचलित न होकर—प्रयत्न करने से ही सफलता मिल सकती है। ऐसी चेष्टा न करके केवल ज़बानी जमाख़र्च करते रहने से, मेल-मोहब्बत की हिमायत करते हुए सुंदर सरस भाषा में लेक्चर देने से यह दोनों जातियों के बीच की गहरी खाई नहीं पट सकती। दिल्ली में हमारे इस कथन की सचाई अच्छी तरह प्रकट हो चुकी है। दंगे के पहले मेल के लिये होनेवाली सभाओं में उपस्थित वक्ता समझते थे कि उनके व्याख्यानों का गहरा असर पड़ रहा है, अब दोनों जातियों के संघर्ष की आशंका नहीं रह गई। उधर श्रोताओं में भी अधिकांश हिंदू और मुसलमान सज्जन हिंदू-मुसलमानों का मेल मज़बूत हुआ मानकर प्रसन्न हो रहे थे। मगर हुआ क्या? एक ही चिनगारी से वह भीषण आग लगी कि उसमें अनेक परिवारों को धन-जन-जीवन की आहुति देने के लिये लाचार होना पड़ा। अगर मुसलमानों के माननीय स्थानीय नेता लोग शुरू से ही अपनी जाति में धार्मिक उत्तेजना न बढ़ने देने की कोशिश में जान लड़ा देते, ऐसी उत्तेजना फैलानेवाले धर्मांध मौलवियों-मुल्लाओं-फ़क़ीरों को समझाते, रोकते, या दोनों जातियों के मुखिया लोगों को एकत्र कर आपस की शिकायतें रफ़ा करके दोनों दलों के दिल सफ़ा कर देते, या अंत को, अकृतकार्य होने की हालत में, दफ़ा १४४ जारी कराकर ऐसी विद्वेष

बढ़ानेवाली गुप्त सभाएँ बंद कर देते, तो कुछ अनर्थ न हो पाता।

अस्तु। एक दिल्ली क्या, जहाँ-जहाँ ऐसे दंगे हुए हैं, वहाँ लीडर लोग पीछे से पहुँचे हैं; सो भी हिंदू तो इने-ही-गिने। मुसलमान नेताओं ने पीछे से जाकर हिंदुओं से हमदर्दी दिखाना, सताए गए लोगों की सहायता करना और अपराधियों को लानत-मलामत करना अपना फ़र्ज़ नहीं समझा। वे उलटे यह कोशिश करने लगे कि मुसलमानों के अत्याचारों पर परदा डालकर हिंदुओं को ही दोषी ठहरावें। उन्होंने यही आवाज़ ऊँची की कि ग़रीब मुसलमान ही मारे गए, लुटे और अपमानित हुए हैं। इतना ही नहीं, अपराधी मुसलमानों को न्यायालय के दंड से बचाने की कोशिश की, चंदा जमा किया, और इस प्रकार दोनों जातियों के द्वेष को स्थायी बनाने लगे। मुसलमान नेताओं के इसी अनुचित पक्षपात-पूर्ण व्यवहार ने दुष्ट-प्रकृति नीच गुंडों को प्रोत्साहन दिया। अब बढ़ते-बढ़ते यह रोग इतना बढ़ गया है कि देश-भर में—यहाँ तक कि देशी रियासतों में भी—अब—धर्म के नाम पर!—गुंडों के गरोह हमले करते हैं, हिंदुओं की संपत्ति लूटते हैं, निहत्थे राहगीरों की हत्या करते नहीं हिचकते, स्त्रियों के धर्म पर भी हाथ साफ़ करते हैं। हिंदू लोग हाय-हाय करके रह जाते हैं।

मुसलमान नेताओं से सहायता और प्रतिकार की आशा तो अवश्य ही दुराशा-मात्र है। अतएव हिंदुओं ही को इस आफ़त से अपनी रक्षा करने के लिये तैयार होना पड़ेगा। चाहे जब हिंदुओं को होश हो, अपना संगठन उन्हें करना ही पड़ेगा। आत्मरक्षा का और कोई अमोघ उपाय ही नहीं है। आज हिंदू-जाति में अशांति बढ़ती जा रही है, अपने ऊपर होनेवाले अकारण आक्रमण और अत्याचार उसे असह्य हो उठे हैं। जाति का अंतस्तल इन आघातों से तिलमिला उठा है। आरंभ में अकस्मात् आक्रमण हुआ। असावधान हिंदू-जाति के अगणित अंगोपांग अचेतन और अस्तव्यस्त हो रहे थे, अतः पहले तो वह आश्चर्य से अभिभूत-सी, अवाक् हो रही। उसके बाद जब लगातार लात पर घूसे पड़ने लगे, वार पर वार होने लगे, तब वह सँभलकर उठ बैठी, और अब आत्मरक्षा के लिये प्रस्तुत हो रही है। किंतु उसकी यह तैयारी बहुत ही शिथिल गति से हो रही है। और, वह भी अधूरी देख पड़ती है। अतः हमारा यह प्रस्ताव है कि धुरंधर नेताओं की प्रतीक्षा न करके समस्त देश में प्रत्येक प्रांत के अंतर्गत बड़े-बड़े नगरों और बड़ी बस्तियों में ज़ोर-शोर के साथ वहाँ के स्थानीय शिक्षित युवक लोग संगठित होकर सभी हिंदू-जातियों का संगठन शुरू कर दें। नीच जातियों के बालकों को अधिक स्नेह और अपनपौ का पात्र समझना ही इसकी सफलता की कुंजी है। उनका संगठन उच्च जातियों को अधिकाधिक सुरक्षित स्थिति में उपस्थित करता जायगा। इस संगठन के काम में अधिक आडंबर अथवा अर्थव्यय आवश्यक न होगा। यदि कोई और जगह न सुलभ हो, तो स्थानीय युवकों को किसी बड़े देवस्थान में ही एकत्र होकर अपना काम शुरू करना चाहिए। हमारी राय में देव-स्थान, नदी-तट या ऐसे ही किसी धार्मिक सम्मिलन के सार्वजनिक स्थान का उपयोग अधिक अच्छा होगा। पहले ऐसा नियम हो कि अंततः आठवें दिन अवश्य सब सदस्य सम्मिलित हों। इसके अलावा यदि हो सके, तो कोई विद्वान् सज्जन कुछ देर पौराणिक, ऐतिहासिक कथाएँ सुनाते हुए तुलनात्मक दृष्टि से पहले की अच्छी स्थिति और अच्छे गुणों से प्राप्त गौरव का बखान करके वर्तमान कमियों और कमज़ोरियों की ओर ध्यान दिलाने के साथ ही उन्हें दूर करने का उपदेश करें। हिंदू-धर्म के ऐसे अंगों या अंशों का महत्त्व भी बतलावें, जिनके बारे में किसी संप्रदाय का मत-भेद नहीं है। जैसे—सत्य, दया, स्वाभिमान, परोपकार की प्रवृत्ति, ब्रह्मचर्य-पालन, चोरी-जुआ-नशे आदि का त्याग, अथवा लोभ, क्रोध, मोह, द्रोह, दग़ा आदि दुर्भावों से अरुचि आदि। ऐसी टोलियों को कसरत का अभ्यास अवश्यमेव करना चाहिए। अखाड़े बनाकर आपस में कुश्ती की कला भी सीखना उपयोगी होगा। सर्वत्र सभी सदस्यों को नियमित रूप से नित्य अवकाश और इच्छा के अनुसार परिमाण नियत करके कसरत करनी पड़े। लाठी आदि सीखने-सिखलाने का प्रबंध हो, तो और भी अच्छा। इन मंडलियों का कोई एक ही नाम चुन लिया जाय। इन मंडलियों में प्रौढ़ और वृद्ध भी सम्मिलित हो सकते हैं। वे अपने अनुभव, उपदेश और आदर्श के द्वारा युवक सदस्यों को बहुत लाभ पहुँचा सकेंगे; उनके स्वाभिमान-जनित स्वाभाविक जोश को सुसंचालित करेंगे। युवक

लोगों का दल अपने संगठित समूह के द्वारा बस्ती को दुष्टों के आक्रमण से बचावेगा; दुखी, विपद्-ग्रस्त, असहाय, अत्याचार-पीड़ित नर-नारियों की सहायता करेगा; मेले, उत्सव आदि के समय जनता का नियंत्रण और सुश्रृंखला की रक्षा करेगा; आग लगने पर या और ऐसी ही आकस्मिक दुर्घटना होने पर जान-माल की रक्षा करेगा। कहाँ तक गिनावें, इस युवक-दल के द्वारा गाँवों का सुधार और किसानों का उद्धार भी सहजसाध्य हो सकेगा। आशा है, जाति के उपकार और देश के उद्धार के लिये जिनके हृदय में उत्साह का सागर उमड़ता रहता है, जिनकी अजेय शक्ति और अदम्य इच्छा सब कुछ कर सकती है, वे देश और जाति के एक-मात्र आशास्थल तेजस्वी लाल अवश्य ही इस ओर जुटकर सच्ची लगन के साथ जाति को जगाकर जानदार, शानदार बनाकर ही छोड़ेंगे।

× × ×

२. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

देहरादून के अधिवेशन की सफलता के लिये अभी से अच्छी तरह उद्योग किया जा रहा है। ता० ७, ८, ९ नवंबर को, तीन दिन, इस अधिवेशन का उत्सव होगा। सभापति-पद के लिये इस बार कदाचित् अधिक सोच-विचार करने की ज़रूरत न होगी। पं० राधाचरणजी गोस्वामी, पं० गौरीशंकर-हीराचंद्रजी ओझा, पं० अमृतलालजी चक्रवर्ती, भाई परमानंदजी एम्० ए० और पं० माधवरावजी सप्रे बी० ए०, ये पाँच नाम हम भी नियमानुसार पेश करते हैं। इनमें यथाक्रम पूर्ववर्ती नाम के लिये हम अधिक ज़ोर देंगे। ये पाँचों सज्जन विद्वान्, वयोवृद्ध, साहित्य-सेवी और सद्गुणों से अलंकृत हैं। अस्तु। स्वागतकारिणी ने सभी हिंदी-प्रेमियों से पधारने के लिये आग्रह करते हुए पत्रों में निमंत्रण-पत्र प्रकाशित कराया है। आशा है, उनका श्रद्धा और स्नेह-पूर्ण आमंत्रण अवश्य अपना असर करेगा, और प्रतिनिधियों तथा दर्शकों की उपस्थिति अच्छी संख्या में हो जायगी। सम्मेलन को अधिक साहित्यिक और रोचक बनाने के विषय में तदर्थ नियुक्त समिति के सदस्यों की सम्मति पर इस बार अमल करके देखना चाहिए। उसके अनुसार कार्य-क्रम रखने से जैसी सफलता अथवा असफलता हो, आइंदा उसी के अनुरूप परिवर्तन किया जाय। हमारी राय में तो प्रस्तावों की संख्या नियत करने की अपेक्षा इस पर ध्यान देना अच्छा होगा कि कौन प्रस्ताव आवश्यक, समयोपयोगी और कार्य-रूप में परिणत किया जा सकता है। उन प्रस्तावों के उपस्थित करने, समर्थन और अनुमोदन करने के भाषणों का समय भी घंटों-मिनटों में नियत करना व्यर्थ है। यह काम ऐसे आदमियों को सौंपना ही यथेष्ट होगा, जो अवांतर विषयों में न भटककर अपने वक्तव्य को परिमित प्रभावशाली शब्दों में समझा सकें। अस्तु। अंत में हम अपने पाठकों से यह प्रार्थना करते हैं कि हिंदी-प्रेमी-मात्र का कर्तव्य समझकर वे इस राष्ट्रभाषा के महोत्सव में अवश्य उपस्थित और सम्मिलित हों। इस बार उत्साही कार्यकर्ता लोग मनोरंजन का भी यथेष्ट प्रबंध करेंगे। कवि-सम्मेलन, अभिनय, पत्र-प्रदर्शिनी आदि देख-सुनकर लाभ उठाने का यह अच्छा अवसर है।—इतना लिख चुकने पर हमें माननीय पं० राधाचरणजी गोस्वामी का एक लेख किसी पत्र में देख पड़ा, जिसमें गोस्वामीजी ने यह लिखा है कि सभापति-पद के योग्य अन्यान्य अनेक विद्वान् सज्जन मौजूद हैं। उन्हें ही सभापति बनाना अधिक उपयोगी होगा। इसके सिवा आपने यह भी लिखा है कि उनमें वयोवृद्ध होने के अतिरिक्त और कोई विशेषता नहीं है। इस पर हमारा निवेदन यही है कि गोस्वामीजी का ऐसा लिखना शिष्टाचार की दृष्टि से भले ही उचित हो, किंतु वस्तु-स्थिति उसका समर्थन नहीं करती। जिन आदरणीय पुरुषों का उल्लेख गोस्वामीजी ने किया है, वे निस्संदेह इस पद और सम्मान के अधिकारी हैं। किंतु गोस्वामीजी की आयु अधिक हो चुकी है; स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। ईश्वर उन्हें चिरायु करें, परंतु जीवन का कोई निश्चय नहीं। अतएव इस बार गोस्वामीजी को ही सभापति बनाना उचित और आवश्यक प्रतीत होता है। हमारी तो यही सम्मति है।

इसी संबंध में पूज्य पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी ने भी एक पत्र प्रकाशित करने के लिये हमारे पास भेजा है। वह पत्र प्रायः सभी हिंदी-पत्रों में छप चुका है। चतुर्वेदीजी भी गोस्वामीजी को ही सभापति बनाने के लिये अनुरोध करते हैं। आशा है, आपकी सम्मति के महत्त्व पर ध्यान देकर हिंदी-संसार अवश्य अपना कर्तव्य निर्धारित करेगा। यदि हिंदी-प्रेमियों की अधिकतर सम्मतियाँ गोस्वामीजी के पक्ष में होंगी, तो स्थायी समिति अथवा स्वागतकारिणी समिति उसके अनुसार ही कार्य करेगी।

× × ×

३. भारत के किसान

यह बात कुछ छिपी हुई नहीं है कि प्रत्येक राष्ट्र की जान वह वर्ग है, जो अन्न उत्पन्न करता है। उसके उपरांत उस दल का महत्त्व है, जिसके सहयोग और सहायता से शिल्प, वाणिज्य, व्यापार आदि का काम चलता है, और जिसे मज़दूर-दल कहते हैं। ये दोनों दल, इतने महत्त्व के अधिकारी होकर भी, अब तक प्रायः सभी सभ्य देशों में नीची श्रेणी के माने जाते थे; और शिक्षित-वर्ग, धनीवर्ग, ज़मींदार लोग, पूँजीपति लोग, सौदागर-बैपारी आदि, सभी इन्हें तुच्छ दृष्टि से देखते थे। परंतु जब से रूस में बोलशेविक लोगों का राज्य हुआ, उन्होंने संसार को कार्यतः यह दिखला दिया कि किसान और मज़दूर तुच्छ नहीं हैं, उनका महत्त्व शिक्षितों और धनियों से कहीं अधिक है, उनके असंतोष की अग्नि प्रज्वलित होकर शिक्षितों की अवहेला को, अधिकारियों के अत्याचार को, धनियों की धाँधली को, यहाँ तक कि रूस के ज़ार की-सी प्रबल बद्धमूल महाशक्ति को तृण के समान भस्म कर सकती है, तब से प्रत्येक देश में हलचल मच रही है। एक ओर प्रत्येक देश के किसान और मज़दूर—जो अब तक अपने रूप और अपनी शक्ति को भूलकर अपने को असहाय समझे हुए थे—अपने अभाव-अभियोगों पर असंतोष प्रकट करने लगे हैं, अत्याचारों का विरोध करने लगे हैं, अपने अधिकारों के समर्थन के लिये अग्रसर हो रहे हैं; और दूसरी ओर वे लोग, जो अब तक मनमानी करने में अभ्यस्त थे, अपने भविष्य को अंधकारमय देखकर इस नवोत्थित शक्ति को दबाने और कुचलने का आयोजन करते देख पड़ते हैं। कहीं-कहीं इस उपाय से प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सका है, और अब प्रभुओं की मंडली दबकर, थोड़ी-बहुत रियायत करके, किसानों और मज़दूरों को शांत करने की कोशिश करने लगी है। किंतु भारत में अभी किसान और मज़दूर उसी पहले की पोच परिस्थिति में पड़े पिस रहे हैं। यहाँ इन लोगों के हृदयों में असंतोष की लहर तो उठती देख पड़ने लगी है, मगर इनकी शक्ति उसी तरह बिखरी पड़ी है, और इसी कारण इनको सिर उठाते ही कुचल डालने की कुचेष्टा ज़ोरों से जारी है। यहाँ योरप के समान किसानों और मज़दूरों में शिक्षा का प्रचार नहीं हो सका है, इन लोगों के पक्ष में खड़े होकर इनका संगठन और समर्थन करनेवाले सच्चे स्वार्थ-त्यागी नेता नहीं नज़र आते। जो कहीं कोई किसानों और मज़दूरों का मुखिया खड़ा भी हुआ, तो उसके बारे में, अधिकतर, यही सुना गया कि उसका उद्देश्य इन बेचारों को मूड़ना, नाम कमाना या लीडर बन जाना ही है। ऐसे नेताओं से किसानों और मज़दूरों को लाभ के बदले हानि ही उठानी पड़ती है। अगर देश के सच्चे सेवकों में से दो-एक स्वार्थ-त्यागी सज्जन (जैसे बंगाल के पी० सी० राय, मि० एंड्रूज़, मालवीयजी, श्रीयुत राजगोपालाचारीजी, बाबू राजेंद्रप्रसादजी आदि) इन दोनों वर्गों के संगठन और सहायता को ही अपने जीवन का एक-मात्र कार्य निश्चित कर लें, देश-भर में दौरा करके, इनकी दुर्दशा, दुर्गति और कमी तथा कमज़ोरी के कारणों का अध्ययन-अनुशीलन कर डालें, और फिर हरएक प्रकार से उसका प्रतिकार करते रहें, तो बहुत शीघ्र भारत के किसान और मज़दूर अपने अधिकारों को जानकर उनकी रक्षा के लिये अटल उद्योग करना सीख जायँगे, और धीरे-धीरे अपनी दशा सुधारते हुए आप अपना उद्धार कर सकेंगे। हर्ष की बात है कि इस ओर सच्चे देश-सेवकों की दृष्टि आकृष्ट होती जाती है, और कुछ काम भी शुरू हो गया है। इस समय पहला काम यह है कि आगरा-प्रांत के किसानों के संबंध में जो क़ानून बननेवाला है, जिसमें किसानों के बचे-खुचे अधिकार भी छीन लेने की चेष्टा स्पष्ट देख पड़ती है, उसको न बनने देने की चेष्टा में सारी शक्ति लगा दी जाय। इस बारे में पं० इंद्रनारायणजी द्विवेदी ने एक लेख सब पत्रों में छपाया है। आपके उस लेख से विदित होता है कि सन् १९०१ में क़ानून-लगान नाम से जो क़ानून पास किया गया था, उसके द्वारा बेचारे ग़रीब किसान अपने पहले के हक़ों से भी वंचित कर दिए गए। धर्मशास्त्र के अनुसार प्राप्त उत्तराधिकार का स्वत्व किसानों से छीन लिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि आज हज़ारों किसान-कुटुंब कंगाल बन गए हैं। इस क़ानून के कुफल का अनुभव होने पर कुछ साल पहले उसके सुधारने के उद्देश्य से एक मसविदा तैयार किया गया भी था; किंतु वह जहाँ-का-तहाँ दबा पड़ा रहा। इधर सरकार की कृपा-दृष्टि किसानों पर नहीं नज़र आती। साथ ही ज़मींदार कौंसिलरों की संख्या कौंसिल में अधिक हो गई है। ऐसे अवसर पर वही मसविदा कौंसिल में पेश हुआ,

जिस पर सरकार ने एक कमेटी इस उद्देश्य से बनाई कि वह उस बिल पर विचार करे, और रिपोर्ट लिखे। कमेटी ने किसानों के हित की सर्वथा उपेक्षा नहीं की, और इसके लिये किसान उसके कृतज्ञ होंगे। मगर इसमें संदेह नहीं कि इस प्रांत की सरकार का दृष्टिकोण हमेशा से किसानों के लिये हानिकर ही रहा है, सरकार बराबर क़ानून बनाकर किसानों के हाथ-पैर जकड़ती आ रही है। जिस तरह सन् १९०० में सरकार ने अपने वादे के ख़िलाफ़, किसानों के हित की रक्षा की आड़ में, ज़मींदारों के ही अधिकार अधिक मज़बूत बनाए थे, उसी तरह इस बार भी वह प्रस्तावित क़ानून के द्वारा किसान-पक्ष को निर्बल करती देख पड़ती है। इस विषय में कौंसिल के ज़मींदार मेंबरों से अधिक आशा करना भूल है। कारण, स्वार्थ का समर्थन छोड़कर परोपकार का पक्ष लेना कठिन ही नहीं, असंभव है। सरकारी मेंबर या सरकारी अधिकारी किसानों की भलाई भला क्यों करने लगे। अतएव इस समय देश की सभी पार्टियों के मुखियों को मिलकर किसानों का पक्ष लेना चाहिए। इस मामले में तो सभी दलों के देश-सेवक दो मत नहीं रख सकते। सहयोगी, असहयोगी, स्वराज्य-दल, स्वतंत्र-दल, हिंदू-सदस्य, मुसलमान-सदस्य, सभी अपने अन्नदाता किसानों को आगामी आपत्ति के आक्रमण से बचाकर पुण्य के भागी बनें, और अपने ऊपर लदे हुए किसानों के ऋण का बोझ कुछ तो उतार डालें। हिंदू-महासभा और किसान-संघ के कार्यकर्ता भी कर्तव्य-पालन के लिये प्रस्तुत हो जायँ। किसानों और मज़दूरों के संबंध में अभी बहुत कुछ लिखना है। फिर लिखेंगे।

× × ×

४. उच्छृंखलता से कुछ लाभ नहीं हो सकता

यह ज़माना है विप्लव और विद्रोह का। इस समय का रुख़ है पुराने सभी तरह के (सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, *जातीय और आचार-विचार के*) *बंधनों* अर्थात् नियमों को तोड़ डालने और इच्छानुसार चलने की स्वतंत्रता के समर्थन और अभिनंदन की ओर। पूर्वयुग में प्रचलित हुई सभी बातों में असंतोष प्रकट किया जा रहा है। यह विद्रोह बहुत दिन से छिपे-छिपे अपना अधिकार विस्तृत और सुदृढ़ बना रहा था, कुछ आज ही उत्पन्न होकर उसने यह शक्ति नहीं प्राप्त कर ली है। पहले पुराने ख़यालात के लोगों का प्रभाव प्रबल होने के कारण नई पीढ़ी अगर विद्रोह के मोह में पड़कर कुछ प्रचलित प्रथाओं के प्रतिकूल करती भी थी, तो चुरा छिपाकर। कारण, उस समय भी समाज में अधिकांश संख्या पुरानी परिपाटी के समर्थकों की ही थी, और समाज की शक्ति इतनी बची हुई थी कि वह नियम-विरुद्ध चलनेवालों को दंड देने का दम रखती थी। धीरे-धीरे पुरानी पीढ़ी परलोक पधारती गई, और अब उसके समसामयिक मनुष्य इने-गिने जीवित होंगे। यही कारण है कि अब नव्य दल के स्वतंत्रता-प्रिय सज्जन पूर्वजों के पापों का प्रायश्चित्त पूर्ण रूप से कर रहे हैं, खुलासा हिंदुओं के आचार-विचारों को बुरा बतलाते हैं, उनके समर्थकों को केवल कुसंस्काराच्छन्न कहकर ही संतुष्ट नहीं होते, उन्हें देश के अधःपतन का मूल, स्वार्थी, पाखंडी आदि न-जाने क्या-क्या कह-सुनकर अपनी न्याय-निष्ठा ज़ाहिर करते हैं। किसी-किसी मनचले का मंतव्य यह है कि भारतवासी-मात्र जब तक खाने-पहनने का परहेज़ न छोड़ेंगे, तब तक परस्पर प्रेम, सहानुभूति और *संगठन न होगा, और उसके हुए बिना स्वराज्य* पास न फटकेगा; इसलिये, आओ, सब हिंदू-जातियाँ परस्पर का पकाया पकान्न, पायस, पूरी, रोटी-दाल एक पंगत में बैठकर खाओ, और देश का उद्धार करने में हाथ बँटाओ। इस दल में जो सज्जन और आगे बढ़ गए हैं, और अधिक गरम हैं, जाति को एकदम सुसंस्कारों से संपन्न बनाकर अन्य जातियों के आगे द्रुत उन्नतिशील एवं सर्वोत्कृष्ट सभ्यताभिमानिनी प्रमाणित करना चाहते हैं, वे मुसलमान-भाई के साथ दस्तरख़ान पर हाथ साफ़ करके ख़ानदान की शान दूनी करने में तनिक नहीं हिचकते; बल्कि इस सहभोज के समर्थक होने का गर्व करते हैं। ख़ैर, यह तो अपनी-अपनी समझ और रीति-नीति है। जिस हिंदू का जी भरे कि इस सहभोज की ज़रूरत स्वराज्य-साधना में अनिवार्य है, और इसके विरोधी आचार-विचार पोच पाखंड की विडंबना और अज्ञान-कृत आडंबर-मात्र हैं, वह खुशी से सबके हाथ की रोटी-दाल, मुसलमान के साथ भी, खा-पी सकता है। मगर इस संकर-भोज के समर्थक दल को यह अधिकार कदापि नहीं है कि वह सभी लोगों से यह काम कराने की कुचेष्टा करे, या विरोधियों पर वाग्बाण-वर्षा करता रहे। हम यह झूठी तोहमत नहीं लगा रहे हैं। असहयोगियों के जेल जाने के ज़माने

में कई असहयोगी हिंदू मुसलमान-भाइयों के साथ एक ही पात्र में खुलासा खाते-पीते रहे हैं; और सहयोगी "आज" में उसके रिपोर्टर ने काकिनाडा-कांग्रेस के वर्णन में यह लिखा था कि वहाँ दोनों ओर की पंगतों में लोग बैठे खा रहे थे, और अलीबंधु बीच की राह में इधर-उधर टहल रहे थे। इतना लिखकर उसने आशा प्रकट की थी कि आगामी सहभोजों में यह कमी दूर हो जायगी, अर्थात् सब हिंदू-मुसलमान एक ही पंगत में बैठे मज़े से माल-रोटी चक्खेंगे।

इस समय हम यह नोट लिखने बैठे हैं बंगाल की एक हिंदू-सभा में पास हुए अनुचित प्रस्तावों के विरोध में। वहाँ उपस्थित सदस्यों की अनधिकार-चेष्टा अवश्यमेव खेदजनक है। हिंदू-सभा एक ऐसी संस्था होनी चाहिए, जिसको हर जाति और संप्रदाय के हिंदू अपनी चीज़ समझ सकें। हिंदू-सभा में किसी ऐसे प्रस्ताव को पेश ही न करना चाहिए, जिसका विरोध किसी जाति और संप्रदाय की ओर से हो सके। हिंदू-सभा में आर्य, सनातनी, ब्राह्मो, बौद्ध, जैन आदि मतों के माननेवाले सभी हिंदू शरीक होने चाहिए। अगर कोई ब्राह्मो या आर्य-भाई उसमें मूर्ति-पूजा के खंडन का मंडन करनेवाला प्रस्ताव उपस्थित करना चाहे, तो उसकी भारी भूल होगी। हिंदू-सभा के काम और प्रस्ताव तो केवल देश-हितकर अनुष्ठानों से संबंध रक्खें, तभी अच्छा होगा। यहाँ पर कहा जायगा कि अस्पृश्यता को दूर करना भी तो देश-हितकर कार्य है। इसको उठानेवाले और इसका प्रचार करनेवाले तो स्वयं महात्माजी हैं। अतएव अस्पृश्यता-निवारण अवश्य हिंदू-सभा के द्वारा समर्थनीय है। इसके उत्तर में हमारा नम्र निवेदन यही है कि अस्पृश्यता-निवारण, पतित-परावर्तन और नीच-ऊँच के घृणा-प्रचारक अभिमान-मूलक विचारों के अत्याचारों का विरोध तो इस समय सर्वसम्मत सिद्धांत हो चुके हैं। हिंदू-महासभा भी अस्पृश्यता-निवारण का प्रस्ताव पास कर चुकी है, और उसके अनुसार काम करने में किसी ओर से किसी की विरोध-वाणी न सुनाई देगी। मगर सिराजगंज में अभी जो हिंदू-सम्मेलन हुआ था, उसमें कुछ लोगों ने ज़बरदस्ती उन जातियों के हाथ से अन्न-जल लेकर खाना-पीना प्रचलित करने की चेष्टा की थी, जिन्हें अस्पृश्य माना जाता था। उन जातियों की वह शरीर और प्रकृति की गंदगी क्या इतनी जल्दी जाती रही, जिसके कारण उनकी जाति अस्पृश्य मानी गई थी? यह सहभोज का भ्रष्टाचार भी एक आजकल की धाँधली है। हिंदू-महासभा के अधिवेशन में, प्रयागराज के बीच, जो प्रस्ताव पास हुआ था, वह इस भ्रष्टाचार का समर्थन नहीं करता। उक्त प्रस्ताव में स्पष्ट कर दिया गया था कि "अंत्यजों को जनेऊ देना, वेद पढ़ाना और उनके साथ सहभोज करना सनातनधर्मानुसार शास्त्र और लोक-मर्यादा के विरुद्ध है। इसलिये हिंदू-महासभा ऐसे प्रयत्नों का अनुमोदन नहीं करती, और इस बात की घोषणा करती है कि हिंदू-महासभा के नाम या अधिकार से कोई सज्जन ऐसे प्रयत्न न करें।" बस, हमारा भी यही कथन है कि अंत्यजों की शुद्धि और उनके साथ खाना-पीना जो आवश्यक ही जान पड़े, तो वह आर्य-समाज या ब्राह्म-समाज के द्वारा किया जा सकता है; किंतु हिंदू-सम्मेलन या हिंदू-सभा के नाम से कभी नहीं। ऐसा भ्रष्टाचार केवल सिराजगंज ही में नहीं, अन्य प्रांतों में भी, ख़ासकर पंजाब में, बढ़ता जा रहा है। जो लोग अभी सनातन-धर्म के आचार-विचार मानते हैं, धार्मिक नियमों के पालन को प्राणों से प्रिय समझते हैं, उनको इस भ्रष्टाचार के प्रचार से कष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। हिंदू-सम्मेलन या हिंदू-सभा के ऐसे अनुचित आचरण का समर्थन वे कदापि नहीं कर सकते। सहभोज के साथ बेरोक-टोक सभी विधवाओं के पुनर्विवाह का प्रचलन भी हिंदू-सभा के द्वारा समर्थन पाने लायक़ विषय नहीं है। बंगाल-प्रांत की हिंदू-सभा ने यद्यपि ऐसे रोटी-बेटी के भ्रष्टाचार का प्रस्ताव स्वयं पास नहीं किया, तथापि हिंदू-सम्मेलन के बहुव्यापक नाम से किए गए ऐसे प्रस्तावों का विरोध भी न करके यह आशंका उत्पन्न कर दी है कि इसी तरह विरोध की कमी और कमज़ोरी देखकर भविष्य में वह भी न कहीं ऐसे भ्रष्टाचार-प्रचार-विचार को आचरणीय मान बैठे! इस आशंका का प्रबल कारण यह है कि उक्त सम्मेलन में इस प्रकार के प्रस्तावों को पास करने की ज़बरदस्ती और उसे तत्काल कार्य-रूप में परिणत कर दिखाने की बहादुरी में अगुआ उसी दल के लोग थे, जिसके हाथ में वहाँ की हिंदू-सभा की बागडोर है। सुनते हैं, गत ३१ अगस्त को बंगाल-प्रांत की हिंदू-सभा (कार्यकारिणी समिति) का भी एक अधिवेशन हुआ था। उसमें कुछ

वैतनिक प्रचारक रखकर १—अस्पृश्यों का जल पीना, और २—विधवाओं का विवाह करना समाज में प्रचलित करना—इन दो बातों का प्रचार करने का निश्चय किया गया है। अगर यह समाचार सच है, तो वहाँ की हिंदू-आचार-विचार माननेवाली मंडली का प्रथम कर्तव्य है कि वह इस अनुचित अधिकार-बहिर्गत दुस्साहस का ज़ोरदार विरोध करके हिंदू-सभा की सार्वजनिकता को बचावे। यदि वहाँ की हिंदू-सभा दल-विशेष के हाथ की कठपुतली बन गई, तो विरोध की बाधा बिखरी हुई जातीय शक्ति के सूत्रों को असंगठित रहने के कारण छिन्न-भिन्न करती हुई खिन्न परिस्थिति के भिन्न-भिन्न शोचनीय दृश्य दिखाना बंद न होने देगी। अतएव ऐसी उच्छृंखलता, जिससे कुछ लाभ नहीं—हानि-ही हानि होने की संभावना है, सार्वजनिक सभा के भीतर कदापि प्रश्रय पाने के योग्य नहीं है। व्यक्तिगत रूप से कोई कुछ करे (कारण, आज समाज में पुरस्कार या तिरस्कार की शक्ति नहीं रह गई है); मगर समस्त समाज में, हिंदू-महासभा के नाम से, धर्म-विरुद्ध, नियम-विरुद्ध एकाकार करके संकर-प्रथा प्रचलित करने का किसी को अधिकार नहीं है। हम यह बात उसी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये कह रहे हैं, जिसके आधार पर हमारे भाई ऐसे काम कर रहे हैं, जिन्हें विशृंखला पैदा करनेवाली उच्छृंखलता कहने में हमें किंचिन्मात्र संकोच नहीं है। हिंदू-जाति की विशेषता विनष्ट करना उसकी मृत्यु के समान ही होगा।

× × ×

५. हिंदी-पत्रों में हास्य-रस का दुरुपयोग

हमने कई विशेष अनुभवी विद्वानों के मुख से यह बात सुनी है, और अनुभव से भी जाना है कि सब रसों की अवतारणा हास्य-रस की अवतारणा की अपेक्षा सहज कार्य है। अन्य रसों के परिपाक में सहायक सामग्री सुलभ हो सकती है, मगर वाक्य-योजना के द्वारा सभ्य समाज के द्वारा अनुमोदन और अभिनंदन का गौरव पाने योग्य विशुद्ध और वास्तविक हास्य-रस सबकी लेखनी से नहीं लिखा जा सकता। निर्मल अथच चुटीली चुभती हुई, चोज़-भरी चोखी और उस मनुष्य को भी हँसा देनेवाली, जो उस हास्य का लक्ष्य हो, हँसी की बात जिनके दिमाग़ को सूझती है, उनकी प्रतिभा में ईश्वर-दत्त एक प्रकार की विशेषता हुआ करती है। बीरबल की-सी हाज़िर-जवाबी सबमें नहीं पैदा हो सकती। चेष्टा और अभ्यास करने से प्रकृति में अंतर्निहित इस शक्ति का अधिकाधिक विकास हो सकता है, सूझ गहरी हो सकती है; किंतु यह शक्ति पैदा नहीं की जा सकती। किसी की बराबरी करने के लिये, किसी के अनुकरण में, ज़बरदस्ती हँसी-मज़ाक़ के चुटकिले लिखने बैठना वास्तव में अपना उपहास कराना है। ऐसे चुटकिले पढ़कर पाठक हँसते अवश्य हैं, इसमें संदेह नहीं। मगर यह हँसी लेखक की मूर्खता पर ही पैदा होती है। इधर कई वर्ष से हिंदी-पत्र-पत्रिकाओं में हास्य-विनोद का एक कॉलम अवश्य रखने की चाल-सी चल गई है। छोटे-छोटे जातीय पत्रों तक को इस छूत के रोग ने नहीं छोड़ा। इसका अवश्यंभावी फल यह देख पड़ता है कि हास्य की आड़ में कहीं भद्दी भाषा में व्यक्तिगत आक्रमण किए जाते हैं, कहीं अपने प्रतिकूल पक्ष पर धूल उछाली जाती है, और कहीं ऐसे-ऐसे जुमले लिखे जाते हैं, जिनसे हास्य-रस का छत्तीस का नाता है, और जिन्हें पढ़कर हँसी के बदले लेखक पर करुणा हो आती है। हमारी सम्मति तो यह है कि यह हानिकर अनुकरण सब लोग न करें; वे ही लोग करें, जिनमें हँसी-मज़ाक़ लिखने का कुछ माद्दा हो। अन्य लोग जगत्-हँसाई से बचने के लिये अंध-परंपरापरायणता छोड़कर अन्य विषयों पर लिखकर पत्र को लोकप्रिय बनाने की चेष्टा करें। यह धारणा ठीक नहीं है कि हास्य-रस न रहने से पत्र को पाठक पसंद नहीं करते, या हास्य-रस की सामग्री से ही ग्राहक-संख्या बढ़ती है।

× × ×

६. मान-हानि के दावे और पत्रों की टीका-टिप्पणी

ब्रिटिश-शासन को इस बात का गर्व था कि उसने पत्रों को कड़ी-से-कड़ी टीका-टिप्पणी करने की स्वतंत्रता दे रक्खी है। माननीय वायसराय के भी किसी सार्वजनिक हिताहित-संबंधी शासन-कार्य में अनौचित्य समझ पड़े, तो सद्भाव से उसकी आलोचना करने का, उसकी त्रुटि दिखलाने का, अधिकार समाचार-पत्रों को प्राप्त है। परंतु इस समय राष्ट्रीय पत्रों की की हुई प्रतिकूल आलोचना सरकारी कर्मचारियों को ज़हर-सी लगती है। वे नहीं चाहते कि उनके स्वेच्छाचार के विरुद्ध कोई कुछ

कह-सुन सके, उनके अत्याचार को परदे के बाहर लाकर उस पर कोई प्रकाश डालने की गुस्ताख़ी कर सके। उनके इन भावों का पोषण करने के लिये सरकार भी सहायता देने को तैयार देखी जाती है। पहले प्रेस-ऐक्ट का पाश पत्रों की स्वतंत्रता का गला घोटे हुए था। वह पाश कट गया, तो अब अन्य अस्त्र स्वतंत्रता के हाथ-पैर और जीभ काटने के लिये सान पर रखकर तैयार किए गए हैं। प्रेस-ऐक्ट के द्वारा तो सौ-दो सौ जुर्माना या साल-दो साल की सज़ा ही होती थी, मगर अब तो उसका बाबा मान-हानि का दावा देख पड़ा है। आपने कहीं की गोली चल जाने की दुर्घटना का विवरण देकर यदि उस पर यह लिख दिया कि अमुक अफ़सर की लापर्वाही से ऐसा अनर्थ हुआ, अथवा अमुक अफ़सर ने अकारण ही गोली चलवाकर अनेकों की हत्या करा डाली, (और यह सब अपने सद्भाव से, और जाँच करने के बाद सच्चा हाल लिखा है) तो बस, सरकारी ख़र्च से उक्त अफ़सर ने आप पर ५०,००० रुपए का दावा ठोक दिया। अदालत में सरकारी अफ़सर को झूठा साबित करना त्रिकाल में असंभव है। कारण, विचारक महोदयों में अधिकतर यह स्वाभाविक धारणा होना ही संभव है कि सरकारी कर्मचारी झूठ नहीं कह सकता। बस, पत्र-संचालक पर १०-५ हज़ार की डिग्री हो जाना अटल भावी समझ लीजिए। क्रॉनिकल, केसरी, विनोद, हिंदू आदि कई पत्र इसी आफ़त में फँसकर हज़ारों रुपयों की हानि उठा चुके हैं। अभी आरंभ ही हुआ है, इसलिये सभी पत्रों को इसके प्रतिकार के लिये ज़ोरदार आंदोलन उठाना चाहिए। अन्यथा ठकुरसुहाती की नीति अख़्तियार करने और टीका-टिप्पणी करने के महत्त्व-पूर्ण अधिकार से हाथ धो बैठने के लिये तैयार हो जाना चाहिए। इस मान-हानि के अमोघ अस्त्र का एक ही प्रहार छोटे मोटे पत्रों का संहार करने के लिये काफ़ी होगा। और, बड़े पत्र भी कहाँ तक आर्थिक मार बरदाश्त कर सकेंगे। अतः इस महाभयंकर अस्त्र को अव्यवहार्य कर देने का कोई अचूक उपाय सोचना चाहिए।

× × ×

७. संसार में फिर अशांति बढ़ रही है

महायुद्ध के उपरांत सबको यही विश्वास हो गया था कि अब कम-से-कम सौ-पचास वर्ष तक तो शांति का साम्राज्य रहेगा। किंतु उसके उपरांत, संधि पक्की होने के पहले ही से, चारों ओर अशांति और असंतोष की आग बनावटी सौहार्द की राख के नीचे दबी-दबी सुलग रही है। कभी-कभी किसी जगह धुआँ ऊपर निकल आता है; मगर वह हवा अभी नहीं चली, जिसके झोंके से युद्ध की प्रचंड आग धधक उठेगी, उसकी ज्वालाएँ असंख्य धन-जन-जीवन की आहुतियाँ पाकर बढ़ती हुई हाहाकार मचा देंगी, और एशिया तथा योरप के लोग त्राहि-त्राहि पुकारने लगेंगे। वह अशुभ घड़ी टल भी सकती है; मगर ऐसा होते देख नहीं पड़ता। जब तक साम्राज्य-विस्तार का लोभ भूत की तरह शक्तिशाली राष्ट्रों के सिर पर सवार रहेगा, जब तक योरप और अमेरिका के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, और उनकी देखादेखी एशिया के भी कई राजनीति के आचार्य, कूट-नीति के कपट-कुचक्र की चालें सोचने में दिमाग़ लड़ाते रहेंगे, जब तक "मुँह में राम बग़ल में छुरी" की नीति घृणा के योग्य न निश्चित होगी, जब तक सब राष्ट्र सच्चे सौहार्द को क्षमता के बदले समता, ममता के आधार पर स्थापित न कर पावेंगे, तब तक न सच्ची शांति स्थिर होगी, और न युद्ध की भयंकर विभीषिका का अंत होगा।

इस समय आयर्लैंड की पुरानी अशांति दूसरे रूप में उपस्थित हुई है। आइरिश सीमा-निर्द्धारण का झगड़ा बढ़ता ही जाता है। मिसर में शांति स्थापित हो गई थी; मगर इधर सूडान पर अधिकार के प्रश्न ने फिर उलझन खड़ी कर दी है। सूडान को मिसर अपनी चीज़ कहकर उसको अपने अधिकार में लेना चाहता है। मगर ब्रिटिश-राष्ट्र के कर्णधारों ने कह दिया है कि हम सूडान को नहीं छोड़ सकते। कारण, उसकी रक्षा और उन्नति करने के अपने पवित्र कर्तव्य को भुलाना घोर पातक होगा। परंतु सूडानवाले इसके विपरीत ब्रिटिश-शासन के विरुद्ध विद्रोही हो रहे हैं। इधर फ़ौज के कुछ लोगों ने बिगड़कर सशस्त्र-विद्रोह का आरंभ कर दिया था; मगर वे सब दबा दिए गए, उनका संगठन तितर-बितर कर दिया गया। फिर भी विद्रोही-भाव बने हुए हैं, हलचल चली जाती है। उधर चीन में गृहयुद्ध छिड़ गया है। उच्चाकांक्षा रखनेवाले दो स्वार्थांध मूर्ख सेनानायक सैनिक संगठन करके भाई भाई का ख़ून बहाने लगे हैं। फ़्रांस, ब्रिटन, जापान, अमेरिका आदि

शक्तियों के जंगी जहाज़ अलग खड़े तमाशा देख रहे हैं, और शायद इस घात में हैं कि कोई मौक़ा मिलते ही कुछ-न-कुछ हथियाते चलें। इसके बाद मरक्को के विद्रोह को लीजिए। वहाँ अधिकतर अशांति बनी ही रहती है। दो वर्ष पहले मूर लोगों के नेता अब्दुलकरीम ने मरक्को के रीफ़-नामक भूखंड में साधारणतंत्र शासन स्थापित कर लिया था। इसीलिये इसी अब्दुलकरीम की सेना से स्पेन की सेना की भिड़ंत हुई, और उसका सिलसिला अभी तक चला आ रहा है। जान पड़ता है, अब्दुलकरीम के अधिकार में धन-जन-बल कम नहीं है। उसने बार-बार स्पेन की सेना को शिकस्त दी है। स्पेन के नामी योद्धा और वर्तमान प्रधान मंत्री प्रीमो-डि-रिवेरा खुद जाकर सैन्य-संचालन कर रहे हैं; पर कुछ नहीं कर पाते। एल० रैसूली नाम का एक और शक्तिशाली सुचतुर मनुष्य के विद्रोही-पक्ष में मिल जाने से स्थिति चिंताजनक हो गई है। इसी तरह इटली भी अशांति से ख़ाली नहीं है। हाल में ख़बर आई है कि सिगनर मुसोलिनी पर किसी ने गोली चलाई थी; मगर वह दूसरी मोटर में निकल गए थे, इससे बच गए। इससे मालूम होता है, वहाँ भी वर्तमान स्थिति असंतोष से रहित नहीं है। जापान और अमेरिका के मनोमालिन्य की आग भी भीतर-ही-भीतर सुलग रही है। भारत की अशांति भी कुछ कम नहीं है, और वर्तमान परिस्थिति उत्तरोत्तर असंतोष बढ़ा ही रही है। इस प्रकार संसार में सर्वत्र फिर अशांति बढ़ रही है।

× × ×

८. देश में जल-प्रलय से हाहाकार

भारतवासियों पर सचमुच दैव का कोप देख पड़ता है। एक के बाद एक आपत्ति आकर उनको दुःख देती और उनकी दुर्गति करती है। इस बार दक्षिण की कावेरी-नदी ने बढ़कर उधर बेशुमार धन-जन का संहार कर डाला है। पूरा ब्योरा हमारे पाठक यथासमय पत्रों में पढ़ते ही रहे होंगे। पंजाब में भी सिंधु की बाढ़ ने बड़ी बुरी स्थिति उपस्थित कर दी है। बिहार और बंगाल में भी बाढ़ आने की ख़बर पत्रों में प्रकाशित हुई है। इन प्रांतों के निवासियों की दुर्दशा वर्णन करने योग्य नहीं है। जो जानें गईं, सो तो गई ही; अब जो जीवित बच रहे हैं, उनको खाने की सामग्री और तन ढकने को वस्त्र-खंड भी नहीं नसीब होता। उनमें अधिकांश संख्या ऐसे ही लोगों की है, जिनका घर-बार और सारी गिरिस्ती प्रवाह के वेग में बह गई है, सिवा शरीर के और कुछ नहीं बचा। उनकी शारीरिक और मानसिक दुर्दशा और दुश्चिंता का चित्र कल्पना से अपने चित्त में अंकित करके देखिए। जो कुछ पास था, वह सब गया। इस समय खाने-पहनने-रहने का कोई सहारा नहीं सूझता। देश की फ़सल नष्ट हो जाने से अभी अन्न का भाव महँगा हो गया है, और आगे भयंकर अकाल की विकट विभीषिका देख पड़ने लगी है। यद्यपि ईश्वर ही इनके दुःख दूर कर सकते हैं, तथापि देश के धनाढ्य सज्जनों को इस समय उदारता की मात्रा बढ़ाकर दुखियों को सब तरह से सहायता पहुँचाने का पुण्य-कार्य करना चाहिए। यह उनका प्रधान और पुनीत कर्तव्य है, यह इंसानियत का तक़ाज़ा है। अन्न, वस्त्र (पुराने पहने हुए भी धुलाकर, सिलाकर, तहाकर भेजे जा सकते हैं), धन आदि की सहायता महात्माजी के पास भेजने से दक्षिण के बाढ़-पीड़ितों तक पहुँच जायगी। अन्य प्रांतों के बाढ़-पीड़ितों के लिये भी वहाँ की कांग्रेस-कमेटियों के मंत्रियों के पास सहायता भेजना ठीक होगा।

× × ×

९. बंगाल में द्वैध शासन का अंत

सन् १९२३ ईसवी के विगत नवंबर-मास में कौंसिलों के लिये जो नवीन चुनाव हुआ था, उसमें देशबंधु चित्तरंजन दास की प्रमुखता में, बंग-प्रांत में, स्वराज्य-दल को बहुत अच्छी सफलता प्राप्त हुई थी। अन्य सभी दलों की अपेक्षा स्वराज्य-दल के सदस्यों की संख्या सबसे अधिक थी। फिर भी वह इतनी न थी कि बिना किसी दूसरे दल की सहायता के सरकार को हरा सके। ऐसी दशा में स्वराज्य-दलवालों ने और दलवालों को भी अपने पक्ष में कर लिया, और इस प्रकार से कौंसिल में उनका बहुमत हो गया। उधर लॉर्ड लिटन ने देशबंधु को बुलाकर उनसे कहा कि कौंसिल में आपका ही दल सबसे प्रबल है, इसलिये नियमानुसार आप हस्तांतरित विषयों को अपने हाथ में लीजिए, और मंत्रित्व का काम पूरा कीजिए। परंतु दास महोदय ने लॉर्ड लिटन की इस बात को अस्वीकृत कर दिया। इसके बाद इसी प्रकार से श्रीव्योमकेश चक्रवर्ती से भी मंत्रित्व-पद ग्रहण

करने के लिये कहा गया ; पर उन्होंने भी उसे मंजूर न किया। अंत में श्रीफ़ज़्लुलहुसेन, श्रीग़ज़नवी और श्री-मल्लिक महोदय मंत्री बनाए गए। पर मल्लिक महोदय के विरुद्ध इस आशय का मुक़द्दमा दायर था कि उनका निर्वाचन ठीक नहीं हुआ है। मंत्री नियुक्त होने के कुछ ही समय के बाद इस मुक़द्दमे का फ़ैसला मल्लिकजी के विरुद्ध हुआ। उनका निर्वाचन रद कर दिया गया, और इस प्रकार से उनको मंत्री-पद से भी अलग रहना पड़ा। बंगाल-सरकार ने उनके पद को रिक्त रक्खा, और वह दो ही मंत्रियों से काम लेती रही। इसी बीच में बंगाल-कौंसिल में बजट पेश हुआ। स्वराज्य-दल ने हस्तांतरित-विभाग की मदों का रुपया तो मंजूर कर लिया, पर संरक्षित-विभाग का अस्वीकृत कर दिया। साथ ही मंत्री के वेतन से संबंध रखनेवाली माँग भी मंजूर नहीं की। इस माँग की अस्वीकृति केवल एक वोट के मताधिक्य से हुई। इस कारण बंगाल-सरकार ने यथानियम मंत्रियों से इस्तीफ़ा न माँगा, और वे अवैतनिक रूप से मंत्री बने रहे। इस बीच में सरकार, मंत्री तथा राजभक्त दल के अन्य कई नेताओं ने स्वराज्य-दल के पक्षपाती कई सदस्यों को अपनी ओर फोड़ लिया। लॉर्ड लिटन ने कुछ सदस्यों को कुछ ऐसे ही प्रयोजन से अपने बँगले पर परामर्श करने के लिये आमंत्रित किया। ऐसे एक निमंत्रण-पत्र को श्रीयुत दास ने अपने फ़ारवर्ड-पत्र में प्रकाशित भी कर दिया था। एक और भी चाल चली गई। कौंसिल के मुसलमान-सदस्यों को सुझाया गया कि मुसलमान-मंत्रियों को न रहने देने के लिये ही स्वराज्य-दलवाले यह सब बखेड़ा कर रहे हैं। इन सारी चालों से सरकार का पक्ष बहुत कुछ पुष्ट हो गया। तब लॉर्ड लिटन ने एक बार कौंसिल में मंत्रियों की वेतन-संबंधी माँग को फिर से उपस्थित करने के लिये एक तिथि निश्चित की। इधर बीच में देशबंधु दास के निर्वाचन को रद करानेवाला जो मुक़द्दमा चल रहा था, उसके अनुसार उनका निर्वाचन रद ठहराया गया, और फिर से निर्वाचन की ठहरी। पर दूसरे निर्वाचन में तो देशबंधु के विरुद्ध कोई खड़ा भी न हुआ, और वह विना विरोध के फिर सदस्य निर्वाचित हो गए। उधर कलकत्ते के कार्पोरेशन का जो नया चुनाव हुआ, उसमें भी सब स्वराज्य-दलवाले ही चुने गए। इन सदस्यों ने देशबंधु दास को कलकत्ते का पहला मेयर (प्रधान) चुना। जिस तिथि को मंत्रियों की वेतन-संबंधी माँग उपस्थित होने को थी, उसके एक दिन पहले कलकत्ता-हाईकोर्ट में इस आशय के मुक़द्दमे दायर हुए कि मंत्रियों के वेतन की जो माँग कौंसिल ने एक बार अस्वीकृत कर दी है, वह दूसरी बार फिर से नहीं उपस्थित की जा सकती। एक मुक़द्दमे में जज ने यही फ़ैसला भी किया कि हाँ, दुबारा वह माँग नहीं उपस्थित हो सकती है। जो हो, कौंसिल के अधिवेशन की वह तिथि टल गई, और मंत्रियों की स्थिति पहले-जैसी ही बनी रही। कुछ समय बाद बड़े लाट रेडिंग साहब ने एक नया क़ानून बनाकर छपवा दिया, जिसके अनुसार मंत्रियों की वेतन-संबंधी माँग फिर से उपस्थित की जा सकती थी। इधर देशबंधु दास ने बंगाल-पैक्ट बनाकर तथा कार्पोरेशन में मुसलमानों को कुछ अधिक नौकरियाँ देकर कौंसिल के मुसलमान-सदस्यों को फिर अपनी ओर कर लिया। आख़िर कौंसिल में मंत्रियों की वेतन-संबंधी माँग उपस्थित करने का फिर समय आया। सरकार इस माँग को कौंसिल से स्वीकृत कराने के लिये तुली हुई थी। उसने मंत्रियों तथा अन्य राजभक्त नेताओं की सहायता से इस अभीष्ट को सिद्ध करने के लिये भरसक प्रयत्न किया। न-जाने किसने मुफ़स्सिल में रहनेवाले स्वराज्य-दल के सदस्यों के पास उक्त दल के मंत्री की ओर से इस आशय के तार भिजवा दिए कि "कौंसिल की बैठक स्थगित हो गई है। सरकार ने राउंड टेबिल कानफ़रेंस की स्वीकृति दे दी है, अभी न आना इत्यादि।" पर ये सब बातें झूठी थीं। श्रीयुत दास ने श्रीयुत एस० आर० दास और श्रीफ़ज़्लुलहुसेन के दो पत्र भी फ़ारवर्ड में छाप दिए, जिनमें सदस्यों पर निर्वाचन-संबंधी अनुचित दबाव डालने की बातें थीं। इधर स्वराज्य-दल ने भी कोई बात उठा नहीं रक्खी। ख़ास निर्वाचन के दिन बेचारे राय ब्रजेंद्रकिशोर चौधरी का घर कॉलेज के विद्यार्थियों ने इस प्रकार से घेर लिया कि वह कौंसिल में जाकर सरकार के पक्ष में वोट न दे सके। ऊपर के इस सिंहावलोकन से पाठकगण समझ गए होंगे कि मंत्रियों की वेतन-संबंधी माँग के प्रस्ताव को लेकर सरकार और स्वराज्य-दल में कैसी गहरी कूट-नीति की चालें चली गईं। दोनों पक्षों ने अपनी संपूर्ण शक्ति से काम लिया। कौंसिल में माँग उपस्थित की गई। स्वराज्य-दल की

ओर से विरोध किया गया। वोट लिए गए, तो सरकार दो वोटों से हार गई। अब उसके लिये मंत्रियों का रखना असंभव हो गया। मंत्रियों ने भी इस्तीफ़े दे दिए। हस्तांतरित विषयों की देख-रेख करनेवाला कोई ग़ैर सरकारी सदस्य न रह गया। मजबूर होकर सरकार ने उस विभाग को भी अपने हाथ में ले लिया। बंगाल के शासन में हस्तांतरित विषय नहीं रह गए। यहाँ द्वैध शासन का अंत होकर शासन-सुधारों के समय से पहले जैसा एकच्छत्र निरंकुश शासन जारी था, वही फिर क़ायम हो गया। स्वराज्य-दल इसको अपनी बहुत बड़ी विजय समझता है। विलायत के साम्यवादी दल ने भी इस सफलता पर दास महोदय को बधाई दी है। पर स्वदेश का लिबरल दल द्वैध शासन के अंत को देखकर क्षुब्ध हुआ है। उसका कहना है कि ऐसे कामों से देश का अहित हो रहा है। ऐंग्लो इंडियन पत्र स्वराज्य-दल-वालों की इस जीत से बेतरह घबरा गए हैं। वे भारत में घोर अशांति के स्वप्न देखने लगे हैं, और सरकार को दृढ़ता के साथ शासन-कार्य चलाने की सलाह दे रहे हैं। द्वैध शासन के अंत का भारत की भावी राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसके विषय में तो हम कुछ नहीं कहना चाहते, पर यह बात बहुत स्पष्ट है कि बंगाल-कौंसिल में सरकार को दास महोदय ने ऐसी कपट-नीति से हराया है कि वह इस पराजय को जल्दी न भूलेगी। इस विजय से देश में और अधिकतर बंगाल में देशबंधु का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया है।

× × ×

१०. अब तो संगठन की ओर आओ

स्वराज्य-पार्टी ने अपरिवर्तन-वादी दल से अलग होकर कौंसिलों में प्रवेश किया था, इसलिये कि वह भीतर से विरोध करके सुधारों की पोल खोल देगी, और यथाशक्ति द्वैत-शासन का अंत कर डालेगी। स्वराज्य-दल के सदस्यों ने मध्य-प्रदेश और बंगाल में, जहाँ बहुमत था, कौंसिलों का काम बंद कर दिया, द्वैत-शासन की इतिश्री कर दी। बंगाल में तो गवर्नर को विवश होकर मंत्रियों का इस्तीफ़ा मंजूर करना पड़ा, और मंत्रियों के विभाग भी अपने हाथ में लेने पड़े। इस प्रकार देशबंधु दास के स्वराज्य-दल का विध्वंसक कार्य समाप्त हो गया। अब आगे यह दल क्या काम करेगा, यह प्रश्न सर्वत्र सभी लोग करने लगे हैं। श्रीयुत दास और नेहरूजी ने यही इच्छा प्रकट की थी कि वे कौंसिलों में जाने पर भी अपरिवर्तन-वादियों के संगठन-कार्य का समर्थन करते हैं, और इस काम को उनके साथ मिलकर करने को तैयार हैं, बशर्ते कि उनके कौंसिल-प्रवेश का विरोध न किया जाय। अतएव अब दे० दास और नेहरूजी को इस समय यही उचित है कि वह अपने दल की शक्ति महात्माजी के अनुगामी दल की सहायता में लगा दें। दोनों दल एकमत होकर देश-भर में गाँव-गाँव, नगर-नगर, घर-घर संगठन की धूम मचा दें, उत्साह की बिजली उन हृदयों में भर दें, जो इधर हताश, शिथिल और आलस्य के मारे हिम्मत हारकर बैठ गए हैं। फिर एक बार देश में जीवन का अप्रतिहत प्रवाह बहता देख पड़े, फिर भारत का बच्चा-बच्चा अपनी उन्नति और उद्धार के उत्साह से उत्तेजित होकर कर्मयोगी महात्माजी के झंडे के नीचे उपस्थित हो, फिर उसी तरह कर्मक्षेत्र में—कर्तव्य की राह में—दृढ़ संकल्प के साथ अग्रसर हो। इसी से देश का यथार्थ उत्थान हो सकता है।

× × ×

११. श्रीसत्यमूर्तिजी और हिंदी

श्रीयुत सत्यमूर्तिजी मदरास-प्रांत के एक अच्छे नेता हैं। आप स्वराज्य-दल के प्रमुख हैं; मदरास विश्वविद्यालय के सदस्य भी हैं। थोड़े दिन हुए मदरास में सोलहवीं प्रांतीय शिक्षा-परिषद् की बैठक हुई थी। उसके आप सभापति थे। इस हैसियत से आपने जो भाषण दिया, वह बड़ा ही सार-गर्भित और महत्त्व-पूर्ण है। यों तो सारा भाषण पढ़ने योग्य है, पर इसमें आपने हिंदी के संबंध में जो विचार प्रकट किए हैं, वे बहुत ही उदार, विद्वत्ता-पूर्ण और राष्ट्रीयता के भावों से भरे हुए हैं। उनका कुछ सारांश नीचे दिया जाता है—"जो लोग इस बात को मानते हैं कि देश में एक ऐसी भाषा होनी चाहिए, जिसका प्रयोग सब लोग करें, उनसे मुझे पूछना है कि वह कौन-सी भाषा है, जो इस काम के उपयुक्त है? मैं उन लोगों में से हूँ, जो बिना एक ऐसी भाषा के स्वराज्य असंभव समझते हैं। परंतु मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि अँगरेज़ी से यह आवश्यकता कभी पूरी नहीं हो सकती। और, यदि असाधारण उद्योग करके ऐसा संभव हो सके, तो भी मैं इसके विरुद्ध हूँ। सब बातों पर विचार

करके मेरी यह राय है कि हिंदी ही वह भाषा है, जो इस पद के सर्वथा उपयुक्त है। मेरा विश्वास है कि अधिक अवस्थावाले लोग हिंदी को सहज में नहीं सीख सकते; परंतु यदि स्कूल की प्रारंभिक श्रेणियों में हिंदी की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय, तो दस वर्ष में, समस्त भारत-वर्ष में, हिंदी को सभी लोग समझ सकते हैं। भारत-वासियों में भिन्न-भिन्न भाषाओं के सीखने की अद्भुत शक्ति है। यदि इस शक्ति की वृद्धि की जाय, तो सब लोगों के हिंदी सीख सकने में कोई बाधा नहीं उपस्थित हो सकती।"

मदरास-प्रांत के निवासी होकर भी राष्ट्रीयता के नाते श्रीसत्यमूर्तिजी ने जो भाव प्रकट किए हैं, वे सर्वथा स्तुत्य हैं। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से मदरास में हिंदी-प्रचार का जो काम चल रहा है, उसमें, आशा है, श्रीसत्यमूर्तिजी से अच्छी सहायता प्राप्त होगी। श्री-सत्यमूर्तिजी के उपर्युक्त कथन में दो-एक बातें ऐसी भी हैं, जिनसे हमारा मत-भेद है। हमारे ख़याल से हिंदी-भाषा और देवनागरी-लिपि, दोनों इतनी सरल हैं कि अधिक अवस्थावाले लोगों को भी उनका सीखना कठिन नहीं प्रतीत हो सकता। वे उसे सहज ही सीख सकते हैं। दूसरी बात यह है कि प्रारंभिक श्रेणियों में हिंदी की शिक्षा का प्रबंध बाध्य रूप से करने की अपेक्षा प्रेम-पूर्ण प्रचार-कार्य से ही हिंदी की यथेष्ट उन्नति हो सकती है। बाध्य-रूप से ऐसी शिक्षा का प्रचार संभव भी नहीं समझ पड़ता।

× × ×

५२. डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और देवनागरी

इस समय युक्त प्रदेश की प्रांतीय व्यवस्थापिका सभा के अधिवेशन धूमधाम से हो रहे हैं। सदस्यगण प्रांत से संबंध रखनेवाली बहुत-सी बातों को प्रश्नों के रूप में पूछकर सरकार से उनके उत्तर पाते हैं, और इस प्रकार सर्वसाधारण को भी प्रांत की यथार्थ दशा का हाल मालूम हो रहा है। अभी उस दिन हाफ़िज़ हिदा-यतहुसैन साहब ने एक प्रश्न किया था। आपने पूछा था—क्या सरकार को यह बात मालूम है कि प्रांत के कई डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में फ़ारसी-लिपि का त्याग करके बोर्ड के सारे हुक्म और काररवाई देवनागराक्षरों में लिखी जाने लगी है? आगे चलकर आपने सरकार से यह भी जिज्ञासा की थी कि चूँकि अदालती भाषा हिंदुस्तानी है, जो फ़ारसी अक्षरों में लिखी जाती है, इसलिये क्या सर-कार उक्त बोर्डों के नाम यह आज्ञा न निकाल देगी कि वे प्रचलित प्रथा के अनुसार विशेष अवसरों को छोड़कर सदा फ़ारसी-लिपि का ही प्रयोग करते रहें। सरकार की ओर से कहा गया—हाँ, सरकार को इस मामले की ख़बर है, और वह इसे ध्यान से देख भी रही है; पर वह इस संबंध में किसी प्रकार की आज्ञा नहीं निकालना चाहती। इस प्रश्नोत्तर को पढ़कर दुःख और आश्चर्य, दोनों होते हैं। दुःख इस बात का है कि मुसलमान सज्जन हिंदी-भाषा और देवनागरी-अक्षरों के प्रति अपने द्रोह का परिचय देने से कभी नहीं चूकते; और आश्चर्य इस बात का है कि फ़ारसी-लिपि में काररवाई लिखे जाने के लिये आज्ञा निकलवाने का साहस उनको कैसे हुआ। सरकार की ओर से जो उत्तर दिया गया है, वह भी अस्पष्ट और भ्रमोत्पादक है। यह बात बिलकुल ग़लत है कि सरकारी अदालतों में केवल फ़ारसी-लिपि का ही प्रवेश हो सकता है। युक्त प्रांत के भूतपूर्व लाट सर ऐंटोनी मेकडानेल महोदय के समय से दीवानी, फ़ौजदारी तथा माल, इन तीनों ही विभागों में इच्छानुसार फ़ारसी और देवनागरी, इन दोनों ही लिपियों का व्यवहार जायज़ है। उन्हीं के समान म्युनिसिपलिटी तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की भी सारी काररवाई इच्छानुसार देवनागरी अथवा फ़ारसी-लिपि में की जा सकती है। हाफ़िज़ हिदायतहुसैनजी के प्रश्न के उत्तर में सरकार की ओर से यह बात साफ़-साफ़ कही जानी चाहिए थी। यह बात बिलकुल बोर्ड की सुविधा पर निर्भर है कि वह फ़ारसी-लिपि का प्रयोग करे या देवनागरी-लिपि का। अधिकांश लोगों का परिचय देव-नागराक्षरों से ही है। वे सरल भी हैं। इसलिये यदि भिन्न-भिन्न बोर्ड उन्हें अपनावें, तो वह न्याय ही है। न तो उसमें पक्षपात की गंध है, और न कोई आपत्तिजनक बात। आशा है, भविष्य में कौंसिल के हिंदी-प्रेमी सदस्य—श्रीरामचंद्र सिंह, श्रीसंगमलाल, श्रीमुकुंदीलाल, श्रीकुँअर राजेंद्रसिंह आदि सज्जन इस मामले को स्पष्ट करा देंगे कि लिपि के मामले में बोर्ड को पूर्ण स्वाधीनता है, चाहे वह फ़ारसी-लिपि का प्रयोग करे, चाहे देवनागरी का। क्या ही अच्छा हो, जो हाफ़िज़ हिदायतहुसैन साहब देव-नागरी के इस प्रकार के अनुचित विरोध को त्याग कर

फ़ारसी-लिपि के प्रचार का कार्य न्यायोचित मार्ग से करें। उनको यह भी स्मरण रहे कि उनके इन क्षुद्रजनोचित कामों से अब सर्वमान्य देवनागरी वर्णमाला का प्रचार रुक नहीं सकता। यह विज्ञान का युग है। धींगाधींगी का ज़माना बीत गया। अब तो जो लिपि सरल होगी, जिस का निर्माण वैज्ञानिक रीति से हुआ होगा, उसी का प्रचार होगा। देवनागरी वर्णमाला में ये सारे गुण मौजूद हैं। इससे उसका देशव्यापी प्रचार अवश्य होगा, और हाफ़िज़ हिदायतहुसैन-जैसे सज्जनों के सारे प्रयत्न व्यर्थ होंगे।

× × ×

१३. रोगों से रक्षा का सहज उपाय

रोगों से बढ़कर मनुष्य का शत्रु और कोई नहीं है। बहुत-से रोग तो ऐसे हैं कि वे बरसों यंत्रणा देते रहते हैं, और किसी भी चिकित्सा या उपचार से दूर नहीं होते। यदि वे थोड़े ही समय में प्राण ले लेनेवाले होते, तो हमारी समझ में इतने भयंकर न थे। अनेक रोगों की चिकित्सा संभव होने पर भी इतनी कठिन, व्यय-बहुल और जटिल होती है कि सर्वसाधारण उससे लाभ उठाने का साहस नहीं कर पाते। इसी कठिनाई को दूर करने के लिये पाश्चात्य वैज्ञानिक चिकित्सक बहुत दिनों से यक्ष्मा आदि कठिन और असाध्यप्राय रोगों को सहज में रोकनेवाली

रूप और जवानी का इलाज

(बिजली के प्रवाह में नहाकर विलायत की एक स्त्री वृद्धावस्था के आक्रमण से अपने रूप और जवानी को बचाने की चेष्टा कर रही है)

प्रतिषेधक वस्तुओं की खोज में लगे हुए हैं। हर्ष की बात है कि इतने दिनों बाद अब उन्हें उत्तरोत्तर सफलता मिलने लगी है। एक-एक करके कई कठिन रोगों के आक्रमण की अमोघ ओषधियों का अद्भुत आविष्कार हो चुका है। यहाँ तक कि वृद्धावस्था-रूपी अनिवार्य अवश्यंभावी व्याधि की भी सामयिक रुकावट खोज निकाली गई है। टिपथीरिया, कालरा, प्लेग, चेचक वग़ैरह भयानक छूत की बीमारियों को परास्त करनेवाली वस्तुओं का आविष्कार तो पहले ही हो चुका था, अब कोढ़, कालाआज़ार, मलेरिया आदि कठिन और कष्टदायक रोगों को भी अपनी मुट्ठी में कर लेने की दवा निकल आई है। यक्ष्मा-रोग (तपेदिक़) रोगराज है। उसे साक्षात् धन्वंतरि भी, बढ़ जाने पर, अच्छा नहीं कर सकते। अब तक यही समझा जाता था। किंतु उसे भी सहज-साध्य कर देनेवाली दवा निकल चुकी है। पागल
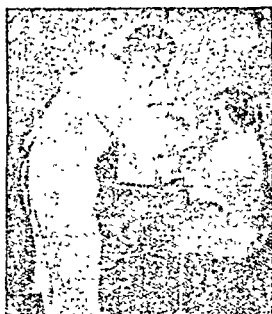
तपेदिक़ का नया इलाज

(न्यूयार्क के डॉक्टर डी० एफ़० नोलन तरल कारबन और कैलशियम साल्ट सुँघाकर यक्ष्मा-रोगी के ख़राब हो गए फेफड़े को सुदृढ़ और सबल बना रहे हैं)

कुत्ते के काटने से भयानक जलातंक-रोग होता है। पहले उससे अनेकों की शोचनीय मृत्यु हो जाया करती थी। डॉक्टर पास्टर साहब की इजाद की पद्धति से पागल कुत्ते के काटे का इलाज प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। भारत में भी, कसौली में, जो पास्टर-इंस्टीट्यूट है, उसका सचित्र वर्णन

चेचक को रोकनेवाला टीका लगाया जा रहा है

माधुरी में छप चुका है) उसके प्रतिकार का उपाय निकालकर जगत् में अपना नाम अमर कर गए हैं। चिकित्सा-विज्ञान की यह चेष्टा देखकर आशा होती है कि इसी तरह सभी भयंकर व्याधियों की सहज चिकित्सा निकल आवेगी, और अब आदमी अकालमृत्यु के मुँह में जाने के लिये लाचार न हुआ करेंगे। भारत को भी

प्लेग को रोकनेवाला टीका लगाया जा रहा है

इन आविष्कारों से लाभ उठाने की सुविधा कुछ समय के बाद अवश्य ही प्राप्त होगी, इसमें संदेह नहीं।

× × ×

१४. हिंदी-नाट्य-सम्मेलन

आज से कुछ ही दिन पहले काशी के दैनिक "आज" में श्रीयुत मंगलाप्रसाद अवस्थी नाम के एक सज्जन ने यह प्रस्ताव किया था कि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की तरह एक हिंदी-नाट्य-सम्मेलन भी स्थापित किया जाय। उस प्रस्ताव पर वहीं की भारतेंदु-नाटक-मंडली के एक सदस्य और पं० गयाप्रसाद शुक्ल ने बड़ा ज़ोर दिया था। कुछ दिनों तक "आज" में इस बात की ख़ासी चर्चा रही। किंतु अभी तक इस प्रस्ताव पर किसी ने ध्यान नहीं दिया है। प्रस्ताव के महत्त्व-पूर्ण होने में कोई संदेह नहीं है। लाहौर के द्वादश साहित्य-सम्मेलन में हिंदी-नाटक-मंडलियों के संगठन की योजना सोची गई थी। संयोजकों की एक समिति भी बनी थी। आज तक उस समिति के कार्य की कोई चर्चा सुनने में नहीं आई। "आज" में इस विषय की जो "चर्चा" चली थी, उसमें यह भी कहा गया था कि साहित्य-सम्मेलन के अंतर्गत ही नाट्य-सम्मेलन भी रहना चाहिए। उसमें और भी बहुत-सी बातें प्रस्तावित थीं—जैसे नाट्यकला-संबंधी पत्र निकालना, नाटक-लेखन और नाटकाभिनय के गुण-दोषों की परीक्षा करना तथा नाटक-साहित्य को प्रोत्साहन देना इत्यादि। हमारी समझ में साहित्य-सम्मेलन के सिर पर उतना ही बोझ डालना चाहिए, जितना वह सफलता-पूर्वक वहन कर सके। नाट्य-सम्मेलन के संचालन में जितनी शक्ति नियोजित करने की आवश्यकता होगी, सम्मेलन अपनी उतनी शक्ति सुगमता-पूर्वक लगा सकेगा या नहीं, यह भी एक विचारणीय विषय है। हमारी राय है कि नया पत्र न निकालकर यदि सम्मेलन-पत्रिका से ही काम लिया जाय, और उसी के द्वारा नाटकों के गुण-दोषों की परीक्षा

दी जाय, तथा नाटक-साहित्य को प्रोत्साहन-प्रदान किया जाय, तो और अच्छा हो। नाटक-मंडलियों के संगठन के लिये लाहौर के सम्मेलन में जो आयोजन हुआ था, उसे यदि तत्परता के साथ कार्य-रूप में परिणत करने का अनवरत उद्योग किया जाय, तो नाट्य-सम्मेलन-संबंधी समस्याएँ सहज ही हल हो सकती हैं। हाँ, नाटक-लेखकों पर नाट्य-सम्मेलन का आतंक स्थापित हो सकेगा या नहीं, यह संदिग्ध है; क्योंकि हिंदी में ऐसे-ऐसे अहम्मन्य नाटक-लेखक उत्पन्न होते जा रहे हैं, जो वास्तव में उसके अधिकारी नहीं हैं। साहित्य-सम्मेलन ने हिंदी के लेखकों और पुस्तक-प्रकाशकों की ओर अभी विशेष ध्यान नहीं दिया है। लेखक अंधाधुंध अंटसंट लिखते और प्रकाशक मनमानी पुस्तकें छापते चले जा रहे हैं। पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर कभी-कभी लेखों और टिप्पणियों द्वारा प्रकाश डाला जाता है, पर कुछ फल नहीं होता। यदि साहित्य-सम्मेलन इस ओर ध्यान दे, तो नाट्य-सम्मेलन के लिये यह काम पड़ा नहीं रह सकता। हाँ, अपने लाहौरवाले मंतव्य के अनुसार यदि सम्मेलन नाटक-मंडलियों का संगठन कर सका, तो नाट्य-सम्मेलन की स्थापना आप-से-आप हो जायगी। क्या हम आशा करें कि देहरादून में सम्मेलन की नाट्य-समिति के संयोजक इस विषय पर विचार करेंगे?

हिंदी-संसार में नाटक-मंडलियों की कमी नहीं है। संयुक्त-प्रांत, विहार, मध्य प्रदेश, मध्यभारत और राजपूताने तथा पंजाब की कुछ ख़ास-ख़ास जगहों में अच्छी नाटक-मंडलियाँ हैं। संयुक्त-प्रांत और विहार के तो प्रायः सभी प्रधान नगरों में अच्छी नाट्य-समितियाँ हैं। यदि सबका संगठन हो जाय, तो साहित्य के प्रचार और उद्धार में अमोघ सहायता प्राप्त होगी। बंगाल, महाराष्ट्र और गुजरात में नाटक लिखने और खेलने का बड़ा शौक़ है। उन प्रांतों के प्रधान नगरों में अच्छी-अच्छी नाट्य-शालाएँ बनी हुई हैं; सिद्धहस्त नाटककार और कुशल नाट्यकार भी हैं; सहृदय दर्शक और उदार सहायकों की भी कमी नहीं है। हिंदी में अभी वह बात नहीं है; हाँ, पैदा की जा सकती है। क्षेत्र ज़रूर है, उसे उर्वर बनाने का प्रयत्न होना चाहिए। आशा है, नाटक-प्रेमी इधर ध्यान देंगे।

× × ×

१५. लखनऊ में लड़ाई

इधर जब से अमेठी के अत्याचार ने लखनऊ के शांत वातावरण पर अपना ज़हरीला असर डालना शुरू किया, तभी से खटका हो चला कि अब यहाँ के भी हिंदू और मुसलमान सिर-फुड़ौवल किए बिना नहीं मानने के! अहियागंज आदि स्थानों के देवालयों की आरती, उत्सव-नृत्य आदि का विरोध और हिंदुओं के ढोल निकलने न देने का दुराग्रह करके नासमझ होने के साथ ही जोशीले मुसलमान भाइयों ने उस खटके को ख़ौफ़ के रूप में बदल दिया। अंत को हिंदुओं ने शांतिमय आत्म-रक्षा की तैयारी करके स्थानीय हाकिमों की सेवा में न्याय-निर्णय-निष्ठा के लिये निवेदन किया। हाकिमों ने भी जब जाना कि हिंदू उचित राह पर हैं, वे पराए अधिकार मानते हुए अपने अधिकारों की रक्षा चाहते हैं, तब उन्होंने ढोल निकालने, आरती करने और शंख आदि बजाने की आज्ञा दे दी। सदर का राम-डोल कुशल-पूर्वक निकल गया। अमीनाबाद पार्क में, माधुरी-कार्यालय के सामने ही, दो देव-मंदिर हैं। वे पार्क बनने के पहले के, सैकड़ों बरसों के बने हुए, हैं। उनमें पूजा-आरती सदा से होती आ रही है। पार्क बनने के बाद एक मुसलमान दूकानदार उसमें रूमाल बिछाकर नमाज़ भी पढ़ने लगा। धीरे-धीरे नमाज़ पढ़ने के समय २५-३० तक मुसलमान जमा होने लगे। हिंदू-धर्म का प्राकृतिक गुण ही सहिष्णुता है। हिंदुओं ने मंदिरों के पास मुसलमानों को नमाज़ पढ़ने देने में कोई हानि न समझी। उसी का फल उन्हें यह मिला कि इन दिनों मुसलमान मंदिर की शाम की आरती में शंख-घंटा बजाने का विरोध करने को उद्यत हो गए। सुन तो यह भी पड़ता है कि मुसलमानों ने क़तई आरती बंद करने का विचार प्रकट किया था; पर इस पर हमें विश्वास नहीं होता। अस्तु। गत ६-१० सितंबर से, सदर का राम-डोल निकलने के बाद, मुसलमानों और हिंदुओं की नमाज़-आरती का विवाद बढ़ चला। ११ सितंबर को आरती बीच ही में सरकारी हुक्म से रोक दी गई, और यह तय हुआ कि ६-२० से ६-३० तक मुसलमान नमाज़ पढ़ें; और उसके बाद ६-४० पर हिंदू आरती शुरू करें। हिंदुओं और मुसलमानों का जमाव भारी होने पर भी कोई फ़साद नहीं हो पाया, और इसका

श्रेय यहाँ के सुयोग्य सिटी-मैजिस्ट्रेट और कोतवाल साहब को मिलना चाहिए। १२ ता० को डिप्टी कमिश्नर ने हिंदू-मुसलमानों की आरती और नमाज़ का समय अलग-अलग नियत कर दिया। किंतु आरती का समय उचित समय के बाद नियत किए जाने के कारण हिंदुओं ने विरोध के तौर पर आरती नहीं की। उस दिन छेदीलाल की धर्मशाला में उपस्थित विवाद पर विचार करने, उसे शांत करने के उपाय निश्चित करने और शांति बनाए रखने के उद्देश्य से हिंदुओं की एक सभा भी हो रही थी। हिंदू १०००-१२०० होंगे। सभा में भाषण हो ही रहे थे कि किसी ने ख़बर दी, बाज़ार में कुछ मुसलमानों ने किसी हिंदू की चोटी जबरन काट ली है, और मारपीट भी होने लगी है। यह ख़बर सुनकर जो कुछ ४०-५० हिंदू बाहर निकल गए, वे ही निकल गए; शेष सब धर्मशाला में ही रहे। कारण, बाहर फाटक पर किसी ने ताला बंद कर दिया। इस समय बाहर मुसलमान काफ़ी तायदाद में थे, और हिंदू कम। लाठियाँ चलने लगीं। दूकानें तो पहले से ही बंद थीं; जो कुछ खुली थीं, वे भी बंद हो गईं। अभी कुछ ठीक मालूम नहीं कि अमीनाबाद में कितने ज़ख़्मी हुए, और कितने जान से मरे। अमीनाबाद से इस दंगे की हवा शहर में सभी ओर फैलने लगी। भलेमानस हिंदू और मुसलमान गृहस्थ बाल-बच्चेवाले आतंक से काँपने लगे। १२ ता० की रात-भर हिंदुओं पर वार होते रहे। हिंदुओं ने भी कहीं-कहीं आत्म-रक्षा के अलावा भी मुसलमानों को मारा-पीटा। १३-१४ ता० को भी दिन-रात लोगों के ज़ख़्मी होने और मारे जाने की ख़बरें मिलती रहीं। इस दिन मौलवीगंज, झवाईटोला, पाटानाला, टूरियागंज, रकाबगंज, नज़ीराबाद, अमीनाबाद, लाटूश रोड आदि स्थानों में मुसलमानों ने बड़ी बिद्दत की। राहगीर हिंदू जो अकेला उधर निकल गया, वही मारा गया। केवल गणेशगंज और डालीगंज में हिंदुओं ने बहादुरी के साथ हमले से अपनी रक्षा की। कहते हैं, वहाँ कई आक्रमणकारी मुसलमान बुरी तरह ज़ख़्मी किए गए, और कुछ की मृत्यु भी हुई। हिंदुओं ने जहाँ कहीं किसी को मारा भी है, तो उसके घातक चोट नहीं लगी; किंतु मुसलमानों ने जिस पर हाथ सफ़ा किया है, वह मर ही गया; और नहीं तो अधमरे से बढ़कर ज़रूर ही हो गया है। लखनऊ का नामी पहलवान सादक़ जन्म से हिंदुओं के अन्न से पला है, और अब भी हिंदुओं से ही उसका गुज़र होता है। उसके उस्ताद ग्वाले मस्त हिंदू ही थे। वही सादक़ अपने शागिर्द आग़ा पहलवान और अन्य १००-५० मुसलमानों के साथ, नंगी तलवार लिए, हिंदुओं पर हमला करने गया था। उसने एक सिपाही पर तलवार तान भी ली थी। इसी बीच में गोरों ने आकर उसे पकड़ लिया। आग़ा भी पकड़ा गया। दोनों ज़मानत पर छूटे हैं। पाटेनाले पर कई हिंदू मारे गए हैं, जिनमें एक वहाँ के पोस्टमास्टर का भतीजा भी है। रेलवे के मुलाज़िम भी दो-एक क़त्ल हो गए हैं। कितने मरे, और कौन-कौन मरा, यह अभी नहीं मालूम हो सका। लेकिन अनुमान किया जाता है कि ५०-६० अवश्य मरे हैं, और ज़ख़्मी तो ५०० से भी ऊपर हुए हैं। गोरों, जाटों, राजपूतों, बलूचियों की फ़ौज और सशस्त्र पुलिस १३ ता० को एक बजे से चारों ओर पहरे पर खड़ी कर दी गई थी, जिससे दंगे की भयंकरता कुछ कम हो चली। १५ ता० को भी यत्र-तत्र मार-धार होती रही। मुसलमानों के गुंडों ने प्रायः सर्वत्र अकेले-दुकेले हिंदुओं को धोका देकर, पीछे से प्रहार करके, मारा है। हिंदू बाल-वृद्ध-वनिताओं पर भी वार किए हैं। मगर हिंदुओं ने कहीं भी ऐसी नीच पैशाचिकता का परिचय नहीं दिया। अनेक मुहल्लों में, हिंदुओं की बस्ती से, मुसलमान नर-नारी स-कुशल जाते-आते रहे, उन पर किसी ने हाथ नहीं उठाया। आज एक मुसलमान ने एक गऊ के पेट में बल्लम मार दी थी। सुनते हैं, कई और गउओं की भी हत्या इधर-उधर हुई है। मगर सचाई की मात्रा उसमें कितनी है, यह नहीं कहा जा सकता। ता० १६ से अधिक अमन देख पड़ने लगी है। सरकारी आज्ञा निकली है कि पाँच आदमी से अधिक एकत्र होने पर पकड़ लिए जायँगे। लाठी बाँधनेवाला भी गिरफ़्तार कर लिया जायगा। आठ बजे के बाद (रात को) कोई दूकान न खुली रहे, और न कोई आदमी घर के बाहर निकले। लाठियाँ छिन जाने पर भी गली-कूचों में चाकुओं के प्रहार से अब भी कहीं-कहीं हिंदू मारे जा रहे हैं। देखें, कब तक यह भयंकर दुर्भाव हिंदू-मुसलमानों पर अपना प्रभाव जमाए रहता है।

× × ×

१६. लखनऊ के हिंदू-मुसलमान क्या ऐसे नादान हैं ?

लखनऊ के हिंदू-मुसलमानों के हृदय में कभी ऐसे विद्वेष के विषम विष का संचार नहीं हुआ। बड़े-बूढ़े लोगों का यही कथन है। दोनों जातियाँ बराबर हिल-मिलकर रहती थीं। कोई किसी की दिलशिकनी न करता था। कर ही कैसे सकता ? दोनों जातियों का परस्पर व्यवहार-व्यापार अन्योन्याश्रय संबंध को तोड़ नहीं सकता। महाजन और असामी, मकान-दूकान के मालिक और किराएदार, मालिक और नौकर, दूकानदार और गाँहक, बैपारी और कारीगर, किसान और ज़मींदार, राजा और प्रजा आदि संबंधों में से कोई-न-कोई संबंध अवश्य ही हर हिंदू और मुसलमान को परस्पर-सापेक्ष बनाए हुए है। एक जाति दूसरे का बहिष्कार नहीं कर सकती, और न इनमें से कोई जाति भारत को छोड़ सकेगी। दोनों को यहीं, इसी तरह, रहना पड़ेगा—परस्पर आश्रित होकर, या यों कहिए कि परस्पर सहायता करते हुए, जीवन बिताना होगा। फिर हम बात-बात पर वैर बढ़ाकर कैसे निबह सकते हैं ? धर्म के नाम पर जिहालत जाल फैलाती ही रहती है। हमको ईश्वर ने अक़्ल या समझ किस लिये दी है ? हम पशुओं से किस बात में श्रेष्ठ हैं ? अक़्ल को ताक पर रखकर किसी की भड़कानेवाली, वैर-विरोध बढ़ानेवाली, सरासर नुक़सान पहुँचानेवाली तक़रीर और तहरीर से बिगड़ उठना और आपस में जूती-पैज़ार और मार-काट करके ख़ुदा को ख़ुश करने की ख़ामख़याली मन में लाना—वह भी इस बीसवीं सदी के स्वतंत्र युग में—ज्ञानी मनुष्य के लिये घोर लज्जा की बात है। जब टर्कों का धार्मिक कट्टरपन जाता रहा है, अंधविश्वास की धाँधली संसार में किसी जगह जगह नहीं पा रही है, सभी धर्म-संप्रदायवाले धर्म के नाम से प्रचलित आडंबरों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं, उस समय में आरती और नमाज़ के कल्पित विघ्नों के बहाने भाई भाई का सिर फोड़ना देखकर दूसरे देशवाले क्या कह रहे होंगे ? क्या वे भारत के हिंदू-मुसलमानों की मूर्खता पर ठहाके न मारते होंगे ? स्वराज्य माँगते हो, मगर आप ही अपने को अयोग्य साबित करने की सामग्री सरकार के आगे उपस्थित करते हो—यह कैसी बेवक़ूफ़ी है ! क्या तुमको लड़ने ही में अपना भला जान पड़ता है ? अगर यह बात हो, तो एक बार एक जगह १०-५ हज़ार हिंदू और मुसलमान जमा होकर ख़ूब लड़ लो। रोज़-रोज़ जगह-जगह दंगे-फ़साद करके दुखी, दीन-दरिद्र देशवासियों की दुर्गति को और अधिक दुःसह तो न बनाओ। ऐसे उपद्रवों के कारण बेचारे निरपराध, निरीह, निरवलंब मनुष्यों पर जो आपत्ति आती है, अकारण पकड़-धकड़ के झमेले में पड़कर उन्हें जो कष्ट उठाने पड़ते हैं—आर्थिक असुविधा की अकथनीय अड़चनों का सामना करना पड़ता है, उसका ख़याल करके तो अब अपने दिलों से दुश्मनी के दाग़ को सच्ची सफ़ाई के साबुन से धो डालो, और आइंदा आपस की मुठभेड़ न होने देने का प्रयत्न कर लो। जो लोग तुम्हें भड़काकर, लड़ाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करनेवाले हैं, जो धर्म की ठेकेदारी को अपनी बपौती बताते हैं, और असल धर्म को भुलाकर धर्म के दिखावे को ही सर्वोपरि समझते हैं, उनको पहचान रक्खो। उनके बहकाने में आकर अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारना छोड़ दो। अब भी चेत करो। अगर सर्वथा अपना सर्वनाश कर चुकने के बाद होश में आए, तो फिर हाथ मल-मलकर पछताने के सिवा और कुछ न कर सकोगे। क्या यहाँ के हिंदू-मुसलमान ऐसे नादान हैं कि आपस की लड़ाई से बाज़ आने की नसीहत को नापसंद करेंगे ? समय ही इसका उत्तर देगा।

× × ×

१७. रेल-दुर्घटनाएँ और तीसरे दर्जे के यात्री

भारत की रेल-गाड़ियों में तीसरा दर्जा शायद पृथ्वी पर यमलोक के नरक का नमूना है। तीसरे दर्जे के यात्री जिस यंत्रणा, लांछना, असुविधा और अपमान को सहते हैं, और किसी सभ्य देश के लोग उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। तीसरे दर्जे के यात्रियों की दुर्गति किसी से छिपी नहीं है। उन अभाव-अभियोगों पर बार-बार अख़बारों में बड़े-बड़े कड़े-से-कड़े लेख लिखे जा चुके हैं, मगर कुछ सुनवाई नहीं होती। इसका कारण शायद यही होगा कि रेलवे-कंपनियाँ समझती हैं, रेल की यात्रा अब इतनी प्रचलित हो गई है, इतनी आवश्यक हो गई है कि उसके बिना किसी का काम ही नहीं चल सकता। तीसरे दर्जे में चाहे जितनी दिक़्क़त और मुसीबत हो, लोग—किराया कम होने के कारण—उसमें यात्रा करना न छोड़ेंगे। इसी से किराया दूना बढ़ाकर भी कंपनियों ने

तीसरे दर्जे की गाड़ियों में भेड़-बकरियों की तरह मुसाफ़िरों को ठूसना नहीं बंद किया। तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों को रेल-कंपनियाँ पशुओं से बढ़कर नहीं समझतीं, इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि ट्रेनों में एंजिन के पास सबके आगे तीसरे ही दर्जे के डिब्बे लगाए जाते हैं, फ़र्स्ट और सेकिंड के डिब्बे पीछे की तरफ़ रहते हैं। मतलब यह कि गाड़ी कभी अगर लड़ जाय, तो तीसरे दर्जे के लोगों की ही जानें जायँगी, और फ़र्स्ट-सेकिंड क्लासों के यात्रियों पर आँच न आने पावेगी। ऐसा ही अक्सर होता है। अभी हाल में एन्० डब्ल्यू० रेलवे-लाइन के मांटगोमरी-स्टेशन के पास जो रेल-दुर्घटना हुई है, उसमें क़रीब-क़रीब तीसरे दर्जे के यात्री हिंदोस्तानी ही मरे और घायल हुए हैं। प्रकाशित हुआ है कि १०० से ऊपर मौतें हुईं, और १००-१५० ज़ख़्मी हुए हैं। सिंधी तीर्थ-यात्री इसमें थे; वे अधिक संख्या में मरे हैं। इसमें संदेह नहीं कि ऐसे अवसरों पर मरे और घायल आदमियों की ठीक-ठीक संख्या मालूम होना असंभव हुआ करता है। अतः इतने से अधिक ही मरे और ज़ख़्मी हुए होंगे। इतनी जानें जाने की ज़िम्मेदारी किस पर है? कितने परिवार अनाथ हो गए होंगे, कितने परिवारों का ख़ातमा ही हो गया होगा। उनकी क्षति की पूर्ति कौन करेगा? यह सच है कि रेल-कंपनी पर क्षति-पूर्ति के लिये दावा किया जा सकता है, और नाम-मात्र की रक़म कदाचित् मिल भी सकती है; मगर दावा करने का सुबीता, धन और ज्ञान कितने वारिसों को होगा, यह किसी से छिपा नहीं है। रेल-कंपनी क्या ऐसी भयंकर दुर्घटनाओं के होने में दोषी नहीं है? क्या असिस्टेंट स्टेशन-मास्टर, ड्राइवर या पैटमैन ही दोषी होते हैं? कदापि नहीं। वर्ष में ऐसी दुर्घटनाओं की संख्या कुछ कम नहीं होती। फिर भी उन्हें रोकने का यथेष्ट प्रयत्न न करना क्या कंपनियों का अपराध नहीं माना जा सकता? अब तो लगभग सभी बड़ी और बहुविस्तृत रेलवे-लाइनें सरकार के हाथ में आ गई हैं। क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि सरकार तीसरे दर्जे के यात्रियों के कष्टों को कम करने की ओर ध्यान देगी; रेल-दुर्घटनाओं को रोकने के उपाय निकालने और उनको अमल में लाने की बुद्धिमानी दिखावेगी?

× × ×

१८. अस्वीकृत लेखों के विषय में

गत दो वर्षों में हमारे पास अस्वीकृत लेख इतने अधिक जमा हो गए थे कि उन्हें सँभालकर रखना हमारी शक्ति से बाहर का काम था। इसीलिये इस तीसरे नव वर्ष से हमने यह नियम कर दिया है कि अस्वीकृत लेख एक दिन भी कार्यालय में न रख छोड़ा जाय, बल्कि अस्वीकृत होते ही लेखक को लौटा दिया जाय। अब बराबर इसी नियम के अनुसार कार्य हो रहा है। हाँ, गत वर्ष के अस्वीकृत लेख नष्ट कर दिए गए हैं, उनके लिये कोई सज्जन अब व्यर्थ की लिखा-पढ़ी न करें; क्योंकि उस संबंध में अब कुछ कारवाई नहीं की जा सकती।

× × ×

१९. गत वर्ष का माधुरी-पुरस्कार

वैशाख की संख्या का पुरस्कार 'कुछ दोहे' के लेखक पं० काशीप्रसाद द्विवेदी को दिया गया है। निर्णायक थे कविवर त्रिशूलजी, पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी एम्०ए०, एल्० टी० और पं० शालग्राम शास्त्री। त्रिशूलजी की राय श्रीयुत प्रेमदास वैष्णवजी की कविता 'दिनों का फेर' के लिये थी। अन्य दो सज्जनों की राय पुरस्कृत कविता के लिये थी।

ज्येष्ठ की संख्या के निर्णायक थे पं० रामचंद्र शुक्ल, हरिऔधजी और शंकरजी। शुक्लजी ने 'याद' कविता के लिये राय दी। हरिऔधजी ने 'बूँद' और 'याद', दोनों को पसंद किया। शंकरजी ने कुछ राय नहीं दी। अतः 'याद' के लेखक पं० भूपनारायण दीक्षितजी को पुरस्कार दिया गया।

आषाढ़ की संख्या के निर्णायक थे पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, पं० बद्रीनाथजी भट्ट बी० ए० और बाबू शिवपूजनसहाय। चतुर्वेदीजी और शिवपूजनजी ने मणिराम गुप्त की 'मृत्यु' कविता पसंद की। भट्टजी ने पं० हर्षदेव ओली की कविता के लिये राय दी। अतः मणिरामजी गुप्त को पुरस्कार दिया गया।

१. रंगीन

'शाहजहाँ की परलोक-यात्रा'-नामक चार रंगवाला पहला चित्र अत्यंत प्राचीन और बहुमूल्य है। यह पटना-कॉलेज के प्रोफ़ेसर श्रीयुत योगींद्रनाथ समाद्दार की कृपा से प्राप्त हुआ है। उससे संबंध रखनेवाला लेख "पूर्वी चित्रों का संग्रह" इसी संख्या के 'सुमन-संचय' में प्रकाशित किया गया है। चित्र बहुत पुराना है, पर आज भी उसमें रंगों की ताज़गी, चमक-दमक और सुंदरता वैसी ही बनी हुई है। किस शान-शौक़त के साथ मुग़ल-सम्राट् के शव का शांति-पूर्ण जलूस जा रहा है, यह अंकित करने में चित्रकार ने बड़ा कमाल किया है।

'ध्यान'-नामक दूसरा त्रिवर्ण चित्र मगरौरा (गवालियर)-निवासी श्रीयुत राजा लोकपालसिंहजी की रस-पीयूष-वर्षिणी लेखनी की करामात है। नील-सलिल-वाहिनी कालिंदी के रमणीय तट पर, नीरव निकुंजों की निविड़ सघनता में, श्यामा-श्याम के ध्यान में मग्न है—कितनी अगाध तल्लीनता है, कैसी अविरल आनंदानुभूति है, इस आत्मविस्मृति में कितनी अनन्यता है!

तीसरा चित्र 'सुदामा' है। इसके चित्रकार हैं टिहरी-गढ़वाल-निवासी श्रीयुत ठाकुर भरतसिंहजी। द्वारका में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वार पर सुदामाजी खड़े हैं। द्वारपाल उनको अंदर जाने से रोकता है। सुदामाजी की सूरत देखिए, दुर्बलता की साक्षात् मूर्ति खड़ी है। इस कंगाल विप्र का कंकाल देखकर और भगवान् श्रीकृष्ण से मित्रता के नाते मिलने जाने का संवाद सुनकर द्वारपाल चकित और स्तंभित-सा हो रहा है। ठाकुर साहब ने सुदामाजी का स्वाभाविक चित्र अंकित करने में बड़ी निपुणता दिखाई है।

२. व्यंग्य

'सेठजी का धर्म'-नामक पहला व्यंग्य-चित्र माधुरी के प्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा का बनाया हुआ है। सेठजी विदेशी वस्तु के व्यापारी हैं, विदेशी कंपनियों के एजेंट के सामने अनुनय-विनय कर रहे हैं। असल लाभ तो वह उठाता है, और यह दलाली-मात्र के लिये उसके सामने दिन-रात दुम हिलाया करते हैं।

दूसरा व्यंग्य-चित्र 'मिस्टर अल्फ़ाबेट्स्' है। उसको माधुरी के सुपरिचित चित्रकार श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू ने बनाया है। उसी चित्र के नीचे उसका परिचय देखिए।

Registered No. A. 1127.

Printed and Published by K. D. Seth, at the Newul Kishore Press, Lucknow.

वर्ष ३ ; खंड १]　　आश्विन, ३०१ तुलसी-संवत्　　[संख्या [illegible] ; पूर्ण संख्या २७

संपादक—
श्रीदुलारेलाल भार्गव
श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥)　　छमाही मूल्य ३॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

विदा

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]

चलत लाल के मैं कियो हियरो हाय पखानु ;
कहा करौं, दरकत नहीं इते वियोग-कृसानु ।

(महाकवि मतिराम)

N. K. Press, Lucknow.

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष २ खंड १	आश्विन-शुक्ल ७, ३०१ तुलसी-संवत् (१९८१ वि०)— ५ ऑक्टोबर, १९२४ ई०	संख्या ३ पूर्ण संख्या २७

भ्रमर-गीत

(१)

कहाँ-कहाँ भ्रमि आयौ रे भ्रमरवर
सुमन-द्रुमन रस-भवन रमन हित,
कौन-कौन दिसि धायौ रे भ्रमरवर

(२)

कौन-कौन-से सुमन-द्रुमन में,
कौन-कौन रस भायौ रे भ्रमरवर
कौन-कौन रस त्यागन कीनौ,
कौन-कौन अपनायौ रे भ्रमरवर

(३)

कौन-कौन कौ कौन-कौन प्रति,
कौन-कौन गुन गायौ रे भ्रमरवर
मौन कौ मारग गह्यौ कौन प्रति,
कौन सौं अति बतरायौ रे भ्रमरवर

(४)

मंजु गुंज सौं किन सुमनन कौं,
प्रेम-पुंज-रस प्यायौ रे भ्रमरवर
धाय-धाय किन-किन कलियन ढिंग,
नित-नित नेह वढ़ायौ रे भ्रमरवर

(५)

छकि मकरंद भ्रमर-भ्रमरिन सँग,
कहाँ-कहाँ दुंद मचायौ रे भ्रमरवर
कहाँ-कहाँ भटकि-भटकि भ्रम में परि,
गाँठि कौ ज्ञान गमायौ रे भ्रमरवर

(६)

कहाँ-कहाँ प्रीति की रीति निबाही,
कहाँ छल-छंद चलायौ रे भ्रमरवर
कौन-कौन सौं रीस करी तैंने,
कौन कौं सीस झुकायौ रे भ्रमरवर

(७)

भ्रमत-भ्रमत नित रस लैबे हित,
जीवन इतिक बितायौ रे भ्रमरवर
कहाँ कितिक की आस करी तैंने,
कहाँ कितिक रस पायौ रे भ्रमरवर
कहाँ-कहाँ भ्रमि आयौ रे भ्रमरवर

मलंगाह, मसूरी
२ । ८ । २४

श्रीधर पाठक

हिंदू-जाति की दुर्दशा के कारण और उसके निवारण के उपाय

धेरी रात है। घन-घोर घटाएँ छा रही हैं। बिजली चमक-चमककर कभी-कभी प्रकाश डाल देती है। देश भक्त अपने मार्ग पर चला जा रहा है। ऐसी दशा में देश-भक्त के रिश्तेदारों, मित्रों और संबंधियों को फ़िक्र होती है कि देश-भक्त ऐसे समय में अकेला दुःख पाता होगा। परंतु संकट में कौन आड़े आता है? आख़िरकार जो सच्चा प्रेमी होता है, वही झाड़ियों में छिपे हुए बनैले पशुओं के भय को त्यागकर अँधेरे में जाता और अपने प्यारे देश-भक्त की सहायता करता है। आज ठीक यही काम आर्य-समाज कर रहा है। हिंदू-समाज सोया हुआ है। थोड़े-से आदमी आगे बढ़े हैं। बाक़ी तो यही कहते हैं कि मंत्र तो मैं फूँकूँ, और साँप की बाँबी में हाथ तू डाल। औरतें उड़ाई जा रही हैं; विधवाएँ भगाई जा रही हैं; बच्चे चुपके-चुपके मुसलमान बनाए जा रहे हैं; गाँव-गाँव में मौलवी, साधुओं के वेष में, घूम रहे हैं। इस तरह संगठित रूप में मुसलमानी मत का प्रचार किया जा रहा है। संक्षेप में, मौलाना ख़्वाजा हसन निज़ामी की स्कीम ख़ूब काम कर रही है। परंतु हिंदू-जाति वह ख़र्राटे की नींद सो रही है, जिसकी मिसाल संसार के इतिहास में मिलनी मुश्किल है।

हमारी अधोगति का पहला कारण यह है कि हमने क्षात्र-धर्म छोड़कर व्यक्तिगत धर्म को सामाजिक और जातीय धर्म से उच्च समझ रक्खा है। अपने खाने-पीने, ऐश-आराम, बिरादरी के रीति-रवाज और शादी-ग़मी आदि व्यवहारों को हम अच्छा मानते हैं; पर जिस बात से सारे समाज को लाभ पहुँच सकता है, उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते। सब लोग अपनी-अपनी दाढ़ी की आग बुझाने में लगे हुए हैं। यद्यपि यह बात ठीक है कि यदि प्रत्येक आदमी सुधर जाय, और अपनी-अपनी फ़िक्र करे, तो सारा समाज सुधर सकता है; परंतु वस्तुतः दुनिया में सब आदमी ऐसी बुद्धि के नहीं होते; और यदि उन लोगों को उन्हीं पर छोड़ दिया जाय, तो कुछ भी न हो, रहा-सहा भी नष्ट हो जाय। जयचंद की स्वार्थसिद्धि के लिये सारी जाति को नुक़सान उठाना और ग़ुलाम बनना पड़ा। परंतु हिंदू-समाज का हाल वैसा ही है, जैसा दिन-रात के जीवन में हम सर्व-साधारण का हाल देखते हैं। एक हिंदू अपना मकान साफ़कर सारा कूड़ा-करकट अपने दरवाज़े के बाहर फेंक देता है। उस कूड़े-करकट से दुर्गंध उत्पन्न होती है; बीमारी फैलती है; सारा समाज दुःख पाता है। इसी प्रकार, तालाब से घड़ा भर लाकर हम समझते हैं कि हम स्वयं पानी पी लेंगे, चौका लगा लेंगे, पवित्र हो जायँगे। परंतु हम, उस तालाब की रक्षा के ख़याल से, उसके आस-पास शौचादि न करने के नियम का पालन नहीं करते। फल क्या होता है? पानी गंदा हो जाता है; बीमारी फैल जाती है। इसलिये, प्रत्येक हिंदू का यह लाज़मी फ़र्ज़ है कि बच्चों की पढ़ाई, शहर की सफ़ाई, मंदिर और गऊ की रक्षा आदि जातीय धर्मों को व्यक्तिगत धर्म से ऊँचा माने।

दूसरा कारण यह है कि हम बीमार हैं; पर हमें बीमारी का अनुभव ही नहीं होता। बीमारी के

लक्षण स्पष्ट हैं—भूक नहीं लगती; खाया हुआ नहीं पचता; चला-फिरा नहीं जाता; खाट पर पड़े रहने में ही सुख मिलता है। हिंदू-जाति दूसरों को हज़म नहीं कर सकती। अगर हज़म करना चाहती है, तो क़ै हो जाती है। बात-बात में दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है। हमारे देवतों की सवारी तभी निकलने पाती है, जब सरकारी मदद मिलती है। नहीं तो, देवता तालों में ही बंद रहते हैं!

शरीर में जब बाहरी पदार्थ (Foreign Matter) आ जाता है, तब शरीर सड़ जाता है। इसलिये शरीर से बाहरी पदार्थ निकाल डालना चाहिए, चाहे वह मुसलमानियत हो, या ईसाइयत। जब लक़वा मार जाता है, तब लक़वा मारी हुई जगह पर डॉक्टर यदि छुरा भी मारे, तो मरीज़ को उसका ज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार हिंदू-जाति पंगु हो रही है। स्त्रियों को मूर्ख बना रखने के कारण हम अर्द्धांग-रोग से पीड़ित हो गए; छुआ-छूत के विचार ने हमारे पैर काटकर हमें लुंज बना दिया। परंतु आशा की केवल एक झलक बाक़ी रह गई है। वह यही कि हमारे शरीर का राजा 'दिल' अभी ज़िंदा है। अगर इस दिल को साहस के साथ सँभाला जाय, तो फिर नए रक्त का संचार होने से सारा शरीर बलिष्ठ बन सकता है।

प्यारे भाइयो, आत्म-बल पैदा करो। अनात्मा पर आत्मा का राज्य स्थापित करो। अपने को, देश-काल के अनुसार, दूसरी ज़िंदा क़ौमों के समान बनाओ। हिंदू-जाति का बेड़ा पार हो जायगा। जीवन का अर्थ रेज़िस्टेंस (Resistence) है। जो क़ौम मुक़ाबला नहीं कर सकती, और कोरी शांति चाहती है, वह शीघ्र मर जाती है। अतएव जो जीवित रहना हो, तो ताक़त रखते हुए शांति पैदा करो। हमें यह मुर्दों की-सी शांति न चाहिए। हमें रोग-मुक्त पुरुष की-सी शांति की ज़रूरत है। हमारे लिये वह शांति श्रेयस्कर है, जिससे हमारी वृद्धि हो।

हिंदू कहने को तो २२ करोड़ हैं, पर इनकी रिज़ल्टेंट पॉवर (परिणाम-शक्ति) कुछ नहीं है। जैसे, एक मकान में पाँच हज़ार आदमी बैठे हों, और उस पर हमला होने पर सब किनारा कस लें, केवल पाँच आदमी मुक़ाबला करें, तो उन पाँच हज़ार आदमियों की रिज़ल्टेंट पॉवर केवल पाँच होगी। इसलिये प्रत्येक हिंदू को अनुभव करना चाहिए कि हम बीमार हैं। साथ ही उस बीमारी के मूल-कारणों को दूर करना चाहिए। अर्थात् शुद्धि, हिंदू-संगठन और दलितोद्धार में पूर्ण शक्ति के साथ हमें लग जाना चाहिए। इस तारबर्क़ी के ज़माने में यदि हम रूढ़ि के ग़ुलाम होकर छकड़ा-गाड़ी में चलेंगे, तो पीस डाले जायँगे।

तीसरा कारण यह है कि हिंदू किसी बात में अपनी ज़िम्मेवारी नहीं महसूस करते। कोई हिंदू पिट रहा है, कोई सताया जा रहा है, किसी स्त्री पर बलात्कार हो रहा है, कोई बच्चा फुसलाया जा रहा है; पर हिंदू सोचता है, मुझसे क्या मतलब? मैं क्यों झगड़े में पड़ूँ? इसका नतीजा वही होता है, जो उस गाँव के निवासियों का होना चाहिए, जहाँ एक झोपड़ी में आग लगने पर उस झोपड़ी की तो आग बुझाते नहीं, अपनी-ही-अपनी झोपड़ी की रक्षा करने लगते हैं, और इस प्रकार सारा गाँव जलकर ख़ाक हो जाता है। इसी तरह हमें, मंत्री या प्रधान अधिकारी न बनकर, मिशनरी

बनना चाहिए। किसी औरत या बच्चे के उड़ाए जाने पर यह न सोचना चाहिए कि हिंदू-रक्षा-समिति तो बचा ही लेगी, मैं क्यों झगड़े में पड़ूँ? बल्कि यह सोचना चाहिए कि यदि इसका प्रतिकार या विपद्ग्रस्त भाई-बहनों की सहायता मैं न करूँगा, तो और कौन करेगा? यदि प्रत्येक हिंदू ग़ैर-ज़िम्मेवार रहा, तो वही हाल होगा, जो एक राजा की इस आज्ञा पर हुआ था कि "सब लोग हौज़ में दूध के घड़े डालें", और सभी ने यह सोचकर पानी डाला था कि सब तो दूध ही डालेंगे, मेरे पानी डालने की ख़बर किसे होगी?

चौथा कारण यह है कि हममें से हरएक आदमी अपने को नेता मानता है। प्रत्येक आदमी यह समझता है कि मेरे बराबर बुद्धिमान् कोई नहीं है। लोग ज़रा भी अपनी इच्छा के अनुसार कार्य न होते ही या तो काम छोड़ देते हैं, या दल-बंदी करके एक दूसरे की नुक्ताचीनी में ही सिर-फुड़व्वल करते और सारी ताक़त इसी में ख़र्च कर डालते हैं। मुसलमान लोग मुल्ला को मानते हैं। मुल्ला ने जो कुछ कह दिया, बस, सारा समाज उसी के पीछे चल पड़ा। व्यक्तिगत स्वतंत्रता बड़ी अच्छी बात है। परंतु यह दार्शनिक लोगों के लिये है। दुनिया में गँवार अधिक हैं। उनमें इतनी विद्या-बुद्धि नहीं कि वे सत्यासत्य का निर्णय कर सकें; और न उनके पास इतना समय ही है कि वे बड़े-बड़े ग्रंथ पढ़ सकें। अपढ़ दुनिया तो यह चाहती है कि कोई पढ़ा-लिखा सज्जन उसे सीधा सच्चा रास्ता बतला दे, जिस पर चलकर वह अनायास अपने लक्ष्य पर पहुँच जाय। महाभारत में लिखा है—"महाजनो येन गतः स पंथाः।" अर्थात् विद्या-बुद्धि-वय में बड़े लोग जिस राह से चलें, वही ठीक राह है। गीता में भी लिखा है—"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।" अर्थात् जो कुछ बड़े आदमी करते हैं, वही साधारण लोग भी करने लगते हैं। जिस फ़ौज का जनरल कायर होता है, वह फ़ौज अवश्य हारती है। हिंदू-समाज को चाहिए, वह ख़ूब सोच-समझकर अपना कोई यथार्थ वीर नेता चुने; और एक बार जिसे अपना अगुआ मान ले, उसकी आज्ञा का तब तक पालन करता रहे, जब तक वह मुख्य लक्ष्य की ओर अविचल भाव से बढ़ता चला जाय।

पाँचवाँ कारण यह है कि हम धन के अनन्य उपासक हो गए हैं। मुख से तो आत्मा को अजर, अमर मानते हैं, पर हमारा वास्तविक जीवन इसके विपरीत है। ऊपर से हम कहते हैं, संसार असार है; परंतु वास्तव में हम इस संसार के समस्त प्रलोभनों में फँसे हुए हैं। हमें अपना मिथ्या-जीवन छोड़ देना चाहिए। ऊपर कुछ और भीतर कुछ, कहना कुछ और करना कुछ—यही मिथ्या-जीवन है। दूकानदार दिन भर में ५००) रुपए भी कमायगा, तो उनसे सुख-भोग नहीं करेगा; बल्कि विवाह आदि के उपयुक्त अवसर पर ख़र्च करने के लिये उन्हें रख छोड़ेगा। जीवन का सुख भोगने के बदले रात के ११ बजे तक वह दूकान पर बैठा रहेगा। देश-देशांतर की यात्रा का उसे शौक़ नहीं। वह धन को या तो इसलिये एकत्र करेगा कि मुसलमान गुंडे दंगे में उसे लूट लें, और या इसलिये कि वह मुसलमानों को एक आना रुपया सूद पर क़र्ज़ दे सके। मुसलमान उसका माल उधार ले-लेकर ख़ूब खायगा; बरस-छः महीने तक शायद ब्याज भी दे देगा; परंतु इस ब्याज के ब्याज से असल भी

हज़म कर बैठेगा! अगर महाजन दावा करके डिगरी करावेगा, तो वह दिवालिया हो जाने की दर्ख़्वास्त दे देगा। अतः अंत को रुपया जमा करनेवाली मशीन का वही बुरा हाल होता है। इसलिये व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़कर ऐसे कामों में अपना धन लगाना चाहिए, जिनसे सारा समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर हो।

छठा कारण है आचरण की न्यूनता ; अर्थात् ब्रह्मचर्य का अभाव, और उसके कारण आत्मिक एवं शारीरिक बल की कमी। हम कहते हैं, पर करते नहीं। "संगच्छध्वं संवदध्वं संवोमनांसि जानताम्।"—साथ बैठो, संघ में एकत्र होकर, एक-मन होकर, काम करो—यह कहते तो हैं, पर जब एकत्र होने का अवसर आता है, तो होते ही नहीं। विधर्मी लोग इस वैदिक मंत्र को नहीं जानते; फिर भी वे मौक़े पर एकत्र हो ही जाते और हिंदुओं को अपने संघ-बल से पछाड़ देते हैं। कहना और बात है, उसका स्वाध्याय और बात है; पर उसका आचरण बड़ा कठिन है। प्रथम तो हम वेद को अपनी धार्मिक पुस्तक कहते ही नहीं। और, जो कहते भी हैं, उन्होंने वेद की सूरत ही कभी नहीं देखी। जो किसी ने वेद ख़रीदकर घर में रख भी लिए होंगे, तो वह उनका स्वाध्याय नहीं करता। कोई स्वाध्याय भी करता है, तो वह तदनुसार आचरण नहीं करता। फिर भला उन्नति किस प्रकार हो सकती है? मुसलमान और ईसाई अपना क़ुरान और बाइबिल अवश्य पढ़ते, देखते और सुनते हैं। हम अपनी प्राचीन इतिहास-कथाएँ सुनना भी छोड़ बैठे हैं। सब हिंदुओं को वेद की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। सबको वर्णाश्रम-धर्म पर कर्मानुसार चलना चाहिए। कोरे विश्वास के फेर में न पड़कर तर्क की बुद्धि से विचार करते हुए—एक भाषा, एक वेष, एक भाव और एक धर्म का प्रचार करते हुए—जातीय संगठन के सूत्र में बँधना चाहिए। तभी वह प्राचीन हिंदू-गौरव पुनः प्राप्त होगा। यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि रत्ती-भर आचरण सौ मन कोरे मनन से अधिक लाभदायक है।

सातवाँ कारण यह है कि हिंदू पहले तो अपने बच्चों की धार्मिक और सांसारिक शिक्षा का प्रबंध नहीं करते, पर जब वे भूल से ईसाई अथवा मुसलमान हो जाते हैं, तो फिर रोते हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि हिंदू-जाति की संख्या दिन-दिन कम होती जाती है। यही हाल अगर रहा, तो एक दिन ऐसा आवेगा, जब हिंदू नेस्तनाबूद हो जावेंगे, और सारा भारत ईसाई तथा मुसलमानों की बस्ती बन जायगा। अभी देखिए, एशिया के अफ़ग़ानिस्तान, फ़ारस, बुख़ारा, मेसोपोटामिया, अरब, टर्की आदि देशों में आर्यों की जगह मुसलमान-ही-मुसलमान बस गए हैं। योरप में भी आर्यों की जगह हर तरफ़ ईसाई-ही-ईसाई नज़र आते हैं। मदरास में भी क़रीब-क़रीब यही हाल है। तमाम ईसाई ही नज़र आते हैं। हमारा तो यही विश्वास है कि हिंदू-धर्म में गिरे हुओं को ऊपर उठाने की, भूले हुओं को सन्मार्ग बतलाने की, पर्याप्त शक्ति है। स्मृतियों में पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त का विधान है। सारा प्राचीन हिंदू-इतिहास इस बात का साक्षी है। इसलिये शुद्धि-आंदोलन हिंदू-समाज को पुनर्जीवित करनेवाली अमोघ औषध है।

आठवाँ कारण है जात-पाँत और छूत-छात का जटिल बंधन। यह अन्याय का एक बड़ा भारी कारण है। उस क़ौम में संगठन और प्रेम कदापि नहीं हो सकता, जिसमें परस्पर अन्याय और

अत्याचार का वर्ताव होता है। हिंदू लोग उच्च शिक्षा-प्राप्त, सदाचारी शूद्र को भी शास्त्र पढ़ने का अधिकारी नहीं मानते ; पर मूर्ख-से-मूर्ख ब्राह्मण की प्रतिष्ठा करते हैं। यह अन्याय है। न्याय तो यह है कि यदि कोई धनवान् होकर भी चोरी करे, तो वह उससे कहीं अधिक दंड का भागी है, जो पेट के लिये चोरी करता है। परंतु यहाँ बात बिलकुल उलटी है। ब्राह्मण ही को कम दंडनीय माना गया है। इसीलिये स्वामी दयानंद ने कहा है कि जन्म से जाति मानना छोड़कर कर्म से वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा पालो। एक वर्ण का दूसरे वर्ण के साथ अन्यायाचरण ही हिंदू-समाज की जड़ को खोखला कर रहा है। जिस जाति के कुछ लोग अपने ही भाइयों को इतनी घृणा से देखें कि उनके दर्शन-मात्र से अपने को अपवित्र समझें, वह जाति भला कैसे पनप सकती है? संसार का प्रबंध धर्म और न्याय के अनुसार तभी स्थिर रह सकता है, जब प्रत्येक मनुष्य अपने अधिकार पर स्थिर रहे ; न स्वयं दूसरों के अधिकार पर हस्तक्षेप करे, और न दूसरे को अपने अधिकार पर हस्तक्षेप करने दे। शूद्रों ने द्विजों के जुल्म सहकर उन्हें अपने अधिकार में हस्तक्षेप करने दिया, और ब्राह्मणों ने शूद्रों पर जुल्म करके उनके अधिकारों पर अनुचित हस्तक्षेप किया। इसलिये शूद्र और द्विज, दोनों ही दोषी हैं। दोनों ही की दुर्दशा भी हो रही है। इसलिये ऊँची जातिवालों को चाहिए कि अपना मिथ्याभिमान त्याग कर अपने उन स्वधर्मी हिंदू भाइयों को सप्रेम अपनावें, जिनको वे अंत्यज या अछूत समझे बैठे हैं, यद्यपि कम-से-कम ईसाई और मुसलमानों से तो वे अवश्य ही अधिक उच्च हैं। यह अछूतपन का हमारे शरीर में फोड़ा है। मवाद इकट्ठा हो गया है। बदबू फैल रही है। अब तो चीर-फाड़ करके इस फोड़े को नेस्तनाबूद कर देना चाहिए।

नवाँ कारण है संघशक्ति का अभाव। सब हिंदू एक स्थान में, कम-से-कम महीने में दो बार, एकत्र होकर यदि अपनी सामाजिक दशा पर विचार किया करें, तो बहुत कुछ हो सकता है। जिस जाति में समष्टि-रूप से जितना अधिक कार्य करने की शक्ति होती है, वह जाति उतना ही अधिक बलवान् समझी जाती है। इँगलैंडवालों पर जब फ्रांस ने हमला किया, तो रोमन-कैथलिक, प्रोटेस्टेंट आदि सबने मिलकर उसे रोका। इससे अँगरेज़-जाति बलशाली बन गई। हिंदुओं में एक वर्ण दूसरे वर्ण से तथा एक संप्रदाय दूसरे संप्रदाय से इतना अलग रहता है कि कोई एक दूसरे के दुख-दर्द में आड़े नहीं आता। यही हाल उस समय था, जब भारत पर विदेशियों के हमले हुए। एक राजा चैन करता था, दूसरा लड़ते-लड़ते बरबाद हो जाता था। फल यह हुआ कि हिंदू-राज्य नष्ट हो गया। हिंदू इसी लिये पिटते हैं कि जब क्षत्रिय पिटने लगता है, तो वैश्य तमाशा देखता है ; और जब वैश्य पिटता है, तो ब्राह्मण तमाशा देखता है। इसी प्रकार जब ब्राह्मण पिटता है, तो शूद्र तमाशा देखता है। संगठन नहीं, समष्टि-रूप से कार्य करने की शक्ति नहीं। अलगाव का भाव यहाँ तक फैला हुआ है कि मंदिरों पर भी जब मुसलमानी हमले होते हैं, तो हिंदू परस्पर सहायता नहीं करते; बल्कि कहने लगते हैं—यह वैश्यों का मंदिर है, यह कहारों का है, यह नाइयों का है, यह आर्यसमाजियों का और यह सिखों का है। हमसे क्या मतलब?

प्यारे भाइयो, यदि सुख चाहते हो, तो सब

मिलकर प्रेम से संगठित काम करो। पर वह संगठन आंतरिक हो, ऊपरी या दिखाऊ नहीं। मुसलमानों के फ़िर्के एक दूसरे के साथ लड़ते-झगड़ते रहते हैं। परंतु अन्य धर्मावलंबियों से सामना पड़ने पर मुसलमानों का हरएक फ़िर्का मिलकर अपने पारस्परिक प्रेम और जातीय संगठन का परिचय देता है।

दसवाँ कारण यह है कि धर्म को ब्राह्मणों ने अपनी बपौती समझ रक्खा है। उन्होंने दूसरों के लिये धर्म का द्वार बंद-सा कर दिया है। परंतु यह स्मरण रहे कि प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है कि वह जितना चाहे, उतना धर्मोपार्जन करे। धर्म परमात्मा को प्राप्त करने का साधन है। उसमें धन, बल, जाति, रंग आदि का मिथ्याभिमान नहीं आ सकता। यह माना हुआ सिद्धांत है कि जिस जाति में धनवान् और बलवान् अधिक, और दुर्बल तथा दरिद्र कम हों, वही संपन्न, सभ्य और उन्नत जाति है। इसलिये आजकल प्रत्येक जाति यही प्रयत्न कर रही है कि उसमें नीच जातियाँ कम और उच्च जातियाँ अधिक हों। इसी लिये तो पाश्चात्य मज़दूर भी अब अधिक धन प्राप्त कर ऊँची जातियों के बराबर बनने के लिये लड़ रहे हैं। मनु महाराज ने भी कहा है कि जिस जाति में शूद्र अधिक होते हैं, उसमें दुर्भिक्ष, प्लेग आदि छुआ-छूत की बीमारियाँ अधिक फैलती हैं। जिस जाति में विद्वान् कम होंगे, वह अवश्य नाश को प्राप्त होगी। आजकल भारत में दुर्भिक्ष और प्लेग का प्रचार इसी लिये है कि हम शूद्रों को द्विज नहीं बनाते। पहले धर्म का दरवाज़ा खोलकर इन शूद्रों को द्विज बनाओ, उनको विद्या और धर्म का दान दो, फिर तो "यथेमां वाचं कल्याणीं" के वैदिक उपदेश से संसार में सुख और शांति अवश्य ही फैलेगी। तुममें पूर्ण बल विद्यमान है। केवल अपनी शक्ति के अनुभव की आवश्यकता है। आत्मशक्ति का अनुभव करो। दलितोद्धार और शुद्धि में तन-मन-धन से लग जाओ। मिथ्या अभिमान छोड़कर कृष्ण और सुदामा की तरह ग़रीब और अमीर एक दूसरे से प्रेम करो। तभी बृहत् हिंदू-जाति का संगठन होगा, और संसार में आर्य-जाति का प्राचीन देदीप्यमान गौरव प्रतिष्ठित होगा। *

कुँअर चाँदकरण शारदा

जर्मनी के पूर्वी समुद्र के स्नान-तीर्थ
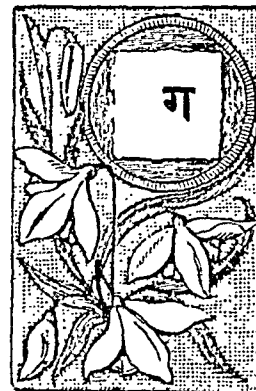
गरमी की छुट्टियाँ हैं। तबीयत ख़राब है। कलकत्ते में मंदाग्नि का रोग था। पर योरप पहुँचने से पहले ही जहाज़ में स्वयं दूर हो गया था। इधर दस-बारह दिन से फिर डिस्पेप्सिया की शिकायत होने लगी। कभी-कभी कुछ बुख़ार की-सी शिकायत मालूम पड़ने लगी। मैं घबराया। कलकत्ते में एक लालाबाबू मुझसे सदा कहा करते थे—Dispepsia is hydra-headed, अर्थात् "मंदाग्नि सब रोगों की जड़ है", यह सहस्रबाहु है। अतः मैं डरा कि कहीं यह बला चिमट न जाय। इतने में एक रोज़ शारलॉटनबुर्ग (Charlottenburg)-स्टेशन पर देखता क्या हूँ, मित्र ह० मेरे डब्बे में सवार हो रहे हैं। मैंने कहा—"बंदे।" बोले—"अजी वाह, तुमसे अच्छी भेंट हो गई। कल तुमको टेलीफ़ोन किया, पर मकान में कोई नहीं था। अच्छा हुआ, मौक़े पर मिल गए। तुमसे कुछ बातचीत करनी है।" उन्होंने आलबेक (Ahlbeck) में एक बड़ा होटल, मय काबोर (Cabaret)—नाचघर—वग़ैरह के, इस

---

* कई बातों में मतभेद होने पर भी हम शारदाजी के इस लेख को उपयोगी समझकर प्रकाशित करते हैं।—संपादक

मौसम के लिये, किराए पर ले रक्खा था। उन्होंने मुझे निमंत्रित किया। आलबेक स्वास्थ्यकर स्थान है। मैं तुरंत राज़ी हो गया। अंधा क्या चाहे, आँखें।

बर्लिन से आलबेक चार घंटे का रास्ता है। पैसेंजर-गाड़ी से आठ घंटे से ज़्यादा लग जाते हैं। जर्मनी के उत्तर, पूर्वी-समुद्र (Ost See) के किनारे यह छोटा-सा ग्राम बसा हुआ है। जाड़ों में यहाँ बड़ी सरदी पड़ती है। बर्फ़ तो योरप में साधारण बात है। पर यहाँ समुद्र तक जम जाता है। पानी लहराते-लहराते अकड़ जाता है। ऊँची-नीची लहरें जैसी-की-तैसी खड़ी रह जाती हैं। कहते हैं, यह दृश्य बहुत सुंदर मालूम पड़ता है। किंतु इसे देखनेवाले उस समय बहुत कम रह जाते हैं सरदियों में, आलबेक में, दो महीने यह रहता है। इस समय यहाँ बड़ी धूम रहती है। ढाई हज़ार से कम की आबादी के इस छोटे-से गाँव में छठी से दसवीं जुलाई के बीच इतने भले-चंगे रोगी आ जाते हैं कि आश्चर्य होने लगता है। पाँचवीं जुलाई तक भूले-भटके-से दो-चार आदमी नज़र आते हैं। लेकिन दसवीं को समझ में नहीं आता कि एकाएक इतने आदमी कहाँ से आ गए। बरसाती मेढकों की उपज भी तो इस तेज़ी से न बढ़ती होगी!

जो हो, हम लोगों को छठी जुलाई तक होटल ठीक-ठाक कर रखना था। इसलिये जून में वहाँ पहुँच गए। अभी Vorsaison (फ़ोरज़ेज़ोंग) है। इसका मतलब यह है कि सीज़न (मौसम) में यहाँ महँगी बढ़

आलबेक, हेरिंग्स डार्फ़, बानज़ीन और स्विनेम्युंडे का मानचित्र

जाती है। पर चूँकि जून में गरमी फिर आती है, इसलिये वे मध्यवित्त लोग यहाँ सैर के लिये आते हैं, जिन्हें सस्ते में समुद्री स्नान का आनंद लेने के साथ अपना स्वास्थ्य सुधारना होता है। ये लोग जुलाई के आरंभ में ही भाग जाते हैं—"कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं!" कारण, जब इस छोटे गाँव में सोलह हज़ार से बीस हज़ार तक (एक बार तो यहाँ क़रीब चौबीस हज़ार सैलानी आ
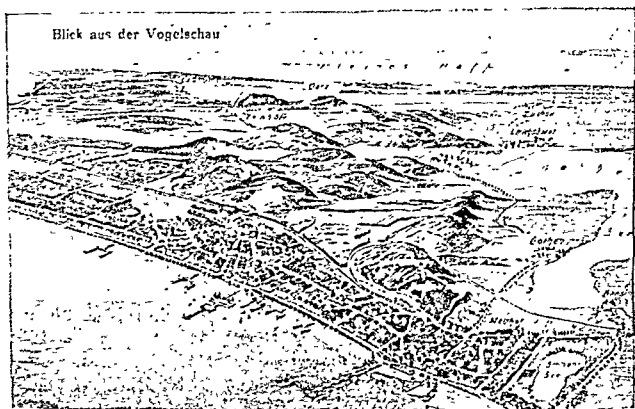
सिवा पाँच-सात सौ मछलीवालों के और कोई नहीं रहता। जिनके वहाँ होटल और मकान हैं, वे बाहर जाकर आनंद करते हैं। बेचारे धीमर भाप में पकाई हुई पुरानी मछलियों के बक्स खोलते और पुरानी कमाई से शराब पी-पीकर गप-शप और नाच-कूद में अठारह घंटे की रातें बिताते हैं। ऐसे शीत-प्रधान स्थान में नैनीताल, मंसूरी, शिमले आदि की तरह मौसम आता है। जुलाई और अगस्त, केवल

धमके थे) आदमी आ जाते हैं, तो फिर पसीना बहाकर कमाई करनेवाले यहाँ रह नहीं सकते। कमरों का किराया बेहद बढ़ जाता है। कभी-कभी तो कमरा मिलता ही नहीं। इसी प्रकार सब चीज़ों की क़ीमत बहुत अधिक हो जाती है।

हम लोग बर्लिन के Stettiner Bahnhof (स्टेट्टीनी-स्टेशन) पर शाम को साढ़े सात बजे सवार हुए, और साढ़े ग्यारह बजे स्वीनेम्युंडे (Swinemünde) पहुँचे। वहाँ से आलबेक पाँच मिनट का रास्ता है। आलबेक भी रेलवे-स्टेशन है। छोटा रेलवे-स्टेशन, मामूली रोशनी, आने-जाने को तंग फाटक, दो-तीन कुली पीलीभीत और मैलानी के बीच के किसी छोटे स्टेशन की याद दिलाते हैं। स्टेशन पर बड़े-बड़े अक्षरों में "Ahlbeck" लिखा हुआ था। सोते हुए मुसाफ़िरों को जगाने के वास्ते "आलबेक, आलबेक" की पुकार भी सुनाई दी। हम लोग अर्ध-स्वप्नावस्था में फ़ौरन् उठ खड़े हुए। ओवरकोट डाँटा, टोप पहना, अपना-अपना सामान टटोलने लगे। एक-एक बक्स एक-एक हाथ में उठाकर नीचे उतरे।

योरप में कुली कम मिलते हैं; जो मिलते भी हैं, तो बड़े महँगे। विशेषकर जर्मनी में तो जो माँगें, सो थोड़ा। अभी बर्लिन में पाँच बक्सों के—रेल पर चढ़ाने के नहीं, बुकिंग ऑफ़िस में रखने के—क़रीब ९) रुपए ले लिए थे! इसलिये उसे ही लाभ है, जो अपना कुली आप बन जाय। यहाँ बोझ उठाने में लज्जा तो है ही नहीं। बड़े-से-बड़ा धनी अथवा विद्वान् गर्व के साथ अपना सामान खुद उठा लेता है। हज़ारों की भीड़ में, अपनी जान-पहचानवालों के सामने, अच्छे-अच्छे लोग बोझ से लदे और दुआ-सलाम करते हुए चले जाते हैं। योरप में कभी किसी के दिल में यह भाव ही नहीं उठता कि किसी भी प्रकार के काम करने में किसी आदमी को आपत्ति हो सकती है। भारत में लोग बड़े आश्चर्य से सुनते और पढ़ते हैं कि साबरमती-आश्रम में वहाँ के विद्यार्थी अपना मैला भी स्वयं साफ़ करते हैं। कुछ लोग इसे उन्नति का लक्षण समझते और कुछ इसमें धर्मग्लानि का स्पष्ट आभास पाते हैं। ब्राह्मण-विद्यार्थी और भंगी का काम! इससे बुरा [illegible] हो सकता है? किंतु योरप में सब आदमी ऐसे [illegible] भी तैयार रहते हैं। औ[illegible] देहातों तथा [illegible] करते भी हैं। इसलिये यहाँ अपने [illegible] किसकी शरम हो

आलबेक का दृश्य

बाहर गए। ऐसी उम्मीद कर रक्खी थी कि गाड़ी और मोटरें किराए पर मिलेंगी, और शीघ्र डेरे पर पहुँचा देंगी। पर देखा, बाहर सन्नाटा था। दो-चार देहाती लड़के खड़े थे, जो कुली का काम करना चाहते थे। पर उन्हें कोई अपना असबाब देना नहीं चाहता था। सबके पास एक या दो छोटे पोर्टमाटों या बक्स थे। वे खुद इतना उठा सकते थे; क्यों फ़ज़ूल पैसा ख़र्च करने लगे। हमारे पाँच बक्स खाने-पीने के सामान से भरे हुए ब्रेक में आए थे। इसलिये हम इधर-उधर होटल का आदमी देखने लगे। इतने में देखते क्या हैं, होटल का प्लेकार्ड चिपकाकर एक आदमी हाथ-गाड़ी खींचता स्टेशन की तरफ़ आ रहा है। हमने मालघर से सामान लिया, हाथ-गाड़ी पर चढ़ाया, और अपने आदमी के साथ पैदल चल पड़े। सामने जंगल; जंगल के बीच से तंग रास्ता; गाँव को जाना है। रोशनी यहाँ बिजली की है; पर बहुत कम। दूर-दूर छोटे-छोटे लैंप जल रहे हैं। लैंप के नीचे उजेला, आगे फिर अँधेरा आ जाता है। सड़क कहीं पत्थर से पटी हुई, और कहीं सादी। बीच-बीच में एक या दो मंज़िल के छोटे मकान। भारत के छोटे क़सबों की याद आ रही थी।

दस मिनट में Kurpark Hotel पहुँचे। हमें यहीं आना था। बर्लिन में ख़याल किया था कि ख़ूब बड़ी ऊँची इमारत होगी; लंबा-चौड़ा नाचघर, काबेर (Cabarett) का बढ़िया रंगमंच, खाने-पीने का विशाल भवन आदि-आदि। पर यहाँ दूसरा ही दृश्य सामने आया। बर्लिन की नक़ल पूरी-पूरी थी, लेकिन लघु मात्रा में। ऐसा मालूम पड़ा कि खिलौना है। मकान-मालिक ने हमारा अच्छा स्वागत किया। भोजन तैयार था। सोने के लिये कमरे ठीक कर रक्खे थे। चाय पी। थोड़ी देर गप-शप करने के बाद अपने-अपने कमरे में पहुँचा दिए गए। प्रायः दो बजे का समय था। दिशाएँ साफ़ होने लगी थीं। कमरे की खिड़की के सामने विशाल सागर फैला हुआ था। यह दृश्य देखते ही हृदय नाच उठा। मैं तुरत बरामदे में जाकर बैठ गया, और एकटक जलधि की अपूर्व छवि निहारने लगा। गर्जन धीमा है। छप-छप की हलकी आवाज़ आदमियों को सुलाने के लिये थपकी का काम दे रही है। समुद्र का पानी काली स्याही की तरह—जहाँ तक निगाह पहुँचती है—फैला हुआ है। बीच-बीच में सफ़ेद लकीरें दिखाई पड़ती हैं, जो जल्दी-जल्दी मिट जाती हैं। घंटे-भर से अधिक

जाड़ों में आलबेक
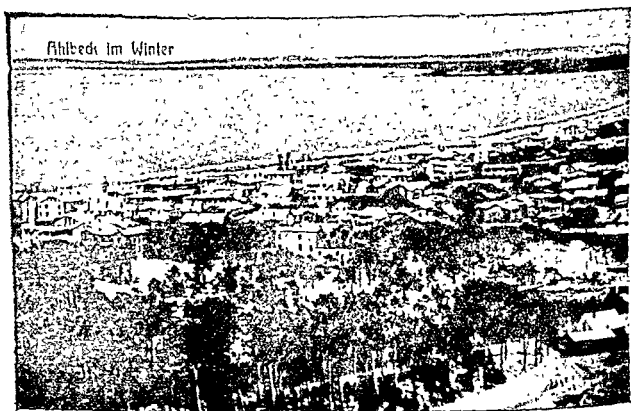
काठ की पुतली की तरह अपने स्थान पर बैठा रहा। अब ठंड मालूम पड़ने लगी। नींद का ज़ोर होने लगा। उठा, और खिड़की खोलकर, समुद्र की ओर मुँह फेरकर, भगवान् का नाम लेकर सो गया।

सबेरे पाँच बजे सूर्य की किरणें ठीक आँखों के ऊपर आ पड़ीं। आँखों में बेचैनी। तबीयत में उचाटपन। एक करवट बदली, फिर दूसरी। पर लक्षण नींद टूटने के ही दिखाई देने लगे। आँखें खोलीं। एकदम प्रकाश सारे कमरे में फैला हुआ था। खिड़की बंद की। रात को लकड़ी का परदा लटकाना भूल गया था। उसे अब ठीक किया। फिर पलँग में जाकर सो गया। मालूम पड़ा, यहाँ बर्लिन से बड़ा दिन होता है। सुबह साढ़े चार बजे भगवान् मरीचिमाली दर्शन देते हैं, शाम को सवा नव बजे अस्ताचल जाते हैं, और क़रीब ग्यारह बजे तक थोड़ा-बहुत उजाला रहता है। दूसरी बार जो सोया, तो दस बजे नींद खुली।

अभी होटल में काम की भीड़ नहीं है। इसलिये आज सब लोगों का इरादा समुद्र-स्नान करने और तट पर बालू के ऊपर लेटे रहने का हुआ। यहाँ का माहात्म्य ही इसमें है। हम सब लोग, प्रायः १८-१९ आदमी, स्नान करने को गए। भगवान् की कृपा से दिन स्वच्छ था। सूर्य तप रहे थे। पानी ठंडा नहीं था। सब लोग आनंद-पूर्वक नहाने लगे। कोई तैरता है, कोई पानी में लेटता है, कोई जल-विहार करता है। प्रायः दो घंटे पानी में बीत गए। इसके बाद बदन पोंछकर बालू के ऊपर लेट गए। मुँह सूर्य की ओर, बदन में नहाने के ढीले-ढाले कपड़े। आध घंटे में बदन जलने लगा। यह गरमी हम लोगों के लिये कोई बड़ी बात न थी। हम तो सह सकते हैं, पर जर्मन-चमड़ा जलने लगा। लोग करवटें बदलने लगे। कहा जाता है, इन स्थानों में शरीर का चमड़ा जलाने से स्वास्थ्य सुधरता है। समुद्र के किनारे लोग Strandkorb अर्थात् 'दो तीन आदमियों के बैठने लायक़ सायादार डलिया' किराए पर ले लेते हैं। उसे सागर-तट पर डालकर उसके चारों ओर बालू की भीत खड़ी करते हैं। प्रातःकाल ही स्नान की सामग्री लेकर अपनी-अपनी डलियों पर पहुँच जाते हैं। समुद्र के जल में स्नान, बालू पर लेटना, अथवा डलिया का मुँह सूर्य की तरफ़ करके उसमें आराम से

धूप में जलने के इच्छुक

जल विहार करनेवाली मछलियाँ
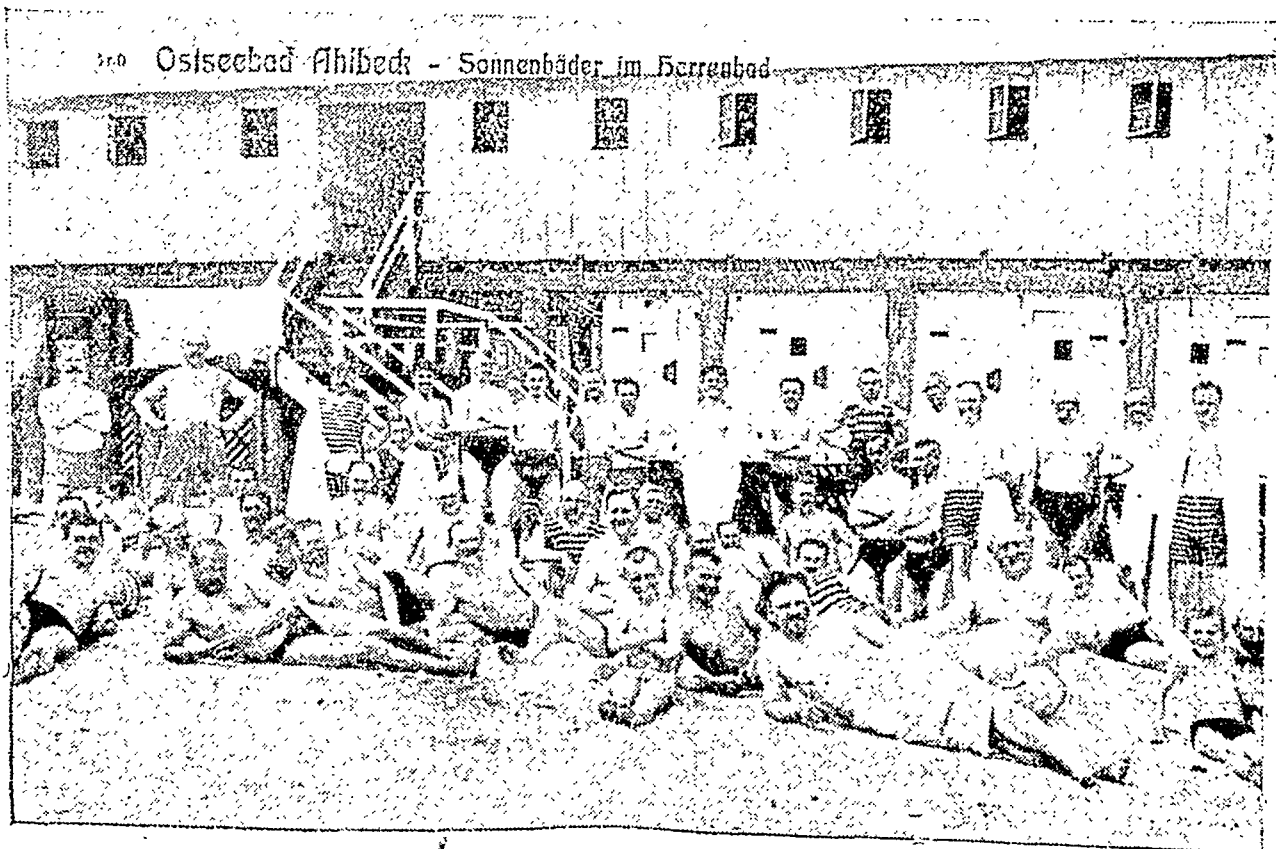
तट पर खींची हुई फ़ोटो
(लेखक × चिह्न से चिह्नित है)

बैठे रहना । पाठक चित्र में समुद्र-तट पर जिन छोटे-छोटे ख़ीमों का दृश्य देख रहे हैं, वे ही Strand-korb अर्थात् डलिया हैं । इनके भीतर ठीक कुर्सी की तरह बैठने का स्थान बनाया गया है । उस पर लोग बैठते हैं । सब डलियों पर नंबर होते हैं । आप अपने नंबर में बैठ जाइए । इनके चारों तरफ़ जो घेरा देख पड़ता है, वह बालू की भीत है । इसके भीतर ये लोग लेटे रहते हैं । अपना-अपना हाता-सा सबने मुक़र्रर कर लिया है । बालू की तो भीत है, न उठाने में देरा, न गिराने में । गरमियों की छुट्टियों में गृहस्थ अपना सारा परिवार इधर ले आते हैं । मा-बाप, बाल-बच्चे, अन्ना-दाई, सब इन स्वास्थ्यकर स्थानों में आ जाते हैं । हाता बनाने से उन्हें सहूलियत रहती है । बुड्ढे मा-बाप लेटे रहते या डलिया पर बैठ जाते हैं ; बाल-बच्चे बाड़े के भीतर खेल-कूद करते हैं, लेटते हैं । सब यात्रियों का प्यारा वाक्य है—"Jeh bin Verbrannt", अर्थात् मेरा चमड़ा जल गया है। जो जान-पहचानवाला आपको मिलेगा, वह पूछेगा—Bin ich braun Geworden ? Ja !" अर्थात् क्या मैं कुछ कम गोरा बन गया हूँ ? आते ही सबको यही फ़िक्र होती है कि कैसे चमड़ा जलावें। जिसका

धूप तापने की डलिया

चेहरा देखो, जलकर लाल या एकदम पीला पड़ जाता है । कुछ लोगों का चमड़ा एकदम झुलस जाता है, और साँप की केंचुल की तरह पुराना झड़ता और नया आता है । कुछ को इस जलन के कारण मरहम-पट्टी तक करनी पड़ती है । कुछ अपने हाथ-पाँव या कंधे इतने ज़ख़्मी कर लेते हैं कि हिला नहीं सकते । किंतु ये लोग इस बात का गर्व करते हैं, और उन वीर घायल सिपाहियों में अपना शुमार करते हैं, जो मातृभूमि के लिये लड़ने में आहत हुए हों । वास्तव में, फ़सल में जब सारा किनारा नर-मुंडों से भर जाता है, और यात्री नंगे-धड़ंगे, मनमाने ढंग से, यत्र-तत्र लेट जाते हैं, उस समय का दृश्य लड़ाई के मैदान में घायल पड़े हुए सैनिकों की ही याद दिलाता है । कपड़े-लत्ते इधर-उधर बिखरे हुए, और लोग जहाँ-तहाँ बिना किसी शिष्टाचार के मुर्दों की तरह इधर-उधर पड़े हुए ! हम लोग दो-तीन घंटे लेटे रहे । शायद कुछ आदमी बहुत पहले घर का रास्ता पकड़ते ; किंतु एक दूसरे की देखा-देखी सब डटे रहे । सबका चमड़ा दर्द करने लगा। दो लड़कियों का चमड़ा झुलस गया ; गर्दन और पीठ जल गई । गर्दन सीधा करना मुशकिल हो गया । बड़ी तकलीफ़ से डेरे पर पहुँचे, और किसी तरह

भोजन करके अपने-अपने कमरों में ठंडे पलँग से चिमट गए। इस दिन के बाद मैं कभी आध घंटे से अधिक धूप में नहीं बैठा। जो टोकता था, उससे कह दिया करता था—"बाबा, मेरा चमड़ा स्वभावतः जला हुआ है, स्वस्थ है, मुझे आवश्यकता नहीं कि और जलाऊँ।"

पाँच-सात दिन हम लोग शांति से रहे। देहाती जीवन का आनंद प्राप्त किया। पाँचवीं जुलाई से आलबेक भरने लगा। स्पेशल ट्रेनें बर्लिन, लाइपत्सिग, ड्रेस्डेन वग़ैरह से यात्रियों को भर-भरकर लाने लगीं। बस, दसवीं जुलाई तक मेला लग गया। सब मकान भर गए। होटलों में जगह नहीं, रेस्टोरॉ, चाय-घर, नाच-घर वग़ैरह ठसाठस भरने लगे। तट डलियों और समुद्र नहानेवालों से भरपूर हो गया। यात्रियों का स्वागत करने के लिये Kurhaus (आरोग्य-भवन) में Reunion (सम्मिलन), जलसे, नाच, कंसर्ट वग़ैरह होने लगे। हर रोज़ दो-तीन बार समुद्र-तट पर बैंड बजने लगा। समुद्र पर पुल बाँधकर एक लंबा-चौड़ा प्लेटफ़ार्म खड़ा किया गया, और उस पर लकड़ी का रेस्टोराँ और छोटी-छोटी दो-तीन सुंदर दूकानें लग गईं। इसे जर्मन-भाषा में Seebrücke (ज़ेब्रूके) कहते हैं। इस स्थान पर रात-दिन बेशुमार भीड़ होने लगी। मेरे परिचित एक यहूदी ने भारत के तमोलियों की तरह लकड़ी की बनी एक बहुत छोटी दूकान—लेमोनेड, चाय, दूध वग़ैरह बेचने को—ली थी। पहले रोज़ उसने जो माल रक्खा था, सब बिक गया, और शाम को छः बजे ही दूकान बंद कर देनी पड़ी। ऐसी दूकानें रात के बारह-एक बजे तक खुली रहती हैं; पर सामान न रहने से उसे जल्दी बंद करनी पड़ी। मेरी परिचित एक बूढ़ी स्त्री ने ऊनी जाकेट, नहाने के कपड़े, तौलिए वग़ैरह की एक छोटी एजेंसी खोली थी। आठवीं जुलाई की शाम को ही वह मुझसे बोली—"सौ मार्क से ज़्यादा की आमदनी आज हुई है।" सारांश यह कि एकाएक फ़सल आ पहुँची।

दसवीं जुलाई से नए जीवन का आरंभ हुआ। जो नाच-तमाशे (Casino, Cabarett, Variete) फ़सल के पूर्व बिना टिकट के थे, उन पर टिकट लग गए। विज्ञापन-स्तंभों में तरह-तरह के आकर्षक विज्ञापन चिपकाए जाने लगे कि अमुक रंगमंच की प्रसिद्ध नर्तकी, अथवा नामवर विदूषक (Humorist), या Stimmungmacher, अर्थात् मुहर्रमी मजलिस में भी रंग जमा देनेवाला, या कोई रूसी संगीताचार्य, या वियना का तमाशगीर हमारे रंगमंच पर अपनी कृति का परिचय देगा। कहीं
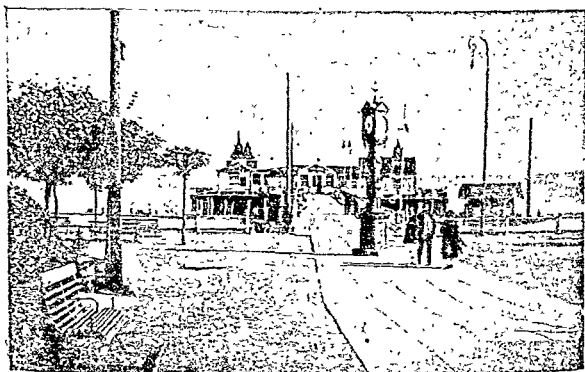
आलबेक का ज़ेब्रूके और घंटाघर

Sommerfest (ग्रीष्म-उत्सव) है, तो कहीं Lumpenball (निगोड़ों का नृत्य-उत्सव)। कहीं Kinderfest (शिशु-पर्व) है, तो कहीं लड़कियों के लिये Wien ber Nacht (वियना की रात्रि का आनंद) है। इस प्रकार आनंद के साथ समय बिताने के लिये धूम बनी रहने लगी।

एक रोज़ स्वीनेम्युंडे से हेरिंग्सडार्फ़ तक रेगाटा हुआ। दिन-भर नावों की दौड़ जारी रही। खेल-कूद में योरपियन बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। किनारे पर भीड़ लग गई। जर्मनी में प्रायः सब नगरों में Ruderclub अर्थात् नौकर-समितियाँ हैं। इनके सदस्य नाव खेते ठिकाना है। स्नान-प्रबंधकारिणी समिति इन गुणी खेवनहारों का खूब आदर-सत्कार करती है। ये प्रतिद्वंद्वी कुअरहाउस में उतारे जाते हैं। राजों-महाराजों की तरह इनकी सेवा की जाती है। बाज़ी ख़तम होने पर इन्हें यथोचित पुरस्कार भी दिया जाता है। रेगाटा की रात को भी धूम रहती है। स्वीनेम्युंडे से हेरिंग्सडार्फ़ तक प्रायः चार मील का तट है। उस रात को तट पर आतिशबाज़ी छुड़ाई जाती है। ऐसा मालूम पड़ता है, मानो तट और किनारे का समुद्र जल रहा है। मोटर, मोटर-साइकिल तथा साइकिल की दौड़ें भी होती हैं; पर यहाँ विशेष महत्त्व रेगाटा को ही दिया जाता है। इसके बाद एक रोज़
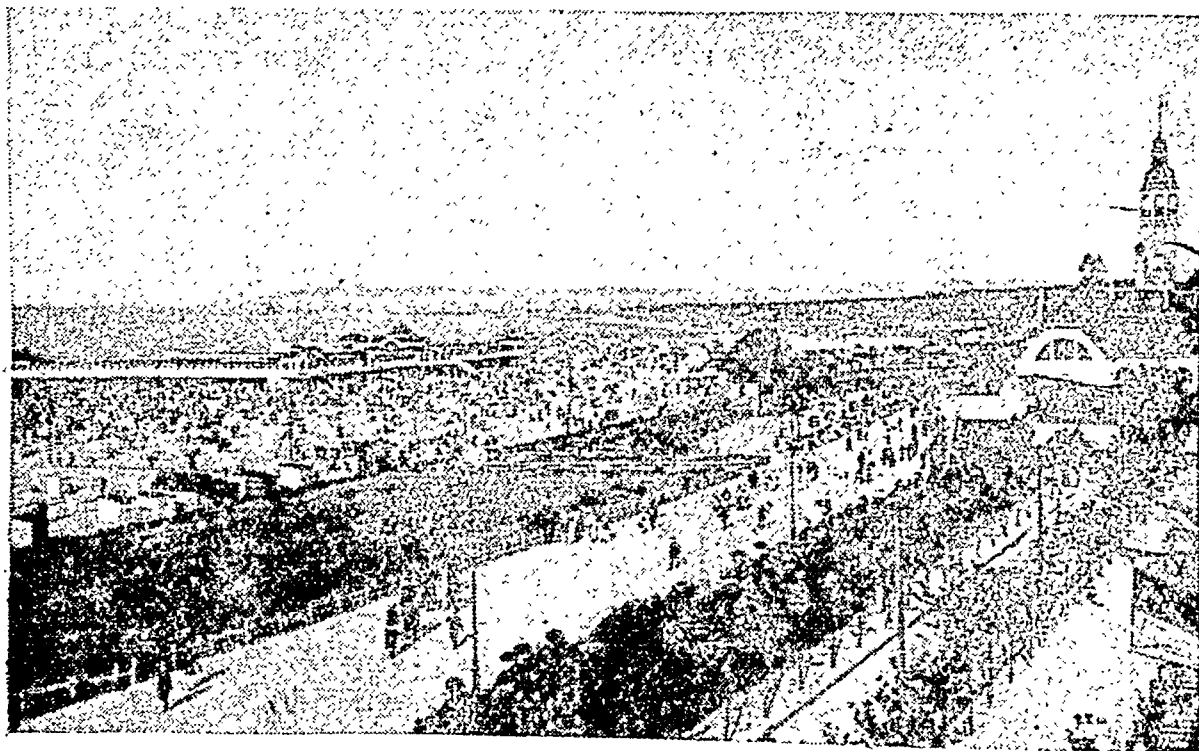
स्वीनेम्युंडे का तट और कोलोनी

और तैरने, डुबकी मारने वग़ैरह में प्रवीणता प्राप्त करते हैं। जहाँ रेगाटा अर्थात् नाव खेने की बाज़ियाँ होती हैं, वहीं इनके सदस्य क्लब के ख़र्चे से भेजे जाते हैं। अपने काम के उस्ताद ये वीर हमारी रामलीला की जनक-सभा में शिव-धनु तोड़ने को आए हुए राजों की तरह अपनी वीरता का दम भरते हुए पहुँच जाते हैं। दौड़ वास्तव में दर्शनीय होती है। दुबली-पतली और लंबी नाव को ये इस प्रकार भगा ले जाते हैं, गोया छोटी मछली बड़ी मछली के पीछा किए जाने के डर से अपनी जान ख़तरे में जानकर बेतहाशा भाग रही है। भला इस तेज़ी का कुछ छोटी मोटर-नावों की दौड़ हुई। अभी तक भेद नहीं खुला कि यह बात क्या थी। ये नावें सरकारी थीं। इनकी चाल बहुत ही तेज़ थी। पाँच मिनट में पाँच मील का चक्कर काट लेती थीं। यह इन नई आविष्कृत नावों की परीक्षा-सी थी। लेकिन कई जगह पूछने पर भी पूरा पता न चला। एक दिन ज़ेम्बयुके में Schoneheitskonkurenz (सौंदर्य की प्रतिद्वंद्विता) हुई। यह स्त्रियों की थी। सब बन-ठनकर आईं। जिसे पुरस्कार मिला, उसकी अख़बारों में बड़ी तारीफ़ छपी। औरत का मालिक भी बड़ा ख़ुश हुआ। लोगों ने उसे बधाई

अपना अस्तित्व भासमान हो रहा है; किंतु वास्तव में हम कुछ हैं ही नहीं। मैं इस विषय पर कुछ नहीं जानता, न कोई दूसरा ही जानने का दम भर सकता है।" अपनी इस फ़िलासफ़ी से इस डॉक्टर ने अपना क़सूर न-मालूम किसके सिर मढ़ दिया। यह है रूसी स्वभाव। विन्टर श्यूटे से मेरी फिर कई बार भेंट हुई। मुझे इसके विचित्र चरित्र से दिलचस्पी पैदा हो गई थी। इस प्रकार के भी मनुष्य होते हैं! सोचते हैं, विचारते हैं, और इस कारण अंधे हो जाते हैं। किंतु इनमें भी रस है; जिसका वर्णन करके रूसी साहित्यिक संसार में अमृत-रस की धारा चिरकाल के लिये बहा गए हैं। लीलामय की लीला अनंत रूप में प्रतिभात होती है। हमारे लिये पागल का प्रलाप है; किंतु परमात्मा की प्रकृति में इसका भी पद है। सागर के गर्जन में रस है, कलकल-निनादिनी नदी में रस है, झर-झर झरनेवाले निर्झर में रस है, और ठीक इसी प्रकार तालाब या पोखरे के मैले और सड़े पानी में भी कम रस नहीं है, जिसका मधुर पान सुंदरता की खान कमल करते हैं। जो हो, इसके बाद मैं अधिक दिन आलबेक में नहीं रहने पाया। कारण-वश बर्लिन वापस आना पड़ा। इसलिये दो-चार ही दिन आस-पास के स्नान-तीर्थों के दर्शन किए। एक-दो मद्य-विरोधी भी देखे। ये अपवाद-से थे। मुझे ज्ञात हुआ, योरप का जीवन इनसे भिन्न है।

आलबेक के पास स्वीनेम्युंडे है। वहाँ गया। अच्छा-ख़ासा शहर है। आबादी प्रायः बीस हज़ार है। सीज़न (मौसम) में ढाई-गुनी हो जाती है। कभी-कभी तो और भी ज़्यादा। इर्द-गिर्द में यही बड़ा क़सबा है। अदालत, पुलीस वग़ैरह सब यहीं हैं। यहाँ आलबेक की तरह देहाती जीवन नहीं है। रंग-ढंग सब बर्लिन की याद दिलाता है। सुंदर और स्वच्छ सड़कें, बड़ी-बड़ी दूकानें, बड़े मकान, होटल वग़ैरह। यहाँ से स्वेडन को सीधी रेल जाती है। बस्ती पुरानी है। फ़्रीडरेख द्वितीय ने इसे सन् १७२० में बसाया था। लेकिन स्नान के लिये लोग सन् १८२४ से आने लगे। इस साल हाल में वहाँ धूमधाम से शत-वार्षिक उत्सव मनाया गया था। यहाँ यात्रियों के लिये सब प्रकार का सुबीता है। आलबेक, हेरिंग्सडार्फ़ और बानज़ीन को मोटर-बोट और आमनिबस दौड़ती हैं। समुद्र के तट पर नई बसी हुई Villen Kolonie—'सुंदर बँगलों की बस्ती'—बहुत रमणीय है। यहाँ से पैदल चलने पर आलबेक पचीस-तीस मिनट का रास्ता है। मार्ग जंगल के बीच होता हुआ चला गया है। लोग समुद्र के किनारे-किनारे भी पैदल चले जाते हैं। इसके पीछे कई सुंदर गाँव, पंद्रह-बीस मिनट के रास्ते पर, हैं। घना चीड़ का जंगल और उसके बीच में हरे-भरे छोटे गाँव चित्त को प्रसन्न कर देते हैं। यहाँ से स्थानीय दैनिक पत्र निकलता है। इसमें यात्रियों के उपयुक्त सब स्थानीय और देशी-विदेशी समाचार रहते हैं। थियेटर और किनोवाले अपना पत्र अलग निकालते हैं।

हेरिंग्सडार्फ़ दूसरी ओर है। आलबेक से १५ मिनट का पैदल रास्ता है। असल में दोनों गाँव मिले हुए हैं; पर स्नान-प्रबंधक-समितियाँ जुदी-जुदी हैं। इसलिये लकड़ी की सरहदबंदी है। यह जर्मनी ही नहीं, योरप-भर में प्रसिद्ध है। इसकी नींव सन् १८२० में पड़ी थी। उस समय इसका मालिक च्यूलों का ज़मींदार था। तीसरा फ़्रीडरेख विलहेल्म अपने लड़के क्राउन प्रिंस के साथ यहाँ मछली मारने आया। दो-चार झोपड़े इधर-उधर देखकर बोला—"इस गाँव का कोई नाम होना चाहिए।" क्राउन प्रिंस को आज्ञा दी, जो चाहो, नाम रख लो। उसने यहाँ कुछ हेरिंग-नामक मछलियाँ पकड़ी थीं; नाम भी हेरिंग्सडार्फ़ रख दिया। डार्फ़ का अर्थ जर्मन-भाषा में गाँव है। सन् १८२८ में यहाँ स्नानार्थियों के लिये पहली अतिथिशाला बनी। सन् १८४० में यह स्थान बड़ा स्नान-तीर्थ बन गया। सन् १८७२ में एक कंपनी ने इसका प्रबंध अपने हाथ में लिया। उसने इसका नाम योरप-भर में प्रसिद्ध कर दिया। सन् १९२१ में यहाँ स्नान-प्रबंधक-समिति बनी, और उसने कारबार अपने हाथ में ले लिया। यहाँ रूसी और पोल बहुत आते हैं। वे सब सामान यहाँ भी हैं, जो स्वीनेम्युंडे और आलबेक में। यहाँ का आरोग्य-भवन बहुत सुंदर बना हुआ है। जर्मनी के बड़े-बड़े लोग यहाँ आया करते हैं। अफ़सरों के मकान भी हैं। शाही ख़ानदानवाले भी यहाँ आया करते थे।

बानज़ीन (Bansin) हाल ही की बस्ती है। इसका सूत्रपात सन् १८९७ में हुआ था। इसमें क़रीब पौने दो सौ बँगले हैं। जाड़ों में यहाँ एकदम सन्नाटा हो जाता है। यह छोटी बस्ती सुंदरता में मुझे सबसे बढ़कर मालूम
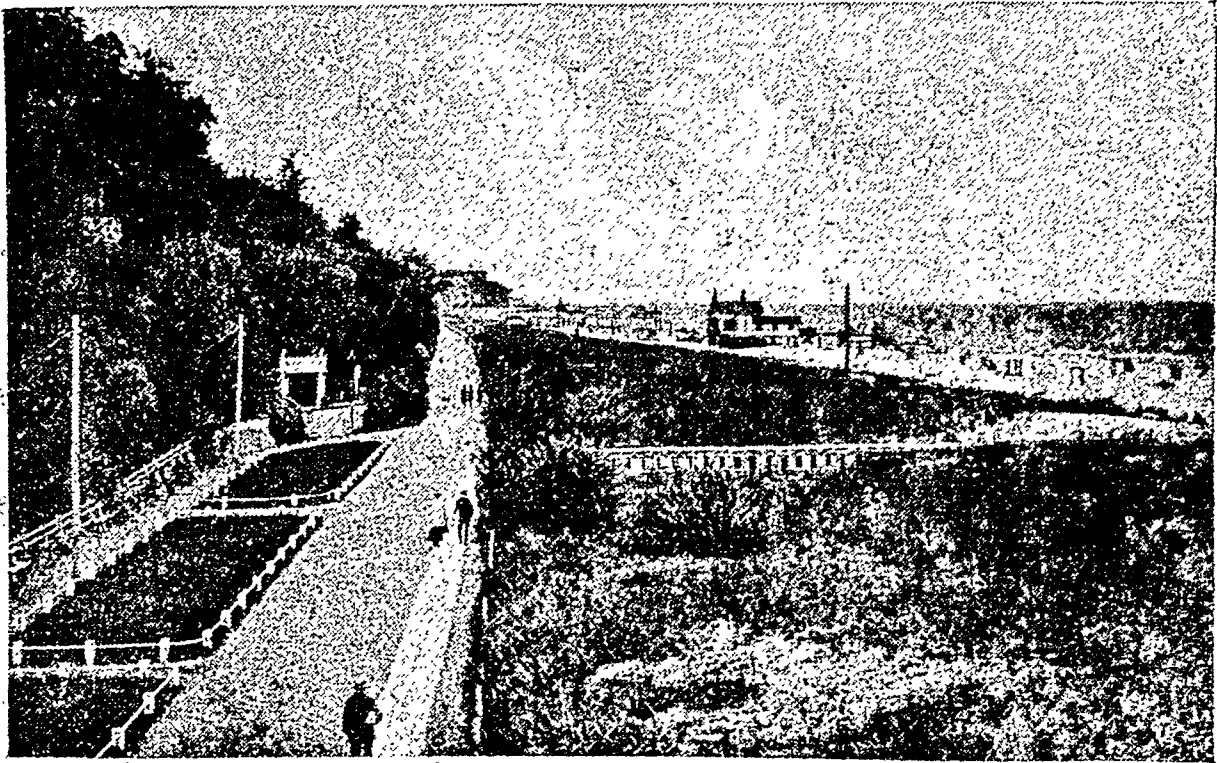
हेरिंग्सडार्फ़ की एक सड़क
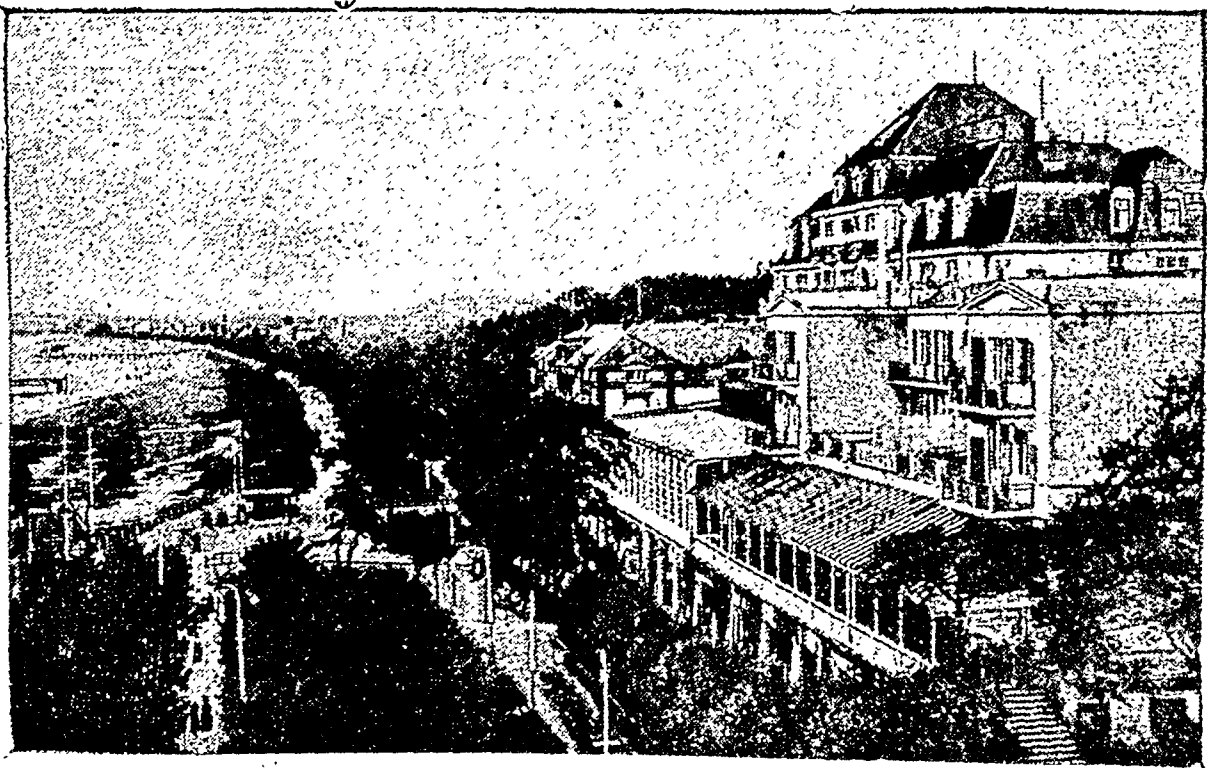
हेरिंग्सडार्फ़ का आरोग्य-भवन

हुई। इसके पीछे श्लोनज़े (Schloonsee)-नामक तालाब है। एक ओर सुंदर पहाड़ है। उस पर भी बँगले हैं। विलास के वे सब साधन यहाँ भी वर्तमान हैं, जो और जगहों में हैं। यह हेरिंग्सडार्फ़ से मिला हुआ है। ज़्यादा-से-ज़्यादा दस मिनट का रास्ता है। इसकी सुंदरता तथा तट का प्रसार बड़ा मनोहर है। मैं तो प्रतिदिन शाम को

बानज़ीन की एक गली

पैदल सैर करते बानज़ीन पहुँच जाता था। जंगल के रास्ते स्वास्थ्यकर वायु का सेवन करते बानज़ीन की ओर जाना बड़ा सुखप्रद है। बीच में एक स्वच्छ नाला पड़ता है। उसके ऊपर छोटा लकड़ी का पुल, ठीक भारत के पहाड़ी प्रदेशों की तरह, बना हुआ है। यहाँ यहूदी लोग नहीं आते। राष्ट्रीय दल के जर्मनों का प्राधान्य
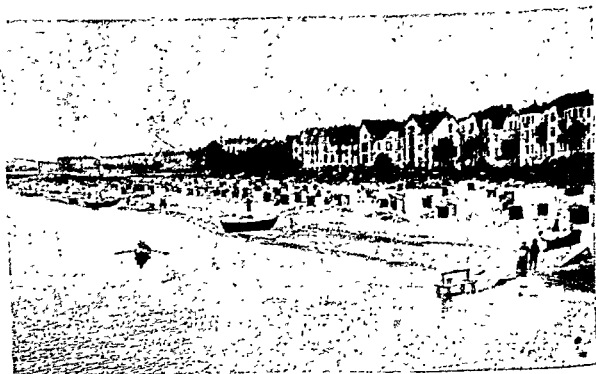
बानज़ीन का विस्तृत तट और बँगले

है, और राष्ट्रीय दल यहूदियों का कट्टर शत्रु है। इसलिये वे यहाँ आने से डरते हैं। जिस मकान में देखो, राष्ट्रीय पताका फहरा रही है। समुद्र के किनारे डलियों पर भी राष्ट्रीय झंडे फहरा रहे हैं। इसके विज्ञापन में सदा बड़े हरफ़ों में लिखा रहता है—"Christliches Ostseebad Bansin" अर्थात् 'ईसाई स्नान-तीर्थ बानज़ीन'। साथ ही यह भी नीचे लिखा जाता है—"Pensionen und sogierhäuser nur für christliches Badegäste." अर्थात् 'होटलों और भाड़े के मकानों में केवल ईसाइयों को ही कमरे मिलेंगे'। स्वयं यहूदियों का बहिष्कार हो गया। इससे ज़बरदस्त असहयोग और क्या हो सकता है? यहाँ यहूदियों से चिढ़ने का कारण है। यहूदी व्यापारी धन के लिये देश भी बेच सकता है। उसका तो कोई देश नहीं है। इसलिये भले ही यहूदी जर्मनी के लिये सिपाही बनकर लड़े हों, भले ही जर्मनी की समृद्धि बढ़ाने में भाग ले रहे हों, भले ही इस समय साहित्य और विज्ञान में उनकी धाक हो, भले ही वे मंत्रित्व के तथा सरकारी उच्च पदों में वर्तमान हों; किंतु वे जर्मन नहीं हैं। मातृभूमि का दुःख अपनी संतान जर्मन को ही रुलाता है, उसका ही रक्त खौलाता है। यहूदी-सरकार क्षतिपूर्ति देने को तैयार है। जर्मनी को चूसकर, उसकी संतान को भूखों मारकर, उसकी गाढ़ी कमाई शत्रु फ्रांस के हाथ सौंपने को तैयार है। क्या राष्ट्रीय भावों से भरपूर जर्मन ऐसा करने से पहले माता की संतान और सम्मान की रक्षा के लिये अपना रक्त अर्पण नहीं करेगा? दो प्रकार के भाव-स्रोतों का संघर्ष है। एक ओर यहूदी बुद्धि और नीति का दम भरते हैं; दूसरी ओर राष्ट्रीय जर्मन सिर पर डंडे की चोट खाए हुए ज़हरीले साँप की तरह शत्रु को अपनी शक्ति से बाहर देख विष उगलते हैं। तब मित्रता कैसे रह सकती है? एक हैं National (राष्ट्रीय), दूसरे International (सार्वभौम)—समानता का प्रचार करनेवाले कम्यूनिष्ट नहीं, बल्कि सारे संसार का धन अपनी तिजोरी में बंद करने के इच्छुक। इससे कोई भारतवासी यह न समझ बैठे कि ये मारवाड़ी हैं। नहीं-नहीं, मारवाड़ियों में इनकी बू भी नहीं। यहूदी विद्या, बुद्धि और वैभव में संसार में अपना जोड़ नहीं रखते। इस समय जर्मनी का शासन यहूदी ही कर रहे हैं। रूस में यहूदी सब कुछ हैं। इँगलैंड में उनका बोलबाला है। भारत के बड़े लाट लॉर्ड रीडिंग यहूदी ही हैं। सारांश यह कि यहूदी सब प्रकार से उन्नत हैं। देश के दुर्भाग्य से

बानज़ीन का समुद्रतट

मारवाड़ी धनी बन गए हैं। उन्हें यह भी नहीं मालूम कि किस काम में रुपया लगावें। जीवन का उद्देश्य क्या है, यह बात सोचने को उन्हें समय ही नहीं मिलता। तब उनकी और इन यहूदियों की क्या तुलना, जो वैज्ञानिक तथा अन्य आविष्कारों से संसार को प्रगति का मार्ग दिखाने का दावा रखते हैं। जो हो, जुलाई के तीसरे हफ़्ते में बर्लिन लौट आया; किंतु उक्त स्थानों की स्मृति अब भी आनंद देती है।

जर्मनी से } हेमचंद्र जोशी

शतरंज के खिलाड़ी

(१)

वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब, सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफ़ीम की पीनक ही के मज़े लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य-क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला-कौशल में, उद्योग-धंधों में, आहार-व्यवहार में, सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राजकर्मचारी विषय-वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र-मिस्सी और उबटन का रोज़गार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को ख़बर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिये पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी हुई है; पौ-बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फ़क़ीरों को पैसे मिलते, तो वे रोटियाँ न लेकर अफ़ीम खाते या मदक पीते। शतरंज, ताश, गंजीफ़ा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार-शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है, ये दलीलें ज़ोरों के साथ पेश की जाती थीं (इस संप्रदाय के लोगों से दुनिया अब भी ख़ाली नहीं है)। इसलिये अगर मिर्ज़ा सज्जादअली और मीर रौशनअली अपना अधिकांश समय बुद्धि तीव्र करने में व्यतीत करते थे, तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी? दोनों के पास मौरूसी जागीरें थीं; जीविका की कोई चिंता न थी; घर में बैठे चखौतियाँ करते थे। आख़िर और करते ही क्या? प्रातःकाल दोनों मित्र नाश्ता करके बिसात बिछाकर बैठ जाते, मुहरे सज जाते, और लड़ाई के दाव-पेंच होने लगते। फिर ख़बर न होती थी कि कब दोपहर हुई, कब तीसरा पहर, कब शाम। घर के भीतर से बार-बार बुलावा आता कि खाना तैयार है। यहाँ से जवाब मिलता—"चलो, आते हैं; दस्तरख़्वान बिछाओ।" यहाँ तक कि बावरची विवश होकर कमरे ही में खाना रख जाता था, और दोनों मित्र दोनों काम साथ-साथ करते थे। मिर्ज़ा सज्जादअली के घर में कोई बड़ा-बूढ़ा न था, इसलिये उन्हीं के दीवानख़ाने में बाज़ियाँ होती थीं। मगर यह बात न थी कि मिर्ज़ा के घर के और लोग उनके इस व्यवहार से ख़ुश हों। घरवालों का तो कहना ही क्या, मुहल्लेवाले, घर के नौकर-चाकर तक नित्य द्वेष-पूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे—बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। ख़ुदा न करे, किसी को इसकी चाट पड़े, आदमी दीन, दुनिया, किसी के काम का नहीं रहता, न घर का न घाट का। बुरा रोग है। यहाँ तक कि मिर्ज़ा की बेगम साहबा को इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज-खोजकर पति को लताड़ती थीं। पर उन्हें इसका अवसर मुश्किल से मिलता था। वह सोती ही रहती थीं, तब तक उधर बाज़ी बिछ जाती थी। और, रात को जब सो जाती थीं, तब कहीं मिर्ज़ाजी घर में आते थे। हाँ, नौकरों पर वह अपना गुस्सा उतारती रहती थीं—"क्या पान माँगे हैं? कह दो, आकर ले जायँ। खाने की भी फ़ुर्सत नहीं है? ले जाकर खाना सिर पर पटक दो, खायँ, चाहे कुत्ते को खिलावें।" पर रूबरू वह भी कुछ न कह सकती थीं। उनको अपने पति से उतना मलाल न था, जितना मीरसाहब से। उन्होंने उनका नाम मीर बिगाड़ू रख छोड़ा था। शायद मिर्ज़ाजी अपनी सफ़ाई देने के लिये सारा इल्ज़ाम मीर साहब ही के सिर थोप देते थे।

एक दिन बेगम साहबा के सिर में दर्द होने लगा। उन्होंने लौंडी से कहा—"जाकर मिर्ज़ासाहब को बुला ला। किसी हकीम के यहाँ से दवा लावें। दौड़, जल्दी कर।" लौंडी गई, तो मिर्ज़ाजी ने कहा—"चल अभी आते हैं।" बेगम साहबा का मिज़ाज गरम था। इतनी ताब कहाँ कि उनके सिर में दर्द हो, और पति शतरंज खेलता रहे। चेहरा सुर्ख़ हो गया। लौंडी से कहा—"जाकर कह, अभी चलिए, नहीं तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जायँगी।" मिर्ज़ाजी बड़ी दिलचस्प बाज़ी खेल रहे थे; दो ही किश्तों में मीरसाहब को मात हुई जाती थी। झुँझलाकर बोले—"क्या ऐसा दम लबों पर है? ज़रा सब्र नहीं होता?"

मीर—"अरे तो जाकर सुन ही आइए न। औरतें नाज़ुक मिज़ाज होती ही हैं।"

मिर्ज़ा—"जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ! दो किश्तों में आपको मात होती है।"

मीर—"जनाब, इस भरोसे न रहिएगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहें, और मात हो जाय। पर जाइए, सुन आइए। क्यों ख़ामख़्वाह उनका दिल दुखाइएगा?"

मिर्ज़ा—"इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।"

मीर—"मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइए।"

मिर्ज़ा—"अरे यार, जाना पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर-दर्द ख़ाक नहीं है; मुझे परेशान करने का बहाना है।"

मीर—"कुछ ही हो, उनकी ख़ातिर तो करनी ही पड़ेगी।"

मिर्ज़ा—"अच्छा, एक चाल और चल लूँ।"

मीर—"हर्गिज़ नहीं, जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरे में हाथ ही न लगाऊँगा।"

मिर्ज़ासाहब मजबूर होकर अंदर गए, तो बेगम साहबा ने त्योरियाँ बदलकर, लेकिन कराहते हुए, कहा—"तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है! चाहे कोई मर ही जाय, पर उठने का नाम नहीं लेते! नौज कोई तुम जैसा आदमी हो!"

मिर्ज़ा—"क्या कहूँ, मीरसाहब मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ाकर आया हूँ।"

बेगम—"क्या जैसे वह ख़ुद निखट्टू हैं, वैसे ही सबको समझते हैं? उनके भी तो बाल-बच्चे हैं; या सबका सफ़ाया कर डाला?"

मिर्ज़ा—"बड़ा लती आदमी है। जब आ जाता है, तब मजबूर होकर मुझे भी खेलना ही पड़ता है।"

बेगम—"दुतकार क्यों नहीं देते?"

मिर्ज़ा—"बराबर के आदमी हैं, उम्र में, दर्जे में मुझसे दो अंगुल ऊँचे। मुलाहिज़ा करना ही पड़ता है।"

बेगम—"तो मैं ही दुतकारे देती हूँ। नाराज़ हो जायँगे, हो जायँ। कौन किसी की रोटियाँ चला देता है। रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी।—हिरिया, जा, बाहर से शतरंज उठा ला। मीरसाहब से कहना, मियाँ अब न खेलेंगे, आप तशरीफ़ ले जाइए।"

मिर्ज़ा—"हाँ-हाँ, कहीं ऐसा ग़ज़ब भी न करना! ज़लील कराना चाहती हो क्या!—ठहर हिरिया, कहाँ जाती है।"

बेगम—"जाने क्यों नहीं देते। मेरा ही ख़ून पिए, जो उसे रोके। अच्छा, उसे रोका, मुझे रोको, तो जानूँ।"

यह कहकर बेगम साहबा झल्लाई हुई दीवानख़ाने की तरफ़ चलीं। मिर्ज़ा बेचारे का रंग उड़ गया। बीबी की मिन्नतें करने लगे—"ख़ुदा के लिये, तुम्हें हज़रत हुसेन की क़सम है। मेरी ही मैयत देखे, जो उधर जाय।" लेकिन बेगम ने एक न मानी। दीवानख़ाने के द्वार तक गईं; पर एकाएक परपुरुष के सामने जाते हुए पाँव बँध-से गए। भीतर झाँका। संयोग से कमरा ख़ाली था। मीरसाहब ने दो-एक मुहरे इधर-उधर कर दिए थे, और अपनी सफ़ाई जताने के लिये बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, बेगम ने अंदर पहुँचकर बाज़ी उलट दी; मुहरे कुछ तख़्त के नीचे फेंक दिए, कुछ बाहर; और किवाड़े अंदर से बंद करके कुंडी लगा दी। मीरसाहब दरवाज़े पर तो थे ही, मुहरे बाहर फेंके जाते देखे, चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर दरवाज़ा बंद हुआ, तो समझ गए, बेगम साहबा बिगड़ गईं। चुपके-से घर की राह ली।

मिर्ज़ा ने कहा—"तुमने ग़ज़ब किया।"

बेगम—"अब मीरसाहब इधर आए, तो खड़े-खड़े निकलवा दूँगी। इतनी लौ ख़ुदा से लगाते, तो क्या ग़रीब हो जाते! आप तो शतरंज खेलें, और मैं यहाँ चूल्हे-चक्की

की फ़िक्र में सिर खपाऊँ! ले जाते हो हकीम साहब के यहाँ कि अब भी तामुल है!"

मिर्ज़ा घर से निकले, तो हकीम के घर जाने के बदले मीरसाहब के घर पहुँचे, और सारा वृत्तांत कहा। मीरसाहब बोले—"मैंने तो जब मुहरे बाहर आते देखे, तभी ताड़ गया। फ़ौरन् भागा। बड़ी गुस्सेवर मालूम होती हैं। मगर आपने उन्हें यों सिर चढ़ा रक्खा है, यह मुनासिब नहीं। उन्हें इससे क्या मतलब कि आप बाहर क्या करते हैं। घर का इंतिज़ाम करना उनका काम है; दूसरी बातों से उन्हें क्या सरोकार?"

मिर्ज़ा—"ख़ैर, यह तो बताइए, अब कहाँ जमाव होगा?"

मीर—"इसका क्या ग़म है। इतना बड़ा घर पड़ा हुआ है। बस, यहीं जमे।"

मिर्ज़ा—"लेकिन बेगम साहबा को कैसे मनाऊँगा? जब घर पर बैठा रहता था, तब तो वह इतना बिगड़ती थीं; यहाँ बैठक होगी, तो शायद ज़िंदा न छोड़ेंगी।"

मीर—"अजी बकने भी दीजिए; दो-चार रोज़ में आप ही ठीक हो जायँगी। हाँ, आप इतना कीजिए कि आज से ज़रा तन जाइए।"

(२)

मीरसाहब की बेगम किसी अज्ञात कारण से मीरसाहब का घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थीं। इसीलिये वह उनके शतरंज-प्रेम की कभी आलोचना न करती थीं; बल्कि कभी-कभी मीरसाहब को देर हो जाती, तो याद दिला देती थीं। इन कारणों से मीरसाहब को भ्रम हो गया था कि मेरी स्त्री अत्यंत विनयशील और गंभीर है। लेकिन जब दीवानख़ाने में बिसात बिछने लगी, और मीरसाहब दिन-भर घर में रहने लगे, तो उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता में बाधा पड़ गई। दिन-भर दरवाज़े पर झाँकने को तरस जातीं।

उधर नौकरों में भी कानाफूसी होने लगी। अब तक दिन-भर पड़े-पड़े मक्खियाँ मारा करते थे। घर में कोई आवे, कोई जाय, उनसे कुछ मतलब न था। अब आठों पहर की धौंस हो गई। कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई का। और, हुक़्क़ा तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था। वे बेगम साहबा से जा-जाकर कहते—"हुज़ूर, मियाँ की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई! दिन-भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गए। यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे तो शाम कर दी! घड़ी-आध घड़ी दिल-बहलाव के लिये खेल खेलना बहुत है। ख़ैर, हमें तो कोई शिकायत नहीं; हुज़ूर के ग़ुलाम हैं, जो हुक्म होगा, बजा ही लावेंगे; मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलनेवाला कभी पनपता नहीं; घर पर कोई-न-कोई आफ़त ज़रूर आती है। यहाँ तक कि एक के पीछे मुहल्ले-के-मुहल्ले तबाह होते देखे गए हैं। सारे मुहल्ले में यही चर्चा होती रहती है। हुज़ूर का नमक खाते हैं, अपने आक़ा की बुराई सुन-सुनकर रंज होता है। मगर क्या करें।" इस पर बेगम साहबा कहतीं—"मैं तो ख़ुद इसको पसंद नहीं करती। पर वह किसी की सुनते ही नहीं, तो क्या किया जाय।"

मुहल्ले में भी जो दो-चार पुराने ज़माने के लोग थे, वे आपस में भाँति-भाँति के अमंगल की कल्पनाएँ करने लगे—"अब ख़ैरियत नहीं है। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का ख़ुदा ही हाफ़िज़ है। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी। आसार बुरे हैं।"

राज्य में हाहाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन-दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फ़रियाद सुननेवाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिंची आती थी, और वह वेश्याओं में, भाँड़ों में, और विलासिता के अन्य अंगों की पूर्ति में उड़ जाती थी। अँगरेज़-कंपनी का ऋण दिन-दिन बढ़ता जाता था। कमली दिन-दिन भीगकर भारी होती जाती थी। देश में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था। रेज़ीडेंट बार-बार चेतावनी देता था; पर यहाँ तो लोग विलासिता के नशे में चूर थे; किसी के कानों पर जूँ न रेंगती थी।

ख़ैर, मीरसाहब के दीवानख़ाने में शतरंज होते कई महीने गुज़र गए। नए-नए नक़्शे हल किए जाते; नए-नए क़िले बनाए जाते; नित-नई व्यूह-रचना होती; कभी-कभी खेलते-खेलते झौड़ हो जाती; तू-तू मैं-मैं तक की नौबत आ जाती; पर शीघ्र ही दोनों मित्रों में मेल हो जाता। कभी-कभी ऐसा भी होता कि बाज़ी उठा दी जाती; मिर्ज़ाजी रूठकर अपने घर चले आते; मीरसाहब अपने घर में जा बैठते। पर रात-भर की निद्रा के साथ

सारा मनोमालिन्य शांत हो जाता था। प्रातःकाल दोनों मित्र दीवानख़ाने में आ पहुँचते थे।

एक दिन दोनों मित्र बैठे हुए शतरंज की दलदल में ग़ोते खा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार एक बादशाही फ़ौज का अफ़सर मीरसाहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीरसाहब के होश उड़ गए! यह क्या बला सिर पर आई! यह तलबी किस लिये हुई है! अब ख़ैरियत नहीं नज़र आती! घर के दरवाज़े बंद कर लिए। नौकरों से बोले—"कह दो, घर में नहीं हैं।"

सवार—"घर में नहीं हैं, तो कहाँ हैं?"

नौकर—"यह मैं नहीं जानता। क्या काम है?"

सवार—"काम तुझे क्या बतलाऊँ? हुज़ूर में तलबी है—शायद फ़ौज के लिये कुछ सिपाही माँगे गए हैं। जागीरदार हैं कि दिल्लगी! मोरचे पर जाना पड़ेगा, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा!"

नौकर—"अच्छा, तो जाइए, कह दिया जायगा।"

सवार—"कहने की बात नहीं है। मैं कल ख़ुद आऊँगा, साथ ले जाने का हुक्म हुआ है।"

सवार चला गया। मीरसाहब की आत्मा काँप उठी। मिर्ज़ाजी से बोले—"कहिए जनाब, अब क्या होगा?"

मिर्ज़ा—"बड़ी मुसीबत है। कहीं मेरी तलबी भी न हो।"

मीर—"कंबख़्त कल फिर आने को कह गया है।"

मिर्ज़ा—"आफ़त है, और क्या! कहीं मोरचे पर जाना पड़ा, तो बे मौत मरे।"

मीर—"बस, यही एक तदबीर है कि घर पर मिलो ही नहीं। कल से गोमती पर कहीं वीराने में नक़्शा जमे। वहाँ किसे ख़बर होगी। हज़रत आकर आप लौट जायँगे।"

मिर्ज़ा—"वल्लाह, आपको ख़ूब सूझी! इसके सिवा और कोई तदबीर ही नहीं है।"

इधर मीरसाहब की बेगम उस सवार से कह रही थीं, "तुमने ख़ूब धता बताई।" उसने जवाब दिया—"ऐसे गावदियों को तो चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अक़्ल और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली। अब भूलकर भी घर पर न रहेंगे।"

(३)

दूसरे दिन से दोनों मित्र मुँह-अँधेरे घर से निकल खड़े होते। बग़ल में एक छोटी-सी दरी दबाए, डिब्बे में गिलौरियाँ भरे, गोमती-पार की एक पुरानी वीरान मसजिद में चले जाते, जिसे शायद नवाब आसिफ़उद्दौला ने बनवाया था। रास्ते में तंबाकू, चिलम और मदरिया ले लेते, और मसजिद में पहुँच, दरी बिछा, हुक़्क़ा भरकर शतरंज खेलने बैठ जाते थे। फिर उन्हें दीन-दुनिया की फ़िक्र न रहती थी। 'किश्त', 'शह' आदि दो-एक शब्दों के सिवा उनके मुँह से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होता होगा। दोपहर को जब भूक मालूम होती, तो दोनों मित्र किसी नानबाई की दूकान पर जाकर खाना खा आते, और एक चिलम हुक़्क़ा पीकर फिर संग्राम-क्षेत्र में डट जाते। कभी-कभी तो उन्हें भोजन का भी ख़याल न रहता था।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। कंपनी की फ़ौजें लखनऊ की तरफ़ बढ़ी चली आती थीं। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग बाल-बच्चों को ले-लेकर देहातों में भाग रहे थे। पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इसकी ज़रा भी फ़िक्र न थी। वे घर से आते, तो गलियों में होकर। डर था कि कहीं किसी बादशाही मुलाज़िम की निगाह न पड़ जाय, जो बेगार में पकड़ जायँ। हज़ारों रुपए सालाना की जागीर मुफ़्त ही में हज़म करना चाहते थे।

एक दिन दोनों मित्र मसजिद के खँडहर में बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे। मिर्ज़ा की बाज़ी कुछ कमज़ोर थी। मीरसाहब उन्हें किश्त-पर-किश्त दे रहे थे। इतने में कंपनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिए। यह गोरों की फ़ौज थी, जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिये आ रही थी।

मीरसाहब बोले—"अँगरेज़ी फ़ौज आ रही है; ख़ुदा ख़ैर करे।"

मिर्ज़ा—"आने दीजिए, किश्त बचाइए। यह किश्त।"

मीर—"ज़रा देखना चाहिए—यहीं आड़ में खड़े हो जायँ।"

मिर्ज़ा—"देख लीजिएगा, जल्दी क्या है, फिर किश्त।"

मीर—"तोपख़ाना भी है। कोई पाँच हज़ार आदमी होंगे। कैसे जवान हैं। लाल बंदरों के-से मुँह हैं। सूरत देखकर ख़ौफ़ मालूम होता है।"

मिर्ज़ा—"जनाब, होले न कीजिए। ये चकमे किसी और को दीजिएगा—यह किश्त।"

मीर—"आप भी अजीब आदमी हैं। यहाँ तो शहर पर आफ़त आई हुई है, और आपको किश्त की सूझी है! कुछ इसकी भी ख़बर है कि शहर घिर गया, तो घर कैसे चलेंगे?"

मिर्ज़ा—"जब घर चलने का वक़्त आवेगा, तो देखी जायगी—यह किश्त। बस, अब की शह में मात है।" फ़ौज निकल गई। दस बजे का समय था। फिर बाज़ी बिछ गई।

मिर्ज़ा बोले—"आज खाने की कैसे ठहरेगी?"

मीर—"अजी, आज तो रोज़ा है। क्या आपको ज़्यादा भूक मालूम होती है?"

मिर्ज़ा—"जी नहीं। शहर में न-जाने क्या हो रहा है।"

मीर—"शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खा-खाकर आराम से सो रहे होंगे। हुज़ूर नवाबसाहब भी ऐशगाह में होंगे।"

दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे, तो तीन बज गए। अब की मिर्ज़ाजी की बाज़ी कमज़ोर थी। चार का गजर बज ही रहा था कि फ़ौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली पकड़ लिए गए थे, और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिए जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूँद भी ख़ून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शांति से, इस तरह ख़ून बहे बिना, न हुई होगी। यह वह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यह वह कायरपन था, जिस पर बड़े-से-बड़े कायर भी आँसू बहाते हैं। अवध के विशाल देश का नवाब बंदी बना चला जाता था, और लखनऊ ऐश की नींद में मस्त था। यह राजनीतिक अधःपतन की चरम सीमा थी।

मिर्ज़ा ने कहा—"हुज़ूर नवाबसाहब को ज़ालिमों ने क़ैद कर लिया है।"

मीर—"होगा, यह लीजिए शह।"

मिर्ज़ा—"जनाब ज़रा ठहरिए। इस वक़्त इधर तबियत नहीं लगती। बेचारे नवाबसाहब इस वक़्त ख़ून के आँसू रो रहे होंगे।"

मीर—"रोया ही चाहें। यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा—यह किश्त!"

मिर्ज़ा—"किसी के दिन बराबर नहीं जाते। कितनी दर्दनाक हालत है।"

मीर—"हाँ, सो तो है ही—यह लो फिर किश्त। बस, अब की किश्त में मात है, बच नहीं सकते।"

मिर्ज़ा—"ख़ुदा की क़सम, आप बड़े बेदर्द हैं। इतना बड़ा हादसा देखकर भी आपको दुख नहीं होता। हाय, ग़रीब वाजिदअली शाह!"

मीर—"पहले अपने बादशाह को तो बचाइए, फिर नवाबसाहब का मातम कीजिएगा। यह किश्त और मात। लाना हाथ!" बादशाह को लिए हुए सेना सामने से निकल गई। उनके जाते ही मिर्ज़ा ने फिर बाज़ी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा—"आइए, नवाबसाहब के मातम में एक मरसिया कह डालें।" लेकिन मिर्ज़ाजी की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिये अधीर हो रहे थे।

(३)

शाम हो गई। खँडहर में चमगादड़ों ने चीख़ना शुरू किया। अबाबीलें आ-आकर अपने-अपने घोसलों में चिमटीं। पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे, मानो दो ख़ून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों। मिर्ज़ाजी तीन बाज़ियाँ लगातार हार चुके थे; इस चौथी बाज़ी का रंग भी अच्छा न था। वह बार-बार जीतने का दृढ़ निश्चय करके सँभलकर खेलते थे, लेकिन एक-न-एक चाल ऐसी बेढब आ पड़ती थी, जिससे बाज़ी ख़राब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और भी उग्र होती जाती थी। उधर मीरसाहब मारे उमंग के ग़ज़लें गाते थे, चुटकियाँ लेते थे, मानो कोई गुप्त धन पा गए हों। मिर्ज़ाजी सुन-सुनकर झुँझलाते और हार की झेंप मिटाने के लिये उनकी दाद देते थे। पर ज्यों-ज्यों बाज़ी कमज़ोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकला जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुँझलाने लगे—"जनाब, आप चाल बदला न कीजिए। यह क्या कि एक चाल चले, और फिर उसे बदल दिया। जो कुछ चलना हो, एक बार चल दीजिए। यह आप मुहरे पर हाथ क्यों रक्खे रहते हैं? मुहरे को छोड़ दीजिए। जब तक आपको चाल न सूझे, मुहरा छूइए ही नहीं। आप एक-एक चाल आध-आध घंटे में चलते हैं। इसकी सनद

नहीं। जिसे एक चाल चलने में पाँच मिनट से ज़्यादा लगे, उसको मात समझी जाय। फिर आपने चाल बदली! चुपके से मुहरा वहीं रख दीजिए।"

मीरसाहब का फ़रज़ी पिटता था। बोले—"मैंने चाल चली ही कब थी?"

मिर्ज़ा—"आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहीं रख दीजिए—उसी घर में।"

मीर—"उस घर में क्यों रक्खूँ? मैंने हाथ से मुहरा छोड़ा कब था।"

मिर्ज़ा—"मुहरा आप क़यामत तक न छोड़ें, तो क्या चाल ही न होगी? फ़रज़ी पिटते देखा, तो धाँधली करने लगे!"

मीर—"धाँधली आप करते हैं। हार-जीत तक़दीर से होती है; धाँधली करने से कोई नहीं जीतता।"

मिर्ज़ा—"तो इस बाज़ी में आपको मात हो गई।"

मीर—"मुझे क्यों मात होने लगी।"

मिर्ज़ा—"तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए, जहाँ पहले रक्खा था।"

मीर—"वहाँ क्यों रक्खूँ? नहीं रखता।"

मिर्ज़ा—"क्यों न रखिएगा? आपको रखना होगा।"

तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता था, न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिर्ज़ा बोले—"किसी ने ख़ानदान में शतरंज खेली होती, तब तो इसके क़ायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किए, आप शतरंज क्या खेलिएगा। रियासत और ही चीज़ है। जागीर मिल जाने ही से कोई रईस नहीं हो जाता।"

मीर—"क्या! घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे। यहाँ तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आते हैं।"

मिर्ज़ा—"अजी जाइए भी, ग़ाज़िउद्दीन हैदर के यहाँ बावर्ची का काम करते-करते उम्र गुज़र गई, आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं है।"

मीर—"क्यों अपने बुज़ुर्गों के मुँह में कालिख लगाते हो—वे ही बावर्ची का काम करते होंगे। यहाँ तो हमेशा बादशाह के दस्तरख़्वान पर खाना खाते चले आए हैं।"

मिर्ज़ा—"अरे चल चरकटे, बहुत बढ़-बढ़कर बातें न कर।"

मीर—"ज़बान सँभालिए, वर्ना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ। यहाँ तो किसी ने आँखें दिखाईं कि उसकी आँखें निकालीं। है हौसला?"

मिर्ज़ा—"आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर, आइए आज दो-दो हाथ हो जायँ, इधर या उधर।"

मीर—"तो यहाँ तुमसे दबनेवाला कौन है?"

दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं। नवाबी ज़माना था; सभी तलवार, पेशक़ब्ज़, कटार वग़ैरह बाँधते थे। दोनों विलासी थे; पर कायर न थे। इनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था—बादशाह के लिये, बादशाहत के लिये क्यों मरें। पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों ने पैतरे बदले, तलवारें चमकीं, छपाछप की आवाज़ें आईं। दोनों ज़ख़्म खाकर गिरे, और दोनों ने वहीं तड़प-तड़पकर जानें दे दीं। अपने बादशाह के लिये जिनकी आँखों से एक बूँद आँसू न निकला, उन्हीं दोनों प्राणियों ने शतरंज के वज़ीर की रक्षा में प्राण दे दिए।

अँधेरा हो चला था। बाज़ी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे हुए मानो इन दोनों वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे।

चारों तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था। खँडहर की टूटी हुई मेहराबें, गिरी हुई दीवारें और धूलि-धूसरित मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थीं।

प्रेमचंद

सोने और चाँदी का व्यापार

(श्रावण की संख्या से आगे)

पाँचवाँ अध्याय; चाँदी की उत्पत्ति

जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है, चाँदी का इतिहास भी बड़ा प्राचीन है, और इसके ढूँढ़ने का प्रयत्न करने में भारी विडंबना का सामना है। चाँदी सुवर्ण की भाँति नदियों की रेणुका में कहीं नहीं मिलती। यह अधिकतर १६ हज़ार फ़ीट की ऊँचाई के पहाड़ों से निकाली जाती है। साथ ही, यह सुवर्ण के समान शुद्ध नहीं मिलती। कहीं ताँबा,

और कहीं सीसा, जस्ता, लोहा आदि हीन धातुओं के साथ और कहीं प्लाटिनम और सोने के साथ भी मिली हुई मिलती है। पश्चिमार्द्ध-खंड से ही अभी तक यह धातु अधिकतर प्राप्त हुई है। विद्वानों का अनुमान है कि भविष्य में भी इस महाद्वीप से इसकी आमदनी हुआ करेगी; क्योंकि उत्तरी ध्रुव के सागर से लेकर मेक्सिको के अंत तक का ही पृथ्वी का एक हिस्सा ऐसा है, जहाँ भूमि में होनेवाली प्राकृतिक उथल-पुथल अधिक हुई है। ये पहाड़ कहीं ४०० मील चौड़े हैं, तो कहीं १,००० मील। उत्तर से दक्षिण की ओर इनका विस्तार है। इन्हीं पहाड़ों में चाँदी है। इन पहाड़ी घरों से चाँदी को निकालने के लिये तभी से लगातार कोशिश जारी है, जब मनुष्य को इनका पता लगा था। कई ऐसे स्थल ढूँढ़ भी लिए गए हैं। परंतु अभी बहुत बाक़ी हैं। सघन झाड़ियों में से इनको ढूँढ़ निकालना बड़ी ही मेहनत और हिम्मत का काम है।

जैसा चाँदी के महत्व का कठिन मार्ग प्रकृति ने बना रक्खा है, उसी के अनुरूप, साहसी पुरुषों के लिये, मार्ग में विश्राम के स्थान भी बनाने में उस देवी ने भूल नहीं की। इस पहाड़ी-प्रदेश में स्थान-स्थान पर मरु-द्वीप मिलते हैं। ये द्वीप बड़े ही उपजाऊ हैं। साहसी पुरुषों को उनके साहस और उद्योगों का इनसे उचित पुरस्कार मिल जाता है। ऐसे ही विकट प्रदेशों से संसार की तीन-चौथाई चाँदी अब मिलती है।

अन्य धातुओं के साथ खार के रूप में मिली हुई जो चाँदी मिलती है, उसकी वैज्ञानिकों ने कई श्रेणियाँ की हैं, जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—अरजंटाइट, स्टेफ़े-नाइट, लाल चाँदी, फ़्रीसिलबेनाइट, पार्लीबेसाइट और सींग चाँदी। जो चाँदी शुद्ध रूप में मिलती है, उसे नेटिव सिलवर (Native Silver) कहते हैं। इस प्रकार की शुद्ध चाँदी धागे अथवा शाखा, पत्ते और ढेले की तरह मिलती है। इसके मिलने के प्रधान देश, कार्न-वाल, नार्वे, सेक्सनी, बोहीमिया, हंगरी, जर्मनी, अलसास, साइबीरिया, मेक्सिको, पेरू, चिली, अमेरिका का संयुक्त-राष्ट्र, कनाडा और जावा-द्वीप हैं।

अरजंटाइट चाँदी और गंधक का खार है, जिसमें लगभग ८७ प्रतिशत चाँदी और १३ प्रतिशत गंधक होता है। यह खार भी उपर्युक्त देशों में पाया जाता है।

स्टेफ़ेनाइट भी चाँदी और गंधक का ही खार है। परंतु इसके साथ अंटीमनी यानी सुरमा-धातु भी मिली हुई रहती है। इस खार के एक हज़ार अंश में ६८५ अंश चाँदी, १५२ अंश सुरमा, और १६२ अंश गंधक मिला होता है। यह खार भी अरजंटाइट खार ही के प्रदेशों में बहुधा पाया जाता है।

लाल चाँदी के दो खार मिलते हैं। एक को पाइरेरगी-राइट (Pyrargyrite) और दूसरे को प्रौस-टाइट कहते हैं। इनमें से पहले खार में ५९८ अंश चाँदी, २२५ अंश सुरमा और १७७ अंश गंधक होता है। परंतु दूसरे में ६५४ अंश चाँदी, १५२ अंश संखिया, और १९४ अंश गंधक होता है। इन दोनों खारों में से पहला खार गहरा लाल और दूसरा हलके लाल रंग का होता है। इसलिये इसको लाल चाँदी कहते हैं।

फ़्रीसिलबेनाइट में चाँदी, शीशा, सुरमा और गंधक मिले हुए होते हैं। यह खार स्पेन, सेक्सनी और बोहीमिया-प्रांत में बहुत मिलता है।

पार्लीबेसाइट में चाँदी के साथ ताँबा, संखिया, सुरमा और गंधक मिले हुए होते हैं। इस खार में लगभग ६० से ७९ फ़ीसदी तक चाँदी रहती है। मेक्सिको, चिली, केलीफ़ोर्निया आदि प्रांतों में यह बहुतायत से मिलता है।

सींग चाँदी चाँदी और हरित गैस (Chlorine) का खार है। इस खार में लगभग ७५ प्रतिशत चाँदी निकलती है। इसका रंग धूसर होता है, और लोहे के साथ रगड़ने से लोहे पर भी इससे चाँदी की क़लई चढ़ जाती है। इस खार का घर कार्नवाल, सेक्सनी, हंगेरी, नार्वे, ब्रिटेनी, साइबीरिया, न्यू साउथवेल्स, चिली और केलीफ़ोर्निया-प्रदेश हैं।

इन खारों के अलावा भी चाँदी के कई खार मिलते हैं। परंतु वे प्रचुर परिमाण में नहीं पाए जाते। किसी में चाँदी और आयोडीन का अथवा ब्रोमीन का मेल रहता है। चाँदी सोने के सिवा और तीसरी धातु टीलो-रियम के साथ भी मिली हुई मिलती है।

ये चाँदी के भिन्न-भिन्न जाति के खार वैज्ञानिकों द्वारा दो जाति में विभक्त कर दिए गए हैं। एक तो वे, जिनकी क़ीमत केवल चाँदी ही के कारण होती है। इन खारों में भी कुछ ऐसे हैं, जिनमें चाँदी के साथ-साथ सोना भी

पाया जाता है। जिन खारों में सोने का अंश अधिक हो, वे सुवर्ण-रौप्य और जिनमें चाँदी का अधिकांश हो, वे रौप्य-सुवर्ण खार कहलाते हैं। इन दोनों ही प्रकार के खारों को वैज्ञानिक लोग 'मिलिंग खार' कहते हैं।

दूसरी जाति के खारों का नाम 'स्मेल्टिंग खार' है। ये खार चाँदियों के लिये नहीं, परंतु उनसे प्राप्त होने-वाली ताँबा, शीशा, जस्ता, निकल आदि हीन धातुओं के लिये खोदे और शोधे जाते हैं। जिन खानों में ये खार निकलते हैं, उन्हें यदि इनसे प्राप्त होनेवाली चाँदी ही पर लक्ष्य रखकर चलाया जाय, तो उनका खोदना ही बंद हो जाय। परंतु इन खारों में ताँबा, शीशा आदि हीन धातुएँ इतने प्रचुर परिमाण में निकलती हैं कि उनकी वजह से इनको खुदवाना लाभप्रद रहता है। मतलब यह कि ये खानें चाँदी के लिये नहीं, ताँबा, शीशा आदि धातुओं के लिये चलाई जाती हैं। विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि इन दो प्रकार के खारों में से शुद्ध चाँदी के खारों से केवल ३५ प्रतिशत और स्मेल्टिंग खारों से लगभग ६५ प्रतिशत समस्त संसार की चाँदी, संवत् १९६९ में, निकलती थी। इतना ही नहीं, बल्कि संसार की समस्त चाँदी में से केवल २० प्रतिशत चाँदी ही चाँदी के लिये खोदी जानेवाली खानों से प्राप्त होती थी। लगभग ८० प्रतिशत चाँदी तो उन खानों से प्राप्त होती थी, जो चाँदी के लिये नहीं, अपनी हीन धातुओं के लिये ही खोदी जाती थीं। अतः चाँदी की आय पर ताँबा, शीशा आदि हीन धातुओं की खपत का भारी प्रभाव पड़ सकता है, यह हमें सदा ध्यान में रखना चाहिए।

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि भू-मध्य-सागर के आसपास के स्थलों ही में चाँदी के पहले पाए जाने के अभी तक प्रमाण मिलते हैं। और, ये प्रमाण भी उस समय के हैं, जब हमारी सभ्यता चीन की यात्रा करती हुई भू-मध्य-सागर में अपना दबदबा जमा रही थी। प्राचीन एवं मध्य-युग में खानों ही के आसपास चाँदी के सामान भी बनाए जाते थे, और चाँदी के सिक्के, इन्हीं विद्वानों के मत से, पहले-पहल यूनान ही में प्रयुक्त हुए थे। अस्तु, सबसे पहले यूनान-स्थित अटीका (Attica) की चाँदी की खानें ही मशहूर हुईं। यहीं से चाँदी जहाज़ों में लदकर योरप, एशिया और आफ्रिका आदि महाद्वीपों को जाया करती थी। फिर इन देशों के बंदरगाहों से ऊँटों आदि के काफ़लों द्वारा, अथवा बनजारों की मारफ़त, देश के भीतरी शहरों में प्रवेश करती थी। ईसा के पूर्व सातवीं शताब्दी में चाँदी की आय के थोड़े होने का लेख मिलता है। लगभग इसी समय के यूनानी राजकीय आय-व्यय के लेखे में इन खानों से रॉयल्टी (Royalty) मिलने का भी उल्लेख है। इन्हीं इतिहासों से यह भी पता चलता है कि लगभग ८४ वर्ष ईसा के पूर्व इन यूनानी खानों से लगभग ३ लाख तोले के चाँदी की प्राप्ति होती थी।

चीन और भारतवर्ष में चाँदी अति प्राचीन काल से व्यवहृत होती थी, इसके यद्यपि कई प्रमाण मिलते हैं, परंतु जिस प्रकार भारतवर्ष की नदियों में सुवर्ण-रेणु पाए जाने के अनेकों प्रमाण उपलब्ध हैं, वैसे चाँदी के प्रचुर परिमाण में पाए जाने के प्रमाण नहीं मिलते। यह विषय अभी गवेषणा-योग्य है।

पाश्चात्य विद्वान् स्ट्रेबो ने, जो ईसा के लगभग ३० वर्ष पूर्व हुआ था, स्पेन-देश में भी चाँदी की खानों के होने और लगभग तीसरी और दूसरी शताब्दी, ईसा के पूर्व, से उनके खोदे जाने का उल्लेख किया है। प्राचीन इतिहास के इन भग्नावशेषों को छोड़कर जब हम चाँदी के मध्य-युग के इतिहास को टटोलते हैं, तो हमें सबसे पहले आस्ट्रिया और जर्मनी का नाम नज़र आता है। रोमन-साम्राज्य के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने के पश्चात् शायद आस्ट्रिया ही में सबसे पहले चाँदी की खानें ढूँढ़ी और खोदी गई थीं। यही वहाँ के विद्वानों का अनुमान है। इन देशों की लगभग सातवीं शताब्दी की खानें अभी तक ज़िंदा हैं, और बराबर चाँदी देती आ रही हैं। जर्मनी के बोहीमिया-प्रांत के जॉकीमिस्टल (Joachimstal)-नामक शहर में इतनी चाँदी होने का उल्लेख मिलता है कि वहाँ पर उस समय टकसाल ही खोल दी गई थी, जिसमें पैदा हुई चाँदी के सिक्के शीघ्र ही ढाल दिए जाते थे। आज ही नहीं, बल्कि उतने प्राचीन समय में भी जर्मनी ने खारों से चाँदी निकालने और उसे शोधने की कला में इतनी उन्नति की थी कि महारानी एलिज़बेथ ने भी जर्मनों को निमंत्रण देकर इँगलैंड में बुलाया और यह

काम सौंपा था। जर्मनी की फ़ेयर्ग-प्रांत की खानों के विषय में एक ऐसी दंतकथा आज तक चली आ रही है कि संवत् १२२७ के लगभग एक शिकारी घूमता हुआ उक्त प्रांत के एक ऐसे स्थल पर पहुँच गया, जहाँ उसे कुछ विश्राम करने की प्रबल इच्छा हो आई। वह अपने घोड़े को, जिसका नाम रमेलस था, एक वृक्ष से बाँधकर स्वयं आराम करने लगा। इधर घोड़े ने अपनी स्वाभाविक चंचलता के कारण खुरों से नीचे की ज़मीन कुछ-कुछ खोद डाली, जिसमें चाँदी का अंश प्रत्यक्ष देख पड़ने लगा। तभी से वहाँ पर चाँदी के लिये खानें खोदी जाने लगीं, और उस प्रांत का नाम ही रमेलसबर्ग पड़ गया।

सोने और चाँदी के इस मध्य-कालीन इतिहास में युगांतर उपस्थित करनेवाली सबसे पहली घटना कोलंबस के द्वारा अमेरिका के आविष्कार की हुई, यह पहले ही कहा जा चुका है। सच पूछिए, तो इसी समय से पीछे का इन दोनों धातुओं का संवत् और प्रामाणिक इतिहास मिलता है। इसके पूर्व का इतिहास छिन्न-भिन्न और असंलग्न है। संवत् १५७६ (विक्रमीय) की बात है कि स्पेन से ४०० पैदल, १५ घोड़े और ७ तोपों का एक काफ़ला, कोर्टीज-नामक सेनापति की अध्यक्षता में, मेक्सिको के वीराक्रूज़ (Vera Cruz)-नामक शहर में उतरा। स्थानीय राजा ने पूर्ण मित्रता एवं प्रतिष्ठा के साथ इस काफ़ले का स्वागत किया। योरपियन सभ्यता से छके हुए इन स्पेन-निवासियों को भोले-भाले मेक्सिको-निवासियों के इस हार्दिक स्वागत में और उनकी पुरानी सभ्यता में कुछ अनुराग न उत्पन्न हुआ। इतना ही नहीं, इन लोगों के स्वाभाविक धन के दिखावे ने उनके हृदय में घोर विश्वासघाती लोभ का बीज बो दिया। जिन मेक्सिको-निवासियों और उनके राजा ने इन्हें विदेशी समझकर अपने यहाँ की सर्वोच्च सौगात के रूप में ६० हज़ार रुपए मूल्य के चाँदी के बरतन, ज़ेवर आदि मुफ़्त भेंट दिए, उन्हीं के प्रति इन कृतघ्नों ने, अपना विश्वास जम जाने पर, पूर्ण रूप से विश्वासघात किया। बेचारे राजा को एक दिन एकाएक क़ैद कर लिया, और अपने हथियारों की सहायता से क़त्ले-आम मचाते हुए राजधानी पर क़ब्ज़ा कर लिया। उस समय से मेक्सिको, लगभग संवत् १८७८ तक, स्पेनवालों ही के अधिकार में रहा। इन ३०० वर्षों की अवधि में इन सभ्य जल्लादों ने मेक्सिको का कितना धन लूटा होगा, इसका ठीक-ठीक पता तो लगाया नहीं जा सकता, परंतु ऐसा अनुमान है कि संवत् १९४८ तक वहाँ से लगभग १२ अरब रुपए की चाँदी निकल चुकी थी। इसमें यदि हम आज तक के पिछले वर्षों की चाँदी और मिला दें, तो अकेले मेक्सिको ही से संसार को लगभग २० अरब रुपए की चाँदी पिछले ४०० वर्षों में प्राप्त हुई है। मेक्सिको का ही संसार के चाँदी उत्पन्न करनेवाले देशों में प्रथम स्थान है। युद्ध के समय यहाँ पर क्रांति के उपस्थित रहने से चाँदी की आय में कैसी तेज़ी हो गई थी, यह हमसे छिपा नहीं है। धुरंधर विद्वानों के अनुमान के विपरीत, वहाँ की सुलह और शांति ने चाँदी की आय में फिर इतनी भारी वृद्धि उपस्थित कर दी है कि चाँदी का भाव, जो उनके अनुमान से अब तक ६० पेनी प्रति स्टैंडर्ड आउंस से ऊपर रहना चाहिए था, संवत् १९७६ में ही ८९॥ पेनी से गिरकर ३८॥।॰ पेनी हो गया था। अब मेक्सिको में प्रजातंत्र राज्य है, वैदेशिक शक्ति का आधिपत्य नहीं है। वहाँ की प्रधान चाँदी की खानें ग्वाना-जूटो (Guanajuato), ज़काटीकस (Zacatecas), डयूरंगो (Durango), सोनोरा (Sonora), चिहुआहुआ (Chihuahua), मेक्सिको (Melico), सेनलुई (San Luis), पोटोसी (*Potosi*), हिड-लगो (Hidalgo), जालिस्को (Jalisco), सिने-लोआ (Sinaloa), और आक्साका (Oaxaca) हैं। इन्हीं खानों के इर्द-गिर्द वहाँ पर शहर बसे हुए हैं। ये सब खानें वहाँ की राजधानी मेक्सिको से विशेष दूर नहीं हैं। प्रायः सब खानें लगभग ७,२०० फ़ीट ऊँचाई पर स्थित हैं। सोनोरा और उत्तरीय मेक्सिको की खानों की पैदावार उस समय भी बहुत थी, जब इस देश पर स्पेनवालों का आधिपत्य था। एक दफ़े स्पेन के राजा को यह वहम हो गया कि इन खानों की पैदावार का राजकीय हिस्सा बराबर नहीं वसूल होता। अतः उसने इसकी जाँच के लिये एक कमीशन नियत किया। इस कमीशन की रिपोर्ट में आज तक की सोनोरा की जीवित चाँदी की खानों का वृत्तांत पढ़कर हमें उनके अक्षय होने का अनुमान हो सकता है। सोनोरा-रियासत लगभग ७७,००० वर्ग-मील में फैली हुई है। भूगर्भ-शास्त्रियों का तो यहाँ तक अनुमान है कि यही प्रांत

पृथ्वी के सबसे मूल्यवान् खनिज पदार्थों का प्रांत है। इसी प्रकार चिहुआहुआ-प्रांत की भूमि इन मूल्यवान् धातुओं से इतनी परिपूर्ण है कि वहाँ की प्राचीन इमारतों को उनकी दीवालों से प्राप्त होनेवाली चाँदी के मूल्य के कारण, मनुष्यों के निवास-स्थान की अपेक्षा, तोड़ डालने के लिये ही ख़रीदा जाता और उसके लिये खूब धन ख़र्च किया जाता है। सच पूछिए, तो मेक्सिको पर ही चाँदी का भविष्य निर्भर है।

बेचारे मेक्सिको को ही नहीं, उस समय दक्षिण अमेरिका के पेरू तथा अन्यान्य प्रांतों को भी स्पेन-निवासियों की इस प्रकार की जल्लादी का शिकार बनना पड़ा था। पेरू-प्रांत के सेरो डी पास्को (Cerro de Pasco)-नामक १४,००० फ़ीट ऊँचे पहाड़ी-ज़िले की लगभग ३४२ चाँदी की खानों से, संवत् १८४१ से १९४६ तक, अर्थात् १०५ वर्ष में, लगभग ६० करोड़ रुपए की चाँदी निकल चुकी थी। दूसरा बोलाविया-प्रांत है, जिसकी पोटोसी की खानें आज तक प्रसिद्ध हैं। हौनचका-खानें, जो दक्षिण अमेरिका की खानों में रानी कही जाती हैं, इसी प्रांत में हैं। इस खान से, संवत् १९३० से १९५८ तक, अर्थात् २८ वर्ष में, लगभग १३$\frac{3}{4}$ आउंस, यानी ३६ क़रोड़ तोले, चाँदी निकल चुकी थी।

इन प्रांतों के विषय में यह बात ख़ास ध्यान में रखने योग्य है कि पाश्चात्य सभ्यता से अनभिज्ञ होते हुए भी यहाँ के पूर्व-निवासी चाँदी को खारों से पृथक् करने एवं उसके शोधने के हुनर से वंचित नहीं थे। इतना ही नहीं, बरन् उसमें पूर्ण सिद्ध-हस्त थे। यह बात सत्य है कि विदेशियों के आक्रमण के पश्चात् उनके इन हुनरों का, हमारे भारतवर्ष के हुनरों की ही भाँति, सत्यानाश हो गया है। यही नहीं, बरन् उनकी जाति ही एक प्रकार से समाप्त कर दी गई है। परंतु, फिर भी, उनका प्राचीन गौरव उनके नाम को गौरवान्वित करने के लिये काफ़ी है। विदेशियों ने चाँदी को शोधने के लिये शनैः-शनैः लंदन भेजकर उसे आज संसार की चाँदी का केंद्र-स्थान बना दिया है। परंतु वह समय फिर निकट ही जान पड़ता है, जब चाँदी अपने जन्मस्थान ही में पहले की भाँति, परंतु नवीन पद्धति एवं कलों से, फिर शोधी जाया करेगी। जब से अमेरिका के संयुक्त-राष्ट्र में चाँदी के शोधने के बड़े-बड़े कारख़ाने खुल गए हैं, तब से चाँदी का लंदन का मार्ग प्रायः रुद्ध हो गया है। केवल बिक्री का बाज़ार ही अब उसके हाथ में रह गया है।

एक बात और उन प्राचीन अमेरिका-निवासियों की कीर्ति को आज तक संसार में क़ायम रखनेवाली मौजूद है। वह है पैस्को-शहर की बड़ी-बड़ी सुरंगें। पैस्को-शहर सेरो डी पास्को प्रांत में लगभग १४,००० फ़ीट ऊँचे पर बसा है। इस शहर में खानों से ऐसी सुरंगें खोदी गई थीं, जो सीधी बाज़ार के बीच आकर उतरती हैं। ये सुरंगें अब छोड़ दी गई हैं; परंतु उन लोगों की कीर्ति को अब तक स्थायी किए हुए हैं।

चाँदी के आधुनिक इतिहास में संवत् १९१६ बड़े मार्के का साल है। इस वर्ष उत्तरी अमेरिका में कई चाँदी की मालदार खानें आविष्कृत हुई थीं। अमेरिका के आदिम निवासी, जिन्हें सभ्य संसार रेड इंडियन कहता है, बड़े स्वतंत्रता-प्रिय थे। उन विदेशियों के आक्रमणों को वे बड़ी घृणा से देखते थे, जो अमेरिका की सुवर्ण-रौप्यादि की खानों के लोभ से उत्तरोत्तर अधिक संख्या में उन पर आक्रमण करते ही रहते थे। जब इन आक्रमणों के फल-स्वरूप केलीफ़ोर्निया-प्रांत में सुवर्ण की प्राप्ति हुई, तो लोग इधर अधिकाधिक आकृष्ट हुए। लाघलिन और डिले-नामक दो आयरिश भी इसी प्रकार सुवर्ण के फ़िराक में वहाँ के निवाडा (Nevada) प्रांत में कारसन-नदी के किनारे-किनारे घूमते थे। एक स्थान पर उन्होंने पानी के लिये अपना फावड़ा ज़मीन पर मारा। फावड़े के साथ कुछ पीली बजरी और क्वारटन आई, जिसे देखकर उन्हें उसमें सोने का संदेह हुआ। अतः उन्होंने उस मिट्टी को नदी के पानी से खूब धोया, और उसमें से सोना प्राप्त कर वहीं पर अपना अधिकार जमा लिया। इसी प्रकार एक तीसरे व्यक्ति ने, जिसका नाम हेनरी कोमस्टाक था, और जो सदा इसी फ़िराक में घूमा करता था, इसी के आसपास एक स्थान पर अपना अधिकार जमाया। पूर्वोक्त दोनों व्यक्ति सुवर्ण-रेणु को धो-धोकर सोना निकालते थे; परंतु उसके साथ निकलनेवाले एक काले पत्थर को वे निकम्मा समझकर यों ही फेंक देते थे। कोमस्टाक ने उनसे यह पत्थर माँग लिया। उसका विश्लेषण करने से पता चला कि उसमें प्रति टन ६,००० रुपयों की चाँदी और २,६२५ रु० का सोना निकलता था। तभी से ये खानें 'कोमस्टाक लोड' के नाम

से प्रसिद्ध हुई। संवत् १९२० में जो लिवेडा-प्रांत से ७½ करोड़ रुपए का सोना और चाँदी निकली थी, उसका अधिकांश इन्हीं खानों से प्राप्त हुआ था।

इस खोज ने लोगों को इस क़दर पागल बना दिया, जिसका कुछ ठिकाना ही नहीं। संयुक्त-राष्ट्र के भूगर्भ-संबंधी वृत्तांत में इस पागलपन का बड़े ही रोचक शब्दों में वर्णन दिया है। उस वर्णन में लिखा है कि "मोटे-मोटे बालोंवाले जंगली घोड़े, ठिंगने-ठिंगने ख़च्चर और गधे—कंबल, सुअर का मांस, आटा, बरतन, फावड़े-कुदाली आदि खोदने के हथियार वग़ैरह से लदे हुए—झुंड-के-झुंड सैराज-पहाड़ पर चढ़ते थे। गिरि-कंदराओं तथा पहाड़ियों में यत्र-तत्र इन्हीं मुसाफ़िरों का कलरव सुनाई पड़ता था। छोटे-छोटे सैकड़ों तंबुओं से धुआँ निकलता था, और जहाँ-तहाँ लोग कुदाली से सोने और चाँदी की तलाश में ज़मीन खोदकर उसमें छिपी हुई छिपकलियों को कोंचा दिया करते थे। × × × सैनफ़्रांसिस्को में प्रदर्शित मूल्यवान् धातुओं को देखकर मोंटोसी का ख़ज़ाना, मांटिज़्यूमा की लूट, स्पेन के मूल्यवान् धातुओं से लदे हुए बड़े-बड़े जहाज़ इत्यादि अनेकों बातों का ख़याल हो जाता था। यह बीमारी इस क़दर बढ़ रही थी कि व्यापारी अपना व्यापार भूल गए थे। गुमाश्ते गुमाश्तगीरी छोड़कर इसी के फ़िराक में लगे थे। मल्लाह अपने जहाज़ और कारीगर अपने कारख़ाने छोड़ गए थे। × × × सबका एक-मात्र यही लक्ष्य था कि किस प्रकार चाँदी का ख़ज़ाना मिले। सैराज-पहाड़ से आगे की खानें भी उन्हें स्वप्न में प्रत्यक्ष देख पड़ती थीं। न तो अनुभव-हीनता और न ग़रीबी ही इन उन्मत्त यात्रियों को ऐसी विकट यात्रा करने से रोक सकती थी, यद्यपि जगह-जगह पर उनको मार्ग में असंख्य अड़चनें पड़ती थीं, घाटियाँ एक प्रकार से पार करने लायक़ न थीं।"

इन लोगों में शांति स्थापित करने के पश्चात् सरकार सबसे पहले इन खानों के साथ, शहरों का संबंध सुविधा-जनक करने के लिये सड़कें, रेलें, तार आदि बनाने में लगी। इस कोमस्टाक-खान से, संवत् १९१६ से १९३७ तक, यानी २२ वर्षों में, लगभग २४ करोड़ रुपए की चाँदी निकल चुकी थी। यद्यपि इसके बाद इनकी पैदावार कुछ घटने लगी थी, परंतु फिर भी संवत् १९४६ तक इनसे लगभग ६ करोड़ रुपए की चाँदी प्राप्त हो चुकी थी।

इसी प्रांत में विक्रम-संवत् १९३० के लगभग एक और खान आविष्कृत हुई, जो १,२०० फ़ीट बाहरी खुदाई होने पर अक्षय-सी मालूम होने लगी है। ऐसा अनुमान है कि इस अकेली खान से तीन वर्ष तक लगातार १०½ करोड़ रुपए की चाँदी निकली थी, और संवत् १९४६ तक इससे ४० करोड़ रुपए की चाँदी निकल चुकी थी।

(क्रमशः)

कस्तूरमल बाँठिया

गणेश-गुण-गान

जाके लाल भाल तें, निहाल करिबे के काज,
मंगल अथोर चहूँ ओर बगर्यो करै;
व्यंग्य-धुनि-पूरो, रस-रूरो सब्द-पुंज जाके,
आनन तें अरथ अमोल निकर्यो करै।
'द्विज स्याम' आठौ जाम जन-हित जाको कर,
चारो फल कलपलता-सो बितर्यो करै;
दीनन निवाजिबे को तिन गनराजजू के,
हगन दया को दरियाव लहर्यो करै।

मंगल की वृद्धि, ऋद्धि-सिद्धि की समृद्धि रहै,
कामना की सिद्धि जाके नाम के उदोत होत;
सुद्ध कवि-मानस में जाकी करुना सों,
सुधा-सहित रसांग कबिता को मंजु स्रोत होत।
भूरि-भूरि भाव व्यास-जैसे ग्रंथकारन के,
जाय-जाय जाकी लेखनी मैं ओत-प्रोत होत;
ताही गननायक को भजु 'द्विज स्याम', जाके
ध्यान के धरत अनुकूल सब व्योंत होत।

सुंड बर दंड सों दुरावत बिघन घरि,
दंत सों दबावत दुरंत पातकन को;
दुष्ट दुरबासना के दुर्ग को गिरावत,
फिरावत दुरूह दुःख-दारिद-दलन को।
जाके परताप पाप आर पास आवैं नहीं,
दावानल-तुल्य जो त्रिताप-दाप-बन को;
'द्विज स्याम' आठौ जाम कीजिए भजन,
ऋद्धि-सिद्धि के सदन ऐसे बारन-बदन को।

करन हलाय दुख दीहन हलावै,
कर सीकर उड़ाय कै त्रिताप निरवारै है ;
'द्विज स्याम' तम तोम जोम सों निकारै, उर-
बीच आनि चारु चंद्र-चंद्रिका पसारै है।
सोक, सूल दंत को दरेरो दै पछारै, त्यों
अमंगल को व्यूह दाबि कुंभ सों बिदारै है ;
झुंड-झुंड अघन बितुंड सों सँहारै धरि,
पुंज-पुंज बिघन बिलुंज करि डारै है।

श्यामनाथ सुकुल

प्रयाग में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति

प्रशस्ति का हिंदी-अनुवाद आप लोगों ने श्रावण की माधुरी में पढ़ा। आज हम उसकी मुख्य बातें फिर लिखकर उसकी व्याख्या करेंगे।

प्रशस्ति में पहले ८ श्लोक हैं। उनके नीचे गद्य है। श्लोकों में दो के कुछ ही अक्षर बचे हैं; शेष छः बीच-बीच में टूटे हैं। पर प्रसंगानुसार अक्षर जोड़ देने से अर्थ स्पष्ट निकल आता है। तीसरे श्लोक (पाँचवीं और छठी पंक्ति) से प्रकट होता है कि महाराज समुद्रगुप्त बड़े विद्वान् और अच्छे कवि थे। काव्य और लक्ष्मी के विरोध को उन्होंने मिटा दिया था। इंदुमती के स्वयंवर (रघुवंश, सर्ग ६) में कालिदास ने भी अंग-नरेश के गुण-वर्णन में सुनंदा के मुँह से कहलाया है—

"निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च"

अनुवाद—

यद्यपि विलग प्रकृति सन अहहीं,
श्री, बानी यहि महँ मिलि रहहीं।
(रघुवंश भाषा)

चौथे श्लोक में आर्य-शब्द एक अनोखे अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। गुप्त-वंश क्षत्रिय था; परंतु इस श्लोक से विदित होता है कि उस समय प्रत्येक ब्राह्मण या क्षत्रिय को आर्य की पदवी नहीं दी जाती थी। जान पड़ता है, महाराज चंद्रगुप्त प्रथम के और भी बेटे थे। यह भी हो सकता है कि समुद्रगुप्त सबसे बड़े न रहे हों। परंतु गुप्तों की नई बढ़ती थी। कुमारदेवी के साथ व्याह होते ही चंद्रगुप्त का भाग्योदय हो गया; उन्होंने अनेक देश अपने अधीन करके महाराजाधिराज की पदवी (देखो पंक्ति २८) धारण की। ऐसे राज्य को सँभालना साधारण मनुष्य का काम न था। इसलिये उन्होंने अपने बेटों में सबकी अपेक्षा अधिक योग्य को अपना उत्तराधिकारी बनाया, और अपने जीते-जी राज्य-शासन का भार उसको सौंप दिया। चौथे श्लोक के अनुवाद को फिर पढ़िए—

"तुम 'आर्य' हो, ऐसा कहकर उनके पिता ने उनको गले लगाया, जब उनके तुल्य कुल के जन्मे लोग (भाई) मुरझाए हुए मुँह से उन्हें देखते थे, सभासद उच्छ्वसित हो रहे थे। और, गद्‌गद-शरीर होकर प्रेम के आँसुओं से भरी हुई आँखों से बार-बार देखकर कहा कि तुम पृथ्वी की रक्षा करो।"

चंद्रगुप्त प्रथम की बढ़ती ३६० संवत् से मानी जाती है, जिसको आज सोलह सौ वर्ष हुए। प्रशस्ति कह रही है कि उस समय 'आर्य'-शब्द का अधिकारी होने के लिये कुछ विशेष गुणों की आवश्यकता थी। वे गुण कौन थे ? एक प्रसिद्ध श्लोक में 'आर्य' के गुण यों गिनाए गए हैं—

"कुलं शीलं दया दानं धर्मः सत्यं कृतज्ञता ;
अद्रोह इति येष्वेतत् तानार्यान् संप्रचक्षते।"

अर्थात् कुल, शील, दया, दान, धर्म, सत्य, कृतज्ञता और अद्रोह, इतने गुण जिनमें हों, उन्हें आर्य कहते हैं।

पर इन गुणों से राज्य-काज करने की योग्यता नहीं आती। राजा में कुछ विशेष गुण चाहिए। वे गुण एक दूसरे श्लोक में दिए हुए हैं। यथा—

"कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन् ;
तिष्ठति प्रकृताचारे सैव आर्य इति स्मृतः।"

अर्थात् जो अपने कर्तव्य का पालन करे, अकर्तव्य को न करे, और जो काम उसको सौंपा गया हो, उस पर दृढ़ रहे, वही आर्य है।

हमारी समझ में तो यह आता है कि ये ही गुण समुद्रगुप्त के पिता ने उनमें देखे थे।

समुद्रगुप्त काव्य-कौशल के अतिरिक्त गाने-बजाने में भी नारद और तुंबुरु के कान काटते हैं। इनका एक सिक्का मिला है, जिसमें यह एक ऊँचे तकिए की कुरसी पर बैठे

इसराज के आकार का एक बाजा बजा रहे हैं। हज़ारों गउओं का नित्य दान करना और दीन-दुखियों की सहायता में अपना समय बिताना इतने बड़े सम्राट् के लिये कुछ साधारण बात नहीं है।

२६वीं पंक्ति में "धनदवरुणांतकसम" विशेषण रघुवंश पढ़नेवालों को नवें सर्ग के छठे श्लोक का स्मरण कराता है—

"समतया वसुवृष्टिविसर्जनैर्नियमनादसतां च नराधिपः ;
अनुययौ यमपुण्यजनेश्वरौ सवरुणावरुणाग्रसरं रुचा।"

अर्थात्—

बिना पच्छ सब जन सम मानी,
देइ दंड दोषी नर जानी।
भयो वृष्टि सन करि धन-दाना,
जम, कुबेर अरु बरुन समाना।
(रघुवंश भाषा)

कालिदास ने समुद्रगुप्त के विशेषणों की व्याख्या-सी कर दी है। इसी सर्ग के चौबीसवें श्लोक को भी देखिए—

"अथ समाववृते कुसुमैर्नवैस्तमिव सेवितुमेकनराधिपम् ;
यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समधुरं मधुरंचितविक्रमम्।"

राजराज, जम, इंद्र, बरुन सम ;
पूजनीय धारत भुज-बिक्रम।
ते सेवन लै कुसुम अनंता ;
लौट्यो क्रम सन रुचिर बसंता।
(रघुवंश भाषा)

जान पड़ता है, ये विशेषण महाकवि को बहुत रुचे थे, इसी से एक ही सर्ग में दो बार इनका उपयोग उन्होंने किया है।

यहाँ पर हम यह भी कहना आवश्यक समझते हैं कि समुद्रगुप्त के बेटे चंद्रगुप्त द्वितीय के दान-पत्रों में भी ये ही विशेषण आए हैं।

अब समुद्रगुप्त के सबसे प्रधान गुण को देखिए। वह गुण उनकी वीरता है, जिससे उन्होंने भारतवर्ष और उसके बाहर के देशों को भी जीतकर अपने अधीन कर लिया था। यथा—"उसके शरीर पर अनेक प्रकार के अस्त्रों के सैकड़ों घाव थे, जो सौ लड़ाइयों में लगे थे।" प्रशस्ति में हथियारों के नाम बहुत गिनाए हैं। उनमें बहुतेरे हथियार कैसे थे, यह जानना भी अब कठिन है। सौ लड़ाइयाँ उन्होंने अपने भुजबल से जीती थीं। इस स्थान पर भी "स्वभुजबलपराक्रमैकबन्धोः" (*जिसका एक-मात्र सहायक उसके भुजबल का पराक्रम था*) कालिदास को बहुत अच्छा लगा है, * यद्यपि पाठकगण कह सकते हैं कि वीर का तो यह साधारण विशेषण है। *इन लड़ाइयों का फल बड़े विस्तार के साथ लिखा है।*

"इसने अपने बाहुबल से सारे दक्षिणापथ के राजों को पकड़ा, और फिर कृपा करके छोड़ दिया।" (पंक्ति १९, २० प्रशस्ति) दक्षिणापथ विंध्य-पर्वत के दक्षिण के देशों को कहते थे। इन देशों के नाम और इनकी स्थिति यों है—

१—कोशल †—सन् १९२० में हमने अयोध्या पर लखनऊ में जो व्याख्यान दिया था, और जिसका अनुवाद सम्मेलन-पत्रिका में छप चुका है, उसमें हमने दिखलाया था कि दक्षिण-कोशल कलिंग के पश्चिम विंध्याचल की घाटी में था, और उसकी राजधानी महानदी के तट पर थी। इस राजधानी का नाम श्रीपुर था, जिसे अब सिरपुर कहते हैं।

२—महाकांतार—बड़ा वन। यह जंगली देश दक्षिण-कोशल के पश्चिम में था।

३—केरल—मलाबार। कावेरी के उत्तर का देश है।

४—पिष्टपुर—आजकल इसको पिट्टपुरम् कहते हैं। यह मदरास-हाते के गोदावरी-ज़िले में है।

५—कोट्टर—कदाचित् कोयंबटूर हो।

६—एरंडपल्ल—आजकल इसे एरंडोल कहते हैं। यह ख़ानदेश में है।

७—कांची—आजकल एक प्रसिद्ध तीर्थ है।

८—वेंगी—यह राज्य गोदावरी और कृष्णा, इन दोनों नदियों के बीच में था।

९—पलाक—मलाबार के दक्षिण में पालाघात हो सकता है।

१०—आटिक—यह महाकांतार से भिन्न है। विंध्याचल के उत्तर कोई जंगली देश रहा होगा।

११—समतट—दक्षिण अथवा पूर्व, बंगाल।

१२—कर्तृपुर—अनुमान से आजकल का कुमायूँ और केदारखंड समझ पड़ता है।

---

* "स्वहस्तार्जितवीरशब्दः" (रघुवंश)

† यह दक्षिण-कोशल है। अयोध्या उत्तर-कोशल की राजधानी थी।

अन्यान्य देशों के नाम अब इतने बदल गए हैं कि केवल नाम-सादृश्य से उनका पता लगाना कठिन है।

समुद्रगुप्त की इसी दिग्विजय को बाबू राखालदास वंद्योपाध्याय ने इस तरह क्रमबद्ध किया है *—

"समुद्रगुप्त ईसवी चौथी शताब्दी के मध्य-भाग में सिंहासन पर बैठा था। उसने सबसे पहले आर्यावर्त के दूसरे राजाओं को नष्ट करना आरंभ किया था, और रुद्रदेव, महिल, नागदत्त, चंद्रवर्म, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नंदी, बलवर्मा आदि राजाओं के राज्य नष्ट किए थे। आर्यावर्त के अधिकृत हो जाने पर आटविक अर्थात् वनमय प्रदेशों के राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकृत की थी। समुद्रगुप्त ने सारे उत्तरापथ को जीतकर दक्षिणापथ को जीतने का उद्योग किया था। उसने अपनी राजधानी पाटलिपुत्र से चलकर मगध और उड़ीसे के बीच के वनमय प्रदेश के दो राजाओं को परास्त किया था। इन दोनों राजाओं में से पहला दक्षिण-कोशलराज महेंद्र और दूसरा महाकांतार या भीषण वन का अधिपति व्याघ्रराज था। इसके बाद उसने केरल-देश के अधिपति मंठराज को परास्त करके कलिंग-देश की पुरानी राजधानी पिष्टपुर (आधुनिक पिट्टपुरम्), महेंद्रगिरि और कोट्टूर के क़िलों पर अधिकार किया था। कोट्टूर और पिष्टपुर के अधिपति स्वामिदत्त, एरंडमल्ल के राजा दमन, कांचीनगर के अधिपति विष्णुगोप, अवमुक्त के राजा नीलराज, वेंगिनगर के अधिपति हस्तिवर्मा, पलाक्क के राजा उग्रसेन, देवराष्ट्र के अधिपति कुबेर और कुंतलपुर के राजा धनंजय आदि दक्षिणापथ के सब राजा लोग समुद्रगुप्त के द्वारा परास्त हुए थे। समतट (दक्षिण अथवा पूर्व-वंग) डवाक (संभवतः ढाका) कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर (वर्तमान कुमायूँ और गढ़वाल) आदि सीमांत-राज्यों के राजा लोग और मालव, अर्जुनायन, यौधेय, मुद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खर्परिक आदि जातियाँ उसे कर दिया करती थीं।"

इसमें शाही और शाहानुशाही का नाम नहीं है, जो कर तो देते ही थे, अपनी बेटियाँ भी भेंट करते थे। ये शाही और शाहानुशाही कौन हैं? शाही और शाहानुशाही कुशान-वंशी राजों की उपाधियाँ थीं। इनमें सबसे प्रसिद्ध कनिष्क हुआ। कनिष्क की राजधानी शाकल्ल (स्यालकोट) थी, और उसने पुरुषपुर (पेशावर) भी बसाया था। परंतु कुशान-वंश का सूर्य गुप्तों से पहले ही अस्त हो चुका था; और गुप्तों के समय में भारत की पश्चिमी सीमा के प्रांत पारस्य-देश के सासानी-शाहों के अधिकार में थे। समुद्रगुप्त का समय विक्रम-संवत् की पाँचवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में जाँचा गया है। उस समय सासानी-वंश बड़ी धूमधाम से राज्य कर रहा था। उसके कुछ ही पीछे राजा यंज़देगर्द को हूणों ने कई बार परास्त किया। शाही और शाहंशाह कुशानों के ख़िताब भले ही रहे हों, पर क्या इसमें किसी को संदेह हो सकता है कि ये फ़ारसी के शब्द हैं? ये ईरान के बादशाह थे, जो समुद्रगुप्त से हार मानकर उसके साथ विवाह-संबंध की आकांक्षा करते थे।

अँगरेज़ी के विद्वान् इस प्रशस्ति को 'पोस्थ्युमस' कहते हैं, जिसका अभिप्राय यह है कि समुद्रगुप्त के मरने पर उसके पुत्र ने उसे खुदवाया। हमको यह ठीक नहीं जँचता। प्रशस्ति की तीसवीं पंक्ति में लिखा है कि समुद्रगुप्त की कीर्ति संसार में फैली, और अब वह स्वर्ग जाना चाहती थी, इसलिये इस ऊँचे खंभे पर चढ़ गई। अगले लेख में हम समुद्रगुप्त के दिग्विजय की रघुवंश में वर्णित रघु के दिग्विजय से तुलना करने का प्रयत्न करेंगे।

श्रीअवधवासी सीताराम

* देखो देवीप्रसाद-ऐतिहासिक-पुस्तकमाला में प्रकाशित प्राचीन मुद्रा' ग्रंथ के हिंदी-अनुवाद के पृष्ठ १५४ और १५५।

अंतिम विजय

उसने कहा—"द्वंद्व से व्याकुल हो आया क्या मेरे पास?"
मैंने कहा—"सत्य है; पर मैं हुआ न इससे तनिक हताश!
प्रथम प्रभात-उदय से लेकर घोर समर में रहा प्रवृत्त,
आशाओं के विप्लव से रहता था सचमुच चंचल चित्त।
तू है दूर युद्ध से, तेरे निकट शांति का है संचार;
क्षण-भर तेरे निकट बैठने का है मेरा आज विचार।
चिर निवास तेरे चरणों के निकट तभी मैं पाऊँगा,
फिर जाऊँगा युद्ध-क्षेत्र में, विजय प्राप्त कर आऊँगा।"
उसने मेरा सिर चूमा, फिर कहा—"हुआ है दीवाना!
अंतिम विजय यही है, सैनिक, मेरे निकट पहुँच जाना।"

मोहनलाल महत्तो गयावाल "वियोगी"

वूढ़ा वर और वालिका वधू

[चित्रकार—श्रीयुत गुरुस्वामी]

जैनों का श्वेतांबर आगम

(२)

अब अर्ध-मागधी के विषय में कुछ विचार किया जाता है। वास्तव में अर्ध-मागधी उस भाषा का नाम है, जिसमें भगवान् महावीर स्वामी उपदेश देते थे। शास्त्र में इसका ऐसा प्रभाव बतलाया है कि इस भाषा को सुनते ही प्रत्येक देश और जाति के मनुष्य तथा सब प्रकार के पशु-पक्षी इसे समझ लेते थे[1]। भगवान् महावीर स्वामी का जन्म मगध में हुआ, और उसी देश में वह अधिक विचरते रहे, इसलिये उनकी मातृ-भाषा मागधी ही होगी। मागधी-भाषा का प्रकट चिह्न 'ल' और 'श' का बाहुल्य है। अकारांत पुल्लिंग शब्दों के रूपों का एकारांत होना भी उसकी एक विशेषता है। प्राकृत के वैयाकरण वर-रुचि, हेमचंद्र आदि ने ऐसा ही वर्णन किया है। वैयाकरणों के इन लक्षणों की पुष्टि महाराज अशोक की पूर्वी धर्म-लिपियों से भी होती है, जिनमें राजा के स्थान में 'लाजा'-शब्द आया है। चूँकि उस समय की प्राकृतों में कुछ अधिक भेद न था, इसलिये भगवान् महावीर स्वामी अपने व्याख्यान में एक ऐसी भाषा का प्रयोग कर सकते थे, जिसमें मुख्य अंश मागधी का रहे, और गौण अंश अन्य प्राकृतों के हों, जिसमें उनका व्याख्यान हरएक देश और जाति के मनुष्यों की समझ में आ जाय। इसी से उनकी भाषा की यह विशेषता मानी गई है कि वह सब प्रकार के मनुष्यों और पशु-पक्षियों की समझ में आ जाती थी; और इसी से उसका नाम अर्धमागधी—अर्थात् वह भाषा, जिसमें मुख्य अंश मागधी का, और कुछ-कुछ अंश अन्य भाषाओं के हों—हुआ[2]। महाराष्ट्री को अन्य प्राकृतों की अपेक्षा उत्तम मानते थे, इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् महावीर स्वामी ने भी अर्ध-मागधी में महाराष्ट्री का अधिक अंश रक्खा होगा।

इस प्रकार उपदेश के लिये भाषा को मिश्रित करने का उदाहरण वर्तमान काल में भी मिलता है। पंजाब में—विशेषकर अमृतसर में—कई ऐसे हिंदू-उपदेशक हैं, जो अपना उपदेश हिंदी और पंजाबी की मिश्रित भाषा में देते हैं[3]। यह मिश्रित भाषा साधारण बोल-

---

१. "भगवं चणं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ। सा वि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खि-सरीसिवाणं अप्पप्पणो हिय-सिव-सुहदाय भासत्ताए परिणमइ।"

(समवायांग-सूत्र)

अर्थात् भगवान् महावीर स्वामी अर्ध-मागधी-भाषा में धर्म का उपदेश करते थे; और वह अर्ध-मागधी ऐसी थी कि बोलते ही सभी आर्य एवं अनार्य लोगों तथा द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और रेंगनेवाले जीवों की अपनी-अपनी, हित-सुख देनेवाली, भाषा के रूप में बदल जाती थी। यहाँ 'भासिज्जमाणी'-शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है कि वह बोलते ही अर्थात् तत्काल ही, विना किसी अनुवाद या टीका-टिप्पणी के, समझ में आ जाती थी। विना समझे कोई उपदेश 'हित-सुख देनेवाला' नहीं हो सकता।

'औपपातिक'-सूत्र में यही और भी स्पष्ट करके लिखा है। यथा—"सा वि य णं अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमइ।"

१. भगवान् की इस वाणी की विशेषता को निम्न-लिखित उदाहरण से समझाया करते हैं। एक दफ़े गरमी की ऋतु में एक भील अपनी तीन स्त्रियों सहित किसी जंगल में जा रहा था। रास्ते में एक स्त्री बोली—"हे स्वामिन्, मुझे मीठे स्वर से कुछ गाकर सुनाइए।" दूसरी ने कहा—"मुझे सरोवर से ठंडा पानी लाकर पिलाइए।" तीसरी ने कहा—"मृग मारकर मुझे उसका ताजा मांस खिलाइए।" स्त्रियों के ये वचन सुनकर तीनों के उत्तर में भील ने कहा—"सरो नत्थि।" इस एक वाक्य को सुनकर तीनों चुप हो गईं। पहली समझी, 'सर' अर्थात् सुर (सं० स्वर) नहीं है, अर्थात् स्वामी का गला बैठा हुआ है। दूसरी समझी, 'सर' अर्थात् सरोवर नहीं है, पानी कहाँ से लावे। तीसरी समझी, 'सर' अर्थात् बाण नहीं है, मृग कैसे मारा जाय। संस्कृत के तीनों शब्दों (स्वर, सरस् और शर) का प्राकृत रूप 'सर' ही होता है।

२. अर्धंमागध्याः=अर्धमागधी।

३. इस प्रकार की मिश्रित भाषा का नमूना पंजाबी कवि अपनी कविताओं में भी देते हैं। यथा—

चाल में नहीं प्रयुक्त होती, केवल साधु लोग इसके द्वारा उपदेश देते हैं ; क्योंकि उनकी परिषदों में देश-देशांतर के श्रोताजन उपस्थित होते हैं ।

प्रो० पिशल लिखते हैं कि अर्ध-मागधी उस भाषा का नाम है, जिसमें श्वेतांबर जैनों के आगम-ग्रंथ रचे हुए हैं, जिस रूप में कि वे आजकल उपलब्ध होते हैं[1] । ऊपर के कथनानुसार आगम ग्रंथों की भाषा में अन्य *प्राकृतों की* अपेक्षा मागधी से अधिक समता होनी चाहिए । परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है ; क्योंकि आगमों की भाषा महाराष्ट्री से अधिक मिलती है । *इसी कारण प्रो० जेकोबी ने आगमों की भाषा को* 'जैन-प्राकृत' कहा है । और, अर्वाचीन निर्युक्ति आदि की भाषा को, आगम-भाषा से पृथक् करने के लिये, जैन-महाराष्ट्री कहा है[2] । *यह बात ध्यान में रखने योग्य* है कि जैन प्राकृत-वैयाकरण आगम-भाषा को 'आर्ष' कहते हैं, न कि अर्ध-मागधी । बहुत-से लोग इसे 'मागधी' ही कह देते हैं[3], *जिससे शायद यह व्यंग्य निकलता है कि*

(क) सैयद वारिसशाह का बनाया 'क़िस्सा हीर-राँझा' । पीराँदित्ता द्वारा संशोधित । लाहौर, सन् १९१४ । याद रहे, वारिसशाह ने हीर का क़िस्सा वि० सं० १८२० में लिखा था । इसकी भाषा ठेठ पंजाबी है । जोगी बालनाथ की, तथा जब राँझे ने जोगी का भेष किया था, तब उसकी, बातचीत में केवल एक-एक दो-दो शब्द हिंदी के रक्खे हैं, ताकि उनसे हिंदी-अंश की झलक पड़ जाय ।

उदाहरण—

माला मणकिआँ दे बिच इक धागा ;
तिवें सर्व के बीच समा रिहा ।
(हीर वारिस, पृ० १२२)

हमीं बड्डे फकीर सतपीढ़िए हाँ ;
रसम जग्ग दी हमीं नाँ जानने हाँ ।
(हीर वारिस, पृ० १४६)

हमीं भिक्खिआ मंगने चले हाँ रे ;
तुम्हीं आन के काह खहेड़दियाँ हो ।
(हीर वारिस, पृ० १४९)

(ख) मुंशी मौलाबख़्श का लिखा क़िस्सा हीर-राँझा । अमृतसर, वि० सं० १९७० ।

उदाहरण—

तेरी अभी अवस्था नहीं पस क़ाबिल ;
सहे फ़कर के रंजो अना बालक ।
तुझे जोग का क्या बजोग लागा ;
जाके जोग से हल चला बालक ।
(हीर मौलाबख़्श, पृ० ९०) .

हमरे जोग अभ्यास में बिघन डाला ;
तूने दिया कलेश है अति बाबा ।
हमरी कुटी में तीन दिन रैन. रक्खे ;
कुरता कहो इसको इस का पती बाबा ।
(हीर मौलाबख़्श, पृ० १२३)

(ग) ब्रजलाल शास्त्री-कृत पूरन-नाटक । अमृतसर, सन् १९२० । योगी गोरखनाथ कहते हैं—सब कुछ देखिआ जावेगा । अब पूरननाथ को पक्का चेला बनावेंगे । जाओ, इसको अशनान कराओ अर ईहाँ चौकी अर समग्री लै आओ ।
(पूरन-नाटक, पृ० ६६)

(घ) जैनियों की मिश्रित भाषा का नमूना श्रीबूटेरायजी-कृत 'मुखपत्ति-चरचा' है, जिसका एक पाठ श्रीविजयराजेंद्र सूरि और मुनि धनविजय-कृत 'चतुर्थ-स्तुति-निर्णय-शंकोद्धार' के पृष्ठ २९ पर दिया है । चतुर्थ-स्तुति-निर्णय-शंकोद्धार सं० १९४६ में, अहमदाबाद के यूनियन प्रिंटिंग प्रेस में, छपी थी । मुखपत्ति-चरचा का पाठ गुजराती, हिंदी और राजस्थानी-भाषाओं की खिचड़ी है । वह पाठ यह है—

"मुखपत्तिचरचा ना ५९मा पृष्ठ माँ श्रीबूटेरायजी लखे छे के बाइ दिक्षा लेनेवाली थी ते साधाँ की रुपइये चडाय के पूजा करने लगी । प्रथम तो रुपइये चडाय ने रत्नविजयजी की पूजा करी, पीछे मेरे को रुपइये चडावणे लगी । तिवार नितविजयजी बोल्या हमारे आगे रुपइये चडावणे का कुच्छ काम नहीं, हमारे रुपइया की खप नहीं । इम कहीने मने कर दीने तिवारे हम सबे तहाँ ते ऊठ के चले आए पोछे तिना ने बाइ कुँ दिक्षा देके सहर में चले गए ।"

१. Pischel's Grammatik der Prakrit-Sprachen.

२. देखिए प्रो० जकोबी द्वारा संपादित 'कल्पसूत्र' की प्रस्तावना, पृ० १७-१८ ।

३. देखिए, प्रो० पिटर्सन् की रिपोर्ट, सन् १८८२-८३ । बंबई १८८३, परिशिष्ट नं० १, सूची ताड़पत्र के ग्रंथों की । इसमें प्रायः हर तरह के प्राकृत-ग्रंथों के आगे 'मागधी'-शब्द लिखा है ।

प्राचीन काल में अर्ध-मागधी और मागधी में बहुत कुछ समता थी।

प्रत्यक्ष रूप में इन विरोधों का समाधान करने के लिये हमें जैन-आगम के इतिहास पर दृष्टि डालनी चाहिए। नितांत श्रद्धालु जैनियों का ख़याल है कि जैन-धर्म की भाँति जैन-आगम भी अनादि काल से इसी रूप में चला आया है। परिवर्तन केवल इतना हुआ है कि कथानकों में यथा-समय नगरादि के नाम बदल गए हैं[1]। जैनियों को यह ख़याल शायद ब्राह्मणों की देखादेखी हुआ है; क्योंकि ब्राह्मण लोग भी वेदों को अनादि जानते हैं, और उनमें व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को छोड़ और किसी प्रकार का परिवर्तन हुआ नहीं मानते।

लेकिन एक पुराना और युक्ति-युक्त मत यह है कि आगम-ग्रंथ श्रीसुधर्म स्वामी-नामक गणधर के रचे हुए हैं[2]। उन्होंने भगवान् महावीर के मुखारविंद से उपदेश सुना, और फिर इस उपदेश को, जहाँ तक हो सका, भगवान् ही के शब्दों में अपने शिष्यों तक पहुँचाया। यहाँ से परंपरा करके गुरु अपने शिष्यों को भगवान् का उपदेश सुनाते रहे। गूढ़ और कठिन वाक्यों पर अपनी टीका-टिप्पणी कर देते थे[1]। चूँकि उपदेश और अध्यापन का काम ज़बानी होता था, इसलिये स्वाभाविक तौर पर साधारण हिस्सों की अपेक्षा ज़रूरी हिस्से अधिक सावधानी से सुने जाते और भगवान् के शब्दों में ही याद रक्खे जाते होंगे। बस, ये ही हिस्से आगम-ग्रंथों का मूल बने।

जब भगवान् महावीर के निर्वाण को दो सौ वर्ष हो गए थे, तब मगध-देश में बड़ा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा, और वह बारह साल तक रहा। इस दुर्भिक्ष के कारण साधु-साधुनियों को भिक्षा का मिलना कठिन हो गया, और व्रत-पालन में विघ्न पड़ने लगे। यह हाल देखकर कुछ साधु कर्णाटक-देश को चले गए। वहाँ सुभिक्ष था, और धर्म-क्रियाओं का पालन आसानी से हो सकता था। जब दुर्भिक्ष मिट गया, तो कर्णाटक से साधु लोग वापस आ गए। उन्होंने देखा, जो साधु दुर्भिक्ष के समय मगध में रहे थे, उनके आचार कुछ शिथिल पड़ गए हैं। इसलिये कर्णाटक से लौटे हुए साधु अपने को श्रेष्ठ मानने लगे। तब से दोनों साधु-समूहों में कुछ वैमनस्य-सा रहने लगा।

दुर्भिक्ष के समय निर्वाह के योग्य भिक्षा न मिलने से पठन-पाठन की बहुत हानि हुई, जिससे शास्त्रों का कुछ हिस्सा तो बिलकुल भूल गया, और कुछ अच्छी तरह याद न रहा। दुर्भिक्ष के पश्चात् स्थूलभद्र स्वामी ने, जो उस समय संघ के आचार्य थे, पाटलिपुत्र (पटना)-नगर में सब साधु-साधुनियों को इकट्ठा किया, और शास्त्रों का जो हिस्सा जिसको याद था, वह उससे पूछकर ग्यारह अंग तो संपूर्ण कर लिए, लेकिन बारहवाँ अंग सदा के लिये भूल गया[2]। कर्णाटक से लौटे हुए

१. तत्त्व-निर्णय-प्रासाद, पृष्ठ ९। उदाहरण—

"जो नाम संप्रति काल में आचारादि द्वादशांगों का है, सो ही नाम शेष तीर्थंकरों के समय में था।"

"हे भव्य, जे अनंत तीर्थंकर अतीत काल में हो गए हैं, और जे अनंत तीर्थंकर आगामि काल में होवेंगे, तिन सर्व के द्वादशांगी रचना के तत्त्व में किंचित्मात्र भी अंतर नहीं; किंतु पुरुष-स्त्रियों के नाम, और गद्य-पद्यादि-रचना इत्यादि में अंतर है, शेष तत्त्व-स्वरूप एक सरीखा है। इस वास्ते जो श्रीमहावीरजी के समय की रचना शास्त्रों की है, सो ही श्रीऋषभदेवजी के समय में थी। इस वास्ते जैन-मत की पुस्तकें सर्व मतों की पुस्तकों से पुरानी सिद्ध होती हैं।"

पिछले पृष्ठ का नं० २ और यह नं० १ का फुट नोट शायद हेमचंद्र-कृत परिशिष्ट पर्वन् (स्थविरावली) से लिया गया है।

२. तत्त्व-निर्णय-प्रासाद, पृष्ठ ५। उदाहरण—

"श्रीमहावीर भगवान् के इग्यारह (११) बड़े शिष्यों ने नव वाचना में द्वादशांगी की रचना करी थी, अर्थात् नव तरें के आचारांग, नव तरें के सूत्रकृतांग, यावत् नव तरें के दृष्टि-वाद। तिनमें पाँचवें गणधर श्रीसुधर्म स्वामी की वाचना विना, आठ वाचना का व्यवच्छेद श्रीमहावीर और श्रीगौतम गण-धर के पीछे ही हो गया था। संप्रति काल में जो पुस्तकें जैन-मत में प्रचलित हैं, वे सर्व श्रीसुधर्म स्वामी की वाचना की हैं। इस वाचना की पुस्तकों को भी बहुत उपद्रव हो गुज़रे हैं।"

१. अत्थं भासइ अरिहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं। आवश्यक नियुक्ति, गाथा ६८। अर्थ—भगवान् जिस बात का उपदेश देते हैं, गण उसे निपुणता-पूर्वक सूत्रों में रच देते हैं।

२. इतश्च तस्मिन् दुष्काले कराले कालरात्रिवत्।
निर्वाहार्थं साधुसंघस्तीरं नीरनिधेर्ययौ ॥ ५५ ॥

साधुओं ने इस शास्त्र-संग्रह को मानने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा—"अंग तो अब सर्वथा नष्ट हो गए हैं, और वे प्राप्त नहीं हो सकते।" यह वैमनस्य और मत-भेद यहाँ तक बढ़ा कि आख़िरकार संघ के दो भेद हो गए—दिगंबर और श्वेतांबर।

स्थूलभद्र स्वामी ने जो शास्त्र संग्रह किया था, वह थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के समय तक चला आया। उनके समय में फिर भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। उसमें बहुत-से ज्ञानवान् साधुओं की मृत्यु हो गई, और पठन-पाठन में बड़े विघ्न हुए, जिससे जैन-शास्त्रों का कुछ-कुछ हिस्सा ही किसी-किसी साधु को याद रह गया। जब दुर्भिक्ष दूर हुआ, तो जैन-शास्त्र को विस्मृति से बचाने के लिये देवर्धिगणि ने वल्लभी-नगर में संघ को इकट्ठा किया। जो पाठ जिसे याद था, उसे उससे सुनकर, कहीं-कहीं यथामति शुद्ध करके, सिद्धांत-रूप में संग्रह किया[1]। फिर समग्र सिद्धांत की बहुत-सी प्रतियाँ (नक़लें) करवा डालीं, जिसमें, भविष्य में, उसके नष्ट होने का भय न रहे।

देवर्धिगणि के समय से लेकर अब तक सिद्धांत में बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका है, क्योंकि देवर्धिगणि-रचित 'नंदी-सूत्र' तथा 'समवायांग-सूत्र' में दी हुई सिद्धांत की विषयानुक्रमणियों में परस्पर बहुत अंतर है। वर्तमान सिद्धांत में तो इन विषयानुक्रमणियों से बहुत ही अंतर है। इससे यह अनुमान होता है कि सिद्धांत के परिवर्तन के साथ उसकी भाषा में भी परिवर्तन होता गया। चूँकि जैन-धर्म मगध से गुजरात, काठियावाड़ आदि पश्चिम के देशों में फैलता गया, और देवर्धिगणि ने भी संघ का अधिवेशन काठियावाड़ में ही किया, इस-लिये यह स्वाभाविक बात हुई, जो सिद्धांत-ग्रंथों में पाश्चात्य प्राकृत (अर्थात् महाराष्ट्री) का अंश अधिक आता गया। तो भी बहुत-से शब्द और रूप पुरानी भाषा के बने रहे, जिसमें उनसे प्राचीनता और पवित्रता प्रकट होती रहे। नमूने परिशिष्ट में देखिए—

परिशिष्ट

आचाम्ल (न०)=एक प्रकार की तपस्या, जिसमें घृतादि रसों का त्याग होता है—

"सा विंशतिमाचाम्लानि चक्रे जिनं जिनं प्रति।"

(विनयचंद्रसूरि-कृत मल्लिनाथ-चरित्र ६।१५)

कचवर=मैल, मल।

(मलयगिरि-कृत नंदीसूत्र-टीका, पृष्ठ ५७)

कंडक=धागा, तंतु।

"एतावद्भिः कंडकैः पटो भविष्यति।"

(मलयगिरि-कृत नंदी-टीका, पृष्ठ १६५)

शायद पंजाबी-शब्द 'गंडा' (चार कौड़ियों का समूह; मंत्रित सूत या धागा, जो गले में डालते हैं) और 'कंडक' सममूलक हैं।

करण (न०)=कचहरी, कचहरी के लोग।

"यावन्नगरमायातास्तावत् करणमुत्थितम्।"

(मलय० नंदी-टीका, पृष्ठ १६२)

कायिकी (स्त्री०)=पुरीष, मलोत्सर्ग, पाख़ाना, पेशाब।

"तत्र कायिकीं दृष्ट्वा हस्तिन्या इति निश्चितम्।"

(मलय० नंदी-टीका, पृष्ठ १६१)

कालिज=कलेजा, हृदय। (पंजाबी, कालजा; संस्कृत, कालेय न०)।

"यदि मनुष्य सत्कं कालिजमांसं टङ्कद्वयप्रमाणं भवेत्।"

(रत्नमंदिरगणि-रचित उपदेशतरंगिणी, पृष्ठ २०, पं० ९)

अनुप्रयमानं तु तदा साधूनां विस्मृतं श्रुतम्।
अनभ्यसनतो नश्यत्यधीतं धीमतामपि ॥ ५६ ॥
संघोऽथ पाटलीपुत्रे दुष्कालांतेऽखिलोऽमिलत्।
यदंगाध्ययनोद्देशादासीद् यस्य तदाददे ॥ ५७ ॥

(आचार्य श्रीहेमचंद्र-कृत परिशिष्टपर्वन् [स्थविरावली] सर्ग ९)

१. "श्रीदेवर्धिगणिक्षमाश्रमणेन श्रीवीरादशीत्यधिकनवशत (९८०) वर्षे जातेन द्वादशवर्षीयदुर्भिक्षवशाद् बहुतर-साधुव्यापत्तौ बहुश्रुतविच्छित्तौ च जातायां × × × भविष्यद्भव्यलोकोपकाराय, श्रुतभक्तये च श्रीसंघाग्रहाद् मृताव-शिष्टतदाकालीनसर्वसाधून् वलभ्यामाकार्य तन्मुखाद् विच्छि-न्नावशिष्टाः न्यूनाधिकाः त्रुटितात्रुटिताः आगमालापकाः अनुक्रमेण स्वमत्या संकलय्य पुस्तकारूढाः कृताः। ततो मूलतो गणधरभाषितानामपि तत्संकलनानन्तरं सर्वेषामपि आगमानां कर्ता श्रीदेवर्धिक्षमाश्रमण एव जातः।"—समयसुंदर गणि-रचित सामाचारीशतके।

(जैन-साहित्य-संशोधक। खंड १, अंक १)

कृत्य=आचार्य [प्रा० 'किच'-शब्द से]।
(दसवेयालिय टीका अ० ८ । श्लो० ४६)

क्षूण=अपराध।
"तस्य किंचित् क्षूणं जातम् । कुपितेन राज्ञा स वधार्थं प्रेषितः।"
(उत्तराध्ययन, लक्ष्मीवल्लभी टीका, अ० १३, प्रस्तावना)

गुंजालिका=सरोवर, झील।
(ओववाइय-टीका, सूत्र ३८)

गृथिल=आसक्त, बद्ध।
"अहो निःसत्वो वणिग् भक्तिगृथिलो वचांसि भाषते।"
(विजयलक्ष्मी-कृत उपदेशप्रासाद, पृष्ठ १४८)

गोह=परपुरुष, जार, उपपति।
(मलय० नंदी-टीका, पृष्ठ १४४)

चट् (धा०)=चढ़ना।
"चौरो नंष्ट्वा तद्वने तापससमीपे तां (आभरण-पेटीं) मुक्त्वा वटे चटित्वा स्थितः।"
(उपदेशतरंगिणी, पृष्ठ २२, पं० ४)

चटकर=समूह (प्रधानः विस्तरवान् समूहः)।
(विपाक-टीका, पृष्ठ ५)

चवरिका=चमर, चवँरी, छत्र [शायद सं० चमरिका से प्रा० चँवरिका, इससे फिर सं० चवरिका बना है]।
"श्रीमदर्हद्देवसमक्षं धर्म-ध्यानभेदचवरिकायां नवतत्त्ववेदी प्रदीप्ताग्नौ भावनासर्पिःप्रक्षेपेण श्रीहेमाचार्यभूदेवः सवधूकं नृपं प्रदक्षिणया-मास चत्तारिमंगलमिति वेदोच्चारपूर्वम्।"
(उपदेशप्रासाद, पृ० १४९६, पं० ६,)

तलारक्ष=कोतवाल, सिपाही।
"राज्ञापि हसितं पूर्वं वेश्या कस्य न हास्य भूः ;
ततः शीघ्रं तलारक्षः प्रेषितोगात् तदन्तिके।"
(भावदेव-विरचित पार्श्वनाथ-चरित । ७ । २२६)

तोत्तला (?)
"स भूपं निर्विषीचक्रे, तोत्तलेव महेश्वरम्।"
(मल्लि-चरित । १ । १८५)

दवदंती=दमयंती। इसकी माता ने गर्भ होने पर हाथी देखा था।
"तस्यां स्वप्नगतं प्रत्यक्षागतं च मतङ्गजम् ;
वीक्ष्य भीमरथो नाम दवदन्तीति निर्ममौ।"
(मल्लि-चरित । ६ । ४७)

दान्या (?)
"तेनायमन्यदा पृष्टः कुतो द्रव्यं तवेति सः ;
ऊचे कौटुम्बिकैर्दान्या सुवर्णं मे प्रवेशितम्।"
(पार्श्व-चरित । ७ । १०७)

द्व्यक्षरिका=भार्या।
(मलय० नंदी-टीका पृ० १६६)

नाहल (पुं०)=भील।
नलोऽप्याकृष्टखड्गः सन् दधावे नाहलान् प्रति।
(मल्लि-चरित ६ । १४६)

निःशूक (?)
"वावदूकाश्च वीक्ष्यन्ते, निःशूकाश्च गृहे गृहे।"
(मल्लि-चरित । १ । ३०४)

निरोप=उत्तर, प्रतिवचन ; आज्ञा।
"किं करोम्यधुना शीघ्रं निरोपं देहि सा जगौ।"
(पार्श्व-चरित । ७ । १७१)

निर्वल् (धा०)=समाप्त हो (पंजाबी, निब्बड़)।
(मलय० नंदी-टीका पृ० १५८)

परिपूर्णक=घी साफ़ करने का कपड़ा ; बया-पक्षी का घोंसला।
"परिपूर्णकः घृतक्षीरगालनकं सुगृहामिधचटिका-कुलायो वा तेन ह्याभीर्यो घृतं गालयंति।"
(मलय० नंदी-टीका, पृष्ठ ५७)

प्रहकर=(प्रा० पहकर) समूह।
(विपाक-टीका, पृष्ठ ५)

प्रहरक=रक्षा, चौकीदारी (पं० पहरा)।
"अथ ज्येष्ठो जागरित्वा बंधुप्रहरके स्थितः ;
वीरसेनः क्षणं तत्र निद्राया सुखमन्वभूत्।"
(पार्श्व-चरित । ७ । १०२)

बब्बूल=कीकर (बबूल) का वृक्ष या काँटा (सं० बर्बुर)।
"माधवो गोपाल एकदा गोचारणार्थं गतो महाटव्यां तापार्त्तो बब्बूलतरुतले निषण्णः। मस्तकाद् यूका उत्संगे पतिता दृष्टा बब्बूलतीक्ष्णशूल्यां निर्दयत्वेन प्रोता।"
(उपदेशतरंगिणी, पृ० २१)

मंतु (पुं०)=अपराध।
"क्षमाणि प्रिय नो कश्चिद् मन्तुस्त्वयि मया कृतः।"
(मुनिभद्र-कृत शांतिनाथ-चरित । १७ । ३४)

महिमा (स्त्री)=बड़ाई ।

"तैरूपे मुग्ध नो वेत्ति महिमानस्य तत्त्वतः ।"

(पार्श्व-चरित । ७ । १५१)

मालुक=(प्रा० मालुअ) एकास्थिवृक्षविशेषः ।

(नायाधम्मकहा, नाम २)

मुकुल् (धा०)=मोचना ।

"प्रत्येकं मुकुलाप्य ।"

(मलय० नंदी-टीका, पृ० १५८)

मुंद (त्रि०)=विस्तीर्ण (?)

(मलय० नंदी-टी० पृ० ११)

लात=लात, टाँग ।

"अवाहयद्दमं चाद लातघातादि कारयन् ।"

(मल्लि-चरित । १ । ३३)

लांतक=स्वर्ग-विशेष ।

"त्वत्तः प्राप्तनमस्कारादभूवं लान्तके सुरः ।"

(मल्लि-चरित । १ । १८९)

लोटक=बेलन, गोल बट्टा, लोढ़ा (पं० लोढ़का) ।

"मृगावत्या आत्मपुत्रो लोढकाकृतिमृद्भो वर्तते ।"

(उपदेशप्रासाद, पृ० १४४ a.)

समस् (धा०)=(सं० सम्+अस्) होना ।

"समस्ति नगरी चम्पा ।"

(मल्लि-चरित । १ । ६२)

सुगृह=पक्षिविशेष, बया ।

"सुगृहामिवचटिका ।"

(मलय० नंदी-टीका, पृ० ५७)

हेर् (धा०)=ढूँढ़ना, घात में बैठना ।

"हेरयित्वा च षण्मासान् सिद्धं व्यापाद्य सम्प्रति ;
वस्तून्यादाय संप्राप्ता अत्र देवकुले वयम् ।"

(पार्श्व-चरित । ७ । १५४)

बनारसीप्रसाद

आलोचना का उत्तर

(भाद्रपद की संख्या से आगे)

(३)

"बाम बाहु फरकत मिलैं जो हरि जीवनमूरि,
तौ तोहीं सों भेंटिहौं, राखि दाहिनी दूरि ।"

इस दोहे की तुलना गाथा, आर्या, तथा पद्यावली के पद्यों से की गई है। गाथा तथा पद्यावली में दोहे के समान ही 'बाम बाहु' तथा 'बाम नेत्र' के फड़कने से उन्हीं को इनाम देने का इरादा किया गया है; परंतु, 'आर्या' में नायिका 'बाम बाहु' के फड़कने पर बाम बाहु को नमस्कार, दर्शन, चुंबन, शपथ आदि करने लग गई है। श्रीलक्ष्मणसिंहजी दोहे को लक्ष्य में रखकर शर्मा पर कटाक्ष करते हैं—"हरि जीवनमूरि पर शर्माजी को बड़ा नाज़ है × × × किंतु गाथा का 'प्रिय' भी कम प्रभावशाली नहीं है × × × दोहे की नायिका बाम बाहु से यह कहती है कि 'मैं दाहनी को दूर रखकर तुमसे ही भेंट करूँगी' और गाथा की नायिका बाईं आँख से यह कहती है कि 'मैं दाहनी आँख को मूँदकर तुमसे ही बहुत देर तक देखूँगी'—यहाँ 'सुचिरं प्रेक्षिष्ये' में जो बात है, वह 'भेंटिहौं' में नहीं है।" हम मानते हैं कि 'प्रिय'-शब्द पति के लिये ही उपयुक्त हुआ है; परंतु 'प्रिय'-शब्द में वह चमत्कार कहाँ, जो 'जीवन-मूरि' में है? प्रत्येक सधवा स्त्री अपने पति को 'प्रिय' कह सकती है; परंतु 'जीवन-मूरि' का यथार्थ में कोई सीता और राधा-जैसी स्त्रियाँ ही उपयोग कर सकती हैं। 'प्रिय' के अभाव में हृदय को दुःख-क्लेश होगा, अपने प्रिय पति का निधन होने पर विधवा पत्नी सारी आयु दुःख से ही बितावेगी; परंतु 'जीवन-मूरि' प्राण-पति प्राणेश्वर के वियोग से प्राण-वियोग (मृत्यु) होगा। दोहे की नायिका 'जीवन-मूरि' के वियोग में मृत्यु की गोद में होगी; परंतु 'प्रिय'-वाली नायिका अत्यंत दुःखित होने पर भी किसी-न-किसी तरह जीवित ज़रूर रहेगी। अब रही 'भेंटिहौं' और 'सुचिरं प्रेक्षिष्ये' की बात। क्या हम श्रीलक्ष्मणसिंहजी से पूछ सकते हैं कि 'दर्शन' और 'आलिंगन' में, शृंगार-रस में, कौन-सा शब्द अधिक सरस है? गाथा की नायिका

बाईं आँख से देखेगी; परंतु दोहे की नायिका प्रेम में इतनी तन्मय हो जायगी कि वह सुध-बुध गँवाकर उसी बाईं भुजा से अपने प्राणाधार—कृष्ण—का आलिंगन करेगी—दोनों नेत्रों को मूँदकर, अपने 'जीवन-मूरि' के हृदय से लिपटकर, अपने को धन्य समझेगी। दोहे की नायिका पहले अपने 'जीवन-मूरि' को प्रेममय नेत्रों से देखेगी, और फिर तत्काल बाईं भुजा से भेंटेगी—बग़लगीर (यह भी आलिंगन का एक तरीक़ा है) होगी; परंतु गाथा की नायिका दाहनी आँख पर हाथ रखकर जब देखेगी, तब दृश्य कितना बे-मौज़ूँ मालूम देगा—अथवा दाहनी आँख को मूँदकर देखेगी, तो उस समय गाथा की कानी नायिका कैसी सुंदर मालूम होगी, इसको लक्ष्मणसिंहजी तनिक हृदय में विचारें, तो बड़ी कृपा होगी। लक्ष्मणसिंह-जी विना कल्पना के एक क़दम भी आगे बढ़ना अच्छा नहीं समझते। तभी तो आपने 'आर्या' का पक्ष लेकर विहारी के निम्न-लिखित दोहे को हीन बताने में हास्यास्पद कल्पना की शरण ली है—

"मृगनैनी दृग की फरक, उर-उछाह, तन फूल ;
बिन ही पिय-आगम उमँगि, पलटन लगी दुकूल।"

उक्त दोहे की नायिका को नेत्र के फड़कने से समाचार (तार) मिला कि प्रियतम आ रहे हैं। नायिका का हृदय आनंद से गद्गद हो गया—प्रिय के आए विना ही यह निश्चय कर बैठी कि वह आनेवाले ही हैं—मानो आ ही पहुँचे हैं, अर्थात् विना आए ही उनके स्वागत के लिये शृंगार करने लग गई। दोहे की नायिका को दृग की फड़क-रूपी तार पर पूरा-पूरा विश्वास है, इसीलिये वह प्रिय के विना आए ही पहले से स्वागत के लिये शृंगार कर रही है। हृदय में उमंग है, तार ने ख़बर दी है कि वह आनेवाले ही हैं। कितना भाव-पूर्ण दोहा है! नायिका में कितनी तन्मयता है, कितनी उमंग है!! परंतु आर्या के वकील श्रीलक्ष्मणसिंहजी कितना मज़ेदार पक्षपात करते हैं, और वह 'आर्या' के—

"प्रणमति पश्यति चुंबति संश्लिष्यति पुलकमुकुलितैरंगैः ;
प्रियसंगमाय स्फुरितां वियोगिनी वामबाहुलताम्।"

का अर्थ यह करते हैं—"आर्या की नायिका वाम बाहु के ज़रा-से इशारे से तन्मय होकर प्रत्यक्ष देखती है कि वह आ ही तो गए। तन्मयता, उमंग और उर-उछाह के कारण प्रिय पति के शुभागमन पर प्रिय के साथ उसे जो कुछ करना उचित था, वह वाम बाहु के साथ करने लगी—वह वाम बाहु को प्रणाम करती है, स्नेह-दृष्टि से देखती है, चूमती है, तथा आलिंगन करती है।" आगे चलकर आप यहाँ तक लिख गए हैं कि आर्या की नायिका इतनी तल्लीन हो गई है कि प्रिय के आगमन से उसे वाम बाहु ही प्राणप्यारे के रूप में दिखाई पड़ रही है। इस तल्लीनता के सामने दोहे की नायिका की तल्लीनता की क्या बिसात है? क्षमा कीजिएगा, बाज़ आए ऐसी तल्लीनता से! बलिहारी है इस अर्थ की!! भला, इस पक्षपात का भी कोई ठिकाना है? वाम बाहु की फड़क पिय-आगमन की शुभ-सूचना है, एक पत्री है, या तार है। यदि कहीं आर्या की नायिका का नायक अपने आगमन का समाचार श्रीलक्ष्मणसिंहजी की ज़बानी कहला भेजता, तो क्या नायिका श्रीलक्ष्मणसिंहजी से भी वही शिष्टाचार करती, जो उसने वाम बाहु से किया है? कारण, 'आर्या' की नायिका ने वाम बाहु को ही पति मान लिया है; अतः वह क़ासिद को भी पति मान लेगी। वह तो तल्लीनता में बेसुध है, उसके नायक के शुभागमन का जो समाचार लावे, उसी को वह आलिंगन व चुंबन करेगी। धन्य है इस तल्लीनता को! और बलिहारी है 'आर्या' के नवीन भाष्यकार की!! (क्रमशः)

हरगुलाल वाशिष्ठ

पुष्प-परिवर्तन

(Cross-pollination)

रतवर्ष में प्राचीन काल से वनस्पति-विद्या की ओर विशेष लक्ष्य रहा है। यहाँ के ऋषि, मुनि और विद्वानों से लेकर मूढ़ देहाती तक वनस्पति के विशेष ज्ञाता थे। ब्रह्मचारियों को जहाँ विद्याध्ययन के साथ वन के वृक्षों, पौदों, लताओं और पुष्पों के विविध ज्ञान की आवश्यकता थी, वहाँ गृहस्थ लोगों को भी वनस्पति-विद्या का यथेष्ट ज्ञान था। वात्स्यायन-कृत काम-सूत्र ग्रंथ के पढ़ने से स्पष्ट

ज्ञात होता है कि उस समय की आर्य-नारियाँ इस विद्या में कितनी कुशलता रखती थीं।

'भार्याधिकारिक'-नामक अधिकरण के प्रथम अध्याय में जहाँ गृहपत्नी के कर्तव्य बतलाए हैं, वहाँ लिखा है—

"परिपूतेषु च हरितशाकवप्रानिक्षुस्तम्बाञ्जीरकसर्षपाजमोदशतपुष्पातमालगुल्मांश्च कारयेत्।" *

"कुब्जकामलकमल्लिकाजातीकुरण्टकनवमालिकातगरनन्द्यावर्तजपागुल्मानन्यांश्च बहुपुष्पान्बालकोशीरकपातालिकांश्च वृक्षवाटिकायां च स्थंडिलानि मनोज्ञानि कारयेत्" †

"मूलकालुकपालंकीदमनाम्रातकैर्वारुकत्रपुसवार्ताककूष्माण्डालाबुसूरणशुकनासास्वयंगुप्तातिलपर्णिकाग्निमन्थलशुनपलाण्डुप्रभतीनां सर्वौषधीनां च बीजग्रहणं काले वापश्च।" ‡

उक्त उद्धरणों तथा चौंसठ कलाओं में वर्णित वृक्षायुर्वेद एवं अनेक प्रकार की पुष्पशकटिका, पुष्पास्तरण आदि कलाओं के देखने से प्रतीत होता है कि फूलों का शौक़ भारतवर्ष के सर्व-साधारण को बहुत रहा है।

वर्तमान युग में भी पाश्चात्य विद्वान् पुष्पों के साथ नए-नए खेल खेल रहे हैं। आज उन्हीं में से एक खेल या कला के विषय में हम अपने पाठकों को कुछ सुनाते हैं। इस खेल का नाम है 'पुष्प-परिवर्तन' या 'पुष्प-व्यतिक्रम', अर्थात् उत्तम प्रकार के या नए प्रकार के पुष्प उत्पन्न करना।

बहुत-से पाठकों को अवश्य आश्चर्य होगा कि नए प्रकार के अथवा उत्तम प्रकार के पुष्प किस प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं? परंतु यदि ध्यान देकर प्रकृति की ओर ही हम देखें, तो अपने आस-पास के पौदों में ही हम यह परिवर्तन देख सकते हैं। प्रायः बाग़ों में लोग गुलाबास को देखते हैं। यदि ध्यान-पूर्वक देखें, तो गुलाबास के अनेक रंग के पौदों में आप एक ऐसा पौदा भी कहीं देखेंगे ही, जिसके सब फूल एक रंग के ही नहीं, वरन् विविध रंगों के होंगे। देखिएगा, कोई फूल बिलकुल पीला, कोई आधा पीला आधा लाल, कोई बिलकुल लाल, किसी पर लाल रंग के छींटे-से पड़े, और किसी पर पीले रंग के छींटे-से हैं। इस प्रकार एक ही वृक्ष में अनेक फूल हम देखेंगे।

अब गुलदावदी के फूल को लीजिए। किसी पौदे में आप छोटे फूल पावेंगे, किसी में बहुत बड़े। किसी पौदे में छोटे और बड़े, दोनों पावेंगे। कुछ-कुछ रंग का भी परिवर्तन पावेंगे। गंध की भी मात्रा कम या अधिक होगी ही।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति में पुष्पों की अनेक जातियाँ-उपजातियाँ हैं। उनके फूल, पत्ते, गंध आदि में भी स्वाभाविक परिवर्तन होता रहता है। कहीं फूल बड़ा हो जाता है, कहीं छोटा; कहीं रंग गहरा होता है, कहीं हलका; कहीं आकार और गंध में न्यूनता होती है, कहीं अधिकता। ये सभी परिवर्तन पृथक्-पृथक् पौदों में भी होते हैं, और एक पौदे में भी ये सभी बातें देखने को मिलती हैं। इस अदृश्य कारण का पता यदि लग जाय,

* "अर्थात्, पवित्र स्थानों में (घर के आँगन के पवित्र भाग में) हरे साग, ईख, पौंडा, ज़ीरा, सरसों, अजमोद, सौंफ, सोया, चने का साग, इन सबको लगावे।"

† "गुलाब, आमला, जुहीं, चमेली, कुटज या पीत झिंटी, सेवती-नेवारी, तगरचंडी या तगर-नामक पुष्प-वृक्ष (जिसे बंगाली तगरगाछ कहते हैं, जिसके श्वेत पुष्प तथा काले पत्ते होते हैं, और वे स्वाद में तिक्त होते हैं) सुगंधित तुन, जपा तथा अन्य अनेक प्रकार के पुष्प तथा सुगंधबाला, खस, पान आदि वृक्ष वाटिका में लगावे, और सुंदर-सुंदर क्यारियाँ बनाकर सजावे।"

‡ "मूली, आलू, पालक, कुंद, आँवला, ककड़ी, फूट, खीरा, बैंगन, पेठा, कद्दू, घिया-तुरई, तूँबा, जमींकंद, श्योनाक-वृक्ष, कौंच, लाल चंदन या तिलौनी नाम का साग, अरणी, लहसुन, प्याज आदि सब ओषधियों के बीज ग्रहण करना और समय पर बोना चाहिए।"

तो मनुष्य के भी अनेक प्रकार की पुष्प-सृष्टि कर सकने में किसे संदेह हो सकता है ?

पुष्पों के परिवर्तन के अन्य कारणों और उपायों को इस समय, लेख के विस्तृत हो जाने के भय से, छोड़कर यहाँ केवल उस स्थूल कारण पर कुछ लिखा जाता है, जिससे संसार में सृष्टि हो रही है। जिस प्रकार रज और वीर्य के संयोग से मनुष्य की सृष्टि होती है, उसी प्रकार वनस्पतियों की भी। जिस प्रकार के गुणवाला रज और वीर्य होता है, उसी प्रकार के गुणों से युक्त उसकी नई संतान होती है। इस स्थूल सिद्धांत को वृक्षों और वनस्पतियों में भी हम ठीक वैसा ही देख पाते हैं। जिस प्रकार संतान को उत्तम जल-वायु तथा आहार-विहार देने से उत्तम गुण-युक्त और निकृष्ट जल-वायु तथा आहार-विहार देने से निकृष्ट गुण-युक्त बना सकते हैं, ठीक उसी प्रकार जल-वायु, आहार और परिस्थिति का प्रभाव पौदों पर भी होता है। पौदों का भी रूप-रंग और आकार-प्रकार परिस्थिति के प्रभाव से बदल जाता है। जिस प्रकार निर्बल जाति की स्त्री और बलवान् जाति के पुरुष से संतान बलवान् होती है, उसी प्रकार यदि पुष्पों के सृष्टि-जनक अंग (योनि औरलिंग) भिन्न-भिन्न जातियों के हों, परस्पर उनका रज तथा वीर्य का संबंध किसी प्रकार से करा दिया जाय, और परिस्थिति अनुकूल बना दी जाय, तो नए बीज औरफल बहुतबलवान् तथा नए गुणों से युक्त होंगे।

वनस्पति-विद्या में पुष्पों के रज का नाम गर्भ-केसर और वीर्य का नाम परागकेसर है। जिस प्रकार मनुष्य-जाति में पुरुष और स्त्री होते हैं, उसी प्रकार वनस्पतियों में भी पुरुष और स्त्री-जाति के पुष्प होते हैं। परंतु अब तक जाति-शब्द हमने लोक में प्रयुक्त सामान्य जातिवाचक ही रक्खा है। पर अब कुछ पुष्पों की जाति के विषय में भेद समझना चाहिए। यों तो पशु-जाति में गऊ, घोड़ा, गधा, शेर आदि सभी हैं, परंतु गो-जाति पृथक् है, और घोड़ा-जाति पृथक्। जिस प्रकार गऊ और घोड़े की जाति का परस्पर संबंध नहीं हो सकता, उसी प्रकार पौदों में भी अपनी-अपनी जातियों में ही संबंध हो सकता है, अन्यों में नहीं। पशुओं में भी हरिण और बकरी, गधा और घोड़ी आदि उपजातियों या एक ही वर्ग के प्राणियों में संबंध कराने से जिस प्रकार तीसरे प्रकार का प्राणी उत्पन्न होता है, जिसमें दोनों के गुण कुछ-कुछ आ जाते हैं, और कुछ गुण दोनों से ही अनोखे देख पड़ते हैं, उसी प्रकार कैथे और नाशपाती, नींबू और चकोतरे, बादाम और आड़ू आदि एक ही उपजाति या वर्ग के वनस्पतियों का संबंध कराने से तीसरे ही प्रकार का फल और बीज उत्पन्न हो जाता है। उसके गुण कुछ तो पूर्व के दोनों पौदों
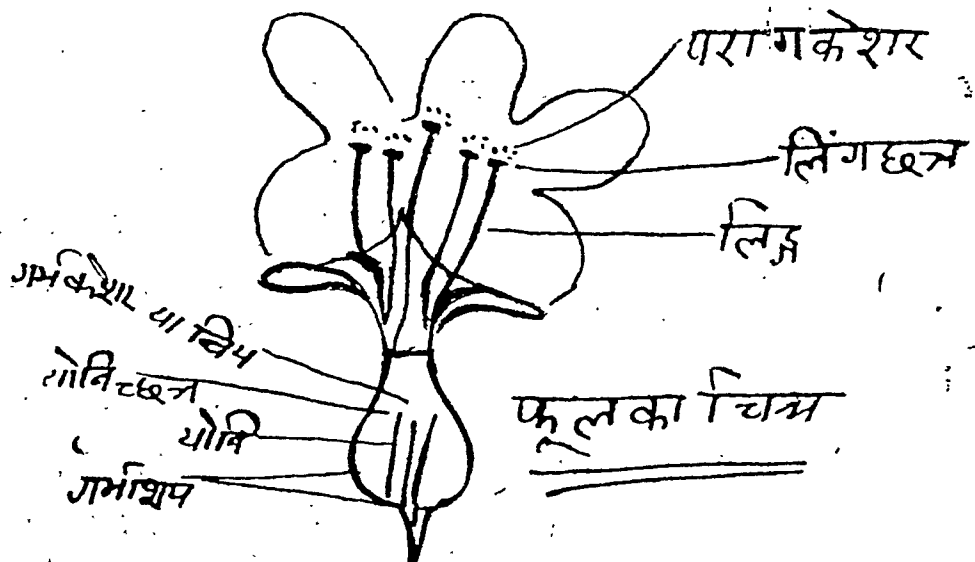
से मिलते हैं, और कुछ अनोखे हो जाते हैं। हम समझते हैं, इतना लिखने से पाठक अच्छे प्रकार यह समझ सकते हैं कि हम पौदों के पुष्पों में, बीजों में, फलों में, आकार में, गंध में, उपयोगिता में तथा अन्य अनेक गुणों में यथारुचि परिवर्तन कर सकते हैं। यह बात अधिक कठिन नहीं है; केवल थोड़ी सावधानता की आवश्यकता है।

३३३ पृष्ठ पर एक फूल का चित्र दिया है। पाठक इसमें सृष्टिजनक अंग, अर्थात् लिंग और योनि, का विशेष ध्यान रक्खें। इसी से मिलते-जुलते प्रायः फूलों के भाग हुआ करते हैं।

कुछ पौदे, जैसे खरबूज़ा, तरबूज़, आड़ू, टमाटर तथा सफ़ेद अंडाकार बैंगन (जिसे अँगरेज़ी में Eggplant कहते हैं), जोकि गर्भाशय (Ovule) में बीज पड़े बिना फूल नहीं देते, उनका कृत्रिम रीति से पुष्प-परिवर्तन अवश्य करना पड़ेगा, यदि आप चाहते हैं कि उन्हें शीशे के अंदर उगाया जाय, तथा वसंत-ऋतु के पूर्व ही खिलने दिया जाय, या किसी अन्य ऋतु में भी उगाया जाय, जब कि पराग डालनेवाली मक्खियों आदि का भी आधिक्य न हो। वायु या मक्खियाँ ही स्वाभाविक रीति से पराग-केसर को गर्भाशय तक पहुँचाती हैं। परंतु आप शीशे के मकान में, जहाँ हवा भी ठीक-ठीक पराग नहीं उड़ा सकती और न मक्खियों की ही पहुँच हो सकती है, वहाँ पर आप यदि कृत्रिम पुष्प-परिवर्तन की कला का अवलंबन नहीं करते, तो फल नहीं मिल सकेंगे।

केवल एक पुष्प के पराग (Pollen) को दूसरे पुष्प की योनि (Stigma) में डालना ही पुष्प-परिवर्तन-कला का उद्देश्य है। इसको पूरा करने के लिये, अर्थात् पराग को उठाकर दूसरे फूल की योनि में डालने के लिये, हमें एक ब्रुश की आवश्यकता पड़ती है। यह ब्रुश प्रायः ऊँट के बालों का पैंपस नाम की घास के गुच्छे का, या खरगोश की पूँछ को एक लकड़ी पर बाँधकर बनाया जाता है।

टमाटर, आड़ू और एक चक्रवाले फूल के पौदों में तो कभी-कभी केवल हिलाने से ही एक का पराग दूसरे की योनि में डाल सकते हैं। परंतु खरबूज़े और आड़ू के विषय में निश्चित तथा लाभकारी विधि यही है कि पहले ऊँट के बालोंवाले ब्रुश से पुष्पों का पराग इकट्ठा करके दूसरे की योनि में डालें। टमाटर के लिये यह अच्छा होगा कि पुष्पों को हिलाकर एक चमचे या घड़ी के शीशे में पराग इकट्ठा कर लें, और फिर उसमें दूसरे पुष्प की योनि डुबा दें।

खरबूज़े के (जिसके पुष्प बहुत कोमल होते और जल्दी मुरझा जाते हैं) नर-फूल को तोड़ ले, और पौदे से अलग करके पँखड़ियों को नीचे उलटाकर मादा-फूल के गर्भ में उसके लिंग को फिराकर झाड़ दे। अथवा नर-फूल को ही अभीप्सित मादा-फूल की पँखड़ियों के अंदर घुसेड़ दे। निस्संदेह इसमें तथा अन्य उदाहरणों में लिंग खुली हुई अवस्था में रहना चाहिए, जिससे पराग के कण पूरी तरह बनकर पृथक् हो जायँ, या हो सकें, और योनि उनको अच्छी तरह अपने अंदर ले सके।

यदि दो खास फूलों की जातियों को आपस में परिवर्तित (Cross या hybridise) करना हो, तो विशेष ध्यान से यह काम करना आवश्यक है। जिन मादा-फूलों पर यह क्रिया करना अभीष्ट हो, उनकी, पौदे पर, बड़ी सावधानी से रक्षा करनी चाहिए, जिसमें कहीं ऐसा न होने पावे कि उसके ऊपर अभीष्ट नर-पौदों के पराग के अतिरिक्त किसी अन्य पुष्प का पराग गिर जाय।

इसी अभीप्सित मादा-पुष्प में उत्तम अभीष्ट बीज वनते हैं। अतएव इसकी रक्षा करना अत्यंत आवश्यक है।

इससे पहले कि यह व्यतिक्रम किया जाय, यह आवश्यक है कि दोनों जाति के पुष्पों को अच्छी प्रकार से निरीक्षण में रक्खा जाय। उनके पुष्पों की संख्या तथा इनमें नर पहले पकता है या मादा, तथा लिंगच्छत्र कब फटता है, यह जानने के साथ ही उनके अन्य लैंगिक ज्ञान की भी पूरी आवश्यकता है। साथ ही यह भी ज्ञान आवश्यक है कि किस समय योनि पराग को लेने के लिये तैयार होती है, और पराग भी परिपक्वावस्था को कब प्राप्त होता है।

योनि के ऊपर के भाग जब परिपक्व हो जाते हैं, तब वे चिकने या चिपकनेवाले बन जाते हैं। कई अवस्थाओं में ये स्थान बढ़ जाते तथा मोटे या खुरदरे हो जाते, अथवा छोटे-छोटे गोल-गोल उभरे हुए स्थानों से घिर जाते हैं। लैंस से देखने पर उक्त बातें ज्ञात होती हैं। अपरिपक्वावस्था में जिन पुष्पों की योनि द्विविभक्त होती है, उनके ऊपर के दोनों भाग (योनिच्छत्र के दोनों भाग) पास-पास सटे होते हैं। परंतु परिपक्वावस्था में दोनों (योनिच्छत्र) भाग पृथक्-पृथक् तथा तनिक मुड़कर दूर हो जाते हैं।

ठीक-ठीक क्रियात्मक रूप से यह व्यतिक्रम या परिवर्तन पौदों की बनावट तथा उनकी शरीर-रचना आदि के ऊपर निर्भर है। कुछ कार्यकर्ता के परिश्रम और उसकी कुशलता पर भी निर्भर है। नीचे की विधि के अनुसार ठीक-ठीक क्रिया करने से उत्तम परिणाम निकलेंगे—

१. पहले उस पुष्प को चुन लो, जिसमें तुमको बीज बनाना है। परंतु यह चुनाव फूल के विकसित होने के पूर्व, तथा नर-पुष्प अपने लिंगच्छत्रों से जब पराग गिरा सके, उसके पूर्व, होना चाहिए। कारण, यदि इस बात का ध्यान नहीं रक्खा जायगा, तो संभव है, जिसमें हम यह परिवर्तन करना चाहते हैं, उसमें पहले ही वायु और कीटों द्वारा यह कार्य हो चुका हो।

जहाँ पर कुछ फूल पास-पास ही उगे हुए हों, जैसे तुलसी, सेव और गेहूँ के, वहाँ केवल एक या दो में ही यह परिवर्तन करना चाहिए; शेष सब पुष्प तोड़ डालने चाहिए, ताकि उन नमूनों को बढ़ने का पूरा अवसर मिल सके।

२. पुष्प को खोलकर सावधानी के साथ पतली नोकवाली चिमटी (Forceps) से पुष्पलिंग (Stamen) को हटाओ। पुष्प के नीचे के भाग (Filament) ही से प्रत्येक लिंग-मूल को पकड़ो। इस प्रकार लिंग शीघ्र ही उखड़ आवेंगे। परंतु ऐसा न हो कि लिंगच्छत्र (Anther) ही कुचल जाय, और उससे पराग अलग करना ही कठिन हो जाय।

कुछ पुष्प ऐसे होते हैं, जिनकी पँखड़ियों पर पुष्प-लिंग लगे होते हैं। ऐसी अवस्था में वे सहज ही क़ैंची से काटे जा सकते हैं। परंतु इस कार्य में पूरी सावधानी चाहिए, जिसमें स्त्री-पुष्प की योनि को तनिक भी हानि न पहुँचे।

इस प्रकार पुरुष-पुष्प के अंगों को तोड़कर स्त्री-पुष्प या स्त्री-पुष्प की कलिका के मुख पर, जिसमें पुरुष-पुष्प का पराग डाला गया है, एक काग़ज़ की थैली बाँध दो, जिससे उसको कृमि तथा वायु द्वारा हानि न पहुँचे। योनि को पकने दो। उसके पकने में दो या तीन दिन, पुष्प की आयु के अनुसार, लगेंगे; क्योंकि उसका पुरुष-अंग हटाया जा चुका (Emasculated) होगा।

३. जब योनि पककर तैयार हो जाय, तब नर-पुष्प के—जिसका कि तुम दूसरे फूल में परिवर्तन करना चाहते हो—कुछ पके पुष्प-लिंग काट दो, और बहुत सहारे से, अपने नख से, उसी नर-पुष्प के लिंगच्छत्र को उतारकर चिमटी से योनि के अंदर डाल दो। ठीक-ठीक विश्वस्त रीति से यह काम करने के लिये उस नर-पुष्प को, जिससे केसर या पराग लिया गया है, पहले ही से काग़ज़ की थैली में बंद रखना और वहीं, दूसरे पुष्प की योनि ही में, खोलना उचित है। यदि इसका ध्यान न रक्खा गया, और यदि लिंगच्छत्र उस पुरुष-पुष्प से लिए गए, जिसका पुष्प पहले-ही-पहल विकसित हुआ है, तो इस बात का निश्चय करना अति कठिन होगा कि उस पुरुष-पुष्प में वायु या कीटों द्वारा कोई अन्य पराग तो नहीं पड़ चुका या लग चुका है।

४. यह परिवर्तन करने के बाद फिर प्रभावित पुष्प को, जिसमें नया पुंकेसर डाला जा चुका है, काग़ज़ की नई थैली से बाँध दे, और जब तक बीज बनना (fertilisation) आरंभ होकर फल बनना शुरू न हो जाय, तब तक उसे न खोले। फिर काग़ज़ को खोलकर बीज और फल को साधारण रीति से खुला हुआ पकने दे। परंतु सेब, नाशपाती, रसभरी आदि फलों को फिर भी, ऊपर मलमल की या छेददार जाली की थैली बाँधकर, रखना उत्तम होगा।

इस प्रकार पहले की अपेक्षा उत्तम गुणयुक्त, सेब, नाशपाती आदि फल और उन फलों के नए ही बीज हम प्राप्त कर सकते हैं। इसी ढंग से जाँच करते-करते पाश्चात्य विद्वानों ने फलों-फूलों और लता-वनस्पति आदि की बड़ी-बड़ी अनोखी क़िस्में निकाल ली हैं।

परंतु इस कार्य को अपने ही हाथ से करना उत्तम होगा। ठीक परिणाम पर पहुँचने के लिये यह आवश्यक है कि अभीष्ट (जिसका गुण डालना चाहते हों) पुष्प का पराग-केसर (Pollen) ठीक-ठीक डाला जाय, तथा अन्य हर तरह के पराग-केसर से उस पुष्प को बचाया जाय, जिसमें हमें परिवर्तन करना है।

इसमें पहली और मोटी, परंतु आवश्यक, बात यह है कि जिस पुष्प में परिवर्तन करना है, उसके लिंगच्छत्र को उतार लिया जाय। परंतु वह उसी समय उतार लिया जाय, जब अभी पराग न गिरा हो। अतः उस पुष्प की कलिका को ही खोलकर लिंगच्छत्र नोच डालने चाहिए। पहले कलिका की बाहरी पत्तियाँ काटकर फिर अंदर से लिंगच्छत्र काट दें। केवल योनि (Pistil) ही अछूती छोड़ देनी चाहिए। या केवल पँखड़ियों (Carolla) को अंत तक खोलकर नोचना या क़ैंची (Hook या Teeser) से लिंगच्छत्र निकाल फेकना चाहिए। प्रायः यही तरीक़ा सबसे अच्छा माना जाता है। इस कार्य के करने में चाहे जितना समय लग जाय, कलिका को कभी विकसित न होने देना चाहिए। अर्थात् किसी बाह्य पराग को विकसित कलिका पर गिरने से रोका जाय। लिंगच्छत्र को भी पराग न गिराने दिया जाय।

दूसरी यह स्थूल बात पाठक समझ ही गए होंगे कि इस परिवर्तित (जिसमें परिवर्तन का कार्य किया जा चुका है) पुष्प को काग़ज़ की थैली से अवश्य ही ढक देना चाहिए, जिससे और कोई पराग न पड़ सके, और इस प्रकार पराग की अधिकता या विषमता न हो जाय। यदि योनि उस समय परिपक्व (receptive) न हो, जोकि प्रायः नहीं होती, तो अभीष्ट नर-

पालतू
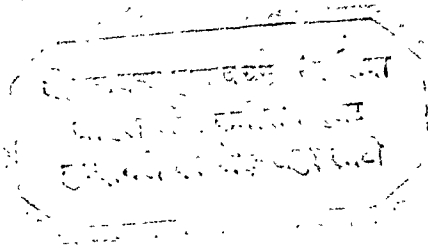
[चित्रकार—श्रीयुत बी० सेन]

सहज सिधाई, चपलता, सुंदरता के सार ;
आओ प्यारे हिरन, मम उपवन के सिंगार ।

N. K . Press, Lucknow

पुष्प के पराग को उस समय कभी न डाले। काग़ज़ की थैली को कभी-कभी हटाकर योनि का निरीक्षण करते रहना चाहिए। जब योनि परिपक्व हो जाय, वही समय व्यतिक्रम या परिवर्तन करने के लिये ठीक है। ऊपर के सिर पर चिपचिपा चेप या मोटापन होने से पकने का पता लग जाता है। यदि काग़ज़ की थैली कुछ-कुछ भीगी (Slightly moistened) या स्निग्ध-सी हो जाय, तो उसे और भी कसकर पुष्प के तने से जकड़ देना चाहिए। योनि के पकने का समय प्रायः भिन्न-भिन्न होता है। कभी-कभी तो कुछ ही घंटों में वह पक जाती है, और कभी-कभी कुछ दिनों में पकती है।

तीसरी स्थूल बात यह है कि जब योनि तैयार अर्थात् परिपक्व हो, तब अभीप्सित फूल का वंद लिंगच्छत्र अपनी उँगली के नख पर रखकर कुचल दिया जाय। या चाक़ू की धार पर लिंगच्छत्र को कुचलकर रख दो। फिर एक ब्रुश, चाक़ू की धार या तेज़ लकड़ी से पराग को योनि पर मल दो। बस, इसके बाद फूल को काग़ज़ की थैली से कुछ दिन तक ढका रहने दो। जब अन्य सब भय दूर हो जायँ, तब खोलो। इसका पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि योनिच्छत्र या योनि का सिरा सदा पराग-युक्त रहे। इस प्रकार से उत्पन्न किए हुए बीज परिवर्तित या व्यतिक्रमित कहलाते, और उनसे भिन्न-भिन्न प्रकार के पौदे पैदा किए जाते हैं।

पाठकों को इस बार इस छोटे-से लेख में इस कला का परिचय-मात्र कराने का प्रयत्न किया गया है। योरप तथा अमेरिका में जिस प्रकार की परीक्षाएँ हो रही हैं, और वनस्पतियों के संबंध में जो नई-नई बातें वहाँ से निकल रही हैं, उनसे भारतवासी भी लाभ उठाकर अपने देश को सुख-संपन्न और समृद्ध बना सकते हैं। अन्य संख्या में फलों के वृक्षों पर कुछ लेख लिखने का प्रयत्न करूँगा।

विद्याधर

कारागार

हे कठिन कारागार !
मन पर निषिद्ध विचार, पा चुका हा ! अधिकार ;
भ्रम-वश तुझे संसार, दे रहा अति विस्तार।
तेरा कुटिल व्यवहार, भय का लिए हथियार,
कर नाश का संचार, करता विचित्र सुधार !
हे कुमति के भांडार, तव यत्न है निस्सार ;
अच्छा हुआ प्रतिकार, बढ़ गया पापाचार !
तेरा अशुभ अवतार, है सभ्यता पर भार ;
अब हो निपट लाचार, जो चाहती निस्तार।
धर हृदय में उपकार, जो करें नीति-प्रचार,
तू उन्हें वारंवार, दे कष्ट का उपहार !
पर प्रकृति के अनुसार, सत्याग्रही नर-नार,
कर प्रकट शक्ति अपार, करते दमन-परिहार।
कर रहा तव सत्कार, अब हिंद हो तैयार ;
है दुःखहित भी प्यार, सुखप्राप्ति का उपचार।
हे विपद के आगार, कर अधिक अत्याचार !
यों दे तुरंत उघार, स्वाधीनता का द्वार !

इक़बाल वर्मा 'सेहर'

व्योम-यान

मुझे पहली बार आकाशगामी नौका पर चढ़ने का मौक़ा, दो बरस पहले, फ़ॉकस्टन में मिला था। दो मनुष्य यहाँ एक छोटा Hydro-plane ले आए थे, और उसी पर बिठाकर, कुछ किराया लेकर, उत्सुक लोगों को सैर कराते थे।
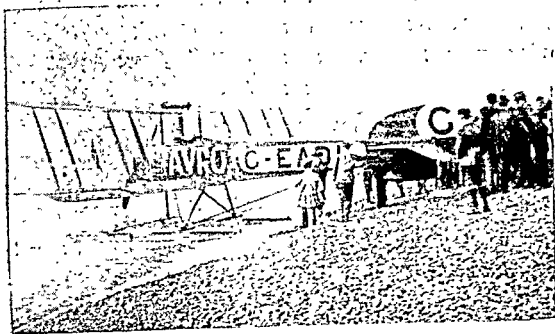
हाइड्रोप्लेन (जल-वायु-नौका), फ़ॉकस्टन

नौका पानी की सतह से ही ऊपर उठती थी। उसमें तीन आदमियों (एक नाविक और दो यात्री) के बैठने के लिये जगह थी। हमारे सिरों पर चमड़े के टोप और आँखों पर बड़े-बड़े मोटर-गॉगल्स कस दिए गए। मेरे गॉगल्स के शीशे टूटे हुए थे, इसलिये मुझे अपनी आँखें खुली रखनी पड़ीं। नाव के ऊपर सीढ़ी से चढ़कर हम अपनी जगह पर जा बैठे। नाविक का इशारा पाकर मिस्त्री ने सामने का प्रॉपेलर ज़ोर से घुमा दिया। फटफटाकर एंजिन चल पड़ा, और पीछे की ओर इतने ज़ोर से हवा फिकने लगी कि किनारे पड़े हुए कंकड़-पत्थर तक जगह से हटकर दूर जा गिरे। लंगर उठाते ही नाव पानी पर वेग से दौड़ने लगी। देखते-ही-देखते मालूम होने लगा, ज़मीन नीचे गिरी जा रही है। वायु का वेग इतना था कि आँखों से पानी निकल रहा था, और साँस लेना भी मुश्किल था। दो-चार मिनट में जाकर तबीयत कुछ ठीक हुई। नीचे ज़मीन एक गोलाकार नक़्शे की तरह फैली हुई थी, और समुद्र में बड़े-बड़े जहाज़ छोटे धब्बे-जैसे मालूम पड़ते थे। बाएँ हाथ पर दूर तक हरी ज़मीन का क़ालीन बिछा था। सड़कें क्या थीं, मानो सूत के धागे पड़े थे! मनुष्य तो दिखलाई ही न पड़ते थे। एंजिन की आवाज़ बहुत तेज़ थी, आपस में बातचीत करना मुमकिन न था। एक विचित्र प्रकार की प्रसन्नता से हृदय उछल रहा था। नीले आकाश में सूर्य चमक रहे थे। कहीं-कहीं एक-आध सफ़ेद बादल भी देख पड़ जाता था। थोड़ी ही देर में 'डोवर' की सफ़ेद पहाड़ियाँ दिखलाई पड़ने लगीं। नाविक ने डोवर के ऊपर कुछ चक्कर लगाकर 'कैले' (Calais) का रास्ता लिया। अब इँगलैंड और फ़्रांस, दोनों के किनारे साफ़ नज़र आ रहे थे।

नाविक के सामने गति का वेग बतानेवाला यंत्र लगा था। उसमें कभी-कभी नाव की गति १२० मील फ़ी घंटे तक की हो जाती थी। रास्ते में बहुत-सी समुद्री चिड़ियाँ उड़कर हमारे पास तक आईं; परंतु उस मनुष्य-निर्मित चिड़िया की आवाज़ से घबराकर भाग गईं।

लौटते समय फ़ॉकस्टन से कुछ ही दूर पर नाविक ने एंजिन बंद कर दिया, और नीचे फिसलना शुरू किया। समुद्र ऊपर को उठने लगा, और धीरे-धीरे आकर नाव से मिल गया। एंजिन फिर चलने लगा, और हम सकुशल किनारे पहुँच गए।

सुना था, हवाई नाव पर भी समुद्री बीमारी होती और जी मतलाने लगता है। परंतु हम लोगों को कोई कष्ट नहीं हुआ; चित्त बहुत ही प्रसन्न रहा।

इसके बाद आकाश-यात्रा के और भी अनेक अवसर
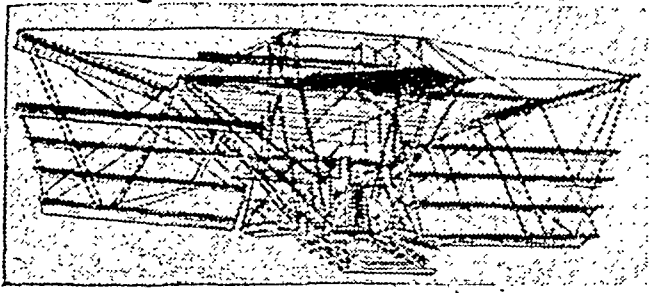
मैक्सिम

मिले ; परंतु पहली बार का-सा आनंद नहीं मिला। अब तो योरप में हवाई जहाज़ एक मामूली चीज़ है, और बड़े-बड़े शहरों में रेल की तरह रोज़ उसी पर डाक आती-जाती है।

आकाश में चिड़ियों को आनंद से विचरते और सैर करते देखकर हमेशा मनुष्यों को उड़ने की इच्छा हुई है। ऐसा कोई देश नहीं, जहाँ की पुरानी कहानियों में उड़न-खटोलों या विमानों का ज़िक्र न आया हो। 'अलिफ़लैला' तो उड़नेवाले घोड़ों और क़ालीनों के वर्णन से भरी पड़ी है।

एक ग्रीक दंतकथा यों है—डी डालुस ग्रीस-देश का एक मशहूर कारीगर था। वह अपने पुत्र इकारुस के साथ क्रीट के टापू में जा बसा। वहाँ का राजा किसी कारण से इन दोनों पर बहुत नाराज़ हो गया, और उसने इनको टापू में नज़रबंद कर दिया। दोनों ने बहुत कुछ सिर मारा, पर छूटने का कोई उपाय न सूझ पड़ा। अंत को एक रोज़ चिड़ियों को उड़ते देखकर डी डालुस ने पंख बनाने की ठानी। नाना प्रकार की चिड़ियों के परों को इकट्ठा करके दो जोड़ पंख उसने तैयार किए। पिता ने अपनी और अपने बेटे की पीठ पर मोम से वे पर चिपका दिए। फिर कहा—"बेटा इकारुस, देखो, जैसे मैं उड़ूँ, वैसे ही तुम भी उड़ना। न तो बहुत पानी ही के पास जाना, और न बहुत ऊपर ही।" धीरे-धीरे हवा में ऊपर उठकर पिता और पुत्र, दोनों आकाश में उड़ने लगे। बेटे से न रहा गया। वह सूर्य के पास पहुँचने की कोशिश करने लगा। ऊपर पहुँचते ही उसके पंखों के जोड़ धूप की गरमी से पिघल गए, और वह समुद्र में गिरकर डूब गया।

ख़ैर, यह तो हुई कहानी की बात। अभी तक जितनी खोज-पड़ताल हुई है, उससे यही पता लगता है कि पुरानी सभ्यताओं ने उड़ना नहीं सीखा था। बैबिलोनिया, असीरिया इत्यादि के खँडहरों में भी कोई चीज़ ऐसी नहीं मिली, जिससे उस समय उड़ सकने का कोई परिचय प्राप्त हो।

फ्रांस के लियाँ (Lyons)-शहर में माइकेल और जैक मौंट गॉलफ़ायर, ये दो भाई काग़ज़ बनाने का काम करते थे। अक्सर ये आग में से गरम धुएँ को निकलकर ऊपर उठते देखा करते थे। एक दिन इन्होंने एक पतले काग़ज़ का थैला बनाया, और उसे उलटाकर, धुएँ में भरकर, छोड़ दिया। छोड़ते ही थैला ऊपर को उठ गया, और फिर धुएँ के ठंडे हो जाने से नीचे गिर पड़ा। दोनों भाई थैले को बार-बार धुएँ से भरकर उड़ाते; परंतु वह देर तक ऊपर न ठहरता था। इतने में इनकी एक पड़ोसिन आकर तमाशा देखने लगी। उसने कहा—"थैले में एक छोटी अँगीठी क्यों नहीं बाँध देते।" बस, कहने-भर की देर थी। दोनों ने ऐसा ही किया, और फिर धुएँ से भरा थैला देर तक उड़ता रहा। यही आधुनिक आतिशबाज़ी के गुब्बारे की आदिम कल्पना है।

थोड़े दिनों बाद, सन् १७८३ ईसवी में, एक महीन कपड़े से मढ़े हुए काग़ज़ के गुब्बारे में बैठकर पीलातृ द रोज़िए (Pilatre de Rozier) और दारलाँदे (D' Arlandes), ये दो मनुष्य ऊपर उड़े। गुब्बारे के नीचे एक टोकरी बँधी थी। उसमें धुआँ पैदा करने के लिये एक अँगीठी और लकड़ियाँ रक्खी थीं। गुब्बारे में आग लगने के भय से पानी भी साथ ही था। रास्ते में कई बार आग लगी; परंतु ये बहादुर सब मुसीबतों को झेलते हुए पेरिस-शहर के उस पार पहुँच ही गए।
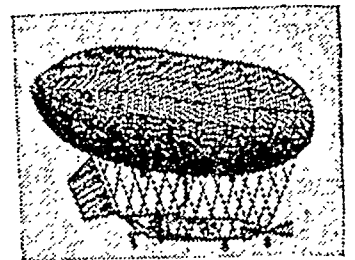
पिलातृ द रोज़िए

इस घटना के २० बरस पहले कैवंडिश ने हाइड्रोजन गैस का पता लगा लिया था। यह गैस बहुत ही हलकी हुआ करती है। मामूली हवा इससे १४½ गुना ज़्यादा भारी होती है। हाइड्रोजन बहुत ही कम ख़र्च में, किसी धातु के ऊपर तेज़ाब डालने से, बन जाती है। दो फ्रांस-वासियों ने एक बड़े थैले को हाइड्रोजन से भरकर गुब्बारा तैयार किया। वे उसमें बैठकर १४,००० फ़ीट ऊपर तक गए, और पैरिस से ३० मील की दूरी पर जाकर गिरे।

अब तो उड़ान के बाद उड़ान होने लगी। लोगों ने

किसी कारण से वह उड़ न सकी। लैंगली की मृत्यु के बाद उसके कुछ शिष्यों ने, सन् १९१४ में, उक्त नौका को, गोदाम में से निकालकर, उड़ाया। इस बार नौका आसानी से आकाश में उड़ने लगी। बेचारा लैंगली अपनी नौका की सफलता को न देख सका।

विल्बर राइट

अमेरिका से अनुभव प्राप्त करके विल्बर और ऑरविल राइट फ्रांस में आए। जिस रोज़ ये उड़ने को थे, बहुत भीड़ इकट्ठी हो गई। लोग लकड़ी और तार के इस बड़े बेढंगे ढाँचे को देखकर क़हक़हा लगा रहे थे। परंतु जब विल्बर राइट उसमें बैठकर नदी और खेतों के ऊपर आकाश में उड़ने लगा, तब उनके आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा।
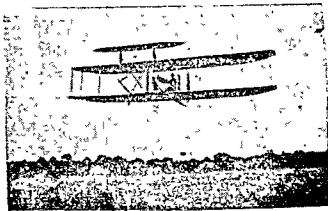
विल्बर राइट अपनी हवाई नाव पर (पाऊ १९०८)
(योरप में उड़नेवाला पहला हवाई जहाज़ यही है)

लैंगली की उड़ने की मशीन

अब तो योरप में सैकड़ों ही मनुष्य हवाई नावें बनाकर उड़ने लगे। अभी तक उड़नेवालों को उड़ने का पूरा-पूरा अनुभव न था। ऐसा कोई दिन न बीतता, जिसमें एक-आध उड़नेवाला न मरता हो। परंतु बहादुरों ने जान की कुछ परवा न की, और हवा को हराने में लगे ही रहे।

पिछले महायुद्ध में हवाई नावों के कल-पुर्ज़ों में बहुत कुछ उन्नति हुई। जान बचाने के लिये रोज़-रोज़ नए-नए आविष्कार होने लगे। जब नाव बेक़ाबू हो जाती और गिरने लगती है, तब नाविक एक पाराशूट(parachute) लेकर नाव के बाहर कूद पड़ता है। पाराशूट हवा के वेग से छाते की तरह खुलकर धीरे-धीरे नीचे गिरने लगता है।
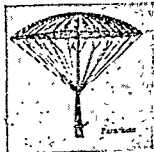
पाराशूट

युद्ध समाप्त होने पर लोगों को अवकाश हुआ है। हवाई नावें यात्रियों और माल को ले जाने के काम में आने लगी हैं। योरप और अमेरिका में डाक और मुसाफ़िर आकाश से जाते हैं। लंदन और पेरिस के बीच रेल से फ़र्स्ट क्लास का किराया ६०) है, और रास्ते में ८ घंटे लगते हैं। परंतु आकाश-मार्ग से किराया १०) है, और रास्ते में कुल ३ ही घंटे लगते हैं।

हवाई नाव की शकल क़रीब-क़रीब एक बड़ी चिड़िया की तरह होती है। नावों में बहुधा दोहरे पंख रहते हैं। कोई-कोई नाव तिहरे पंखों की भी होती है।

जब हवा किसी वस्तु के पास से होकर बहती है, तब प्रवाह दो तरह का होता है।

(१) धारा-प्रवाह—

धारा-प्रवाह

हवा की धाराएँ वस्तु के समानांतर पर बहती हैं, और ऐसे प्रवाह में अधिक शक्ति नहीं ख़र्च होती।

(२) भँवर-प्रवाह—
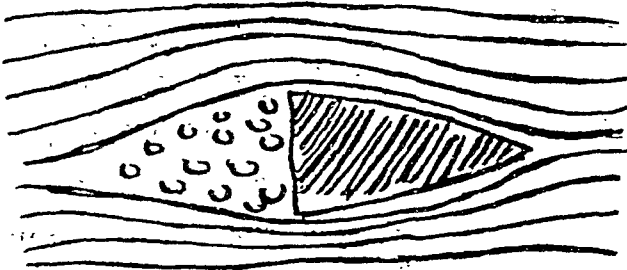
भँवर-प्रवाह

इसमें हवा के प्रवाह में भँवर उठने लगते हैं, और बहुत-सी शक्ति व्यर्थ ही बरबाद होती है।

नाव या मोटर बनानेवाले हमेशा इस बात का ध्यान रखते हैं कि नाव या मोटर के चलते समय हवा या पानी में हमेशा धारा-प्रवाह ही पैदा हो। नहीं तो एंजिन की शक्ति बरबाद होती है।

मान लीजिए, 'क' 'ख' पंख बहती हुई हवा में स्थिर हैं। हवा तीर की दिशा में बह रही है।
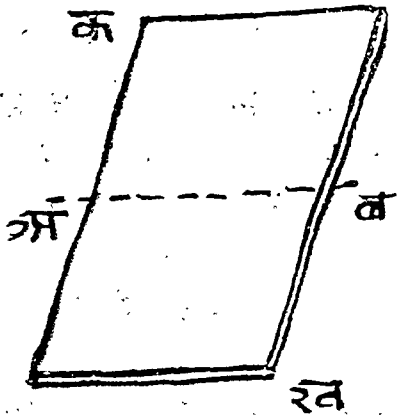
सेन (पंख)

पंख हवा की धारा से समानांतर नहीं है; परंतु उससे एक छोटा-सा कोण बनाता है। नीचे की तरफ़ हवा का बहाव धारा-प्रवाह होगा; परंतु पंख के ऊपर भँवर-प्रवाह हो जायगा। भँवर-प्रवाह होने से ऊपर हवा का बोझ भी कम हो जायगा।

सेन के ऊपर प्रवाह

नीचे की तरफ़ हवा का दबाव दबाव के केंद्र 'स' पर पड़ेगा, और पूर्ण दबाव 'प' पंख से समकोण पर रहेगा।
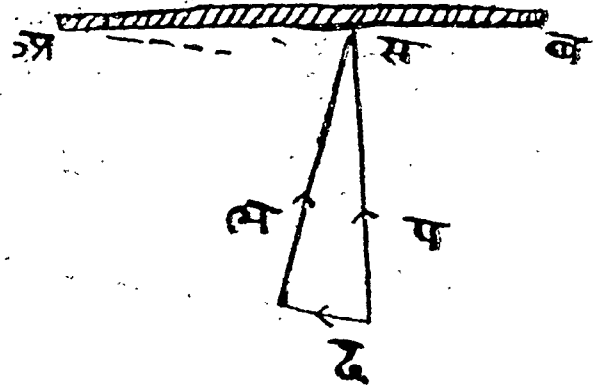
सेन के ऊपर की शक्तियाँ

पूर्ण दबाव दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। एक 'ल', जो पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की रेखा में है; और दूसरा 'द', जो इससे समकोण पर है।

बस, यही दबाव 'ल' नौका को ऊपर थामे रहता है, और वह नीचे नहीं गिरने पाती। परंतु यह अत्यंत आवश्यक है कि नाव के पंख हवा में चलते रहें। अन्यथा यह दबाव 'ल' न पैदा हो सकेगा। कारण, पंख क्षितिज-रेखा से बहुत ही छोटे कोण पर है, इसलिये 'ल' 'द' से बहुत बड़ा होता है, और थोड़ी ही शक्ति से बहुत बोझ सँभाला जा सकता है।

'ल' को 'उठाव-शक्ति' कहते हैं। इससे सिर्फ़ नौका का बोझ ऊपर उठा रहता है। यह चलते समय एंजिन पर कुछ रुकावट नहीं डालती; क्योंकि यह चलने की दिशा से समकोण पर है।

'द' खिंचाव-शक्ति कहलाती है। यह चाल की दूसरी दिशा में होती है, और एंजिन को इसी के तईं अपनी शक्ति से काटना होता है।

अब पाठकों की समझ में आ गया होगा कि हवाई नाव ऊपर उठने से पहले ज़मीन पर दूर तक क्यों दौड़ती है।

नाव को ऊपर-नीचे उठाने के लिये चिड़ियों की दुम की तरह एक पतवार लगी रहती है। इस पतवार को तिरछा करने से नाव ऊपर या नीचे जाता है।

अगर नाव एक तरफ़ को गिरने लगे, तो उसे सीधा करने के लिये प्रत्येक पंख में छोटे-छोटे दो और पंख लगे रहते हैं। इनको उचित रीति से झुकाने पर नाव सीधी हो जाती है।

नाव को हवा के झोंकों से बचाने के लिये पंख एक सरल रेखा में नहीं बनाए जाते। वे कुछ झुके होते हैं।
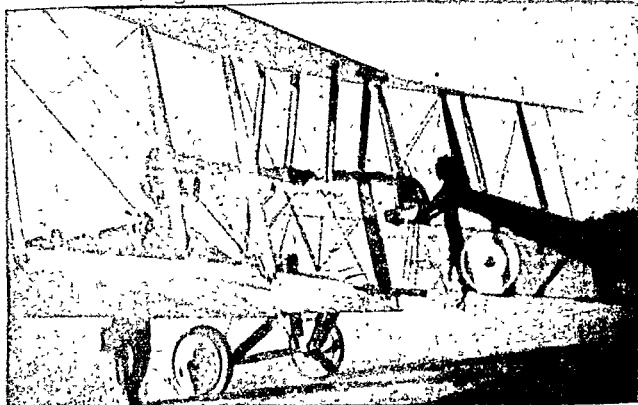
उड़ने के लिये तैयार

हरएक जहाज़ ७६० फ़ीट लंबा और ११६ फ़ीट चौड़ा होगा। इनमें १२० से १६० मनुष्यों तक के लिये जगह रहेगी। लंदन से बंबई तक जहाज़, बग़ैर कहीं रुके, पाँच रोज़ में पहुँच जायगा।

लंदन और बंबई के बीच हफ़्ते में दो हवाई जहाज़ों की डाक का इंतज़ाम रहेगा।

कमांडर बर्नी, विकर्स लिमिटेड और शेल ऑयल कंपनी की सहायता से, जहाज़ी बेड़ा तैयार कर रहे हैं।

आर्मस्ट्रांग-कंपनी का एयरशिप

(ऐसे ही जहाज़ इँगलैंड से यहाँ तक ५ रोज़ में योरप की यात्रा करेंगे)
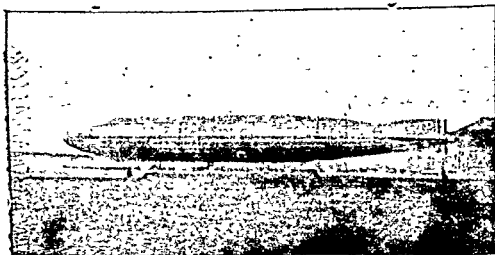
किराया पहले दर्जे का ७० पौंड और दूसरे दर्जे का ४२ पौंड होगा।

हवाई जहाज़ लंदन से मिसर तक ढाई दिन में, बंबई तक पाँच दिन में, रंगून तक सात दिन में, सिंगापुर तक आठ दिन में, और पर्थ (आस्ट्रेलिया) तक ग्यारह दिन में पहुँचेगा।

पी० एंड ओ० कंपनी के डाक के जहाज़ से लंदन से बंबई तक किराया है पहले दर्जे का ६०, ८० और ७० पौंड। दूसरे दर्जे का ६० और ४४ पौंड। इसमें ११ दिन के खाने के भी दाम शामिल हैं। रास्ते में मार्सेल्स होकर १५ रोज़ लगेंगे।"

हरएक सोने के कमरे में हाथ-मुँह धोने और लिखने की मेज़ें रहेंगी। गोल कमरे में एक साथ साठ मनुष्य बैठ सकेंगे। भोजन पकाने का इंतज़ाम बिजली से होगा।

श्यामाचरण

शिक्षा, शिक्षक तथा शिष्य

प्राक्कथन

माधुरी के गत अंकों में हमने तर्क-शास्त्र के विषय में कुछ चर्चा की थी। हमारा उद्देश्य पाठकों को उक्त शास्त्र की कुछ शिक्षा देना था। हमने यह मान लिया था कि शिक्षा के विषय में पाठकगण विशेषतः जानते हैं। दर्शनशास्त्र एक विशाल स्तंभ है। उसके विविध विषय उसके अंग हैं। विशाल स्तंभ की व्याख्या तो हम लोगों की आधुनिक दशा में कठिन ही नहीं, असंभव-सी प्रतीत होती है। जब हम एक-एक विषय की चर्चा करने चलते हैं, तब उसको जड़ से तो खोद सकते नहीं। हम पहले-पहल अपने विषय की सीमा नियत कर लेते हैं। जब विषय की सीमा नियत हो जाती है, तब आगे बढ़ते हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न विज्ञानों की भी राम-कहानी है। ज्ञान एक असीम महासागर-सा है। उसको हम अपने काम के लिये अनेक भागों में बाँट देते हैं। यहाँ भी हमारे प्रशांत-महासागर, हिंद-महासागर इत्यादि महासागरों की तरह अनेक महासागर हैं। पाठकगण उन महासागरों से तो परिचित ही होंगे। उदाहरण के लिये पदार्थशास्त्र, भौतिक शास्त्र, उद्भिद्‌शास्त्र आदि का नाम ले सकते हैं। पर जिस तरह महासागर एक है, ठीक उसी तरह ज्ञान भी एक है। हम पहले जिनको अपना आधार मान चुके थे, जिनको अपनी स्वयं-सिद्धि कहते थे, उनकी भी जड़ खोदने के लिये आज हमने लेखनी उठाई है। पर यहाँ भी हमारी स्वयंसिद्धियाँ रहेंगी। इनके बिना तो ज्ञान की व्याख्या आकाश-कुसुम ही रह जाती है। "लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं तदपि तव गुणानामीश पारं न याति," इस वंदना में कवि ने जिस प्रकार ब्रह्म की व्याख्या की है, ठीक उसी प्रकार हम ज्ञान की व्याख्या कर सकते हैं। दार्शनिक तो ज्ञान तथा ब्रह्म में कोई भेद मानते ही नहीं।

आज हम शिक्षा के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं। इस विषय पर अनेक पुस्तकें, अनेक निबंध, इत्यादि के रहते हुए भी हमारा यह लेख अनावश्यक-सा जान पड़ेगा। पर विषय ऐसा उपयोगी है कि समय-समय पर इसकी कुछ-न-कुछ चर्चा होना ज़रूरी है। हमारे बालक हमारे हाथों के खिलौने नहीं, वे हमारी सुख-सामग्री नहीं, वे हमारे हाथों के पुतले नहीं। हमें याद रखना चाहिए कि उन्हें पहना-ओढ़ाकर अपने को आनंदित करने की सामग्री ही समझना उचित नहीं है। ये हँसते हुए फूल परमात्मा ने हमको किस लिये दिए हैं? आप लोग कहेंगे, हम लोगों के सुख के लिये ही ये बनाए गए हैं। हाँ, आपको ये पुरस्कार-स्वरूप मिले हैं। पर आप क्या इन हँसते हुए फूलों को इस तरह मुरझाने देंगे? संसारोपवन के माली को क्या जवाब दीजिएगा? आप यदि उसके दान का इस तरह दुरुपयोग करेंगे, तो किस तरह उससे फिर दान की आशा रख सकते हैं? इनको सज-धजकर रखिए, हमें कुछ आपत्ति नहीं। पर केवल इनकी सजावट में ही न लगे रहिए। ये केवल इसी लिये नहीं बने हैं। ये परमात्मा के बंदे हैं। "खिलौना समझकर बिगाड़ो न इनको, कि ये भी उसी के बनाए हुए हैं।" ये आपके हाथों के पुतले नहीं हैं कि आप इन्हें जिस तरह चाहें, गढ़ लें। ये परमात्मा के यहाँ से कुछ शक्तियाँ लाए हैं। आपका और हमारा काम है कि वही करें, जिससे इनकी ये शक्तियाँ पर्याप्त विकास प्राप्त करें। जिस कला से हम और आप इस कार्य का संपादन कर सकते हैं, उसे हम और आप 'शिक्षा' कहते हैं। इस कार्य के संपादक को शिक्षक तथा संपाद्य को शिष्य के नाम से पुकार सकते हैं। यह कार्य सभी जीवधारियों पर लागू हो सकता है। जैसे—हम एक बेल को लकड़ी में बाँधकर उसे सीधी रहने की शिक्षा दे सकते हैं। हम एक कुत्ते के गले में लालटैन बाँधकर राह दिखलाने की शिक्षा दे सकते हैं। कुत्तों, बंदरों और घोड़ों को तो आजकल तरह-तरह की शिक्षा दी जाती है। सरकस में पाठकों ने इसके बहुत उदाहरण पाए होंगे। हम यह कहना नहीं चाहते कि छोटे जीवों को शिक्षा दी ही नहीं जा सकती। हमारा यह भी कहना नहीं है कि वे शिक्षा के योग्य ही नहीं हैं। हमारा कहना यही है कि इन सब बातों की व्याख्या इस छोटे-से निबंध में तो क्या, पोथे-के-पोथे लिखकर भी नहीं की जा सकती। अस्तु। मतलब यह कि इस लेख में जो कुछ लिखा जायगा, वह मनुष्य की शिक्षा पर ही।

जीवन क्या है ?

जब हम यह मान चुके कि हमारा लक्ष्य जीवन के सब अंगों की उन्नति—समुचित उन्नति—है, तब हमारे आगे यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जीवन है क्या ? प्राचीन काल में हकीम अरस्तू एक बड़े महत्त्वशाली दार्शनिक हो गए हैं। आप कहते थे, जीवन तीन प्रकार के हैं—पशु-जीवन, उद्भिद्-जीवन, और मनुष्य-जीवन। आधुनिक काल में हक्सले (Huxley) साहब दार्शनिक तथा वैज्ञानिक, दोनो हो गए हैं। उनका कहना है कि हमारा जीवन आत्मरक्षा तथा संसारोत्पत्ति अथवा संतानोत्पत्ति से ही है। पर हमारा जीवन-शब्द से कुछ और ही आशय है। हम जीवन का न तो, हकीम अरस्तू की भाँति, अर्थ इतना विशाल ही लगाते हैं, और न, हक्सले साहब की भाँति, इतना संकुचित अर्थ ही समझते हैं। हमारा आशय यहाँ मनुष्य-जीवन से है। हम मनुष्य-जीवन को, हक्सले साहब की भाँति, इतना संकुचित भी नहीं मानते। हमारा लक्ष्य आत्मरक्षा या संतानोत्पत्ति ही नहीं है।

हमारे जीवन की विशेषताएँ

हम अपने पाठकों को यह तो बतला ही चुके कि हमारा जीवन क्या है। जब जीवन को सीमाबद्ध कर चुके, तब यह जानना है कि उसका रूप क्या है, उसमें क्या विशेषताएँ हैं। "आहारनिद्राभयमैथुनं च" इत्यादि श्लोक से मालूम होता है कि हम अपनी शारीरिक शक्ति में पशुओं से किसी प्रकार अधिक नहीं हैं। एक ज्ञान-शक्ति ही हमारी विशेषता है। पशु तो पाप कर नहीं सकते; क्योंकि धर्माधर्म का उन्हें ज्ञान ही नहीं है। और, न देवता ही पाप कर सकते हैं; क्योंकि उनका ज्ञान यौगिक प्रत्यक्ष है। उन्हें धर्म और पाप का यौगिक प्रत्यक्ष हो जाता है। अतएव हम यह देख चुके कि पशु तथा देवता सुधार से, अतएव संकुचित दृष्टिकोण के कारण, शिक्षा से परे हैं। हम लोग न तो ज्ञानी ही हैं, और न अज्ञानी ही। हमें कभी इंद्रियाँ अपनी ओर खींचती हैं, और कभी ज्ञान अपनी ओर। हम नीम हकीम हैं, अतएव ख़तरे में हमारी जान है। पर यह निराश होने की बात नहीं है। हममें सुधार की शक्ति है। हम देवता बनना नहीं चाहते। जीवन-संग्राम में कुछ आनंद है। वह आनंद अनिर्वचनीय तथा वर्णनातीत है।

हमारे इस कार्य के लिये परमात्मा ने हमें अनेक रूप दिए हैं। यथा—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक इत्यादि। शिक्षा का अर्थ इन्हीं रूपों का विकास है। अतएव शिक्षा से संबंध रखनेवालों को इन पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

शिक्षा-प्रणाली

जब हम 'शिक्षा क्या है ?', इस बात का उत्तर पा चुके, जब हम शिक्षा के विषय में जानकार हो गए, तब इस स्थान पर यह प्रश्न उठता है कि शिक्षा का उपाय क्या है ? शिक्षा कैसे दी जाय ? इस प्रश्न के साथ हमारा घनिष्ठ संबंध है। अतएव इस प्रश्न की उपेक्षा हम न कर सकेंगे। ऐसे महत्त्व के प्रश्न पर भी मतभेद है। सबका वर्णन या समुचित समावेश इस छोटे-से लेख में संभव नहीं। यह सब समझाने का काम तो शिक्षा के इतिहास का है। जो पाठक यह सब जानने के लिये उत्सुक हों—और प्रश्न इतने महत्त्व का है कि सब कोई अवश्य ही उत्सुक होंगे—वे हमारे "शिक्षा का इतिहास" की प्रतीक्षा करें। अब तक वह प्रकाशित न हो सका। हिंदी-प्रेमी जनता इसके लिये क्षमा करे। आज हम अपनी उक्त पुस्तक ही से कुछ थोड़ी-सी बातें, जो अत्यंत आवश्यक हैं, बतलाते हैं। हम न तो सनदयाफ़्ता शिक्षक (L. T. इत्यादि) हैं, और न कोई अनुभवी शिक्षक। अतएव पाठकों को यह हमारी अनधिकार-चर्चा जँचे, तो आश्चर्य नहीं। अस्तु। हम यद्यपि इनमें से कुछ भी नहीं हैं, पर विश्वास रहे, यदि परमात्मा की कृपा हुई, तो अपने लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जायँगे। बचपन से जो मृगमरीचिका नेत्रों के सामने है, वह परमात्मा की कृपा से माया-मात्र न होकर सत्य ही होगी। अस्तु, "अमृतं बालभाषितम्" के अनुसार हमारा कथन सुनिए।

आज तक शिक्षा के विषय में अनेकानेक समस्याएँ हल की जा चुकी हैं। यह समस्या अत्यंत प्राचीन काल से दार्शनिक कवियों के सामने रक्खी गई। सबने अपने-अपने मन की पूर्ति की। उनमें चार मतों का लिखना अनिवार्य है। वे क्रम से सादृश्यात्मक, हर्बर्ट-मतानुयायी, संविदात्मक, तथा औपचेतनिक के नाम से पुकारे जायँगे।

पाश्चात्य देशों में कुछ मनोविज्ञानिक ऐसे हो गए हैं,

जिनके मत में मन का विकास सादृश्य तथा पार्थक्य से ही होता है। यहाँ पर जो हम दो शब्दों के स्थान में एक ही शब्द का प्रयोग करते हैं, उसका भी कारण है। सादृश्य ही से, व्यंग्य शक्ति द्वारा, हम पार्थक्य-शब्द का आशय पा सकते हैं। अब हमारा इससे क्या आशय है, यह बात दो-एक उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगी। हम सूर्योदय तथा सूर्यास्त देखते हैं, तो हमें मनुष्य का जन्म-मरण स्मरण हो आता है। हम अग्नि देखते ही जलने का स्मरण करते हैं। भवभूति ने अपने "उत्तर-रामचरित" में सीता के मुख से इस बात का जीता-जागता उदाहरण दिया है। जब वासंती कहती है कि "सीताजी के हाथी पर आपत्ति आ पड़ी है। हे रामचंद्र महाराज, उसे बचाओ।", तब सीताजी अचानक कह उठती हैं—"हे नाथ!", फिर सोचकर कहती हैं—"हा! यह वही वन है, वही वासंती है, सब घटनाएँ वे ही हैं। इससे 'हे नाथ', यह शब्द अचानक मुख से निकल गया।" भवभूति ने अपने उक्त नाटक में बहुत-सी दार्शनिक बातें लिखी हैं। उनका कहना है कि हम अपने शिष्यों को यथाशक्ति तो पाठ्य विषय ही का प्रत्यक्ष करावें। हाँ, यदि वैसा संभव न हो, तो फिर उसके समान या सदृश वस्तु से काम ले सकते हैं। इस रीति को सरल शिक्षा कह सकते हैं।

हर्बर्ट साहब एक बड़े भारी मनोविज्ञान के आचार्य हो गए हैं। साथ ही वह अच्छे शिक्षातत्त्ववेत्ता भी थे। उनका तर्क है कि हमारे दृश्य दृष्ट वस्तु के दूर होने पर भी बने रहते हैं। एक दृश्य पर दूसरा, दूसरे पर तीसरा, इस प्रकार सब हमारे मानस-पटल पर अंकित होते जाते हैं। पर ऐसा नहीं है कि एक चित्र दूसरे चित्र से भिन्न हो। चित्र पृथक्-पृथक् नहीं खिंचते, एक के ऊपर एक अंकित होते रहते हैं। इनको वह दृश्य-समूह कहते हैं। उनके मत में शिक्षक का काम इसी समूह को उत्तेजित करना और इसी से काम लेना है।

कुछ तो ऐसे हैं, जो इस बात का समर्थन करते हैं कि सब दृश्य परस्पर पृथक् हैं। किन्हीं दो का परस्पर पर प्रभाव नहीं पड़ता। साधारण योग की भाँति एक दूसरे से मिलते हैं। उनका कहना है, इनको बढ़ाना ही शिक्षक का काम है। उनके विचार में मस्तिष्क ग्रामोफ़ोन का रेकर्ड है। इसमें गौहरजान, माहेलक़ा, मुन्नीजान इत्यादि के गानों की भाँति Jevons, Mill इत्यादि की वक्तृता भर दो। परीक्षा के समय तुम्हारे शिष्य ग्रामोफ़ोन ही की भाँति इनके गाने सुनाने लगेंगे। आधुनिक शिक्षा इसी कोटि की है।

चौथे मतवालों के अनुसार हमारा मानसिक संसार और हमारी चेतना एक दूसरे के व्याप्य नहीं हैं। चेतनता हमारे मानसिक संसार का एक प्रांत-मात्र है। हम इसी प्रांत को अपना संसार मान लेते हैं। यह हमारा संकुचित दृष्टिकोण है। वे साथ-साथ उपचेतना को भी मानते हैं। उपचेतना पर हमारा लेख छप चुका है। उसमें इसकी विस्तृत रूप से व्याख्या की गई है। यहाँ पर समष्टि रूप ही से कुछ लिखा जायगा। कल्पना कीजिए, हम और आप एक पुस्तकालय में बैठे हुए हैं। हम लोगों के साथ और भी कितने ही हैं। पास ही धर्म-घड़ी दीवार में लगी हुई है। क्लर्क पुस्तकें बाँट रहा है। ऐसी-ऐसी अनेक छोटी-मोटी घटनाएँ हो रही हैं। हम और आप पढ़ने में लगे हुए हैं। टेबिल पर माधुरी की मनोमोहिनी मूर्ति पड़ी हुई है। हम और आप इस भाँति माधुरी में निमग्न हैं कि क्या हो रहा है, इसका कुछ पता नहीं। कल्पना कीजिए, एक नौकर धर्मघड़ी उतारकर ले गया। अब बतलाइए, हम लोगों के मानसिक संसार में कुछ परिवर्तन होगा, अथवा नहीं? होगा, और अवश्य होगा। पर वह अब तक कहाँ था? हमारे मत-वाले—हमारे कहने से हमारा विशेष आशय यह है कि हम इसी मत के समर्थक हैं—कहेंगे कि वह अब तक हमारी उपचेतना में था। इसी मत पर आजकल मेस्मि-रिज़्म, हिप्नॉटिज़्म, (यौगिक दृश्य) इत्यादि निर्भर हैं। इनका शिक्षा के विषय में यह कहना है कि शिक्षक को इस विभाग से अवश्य काम लेना चाहिए। हम और मतों की उपेक्षा करते हुए इस मत का क्यों समर्थन करते हैं? हम इस 'क्यों' का उत्तर यहाँ पर नहीं दे सकते। इन सबका खंडन-मंडन हमारे पूर्वोक्त "शिक्षा के इतिहास" में शीघ्र ही आपको देखने का अवसर मिलेगा। पुस्तक प्रस्तुत है, पर लेखक को सनदयाफ़्ता, या यों कहिए कि अधिकारी, बनना है।

शिक्षक

अब तक हम अपने तीन प्रश्नों में केवल पहले का उत्तर पा सके हैं।

अब हमारा प्रश्न शिक्षक के विषय में होगा। हमारे प्रश्न ये होंगे—शिक्षक क्या है? शिक्षक का कर्तव्य क्या है? उसका शिष्य के साथ क्या संबंध है? आदर्श शिक्षक कौन है? उसको कैसा होना चाहिए? इन सब प्रश्नों के उत्तर के साथ ही हम अपने तीसरे प्रश्न का भी उत्तर पा जायँगे। शिक्षा देनेवाले को शिक्षक तथा शिक्षा पानेवाले को शिष्य कहते हैं। शिक्षक का कर्तव्य प्रेम-पूर्वक अपने शिष्य की सहज शक्तियों का विकास करना, और शिष्य का काम, शिक्षक का आदेश मानते हुए, उसके इस विद्यायज्ञ में साथ देना है। प्रेम का संबंध कैसा होना चाहिए? एक कवि के मुख से सुनिए—

"अन्नदाता भयत्राता कन्यादाता तथैव च ;
विद्यादाता जन्मदाता पञ्चैते पितरः स्मृताः।"

इस प्रेम को परा काष्ठा तक पहुँचाना ही दोनों का आदर्श होना चाहिए। मिलकर जीवन के सब अंगों का समुचित विकास करना ही दोनों का धर्म है। पर आजकल कुछ और ही देख पड़ता है, जिसका वर्णन पाठक स्वयं कर सकते हैं। इस पर भी एक अध्याय हमारे लिखे इतिहास में है।

उपसंहार

इस लेख के उपसंहार में एक अत्यंत महत्त्व के प्रश्न पर विचार किया जायगा, यद्यपि इस पर बहुत विचार हुआ है। आधुनिक समय में मौलिकता का गर्व रखनेवालों को हम या तो अभिमानी या अज्ञानी समझते हैं। इतने दिनों तक मनुष्य घास तो काटते ही नहीं रहे। जो अपनी मौलिकता की डींग हाँकते हैं, वे ज़रा अपने हृदय की धड़कन से तो पूछें। आत्मा उनकी क्या गवाही देती है। हाँ, हम उन साहित्यिक डाकुओं का भी समर्थन नहीं करते, जो मौलिक ग्रंथकार का नाम बिलकुल हज़म कर जाते हैं। हम शोक के साथ लिखते हैं, और लिखने के लिये बाध्य हैं कि हमारे अधिकतर उपन्यासकार तथा नाटककार (अब कुछ महाकवि भी ऐसे पैदा हो रहे हैं!)—इन लोगों से हम क्षमा चाहते हैं, क्योंकि हम 'सब' ऐसा विशेषण न रखकर 'अधिकतर' विशेषण का ही प्रयोग करते हैं—इन डाकुओं ही में हैं। बँगला-साहित्य पर डाका मारेंगे, पर मूल-लेखक का नाम तक न देंगे। भूमिका में एक शब्द धन्यवाद के लिये भी रहेगा। और हिंदी के ही नहीं, बँगला के लेखक उनसे बढ़कर डाकू हैं। वे चोरी के माल की शकल ही बदल देते और साहूकारी के साथ उसे अपना कहकर बाज़ार में चलाते हैं। हम अब यह नहीं चाहते। हमारे संपादक और ईमानदार लेखक सी० आई० डी० का काम करें, और इन डाकुओं को जितना भी कड़ा साहित्यिक दंड दे सकें, दें।

पाठकगण, इस लक्ष्यभंग अथवा उद्देश्य-हानि के लिये क्षमा कीजिएगा। हम यह जानते हैं कि हम-जैसे तार्किकों को यह कदापि शोभा नहीं देता। पर भई, हम उसके साथ ही मनोविज्ञान के हामी होने का भी तो दावा रखते हैं। अतएव सादृश्य-नियम के अनुसार 'मौलिक'-शब्द के आते ही यह झड़ी बँध गई। विचार की लगाम ढीली पड़ गई। लेखनी भी मनमानी चलने लगी। एक प्रश्न है कि स्त्री-शिक्षा उचित है, या नहीं? पहले जब यह कह चुके हैं कि नीची श्रेणी के जीवधारियों में भी शिक्षा असंभव नहीं है, तब, भला, हम इस मत के समर्थक कब हो सकते हैं कि स्त्री-शिक्षा अनुचित है? उन्हें भी परमात्मा ने तर्कशक्ति दी है। फिर वे अपनी शक्तियों का विकास क्यों न करें? यदि हम उनको इससे वंचित ही रखते हैं, तो घोर-से-घोर पाप करते हैं। इस प्रश्न के हल होते ही एक दूसरा प्रश्न यह आ खड़ा होता है कि इनकी शिक्षा पुरुषों की-सी हो, या किसी दूसरे प्रकार की? हम स्त्री-शिक्षा पर लेख नहीं लिख रहे हैं। इसलिये यहाँ पर इस विषय को बढ़ाना अनावश्यक है। हम इस प्रश्न का 'हाँ' या 'ना' में उत्तर दे सकते हैं। 'हाँ' हम इसलिये कहते हैं कि स्त्री और पुरुष में बहुत कुछ समता है। 'ना' हम इसलिये कहते हैं कि इन दोनों में विभिन्नता भी है। स्त्री और पुरुष में समता रहने पर भी विभिन्नता है, अतएव उनकी शिक्षा में समता के साथ ही विभिन्नता का होना भी आवश्यक है। यह समता-सहित विभिन्नता कैसी हो, यह प्रश्न हमारे लिये अधिक प्रभ है। यह कम-से-कम हमारे लेख की सीमा के तो बाहर ही है। पर हाँ, हम इतना अवश्य कह सकते हैं, और कहेंगे, कि यह मूल-मंत्र भूलने न पावे।

"बाग़"

सफल जीवन

(१)

स्वतंत्रता-दिवस की सातवीं सालगिरह थी। उन दिनों मैं संयुक्त-प्रांत की व्यवस्थापक-सभा के शासन-विभाग का उपमंत्री था। राष्ट्रीय सप्ताह की छुट्टियों में घर आया हुआ था। दिन ढल चुका था। लखनऊ में, गोमती के किनारे, अपने बँगले की दालान में, एक आराम-कुरसी पर लेटा हुआ वसंत की बहार देख रहा था। सामने, जहाँ तक दृष्टि जाती थी, हरियाली छाई हुई थी ; मानो हवा चलती-चलती स्वयं हरित वर्ण होकर खेतों के विस्तार में लोट-लोट जाती थी। हरे खेतों के बीच सरसों इस तरह फूली हुई थी, जैसे किसी नदी की धारा में दीप-मालिका जलाई गई हो। सूर्य के प्रकाश में उज्ज्वल बादलों का दल नील वर्ण आकाश पर ऐसा सोह रहा था, जैसे बालक कृष्ण के मुख पर अभी-अभी चुराकर खाया हुआ दही। हवा के चलने से गोमती की धारा ऐसी लहराती थी, जैसे किसी सुंदरी की पतली कमर किसी के गुदगुदाने से बल खा-खा जाय। वृक्ष अँगड़ाइयाँ ले रहे थे। पेड़ों और झाड़ियों में अनेक पक्षी बोल रहे थे। सारा दृश्य एक अनंत आनंद के विस्तार में, एक फूल की तरह, एक मृदुल मुसकान की तरह, खिला हुआ था।

निकट ही, नदी के किनारे, छतरमंज़िल की तरफ़ से, कोई बालिका गाती हुई आ रही थी—

"झिलमिल बहत बयार, पवन रस डालै रे।"

आवाज़ बड़ी नरम, लोचदार और रसीली थी ; जान पड़ा, मानो वसंत-ऋतु की दुपहरिया अपने विश्राम का राग अलाप रही है। मेरे बँगले के बिलकुल पास आकर आवाज़ बंद हो गई, और एक बालिका अपने हाथ में खद्दर का एक बड़ा-सा बैग लिए हुए मेरे सामने आई। वह दालान में चढ़ आई। लड़की सफ़ेद मोटे खद्दर की एक बहुत साफ़ सारी और कुर्ता पहने हुए थी। सारी कहीं-कहीं कुछ फट गई थी ; लेकिन बहुत सावधानी से सिलाई कर दी गई थी। वह नंगे-पाँव थी। बालिका लगभग १३ वर्ष की मालूम होती थी। खुलता हुआ गेहुँआ रंग ; दुबला बदन ; भोला भोला चेहरा ; सुंदर और बड़ी-बड़ी आँखें ; भरे हुए, ढीले ; परंतु कुछ मुरझाए हुए होंठ ; सुडौल नाक, जो बेले की कली की तरह मालूम होती थी। मुख पर संतोष, श्रम, और स्वावलंब के चिह्न अंकित थे। मालूम होता था, विपत्तियों ने उसके भोलेपन और मस्ती को चौंका दिया है। अचेत और सचेत अवस्थाओं का समावेश उस भोले, किंतु विपत्तियों के थपेड़े खाए हुए, मुख पर नज़र आता था। आँखें चौंककर रह गई थीं, और चिबुक से भी सरलता के साथ-साथ सहनशीलता और विपत्ति का अनुभव प्रकट हो रहा था। उसकी मुसकान अत्यंत सरल होते हुए भी अज्ञात रूप से एक दुःखद अवस्था की झलक लिए हुए थी। बाल्यावस्था की सरलता और स्वाभाविक प्रसन्नता एक बारीक चादर की तरह उन विपत्तियों पर पड़ी हुई थी, जिनकी झलक बालिका के मुख पर एक अज्ञात आश्चर्य के रूप में नज़र आती थी ; मानो भुलाए न जा सकने-वाले अनुभव अपने आपको भूल-से गए और भूले हुए अनुभव याद आकर रह गए हों। दुःख उसके लिये स्वाभाविक था, और आश्चर्यजनक भी। वह जीवन का अर्थ समझ गई थी, लेकिन उम्र के असर से समझकर चौंककर भी रह गई थी। वह उस पतली डाली की तरह थी, जो स्थिर दिखाई देते हुए भी थरथराती रहती है। वह कुछ न जानती थी, और बहुत कुछ जानती थी ; जैसे एक तीर खाई हुई मृगी चोट के अनुभव के साथ-साथ बड़ी-बड़ी आँखों से आश्चर्य भी प्रकट करती है।

बालिका ने मुझे प्रणाम करके पूछा—"क्या आप कुछ किताबें लेंगे ?" मैंने सामने की बेंच पर बैठ जाने को कहा, और अपनी स्त्री को पुकारा। अंदर से आवाज़ आई—"थोड़ी देर में आती हूँ ?" इस बीच में बालिका ने कई किताबें बैग से निकालकर क़रीब की छोटी मेज़ पर रख दीं। मैं पुस्तकें उठा-उठाकर देखने लगा। कुछ पुस्तकों के संबंध में बालिका ने बड़ी सुंदर टिप्पणी की, जिससे उसके सुशिक्षित और तीव्र-बुद्धि होने का पता चलता था।

इतने में मेरी स्त्री, आशा, अंदर से आ गई। वह मेरी बग़ल में कुरसी पर बैठ गई, और कुछ सशंक दृष्टि से बालिका की ओर ध्यान से देखने लगी। उसने बालिका से उसका

नाम पूछा। बालिका ने कहा—"सरला।" आशा और भी संदेह-मग्न हो गई। उसने पूछा—"तुम्हारा घर गोरखपुर में तो नहीं है?" बालिका ने कहा—"अब तो कई वर्षों से लखनऊ ही में रहती हूँ। हाँ, मेरा जन्म गोरखपुर में अवश्य हुआ था।" आशा अब और उत्कंठित होने लगी। पूछा—"तुम्हारे पिता का क्या नाम है?" बालिका ने कहा—"मेरे पिता अब जीवित नहीं हैं। मुझे अपने पिता का बहुत कम होश है। जब उनका स्वर्गवास हुआ, उस समय मैं तीन बरस की थी। उनका नाम वसंतकुमार था।" आशा यह नाम सुनते ही चौंक पड़ी। एक तीव्र वेदना उसके मुख पर अंकित हो गई। फिर ठंडी साँस भरकर उसने पूछा—"तुम्हारे पिताजी के स्वर्गवास के बाद तुम्हारा पालन-पोषण किसने किया, और तुम लखनऊ कैसे आई? तुम्हारे घर के लोग कहाँ हैं?" इस स्नेहमय प्रश्न पर बालिका ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर आशा की ओर देखा। उसकी दृष्टि में कृतज्ञता-पूर्ण आश्चर्य भरा हुआ था। आशा की स्नेहमयी आँखें बालिका की उन भोली-भोली आँखों से मिलकर और भी स्नेहमयी हो गईं। मैं एक स्तब्धावस्था में यह सब देख रहा था।

बालिका ने आँखें झुका लीं, और बोली—"जब पिता-जी नहीं रहे, तो घर का कुल भार मेरी दादी पर आ पड़ा। उस समय घर में हम लोग चार प्राणी थे—दादी, मेरी बुआ, जो उस समय १० वर्ष की थीं, मेरे बड़े भाई, जो ५ साल के थे, और मैं। मेरे दादा बाबू उदयचंद्र गोरखपुर के सबसे बड़े रईस थे। लेकिन उन्होंने सारी रियासत पर अपनी ज़िंदगी ही में कई लाख क़र्ज़ कर दिया था। उनकी मृत्यु के थोड़े ही दिन बाद पिताजी असहयोग-आंदोलन में शरीक हो गए, जिसके कारण उस समय की अँगरेज़ी सरकार ने उनको दो साल की केड़ी क़ैद की सज़ा दी। क़ैद से छूटने के कुछ दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गई। उनके मरते ही महाजनों ने नालिश करके सब जायदाद नीलाम पर चढ़वा दी। यह सब हाल मुझसे दादी कहा करती थीं। दादी ने किसी तरह हम लोगों को पाला। इस तरह कुछ साल बीते। मेरी बुआ अब विवाह के योग्य हो गई थीं। दादी ने इसके लिये अपने कुछ थोड़े-से गहने बचा रक्खे थे। लेकिन तिलक भेजने के बाद बुआ को बड़ी कड़ी बीमारी हुई। उनके मुँह से खून गिरने लगा, और तपेदिक़ हो गया। छः महीने के अंदर उनकी मृत्यु हो गई। लेकिन उनके इलाज में दादी के सब गहने बिक गए। इसके थोड़े ही दिनों बाद मेरे भाई को साँप ने काट लिया। बहुत कुछ झाड़-फूँक और दवा-दरमत करने पर भी वह मर ही गए। अब घर में सिवा दादी और मेरे कोई नहीं रह गया। घर में कुछ न था। मैं उस समय १० बरस की थी। चरख़ा कातकर कुछ दिनों तक मैंने अपना और दादी का ख़र्च चलाया। जो समय बचता था, उसमें दादी की सेवा और घर का काम करती थी। कुछ दिनों के बाद दादी भी बीमार हो गईं। उन्होंने अपने समय में बहुत सुख देखा था। उनके सिर की पीड़ा बढ़ती गई। मैं उन्हीं की सेवा में लगी रहती थी। अब चरख़ा कातने को भी फ़ुरसत नहीं मिलती थी। मेरी माता के कुछ गहने दादी ने बचा रक्खे थे। मगर वे थे ही कितने। बहुत तो पिताजी की बीमारी ही में बिक चुके थे। जब जीविका का कोई सहारा न रह गया, तो वे बचे-खुचे दो-एक गहने भी एक-एक करके बिक गए। तीन महीने की बीमारी के बाद दादी की भी मृत्यु हो गई। अब मेरा कोई नहीं रह गया। दादी के भाई बाबू निहालचंद लखनऊ में रहते थे। वह मुझे अपने यहाँ लाए। नवल-किशोर-प्रेस में ६५) महीना पाते थे। घर में स्त्री थी, और दो लड़के। पिछले साल इनफ़्लुएंज़ा में बाबू निहालचंद और उनकी स्त्री जाती रहीं। तब से उनके दोनों लड़कों का भार मेरे ऊपर पड़ा। मैं गंगा-पुस्तकमाला की पुस्तकें बेचती हूँ। इस तरह २५-३०) कमीशन में मिल जाते हैं, जो मेरे और उन लड़कों के लिये काफ़ी हैं। इस तरह मुझे कुछ स्वाध्याय का और चरख़ा चलाने का भी अवसर मिल जाता है। आजकल यहाँ के अँगरेज़ लोग हिंदी की पुस्तकें बहुत लेते हैं।"

बालिका की कहानी सुनकर मेरा दिल भर आया। आशा तो अत्यंत अधीर हो गई। एक घोर वेदना उसके मुख पर अंकित हो गई। थोड़ी देर चुप रहकर उसने मुझसे पूछा—"क्या आप कुछ किताबें लेंगे?" मैंने २०-२५ किताबें उसे देकर कहा—"ये किताबें कैसी हैं?" आशा चुपचाप किताबें लेकर अंदर गई, और उनका मूल्य लाकर लड़की को दे दिया। जब लड़की चलने लगी, तो कुछ हिचकिचाते हुए आशा ने कहा—"कल फिर आना।" लड़की "अच्छा"

कहकर चली गई। वही कुछ दुख-भरी मुसकिराहट चलते समय उसके होठों पर थी। आशा ने एक बार उस जाती हुई लड़की की ओर देखा। इसके बाद वह अंदर चली गई। मैं दालान ही में बैठा रहा। फिर छतरमंज़िल की ओर से गाने की आवाज़ आई। आवाज़ बालिका की थी—

"निरबल के बल राम,
सुने री मैंने, निरबल के बल राम।
निरधन के धन राम,
सुने री मैंने, निरधन के धन राम।
सुने री मैंने......"

कितनी रसीली, कितनी दर्द-भरी आवाज़ थी। जैसे-जैसे बालिका दूर निकलती जाती थी, वैसे-वैसे आवाज़ भी धीमी होती जाती थी। अंत में एक अलाप सुनाई पड़ी, फिर कुछ नहीं।

(२)

मैं भीतर आया, और आशा के कमरे में गया। वह एक कोच पर बहुत उदास, दुःखित और चिंतित बैठी हुई थी। एक अपरिचित बालिका का हाल सुनकर आशा के लिये इतना उदास हो जाना अस्वाभाविक था। मैंने देखा, दो-तीन बार वह अपनी जगह पर बैठी-बैठी काँप गई। मेरी समझ में न आता था कि मैं उसे क्या सांत्वना दूँ। कुछ देर इधर-उधर की बातें करके मैंने उसका जी बहलाना चाहा। वह बातचीत तो करती रही, लेकिन उसकी मलिनता ज्यों-की-त्यों बनी रही, जैसे वह किसी दूसरी दुनिया का स्वप्न देख रही हो।

संध्या हो गई। मेरे याद दिलाने पर आशा को ख़याल आया कि आज स्वतंत्रता-दिवस का उत्सव देखने चलना है। मैंने और आशा ने जाकर कपड़े बदले। दोनों पैदल क़ैसरबाग़ रवाना हुए। हम नगर के बाज़ारों और ख़ास-ख़ास सड़कों की सैर करते हुए जा रहे थे। सारा नगर दीप-मालिका से जगमगा रहा था, जो उस उत्सव में घर-घर जलाई गई थी। दल-के-दल स्त्री और पुरुष उज्ज्वल खद्दर की पोशाक पहने बादलों की तरह चारों ओर से उमड़े आ रहे थे। कोठों पर से लोग नीचे से निकलनेवालों पर रह-रहकर फूलों की वर्षा कर रहे थे। कई मकानों पर धार्मिक और राष्ट्रीय वाक्य तारों के द्वारा छोटे-छोटे चिराग़ों से प्रकाशित किए गए थे। सारा नगर जगमगा रहा था।

क़ैसरबाग़ का दृश्य वर्णन के बाहर था। दीवारों पर केसरिया रंग बेशुमार चिराग़ों की रोशनी से चकाचौंध पैदा कर रहा था। आतशबाज़ियाँ छूट रही थीं। प्रेम, संग्राम, गृह-जीवन, उद्योग और व्यवसाय, जीवन, अनेक भाव और अवस्थाएँ, सब आतशबाज़ियों में दिखाई जा रही थीं, जो आकाश-मंडल में प्रतिक्षण बनती और बिगड़ती इस असार संसार का चित्र खींचती हुई शून्य में लुप्त हो जाती थीं। आशा मेरे साथ थी, लेकिन यह चहल-पहल और चमक-दमक उसके गांभीर्य को मिटा न सकी। कहीं-कहीं सविनय सत्याग्रह-संग्राम के चित्र भी लगाए गए थे। जब टहलते-टहलते हम लोग उस बृहत् चित्र के पास पहुँचे, जिस पर लिखा था—"गोरखपुर का अंतिम सत्याग्रह-संग्राम।", तो वहाँ आकर आशा कुछ देर तक रुक गई, और ध्यान से उस चित्र को देखती रही। मुझे कुछ-कुछ याद आता है कि उस समय उसने मेरे हाथ से अपना हाथ छुड़ाकर रूमाल से आँसू की एक बूँद अपनी आँख से पोंछी थी। उसके बाद हम लोग आगे बढ़ गए।

कई स्थानों पर सुगंधित और रंगीन जल के फ़ौव्वारे छूट रहे थे, मानो तारे टूट-टूटकर निछावर हो रहे हों। कहीं-कहीं राष्ट्रीय सेना की टुकड़ियाँ खड़ी थीं, जो बीन पर सुकवि इक़बाल का प्रसिद्ध गान "नया शिवाला" बजा रही थीं। अजायबघर के सामनेवाले तालाब में पानी के नीचे-नीचे चलनेवाली नावों पर कन्याएँ निवारा खेल रही थीं, मानो समुद्र की देवियाँ पाताल से उत्सव देखने के लिये बाहर निकल आई हों। ऊपर राष्ट्रीय विमान मँडला रहे थे। विमानों की चाँदमारी देखने योग्य थी। सारा दृश्य आनंद का एक स्वप्न था, जिसमें प्रत्यक्ष और भ्रम के बीच भेद करना कठिन था।

एकाएक तोपों की बाढ़ छूटी, और सारी भीड़ पश्चिम के फाटक की ओर वेग से बढ़ी। कई हाथियों पर लखनऊ के ज़िलाधीश और नगर की राजसभा के सभासद बाग़ में दाख़िल हुए। राष्ट्रीय पुलिस का केवल एक सवार फाटक पर मौजूद था, और भीड़ उमड़ती हुई नदी की तरह फ़ाटक के जलूस की ओर बढ़ती जा रही थी। डर था कि कोई दुर्घटना न हो जाय। लेकिन ठीक उसी समय जब ज़िलाधीश का हाथी भीड़ के सामने पहुँचा, पुलिस के सवार ने भीड़ को एक उँगली का इशारा

किया। सारी भीड़ बादल की तरह बाग़ की हरियाली में फटकर फैल गई। जलूस प्रजा की स्वागतकारिणी करतल-ध्वनि के बीच, बाग़ की सजावट और दृश्यों की सैर करती हुई, तिलक-स्मारक की ओर मुड़ी। १२ फ़ीट ऊँची अष्टधातु की एक रत्न-जटित शिला पर संगमरमर की बनी हुई लोकमान्य की एक क़देआदम प्रतिमा खड़ी थी। हीरों की पतली छड़ियों पर मूर्ति के ऊपर एक बिल्लूर का छत्र बना हुआ था। यहीं नगरवालों को राष्ट्रपति का वार्षिक भाषण पढ़कर सुनाया जानेवाला था।

भाषण समाप्त होने पर महात्मा गाँधी का आशीर्वाद जनता को सुनाया गया। सभा फिर करतल-ध्वनि से गूँज उठी। तब हम लोग घर की ओर चले। आशा अब भी वैसी ही गंभीर और मौन थी। न-जाने कौन विचार उसके हृदय पर अपना आधिपत्य जमा चुके थे। घर पहुँचकर हम लोग शयनागार में गए। आशा चुप थी। कुछ देर के बाद बोली—"मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ।" मैंने कहा—"कहो।" आशा ने कहा—"हम लोगों के कोई औलाद नहीं है, आप मुझे उस कन्या को, जो पुस्तकें बेचने आई थी, अपने पास बुलाकर रखने की आज्ञा दे दें।" मैंने कहा—"अच्छी बात है। बस, इतनी-सी बात?" आशा ने कुछ उत्तर न दिया। हम लोग थके हुए थे, नींद आ गई। सुबह को जब आशा उठी, तो उसका मुख गुलाब के फूल की तरह खिला हुआ था। चिंता और विस्मय के चिह्न उसके मुख पर नहीं थे। वह कुछ चंचल मालूम होती थी, और रह-रहकर उसकी आँखें छतरमंज़िलवाले रास्ते पर पड़ती थीं।

(२)

चार वर्ष व्यतीत हो गए। मैं गोरखपुर में ज़िलाधीश के पद पर नियुक्त होकर भेजा गया। सरला अब एक अति सुंदरी युवती हो चुकी थी। वह कबीर-विद्यालय से साहित्य की मध्यमा-परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुकी थी। लेकिन उसका रहन-सहन अब भी वैसा ही सरल और सादा था, जैसा कि पहले। उसके साथ के दोनों बालक गुरुकुल, काँगड़ी में शिक्षा पाते थे। मेरे गोरखपुर जाने के कुछ दिनों बाद आशा ने सरला के विवाह की बात-चीत शुरू की। छः महीने के अंदर सरला का विवाह दिल्ली के एक सुयोग्य युवक के साथ मैंने कर दिया। आशा ने नए गहनों के साथ अपने सारे गहने सरला को दे दिए, और रो-रोकर उसे विदा किया।

सरला के विवाह का कुल प्रबंध आशा ने किया था। बड़े हौसले से उसने यह विवाह किया था। आशा ने और मैंने सरला के ब्याह में कन्या दान किया। उस दिन आशा ने निर्जल व्रत रक्खा, और ज्वर से पीड़ित होते हुए भी खूब मल-मलकर ठंडे जल से स्नान किया। सरला के बिदा होने के बाद आशा बीमार पड़ी। उस बीमारी से वह फिर न उठ सकी। इलाज अच्छे-से-अच्छा किया गया, लेकिन वह प्रति दिन निढाल ही होती गई।

रात तीन पहर से अधिक बीत चुकी थी। आशा को बीमार पड़े एक महीने से अधिक हो चुका था। वह बहुत लट गई थी। आज शाम से उसकी दशा चिंताजनक हो चली थी। आधी रात के समय मैंने आशा को दवा पिलाई, जिससे थोड़ी देर के लिये उसे नींद आ गई। वह अर्द्धमूर्च्छित दशा में शय्या पर पड़ी थी। बाल खुले हुए थे। उसका शरीर ऐसा निर्बल था कि रह-रहकर साँस लेते समय मालूम होता था, मानो निर्बलता स्वयं प्रबल मृत्यु की ओट में सदा के लिये छिप जाने के वास्ते मृत्यु को इशारे से बुला रही है। मेरा दिल भर आया। मैं पास के कमरे में जाकर रोने लगा।

थोड़ी देर के बाद जान पड़ा, कोई बहुत मंद स्वर से मुझे पुकार रहा है। आशा की आवाज़ थी। मैंने अपने को सँभाला, और जल्दी से आँसू पोंछता हुआ उसके सिरहाने पहुँचा। आशा के मुख पर एक अलौकिक तेज बरस रहा था। वह बहुत शांत मालूम होती थी। मैं उसके सामने बैठ गया। उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। ज्वर बिलकुल उतर चुका था। उसका शरीर बहुत शीतल था। मैंने समझा, दवा ने फ़ायदा किया। तब आशा ने बहुत नम्र स्वर में मुझसे कहा—"अब मुझे बहुत थोड़ी देर जीना है। मैं आपसे कुछ कहूँगी। अब मैं ईश्वर से बातें कर रही हूँ।" मैंने कहा—"तुम्हारी हालत अच्छी है, तुम अच्छी हो जाओगी। यह सब क्या कह रही हो।" आशा के ललाट पर एक हलका-सा बल पड़ गया। मानो उसे मेरी बात अरुचिकर हुई। फिर उसने अत्यंत करुण दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैंने

उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"कहो, मुझसे क्या कहोगी ?"

आशा ने कहा—"आज से सत्रह वर्ष पहले, जब इस देश में अँगरेज़ों का राज्य था, मेरे पिता इसी शहर में इंजीनियर थे। जिस मकान में आजकल कबीर-विद्यालय है, उसी में हम लोग रहते थे। वह मकान सरला के पिता बाबू वसंतकुमार का था। उनके पिता का स्वर्गवास हो चुका था। बाबू वसंतकुमार की स्त्री का भी देहांत हो चुका था। उनके जिस मकान में हम लोग रहते थे, उसको एक महाजन ने ख़रीद लिया था, और हम लोग किराए पर उसमें रहते थे। बाबू वसंतकुमार, उनकी माता, उनकी छोटी बहन, सरला और उसका भाई पास ही एक छोटे-से मकान में रहते थे। दोनो परिवारों के लोग एक दूसरे के घर आते-जाते थे। मैं और वसंतकुमार, एक दूसरे को देखकर नमस्कार कर लिया करते थे। बस, उनसे और मुझसे इतना ही परिचय था।

"गरमियों की रात थी। चाँदनी ख़ूब छिटकी हुई थी। हवा धीमी-धीमी चल रही थी। पेड़ों की पत्तियों से सन-सनाहट सुनाई देती थी। रह-रहकर ताड़ के लंबे-लंबे पेड़ों से पत्तों के खड़खड़ाने की आवाज़ आती थी। सन-सन की आवाज़ से ऐसा मालूम होता था कि वायु की चपल उँगलियाँ चंद्रमा की किरणों का सितार बजा रही हैं। मैं चुपचाप खड़ी चंद्रमा को देख रही थी। अचानक मुझे मालूम हुआ, जैसे कोई मेरी ओर देख रहा है। मैंने दाहनी ओर मुड़कर देखा, तो कुछ दूर पर एक पेड़ की छाया में खड़े वसंतकुमार मेरी ओर देख रहे थे। न-जाने क्यों मेरे मुँह से निकल गया—'वसंत।' उनके मुँह से भी निकला—'आशा।' इतने में मेरी माता ने मुझे अंदर से पुकारा। वसंतकुमार ने मेरी ओर एक बार देखा, और मैंने उनकी ओर। फिर मैं घर में चली गई, और उनको भी मैंने अपनी ओर देखते हुए अपने घर की ओर जाते देखा।

"जब मैं घर में गई, तो माता ने मुझे एक तार दिया, जिसमें मेरे पिता के बनारस बदल जाने का समाचार था। दूसरे ही दिन हम लोग बनारस चले गए। वहाँ कुछ दिनों बाद समाचार-पत्रों में मैंने वसंतकुमार के आई० सी० एस्० की परीक्षा में उत्तीर्ण होने का समाचार पढ़ा। लेकिन बाद को मुझे मालूम हुआ कि वह विलायत न जाकर असहयोग-आंदोलन में शरीक हो गए। उसी साल आपका विवाह मुझसे हो गया।"

यह कहते-कहते आशा को मूर्च्छा आ गई, और उसकी आँखें बंद हो गईं। मैंने जल्दी से उसे दवा पिलाई, और लवेंडर में बसे हुए एक रूमाल से हवा करने लगा।

थोड़ी देर के बाद आशा ने आँखें खोल दीं, और मेरी ओर अत्यंत करुणा-पूर्ण दृष्टि से देखकर फिर कहा—

"तीन बरस के बाद एक विवाह में शरीक होने के लिये मैं गोरखपुर गई। गोरखपुर में वसंतकुमार को देखने के लिये मेरा बहुत जी चाहा। मैं इस आकांक्षा को न रोक सकी। वह हाल ही में जेल से छूटकर आए थे।

"जब मैं उनके घर पर गई, तो वह बहुत बीमार थे। मैं जब उनके कमरे में गई, तो उनकी सूरत देखकर धक-से रह गई। वह सूखकर काँटा हो गए थे। आँखें बैठ गई थीं। होंठ काले पड़ गए थे। जब उन्होंने मुझे देखा, तो ख़ुशी की एक हलकी-सी झलक उनके मुँह पर दौड़ गई। मैं उनके पास एक कुरसी पर बैठ गई। इतने में उनकी माता और बहन आईं। मैंने उनको प्रणाम किया। वे कुछ देर बैठीं, और हम लोगों का हाल पूछती रहीं। फिर सरला को मेरी गोद में देकर चली गईं।

"वसंतकुमार मुझसे बातें करने लगे। जो बातें उन्हों-ने मुझसे उस समय कीं, उन्हें याद कर-करके आज भी मैं काँप-काँप जाती हूँ। उन्होंने कहा—'आशा, अब मैं कुछ ही दिनों तक और जीवित हूँ। मेरे जीवन की सारी आकांक्षाएँ मेरे साथ ही जायँगी। महात्मा गाँधी और सब नेता जेल में हैं। देश में स्वराज्य-आंदोलन शिथिल हो गया है। जिस गोरखपुर में कांग्रेस के पौदे को मैंने अपने ख़ून से सींचा था, उसी गोरखपुर में चौरी-चौरा की दुर्घटना हुई, और सब काम बिगड़ गया। मेरा जीवन विफल हुआ।' उसके बाद मेरी ओर अत्यंत करुणा-पूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—'आशा, हो सके, तो कभी-कभी मेरी याद कर लिया करना।' मैंने उन्हें ढारस दिया और कहा—'आप अच्छे हो जायँगे। स्वराज्य भी होगा, और आपका जीवन सफल होगा।' इसके बाद उन्हें कुछ नींद-सी आ गई। मैं सरला को गोद में लिए अंदर गई, और बाबू वसंतकुमार की माता को उसे देकर उनके घर से बिदा हुई।

"इसके बाद कुछ ही दिनों में स्वराज्य-आंदोलन फिर उभरा। आप जानते हैं, गोरखपुर ही के सत्याग्रह में प्रजा की विजय हुई थी, और अँगरेज़ी-सरकार को सुलह करनी पड़ी। स्वराज्य हो जाने के बाद मुझे वसंतकुमार का कुछ हाल नहीं मालूम हुआ। कई बार जी में आया, उन्हें पत्र लिखूँ; लेकिन न-जाने क्यों मैं उन्हें पत्र न लिख सकी। आज से चार साल पहले, जब हम लोग लखनऊ में थे, सरला को देखकर मैंने कुछ पहचाना, और बाबू वसंतकुमार के परिवार की बरबादी का सब हाल सुना। न-जाने क्यों, मैंने इस घटनाचक्र में अपने को ही अपराधी समझा। भगवान् की कृपा से बाबू वसंतकुमार की लड़की के प्रति मैंने अपने कर्तव्य का पालन कर दिया, और मेरा जीवन सफल हो गया। अब मेरी यही प्रार्थना है कि आप सरला पर अपना प्रेम बनाए रखिएगा, और उसके घर शुभ अवसरों पर चीज़-वस्तु भेजते रहिएगा। अब मैं आपसे विदा होती हूँ। मेरे अपराध क्षमा कीजिएगा।"

यह कहते-कहते आशा की आवाज़ बंद हो गई। उसे दो-तीन हिचकियाँ आईं। मैंने उसका सिर अपनी गोद में ले लिया। एक बार उसने मेरी ओर देखा। उन आँखों से मृत्यु झाँक रही थी। फिर सदा के लिये उसकी आँखें बंद हो गईं।

रात समाप्त हो गई। पौ फटते ही कमरे का द्वार हवा के एक झोंके से खुला, और कमरे में सरला और उसके पति उसी समय पहुँचे।

× × ×

संध्या के समय त्रिवेणी के तट पर दो मनुष्य किसी की अस्थियाँ प्रवाहित करके खड़े थे। उनमें एक मनुष्य सरला के पति, बंबई के गवर्नर, कुमार प्रतापचंद्र थे। दूसरा मैं था, जो अपने इस जीवन की तुलना—जिसका लड़कपन से लेकर अब तक कोई उद्योग विफल नहीं हुआ था, जिसको मैं सफल समझता रहा—मृत मनुष्यों की आत्माओं के जीवन से कर रहा था।

सामने आकाश पर संध्या का बढ़ता हुआ अंधकार "सफल" और "विफल" शब्दों के अर्थ को एक अनंत रहस्य में परिवर्तित कर रहा था।

रघुपतिसहाय

बौद्ध-साहित्य

भारतवर्ष धर्म-क्षेत्र है। हिंदू-धर्म, बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म, ये उसकी महान् प्राचीन धर्मत्रयी हैं। समयानुसार प्रत्येक में अनेक शाखा-प्रशाखाएँ होकर, संप्रति उनका स्वरूप विस्तृत एवं कुछ अंशों में विकृत हो गया है। जैसे हिंदू-धर्म में वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अनेक संप्रदाय और मत-मतांतर हो गए हैं, जैसे जैन-धर्म में श्वेतांबर, दिगंबर, स्थानकवासी, ढूँढिया इत्यादि विभाग हो गए हैं, वैसे ही बौद्ध-धर्म में भी मुख्यतः महायान और हीनयान, ये दो भेद हो गए हैं। माध्यमिक, सौत्रांतिक, योगाचार तथा वैभाषिक, ये भी बौद्ध-फ़िलॉसफ़ी की ही शाखाएँ हैं। इसके सिवा बौद्ध-धर्म भारतवर्ष के बाहर भी बहुत विस्तृत है। तिब्बत, नेपाल, चीन, जापान, श्याम, बर्मा, सीलोन आदि स्थानों में भी वह भिन्न-भिन्न रूपों में अपना अस्तित्व रखता है। ये सब आदि-बौद्ध-धर्म के ही अंकुर हैं।

महात्मा गौतम-बुद्ध का जन्म ईसवी सन् से ७-८ शताब्दी पूर्व, निश्चित रूप से, माना जाता है। इससे बौद्ध-धर्म हिंदू-धर्म का समकक्ष तो नहीं, लेकिन लगभग ढाई हज़ार वर्ष का प्राचीन माना जा सकता है। स्वयं बुद्ध भगवान्, महेंद्र, बुद्धघोष आदि अनेक तपस्वियों, तथा अशोक, कनिष्क आदि अनेक समर्थ राजों के सतत प्रयत्न से बौद्ध-धर्म का प्रचार इतना अधिक हुआ था कि उसके इतिहास को समग्र मानव-जाति के एक तृतीयांश भाग का, गत ढाई हज़ार वर्षों का, इतिहास कहना कोई अत्युक्ति नहीं प्रतीत होता। तथापि आश्चर्य की बात तो यह है कि इस समय बौद्ध-धर्म अपने उत्पत्ति-स्थान भारतवर्ष में समूल लुप्त हो गया है!

जब हिंसात्मक कर्मकांड की प्रणाली बहुत विस्तृत और जटिल हो गई, तब बौद्ध-धर्म के उत्पन्न होने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उसने वैदिक कर्मकांड का ही नहीं *, ईश्वर का भी निषेध किया; और केवल सदा-

* तुलना—"निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्"

चार (शील) से ही निर्वाण (मोक्ष), अथवा अर्हत्-अवस्था (वेदांत की तुरीयावस्था) प्राप्त हो सकती है, यह समाज को समझाया । बौद्ध-धर्म को नास्तिक, निरीश्वरवादी, शून्यवादी इत्यादि जो विशेषण दिए जाते हैं, इसका कारण यही है । 'जगत् जन्म-जरा-मरण आदि से परिपूर्ण होकर दुःख-मय है', यह, तथा कर्म का अचल सिद्धांत, ये दोनों बौद्ध-धर्म के स्तंभ-स्वरूप हैं । इससे कितने ही लोग बौद्ध-धर्म को निराशावादी भी कहते हैं । अस्तु, अब हमें यहाँ बौद्ध-साहित्य का अवलोकन करना है ; अतएव इस विषय को यहीं छोड़ देते हैं ।

ऊपर कहा गया है कि बौद्ध-धर्म का प्रचार क्रमशः बहुत ही विस्तृत हो गया था । अतः कोई आश्चर्य नहीं, जो उसका साहित्य भी बहुत विशाल हो । असल में गौतम-बुद्ध ने कौन-सी भाषा में उपदेश दिया था, इस पर अभी विद्वानों में मतभेद है । तो भी साधारणतः 'पाली'-भाषा का—जो उस समय मगध-देश की देश-भाषा थी—उपयोग बुद्ध ने किया होगा, ऐसा जान पड़ता है । कारण, गौतम-बुद्ध ने पहले अधिकांश धर्म-प्रचार मगधदेश में ही किया था ; तथा ब्राह्मण-धर्म की तरह बौद्ध-धर्म में अधिकारी-अनधिकारी का प्रश्न था ही नहीं । इससे ब्राह्मण से शूद्र तक स्त्री, पुरुष, सभी को जो भाषा समान-रूप से ज्ञात होगी, उसी भाषा का उन्होंने उपयोग किया होगा, यह ठीक है । चाहे जो हो, जिस-जिस देश में बौद्ध-धर्म का विस्तार हुआ है, उस-उस देश की भाषा में इस समय बौद्ध-धर्म का कैसा और कितना साहित्य विद्यमान है, यही देखना इस लेख का आशय है । वस्तुतः अभी तक प्रसिद्ध हुआ बौद्ध-साहित्य बहुत कुछ संस्कृत और पाली-भाषा में ही है ।

इसके साहित्य-समूह में प्रथम 'ललितविस्तर' का नाम आता है । इसे 'महापुराण' कहा गया है ।

संस्कृत भाषा में बौद्ध-साहित्य

गौतम ने प्रथम बौद्ध-वृक्ष के तले बैठकर बुद्धत्व प्राप्त कर जब जगत् के उद्धार के लिये अपना उपदेश आरंभ किया, तब तक का बुद्ध-चरित्र का वृत्तांत इस ग्रंथ में दिया हुआ है । इसका अधिक अंश गद्य में और शेष पद्य में है । इसमें २७ परिवर्त (अध्याय) हैं । इसकी भाषा ऐसी नहीं है, जो शुद्ध संस्कृत कही जा सके । कितने ही विद्वानों ने इसकी भाषा को 'गाथा-संस्कृत' नाम दे रक्खा है । इस ग्रंथ में बुद्ध का चरित्र, आलंकारिक रीति से, चमत्कार-पूर्ण चित्रित किया गया है । इससे, ऐतिहासिक दृष्टि से, इसका क्या मूल्य हो सकता है, यह एक प्रश्न है । इस ग्रंथ के लेखक तथा समय के विषय में अभी तक ठीक-ठीक कोई प्रमाण नहीं मिला । अभी केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इसकी रचना ईसवी सन् के आरंभ में एक अथवा अधिक हाथों से हुई होगी । चीनी और तिब्बती आदि भाषाओं में इस ग्रंथ के अनेक अनुवाद देखने में आते हैं । इसकी एक आवृत्ति स्वर्गीय डॉ० राजेंद्रलाल मित्र ने कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित कराई थी । ऐसे ही डॉ० लेफमैन ने इसकी एक आवृत्ति जर्मनी से भी प्रकाशित की है ।

दूसरा ग्रंथ 'बुद्ध-चरित' है । इस ग्रंथ का लेखक अश्वघोष-नामक एक बौद्ध कवि है । अश्वघोष नाम के दूसरे कितने ही आचार्य हो गए हैं । परंतु इस काव्य-ग्रंथ का लेखक अश्वघोष ईसवी सन् की पहली शताब्दी में था । वह काश्मीर के राजा कनिष्क का समकालीन तथा उपदेशक था *। यह काव्य-ग्रंथ बहुत ही प्रासादिक कविता में, कालिदास की-सी सरल शैली में, लिखा गया है । 'रघुवंश' तथा 'कुमारसंभव' के अनेक श्लोकों के साथ 'बुद्ध-चरित' का शब्द-साम्य एवं भाव-साम्य स्पष्ट देख पड़ता है । इसकी तुलनात्मक आलोचना महाराष्ट्र के प्रसिद्ध विद्वान् श्री० नंदर्गीकर ने अपने 'रघुवंश' की प्रस्तावना में भली भाँति की है । इस ग्रंथ में बुद्ध का जीवन काव्य की दृष्टि से बहुत उत्तम और रोचक लिखा गया है । इसके सिवा अश्वघोष के द्वारा सौंदरनंद, सूत्रालंकार, श्रद्धोत्पाद, शारीपुत्रप्रकरण, अभिधर्म-विभाग, गंडीस्तोत्र आदि ग्रंथों की रचना का होना भी माना जाता है †। बुद्ध-चरित की एक उत्तम आवृत्ति स्व० प्रो० कॉवेल ने प्रकाशित की है ।

"सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ;
केशव धृतबुद्धशरीर, जय जगदीश हरे ।"
(गीतगोविंद)

* *Sacred Books of the East, Vol. XLIX, Introduction, p. 1.*

† *A Literary History of Sanskrit-Buddhism by G. K. Nariman, Chap. 5.*

अब 'अवदान'-साहित्य की बात सुनिए। अवदान का अर्थ है—उदात्त कार्य, पराक्रम। इस विशाल साहित्य में बुद्ध के इस जन्म तथा पूर्व-जन्म की बातें लिखी हैं। कितनी ही बातें तो बहुत ही आनंद दायक और अद्भुत हैं।

इसमें अवदानशतक, दिव्यावदान, रूपवती-अवदान, कल्पद्रुम-अवदान, द्वाविंशत्यवदान, भद्रकलावदान, विचित्रकर्णिकावदान, सुमागधावदान, अवदान-कल्पलता, व्रतवंदमाला, जातकमाला (बोधिसत्त्वावदान) आदि ग्रंथ हैं। इनमें से अधिकांश ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। जातकमाला का लेखक आर्यशूर है। यह ग्रंथ हारवर्ड ओरिएंटल सीरीज़ में एच्० कर्न साहब ने प्रकाशित किया है।

अवदान-कल्पलता का कुछ भाग रायबहादुर शरचंद्र-दास तथा पं० हरिमोहन विद्याभूषण ने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के द्वारा प्रकाशित किया है।

महायान-बौद्ध-पंथ के स्तंभ-स्वरूप महायानसूत्र और 'नवधर्म' के नाम से प्रसिद्ध वैपुल्यसूत्र में अष्टसाहस्रिक-प्रज्ञापारमिता, सद्धर्मपुंडरीक, ललितविस्तर, लंकावतार, सुवर्णप्रभास, गंडव्यूह, तथागतगुह्यक, समाधिराज और दशभूमीश्वर, ये नव ग्रंथ हैं। इनमें से ललितविस्तर के विषय में ऊपर चर्चा की गई है। सद्धर्मपुंडरीक सेंट-पीटर्सबर्ग में, सन् १९०८ ई० में, "बिब्लियोथेका बुद्धिका" नाम की ग्रंथमाला में, प्रकाशित हुआ था। उसका अँगरेज़ी-अनुवाद कर्न साहब ने 'सेक्रेड बुक्स'-ग्रंथमाला में प्रकाशित किया है। महायान-पंथ में अवलोकितेश्वर, अमिताभ, मंजुश्री आदि भिन्न-भिन्न रूपों की कल्पना की जाती है, और उनके वर्णन तथा गुण-कीर्तन के लिये करंडव्यूह, सुखावतीव्यूह, गंडव्यूह आदि पुस्तकों की रचना की गई है। लंकावतार में शाक्य मुनि बुद्ध के साथ लंकाधिपति रावण की भेंट का वर्णन है! रावण बुद्ध से धर्म-संबंधी अनेक प्रश्न करता है, और वह उनका उत्तर देते हैं। वे उत्तर बौद्ध-धर्म की योगाचार-शाखा के सिद्धांतों से मिलते हुए हैं। इसी में सांख्य, वैशेषिक, पाशुपत आदि मतों का विवेचन किया गया है। इसमें एक भविष्यवाणी की गई है कि "मेरे निर्वाण के सौ वर्ष पश्चात् 'व्यास' उत्पन्न होंगे, और वह महाभारत की रचना करेंगे। तत्पश्चात् पांडव, कौरव, नंद, मौर्य, गुप्त और म्लेच्छ-वंश के राजा उत्पन्न होंगे। इत्यादि।"

माध्यमिक शाखा में नागार्जुन-नामक एक महा-विद्वान्, ईसवी सन् की दूसरी या तीसरी शताब्दी में, दक्षिण-भारत में, हुए थे। उन्होंने माध्यमिक शाखा के सिद्धांतानुसार माध्यमिककारिका, धर्मसंग्रह आदि ग्रंथ लिखे हैं। बौद्ध-धर्म के संस्कृत-साहित्य में उल्लिखित मुख्य-मुख्य ग्रंथों का समावेश हुआ है।

यह सर्वमान्य मत है कि पाली-भाषा के बौद्ध-ग्रंथ अति प्राचीन हैं।

पाली-भाषा में बौद्ध साहित्य

इसमें ख़ास करके तिपिटक (त्रिपिटक) संग्रह बहुत महत्त्व-पूर्ण है। तिपिटक एक पुस्तक का नाम नहीं है, उसमें अनेक पुस्तकों का समावेश हुआ है। जैसे सनातनधर्मियों के लिये वेद तथा जैनों के लिये आगम हैं, वैसे ही हीनयान-पंथ के बौद्धों के लिये तिपिटक प्रामाणिक है। तिपिटक का आकार महाभारत से तिगना होगा। इसमें संगृहीत ग्रंथों की कब और कहाँ रचना की गई, किसने इनकी रचना की, इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है। अनेक विद्वानों का मत है कि इनकी रचना पाटलिपुत्र में हुई थी; और पीछे महाराज अशोक का पुत्र महिंद जब धर्म-प्रचार के लिये सीलोन गया, तब वह उनको अपने साथ लेता गया था*। त्रिपिटकों में राजगृह और वैशाली की सभाओं का वर्णन है; पर पाटलिपुत्र में हुई सभा का उल्लेख नहीं। इससे यह मालूम होता है कि इन दोनों सभाओं के समय

* बुद्धघोष ने त्रिपिटकों के 'दीघनिकाय' ग्रंथ की अट्ठकथा (टीका) का पाली-भाषा में अनुवाद करते समय लिखा है—

"सिंहलदीपं पन आभताय वसिना महामहिंदेन ;
ठपिता सीहलभासाय दीपवासिनमत्थाय।
अपनेत्वा ततोहं सीहलभासं मनोरमं भासं ;
तन्तिनयानुच्छविकं आरोपेंतो विगतदोसं।"

अर्थात् यह अट्ठकथा महामहिंद सिंहल-द्वीप में लाए, और इस द्वीप के निवासी जनों के हितार्थ सिंहली-भाषा में उसे लिखा। सिंहली-भाषा से मैं मनोरम और शास्त्रानुकूल, निर्दोष पाली-भाषा में, इसका अनुवाद करता हूँ।

(बौद्धपर्व)

के मध्य-काल में उनकी रचना हुई होगी। त्रिपिटकों का कुछ भाग निःसंशय प्राचीन है, परंतु कुछ अर्वाचीन मालूम होता है। अनेक विद्वानों का यही मत है। इस ग्रंथ के अनुवाद सिंहली, बर्मीज़, चीनी, जापानी आदि भाषाओं में हुए हैं। त्रिपिटक नाम का कारण यह है कि इसमें तीन पिटक (टोकरियाँ, समूह) हैं— १. सुत्तपिटक, २. विनयपिटक और ३. अभिधम्म-पिटक। कुछ लोगों का मत है कि पहले सुत्त और विनय, ये दो ही पिटक (द्विपिटक) थे *।

१—सुत्तपिटक। इसमें गौतम-बुद्ध के उपदेशों का संग्रह किया गया है। इसके पाँच निकाय अथवा विभाग किए गए हैं। दीघनिकाय (दीर्घनिकाय), मज्झिम-निकाय (मध्यमनिकाय), संयुत्तनिकाय (संयुक्त-निकाय), अंगुत्तरनिकाय और खुद्दकनिकाय (क्षुद्रक-निकाय)। इन पाँचों विभागों में बुद्ध भगवान् का अपने शिष्यों को दिया हुआ उपदेश, उनके पारस्परिक संवाद, धर्म तथा तत्त्व-ज्ञान के विषय में शिष्यों के वारंवार किए हुए प्रश्न और उनके उत्तरों का संग्रह किया गया है। ये सब (१८३) संवाद इतने गहन हैं कि इनका एक-एक सूत्र एक-एक व्याख्यान का विषय हो सकता है। दीघनिकाय में दीर्घ अर्थात् बड़े लंबे संवाद हैं। मज्झिमनिकाय में मध्यम आकार के संवाद हैं। संयुत्तनिकाय में एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न शिष्यों के साथ हुए संवादों का संग्रह है। अंगुत्तरनिकाय में बौद्ध-धर्म के मानस-शास्त्र तथा नीति-शास्त्र के सूत्र बने हुए संवाद अलग किए गए हैं। अंगुत्तरनिकाय सब निकायों से बड़ा है। खुद्दकनिकाय में छोटे-छोटे संवादों का समावेश है। उसके पंद्रह अंतर्विभाग इस प्रकार किए गए हैं—

१. खुद्दकपाठ, २. धम्मपद, ३. उदान, ४. इतिवुत्तक, ५. सुत्तनिपात, ६. विमानवत्थु, ७. पेतवत्थु, ८. थेर-गाथा, ९. थेरीगाथा, १०. जातक, ११. निद्देश, १२. पटिसंभिदामग्ग, १३. अवदान, १४. बुद्धवंस, और १५. चरियापिटक।

* देखो—Oldenberg's Vinaya Pitakam, Vol. I, P. X; तथा तुलना—'तानि पदव्यंजनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओतरेतब्बानि विनये संदस्सेतब्बानि'। (महापरिनिब्बानसुत्त)

खुद्दकपाठ। यह छोटी पुस्तक धर्म में नए-नए भरती हुए लोगों के लिये है। इसमें मनुष्य-देह की रचना, अस्थि, मज्जा, स्नायु आदि ३४ विषयों पर थोड़ी-थोड़ी चर्चा की गई है। आरंभ में निम्न-लिखित दीक्षा-मंत्र दिया है—

"बुद्धं सरणं गच्छामि।"
"धम्मं सरणं गच्छामि।"
"संघं सरणं गच्छामि।"

धम्मपद। इस ग्रंथ में धार्मिक और नैतिक विषय के, पर परस्पर संबंध-रहित, ४२३ श्लोकों का संग्रह किया गया है। सब श्लोक बौद्ध-धर्मानुसार नीति और संयम के २६ विषयों (वग्ग) में विभाजित कर दिए गए हैं। प्रत्येक विषय में दस से बीस तक श्लोक हैं। इनमें के कितने ही श्लोक महाभारत, मनुस्मृति आदि ग्रंथों में भी देख पड़ते हैं। इस ग्रंथ की एक प्राचीन टीका भी है। उसमें प्रत्येक श्लोक के लिये एक-एक घटना लिखी गई है—यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि किसने, कब और किस प्रकार अमुक श्लोक कहा था। ये सब घटनाएँ सरल पाली-भाषा में लिखी गई और बहुत रसमयी हैं। प्राचीन काल में नालंदा, विक्रमशिला आदि स्थानों में जो बड़ी-बड़ी पाठशालाएँ थीं, उनमें अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी, गिरि-कंदराओं तथा विहारों में रहनेवाले बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणी, संसारी और विरक्त, सब एक ही रीति से भक्ति-पूर्वक इस ग्रंथ को पढ़ते थे।

उदान। अक्सर बुद्ध भगवान् किसी दृश्य या किसी अद्भुत वस्तु को देखकर एकाएक उल्लसित हो जाते थे। उस समय उनके मुख से कुछ-न-कुछ सरस तथा काव्य-मय शब्द निकल पड़ते थे। ऐसे वचनों में कुछ अद्भुत धार्मिक भाव झलकते थे। उनके शिष्यगण उन वचनों को लिख लिया करते थे। उदान में ऐसे ही ८२ वचनों का संग्रह किया गया है।

इतिवुत्तक। इस पुस्तक में भी बुद्ध के १२० वचन हैं। इसका इतिवुत्तक नाम होने का कारण यह है कि इसमें प्रत्येक वचन के आगे 'इति वुत्तं भगवता' अर्थात् 'भगवान् ने यह कहा' लिखा है। प्रो० रीज़ डेविड्स का कथन है कि यह ग्रंथ ईसवी सन् से ४०० वर्ष पूर्व का होगा *।

* Buddhism: American Lectures, p. 71.

सुत्तनिपात । इस पुस्तक में ७० छंदोबद्ध सूत्र दिए गए हैं । उनके पाँच विभाग हैं । प्रथम के चार विभागों में छोटे-छोटे ২४-২४ पद्य हैं, और पाँचवें में एक विस्तृत काव्य ।

विमानवत्थु और पेतवत्थु । इनमें गरुड़पुराण की तरह स्वर्ग-नरक तथा प्रेत-संबंधी बातें हैं ।

थेरगाथा तथा थेरीगाथा । थेर अर्थात् स्थविर अथवा वृद्ध पुरुष, और थेरी अर्थात् स्थविरा, वृद्धा स्त्री । बौद्ध-धर्म की दीक्षा लिए हुए साधु-साधुनियों को 'थेर' और 'थेरी' कहा जाता था । प्रथम ग्रंथ में गौतम-बुद्ध के समय के २६४ मुख्य-मुख्य थेरों के, और द्वितीय में तत्कालीन ७३ थेरियों के धार्मिक कवन (काव्य) हैं । उनके नीचे दी हुई टीका में उनके लेखकों की जीवन-कथा भी दी गई है । इन काव्यों से बुद्ध-कालीन स्त्री-पुरुषों की दिनचर्या का ठीक-ठीक दिग्दर्शन होता है । उस समय स्त्रियों को कितनी स्वतंत्रता प्राप्त थी, और उसका उन्होंने कैसा सदुपयोग किया, यह इसमें हमें स्पष्ट देख पड़ता है । अधिकांश थेरियाँ धार्मिक और नैतिक शिक्षा में जितनी आगे बढ़ी हुई थीं, उतनी ही मानसिक शिक्षा में भी । उनके अधिकांश काव्य उच्च कोटि के और उन्नत भावनाओं का परिदर्शन करानेवाले हैं । उदाहरणार्थ एक कथा नीचे दी जाती है—

राजगृह के राजा बिंबिसार के एक आश्रित व्यक्ति की कन्या सोमा थी । उसने बौद्ध-धर्म का उपदेश सुनकर उस धर्म की दीक्षा ली । अपनी विद्वत्ता तथा सदाचरण से थोड़े ही समय में उसने अर्हत्-पद प्राप्त कर लिया । एक दिन वह श्रावस्ती में, अंध-नामक उद्यान में, एक वृक्ष के नीचे बैठी थी, इतने में 'मार' (कामदेव) उसके पास आकर कहने लगा—

"यं तं इसीहि पत्तव्बं ठानं दुरभि संभवम् ;
न तं द्वंगुलि पंञाय सक्का पप्पोतु मित्थिया ।"

अर्थात् पुरुषों को भी दुर्लभ उच्च पद, दो उँगलियों से परीक्षा करना जिनका नित्य कर्तव्य हो, ऐसी स्त्रियों को कैसे प्राप्त हो सकता है ?

यहाँ 'दो उँगलियों स परीक्षा करने' का भावार्थ टीकाकार यह बतलाता है—स्त्रियाँ चावल पकाने का काम ७ वर्ष की अवस्था से ही शुरू कर देती हैं । पर इस दीर्घ काल के अभ्यास से भी उन्हें इतना अनुभव नहीं होता कि चावल पक गए या नहीं । दो उँगलियों से जब चावल मलकर देखती हैं, तभी उन्हें इसका ज्ञान होता है कि भात हुआ या नहीं । ऐसी मूढ़ स्त्री-जाति के हृदय में धर्म के गूढ़ तत्त्व बिठलाना अशक्य है । यही इस श्लोक का भावार्थ है ।

यह श्लोक सुनकर सोमा ने उत्तर दिया—

"इत्थिभावो नो किं कयिरा चित्तम्हि सुसमाहिते ;
जाणम्हि वत्तमानम्हि सम्मा धम्मं विपस्सतो ।
सव्वत्थ विहता नन्दि तमोक्खन्धो पदालितो ;
एवं जानाहि पापिम निहतो त्वमसि अन्तक ।"

अर्थात् यदि हमारा चित्त स्थिर हुआ, और अर्हत्-मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर हमें सत्य धर्म का साक्षात्कार हो गया, तो फिर स्त्री-स्वभाव क्या कर सकता है ? अतएव हे पापी मार, तू समझ ले कि बंधन स्वतः टूट जाते और अज्ञान-रूपी अंधकार का नाश होता है । तेरी युक्ति निष्फल हो गई ।

ऐसी ही अनेक आनंद-दायक बातें इसमें दी गई हैं ।

जातक-कथा । 'जातक' अर्थात् जन्म-संबंधी । इस ग्रंथ में गौतम-बुद्ध के पूर्व-जन्मों से संबंध रखनेवाली बातों का संग्रह किया गया है । ये कथाएँ उन्होंने प्रसंगानुसार अपने शिष्यों से कही थीं, यह समझा जाता है ।

मालूम होता है, ये कथाएँ बुद्ध के समय में, तथा उसके पश्चात् भी, बहुत ही प्रचारित हुई थीं । साँची, अमरावती आदि स्थानों में तो इन कथाओं के निदर्श के चित्र भी पाए जाते हैं । प्रसिद्ध चीनी-यात्री फ़ाहि-यान ने इस प्रकार के पाँच सौ चित्रों को अपनी आँखों से देखा था । हुएन-संग ने भी अपने "भारतीय प्रवास-वर्णन" में जातक-कथा का दो-तीन जगह उल्लेख किया है । इससे विदित होता है कि ये कथाएँ बहुत ही लोक-प्रिय और लगभग दो-ढाई हज़ार वर्ष की पुरानी होंगी ।

यद्यपि ये कथाएँ बुद्ध के पूर्व-जन्म की हैं, तथापि इनसे उत्कृष्ट धार्मिक और नैतिक ग्रंथों की आवश्यकता की पूर्ति होती है । धर्म और नीति के सिद्धांतों को सूत्र-रूप से लोगों के सामने रखने की अपेक्षा कथा-कहानी के रूप में उपस्थित करने से उन सिद्धांतों का प्रभाव बहुत प्रबल और अपनी ओर खींचनेवाला हो जाता है । हितोपदेश, पंचतंत्र, ईसपनीति आदि पुस्तकें इसी

ढंग की हैं। उनमें भी जातक-कथाओं की छाया देख पड़ती है। इसी प्रकार चॉसर, हिरोडोटस आदि पाश्चात्य ग्रंथकारों की पुस्तकों में भी अनेक जातक-कथाएँ ज्यों-की-त्यों उद्धृत देख पड़ती हैं। रामायण तथा महाभारत की अनेक कथाओं का सादृश्य भी जातक-कथाओं से है। जैसे—दशरथ-जातक, कत्थहारी-जातक आदि। जातक-कथाओं की संख्या पाँच सौ से भी अधिक है।

निद्देस (निर्देश)। यह 'सुत्तनिपात'-ग्रंथ के उत्तरार्ध की टीका-मात्र है। ऐसा माना जाता है कि इसका लेखक सारिपुत्त-नामक बुद्ध का एक पट्टशिष्य है।

परिसंभिदामग्ग (प्रतिसंबोध मार्ग)। इसमें बौद्ध अर्हतों की दिव्य दृष्टि के विषय में लिखा है।

अपदान। इसमें अर्हतों के चरित्र दिए गए हैं।

बुद्धवंस। इसमें गौतम-बुद्ध और उनसे पहले हो गए चौबीस बुद्धों के जीवन-चरित्र दिए गए हैं।

चरिया-पिटक। इसमें गौतम-बुद्ध के चौंतीस पूर्व-जन्मों का वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ अपूर्ण है।

२—विनयपिटक। इस ग्रंथ-समूह में भिक्षुकों के पालन-योग्य नियमों का संग्रह किया गया है। इसमें इन पाँच ग्रंथों का समावेश है—१. पाराजिक, २. पाचितियादि (ये दो ग्रंथ मिलाकर 'सुत्तविभंग'-नामक विभाग बना है। इसमें प्रायश्चित्त के नियम हैं।) ३. महावग्ग, ४. चुल्लवग्ग (क्षुद्रवर्ग) (ये दो ग्रंथ मिलाकर 'खंधक'-नामक विभाग बना है।) और ५. परिवार-पाठ (परिशिष्ट)। इनके उपरांत 'भिक्खु'-'भिक्खुणी'-पातिमोक्ख (भिक्षु-भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष)-नामक ग्रंथ में बौद्ध-साधु तथा साधुनियों के दोषों का वर्णन और उनके प्रायश्चित्त के विषय में लिखा गया है। परंतु 'सुत्तविभंग' को इस विषय में अधिक प्रामाणिक माना जाता है।

३—अभिधम्मपिटक। इस ग्रंथ-समूह में बौद्धतत्त्व ज्ञान का विवेचन है। इसके अंतर्गत ये छोटी-छोटी सात पुस्तकें हैं—१. धम्मसंगणि, २. विभंग, ३. धातु-कथा, ४. पुग्गलपञ्जत्ति, ५. कथावत्थु, ६. यमक, ७. पट्ठान। बौद्ध-ग्रंथों-भर में ये पुस्तकें कठिन तथा नीरस हैं।

इनके सिवा पाली-भाषा में भी अनेक फुटकर पुस्तकें हैं। उनमें मुख्य निम्न-लिखित हैं—

महापरिनिब्बानसुत्त (महापरिनिर्वाणसूत्र)। इसमें गौतम-बुद्ध के अंतिम तीन महीनों की दिनचर्या दी गई है। इससे बौद्ध-धर्म के मुख्य-मुख्य तत्त्व, तत्कालीन आचार-विचार, समाज-नीति और राजकीय स्थिति आदि का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

मिलिंदपञ्हो (मिलिंद प्रश्नः)। इस ग्रंथ में बैक्ट्रिया के राजा मिलिंद (Menander) तथा बौद्ध-संन्यासी नागसेन का धर्म-विषयक संवाद है। यह संवाद ज्ञान और आनंद देनेवाला है। विद्वानों का मत है कि यह ग्रंथ ईसवी सन् से २०० वर्ष पहले का बना हुआ है।

दीपवंस और महावंस। सिंहल-द्वीप के ये दो प्रसिद्ध ग्रंथ, ईसवी सन् की ४थी या ५वीं सदी के लिखे हुए हैं। इनमें सीलोन का इतिहास है। महावंस-नामक ग्रंथ महानाम-नामक एक सिंहली पंडित का लिखा हुआ है। उसमें १०० अध्याय हैं। उसके ३७वें अध्याय में बुद्ध-घोष का चरित्र है। इस बुद्धघोष का लिखा विसुद्धिमग्ग-नामक ग्रंथ साहित्य, दर्शन, विज्ञान, इतिहास आदि का अपूर्व भांडार है। महानाम पंडित के बुद्धघोष के समकालीन होने से उसका लिखा हुआ चरित्र विश्वस-नीय कहा जा सकता है।

ललितविस्तर, बुद्धचरित, सद्धर्मपुंडरीक आदि कितने ही ग्रंथों का चीनी तथा तिब्बती-भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

उनके आधार पर उक्त भाषाओं से नवीन पुस्तकें भी रची गई हैं। तिब्बती-भाषा में रत्नधर्मराज-नामक एक बौद्ध भिक्षु ने ऐसा ही एक ग्रंथ लिखा है। इस प्रकार इस तरह के कई अन्य ग्रंथ हैं। 'क्यांग-र'-नामक तिब्बती ग्रंथ-संग्रह में 'ग-छेदरोलप'-नामक एक बौद्ध ग्रंथ है, जो अभी तक अप्रकाशित है। प्रो० रीज़ डेविड्स का कहना है कि संस्कृत के 'महाभिनिष्क्रमणसूत्र'-नामक ग्रंथ का चीनी-अनुवाद ईसवी सन् की छठी शताब्दी में हुआ था। इसके सिवा ललितविस्तर के चार अनुवाद चीनी-भाषा में हुए हैं। अंतिम अनुवाद 'हान'-वंश के राजा की देख-रेख में, ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी में, हुआ था। अश्वघोष के बुद्धचरित का चीनी-अनुवाद, धर्मरक्ष-नामक बौद्ध-पंडित ने, ईसवी सन् की ५वीं शताब्दी में, किया

अन्य भाषाओं में बौद्ध-साहित्य

थां । इसी समय 'लंकावतार-सूत्र' का चीनी-अनुवाद, सुंगवंशीय राजा की देख-रेख में, गुणभद्र-नामक पंडित ने किया था । महापरिनिव्वानसुत्त, जातकनिदान, महावंस आदि ग्रंथों के अनुवाद भी चीनी-भाषा में हुए हैं। वज्रच्छेदिका-नामक ग्रंथ जापानी बौद्धों का विशेष पूज्य ग्रंथ है। जापान में बौद्ध-धर्म के अनेक ग्रंथ हैं । बर्मा में मलंगवत्तु-नामक एक ग्रंथ विशेष प्रसिद्ध है। यह असल में एक पाली-ग्रंथ का अनुवाद है। इसमें वर्णित बुद्धचरित्र जातक-कथाओं में वर्णित चरित्र से बहुत कुछ मिलता है। इनके सिवा अन्य कई संस्कृत और पाली ग्रंथों के अनुवाद भी हुए हैं* ।

प्रवासीलाल वर्मा

'स्व' का साम्राज्य

की बड़ी महिमा है । सारे विश्व में 'स्व' की लीला हो रही है। सारी पढ़ाई-लिखाई, कमाई और कलह 'स्व' के लिये है। बड़े-बड़े ज्ञानी इसके लिये धूनी रमाते हैं ; बड़े-बड़े योगी इसकी खोज में हवा पीकर रहते हैं। राजनीतिज्ञ तो इसी के पीछे पागल बने फिरते हैं । इसके बिना संसार सूना है । 'स्व' अनेक स्वाँग रचता है । यह सारे संसार को अपने जादू से नचा रहा है । प्रेमी पाठको, आज हम आपके साथ 'स्व' के साम्राज्य में विचरण करेंगे ।

स्व-माता—माता की गोद में ! बस, स्वर्ग की ज़रूरत नहीं । यह तो निःस्वार्थ प्रेम का भांडार है । माता के निकट काना लड़का कान्हा है, कुपूत सुपूत है । जननी, तू पाप को धो बहानेवाली जाह्नवी है । तेरी शरण में ही अनंत शांति है; तेरी भक्ति ही अभय शक्ति है, तेरी स्मृति ही छिन्न जीवन-सूत्र का अंतिम छोर है। ज्ञानी, ध्यानी, योगी, यती, साधु, महात्मा, सब तेरा ऋण चुकाते-चुकाते मर गए। तेरी याद में मरना ही जीवित रहना और तुझे भूलकर जीना ही मरना है। तेरे बिना घर जंगल हो जाता है । तेरे समान पिता का भी मूल्य नहीं । तू आचार्यों का आचार्य है । माता, आशीर्वाद दे। तेरी प्रसन्नता ही मेरी विजय है ।

स्व-देह—अर्थात् अपना शरीर । यही सारी सिद्धियों का साधन है—सारे पुरुषार्थ का कारण है । परमात्मा की कारीगरी की यह अंतिम सीमा है । मनुष्य-शरीर से बढ़कर कोई दूसरी चीज़ ईश्वर भी नहीं बना सकता। शरीर नहीं, तो संसार ही सूना है । इसकी रक्षा विश्वामित्र कुत्ते का मांस खाकर करते हैं । यह किसी उद्दिष्ट स्थान तक जाने का मार्ग है । जो इसे ही उद्दिष्ट स्थान मान लेता है, उसकी बुद्धि दयनीय है । शरीर की रक्षा करने पर ही तो धर्म की रक्षा हो सकती है—दिल के सारे अरमान पूरे हो सकते हैं । धन-दौलत, मित्र, स्त्री और पृथ्वी को फिर से प्राप्त कर लेना बहुत कठिन नहीं है; परंतु यह मनुष्य-शरीररूपी अमूल्य रत्न एक बार खो जाने पर दुबारा फिर नहीं मिलता । असार होने पर भी इसमें बड़ा सार है ।

स्व-गेह—मेरा घर ! मेरी घास की कुटी ! इसके सामने चक्रवर्ती नरेशों के राजभवन तुच्छ हैं—इस पर गगनचुंबी अट्टालिकाएँ न्योछावर हैं । तुम्हारा घर इतना सुंदर नहीं—उसमें इतना सुख नहीं । देखो, मेरी झोपड़ी में कैसे अच्छे बाँस लगे हैं ! दरवाज़ों को मैंने खुद बनवाया है। पुरानी दीवारों को देखकर पूर्व-पुरुषों की याद आती है। ओह ! मेरा घर मेरे वंश का ऐतिहासिक क्रीड़ा-स्थल है । यदि वह मुझसे दूर हो, तो भी वह दूर नहीं है । जो जिसके हृदय में रहता है, उसका दूर होना क्या, और समीप होना क्या ! अपने घर में मैंने कई प्रकार की लहलहाती हुई लताओं को जीवन दिया है। मेरे हाथों के लगाए पौदे अब बड़े हो रहे हैं । वे अपने उन्नत-मस्तक से हर समय मेरा स्वागत करेंगे ।

स्व-ग्राम—मेरा निवास-स्थान अत्यंत ही रमणीय है। इंद्रपुरी इसके आगे फीकी है । इसमें कैसे-कैसे पेड़ लगे हैं ! एक छोटी-सी नदी भी पास है । वहाँ वनदेवी अपूर्व प्राकृतिक शोभा धारण करती है । बाल्य-काल में अपने साथियों के साथ मैं वहाँ खेलता था । पास के रसाल-वन में स्वच्छंदता से घूमने पर मेरा हृदय अनुपम आनंद प्राप्त करता था । वह बड़ा ही पावन स्थान है । तालाब के किनारे की सफ़ेद चट्टान बड़ी सुंदर थी। मित्रों के साथ

---

* 'पुरातत्त्व' से।

मैं उस पर बैठता था। तुम्हारे ग्राम में भी सुंदर वृक्ष होंगे, बड़ी-बड़ी नदियाँ होंगी। परंतु उसमें मेरे ग्राम की-सी सुंदरता कहाँ? क्या कहा? मेरा ग्राम ऊजड़ है? कोई हर्ज नहीं। वह दूसरे स्थानों की अपेक्षा मुझे अधिक प्यारा है। "अवध सरिस प्रिय मोहिं न कोऊ" उसे देखे विना मैं संतोष के साथ मर नहीं सकता। केवल एक बार—मरने के पहले एक बार—उस पावन स्थान का दर्शन अवश्य करूँगा।

स्व-भाषा—"अम्मा, मेले लिये पहली पुत्तक मँगा दे"—क्या ही मधुर वाणी की वीणा है! जब अबोध बालक आकर कहता है—"दद्दा, मैं तो बाल-कच्छा में बैथता हूँ," और "मैंने तो आज 'अ' और 'आ' पढ़ डाला है।", उस समय उसमें जो अपूर्व दिग्विजय का भाव भरा रहता है, उसकी महत्ता वीर सेनापति के विजयोल्लास से कहीं अधिक होती है। संसार में ऐसा कोई बच्चा नहीं, जो अपनी माता के दुग्धामृत के साथ अपनी भाषा—मातृ-भाषा—का पान न करता हो। वह इस भाषा में जितनी जल्दी समझ और बोल सकेगा, उतनी जल्दी दूसरी भाषाओं में नहीं। बड़े होने पर वह जब अन्य भाषाओं पर अधिकार प्राप्त करना चाहता है, तब उसका कार्य मातृ-भाषा द्वारा विचार करने पर ही उत्तमता से चल सकता है। जन्मदात्री माता से मातृ-भाषा का महत्त्व कम नहीं।

स्व-वेश—मैं तो भारतीय हूँ। मेरा देश दरिद्र है। यदि वह एक धोती और कुरता दे सके, तो इस पंच-तत्त्व के पुतले का आवरण तयार हो जाता है। साफ़ा और पगड़ी ही हमारी इज़्ज़त का ख़ज़ाना है। सुखी और संपन्न भारतवर्ष पर तो लँगोटी ही ने राज्य किया था। आवश्यकताओं को कम करना हमारा प्राचीन आदर्श है। सादगी तो इस असभ्य (?) देश का सिद्धांत है। इसे जापान की टोपी और विलायती हैट की ज़रूरत ही नहीं। शिवाजी के सिर पर ज़रा टोप लगाकर तो देखिए, कैसा मालूम होगा! महाराणा प्रताप को पैंट कौन पहनावेगा? अकबर की अचकन कौन छीन सकता है? देखिए, वेश का प्रताप कितना बड़ा होता है; संडे-मुसंडे केवल गेरुआ कपड़े पहनकर मौज उड़ाते हैं; ईसाई बनकर विदेशी पोशाक पहननेवाले अछूत से बड़े-बड़े अभिमानी पंडित भी हाथ मिलाते हैं; और नीच-से-नीच व्यक्ति भी धोती-पगड़ी हिंदुओं के मंदिर में सरलता से घुस सकता है।

स्व-अर्थ—तेरे श्रीचरणों में संसार सिर झुकाता है। तू निराशा की आशा, मुर्दे का जीवन, अँधेरी रात और भयंकर जंगल का साथी और अखिल विश्व का परम मंत्र है। तेरे लिये प्रीति करना "सुर-नर-मुनि की रीति" है। मिट्टी का शरीर तुझसे गति पाकर संचालित होता है। जो मूर्ख तुझे ठीक-ठीक नहीं पहचानता, जो तेरी यथोचित भक्ति नहीं करता, वह मरेगा—जल्दी ही मरेगा। तू ही सच्चा परमार्थ है। जो शुष्क वेदांती पिता धन-संग्रह नहीं करता, उसके पुत्रों को पिता के पाप का प्रायश्चित्त करना पड़ता है। तूने कुत्ते को दुम हिलाना सिखाया है। तुझे रिझाने के लिये ख़ुशामद आज तक जी रही है। योगी तेरा ध्यान लगाता है। उसे भजन में तेरी तान सुनाई पड़ती है। व्याख्यान तेरे गुण गाता है। राष्ट्रीयता तेरा अभिमान कर रही है। मानवी और दानवी आंदोलनों का प्रेरक तू ही है।

स्व-अभिमान—तू तक़दीर की तदबीर, ग़ुलामी के मर्ज़ की दवा और स्वावलंबन का पिता है। तेरे भक्त दुम हिलाना, बंदर की तरह नाचकर रिझाना, और भिक्षावृत्ति से जीना नहीं जानते। तूने सिंह को सिखला दिया है कि भूख से मरने का अवसर आने पर भी वह सूखी घास न खाय। एक म्यान में दो स्वाभिमानी तलवारें नहीं रह सकतीं। तू सब गुणों का भूषण और सारी सफलताओं की कुंजी है। लोग कहते हैं, ज़माना आप ही बदलता है; परंतु तेरे जीव ज़माने को भी बदल देते हैं। तू अछूत एकलव्य को महारथी अर्जुन का समकक्ष—नहीं, उनसे भी बढ़कर—बना सकता है; तू नंगे बालक में अचल ध्रुव का निर्माण कर सकता है। तेरी आन निभानेवाला दुर्योधन मरते समय भी वैरी भीम से प्राणों की भिक्षा माँगकर नहीं जीना चाहता।

स्व-देश—मेरा देश! इसमें तो मेरी पूज्य माता रहती है। इसी में मेरी प्यारी कुटी है। यहीं तो मेरा मनोरम ग्राम है। यहीं तो मैंने यह अनुपम शरीर पाया है। यहीं मैं पढ़-लिखकर छोटे से बड़ा हुआ हूँ। आराध्य देव! तू सब धर्मों का धर्म और सब देवतों का देवता है। मैं जिन विभूतियों की भक्ति करने में अपने को धन्य समझता हूँ, वे तेरी सेवा करने के लिये आई थीं।

तेरे लिये सूर्यवंशी प्रताप फ़ाक़ेकशी करते और छत्रपति शिवाजी जंगलों में भटकते हैं। तेरे लिये, तेरी गोद में, सैकड़ों 'तिलक' मर मिटेंगे, और हज़ारों 'गाँधी' पैदा होंगे। पतिप्राणा देवियाँ तेरे लिये विधवा होने को तैयार हो सकती और वीर माताएँ अपने इकलौते बेटे को तेरी वेदी पर बलिदान कर सकती हैं। तू ही रामायण और गीता है। तेरी धूल ही प्रभु-मिलन है। तेरे भक्तों की मृत्यु ही मनुष्यता का जीवन है। तेरा अनिश्चित वियोग ही नरक की पीड़ा है। तुझसे रूठनेवाली कविता ही व्यभिचारिणी स्त्री है। तेरा द्रोह आत्महत्या है। तेरे लिये मिट जानेवालों की समाधि ही गंभीर इतिहास है। तेरा आशीर्वाद ही अमरता है। तेरा विशाल वक्षःस्थल ही अंतिम निद्रा का सुयोग्य स्थान है। मरते हुए तेरी सेवा के लिये फिर जन्म लेने की वासना ही मोक्ष है।

स्व-राज्य—*मैं कमाऊँ, और तू खाय ? यह हो ही* नहीं सकता। मेरा नौकर तेरा काम करे ? यह होने ही न दूँगा। मेरी बात न सुनोगे, तो तुम्हें पैसा लेने का अधिकार ही न रहेगा। मैं अब बड़ा हो गया, मुझे अपने घर का हानि-लाभ सूझता है। मैं अपने भाग्य का फ़ैसला अब खुद कर सकता हूँ। मैं अपना घर आप सँभाल सकता हूँ। अपने घर पर मैं राज्य करूँगा। मुझे किसी पर विश्वास नहीं। विश्वास की चर्चा ही व्यर्थ है। तुम मुझ पर विश्वास करते हो, तो क्या मुझे अपने घर का स्वामी बना दोगे ? तुम्हारी और मेरी सभ्यता में, वेश-भूषा में, और आचार-विचार में बड़ा अंतर है। तुम मुझमें विलीन होना न चाहोगे, और मैं तुममें घुल-मिल नहीं सकता। तुम तुम ही रहोगे, और मैं मैं ही। 'तुम' और 'मैं' एक नहीं, दो हैं।

स्व-तंत्रता—स्वतंत्रते, तू देवी है, काली है, जगन्माया है। तेरा पावन दर्शन ही मनुष्यता का ध्येय है। तेरे प्रेम के समान बल बिजली में भी नहीं; तेरी लहर की प्रबलता नदियों के भीम वेग में भी नहीं; तेरे बहिष्कार की पीड़ा वज्राघात में भी नहीं। तेरे गुलामों का नाम मुर्दा है। तेरे निर्बल भक्तों का गिर पड़ना ही वीरता की पाठशाला है। तेरा वत्सलता-पूर्ण अंक दीनों का आश्रय, विद्वानों का मंदिर; योगियों का आधार और मुमुक्षु जीवों का तीर्थ-स्थान है। तपस्या आँखें मूँदकर तेरी मंजुल मूर्ति को देख रही है। सिंहवाहिनी देवि, बलिदान ही तेरा आवाहन है—आत्मयज्ञ ही तेरी पूजा है। तू इतिहास के सड़े पत्रों का प्राण, सारे ज्ञान का मस्तिष्क, तपस्वियों की माला के दानों को गूथनेवाला धागा और चंचल मन की अंतिम दौड़ है।

स्व-धर्म—कुछ न पूछिए, इसका स्वाद जाननेवाले बिलकुल पागल होते हैं। शराब में इतना नशा नहीं, व्यभिचार में ऐसी उन्मत्तता नहीं, जैसी अपने धर्म की अटल भक्ति में। अपने व्रत के लिये मर मिटनेवाले अमर कहलाते हैं। स्व-धर्म, तू ही तो ईश्वर है। तेरे दरवाज़े पर मोक्ष बँटता है। शांति तेरी दासी है। सुख तेरी मुसकिराहट है। तेरे भक्तों के साथ, शेष-शय्या छोड़कर, विष्णुभगवान् जंगल और पहाड़ों में भटकते रहते हैं। तू कृष्ण और अर्जुन को भी आपस में लड़ा सकता है, परशुराम से माता की गर्दन कटा सकता है, और राम के सामने *राजा दशरथ के प्राण-त्याग का भीषण नाटक करा सकता* है। तू सारे सत्कर्मों का मर्मस्थान है। राम तेरा काम बजाते हैं; पैग़ंबर तेरा पैग़ाम लेकर आते हैं; ईसा तेरे लिये पीसा जाता है; और गीता तेरे लिये गाई जाती है।

स्व-रूप—*मैं कौन हूँ ? मैं क्या कर सकता हूँ ? मैं* क्या नहीं कर सकता ? क्या मेरा शरीर 'मैं' है ? इन्हीं बातों को समझने के लिये सारा बखेड़ा होता है। जो अपने 'मैं' को पहचान लेता है, वह सब कुछ समझ सकता, सब कुछ कर सकता है। 'मैं' को भूल जानेवाला कुछ नहीं कर सकता। महावीर हनुमान्जी की बुद्धि और बल की कोई सीमा न थी। परंतु समुद्र के पार जाने की आज्ञा *मिलने पर उनकी हिम्मत न हुई। क्यों ? वह अपने 'मैं'* को भूल गए थे—उन्हें आत्म-विस्मृति हो गई थी। जब जांबवान् आदि बड़ों ने उन्हें आत्मबोध कराया, उनको 'मैं' की शक्ति का स्मरण दिलाया, तब वह एक ही छलाँग में समुद्र के उस पार कूद गए। अपनी शक्ति को न पहचानकर भूल जाना ही मृत्यु है, और उसको ठीक-ठीक समझ लेना ही अनंत शक्ति। अपने 'मैं' को जान लेनेवाला *'नर से नारायण' हो सकता है।* अर्जुन-सरीखे वीर को 'मैं' ने मोह में डाल दिया था। श्रीकृष्ण-जैसे सद्गुरु के मिलने से वह अपने रूप को समझ सके। 'मैं' की करामातों को जान लेने पर शूद्र और स्त्री, बड़े और छोटे, सब जीवन्मुक्त हो जाते हैं। किंतु गुरु के बिना इसका ज्ञान नहीं होता। इसीलिये गुरु ब्रह्मा, विष्णु और

महेश्वर से बढ़कर समझा जाता है। भारतवासी 'स्व-रूप' को भूल गए हैं। उन्हें अपने इतिहास का, पूर्व गौरव का, प्रबल शक्ति का स्मरण नहीं है। अपने रूप को समझ लेनेवाला तुरंत बंधन-मुक्त और स्वतंत्र होकर बड़े-से-बड़े काम कर सकता है। अपने रूप को भूल जाने पर आत्म-विश्वास नष्ट होता और बुद्धि तथा शक्ति बेकाम हो जाती है।

प्रिय पाठको, 'स्व' ही ज्योति और ब्रह्म है। इसका ज्ञान ही आत्मदर्शन, मोक्ष और अमरता है। विशुद्ध 'स्व' की पूजा ही ईश्वर की भक्ति है। स्वजाति की शरण में बड़ी निर्भयता है; स्वमित्र के मिलन में परम आनंद है; स्वपक्ष के आश्रय में स्थायी सबलता है। खोज करने-वाले 'स्व' को ढूँढ़ने की धुन में हैं। 'स्व' को न जाननेवाले इस तरह स्वाहा हो गए हैं कि उनका पता लगाने में पुरा-तत्त्ववेत्ताओं का दिमाग़ थककर घबरा जाता है। इसको भूल जानेवाले लोग इस संसार को असार कहते हैं। 'स्व'—स्व ही इस संसार का सार है। इसे न जानने से अंधकार है, और इसके उत्तम ज्ञान से ही बेड़ा पार है।

मावलीप्रसाद श्रीवास्तव

अनुमोदन

(१)

तात, तुम भूल गए थे राह !
निज मन-कृत मग से जाते थे, बिसर गया मम नाम;
तन-मन से श्रम करते दिन-भर, रात्रि समय विश्राम।
याद था तुमको हास-विलास,
जगत् में मन ने किया निवास,
हो गया भ्रम पर दृढ़ विश्वास,
पूर्ण सदा होती रहती थी, चंचल चित की चाह!
तात, तुम भूल गए थे राह !

(२)

उस अवसर पर मैं आया था, देने तुमको ज्ञान;
'नयन'-मार्ग से दर्शन देकर, फिर हो अंतर्द्धान।
चित्त में संभ्रम किया महान,
कौन था, हुआ न तुमको ज्ञान,
मुझी को समझा, भूल, निदान,
फिर मन दिया जगत् को तुमने, पुनः किए निज काम।
न जाना—कैसे होते राम ?

(३)

कुछ दिन बाद पुनः मैं आया, रख नारी का रूप;
कुछ दिन प्रेम-पाठ सिखलाया, छीना हृदय अनूप।
ले गई छलना, छल से आप,
दे गई तुमको भीषण ताप,
छुट गया सब आलाप-कलाप,
जग के काम-काज सब छूटे, मन हो गया अधीर !
हृदय में उठी विरह की पीर !

(४)

तुम्हें फ़क़ीर कर दिया मैंने, छुड़ा दिया घर-बार;
नगरों में, वन में, तुम खोजो, किंतु न पाया पार।
दूर थी भूक, दूर थी प्यास,
सदा रहता था चित्त उदास,
निरखते नयन बिलख आकास,
एक तार का स्वर अति मध्यम, शब्द हो गए बंद !
निरखकर मिला मुझे आनंद !

(५)

अब की बार मिली तन भीतर, आत्मयोग की राह;
नाम 'आत्मा', छवि राधा-सी, मुझको तेरी चाह।
कहाँ तुम रहे, कहो हृदयेश,
सहाए मुझको कितने क्लेश,
परम अद्भुत है मेरा वेश,
जिस पर तुम मोहित फिरते थे, वह ही हूँ मैं नाथ।
न छोड़ो प्रियतम मेरा साथ !

(६)

जब-जब मिली, मिली थी मैं ही, करना दृढ़ विश्वास;
सुधा-सलिल वाणी में होकर, मैंने किया विलास।
नयन में झलकी मेरी कोर,
नचाया मैंने ही मन-मोर,
जताया मैंने ही निज ज़ोर,
तन की चाह छुड़ाई तेरी, रक्त-मांस का पिंड !
मुझे लख, तज माया का पिंड।

(७)

छलियों को छलती हूँ छल से, छलना मेरा काम;
छल का बल ही संग सदा है, मैं राधा, मैं श्याम
प्रेम-वश फेरा तेरा चित्त,
कामनाओं से किया निवृत्त,
आत्मा में कर लिया प्रवृत्त,

सम्मुख सदा रहें हम दोनों, यही प्रेम-व्यवहार !
करो दुखियों का कुछ उपकार ? *

"नयन"

भारत के हिंदू और मुसलमान

हिंदू-साम्राज्य नष्ट हो जाने पर हिंदू-जाति की क्या-क्या दुर्दशा हुई, इसका स्मरण करने से ही इतिहासज्ञ हिंदुओं का हृदय विदीर्ण होने लगता है। धन-धान्य और संपत्ति के साथ विदेशियों ने हमारे धर्म को भी नष्ट करके हमें अपने स्वरूप-ज्ञान से भी विहीन कर दिया। धन-धान्य की लूट हम पर उतना असर नहीं करती, जितना असर मंदिरों के भग्नावशेषों पर मसजिदें बनवाने ने किया है। काशी, मथुरा, वृंदावन, प्रयाग आदि समस्त हिंदू-तीर्थों पर एक-न-एक कम-से-कम ऐसी मसजिद ज़रूर ही देखने में आवेगी, जो हिंदू-मंदिर को तोड़कर बनवाई गई है। इन मसजिदों को जब कोई हिंदू देखता है, तब उसके मर्मस्थल में तीर-सा लगता है।

जिसे हम अपना प्राण, अपना सर्वस्व, अपना हृदयाधार समझते हैं, उसी को मुसलमान लोग कोरी मूर्ति समझकर तोड़ डालते हैं। जिसे हम धर्म समझते हैं, उसे उनके यहाँ अधर्म कहा गया है ! फिर कहो, एकता कैसे हो ? आपस में जिनका धर्म ही नहीं मिलता, हम कैसे मानें, वे हमेशा एकसाथ भाई-भाई होकर रहेंगे ? जिस मूर्ति में हम लोग ईश्वर के दर्शन करके सुखी होते थे, उन्हें वे 'कुफ़्', 'बुतपरस्ती' आदि कहकर हमें मारते, हमें जलाते, हमारी चमड़ी खिंचवाते, हमें जीते-जी चुनवा देते थे। वही क्रम अब फिर जगह-जगह जारी हो रहा है। फिर कहो, हमारी-उनकी कैसे पटेगी ? कट्टर मुसलमान हमारे मत के आदमी को देखकर जल जाते हैं। फिर कहो, उनका सद्भाव हमारे साथ कैसे स्थायी हो ? भगवान् की आरती में घंटा-नाद सुनकर मुसलमानों के द्वेष जाग जाते हैं ! विद्यार्थी लोगों के 'राम-नाम' का उच्चारण करते हुए उनकी मसजिद के सामने से गुज़रने से उनके 'खुदा' नाराज़ होते हैं। इसी बात पर वे जोश में आकर लाठियाँ चलाने लग जाते हैं। परंतु यदि कभी हमारी फ़रयाद उनके नेताओं को सुनाई जाती है, तो उस समय वे कान बंद कर लेते हैं ! भला बताओ तो सही, हम उनका कैसे विश्वास करें ? यदि इतिहास सत्य है, तो बताओ, कहीं भी मुसलमानों ने हिंदुओं से सद्भाव रक्खा है ? देख लो—जी चाहे जहाँ देख लो—"इतिहास की पुनरावृत्ति स्वयं हुआ करती है।"

हमारे धर्म में यह बात नहीं है। आर्य-धर्म एक अति विशाल धर्म है। उसका सिद्धांत यही है—

"आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ;
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।"

हिंदू-धर्म तो कहता है—

"रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां,
नृणामेकोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।"

ईश्वर के सब धर्म बराबर हैं। श्रीकृष्ण को गाली देकर मुहम्मद को भजना, सच पूछो तो, मुहम्मद का ही अपमान करना है। हिंदू-राज्य में कभी मुसलमानों पर जुल्म नहीं होता। इसका एक-मात्र कारण है, तो बस, केवल यही। इतने बड़े-बड़े हिंदू-सम्राट् हो गए, पर कभी किसी ने मसजिद की एक ईंट भी नहीं उखड़वाई। इतने हिंदू राजा हो गए ; परंतु कभी किसी ने भी मुसलमानों के धर्म-ग्रंथ का अपमान नहीं किया। इसके विरुद्ध मुसलमानों ने क्या किया, यह यहाँ कहने की कोई ज़रूरत नहीं। इतिहास के मर्मज्ञ जानते हैं—"इतिहास की पुनरावृत्ति स्वयं हुआ करती है।"

पानीपत का उदाहरण देना ही यहाँ यथेष्ट होगा। वहाँ मंदिर और मसजिद पास-पास ही हैं। ठाकुरजी की जब आरती होती है, तब घंटा तथा शंख की आवाज़ से मुसलमानों के अल्ला मियाँ जाग उठते हैं ! और, इससे हिंदू-मुसलिम अनबन उठ खड़ी होती है ! जिस क़ौम में इतनी सहनशीलता नहीं, वह अपने इन्हीं विधर्मियों से दोस्ती किस तरह करेगी ? ईश्वर साक्षी है, यदि कहीं मुसलमानी हुकूमत होती, तो आप कह सकते हैं कि वह मंदिर अभी तक अपनी इसी हैसियत से वहाँ बना रह सकता ? कभी

* मित्रवर पं० सुमित्रानंदन पंत के 'उच्छ्वास' पर कविवर 'विह्वल'जी के 'आश्वासन' का अनुमोदन।

—लेखक

नहीं। ऐसे प्रमाण हम कहाँ तक और कितने दें। पद-पद पर हमें ऐसे उदाहरण मिलेंगे ; क्योंकि इतिहास तो हमेशा साक्षी देता रहेगा न कि मुसलमानों ने इतने ज़ुल्म किए। केवल हमारे कहने से थोड़े कुछ होता है ; वहाँ तो—"इतिहास की पुनरावृत्ति स्वयं हुआ करती है।"

हम यहाँ पक्षपात नहीं करते। हम तो परिस्थिति आपके सामने रखते हैं। हमें न तो अँगरेज़ों से वैर है, और न अपने मुसलमान भाइयों से ही। परंतु सच्ची बात तो कहनी ही पड़ती है। यहाँ, बंबई में, पानीपत ही की तरह अँगरेज़ों का गिरजाघर और स्वामी नारायण का मंदिर, दोनों मिले हुए हैं ; और दोनों संप्रदाय के लोगों में यथायोग्य सद्भाव भी बना हुआ है। अँगरेज़ों ने कभी आरती का विरोध नहीं किया। देखिए—यह है अँगरेज़ों और मुसलमानों में भेद। अँगरेज़ अपने धर्म के पीछे कभी अंधा नहीं होता। वह सब बातों को पहले सोच लेता है, फिर काम करता है। कहो, अब हमें किससे सहानुभूति विशेष हो ? उस मुसलमान से, जो दूसरे का धर्म फूटी आँख भी नहीं देख सकता, या उस अँगरेज़ से, जो विधर्मी होकर भी हमारे धर्म को इज़्ज़त से देखता है ?

एकता कैसे हो ? जब मंदिर और मसजिद में इतना भारी विरोध है, तब हिंदुओं और मुसलमानों में सच्ची एकता कैसे हो ?

जिन बेज़बान, ग़रीब, किसी का कुछ भी न बिगाड़नेवाली, बल्कि परोपकारी, गउओं को हम अपनी मा समझते हैं, हमारे पवित्र पुराणों में जिनका यश गाया गया है, भगवान् आनंदकंद श्रीकृष्णचंद्र महाराज जिनके चरणों की धूल अपने श्रीमस्तक में लगाते थे, जिनको देश के प्रसिद्ध नेता अपने देश की बहुमूल्य संपत्ति समझते हैं, उनको मारना मुसलमान लोग अपना अनिवार्य धर्म समझकर अकारण वैमनस्य का बीज बो देते हैं। वे मन में यह समझते हैं कि गऊ हमें देश की आर्थिक दशा सुधारने में बड़ी सहायता देनेवाली है, फिर भी केवल हमारा जी जलाने के लिये, केवल हमें दुःखी देखकर सुखी होने के लिये, उन्होंने गोकुशी को अपने धर्म का अत्यंत आवश्यक अनुष्ठान मान रक्खा है। हमसे केवल लड़ाई मोल लेने के लिये ही ताज़िएदारी के समय और मसजिदों के सामने बाजे न बजने देने की नई ज़िद की जा रही है। भला कहो तो सही, इतने मुसलमानी राज्य दुनिया में हैं, कहीं भी ताज़िए निकलते हैं ? हिंदू-मुसलिम एके पर मर मिटनेवाले देशभक्तों को मौलाना मुहम्मदअली का, कोकोनडा-कांग्रेस का, भाषण ध्यान देकर पढ़ना चाहिए। उन्होंने कांग्रेस के बीच करोड़ों दिलों को ठुकराते हुए कह दिया—"गोमांस ग़रीब मुसलमानों के खाने में शामिल हो गया है। उसके बिना उनका काम चल नहीं सकता।" उनका काम गोमांस के बिना एक क्षण भी नहीं चल सकता ; पर अभागे हिंदुओं को उनकी मैत्री के बिना स्वतंत्रता मिलना असंभव प्रतीत होता है, और इसीलिये वे हर जगह लुटते, पिटते, मरते, अपमानित होते हैं। यही नहीं, वे अत्याचार का विरोध भी नहीं करने पाते। चारों ओर से आवाज़ आती है—"चुप रहो, चुप रहो, सब सहो, पर आह न करो—हिंदू-मुसलिम-एकता नष्ट हो जायगी !" हिंदू हानि उठाकर भी मुसलमान गुंडों के ऊपर से मुक़द्दमे उठा लेने को लाचार किए जाते हैं ! एकता का दम भरनेवाले भोले-भाले हिंदुओ, ज़रा इतिहास देखो, अनेक महात्मा यहाँ हो गए, पर ये दोनों जातियाँ हिल-मिल न सकीं। साहसहीन, निर्बल हिंदुओं और दुस्साहसी प्रबल उद्दंड मुसलमानों में मेल स्थायी करना कबीर, नानक-जैसे फ़क़ीरों की भी शक्ति के बाहर बात ठहरी ! यह तो तुम लोग भी निष्पक्षपात होकर देख सकते हो।

मुसलमानी दीन के अनुसार मुसलमानों के हृदय में कभी भारत के प्रति भक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती। उनका धर्म सर्वथा राष्ट्रीय नहीं है। उनके धर्म के अनुसार इस पृथ्वी के केवल दो ही भाग हो सकते हैं—एक तो दारुल इस्लाम, और दूसरा दारुल हरब। दारुल इस्लाम वह, जो मुसलमानी राज्यसत्ता में है, और दारुल हरब वह, जो उनकी राज्यसत्ता के बाहर है, और जिसको जीतना उन्होंने अपना धर्म समझा है। इसलिये यदि मुसलमानों के नेता मौलवी हैं, तो उनकी दृष्टि अवश्य ही हिंदुस्तान को मुसलमानी राज्य बनाने में लग रही है। यह बात अवश्य ही हिंदू-मुसलिम-एकता के पक्षपाती हिंदुओं को ध्यान में रखनी चाहिए।

साधारणतः—अर्थात् कुछ सज्जनों को छोड़कर—मुसलमान लोग सदा हमारे प्रति यही भाव रखते हैं कि हम उनके स्वाभाविक शत्रु हैं। जिस भूमि में वे

पैदा हुए हैं, जिसमें वे पल रहे हैं, और एक समय उनको जिस देश की मिट्टी में मिल जाना है, उससे प्रीति छोड़कर वे सात समुद्र पार बसे हुए देश टर्की और ईरान को अपना देश अब तक समझते हैं। कहो, फिर यह एकता कैसे हो?

मुसलमान भाइयो, सोचो तो, जिन्हें मनुष्य-मात्र आदर की दृष्टि से देखता है, जो हमारे घर की देवियाँ हैं, जो संसार की शोभा का केंद्र हैं, जो पुरुषों की जननी हैं, विश्व की शक्ति हैं, उन अबला हिंदू-स्त्रियों पर तुम बेहद जुल्म करते जा रहे हो। इस बीसवीं सदी में भी, अँगरेज़ों के शासन में भी, तुम मौक़ा पाते ही अपने कृत्यों से मुग़ल-शासन की याद दिला देते हो। धन-धान्य की लूट करके भी, हमारे मंदिरों को तोड़कर भी, तुम संतुष्ट नहीं होते। हमारी गृह-देवियों का सतीत्व नष्ट करने की बहादुरी दिखाते हो! पैशाचिक पाशविकता तुम्हें इतनी प्रिय है। तुम्हारे इन अत्याचारों का सिल-सिला कब तक चलेगा? स्त्रियों की लूट भारतवर्ष में ही, विशेष रूप से, मुसलमानों की तरफ़ से हुआ करती है। यह लूट भी हमारी जाति की आँखें न खोल सकेगी क्या? इस पर विशेष लिखना आवश्यक होने पर भी अधिक लिखा नहीं जाता। इतिहास जब तक विद्यमान रहेगा, तब तक इस भयंकर अत्याचार को सच्चे हिंदू न भूल सकेंगे। वे जब इतिहास खोलेंगे, तभी उनको लिखा दिखाई देगा—"मुसलमानों ने उनकी मा-बहनों का अपमान किया था।"

हिंदू-सम्राट् इतने बड़े-बड़े और प्रसिद्ध प्रतापी हो गए हैं; परंतु क्या कभी किसी ने सुना है कि अमुक हिंदू राजा ने अमुक मुसलमान महिला पर अत्याचार किया? हिंदुओं के लिये यह गौरव और गर्व की बात है। वीरवर महाराजा छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप, महाराणा राजसिंह आदि ने मुसलमान महिलाओं के प्रति जो दया तथा आदर का भाव दिखाया और उनसे जैसा सद् व्यवहार किया, वह हिंदुओं के लिये चिरस्मरणीय रहेगा। धन्य है हिंदू-सभ्यता! धन्य है हिंदू-धर्म! धन्य है हिंदू-जनता! हिंदुओ, ईश्वर से प्रार्थना करो कि तुम्हारे साथ चाहे जैसा दुर्व्यवहार किया जाय, तुम पराई मा-बहनों को अपनी ही मा-बहन समझ सको, और दूसरों के धर्मस्थानों का सम्मान कर सको।

आप पक्षपात-रहित होकर सोचिए—अँगरेज़ी और मुसलमानी राज्यों में, इस दृष्टि से, कौन अच्छा है? कौन राज्य, धार्मिक सहिष्णुता और समदर्शिता की दृष्टि से, हिंदुओं के हृदय पर अधिकार करने में विशेष सफल और लोक-प्रिय हुआ है? पक्षपात मत करो; तुम्हारा हृदय कहेगा—"अँगरेज़ी राज्य।" यह क्यों? इसी लिये कि अँगरेज़ों में और चाहे जो दोष हों, स्वार्थपरता हो, कूट राजनीति की चालबाज़ी हो, पर वे अन्य धर्म माननेवालों को सताते नहीं हैं। उन्होंने कभी हमारे धर्मग्रंथ नहीं जलाए। बल्कि ऐसे अनेक ग्रंथ बड़े आदर से ले जाकर पुनः प्रकाशित किए हैं, जिनको हमने निकम्मा समझकर रद्दी में डाल रक्खा था। उनका यह उपकार चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने कभी हमारे मंदिरों को तोड़कर गिरजाघर नहीं बनाए। उन्होंने कभी हमारी कुलदेवियों पर अत्याचार कर उन्हें नहीं सताया। आज यह उन्हीं की न्याय-निष्ठा का फल है कि हम लोग अपनी बहू-बेटियों को बाहर निकाल सकते हैं। आज उन्हीं के राज्य में हमें यह स्वाधीनता प्राप्त है कि हम अपने मंदिरों में घंटा और शंख बजा सकते हैं। पक्षपात मत करिए। अँगरेज़ लोग मनुष्य से मनुष्य का संबंध जानते हैं। वे सभ्य हैं।

अंत में यह भी कह देना उचित समझता हूँ कि हिंदू-मुसलिम-एकता के विरुद्ध मुझे न समझिएगा। मगर जिस ढंग से आज यह एकता की जा रही है, वह मुझे ठीक नहीं जँचता। यदि आपको मुसलमानों से वास्तविक मैत्री करनी है, तो पहले अपना सुदृढ़ सर्वांगीण संगठन करिए। अपने सभी वर्गों में सहानुभूति और साम्य का प्रबल प्रचार करिए। समाज की कुरीतियाँ नष्ट कर उसे निष्कलंक बनाइए। अपने में शक्ति पैदा करिए। तभी दोनों जातियों में मैत्री होगी। निर्बल और सबल की मैत्री कभी नहीं निभी। स्वयं सहयोग-पूर्वक एक न होकर मुसलमानों से मेल करने में जयचंद, राणा साँगा तथा भीमदेव की क्या दशा हुई, यह इतिहासज्ञ पाठकों से छिपा नहीं है। यहाँ उसके कहने की कोई ज़रूरत नहीं है।

इस हिंदू-संगठन के लिये प्रधान आवश्यकता है धन की। हमारे धनिक नेता यदि इस ओर थोड़ा-सा भी ध्यान दें, तो यह पूर्ण हो जाय, इसमें संदेह नहीं। हमारे धर्म में धन किसी तरह सर्वोच्च स्थान नहीं पा सकता।

हिंदू लोग चिरकाल से भोग-विलास के विरोधी रहे हैं। संयम-साधना ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य है। हिंदुओं की रक्षा करना ही हिंदू का धर्म है। हिंदू धनिकों को निश्चय कर लेना चाहिए कि वे अपने सुख के लिये धनोपार्जन नहीं करते। उनका तो धनोपार्जन हिंदू-मात्र की उन्नति और सहायता होना चाहिए। ऐसे संकट के समय यदि हिंदू ही हिंदू की रक्षा न करेगा, तो और कौन करेगा? यदि जगत् में हिंदू-जाति को जीवित रखना है, तो आइए, इस कार्य में सच्चे आर्य की तरह तन-मन-धन से लग जाइए। हिंदुओं की उदारता, उनकी परहित-कामना तथा उनका औदार्य जगप्रसिद्ध है। आज उसकी याद दिलाने की कोई आवश्यकता नहीं।

श्रीव्रजनाथ-रमानाथ शास्त्री

इमली और उसकी उपयोगिता
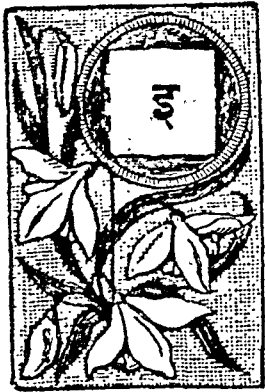
इमली और उसके वृक्ष से भारतवर्ष में ऐसा ही कोई मनुष्य होगा, जो परिचित न हो। इसका वृक्ष बहुत बड़ा और सर्वदा हरा बना रहता है। इसकी ऊँचाई ८०-९० फ़ीट तक होती है। यह भारतवर्ष-भर में बहुतायत से होता है। कहीं-कहीं, जैसे जंगलों और ऊसरों में, यह स्वयं उपज आता और कहीं-कहीं सड़कों और वाटिकाओं में छाया के लिये लगाया जाता है। इसमें अनावृष्टि के समय में भी उसी बहुतायत से फल लगते हैं, जैसे सुकाल के समय। ऐसा कहा जाता है कि इमली के वृक्ष को परिपूर्ण होने के लिये १२ या १३ वर्ष लगते हैं। बहुत-से मनुष्यों को ऐसा विश्वास है कि इमली का वृक्ष पास रहने से मनुष्यों के स्वास्थ्य पर अच्छा असर नहीं पड़ता। यही नहीं, बल्कि कुछ लोग ऐसा भी ख़याल करते हैं कि उसमें भूत-प्रेतों का निवास रहता है। फिर भी उसका प्रत्येक भाग मनुष्यों के अनेक कार्यों में आता है, इसलिये उसकी ओर मनुष्यों को ध्यान देना उचित है। ज्येष्ठ तथा आषाढ़ के महीने में इसमें फूल लगते हैं, जिनमें मधुमक्खी बहुत लगती हैं, और फल फाल्गुन तथा चैत्र में पक जाते हैं। इसके फल तीन प्रकार के होते हैं, और उनके अनुसार वृक्ष भी तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। पहली श्रेणी में खट्टे फलवाले वृक्ष रक्खे गए हैं, दूसरी में मीठे फलवाले और तीसरी में लाल फलवाले। लाल फलों का मूल्य अन्य फलों के मूल्य से अधिक होता है, और ये ही फल जब बहुतायत से प्राप्त होते हैं, तब भरकर रख लिए जाते हैं।

इसी लाल फल से ही कानपूर की विख्यात ऊलनामिल्स कंपनी ने अपना नाम "लाल इमली" रक्खा है।

इमली का वृक्ष सदा बीज से उत्पन्न होता है। इसकी क़लम नहीं लगती। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है, इसलिये पहिए, मुँगरियाँ, तख़्ते, विशेष करके गन्ने और तेल के कोल्हू इसी की लकड़ी से बनवाए जाते हैं। जब बहुत गरमी अथवा आँच की आवश्यकता होती है, तब ईंधन के लिये इस लकड़ी का बड़ा मान किया जाता है। इसकी लकड़ी का कोयला बारूद बनाने के लिये बहुत अच्छा होता है। उपर्युक्त गुणों के कारण इमली के कोयले का मूल्य अन्य कोयलों से अधिक होता है।

इमली की पत्ती भी बेकाम नहीं जाती। कहीं-कहीं मनुष्य इन पत्तियों को मिलाकर कढ़ी, भाजी इत्यादि खाद्य पदार्थ तैयार करते हैं। इसकी पत्तियाँ औषधि-रूप में भी रोग-निवारणार्थ सेवन

की जाती हैं। इनका प्रयोग कपड़ों की रँगाई में भी होता है। जब कपड़ों को नील, कुसुम इत्यादि रंगों से रँगना होता है, तब कपड़े के रेशों पर रंग जमाने (mordant) के लिये इनका प्रयोग होता है। इनका इस्तेमाल मकान बनाने के काम में भी होता है। कच्ची दीवारों पर मिट्टी के साथ इन पत्तियों को सड़ाकर लेप कर देने से दीवार मज़बूत हो जाती है, और लोना इत्यादि नहीं लगता।

इमली के फल सबसे अधिक उपयोगी हैं। वे लंबी चपटी फली के रूप में होते हैं। उनकी लंबान ३ से ६ इंच तक होती है। इमली के फलों को तीन भागों में विभक्त करना चाहिए—एक छिलका, दूसरा गूदा और तीसरा बीज। छिलका तो केवल ईंधन के काम में आ सकता है, पर उसके जलाने से जो राख रह जाती है, उसमें एक प्रकार का क्षार होता है, इस कारण उसको अन्य औषधियों के साथ कई रोगों में देते हैं। इमली के बीज को चियाँ कहते हैं। ये छूने में अति चिकने और देखने में सुंदर काले होते हैं। खाने में इनका स्वाद खराब नहीं, बल्कि सोंधा होता है। इसलिये ग्रामवासी इनको उबाल-उबालकर अथवा भूनकर निमक-मिर्च के संग बहुधा खाया करते हैं। ये क़ाबिज़ होते हैं, और इनकी पुल्टिस बनाकर फोड़ों के ऊपर बाँधी भी जाती है। ऐसा कहा जाता है कि बीज में ही वृक्ष रहता है। इमली का बीज इस बात का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। यदि कोई इमली का बीज, जो सब प्रकार से पूर्ण हो, बीचोंबीच से तोड़कर देखे, तो उसके भीतर एक वृक्ष सूक्ष्म रूप में दिखाई देगा।

इमली के बीज में, बहुत थोड़ी मात्रा में, एक प्रकार का तेल रहता है, जिसका कोई उपयोग अभी तक नहीं हुआ। इमली के बीजों को पीसकर पानी और थोड़े सरेस के संग खौला देने से एक प्रकार की लेई बन जाती है, जो लकड़ी के टुकड़ों को बड़ी मज़बूती से जोड़ देती है। इमली के फल के तीनों भागों में गूदा सबसे अधिक उपयोगी है। केवल गूदे ही के लिये व्यापार में इमली के फलों का बराबर व्यवहार हुआ करता है। भारतवर्ष में उसकी बिक्री खाने-पीने के लिये तो सदा हुआ ही करती है, इसके अतिरिक्त वह यहाँ से योरप को भी बहुत भेजी जाती है। ट्रॉपिकल एग्रीकलचर-नामक एक पत्र लिखता है कि इटली में इमली के लिये एक नया बाज़ार खुल गया है। वहाँ शरबत तथा मिठाई बनाने के लिये इसकी माँग बनी रहती है। उसी पत्र के अनुसार, एक जवान वृक्ष से प्रति वर्ष ३५० पौंड अर्थात् लगभग ४¼ मन फल मिलते हैं। इन सवा चार मन फलों में २½ मन के लगभग गूदा होता है, अर्थात् इमली में ५७ फ़ी सैकड़ा गूदा रहता है। इसलिये इमली के फल में सबसे बड़ा भाग गूदे का होता है। गूदा विशेष करके शक्कर और टारटारिक एसिड (एक प्रकार का अम्ल अथवा तेज़ाब) का बना हुआ होता है। शक्कर लगभग ३० से ४० फ़ी सैकड़ा तक रहती है, और टारटारिक एसिड ८ से १५ फ़ी सैकड़ा तक होता है। इन्हीं दो वस्तुओं—शक्कर और तेज़ाब—के अस्तित्व के कारण इमली का गूदा मीठा और खट्टा अर्थात् खटमिट्ठा होता है, और इसी लिये मनुष्य शरबत, चटनी, अचार इत्यादि के रूप में उसका इस्तेमाल करते हैं। परंतु अभी तक इसका उद्योग-धंधों में कोई उपयोग नहीं हुआ।

अभी थोड़े दिन हुए, बँगलोर के सडवरो और

वृद्धाचलम् महाशयों ने इमली से टारटारिक एसिड बनाने की एक विधि निकाली है, जिसको उन्होंने बँगलोर के वैज्ञानिक विद्यालय के समाचार-पत्र (Journal of the Indian Institute of Science, Vol. 3, Part V.) में प्रकाशित किया है। इस प्रयोग में उनको तीन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। एक तो इमली के रस को छानना, जिसको उन्होंने एक यंत्र द्वारा—जिसको अँगरेज़ी में आटोक्लेव (Autoclave) कहते हैं—दूर किया था ; दूसरे रस को साफ़ करना और उसका रंग उड़ाना, जिसको उन्होंने कई रासायनिक पदार्थों द्वारा हल कर दिया ; तीसरे जो कुछ गूदे का हिस्सा टारटारिक एसिड निकालने के बाद रह जाता है, उसका किसी औद्योगिक कार्य में उपयोग करना। इस तीसरे और शेष कार्य को उन्होंने दूसरों के लिये छोड़ दिया है।

टारटारिक एसिड निकालने के बाद जो कुछ गूदे का भाग रह जाता है, उसकी रासायनिक जाँच करने से मालूम हुआ कि उसमें सबसे अधिक हिस्सा शकर का रहता है। उसका रूप शीरे के समान होता है, और वह शीरे के स्थान में काम भी दे सकता है। शीरा अधिकतर दो कामों में आता है। एक तो उसको तंबाकू में मिलाकर पीनी तंबाकू बनाते हैं। दूसरे उससे शराब अथवा स्प्रिट बनाई जाती है। इसी प्रकार इमली की तलछट, जो टारटारिक एसिड के निकालने के बाद रह जाती है, उसका भी पीनी तंबाकू में इस्तेमाल कर सकते अथवा उससे स्प्रिट बना सकते हैं।

मदरास के मार्सडन साहब ने पहले इमली के गूदे को पानी के संग सड़ाकर उससे अलकोहल अर्थात् स्प्रिट बनाई। उसके बाद जो कुछ रह गया, उससे टारटारिक एसिड बनाया। इन्होंने गूदे के १०० भाग से १० से १५ सैकड़ा तक अलकोहल बनाया, और हिसाब लगाकर यह बतलाया कि इमली से टारटारिक एसिड और अलकोहल बनानेवाले को ३०) फ़ी सैकड़ा फ़ायदा हो सकता है। इस विधि का विस्तार-पूर्वक वर्णन मदरास के औद्योगिक विभाग के बुलेटिन नं० ४ में प्रकाशित हो चुका है।

परंतु मार्सडन साहब की विधि के अनुसार जब अलकोहल बनाया जाता है, तब उतना नहीं बनता, जितना बनना चाहिए। इसलिये संयुक्त-प्रांत के कृषि-विभाग के कर्मचारी बाबू लक्ष्मीशंकर निगम एल्० ए० जी० और बाबू मन्नालाल खरे ने लेखक की आज्ञा के अनुसार कुछ तजुरबे किए, जिनसे मालूम होता है कि अलकोहल १०से १५फ़ी सैकड़े के स्थान में १६ फ़ी सैकड़ा तक बनाया जा सकता है। इसलिये इमली से टारटारिक एसिड और अलकोहल बनानेवालों को और भी अधिक लाभ हो सकता है, जो लगभग ३५) से ३८) सैकड़ा तक होगा। टारटारिक एसिड और अलकोहल का अनेक कार्यों में उपयोग होता है। टारटारिक एसिड तो भारतवर्ष में बनता भी नहीं। हर साल, बाहर से, दो लाख से पाँच लाख रुपए तक का, आता है।

टारटारिक एसिड अधिकतर कपड़े रँगने और छींट छापने के काम में आता है। इसका प्रयोग ओषधि-रूप में तथा ख़मीर बनाने में भी होता है। सोगलेमानेड वाटर के बनाने में टारटारिक एसिड का इस्तेमाल होता है।

अलकोहल को मनुष्य अनेक प्रकार से पीने के काम में ही लाता है। यह पेसा कुछ उचित काम नहीं समझ पड़ता। परंतु वैज्ञानिकों ने इसी

अलकोहल को इतने अधिक व्यवसायों में लगाया है, जिनकी गणना नहीं की जा सकती। यह मोटरों और लैंपों में जलने के काम में आता है। ईथर, क्लोरोफ़ार्म, सिरका, एसिटिक एसिड, बनावटी एनीलाइन के रंग, सेलिलौइड, क्लोडियन, भक से उड़नेवाली चीज़ें, पारदर्शक साबुन, नक़ली कपूर, नक़ली रेशम, अनेक ओषधियाँ, फ़ोटोग्राफ़ के घोल, ओंगने के नक़ली स्निग्ध पदार्थ, लकड़ी के पालिश, वारनिश, रोग़न, तामचीनी इत्यादि बनाने के काम में हज़ारों मन अलकोहल रोज़ ख़र्च हुआ करता है। इसलिये इमली से यदि टारटारिक एसिड और अलकोहल बनाया जाय, तो भारत में एक नया उद्योग-धंधा खड़ा हो जाय, और एक वस्तु जो यहाँ पर अधिक परिमाण में होती है, जिसका उपयोग खाने-पीने के अतिरिक्त और किसी काम में नहीं होता, जिसका अधिक भाग भड़भूजे के भाड़ में जलाने के काम में आता अथवा यों ही नष्ट हो जाता है, वह बाज़ार में बड़े काम की चीज़ हो जाय, उससे अनेक भारतवासियों को अधिक लाभ होने लगे। इसलिये धनवानों को ऐसे नए आविष्कारों की ओर ध्यान देना और भारतवर्ष में नए-नए उद्योग-धंधे खोलना चाहिए। कारण, यह मानी हुई बात है कि जिस देश में जितने ही अधिक उद्योग-धंधे होते हैं, वह उतना ही अधिक उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ होता है।

हरनारायण बाथम

सभ्य व्यवसाय

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महत्तो]
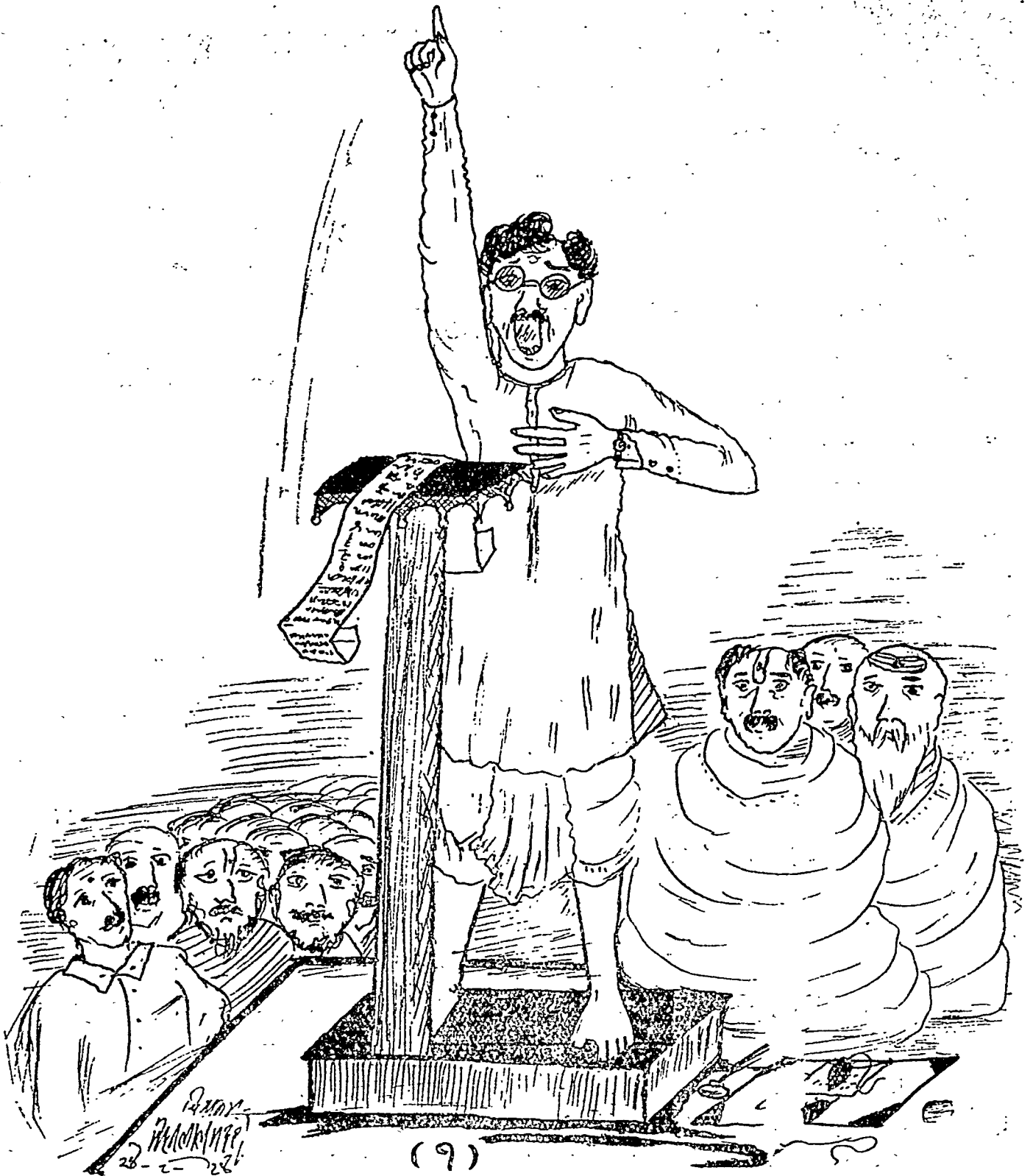
(१)

पं० देशोद्धारक शर्मा व्याख्यान-मंच पर चिल्लाकर कह रहे हैं—श्रीमन् ! आज चंदा करने पर आप लोगों की ओर से एक सहस्र मुद्रा 'तिलक-स्वराज्य-फ़ंड' में मिलीं । अब प्रचार-कार्य मज़े में चलेगा । इत्यादि—
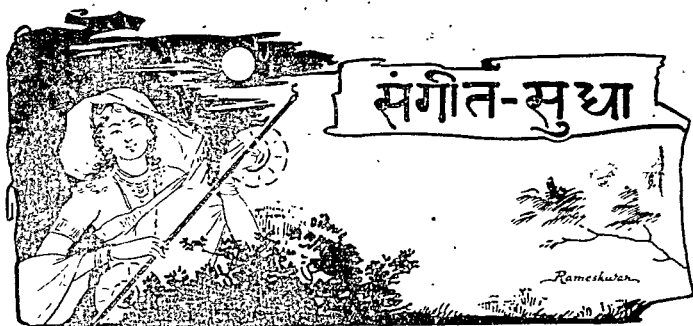
[शब्दकार और स्वरकार—श्रीयुत सर्वसुख गोस्वामी

राग दुर्गा—ताल रूपक

जगदंबे कृपा कर दे।
तव पदपंकज में महि को अटल भक्ति दे।
आनंदकरणि, कलि-मलहरणि, सेवक को सुमति दे ॥ १ ॥
पाप से दूरकर, सुख भर पर कर अंत समय शुभ गति दे ॥ २ ॥

ऋ ध(+) सा ऋ प ऽ ऽ ध प ध म ऋ ऽ ऽ

पूरी स्थायी

ऋ ऽ	प प	ऋ ऋ	ऋ सा	ऽ सा	=सा =सा	ऽ प ध
=सा =ऋ	=ऋ ध	ऽ प	ध =सा	— =ऋ	ध म	ऋ —

पहला अंतरा

म म	प ध	=सा =सा	=सा =ऋ	=म =ऋ	=सा =सा	=सा =सा
ध =सा	प ध	म ऽ	प ध	=सा —	=ऋ ध	म ऋ

दूसरा अंतरा भी इन्हीं स्वरों से पहले की तरह बजेगा या गाया जायगा।

नोट—यह राग बहुत कम प्रचलित है, और पूर्ण रूप से केवल 'पूरब' में ही गाया जाता है। इसमें गांधार और निषाद वर्जित हैं।

+ यह चिह्न जिस स्वर पर है, वह गांधार-ग्राम का स्वर है।

= यह संकेत जिस स्वर पर है, वह षड्ज-ग्राम का स्वर है।

इसके मात्र स्वर शुद्ध हैं।

महाकवि देव और भरतपुर-राज्य

फाल्गुन-मास (वर्ष २, खंड २, संख्या २) की माधुरी के पृष्ठ २३७ पर "महाकवि देव और भरतपुर-राज्य"-शीर्षक हमारा एक नोट छपा था। उसके विरुद्ध श्रीयुत पं० मदनलालजी मिश्र ने कुछ आपत्ति उठाई है। उस विषय में हमारा कथन इस प्रकार है—

पं० मदनलालजी ने अपनी आलोचना में चार बातें कही हैं। यथा—

१—घनानंद कवि तथा देवजी महाराज सूरजमल के दरबार में आया करते थे।

२—"परे रहैं रेत-खेत-खोपरी के खपरा" के संबंध की राज्य-पंडित श्रीगिरिधारीलालजीवाली किंवदंती ठीक नहीं है।

३—देव के छंद संवत् १८२० के बाद के नहीं, संवत् १८१० के युद्ध के संबंध में हैं।

४—हमारे लेख में उद्धृत छंद महाकवि देव-रचित ही हैं, अथवा अन्य किसी देव कवि के, इसका प्रमाण क्या है।

पंडितजी के पहले कथन का हमारे लेख से कोई संबंध नहीं है। घनानंदजी महाराज सूरजमल के दरबार की शोभा बढ़ाते थे, यह ठीक हो सकता है; परंतु हमारे लेख से इस बात का कुछ विशेष संबंध न होने के कारण हमको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, इतनी बात अवश्य कहते हैं कि पंडितजी के इस कथन से देवजी का महाराज सूरजमलजी के दरबार में आना प्रमाणित होता है।

दीग के क़िले के संबंध में जो किंवदंती हमने राज्य-पंडित गिरिधारीलालजी से सुनी थी, उस पर पं० मदनलालजी ने संदेह प्रकट किया है। इस संदेह पर हमें बड़ा आश्चर्य है। पं० गिरिधारीलालजी का स्वर्गवास होने के पूर्व और उसके बाद भी हमारी इस विषय पर पं० मदनलालजी से अनेक बार बातचीत हो चुकी है। परंतु पहले कभी उन्होंने संदेह नहीं प्रकट किया। हमने इस किंवदंती को पं० गिरिधारीलालजी से सुनकर उनके सामने ही ऑनरेब्ल पं० श्यामविहारीजी मिश्र को, जब वह छतरपुर-राज्य में दीवान थे, एक पत्र लिखा था। उसमें महाराज सूरजमल (उपनाम सुजानसिंह) के दरबार में देवजी के उपस्थित होने का वर्णन करते हुए हमने पूछा था, क्या देवकवि-कृत 'सुजानविनोद' महाराज सूरजमलजी के लिये बनाया गया था? इसके उत्तर में माननीय मिश्रजी ने हमको लिखा था कि 'सुजानविनोद' किसी व्यक्ति-विशेष के लिये नहीं बनाया गया। 'सुजान' शब्द केवल एक विज्ञ पुरुष से संबंध रखता है। हमने ये सब बातें इसलिये लिख दी हैं कि हमको कौन बात

श्री, बानी नहिं रहत एक सँग, धर्म-बुद्धि सो पाई ;
जग विचरयो उपकार करन हित द्विजवर-रूप समाई ।
कै वा साम जु वेद बखानत द्विज-कुल के हैं राजा ;
द्विजवर रूप अवतरे महि महँ पावन करन समाजा ।
जाके प्रबल प्रताप उदित जग अहित उलूक लुकाने ;
ज्ञान-प्रकास भयो सारे जग, मित्र कमल विकसाने ।
आशुतोष ही आशुतोष विद्यालय-व्योम-दिवाकर ;
शील-सिंधु, सौजन्य-दयादिक गुन-रतनन के आकर ।
अस्त भए सो हाय, सोक-तम सकल लोक पर डारी ;
ज्ञान, मान, मरजाद, सील की लुटि गइ संपति सारी ।
हा ! सर आशुतोष, तुम ही भाषा को दई बड़ाई ;
एम्० ए० परिच्छा में संस्कृत सम सबको सुपद दिवाई ।
उत्तर-भारत के बासिन की भाषा जदपि कहावै ;
सबसे प्रथम परिच्छा-गौरव कलकत्ते महँ पावै ।
आपन के संग्रह रचवाए, सो है सुकृत तुम्हारा ;
भूलि सकैं विद्या के प्रेमी कैसे तव उपकारा ?
विद्यालय-कल्यान हेत अब को अहितन सों अड़िहै ?
अपकारी गज-जूथ जुरत लखि मृगपति सम को लड़िहै ?
जनपद औ नरपति दुहून सों परम प्रतिष्ठा पाए ;
क्षुद्र भूप ऐसन अगनित जन राखत मित्र बनाए ।
सील-सुभाव, परम मृदु भाषन कैसे हाय बिसारैं ?
मृदु मुसकान-सहित आनन पर कोटि पूर्न ससि वारैं ।
भोगौ जाइ स्वर्ग-सुख प्रियवर, तुम सुर-पद-अधिकारी ;
रहिहै जुग-जुग भरत-भूमि में कीरति विमल तुम्हारी ।

शोकार्त श्रीअवधवासी सीताराम, प्रयाग

× × ×

५. फ़ारसी में रामायण के अनुवाद

माधुरी की किसी पिछली संख्या में रामायण के फ़ारसी-अनुवादों के विषय में माधुरी-संपादकों ने थोड़ा-बहुत प्रकाश डाला था । इधर मार्च १९२४ के 'कलकत्ता-रिव्यू' में मौलाना महफ़ूज़ुल हक़ महाशय ने 'फ़ारसी-रामायण'-शीर्षक लेख में इसी विषय पर कुछ विस्तार से लिखा है । उपर्युक्त लेख में रामायण के फ़ारसी-अनुवादों पर लेखक ने अच्छा प्रकाश डाला है । नीचे हम माधुरी के पाठकों की जानकारी के लिये उसी के आधार पर कुछ लिखते हैं । आशा है, इससे उन्हें रामायण के फ़ारसी-अनुवादों के विषय में थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य हो जायगा । विस्तृत वर्णन जानने की इच्छा रखनेवालों को इस लेख के फ़ुटनोट में पुस्तकें एवं मार्च १९२४ का 'कलकत्ता-रिव्यू' चाहिए । यहाँ हम परिचय-स्वरूप उसी लेख का देते हैं—

(१)

पहले-पहल अकबर ने संस्कृत-रामायण का ग वाद करने का भार एक मुसलमान को सौंपा था उसका नाम क़ादिर बदायूनी था । उसने चार व रामायण का अनुवाद किया । पुस्तक के अंत में लिखता है—"जब मैंने इस पुस्तक (अनुवाद) उपस्थित किया, तो इसकी बहुत तारीफ़ हुई ।" इस रामायण की एक बहुत ही सुंदर, बेल-बूटों से एवं मूल्यवान् प्रति वाशिंगटन (U. S. A.) में, इस्रा के संग्रह में, सुरक्षित है † ।

(२-३)

तुलसीदासजी की हिंदी-रामायण के लिखे जाने के बाद, जहाँगीर के राजत्वकाल में, रामायण के दो अनुवाद पाए जाते हैं । एक तो पानीपत के मुल्ला मसीह का पद्यानुवाद, और दूसरा दिल्ली के गिरिधरदास का पद्यानुवाद । गिरिधरदास जाति के कायस्थ और जहाँगीर के समकालीन थे । आपने अपना अनुवाद जहाँगीर बादशाह को समर्पित किया है । लेकिन मसीह के अनुवाद में कई ख़ूबियाँ हैं । इस कारण लोगों ने उसे ज़्यादा पसंद किया था ‡ ।

(४-५)

अब चंद्रमा "बेदिल" के अनुवादों की ओर आइए । आपने रामायण के दो अनुवाद किए । एक पद्य में और दूसरा गद्य में । गद्यानुवाद वैसा अच्छा नहीं हुआ; लेकिन पद्यानुवाद की ख़ासी तारीफ़ की जाती है । इसका नाम "नर्गिस्तान" रक्खा गया था । बेदिल महाशय ने यह अनुवाद अपने एक अभिन्न-हृदय मित्र के आग्रह से

---

* देखिए *Ain-i-Akbari* (*Blochmann*) *Vol. I, Page 105.*

† देखिए Smith's History of Fine Arts in India and Ceylon, Page 456.

‡ देखिए Catalogue of Persian MSS. in the British Museum, Vol. I, Page 56 b.

िया था । इस समय आपकी अवस्था ६० वर्ष की ी (सन् १६३१) ।

(६)

अब एक दूसरे अनुवाद की बात सुनिए । इस अनु-ाद का यश अमानतराय को है । आपका निवास-थान जालपुर (संयुक्त-प्रांत) था । इस अनुवाद में ।२ पंक्तियों के १००० पृष्ठ हैं । यह अनुवाद निर्विवाद ी सब अनुवादों से सुंदर, विशाल और महत्त्व-पूर्ण । इसके तैयार करने में क़रीब २४ वर्ष लगे थे । स्तक पूर्ण करने की तिथि श्रावण-पंचमी, संवत् ।८१२ है * ।

(७)

लंदन के इंडिया-ऑफ़िस के पुस्तकालय में भी एक अज्ञात-नाम का पद्यानुवाद सुरक्षित है † ।

(८)

रामायण के एक दूसरे पद्यानुवाद की प्रति सर विलियम आउसले के संग्रह में है ‡ ।

(६)

म्यूनिच-लाइब्रेरी में भी रामायण के गद्यानुवाद की एक प्रति रक्खी हुई है × ।

(१०)

ब्रिटिश म्यूज़ियम में भी देवीदास कायस्थ द्वारा अनुवादित रामायण की एक गद्यानुवाद-प्रति रक्खी हुई है । इस अनुवाद के अंत में श्रीरामचंद्रजी का जीवन-चरित भी जोड़ दिया गया है + ।

(११)

रामायण की एक और प्रति लंदन के इंडिया-ऑफ़िस-लाइब्रेरी में है । यह भी गद्यानुवाद ही है ÷ ।

(१२)

वाल्मीकि-रामायण का, एक दूसरा गद्यानुवाद है । यह हाल का और अपूर्ण है । इसके अनुवादक हैं आनंदख़ाँ । लेकिन इस अनुवाद के करने में उन्होंने अपना उपनाम 'ख़ुश' रक्खा था । अंत-भाग का अनुवाद नहीं हो पाया है ।

उपर्युक्त अनुवादों में ६, १०, ११ नं० के अलग-अलग तीन अनुवाद हैं, अथवा एक ही अनुवाद की तीन प्रतियाँ हैं, यह ठीक नहीं कहा जा सकता ।

श्रीगिरींद्रनारायणसिंह

× × ×

* ये बातें इसी पुस्तक की एक प्रतिलिपि से ली गई हैं ।

† देखिए *Catalogue of Persian MSS. in the India Office Library, Page 319.*

‡ देखिए *No. 74 of his Catalogue.*

× देखिए *J. Anmer, Page 140, No. 349.*

+ देखिए *Rien, Page 55.*

÷ देखिए *Ethe No. 1963.*

६. मेरा पिता

अखिल विश्व की वीणाओं के टूट जायँगे सारे तार ,
अंतस्तल में "सोऽहम्, सोऽहम्" गूँज उठेगा वारंवार ।
जनाकीर्णता, परिवर्तन हो, हो जाएगी एकाकार ,
चिरसारथि की चक्रध्वनि से मुखरित होगा सब संसार ।
पतन-अभ्युदय-पथ के पंथी ! युग-युग हाय, चले जाना ,
तेरे पथ का अंत जहाँ पर, होगा वहीं मुझे पाना ।

मोहनलाल महत्तो गयावाल "वियोगी"

× × ×

७. सन् १९०० ई० में संसार-भर के समाचार-पत्रों की संख्या

ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड	२,६०२
संयुक्त-राज्य अमेरिका	१५,६०४
फ़्रांस	२,४००
जर्मनी	३,२७८
आस्ट्रिया	३६३
हंगरी	१७१
स्वीडन	२१३
डेन्मार्क	१४५
आइसलैंड और फ़ैरो टापू	३
नार्वे	१३२
बेल्जियम	२६०
हॉलैंड	३१२
लक्ज़ैंबर	१२
रूस	२८०
इटली	२५१
स्पेन	३३८
पुर्तगाल	७६
स्विट्ज़रलैंड	६००
ग्रीस	४७
रोमानिया	४७

सर्विया	२४
बलगेरिया	१९
मांटीनिग्रो	२
टर्की	२२
ईरान	३
सीरिया	६
भारतवर्ष	६००
सीलोन	१०
चीन	४०
श्याम	५
स्ट्रेटसेटिलमेंट्स	१२
कोचीन-चीन	४
जापान	१५०
ईस्ट इंडीज़	३६
दक्षिणी आफ्रिका	१०६
पश्चिमी आफ्रिका	१०
मध्य आफ्रिका	७६
मिश्र	२१
कनाडा	७४२
मध्य और पश्चिमी इंडीज़	१२६
आस्ट्रेलिया	७२६
न्यूज़ीलैंड	१४४
दक्षिणी अमेरिका	३५०
योग	३१,०२६

यह संख्या इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका की नवीन, संशोधित तथा परिवर्तित आवृत्ति से ली गई है। नहीं मालूम, सन् १९२१ में, तुलनात्मक दृष्टि से, उपर्युक्त देशों के समाचार-पत्रों की संख्या में क्या अंतर पड़ा है। समाचार-पत्र किसी देश की सभ्यता की कसौटी कहे जाते हैं। इस कसौटी पर कसने से भारतवर्ष कितना सभ्य उतरता है, सो पाठक स्वयं जान लें। पर हाँ, अभी हमारे यहाँ अच्छे पत्र और पत्रिकाओं का दुर्भिक्ष ही है।

श्रीराम शर्मा

× × ×

८. प्रेम-पंथ

प्रेम को पंथ परम कठोर
कोमल जाल मृनाल-तंतु को, बिच नाचत मन-मोर ;
टूटि न जाय, डरत छिन-छिन मन, बँध्यो नेह की डोर।
चातक को कैसो व्रत भारी, बरसै अमृत अथोर ;
तौ हू कबहूँ न पीवत प्रनबस, छाँड़ि स्वाति-जल ओर।
कहँ मयूर, कहँ घन, नभ ऊँचो, नाचत लखि तेहि ओर ;
दुख-सुख गनत न लोक-लाज कछु, पावक खात चकोर।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

× × ×

९. गद्य-काव्य

निशीथ की चाँदनी निस्तब्धता का घूँघट खोलकर हँस रही है। उसके विकास को सह सकनेवाले पादप-पुंज क्रोध से थर्राते, उष्ण निःश्वासों से दम भरते और टहनियों तथा पल्लवों से उसे रोकते हैं। पर वह शांत है, नीरव है, निर्भीक है—उसके वदन-मंडल में स्मित की रेखा है।

प्रकृति को शांत जानकर चंद्रमा निकुंज की बेलियों पर हाथ बढ़ाना चाहता है। उसकी चादर का छोर भूमि चूमता है। उसके मुख-बिंब की आभा झलक जाती है। बेलियाँ जग जाती हैं—कलेवर कंपित हो जाता है। चंद्रमा भाग जाते हैं—बेलियाँ सहम जाती हैं।

पवन आकर वन-वीथियों में घूम जाता है। लताएँ हिलकर स्वागत करती हैं। कुंज सीत्कार की मधुर मर्मर-ध्वनि में लीन हो जाता है। फूल झर जाते हैं, मकरंद टपक पड़ता है। द्रुम-किसलयों में विक्षोभ होने के पहले ही पवन निकल जाता है। लताएँ गंभीरता धारण कर लेती हैं, और पेड़ अवाक् रह जाते हैं।

* * *

मृदुल अमराइयों के आँगन में वह एक कुटीर है। नीचे-ऊपर, दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे कुसुमों ही की क़तार है। दीपक जल रहा है। माधवी-पत्रों की ओट से फाँकी चाँदनी की-सी कुछ चंचल चमक आ रही है। एक तरल मूर्ति उसमें आसीन है। पुत्र और लेखनी बग़ल में पड़ी हैं। आँखें झपी हैं, कपाल चिंता की रेखाओं से अधीर होना सूचित करता है, और हृदय किसी प्रवाह में बह रहा है। प्रदीप बीच-बीच में काँप जाता है ; पर युवक निश्चल, निस्पंद, समाधिस्थ है।

मनोरम कानन के पास ही गगनचुंबी शिखरों से अलंकृत गिरि-माला है। उसकी सुनहली कांति चाँदनी में लहरती है, और चाँदनी भी ठहर-ठहरकर उस पर चढ़ती-उतरती है। झरने के कल-गान से गिरि-माला

निरंतर प्रसन्न रहती और अपने कल्पनातीत राज्यों में विचरनेवाली देवियों के हृदय पर अपना प्रणय स्थापित करती है। मनुष्य तो क्या, पवनदेव का मनोवेग ही कभी-कभी उस गिरिश्रेणी की अधित्यका पर पहुँच पाता है।

* * *

अचानक झरने की कल-नादिनी धारा को पार कर एक आवाज़ आई। वह वीणा की झनकार थी, या किसी देवी के नूपुर की रुन-झुन ध्वनि? कानों ने जी-भरकर सुना; पर चाह बढ़ती ही गई। वह मधुर शब्द हवा की सनसनाहट में आया और फैला; निर्झर की धारा में धँसा, और निकला; कुंज की गलियों में ठुमका और झनका।

युवक की आँखें खुलीं। विस्तीर्ण गगन-मंडल में देख पड़ी एक पहाड़ की ऊँची चोटी; उस पर वही अशोक की छाया, वही कुटीर, वही चट्टान, और वही हँसता हुआ चाँद का टुकड़ा। हाँ, एक मंजुल ध्वनि गिरि-शृंग से उतरती और वायुमंडल में टकराती मंद्र मंथर रूप में सुन पड़ी। युवक की तबियत फड़क उठी, अधर पर स्मित की अवदात लेखा झलकी, और उसने लेखनी उठाकर कुछ लिख लिया।

* * *

एक हलकी हवा बह गई। आलसी भौंरों के हृदय में भी प्राण आ गए। वे अपनी झोली लेकर फूलों के द्वार पर चल पड़े। पेड़ों की गोद में पड़े पक्षियों की नींद उचट गई। विपिन की एकांतता संगीत-मुखरता की रमणीयता में परिणत हो गई। यामिनी-विहारी चंद्र पश्चिम-समुद्र में स्नान करने के लिये अपनी पोशाक उतार रहा था। तारे व्योम-सरोवर में ग़ोते लगा रहे थे। भृंगों के संगीत के बाद, दूसरी भूमिका में, प्रकृति-नटी नेपथ्य के बाहर आ रही थी। युवक किसी की प्रतीक्षा में अमुद्रित नयन से देख रहा था। उसके अधरों पर, समय-समय पर, स्पंदन झलक जाता था, और कानों में चाव-भरा अवधान।

थोड़ी देर में वही झनकार फिर सुन पड़ी। युवक के सतृष्ण नेत्रों ने, बेलियों की आड़ में, कुछ विचित्र ही दृश्य देखा। देखा, कल्पना की तरह झरने की तीव्र धारा किसी पहाड़ को तोड़कर आ रही है। उसके जल की थाह नहीं, उसकी रमणीयता की सीमा नहीं। एक प्रभा के भार से झुकी हुई, माधुरी की प्रतिमा-सी, नवनीत-कोमलांगी रमणी को बैठाए प्रतिभा की तरणी बड़े वेग से गिरि-माला की ओर बढ़ रही है। उसका प्रतिबिंब झरने के जल को जगमगा देता और जल उछल-उछल-कर उस सुंदरी का नीराजन करना चाहता है। सुंदरी हँसती और फिर आँखें नीची कर लेती है।

युवक की आँखें क्षण-भर विस्मय और आह्लाद में रम गईं, और बिलकुल ही बेसुध हो गईं। मन ने बाहरी कपाट बंद कर भीतरी खिड़की खोल दी। उसने देखा—उसके मनोमंदिर में भी वही स्रोत बह रहा है; पर न वह बालिका है, और न वह नौका—न वह रूप-भार है, और न हृदय का हार! उत्कंठा और आवेग में आ-कर सहसा फिर उसने लोचनों की कोर हटाई; किंतु उस समय वह रमणी भाव-सोदर गिरि-माला के शिखर पर चढ़ रही थी। उसका पीयूषवर्षी नूपुर-शिंजन कानों को अमर बना रहा था। कवि का मन पतंग होकर उड़ा, और रमणी ने मद-भरी दृष्टि डालकर उसे चूम लिया।

गोस्वामी भैरवगिरि

× × ×

१०. संध्याकाल

दिनकर, प्रभा तुम्हारी, छिपने लगी गगन में;
वे रश्मियाँ तुम्हारी, अब हैं न इस भुवन में।
उनके विलीन होते, वैभव गया तुम्हारा;
संसार शांति पाने, जाने लगा सदन में।
जब पक्षियों ने देखा, जाती प्रभा तुम्हारी;
करने चले बसेरा, सानंद आयतन में।
जब याद धेनुओं को, निज वत्स-वृंद आए;
तब घास छोड़ भागीं, होकर उदास मन में।
भौंरा भरम रहा था, जो सूर्य के उदय से;
बैठा पराग लेने, अब कंज के सुमन में।
खेतिहर ग़रीब भी सब, सब काम-काज तजकर;
घर को पलट रहे हैं, कुछ शक्ति है न तन में।
सरिता विकल बहुत थी, जो सूर्य की तपन से;
वह शांति पा रही है, तेरी सुखद सरन में।
हो मालती सुगंधित, इस वक़्त फूलती है;
जिससे विरक्त जन भी, विचलित हुए भजन में।

इस भाँति विश्व-भर में, सुख-शांति बढ़ रही है ;
अणु-मात्र है न तम अब, है लालिमा गगन में ।
संध्ये, छटा तुम्हारी, अब अल्प काल ही में ;
कुछ काल ही चमककर, होगी विगत गगन में ।

रघुनंदनप्रसाद पांडेय "पीयूष"

× × ×

११. अमेरिका में विद्या-प्रचार

'न्यूयार्क टाइम्स' में प्रकाशित रिपोर्ट देखने से आपको विदित होगा कि अमेरिका के संयुक्त-प्रदेश में केवल यह नियम-मात्र ही प्रचलित नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति का पढ़ा-लिखा होना आवश्यक है, किंतु इस अनिवार्य शिक्षा के अतिरिक्त भी अन्यान्य प्रकार से विद्या-प्रचार के लिये वहाँ उद्योग किया जाता है। गत वर्ष वहाँ के बारह बड़े-बड़े नगरों ने मिलकर २८,६१,३३,००० शिलिंग इस महान् कार्य में ख़र्च किए हैं। यथा—

न्यूयार्क	१०,७२,०४,०००	शिलिंग
शिकागो	३,६०,०१,०००	,,
फ़िलाडेलफ़िया	२,२७,६७,०००	,,
डीट्राइट	२,६३,४६,०००	,,
क्लीवलैंड	१,७७,६९,०००	,,
सेंट लुई	८७,४३,०००	,,
बोस्टन	१,४६,४२,०००	,,
बालटीमोर	८१,३२,०००	,,
लासएंजलस	१,६१,४१,०००	,,
पिट्सबर्ग	१,०६,८३,०००	,,
सानफ़्रांसिसको	६१,४०,०००	,,
बफ़ेलो	८६,०३,०००	,,
	२८,६१,३३,०००	शि०

पुस्तकालयों का ख़र्च इससे पृथक् है।

सन् १९१७ ईस्वी में उक्त बारह नगरों ने ११ करोड़ २१ लाख ७८ हज़ार शिलिंग इस कार्य में लगाए थे। परंतु गत वर्ष सन् १९१७ ई० की अपेक्षा १६६ प्रतिशत के हिसाब से अधिक व्यय किया गया है।

प्रिय वाचकवृंद, क्या यह जनता का उत्साहद्योतक प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है? क्या इससे अमेरिका की सर्वसाधारण को शिक्षित बनाने की अति प्रबल इच्छा नहीं प्रकट होती? इसी तत्परता और कठिन परिश्रम के कारण आज समस्त संसार में उस देश की, जो कि प्राचीन समय में एक जंगल एवं इस धरा का प्रायः मनुष्य-विहीन खंड-मात्र था, तूती बोल रही है। इसके विपरीत भारतवर्ष की ओर ज़रा दृष्टि डालिए। क्या यहाँ के भी बारह क्या, बारह सौ नगर मिलकर इतना द्रव्य 'विद्या-प्रचार' में लगा पाते हैं? नहीं, कदापि नहीं। यह भारतवर्ष के लिये असंभव-सा है। हाँ, यदि मदिरा देवी की भेंट करने को कहा जाय, तो इतना ही क्यों, इससे कहीं अधिक धन अर्पण किया जा सकता है।

नंदकिशोर अग्रवाल चौधरी

× × ×

१२. 'पियासो रहै'

(१)

गरजै घन घोर घटा घमकै,
बिजुरी चमकै, जनु गात दहै ;
बिरहा की बलाय बिथा बजमारे,
बड़े-बड़े बूँदनि बारि बहै।
अब को समुझाइहै, को समुझै,
जियरा दुखरा कहु कैसे सहै?
तेहि ऊपर पापी पुकारि पियै,
पपिहा मम प्रान—पियासो रहै।

(२)

चहुँ ओर चबाइनि नाउँ धरैं,
अरु गाउँ सदा उपहास रहै ;
मृदु मूरति मंजु रमै मन मैं,
सखि, सोई रह्यो अवलंबन है।
नहिं रोवन देतीं हमैं सखियाँ,
अँखियाँ दुखियान कहा सुख है?
अँसुआन के घूट पियैं नित ही,
हियरा तऊ हाय पियासो रहै।

देवीप्रसाद श्रीवास्तव 'श्याम'

× × ×

१३. "सरस्वती" फ़क़ीरमोहन सेनापति

प्रायः देखा जाता है कि संसार के विख्यात पुरुष-प्रवरों में अधिकांश का शैशव और कैशोर जीवन रोग, शोक, दारिद्र्य के भीषण दावानल में पड़कर हाहाकार में ही बीता करता है। उस करुणावरुणालय, विचित्रकर्मा

विभु का इसमें क्या रहस्य निहित है, यह मानव-ज्ञान के परे है। परंतु करुणासिंधु, दीनबंधु, परम-पिता परमेश्वर के इस अद्भुत क्रीड़ा-क्रम में अवश्य ही कुछ विशेषता होगी।

हिंदू-मात्र के परम-पूज्य पवित्र धाम श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र के कारण उड़ीसा-प्रदेश भारत में प्रसिद्ध है। इसी प्रदेश के बालासोर-नामक नगर में, सन् १८४३ ई० में, हमारे चरित-नायक ने जन्म-ग्रहण किया था। इनका बाल और यौवन-काल रोग-शोक-विच्छेद की दारुण यंत्रणा सहते तथा दुःख और दारिद्र्य से युद्ध करते ही बीता।

घोर अभाव और असुविधाओं के अंधकार से पूर्ण क्षुद्र पर्ण-कुटीर में आलोक की क्षीण रेखा के तुल्य तथा जीवन-यात्रा की चिंताओं से जर्जरीभूत माता-पिता की जीवन-मरुभूमि में शांति-निर्झरिणी के अनुरूप बालक फ़क़ीरमोहन अपनी डेढ़ वर्ष की आयु ही में दैव-दुर्विपाक-वश मातृ-पितृ-हीन होकर इस विशाल

उड़िया-भाषा के सुकवि स्व० श्रीयुत फ़क़ीरमोहन सेनापति

संसार में निराधार हो गए। "मरे को मारें शाह मदार" के अनुसार उनकी इस दयनीय दशा में रोगों का आक्रमण आरंभ हुआ, और आप लगातार कई वर्षों तक बीमार रहे। यदि उस समय इन्हें अपनी पूज्य पितामही कुचिला देवी का स्नेहाश्रय न प्राप्त हुआ होता, तो इनका जीवित रहना ही कठिन था।

किसी प्रकार यह इन दारुण वियोग, रोग तथा अभाव की विपत्तियों को झेलकर १३ वर्ष की अवस्था में अक्षरारंभ करने में समर्थ हुए, और एक स्थानीय पाठशाला में उड़िया, बंगाली, और फ़ारसी पढ़ने के लिये भरती हो गए। उन दिनों उड़ीसा की पाठशालाओं में ये तीनों भाषाएँ साथ-साथ पढ़ाई जाती थीं। यहाँ भी इनकी शिक्षा के मार्ग में बाधाएँ हुईं। पाठ्य पुस्तकें ख़रीदने तथा फ़ीस देने के लिये इनके पास यथेष्ट द्रव्य न होने के कारण, सर्वोत्तम और प्रतिभावान् विद्यार्थी होकर भी, इन्हें पाठशाला की पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। यहाँ हमारे श्रद्धेय मित्र पं० माखनलाल चतुर्वेदी की ये पंक्तियाँ स्मरण आ जाती हैं—

" अन्न नहीं है, फ़ीस नहीं है, पुस्तक है न सहायक हाय !
जी में आता है पढ़-लिख लें, पर इसका है नहीं उपाय।
कोई हमें पढ़ाओ भाई ! हुए हमारे व्याकुल प्रान ;
हा-हा यों रोते फिरते हैं, भारत के भावी विद्वान !"

थोड़े दिनों के बाद उसी पाठशाला में इन्हें ४) मासिक वेतन की एक नौकरी मिल गई। वह उसमें पढ़ाते और स्वयं घर पर पढ़ा करते। कई वर्ष बीतने पर बालासोर के एक मिशन स्कूल में इन्हें १०) मासिक वेतन पर एक जगह मिली। स्वाभाविक मेधावी और प्रतिभाशाली बालक फ़क़ीरमोहन शीघ्र ही अपनी योग्यता और अध्यवसाय के बल पर उक्त स्कूल के हेड पंडित हो गए। इन्हें ४०) मासिक वेतन मिलने लगा। अब किसी प्रकार आपके दिन किंचित् सुख में कटने लगे। इसी समय हिंदी-संसार में परिचित साहित्य-विशारद जॉन बीम्स साहब बालासोर में कलेक्टर होकर आए। वह एक ग्रंथ लिख रहे थे, जिसका नाम था—Comparative Grammar of the Indian Languages. उसकी रचना के लिये उन्हें उड़िया-भाषा और उसके साहित्य का अध्ययन करना आवश्यक था। सौभाग्य-क्रम से उनकी दृष्टि सेनापतिजी के भाषा-नैपुण्य पर पड़ी। वह इनसे उड़िया-भाषा और साहित्य का अध्ययन करने लगे। इन्हीं महामना सहृदय विद्वान् की कृपा और गुणग्राहकता फ़क़ीरमोहन की भावी ख्याति में बड़ी सहायक हुई।

२९ वर्ष की आयु में शिक्षण-कार्य छोड़कर फ़क़ीरमोहन राज्य-शासन के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। सबसे पहले आप नीलगिरि गढ़जात के दीवान के पद पर, १००) मासिक वेतन पर, भेजे गए। २५ वर्षों तक आप भिन्न-भिन्न गढ़जात स्टेटों (अर्थात् डोमपड़ा, ढेंकानाल, दशपल्ला, पाललहड़ा, केंदुभर आदि) के दीवान और मैनेजर का कार्य बड़ी योग्यता से करते रहे। साथ-साथ साहित्य-सेवा का कार्य भी चलता रहा। ढेंकानाल में इन्होंने वाल्मीकि-कृत रामायण और महाभारत का उत्कल पद्यानुवाद किया, जिनकी सरसता और सरलता के कारण इनकी ख्याति उड़ीसा-भर में फैल गई। जब यह केंदुभर-राज्य में दीवान थे, तब वहाँ की प्रजा राजा के विरुद्ध उठ खड़ी हुई। फ़क़ीरमोहन ने अपने प्राणों को संकट में डालकर बलवाइयों को शांत करके राजा और राजकुटुंब की रक्षा की। पर उनके चंगुल में खुद फँस गए। बलवाइयों ने इन्हें पकड़ लिया, और मार डालना चाहा। पर "जब जानकिनाथ सहाय करैं, तब कौन बिगाड़ करै नर तेरो" के अनुसार सेनापतिजी दुष्टों के काल-पाश से शीघ्र ही मुक्त किए गए। जिस परम-पिता ने इन्हें मातृ-पितृहीनता की असहाय अवस्था में जीवित रक्खा, नाना प्रकार के रोगों से इनकी रक्षा की, वह इन्हें विद्रोहियों के खड्गाघात से यों ही मृत्यु-मुख में पतित होते क्योंकर देख सकते ? आपके मनोरंजक काव्य 'उत्कल-भ्रमण' की रचना इसी राज्य के अवस्थान-काल में हुई थी।

फ़क़ीरमोहन अपनी पत्नी कृष्णकुमारी के गुणों पर मुग्ध थे। पर इनके जीवन की संगिनी इन्हें अकेले छोड़कर परम-धाम को चल बसी। 'पुष्पमाला' और 'उपहार'-नामक पद्य-पुस्तिकाओं में उस साध्वी के प्रति सेनापतिजी ने अपनी श्रद्धा के कुसुम अर्पित किए हैं।

५९ वर्ष की आयु में इन्होंने सरकारी नौकरी से पेंशन ले ली, और अपने ज्ञान और अनुभव को देश-भाइयों के उपकार के लिये अर्पण करने का एकांत व्रत ग्रहण किया। इन्होंने छोटी-छोटी कहानियाँ तथा उपन्यास लिखने में मन लगाया। 'गल्पस्वल्प', 'पुनर्मूषिकोभव', 'राणी पुत्र अनंता', 'छै माण आठ गुंठ', 'लच्छमा', 'मामा', 'प्रायश्चित्त' आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनके उपन्यासों पर एक शिक्षित उड़ीसा-वासी की सम्मति यों है—

"*His novels are written in a very homely and humorous style and give an insight into the joys and sorrows, the manners and customs of Uriya village life, the tricks and treacheries of Zamindars, money-lenders and Govt. servants.*"

'लच्छमा' का हिंदी-अनुवाद छप चुका है। सन् १९१६ में साहित्य, विज्ञान, तथा सत्कविता के प्रसिद्ध पीठ बामंडा-राज्य की 'सुरतरंगिनी-सारस्वत-समिति' ने, राजकवि राजा सच्चिदानंद त्रिभुवनदेव की अध्यक्षता में, समुचित अभ्यर्थना-पूर्वक सेनापति महोदय को "सरस्वती" की उच्च उपाधि से सम्मानित किया, और इनकी साहित्य-सेवा के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। उत्कल-प्रांत ने 'उत्कल-सम्मिलनी' के सभापति का आसन प्रदान कर इन्हें सम्मानित किया।

१४ जून, १९१८ को सेनापतिजी ने महायात्रा की।

सेनापतिजी का हृदय दया और प्रेम से भरा हुआ था। इनकी महानुभावता, उदारता तथा सरलता की प्रशंसा नहीं हो सकती। क्षमाशीलता के तो यह मानो सिंधु ही थे। आत्मत्याग और देशभक्ति के लिये आप उड़ीसे में आदर्श-स्वरूप थे। वृद्ध होने पर भी आपमें ज्ञानार्जन-स्पृहा और अध्यवसाय-प्रियता नवयुवक छात्रों के समान ही थी।

सेनापति महोदय हिंदी-भाषा के प्रेमी और उसके भारतव्यापी प्रचार के इच्छुक थे। श्रीगुसाईंजी-कृत रामायण को आप बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। आप के पद्यों में मुझे गुसाईंजी के एक दोहे का अनुवाद मिला—

(उड़िया)

"ज्ञानी, तापस, शूर, कवि विविध शास्त्र अनुभवि;
लोभ हस्त रूँ परित्राण पाइ नाहांति केहि जाण।"

सेनापतिजी संसार को दुःखमय तथा मिथ्या नहीं मानते थे। आप इसे परब्रह्म परमेश्वर के सच्चिदानंद-स्वरूप महासागर के प्रेममय, सुधामय तरंग समझकर इसे उसी भाँति हृदयंगम करने का उपदेश दिया करते थे। आप बाह्य जगत् में 'आनंद की धारा' प्रवाहित होते देखते थे। इनका 'बुद्धावतार'-काव्य पढ़कर अभूतपूर्व आनंद प्राप्त होता है। कविवर रायबहादुर राधानाथ राय तथा रायबहादुर मधुसूदन दास-जैसे प्रसिद्ध और प्रतिभा-शाली कविगण सेनापतिजी की रचना-चातुरी पर मुग्ध रहा करते और मुक्त-कंठ से इनकी प्रशंसा किया करते थे। वर्तमान शताब्दी के उड़िया-भाषा के जीवित लेखकों में सबसे अधिक ग्रंथ सेनापतिजी ने लिखे हैं, और काव्य, पुराण, जीवनचरित्र, वेदांत, नीति-शिक्षा, समाज-सुधार आदि नाना विषयों पर लेखनी-संचालन किया है। इनके काव्य-ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) अवसर-वासरे (कविता-संग्रह)		मूल्य	१॥)
(२) उपहार	,,	,,	।)
(३) धूलि	,,	,,	=)
(४) पूजाफूल	,,	,,	।-)
(५) बौद्धावतार	(काव्य)	,,	१।)
(६) छांदोग्य उपनिषद् (पद्य-बद्ध अनुवाद)		,,	॥।)
(७) खिल हरिवंश		,,	१)

आपके 'पूजाफूल' में एक पद्य बड़ा ही मार्मिक है। उसका अनुवाद यों है—

भूल जाऊँ किया मैंने यदि कहीं धनदान;
भूल जाऊँ अन्य ने जो किया मम अपमान।
भूल जाऊँ किए मैंने जो अपर-उपकार,
भूल जाऊँ अन्य-कृत अघ-पूर्ण अत्याचार।

"नागरीदास"

× × ×

१४. 'रस-सरस', 'सरस-रस' या 'सर-सरस' ?

माधुरी की गत पूर्ण संख्या ९ में पं० शिवाधार पांडेय ने 'कुछ सूचनाएँ'-शीर्षक देकर लिखा था—

"(ख) रस-सरस

सूरति मिश्र का यह प्रसिद्ध ग्रंथ भी मैंने राजपूताने में देखा था। ××× यह संवत् १७९४ में रचा गया था। ××"

पुनः माधुरी की पूर्ण संख्या १० में इस सूचना का खंडन करते हुए श्रद्धेय पं० गोविंद-गिल्लाभाई ने 'रस-सरस या सरस-रस'-शीर्षक के नीचे लिखा था—

"चैत्र की माधुरी में 'कुछ सूचनाएँ'-शीर्षक के नीचे लिखा है कि 'रस-सरस'-ग्रंथ के प्रणेता सूरति मिश्र हैं। पर यह ठीक नहीं। ग्रंथ का नाम 'सरस-रस' है, और उसका संकलन आगरे के लाल कवि ने किया है। लाल कवि सूरति मिश्र के समकालीन हैं। उन्होंने उक्त ग्रंथ की रचना में सूरति मिश्र आदि अनेक कवियों की सम्मति ली है। ××× संवत् १७९४ के वैशाख में यह पूर्ण हुआ है। ×××"

इसके बाद श्रद्धेय पं०जी ने उक्त ग्रंथ के अंत के कुछ दोहे उद्धृत किए हैं। आपको 'सरस-रस'-ग्रंथ भरतपुर-राज्य के पुस्तकालय में मिला, और अब आपने उक्त ग्रंथ की नक़ल अपने हाथ से कर ली है।

लेकिन मैं यह निवेदन करता हूँ कि ये दोनों ही सूचनाएँ भ्रमोत्पादक हैं। मेरे पास कलकत्ते के "क्षीरोदसागर यंत्र छापाख़ाने" में मुद्रित कई प्राचीन पुस्तकें मौजूद हैं। इन ग्रंथों में कई एक के कवर (मुख-पृष्ठ) तो न-जाने कब दीमकों की भेंट चढ़ गए। केवल मतिराम-कृत "रसराज" का कवर बचा है। वह "संवत् १९०२, शाके १७६७, मिति जेठ-कृष्ण द्वितिया, शुक्रवार ११ जेठ" को छापा गया था। उन्हीं ग्रंथों की जिल्द में बँधा हुआ उन ग्रंथों से भी प्राचीन, संवत् १८७७ का छपा हुआ, एक और

ग्रंथ है। नाम है उसका 'सर-सरस'। इस ग्रंथ के मूल-लेखक हैं पं० सूरति मिश्र, और इसमें अन्यान्य कवियों की कविताओं का संग्रह कर छपवानेवाले हैं आगरे के लाल कवि। मेरे पास जो प्रति है, वह संपूर्ण है। लेकिन दीमकों की कृपा की छाप यत्र-तत्र लगी हुई है। फिर भी ग्रंथ प्रायः अखंडित अवस्था में है। टाइप बहुत ही पुरानी चाल का है। काग़ज़ भी रूखा और प्राचीन ढंग का है। इस ग्रंथ का कवर न-जाने कब लापता हो गया। फिर भी इसके अंत की पंक्तियाँ पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसे आगरे के लाल कवि ने कलकत्ते के अपने निज के छापेख़ाने में छापा था। ग्रंथ में—आठ विलास (अध्याय), १३१ छंद और ७२ पृष्ठ हैं। ग्रंथ के अंत में एक "अर्थ-शुद्धि-पत्र" दिया हुआ है।

इतनी तो हुई भूमिका, अब विषय पर आता हूँ। उक्त ग्रंथ को पं० शिवाधार पांडेय 'रस-सरस' कहते हैं। गोविंद-गिल्लाभाई 'सरस-रस' कहते हैं। और, मैं कहता हूँ कि वह 'सर-सरस' है! पं० शिवाधार पांडेय इसे सूरति मिश्र का लिखा हुआ कहते हैं। पं० गिल्लाभाई इसे लाल कवि द्वारा संगृहीत बताते हैं। और, मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि इस ग्रंथ के मूल-लेखक सूरति मिश्र हैं, और इसमें अन्य कवियों की कविताओं का भी संग्रह करके इसका प्रकाशन, मुद्रण और संग्रह करनेवाले लाल कवि। पांडेयजी और भाईजी, दोनों इसका रचना-काल १७९४ बताते हैं। मेरा निवेदन है कि यह रचना-काल (१७९४) मूल-ग्रंथ का है। लाल कवि ने इसका संग्रह और मुद्रण १८७७ संवत् में किया था। इसी साल यह ग्रंथ प्रकाशित भी हुआ था।

बस, अधिक न लिखकर मैं उक्त ग्रंथ के अंतिम अंश को ही उद्धृत किए देता हूँ। एक बात और है। इस ग्रंथ के संग्रहकर्ता लाल कवि स्वयं इसके प्रकाशक भी हैं। अतः इससे शुद्ध प्रति और दूसरी हो ही नहीं सकती।

अंत के कुछ दोहे—

"एक समै मधि आगरे कवि-समाज कौ योग।
मिल्यौ आय सुखदाइ हिय जिनकी कविता योग ॥ १२३ ॥
तब सब ही मिलि मंत्र यह कियौ कविनु बहु जानि।
रच्यौ सुग्रंथ नवीन इक नए भेद रस ठानि ॥ १२४ ॥
जिहि विधि कवि मिलि कै कही यथायोग लहि रीति।
रनही में जे संभवैं कहे भेद युत प्रीति ॥ १२५ ॥
अपनी मति परमान सौं कहे भेद बिस्तारि।
लखौ सु यामें न्यूनता सो कवि लेहु सुधारि ॥ १२६ ॥
कवि अनेक मति में हुते पै मुख कवि परवीन।
जाके सम्मत सौं भयौ पूरण ग्रंथ नवीन ॥ १२७ ॥
सूरतराम सुकवि सरस कान्हकुब्ज बहु जान।
बासी ताही नगर कौ कविता जाहि प्रमान ॥ १२८ ॥
केतक धरे सुग्रंथ में वर कवित्त कविराय।
ताही सौं गंभीरता अर्थ वरण दरसाय ॥ १२९ ॥
आठौं रस रस-भेद में जे वरणे मति ठानि।
राजनीति में संभवैं ते मत लीजौ मानि ॥ १३० ॥
सत्रह सौ चौरानवै संवत शुभ वैशाख।
भयौ ग्रंथ पूरण सु यह अठ शशि पुष्पसित पाख ॥ १३१ ॥"

इति श्रीलाल-संचित सर-सरसग्रंथे रसनिरूपणो नाम अष्टमो विलासः संपूर्ण ग्रंथ समाप्तं शुभमस्तु कल्याणमस्तु ॥ ८ ॥ संवत् १८७७ में श्रीलल्लूलाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्रअवदीच आगरेवारे ने सूरत कवि के 'सर-सरस' ग्रंथ कौ प्राचीन कवियौं के कवित्त मिलाय बढ़ाय शोधकर छपवायौ निज छापाघर में श्रीमान् पंडित कवि रसिकनि के आनंदार्थ इति ॥

"पंडितजन को श्रम मरम जानत जे मतधीर।
कबहूँ बाँझ न जानई तन प्रसूत की पीर ॥ १ ॥"

गिरींद्रनारायणसिंह

---

१. सिर-दर्द के कारण

सार की अन्यान्य मशीनों के समान हमारा शरीर भी एक मशीन है। इसका एक छोटा-सा भी हिस्सा ख़राब हो जाने से समूचे शरीर का काम रुक जाता है। किंतु अन्यान्य मशीनों से इसमें एक विभिन्नता भी है। किसी हिस्से के ख़राब होने के पहले हमें चितावनी मिल जाती है। यह चितावनी सिर-दर्द के रूप में प्रकट होती है। यदि उसकी तरफ़ हम ध्यान नहीं देते, तो मशीन की शक्ति कम होने लगती है, और अंत में हम काम करने के योग्य नहीं रहते। दूसरे शब्दों में, सिर-दर्द कोई बीमारी नहीं है, प्रत्युत अन्य बीमारी का इशारा-भर है। हमारे शरीर में इशारा जताने का बड़ा विचित्र प्रबंध है। उसी प्रबंध की बदौलत हम लोग शरीर की बीमारी को सिर-दर्द के रूप में जान सकते हैं। वास्तव में हमारे शरीर के प्रत्येक हिस्से—लीवर, पेट, कान, आँख आदि—का संबंध सिर से है। इनमें से किसी में किसी प्रकार की गड़बड़ हुई नहीं कि सिर को दर्द करने का हुक्म मिला। सिर प्रसन्नता-पूर्वक उस आज्ञा का पालन करता है। सिर-दर्द अन्य बीमारियों का सहानुभूतिक चिह्न है। यह मत डॉक्टर ई० एफ़० बोवर्स का है।

साधारण सिर-दर्द स्नायविक विकार (nervous Irritation) से होता है। अनिद्रा, शोक, दुःख, काम का झंझट, उत्तेजना (अर्थात् जिस कारण से स्नायु को चोट पहुँचे) आदि से सिर-दर्द पैदा होता है। ऐसा सिर-दर्द किस तरह दूर किया जा सकता है? सबसे पहले हमें उसका कारण ढूँढना पड़ेगा। सिर-दर्द ने अपना काम कर दिया, अर्थात् हमें बतला दिया कि शरीर में किसी प्रकार की गड़बड़ है। अब यह हमारा काम है कि हम उसके कारण को खोजें। यदि अनिद्रा के कारण सिर-दर्द होता हो, तो सोना, दुःख-शोक के कारण होता हो, तो उसे भूल जाना, और उत्तेजना के कारण होता हो, तो उसे कम कर देना उचित है।

सिर-दर्द का दूसरा कारण शरीर में गंदगी या विषैले पदार्थों का जमा होना है। हम लोग आवश्यकता से अधिक भोजन किया करते हैं। उसका जो हिस्सा पचता है, वह तो मल के रूप में निकल जाता है; किंतु जो हिस्सा पचता नहीं, वह आँतों में एक प्रकार का विष पैदा करता है। यह विष बड़ा ही भयानक होता है। यदि इस विष को किसी तरह आँत से निकालकर किसी के शरीर में प्रविष्ट कराया जाय, तो वह काले साँप के विष का-सा काम करेगा। परंतु सौभाग्यवश जब यह विषैला रस हमारी आँत से निकलकर रक्त के साथ मिलता है, तब उसकी भयंकरता कम हो जाती है। मगर तो भी वह काफ़ी ज़हरीला रहता है। इस विष का पता क़ब्ज़ से लगता है। यदि क़ब्ज़ के कारण सिर-दर्द होता हो, तो पेट साफ़ करने का उपाय करना चाहिए।

आवरण द्वारा सोख लिया जाता है। इस ग्रह के दोनों ध्रुवों पर उतनी गरमी रहती है, जितनी पृथ्वी की भूमध्य-रेखा पर होती है। इसलिये कम-से-कम ध्रुवों पर तो ऐसा तापक्रम अवश्य है, जहाँ जीव-कोष बचे रह सकते तथा बढ़ सकते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि जब मंगल इतने दिनों तक वैज्ञानिकों के हाथों का खिलौना हो रहा था, तब क्यों लोगों ने अब शुक्र के विषय में ये बातें उठाई हैं? इसका उत्तर यह है कि दूरवीक्षण-यंत्रों द्वारा हम लोग मंगल को जितनी सफ़ाई से देख सकते हैं, उतनी सफ़ाई से शुक्र को नहीं देख सकते; क्योंकि वह घने मेघमंडल के आवरण से सदा ढका रहता है। इन्हीं मेघमंडलों के कारण शुक्र इतना चमकीला बना हुआ है। जब हम लोग शुक्र की ओर देखते हैं, तब वह सूर्य के प्रकाश से चमकता रहता है, और उसकी चमक का कारण उसके चारों तरफ़ का मेघमंडल है। यदि वह मेघों द्वारा घिरा हुआ न रहता, तो हम लोग उसकी सतह तथा भूगोल को अच्छी तरह देख तथा जान सकते; क्योंकि वह कभी-कभी हमसे केवल २६,०००,००० मील की दूरी पर आ जाता है; और आजकल के अच्छे-अच्छे दूरदर्शक-यंत्रों के लिये यह दूरी नाम-मात्र की है। साधारणतः हम लोग शुक्र को उसी समय देखते हैं, जब वह हम लोगों से दूर सूर्य की दूसरी तरफ़ चमकता रहता है। उसकी चमक हमारी आँखों में ऐसी चकाचौंध पैदा कर देती है कि हम लोग उसकी सतह को अच्छी तरह नहीं देख सकते। किंतु जब शुक्र सूर्य और हमारे बीच से होकर गुज़रता है, उस समय हम उसे अच्छी तरह देख सकते हैं। और, उसी समय हम लोग उसके मेघमंडल को उसके शरीर से अलग कर सकते हैं। यह मेघमंडल पृथ्वी के वायुमंडल से प्रायः तीन गुना मोटा तथा घना है। यह बात जान लेने के बाद वहाँ के बाशिंदों के विषय में बड़े विचित्र अनुमान लगाए गए हैं।

चूँकि शुक्र का मंडल पृथ्वी के मंडल से गाढ़ा है, इसलिये उसमें उड़ना आसान है। संभव है, शुक्र के बाशिंदे आकाश में उड़ते हों। यदि वे अपने-आप नहीं उड़ सकते हों, तो उन्होंने इस प्रकार के यंत्र तो अवश्य ही बना लिए होंगे, जो आकाश में उड़ते होंगे, और वे यंत्र हमारे यंत्रों से किसी अंश में कम नहीं होंगे। मेघ के आवरण को देखकर यह भी कहा जा सकता है कि शुक्र में समुद्र बहुत और ज़मीन थोड़ी होगी। वहाँ निरंतर पानी पड़ता होगा। और, चाहे जिस प्रकार के जीव वहाँ रहते हों, वे हमसे अधिक जल में रहनेवाले जीव होंगे।

विकासवादियों के कथनानुसार पृथ्वी पर पहले-पहल पानी में ही जीवों का आरंभ हुआ। जल-जीवों से स्थल-जीवों की अवस्था प्राप्त होने में करोड़ों वर्ष लग गए। किंतु शुक्र में बात दूसरी है। वहाँ भूमि की कमी, समुद्र की प्रचुरता और अनवरत वर्षा का होना यह प्रमाणित करता है कि उस ग्रह के सर्वोत्तम जीव पानी में ही रहते हैं। जल-जीव होने के कारण उन्हें कोई बुद्धिहीन नहीं कह सकता। वे भी हम लोगों के समान या हमसे भी अधिक बुद्धिमान् होंगे, यद्यपि उनका आकार हमारे यहाँ की उड़नेवाली मछलियों-जैसा ही होगा। वे पंख-युक्त भी होते होंगे, जिससे उन्हें आकाश में उड़ने का भी सुबीता होगा।

प्रकृति सभी पदार्थों को अपने अनुकूल बना लेती है। इसलिये वैज्ञानिकों का अनुमान है कि शुक्र के बाशिंदों के डैने मनुष्य के हाथों का भी काम देते होंगे। उनके डैनों के सिरों पर हमीं लोगों की-जैसी पाँच-पाँच उँगलियाँ होंगी, जिनके द्वारा वे औज़ारों को पकड़ते और उनका इस्तेमाल करते होंगे। इसके अतिरिक्त वहाँ के जीवों को अपने शरीर की रक्षा पानी से करनी पड़ती होगी, इसलिये प्रकृति ने उनके शरीर को मछलियों के समान बना दिया होगा।

शुक्र में जाने-आने का मार्ग आकाश ही होगा; क्योंकि वहाँ कुहासे, मेघ, पानी आदि का इतना जमाव रहता है कि आकाश-मार्ग के सिवा अन्य कोई मार्ग सुविधा-जनक नहीं जान पड़ता। चिड़ियों में दिशा-ज्ञान की एक स्वाभाविक बुद्धि (Instinct) होती है, जो मनुष्यों में नहीं होती। उसी प्रकार की बुद्धि से शुक्रवासी भी दिशा जान लेते होंगे; क्योंकि कुहासे तथा बादल के अँधेरे में दिशा का पता लगाना असंभव-सा जान पड़ता है।

शुक्रवासियों को शायद ही नीले आकाश, नक्षत्र तथा ग्रहों का दर्शन होता हो। सूर्य को वे टिमटिमाता हुआ तारा-सा शायद देख पाते हों; किंतु तारों को तो वे एकदम नहीं देख सकते। इसलिये उन्हें ज्योतिष का

ज्ञान भी नहीं होगा। किंतु उड़ने की विद्या में वे पारंगत हो चुके होंगे, और यदि वे मेघमंडल को पारकर उसके ऊपर कभी पहुँचे होंगे, तो उन्हें भी हमारे-जैसा ही आकाश देखने को मिला होगा।

× × ×

२. वायुमंडल का वज़न

हम हवा को देख नहीं सकते; जब तक वह चलती नहीं, हम लोग इसका अनुभव भी नहीं कर सकते। हवा बाधा देती है, यह बात हमें उस समय जान पड़ती है, जब हम हवा के विपरीत चलते या दौड़ते हैं। किंतु हवा के वज़न का ज्ञान साधारण मनुष्य को नहीं होता। पर वह वायुमंडल, जो चौबीसों घंटे हमारे सिर के ऊपर रहता है, इतना वज़नदार है, जिस पर जल्दी विश्वास नहीं होता। प्रो० चार्ल्स एन्० होल्मस का कहना है कि जब हवा कोई पदार्थ है, तब उसका वज़न अवश्य होगा। हम लोग भी जानते हैं कि जिन गैसों का मिश्रण हवा है, उनका भी वज़न बहुत थोड़ा ही होता है। हवा में ७८ भाग नेत्रजन, २१ भाग ऑक्सिज़न और बाक़ी अंगारकाम्लगैस, अरगन, हिलियम, नियन, क्रिपटन और ज़ेवन गैसों का सम्मिश्रण है। नेत्रजन हाइड्रोज़न से १४गुनी और ऑक्सिज़न से १६गुनी भारी होती है। नेत्रजन किसी पदार्थ के साथ बड़ी मुशकिल से मिलती है; किंतु ऑक्सिज़न बड़ी आसानी से मिल जाता है। ऑक्सिज़न ही प्राणवायु है; किंतु यदि हवा केवल ऑक्सिज़न ही की बनी होती, तो हमारी जीवनाग्नि शीघ्रता से जलकर भस्म हो जाती, अर्थात् थोड़े ही समय में हम सब मर जाते। किंतु न्यायी ईश्वर ने उसे नेत्रजन के साथ मिलाकर ऐसा कर दिया है, जिससे हमारा जीवन अधिक काल तक बना रहता है।

पानी में भी वज़न है। वह हवा से ७७३गुना भारी है। यदि एक लिटर (Litre) हवा तौली जाय, तो उसका वज़न १$\frac{३}{१०}$ ग्राम होगा। एक घन-फ़ीट हवा का वज़न १$\frac{३}{१०}$ औंस होता है। इस हिसाब से एक घन-मील हवा का वज़न १६,१३,९७,३९,७६०० औंस—अर्थात् प्रायः ४६,८०,००० टन होगा। यदि एक घन-मील हवा का वज़न इतना है, तो सारी पृथ्वी के चारों तरफ़ के वायुमंडल का वज़न कितना होगा? बैरोमीटर द्वारा देखा गया है कि भिन्न-भिन्न ऊँचाई के स्थानों में हवा का भिन्न-भिन्न दबाव होता है। वायुमंडल का दबाव पारे को ३० इंच ऊपर उठा देता है। इस दबाव का असर हमारे शरीर पर भी पड़ता है। यदि हमारे शरीर का भीतरी दबाव बाहरी दबाव के समतुल्य न होता, तो हमारे शरीर की रचना कुछ और ही तरह की होती। अस्तु, पृथ्वी के वायुमंडल का वज़न कितना है?

हम पृथ्वी का क्षेत्रफल १९,७०,००,००० वर्ग-मील मानते हैं। यदि हम वायुमंडल की ऊँचाई को किसी प्रकार जान जायँ, तो उसका वज़न निकाल सकते हैं; क्योंकि हम एक घन-मील हवा का वज़न जान गए हैं। वैज्ञानिकों ने बहुत छान-बीन के बाद पता लगाया है कि ऊपर प्रायः ३०० मील तक हवा है। किंतु इसमें कई बातों पर ध्यान रखना पड़ेगा। पहली बात यह है कि वायुमंडल के वायु का गुरुत्व एक-सा नहीं है। ज्यों-ज्यों हम ऊपर जाते हैं, त्यों-त्यों हवा का गुरुत्व तथा दबाव कम होता जाता है। समुद्र के किनारे हवा का जितना दबाव है, समुद्र के किनारे से साढ़े तीन मील ऊपर उसका केवल आधा ही है। ज्यों-ज्यों हम ऊपर को जाते हैं, यह क्रम ठीक रहता है, अर्थात् प्रत्येक ३$\frac{१}{२}$ मील की ऊँचाई पर दबाव आधा होता जाता है। ऐसा होने पर भी और तरीक़ों से हम वायुमंडल का वज़न निकाल सकते हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि पृथ्वी के वज़न का प्रायः $\frac{१}{१२,००,०००}$ भाग सारे वायुमंडल का वज़न है। पृथ्वी का वज़न प्रायः ६,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० टन है; इसलिये वायुमंडल का वज़न ५,००,००,००,००,००,००,००,००० टन हुआ *।

किंतु यह वज़न बहुत कम जान पड़ता है; क्योंकि बैरोमीटर से पता चलता है कि समुद्र के निकट एक वर्ग-इंच पर १४$\frac{७}{१०}$ पौंड दबाव वायुमंडल का पड़ता है। यदि पृथ्वी का क्षेत्रफल १९,७०,००,००० वर्ग-मील अर्थात् ७,९०,८९,४४,९१,२०,००,००,००० वर्ग-इंच हो, तो वायुमंडल का वज़न प्रायः ५,७३,३६,६४,७७,१२,००,००० टन होता है। दूसरे प्रकार से हिसाब लगाकर वैज्ञानिकों ने ५,७३,२३,१२,५०,००,००,००० टन वज़न पाया है। इसलिये कहा जा सकता है कि

* १ टन २७-२८ मन का होता है।

स्याम-सरोज-दाम-सम सुंदर, प्रभु-भुज करि-कर-सम दसकंधर।
सोइ भुज कंठ कि तव असि घोरा, सुनु सठ, अस प्रमान प्रन मोरा।"

अग्नि-परीक्षा के समय सती फिर कहती है—

मैंने राघव के सिवा अन्य किसी पुरुष को यदि मन, वाणी और काया से, सोते या जागते में पतिभाव से देखा हो, तो हे पावक, इस मेरे शरीर को अभी यहीं पर भस्म कर दो। तुम पुण्यात्मा और पापी, दोनों के कर्मों के साक्षी हो।

सर्व-भक्षी अग्नि पतिव्रता का पुनीत अंग न जला सका; मर्यादापुरुषोत्तम निरुत्तर हो गए।

गिरि-गह्वर-नदी-नद-संयुक्त, हिंसक-जंतु-परिवेष्टित, घोर वन में भीमकाय महाकाल को वाक्य-कौशल से लज्जित कर पति के प्राण लौटानेवाली देवी सावित्री की कीर्ति-पताका भारतवर्ष में अब तक फहरा रही है।

विपत्काल में विविध कष्ट भोगते हुए स्वामिसह-गामिनी, परित्यक्ता दमयंती की पति को खोजने की रहस्य-मयी युक्ति उसकी विशाल बुद्धि का परिचय दे रही है।

शर्याति-सुता सुकन्या, सांसारिक अतुल ऐश्वर्य से संपन्न किसी कमनीय-कांति राजकुमार की नहीं, एक नेत्र-रहित, जरा-जर्जर तपस्वी की पत्नी बनती है। सती-शिरो-मणि, तुमने कौन-से क्लेश नहीं सहे? निज पति का काया-पलट कराने और वासव के वज्र को स्तंभित करने में तुम्हारे पातिव्रत्य का प्रभाव कितना था, यह छिपा नहीं है।

जीवनाधार के धराशायी होने के कारण अपनी सेना के विचलित होने का समाचार सुनकर, विद्युद्वेग से रणां-गण में पहुँचकर, जिसने अपनी अपूर्व युद्ध-कला दिखलाई, उसी रानी कलावती ने पति के व्रण का विष चूसा, प्राण-त्याग किया, और प्रभातकालीन उषा के मंद प्रकाश में पति के पैरों से लगी हुई एक अनुपम नैसर्गिक समाधि में पाई गई।

समरस्थल में रणचंडी के समान जौहर दिखाकर जौहरबाई ने अपनी अंतिम श्वास में जो शब्द कहे, उन्हें लिखने का लोभ-संवरण नहीं किया जाता—

"हे चित्तौर दुर्ग हे प्यारे, किए निछावर तुम पर प्रान;
हो सकता था जितना मुझसे, उतना तेरा रक्खा मान।
जीते-जी यवनों को मैंने गढ़ पर रखने दिए न पैर;
अब जैसा चाहे, वैसा हो क्षत्रिय रहें, बसें या गैर।"

अहा! एक वीरांगना के कैसे मर्मस्पर्शी उद्गार हैं!

एक सर्वांग-सुंदरी नवयौवना प्रबल प्रतापी मुग़ल-सम्राट् अकबर की छाती पर कटार रक्खे देख पड़ती है। इंद्रिय-लोलुप, व्यभिचारी गिड़गिड़ा रहा है—

"पड़ा गुनाहों में हूँ ऐ मादर, इलाही तौबा, इलाही तौबा।"

यह नौरोज़-नाशिनी, सिंहिनी बीकानेर के महाराज पृथ्वीराज की अर्द्धांगिनी रानी किरणमयी थी।

अन्य एक रमणी ने कर्तव्य-च्युत, धर्म भ्रष्ट भर्ता की कैसी भयंकर भर्त्सना की है, कैसा धिक्कारा है, कैसा फटकारा है—

"जीते न तुम समर में, तो मर न क्या सके थे?
होकर अनाथिनी भी कहती कि पति भले थे।"

ललना-ललाट-बिंदु रानी बिंदुमती, धन्य है तू!

वस्त्राभूषणों और विलास-सामग्रियों के अर्थ पति से कलह करनेवाली कामिनियाँ अपने भावों की तुलना ज़रा इससे तो करें?

(शेष फिर)

चंद्रावली कुँअरि

× × ×

२. आजकल की तुर्की स्त्रियाँ

स्त्रियों की दशा में प्रायः हर जगह परिवर्तन जारी है। आज से सौ-पचास वर्ष पहले की और अब की हालत में बड़ा अंतर हो गया है। यह परिवर्तन विशेषकर पाश्चात्य देशों की सुघरी हुई बीबियों के आदर्श के अनुकरण पर हो रहा है। यह कहाँ तक मंगलकर, और स्त्रियों की स्वाभाविक माधुर्यमयी प्रकृति के अनुरूप है, इसका विवेचन करना इस टिप्पणी का उद्देश्य नहीं है। इस विषय पर हम फिर कभी किसी बड़े-से लेख में विस्तार के साथ लिखेंगे। इस समय तो हमें आज-कल की तुर्की स्त्रियों की कुछ बातें पाठकों की जानकारी के लिये लिखनी हैं।

हाल में 'मॉड रोनट्री' (Maud Rowntree)-नामक एक लेखिका, तेरह वर्षों के बाद, कुस्तुंतुनिया में आई हैं। वह इतने-से स्वल्प समय में, तुर्की स्त्रियों में, बड़ा भारी परिवर्तन हुआ देखकर बड़ी चकित हुई हैं। उनका कहना है कि गत योरपियन युद्ध ने मनुष्य-जाति के अंदर तरह-तरह के परिवर्तन उपस्थित कर दिए हैं; परंतु सबसे विचित्र परिवर्तन तुर्की स्त्रियों में ही हुआ है। यदि सच पूछा जाय, तो वहाँ के वर्तमान प्रजातंत्र-शासन के संगठन पर भी वहाँ की सद्यः-समुन्नत स्त्रियों का

बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। अब तो जो कोई वर्तमान तुर्की की ओर दृष्टि-पात करेगा, वही वहाँ की स्त्रियों की सुधरी हुई दशा देखकर आश्चर्य में पड़े विना न रहेगा।

आज से कुछ ही दिनों पहले तक तुर्की स्त्रियाँ दासी की भाँति पूरी तरह पराधीन रक्खी जाती थीं। वे हरम के भीतर, खोजों के पहरे के अंदर, पड़ी रहती थीं। पर आज वे अपने राष्ट्र के शासन में भी अपनी आवाज़ ऊँची करने को तैयार दिखाई देती हैं। उन्होंने अपनी एक "महिला-मताधिकार-रक्षिणी संस्था" स्थापित कर रक्खी है। इसकी सदस्याओं की संख्या दिन-दिन बढ़ती ही जाती है। अभी इसमें कई सौ स्त्रियाँ हैं। यह संस्था आजकल स्त्रियों को समान-विवाह, उत्तराधिकार और वैवाहिक संबंध-विच्छेद के अधिकार दिलाने के लिये वहाँ की राष्ट्र-सभा से लिखा-पढ़ी कर रही है।

युद्ध के पहले वहाँ की स्त्री-जाति कोई स्वतंत्र व्यवसाय नहीं करती थी—सभी मरदों की कमाई के भरोसे रहती थीं। परंतु आज उनमें एक-से-एक पढ़ी-लिखी अध्यापिकाएँ हैं। एक बड़ी ही सुयोग्य चिकित्सिका हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ डॉक्टरी पढ़ रही हैं। कितनी ही इस्तंबोल के विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रही हैं। वहाँ वे पुरुषों के साथ-साथ काम करती हैं।

"नकी हानूम" नाम की सुप्रसिद्ध अध्यापिका एक बड़ा भारी स्कूल चला रही है, जिसमें केवल स्त्रियाँ ही सब काम करती हैं। वे शिक्षा के संबंध में किसी विदेशी की सहायता नहीं लेना चाहतीं। स्वयं भी किसी विदेशी के स्कूल में नहीं पढ़ा। सिवा तुर्की भाषा के और कोई भाषा भी वह नहीं जानतीं। इसी भाषा के द्वारा वह बालिकाओं और स्त्रियों को सब विषयों की शिक्षा देती और दिलवाती हैं।

आजकल वहाँ डरपोक और बुर्क़ा पहने हुए लड़कियाँ कम दिखाई देती हैं। वे बड़ी स्वच्छंदता से खुले-आम स्कूल में पढ़ने जाती और फुटबाल आदि खेलती हैं। पंद्रह वर्ष की उम्र तक तो लड़कियाँ ज़रूर ही स्कूल जाती हैं। इसके बाद जाना उनकी इच्छा के अधीन है। जलसों में भी आजकल स्त्रियाँ स्वच्छंद भाव से सम्मिलित होती हैं। धीरे-धीरे वहाँ के ऑफ़िसों में भी औरतें भरती की जा रही हैं। समस्त तुर्की राज्य में टेलिफ़ोन पर काम करने के लिये तुर्की स्त्रियाँ ही रक्खी गई हैं। शायद ही किसी व्यापारी का कोई ऐसा कारख़ाना हो, जिसमें स्त्रियाँ न काम करती हों। उनका उत्साह, निर्भीकता, कार्य-दक्षता और योग्यता देखकर दंग रह जाना पड़ता है।

अनाथ बच्चों और स्त्रियों की रक्षा के लिये उन लोगों ने जो सोसाइटी बना रक्खी है, वह बड़ी तत्परता के साथ अपना काम करती है। इसकी ओर से जो अनाथालय खुले हैं, उनका प्रबंध सर्वथा प्रशंसा के योग्य है।

अब तक किसी तुर्की स्त्री को अपना देश छोड़कर विदेश की ओर पैर बढ़ाने नहीं दिया जाता था। परंतु आज उनके लिये सारे संसार का द्वार खुला हुआ है। हाल में ही कोई तुर्की औरत वाशिंगटन (अमेरिका) की "स्त्रियों की अंतर्जातीय सभा" में भाग लेने के लिये गई थी। एक दूसरी महिला लंदन में होनेवाली अंतर्जातीय स्त्री-चिकित्सिकाओं की सभा में शामिल हुई थी। बहुत-सी स्त्रियाँ योरप और अमेरिका के भिन्न-भिन्न नगरों में जाकर पढ़ रही हैं। लौट आने पर वे अवश्य ही अपने देश में अच्छे ओहदे पा जायँगी।

स्त्रियों की उन्नति की सीढ़ी तैयार हो गई है, और तुर्की नारियाँ उस पर बड़ी तेज़ी से चढ़ती चली जा रही हैं। उनका साहस अदम्य है। ईश्वर करे, वे इसी सीढ़ी के सहारे उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जायँ।

ईश्वरीप्रसाद शर्मा

× × ×

२. शादी की रस्में

आफ़्रिका में एक वहामा जाति है। उसमें विवाह की यह रीति है कि लड़की के बाप को छः गऊएँ या भैंसें देनी पड़ती हैं। विना इसके विवाह नहीं हो सकता। वहाँ मुटाई सुंदरता का चिह्न है। जो लड़की जितनी ही मोटी होगी, वह उतनी ही सुंदरी समझी जायगी, और उसके बाप को उतने ही अधिक जानवर मिलेंगे। कुछ औरतें तो इतनी मोटी हो जाती हैं कि चल ही नहीं सकतीं। एक दूसरी जाति में विवाह के समय औरत मुँह में दूध भरकर अपने पति के ऊपर कुल्ले करती है। एक जाति में विवाह के समय लड़की के पैर में मोटी रस्सी बाँध दी जाती है, और उसके ससुरालवाले उसे खींचते हुए ले जाते हैं। कुछ जातियों में चार महीने के लड़के का ही विवाह हो जाता है। वगेशू-नामक एक जाति में लड़कियों की ख़ूब-

सूरती उनके चेहरे और छाती पर बनाए गए दाग़ों और घावों से समझी जाती है । वहाँ लड़कपन ही से सुई या और किसी चीज़ से छेदकर तथा राख मल-मलकर उन पर बीभत्स चिह्न बनाए जाते हैं । जिसके शरीर में जितने अधिक चिह्न होते हैं, वह उतनी ही ख़ूबसूरत और इज़्ज़तदार होती है । बाकी कूयू-नामक जाति में विवाह, प्रसन्नता के बदले, एक अशुभ कृत्य समझा जाता है । विवाह से आठ दिन पहले से महीनों बाद तक दोनों तरफ़ सिर्फ़ रोना ही मचा रहता है । इसमें लड़की को सबसे अधिक, आठ दिन तक दिन-रात, रोना पड़ता है । कुछ जातियों में यह रीति है कि यदि पति और पत्नी में झगड़ा हो जाय, और दोनों में से कोई किसी पर मिट्टी फेंक दे, तो वह तलाक़ समझ ली जाती है । फिर स्त्री और पुरुष, दोनों स्वतंत्रता-पूर्वक अपना-अपना विवाह कर सकते हैं ।

× × ×

४. तिब्बत की स्त्रियाँ

तिब्बत हिमालय के उत्तर में है । हिंदोस्तान का पड़ोसी होने के कारण इसपर भी भारतीय संस्कार और धर्म की छाप पड़ी है । फिर भी तिब्बत की स्त्रियाँ पुरुषों के समान अधिकार रखती हैं । वे स्वतंत्रता-पूर्वक व्यापार कर सकती हैं, और सार्वजनिक कार्यों में भी पुरुषों की बराबरी करती हैं । उनके धार्मिक अधिकार भी समान ही हैं । वहाँ के एक मठ की अधिष्ठात्री को लोग देवी का अवतार मानते और पूजा करते हैं । वहाँ की स्त्रियाँ इतनी स्वतंत्र हैं कि किसी भी पुरुष के साथ मज़े में बातचीत कर सकती हैं । उनको वे अपने घर बुला सकती हैं, और उनके साथ हिल-मिल और मौज-मज़ाक़ कर सकती हैं । नाच-रंग भी करती हैं । फिर भी वे अपने समाज की कोपदृष्टि या निंदा से बरी रहती हैं । समाज उनको सशंक दृष्टि से नहीं देखता ।

इस प्रदेश में बहु-विवाह की रीति है । सुनने में आया है कि एक स्त्री एकसाथ ही अनेक पुरुषों के साथ विवाह कर सकती है । यहाँ की विवाह-प्रणाली भी विचित्र है । एक कुटुंब के पाँच-सात भाई भी एक ही स्त्री से विवाह कर लेते हैं । उस स्त्री पर पति का अधिकार बड़े भाई ही को प्राप्त होता है । उसके लड़के भी बड़े भाई के ही माने जाते हैं ।

यहाँ की स्त्रियाँ शौक़ीन होती हैं ; पर अपने हाथ से काम कर लेने में बेइज़्ज़ती नहीं समझतीं । एक स्त्री अपने जीवन-चरित्र में लिखती है कि "यद्यपि मैं एक धनाढ्य कुटुंब में ब्याही हूँ, और मेरा पति करोड़ों रुपए कमाता था, फिर भी मेरी सास मुझसे रात-दिन काम-काज कराती रही । वह तो यही समझती कि मेरा शरीर लोहे का बना हुआ है ।"

× × ×

५. कोरिया की स्त्रियाँ

कोरिया जापान के पास एक छोटा-सा टापू है । यहाँ जापान का राज्य है । यहाँ की स्त्रियों में ऊँच-नीच का भेद है । अब तो स्थिति सुधरती जाती है । पहले लड़कियों को शिक्षा ही नहीं दी जाती थी । उसमें भी नीच कुटुंब की लड़कियों को शिक्षा देने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती थी । मिशनरियों के उद्योग से कई स्थानों में पाठशालाएँ स्थापित हुई हैं ; पर कन्याएँ अधिकतर अशिक्षिता ही रहती हैं । यहाँ की लड़कियों के लिये रसोई बनाना जानना अत्यंत आवश्यक समझा जाता है । स्त्रियाँ अपने कुटुंब के पुरुषों को पूरी मदद देती हैं । प्रायः प्रत्येक कुटुंब में पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी तंबाकू पीने की आदत रहती है । अतः यहाँ तंबाकू की खेती अधिक होती है, जिसमें स्त्रियाँ पुरुषों की अच्छी मदद करती हैं । बाज़ार में वस्तुओं के बेचने और ख़रीदने का काम भी स्त्रियाँ कर सकती हैं ।

यहाँ की युवतियाँ पाजामा और चोग़ा पहनती हैं, जिसमें उनको काम करते समय अड़चन नहीं पड़ती । कन्याओं का विवाह अधिकतर उनकी जन्मभूमि अथवा पास के प्रदेश में होता है । विवाह होने के बाद वह अपने ससुराल के गाँव के नाम से बुलाई जाती है, और बालक होने पर बालक की माता के नाम से । ऊँचे ख़ानदान की लड़कियाँ अच्छी पोशाक तथा भोग-विलास में ही लीन रहती हैं । उनको सीने-पिरोने और चित्रकला का भी शौक़ रहता है । ये स्त्रियाँ जब बाहर निकलती हैं, तो बंद गाड़ी में, और दासियों के साथ ही बहुत ऊँचे ख़ानदान की स्त्रियाँ कदाचित् ही बाहर निकलती हैं ।

छन्नूलाल द्विवेदी
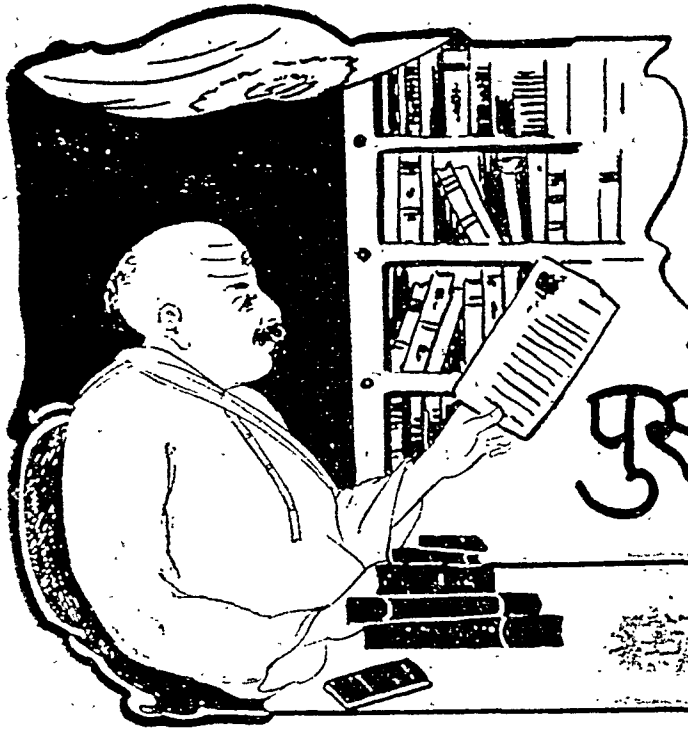
१. शारीरक और चिकित्सा

फुफ्फुस-सन्निपात-चिकित्सा—लेखक, स्वर्गीय पं० हनुमत्प्रसादजी जोशी वैद्य ; प्रकाशक, आरोग्याश्रम, बंबई। छपाई आदि संतोषजनक। पृष्ठ १८९। मूल्य २॥)

इस पुस्तक को देखने से मालूम होता है कि इसके लेखक जोशीजी एक होनहार प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति थे। शोक है कि अल्प अवस्था में ही आपका देहावसान हो गया। इस पुस्तक में नेमोनिया-ज्वर के संबंध की प्रायः सभी ज्ञातव्य बातों का, बड़ी योग्यता, खोज और परिश्रम के साथ, संग्रह किया गया है। प्राच्य और पाश्चात्य विचारों की सुंदर मीमांसा भी कई जगह की गई है। फेफड़ों का विवरण, परीक्षा, रोगी का उपचार, पथ्य, चिकित्सा, अनुभूत औषध तथा अच्छे हुए रोगियों के कुछ उदाहरण भी दिए गए हैं, और योग्यता-पूर्वक बड़ी उत्तम रीति से सब बातें समझाई गई हैं। केवल हिंदी में होने के कारण पुस्तक सर्वोपयोगी है। साधारण गृहस्थ और चिकित्सकों को एक बार अवश्य देखनी चाहिए।

× × ×

आयुर्वेदीय चिकित्सा-चमत्कार—लेखक, भिषग्रत्न गोपीनाथ गुप्त, हलदौरी। प्रकाशक, रसवैद्य नगीनदास-छगनलाल ऊँभा, आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी, अहमदाबाद। मूल्य लिखा नहीं। पृ० सं० ७३।

यह एक प्रकार का सूचीपत्र है। धन्यवाद !

× × ×

२. दर्शन, धर्म और वेद

गीताविमर्श—लेखक और प्रकाशक, श्रीनरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ। प्राप्तिस्थान, वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद। आकार मँझोला ; पृ० सं० ३५२। छपाई साधारण। कागज़ संतोषजनक। टाइटिल-पेज सुंदर ; तीन चित्र (एक लेखक का और दो 'अर्जुन-विषाद' के) ; मूल्य १॥)

इस पुस्तक को वेदतीर्थजी ने जेल-तीर्थ में तैयार किया है। आपको "चिरकाल से इस ग्रंथ के लिखने की इच्छा रहने पर भी पबलिक कार्यों से अवकाश न मिला", और "अनायास यह इच्छा जेल में पूर्ण हुई।" इसमें 'आत्मनिवेदन', 'भूमिका', 'अनुभूमिका' आदि के अतिरिक्त 'पूर्व-प्रसंग' और 'उत्तर-प्रसंग'-नामक दो बड़े-बड़े प्रकरण हैं। इनमें, गीता के संबंध में, अनेक ज्ञातव्य बातों का वर्णन है। पूर्व-पक्षों और उत्तर-पक्षों की योजना योग्यता-पूर्वक की गई है। भाषा सरल, सुबोध है, और लिखने की रीति हृदयंगम। यद्यपि गीता पर अनेक भाष्य और टीका-टिप्पणी आदि विद्यमान हैं—भगवान् शंकर का अद्वितीय भाष्य और लोकमान्य तिलक का 'गीता-रहस्य'-नामक गंभीर विचारों का सागर भी इसकी शोभा बढ़ा रहा है—तथापि केवल हिंदी जाननेवाले कोमल बुद्धि के लोग इस 'गीताविमर्श' से लाभ उठा सकेंगे।

उक्त दो प्रकरणों के बाद मूल-गीता के श्लोक और उसके बाद हिंदी-अनुवाद भी है। अंत में कठिन शब्दों

का विवरण और अकारादिक्रम से श्लोकों की सूची भी है। इसके अतिरिक्त और भी कई छोटी-मोटी बातें हैं। पुस्तक लिखने में वेदतीर्थजी ने यथेष्ट श्रम किया है, अतएव उपादेय है।

मूल-श्लोकों के पाठ में यदि पृष्ठों के ऊपर अध्यायों का निर्देश भी रहता, या मूल-श्लोकों के साथ ही नीचे हिंदी-अनुवाद छापा जाता, तो अनुवाद का मूल से मिलान करने में कम कठिनता होती।

"कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः;
अकर्मणश्च बोद्धव्य गहना कर्मणो गतिः।
कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः;
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।"
(गीता अ० ४, श्लोक १७, १८)

इनका अनुवाद वेदतीर्थजी ने किया है—कर्मों को जानना चाहिए, विकर्म भी जानने चाहिए, और अकर्म भी। कर्मों की गति गूढ़ है। जो कर्मों में अकर्म और अकर्मों में कर्म देखे, वही सबसे बुद्धिमान् है।

जिन 'गीता-रहस्य' न समझ सकनेवाले नवयुवकों के लिये आपने यह अनुवाद लिखा है, हमारी समझ में तो, वे इससे कुछ न समझकर अपने कर्मों को ही ठोकेंगे।

'प्रज्ञावाद' का अर्थ आपने लिखा है—'ज्ञान की बातें' (?)

"अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे;"

का अर्थ करते हुए आपने लिखा है—"अर्जुन बातें तो पंडिताई (?) की कर रहे हो"

(३२१ पृ० में) 'कश्चन' का अर्थ आपने लिखा है 'कोई भी नहीं' (?) (पृ० ३२६ में) 'यदृच्छया' का अर्थ किया है 'अपने आप आया हुआ' (?)

एवं 'ग्लानि'=ह्रास, 'परिक्लिष्ट'=रो-झीककर 'भैक्ष्य'=भिक्षा से लाया हुआ अन्न इत्यादि भी चिंतनीय हैं। आशा है, अगले संस्करण में इन बातों पर ध्यान दिया जायगा। 'अनुभूमिका' में पुस्तक श्रीकृष्णजी को अर्पण की है, परंतु इसके आगे एक मोटे 'समर्पण' में 'आर्यसमाज-संस्थापक श्रीस्वामी दयानंद सरस्वतीजी महाराज', लो० मा० तिलक, महात्मा गाँधी तथा 'फ़्रि मिनल ला एमेंडमेंट' का नाम लिखा है। वेदतीर्थजी ने इस 'श्वानं युवानं मघवानमाहु' के सम्मर्द में श्रीकृष्ण को भुलाकर उचित ही किया। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि गीता-भर में किसी पद्य को प्रक्षिप्त न मानकर भी आपने भगवान् कृष्ण को ईश्वरावतार मानने में कसर काटी है। शायद यह इसलिये कि यह पुस्तक 'आर्य-समाज के संस्थापक' को समर्पण करनी थी।

× × ×

ऋग्वेद-भाष्य—लेखक, पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ। आकार बड़ा। छपाई, काग़ज़ आदि संतोषजनक। पृ० सं० ७८२। मूल्य ४॥); आर्य-साहित्य-मंडल, अजमेर से प्राप्य।

इस पुस्तक में ऋग्वेद के अष्टम मंडल की कुछ ऋचाओं (पाँचवें और छठे अध्याय में से) की संस्कृत तथा हिंदी-व्याख्या है। काव्यतीर्थजी बहुत दिनों तक आर्य-समाज के उपदेशक रहे हैं। अतएव आपकी यह व्याख्या उसी मार्ग की अनुगामिनी है। वेदों में अनेक देवतों के सूक्त प्रसिद्ध हैं। जो सूक्त जिस देवता से संबंध रखता है, उसमें उस देवता का सविशेष वर्णन रहता है। वेदों में इंद्र, अग्नि, अग्नीषोम, प्रजापति आदि अनेक देवतों के विविध प्रभाव और उनके शत्रुओं, मित्रों, स्त्रियों, पुत्रों और माता-पिता प्रभृति का भी वर्णन मिलता है। स्वामी दयानंदजी और उनके अनुगामी लोग इन सबको निराकार परमात्मा के साथ चिपकाने का प्रयत्न किया करते हैं। इन पंडितजी ने भी यही किया है। परमात्मा की शक्तियों को उसकी स्त्रियाँ और संसार को उसका पुत्र बताया है। उसके शत्रुओं और मित्रों की भी कल्पना की है। परंतु परमात्मा का पिता किसी को नहीं बताया। शायद वह किसी दूसरी पुस्तक में—जिसका कई जगह इस पुस्तक में उल्लेख है—बताया हो। हाँ, इंद्र की माता का जहाँ ज़िक्र है, उन मंत्रों में 'इंद्र' का अर्थ आपने सम्राट् किया और एक सभा को उसकी माता बताया है।

"आदीं शवस्यब्रवीदौर्णवाममहीसुवम् ;
ते पुत्र; सन्तु निष्टुरः।"
(ऋ० ८।७७।२)

इस ऋक् में इंद्र की माता—शवसी—ने 'हे पुत्र' कहकर इंद्र का संबोधन किया और उसके शत्रुओं के नाम बताए हैं। पंडितजी का कहना है कि सभा सम्राट् को 'हे पुत्र' कहकर उसके शत्रुओं का पता बतावे। आज तो कोई पार्लियामेंट अपने सम्राट् को 'पुत्र' कह-

दान

[चित्रकार—श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू]

अली चली पूजन भली, भिच्छुक माँगत दान ;
कछुक देति, बिहँसति वदन, धन्य रूप गुन मान !

N. K. Press, Lucknow.

कर पुकारती नहीं, शायद 'आर्यवैदिक समय' में यह रीति रही हो। शिवशंकर शर्माजी के विचार कई अंशों में स्वामी दयानंदजी की अपेक्षा अधिक परिमार्जित और उनसे भी दो क़दम आगे बढ़े हुए हैं। हमें यह देखकर संतोष हुआ कि आपका यह आग्रह नहीं है कि 'इंद्र' शब्द का और कुछ अर्थ होता ही नहीं। आपका कहना केवल यही है कि 'इंद्र' का अर्थ परमात्मा भी हो सकता है। वैदिक साहित्य से प्रेम रखनेवाले स्वतंत्र विचारकों को यह पुस्तक अवश्य देखनी चाहिए।

× × ×

कठोपनिषत्—अँगरेज़ी-अनुवाद-सहित। लेखक और प्रकाशक, हरिरघुनाथ भागवत बी० ए०। छपाई, काग़ज़ आदि संतोषजनक। आष्टेकर कंपनी, पूना से प्राप्य। मूल्य ।=) आने। स्कूली साइज़। पृ० सं० ४५।

मूल संस्कृत और उसके नीचे अँगरेज़ी-अनुवाद है। अनुवाद के नीचे पृथक्-पृथक् शब्दार्थ भी दिया है। मूल का एक-एक शब्द देकर उसका समानार्थक अँगरेज़ी-शब्द आगे दिया गया है। जो लोग अँगरेज़ी के ज़ोर से उपनिषदों में प्रवेश करना चाहते हों, यह पुस्तक उनके काम की है।

× × ×

यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी—श्रीस्वामी दयानंद सरस्वती-निर्मित। भाषा-भाष्य-सहित। वैदिक यंत्रालय, अजमेर में मुद्रित। मूल्य ।।।=)

प्रेषक को धन्यवाद !

× × ×

लघुस्तवराज—संस्कृत तथा हिंदी-व्याख्या-सहित। डिमाई आकार। पृ० सं० ५२। मूल्य ।।।); बिना जिल्द का मूल्य ।=) है। प्राप्तिस्थान, पं० लक्ष्मणदास शर्मा, माधवदास शर्मा, प्राचीन संस्कृत-पुस्तकालय, बखत-सागर, नागौर (मारवाड़)।

इसके रचयिता हैं श्रीलघ्वाचार्य; संस्कृत-टीकाकार हैं श्रीसोमतिलक सूरि; और हिंदी-व्याख्याकार हैं श्रीलक्ष्मणदास शर्मा। पुस्तक में २१ श्लोक हैं, जिनमें अधिकांश तंत्र-शास्त्र में प्रसिद्ध बीज-मंत्रों से संबद्ध भगवती की स्तुति है। संस्कृत-टीका देखने से ही इनके महत्त्व का पता चलता है। संस्कृत-टीकाकार संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् होने के अतिरिक्त तंत्र-शास्त्र के भी सुनिपुण मर्मज्ञ थे। यदि यह टीका न होती, तो मूल का तत्त्व समझना क़रीब-क़रीब असंभव ही था। सोमतिलक सूरिजी ने इस स्तवराज के संबंध में एक दंत-कथा लिखी है। किसी बड़े राजा की सभा में दूर देश से कोई विद्वान् पहुँचा। राजा ने पूछा—आपकी विद्या की क्या विशेषता है? विद्वान् ने उत्तर दिया—यदि मैं किसी आठ साल के अपढ़ लड़के के सिर पर हाथ रखकर अभिमंत्रित करूँ, तो वह भी सरस कविता की धारा बहा सकता है। राजा का इशारा पाकर तुरंत एक लड़का लाया गया। विद्वान् ने अभिमंत्रण किया, और उस लड़के ने नवकोटि कात्यायनी की स्तुति में २१ पद्य तुरंत पढ़ सुनाए। इनमें अनेक बीज-मंत्रों का सन्निवेश है। पुस्तक बहुत उत्तम है। हिंदी-टीका साथ होने से इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

शांतिवाणी—माताजी मैत्रेयी देवी द्वारा बँगला 'शांति-वाणी' से अनूदित। प्रकाशक, अध्यापक यदुनाथसिंह एम्० ए०, पी० आर्० एस्०, मेरठ-कॉलेज, मेरठ। पृष्ठ-संख्या ५७। मूल्य ।।) है।

हर्ष की बात है कि इस पुस्तक से मूर्ख हिंदुओं का उद्धार करनेवाले एक और अवतार का पता हिंदीवालों को चल जायगा। इस पापी कलियुग में जहाँ निकलंकी अवतार सर आग़ाख़ाँ, ग़ुलामअहमद क़ादियानी और न-जाने कितने धुनिए, जुलाहे पीर, पैग़ंबर, ख़्वाजा, ग़ाज़ी मियाँ आदि बनकर हिंदुओं को स्वर्ग की ओर घसीटे लिए जा रहे हैं, वहाँ 'ठाकुर दयानंद' नाम के एक और अवतार का प्रकट होना हिंदुओं के लिये सौभाग्य की बात है। सृष्टि के आदि से ही चालाक लोग बुद्धुओं की हजामत बनाते रहे हैं, और सृष्टि के अंत तक ऐसा ही होता भी रहेगा—यह हमारा विश्वास है। अस्तु। संसार से कल्मष का नाम-निशान मिटा देने के लिये ही श्रीठाकुर दयानंदजी ने अवतार लिया है, यही इस पुस्तक का मर्म है। आपका एक फ़ोटो भी इसमें है। आसाम की ओर आपके दो-एक मठ भी हैं। संसार-भर को ठीक मार्ग पर चलाना आपका लक्ष्य है, जो बहुत अच्छा है। यह काम पूरा करने के लिये आप सदा प्रयत्नशील रहते हैं, और उसमें आपने अनेक कष्ट भी सहे हैं। "स्वदेशी आंदोलन" के समय आपके

चारपत्र उलट डाला" और "सभी अख़बार उठाकर रख दिया", ये इलाहाबाद के मुहाविरे अवश्य हैं, परंतु विशुद्ध हिंदी नहीं । दूसरा यह कि श्रद्धेय एम्० एल्० ए०जी के "कर-कमलों में" पुस्तक समर्पण कीजिए, "चरणों में" नहीं ।

× × ×

प्राणनाथ—श्रीरमेशचंद्र दत्त के The Lake of Palms-नामक उपन्यास का स्वतंत्र अनुवाद । अनुवादक, श्रीयुत जी०पी० श्रीवास्तव, बी०ए०, एल्-एल्०बी० । प्रकाशक, "चाँद"-कार्यालय, इलाहाबाद । पृष्ठ-संख्या २५०+३६ । उपन्यास के समाप्त होने पर ३६ पृष्ठ की अनुवादक महाशय की "संक्षिप्त जीवनी" है । उसके लेखक-द्वय हैं श्रीमहावीर-प्रसाद बी०ए० और शंभुदयाल सिनहा बी० ए० । मूल्य २)

श्रीरमेशचंद्र दत्त बंकिम के साथियों में थे । बंकिम स्वयं उपन्यास-लेखन में सिद्ध-हस्त थे । उन्होंने बँगला सिखाने के बहाने रमेशचंद्र को भी उपन्यास लिखने के लिये उत्साहित किया । फलतः दत्त बाबू ने कई सामाजिक उपन्यास लिखे । पर The Lake of Palms शायद अँगरेज़ी में ही लिखा गया था । बंकिम ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में सिद्ध-हस्त थे । रमेशचंद्र ने सामाजिक उपन्यास लेखन-कला की नींव डाली । सामाजिक उपन्यास बिना किसी उद्देश्य के तो लिखे जाते ही नहीं । इस उपन्यास में रमेशजी ने बाल-वैधव्य का बड़ा करुण दृश्य खींचकर बाल-विधवा का विवाह कर उसे सुखी बनाने का प्रयत्न किया है । अनुवादक स्वयं एक प्रवीण उपन्यास-लेखक हैं । इसलिये भावों के चलनी में छनने के पश्चात् भी सरसता कम नहीं हुई । अंत में बहुत कुछ भाव श्रीवास्तवजी के ही हैं । परंतु चित्र में दूसरी क़लम का रंग नहीं आने पाया । हमें श्रीवास्तवजी से आशा भी यही थी ।

हमारा प्रकाशकों से अनुरोध है कि वे विज्ञापन की भूमिका और जीवनीमय परिशिष्ट के अंदर एक सुंदर ग्रंथ को बंद करने का प्रयत्न न करें । एक से ग्रंथ का महत्त्व घटता है, और दूसरे से अनुवादक का । अभी श्रीवास्तवजी की अवस्था ही क्या है, जो उनके भक्त उनकी "जीवनी" लिखने के लिये क़लम चलाने लगे । कुछ परिचय ही देना था, तो फ़ोटो काफ़ी था । उसे देखकर आपके भक्त अवश्य आपको पहचान लेते ।

× × ×

मोहिनी—लेखक, श्रीयुत भैयालाल जैन । संपादक और प्रकाशक, श्रीमहेंद्रकुमार जैन, महावीर-ग्रंथ-कार्यालय, आगरा। पृष्ठ-संख्या ८३ । मूल्य ।।)

प्रस्तुत पुस्तक एक स्त्रियों के लिये उपयोगी आख्यायिका है । प्लॉट बिलकुल सरल है । एक ब्याही हुई स्त्री पर-पुरुष से अपना प्रेम प्रकट करती है । परंतु अधःपतन के पहले ही एक महात्मा उसका उद्धार करते हैं । फिर वही पर-पुरुष उसके पति का रूप रखकर उसके व्रत को तोड़ने का प्रयत्न करता है, पर असफल होता है । उद्देश्य अच्छा है, परंतु भाषा और भावों में बहुत कुछ उन्नति होने की जगह है । प्राक्कथन में कामताप्रसादजी का सर्टिफ़िकेट है । फिर समालोचना कराने की क्या आवश्यकता थी ?

× × ×

स्नेहलता—लेखक, श्रीयुत आत्माराम देवकर । प्रकाशक, श्रीयुत दुर्गाप्रसाद खत्री, प्रोप्राइटर लहरी-बुकडिपो, काशी । पृष्ठ-संख्या ११४ । मूल्य ।।)

प्रस्तुत पुस्तिका में लेखक महाशय की कुछ मौलिक कहानियों का संग्रह है । देवकरजी 'निवेदन' में पाठकों को यह आज्ञा देते हैं कि वे दोषों की निःसंकोच भाव से सूचना दें । अतः हमें उनकी आज्ञा का पालन उचित जान पड़ता है ।

उपन्यास को सर्वांगसुंदर बनाने में भाव, शैली, चरित्र-चित्रण, तथा घटना-वैचित्र्य—सब परस्पर सहायता करते हैं । घटना-वैचित्र्य उतना कठिन नहीं है, जितना कि चरित्र-चित्रण । उपन्यास वही श्रेष्ठ श्रेणी में स्थान पाता है, जिसमें चरित्र-चित्रण भी पुष्ट हो । घटना-वैचित्र्य उपन्यास को रोचक बनाने के लिये आवश्यक है । परंतु शैली, उपन्यास क्या, किसी भी ग्रंथ के लिये, उतनी ही आवश्यक है, जितना कि भोजन में रस । यदि भाषा पुष्ट नहीं है, यदि उसमें मधुर हास्य के छींटे नहीं हैं, यदि उपमाओं द्वारा उपन्यास से परे संसार की झलक नहीं मिलती, तो भावों के उच्च होते हुए भी रोचकता नहीं आने पाती । भावों के लिये हम लेखक महाशय को बधाई देते हैं । उपन्यासों में ऐसे ही प्रेम, देश-भक्ति, साहस और उदारता के भावों का समावेश होना चाहिए । परंतु इसके अलावा अन्य तीन गुणों की हमें इस उपन्यास में कमी मालूम होती है । जो कुछ आपने लिखा है, वह आपके नव अंकुरित उत्साह का

परिचय-मात्र है। हम उससे संतुष्ट नहीं हैं। हमें आशा है, आप अब अपनी शैली को पुष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। साथ ही घटना-वैचित्र्य का भी अपनी कहानियों में समावेश करें। यों ही कुछ समय में चरित्र-चित्रण-शक्ति भी आ जायगी। मेहनत की आवश्यकता है। यों तो सभी कुछ ईश्वर-प्रदत्त हुआ करता है, परंतु मौलिकता मानव-बुद्धि का ही चमत्कार है। स्टीविनसन इँगलिस्तान के एक भारी लेखक हो चुके हैं। उनकी रचनाओं से प्रसन्न होकर किसी महाशय ने उनकी मौलिकता की बड़ी तारीफ़ की। स्टीविनसन ने कुछ उत्तर न देकर अपनी वह रद्दी दिखाई, जिसमें उन्होंने अपनी सैकड़ों रचनाओं को फेक दिया था। तात्पर्य यह है कि प्रण कर लीजिए, जो कुछ लिखिएगा, उसे अपने आदर्श तक पहुँचाने के लिये कुछ उठा न रखिएगा। फिर प्रेमचंदजी से आपकी भी तुलना की जायगी।

कालिदास कपूर

× × ×

४. शिक्षा

दि डाल्टन प्लैन—लेखक, पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी एम्० ए०, एल्० टी०। प्रकाशक, स्टुडेंट्स कोआपरेटिव स्टोर्स, कान्यकुब्ज-कॉलेज, लखनऊ। पृष्ठ-संख्या १९; मूल्य =)

प्रस्तुत पुस्तक अँगरेज़ी-भाषा में है। विषय भी अँगरेज़ी है। शायद अभी तक हिंदी में इस विषय पर कोई लेख भी न छपा हो। विषय की पूरी व्याख्या पुस्तक-परिचय की सीमा के अंदर नहीं हो सकती। अस्तु, कुछ उसके मूल-सिद्धांतों का ही यहाँ विवरण दिया जाता है।

आजकल अँगरेज़ी-पाठशालाओं में टाइम-टेबिल का प्राधान्य है। एक घंटी बजी, 'अँगरेज़ी', दूसरी घंटी बजी, 'हिसाब', तीसरी बजी, 'इतिहास'। यों ही विषय और अध्यापक घड़ी के हिसाब से बदलते रहते हैं। यह युग कलों का है—कलियुग को 'कलयुग' लिखें, तो अधिक ठीक होगा। अतएव इस टाइम-टेबिल द्वारा लड़कों और उनके अध्यापकों के मस्तिष्क को कल का रूप देने का प्रयत्न किया जा रहा है। एक बात और है, विषय तो घंटी के साथ बदलता है ही, किंतु जैसे एक मशीन उतने ही मोज़े एक घंटे में निकाल सकती है, जितने कि दूसरी, उसी तरह यह भी मान लिया गया है कि यदि अध्यापक ने पाँच पृष्ठ पढ़ा दिए और वे एक के दिमाग़ में उतर गए, तो समझ लीजिए कि सभी के दिमाग़ में उतर गए।

अब कुछ समय से हर तरफ़ इस 'कलयुग' की 'कल-प्रथा' के विरुद्ध संसार के विचारशील नेताओं ने आंदोलन आरंभ कर दिया है। राजनीति और सामाजिक संगठन के क्षेत्र में तो महात्मा गाँधी के विचारों से पाठक परिचित ही होंगे, अब शिक्षा-क्षेत्र में इस कल-प्रथा के विरुद्ध क्योंकर आंदोलन शुरू हुआ, यह भी सुन लीजिए।

बीसवीं शताब्दी के जन्म ही से इटली की एक विदुषी महिला श्रीमती मैरिया मांटसोरी ने शिशु-शिक्षा के संबंध में स्वतंत्रता के सिद्धांत को लेकर एक नई प्रणाली का उद्घाटन किया है, जो इस समय उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। उनकी प्रणाली में मुख्य बात यही है कि वह एक ही लाठी से सबको हाँकना ठीक नहीं समझतीं। उन्होंने ऐसे खिलौने तैयार किए हैं, जिनके द्वारा शिशु स्वतंत्रता-पूर्वक अपनी उन्नति आप ही कर सकता है। अध्यापक का काम यह नहीं है कि वह विद्या को बच्चों के दिमाग़ में भरने का प्रयत्न करे। विद्या का बीज बच्चे के मस्तिष्क ही में है। केवल उसके फूलने-फलने में सहायता देना-भर अध्यापक का कर्तव्य है।

पर मांटसोरी की शिक्षा-प्रणाली ३ वर्ष से ७ वर्ष तक के बालकों तक ही परिमित थी। बड़े लड़कों की पढ़ाई में वही सिलसिला जारी था।

अमेरिका के संयुक्त-राज्य में एक जगह है, जिसका नाम है डाल्टन (Dalton)। वहाँ हमारे स्कूलों के समान एक हाई स्कूल में श्रीमती हेलेन पार्कहर्स्ट ने, अब से चार वर्ष पूर्व, हाई स्कूलों की पाठ्य प्रणाली के साथ श्रीमती मांटसोरी के सिद्धांतों की पुट देकर, एक नवीन प्रणाली का आविष्कार किया, जिसका नाम रक्खा गया The Dalton Laboratory Plan। हिंदी में कहिए प्रयोगशाला-प्रणाली।

लखनऊ-डिवीज़न के इंस्पेक्टर ऑफ़ स्कूल्स, श्रीयुत एन्० ए० रस्ट साहब, इस प्रणाली के बड़े भक्त निकले। आपका एक लेक्चर हुआ, जिसमें आपने बड़ी योग्यता के साथ इस प्रणाली की व्याख्या की। इस पुस्तक के लेखक महाशय कान्यकुब्ज-कॉलेज के प्रिंसिपल हैं। आपने अगले वर्ष से इस प्रणाली के अनुसार अपने

कॉलेज में पाँचवें से आठवें दरजे तक पढ़ाई शुरू कर दी। एक वर्ष तक पढ़ाकर आपने जो कुछ अनुभव किया, उसी का इस छोटी-सी पुस्तिका में समावेश है।

हमें पुस्तिका के बाहर जाने का अधिकार नहीं है। इसलिये हम यह नहीं लिखना चाहते कि डाल्टन प्लैन के मूल-सिद्धांतों का क्योंकर परिपालन हुआ है, और सफलता प्राप्त भी हुई है या नहीं। यदि किसी को कुछ शक हो, तो उसे दूर करने के लिये बड़े-बड़े शिक्षा-नायकों के सर्टिफ़िकेट भी मौजूद हैं। अस्तु। पुस्तक की आलोचना के बहाने हमें डाल्टन प्लैन के मूल-सिद्धांतों ही पर विचार करना है।

डाल्टन प्लैन में तीन मुख्य बातें हैं—विषयगत कमरे, महीनेवार काम करने का ब्योरा और उस काम के पूर्ण करने का भार विद्यार्थियों के ही ऊपर होना। अध्यापक का एक काम यह है कि अपने विषय का ऐसा मासिक ब्योरा बनावे, जिसे विद्यार्थी लोग उससे अधिक सहायता लिए हुए बिना पूरा कर सकें, और दूसरा यह कि अध्यापक व्यक्तिगत कठिनाइयों को दूर करता हुआ विद्यार्थियों को निर्दिष्ट विषय के मासिक काम को पूर्ण करने में सहायता दे।

अब यदि आप इस प्रणाली की हमारी प्राचीन पाठशालाओं की अध्यापन-प्रणाली से तुलना करें, तो यही ज्ञात होगा कि उस प्राचीन प्रणाली का यह वैज्ञानिक परिवर्तन-मात्र है। प्राचीन शिक्षालयों में टाइम-टेबिल नहीं था। छोटे दरजों के अध्यापक तो हरफ़नमौला थे। उनके लड़कों के पाठ्य विषय कभी एक ही न रहते थे। कोई ब्याज-बट्टा सीख रहा है, तो कोई अभी जोड़-बाक़ी के ही फेर में है। कोई खाता लिख रहा है, तो किसी को अभी ककहरा भी नहीं याद हुआ है। और, गुरुजी? अपने तकिए के सहारे अपनी योग्यता के अनुसार सभी की व्यक्तिगत कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उच्च शिक्षालयों में विषय-विशेष के ज्ञाता पंडितों के पास विद्यार्थियों को अलग-अलग जाना पड़ता था। हाँ, पुस्तकालय नहीं थे, Assignments नहीं थे, और Graphs नहीं थे। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रयोगशाला की प्रणाली कोई ऐसी विदेशी देवी नहीं है, जिसने पाश्चात्य स्वर्ग से उतरकर यहाँ दम लिया हो। यों क्यों न कहिए कि इस देवी ने जन्म यहीं लिया। पश्चिम में उसका पुनर्जन्म-मात्र हुआ है, और अब वह अपने ही देश में आई है। देखने में वेश उसका विदेशी अवश्य है, पर हृदय पक्का स्वदेशी है। क्या भारत का शिक्षक-समुदाय यह जानकर उसको अपनाने का प्रयत्न न करेगा?

कालिदास कपूर

× × ×

५. व्यापार

गिलटसाज़ी—लेखक, श्रीयुत रामनारायणजी मिश्र। प्रकाशक, व्यापार-कार्यालय, लखनऊ। छपाई साधारण। पृष्ठ-संख्या १२। मूल्य ≈)

इस पुस्तिका में बिजली के द्वारा गिलटसाज़ी, मुलम्मा करने का तरीक़ा, सरल भाषा में समझाया गया है। पुस्तक उपयोगी है।

× × ×

व्यापार-रत्नमाला—लेखक, श्रीयुत कोरहासाह। प्रकाशक, श्रीमय कोरहासाह-रामकिशोर, अपर बाज़ार, चौक, राँची। पृष्ठ-संख्या ६४। मूल्य ॥)

इस पुस्तक में कुछ दवाएँ और ऐसी वस्तुओं के बनाने की सरल विधि लिखी गई है, जो बहुत कम ख़र्च से तैयार की जा सकती हैं। पुस्तक उपयोगी मालूम होती है। यदि मूल्य कुछ कम रक्खा जाय, तो अच्छा हो।

× × ×

व्यापार-शिक्षा—संग्रहकर्ता, श्रीमान् क्षेत्रपाल शर्मा। पृष्ठ-संख्या ४८। छपाई साधारण। मूल्य ।); पुस्तक मिलने का पता—सुखसंचारक-कंपनी-कार्यालय, मथुरा।

यह पुस्तक शायद उन नौजवानों को व्यापार की शिक्षा देने के लिये लिखी गई है, जो सुखसंचारक-कंपनी के कारख़ाने में काम करते हैं, या उनके एजेंट हैं। इस पुस्तक से उन लोगों का हित भी हो सकता है, जिन्होंने व्यवसाय करने का इरादा कर लिया है, अथवा अभी उसका आरंभ किया है। जो लोग किसी भी व्यापार का व्यवसाय कर चुके हैं, उनके लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी नहीं होगी। इस पुस्तक में, आरंभ में, संक्षेप में, व्यवसायियों के गुण बतलाकर कार-बार चलाने के तरीक़े समझाए गए हैं। अंत में कुछ उपदेश देकर कर्मचारियों के लिये नियम लिख दिए गए हैं। पर सब बातें संक्षेप में ही हैं। हम इस विषय की एक बड़ी

पुस्तक लिखने की ओर उपयुक्त अनुभवी लेखकों का ध्यान दिलाते हैं। कारण, वैसी विस्तृत, सर्वांग-पूर्ण, सुलिखित, सुचिंतित पुस्तक की हिंदी-साहित्य में बड़ी आवश्यकता है। आशा है, शर्मांजी अपनी सूचना के अनुसार उसे प्रकाशित कराकर इस कमी को शीघ्र दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

× × ×

व्यापार-शिक्षक—लेखक तथा प्रकाशक, लाला मूलचंद अग्रवाल, बुक्सेलर, ब्यावर (राजपूताना)। पृष्ठ-संख्या २८। मूल्य ।); छपाई अच्छी।

इस पुस्तक में कुछ दवाएँ और साबुन बनाने की विधि बताई गई है, और अंत में व्यापारी के ध्यान देने योग्य कुछ बातें भी हैं। इस पुस्तक को लेखक ने हज़ारों रुपए कमाने की कुंजी बतलाया है। पर हमारी राय तो यह है कि इससे व्यापार की कोई विशेष शिक्षा नहीं मिलती। अग्रवालजी अपनी भूमिका में लिखते हैं कि धन कमाने के लिये यह पुस्तक नहीं प्रकाशित की गई है। परंतु इस २८ पृष्ठ की पुस्तिका का मूल्य चार आने रखना उक्त कथन के विपरीत धारणा उत्पन्न करता है।

दयाशंकर दुबे

× × ×

६. गुजराती

श्रीज्ञानेश्वरी भगवद्गीता—अनुवादक, श्रीरतसिंह-दीपसिंह परमार तथा श्रीगोवर्द्धनदास-कहानदास अमीन। प्रयोजक और प्रकाशक, भिक्षु अखंडानंद, सस्तुं-साहित्य-वर्द्धक कार्यालय, अहमदाबाद। छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ६८८। मूल्य ३); रेशमी जिल्द का ३=)

गुजराती-साहित्य की वृद्धि के लिये सस्तुं-साहित्य-वर्द्धक कार्यालय ने जो उद्योग किया है, वह गुजराती-साहित्य के इतिहास से कदापि नष्ट नहीं हो सकता। इस संस्था ने अभी तक जितने ग्रंथ प्रकाशित किए हैं, वे सब एक-से-एक बढ़कर हैं। धर्म, नीति, चरित्र, इतिहास, समाज आदि सभी विषयों पर इसने अच्छे, शुद्ध और सरल भाषा में लिखे हुए ग्रंथ प्रकाशित किए हैं। यह सब होने पर भी इसने मूल्य इतना कम रक्खा है कि वह अन्य भाषाओं के साहित्य-प्रचारकों के लिये आदर्श है। इस संस्था की बहुमूल्य साहित्य-सेवा का परिचय हिंदी-संसार को भी बहुत कुछ प्राप्त हो चुका है।

श्रीज्ञानेश्वर महाराज ने इस गीता को मराठी-भाषा में लिखा था। यह उसी का गुजराती-अनुवाद है। भगवद्गीता की टीकाएँ तो अब तक अनेकों प्रकाशित हो चुकी हैं। किसी में कुछ विशेषता है, किसी में कुछ। लोकमान्य तिलक महाराज का गीता-रहस्य तथा काशी से प्रकाशित प्रणवाश्रम की टीका अपने-अपने ढंग की और निराली हैं। वैसे ही श्रीज्ञानेश्वरी गीता भी अपने ढंग की एक ही है। टीकाकार ने इसे केवल धर्म-ग्रंथ का ही रूप नहीं दे रक्खा है। भाषा-गौरव, पद-लालित्य, उपमा-चातुर्य आदि के सुंदर समावेश से यह एक सुंदर काव्य-ग्रंथ बना दिया गया है। कहीं-कहीं तो इसके दृष्टांत ऐसे चुटीले या प्रभावशाली हैं कि पढ़ने के साथ ही मनुष्य को उनका व्यावहारिक ज्ञान हो जाता है। यह तृतीयावृत्ति है, जो कि इसकी लोकप्रियता का पक्का प्रमाण है। हिंदी में भी इसका अनुवाद हो गया है।

× × ×

महान् नेपोलियन—प्रयोजक, श्रीनर्मदाशंकर-बालाशंकर पंड्या। संपादक और प्रकाशक भी वही। छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ७९७; मूल्य ३)

पुरुष-सिंह, वीर-केसरी नेपोलियन बोनापार्ट के अनेक जीवन-चरित्र लिखे जा चुके हैं। उसके मित्रों ने भी उसके जीवन-चरित्र लिखे हैं, और शत्रुओं ने भी। परंतु सहृदय पाठकों का यही मत है कि नेपोलियन के अंतरंग मित्र जे० एम्० सी० ऐबट की लिखी हुई उसकी जीवनी से अच्छी कोई भी जीवनी नहीं है। यह ग्रंथ भी उसी के आधार पर लिखा गया है। पुस्तक के ऐतिहासिक होने पर भी इसमें कहानी का-सा आनंद आता है, पढ़नेवाले का जी नहीं ऊबता। यह पुस्तक केवल विद्यार्थियों के ही उपयोग की चीज़ नहीं है। नेपोलियन की एकनिष्ठ देश-हितैषिता, दैवी कार्यकुशलता, लोकोत्तर औदार्य, दृढ़ निश्चय, आत्मविश्वास, स्वाभिमान-विलक्षणता, असामान्य वीरता और सहनशीलता, सतत कर्तव्यपरायणता, आश्चर्यजनक समय की सूझ, सार्वभौम बहुज्ञता और विद्वत्ता, वीरोचित क्षमावृत्ति, हृदय की विशालता इत्यादि अनेक गुणों का प्रभावोत्पादक वर्णन पढ़कर सभी तरह के सभी तरह की स्थितियों के मनुष्य लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक पास रखने लायक़ है।

छन्नूलाल द्विवेदी

× × ×

७. साहित्य

हिंदी-लोकोक्ति-कोष—संकलनकर्ता, संपादक तथा प्रकाशक, श्रीयुत विश्वंभरनाथ खत्री। सादी जिल्द का मूल्य ३॥), सुनहरी का ४) ; पृष्ठ-संख्या २६४। आकार बड़ा। काग़ज़ और छपाई साधारण से अच्छी। प्रकाशक से '७९ हरिसन रोड, कलकत्ता' इस पते पर प्राप्य।

जैसा कि इसके नाम से प्र.ट है, इस ग्रंथ में अकारादि-क्रम से लोकोक्तियों का संग्रह किया गया है। इसके ऊपर दिए नाम से तो यही अनुमान होता है कि इसमें केवल हिंदी-भाषा की ही लोकोक्तियों का संग्रह होगा, पर असल में 'संस्कृत, फ़ारसी, मारवाड़ी, पंजाबी, पूर्वी, भोजपुरी आदि भाषाओं की प्रसिद्ध कहावतें भी इसमें शामिल की गई हैं।' ऐसा पुस्तक के आवरण-पृष्ठ पर छपा हुआ है। इन भाषाओं की कुछ कहावतों का समावेश इस कोष में है भी ; पर हमें 'मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी', 'हमचुनीं दीगरे नेस्त' तथा 'गीतड़ाँ कि मीतड़ाँ'-नामक संस्कृत, फ़ारसी तथा मारवाड़ी-भाषा की अत्यंत प्रसिद्ध कहावतों का दर्शन इसमें नहीं हुआ। हिंदी की तो बहुतेरी प्रसिद्ध कहावतें छूट गई हैं। 'आँधरे साहेब के सरकार कहाँ लौं करै चतुराई चितेरो ?', 'ऊँटहि ऊँटकटारोई भावै', 'दिया न बरै कहूँ कारे के आगे', 'आजु ही आँखिन को फल पायो' आदि बीसों सुंदर महाविरे प्राचीन कवियों की वाणी में मौजूद हैं। इनका संग्रह इस पुस्तक में नहीं दिखलाई पड़ता। इस प्रकार से यह कहना अनुचित न होगा कि यह 'कोष' अभी संपूर्ण नहीं कहा जा सकता। पर असंपूर्ण होते हुए भी हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि यह बड़ा ही उपयोगी ग्रंथ है।

भाषा के वैभव में लोकोक्तियों का शृंगार बड़ा ही सुंदर होता है। उन लोकोक्तियों को ढूँढ़-ढूँढ़कर एक स्थान में जमा करना और फिर, अकारादि-क्रम से, इस ढंग से सजाना कि जिसको चाहें, सहज में ढूँढ़ लें, बड़ा ही पाकें का काम है। संकलनकर्ता महाशय की बहुज्ञता वं विस्तृत अध्ययन की सार्थकता इस कोष के निर्माण स्पष्ट झलकती है।

आधुनिक हिंदी-साहित्य में हम इस पुस्तक का सादर स्वागत करते हैं। आशा है, प्रत्येक हिंदी-प्रेमी इसे अपनाकर प्रकाशक का उत्साह बढ़ावेगा। प्रकाशक महोदय से भी हमें कुछ निवेदन करना है। कोष-ग्रंथ के लेखकों का उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है। कोष-ग्रंथ स्थायी साहित्य ी संपत्ति होते हैं। ऐसे ग्रंथों का उपयोग सभी श्रेणियों के साहित्य-सेवी करते हैं। विद्यार्थियों के लिये तो ये कल्पवृक्ष ही होते हैं। अतएव यदि कोष-ग्रंथों में अशुद्धियाँ हों, भ्रामक बातें लिखी हों, और अयथार्थ अथवा असंगत बातें लिखी गई हों, तो उनसे साहित्य को बहुत बड़ी हानि पहुँचती है। प्रस्तुत कोष में असंपूर्णता के साथ ही छापे की अशुद्धियाँ भी बहुत हैं। इस बुरी छप का प्रमाण शुद्धि-पत्र के रूप में, पुस्तकांत में, मौजूद है उससे इस उत्तम पुस्तक के गौरव को अवश्य ही हानि पहुँची है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण बहुत शीघ्र प्रकाशित होगा। प्रकाशक को चाहिए कि उस संस्करण में यथाशक्ति हिंदी की सभी कहावतों का समावेश करने की चेष्टा करें। संस्कृत, मारवाड़ी और फ़ारसी की कहावतें चाहे छूट भी जायँ, कुछ हर्ज नहीं। इसके सिवा शुद्ध छपाई का भी पूर्ण उद्योग करना चाहिए। हम शीघ्र इसका एक सर्वांग-सुंदर संस्करण देखना चाहते हैं।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

श्रीरामायण-रहस्य—संग्रहकर्ता, स्वामी शंकरानंदजी। प्रकाशक, चिरंजीलाल शर्मा, हेड मास्टर, तहसीली स्कूल, अलीगढ़। पृष्ठ-संख्या २०६। छोटा साइज़। सुंदर कपड़े की जिल्द। मूल्य केवल १)

इस पुस्तक में रामायण में से कर्म, उपासना, ज्ञान और विचार से संबंध रखनेवाले दोहों और चौपाइयों का संग्रह किया गया है। प्रत्येक खंड के आरंभ में संग्रहकर्ता ने थोड़ी-सी भूमिका भी जोड़ दी है। उद्धृत दोहों और चौपाइयों के नीचे उनकी भाषा-टीका भी है, जो सरसरी निगाह से देखने से शुद्ध मालूम होती है। रामायण के अंतर्गत उक्त विषयों के वर्णन का एकत्र संग्रह चाहनेवालों के लिये यह पुस्तक उपादेय है।

× × ×

हिंदी-भाषा का विकास—लेखक, श्रीयुत श्यामसुंदरदास बी० ए०। प्रकाशक, श्रीरामचंद्र वर्मा, साहित्य-रत्नमाला-कार्यालय, बनारस सिटी। पृष्ठ-संख्या १३२। मूल्य ॥=)

'हिंदी-भाषा का इतिहास', इस नाम से अभी तक कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। किंतु उनमें भाषा के इतिहास की अपेक्षा साहित्य का इतिहास ही अधिक है। हिंदी में भाषा-विज्ञान के अध्ययन की रुचि लोगों में बहुत कम देख पड़ती है। इस पुस्तक में हिंदी-भाषा का विकास दिखलाया गया है, अर्थात् हिंदी-भाषा को वर्तमान रूप प्राप्त करने में किन-किन सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ा—इसका विवेचन किया गया है। विषय गहन और जटिल होने पर भी सुयोग्य ग्रंथकार ने इस ढंग से उसका निरूपण किया है कि वह बड़ी सरलता से समझ में आ सकता है। पुस्तक में अध्यापन की शैली स्पष्ट झलकती है। प्रथम बारह परिच्छेदों में बहुत-सी महत्त्व की बातें, थोड़े ही में, किंतु स्पष्ट रूप से, समझा दी गई हैं। 'हिंदी पर विदेशी प्रभाव' का वर्णन जिस अंश में है, वह बहुत ही मनोरंजक और विचार-पूर्ण है। यह पुस्तक भाषा के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करनेवालों के लिये बड़े काम की है, और इस योग्य है कि परीक्षाओं में रक्खी जाय।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

८. फुटकर

भारत-माता का संदेशा—लेखक तथा प्रकाशक, श्रीयुत रासविहारीलाल, पुरानी सराय, नाथनगर, भागलपुर। पृष्ठ-संख्या ५४। मूल्य ।); छपाई साधारण।

इसमें भारत-माता के निम्न-लिखित संदेश, सरल भाषा में, सुनाए गए हैं—(१) स्वदेशी व्रत धारण करो; (२) सरकारी स्कूलों से अपने लड़कों को हटाओ; (३) अपने मुक़द्दमों का फ़ैसला पंचायत से करा लिया करो; (४) घर-घर चर्ख़ा चलाओ; (५) मादक वस्तुओं का त्याग करो; (६) आपस में ऐक्य बनाए रक्खो; (७) स्वराज्य प्राप्त करो; (८) ईश्वर पर विश्वास रक्खो, और हिंसा से घृणा करो। पुस्तक उत्तम है। इसका प्रचार होना चाहिए।

× × ×

ग्राम्य-पंचायत ऐक्ट (हिंदी में)—लेखक, श्रीमान् पंडित श्रीकृष्ण तिवारी बी० सी०, एस्-सी०, एल्-एल्० बी०, वकील हाईकोर्ट। आकार बड़ा। पृष्ठ-संख्या ४२। छपाई अच्छी। मूल्य ।।) है। पुस्तक मिलने का ठिकाना—बाबू प्रतापनारायण बी० ए०, एल्-एल्० बी०, वकील हाईकोर्ट, प्रयागनारायण का मंदिर, कानपुर।

सन् १९२० में युक्त-प्रांत की व्यवस्थापक-सभा में एक क़ानून पास हुआ था, जिसके अनुसार इस प्रांत के ग्रामों में पंचायतें स्थापित की जा सकती हैं। इस क़ानून के द्वारा साधारण दीवानी और फ़ौजदारी मुक़द्दमों के फ़ैसले का अधिकार पंचायतों को दे दिया गया है। यह पुस्तक उसी क़ानून का अनुवाद है। सरल हिंदी-भाषा में आवश्यक व्याख्या और टीका-टिप्पणी-सहित किया हुआ यह अनुवाद बहुत उपयोगी है। इस क़ानून के अनुसार जो नियम पंचायतों के संबंध में बनाए गए हैं, उनका कार-बार भी पुस्तक के आरंभ में दिया गया है। इस पुस्तक का ग्रामों में ख़ूब प्रचार होना चाहिए। ख़ासकर ग्राम्य-पंचायत के प्रत्येक पंच को इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य ही अपने पास रखनी चाहिए।

× × ×

हमारा समाज—लेखक, श्रीयुत रामनिरीक्षणसिंह, अध्यापक बिहार-विद्यापीठ, पटना। प्रकाशक, नवयुवक ग्रंथ-मंदिर, लहेरियासराय, दरभंगा। छपाई-सफ़ाई साधारण। पृष्ठ-संख्या २४। मूल्य =) है।

इस पुस्तिका में ग्रामों की आर्थिक तथा नैतिक स्थिति का वर्णन और उसकी त्रुटियों को सुधारने के उपाय दिए हुए हैं। लेखक के सब विचारों से सहमत न होने पर भी हम पुस्तक को उपयोगी समझते और ग्रामों का सुधार चाहनेवाले सज्जनों से एक बार इसे अवश्य पढ़ने की सिफ़ारिश भी करते हैं।

दयाशंकर दुबे

× × ×

श्रीभवानीसिंहकारकरत्नम्—संस्कृतटीकासहितम्। लेखक, श्रीगिरिधर शर्मा काव्यालंकार। प्रकाशक, पं० ईश्वरलाल शर्मा। पता—नवरत्न-सरस्वती-भवन, झालरापाटन (राजपूताना)। छपाई-सफ़ाई, काग़ज़ उत्तम। स्कूली साइज़। पृष्ठ-संख्या २४। मूल्य ।।)

इसमें झालरापाटन के महाराज की प्रशंसा में लिखे गए आठ श्लोक हैं। कर्ता, कर्म आदि कारकों के दिखाने का विशेष प्रयत्न किया गया है। रचना और वर्णन-शैली वैयाकरणों की-सी है। व्याकरण के किस आचार्य ने किस कारक के संबंध में क्या सम्मति प्रकट की है,

इसके गवेषणा-पूर्ण संक्षिप्त वर्णन की ओर टीका में विशेष ध्यान दिया गया है, और मूल-पद्य की विशद व्याख्या की ओर कुछ कम। अंत में इस पर अच्छी-अच्छी सम्मतियों का संग्रह भी है। आरंभ में कविजी और महाराजा साहब के फ़ोटो-चित्र भी हैं। पुस्तक अच्छी है।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

संसार-संकट—लेखक, पं० कृष्णकांत मालवीय। प्रकाशक, अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या १४३। मूल्य १॥)

पहले एक लंबी प्रस्तावना है, जिसमें योरप के महायुद्ध के कारणों का दिग्दर्शन कराया गया है। उसके बाद उन लेखों का संग्रह किया गया है, जो अभ्युदय में, १६ जनवरी से १६ जून तक, अंतरराष्ट्रीय राजनीति पर प्रकाशित हुए थे। अंत के दो-तीन परिच्छेद पीछे से लिखे गए हैं। विषय कितना जटिल है, यह बताने की ज़रूरत नहीं। पर यदि हम कूप-मंडूक न बने रहना चाहें, तो इस विषय पर विचार करना हमारा धर्म है। दुनिया किस तरफ़ जा रही है, इस मौक़े पर हमारा क्या लक्ष्य होना चाहिए, हमें किन बाधाओं का सामना करना पड़ेगा, कौन हमारा सहायक होगा, किसके शत्रु होने की आशंका है, इस प्रकार की सब धारणाएँ राजनीतिक परिस्थिति के ज्ञान ही पर निर्भर हैं। राजनीति की धारा क्षण-क्षण पर बदलती रहती है। इसलिये हमें भी अप-टु-डेट रहने के लिये विशेष प्रयत्न करना—इस विषय के पत्रों-पत्रिकाओं को देखते रहना—चाहिए। इस लेख-माला से पाठकों को योरप की राजनीति समझने में बड़ी सहायता मिलेगी। इस विषय पर अभी तक कोई पुस्तक नहीं है। हाँ, पत्रों में फुटकर लेख अलबत्ता मिलेंगे। इस पुस्तक को पढ़ लेने से बहुत-सी पत्रिकाओं के पन्ने न उलटने पड़ेंगे। लेखक महोदय ने कहीं-कहीं अमर कवि अकबर के शेर ऐसी ख़ूबी से चस्पाँ कर दिए हैं कि पढ़ने से तबीयत फड़क उठती है।

× × ×

युद्ध की २५०० बातें—लेखक, पं० श्यामाचरण शर्मा। प्रकाशक, अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग। मूल्य ।-) ; पृष्ठ-संख्या १२५।

बड़ी उपयोगी पुस्तक है। लड़ाई के समय में तो पठनीय ही थी, किंतु अब भी इसका महत्त्व कुछ कम नहीं हुआ। भिन्न-भिन्न देशों के सेना-संबंधी नियम, राष्ट्रों की सैन्य-बल, उनकी संपत्ति और जनसंख्या, आर्थिक अवस्था इत्यादि के पहले के अंक तो अब अनावश्यक हो गए हैं। किसी की आबादी बढ़ गई, किसी की घट गई। आर्थिक दशा का भी वही हाल है। सेनाओं की संख्या में भी ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ हो गया है। नवें अध्याय का, जिसमें प्रसिद्ध पुरुषों का परिचय दिया गया है, ऐतिहासिक महत्त्व बहुत अधिक है। उसमें लड़ाई के प्रधान नायकों का दिग्दर्शन और निर्णय आसानी से हो जाता है। जिन परिच्छेदों में तरह-तरह के जहाज़ों के नाम और काम बताए गए हैं, उन्हें देखकर Cruiser and dreadnought हमारे लिये अर्थहीन अथवा अस्पष्ट शब्द न रहेंगे। फ़ौजी अफ़सरों के ओहदों के नाम भी दिए गए हैं।

प्रेमचंद

× × ×

दरिद्र-कथा—लेखक, पं० चंद्रशेखर शास्त्री। प्रकाशक, ओझा-बंधु-कार्यालय, पटना। पृष्ठ-संख्या ८८। मूल्य ॥) और छपाई-सफ़ाई अच्छी।

यह पुस्तक 'वाणी-विनोद पुस्तकमाला' की पहली संख्या है। आजकल जड़-वाद का दौरदौरा है। अतएव जितना महत्त्व धन को दिया जाता है, उतना मनुष्य के अच्छे-से-अच्छे गुण को नहीं। कोई मनुष्य कितना ही सत्यवादी, भगवद्भक्त और परोपकारी आदि क्यों न हो, उसके पास यदि धन नहीं है, तो वह समाज में उस आदर का पात्र नहीं समझा जाता, जिसका एक धनी मूर्ख। दीन-दरिद्र-लोकोपकारी पुरुष को सब कोई पंचायती माल समझते हैं। हृदय में यदि उसकी भलमनसाहत के क़ायल भी हुए, तो ऊपर से रूखा व्यवहार करना अनुचित नहीं समझते। परंतु जिसकी टेंट में टका है, उसका आदर, सत्कार और स्वागत करने में सभी समुद्यत रहते हैं; उसके सामने मनमानी हाँकने की हिम्मत किसी की नहीं होती। लेकिन फिर भी यह सदा से देखा जा रहा है कि प्रत्येक जाति या देश का कल्याण या तो उन लोगों की कृपा से हुआ है, जो दरिद्र-कुल में पैदा हुए थे, और या उनकी कृपा से, जिन्होंने धनी कुटुंब में जन्म लेकर भी दरिद्रों की भाँति जीवन बिताया, जिन्होंने लोक-कल्याण के लिये—मानव-जीवन की यथार्थ स्थिति को जानने के लिये—दीन-दुखियों के अंतःकरण में घुसकर उसकी दशा प्रत्यक्ष देखने के लिये—संसार के सब सुखों को ठुकरा दिया।

इस पुस्तक में (१) 'दरिद्र बनने के लिये राज्य छोड़ा', (२) 'दारिद्र्य-व्रतधारी भारतीय महापुरुषगण', (३) 'दारिद्र्य-व्रतधारी विदेशी महापुरुषगण', और (४) 'स्वायत्त सुख दरिद्रता नहीं', ये चार परिच्छेद हैं। पहले परिच्छेद में इन बातों पर विचार किया गया है— सुख से प्रेम और दुःख से घृणा, सुख-दुःख का संपर्क, सुख-दुःख क्या है, दरिद्रता पाप है, दरिद्रता से घृणा और दरिद्र से प्रेम, सुख-दुःख का भीतरी रूप, सुख बाहरी पदार्थ नहीं है, सुख के साधन के संबंध की नासमझी, भगवान् के आदर्श से धनी दरिद्र बनते हैं, दरिद्र के प्रति घृणा अधमता है, दरिद्र ही उद्धारक हैं, दरिद्र महापुरुष हैं, प्राचीन भारत का दारिद्र्य-प्रेम, भारत का वर्तमान दारिद्र्य-व्रत। विचार बड़े ढंग से किया गया है।

दूसरे परिच्छेद में महर्षि विश्वामित्र, भगवान् बुद्धदेव, महाराणा प्रताप, गुरु गोविंदसिंह, लोकमान्य तिलक, और महात्मा गाँधी के जीवन का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। तीसरे परिच्छेद में इसी प्रकार सरसामुएल ऐमिली, विलियम हेल और गेरीबाल्डी के चरित्र दिए गए हैं, जिनसे हम लोगों को बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है। इन देशी तथा विदेशी कर्मवीरों के चरित्र पढ़कर शरीर में उत्साह की एक नई बिजली दौड़ जाती है। पुस्तक आदरणीय है।

इस पुस्तक का जितना अधिक प्रचार हो, उतना ही अच्छा। इसमें यदि और भी वीर-पुंगवों के चरित्रों का समावेश कर दिया जाता, तो और अच्छा होता। पर ऐसा करने से शायद पुस्तक का मूल्य बढ़ाना पड़ता, और वह सर्वसाधारण के लिये सुलभ न होती। जो कुछ हो, हमारे विचार में इस विषय की और भी बड़ी पुस्तकों के लिखे जाने की आवश्यकता है। आशा है, इस पुस्तक का अच्छा स्वागत होगा। पुस्तक का मौलिक होना उसके महत्त्व को और भी बढ़ाता है।

बदरीनाथ भट्ट

× × ×

'भारतीय राष्ट्रनिर्माण'—लेखक और प्रकाशक, भगवानदास केला प्रेम-महाविद्यालय, वृंदावन। मूल्य ।।।≈)

प्रथम अध्याय में राष्ट्र के लक्षण तथा जातियों के बनने के प्रकार का वर्णन है। जर्मन-विद्वान् ब्लंशली का मत दिया गया है, जिसके अनुसार पराधीन जातियाँ राष्ट्र नहीं मानी जा सकतीं। इसी लक्षण के अनुसार भारत भी एक राष्ट्र नहीं माना गया और उसे राष्ट्र बनाने के प्रयत्न करने के लिये बार-बार अपील की गई है। लेखक एक स्थल पर लिखते हैं—"भारतवर्ष को तो राष्ट्र-निर्माण करने की और भी अधिक आवश्यकता है।" आगे चलकर भारतीय ऐक्य के विरोधी दल की दलीलों का सप्रमाण खंडन किया गया है। पुस्तक में देश-प्रेम स्थल-स्थल पर झलकता है। 'राष्ट्र-प्रेम और सेवा'-शीर्षक अध्याय बहुत विचार-पूर्वक लिखा गया है। स्थान-स्थान पर भारतीय नेताओं से अपील भी की गई है। हिंदू-मुसलिम ऐक्य के संबंध में देश-भक्त भवानीदयालजी के मत का उल्लेख किया गया है। वह बड़ा स्पष्ट और यथार्थ है। पुस्तक सर्वथा संग्रहणीय है। भाषा कहीं-कहीं खटकती है। अँगरेज़ी के near future का हिंदी-अनुवाद 'पास के भविष्य में' या 'निकट भविष्य में' अच्छा नहीं मालूम होता। छपाई भी अच्छी नहीं है।

आद्यादत्त

+ × ×

९. प्राप्ति-स्वीकार

कार्यविवरण—श्रीगाँधी-सेवा-समिति, कानपुर। प्रकाशक, बालकृष्ण माहेश्वरी, अवैतनिक मंत्री।

नियमावली—बिहार-प्रादेशिक हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, मुज़फ़्फ़रपुर।

विवरण (ज्येष्ठ सं० १९७५ से वैशाख १९८० पर्यंत)—प्रकाशक, वैद्य प्रह्लादराय, मुख्य मंत्री—श्रीसिंधुसंस्कृत-मंडल, गाड़ीख़ाना, कराची।

जलचिकित्सा का भजन और भावार्थ—लेखक यानी कविताकार और प्रकाशक, कमलाकांत श्रीवास्तव। ग्राम कारा। ज़िला ग़ाज़ीपुर। मूल्य -)।।

महामारी निर्णयसिंधु—लेखक और प्रकाशक, पं० चिरंजीलाल शर्मा वैद्यराज, फूटा कुआँ, मेरठ। छोटे आकार के ४६ पृष्ठ। मूल्य ।)

श्रीमन्नारायणप्राप्ति—लेखक और प्रकाशक, श्रीवैष्णव रघुनाथदास जड़िया, सराफ़ी, सागर, सी० पी०। मूल्य एक लक्ष्य (?) शायद एक लाख। निछावर १)

नार्यीवर्ण-निर्णय—लेखक और प्रकाशक, "पं० रेवती-प्रसाद शर्मा एम्० आर्० ए० एस्० (लंदन)" मूल्य ।।≈)

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई और उत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "महाराज यशवंतसिंह", पं० विश्वंभरनाथ शर्मा-लिखित ऐतिहासिक उपन्यास। मूल्य १॥)

(२) "गेरिलहामा", पं० विश्वंभरनाथ शर्मा-लिखित जासूसी उपन्यास। मूल्य ॥।)

(३) "गल्पमाला", गल्पों का संग्रह। मूल्य २॥)

(४) "संस्कृत-हिंदी-कोष", पं० विश्वंभरनाथ शर्मा-लिखित। मूल्य १)

(५) "ज्योतिष-प्रवेशिका", श्रीचेतनदास जैन बी० ए०-लिखित। मूल्य १॥)

(६) "गुजराती-हिंदी-शब्द-कोष", पं० गणेशदत्त शर्मा-संकलित। मूल्य ६)

(७) "अज्ञातवास-नाटक", बाबू आनंदप्रसाद कपूर-लिखित। मूल्य १)

(८) "महाभारत"। मूल्य दोनों खंड १०), सुनहरी रेशमी जिल्द।

(९) "आर्य-महिला-रत्न", श्रीअध्यापक जहूरबख़्श-लिखित। सचित्र जीवन-चरित्र। मूल्य २।), रेशमी जिल्द २॥।)

(१०) "भारतीय युद्ध", चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा-लिखित। मूल्य १॥)

(११) "सखाराम", श्रीयुत मदारीलाल गुप्त-लिखित सामाजिक उपन्यास। मूल्य १)

(१२) "लक्ष्मी", पं० रामनरेश त्रिपाठी-लिखित स्त्री-शिक्षा-संबंधी उपन्यास। मूल्य ॥=)

(१३) "शशिबाला", पं० चंद्रशेखर पाठक-लिखित सामाजिक उपन्यास। मूल्य ॥।)

(१४) "गोरा", पं० रूपनारायण पांडेय (कविरत्न) द्वारा अनुवादित उपन्यास। मूल्य ३)

(१५) "फुप्फुस-सन्निपात-चिकित्सा", स्वर्गीय पं० हनुमत्प्रसादजी जोशी वैद्य लिखित। मूल्य १॥)

(१६) "भजन-संग्रह"। मूल्य ॥।)

(१७) "भगिनी-द्वय याने मरुभूमि में जल-बिंदु", पं० उदयचंदजी द्वारा अनुवादित ऐतिहासिक उपन्यास। मूल्य ।=)

(१८) "विलासकुमारी वा अंबालिका", वैद्यभूषण पं० दुर्गाप्रसाद तिगनात-लिखित ऐतिहासिक उपन्यास। मूल्य २)

(१९) "मध्य हिंदी-व्याकरण", पं० कामताप्रसाद गुरु-विरचित। मूल्य ॥)

(२०) "हिंदू स्त्री", मुंशी आरज़ू साहब-लिखित शिक्षाप्रद सामाजिक नाटक। मूल्य ॥।)

(२१) "धनकुबेर या अर्थपिशाच", पं० रामनाथ पांडेय द्वारा अनुवादित जासूसी उपन्यास। मूल्य १॥।), रेशमी जिल्द २।)

(२२) "दयानंद-दिग्विजय"। प्रणेता, पं० अखिलानंद शर्मा। मूल्य ४)

(२३) "वीराङ्गना तारा"। लेखक, पं० सुरेन्द्रनाथ तिवारी। मूल्य ।)

विविध विषय

१. प्राचीन भारत के कारीगर

भारत का धर्म, भारत की सभ्यता और भारत का ज्ञान-विज्ञान बहुत प्राचीन और अनेक जातियों को उन्नति का मार्ग सुझानेवाला है, यह सत्य इतिहास में सर्वसम्मत सिद्धांत के रूप में स्वीकृत हो चुका है। किंतु भारत की शिल्प-कला अथवा तरह-तरह की कारीगरी के बारे में प्रायः विदेशी विद्वानों ने ऐसा संदेह प्रकट किया है कि भारत की प्राचीन काल की कारीगरी विदेशी कारीगरी के निकट ऋणी है; भारत में इस समय तक यत्र-तत्र मूर्ति-निर्माण, नक़ाशी, चित्र-कला, स्थापत्य आदि के जो अद्भुत, अनुपम, आश्चर्यजनक निदर्शन प्राप्त हुए हैं, उनमें से अधिकांश का निर्माण ग्रीक-शिल्पियों के आदर्श पर या उन्हीं के हाथों हुआ है। आज तक किसी अनुसंधानकर्ता ऐतिहासिक के मुख से यह नहीं सुन पड़ा था कि प्राचीन भारत के शिल्पियों ने अपनी मौलिक प्रतिभा के प्रभाव से भारत के बाहर जाकर प्रशंसा प्राप्त की थी। किंतु हमारे लिये हर्ष और गौरव का समाचार है कि एक ऐतिहासिक अनुसंधान करनेवाले विदेशी विद्वान् ने गहरी गवेषणा करके यह प्रमाणित किया है कि प्राचीन भारत के शिल्पियों ने एक समय विदेशों में जाकर अपनी अननुकरणीय शिल्प-पटुता और कला-कुशलता का प्रमाण एवं परिचय देकर विदेशियों को तत्संबंधी ज्ञान और शिक्षा देने का असाधारण गौरव प्राप्त किया था। इस विषय में "प्राची" पत्रिका में जो प्रकाशित हुआ है, वह संक्षेप में यहाँ लिखा जाता है।

पाश्चात्य शिल्प-कला के विशेषज्ञ विद्वानों में श्रीयुत ई० बी० हावेल (Havell) साहब का नाम आदर के साथ लिया जाता है। आप उन महापुरुषों में हैं, जो अपनी योग्यता और ज्ञान के कारण आप अपने नाम को अमर बना देते हैं। भारतीय शिल्प के इतिहास का उद्धार करनेवाले विद्वानों में आपका एक विशेष स्थान और मान है। आपका लिखा हुआ भारत का इतिहास अभी, थोड़े ही दिन हुए, प्रकाशित हुआ है। उसमें आप लिखते हैं कि भारत के सूक्ष्म शिल्प ने प्राचीन काल में अपनी विशेषता की छाप मुसलमानी सभ्यता तक में अंकित कर दी थी। आपने खोज करके प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है कि ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी में भारत के कुछ बढ़ई, सुनार, रँगरेज़, जुलाहे, नक़ाशी और पत्थर पर खुदाई का काम करनेवाले, थवई आदि सूक्ष्म शिल्प के कारीगरों की संतानें विजेताओं के द्वारा दास के रूप में बेची गई थीं। वे सब एशिया और मिसर आदि देशों में, जहाँ मुसलिम-सभ्यता के केंद्र-स्थल थे, पहुँचाए गए। उन लोगों ने ही

मुसलमान कारीगरों को भारतीय कारीगरियाँ सिखलाईं, और उनके अनुशीलन में सहायता दी। इसके फल-स्वरूप मुसलिम-शिल्प की आश्चर्यजनक उन्नति हुई, और योरप के प्रसिद्ध शिल्प-कला के केंद्रों में मुसलमान कारीगर विशेष गौरव की दृष्टि से देखे जाने लगे। हावेल साहब के इतिहास से कुछ पंक्तियाँ यहाँ पर उद्धृत की जाती हैं—

"Nor were Indian armourers, goldsmiths, weavers and dyers behind this high level of *achievement in their respective crafts. Their descendants of the eleventh century,* sold in the slave-markets of Afghanistan, furnished much of the wonderful craftsmanship of the workshops of Cairo, Bagdad, Damascus, and Samarkand, which has made the reputation of Islam in the art-museums of modern Europe." (A Short History of India, P. 99.

अर्थात् भारत में भास्कर्य (पत्थर की मूर्तियाँ बनाना, पत्थर पर खुदाई का काम करना), और स्थापत्य (इमारत बनाने की कला) की कारीगरी सफलता की जिस चरम सीमा को पहुँच चुकी थी, उसकी तुलना में यहाँ के सुनार, बढ़ई, जुलाहे, रँगरेज़ आदि कारीगरों ने भी अपनी-अपनी शिल्प-कला की कुछ कम उन्नति नहीं की थी (अर्थात् उस समय भारत में मूर्तिनिर्माण-कला या संगतराशी और थवइगीरी या इंजीनियरी के काम की जितनी तरक़्क़ी की गई थी, उससे कम तरक़्क़ी सुनारी, बढ़ईगीरी, बुनाई, रंगसाज़ी आदि शिल्पों की नहीं हुई थी)। ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी में उन कारीगरों के लड़के-पोते अफ़-ग़ानिस्तान के बाज़ारों में ग़ुलाम बनाकर बेचे गए, और उन्होंने कैरो, बग़दाद, दामास्कस (दमिश्क), समरकंद आदि देशों के कारख़ानों में जाकर आश्चर्य-जनक शिल्प-निपुणता के साथ उनकी बहुत कुछ समृद्धि-वृद्धि की। उसी के फल-स्वरूप वर्तमान योरप के शिल्प-संग्रह-भवनों में मुसलमान-शिल्पियों को (मुसलमानी सभ्यता को) प्रसिद्धि, प्रशंसा और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। इस प्रकार योरप में मुसलमानी शिल्प को महिमा-मंडित करके वे अतीत काल के अज्ञात-गोत्रनाम भारतीय शिल्पी अपनी जन्मभूमि के गौरव को अधिकतर समुज्ज्वल कर गए हैं। ग़ुलामी के बंधन में हाथ-पैर जकड़े पड़े थे, फिर भी बड़े-बड़े कारीगरी के करतब दिखाकर अपनी विशेषता, अपनी अनुकरणीय प्रतिभा का प्राधान्य सर्वमान्य बनाए रखना कोई साधारण बात नहीं है। हावेल साहब ने यह भी बतलाया है कि भारत के शिल्पियों ने मुसलमानी शिल्प के द्वारा अपना परिचय देकर तो योरप से आदर पाया ही, किंतु उन्होंने साक्षात् संबंध से भी योरप को अपनी प्रतिभा का परिचय कुछ कम नहीं दिया, और आदर भी कुछ कम नहीं पाया। भारत की भूमि पर पोर्चुगीज़ लोगों का आधि-पत्य एवं अधिकार हो चुकने के उपरांत उन्हें भारत के शिल्पियों की कला-कुशलता का परिचय पाने का अवसर मिला, और वे शीघ्र ही भारतीय कारीगरों की कारीगरी पर ऐसे मुग्ध हो गए कि कुछ कारीगरों को पुर्तगाल में ले जाकर उनको वहाँ के गिरजों में चित्र कला और रंगा-मेज़ी करने का काम सौंप दिया। इस बारे में हावेल साहब लिखते हैं—

"It is interesting to note also that some of the Old Catheorals of Portugal were decorated by Indian masons imported from Goa."

(Ibid. P. 265.)

अर्थात् यह उल्लेख करना भी कौतुक-जनक विषय है कि पुर्तगाल के किसी-किसी प्राचीन गिरजे की सजावट और रंगामेज़ी का काम गोआ से लाए गए भारतीय थवइयों के द्वारा कराया गया था।

बाहर भारत के प्राचीन शिल्प की इतनी प्रतिष्ठा और प्रशंसा होने पर भी भारत के भीतर यहाँ की सभी कारीगरियाँ आज नष्टप्राय हो रही हैं। यहाँ विलायती सामान, विलायती रुचि और विलायती कारीगरी का इतना आदर और बाहुल्य होता जा रहा है कि देशी कारीगरों की क़दर कहीं नहीं रही—न राजा के दरबार में वे पूछे जाते हैं, और न प्रजा से उन्हें प्रोत्साहन मिलता है। फल यह हुआ कि पुरानी कारीगरी के विशेषज्ञ जो कुछ पुराने लोग रह गए हैं, वे अपने लड़के-बालों को उसकी शिक्षा नहीं देते, और लड़के भी उस-का आदर न देखकर नौकरी और (पढ़ गए तो) क्लर्की को ही ग़नीमत समझते हैं। श्रीयुत हावेल साहब ने विदेशी होकर भी अपनी न्यायनिष्ठा नहीं छोड़ी, और इस विषय में, स्पष्ट शब्दों में, उन्होंने लिख दिया है कि मेकाले साहब की चलाई हुई शिक्षा-संबंधी नीति ही

इस भारतीय शिल्प के निरादर और लोप का कारण है। जो विद्या या कारीगरी योरप की न हो, उसके प्रति भारतीय शिक्षित युवकों के मन में अश्रद्धा का भाव पुष्ट करना ही मेकाले की चलाई हुई शिक्षा-संबंधी नीति का एक-मात्र उद्देश्य था। इस शिक्षा-नीति के दोष दिखाकर एक सच्चे अँगरेज़ की तरह हावेल साहब लिखते हैं—

"Thus the Indian traditional school of painting was kept alive until far into the nineteenth century, when all Indian art came under the blight of the Macaulay educational system, which recognised no art except that which was imported from Europe." (Ibid. P. 265.)

अर्थात् इस तरह उन्नीसवीं शताब्दी के अधिकांश समय तक भारत में चिरकाल से परंपरागत चित्रकला के विशेषज्ञों का संप्रदाय किसी तरह अपना अस्तित्व बनाए रहा। उसके उपरांत भारत के सभी शिल्प मेकाले की चलाई हुई शिक्षानीति-रूपी सांघातिक महामारी के हमले से हलाल होते चले गए। इस शिक्षा-नीति में योरप से आए हुए शिल्प के अलावा और किसी भी शिल्प को ग्रहण योग्य नहीं ठहराया गया है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली हमारे जातीय जीवन के लिये ज़हर से बढ़कर है। वह हमारे शिल्प की तरह हमारी जातीयता, देश-प्रेम आदि भव्य भावों का भी गला घोटनेवाली है। यह शिक्षा-नीति हमारे हृदयों में उच्चाभिलाषा, उत्थान के लिये उत्साह एवं उत्तेजना, पारिपार्श्विक परिस्थिति का परिचय प्राप्त कर परतंत्रता-पाश से पैर निकालने की प्रबल प्रवृत्ति, आत्मविश्वास और आत्म-विकास का प्रयास इत्यादि मनुष्य की स्वाभाविक भावनाओं के बीज बोने के बदले वैसे लोगों के संसर्ग से सर्वथा दूर रहने की मूर्खता ही सदा सिखाती रहती है। यह देश-प्रेम, आत्मबोध, स्वाभिमान आदि की उदात्त उपासना को राजद्रोह बताकर युवकों को मोह की खोह में या नौकरी की टोह में भटकाती और जड़भरत बनाती है। इस शिक्षा से न तो इस लोक में अच्छी स्थिति अथवा परिस्थिति के बीच सुखमय जीवन बिताने की क्षमता होती है, और न परलोक बनाया जा सकता है। अतएव देश के आशास्थल युवकों को भरसक इस शिक्षा के ज़हरीले असर से अपने अंतःकरण को अलग रखना अत्यंत आवश्यक समझना चाहिए। कारण, इस शिक्षा का बहिष्कार तो अत्यंत कठिन अथवा असंभव ही देख पड़ता है।

× × ×

२. भारत के बाहर रामायण का प्रचार

भारत के भीतर तो कोई प्रांत या स्थान ऐसा न होगा, जहाँ रामायण अर्थात् राम-कथा का प्रचार न हो। प्रांतीय भाषाओं में शायद ही किसी भाषा का ऐसा दुर्भाग्य होगा कि वह रामचरित-वर्णन का गौरव न पा सकी हो। किंतु रामचरित की इतनी ही विशेषता अथवा व्यापकता नहीं है। केवल संस्कृत अथवा अन्य सब प्रांतीय भाषाओं में ही राम-कथा का वर्णन नहीं किया गया। योरप की भिन्न-भिन्न भाषाओं में भी उसका प्रचार पाया जाता है। प्राचीन काल में हिंदुओं ने जो उपनिवेश बसाए थे, अथवा जिन देशों में व्यापार के कारण उनका आना-जाना होता था, वहाँ प्रवासी भारतीय अपने साथ ही रामायण की कथा भी ले जाते थे। कालांतर में उन विदेशों की स्थानीय भाषाओं में भी वहाँ के कवियों और विद्वानों ने रामायण के अनुवाद कर डाले थे। इस प्रकार हिंदुओं के इस पुनीत उपाख्यान का विदेशियों में भी अच्छी तरह प्रचार हो गया था। जावा, बाली-द्वीप, लंबक-द्वीप, बर्मा और आसपास के अन्यान्य उपनिवेशों में, वहाँ की भाषाओं में, रामायण का प्रचार हुआ था। जावा में, जान पड़ता है, ईसवी सन् की पाँचवीं शताब्दी में रामायण पहुँच चुकी थी। जावा की रामायण में उत्तरकांड नहीं है। इसी से कुछ लोगों का अनुमान है कि जावा में जिस समय रामायण का प्रचार हुआ, उस समय भारत में भी रामायण के उत्तरकांड की रचना न हो पाई थी। इन लोगों के मत में उत्तरकांड क्षेपक है, और पीछे बनाकर जोड़ा गया है। बँगला में कवि कृत्तिवास ने और हिंदी में गोस्वामीजी ने जिस प्रकार रामायण को जगह-जगह घटाया-बढ़ाया और परिवर्तन भी किया है, उसी शैली को जावा के कवियों ने भी अपनाया है। जावा की भाषा में रामायण का नाम है 'राम-कवि'। उसमें चार अध्याय हैं—१. रामगुणद्रुं, २. रामवद्र, ३. रामताली, ४. रामायण। जावा की भाषा में एक और पुराण है। उसे कांड कहते हैं। उसमें भारतीय पुराणों की तरह, सृष्टि-प्रकरण आदि के साथ रामायण,

महाभारत तथा अन्यान्य पुराणों की कथाएँ वर्णन की गई हैं। जावा में रामायण के उत्तरकांड की कथा भी है। मगर वह जुदे ग्रंथ के रूप में है। जावा के प्रवासी हिंदू जब वहाँ से उठकर बाली-द्वीप और लंबक-द्वीप में आ बसे, तब इन नए उपनिवेशों में भी वे, अन्य बहुमूल्य सामग्री की तरह, रामायण को अपने साथ लेते गए। बाली-द्वीप में प्रचलित रामायण के विषय में भी यह प्रसिद्ध है कि वह वाल्मीकि की रचना है। मगर यह ठीक नहीं जान पड़ता। वह भी वहाँ की कवि-भाषा में बनी है। इस रामायण के रचयिता कवि ने संस्कृत के शब्दों का बहुत अधिक प्रयोग किया है। बालावाली रामायण में छः कांड और २५ सर्ग हैं। इसमें भी उत्तर-कांड नहीं है। अलग दूसरे ग्रंथ के रूप में उत्तरकांड यहाँ भी पाया जाता है। यहाँ के उत्तरकांड में विशेषता यही है कि राम की परमगति के बाद केवल उनके वंश का विवरण और आगे की पीढ़ियों का चरित्र लिखा गया है, और कुछ नहीं। इस रामायण के छहों कांडों में मूल रामचरित का संक्षिप्त वर्णन है। अंत में रामचंद्र का वृद्धावस्था के बाद वानप्रस्थ ग्रहण करना भी इसमें लिखा है। बाली-द्वीप की भाषा में राजा कुसुम की बनाई हुई एक और रामायण भी है। उसमें भी छः कांड हैं। आजकल वहाँ इसी रामायण का अधिक प्रचार है। बर्मा की रामायण 'रामज़त' (Ramazat) के नाम से प्रसिद्ध है। भारत के द्वीपों और बर्मा, आसाम, मलय आदि स्थानों में द्राविड़-सभ्यता फैली हुई होने के कारण उक्त स्थानों की रामायणों में द्राविड़ी प्रभाव अधिक पाया जाता है। श्याम-देश की प्राचीन रामायण का अब पता नहीं है। वह श्याम की बाली-भाषा (शायद पाली-भाषा) में लिखी हुई थी। इस भाषा में भी अधिकतर संस्कृत के शब्द पाए जाते हैं। पूर्वोक्त रामायणों की भाषाएँ भिन्न-भिन्न होने पर भी सबका मूल संस्कृत ही है।

हिंदू लोग अपने साथ विदेशों में रामायण की मूल-कथा लेते गए, और विदेशों से जो जातियाँ भारत में आती रहीं, वे भी रामायण की विशेषता और उप-योगिता पर मुग्ध होकर इस ग्रंथ को अपने साथ स्वदेश को लेती गईं। इन दोनों तरीक़ों से रामायण की कथा दूर-दूर देश-देशांतर में फैल गई। एशिया के भिन्न-भिन्न देशों में और उसके बाद योरप में भी रामायण का झंडा गड़ गया। योरप के संबंध में फिर लिखेंगे।

× × ×

२. आर्य-समाज का सत्कार्य

इसमें संदेह नहीं कि हिंदू-जाति के अंदर जितनी धार्मिक संस्थाएँ हैं, उनमें अगर कोई संस्था जीती-जागती संस्था है, तो आर्य-समाज ही। यही संस्था कुछ काम करनेवाली, स्वाभिमान से भरपूर, शान के साथ जाति के सम्मान की रक्षा में जान देने के लिये हरदम तैयार, समय के रुख़ को पहचानकर तदनुकूल चलनेवाली, अर्थात् साम-यिक समस्याओं के समुचित समाधान को प्रधान मान-कर अवस्था के अनुसार व्यवस्था करनेवाली देख पड़ती है। कई बातों या सिद्धांतों में हमारा इस समाज से मत-भेद होने पर भी हम इसके गुणों और विशेषताओं की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। आर्य-समाज के सदस्यों में कार्य करने का उत्साह है, आगे बढ़ने की हिम्मत है, सिद्धि की साधना में कर्तव्य की आराधना करते रहने का धैर्य है। पहले-पहल अन्य धर्मों के खंडन-मंडन की ओर इसकी प्रबल प्रवृत्ति रहने के कारण हिंदू-जाति के अन्यान्य संप्रदाय इसके प्रति प्रतिकूल भाव रखते थे, विशेष विद्वेष की दृष्टि से इसको देखते थे। इस प्रकार अपने भाइयों को ही शत्रु बनाने के कारण बहुत दिनों तक इसको अपना बल बढ़ाने में बड़ी-बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ा। प्राचीन पंडितों को पोप और पूजा-पाठ को पोप-लीला कह-कर पूर्व-प्रचलित आचार-विचारों का उपहास करना उस युग के समाजी उपदेशकों की आदत में दाख़िल हो गया था। यदि प्रारंभ में ही आर्य-समाज अपने हिंदू-भाइयों के साथ आज का-सा सहानुभूति-संपन्न व्यवहार करता, तो इतने समय के साहचर्य से अब तक हरएक हिंदू-भाई का हृदय उसकी उपयोगिता और उदारता का क़ायल हो चुका होता। अस्तु।

इधर आर्य-समाज के दूरदर्शी विद्वानों ने हिंदुओं के ह्रास की गति और उसकी अति भयानक परिणति की सूचना देनेवाले अंकों को सशंक दृष्टि से देखकर तत्काल उसका उपाय सोचना शुरू कर दिया। उन्होंने अपनी जातीय त्रुटियों को ग़ौर से देखा। इस क्षय-रोग के कीटाणु हिंदू-जाति ने जान-बूझकर आप ही पाल रक्खे थे। वह त्याग करती थी, ग्रहण नहीं। आर्य-समाज ने

सनातनधर्मी समझदार सज्जनों को सुझाया कि यह ग़लती सुधारे बिना विनाश से बचना असंभव है। हिंदू-जाति के जो बच्चे नासमझी से, बहँकाने-फुसलाने से, क्षण-भर की कमज़ोरी अथवा पदस्खलन से, समाज के अत्याचार-अविचार से किंवा किसी प्रलोभन में पड़कर हिंदू-धर्म की विशुद्धता गँवा बैठे हैं—अपने झुंड से बिछड़कर शिकारी के जाल में गला फँसा चुके हैं, उनको जन्म-भर के लिये छोड़ देना इस समय हिंदू-जाति के लिये आत्म-हत्या से बढ़कर है। शुद्धि और प्रायश्चित्त का विधान धर्मशास्त्रों ने क्यों दे रक्खा है ? शुद्धि का प्रचार ही बुद्धि-मानी मानी गई। धड़ाधड़ जाति-बहिष्कृत भाई शुद्ध किए जाने लगे—पतित-परावर्तन की धूम मच गई। शुद्धि के साथ ही हिंदू-संगठन की भी ज़रूरत आ पड़ी। कारण, लगातार हिंदुओं पर हमले होने लगे, और हिंदुओं को अपने भीतर एकता का अभाव अखरने लगा। इस शुद्धि और संगठन के आरंभ का अधिकांश श्रेय स्वामी श्रद्धानंद और उनके सहायक साथी सज्जनों को ही दिया जायगा। शुद्धि और संगठन को भय की दृष्टि से देखनेवाले धर्मांध मौलवी-मुल्ला, अपढ़ अथच धर्म के नाम पर खून तक करने को तैयार हो जानेवाले मुसल-मानों और लूट-पाट करने का मौक़ा ढूँढनेवाले नीच श्रेणी के मुसलमान गुंडों और बदमाशों को भड़काकर, जोश दिलाकर, जगह-जगह हिंदुओं पर हमले कराने लगे। कारण, न्यायसंगत उपायों से—बहस और युक्ति-तर्क के द्वारा—वे आर्य लोगों से पेश न पा सके। इस संकट के समय प्रत्येक शहर के आर्यों ने सब भेद-भाव भुलाकर जिस तरह सब हिंदुओं का साथ दिया, सहायता और रक्षा की, वह वास्तव में आदर्श है, आदर और अनुकरण के योग्य है। लखनऊ के दंगे में भी मूर्तिपूजा के विरोधी आर्यों ने मंदिर की आरती के लिये जो कुछ किया, जितनी सहायता पहुँचाई, उसकी प्रशंसा शब्दों के द्वारा नहीं व्यक्त की जा सकती। आर्य-समाज, लखनऊ के प्रधान पं० रासविहारी तिवारीजी ने जिस बहादुरी के साथ, अपने प्राणों का मोह त्यागकर, आत्मरक्षा की है, अपने महल्ले और पास-परोस के हिंदुओं का धन, मान और प्राण बचाए हैं, उसका महत्त्व बहुत अधिक है। कान्यकुब्ज-कॉलेज के प्रिंसिपल श्रीनारायणजी चतुर्वेदी और उनके विद्यार्थियों ने भी आक्रमण व्यर्थ करने में प्रशंसनीय पौरुष का परिचय दिया है। मतलब यह कि लखनऊ के हिंदुओं की इज़्ज़त रखनेवालों में आर्य-समाज के लोग मुख्य थे। अगर आर्य-समाज साथ न देता, दुष्टों के दमन के लिये खड़ा न होता, तो इसमें संदेह नहीं कि हिंदुओं की बड़ी दुर्दशा की जाती। महल्ले-के-महल्ले लुट जाते, मंदिर खुद जाते, दूकानों के माल का पता न लगता। आर्य-समाज के प्राण तिवारीजी के आदर्श और प्रोत्साहन ने कायरों में भी शक्ति उत्पन्न कर दी। अतः इस सत्कार्य के लिये आर्य-समाज और उसके प्रधान तिवारीजी को हम धन्यवाद देते और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। आशा है, तिवारीजी लखनऊ के हिंदुओं में आत्मरक्षा का उत्साह और शक्ति पैदा करने के उद्योग में अपनी सारी शक्ति लगा देंगे।

× × ×

४. ग्राम-संगठन का काम शुरू करो

नागरिकों के अन्नदाता और ज़मींदारों तथा महाजनों को मालदार बनानेवाले किसान देहातों में ही रहते हैं। ग्रामों की हालत पहले के ज़माने में—१००-५० वर्ष पहले तक—कैसी थी, और अब कैसी है, यह अब भी बड़े-बूढ़ों के मुख से सुनकर सहृदय मनुष्य रो देता है। पहले जहाँ अन्नपूर्णा का निवास था, सादगी के साथ सुखी जीवन बितानेवाले सीधे-सादे, शांतिप्रिय लोगों की अधिकता थी, रोग-शोक-संताप और पाप-वासना का अभाव था, प्रसन्न प्रजा पर प्रकृति देवी की अपार अनु-कंपा दृष्टिगोचर होती थी, हृष्ट-पुष्ट-शरीरवाले पशुओं के झुंड-के-झुंड इधर-उधर चरते-विचरते रहते थे, घी-दूध-दही की नदियाँ-सी बहा करती थीं, हरे-भरे खेत पथिक की आँखें शीतल कर देते थे, समाज के भीतर दुर्भाव, द्रोह, कपट, कुत्सा, कलह, फूट, कूटनीति आदि अनर्थ-कर दोष नहीं प्रवेश कर पाते थे, पंचायत के प्रताप से अनीति-अत्याचार-अविचार करने का साहस कोई न कर सकता था, अदालत की लत या क़ानूनी चालों की चालाकी पास नहीं फटकने पाती थी, उन्हीं देहातों को देखकर आज छाती फट जाती है। घर-घर खँडहर, हर ओर उजाड़ ! खेत सूखे पड़े ! पशु दस-पाँच रह भी गए हैं, तो चारे की लाचारी से उनके शरीरों में हड्डी के ढाँचे-भर नज़र आते हैं। घी-दूध-दही एक तो होता ही नहीं; और जो थोड़ा-बहुत होता है, वह किसानों के बच्चों

को भी नहीं नसीब होता, ज़मींदार अथवा उसके सिपाही, ज़िलेदार वग़ैरह मुफ़्त ही ज़बरदस्ती ले लेते हैं। दाम भी अगर किसी ने कभी दिए, तो चार पैसे में आठ आने की रक़म ले ली। अगर इस डाके से बच पाया, तो कंगाल किसान खुद बेच डालता है, खाता नहीं। कारण, जो कुछ दाम मिलेंगे, उनसे और ज़रूरी ख़र्चे चलाने होंगे। अरे घी-दूध-दही कैसा, बेचारा किसान और उसका परिवार पेट-भर अन्न तो खाता ही नहीं। अन्न के माने गेहूँ-चावल न समझिए; जुआर, मटर, जव वग़ैरह मोटा नाज ही किसान के लिये मेवा होता है। किसान का बाल-बाल महाजन के हाथ बिका पाइएगा। ज़मींदार और महाजन उसके खेत की पैदावार का अधिकांश हथिया लेते हैं। बाक़ी अक्सर अदालत के अमलों के हिस्से में आ जाता है। अंत को बैल-बधिया बिकने की नौबत आती है। किसानों के तन पर फटे चीथड़े होना भी बड़ा सौभाग्य समझना चाहिए। अधिकतर ओछी आठ-सात हाथ की गज़ी की धोती में ही ये लोग जाड़ा-गरमी-बरसात के दिन-रात बिता देते हैं। रोग, मारी आदि के हमले हुआ ही करते हैं। ग्राम के समाज में सर्वत्र दुर्भाव, द्रोह आदि दोषों ने जड़ जमा ली है। इस दुर्दशा से छुटकारा पाने के लिये बहुत-से किसान शहरों में गए और वहाँ से कुली सप्लाई करनेवाले नर-पिशाचों के हाथ पड़कर पृथ्वी पर ही नरक की यातना भोगने चले गए। बहुत-से देश में ही कठिन कुलीगीरी करने को विवश होते हैं। बहुत-से और कोई उपाय न सूझ पड़ने पर आत्महत्या तक कर लेते हैं। बहुत-से अंत को कुसंग में पड़ जाते और दिन-दिन अधोगति के साथ पाप-पंक में डूबते जाते हैं। कहाँ तक कहें, ग्रामों और ग्रामवासियों की दशा देखकर यही कहना पड़ता है कि देशोद्धार का सपना देखनेवाले नगर-निवासी नेता इन व्यर्थ व्याख्यानों की भरमार करके कुछ भी न कर सकेंगे। कारण, भारत के बहुत बड़े भाग की ख़बर न लेकर, उसे अवज्ञा के साथ अज्ञान के अंधकार में पीछे छोड़कर, कुछ धनी और मध्यवित्त श्रेणी के शिक्षितवर्ग किस तरह उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ सकेंगे? ग्रामवासियों की शक्ति ही भारत की असली और अजेय शक्ति है। इस शक्ति को जगाकर, जीवित करके ही, भारत का उद्धार किया जा सकता है। जब तक नाम के भूखे और कामचोर लीडर वोटों के लिये भिक्षा माँगते रहेंगे, शिक्षा के गर्व में चूर रहकर ग्रामीण किसानों को तुच्छ दृष्टि से देखते रहेंगे, नगरों की उन्नति और नागरिकों की सुविधा को ही अपना सर्वोपरि कर्तव्य जानेंगे, अपने आंदोलन में ग्रामीण किसानों को अधिकाधिक संख्या में शरीक न करेंगे, उनको इतनी शिक्षा पाने का सुबीता न कर देंगे कि वे राजनीतिक आंदोलन के स्थूल तत्त्वों को समझ सकें—अपनी स्थिति और अपनी शक्ति का पूरा परिचय प्राप्त कर सकें, ग्राम-सुधार की योजना न करेंगे, ग्रामों में घूम-घूमकर ग्रामवासियों के कष्टों और अभाव-अभियोगों की जानकारी न हासिल करेंगे, देहातियों से सहानुभूति का व्यवहार करके अपने को उनकी दृष्टि में उनका हितचिंतक न सिद्ध कर देंगे, उनकी महान् शक्ति के योग से अपने उद्योग को प्रभावशाली न बना लेंगे, तब तक सफलता और सिद्धि उनसे कोसों दूर रहेगी। इसलिये राजनीतिक, धार्मिक या सामाजिक, किसी भी क्षेत्र में काम करनेवालों को सर्वप्रथम ग्राम-सुधार और ग्रामीणों में शिक्षा-प्रचार का काम ज़ोर-शोर से चारों ओर शुरू कर देना चाहिए। सरकार को बुरा-भला कहने की बहादुरी बहुत दिखा चुके। अपने में जेलों के कष्ट झेलना खेल-सा समझने का साहस भी प्रमाणित कर चुके। *असहयोग की आँधी* में महात्मा गाँधी की बाँधी पंच-बहिष्कार की शृंखला अब ढीली हो गई है। सारा देश किसी नई नीति के निकलने की अपेक्षा कर रहा है। आओ, अब अवसर अच्छा है। कार्य करने की सच्ची उमंग रखनेवाले कर्मवीर युवको, आगे बढ़कर ग्राम-सुधार, किसान-संगठन और ग्रामों की सहायता करने का काम अपने हाथ में लेकर जुट जाओ। ग्रामों में हिंदू ही अधिक हैं। वहाँ से हिंदू-संगठन का आरंभ कर देना भी सहज-साध्य है। ग्रामों में घूमो-फिरो; ग्रामीणों से मिलो-जुलो; बातचीत के सिलसिले में उनके सुख-दुख का हाल पूछो; सहानुभूति दिखाकर आत्मीयता पैदा करो; सहायता और सहारा देने का विश्वास कराओ; उन्हें उनकी स्थिति और देश की परिस्थिति समझाओ; इस दुर्दशा से उद्धार के उपाय बतलाओ। इस तरह यह कार्य अमीर, ग़रीब, सभी कर सकते हैं। इसमें धन की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि परिश्रम करने की। मुसलमान ग्रामवासी भी

ग्राम-संगठन में शरीक किए जायँ। हाँ, हिंदू-संगठन का काम केवल हिंदुओं के भीतर किया जाना चाहिए। हिंदू-जाति के भीतर जो हानि पहुँचानेवाले दोष जड़ जमा चुके या जमा रहे हैं, उन्हें निर्मूल करना, उनके विरुद्ध प्रचार करना, उनकी हानियाँ बतलाना, हिंदुओं की कमज़ोरियाँ सुझाकर उन्हें छोड़ने का उपदेश देना, एकता के लाभ और आवश्यकता बतलाना, परस्पर सहायता की सलाह देना, शक्तिशाली बनने के लिये उत्साह देना, दीन दुर्दशाग्रस्त भाई को सब तरह सहारा देने पर ज़ोर देना, यही सब हिंदू-संगठन के संबंध की बातें हैं। हमें विश्वास है कि इस तरह काम किया जाय, तो देश में बहुत शीघ्र एक नई शक्ति उत्पन्न हो जायगी।

× × ×

५. लड़का होगा या लड़की ?

हमारे देश में गर्भवती स्त्रियों को प्रायः यह जिज्ञासा-कौतूहल बेचैन बनाए रखता है कि उनके लड़का होगा या लड़की ? स्त्रियों में कुछ गर्भ के ऐसे चिह्नों की जानकारी होती है, जिनके आधार पर बहुधा उन्हें लड़का या लड़की होने के विषय में भविष्यत्कथन करते देखा गया है। बहुत-सी स्त्रियों को तो अपनी इस परीक्षा या अनुभव की सचाई पर इतना अटल विश्वास होता है कि वे बाज़ी लगाने को तयार हो जाती हैं। परंतु यदा-कदा भले ही उनका अनुमान ठीक निकलता हो, प्रायः फल अनुमान के विपरीत ही होता है। इसके सिवा ज्योतिषियों से भी पूछा जाता है। ज्योतिष की विद्या सत्य होने पर भी आजकल के स्वयंभू और विना पढ़े ही पंडित ज्योतिषी जो उत्तर देते हैं, वे भी झूठे ही सिद्ध होते हैं। और कोई ऐसा वैज्ञानिक उपाय न था, जिससे ठीक-ठीक यह मालूम हो सकता। किंतु जेकोस्लोवाकिया के डॉक्टर आइज़क फ्रायड की वैज्ञानिक प्रतिभा ने सृष्टि के इस रहस्य पर से अस्पष्टता का परदा हटा दिया है। वह गर्भिणी स्त्री के रक्त की परीक्षा करके प्रसवकाल से चार महीने पहले यह बता देते हैं कि उसके लड़का होगा या लड़की ? अब तक उनका भविष्य-कथन झूठ नहीं निकला।

× × ×

६. बेतार की लीला

बेतार के वार्ता-प्रवाह की गति की इतनी उन्नति की

हैरम मैक्सिम

(इन्होंने ही पहले-पहल अमेरिका में बैठे-बैठे इँगलैंड के आदमियों से बेतार के तार द्वारा बातचीत की है)
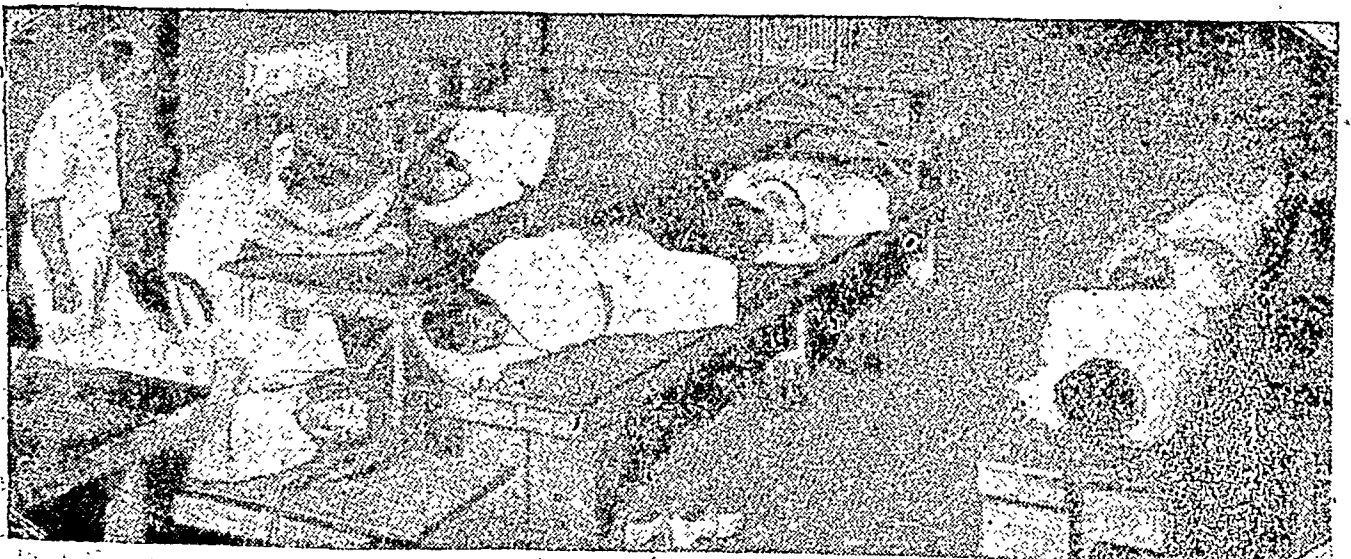
सात में भी बेतार के तार से सुना जाता है

सुरंग की राह में बेतार के तार की सहायता से सुनना

इस पार से उस पार का आदमी बेतार के तार के ज़रिए बातचीत करता है
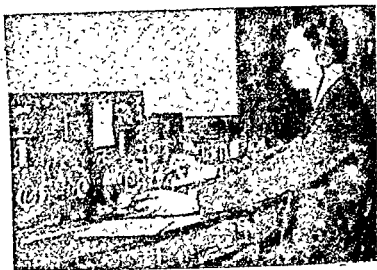
खान के भीतर बेतार के तार से बातचीत

जा चुकी है कि पृथ्वी पर की कोई भी बाधा उसे रोक नहीं सकती। इसके भी अनेकानेक प्रमाण मिल चुके हैं, कि जल में, स्थल में, अंतरिक्ष में, पाताल में, सभी जगह समान भाव से उसकी गति अप्रतिहत है। अभी हाल में हडसन-नदीगर्भ के भीतर, एक सुरंग की राह में, बेतार के द्वारा दूर के एक जलसे का गाना-बजाना सुनाया गया है। अरीज़ोना की एक खान के भीतर लगभग १४०० फ़ीट मिट्टी के नीचे बेतार के ज़रिए भेजे गए इशारे के समाचार सुने गए हैं। अतएव आशा की जाती है कि बहुत जल्दी दुनिया से टेलीग्राफ़, टेलीफ़ोन, केबिलग्राम आदि ख़बर भेजने और बातचीत करने के तरीक़े उठ जायँगे।

× × ×

७. फूल की व्यथा

बैल या घोड़े की पीठ पर चाबुक सटकाने से या कुत्ते की पीठ पर बेंत फटकारने से उनको कष्ट होता है—चोट लगती है, यह बात तो सभी जानते हैं। किंतु अभी तक किसी को कदाचित् यह ख़याल न होता था कि पेड़ों को भी पीड़ा पहुँचती है। लोगों की धारणा थी कि वृक्ष-लता आदि जड़ पदार्थ हैं, इनमें जीव का चैतन्य अथवा अनुभव-शक्ति नहीं है। परंतु हमारे पूर्वजों के मतानुसार वृक्ष भी सजीव हैं। यह बात अब विज्ञान ने सिद्ध कर दी है। अतएव जब हम फूल तोड़ते हैं, डाल काटते हैं, फल से छिलका उतारते हैं, या आँगन अथवा छत की घास उखाड़कर फेंकते हैं, तब वृक्ष या घास को कष्ट
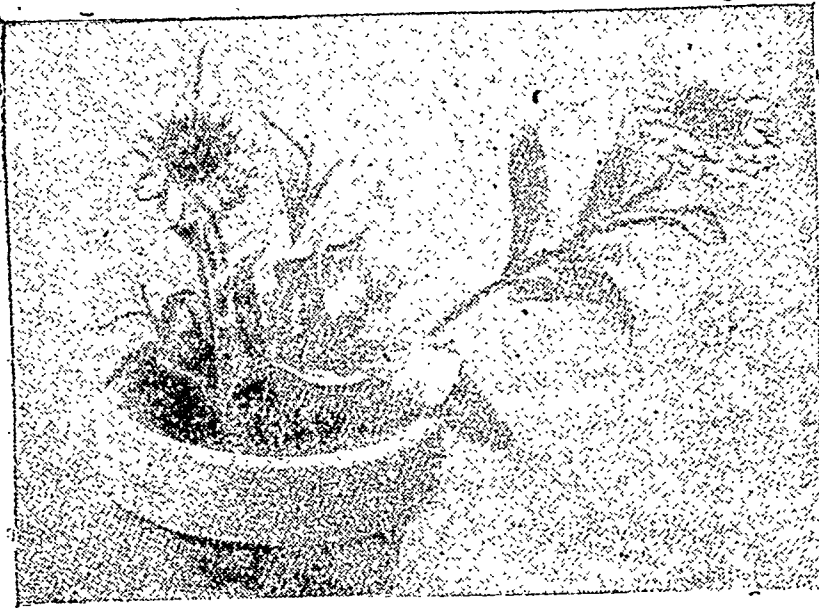
प्रभात के समय खिला हुआ मेरीगोल्ड (गेंदे की जाति का फूल)
(प्रकाश को ग्रहण करने के लिये प्रफुल्लित होकर पुष्प ने अपने सब दल फैला दिए हैं)
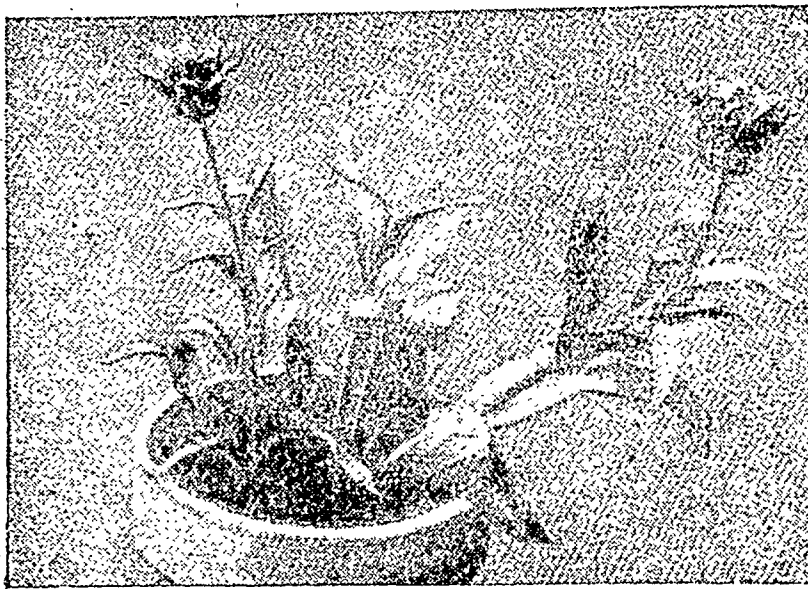
रात को संकुचित हुआ मेरीगोल्ड
(प्रकाश के विरह की व्यथा से पीड़ित होकर अपना मुँह ढक रक्खा है)

पहुँचाते हैं। हमारे ये कार्य बेज़बान जीवों पर हृदयहीन अत्याचार अथवा निष्ठुरता कहे जा सकते हैं। विज्ञान के प्रमाण से निश्चित हो गया है कि मनुष्य आदि देहधारियों की तरह वृक्ष और उनके शाखा-पल्लव-पुष्प आदि अंग भी आघात और घात से व्यथित होते हैं। फूल की व्यथा और शोक के परिचायक तीन चित्र प्रकाशित किए जाते हैं। हर्ष की बात है कि अब जड़वादी योरप और अमेरिका के लोग भारत के प्राचीन ज्ञान को विस्मयमयी नई दृष्टि से देखकर उसके क़ायल होते नज़र आते हैं। अब योरप के लोग भी वृक्ष-लता-फल-पुष्प आदि को सहृदयता के साथ देखने लगे हैं। इसी का यह शुभ परिणाम है कि उद्भिद्-जगत् के बहुत-से विचित्र, अज्ञात रहस्य सर्व-साधारण के आगे प्रकट हो चुके हैं। मालूम हुआ है कि सूर्य को देखकर
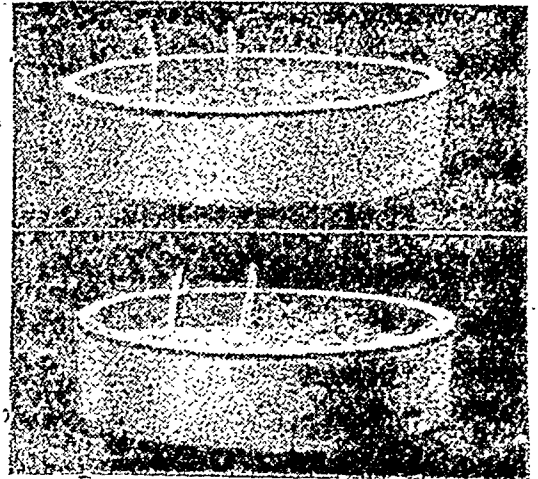
चने का अंकुर
(प्रकाश-स्पर्श के पहले मोह की अवस्था)
चने का अंकुर दाहनी ओर से केवल १२ सेकिंड तक प्रकाश पाते ही चने के अंकुर उसी ओर मुँह करके झुके हुए हैं।

केवल कमल-कलिका ही नहीं, और भी अनेक पुष्प-मुकुल प्रसन्नता के मारे खिलखिलाकर हँस उठते हैं, और उसके विरह में मुँह लटकाकर व्यथा व्यक्त करते हैं। विज्ञान की बलिहारी!

× × ×

८. एक अद्भुत मिश्र-जंतु

प्रकृति की लीला विचित्र है। कभी-कभी वह ऐसी घटनाएँ और ऐसे दृश्य दिखाती है कि देखनेवाले दंग हो जाते हैं। संसार के अजायबघरों में इस तरह के अनेक नमूने नज़र आते हैं। मगर मनुष्य की बुद्धि के भी कारनामे कुछ कम विचित्रता नहीं रखते। फूलों-फलों के आकार-रंग-स्वाद आदि में मनुष्य-कृत विचित्र परिवर्तन का हाल तो बहु-प्रसिद्ध है। आज हम मनुष्य-कृत पशुओं के परिवर्तन-वैचित्र्य का एक नमूना पेश करते हैं। हाल में होलस्टोइन-

नामक प्रदेश के अंतर्गत हालस्टेड-स्थान से एक अद्भुत मिश्र-जंतु के जन्म की ख़बर आई है। ४१० पौंड वज़न के एक मेढ़े और गऊ के संयोग से एक अपूर्व मिश्र-जंतु का जन्म हुआ है। यह जंतु अभी केवल ५ सप्ताह का है, और इसकी ऊँचाई केवल २० इंच है। इसका सारा शरीर मा के शरीर से मिलता है; केवल सिर और पैर मेढ़े के-जैसे हैं। इसके सारे शरीर में ख़ूब लंबे, काले और कोमल रोएँ हैं। साधारणतः गऊ के गर्भ की अवधि २२ सप्ताह हुआ करती है; किंतु यह अद्भुत प्राणी ३१ सप्ताह तक मा के गर्भ में रहा है। स्थानीय पशु-चिकित्सकों ने इन सब बातों की सचाई का समर्थन किया है।

× × ×

९. वर्तमान हिंदी-कवियों से निवेदन

वर्तमान काल में चुटीली, चोखी, मन को मोह लेने-वाली, कोमल-कांत पदावली से पूर्ण, भावमयी कविता का काल-सा पड़ा हुआ है। हिंदी के छोटे-बड़े सभी पत्रों और पत्रिकाओं में कुछ पद्य-भाग प्रकाशित करना अत्यंत आवश्यक समझा जाता है। प्रत्येक पत्र-संपादक के पास प्रति दिन दो-चार पद्य-रचनाएँ पहुँचती ही रहती हैं। उनमें से अधिकांश रचनाओं को कहीं-न-कहीं (एक संपादक की अस्वीकृति के उपरांत दूसरे, तीसरे, चौथे के पास भेजते रहने से कोई-न-कोई ग़रज़ का मारा बेचारा छाप ही देता है) छापे के अक्षरों में छपने का सौभाग्य प्राप्त हो ही जाता है। इस प्रकार कवियों का बाहुल्य ही दृष्टिगोचर होता है। परंतु क्या उनकी क़लम और कलाम वह काम कर पाते हैं, जो सच्ची काव्य-कला करती है ?

कहने को तो कविता करनेवाले कवियों की कमी नहीं है, जिन्होंने प्रत्येक हिंदी-पत्र और पत्रिका के कालम-के-कालम काले कर डाले होंगे, उन कवि-कीर्तिकामी कोविदों की संख्या निश्चित करने का कठिन काम कुछ काल के उपरांत असंभव-सा हो जायगा। किंतु कटु होने पर यह अप्रिय सत्य छिपाया नहीं जा सकता कि वर्तमान पद्य-प्रणेता दल में कविता की कला का गला घोटनेवाले सौ में ९९ निकलेंगे—एक भी कहीं मुशकिल से इस क़ाबिल होगा, जिसकी प्रतिभा, जिसकी सूझ, जिसकी कल्पना, जिसका हार्दिक रसानुभव, जिसकी भव्य भाव-भरी भावुकता, जिसके जादू-भरे शब्द शत्रु-मित्र सबको अलौकिक, अनिर्वचनीय, अनन्य आनंद के सरस सरोवर में डुबाने की क्षमता रखते हों। कुछ यहाँ से कुछ वहाँ से, कुछ इसका कुछ उसका, कुछ अब का कुछ तब का छीन-झपटकर, काट-कपटकर, काट-छाँट के सहारे कवि की कीर्ति कमाने की कुबुद्धि को कभी न प्रश्रय देना चाहिए। जितना माद्दा, जितनी योग्यता, जितनी सूझ-बूझ अपने में देख पड़े, उसी से काम लेना, उसी की उन्नति करना, उसी को बढ़ाना श्रेयस्कर है। साधना से ही सिद्धि प्राप्त होती है। साधन पहले, फिर साधना, और उसके साथ-साथ सुधार, इस सीधी राह से सिधारते हुए साधारण सिद्धि भी प्राप्त करना साधक के लिये गौरव की बात है। सर्वदा, सर्वत्र सब लोगों को इसी सिद्धांत का अनुसरण करना चाहिए। अगर कोई इसके विपरीत चालबाज़ी या चालाकी से, बिना मेहनत किए, चुरके-चुरके चोर की तरह गिरहकटी करते नहीं हिचकता, औरों के माल पर डाका डालकर उसे बाज़ार में बदली हुई शकल में रखता और ढिठाई के साथ अपनी बताता है, किसी के संदेह प्रकट करने पर लाल-पीली आँखें दिखाता—धमकाता—गालियाँ देता और ऐंठता-अकड़ता है, वह कभी-न-कभी, एक-न-एक दिन अवश्य मय चोरी के माल के पकड़ लिया जाता है। तब उसका जो अपमान होता है, वह जिस घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, उसकी तुलना में वह पहले का धोखा देकर प्राप्त किया हुआ सम्मान, प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि, प्रतिपत्ति, प्रशंसा आदि का कुछ भी मूल्य नहीं रह जाता। हिंदी-साहित्य-संसार में ऐसे नाम के भूखे सफ़ेदपोश साहित्यिक डाकू अक्सर पकड़े जाते हैं। अगर वे पिछले पाप के लिये तोबा कर लें, और आइंदा फिर कभी किसी और के माल पर नियत न डुलाकर अपनी ही पूँजी काम में लावें, तो कदाचित् और 'छिपे रुस्तमों' पर भी उसका अच्छा प्रभाव पड़े, और जिनकी आबरू अभी तक ढकी-मुँदी है, वे सावधान हो जायँ। ख़यानत करके करोड़पती कहलाने की अपेक्षा ईमानदारी के साथ मध्यवित्त-समाज में स्थान पाना लाख दर्जे अच्छा है।

× × ×

१०. अनातोले फ्रांस परलोक में

पृथ्वीमंडल के प्रत्येक साहित्यिक को अनातोले फ्रांस की मृत्यु का समाचार सुनकर हार्दिक दुःख हुआ होगा। केवल हिंदी जाननेवालों को भी अनातोले फ्रांस की प्रतिभा

अनातोले फ्रांस

का कुछ परिचय श्रीयुत प्रेमचंदजी, "अहंकार" लिखकर, दे चुके हैं। अनातोले महाशय फ्रांसवासी और उच्च कोटि के उपन्यास-लेखक थे। उत्तम औपन्यासिक ही नहीं, आप समालोचक भी अपने समय में एक ही माने जाते रहे। आपकी समालोचना में व्यंग्य की मात्रा यथेष्ट रहती थी। असल में आपका नाम था जैक्स अनातोल थीबाल्ट, लेकिन सर्वत्र अनातोले फ्रांस ही कहे जाते थे। अनातोले की मृत्यु से फ्रांस के साहित्य की ही नहीं, विश्व-साहित्य की बड़ी क्षति हुई है। अनातोले ने भिन्न-भिन्न विषयों पर कहानियाँ और उपन्यास लिखकर अपनी सूक्ष्म दृष्टि और सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। आपकी रचनाएँ सभी देशों में आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं। आपको सुप्रसिद्ध नोबल-पुरस्कार भी मिला था। उन दिनों रूस में घोर अकाल पड़ा हुआ था। आपने पुरस्कार के रुपए रूसी अकाल की सहायता के लिये दे डाले। अब तक पृथ्वीमंडल के भिन्न-भिन्न देशों में आपकी ग्रंथावली की अधिकांश पुस्तकों का अनुवाद हो चुका है। अनातोल सोशलिस्ट थे। आपका कहना था कि "धन और दारिद्र्य, दोनों ही पाप हैं। दान से यह पाप बढ़ता है। करोड़गुना धन जमा करके तब कहीं धनी लोग कुछ दान करते हैं।" अनातोले का जन्म सन् १८४४ की १६वीं एप्रिल को हुआ था, मृत्यु गत १२ ऑक्टोबर के दिन हुई। इधर कई दिन आप बीमार रहे थे। आपका विस्तृत परिचय अगली संख्या में प्रकाशित किया जायगा। ईश्वर से हम आपकी आत्मा के लिये सद्गति और शांति की प्रार्थना करते हैं।

× × ×

११. दो और शोचनीय मौतें

हिंदी-संसार में सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध कविराज पं० नाथूरामशंकरजी पर वृद्धावस्था में शोक का पहाड़ फट पड़ा है। आपके बड़े पुत्र पं० उमाशंकर शर्माजी का स्वर्गवास हो गया। हमें नहीं सूझता कि हम किन शब्दों में शंकरजी को सांत्वना दें। पुत्रशोक, और वह भी इस बुढ़ापे में! मगर शंकरजी ज्ञानी हैं, और संसार की असारता का रहस्य अच्छी तरह समझे हुए हैं। कराल काल से किसी का ज़ोर नहीं चलता। यही समझकर शंकरजी धैर्य धारण करेंगे। भगवद्भजन करने में ही शांति मिलेगी। हम इस असह्य विपत्ति में शंकरजी और पं० हरिशंकर शर्माजी से समवेदना प्रकट करते हुए जगदीश्वर से स्वर्गीय उमाशंकरजी की आत्मा के लिये सद्गति और शांति-प्रदान की प्रार्थना करते हैं।

दूसरी शोचनीय मृत्यु से भी हिंदी-साहित्य की बड़ी क्षति हुई है। बाबू जगन्मोहन वर्माजी का नाम हिंदी-जगत् में सुप्रसिद्ध था। वर्माजी कायस्थ थे। आपने बौद्ध-धर्म तथा पुरातत्त्व की कई पुस्तकें लिखी हैं, और अनुवाद भी किए हैं। आप अक्सर अच्छे मौलिक लेख लिखा करते थे। वर्माजी प्राकृत, पाली, अँगरेज़ी, फ़ारसी, संस्कृत, बँगला, हिंदी आदि के ज्ञाता थे। हिंदी शब्द-सागर के संपादकीय विभाग में बहुत समय तक काम करते रहे। वर्माजी कुछ अच्छी पुस्तकें लिखने का विचार कर रहे थे। इसी बीच में निष्ठुर काल ने अचानक आकर आपकी आयु का अंत कर दिया। वर्माजी का चित्र और विस्तृत परिचय भी अन्य किसी संख्या में प्रकाशित किया जायगा। अगर आपके अच्छे-अच्छे मौलिक लेखों का एक संग्रह नागरीप्रचारिणी-सभा, काशी की ओर से प्रकाशित किया जाय, तो बहुत अच्छा हो। वर्माजी की सादगी, सचाई, स्पष्टवादिता, सज्जनता और संतोष सराहने योग्य था। ईश्वर आपको परलोक में शांति-प्रदान करें। हम आपके परिवार से सहानुभूति प्रकट करते हैं।

× × ×

१२. भ्रम-संशोधन

(१) माधुरी की गत भाद्रपद की संख्या के सुमन-संचय में श्रीयुत मंगलाप्रसादजी विश्वकर्मा का "पी कहाँ"-शीर्षक एक गद्य-काव्य प्रकाशित हुआ है। उसके अंत में, फुटनोट में, हमने यह संदेह प्रकट किया था कि कदाचित् यह रचना किसी बँगला-रचना का अनुवाद है। हमें यह जानकर हर्ष हुआ कि हमारा अनुमान या संदेह निर्मूल था। विश्वकर्माजी का प्रतिवाद पाकर हमें मालूम हुआ है कि आपकी वह रचना मौलिक है। अधिकं तु आप किसी अनुवाद को अपनी रचना बताना बहुत बुरा समझते हैं। हमने संदेह क्यों प्रकट किया, इसकी कैफ़ियत देना भी उचित जान पड़ता है। प्रथम तो आपके लेख की शैली और शब्द-विन्यास ऐसा था कि उससे ऐसा संदेह उत्पन्न हो सकता था। आप अक्सर बँगला-रचनाएँ पढ़ा करते हैं, और उनका असर भी आप पर बहुत पड़ा है, यह आपने पत्र में स्वयं लिखा है। आपकी रचना में बँगला की शैली और शब्द-योजना इसी कारण हमें देख पड़ी। दूसरा कारण यह था कि कई लेखक—यशस्वी लेखक—अनुवाद को अपनी मौलिक रचना बताकर हमें धोका दे चुके हैं। किस पर विश्वास किया जाय?

(२) माधुरी की गत श्रावण की संख्या में कविवर गोपालशरणसिंहजी की "सर्वव्यापी"-शीर्षक कविता में चार जगह कुछ रद्दोबदल किया गया था। पाठकों को चाहिए कि अपनी प्रतियों में नीचे-लिखे अनुसार संशोधन कर लें—

"जो कुछ जग में देख पड़े विरचित विधि-द्वारा" की जगह
"जो कुछ जग में दीख रहा विरचित विधि-द्वारा"

× × ×

"लगे रात को नित्य गगन में सभा तुम्हारी" की जगह
"लगती निशि में नित्य गगन में सभा तुम्हारी"

× × ×

"हरे भूमि का ताप, सतत उसको बरसाकर" की जगह
"हरता भू का ताप सतत उसको बरसाकर"

× × ×

"वह सौरभ सर्वत्र तुम्हारी ही फैलाता" की जगह
"वही तुम्हारी सुरभि सब कहीं है फैलाता"

ठीक कर लें।

× × ×

१३. महात्माजी का २१ दिन का उपवास

अब तक महात्माजी के व्यक्तित्व की विशेषता या प्रभाव अधिकतर भारत के राजनीतिक क्षेत्र में ही माना जाता था। उनके व्यक्तित्व की विशेषता पर बहुत-से लोग, उनके अनुयायी न होने पर भी, मुग्ध थे। किंतु उनकी असली विशेषता का पता बहुत कम लोगों को लग सका था। महात्माजी में आत्मविश्वास और ईश्वर-विश्वास इतना ज़बरदस्त है कि उसी के बल पर वह बड़े-से-बड़े कार्य को बेखटके अपने हाथ में ले लेते हैं; और अब तक उन्होंने जिस काम में हाथ लगाया है, वह पूर्ण हुए बिना नहीं रहा। गुलबर्गा और कोहाट की करुण कथा सुनकर व्यथित महात्माजी ने उसी आत्मविश्वास और ईश्वर-विश्वास के बल पर, परस्पर लड़कर आत्मघात पर तुले हुए भारतीय हिंदू-मुसलमानों के प्रायश्चित्त-स्वरूप, २१ दिन निराहार रहने का व्रत किया था। मानो आप ही इस कलह-कांड के लिये दोषी हैं, यह भाव हृदय में होना ही आपके महत्त्व का पूर्ण परिचायक है। आपके इस कठोरतम व्रत का समाचार सुनकर सारा देश और सभी संप्रदायों के लोग अत्यंत विचलित हो उठे। चारों ओर से आपके पास व्रत छोड़ देने की प्रार्थनाएँ उपस्थित होने लगीं। परंतु आप अपने प्रण पर अटल रहे, और ईश्वर की कृपा से आपका व्रत निर्विघ्न समाप्त हो गया। आशा है, आपकी यह घोर तपश्चर्या निष्फल न जायगी, और आपके व्रत के उपलक्ष्य में हुई एकता सम्मिलन की काररवाई के अनुसार देश के हिंदू और मुसलमान-समाज के नेता, अपने-अपने समाज में उत्तेजना के भाव घटाकर, परस्पर सद्भाव एवं विश्वास स्थापित करने में अवश्य ही समर्थ होंगे। हम आशा करते हैं, महात्माजी इस कठिन तपस्या से अभिनव शक्ति प्राप्त करके बहुत शीघ्र हिंदुओं और मुसलमानों के मन का मैल दूर करने में संपूर्ण सफलता प्राप्त करेंगे। ईश्वर से भी हमारी यह हार्दिक प्रार्थना है कि वह विश्ववरेण्य महापुरुष महात्माजी को चिरायु करें, और महात्माजी उत्तरोत्तर इस दुर्दशाग्रस्त दीन देश की उन्नति और उपकार करते रहें। तथास्तु।

× × ×

१४. बाबू भूपेंद्रनाथ वसु का स्वर्गवास

गत १७ सितंबर को, दोपहर के समय, भूपेंद्र बाबू

का स्वर्गवास हो गया। आप अर्से से बीमार थे। भूपेंद्र बाबू नरमदल के राजनीतिक और प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता थे। सन् १९१६ के बाद, नरमदल के कांग्रेस छोड़ने पर, आपने सरकारी नौकरी कर ली। मृत्यु से कुछ समय पहले आप बंगाल की शासन-सभा के सदस्य होने के साथ ही कलकत्ता-युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर भी बना दिए गए थे। परंतु बीमारी के कारण कुछ कार्य नहीं कर सके। आप श्रीसुरेंद्रनाथ बनर्जी के मित्र थे, और दोनों मित्रों की अवस्था भी लगभग बराबर ही होगी। बंगभंग के समय आपने प्रजा का पक्ष लेकर गवर्नमेंट का घोर विरोध किया था। आप एक सुयोग्य विद्वान् और समझदार उदार पुरुष थे। आपकी मृत्यु से केवल बंगाल ही नहीं, भारत-भर को घोर दुःख हुआ है। हम आपकी स्त्री और एक-मात्र पुत्र श्रीयुत एस्० एन्० वसु बैरिस्टर से सहानुभूति प्रकट करते हुए परमेश्वर से मृत आत्मा की सद्गति के लिये प्रार्थना करते हैं। वसु बाबू का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—आप कलकत्ते में, एक प्रसिद्ध कायस्थ-कुल में, सन् १८५९ में उत्पन्न हुए थे। आपने सन् १८७५ में एंट्रेंस और १८८० में, प्रेसीडेंसी-कॉलेज से, बी० ए० पास किया। फिर शिक्षा प्राप्त कर कलकत्ता-हाईकोर्ट में एटर्नी का काम करने लगे। १८८१ में, अँगरेज़ी में, नामवरी के साथ एम्० ए० भी पास कर लिया। एटर्नी के काम में बहुत धन कमाया। एक बार कलकत्ता-कारपोरेशन के सदस्य भी चुने गए। सन् १८९८ में, मेकेंज़ी-बिल के प्रतिवाद में, आपने कारपोरेशन की मेंबरी छोड़ दी। फिर कभी उम्मेदवार नहीं हुए। १९०५ में बंगाल-प्रांतिक-सम्मेलन के सभापति हुए। बंगाल की व्यवस्थापिका सभा के तीन बार सदस्य निर्वाचित हुए। बड़े लाट की कौंसिल में अंतरजातीय विवाह-बिल आपने उपस्थित किया। वह पास नहीं हुआ। १९११ में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ, और आप स्वागतकारिणी-समिति के सभापति चुने गए। १९१४ में मदरास-कांग्रेस के सभापति चुने गए। इसी साल भारत-सचिव की कौंसिल के मेंबर बनाए गए। १९२२ में भारत-सरकार ने जनेवा की मज़दूर-कानफ़्रेंस में आपको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा। १९२३ में रॉयल-कमीशन के मेंबर बनाए गए। इसी साल इंडिया-कौंसिल की मेंबरी से इस्तीफ़ा दिया; बंगाल-सरकार की कार्यकारिणी सभा के सदस्य बने; और कलकत्ता-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर का पद भी प्राप्त किया।

× × ×

१५. कटारपुर और फ़ैज़ाबाद के क़ैदी

पाठकों को स्मरण होगा कि कटारपुर में जो हिंदू-मुसलमानों के बीच गोवध के लिये दंगा हुआ था, उसमें बहुत-से हिंदुओं ने लंबी क़ैद की सज़ा पाई थी। हिंदू-जनता ने न उस समय ही उधर यथेष्ट ध्यान दिया, और न अब तक उनके छुटकारे के लिये विशेष आंदोलन किया गया। इस समय कुल १७,६०० मोपला-क़ैदी यह कहकर सरकार ने छोड़ दिए हैं कि उनको धार्मिक उत्तेजना देकर बलवे के लिये उद्यत किया गया था, और अब उनके छोड़ देने से किसी प्रकार के दंगे की आशंका नहीं है। इनमें १७,००० क़ैदियों के अपराध उतने संगीन न थे। इनके अलावा १३२० भारी अपराध करनेवाले क़ैदियों में से भी ६०० छोड़ दिए गए हैं, और जितनी सज़ा वे अब तक भोग चुके, वही काफ़ी समझी गई है। जब विद्रोही मोपलों की क़ैद माफ़ की जा सकती है, तो फिर उन हिंदुओं की बाक़ी सज़ा माफ़ कर देने में कोई रुकावट नहीं देख पड़ती, जो मोपलों की तरह राजनीतिक नहीं, धार्मिक कारण से उत्तेजित हो उठे थे, और जिनमें ७५ फ़ीसदी निर्दोष आदमी निकलने की संभावना है। कटारपुर के दंगे के समय हरद्वार के ठाकुर शिवदयालुसिंह सबइंस्पेक्टर (पुलीस) ने भी सज़ा पाई थी। आप इस दंगे का ठीक-ठीक हाल और रहस्य जानते हैं। आपने इधर कटारपुर के क़ैदियों के संबंध में एक चिट्ठी पत्रों में छपाई है। उसमें आपने लिखा है—"मैं उस मुक़द्दमे में सबइंस्पेक्टर पुलीस की हैसियत से तहक़ीक़ात करता था। मुझे उसकी जितनी बात मालूम हैं, उतनी किसी बिरले ही आदमी को मालूम होंगी। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि उनके (क़ैदियों के) साथ अन्याय से काम लिया गया। इसी संबंध में मुझे भी जेल काटनी पड़ी। इसमें ऊँचे अधिकारियों का अधिक दोष नहीं है। नीचे के अधिकारी प्रायः मुसलमान ही थे। ऊपरवाले उन्हीं की बात मानते थे। इसी का यह दुष्परिणाम हुआ। हरद्वार से २६ मील तक आसपास की ज़मीन पवित्र मानी जाती है। इसके अंदर

कभी गोवध नहीं हुआ । यहाँ तक कि औरंगज़ेब के ज़माने में भी यहाँ गोवध नहीं हुआ । फिर भी मैजिस्ट्रेट का उसके लिये हुक्म दे देना न्यायविमुखता और अदूरदर्शिता थी ।" इसी तरह फ़ैज़ाबाद के उपद्रव में सज़ा पाए हुए अधिकांश आदमी जनता की दृष्टि में निर्दोष हैं । और, अगर दोषी भी हैं, तो वे अब काफ़ी सज़ा भोग चुके । हम प्रांतीय सरकार और भारत-सरकार से इन अभागे क़ैदियों पर कृपा करने की प्रार्थना करते हैं । साथ ही हिंदू-समाज के नेताओं से—विशेष कर भारतधर्ममहामंडल के सभापति महाराजा दरभंगा, मालवीयजी, दीनदयालुजी और लाला लाजपत रायजी से—भी हमारी यह सविनय प्रार्थना है कि इन असहाय क़ैदियों के उद्धार के लिये आप विशेष रूप से आंदोलन करें ; सरकार को पूर्वोक्त बातें बतलाकर उक्त क़ैदियों के छुटकारे की न्यायानुकूलता और आवश्यकता सुझावें । कुछ को प्राण-दंड हुआ था । कई क़ैदी कारागार की कोठरी में भी मौत के मुँह में जा चुके हैं । अब जो बच रहे हैं, उनके और उनके कुटुंब के कष्टों का ख़याल करके उन्हें छुड़ाने की चेष्टा करना प्रत्येक हिंदू का कर्तव्य है । आशा है, हिंदू-समाज इस आवश्यक कर्तव्य की ओर शीघ्र ही ध्यान देकर अपनी सजीवता और समझदारी का परिचय देगा ।

× × ×

१६. कुछ जानने योग्य बातें

१—आस्ट्रेलिया में अब की २० लाख गाँठ पशम पैदा हुआ है, जिसका मूल्य ७ करोड़ पौंड है । और १२ करोड़ बुसल गेहूँ पैदा हुए हैं, जिनका मूल्य ३० करोड़ पौंड है ।

२—फ़िलाडेल्फ़िया में दो जर्मन वैज्ञानिकों की सहायता से पेड़ों को बिना काटे ही रँगने की चेष्टा की जा रही है । प्रक्रिया यह है कि वृक्ष की जड़ में कुछ रासायनिक पदार्थ डाल देते और धीरे-धीरे उन्हें वृक्ष के छोटे-छोटे कोषों (Cells) में पहुँचाते हैं । आठ-दस दिन में ही पेड़ की प्रत्येक नस पर रंग का प्रभाव पड़ जाता है । रासायनिक प्रक्रिया पूरी होते ही पेड़ मुर्दा हो जाता है । फिर उसे काट डालते हैं । यह रंग किसी तरह नष्ट नहीं होता ।

३—यूकेलिपटस वृक्ष पृथ्वी-भर में सबसे बड़ा वृक्ष है ।

४—सारी पृथ्वी में केवल ७ औंस रेडियम मिला है । उसका मूल्य ६ करोड़ पौंड है ।

५—लंदन के स्कॉटलैंड-यार्ड के ख़ुफ़िया-विभाग में ४,५०,००० अपराधियों के अँगूठे की छाप रक्खी है ।

६—लंदन में रोज़ ६,००,००० पौंड चाय ख़र्च हो जाती है ।

७—लंदन-शहर में ही ४,००,०७७ टेलीफ़ोन इस्तेमाल करने के स्थान हैं ।

८—गत एप्रिल में, भारत की मिलों में, ५ करोड़ पौंड सूत और ३ करोड़ ४० लाख पौंड वस्त्र तैयार हुआ है । गत वर्ष इसी महीने में ४ करोड़ १० लाख पौंड सूत और २ करोड़ ८० लाख पौंड कपड़ा बना था । गत एप्रिल में ब्रिटिश-भारत से विदेश को २० लाख पौंड सूत भेजा गया । सन् १९२२ में ५० लाख पौंड भेजा गया था । गत एप्रिल में भारत की मिलों ने जितना कपड़ा तैयार किया था, उसका मूल्य था ४ करोड़ ५३ लाख रुपए । सन् १९२३ के एप्रिल में ३ करोड़ ७६ लाख रुपए का वस्त्र तैयार हुआ था । इस साल के गत एप्रिल में ५ करोड़ १८ लाख रुपए का और १९२३ के एप्रिल में ५ करोड़ २६ लाख रुपए का विदेशी कपड़ा भारत में आया था ।

९—पाश्चात्य सभ्यता से बहुत पहले ही प्राचीन चीन तरह-तरह के नए आविष्कारों के लिये प्रसिद्ध हो चुका था । ईसा से १,१२२ साल पहले चीन में कपास का आविष्कार हुआ था । ईसा की पहली शताब्दी के प्रथम भाग में चीनवालों ने काग़ज़ बनाया था । इसी शताब्दी के अंतिम भाग में तरह-तरह की दवाएँ चीनियों ने निकालीं । ईसा की दूसरी शताब्दी में, चीन में, काँच के बनाने की प्रणाली का आविष्कार हुआ । इसके अलावा ईसा से २,८५२ वर्ष पहले चीन में धातु के सिक्के प्रचलित किए गए थे । चीनी लोग बिलकुल शुद्ध स्वर में बाँधकर किस कौशल से बड़े-बड़े घंटे और घड़ियाँ बनाते हैं, यह अब तक योर-अमेरिका के शिक्षित विद्वान् नहीं जान सके ।

१०—डॉ० जानसन ने अपनी प्रसिद्ध डिक्शनरी सात वर्ष के कठिन परिश्रम से तैयार की थी । उन्हें उसके बदले में १,५७५ पौंड मिले थे । आक्सफ़ोर्ड-डिक्शनरी नाम से एक और बहुत बड़ी डिक्शनरी तैयार की जा रही है । यह अब समाप्तप्राय है । इसे तैयार करने में ४५ वर्ष लगे

हैं, और प्रकाशित करने में १२½ लाख पौंड ख़र्च होंगे।

११—विदेशी जीवन बीमा-कंपनियाँ प्रति वर्ष भारत से काफ़ी रक़म मार ले जाती हैं। सन् १९२१ में विदेशी बीमा-कंपनियों को कितने रुपए का प्रीमियम प्राप्त हुआ, यह यहाँ पर लिखा जाता है। जे० सी० बर्मन् महाशय ने यह हिसाब एक अँगरेज़ी-पत्र में प्रकाशित किया है।

कंपनी का नाम	प्रीमियम के रुपए
सिटी ऑफ़ ग्लासगो	१७,२८,७२०)
चायना म्यूचुएल	८,२८,४०,२७५)
ग्रेट ईस्टर्न लाइफ़	२,१५,३५,०५५)
ग्रेशम लाइफ़	८६,१७,६५०)
मैनुफ़ैक्चर्स लाइफ़	१४,११,४२,१०७)
नार्थ ब्रिटिश ऐंड मर्कंटाइल	२४,६२,६०५)
नार्विच यूनियन	१,३०,६७,७६०)
न्यूयार्क लाइफ़	४५,८४,४८,०६०)
फ़िनिक्स	१४,४६,६४५)
रॉयल	३१,४६,६३०)
स्टैंडर्ड लाइफ़	७२,४३,७५५)
सन लाइफ़	६,४८,०६,४३०)

१२—इँगलैंड की राजधानी लंदन ही इस समय पृथ्वीमंडल-भर में सबसे बड़ा शहर माना जाता है। लंदन में रहनेवालों की संख्या सारे हालैंड देश के निवासियों के बराबर है। आस्ट्रेलिया-भर में रहनेवालों की संख्या लंदन-निवासियों की संख्या से २० लाख कम है। लंदन में चौड़ी सड़कों की लंबाई सब मिलाकर २,२२३ मील है। अर्थात् ऐसी सब सड़कें अगर एक के बाद एक जोड़ दी जायँ, तो वे लंदन से कुस्तुंतुनिया तक पहुँच जायँ। इन सड़कों में, रात की रोशनी में, वर्ष में, ५० लाख रुपए के लगभग ख़र्च होता और शांति-रक्षा के लिये २१,००० पुलीस तैनात रहती है। लंदन में टेलीफ़ोन का तार इतना फैला है कि उससे ४८ बार सारी पृथ्वी लपेटी जा सकती है।

१३—तीस हज़ार घन-फ़ीट वायु का बोझ २७ मन के लगभग होता है।

१४—इँगलैंड में जितने गैस के कारख़ाने हैं, उनकी पूँजी १६ करोड़ पौंड है, और उनमें एक लाख से भी अधिक आदमी काम करते हैं। गत वर्ष इन कारख़ानों में २ खरब ७० अरब घन-फ़ीट गैस पैदा करने में १ करोड़ ६० लाख टन कोयला और ४ करोड़ ६० लाख गैलन तेल ख़र्च हुआ था।

× × ×

१७. जल-प्रलय

चारों ओर से बाढ़ की विकट ख़बरें आ रही हैं। मदरास और दक्षिण-भारत के अन्य स्थानों की भयानक बाढ़ में बेशुमार घर गिरे, धन-जन की हानि हुई। पशु कितने मरे, इसका अनुमान भी असंभव है। बंगाल और बिहार की बढ़िया भी कम भयानक नहीं। बंगाल और बिहार तो पिछली बाढ़ों के आक्रमण से ही अभी तक सँभल न पाए थे। इसी बीच में गंगा और यमुना की बाढ़ ने यू० पी० में भी हाहाकार मचा दिया। ये दोनों बड़ी नदियाँ सैकड़ों गाँव बहाकर भारी हानि कर चुकीं और कर रही हैं। केवल ग्राम ही नहीं, किनारे बसे हुए शहरों में भी हाहाकार मच गया है। इस समय देश में हिंदू-मुसलमानों के मनोमालिन्य से जगह-जगह हाहाकार मचा ही हुआ था कि जल-प्रलय ने और भी अनर्थ कर दिया। सभी तरफ़ सहायता की अत्यंत आवश्यकता है। कौन किसे सहायता पहुँचावे? फिर भी देश के धनी लोगों को इस समय मुक्त-हस्त होकर विपत्ति में पड़े हुए भाइयों की सहायता करनी चाहिए। ईश्वर की लीला कुछ समझ में नहीं आती। इस समय जो धन-जन-जीवन की हानि हुई, सो तो हुई ही, आगे अन्न के अभाव की बिभीषिका और भी विकट संकट की सूचना दे रही है। जहाँ-जहाँ बाढ़ आई है, वहाँ-वहाँ की खेती भी चौपट हो गई है। अगली फ़सल की भी विशेष आशा नहीं है।

× × ×

१८. विलायती घी

भारत में हालैंड का बना हुआ कमलमार्का विलायती घी भी आकर बिकने लगा! अभी तो यह कलकत्ते-बंबई-जैसे बड़े शहरों में ही विशेष रूप से बिक रहा है; लेकिन जो इसकी आमदनी और बिक्री रोकने का विशेष प्रयत्न न किया गया, तो अवश्य ही यह शहर-शहर, घर-घर, मिट्टी के तेल की तरह, फैल जायगा। इस घी का भारत में प्रचार करनेवाले हमारे ही अर्थ-

पिशाच भाई हैं। वे इसे घी से अधिक फ़ायदा पहुँचानेवाला और विशुद्ध बताकर अपने ही भाइयों को धोका दे रहे हैं। कलकत्ते में इधर इस संबंध में विशेष आंदोलन किया जा रहा है। यह नक़ली घी ४७) से लेकर ५१) रुपए मन तक के भाव में बिकता है। फुटकर बेचनेवाले दूकानदार इसे असली घी के नाम से ८०)-८२) रुपए मन के परते से बेचते हैं। इस घी के प्रचारक तो कहते हैं कि इसमें चर्बी आदि कोई धर्म-नाशक पदार्थ नहीं मिला है—यह केवल वनस्पति से, मक्खन मिलाकर, बनाया गया है। इस संबंध में उन्होंने कई डॉक्टरों के सर्टीफ़िकेट भी पेश किए हैं। किंतु और बहुत-से लोग इसे धर्म-नाशक चर्बी का सम्मिश्रण बताते हैं। उनका कथन है कि रासायनिक विश्लेषण करने से इसमें चर्बी पाई गई है। हमारी राय में इस घी का प्रचार बंद करना सर्वथा वांछनीय है। हिंदू लोग घृत का बहुत अधिक व्यवहार करते हैं। उनके हवन, पूजा आदि कर्म घृत के विना हो ही नहीं सकते। पूजा और हवन में गो-घृत की जगह इस विलायती नक़ली घी का उपयोग किया ही नहीं जा सकता। इसके अलावा घी इसलिये आहार में डाला जाता है कि वह पुष्टिकारक है। अगर यह नक़ली घी चर्बी से दूषित न भी हो, तो भी असली घी के समान पुष्टिकारक हो ही नहीं सकता। कितने बड़े खेद की बात है कि आज वह भारत, जहाँ घी-दूध का कुछ शुमार न था, विलायत के नक़ली घी का व्यवहार करने को विवश किया जाय। यह सब गो-वंश के नित्य होनेवाले विनाश का ही कुफल है। हम इस घी का व्यापार करनेवाले अपने भाइयों से सविनय प्रार्थना करते हैं कि वे ईश्वर के नाम पर, धर्म के नाम पर, अपने देश और समाज की भलाई के लिये, धन का लोभ अधिक न करें। हिंदू-जनता से भी हमारी प्रार्थना है कि वह इतना बहुव्यापी और प्रभावशाली आंदोलन करे कि इस घी के भारतीय एजेंट रालीब्रादर्स को विवश होकर यह घी यहाँ पहुँचाना बंद कर देना पड़े। हिंदू-जनता इन अपने अर्थ-पिशाच व्यापारी भाइयों को भी इस पाप-कर्म से निवृत्त होने के लिये बाध्य करने का उपाय कर सकती है। केवल सुदृढ़ प्रण होना चाहिए। ईश्वर शीघ्र अपनी इन अर्थ-सर्वस्व संतानों को सुमति दें।

× × ×

१९. सम्मेलन-समाचार

हिंदी-सेवकों को यह समाचार सुनकर बड़ी प्रसन्नता होगी कि देहरादून में होनेवाले हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति पूजनीय गोस्वामी राधाचरणजी चुन लिए गए। गोस्वामीजी को चुनकर कर्तव्य का पालन करनेवाले मतदाताओं को हम साधुवाद देते हैं। सम्मेलन के साथ कवि-सम्मेलन भी होगा। समस्याएँ पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं। स्थानाभाव-वश हम उन्हें नहीं छाप सके। हमारी राय में समस्याएँ बहुत, और कई व्यर्थ, हैं। समस्याएँ थोड़ी, पर चुनी हुई और मार्के की होनी चाहिए थीं। कवि-सम्मेलन के सभापति श्रीयुत श्रीधरजी पाठक चुने गए हैं। यह चुनाव भी सर्वथा अभिनंदनीय है। सम्मेलन के साथ संपादक-सम्मेलन होने की आवश्यकता भी श्रीनिरंजन शर्मा (अजित) ने पत्रों में प्रकट की है। हम इस प्रस्ताव का समर्थन करते हैं। इस समय हिंदी के संपादकों और लेखकों में परस्पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, जिसका अवश्यंभावी फल सद्भाव का अभाव देखने में आ रहा है। इस बुराई को दूर करने के लिये अब एक ऐसी प्रभावशाली संस्था की विशेष आवश्यकता है, जिसके द्वारा कलहप्रिय और औरों पर अनुचित आक्रमण कर आत्मप्रसिद्धि चाहनेवाले संपादक एवं लेखक राह पर लाए जा सकें। यह काम संपादक-समिति के द्वारा किए हो सकता है। सम्मेलन के साथ प्रदर्शिनी भी होगी। उसके दो विभाग होंगे—साहित्य और कला। सम्मेलन के लिये लेखों के विषयों की सूची भी पत्रों में छप गई है। यह तो सब हो रहा है, पर देहरादून में अचानक गंगाजी की बाढ़ आ जाने से बहुत कुछ रंग में भंग हो गया है। सम्मेलन का होना ही निश्चित तिथियों (आगामी ७, ८, ९ नवंबर) में दुर्घट देख पड़ता है। और, अगर इन तिथियों में सम्मेलन किया भी गया, तो उसकी सफलता को धक्का पहुँचे विना नहीं रह सकता। अतएव हमारी सम्मति है कि सम्मेलन का समय और आगे बढ़ा दिया जाय। इस समय बाढ़ के बाद वहाँ की स्थानीय जनता यथेष्ट उत्साह नहीं दिखा सकेगी, और न बाहर के प्रतिनिधि ही यथेष्ट संख्या में पहुँच सकेंगे। आशा है, प्रबंध-कारिणी और स्वागतकारिणी के कार्यकर्ता सज्जन हमारे इस निवेदन पर विचार करने की कृपा अवश्य करेंगे। सम्मेलन की सफलता पर लक्ष्य रखना

अत्यंत आवश्यक है। अगर कहने-भर को किसी तरह तीन दिन बेगार टल गई, तो वह व्यर्थ ही है।

× × ×

२०. हिंदी के प्रसिद्ध लेखकों की जीवनियाँ

पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी एक कर्मशील पुरुष हैं। आपने प्रवासी भारतवासियों के आंदोलन में जो कुछ काम किया है, उसका बहुत अधिक महत्त्व है। इस प्रकार देश-हित के अन्य कार्य करते रहकर भी आपने मातृभाषा की सेवा भुला नहीं दी। इस समय आप एक ऐसे महत्त्व-पूर्ण कार्य का आरंभ करनेवाले हैं, जिसकी अत्यंत आवश्यकता है। हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् लेखकों की सर्वांगसुंदर संपूर्ण जीवनियों का अभाव है। चतुर्वेदी-जी ने इस कार्य का श्रीगणेश कर दिया है। आप कैसे अध्यवसायशील हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। आपके निरीक्षण में प्रकाशित हुई जीवनियाँ अवश्य ही उपयोगी, प्रामाणिक, सर्वांगपूर्ण और हिंदी-साहित्य का गौरव बढ़ानेवाली होंगी। आपकी जो सूचना प्रकाशित हुई है, उससे मालूम हुआ है कि पहले स्व० कविवर सत्य-नारायणजी कविरत्न का जीवनचरित लिखने का उद्योग किया जायगा। उसके बाद क्रमशः राजा लक्ष्मणसिंहजी, भारतेंदु हरिश्चंद्रजी, पं० बालकृष्णजी भट्ट, श्रीजगमोहन-सिंहजी, श्रीबदरीनारायणजी चौधरी, पं० गोविंदनारायण-जी मिश्र, पं० प्रतापनारायणजी मिश्र, पं० अंबिकादत्तजी व्यास, पं० रुद्रदत्तजी संपादकाचार्य, पं० माधवप्रसाद मिश्र, बाबू बालमुकुंदजी गुप्त, राय देवीप्रसादजी पूर्ण, पं० राधाचरणजी गोस्वामी और पं० श्रीधरजी पाठक की जीवनियाँ प्रकाशित होंगी। आप यह भी सूचित करते हैं कि जीवनियों का मसाला जो एकत्र किया जायगा, वह हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के बृहत् संग्रहालय को दे दिया जायगा। आप सत्यनारायण-कुटीर की भी स्थापना करनेवाले हैं। आप इन कार्यों में सभी हिंदी-सेवकों से सहयोग और सहायता की प्रार्थना करते हैं। आशा है, आपको यथेष्ट सहायता मिलेगी, और आपके ये कार्य वास्तव में हिंदी-साहित्य की बहुमूल्य स्थायी संपत्ति होंगे।

× × ×

२१. प्रशंसनीय दान

काशी के श्रीयुत शिवप्रसादजी गुप्त अपने प्रशंसनीय सत्कार्यों के लिये प्रसिद्ध हैं। ज्ञान-मंडल नाम की संस्था स्थापित करके आप उसके द्वारा मातृभाषा राष्ट्र-भाषा हिंदी की जो सेवा कर रहे हैं, वह किसी हिंदी-सेवक से छिपी नहीं है। इसी संस्था ने 'स्वार्थ', 'मर्यादा' और 'आज' पत्रों के द्वारा हिंदी-साहित्य के अभाव दूर किए। स्वार्थ और मर्यादा का प्रकाशन बंद हो जाना हिंदी के लिये दुर्भाग्य की बात है। तथापि दैनिक 'आज' आज हिंदी के दैनिक-पत्र-विभाग की लाज रक्खे हुए है। इस संस्था से एक पुस्तकमाला भी निकलती है, जिसका हिंदी की ग्रंथमालाओं में एक विशेष स्थान है। मंगलाप्रसाद-पारितोषिक आप ही के दान से दिया जाता है, जिसके लिये हिंदी गर्व कर सकती है। अब आपने एक और बड़ी रक़म राष्ट्रीय शिक्षा के लिये दी है। यह रक़म दस लाख रुपए की है। इसके संबंध में, आज में, यह प्रका-शित हुआ है कि बनारस के सबरजिस्ट्रार के कार्यालय में गुप्तजी ने एक संकल्पपत्र की रजिस्ट्री कराई है, जिसके अनुसार आपने एक संचालक-मंडल को दस लाख रुपए की संपत्ति राष्ट्रीय-शिक्षा-प्रचारार्थ दी है। इस मंडल के सदस्य हैं—स्वयं गुप्तजी, रायबहादुर बाबू मुकुंदलालजी और श्रीकृष्णकुमारजी (गुप्तजी के चचेरे भाई), पं० रमाकांतजी मालवीय, पं० हृदयनाथजी कुँजरू, पं० जवा-हरलालजी नेहरू, श्रीपुरुषोत्तमदासजी टंडन, श्रीनरेंद्र-देवजी और श्रीयुत श्रीप्रकाशजी। यह दान गुप्तजी के स्वर्गीय छोटे भाई के स्मारक में दिया गया है, जिनका नाम हरप्रसाद था। उन्हीं के नाम पर इस कोष का नाम हरप्रसाद-शिक्षा-निधि रहेगा। इस संपत्ति से होनेवाली आमदनी (प्रति मास पाँच हज़ार रुपए के लगभग) साहित्य और शिल्प की शिक्षा देने में ख़र्च की जायगी। यह धन उक्त उद्देश्य की पूर्ति करनेवाली वर्तमान संस्थाओं की सहायता में लगाई जायगी, अथवा उक्त मंडल की ओर से ऐसी संस्था स्थापित की जायगी। इस कोष से चलनेवाली अथवा इस कोष से सहायता पानेवाली संस्था में हिंदी-भाषा और देवनागरी-लिपि में ही शिक्षा दी जायगी। वे संस्थाएँ वर्तमान सरकार से (और भविष्य में स्वराज्य-सरकार से भी) सहायता न ले सकेंगी। वर्तमान सरकार या स्वराज्य-सरकार के निरीक्षण में रहना भी उक्त संस्थाएँ न स्वीकार कर सकेंगी। हाँ, स्वराज्य स्था-पित होने पर स्वराज्य-सरकार की इच्छा हो, तो वह बिना

१. रंगीन चित्र

पहला चित्र है "विदा"। इसके बनानेवाले हैं। पाठकों के चिरपरिचित श्रीयुत रामेश्वरप्रसादजी वर्मा। पति पत्नी से विदा होकर कुछ दूर चला गया है। पत्नी उधर ही देख रही है। बिदा के समय विषाद एवं तन्मयावस्था का भाव सुंदरी के मुख पर, नेत्रों में, बहुत ख़ूबी के साथ दिखाया गया है। चित्र आँखों के आगे से हटाने को जी नहीं चाहता। कुशल चित्रकार ने थोड़े में ही बहुत कुछ दिखा दिया है।

दूसरा चित्र है "पालतू"। चित्रकार हैं श्रीयुत बी० सेन महाशय। उपवन में एक सुंदरी खड़ी है। उसके सामने पालतू मृग खड़ा है। सुंदरी और मृग के मुख पर, नेत्रों में, वात्सल्य और विश्वास का भाव दर्शनीय है। चित्र देखकर शकुंतला की याद आ जाती है। आशा है, यह चित्र समझदार पाठकों को विशेष रूप से आनंदवर्द्धक होगा।

तीसरा चित्र है "दान"। एक स्त्री पूजा करके लौट रही है। मार्ग में खड़ा हुआ ग़रीब भिक्षुक याचना करता है। रमणी श्रद्धा-करुणा-पूर्वक उसे पैसा देती और भिक्षुक कपड़ा फैलाकर उसे लेता है। घटना साधारण होने पर भी चित्रकार ने अंकनकौशल से उसको यथेष्ट प्रभावशाली बना दिया है। माधुरी के नियमित चित्रकार श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातूजी ने इस चित्र को बनाया है। आपके बनाए इस ढंग के चित्र बहुत मार्मिक होते हैं।

२. व्यंग्य-चित्र.

१. "बूढ़ा वर और बालिका वधू" चित्र के बनानेवाले श्रीयुत गुरुस्वामीजी हैं। इस चित्र द्वारा आपने वृद्ध-विवाह का जैसे उपहासास्पद दृश्य दिखलाया है, वैसे ही अबोध बालिका के भविष्य जीवन का करुणाजनक भाव भी अंकित किया है। असमान-विवाह और सामाजिक अत्याचार का इस चित्र में जीता-जागता प्रतिबिंब मौजूद है।

२. श्रीयुत मोहनलाल महत्तो द्वारा अंकित "सभ्य व्यवसाय" चित्र में उन स्वार्थियों की धूल उड़ाई गई है, जो देशहित के लिये धूम-धड़क्के के साथ व्याख्यान दे-देकर चंदा एकत्रित करते और बाद को उसे स्वयं हड़प जाते हैं। चित्र का भाव इतना स्पष्ट है कि उस पर अधिक लिखना व्यर्थ है।

Registered No. A. 1127.

Printed and Published by K. D. Seth, at the Newul Kishore Press, Lucknow.

वर्ष ३ ; खंड १] कार्त्तिक, ३०१ तुलसी-संवत् [संख्या ४ ; पूर्ण संख्या २८

संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव
श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥)

छमाही मूल्य ३॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

स्त्री-रोगों का ठेका (शर्तिया इलाज)

हमारे देश में स्त्रियों के लिये एक भी देशी स्त्री-औषधालय ऐसा नहीं था जहाँ स्त्रियाँ अपने गुप्त रोगों का खुलासा हाल कहकर या लिखकर तथा वहाँ जाकर बता सकें। श्रीमती यशोदादेवी के स्त्री-औषधालय ने इस महान् कमी को पूराकर यह बात प्रत्यक्ष दिखला दी कि हमारी देशी औषधियों जंगली जड़ी-बूटी आदि में रोगों को नष्ट कर... कैसे-कैसे विचित्र गुण भरे हैं। एक बार परीक्षा कर देखिए, श्रीमती यशोदादेवी को रोग का पूरा हाल लिखकर औषधियाँ मँगाइए। यदि रो... असाध्य न हुआ, तो अवश्य दूर कर दिया जावेगा।

श्रीमती यशोदादेवी ने बाल्यावस्था से ही अपने पिता से वैद्यक-शास्त्र की शिक्षा पाई और १६ वर्ष तक स्वयं लाखों स्त्रियों का इलाज करके अनुभव प्राप्त किया है, बड़ी-बड़ी धनी-मानी रानी-महारानी धनी-निर्धन और अनाथ सभी स्त्रियों ने श्रीमती यशोदादेवी के इलाज से अनेक भयंकर पुराने रोगों से छुटकारा पाया है। सब तरह से इलाज कर निराश हो गए हों, तो एक बार यहाँ लाकर अवश्य दिखलाइए। अब तक लाखों स्त्रियाँ आराम हो चुकी हैं। हज़ारों संतान-हीन स्त्रियाँ संतानवती हो गई हैं।

स्त्रियों को संदेशा

स्त्रियोंकेलिये भारतवर्ष में एकमात्र प्रसिद्ध

श्रीमती यशोदादेवी करनलगञ्ज इलाहाबाद का

२० वर्षों से जगत् विख्यात देशी—

स्त्री-औषधालय

किसी स्त्री को कोई भी रोग हो मासिक धर्म में खराबी हो गुप्त स्थान से सफेद या लाल पानी जाता हो जिसे प्रदर कहते हैं या जिस स्त्री के सन्तान न होती हो स्त्री या उसके पति के दोष से जिसके गर्भ रहकर गिर जाता हो या सन्तान होकर रोगी निर्बल दुर्बल रहती हो या कोई भी कैसाहो रोग हो सैकड़ों वैद्य हकीम और डाक्टरों का इलाज करके हैरान व परेशान होगये हों तो एक वार श्रीमती यशोदादेवी को लाकर दिखलाइये या उस रोगी स्त्री का पूरा हाल लिखिये औरतों की तमाम बीमारियाँ यहाँ वैद्यक तथा वैज्ञानिक विधि से श्रीमती यशोदादेवी के इलाज से दूर हो जाती हैं लाखों स्त्रियाँ आराम हो चुकी हैं।

पता:-यशोदादेवी स्त्री औषधालय इलाहाबाद

तारका पताः—"देवी" इलाहाबाद। "Devi" Allahabad.

औषधालय में आने का पताः—कर्नलगंज चौराहे के पास भारद्वाज आश्रम की तरफ़ पूर्ववाली सड़क पर यशोदादेवी का स्त्री-औषधालय।

ग्राम-कुटीर

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]

N. K. Press, Lucknow.

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ३ खंड १ } कार्त्तिक-शुक्ल ७, ३०१ तुलसी-संवत् (१९८१ वि०)— ३ नवंबर, १९२४ ई० } संख्या ४ पूर्ण संख्या २८

शरद-शोभा

(१)

विकसन लागे कल कुमुद-कलाप मंजु,
मधुर अलाप आलि-अवलि उचारै है ;
कहै "रतनाकर" दिगंगना-समास स्वच्छ
कास-मिसि हास के विलासनि पसारै है ।
कार-चाँदनी मैं रौनरेती की बहार हेरि
याही निरधार ही हुलास भरि धारै है—
जीति दल बादल के, परब पुनीत पाइ,
कूल कालिंदी के चंद रजत बगारै है ।

(२)

पौन अति सीतल, न तापित, सुगंध-सने,
मंद-मंद बहत अमंद-सुख-धारे हैं,
कहै "रतनाकर" त्यों कुसुमित कुंजनि पैं
बैठि-उठि भ्रमत मलिंद मतवारे हैं ।
छिटकति सरद-निसा की चाँदनी सौं चारु
दीपति के पुंज परैं उमड़ि उछारे हैं ;
स्वच्छ सुखमा के, परिपूरित सुधा के मनौ
मंजु बसुधा के छूटि फवत फुहारे हैं ।

(३)

जाके सुर प्रबल प्रवाह कौ झकोर-तोर
सुर-मुनि-वृंद-धीर-कुधर बहावै है ;
कहै "रतनाकर" पतिव्रत-परायन की
लाज-कुलकानि कौ करार बिनसावै है ।
कर गहि, चिबुक, कपोल कल चूमि, चाहि,
मृदु मुसकाइ जो मयंकहिँ लजावै है ;
ग्वालिनि गुपाल सौं कहति इठलाइ—कान्ह,
ऐसी भला कोऊ कहूँ बाँसुरी बजावै है ?

"रत्नाकर"

मौर्य-काल के भारत में राजा की आय

आर्य चाणक्य मौर्य-सम्राट् चंद्रगुप्त का प्रधान मंत्री और अर्थ-सचिव था। उसके प्रसिद्ध ग्रंथ 'अर्थ-शास्त्र' से हमें मौर्यकालीन भारत का अच्छी तरह परिज्ञान हो सकता है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि जो कुछ भी अर्थ-शास्त्र में लिखा है, सो सभी मौर्य-काल में होता था, तथापि यह मानना ही पड़ेगा कि अर्थ-शास्त्र मौर्यकालीन भारत के विषय में सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रंथ है। अनेक विद्वान् तो इस अर्थ-शास्त्र को मौर्य-काल या चंद्रगुप्त के काल का 'इंपीरियल गैज़ेटियर' तक कहते हैं। इसी ग्रंथ के आधार पर हमें मौर्यकालीन भारत के विषय में अध्ययन करना है।

कौटिल्य ने राजकीय आय के स्रोतों को सात भागों में विभक्त किया है। ये सात आय के स्रोत इस प्रकार हैं—दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन, व्रज तथा वणिक्पथ। दुर्ग आदि शब्दों का यहाँ वह अभिप्राय नहीं है, जो साधारण साहित्य में लिया जाता है। ये पारिभाषिक शब्द हैं। इन सात आय के स्रोतों के अन्य अनेक भेद हैं—

१. दुर्ग। मौर्य-काल में नगर प्रायः दुर्ग के रूप में होते थे। उनके चारों ओर खाई होती थी। अच्छी तरह क़िलाबंदी भी होती थी। इसका परिज्ञान हमें अर्थ-शास्त्र के अध्ययन से होता है। दुर्ग एक सामूहिक परिभाषा है, जिसमें आय के वे सब स्रोत आ जाते हैं, जो मुख्य रूप से नगरों के साथ संबंध रखते हैं। अतः दुर्ग का अर्थ क़िलाबंदी किया हुआ नगर किया जाता है; और यह ठीक भी है। इन दुर्ग-रूप नगरों से राजकोष को जो आय होती थी, उसे दुर्ग कहते थे। दुर्ग के अंतर्गत निम्न-लिखित विभाग थे—(१) शुल्क—चुंगी। विदेशी माल के स्वदेश आने पर, तथा स्वदेशी माल के परदेश जाने पर शुल्क लिया जाता था। (२) पौतव—तोल और माप का प्रबंध राज्य की ओर से होता था। इससे राज्य को जो आय होती थी, उसे पौतव कहते थे। (३) दंड—जुरमाना। (४) नागरिक—जेलख़ानों द्वारा आय। (५) लक्षणाध्यक्ष—मुद्रा-पद्धति द्वारा होनेवाली आय। (६) मुद्राध्यक्ष—जहाज़ आदि पर जाने और नगर-प्रवेश आदि पर लिया जानेवाला कर (Passport)। (७) सुरा—शराब के ठेके द्वारा होनेवाली आय। (८) सूना—बूचड़ख़ानों से होनेवाली आय। (९) सूत्र—राज्य की ओर से ग़रीबों और अशक्तों से जो कार्य कराया जाता था, उससे होनेवाली आय। (१०) तैल—तैल के व्यवसाय पर राज्य का जो अधिकार था, उससे होनेवाली आय। (११) घृत—इसी तरह घृत की आय। (१२) नमक—नमक की उत्पत्ति से तथा विदेशी नमक के आने पर कर लगाने से होनेवाली आय। (१३) सौवर्णिक—सुनारों से आय। (१४) पण्यसंस्था—राजकीय पण्य की बिक्री से होनेवाली आय। (१५) वेश्या। (१६) द्यूत—जुआ। (१७) वास्तुक—स्थिर और अस्थिर संपत्ति की बिक्री के समय राज्य को जो कुछ अंश प्राप्त होता था, वह आय। (१८) कारीगरों तथा शिल्पियों के गुणों से होनेवाली आय। (१९) देवताध्यक्ष—धर्म-मंदिरों से होनेवाली आय। (२०) द्वार—नगर के द्वार पर चुंगी के रूप में जो कर लिया जाता था, उससे होनेवाली आय। (२१) बाहिरकादेय—बाहिरक नाम के धनी पुरुषों से लिया जानेवाला विशेष कर।

२. राष्ट्र। साधारण जनपद या देहात से राजकोष को जो आय होती थी, उसकी पारिभाषिक संज्ञा राष्ट्र थी। इसके अंतर्गत निम्न-लिखित आय के स्रोत थे—(१) सीता—राज्य की ज़मीनों से होनेवाली आय। (२) भाग—जिन ज़मीनों पर राज्य की मिलकियत न थी, उनसे लिया जानेवाला कर। (३) बलि—धार्मिक प्रयोजनों के लिये लिया जानेवाला विशेष कर। (४) कर। (५) वणिक्—देहात के व्यापार पर लिया जानेवाला कर। (६) नदीपालस्तर—पुल आदि का कर। (७) नाव—राजकीय नौकाओं की आमदनी और उससे संबंध रखनेवाले कर। (८) पट्टन *—क़स्बों के कर। (९) विवीत—चरागाह के कर। (१०) वर्तनी—सड़कों के कर। (११) हथकड़ियों † से होनेवाली आय।

* पट्टन से किस आय का अभिप्राय है, यह साफ़ नहीं होता।

† जिस शब्द का अर्थ हथकड़ी किया गया है, वह 'रज्जुश्चोररज्जुः' है। इसका असली अभिप्राय क्या है, यह स्पष्ट नहीं होता। कौटिल्य ने रस्सी बनने का वर्णन एक स्थान पर किया है। शायद रस्सी बनाने से भी राज्य को आय होती हो। पर यहाँ चोररज्जु का अभिप्राय हथकड़ी ही प्रतीत होता है।

३. खनि। खानें राज्य के अधीन होती थीं। सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मुक्ता, मूँगा, शंख, लोहा, नमक, पत्थर तथा अन्य अनेक प्रकार की धातुओं की खानें मौर्य-काल में यहाँ थीं। राजकोष को इनसे बहुत आय होती थी।

४. सेतु। पुष्पों और फलों के उद्यान, शाक के खेत और मूलों (मूली, शलगम आदि) के खेत आदि से जो आय होती थी, उसे सेतु कहते थे।

५. वन। जंगलों पर राज्य का अधिकार था। जंगलों से राज्य को अनेक प्रकार की आय होती थी।

६. व्रज। गऊ, घोड़े, गधे, भैंस, बकरी, भेड़ आदि पशुओं से होनेवाली आय को व्रज कहते थे। राज्य की अपनी पशु-शालाएँ भी हुआ करती थीं।

७. वणिक्पथ। वणिक्पथ दो प्रकार के होते थे—स्थलपथ और जलपथ। इनसे होनेवाली आय को वणिक्पथ कहते थे।

मौर्य-काल में राजा की आय के ये सात स्रोत या स्रोत-समूह थे। कौटिल्य ने इनका विस्तार से वर्णन किया है। परंतु वह वर्णन किसी क्रम-विशेष द्वारा नहीं किया गया। केवल प्रसंगवश निर्देश-भर कर दिया गया है। इन्हीं निर्देशों के आधार पर राजकीय आय के स्रोतों के विषय में परिज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। हम इन स्रोतों के अनुशीलन के लिये कौटिल्य के विभाग का उपयोग न करेंगे। राजस्व-शास्त्र (Finance) के विशेषज्ञों को इसमें विशेष आनंद नहीं मिलेगा। विषय के स्पष्टीकरण के लिये यही आवश्यक है कि वर्तमान परिपाटी का अनुसरण किया जाय। तदनुसार हम राजकीय आय के स्रोतों को निम्न-लिखित भागों में विभक्त कर उन पर विचार करेंगे—(१) भूमिकर। (२) आयात और निर्यात-कर। (३) बिक्री पर कर से आय। (४) प्रत्यक्ष कर। (५) राज्य द्वारा अधिकृत व्यवसायों की आय। (६) राज्य द्वारा अधिकृत व्यापारों और व्यापार-साधनों की आय। (७) जुरमानों से आय। (८) विविध। (९) आपत्काल में संपत्ति पर विविध प्रकार के कर।

(१) भूमिकर

मौर्य-काल में भूमि राज्य की मिलकियत थी या नहीं, इस विषय में मतभेद है। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में इस प्रकार के निर्देश मिलते हैं, जिनसे पता लगता है कि भूमि पर राज्य का ही स्वत्व था। कौटिल्य लिखता है—"ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रियों को भूमि दी जाय। ये भूमियाँ अभिरूप फल को देनेवाली हों। इनको राजदंड और राज्यकर से मुक्त रक्खा जाय। अध्यक्ष, संख्यापक, गोप, स्थानिक, अनीकस्थ, चिकित्सक, अश्व-दमक, जंघारिक आदि राजकर्मचारियों को भूमि दी जाय; परंतु उनको यह अधिकार न हो कि वे उसको बेच या गिरवी रख सकें। राजस्व (कर) देनेवालों को तैयार भूमियाँ दी जायँ; पर उनकी संतति का अधिकार उन पर न समझा जाय। खेती करनेवालों को ऐसी भूमि न दी जाय, जो तैयार न हो। जो खेती न करें, उनसे खेत छीनकर औरों को दे दिए जायँ।" * इस उद्धरण से यह प्रतीत होता है कि संपूर्ण भूमि पर राज्य की मिलकियत थी; राज्य की ओर से कृषकों को खेत मिलते थे; वे खेत वंशपरंपरा के साथ न चलते थे; और जो व्यक्ति खेती न करते थे, उनसे भूमि छीन ली जाती थी। परंतु इस उद्धरण का वास्तविक अभिप्राय समझने के लिये हमें अन्य बातों पर भी ध्यान देना चाहिए। अर्थ-शास्त्र में अनेक स्थानों पर ऐसे निर्देश मिलते हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि भूमि जनता की वैयक्तिक संपत्ति भी होती थी।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि भूमि से जो आय सरकार को होती थी, वह दो प्रकार की थी—सीता और भाग†। राज्य की जिन भूमियों पर मिलकियत होती थी, उनकी आय को सीता कहते थे। जिन भूमियों पर कृषकों की मिलकियत होती थी, उनसे सरकार एक निश्चित भाग लिया करती थी। राज्य की भूमियों पर खेती करवाने के लिये एक अलग राजकर्मचारी होता था। उसे 'सीताध्यक्ष' कहते थे। सीता और भाग, इन दो विभागों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सब भूमि पर राज्य की मिलकियत न थी। भूमि के मालिक किसानों को 'स्ववीर्योपजीवी' ‡ कहते थे। 'वास्तुविजय' के प्रकरण में भी ऐसे निर्देश आते हैं, जिनसे इसी स्थापना की पुष्टि होती है। कौटिल्य लिखता है—"जब भूमि को बेचने का प्रश्न उपस्थित हो, तो पहले संबंधियों से ख़रीदने के लिये कहा जाय। उनमें से किसी के तैयार न होने पर पड़ोसियों से कहा जाय। उनके

* कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधिकरण २, अध्याय १।
† ,, ,, अधिकरण २, अध्याय ६।
‡ ,, ,, अधिकरण २, अध्याय २४।

भी तैयार न होने पर धनिक से, यानी विक्रेता के महाजन से, कहा जाय *।" इसका यह स्पष्ट अभिप्राय है कि व्यक्तियों के पास अपनी भूमि भी होती थी, और उसको वे बेच भी सकते थे। आगे कौटिल्य लिखता है—"स्थिर या अचल संपत्ति में खेत, बाग़, तालाब आदि सम्मिलित हैं। इनको बेचने के पहले इनकी ठीक-ठीक सीमा पड़ोस के ग्रामवृद्धों के सम्मुख प्रकट की जाय। इसके पश्चात् प्रतिक्रोष्टा † तीन चार उद्घोषित करे—"इस क़ीमत में इसको कौन ख़रीदेगा ?" जो बोली बोले, उसके हाथ बेच दी जाय। ख़रीदार राज्य को शुल्क भी दे। यदि ख़रीदारों की लाग-डाँट से क़ीमत बढ़ जाय, तो वह बढ़ी हुई क़ीमत भी राज्य-कोष में जाय ‡।" इसका अभिप्राय स्पष्ट है। भूमि पर केवल राज्य की ही मिलकियत न थी। परंतु, ऐसी भूमियाँ भी थीं, जो कि लोगों की वैयक्तिक संपत्ति थीं। उन्हें बेचा भी जाता था। राज्य को इस क्रय-विक्रय में केवल चुंगी और लाग-डाँट द्वारा बढ़ी हुई क़ीमत ही मिलती थी।

अन्य स्थान पर कौटिल्य लिखता है—"कर देनेवाले लोग भूमि को बेच और गिरवी रख सकते हैं। परंतु केवल कर देनेवालों के पास। इसी तरह कर से मुक्त ज़मीनों को उन्हीं के हाथ बेचा जा सकता है, जिनके पास कर से मुक्त ज़मीनें हों।" इससे भी यही सिद्ध होता है कि भूमि पर जनता की भी मिलकियत थी।

जो उद्धरण हमने पेश किए हैं, उनसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सभी भूमियों पर राज्य का स्वामित्व न था। भूमि लोगों की वैयक्तिक संपत्ति भी होती थी।

इस विषय में, अर्थ-शास्त्र में, जितने निर्देश आते हैं, उन सबको ध्यान में रखकर हम आगे लिखे परिणाम पर पहुँच सकते हैं—

(१) भूमि दो प्रकार की होती थी—राज्य की भूमि, और ऐसी भूमि, जिस पर लोगों का वैयक्तिक स्वामित्व था। राजभूमि पर राज्य की ओर से खेती कराई जाती थी। उससे जो आय होती थी, उसे सीता कहते थे। राजभूमि में से श्रोत्रिय, पुरोहित, ऋत्विक्, आचार्य आदि को भूमि दी जाती थी। उस पर किसी तरह का कर नहीं लिया जाता था। वे उस भूमि को बेच भी सकते थे। पर केवल उन्हीं लोगों के हाथ, जिनके पास पहले ही से ऐसी भूमि विद्यमान हो, अर्थात् अपनी ही श्रेणी के लोगों के हाथ। राज्य की ओर से, राजभूमि में से, अनेक राजकर्मचारियों को भी भूमि दी जाती थी। उनसे भी कर नहीं लिया जाता था। वे उसे बेच नहीं सकते थे। केवल वेतन के रूप में उन्हें भूमि दी जाती थी, जिससे वे उसकी आय ले सकें।

(२) लोगों के पास अपनी वैयक्तिक भूमि भी होती थी। उसका कर लिया जाता था, जिसे 'भाग' कहते थे। इस भूमि को बेचा भी जा सकता था; परंतु इस विक्रय के लिये अनेक नियम थे। करद करदों के हाथ ही बेच सकते थे, और ख़रीदने के लिये कुछ लोगों को विशेष रूप से सुविधा प्राप्त थी। भूमि की बिक्री पर राज्य कुछ चुंगी या शुल्क तथा स्पर्द्धा (लाग-डाँट) से बढ़ी हुई क़ीमत लेता था।

(३) यदि कोई कृषक अपनी निजी भूमि पर खेती न करता, तो उससे उसकी भूमि छीन ली जाती, और किसी अन्य खेती करनेवाले को दे दी जाती थी। इस स्थापना के लिये एक प्रमाण ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। उसके सिवा एक अन्य स्थान पर कौटिल्य लिखता है—"आपत्ति के विना ही यदि कोई पाँच वर्षों तक किसी मकान या तालाब (अर्थात् स्थिर संपत्ति) से काम न ले, तो उस पर उसका स्वत्व न रहे*।" इसी की पुष्टि के लिये कुछ अन्य निर्देश भी अर्थ-शास्त्र में मिलते हैं।

मौर्य-काल में नियमित रूप से भूमि की नाप होती थी। उसका समय-समय पर नया बंदोबस्त भी किया जाता था। यह बंदोबस्त कितने समय के लिये होता था, इसका पता अर्थ-शास्त्र से नहीं लगता। परंतु यह तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि नए बंदोबस्त के समय कर में परिवर्तन, अनुग्रह आदि किए जाते थे।

---

* कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधिकरण ३, अध्याय ८।

† प्रतिक्रोष्टा एक राजकर्मचारी होता था, जो नीलाम किया करता था।

‡ कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधिकरण ३, अध्याय ८।

नोट—जो अर्थ यहाँ किए गए हैं, उनमें और श्याम शास्त्री के इँगलिश-अनुवाद तथा प्रो० प्राणनाथ के हिंदी-अनुवाद में कुछ भेद है। इन अर्थों के लिये देखो, Law Studies in Ancient Hindu Polity, पृ० १५९ से १६३।

* कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधिकरण ३, अध्याय ९।

भूमि का जो कर लिया जाता था, उसकी मात्रा बहुत अधिक होती थी। जो कृषक सर्वथा स्वतंत्र होते थे, जो पानी का प्रबंध भी स्वयं करते थे, उनसे उनकी ज़मीन के माफ़िक़ कुल उपज का $\frac{1}{4}$ या $\frac{1}{5}$ भाग भूमिकर के रूप में लिया जाता था। जो सिंचाई के लिये राज्य से सहायता लेते थे, उनसे भूमिकर की दर और थी। जिन खेतों को हाथ से पानी भरकर सींचा जाता था, उनसे $\frac{1}{5}$ भाग, जिनको बहँगी से पानी भरकर सींचा जाता था, उनसे $\frac{1}{4}$ भाग, जिनमें सिंचाई के लिये पंप लगे होते थे, उनसे $\frac{1}{3}$ भाग, और जिनमें नदी के पानी से सिंचाई होती थी, या कूप और तालाब बने होते थे, उनसे $\frac{1}{4}$ भाग भूमिकर लिया जाता था। इस प्रकार मौर्य-काल में भूमिकर की भिन्न-भिन्न मात्राएँ, ज़मीनों के अनुसार, वसूल की जाती थीं *।

परंतु दुर्भिक्ष आदि के समय भूमिकर माफ़ भी कर दिया जाता था †। कौटिल्य ने और भी अनेक ऐसी अवस्थाओं का उल्लेख किया है, जिनमें कर माफ़ कर दिया जाता था। एक स्थान पर लिखा है—"यदि कोई तालाब या पक्के मकान को नए सिरे से बनवावे, तो उसको पाँच वर्ष के लिये राज्यकर से मुक्त किया जाय। टूटे-फूटे के सुधारने में ४ वर्ष तक और बने हुए को बढ़ाने में तीन साल तक राज्यकर न लिया जाय। यदि किसी ने ऐसी ज़मीन गिरवी रक्खी या वेची हो, जो खेती के लिये तैयार न हो, तो उस खेत से दो साल तक राज्यकर न लिया जाय ‡।" ये नियम ध्यान देने योग्य हैं, अंतिम नियम का भाव यही है कि जब किसी ज़मीन को खेती के लिये तैयार किया जाता था, तो उसे राज्यकर से मुक्त रक्खा जाता था। कौटिल्य ने राजकीय आय के लिये यही सिद्धांत रक्खा है कि कर इस तरह से लिया जाय, जिसमें प्रजा को कष्ट न हो, और उत्पादकों को भार न मालूम पड़े।

* कौटि० का अर्थ-शास्त्र, अधि० २, अ० २४, पृ० ११७।

† ,, ,, ,, २, ,, २४।

"स्ववीर्योपजीविनो वा चतुर्थपञ्चभागिकाः;

यथेष्टमनवसितभागं दद्युः अन्यत्र कृच्छ्रेभ्यः।"

‡ कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधिकरण २, अध्याय १।

(२) तटकर* (आयात और निर्यात-कर)

मौर्य-काल में तटकर भी राजकीय आय का आवश्यक अंग था। कौटिल्य कहता है—"शुल्क दो प्रकार के होते हैं—निष्काम्य (Export duty) और प्रवेश्य (Import duty)। हिंदी के आधुनिक लेखक इन करों के लिये निर्यात-कर और आयात-कर शब्दों का प्रयोग करते हैं। इन संज्ञाओं के अधिक प्रचलित होने के कारण हम भी इन्हीं का प्रयोग करेंगे। मौर्य-काल में आयात माल पर साधारणतः $\frac{1}{5}$ या २० प्रति शत कर लिया जाता था। पर इस सामान्य नियम के अपवाद भी थे। पुष्प, फल, शाक, मूल, कंद, पालक, बीज, सूखी मछली और मांस पर $\frac{1}{6}$ या १६$\frac{2}{3}$ प्रति शत कर लिया जाता था। शंख, हीरा, मणि, मोती, मूँगा तथा हार के लिये इन कामों के करनेवाले जानकार चुंगी नियत करते थे। सनिया, मलमल, रेशमी माल, कवच, हड़ताल, मैनसिल, सिंगरफ़, लोहा, रंग बनाने की धातुएँ, चंदन, अगर, मिर्च, मद्य-सामग्री, परदा, शराब, दाँत, चमड़ा, रेशेदार पदार्थ, पतला कपड़ा, गलीचा, ऊपर डालने का विशेष कपड़ा (प्रावरण), ऊन का बना वस्त्र, तथा कृमियों से बनाए वस्त्र, इन पर $\frac{1}{10}$ और $\frac{1}{15}$ अर्थात् १० प्रति शत और ६.७ प्रति शत कर लिया जाता था। साधारण वस्त्र, दो पैर के पशु, चौपाए, सूत, रुई, गंध, दवा, लकड़ी, बाँस, बल्कल, चमड़ा, मिट्टी के बर्तन, धान्य, तेल, घृत, खार, नमक, शराब, मिठाई, पक्वान्न आदि पर $\frac{1}{20}$ भाग और $\frac{1}{25}$ अर्थात् ५ प्रति शत या ४ प्रति शत कर लिया जाता था। इस प्रकार मौर्य-काल में आयात माल पर काफ़ी कर लिया जाता था। इतना ही नहीं, इस आयात-कर के सिवा माल के नगर-द्वार में प्रविष्ट होने पर आयात-कर का $\frac{1}{5}$ भाग और, चुंगी के नाम से, लिया जाता था। इस द्वार-देय चुंगी को, भिन्न-भिन्न देशों के अनुसार, कम भी

* तटकर-शब्द आय के उस स्रोत के लिये प्रयुक्त हुआ है, जो माल के बाहर जाने या विदेशी माल के अंदर आने पर कर-रूप में लिया जाता था। अँगरेज़ी में इसे Customs कहते हैं। हिंदी में इसका अनुवाद तटकर किया जाता है। यह आवश्यक नहीं कि यह कर तट पर ही लिया जाता हो। निःसंदेह मौर्य-काल में बहुत-सी Custom duties की आमदनी तट से नहीं होती थी।

किया जाता था। कौटिल्य ने जिन शब्दों में यह बात लिखी है, उनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि अन्य देशों के साथ इस द्वार-देय चुंगी को कम करवाने का प्रयत्न होता था। जो देश मौर्य-साम्राज्य के माल के साथ रियायत करते थे, उनसे मौर्य-साम्राज्य में भी इस द्वार-देय चुंगी में रियायत की जाती थी*।

देश और जाति के अनुसार केवल द्वार-देय चुंगी पर ही रियायत नहीं की जाती थी, आयात-कर पर भी की जाती थी। चाणक्य कहता है—"देश और जाति के चरित्र के अनुसार नए और पुराने माल पर शुल्क स्थापित करे, और अन्य देशों के अपकार करने पर शुल्क को बढ़ा दे†।" इसका अभिप्राय यही है कि रियायती कर मौर्य-काल में भी विद्यमान था, और शत्रु-देशों या अपकारक देशों पर आयात-कर बढ़ा भी दिया जाता और कम भी कर दिया जाता था।

जिन पदार्थों पर राज्य का एकाधिकार होता था, उनके विदेशों से स्वदेश में आने पर आयात-कर और द्वार-देय कर के सिवा अन्य कर भी लिया जाता था। उदाहरण के लिये नमक के व्यवसाय ही को ले लीजिए। उस पर राज्य का एकाधिकार था। जब विदेशी नमक स्वदेश में आता था, तब उस पर १६⅔ प्रति शत आयात-कर लिया जाता था। इसके सिवा ३⅓ प्रति शत द्वार-देय चुंगी भी ली जाती थी। और, इसके साथ ही, उतना वैधरण (हरजाना) भी देना पड़ता था, जितनी विदेशी नमक के आने से राजकीय नमक के व्यवसाय को हानि पहुँची हो‡। इसी तरह शराब, तेल आदि राजकीय एकाधिकृत व्यवसायों के आयात पर भी राज्य हरजाना लेता था।

आयात-कर की जो मात्रा हमने देखी है, उससे सहज ही यह अनुमान होता है कि मौर्य-काल में संरक्षण-नीति का अनुसरण किया जाता था। पर बात ऐसी नहीं है। मौर्य-सम्राटों ने आयात-कर की मात्रा इतनी अधिक इसीलिये रक्खी थी कि राजकीय आय की वृद्धि हो। आयात-कर का उद्देश्य संरक्षण नहीं था, केवल आय और कोष-वृद्धि की दृष्टि से ही तटकर लगाया जाता था। इतना ही नहीं, भिन्न-भिन्न उपायों से विदेशी व्यापार को बढ़ाने का भी यत्न किया जाता था। कौटिल्य लिखता है—"विदेशी माल को अनुग्रह से स्वदेश में प्रवेश कराया जाय। इसके लिये नाविकों तथा विदेशी माल के व्यापारियों को, लाभ के अनुसार, चुंगी माफ़ कर दी जाय। विदेशी माल लानेवालों पर मुक़द्दमे न चलाए जायँ, सिवा उस हालत के, जब कंपनी के हिस्सेदारों को लाभ होता हो*।" इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि मौर्य-काल में विदेशी माल के आयात के लिये प्रयत्न किया जाता था। और भी इस तरह के निर्देश आते हैं, जिनसे यही पता लगता है कि जान-बूझकर विदेशी माल के आयात को उत्साहित किया जाता था। विदेशी माल के व्यापारियों को अनेक प्रकार के सुबीते दिए जाते थे, और यह प्रयत्न किया जाता था कि विदेशी व्यापारियों को नुक़सान न हो, जिससे वे व्यापार न बंद कर दें। मौर्य-काल में मुक्तद्वार वाणिज्य की ही नीति थी, संरक्षण की नहीं। पर राजकीय आय के लिये भारी आयात-कर लिए जाते थे। किंतु आयात-कर की मात्रा के, द्रव्यानुसार, कम-अधिक होने से यह भी संभव है कि इन न्यूनाधिक करों का निश्चय किसी सिद्धांत के आधार पर किया जाता हो; और वह सिद्धांत यही हो सकता है कि स्वदेशी व्यवसाय कहीं नष्ट न हो जायँ।

स्वदेशी माल को विदेशों में बिकवाने के लिये अनेक प्रकार से यत्न किया जाता था। पण्याध्यक्ष एक विशेष राजकर्मचारी होता था, जिसका अन्य कार्यों के साथ यह भी कार्य होता था कि स्वदेशी माल को विदेशों में बिकवाने का प्रयत्न करे। चाणक्य लिखता है—"परदेश में व्यापार के लिये, पण्य एवं प्रतिपण्य (निर्यात माल और उसके बदले में आनेवाला माल) के मूल्य में से चुंगी, सड़क-कर, गाड़ी का ख़र्च, छावनी का कर, नौका के भाड़े आदि का ख़र्च घटाकर शुद्ध लाभ (Net. Profit) का अनुमान करे। यदि इस ढंग पर लाभ न मालूम पड़े, तो यह देखे कि स्वदेशी चीज़ के बदले में कोई ऐसी विदेशी चीज़ ली जा सकती है कि नहीं, जिससे लाभ हो†।" आगे चाणक्य लिखता है—"जल-मार्ग से विदेश

* कौ० अर्थ०, अधि० २, अध्याय २२।
† कौ० अर्थ०, अधि० २, अध्याय २२।
‡ कौ० अर्थ०, अधि० २, अध्याय १२।

* कौटि० अर्थ-शास्त्र, अधिकरण २, अध्याय १६।
† कौटि० अर्थ-शास्त्र, अधिकरण २, अध्याय १६।

में माल भेजने के पहले गाड़ी-ख़र्च, भोजन-व्यय, विनिमय में आनेवाले विदेशी माल की क़ीमत तथा प्रमाण, यात्रा-काल, भय-प्रतीकार के उपाय में हुआ व्यय (यहाँ बीमे की तरह के किसी तरीक़े की ध्वनि निकलती है), बंदरगाहों के रवाज, नियम आदि का पता लगावे। भिन्न-भिन्न देशों के नियमों को जानकर दूसरे देशों में, जहाँ लाभ देखे, जाय। जहाँ हानि की संभावना हो, वहाँ से दूर रहे*।" इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि मौर्य-काल में स्वदेशी व्यापार को विदेशों में बढ़ाने के लिये राज्य की ओर से यत्न होता था। इस विषय में हमें अधिक आलोचना नहीं करनी है। निर्यात माल पर कोई कर लिया जाता था या नहीं, इसका निर्देश हमें अर्थ-शास्त्र में मिलता है। परंतु उसकी मात्रा को चाणक्य ने कहीं नहीं बतलाया। संभवतः जो कर आंतरिक व्यापार में लिए जाते थे, वे ही निर्यात माल पर भी। इन करों का विवेचन हम अगले प्रकरण में करेंगे।

(३) बिक्री पर कर से आय

मौर्य-काल में बिक्री पर चुंगी ली जाती थी। आचार्य कौटिल्य नियम करता है कि उत्पत्ति-स्थान पर कोई भी पदार्थ बेचा नहीं जा सकता †। कोई भी बिक्री चुंगी से बच न सके, इसीलिये यह नियम किया गया था। जो इसका उल्लंघन करते थे, उन पर जुरमाना किया जाता था। इन जुमरानों की मात्रा बहुत अधिक थी। खानों पर से खनिज पदार्थ ख़रीदने पर ६०० पण ‡, बग़ीचे से फूल-फल लेने पर ५४ पण, शाक के खेतों पर से शाक-मूल तथा कंद लेने पर ५१$\frac{3}{4}$ पण, तथा खेतों पर से नाज मोल लेने पर ५३ पण जुरमाना किया जाता था +। उत्पत्ति-स्थान पर सीधा क्रय-विक्रय नहीं हो सकता था; क्योंकि इससे राजकीय आय को हानि होती थी। इसलिये सब माल पहले शुल्काध्यक्ष के पास, चुंगीघर में, लाया जाता था। वहाँ उस पर चुंगी ली जाती थी। फिर उस पर सिंदूर से अभिज्ञान-मुद्रा लगाई जाती थी। तभी कोई माल बिक सकता था, अन्यथा नहीं।

चुंगीघर का चाणक्य ने बहुत मनोरंजक वर्णन किया है। चाणक्य लिखता है—"शुल्काध्यक्ष नगर के मुख्य द्वार के निकट उत्तर या दक्षिण में चुंगीघर बनवावे, और उस पर चुंगीघर का झंडा लगावे। शुल्क लेनेवाले चार या पाँच आदमी विक्रेय माल लेकर आए हुए व्यापारियों से पूछें—"आप कौन हैं? आप कहाँ से आए हैं? कितना माल आपके पास है? आपकी अभिज्ञान-मुद्रा कहाँ है?" यदि माल पर मुहर न लगी हो, तो दुगनी चुंगी ली जाय, और यदि झूठी मुहर लगी हो, तो अठगुनी। जिसकी मुहर टूट गई हो, उस माल को चुंगीघर के गोदाम में पड़े रहने का दंड दिया जाय।"* इस उद्धरण से यह प्रतीत होता है कि अभिज्ञान-मुद्रा का लगाया जाना तो प्रत्येक पण्य (माल) के लिये आवश्यक था ही, और उसके लिये कर लिया ही जाता था, पर साथ ही बिक्री के लिये अन्य स्थान पर माल ले जाने पर वहाँ दुबारा भी चुंगी ली जाती थी। मौर्य-काल में भी व्यापारी लोग यह प्रयत्न किया करते थे कि चुंगी से किसी प्रकार बच जायँ। पर चाणक्य ने इनका अच्छा बंदोबस्त सोच रक्खा था। चाणक्य लिखता है—"चुंगी के डर से माल या उसकी क़ीमत कम बताने पर जितना माल अधिक निकले, और जो अधिक क़ीमत मिले, वह सब राजकोष में भेज दी जाय, अथवा उस पर अठगुनी चुंगी लगाई जाय। यही नियम उस समय काम में लाया जाय, जब व्यापारी ने चुंगी से बचने के लिये बंद पेटी में ऊपर रद्दी माल रक्खा हो, और नीचे अच्छा, या बहुमूल्य पदार्थ को अल्पमूल्य पदार्थ से छिपा दिया हो।" आगे चाणक्य लिखता है—"चुंगी बिना दिए ही जो लोग चुंगीघर की सीमा पार कर गए हों, उन पर असली चुंगी का अठगुना जुरमाना किया जाय; और उनकी जाँच आते-जाते हुए लोगों से की जाय। × × × चुंगी दिए माल के साथ बेचुंगी दिया माल ले जानेवाले तथा एक मुहर से दो का काम निकालनेवाले

---

* कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधिकरण २, अध्याय १६।

† „ „ अधिकरण २, अध्याय २२।

‡ पण की कार्य-शक्ति उस समय क्या थी, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। अनेक विद्वानों ने इसके लिये प्रयत्न किया है; पर ठीक निश्चय नहीं हो सका। प्रो० विनयकुमार सरकार ने "The Political Institutions and Theories of the Hindus" पुस्तक में पण को १४ आने के लगभग माना है।

+ कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधि० २, अध्याय २१।

* कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधिकरण २, अध्याय २१।

व्यापारी को वह दंड दिया जाय, जो चोर को दिया जाता है*" इत्यादि। निस्संदेह कौटिल्य के इन प्रयत्नों से मौर्य-काल में कोई भी व्यापारी चुंगी से नहीं बच सकता होगा। कौटिल्य व्यापारियों पर यह प्रभाव डालना चाहता था कि राजा सर्वज्ञ है, उससे बचकर जाना असंभव है। अतः ठीक-ठीक ही सबको बता देना चाहिए †। चुंगी सभी चीज़ों पर नहीं ली जाती थी। जो माल विवाह से संबंध रखता था, दहेज में मिला होता था, उपहार के लिये आता था, यज्ञ या प्रसव के निमित्त होता था, मंदिर, मुंडन, जनेऊ, विवाह, व्रत, दीक्षा आदि कार्यों के लिये मँगाया जाता था, उस पर चुंगी नहीं लगाई जाती थी ‡। इसी तरह अन्य कुछ मालों पर भी चुंगी माफ़ थी।

राष्ट्र को नुक़सान पहुँचानेवाला माल, या कुछ भी फल जिससे न मिल सकता हो, ऐसा माल नष्ट कर दिया जाता था, वह बिकने नहीं पाता था। और, जो बहुत उपकारी माल होता, या जो दुर्लभ बीज होता, उस पर किसी तरह की चुंगी नहीं लगाई जाती थी ‡।

चुंगी की मात्रा क्या होती थी, इसका निश्चित रूप से पता नहीं लगता। चाणक्य ने एक स्थान पर यही लिखा है कि माल की सारता आदि देखकर अंदाज़ से चुंगी लगाई जाय। पर यह नहीं मालूम कि उसकी मात्रा क्या होती थी। प्रो० विनयकुमार सरकार ने लिखा है—"नापकर बेचे जानेवाले पदार्थों का $\frac{१}{१६}$ भाग या ६$\frac{१}{४}$ प्रति शत, तोलकर बेचे जानेवाले पदार्थों का $\frac{१}{२०}$ भाग या ५ प्रति शत और गिनकर बेचे जानेवाले पदार्थों का $\frac{१}{२२}$ भाग या ४$\frac{६}{११}$ प्रति शत चुंगी के रूप में लिया जाता था +। पर अर्थ-शास्त्र के किसी प्रमाण से यह पुष्ट नहीं होता।

अर्थ-शास्त्र के अनुशीलन से यह भी प्रतीत होता है कि किसी-किसी माल पर चुंगी में रियायत भी की जाती थी। पर विशेष रूप से इस विषय में अर्थ-शास्त्र अधिक परिज्ञान नहीं कराता।

शुल्काध्यक्ष चुंगीघर पर, ऊपर वर्णित चुंगी के सिवा, और चुंगी भी लेता था। कौटिल्य लिखता है—"बाज़ारी माल को ढोनेवाले एक खुरवाले पशुओं पर माल-ढुआई का $\frac{१}{२}$ पण प्रति पशु, छोटे पशुओं पर $\frac{१}{४}$ पण तथा बहँगी-वालों पर एक मापक चुंगी लगाई जाय* ।" इस ढुआई के कर के सिवा एक कर और था, जिसे वर्तनी कहते थे। इस कर को अंतपाल वसूल करता था। सड़क के उपयोग का यह कर था। इसकी मात्रा १$\frac{१}{४}$ पण होती थी।

इन करों को लेने पर मौर्य-काल की सरकार अपनी पूरी ज़िम्मेदारी समझती थी। यदि किसी का माल नष्ट हो जाय, या चुराया जाय, तो उसे सरकार पूरा करती थी।

(४) प्रत्यक्ष कर

मौर्य-काल में प्रत्यक्ष कर बहुत नहीं लगाए जाते थे। प्रायः प्रत्यक्ष करों का उपयोग आपत्ति के समय किया जाता था। जब राज्य को धन की बहुत आवश्यकता होती थी, तभी जनता से प्रत्यक्ष रूप से कर लिए जाते थे। इन आपत्काल के करों का विवेचन हम अन्य स्थान पर करेंगे। यहाँ केवल उन करों को ही देखना है, जो साधारण अवस्था में लिए जाते थे।

पहला प्रत्यक्ष कर तोल और माप पर था। राज्य की ओर से तोल और माप के साधन प्रमाणित किए जाते थे, या प्रामाणिक तोल और माप प्रचलित किए जाते थे। इसके लिये ४ मापक कर लिया जाता था। प्रामाणिक बट्टों तथा माप के साधनों को काम में न लाने पर दंड

---

* कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधिकरण २, अध्याय २१।

† कौटिल्य का यह वृत्तांत पढ़ने योग्य है। कौटिल्य ने व्यापारियों के माल का ठीक-ठीक पता लगाने के लिये ख़ुफ़िया पुलीस से काम लेने की सलाह दी है।

‡-‡ कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधिकरण २, अध्याय २१।

\+ प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार ने कौटिल्य-कृत अर्थ-शास्त्र के हिंदी-अनुवाद में, पण्याध्यक्ष के प्रकरण में (अधिकरण २ अध्याय १६), आगे लिखे वाक्य का यही अर्थ किया है—"षोडशभागो मानव्याजी। विंशतिभागस्तुलामानम्। गण्यपण्यानामेकादशभागः।" पर जिस प्रकरण में यह वाक्य है, वहाँ इसका यह अर्थ किसी तरह संभव नहीं। प्रकरण के अनुसार इसका जो अर्थ है, उसका उपयोग हमने एक अन्य स्थान पर, इसी लेख में, किया है। यहाँ इसका निर्देश कर दिया है।

* मापक भी एक सिक्का होता था। कौटिल्य-कृत अर्थ-शास्त्र के अध्ययन से प्रतीत होता है कि मापक $\frac{१}{१६}$ पण के बराबर होता था। अर्थात् १६ मापक=१ पण।

के रूप में २७३/४ पण लिया जाता था। पौतवाध्यक्ष (तोल और माप का राजकर्मचारी) व्यापारियों से प्रामाणिक तोल और माप का उपयोग करने के लिये १ कौड़ी (काकणी) प्रति दिन कर-रूप से लेता था *।

दूसरा प्रत्यक्ष कर जुआरियों पर था। यह कर लाइसेंस के रूप में था। जुआरी लोग निर्दिष्ट स्थान पर ही जुआ खेल सकते थे। जो निर्दिष्ट स्थान के सिवा अन्य किसी स्थान पर जुआ खेलते थे, उन पर १२ पण जुरमाना होता था। द्यूताध्यक्ष की ओर से जुआ खेलने के लिये काकणी और अक्ष नियत होते थे। उन्हें अपने अक्ष और काकणी से बदल लेनेवालों पर १२ पण जुरमाना होता था। जुआ खेलने की आज्ञा प्राप्त करने के लिये धन देना पड़ता था। काकणी तथा अक्ष का किराया भी जुआरियों को देना होता था। इतना ही नहीं, ५ प्रति शत विजित द्रव्य भी कर के रूप में विजयी जुआरी को राज्यकोष में देना होता था †।

तीसरा प्रत्यक्ष कर वेश्याओं से लिया जाता था। रूपाजीवा (रूप का उपयोग कर आजीविका करनेवाली) वेश्याएँ दैनिक आमदनी का दुगना प्रति मास राजकर के रूप में देती थीं। इसके सिवा राज्य की ओर से एक गणिकाध्यक्ष भी होता था, जो निश्चित वेतन पर वेश्याओं को रखता था। इन वेश्याओं का उपयोग राजकीय कार्यों के लिये किया जाता था। वेश्या-विषयक अनेक नियम राज्य की ओर से बने हुए थे। उनका उल्लंघन करने पर सरकार बड़े-बड़े जुरमाने करती थी ‡।

इसी तरह के कर नाटक करनेवालों, रस्सी पर नाचनेवालों, तमाशा दिखानेवालों, गायकों, वादकों और नर्तकों पर भी लगाए जाते थे। इनके सब दंड-कर आदि वेश्याओं के दंड-कर आदि के ही समान थे; अर्थात् इनसे भी एक दिन की औसत आमदनी का दुगना प्रति मास कर के रूप में लिया जाता था। परंतु यदि ये लोग विदेशी हों, तो उनसे तमाशा आदि करने के लिये ५ पण और लिया जाता था ❦। इन्हें नियत स्थान पर रहना होता था। इस नियम तथा अन्य नियमों के न मानने पर १२ पण जुरमाने के रूप में लिए जाते थे।

कारीगरों से भी प्रत्यक्ष कर लिए जाते थे। धोबियों के लिये कपड़े धोने के स्थान निश्चित होते थे। यदि वे अन्य स्थान पर वस्त्र धोते, तो ६ पण जुरमाना किया जाता था। यदि कपड़ा फट जाता, तो भी ६ पण जुरमाना किया जाता था। धोबियों के अपने वस्त्रों पर मुद्गर का चिह्न लगाया जाता था। यदि वे ऐसा कपड़े पहने हुए हों, जिस पर उक्त चिह्न न हो, तो ३ पण जुरमाना किया जाता था। यदि धोबी धुलने के लिये आए हुए वस्त्रों को किराए पर दे, गिरवी रक्खे या वेचे, तो १२ पण दंड होता था *।

इसी तरह के कर, जुरमाना आदि सुनारों तथा अन्य व्यवसायियों पर भी लगाए जाते थे †। इन सब व्यवसायियों को एक प्रकार का लाइसेंस लेना होता था।

पशुओं पर कोई अलग कर नहीं था; पर पशुओं के वेचने पर प्रति पशु १ पण कर लिया जाता था ‡। किस व्यक्ति के पास कितने पशु हैं, इसकी सूची समाहर्ता-नामक राजकर्मचारी के पास रहती थी। समाहर्ता की यह सूची तैयार करने का काम गोप नाम के स्थानीय कर्मचारी किया करते थे।

(५) राज्य द्वारा अधिकृत व्यवसायों से आय

मौर्य-काल में अनेक व्यवसायों पर राज्य का एकाधिकार (Monopoly) था। उन व्यवसायों की आय से राजकोष को बहुत आमदनी थी। सबसे आवश्यक व्यवसाय, जिस पर राज्य का एकाधिकार था, खानें और खनिज द्रव्य थे। खानों पर राज्य का एकाधिकार था। उनके प्रबंध के लिये एक अलग राजकर्मचारी होता था। उसको आकराध्यक्ष कहते थे। कौटिल्य कहता है कि आकराध्यक्ष को ताम्र आदि धातुओं की विद्या, पारा निकालने, मणियों को पहचानने आदि की विद्या ज्ञात होनी चाहिए। कहाँ कौन धातु मिलती है, भिन्न-भिन्न धातुओं की कच्ची धातु किस तरह की होती है, कच्ची धातु को किस तरह साफ़ किया जाता है—इन सब बातों का कौटिल्य ने विस्तार से वर्णन किया है ❦।

---

* कौटि० अर्थ-शास्त्र, अधिकरण २, अध्याय १९।
† ,, ,, ,, २, ,, २०।
‡ ,, ,, ,, २, ,, २७।
❦ ,, ,, ,, २, ,, २७।

* कौटि० अर्थ-शास्त्र, अधिकरण २, अध्याय २४।
† ,, ,, ,, २, ,, २४।
‡ ,, ,, ,, २, ,, २४।
❦ ,, ,, ,, २, ,, १२।

होता था। मछली पकड़ने के लिये भी नौकाएँ उपयुक्त होती थीं। उन्हें $\frac{1}{6}$ भाग कर देना होता था। यात्री लोगों से भी नौकाओं का कर लिया जाता था *। कौटिल्य ने अनेक प्रकार की नौकाओं का वर्णन किया और उनके लिये नियम लिखे हैं। नदियों पर भी राज्य की ओर से नौकाएँ चलती थीं। राजाज्ञा के बिना कोई भी नदी के पार नहीं जा सकता था। यह आज्ञा स्थानीय राजकर्मचारी से लेनी होती थी। यह नियम इसलिये बनाया गया था कि कोई राजद्रोही भागने न पावे। पर मछली पकड़नेवालों, लकड़हारों, घसियारों, मालियों, कुँजड़ों, ग्वालों, गुप्तचरों, सैनिकों, सेना को सामग्री पहुँचानेवाले लोगों तथा नदी के तीर पर बसे हुए गाँवों के लोगों को राजाज्ञा लेने की आवश्यकता न थी। राजाज्ञा प्राप्त करने के लिये धन देना पड़ता था। पर ब्राह्मण, संन्यासी, बच्चे, बुड्ढे, बीमार, शासनहर तथा गर्भिणी स्त्रियों को राजाज्ञा मुफ़्त में ही दी जाती थी।

नदी-पार करने का भाड़ा इस प्रकार था—भार-सहित मनुष्य से १ मापक, भार-सहित छोटे जानवर के लिये १ मापक, सिर पर भार रक्खे हुए मनुष्य से २ मापक, गऊ और घोड़े के लिये २ मापक, ऊँट और भैंस के लिये ३ मापक, छोटे रथ के लिये ४ मापक, बैल-गाड़ी के लिये ६ मापक, शकट के लिये ७ मापक, व्यापारी माल से भरी हुई गाड़ी के लिये १ पाद †।

बड़ी नदियों में इससे दुगना किराया लिया जाता था। नदी के समीप बसे हुए ग्रामों के रहनेवालों से एक विशेष कर लिया जाता था, जिसे क्लृप्त कहते थे। इस क्लृप्त-कर के द्वारा मल्लाहों का ख़र्च निकलता था। पर इन ग्राम-निवासियों से नदी-पार जाने का भाड़ा नहीं लिया जाता था ‡।

(७) जुरमानों से आय

मौर्य-काल में अनेक अपराधों के लिये जुरमाने का दंड दिया जाता था। बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे अपराध के लिये न्यूनाधिक जुरमाने नियत थे। इस लेख में हम यदि कुछ भी जुरमानों का उल्लेख करने लगें, तो सूची बहुत लंबी हो जायगी। कुछ जुरमानों का उल्लेख प्रसंगवश पहले हो भी चुका है। हम जुरमानों का उल्लेख 'दंड-विधान'-शीर्षक लेख में फिर करेंगे। यहाँ इतना लिख देना ही काफ़ी है कि मौर्य-काल में जुरमानों की मात्रा यद्यपि अधिक थी, तथापि जुरमानों से राजकीय कोष को अधिक आय नहीं होती थी। मेगास्थिनीज़ चंद्रगुप्त मौर्य के शिविर में चिरकाल तक रहा। पर वह लिखता है कि उसने चोरी आदि कुकर्म नहीं के बराबर देखे। मेगास्थिनीज़ के भारत-यात्रा-वर्णन से यही प्रतीत होता है कि मौर्य-काल में अपराध बहुत कम होते थे। और, इसीलिये राज्य-कोष में जुरमानों के द्वारा बहुत आय नहीं होती थी *।

(८) विविध

राजकीय आय के जिन स्रोतों का वर्णन ऊपर किया गया, उनके अतिरिक्त भी, मौर्य-काल में, राजकीय आय के अनेक स्रोत थे। यहाँ हम संक्षेप में उनका वर्णन करते हैं।

मुद्रा-पद्धति का संचालन राज्य की ओर से होता था। इसके लिये एक राजकर्मचारी नियुक्त होता था, जिसे लक्षणाध्यक्ष कहते थे। कौटिल्य लिखता है—"लक्षणाध्यक्ष रूप्य बनवावे। रूप्य में चौथाई ताँबा हो; लोहे, जस्ते, राँगे और काले सुरमे में से कोई एक माशा और शेष चाँदी हो। इसी तरह पण, अर्द्धपण, पाद, अष्ट-भाग, मापक, अर्द्धमापक, काकिणी तथा अर्द्धकाकिणी बनवावे।" इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि मौर्य-काल में एक अलग मुद्रा-विभाग था, जिसमें अनेक प्रकार के सिक्के बनते थे। असली और खोटे सिक्कों की परीक्षा के लिये भी प्रबंध था। इस काम को रूपदर्शक-नामक एक राजकर्मचारी करता था। रूपदर्शक इस बात की परीक्षा करता था कि कौन-सा सिक्का कोशप्रवेश्य (Lega[l] Tender) है, और कौन-सा व्यावहारिक (To[ken] money)। जो कोई चाहता था, वही [...] टकसाल सबके लिये खुली थी। पर इसमें राज्य १३$\frac{1}{2}$ क़रीब प्रीमियम लेता था। जो सरकारी टकसाल में नियम-[ा]नुसार सिक्के न बनवाकर स्वयं बनाता था, उस [...]

* कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधि० २, अ० २८।

† पाद किस सिक्के का नाम है, यह हम नहीं कह सकते। संभव है, वर्तमान चवन्नी की तरह यह मौर्यकालीन पण का चौथाई भाग हो।

‡ कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र अधिकरण २, अध्याय २८।

* जुरमानों के लिये अर्थ-शास्त्र के तृतीय और [...] अधिकरणों का अध्ययन कीजिए।

२४ पण जुरमाना किया जाता था। निस्संदेह मुद्रा-पद्धति से भी मौर्य-सम्राटों को यथेष्ट आमदनी होती थी*।

ग़रीब और अशक्त मनुष्यों को भोजन आदि देने के लिये राज्य की ओर से प्रबंध था। पर वह मुफ़्त नहीं दिया जाता था। सरकार अशक्त व्यक्तियों से काम लेती थी। इसके लिये एक अलग विभाग था, जिसके मुखिया को सूत्राध्यक्ष कहते थे। प्रतीत होता है कि किसी तरह के निर्द्धन-गृह (Poor houses) मौर्य-काल में भी विद्यमान थे। कौटिल्य लिखता है—"विधवा, विकलांग, अनाथ लड़की, प्रव्रजिता, राज्य-दंडित, वेश्याओं की वृद्ध माता, बुड्ढी राजदासी, मंदिर के काम से छूटी देवदासी आदि से ऊन, वल्कल, रुई, जूट, सन आदि का सूत कतवावे। सूत की चिकनाहट, मुटाई तथा एक समान होना देखकर उनको मज़दूरी दी जाय।"† प्रतीत होता है कि मौर्य-काल में ग़रीब और अशक्त व्यक्तियों से भी काम कराया और उनको परिश्रम-अनुरूप वेतन दिया जाता था। इससे राज्य को कुछ आय होती थी या नहीं, यह निश्चित कर सकना कठिन है। पर राज्य ने यह कार्य अपने हाथ में ले रक्खा था, यह देखकर सचमुच आश्चर्य होता है।

बूचड़ख़ानों का कार्य भी राज्य की ओर से होता था। सूनाध्यक्ष-नामक पदाधिकारी इस विभाग का अध्यक्ष होता था। राज्य को इससे भी अच्छी आय होती थी‡।

राजकीय आय के जिस स्रोत की ओर अंत में निर्देश करना है, वह जायदाद की ज़ब्ती है। पहले लिखा जा चुका है—"आपत्ति के विना ही यदि कोई पाँच साल तक किसी मकान या तालाब से काम न लेता था, तो उस पर उसका स्वामित्व नष्ट हो जाता था, वह राज्य की संपत्ति हो जाती थी।" कुछ अपराधों के दंड में भी कौटिल्य ने जायदाद की ज़ब्ती लिखी है। यदि किसी से कोई वस्तु खो जाती थी, तो सरकार उसको पुनः प्राप्त कराने का पूरा उद्योग करती थी; पर अपना भरपूर कमीशन ले लेती थी। कौटिल्य लिखता है—"दो पैरोंवाले जानवर पर स्वत्व-प्राप्ति का बदला ५ पण, एक खुरवाले जानवर पर ४ पण, गऊ-भैंस पर २ पण और क्षुद्र पशुओं पर १ पण लिया जाय। रत्न, बहुमूल्य द्रव्य तथा कुप्य-पदार्थों पर पाँच प्रति शत ग्रहण किया जाय*।" निस्संकोच होकर कहा जा सकता है कि इन स्रोतों से भी राज्य को काफ़ी आमदनी होती होगी।

(९) आपत्काल में संपत्ति पर विविध प्रकार के कर

साधारण अवस्थाओं में जिन स्रोतों से राजकीय आय होती थी, उनका वर्णन हम ऊपर कर चुके। आपत्काल में, जब राज्य को विशेष रूप से धन की आवश्यकता होती थी, नानाविध उपायों से धन-संचय किया जाता था। इसका भी संक्षेप में वर्णन करना यहाँ आवश्यक और उपयोगी होगा। आपत्काल में निम्न-लिखित स्रोतों से आय बढ़ाई जाती थी†—

१. उस जनपद से, जो बहुत बड़ा हो, या जिसमें प्रचुर वृष्टि होती हो, या जिसमें, छोटे होने पर भी, बहुत धान्य होता हो, धान्य का तृतीय या चतुर्थ भाग राजकीय कर के रूप में लिया जाता था।

२. राजकीय भूमि की आय बढ़ाने के लिये अनेक उद्योग किए जाते थे।

३. सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, मूँगा, घोड़ा, हाथी—इनका व्यापार करनेवालों से ५०वाँ भाग कर में लिया जाता था। सूती कपड़ा, ताँबा, पीतल, काँसा, इतर, गंध, दवा तथा शराब के व्यापारियों से ४०वाँ भाग कर में लिया जाता था। इसी तरह धान्य, द्रव-पदार्थ एवं लोहे के व्यापारियों तथा गाड़ी का व्यवहार करनेवालों से ३०वाँ भाग, शीशे का व्यापार करनेवालों और बड़े कारीगरों से २०वाँ भाग, छोटे कारीगरों और तरखानों से १०वाँ भाग, तथा लकड़ी, बाँस, पत्थर और मट्टी के वर्तन, पक्वान्न, तरकारी आदि के व्यापारियों से ५वाँ भाग कर-रूप में लिया जाता था। ये संपत्ति के ऊपर कर थे। युद्धों तथा अन्य आपत्तियों के समय मौर्य-सम्राट् संपत्ति पर ये कर लेते थे। आजकल के राजा भी आपत्काल में ऐसे कर लगाते हैं।

४. तमाशेवालों और वेश्याओं पर ५० प्रति शत कर लगाया जाता था।

* कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, अधिकरण २, अध्याय १२।
† " " अधि० २, अध्याय २३।
‡ " " अधि० २, अध्याय २६।

* कौटि० अर्थ-शास्त्र, अधिकरण ३, अध्याय १६।
† " " अधि० ५, अ० २।

५. पशुपालकों पर भी इसी तरह के कर लगाए जाते थे। मुर्ग़ों तथा सुअरों के पालनेवाले ५० प्रति शत, भेड़, बकरी आदि छोटे पशुओं के पालनेवाले १६$\frac{2}{3}$ प्रति शत और गऊ, भैंस, खच्चर, गधे तथा ऊँट के पालनेवाले १० प्रति शत कर राजकोष को देते थे।

६. राज्यमंदिर तथा धार्मिक संस्थाएँ विशेष उपहार तथा दान के रूप में आय बढ़ाती थीं। कौटिल्य ने मंदिरों से अनेक प्रकार से आय बढ़ाने की सलाह दी है। वह तो ख़ुफ़िया पुलिस तक का प्रयोग करके और लोगों को बहँकाकर आय बढ़ाने की सम्मति देता है।

७. लोगों से देश की स्वतंत्रता, स्वदेश-प्रेम आदि के नाम पर अपील करके भी दान लिया जाता था। दान देनेवालों की देशभक्ति की प्रशंसा की जाती थी। उनके नामों की घोषणा कराई जाती थी। उनको नाना प्रकार के पद (ओहदे) दिए जाते थे। उनका मान बढ़ाया जाता था। धनाढ्यों से अधिक सहायता की आशा की जाती थी। न देने पर उनकी निंदा भी की जाती थी। इन उपायों से अल्पकाल में राज्य अपने कोष की वृद्धि किया करता था। परंतु चाणक्य सख़्ती करने के ख़िलाफ़ था। अंत में वह लिखता है—

" पक्वं पक्वमिवारामात् फलं राज्यादवाप्नुयात्;
आमच्छेदभयादाम वर्जयेत् कोपकारकम् ।"

सत्यकेतु

विनोद

(१)

छात्रालयों में विनोद की जितनी लीलाएँ होती रहती हैं, वे यदि एकत्र की जा सकें, तो मनोरंजन की बड़ी उत्तम सामग्री हाथ आवे। यहाँ अधिकांश छात्र जीवन की चिंताओं से मुक्त रहते हैं। कितने ही तो परीक्षाओं की चिंता से भी बरी रहते हैं। यहाँ गपशप करने, गप्पें उड़ाने और हँसी-मज़ाक़ करने के सिवा उन्हें कोई और काम नहीं रहता। उनका क्रियाशील उत्साह कभी विद्यालय के नाट्य-मंच पर प्रकट होता है, कभी विशेष उत्सवों के अवसर पर। उनका शेष समय अपने और अपने मित्रों के मनोरंजन में व्यतीत होता है। वहाँ जहाँ किसी महाशय ने किसी विभाग में विशेष उत्साह दिखाया (क्रिकेट, हाकी, फुटबाल को छोड़कर), और वह विनोद का लक्ष्य बना। अगर कोई महाशय बड़े धर्मनिष्ठ हैं, संध्या और हवन में तत्पर रहते हैं, बिला नाग़ा नमाज़ अदा करते हैं, तो उन्हें हास्य का लक्ष्य बनने में देर नहीं लगती। अगर किसी को पुस्तकों से प्रेम है, कोई बहुत अध्ययनशील है, कोई परीक्षा के लिये बड़े उत्साह से तैयारियाँ करता है, तो समझ लीजिए कि उसकी मिट्टी ख़राब करने के लिये कहीं-न-कहीं अवश्य षड्यंत्र रचा जा रहा है। सारांश यह कि यहाँ निर्द्वंद्व, निरीह, खुले-दिल आदमियों के लिये कोई बाधा नहीं, उनसे किसी को शिकायत नहीं होती; लेकिन मुल्लाओं और पंडितों की बड़ी दुर्गति होती है।

महाशय चक्रधर इलाहाबाद के एक सुविख्यात विद्यालय के छात्र थे। एम्० ए० क्लास में 'दर्शन' का अध्ययन करते थे। किंतु जैसा विद्वज्जनों का स्वभाव होता है, हँसी-दिल्लगी से कोसों दूर भागते थे। जातीयता के गर्व में चूर रहते थे। हिंदू-आचार-विचार की सरलता और पवित्रता पर मुग्ध थे। उन्हें नेकटाई, कॉलर, वास्कोट आदि वस्त्रों से घृणा थी। सीधा-सादा मोटा कुरता और चमरौधे जूते पहनते। प्रातःकाल नियमित रूप से संध्या-हवन करके मस्तक पर चंदन का तिलक भी लगाया करते थे। ब्रह्मचर्य के सिद्धांतों के अनुसार सिर घुटाते थे; किंतु लंबी चोटी रख छोड़ी थी। उनका कथन था कि चोटी रखने में प्राचीन आर्यऋषियों ने अपनी सर्वज्ञता का प्रचंड परिचय दिया है। चोटी के द्वारा शरीर की अनावश्यक उष्णता बाहर निकल जाती और विद्युत्-प्रवाह शरीर में प्रविष्ट होता है। इतना ही नहीं, शिखा को ऋषियों ने हिंदू-जातीयता का मुख्य लक्षण घोषित किया है। भोजन सदैव अपने हाथ से बनाते थे, और वह भी बहुत सुपाच्य और सूक्ष्म। उनकी धारणा थी कि आहार का मनुष्य के नैतिक विकास पर विशेष प्रभाव पड़ता है। विजातीय वस्तुओं को हेय समझते थे। कभी क्रिकेट या हाकी के पास न फटकते थे। पाश्चात्य सभ्यता को दोषों से परिपूर्ण समझते थे। यहाँ तक कि अँगरेज़ी

लिखने-बोलने में भी उन्हें संकोच होता था, जिसका परिणाम यह था कि उनकी अँगरेज़ी बहुत कमज़ोर थी, और वह उसमें सीधा-सा पत्र भी मुशकिल से लिख सकते थे। अगर उनको कोई व्यसन था, तो पान खाने का। इसके गुणों का समर्थन करते थे, और वैद्यक-ग्रंथों से उसकी परिपुष्टि करते थे।

विद्यालय के खिलाड़ियों को इतना धैर्य कहाँ कि ऐसा शिकार देखें, और उस पर निशाना न मारें। आपस में काना-फूसी होने लगी कि इस जंगली को सीधे रास्ते पर लाना चाहिए। कैसा पंडित बना फिरता है; किसी को कुछ समझता ही नहीं। अपने सिवा सभी को जातीय भाव से हीन समझता है। इसकी ऐसी मिट्टी पलीद करो कि सारा पाखंड भूल जाय!

संयोग से अवसर भी अच्छा मिल गया। कॉलेज खुलने के थोड़े ही दिनों बाद एक ऐंग्लो-इंडियन रमणी दर्शन-क्लास में सम्मिलित हुई। वह कवि-कल्पित सभी उपमाओं का आगार थी। सेब का-सा खिला हुआ रंग, सुकोमल शरीर, सहास्य छवि, और उस पर मनोहर वेष-भूषा! छात्रों को विनोद का मसाला हाथ लगा। लोग इतिहास और भाषा छोड़-छोड़कर दर्शन की कक्षा में प्रविष्ट होने लगे। सबकी आँखें उसी चंद्रमुखी की ओर चकोर की नाईं लगी रहती थीं। सब उसकी कृपा-कटाक्ष के अभिलाषी थे। सभी उसकी मधुर वाणी सुनने के लिये लालायित थे। किंतु, प्रकृति का जैसा नियम है, आचारशील हृदयों पर प्रेम का जादू जब चल जाता है, तब वारा-न्यारा करके ही छोड़ता है। और लोग तो आँखें ही सेंकने में मग्न रहा करते थे, किंतु पंडित चक्रधर प्रेम-वेदना से विकल और सत्य अनुराग से उन्मत्त हो उठे। रमणी के मुख की ओर ताकते भी झेंपते थे कि कहीं किसी की निगाह न पड़ जाय, तो इस तिलक और शिखा पर फबतियाँ उड़ने लगें। जब अवसर पाते, तो अत्यंत विनम्र, सचेष्ट, आतुर और अनुरक्त नेत्रों से देख लेते; किंतु आँखें चुराए हुए और सिर झुकाए हुए कि कहीं अपना परदा न खुल जाय, दीवार के कानों को ख़बर न हो जाय।

मगर दाई से पेट कहाँ छिप सकता है? ताड़नेवाले ताड़ ही गए। यारों ने पंडितजी की मुहब्बत की निगाह पहचान ही ली। मुँह-माँगी मुराद पाई। बाछें खिल गईं। दो महाशयों ने उनसे घनिष्ठता बढ़ानी शुरू कर दी। मैत्री को संघटित करने लगे। जब समझ गए कि इन पर हमारा विश्वास जम गया, शिकार पर वार करने का अवसर आ गया, तो एक रोज़ दोनों ने बैठकर लेडियों की शैली में पंडितजी के नाम एक पत्र लिखा—

"माई डियर चक्रधर,

बहुत दिनों से विचार कर रही हूँ कि आपको पत्र लिखूँ; मगर इस भय से कि बिना परिचय के ऐसा साहस करना अनुचित होगा, अब तक ज़ब्त करती रही। पर अब नहीं रहा जाता। आपने मुझ पर न-जाने क्या जादू कर दिया है कि एक क्षण के लिये भी आपकी सूरत आँखों से नहीं उतरती। आपकी सौम्य-मूर्ति, प्रतिभाशाली मस्तक और साधारण पहनावा सदैव आँखों के सामने फिरा करता है। मुझे स्वभावतः आडंबर से घृणा है। पर यहाँ सभी को कृत्रिमता के रंग में डूबा पाती हूँ। जिसे देखिए, मेरे प्रेम में अनुरक्त है; पर मैं उन प्रेमियों के मनोभावों से परिचित हूँ। वे सब-के-सब लंपट और शोहदे हैं। केवल आप एक ऐसे सज्जन हैं, जिनके हृदय में मुझे सद्भाव और सदनुराग की झलक देख पड़ती है। बार-बार उत्कंठा होती है कि आपसे कुछ बातें करती; मगर आप मुझसे इतनी दूर बैठते हैं कि वार्तालाप का सुअवसर नहीं प्राप्त होता। ईश्वर के लिये कल से आप मेरे समीप ही बैठा करिए। और कुछ न सही, तो आपके सामीप्य ही से मेरी आत्मा तृप्त होती रहेगी।

इस पत्र को पढ़कर फाड़ डालिएगा, और इसका उत्तर लिखकर पुस्तकालय में तीसरी आलमारी के नीचे रख दीजिएगा।

आपकी—

लूसी।"

यह पत्र डाक में डाल दिया गया, और लोग उत्सुक नेत्रों से देखने लगे कि इसका क्या असर होता है। उन्हें बहुत लंबा इंतज़ार न करना पड़ा। दूसरे दिन कॉलेज में आकर पंडितजी को लूसी के सन्निकट बैठने की फ़िक्र हुई। वे दोनों महाशय, जिन्होंने उनसे आत्मीयता बढ़ा रक्खी थी, लूसी के निकट बैठा करते थे। एक का नाम था नईम और दूसरे का गिरिधरसहाय। चक्रधर ने जाकर गिरिधर से कहा—"यार, तुम मेरी जगह जा बैठो। मुझे यहाँ बैठने दो।"

नईम—"क्यों ? आपको हसद होता है क्या ?"

चक्रधर—"हसद-वसद की बात नहीं, यहाँ प्रोफ़ेसर साहब का लेक्चर सुनाई नहीं देता । मैं कानों का ज़रा भारी हूँ ।"

गिरिधर—"पहले तो आपको यह बीमारी न थी । यह रोग कब से उत्पन्न हो गया ?"

नईम—"और फिर प्रोफ़ेसर साहब तो यहाँ से और भी दूर हो जायँगे जी ?"

चक्रधर—"दूर हो जायँगे तो क्या, यहाँ अच्छा रहेगा । मुझे कभी-कभी झपकियाँ आ जाती हैं । सामने डर लगा रहता है कि कहीं उनकी निगाह न पड़ जाय ।"

गिरिधर—"आपको तो झपकियाँ ही आती हैं न । यहाँ तो वही घंटा सोने का है । पूरी एक नींद लेता हूँ । फिर ?"

नईम—"तुम भी अजीब आदमी हो । जब दोस्त होकर एक बात कहते हैं, तो उसको मानने में तुम्हें क्या गुरेज़ ? चुपके से दूसरी जगह जा बैठो ।"

गिरिधर—"अच्छी बात है, छोड़े देता हूँ । किंतु यह समझ लीजिएगा कि यह कोई साधारण त्याग नहीं है । मैं अपने ऊपर बहुत ज़ब्र कर रहा हूँ । कोई दूसरा लाख रुपए भी देता, तो जगह न छोड़ता !"

नईम—"अरे भई, यह जन्नत है जन्नत ! लेकिन दोस्त की ख़ातिर भी तो है कोई चीज़ ?"

चक्रधर ने कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से देखा, और वहाँ जाकर बैठ गए । थोड़ी देर के बाद लूसी भी अपनी जगह पर आ बैठी । अब पंडितजी बार-बार उसकी ओर सापेक्ष भाव से ताकते हैं कि वह कुछ बातचीत करे, और वह प्रोफ़ेसर का भाषण सुनने में तन्मय हो रही है । आपने समझा, शायद लज्जा-वश नहीं बोलती । लज्जाशीलता रमणियों का सबसे सुंदर भूषण भी तो है । उसके डेस्क की ओर मुँह फेर-फेरकर ताकने लगे । उसे इनके पान चबाने से शायद घृणा होती थी—बार-बार मुँह दूसरी ओर फेर लेती थी । किंतु पंडितजी इतने सूक्ष्मदर्शी, इतने कुशाग्रबुद्धि न थे । इतने प्रसन्न थे, मानो सातवें आसमान पर हैं । सबको उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे, मानो प्रत्यक्ष रूप से कह रहे हैं कि तुम्हें यह सौभाग्य कहाँ नसीब ? मुझ-सा प्रतापी और कौन होगा ?

दिन तो गुज़रा । संध्या-समय पंडितजी नईम के कमरे में आए, और बोले—"यार, एक लेटर-राइटर (पत्र-व्यवहार-शिक्षक) की आवश्यकता है । किसका लेटर-राइटर सबसे अच्छा है ?"

नईम ने गिरिधर की ओर कनखियों से देखकर पूछा—"लेटर-राइटर लेकर क्या कीजिएगा ?"

गिरिधर—"फ़ुज़ूल है । नईम ख़ुद किस लेटर-राइटर से कम हैं ।"

चक्रधर ने कुछ सकुचाते हुए कहा—"अच्छा, कोई प्रेम-पत्र लिखना हो, तो कैसे आरंभ किया जाय ?"

नईम—"डार्लिंग लिखते हैं । और जो बहुत ही घनिष्ठ संबंध हो, तो डियर डार्लिंग लिख सकते हैं ।"

चक्रधर—"और समाप्त कैसे करना चाहिए ?"

नईम—"पूरा ज्ञान बताइए, तो ख़त ही न लिख दूँ !"

चक्र०—"नहीं, आप इतना बता दीजिए, मैं लिख लूँगा ।"

नईम—"अगर बहुत प्यारा माशूक़ हो, तो लिखिए—Your dying lover; और अगर साधारण प्रेम हो, तो लिख सकते हैं—Yours for ever."

चक्र०—"कुछ शुभ कामना के भाव भी तो रहने चाहिए न ?"

नईम—"बेशक ! बिला आदाब के भी कोई ख़त होता है, और वह भी मुहब्बत का ? माशूक़ के लिये आदाब लिखने में फ़क़ीरों की तरह दुआएँ देनी चाहिए । आप लिख सकते हैं—God give you everlasting grace and be uty, या—May you remain happy in love and lovely."

चक्रधर—"एक काग़ज़ पर लिख दो ।"

गिरिधर ने एक पत्र के टुकड़े पर कई वाक्य लिख दिए । जब भोजन करके लौटे, तो चक्रधर ने अपने किंवाड़े बंद कर लिए, और ख़ूब बना-बनाकर पत्र लिखा । अक्षर बिगड़-बिगड़ जाते थे, इसलिये कई बार लिखना पड़ा । कहीं पिछले पहर जाकर पत्र समाप्त हुआ । तब आपने उसे इत्र में बसाया, और दूसरे दिन पुस्तकालय में, निर्दिष्ट स्थान पर, रख दिया । यार लोग तो ताक में थे ही, पत्र उड़ा लाए, और ख़ूब मज़े से ले-लेकर पढ़ा ।

(२)

तीन दिन के बाद चक्रधर को फिर एक पत्र मिला । लिखा था—"माई डियर चक्रधर, तुम्हारी प्रेम-पत्री मिली । बार-बार पढ़ा । आँखों से लगाया ; चुंबन किया ।

कितनी मनोहर महक थी । ईश्वर से यही प्रार्थना है कि हमारा प्रेम भी ऐसा ही सुरभि-सिंचित रहे । आपको शिकायत है कि मैं आपसे बातें क्यों नहीं करती । प्रिय, प्रेम बातों से नहीं, हृदय से होता है । जब मैं तुम्हारी ओर से मुँह फेर लेती हूँ, तो मेरे दिल पर क्या गुज़रती है, यह मैं ही जानती हूँ । एक दबी हुई ज्वाला है, जो अंदर-ही-अंदर मुझे भस्म कर रही है । आपको मालूम नहीं, कितनी आँखें हमारी ओर एकटक ताकती रहती हैं । ज़रा भी संदेह हुआ, और चिरवियोग की विपत्ति हमारे सिर पड़ी । इसलिये हमें बहुत ही सावधान रहना चाहिए । तुमसे एक याचना करती हूँ, क्षमा करना । मैं तुम्हें अँगरेज़ी पोशाक में देखने को बहुत उत्कंठित हो रही हूँ । यों तो तुम चाहे जो वस्त्र धारण करो, मेरी आँखों के तारे हो—विशेष कर तुम्हारा सादा कुरता मुझे बहुत ही सुंदर मालूम होता है—फिर भी, बाल्यावस्था से जिन वस्त्रों को देखती चली आती हूँ, उन पर विशेष अनुराग होना स्वाभाविक है । मुझे आशा है, तुम निराश न करोगे । मैंने तुम्हारे लिये एक वास्कट बनाया है । उसे मेरे प्रेम का तुच्छ उपहार समझकर स्वीकार करो ।

तुम्हारी लूसी ।"

पत्र के साथ ही एक छोटा-सा पैकट था । वास्कट उसी में बंद था । यारों ने आपस में चंदा करके बड़ी उदारता से इसका मूल-धन एकत्र किया था । उस पर सेंट-पर-सेंट से भी अधिक लाभ होने की संभावना थी । पंडित चक्रधर उक्त उपहार और पत्र पाकर इतने प्रसन्न हुए, जिसका ठिकाना नहीं । उसे लेकर सारे छात्रावास में चक्कर लगा आए । मित्र-वृंद देखते थे; उसकी काट-छाँट की सराहना करते थे; तारीफ़ों के पुल बाँधते थे; उसके मूल्य का अतिशयोक्ति-पूर्ण अनुमान करते थे । कोई कहता था—"यह सीधे पेरिस से सिलकर आया है; इस मुल्क में ऐसे कारीगर कहाँ । कौन, अगर कोई इसके टक्कर का वास्कट सिलवा दे, तो १००) की बाज़ी बदता हूँ !" पर वास्तव में उसके कपड़े का रंग इतना गहरा था कि कोई सुरुचि रखनेवाला मनुष्य उसे पहनना पसंद न करता । चक्रधर को लोगों ने पूर्व-मुख करके खड़ा किया, और फिर शुभ मुहूर्त में वह वास्कट उन्हें पहनाया । आप फूले न समाते थे । कोई इधर से आकर कहता—"भई, तुम तो बिलकुल पहचाने नहीं जाते । चोला ही बदल दिया । अपने वक़्त के यूसुफ़ हो । यार, क्यों न हो; तभी तो यह ठाठ है । मुखड़ा कैसा दमकने लगा, मानो तपाया हुआ कुंदन है । अजी, एक वास्कट पर यह जोबन है, कहीं पूरा अँगरेज़ी सूट पहन लो, तो न-जाने क्या ग़ज़ब हो जाय । सारी मिसें लोट-पोट हो जायँ । गला छुड़ाना मुशकिल हो जाय ।" आख़िर सलाह हुई कि उनके लिये एक अँगरेज़ी सूट बनवाना चाहिए । इस कला के विशेषज्ञ लड़के उनके साथ गुट बाँधकर सूट बनवाने चले । पंडितजी घर के संपन्न थे । एक अँगरेज़ी दूकान से बहुमूल्य सूट लिया गया । रात को इसी उत्सव में गाना-बजाना भी हुआ । दूसरे दिन, दस बजे, लोगों ने पंडितजी को सूट पहनाया । आप अपनी उदासीनता दिखाने के लिये बोले—"मुझे तो बिलकुल अच्छा नहीं लगता । आप लोगों को न-जाने क्यों ये कपड़े अच्छे लगते हैं ?"

नईम—"ज़रा आईने में सूरत देखिए, तो मालूम हो । ख़ासे शहज़ादे मालूम पड़ते हो । तुम्हारे हुस्न पर मुझे तो रश्क है । ख़ुदा ने तो आपको ऐसी सूरत दी, और उसे आप मोटे कपड़ों में छिपाए थे ।"

चक्रधर को नेकटाई बाँधने का ज्ञान न था । बोले—"भई, इसे तो ठीक कर दो ।" गिरिधरसहाय ने नेकटाई इतना कसकर बाँधी कि पंडितजी को साँस लेना भी मुशकिल हो गया । बोले—"यार, बहुत तंग है ।"

गिरिधर—"इसका फ़ैशन ही यह है ; हम क्या करें । ढीली टाई ऐब में दाख़िल है ।"

नईम—"इन्होंने तो फिर भी बहुत ढीली रक्खी है । मैं तो और भी कसकर बाँधता हूँ ।"

चक्रधर—"अजी, यहाँ तो दम घुट रहा है !"

नईम—"और टाई का मंशा ही क्या है ? इसीलिये तो बाँधी जाती है कि आदमी बहुत ज़ोर-ज़ोर से साँस न ले सके ।"

चक्रधर के प्राण संकट में थे । आँखें लाल हो रही थीं, चेहरा भी सुर्ख़ हो गया था । मगर टाई को ढीला करने की हिम्मत न पड़ती थी । इस सज-धज से आप कॉलेज चले, तो मित्रों का एक गोल सम्मान का भाव दिखाता आपके पीछे-पीछे चला, मानो बरातियों का समूह है । एक दूसरे की तरफ़ ताकता, और रूमाल मुँह में देकर हँसता

था। मगर पंडितजी को क्या ख़बर। वह तो अपनी धुन में मस्त थे। अकड़-अकड़कर चलते हुए आकर क्लास में बैठ गए। थोड़ी देर के बाद लूसी भी आई। पंडित का यह वेष देखा, तो चकित हो गई। उसके अधरों पर मुसकान की एक अपूर्व रेखा अंकित हो गई। पंडितजी ने समझा, यह उसके उल्लास का चिह्न है। बार-बार मुसकिराकर उसकी ओर ताकने और रहस्य-पूर्ण भाव से देखने लगे। किंतु वह लेश-मात्र भी ध्यान न देती थी।

पंडितजी की जीवन-चर्या, धर्मोत्साह और जातीय प्रेम में बड़े वेग से परिवर्तन होने लगा। सबसे पहले शिखा पर छुरा फिरा। अँगरेज़ी फ़ैशन के बाल कटवाए गए। लोगों ने कहा—"यह क्या महाशय! आप तो फ़रमाते थे कि शिखा द्वारा विद्युत्प्रवाह शरीर में प्रवेश करता है। अब वह किस मार्ग से जायगा?" पंडितजी ने दार्शनिक भाव से मुसकिराकर कहा—"मैं तुम लोगों को उल्लू बनाता था। क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि यह सब पाखंड है। मुझे अंतःकरण से इस पर विश्वास ही कब था; आप लोगों को चकमा देना चाहता था।"

नईम—"वल्लाह, आप एक ही झाँसेबाज़ निकले। हम लोग आपको बछिया के ताऊ ही समझते थे, मगर आप तो आठों गाँठ कुम्मैत निकले!"

चक्रधर—"देखता था कि लोग कहते क्या हैं।"

शिखा के साथ-साथ संध्या और हवन की भी इति-श्री हो गई। हवन-कुंड कमरे में चारपाई के नीचे फेंक दिया गया। कुछ दिनों के बाद सिगरट के जले हुए टुकड़े रखने का काम देने लगा। जिस आसन पर बैठकर हवन किया करते थे, वह पावदान बना। अब प्रति दिन साबुन रगड़ते, बालों में कंघी करते और सिगार पीते। यार लोग उन्हें चंग पर चढ़ाते रहते थे। यह प्रस्ताव हुआ कि इस चंडूल से वास्कट के रुपए वसूल करने चाहिए। मय सूद के! फिर क्या था, लूसी का एक पत्र आ गया—"आपके रूपांतर से मुझे जितना आनंद हुआ, उसे शब्दों में नहीं प्रकट कर सकती। आपसे मुझे ऐसी ही आशा थी। अब आप इस योग्य हो गए हैं कि कोई योरपियन लेडी आपके सहवास में अपना अपमान नहीं समझ सकती। अब आपसे प्रार्थना केवल यही है कि मुझे अपने अनंत और अविरल प्रेम का कोई चिह्न प्रदान कीजिए, जिसे मैं सदैव अपने पास रक्खूँ। मैं कोई बहुमूल्य वस्तु नहीं, केवल प्रेमोपहार चाहती हूँ।"

चक्रधर ने मित्रों से पूछा—"अपनी पत्नी के लिये कुछ सौग़ात भेजना चाहता हूँ। क्या भेजना उचित होगा?"

नईम—"जनाब, यह तो उनकी तालीम और मज़ाक़ पर मुनहसर है। अगर वह नए फ़ैशन की लेडी हैं, तो बेश-क़ीमत, सुबुक, वज़हदार चीज़, या ऐसी ही कई चीज़ें भेजिए। मसलन् रूमाल, रिस्टवाच, लवेंडर की शीशी, फ़ैंसी कंघी, आईना, लाकेट, ब्रूच वग़ैरह। और, ख़ुदा-न-ख़्वास्ता अगर गँवारन हैं, तो किसी दूसरे आदमी से पूछिए। मुझे गँवारनों के मज़ाक़ का इल्म नहीं।"

चक्रधर—"जनाब, अँगरेज़ी पढ़ी हुई हैं। बड़े ऊँचे ख़ानदान की हैं।"

नईम—"तो फिर मेरी सलाह पर अमल कीजिए।"

संध्या-समय मित्रगण चक्रधर के साथ बाज़ार गए और ढेर-की-ढेर चीज़ें बटोर लाए। सब-की-सब ऊँचे दरजे की। कोई ७५) ख़र्च हुए। मगर पंडितजी ने उफ़् तक न की। हँसते हुए रुपए निकाले। लौटते वक़्त नईम ने कहा—"अफ़सोस, हमें ऐसी ख़ुशमज़ाक़ बीबी न मिली!"

गिरिधर—"ज़हर खा लो, ज़हर!"

नईम—"भई, दोस्ती के माने तो यही हैं कि एक बार हमें भी उनकी ज़ियारत हो। क्यों पंडितजी, आप कोई इसमें हर्ज समझते हैं?"

चक्रधर—"माता-पिता न होते, तो कोई हर्ज न था। अभी तो मैं उन्हीं का मोहताज हूँ। इतनी स्वतंत्रता क्योंकर बरतूँ?"

नईम—"ख़ैर, ख़ुदा उन्हें जल्द दुनिया से नजात दे!"

रातोरात पैकट बना, और प्रातःकाल पंडित उसे ले जाकर लाइब्रेरी में रख आए। लाइब्रेरी सबेरे ही खुल जाती थी। कोई अड़चन न हुई। उन्होंने इधर मुँह फेरा, उधर यारों ने माल उड़ाया, और चंपत हुए। नईम के कमरे में चंदे के हिसाब से हिस्सा-बाँट हुआ। किसी ने घड़ी पाई, किसी ने रूमाल, किसी ने कुछ। एक-एक रुपए के बदले पाँच-पाँच रुपए हाथ लगे।

(३)

प्रेमी जन का धैर्य अपार होता है। निराशा पर निराशा होती है, पर धैर्य हाथ से नहीं छूटता। पंडितजी बेचारे

विपुल धन-व्यय करने के पश्चात् भी प्रेमिका से संभाषण का सौभाग्य न प्राप्त कर सके। प्रेमिका भी विचित्र थी, जो पत्रों में मिसरी की डली घोल देती, मगर प्रत्यक्ष में दृष्टिपात भी न करती थी। बेचारे बहुत चाहते थे कि स्वयं ही अग्रसर हों, पर हिम्मत न पड़ती थी। विकट समस्या थी। किंतु इससे भी वह निराश न थे। हवन-संध्या तो छोड़ ही बैठे थे। नए फ़ैशन के बाल कट ही चुके थे। अब बहुधा अँगरेज़ी ही बोलते, यद्यपि अशुद्ध और भ्रष्ट होती थी। रात को अँगरेज़ी महावरों की किताब लेकर पाठ की भाँति रटते। नीचे के दरजों में बेचारे ने इतने श्रम से कभी पाठ न याद किया था। उन्हीं रटे हुए महावरों को मौक़े-बेमौक़े काम में लाते। दो-चार बार लूसी के सामने भी अँगरेज़ी बघारने लगे, जिससे उनकी योग्यता का परदा और भी खुल गया।

किंतु दुष्टों को अब भी उन पर दया न आई। एक दिन चक्रधर के पास लूसी का पत्र पहुँचा, जिसमें बहुत अनुनय-विनय के बाद यह इच्छा प्रकट की गई थी कि "मैं आपको अँगरेज़ी खेल खेलते देखना चाहती हूँ। मैंने आपको कभी फुटबाल या हाकी खेलते नहीं देखा। अँगरेज़ जेंटिलमैन के लिये हाकी, क्रिकेट आदि में सिद्धहस्त होना परमावश्यक है। मुझे आशा है, आप मेरी यह तुच्छ याचना स्वीकार करेंगे। अँगरेज़ी वेष-भूषा में, बोल-चाल में, आचार-व्यवहार में कॉलेज में अब कोई प्रतियोगी नहीं रहा। मैं चाहती हूँ कि खेल के मैदान में भी आपकी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध हो जाय। कदाचित् कभी आपको मेरे साथ लेडियों के सम्मुख खेलना पड़े, तो उस समय आपकी और आपसे ज़्यादा मेरी हेठी होगी। इसलिये टेनिस अवश्य खेलिए।"

दस बजे पंडितजी को यह पत्र मिला। दोपहर को ज्यों ही विश्राम की घंटी बजी कि आपने नईम से जाकर कहा—"यार, ज़रा फुटबाल निकाल दो।" नईम फुटबाल के कप्तान भी थे। मुसकिराकर बोले—"ख़ैर तो है, इस दोपहर में फुटबाल लेकर क्या कीजिएगा? आप तो कभी मैदान की तरफ़ झाँकते भी नहीं। आज इस जलती-बलती धूप में फुटबाल खेलने की धुन क्यों सवार है?"

पंडित—"आपको इससे क्या मतलब। आप गेंद निकाल दीजिए। मैं गेंद में भी आप लोगों को नीचा दिखाऊँगा।"

नईम—"जनाब कहीं चोट-चपेट आ जायगी, मुफ़्त में परेशान होइएगा। हमारे ही सिर मरहम-पट्टी का बोझ पड़ेगा। ख़ुदा के लिये इस वक़्त रहने दीजिए।"

पंडित—"आख़िर चोट तो मुझे लगेगी, आपका इसमें क्या नुक़सान होता है? आपको ज़रा-सा गेंद निकाल देने में इतनी आपत्ति क्यों है?"

नईम ने गेंद निकाल दिया, और पंडितजी उसी जलती हुई दोपहर में अभ्यास करने लगे। बार-बार गिरते थे, बार-बार तालियाँ पड़ती थीं, मगर वह अपनी धुन में ऐसे मस्त थे कि उसकी कुछ परवाह ही न करते थे। इसी बीच में आपने लूसी को आते देख लिया, और भी फूल गए। बार-बार पैर चलाते थे, मगर निशाना ख़ाली जाता था; पैर पड़ते भी थे तो गेंद पर कुछ असर न होता था। और लोग आकर गेंद को एक ठोकर में आसमान तक पहुँचा देते, तो आप कहते, मैं ज़ोर से मारूँ, तो इससे भी ऊपर जाय, लेकिन फ़ायदा क्या। लूसी दो-तीन मिनट तक खड़ी उनकी बौखलाहट पर हँसती रही। आख़िर नईम से बोली—"वेल नईम, इस पंडित को क्या हो गया है? रोज़ एक-न-एक स्वाँग भरा करता है। इसके दिमाग़ में ख़लल तो नहीं पड़ गया?"

नईम—"मालूम तो कुछ ऐसा ही होता है।"

शाम को सब लोग छात्रालय में आए, तो मित्रों ने जाकर पंडितजी को बधाई दी। यार, हो बड़े ख़ुशनसीब, हम लोग फुटबाल को कॉलेज की चोटी तक पहुँचाते रहे, मगर किसी ने तारीफ़ न की। तुम्हारे खेल की सबने तारीफ़ की, ख़ास कर लूसी ने। वह तो कहती थी, जिस ढंग से यह खेलते हैं, उस ढंग से मैंने बहुत कम हिंदोस्तानियों को खेलते देखा है। मालूम होता है, ऑक्सफ़ोर्ड का कोई अभ्यस्त खिलाड़ी है।"

चक्रधर—"और भी कुछ बोलीं? क्या कहा, सच बताओ?"

नईम—"अजी, अब साफ़-साफ़ न कहलवाइए। मालूम होता है, आपने टट्टी की आड़ से शिकार खेला है। बड़े उस्ताद हो यार। हम लोग मुँह ताकते रहे, और तुम मैदान मार ले गए। जभी आप रोज़ यह कलेवर बदला करते थे! अब यह भेद खुला। वाक़ई ख़ुशनसीब हो।"

चक्रधर—"मैं उसी क़ायदे से गेंद में ठोकर मारता था, जैसे किताब में लिखा है।"

नईम—"तभी तो बाज़ी मार ले गए भाई। और नहीं क्या हम आपसे किसी बात में कम हैं। हाँ, तुम्हारी-जैसी सूरत कहाँ से लावें।"

चक्रधर—"बहुत बनाओ नहीं। मैं ऐसा कहाँ का बड़ा रूपवान् हूँ।"

नईम—"अजी यह तो नतीजे ही से ज़ाहिर है। यहाँ साबुन और तेल लगाते-लगाते भोर हुआ जाता है, और कुछ असर नहीं होता। मगर आपका रंग बिना हर्रे-फिटकिरी के ही चोखा है।"

चक्रधर—"कुछ मेरे कपड़े वग़ैरह की निस्बत तो नहीं कहती थी?"

नईम—"नहीं, और तो कुछ नहीं कहा। हाँ, इतना देखा कि जब तक खड़ी रही, आप ही की तरफ़ उसकी टकटकी लगी हुई थी।"

पंडितजी अकड़े जाते थे। हृदय फूला जाता था। जिन्होंने उनकी वह अनुपम छवि देखी, वे बहुत दिनों तक याद रक्खेंगे, हालाँकि अतुल आनंद का मूल्य उन्हें बहुत देना पड़ा; क्योंकि अब कॉलेज का सेशन समाप्त होनेवाला था और मित्रों को पंडितजी के माथे एक बार दावत खाने की बड़ी अभिलाषा थी। प्रस्ताव होने की देर थी। तीसरे दिन उनके नाम लूसी का पत्र पहुँचा, वियोग के दुर्दिन आ रहे हैं; न-जाने आप कहाँ होंगे, और मैं कहाँ हूँगी। मैं चाहती हूँ, इस अटल प्रेम की यादगार में एक दावत हो। अगर उसका व्यय आपके लिये असह्य हो, तो मैं संपूर्ण भार लेने को तैयार हूँ, इस दावत में मैं और मेरी सखियाँ-सहेलियाँ निमंत्रित होंगी, कॉलेज के छात्र और अध्यापकगण सम्मिलित होंगे। भोजन के उपरांत हम अपने वियुक्त हृदय के भावों को प्रकट करेंगे। काश, आपका धर्म, आपकी जीवन-प्रणाली और मेरे माता-पिता की निर्दयता बाधक न होती, तो हमें संसार की कोई शक्ति जुदा न कर सकती।

चक्रधर यह पत्र पाते ही बौखला उठे। मित्रों से कहा—"भई, चलते-चलाते एक बार सहभोज तो हो जाय। फिर न-जाने कौन कहाँ होगा। मिस लूसी को भी बुलाया जाय।" यद्यपि पंडितजी के पास इस समय रुपए न थे, घरवाले उनकी फ़िज़ूलख़र्ची की कई बार शिकायत कर चुके थे, मगर पंडितजी का आत्माभिमान यह कब मानता था कि प्रीतिभोज का भार लूसी पर रक्खा जाय। वह तो अपने प्राण तक उस पर वार चुके थे। न-जाने क्या-क्या बहाने बनाकर ससुराल से रुपए मँगवाए, और बड़े समारोह से दावत की तैयारियाँ होने लगीं। कार्ड छपवाए गए, भोजन परोसनेवालों के लिये नई वरदियाँ बनवाई गईं। अँगरेज़ी और हिंदोस्तानी, दोनों ही प्रकार के व्यंजनों की व्यवस्था की गई। अँगरेज़ी खाने के लिये रॉयल होटल से बातचीत की गई। इसमें बहुत सुविधा थी। यद्यपि दर बहुत महँगी थी, लेकिन झंझट से नजात हो गई। अन्यथा सारा भार नईम और उनके दोस्त गिरिधर पर पड़ता। हिंदोस्तानी भोजन के व्यवस्थापक गिरिधर हुए।"

पूरे दो सप्ताह तक तैयारियाँ हुआ कीं। नईम और गिरिधर तो कॉलेज में केवल मनोरंजन के लिये थे। पढ़ना-पढ़ाना तो उनको था नहीं, आमोद-प्रमोद ही में समय व्यतीत किया करते थे। कवि-सम्मेलन की भी ठहरी। कविजनों के नाम-बुलावे भेजे गए। सारांश यह कि बड़े पैमाने पर प्रीतिभोज का प्रबंध किया गया, और भोज हुआ भी विराट्। विद्यालय के नौकरों ने पूरियाँ बेचीं। विद्यालय के इतिहास में वह भोज चिरस्मरणीय रहेगा। मित्रों ने ख़ूब बढ़-बढ़कर हाथ मारे। दो-तीन मिसें भी खींच बुलाई गईं। मिरज़ा नईम लूसी को घेर-घारकर ले ही आए। इसने भोज को और भी रसमय बना दिया।

(४)

किंतु शोक, महाशोक, इस भोज का परिणाम अभागे चंद्रधर के लिये कल्याणकारी न हुआ। चलते-चलाते लज्जित और अपमानित होना बदा था। मित्रों की तो दिल्लगी थी, और उस बेचारे की जान पर बन रही थी। सोचे, अब तो विदा होते ही हैं, फिर मुलाक़ात हो या न हो। अब किस दिन के लिये सब्र करें? मन के प्रेमोद्गारों को निकाल क्यों न लें। कलेजा चीरकर दिखा क्यों न दें। और लोग तो दावत खाने में जुटे हुए थे, और वह मदन-बाण-पीड़ित युवक बैठा सोच रहा था कि यह अभिलाषा क्योंकर पूरी हो? अब यह आत्मदमन क्यों? लज्जा क्यों? विरक्ति क्यों? गुप्त रोदन क्यों? मौन-सुखापेक्षा क्यों? अंत-र्वेदना क्यों? बैठे-बैठे प्रेम को क्रियाशील बनाने के लिये मन में बल का संचार करते रहे; कभी देवतों का स्मरण करते, कभी ईश्वर को अपनी भक्ति की याद दिलाते। अवसर की ताक में इस भाँति बैठे थे, जैसे बगला मेंढक की ताक में बैठता है। भोज समाप्त हो गया। पान-इला-

यची बँट चुकी, वियोग-वार्ता हो चुकी। मिस लूसी अपनी श्रवण-मधुर वाणी से हृदयों में हाहाकार मचा चुकी, और भोजशाला से निकलकर बाइसिकिल पर बैठी। उधर कवि-सम्मेलन में इस तरह का मिसरा पढ़ा गया।

कोई दीवाना बनावे, कोई दीवाना बने।

इधर चक्रधर चुपके-से लूसी के पीछे हो लिए, और साइकिल को भयंकर वेग से दौड़ाते हुए उसे आधे रास्ते में जा पकड़ा। वह इन्हें इस व्यग्रता से दौड़े आते देखकर सहम उठी कि कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई। बोली—"वेल पंडितजी! क्या बात है? आप इतने बदहवास क्यों हैं? कुशल तो है?"

चक्रधर का गला भर आया। कंपित स्वर से बोले—"अब आपसे सदैव के लिये बिछुड़ ही जाऊँगा। यह कठिन विरह-पीड़ा कैसे सही जायगी! मुझे तो शंका है, कहीं पागल न हो जाऊँ!"

लूसी ने विस्मित होकर पूछा—"आपका मंशा क्या है? आप बीमार हैं क्या?"

चक्रधर—"आह डियर डार्लिंग, तुम पूछती हो, मैं बीमार हूँ, मैं मर रहा हूँ, प्राण निकल चुके हैं, केवल प्रेमाभिलाषा का अवलंब है!"

यह कहकर आपने उसका हाथ पकड़ना चाहा। वह इनका उन्माद देखकर भयभीत हो गई। क्रोध में आकर बोली—"आप मुझे यहाँ रोककर मेरा अपमान कर रहे हैं। इसके लिये आपको पछताना पड़ेगा।"

चक्रधर—"लूसी, देखो चलते-चलाते इतनी निष्ठुरता न करो। मैंने ये विरह के दिन किस तरह काटे हैं, सो मेरा दिल ही जानता है। मैं ही ऐसा बेहया हूँ कि अब तक जीता हूँ। दूसरा होता, तो अब तक चल बसा होता। बस, केवल तुम्हारी सुधामयी पत्रिकाएँ ही मेरे जीवन का एक-मात्र आधार थीं।"

लूसी—"मेरी पत्रिकाएँ! कैसी? मैंने आपको कब पत्र लिखे! आप कोई नशा तो नहीं खा आए हैं?"

चक्रधर—"डियर डार्लिंग, इतनी जल्द न भूल जाओ, इतनी निर्दयता न दिखाओ। तुम्हारे वे प्रेम-पत्र, जो तुमने मुझे लिखे हैं, मेरे जीवन की सबसे बड़ी संपत्ति रहेंगे। तुम्हारे अनुरोध से मैंने यह वेष धारण किया, अपना संध्या-हवन छोड़ा, यह आचार-व्यवहार ग्रहण किया। देखो तो ज़रा मेरे हृदय पर हाथ रखकर, कैसी धड़कन हो रही है। मालूम होता है, बाहर निकल पड़ेगा। तुम्हारा यह कुटिल हास्य मेरा प्राण ही लेकर छोड़ेगा। मेरी अभिलाष ओं—"

लूसी—"तुम भंग तो नहीं खा गए हो, या किसी ने तुम्हें चकमा तो नहीं दिया है? मैं तुमको प्रेम-पत्र लिखती! हः-हः! ज़रा अपनी सूरत तो देखो, ख़ासे बनैले सुअर मालूम होते हो।"

किंतु पंडितजी अभी तक यही समझ रहे थे कि वह मुझसे विनोद कर रही है। उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा करके बोले—"प्रिये, बहुत दिनों के बाद यह सुअवसर मिला है। अब न भागने पाओगी।"

लूसी को अब की क्रोध आ गया। उसने ज़ोर से एक चाँटा उनके लगाया, और सिंहिनी की भाँति गरजकर बोली—"यू ब्लाडी, हट जा रास्ते से, नहीं तो अभी पुलीस को बुलाती हूँ। रास्केल!"

पंडितजी चाँटा खाकर चौंधिया गए। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मानसिक आघात पर यह शारीरिक वज्रपात! यह दुहरी विपत्ति! वह तो चाँटा मारकर हवा हो गई, और यह वहीं ज़मीन पर बैठकर इस संपूर्ण वृत्तांत की मन-ही-मन आलोचना करने लगे। चाँटे ने बाहर की आँखें आँसुओं से भर दी थीं, पर अंदर की आँखें खोल दी थीं। कहीं कॉलेज के लौंडों ने तो यह शरारत नहीं की? अवश्य यही बात है। आह! पाजियों ने बड़ा चकमा दिया! तभी सब-के-सब मुझे देख-देखकर हँसा करते थे! मैं भी कुछ कमअक़्ल हूँ, नहीं तो इनके हाथों टेसू क्यों बनता! बड़ा झाँसा दिया। उम्र-भर याद रहेगा। वहाँ से झल्लाए हुए आए, और नईम से बोले—"तुम बड़े दग़ाबाज़ हो, परले सिरे के धूर्त, पाजी, उल्लू, गधे, शैतान!"

नईम—"आख़िर कोई बात तो कहिए, या गालियाँ ही देते जाइएगा?"

गिरिधर—"क्या बात हुई, कहीं लूसी से आपने कुछ कहा तो नहीं।"

चक्रधर—"उसी के पास से आ रहा हूँ चाँटा खाकर, और मुँह में कालिख लगवाकर। तुम दोनों ने मिलकर मुझे ख़ूब उल्लू बनाया। इसकी कसर न लूँ, तो मेरा नाम नहीं। मैं नहीं जानता था कि तुम लोग मित्र बनकर मेरी गरदन पर छुरी चला रहे हो! अच्छा, जो वह गुस्से में आकर पिस्तौल चला देती, तो?"

सर पर । सब लोग खड़े थे, पर किसी के होंठों पर हँसी न थी। सब लोग दिल में कटे जाते थे । यहाँ तक कि लूसी को भी सिर उठाने का साहस न होता था। सिर गड़ाए बैठी थी । शायद उसे खेद हो रहा था कि मैंने नाहक़ यह दंड-योजना की ।

बीस बार उठते-बैठते कितनी देर लगती है । पंडित ने खूब उच्च स्वर से गिन-गिनकर बीस की संख्या पूरी की, और गर्व से सिर उठाए अपने कमरे में चले गए। लूसी ने उन्हें अपमानित करना चाहा था, उलटे उसी का अपमान हो गया ।

इस दुर्घटना के पश्चात् एक सप्ताह तक कॉलेज खुला रहा; किंतु पंडितजी को किसी ने हँसते नहीं देखा। वह विमना और विरक्त भाव से अपने कमरे में बैठे रहते थे। लूसी का नाम ज़बान पर आते ही भल्ला पड़ते थे ।

इस साल की परीक्षा में पंडितजी फ़ेल हो गए, पर इस कॉलेज में फिर न आए, शायद अलीगढ़ चले गए।

प्रेमचंद

सृष्टि की कथा

२. पृथ्वी का बनना और उसका पुराना इतिहास

पूर्व निबंध में हम लिख चुके हैं कि नीहारिका से बने हुए आकाशीय पिंड प्रथम-प्रथम तप्त और अग्निमय गोले के सदृश होते हैं, तथा इनके चारों ओर गैसों का आवरण होता है। हमारी पृथ्वी की भी प्रथम-प्रथम यही अवस्था थी । वह पिघली हुई आग, अर्थात् भट्ठी में गले हुए तरल लोहे के ही स्वरूप की थी। हम आज इसके वनों और उपवनों पर, इसकी नदियों और पहाड़ों पर, इसके समुद्रों और मरुस्थलों पर मोहित और स्तंभित होते हैं, तथा प्रकृति के कुछ सुरम्य और मनोमोहक स्थानों में जाकर अपनी थकावट और क्लांति दूर करके शांति और प्रफुल्लता प्राप्त करते हैं; परंतु आदि समय में यह सब कुछ भी नहीं था । हमारी पृथ्वी केवल-मात्र एक विराट् अग्नि का गोला थी । अत्यंत ताप के कारण यह लाल हो रही थी। मानो वह तरल अग्नि का एक प्रकांड गेंद ही थी। इसके चारों ओर धुएँ के सदृश गाढ़ी बदली छाई हुई थी। पृथ्वी के अग्निमय धरातल के समीप ही वायु में नमक के वाष्प लटक रहे थे। उसके बाद कार्बन गैस का मोटा और धूम्रमय स्तर था, तत्पश्चात् अम्लजन और नत्रजन तथा साधारण पानी के वाष्प एवं अन्य प्रकार के गैस और रासायनिक द्रव्य हमारी सुंदर पृथ्वी को ढके हुए थे। उस समय जैसे-जैसे पृथ्वी ठंडी होती थी, वैसे-वैसे इसके शरीर से तरह-तरह के रासायनिक द्रव्य निकलकर बड़े वेग से प्रधावित होते थे, तथा एक द्रव्य के दूसरे द्रव्य के साथ मिलने से वह भीषण स्फोटन होता था, जिसके सामने बड़ा-से-बड़ा भूकंप भी नगण्य है । पृथ्वी की तो यह हालत थी ही, साथ ही ऊपर आकाश में गैस के तूफ़ान और बवंडर अलग महाप्रलय उपस्थित किए हुए थे। हमारी पृथ्वी बहुत दिनों तक इसी प्रकार गर्जन और दीर्घनाद करते हुए सूर्य की परिक्रमा करती रही ।

पृथ्वी की आदि अवस्था

वर्ष के बाद वर्ष, शताब्दी के बाद शताब्दी, युग के बाद युग बीत गए। आख़िर हमारी पृथ्वी की सतह कुछ ठंडी होने लगी, और जिस प्रकार समुद्र के ऊपर बर्फ़ की तह या दूध के ऊपर मलाई जम जाती है, उसी प्रकार हमारी इस अग्नि के समुद्र-रूपी पृथ्वी के ऊपर भी गाढ़े पदार्थों के स्तर जमने लगे। यदि हम पिघले हुए धातु * के ठंडे होने की क्रिया को देखें, तो हमें पता चलेगा कि पहले इन तरल धातुओं का धरातल अर्थात् ऊपर का भाग ही ठंडा होता है। भट्ठी में गलाए गए लोहे के ऊपर स्वभावतः जिस प्रकार एक स्तर जमने लगता है, उसी प्रकार ठंडा होने पर हमारी पृथ्वी के धरातल पर भी एक स्तर जमने लगा। परंतु यह आसान बात न थी; क्योंकि अग्नि के इस समुद्र में सदैव भयानक उफान आता रहता था; तरल अग्नि के इस समुद्र में हमेशा तरंगें उठती रहती थीं, और इस-

* साधारणतः धातु-शब्द के द्वारा हमें लोहा, सोना, चाँदी इत्यादि द्रव्यों का बोध होता है; परंतु भूगर्भ-शास्त्र में भूमि के किसी भी एक पिंड को धातु कह सकते हैं। मिट्टी का एक ढेला या पत्थर का एक टुकड़ा तथा चाँदी या सोने की सिल, सभी वस्तुएँ भूतत्त्ववेत्ताओं द्वारा धातु कही जाती हैं। इसका कारण यह है कि रासायनिक विश्लेषण के द्वारा पृथ्वी की बनावट में धातुएँ पाई जाती हैं।

लिये पदार्थ की ये पतली तहें तितर-बितर होती रहती थीं। परंतु पृथ्वी—जैसा कि सभी तप्त पिंडों का नियम है—धीरे-धीरे ठंडी हो रही थी। ईथर के संबंध में हम पूर्व लेख में कुछ लिख चुके हैं। उस लेख में हमने यह लिखा था कि सभी ग्रह, नक्षत्र मानो ईथर के समुद्र में स्पौंज की तरह तैर रहे हैं। ईथर अत्यंत पतली और क्षीण वायु है, और यह इतनी ठंडी है कि तुलना करने पर इसके सामने तुषार भी अग्नि के सदृश प्रतीत होता है। अतएव पृथ्वी का ठंडा होना भी स्वाभाविक ही था। धीरे-धीरे हमारी पृथ्वी कुछ ठंडी हुई और पदार्थ के स्तर धीरे-धीरे गाढ़े होते और एक दूसरे से मिलते गए। अग्नि का यह गोला धीरे-धीरे दृढ़ और गाढ़े पदार्थ द्वारा परिवेष्टित हुआ, या अग्नि का समुद्र एक डिब्बे में बंद किया गया। ताप के घटने पर वायुमंडल के अम्लजन (oxygen) और उज्जन (hydrogen) भी मिलकर पानी बरसाने लगे। परंतु पृथ्वी अभी तक तप्त और अंगारे के सदृश लाल थी, और इसलिये पानी इसके धरातल पर न टिक सकता था। इसलिये समस्त जल भाप बनकर पुनः वायुमंडल में उड़ जाता था। उस समय हमारे सभी समुद्र वाष्प-रूप से वायुमंडल में विराजमान थे। बृहस्पति और शनि के सदृश उस समय हमारी पृथ्वी के चारों ओर भी बदली छाई हुई थी। ये ग्रह इतने बड़े हैं कि वे अभी तक पृथ्वी की तरह ठंडे नहीं हो सके हैं। परंतु मंगल के सदृश छोटे ग्रह न-जाने कब के ठंडे हो गए, और इसीलिये ज्योतिषियों का यह विश्वास है कि यदि मंगल ग्रह पर किसी तरह का जीवन विद्यमान है, तो वह पृथ्वी की अपेक्षा बहुत समय पहले आविर्भूत होने के कारण हमारी पृथ्वी के जीवन से कहीं उन्नत है। अतएव सृष्टि-संबंधी हमारे अनुमान और सिद्धांत की पुष्टि सभी ओर से होती है। मंगल और पृथ्वी के सदृश छोटे ग्रह बहुत समय पूर्व ठंडे हो गए; परंतु बृहस्पति और शनि की तरह बड़े ग्रह अभी तक अंगारे की तरह तप्त हैं। पर हम इन बातों को छोड़कर आगे बढ़ते हैं।

गर्मी के कुछ कम होने पर वायुमंडल का नमक भी गाढ़ा हो गया, और वह बर्फ़ की तरह पृथ्वी पर गिरने लगा, और बर्फ़ ही की तरह इसने पृथ्वी को ढक भी लिया। गर्मी कम होने पर अटलांटिक और पैसिफ़िक इत्यादि महासागर, जो आकाश में अवस्थित थे, अपने वाष्प-रूप को परित्याग करके पृथ्वी पर गिरने लगे। परंतु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रथम-प्रथम पानी पृथ्वी के तल पर न टिक सकता था। वह उबाल खाकर और वाष्प बनकर पुनः उड़ जाता था। परंतु आख़िर वह समय भी आया, जब पानी पृथ्वी की तह पर टिकने लगा। पर पृथ्वी के अभी तक बहुत गर्म होने के कारण पृथ्वी पर के समस्त जल बड़ी तेज़ी से खौल रहे थे। वायुमंडल के स्वच्छ न होने के कारण पृथ्वी पर का जल दूषित, अशुद्ध, गर्म और अत्यंत नमकीन था, और वह समस्त पृथ्वी को ढके हुए था। तमाम जल-ही-जल था, हमारी पृथ्वी जलमयी थी; स्थल का कहीं निशान नहीं था। उस प्राचीन समय में सर्वत्र जल की उपस्थिति और भूमि के अभाव को हम सहज में ही समझ सकते हैं; क्योंकि हमारे सिद्धांत के अनुसार आदि-काल में पृथ्वी पिघली हुई धातु का गोला-भर थी, और ठंडे होने पर सभी तरल पदार्थों की ऊपरी सतह बराबर ही होती है।

जल और स्थल का विभाजन

परंतु जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, पृथ्वी की गर्मी पूर्णता के साथ नष्ट नहीं हुई थी। पृथ्वी अभी तक बहुत गर्म—आज से हज़ारोंगुना अधिक गर्म—थी। प्रकांड ताप मानो एक डिब्बे में बंद किया हुआ था। भूतत्त्ववेत्ता इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि हमारी पृथ्वी के अंतस्तल में अभी तक भीषण गर्मी *

* इस गाढ़े और कठिन स्तर के नीचे क्या है, तथा पृथ्वी के भीतर का भाग कौन-से पदार्थ के द्वारा बना हुआ है, वह पदार्थ तरल है या शुष्क और कठिन—इत्यादि बातें विवादास्पद हो सकती हैं; परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि पृथ्वी का अंतस्तल बहुत ही गर्म है। हम जैसे-जैसे पृथ्वी की ऊपरी सतह से नीचे उतरते हैं, वैसे-वैसे गर्मी बढ़ती जाती है। परीक्षा के द्वारा विदित होता है कि लंडन और प्राशया में प्रति ६० फ़ीट, तथा न्यूयॉर्क में प्रति ५० फ़ीट नीचे जाने से १ डिगरी गर्मी बढ़ जाती है। इस हिसाब से १०,००० फ़ीट नीचे जाने पर पानी खौलने लगेगा, एवं इसी प्रकार ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं, जो पचीस या तीस मील की गहराई पर कड़कड़ाकर खौलने न लग जाय। पृथ्वी के बृहद् आकार और लंबाई, चौड़ाई पर ध्यान रखते हुए यह २५ या ३० मील की गहराई नगण्य ही है।

है। मकानों में लगे हुए पत्थर या मज़बूत-से-मज़बूत बनी हुई दीवारें भी फट जाती हैं। पृथ्वी के अंदर से निकाले गए शिला-खंड तथा किसी पहाड़ के एक शिला-खंड की तुलना करके देखने से हम फ़ौरन् समझ सकते हैं कि वायुमंडल का कहाँ तक और कितना बड़ा प्रभाव पड़ता है। अत्यंत शीत और गर्मी का सामना करने से चट्टान कभी तो सिकुड़ते और कभी फैलते हैं; इस कारण उनमें दरारें निकल आती हैं। अब वृष्टि अपना कार्य और भी सुगमता के साथ पूरा करती है। जल इन चट्टानों के अंदर प्रवेश करके धीरे-धीरे इनका विनाश करता है। बालुकामय स्थानों में, या उन स्थानों में, जहाँ काफ़ी वृष्टि न पड़ने के कारण पदार्थ के कण एक दूसरे से आपस में अलग रहते हैं, अर्थात् जहाँ ज़मीन सख़्त नहीं होती, हवा भी विध्वंस-कार्य में बहुत बड़ा भाग लेती है। हवा में फैले हुए बालू के कण हवा के ज़ोर से चट्टानों को काटते रहते हैं। एक ही तूफ़ान ने एक मर्तबा केप-कौड के एक दीप-गृह (Light house) की खिड़की के एक शीशे को खखोड़कर धुँधला और बेकार कर दिया था। शीशा बहुत-सी चट्टानों से सख़्त होता है; और जब तूफ़ान शीशे के ऊपर इतना प्रभाव डाल सकता है, तो इसमें कोई शक नहीं कि उसके द्वारा अन्य चट्टानों का भी क्षय होता है। हवा शिला-खंडों को खोदकर अक्सर खोह भी बनाया करती है। हवा से मकान गिर पड़ते हैं, यह सभी कोई मानते हैं।

(२) जल। इस विनाशकारी कारण के ऊपर अधिक लिखने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। जल अपने ज़ोर से पृथ्वी को काटकर पृथ्वी का बहुत-सा अंश समुद्र में तो बहाकर ले ही जाता है, साथ-ही-साथ वह अपनी रासायनिक क्रिया के द्वारा भी चट्टानों को जीर्ण और उनका नाश करता है। पानी का द्रावक प्रभाव बहुत बड़ा है। बर्फ़, पाला या तुषार के स्वरूप में भी पानी चट्टानों को बहुत क्षति पहुँचाता और उन्हें टुकड़े-टुकड़े करता है।

(३) जीव और वनस्पति। भूमि के क्षय में जीवधारी और पेड़-पौदे भी अक्सर भाग लिया करते हैं। पाठकों ने स्वयं देखा होगा कि मकान की दीवारों या पहाड़ के ऊपर दरारों के अंदर पत्थर की चट्टानों में भी वृक्ष उग आया करते हैं। अंत में नतीजा यह होता है कि बढ़ते-बढ़ते वृक्ष की जड़ें तमाम फैल जाती हैं, और किसी सम[य] चट्टान या दीवार फटकर गिर जाती है। इन वृक्षों [के] द्वारा पैदा की गई दरारों के ज़रिए पानी भी चट्टानों [के] अंदर पहुँचकर अपने विनाशकारी काम के करने [में] समर्थ होता है। बहुत-से जल या स्थल के जीव ज़मीन [में] बिल या सुरंग खोदते हैं, यह कहने की कोई आवश्यक[ता] नहीं। कुछ जीव तो कठिनतम चट्टानों को भी खो[द] डाला करते हैं। नतीजा जो होता है, वह स्पष्ट ही है[।] इनकी अज्ञात सहायता से जल चट्टानों के अंदर घुस[कर] उनका विनाश करता है। अक्सर मनुष्य भी इस ध्वंस-कार्य में प्राकृतिक शक्तियों की सहायता करता है। उदाहरणार्थ, जंगलों को काट डालने या ज़मीन को साफ़ क[र] डालने से अधिकांश जल पृथ्वी के अंदर प्रवेश करता है, और वृक्षों और वनस्पतियों के सहारे को खो बैठने से इस भूभाग को ऋतु-परिवर्तन, हवा और वृष्टि, तूफ़ान और बर्फ़ इत्यादि विनाशकारी शक्तियों के सामने परास्त होना पड़ता है।

परंतु प्रकृति ने जल और स्थल के भेद के क़ायम रखने का समुचित प्रबंध कर रक्खा है[,] जिसके कारण समुद्र अपने समीकरण के कार्य में कृतकार्य नहीं हो सकता[।] भूमि के उठने और धँसने तथा ज[ल] और स्थल के स्थान-परिवर्तन के संबंध में हम ऊपर कु[छ] लिख चुके हैं। यहाँ पर इन्हीं के ऊपर किंचित् विस्तार [के] साथ विचार किया जाता है। आंतरिक कारणों से कभी पृथ्वी धँसती और कभी उठती है, इस बात को सा[बित] करने के लिये अधिक प्रमाणों के देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती; क्योंकि पहले भी कुछ उदाहरण दि[ए] जा चुके हैं। तो भी विषय को स्पष्ट करने के लिये दो-एक उदाहरण और भी दिए देता हूँ। नेपल्स के समी[प] पोज़ुली-नामक स्थान में प्राचीन रोमनों ने सेरापियस नामक विख्यात मंदिर बनवाया था। मंदिर जिस सम[य] व्यवहार में लाया जाता था, शायद उसी समय यह धँस[ने] लगा था; क्योंकि मंदिर में एक के ऊपर एक दो पुरा[ने] चबूतरे पाए जाते हैं, और ज़मीन के नीचे धँसने के सि[वा] इसका दूसरा कोई तात्पर्य नहीं हो सकता। संगमरमर [के] प्रायः चालीस फ़ीट ऊँचे चार बड़े-बड़े स्तंभ अभी तक पू[र्व]वत् खड़े हैं। प्रत्येक स्तंभ में ज़मीन से प्रायः दस फ़ीट [...]

क्षति की पूर्ति और पूर्ति-कारक कारणों का विवरण

उँचाई पर नौ फ़ीट चौड़े कार्निस हैं। प्रत्येक कार्निस, सूराख़ करनेवाले जल-जीवों के द्वारा किए गए मधुकोश की तरह, छिद्रों से परिपूर्ण और जंजल हो रहा है। निष्कर्ष साफ़ ही है। अर्थात् बनने के बाद मंदिर प्रायः २० फ़ीट नीचे धस गया था, और उसी समय जल-जीवों ने इसे छिद्रों से जंजल कर दिया था। उसके बाद मंदिर फिर ऊपर उठ आया, और भूतत्त्वज्ञों का कहना है कि प्रायः गत सौ वर्षों से ये स्तंभ फिर धीरे-धीरे पृथ्वी में धँसते चले जा रहे हैं। इस उदाहरण से एक बात और जो स्पष्ट होती है, उस पर भी ध्यान रखना चाहिए। वह यही कि पृथ्वी के उठने और धँसने का काम बहुत धीरे-धीरे होता है। यदि इसके विपरीत होता, तो ये स्तंभ अवश्य भू-शायी हो जाते।

इसी प्रकार उत्तर-मिसर की बहुत-सी प्राचीन क़बरें भू-मध्य-सागर के जल में दृष्टिगोचर होती हैं। स्वेडन में स्टाक-हम के दक्षिण ६५ फ़ीट की गहराई पर एक झोपड़ा पाया गया था, और झोपड़े के समीप बहुत-से समुद्रीय जीवों के अवशेष घोंघे, सितुए इत्यादि मिले थे। नतीजा साफ़ ही है। ज़मीन किसी समय समुद्र-तल से ऊँची थी, पश्चात् धँस गई, उसके बाद फिर ऊपर उठ आई।

ऐसा क्यों होता है? इसका कारण क्या है? नीहारिका-वाद के सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी का अंतस्तल अभी तक अत्यंत गर्म और तरल अवस्था में है। अतएव पृथ्वी ज्यों-ज्यों ठंडी होती है, त्यों-त्यों ऊपर के स्तर में सिकुड़न पैदा होती है, जिसके कारण भूमि ऊपर उठती या नीचे धँसती है।

यहीं पर भूकंप और ज्वालामुखी के ऊपर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए; क्योंकि प्राचीन समय में इन्होंने ही भूमि को बनाया था और आज भी जल की समीकरण-क्रिया के निष्फल करने में ये एक प्रधान भाग ले रहे हैं *। नीहारिकावाद का सिद्धांत चाहे ग़लत हो, पृथ्वी के अंदर का पदार्थ—जैसा कि कुछ लोगों की राय है—चाहे तरल न भी हो, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि जल सदा स्थल को निगल जाने के प्रयत्न में लगा हुआ है। साथ-ही-साथ यह भी निस्संदेह है कि जल और स्थल का औसत प्रायः सदा बराबर बना रहता है, तथा जल द्वारा पहुँचाई गई क्षति की पूर्ति होती रहती है। विपरीत मत के लोग भी यह मानते हैं कि पृथ्वी का अंत-स्तल यद्यपि तरल नहीं, तो भी अत्यंत गर्म है, एवं इन लोगों का भी विश्वास है कि पृथ्वी का वर्तमान कठिन और गाढ़ा स्तर किसी समय तरल अवस्था में था।

कारण चाहे जो कुछ हो, परंतु यह निर्विवाद है कि पृथ्वी का ऊपरी स्तर एक प्रकार से सदैव अस्थिर रहता है। वर्ष में ३०,००० से भी अधिक भूकंप होते हैं। इस हिसाब से प्रति दिन ८० से अधिक और प्रति घंटे ४ के लगभग भूकंप होते हैं। सीज़्मोग्राफ़ यंत्र से पता चलता है कि पृथ्वी सदा थरथराती ही रहती है।

यह तो हम लोग जानते ही हैं कि भूपृष्ठ पर जो जल बरसता है, उसका एक अच्छा अंश पृथ्वी के अंदर चला जाता है। जाते-जाते जब पानी पृथ्वी के अंदर प्रायः २५-३० फ़ीट नीचे पहुँचता है, तब पृथ्वी की आंतरिक गर्मी के कारण वह वाष्प की अवस्था में परिणत होकर ऊपर उठ आने की चेष्टा करता है। डॉक्टर सी का कहना है कि पानी के इस प्रयत्न से भी भूकंप उपस्थित हुआ करता है। प्रत्युत कुछ विख्यात वैज्ञानिकों का यह भी मत है कि पृथ्वी के गति-परिवर्तन—अर्थात् ठीक अपनी धुरी पर भ्रमण न करने—के कारण भी भूकंप उपस्थित हुआ करते हैं।

ऊपर के वर्णन के बाद ज्वालामुखी के स्फोटों के ऊपर अब और कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती; क्योंकि भूतत्त्वज्ञ इसे निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं कि भीतर के तरल पदार्थ के बाहर आने के प्रयत्न से ही ज्वालामुखी के स्फोट हुआ करते हैं।

आहा, प्रकृति की भी कैसी लीला है! कैसा विचित्र प्रबंध है! जिस प्रलय-कारी भूकंप और ज्वालामुखी से करोड़ों जानें जाती हैं, अरबों की संपत्ति नष्ट होती है, लाखों इमारतें भूशायी और चूर-चूर होती हैं, गभीर आर्तनाद और कोलाहल उपस्थित होता है, उसी के ऊपर भूमि और संसार के सभी उन्नत जीवों का अस्तित्व निर्भर है! इस दृष्टि से हम प्रकृति को निष्करुण और हृदयहीन कहें या करुण-हृदय और दयामयी, कुछ समझ में नहीं आता?

अक्सर "जीवधारी और पौदे" इत्यादि भी नई

---

* वास्तव में इन तीनों कारणों को एक ही कारण समझना चाहिए; क्योंकि इन तीनों प्राकृतिक घटनाओं की उत्पत्ति पृथ्वी के आंतरिक ताप से ही होती है।

भूमि के बनाने में कुछ भाग लेते हैं। इसके दो उदाहरण यहाँ पर दिए जाते हैं। मूँगा छोटे-छोटे जानवरों की हड्डियों से बनता है। ये जानवर अक्सर समुद्र में पूरा टापू-का-टापू बना डालते हैं। प्रशांत महासागर के दक्षिणी भाग में असंख्य मूँगे के टापुओं के देखने से विदित होता है कि ये जीव भूमि के बनाने में कितना बड़ा भाग लेते हैं। आस्ट्रेलिया का बड़ा मूँगे का टापू १,२०० मील लंबा है। खड़ी भी क्षुद्र समुद्रीय जीवों के सितुओं या घोंघों से बनती है। खड़ी के ढेलों में ये कभी-कभी अक्षुण्ण भी देखने में आते हैं। माइक्रोस्कोप (सूक्ष्म-दर्शन-यंत्र) से तो इस बात का पता और भी साफ़ तौर से चल जाता है। दक्षिण-इँगलैंड में कभी-कभी हज़ार फ़ीट तक मोटी खड़ी की तह पाई जाती है।

भूमि और समुद्र का विभाजन भूकंप और ज्वालामुखी के द्वारा हुआ है, यह हम देख चुके। परंतु, जैसा कि हमने अभी लिखा है और जैसा प्रमाणों से विदित होता है, समुद्र और भूमि का आधुनिक विभाजन प्राचीनतम विभाजन नहीं है। सीधे ज्वालामुखी के द्वारा जो चट्टान (Rock—भूगर्भ-शास्त्र-वेत्ता लोग पदार्थ (matter) के सभी पिंडों को, चाहे वे एक धातु से बने हों या एक से अधिक धातु से, चाहे वे पत्थर के सदृश घनत्व-संपन्न हों या कंकड़ या मिट्टी के ढेले ही क्यों न हों, "रॉक"—"चट्टान"—के नाम से ही अभिहित करते हैं) बनते हैं, वे भूगर्भ-शास्त्र में "igneous" या "आग्नेय" चट्टान कहे जाते हैं। "ग्रेनाइट" या ग्रावा-पत्थर तथा लावा (ज्वालामुखियों के द्वारा भूगर्भ से निकले हुए पदार्थ) प्रभृति इसी श्रेणी के अंदर हैं। परंतु भूपृष्ठ पर हमें आज आग्नेय चट्टान बहुत कम प्राप्त होते हैं। पृथ्वी का प्रायः समस्त बाहरी स्तर "तलछटवाले" (Sedimentary) या "परतवाले" (Stratified) चट्टानों का बना हुआ है। अब हमें यह देखना है कि ये आग्नेय चट्टान क्योंकर टूटते हैं, और इनके स्थान पर क्योंकर Sedimentary (तलछटवाले) या Stratified (परतवाले) चट्टानों की उत्पत्ति होती है।

प्राचीन आग्नेय चट्टानों का टूटना और उनके स्थान पर परतवाली या स्तर-विशिष्ट चट्टानों का बनना

जब हम पृथ्वी के बाहरी स्तर पर ध्यान-पूर्वक वैज्ञानिक ढंग से विचार करते हैं, तो हमें हठात् यह बात मालूम होती है कि पृथ्वी का यह स्तर पूर्णतया एक ही वस्तु बना हुआ नहीं है; वरन् इसकी बहुत-सी तहें और प[रतें] हैं। कुछ तहें या परत एक वस्तु के हैं, तो कुछ दूसरे व[स्तु] के। प्याज़ के छीलने पर हमें जिस प्रकार बहुत-सी त[हें] या परत मिलते हैं, वही अवस्था हमारी पृथ्वी की भी है। बहुत-से स्थानों में तो इन परतों की रचना ठीक दीव[ार] की तरह हुई है। जिस प्रकार किसी मकान में ईंटे [और] जुड़ाई लगाकर दीवार बनाई जाती है, उसी प्रकार पृ[थ्वी] के अंदर भी जुड़ाई लगी हुई है। हाँ, कहीं पर परत बहु[त] मोटी है, और कहीं पर किताब के पन्नों के सदृश एकद[म] पतली।

इस परतबंदी का क्या कारण है? नदी और समु[द्र] इत्यादि की क्रिया के ऊपर हमने अभी जो कुछ लिखा है, उसपर ध्यान रखने से इसमें कोई शंका शेष नहीं रह जाती कि परतबंदी का यह काम पानी ने किया है। अक्सर परतों पर हमें मछलियों और अन्य जल-जीवों के पाषाणीभूत शरीर और हड्डियाँ इत्यादि भी सुरक्षित मिलती हैं। इसक[ा] तात्पर्य स्पष्ट ही है, अर्थात् यह भूमि किसी समय जल के गर्भ में निहित और जल-जीवों का वासस्थान थी। समय के बीतने पर इन जीवों के मृतक शरीरों के ऊप[र] एक दूसरा स्तर जम गया, और इस प्रकार इनकी हड्डिय[ाँ] इत्यादि उससे दब गईं, जो खोजने पर हमें आज भी प्रा[प्त] होती हैं। इसका समझना कठिन भी नहीं है। रोन-नद[ी] जीनवा की झील में गँदले और पंकिल स्वरूप में गिरत[ी] है, परंतु फिर उस झील से स्फटिक के सदृश स्वच्छ होक[र] निकलती है। तात्पर्य स्पष्ट ही है, अर्थात् वह अपनी धार में पदार्थ का जो कुछ अंश कणों के स्वरूप में लाती है, उस सबको झील में छोड़ जाती है। अतएव कुछ दिनों में नदी इस झील को अवश्य ही भर देगी। अपनी धार में नदी कभी तो बड़े-बड़े पत्थर बहा लाती है, और कभी छोटी-छोटी कंकरी, बालू या सिर्फ़ महीन कीचड़ ही। अतएव युगों के बाद जब यह झील एकदम से भरक[र] शुष्क भूमि की अवस्था में परिणत होगी, तो कुआँ खोदने या गहरा करने पर हमें परत के स्वरूप में ये सभी वस्तुएँ उसी प्रकार धरी हुई मिलेंगी, जिस प्रकार किसी दीवार के तोड़ने पर ईंटे या चूने की परतें मिलती हैं। रोन-नदी जो काम कर रही है, वही काम गंगा और मिसिसिपी तथा संसार की अन्य सभी नदियाँ और समुद्र

युगों से करते आ रहे हैं। इसी कारण हमें आज प्राचीन आग्नेय चट्टानों के स्थान पर तलछटवाले (Sedimentary) या स्तरवाले (Stratified) चट्टान मिलते हैं।

पृथ्वी का विगत इतिहास—भूतत्त्ववेत्ताओं की अनुसंधान-विधि

जिस प्रकार ऐतिहासिक पृथ्वी के समस्त इतिहास को, इतिहासातीत, प्राचीन, माध्यमिक और आधुनिक समयों में विभक्त करते हैं, ठीक उसी प्रकार भूगर्भ-शास्त्र के पंडित भी पृथ्वी के इतिहास को चार बड़े-बड़े खंडों में विभक्त करते हैं। प्रत्येक समय में भूपृष्ठ पर निवास करनेवाले जीवों और वनस्पतियों की बनावट और गठन के अनुसार ही वे काल का निर्णय करते हैं। उनकी अनुसंधान-विधि और पुरातत्त्व-वेत्ताओं की अनुसंधान-विधि में बहुत बड़ा सादृश्य है। हम पाठकों को यहाँ पर इसका दिग्दर्शन कराते हैं। जब हम पृथ्वी की बनावट अर्थात् इसके कठिन स्तर की बनावट की परीक्षा और विश्लेषण करते हैं, तो हमें यह तुरत पता लग जाता है कि इसकी बनावट एक ही प्रकार की नहीं है, तथा भिन्न-भिन्न पदार्थों की इसमें बहुत-सी तहें हैं। बाज़ स्थानों पर तो यह तहें एक दूसरे पर क्रमानुसार उसी प्रकार पाई जाती हैं, जिस प्रकार अन्वेषण करने पर हम प्राचीन मिसर के स्तूपों में ईंट और पत्थरों की जुड़ाई लगी हुई पा सकते हैं। इस परतबंदी का तात्पर्य स्पष्ट ही है, अर्थात् इसका कारण जल है। जल के द्वारा तह किस प्रकार जमती है, इसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। इस परतबंदी के द्वारा एक दूसरी बात का भी पता चलता है; और वह यह है कि पृथ्वी के ह्रास या क्षय के द्वारा ही यह परतबंदी साधित हुई है; क्योंकि यह स्पष्ट ही है कि जल में भूमि के सृजन की शक्ति नहीं है। अतएव निष्कर्ष स्पष्ट ही है कि भूमि के बनने की ये सामग्रियाँ पृथ्वी के क्षय और नाश के द्वारा ही जल के गर्भ में पहुँची होंगी, अर्थात् एक स्थान पर भूमि के क्षय से दूसरे स्थान पर भूमि की उन्नति होती है। इसका हम किंचित् विस्तृत विवेचन पहले कर चुके हैं। अनुमान करो कि किसी स्थान पर पृथ्वी की एक वर्ग-मील लंबी-चौड़ी तह १० फ़ीट मोटी है, तो ऊपर कही गई बातों के अनुसार इससे यही स्पष्ट होता है कि दस फ़ीट मोटी एक वर्ग-मील ज़मीन कटकर जल-गर्भ में गई थी। एक तीसरी बात जो इस परतबंदी के द्वारा विदित होती है, वह यह है कि स्वाभाविक रूप से सबसे नीचे पाई जानेवाली परतें प्राचीनतम हैं, तथा क्रमशः ऊपर पाई जानेवाली परतें अपने नीचे की परतों से अपेक्षाकृत नवीन हैं। अनुमान करो कि पानी से भरे एक हौज़ में हम पहले कुछ सफ़ेद बालू डाल देते हैं। इस बालू के जल के नीचे बैठ जाने तथा जल के स्वच्छ हो जाने पर हम उसमें फिर कुछ पीला बालू डाल देते हैं। पश्चात् इसी प्रकार से लाल और हरा बालू डालते हैं। अब यह स्पष्ट ही है कि पानी को ख़ाली करके हौज़ में अनुसंधान करने पर हमें सबसे पहले हरे बालू की उसके बाद क्रम से लाल, पीले और सफ़ेद बालू की तहें मिलेंगी। अर्थात् सबसे अंत में डाली गई बालू सबसे ऊपर और समय के क्रम से उसके पहले डाली गई बालू उसके नीचे मिलेगी। श्वेत बालू सबसे नीचे होगी। अतएव इस अनुमान—और प्रायः निश्चयात्मक अनुमान—के सहारे हम कह सकते हैं कि पृथ्वी की सबसे गहरी तह सबसे प्राचीन है, और उसके ऊपर पाई जानेवाली तहें अपेक्षाकृत नवीन। परंतु इसके लिये यह ज़रूरी है कि ये तहें समस्त संसार में एक ही प्रकार से जमी हों, तथा कोई विघ्न और विरोधकारक कारण मध्यगत न हुआ हो। पर ज्वालामुखी इत्यादि के बारे में ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसको ध्यान में रखते हुए हमारा अनुमान कदापि पूरी तरह से सत्य और निर्भ्रांत नहीं कहा जा सकता। पुनः एक ही समय समस्त संसार में एक ही तरह की तह नहीं बनती। उदाहरणार्थ अटलांटिक महासमुद्र इस समय खल्ली के सदृश एक वस्तु से भर रहा है; गंगा और मैक्सिको की खाड़ियाँ नदी द्वारा बहाकर लाई गई चिकनी मिट्टी के द्वारा भर रही हैं; हिंद और प्रशांत महासागर तथा लाल समुद्र मूँगे से भरे पड़े हैं। अब यदि भविष्य में इन समुद्रों के भीतर से ज़मीन उठ आवे, और भविष्य के भूतत्त्वान्वेषी इन ज़मीनों की परीक्षा करें, तो वे किस प्रकार यह निर्णय कर सकेंगे कि खल्ली, चिकनी मिट्टी और मूँगे की यह तहें, सब एक ही समय में बनी थीं? ऐतिहासिक तो प्राचीन खँडहरों को खोदकर उनके अंदर पाए जानेवाले सिक्कों, एवं अन्य वस्तुओं के द्वारा ऐतिहासिक काल का निर्णय करते हैं। क्या भूगर्भ-शास्त्र-वेत्ताओं को भी कुछ सिक्के मिलते हैं? हाँ, उनकी अनुसंधान-पद्धति भी ऐतिहासिकों की ही तरह है। अनुमान करो कि

उपर्युक्त इन तीनों प्रकार की तहों में जॉर्ज पंचम का एक-एक सिक्का डाल दिया गया है। अब भविष्य के भूतत्त्वान्वेपक को कोई कठिनाई नहीं होगी और वह फ़ौरन् कह देगा कि ये तीनों तहें बीसवीं शताब्दी में बनी थीं। तब क्या भूतत्त्वान्वेपकों को ऐसे सिक्के प्राप्त होते हैं? पाषाणीभूत घोंघे, सितुए तथा भूगर्भ के अंदर पाए जानेवाले वनस्पतियों और जीवों के अवशेष ऐसे ही सिक्के हैं, और उनके द्वारा भूतत्त्वान्वेपक समय का निर्णय उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार सिक्कों के द्वारा ऐतिहासिक। प्रत्येक समय के वनस्पति और जीवधारी दूसरे समय से भिन्न होते हैं। और, यद्यपि एक समय और दूसरे समय के वनस्पति और प्राणियों के मध्य सादृश्य दृष्टिगोचर होता है, तथा भूत और वर्तमान या प्राचीन और अपेक्षाकृत अर्वाचीन एक दूसरे के साथ आबद्ध हैं—अर्थात् भूगर्भ के अंदर पाए जानेवाले वनस्पतियों और जीवों की भिन्नता क्रमशः और धीरे-धीरे बढ़ती है—और विकास-सिद्धांत के अनुसार ऐसा होना भी चाहिए—तथापि पृथ्वी के अंदर पाए जानेवाले "फ़ॉसिलों" (Fossils—पाषाणीभूत वनस्पतियों और जीवों) की एकरूपता और विशेषता के कारण काल-निर्णय में तनिक भी कठिनाई नहीं होती, और भूतत्त्वान्वेपक भी ऐतिहासिकों की तरह निर्भ्रांत रूप से समय का निश्चय करता है। हज़ारों परीक्षाओं के द्वारा यह निर्विवाद रूप से सिद्ध किया गया है कि "फ़ॉसिलों" के आधार पर खड़े होने से कभी भूल नहीं हो सकती, चाहे ज़मीनों की बनावटों में कितना ही अंतर क्यों न हो।

इन्हीं "फ़ॉसिलों" के आधार पर पृथ्वी का इतिहास चार बड़े-बड़े युगों में विभक्त किया गया है। प्रथम युग में पृथ्वी के ऊपर जीवन बहुत ही अनुन्नत अवस्था में था। इसीलिये इस युग के मध्य पाए जानेवाले "फ़ॉसिलों" और अन्य "फ़ॉसिलों" के बीच बहुत बड़ी भिन्नता देखने में आती है। इस युग का नाम इओज़िक या आरकीओज़िक (Eozoic or Archæozoic) अर्थात् इतिहासातीत समय है। दूसरे युग में पाए जानेवाले "फ़ॉसिलों" की बनावट एकदम पुराने ढंग की है। इसलिये इस युग को पैलिओज़ोइक या साधारणतः प्राइमरी (Palæozoic or Primary) अर्थात् प्राचीन या प्राथमिक युग कहते हैं। तीसरा युग संक्रांति का युग है, अर्थात् इस युग में पाए जानेवाले "फ़ॉसिलों" की बनावट प्राचीन और अर्वाचीन समय के वनस्पतियों और जीवों के बीचोबीच है। इसलिये इस युग को मेसोज़ाइक (Mesozoic) या मध्य-युग कहते हैं। चतुर्थ युग—जिसमें हम लोग रहते हैं—का नाम केनोज़ोइक (Kainozoic) या आधुनिक युग है। ये मुख्य चार महायुग भूतत्त्व-वेत्ताओं द्वारा और भी कई खंडों में बाँटे गए हैं *।

फ़ॉसिलों के द्वारा विकास-सिद्धांत की पुष्टि

भूगर्भ में पाए गए वनस्पतियों और जीवों के पाषाणीभूत अस्थि-पिंजरों के द्वारा विकास-सिद्धांत की बड़ी पुष्टि होती है। यद्यपि इस भूतकालीन इतिहास के द्वारा यह विदित होता है कि व्यक्तियों और उपजातियों का विनाश होता है, तो भी जीवन की क्रमबद्ध उन्नति होती हुई नज़र आती है। एक पहले के युग से उसके बाद के युग के जीव कहीं उन्नत और विकसित नज़र आते हैं। इस अध्ययन के द्वारा यह भी प्रमाणित होता है कि जीवधारी अपने को अपनी परिस्थिति के अनुकूल बनाने की चेष्टा करते हैं, जिसके कारण उनमें परिवर्तन (या दूसरे शब्दों में विकास) होता है, एवं जो जीव अपने को परिवर्तित नहीं कर सकते, अर्थात् अपने को अपनी परिस्थिति के अनुकूल नहीं बना सकते, वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं

---

* पाठकों के सुबीते के लिये यहाँ पर हम भूतत्त्व-वेत्ताओं द्वारा किया गया समय-विभाग दिए देते हैं—

Geological Eras	Periods
4. Kainozoic	16. Pleistocene 15. Pliocene 14. Miocene 13. Oligocene 12. Eocene
3. Mesozoic	11. Cretaceous 10. Jurassic 9. Triassic
2. Palæozoic	8. Permian 7. Carboniferous 6. Devonian 5. Silurian 4. Ordovician 3. Cambrian
1. Archæozoic or Eozoic.	2. Torridonian (British) 1. Archean

अर्थात् प्रकृति योग्यों को चुन लेती और अयोग्यों को मरने के लिये छोड़ देती है। अब आइए, जीवन के क्रम-बद्ध परिवर्तन या विकास पर दृष्टिपात कीजिए।

प्राचीनतम या Archeozoic-युग के चट्टानों में हमें बहुत कम फ़ॉसिल मिलते हैं। इसका कारण यह है कि धीरे-धीरे घनत्व-क्रिया के साधित होने तथा अत्यंत गर्मी और दबाव के कारण इस युग के चट्टान अत्यंत कठिन हो गए हैं। इतने कठिन और घनत्व-संपन्न हो गए हैं कि वे देखने में आग्नेय चट्टानों या Igneous rocks के सदृश प्रतीत होते हैं, और इसीलिये पहले कुछ वैज्ञानिक इन्हें आग्नेय या Igneous चट्टान अनुमान करते थे। इसी भीषण गर्मी और दबाव के कारण इन चट्टानों के सब फ़ॉसिल नष्ट हो गए हैं; और इन चट्टानों से परतबंदी के चिह्न भी प्रायः लुप्त हो गए हैं। तो भी जीवन के जितने चिह्न और जीवों के जितने अवशेष प्राप्त होते हैं, उनसे यह स्पष्ट पता चलता है कि संसार में जीवन की उत्पत्ति बहुत समय पहले हुई होगी। विवादास्पद बातों में न पड़कर हम **दूसरे महायुग** (Palæozoic) के प्राचीनतम विभाग अर्थात् कैंब्रियन-युग से जीवन के इतिहास का अवलोकन आरंभ करते हैं। इस युग के चट्टानों में जीवन के चिह्न कहीं अधिक स्पष्टता के साथ दृष्टिगोचर होते हैं। इस युग के चट्टानों में विशेष कर नीचे दर्जे के घास और सामुद्रिक तृण इत्यादि मिलते हैं। इस युग के चेतन जीव भी बहुत नीचे दर्जे के मालूम होते हैं। हमें इस समय ऐसे जल-जीव देख पड़ते हैं, जो मछलियों की अपेक्षा कहीं अधिक कृमियों से ही मिलते हैं। रीढ़ और अस्थि-युक्त (Vertebrate) मछलियों की तो बात ही करना व्यर्थ है। ये जीव अभी तक झींगा मछलियों की अवस्था तक भी नहीं पहुँच सके हैं। विस्तार के साथ सभी महा-युगों और युगों के जीवन के उल्लेख और विवेचन के लिये स्थान नहीं है। हम सिर्फ़ मोटी-मोटी बातों को संक्षेप में वर्णन करके ही इस विषय को समाप्त करेंगे। यदि पाठकों को फ़ॉसिलों के द्वारा विकास की कथा पढ़नी हो, तो वे भू-गर्भ-शास्त्र और प्राणि-शास्त्र के ग्रंथों का अवलोकन करें। इस महायुग के साइलूरियन(Silurian) विभाग के चट्टानों में फ़ॉसिल प्रचुरता के साथ पाए जाते हैं। इस युग में विशेष कर क्रस्टेशिया (Crustacea) जाति के जीव—अर्थात् केकड़े या चिंगड़ी मछली एवं अन्य जल-कृमि—इत्यादि पाए जाते हैं। इस युग के चट्टानों के ऊपरी परत पर कभी-कभी मछलियाँ भी पाई जाती हैं। कम-से-कम साइलूरियन युग में पृथ्वी प्रायः आजकल की अवस्था में परिणत हो गई थी। प्रमाणों से पता चलता है कि उस समय वर्षा होती थी, वायु चलती थी, नदियाँ दौड़ती थीं, समुद्र के हिलकोरे ज़मीनों को काटते थे, चिंगड़ी या झींगा मछलियाँ जल में तैरती थीं, और केकड़े प्रभृति जीव किनारों पर रेंगा करते थे। इस युग के डिवोनियन (Devonian), कार्बोनिफ़ेरस (Carboniferous) और पर्मीनियन (Perminian) विभागों में मछलियाँ और फ़र्न-जाति के पौदे बहुतायत से पाए जाते हैं, और कभी-कभी यद्यपि अत्यंत विरलता के साथ जल और स्थल पर समान रूप से रह सकनेवाले जीवों के भी फ़ॉसिल देखने में आते हैं। **तृतीय महायुग** अर्थात् Mesozoic या **मध्य युग** में पेट के बल चलनेवाले—उरग या Reptile—जीवों की भरमार है। इस युग के वनस्पति-संसार में भी बहुत उन्नति हुई दृष्टिगोचर होती है। इस युग के विशेष पौदे काई या फ़र्न नहीं हैं, वरन् इस युग में बीजवाले पौदों की सृष्टि हो गई है। भेद इतना ही है कि आजकल के पौदों के असदृश इस युग के पौदों के बीज किसी थैली या गूदे से ढके न होते थे। इन पौदों के बीज नंगे ही होते थे। इस युग में समुद्र के मध्य भी Plesiosauri, Ichthyosauri इत्यादि विशालकाय उरग जीवों की एवं बृहच्छरीर दरियाई घोड़ों की उत्पत्ति हुई नज़र आती है। ज़मीन पर भी बड़े-बड़े विशालकाय उरग जीव देखने में आते हैं। डाईनोसौराई-जाति के उरग जीव ८० फ़ीट तक लंबे होते थे। हवा में टेरोडैक्टाईल या उड़नेवाले उरग जीवों का साम्राज्य था। इनकी बनावट पक्षियों से मिलती-जुलती हुई मालूम होती है। इनके चमगादड़ों की तरह झिल्लियों के डैने होते थे, जिनके द्वारा ये वायु में इधर-उधर गतिशील हो सकते थे। ये जीव मांस-भोजी होते थे। छिपकिली, घड़ियाल, कछुए प्रभृति अन्य उरग जीवों से भी जल और स्थल दोनों भरे हुए थे। कहीं-कहीं दूध पिलानेवाले जीवों और पक्षियों के चिह्न पाए जाने से यह विदित होता है कि उस समय इनकी भी सृष्टि हो गई थी। जिस प्रकार प्रथम युग में एक-आध मछलियाँ और द्वितीय युग में एकआध उरग तथा

जल और स्थल पर समान रूप से रह सकनेवाले द्विधा-गति (amphibious) जीव विद्यमान पाए जाते हैं, उसी प्रकार इस युग में भी एकआध पक्षी या एकआध दूध पिलाने-वाले जानवर (Mammals) देखने में आते हैं। परंतु इस युग के दूध पिलानेवाले जानवर निकृष्टतम दर्जे के हैं। वे विशेषतः मार्सूपियल (Marsupial-वे जीव जो प्रसव-कार्य के बाद भी कुछ समय तक अपने बच्चों को अपने पेट की एक थैली में रक्खा करते हैं। कैंगारू, जिसे पाठकों ने किसी पशुशाला में देखा होगा, इसी श्रेणी का एक जीव है) जाति के हैं। इस युग के पक्षी, उरग जीवों और यथार्थ पक्षियों, दोनों से मिलते-जुलते हुए नज़र आते हैं। चौथा अर्थात् Kainozoic महायुग आधुनिक युग है। इस युग में वर्तमान समय में पाए जानेवाले वनस्पतियों या जीवों की सृष्टि पूर्णता के साथ हो गई है। इस युग में अन्य रीढ़-युक्त जानवरों की अपेक्षा दूध पिलाने-वाले जानवर ही अधिकता के साथ पाए जाते हैं। इस युग के वृक्ष और पौदे भी आजकल की ही तरह हैं। उनमें नग्न बीज नहीं लगते, वरन् उनके बीज आजकल के ही वृक्षों की तरह गूदे या छिलके से ढके होते हैं। इस युग के चार अपेक्षाकृत प्राचीन विभागों अर्थात् Eocene, Oligocene, Miocene, और Pliocene युगों को कुछ भूतत्त्व-वेत्ता Tertiary युग और इसके सबसे ऊपरी परत अर्थात् Pleistocene युग को Quarternary युग भी कहते हैं। अंतिम युग एकदम पूर्णता के साथ आधुनिक युग कहा जा सकता है; क्योंकि इस युग में मनुष्य और आजकल के प्रायः सभी जानवरों के वर्तमान रहने के काफ़ी प्रमाण प्राप्त होते हैं। इन अंतिम दो समयों—टर्शियरी और क्वार्टर्नेरी युगों—पर हम पीछे कुछ लिखेंगे।

अंत में भूतत्त्वज्ञों द्वारा किए गए इन समय-विभागों की दीर्घता पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। पृथ्वी के इन परिवर्तनों के होने में, इन स्तरों के जमने में, तथा पृथ्वी के इस अवस्था में पहुँचने में, कितना समय लगा है, तथा पृथ्वी को जन्म लिए कितने दिन हुए इत्यादि प्रश्न यहाँ पर उपस्थित हो जाते हैं।

पृथ्वी की आयु

निश्चित रूप से इन सभी प्रश्नों का उत्तर देना तो शायद असंभव ही है, तथापि विज्ञान के द्वारा इन प्रश्नों पर जो प्रकाश पड़ता है, उससे हमारी बुद्धि थर्रा उठती और समय का अंदाज़ करने में हमारी अनुमान-शक्ति जवाब दे देती है। उदाहरण-स्वरूप हम यहाँ पर पृथ्वी के दो-एक परतों पर विचार करते हैं।

हम पहले कोयले के स्तर को लेते हैं। औद्भिज पदार्थों से ही कोयला बना है, इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं। कोयला जमा हुआ और घनत्व-संपन्न उद्भिज्ज पदार्थ है। कोयले की खानों के निरीक्षण से पता चलता है कि कोयले की परत एक इंच से लेकर तीस फ़ीट तक मोटी होती है। कोयले की प्रायः प्रत्येक परत के नीचे मिट्टी की सतह और उसके ऊपर बालुका-विशिष्ट चट्टान या पाँकी की तह पाई जाती है। पृथ्वी के गर्भ में एक स्थान पर कोयले की सिर्फ़ एक ही तह नहीं मिलती। कहीं कहीं—उदाहरणार्थ नोवा, स्कोटिया या साउथ वेल्स में—तो एक के ऊपर एक कोयले की ८० से लेकर १०० परतें तक पाई गई हैं। प्रत्येक परत के नीचे मिट्टी और उसके ऊपर पाँकी या बालुका-विशिष्ट सतह देखने में आती है। कहीं-कहीं तो कोयले की कुल परतों की मुटाई १४,००० फ़ीट तक देखी जाती है।

इन बातों से क्या नतीजा निकलता है ? कोयले के नीचे की मिट्टी द्वारा यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मिट्टी की यह सतह एक समय शुष्क भूमि थी, जो उद्भिदों और वनस्पतियों के जंगलों से शोभा-पूर्ण और हरी हो रही थी। परीक्षा करने पर विदित होता है कि नीचे की यह सतह जड़ों के रेशों से भरी हुई है। कहीं-कहीं तो वृक्षों के ठूठ और छोटे-छोटे तने भी मिलते हैं, जिससे पता चलता है कि किसी समय वृक्षों के ये ठूठ भग्नावशेष हरे-भरे पत्र-पल्लव-संपन्न वृक्ष होंगे। पहले के सदृश इनकी जड़ें अभी तक ज़मीन में घुसी हुई देखी जाती हैं। प्राचीन समय के इन्हीं उद्भिदों और वनस्पतियों के द्वारा कोयले की सृष्टि हुई है। आधुनिक समय में औद्भिज्ज पदार्थ सड़कर प्रायः मिट्टी की अवस्था में परिणत होते हैं; परंतु प्राचीन समय में दबाव और ताप-परिमाण की भिन्नता इत्यादि के कारण इन औद्भिज्ज पदार्थों के द्वारा कोयले की सृष्टि हुई।

कोयले को सूक्ष्म-दर्शक यंत्र के द्वारा देखने से विदित होता है कि कार्बोनिफ़ेरस-समय के पौदों से ही कोयले की सृष्टि हुई है। परंतु मुख्यतः कोयला इन वृक्षों

के बीज से ही बना हुआ पाया जाता है। जिस प्रकार हमारे जंगलों में आज भी गिरी हुई पत्तियों, बीजों एवं अन्य औद्भिज्ज पदार्थों के ढेर या टीले बन जाते हैं, शायद उसी प्रकार प्राचीन जंगलों में भी टीले बनते होंगे, और उन्हीं के द्वारा कोयले की सृष्टि हुई होगी—उस कोयले की, जिसके ऊपर वर्तमान सभ्यता का सोलहों आने दारमदार है। अहा! प्रकृति ने कितने यत्न से हमारे लिये इस परमावश्यक वस्तु को पृथ्वी के गर्भ में रख दिया था! अब कोयला कितने दिनों में बना होगा, इसका अनुमान कीजिए। यह कहने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं कि इतने अधिक दबाव के अंदर एक फुट कोयला बनने के लिये बहुत ज़्यादा औद्भिज्ज पदार्थ, और कार्यतः बहुत ज़्यादा समय की ज़रूरत है। एक भूतत्त्वज्ञ अमेरिका के कोयले की खानों के निरीक्षण और परीक्षा के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि केवल एक फुट कोयले के लिये भी कम-से-कम वृक्षों की पचास पीढ़ियों के उगने और गिरने की ज़रूरत है; अर्थात् एक फुट कोयले के लिये अनेक शताब्दियों-पर्यंत जंगल को क़ायम रहना चाहिए। परंतु इतने ही से समय का पूरा अंदाज़ नहीं किया जा सकता। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि कोयले की प्रत्येक परत के नीचे मिट्टी की सतह और उसके ऊपर बालुका-विशिष्ट भूमि या पाँकी पाई जाती है। इसका क्या कारण है? इस प्रश्न का एक के सिवा दूसरा उत्तर हो नहीं सकता; और वह उत्तर यही है कि वह भूमि, जहाँ यह जंगल विद्यमान था, धीरे-धीरे धँस गई। पहले वह दलदल की अवस्था में परिणत हुई, पश्चात् इसने समुद्र से मिली हुई उथली झीलों या बड़े तालाबों का स्वरूप धारण किया। धीरे-धीरे वह झील या तालाब पाँकी या बालू के द्वारा भर गया। भू गर्भ-संबंधी परिवर्तनों के कारण ज़मीन उठ गई, यह वृक्षों के उगने-योग्य सूखी ज़मीन बन गई, यहाँ फिर भी पुरानी क्रिया आरंभ हो गई, और इस स्थान पर पुनः पूर्ववत् जंगल लहराने लगा। इसी क्रिया के कई बार संघटित होने के कारण हमें पृथ्वी के अंदर एक के ऊपर एक कोयले की कई परतें मिलती हैं। अंत में किसी बड़े भू-विषयक परिवर्तन के द्वारा भूमि का बार-बार धँसना और उठना बंद हुआ, तथा इस भू-खंड पर दूसरी ही तरह का अभिनय आरंभ हुआ। यह केवल अनुमान ही नहीं है। इसकी पुष्टि अन्य स्थानों से भी होती है। न्यू ऑर्लीस में कुआँ खोदने से भी यही बात देखने में आती है। कोयले की खानों की ही तरह वहाँ भी औद्भिज्ज पदार्थों तथा बालू या पाँकी की तहें देखने में आती हैं।

हम कह चुके हैं कि एक फुट कोयले के लिये वृक्षों की पचास पीढ़ियों के उगने और गिरने की ज़रूरत है। मान लो, वृक्ष की एक पीढ़ी के उगने, बढ़ने और गिरने में दस वर्ष लगते हैं (हमारा यह अनुमान बहुत ही कम है), तो इस हिसाब से कोयले की औसत मुटाई को १२,००० फ़ीट मानकर, हक्सली के हिसाब से, पृथ्वी की सिर्फ़ एक परत अर्थात् सिर्फ़ कोयले की परत बनने ही में साठ लाख वर्षों से अधिक लगे हैं! अब और पर्तों के बनने में कितना समय लगा, तथा पृथ्वी को जन्म लिए कितने दिन हुए—इन सब प्रश्नों का क्या उत्तर दिया जाय! इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि भू-गर्भ-विषयक इन परिवर्तनों का काल-निर्णय करने में हिसाब करने के लिये १० लाख वर्षों से कम की इकाई माने बिना काम नहीं चल सकेगा।

खल्ली के संबंध में हम ऊपर लिख चुके हैं कि यह छोटे-छोटे जल-जीवों—सितुओं, घोंघों या खोपड़ियों—के गर्दों से बनती है। इस तरह के जीव समुद्र की सतह पर आज भी प्रचुरता के साथ देखने में आते हैं। मरने के बाद आज भी इन जीवों के छिलके या खोपड़ियाँ समुद्र के गर्भ में बैठ रहती हैं, और आज भी समुद्र के गर्भ में खल्ली बनने का काम जारी है। अब हम स्वयं समझ सकते हैं कि खल्ली बनने के लिये बहुत ज़्यादा समय की ज़रूरत है। हिसाब करके पता लगाया गया है कि मिसर की नील-नदी एक शताब्दी में ज़मीन को तीन इंच ऊँचा करती है। खल्ली को समुद्र के जल के नीचे बनने में अवश्य इससे कहीं अधिक समय लगेगा। अच्छा, तो हम यदि इसका औसत प्रति शताब्दी एक इंच भी मान लें, तो इस हिसाब से एक फुट खल्ली के लिये १२,००० वर्षों की ज़रूरत है, और १,००० फ़ीट के लिये १२ लाख वर्षों की। परंतु इस तरह की (Cretaceous) परत की बनावट कहीं-कहीं ५,००० फ़ीट से भी अधिक है! इस हिसाब से भी हम उसी अनुमान पर पहुँचते हैं, जिस पर हम कोयले पर विचार करते समय पहुँचे थे! पृथ्वी की आयु की माप के लिये ३६५ दिनों का वर्ष पूर्णतया

अनुपयुक्त है। पृथ्वी की आयु के हिसाब के लिये १० लाख वर्षों से कम की इकाई माने विना काम नहीं चल सकता।

समय की अपरिमितता, काल की अनंतता, दिखलाने के लिये ये दो उदाहरण काफ़ी हैं। यदि पृथ्वी की ऊपरी सतह, अर्थात् केवल उसके मोटे स्तर, का इतिहास इतना पुराना है, तो समस्त पृथ्वी का इतिहास—समस्त सौर-संप्रदाय का इतिहास—इस ब्रह्मांड और विश्व का इतिहास—कितना पुराना है, इसका अंदाज़ क्योंकर लगाया जा सकता है। आकाश—स्थान—की अपरिमितता और अनंतता को हम गत लेख में देख चुके हैं। विचार करने पर काल के भी आदि और अंत का पता नहीं चलता। हर-काल (भगवान् रुद्र) सदा से विद्यमान हैं, और हमेशा रहेंगे। उनका तांडव नृत्य कब शुरू हुआ, यह नहीं कहा जा सकता। जगतों, सौर-संप्रदायों और ब्रह्मांडों की सृष्टि और प्रलय, बनने और बिगड़ने, जन्म और मृत्यु के दीर्घ समय का उनके आगे कोई महत्त्व नहीं है। यह सब उनके एक निमेष में हुआ करता है!

मनुष्य क्षुद्र है, उसकी बुद्धि छोटी है; परंतु प्रकृति अनंत है। मनुष्य अनंत का अंदाज़ नहीं कर सकता। अंत को उसे उसी स्थान पर आना पड़ता है, जहाँ से हमारे उपनिषत्कार "नेति-नेति" की पुकार उठा रहे हैं; क्योंकि असल रहस्य सदा बुद्धि, ज्ञान और विज्ञान की सीमा से बाहर रहा है, और सदा बाहर रहेगा भी—वह "वाङ्मनोतीत" है। एक कवि ने लिखा है—

हज़ारों सायंस रंग लाए, हज़ार क़ानून हम बनाएँ;
ख़ुदा की कुदरत यही रहेगी, हमारी हैरत यही रहेगी।

हम नहीं जानते, कविवर अकबर ने यहाँ पर "खुदा"-शब्द का प्रयोग संकीर्ण अर्थ में किया है या विस्तृत अर्थ में; पर यदि कवि ने "खुदा"-शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है, तो बेशक हम भी उसके साथ सुर में सुर मिलाकर यह कहने को तैयार हैं कि—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो;
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्।
अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि
इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे *

* वहाँ न तो आँख पहुँच सकती है, न वाणी और न मन। हम उसे नहीं जानते। उसकी शिक्षा किस प्रकार दी जा सकती है, हम यह भी नहीं जानते। वह सभी जानी हुई वस्तुओं से भिन्न है, और अज्ञात वस्तुओं से भी परे है। प्राचीन मनुष्यों से हमने इसी प्रकार सुना है।

या—

बर्कले, कांट मिल वो हैमिलटन;
जुस्तजू में तेरी हैं सरगर्दां।
बाइबिल, वेद, शास्त्र, वो क़ुरआँ;
मात तेरे हैं ए शहरहमाँ।
अपनी-अपनी लियाक़तें लेकर;
तर ज़ुबाँ गा रहे हैं तेरी शाँ।

गोवर्द्धनलाल

अनातोले फ़्रांस

गत १२ ऑक्टोबर को संसार से एक बहुत बड़ी आत्मा प्रयाण कर गई। महाशय अनातोले फ़्रांस की मृत्यु साहित्यिक जगत् की एक महत्त्व-पूर्ण और विषाद-पूर्ण घटना है। आप न केवल फ़्रांस के सबसे बड़े साहित्यिक थे, वरन् अनेकों विद्वानों के कथनानुसार अपने युग के सबसे बड़े साहित्यिक थे। आपकी ख्याति फ़्रांस तक ही परिमित नहीं थी। आपको समस्त संसार ने अपनाया था। सच पूछा जाय, तो पिछले १०-१५ वर्षों से आपका जितना प्रचार फ़्रांस के बाहर हो रहा था, स्वयं फ़्रांस में आपकी उतनी चर्चा नहीं थी। इसका कारण यह है कि आपने फ़्रांस के साहित्य की आधी शताब्दी तक सेवा की थी। इस बीच में फ़्रांस-निवासियों ने आपकी रचनाओं को खूब पढ़ा, मनन किया, आपके महत्त्व को अच्छी तरह से परख लिया, और अपने हृदयों में, अपने साहित्यिक इतिहास में, आपको वह प्रतिष्ठा दी, जो फ़्रेंच साहित्यिक इतिहास के महत्तम महारथियों को प्राप्त है। वास्तव में फ़्रांस के लिये वह एक ऐतिहासिक चरित्र बन गए थे। यदि फ़्रांस में, पिछले वर्षों में, उनके विषय में, अधिक चर्चा नहीं थी, तो केवल इसलिये कि उनके महत्त्व के संबंध में किसी प्रकार के तर्क की आवश्यकता ही नहीं थी। वह तो एक उच्च आसन पर निर्विवाद आसीन हो चुके थे। इसके अतिरिक्त उनके जीवन का कार्य एक

प्रकार से समाप्त भी हो चुका था। उनकी लेखनी से इधर बहुत कम ग्रंथ निकले हैं। वह वयोवृद्ध थे, और अपने जीवन के अंतिम दिनों में, दूसरे लोक की यात्रा करने के पूर्व, तनिक विश्राम ले रहे थे। शेष योरप ने उनके महत्त्व को कुछ समय के बाद पहचाना। और, जब से पहचाना, तब से उनका प्रचार न केवल योरप में, वरन् सारे संसार में अधिकाधिक होता गया। यह प्रचार आजकल बढ़ता जा रहा है, और यह निश्चय है कि उनकी मृत्यु इस प्रचार के प्रवाह को न रोकेगी। आप-के ग्रंथों के अनुवाद प्रायः सभी योरपियन भाषाओं में हो चुके हैं, और हो रहे हैं। निस्संदेह आपका नाम संसार में अमर रहेगा।

अनातोले फ्रांस

यह सत्य है कि आप वयोवृद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं; और आपके जीवन का कार्य प्रायः समाप्त हो चुका था। परंतु आपकी मृत्यु के कारण साहित्यिक संसार पर जो शोक की घटा छा गई है, उसके लिये यह विचार एक तुच्छ आश्वासन है। यह स्वाभाविक है कि फ्रांस में आपकी मृत्यु का शोक सबसे अधिक मनाया जाय। फ्रांस के आप गौरव थे, और यथार्थ में फ्रांस को आप पर गर्व था। निस्संदेह फ्रांस के साथ समस्त संसार के साहित्यिकों और साहित्य-प्रेमियों की समवेदना है। काल ने फ्रांस का एक अमूल्य धन अपहरण कर लिया है। यद्यपि अनातोले फ्रांस का नश्वर शरीर इस लोक से उठ गया है, परंतु जब तक संसार में साहित्य-चर्चा है, तब तक आपकी कृति का यहाँ से लोप नहीं हो सकता।

जन्म, वंश-परिचय और बाल्यावस्था

महाशय अनातोले फ्रांस का वास्तविक नाम था, जैक्स अनातोले थीबॉल्ट। आपका जन्म फ्रांस की राजधानी पेरिस में, १६ एप्रिल, सन् १८४४ ई० में, हुआ था। आपके पिता, फ्रांसिस नोएल थीबॉल्ट, इसी नगर में पुस्तक बेचने का व्यवसाय किया करते थे। आपके दादा एक छोटे-से गाँव में मोची का काम कर चुके थे। आपके पिता को लोगों ने 'फ्रांस' उपनाम दे रक्खा था। जब पुत्र ने साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश किया, तो अपने नाम के एक अंश के साथ, इस उपनाम को जोड़कर अपना साहित्यिक उपनाम अनातोले फ्रांस रख लिया, और फिर वह इसी नाम से विशेष परिचित रहे।

फ्रांसिस नोएल थीबॉल्ट एक पुराने ढंग के पुस्तक-विक्रेता थे, और उनकी पुरानी ढंग की दूकान पर (इस समय इस दूकान का निशान भी नहीं मिल सकता; क्योंकि उस स्थान पर अब एक आलीशान इमारत बन गई है) केवल पुस्तकों के ख़रीदार ही नहीं, वरन् उस समय के कई बड़े-बड़े साहित्यिक भी आया करते थे, और उनकी दूकान एक प्रकार से साहित्यिक गोष्ठी का केंद्र थी। यहाँ नित्य-प्रति साहित्यिक चर्चा हुआ करती थी; अनेकों विषयों पर वाद-विवाद हुआ करते थे, मत प्रकाशित किए जाते थे। राजनीति और धर्म इन विषयों में सम्मिलित थे। अनातोले फ्रांस के पिता रोमन कैथलिक-मत के ईसाई थे, और कट्टर राजभक्त भी। प्रजा-तंत्र राज्य की नुक्ताचीनी करके और रोमन कैथलिक-मत का पक्ष लेकर वाक्-युद्ध में विपक्षी को परास्त करने में जो आनंद आपको प्राप्त होता, वह अपने व्यवसाय में लाभ प्राप्त करने पर कदापि न होता। यहाँ पर यह बतला देना अनुचित न होगा कि यद्यपि अनातोले फ्रांस के पिता धनी नहीं थे, तथापि उन्हें किसी प्रकार की तंगी भी नहीं थी। यहीं,

अपने पिता की दूकान पर, बालक अनातोले भी अपने समय के धुरंधर लोगों की बातें सुना करता था। उनकी साहित्य-चर्चा तथा उनके वाद-विवादों से बाल्यावस्था ही में उसका मस्तिष्क भर गया था। अनातोले फ्रांस के जीवन को साहित्य की ओर फेरने का बहुत कुछ श्रेय इन बाल्यावस्था के प्रभावों पर है।

परंतु आपके बाल्य-काल के जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव आपकी माता का पड़ा। आप अपने माता-पिता की एक-मात्र संतान थे। अतएव आपके लालन-पालन में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं हुई। आपकी माता का प्रेम आदर्श था; और आपका भी अपनी माता के प्रति असाधारण स्नेह था। आपकी माता बड़ी सुशीला, सच्चरित्र और धार्मिक स्वभाव की स्त्री थीं। गिरजे में बराबर जाया करती थीं। वह अपने प्यारे पुत्र को अनेकों संतों की कथाएँ सुनाया करती थीं। और भी कहानियाँ सुनाती थीं। बालक ने बड़े होकर इनमें से कुछ कहानियों का अपने ग्रंथों में समावेश भी किया है। यद्यपि वह कभी किसी दूसरे के सम्मुख गीत न गाती थीं, तथापि अपने बालक को बहुधा गीत गा-गाकर सुनाया करती थीं। वह गृहस्थी के काम में बड़ी निपुण थीं, सुंदरी थीं, सरल और मृदुभाषिणी थीं, साथ ही उनमें आत्मसम्मान की पूर्ण मात्रा भी थी। अपने बहुत-से गुण अनातोले फ्रांस ने अपनी माता से प्राप्त किए थे, और अपनी माता की प्रकृति का बहुत अंश भी उन्हें प्राप्त हुआ था। आपका सबसे विपुल धन मातृप्रेम था।

इस प्रेम की उन्हें अत्यंत आवश्यकता भी थी। अपने माता-पिता की अकेली संतान होने के कारण आपकी बाल्यावस्था का कोई साथी नहीं था। इनकी माता ही इनके उस अवस्था के खेलों की संगिनी थीं। जिस समय घर के धंधों में अथवा सीने-पिरोने में वह लगी रहतीं, उस समय बालक अनातोले अपनी सचित्र इंजील के पन्ने उलटा करते और विचारों में लीन हो जाया करते थे। इनके बाल्य-काल का जीवन इस दृष्टि से बड़ा एकाकी था। कोई साथ का खिलाड़ी नहीं, और न बाह्य जगत् से ही कुछ संपर्क! बाह्य जगत् से उनका संपर्क उस समय होता, जब अपनी वृद्धा धात्री के साथ आप रोज़ बाहर घूमने निकलते। इस वृद्धा धात्री की स्मृति उन्हें आजन्म रही। उसका चित्र आप अपनी एक पुस्तक में अंकित करके उसे अमर कर गए हैं। इस धात्री का प्रभाव भी आप पर बहुत पड़ा।

आपके एकाकी जीवन ने आपको बहुत मननशील बना दिया था।

शिक्षा

इस मननशील बालक के स्कूल में प्रवेश करने का समय भी आया। यह स्टैनिसलास कॉलेज में अध्ययन करने के लिये भेजे गए। आपका स्कूल का जीवन आपको नितांत अप्रिय था। स्कूल के पठन-पाठन की प्रणाली आपकी प्रकृति के प्रतिकूल थी। छात्रावास में रहने का नियम, एक-साथ पूरे दर्जे को शिक्षा देने की प्रथा, तथा इम्तिहान, पुरस्कार और दंड देने की प्रथाएँ आपकी रुचि के विपरीत थीं। आप अपने अध्यापकों को प्रसन्न नहीं रख सके। दंड आपको भले ही मिला हो, परंतु पुरस्कार के नाम पर स्कूल में आपको कुछ भी नहीं मिला। आपका मन स्कूल की पढ़ाई में नहीं लगता था। आपकी ऐसी बान पड़ गई थी कि दर्जे में बैठे-बैठे न-जाने कहाँ-कहाँ के विचारों में निमग्न हो जाया करते, और उनमें इतने तल्लीन हो जाते कि दर्जे में क्या हो रहा है, इसका आपको कुछ ध्यान ही न रह जाता। स्टैनिसलास कॉलेज में रहकर आपने विशेष विद्योपार्जन नहीं किया। दर्जे की पढ़ाई में तो कभी आपने कौशल दिखाया ही नहीं। हाँ, निजी रूप से आपका पठन-क्रम जारी रहा, और आप बहुत कुछ पढ़ते रहे। बाल्यावस्था से ही आपको अध्ययन की चाट पड़ गई थी। जो किताब हाथ लग जाती, उसे पढ़ डालते। हाँ, आपको ग्रीक और लैटिन से—विशेष कर लैटिन से—प्रेम हो गया था, और आप उनके साहित्य-ग्रंथों को पढ़ा करते थे। कुछ भी हो, स्कूली जीवन से न आपको प्रेम ही था, और न वहाँ आपको और ही किसी प्रकार का सुख था। वह जीवन आपके सर्वथा अनुपयुक्त था। उस समय के जीवन की चर्चा करते हुए आप लिखते हैं—"बचपन से ही मुझे एकांतवास से प्रेम था। मैं दर्जे में बैठा रहता था। उस समय जंगल की पत्तियों का अथवा खेत में होकर बहते हुए नालों का मुझे ध्यान आता, तो मैं विह्वल हो उठता। मेरे मन में इच्छा, प्रेम और आकांक्षा की बाढ़ आ जाया करती थी। ××× उस भयानक स्कूल में मैं जीवित नहीं रह सकता था। परंतु मेरा बचपन से यह स्वभाव था कि मैं प्रत्येक वस्तु को

कौतूहल की दृष्टि से देखा करता था। इसी स्वभाव ने मुझे बचा लिया।" स्कूल में आपके कौतूहल की सामग्रियों में आपके अध्यापकगण भी थे। सोलह-सत्रह वर्ष की अवस्था में आपने स्कूल की पढ़ाई से छुट्टी पाई—वहाँ के बंधन से मुक्त हुए। उन वर्षों में जो कुछ आपने सीखा, सो अपने परिश्रम और अपनी अभिरुचि से। उसका श्रेय स्कूल की शिक्षा को नहीं प्राप्त है।

अनिर्दिष्ट जीवन

अनातोले फ्रांस ने लिखा है—"जब मैं स्कूल में था, तो बड़ा दुखी रहा करता था; मुझे निरंतर दुःख था। मैं सोचा करता था, जब स्कूल छोड़ दूँगा, तो मेरा समय चैन से कटेगा। परंतु, अंत में, जब मैंने स्कूल छोड़ा, और उसकी दीवारों के बाहर आया, तो जैसा सोच रक्खा था, वैसा सुख नहीं मिला।" यह अनुभव अनातोले फ्रांस के लिये कुछ विशेष बात नहीं थी। ऐसा अनुभव बहुधा लोगों को हुआ करता है। जब तक यह स्कूल में थे, एक सिलसिले से तो थे। स्कूल से बाहर आने पर यह आप निश्चित न कर सके कि क्या करना चाहिए।

किसी भी व्यवसाय की ओर आपकी अभिरुचि नहीं थी; किसी भी व्यवसाय को आप अपने उपयुक्त न पाते; और किसी अनुपयुक्त व्यवसाय के बंधन में पड़ जाने से आप कोसों भागते थे। सारांश यह कि आपका जीवन बिलकुल अनिर्दिष्ट रहा। बहुत समय तक आप राजधानी पेरिस के गली-कूचों की ख़ाक छानते रहे, सड़कों के फेरे लगाते रहे, वहाँ की ऐतिहासिक इमारतों का परिचय प्राप्त करते रहे, वहाँ के रहन-सहन और जीवन से परिचय प्राप्त करते रहे। कभी सीन-नदी के किनारे ध्यान-मग्न हो चक्कर लगाया करते, कभी नगर की पुस्तक की दूकानों पर जाकर पुराने, गर्द से ढके हुए ग्रंथों के पन्ने उलटा करते। स्कूल का अध्ययन छूट गया था; परंतु अध्ययन की चाट आपकी और भी तीव्र हो गई थी। पढ़ा भी खूब करते थे। हाँ, इस समय पेरिस-नगरी ही आपके लिये सबसे महत्त्व की पुस्तक हो रही थी, और उसी के गली-कूचे आपकी पुस्तकों के पन्ने। आपने पेरिस से भली भाँति परिचय प्राप्त किया। इस पर्यटन द्वारा जो अनुभव आपने प्राप्त किया, वह किसी पुस्तक द्वारा प्राप्त ज्ञान से कम महत्त्व का नहीं था। अपने पिछले, प्रौढ़, जीवन में महाशय अनातोले ने इस अनिर्दिष्ट भ्रमण-पूर्ण जीवन पर पश्चात्ताप नहीं प्रकाशित किया। बाल्यावस्था में वह सांसारिक जीवन से एक प्रकार अलग ही रहे थे। इस समय के जीवन ने उस त्रुटि की पूर्ति की, मानव-चरित्र से आपका परिचय कराया। पेरिस आपके लिये स्वयं एक शिक्षा थी। आपको पेरिस से प्रेम भी बहुत रहा। आपको पेरिस-नगरी का नागरिक होने का बड़ा गर्व था।

परंतु पेरिस की ख़ाक कब तक छानते? किसी कार्य में तो लगना ही चाहिए था। पेट का प्रश्न बड़ा कठिन प्रश्न है। किस व्यवसाय में लगते? एक दिन आपने नगर की डाइरेक्टरी उठाकर व्यवसायों की तालिका पर दृष्टि डाली। कोई व्यवसाय आपको पसंद न आया। नौकरी के फेर में भी रहे। एक सरकारी नौकरी के लिये कोशिश करते रहे; परंतु वह न मिल सकी। अंत को आपने साहित्य-सेवा और उसी द्वारा जीविकोपार्जन करने का निश्चय किया।

साहित्य-सेवा का आरंभ

वास्तव में साहित्य-सेवा के लिये प्रेरणा आपको बाल्यावस्था से ही हो रही थी। स्कूली जीवन में भी यही आकांक्षा आपकी बनी रही। क्या यह संभव नहीं है कि अपने पिता की दूकान में बड़े-बड़े साहित्यिकों की बातें सुनकर आपके मन में भी साहित्य-सेवा की अभिलाषा जाग्रत् हुई हो? जिस समय आप स्कूल ही में थे, आपने एक छोटी-सी रचना की थी। यह 'संत रेडगांडी' की कथा थी। यह कथा आपने कदाचित् अपनी माता से सुनी थी समर्पण इसका आपने अपने माता-पिता को अत्यंत सुंदर शब्दों में किया था। आपके एक चचा ऐसे उत्साही थे कि उन्होंने इस पुस्तक को लीथो-छापे में छपवा भी दिया। समर्पण की तिथि है नवंबर १८५९ ईसवी। साहित्य के अंकुर आपके हृदय में विद्यमान ही थे, उनके पल्लवित होने-भर की देर थी।

आपके पिता आपसे विशेष संतुष्ट नहीं थे। इसका कारण यह था कि जो आशा वह अपने पुत्र से कर रहे थे, उस आशा पर पुत्र के स्कूली जीवन की असफलता ने पानी फेर दिया था। वह इनकी ओर से अन्यमनस्क-से हो गए थे। परंतु अपनी माता के यह अब भी दुलारे थे। वही सदा इनका पक्ष लिया करती थीं। वह अनातोले को बड़ा होनहार बालक समझती थीं। उन्होंने भी अनातोले को लेखक बनने की प्रेरणा की।

साहित्य-सेवा के प्रति उत्साहित होने के और भी कारण

थे। लगभग इसी समय आपकी कई साहित्य-प्रेमी युवकों से मित्रता हो गई। इनमें से कई ऐसे थे, जो स्वयं अच्छे लेखक और कवि थे। उनमें से कईएक—सली प्रुदोमी, पॉल वुर्ले और जोसमराया डिहेरे दिया—ने फ्रांस के साहित्य में बड़ा नाम पाया है। कई साहित्यिक मंडलियों में अनातोले फ्रांस का भी प्रवेश हो गया, और साहित्यिक मित्रों के संसर्ग से उनके उत्साह ने प्रबलता प्राप्त की। यदि कोई बात इस उत्साह को ठंडा करनेवाली थी, तो यह कि उस समय, विशेष कर एक नए आदमी के लिये, केवल साहित्य-सेवा को जीविका बनाने के लिये उत्साहित करने के साधन नहीं थे। साहित्य-सेवा उस समय अनातोले फ्रांस-जैसे नए लेखक के लिये कुछ ऊपरी आमदनी का साधन हो सकती थी। इससे अधिक नहीं। परंतु जब कोई दूसरा व्यवसाय सामने न था, तो, कुछ भी हो, साहित्य-सेवा का काम शुरू करने में हर्ज ही क्या था।

धीरे-धीरे आपका निश्चय दृढ़ हो गया, और आपने साहित्य-सेवा को अपनाया। सन् १८६७ ई० से आपकी यह सेवा शुरू हुई—स्कूल में की हुई रचनाओं को हम छोड़ देते हैं—और उस समय के अनंतर आप बराबर अपने कार्य में लगे रहे। कोई भी वर्ष ऐसा नहीं व्यतीत होता था, जिसमें कुछ-न-कुछ आप प्रकाशित न करते रहते। पहले आपने पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखने से इस कार्य का श्रीगणेश किया। आप कई पत्रों को लेख दिया करते थे। कुछ समय तक एक पत्र के उपसंपादक भी रहे। लिमारी नाम के एक प्रकाशक ने—जिसका वर्णन आगे भी आवेगा—इनसे कई पुराने साहित्यिकों के ग्रंथों के लिये भूमिकाएँ भी लिखाईं। ये भूमिकाएँ पीछे से एकत्र करके पुस्तकाकार प्रकाशित हुईं। सन् १८६८ ई० में आपकी पहली पुस्तक प्रकाशित हुई। यह प्रसिद्ध कवि अल्फ्रेड डि विग्नी की जीवनी थी। पुस्तक साधारण थी। उस समय इसने पाठकों का विशेष ध्यान आकृष्ट नहीं किया। इस पुस्तक में आपकी भविष्य की प्रतिभा का संकेत भी नहीं था। परंतु आपके लिखने का क्रम जारी रहा, और आप अपने इस व्यवसाय के लिये अपने को अधिकाधिक योग्य बनाते रहे। बुद्धि आपकी प्रखर थी। मानव-चरित्र से अनुभव भी आपने अच्छा प्राप्त कर लिया था। अध्ययनशील और मननशील भी खूब थे। केवल अभ्यास की आवश्यकता थी। उसके लिये वह प्रस्तुत थे।

सैनिक

कुछ काल के लिये आपको लेखन का कार्य स्थगित करना पड़ा, और लेखनी के स्थान पर तलवार पकड़नी पड़ी। सन् १८७० ई० में जब युद्ध छिड़ा, तो अनातोले फ्रांस भी सेना में भरती हो गए। २ दिसंबर की लड़ाई में, फ़्रेसंडेरी के क़िले के नीचे, रिज़र्व सैनिकों में, आप भी थे। आपने इसका वर्णन यों किया है कि उस समय, जब चारों ओर गोलों की बौछार हो रही थी, और इनके सामने मार्न-नदी में गोले आ-आकर गिरा करते थे, यह अपनी जेब से निकालकर वर्जिल की कविता पढ़ते थे। वर्जिल की कविता से आपको अत्यंत प्रेम था, और यह प्रेम आजन्म रहा। आपकी साहित्यिक प्रवृत्ति का यह केवल एक और उदाहरण है। युद्ध के विषय में आपके विचारों में पीछे से बड़ा परिवर्तन हुआ था। पर उस समय आप युद्ध को बहुत उपयोगी समझते थे। युद्ध की उपयोगिता के विषय में एक आपका, उस समय का, लेख है, जिसका सारांश यही है कि "शस्त्रे तु रक्षिते राज्ये शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते।" पर पीछे से आप शांति के बड़े पक्षपाती हो गए थे।

फिर साहित्य-क्षेत्र में

कुछ समय बाद साहित्य-क्षेत्र में आप फिर आ गए। लिमारी-नामक प्रकाशक के लिये आप लिखा करते थे। आपके साहित्यिक मित्रों की संख्या बढ़ी। लेखक बन ही चुके थे। उनमें से कुछ मित्रों ने आपको सहायता दी। एक बड़े पुस्तकालय में आपको एक नौकरी मिल गई। इसमें आपकी 'अल्फ्रेड डि विग्नी'-नामक जीवनी तथा लिमारी के लिये लिखी गई भूमिकाएँ सहायक हुईं। यह नौकरी बड़ी अच्छी थी, आपके स्वभाव तथा आवश्यकताओं के उपयुक्त थी। अध्ययन का भी यहाँ पूरा अवसर था। लेखन के लिये भी अवकाश था। परंतु यह नौकरी आपसे निभ न सकी। पुस्तकालय के अधिकारियों का कार्य संतोषजनक नहीं था। बड़े अधिकारियों ने सारा दोष इन्हीं के माथे मढ़ दिया। यह कब चुप रहनेवाले थे? आपस का वैमनस्य बढ़ता गया, और अंत में अनातोले फ्रांस ने उस पद से इस्तीफ़ा दे दिया।

प्रकाशक लिमारी के लिये फिर कार्य में लगे। परंतु लिमारी से आपको जो कुछ मिलता, वह जीविका के लिये काफ़ी न होता। और आधार आपको ढूँढ़ने

संगीत-सुता

[चित्रकार—श्रीयुत एम्० ए० रहमान चग़ताई]

खरी पातरी गात की निरखति बादन-जत्र ;
सुता मनौ संगीत की बिलसति सुभग, स्वतंत्र ।

N. K. Press, Lucknow.

पड़े। एक विद्वान् किसी बृहत् कोष का संपादन कर रहे थे। उसके लिये आप कुछ सामग्री देते थे। वहाँ से भी आपको कुछ मिल जाया करता था। यह एक कौतूहल की बात है कि इतने बड़े भावी साहित्यिक ने उस समय जीविकोपार्जन के लिये पाक-विद्या की पुस्तकों तक के लिये लेख दिए। प्रकाशक लिमारी आपके गुणों पर मोहित और आपकी योग्यता का क़ायल था। उसने आपको अपने यहाँ एक नौकरी दे दी। काम इनका यह था कि प्रकाशनार्थ आई हुई पुस्तकों को पढ़ना और उन्हें पसंद या नापसंद करना। इस काम में भी आप असफल रहे। व्यवसाय की दृष्टि से उन पुस्तकों के प्रकाशन की स्वीकृति देनी चाहिए थी, जो सबसे अधिक बिकतीं। परंतु बिक्री का ध्यान आपको न रहता। आप तो ऐसी पुस्तकें चाहते थे, जो आपकी साहित्यिक कसौटी पर पूरी उतरें; और ऐसी पुस्तकों की प्रायः अधिक बिक्री न होती थी।

काव्य-ग्रंथ

यद्यपि आप अपनी जीविका के लिये गद्य-रचना ही करते रहे, परंतु अपने आमोद के लिये समय-समय पर कविताएँ भी किया करते थे। कई कवि-मित्रों के संसर्ग से यह उत्साह उत्पन्न हुआ था। परंतु सन् १८७३ के पूर्व आप अपनी कविता की पहली पुस्तक नहीं प्रकाशित कर सके। सन् १८७६ में एक और काव्य-ग्रंथ प्रकाशित कराया। आपकी कविता दोष-रहित होती थी; रचना-कौशल भी था; भावों की उत्कृष्टता भी थी, सुरुचि भी सूचित होती थी। यह सब होने पर भी यह स्पष्ट था कि काव्य-रचना के लिये वास्तव में जो प्रेरणा आवश्यक होती है, वह इनमें उपस्थित न थी। आपकी योग्यता को प्रकट करने के लिये गद्य एक विशेष उपयुक्त मार्ग था। अतएव गद्य-लेखन की ओर ही आपने विशेष ध्यान दिया, और उसी में अधिक सफलता भी प्राप्त की।

गद्य-रचना

गद्य ही के द्वारा आपकी प्रतिभा का विकास हुआ। गद्य के कई अंगों पर आपने ध्यान दिया। आपने उपन्यास, गल्प, जीवन-चरित्र, निबंध, समालोचना और चर्या, सभी में सफलता प्राप्त की है। परंतु अभी विख्यात होना समय-सापेक्ष था। सफल साहित्य-सेवी की सफलता सभी देखते हैं; परंतु यह देखनेवाले कम हैं कि इस सफलता के लिये लेखक को पहले कितना परिश्रम करना पड़ा है। अनातोले फ्रांस को भी अपने कार्य में बड़ा श्रम करना पड़ा, और ख्याति बहुत विलंब के बाद प्राप्त हुई।

सन् १८७९ में आपने Jocaste et Le Chat Maigre (जोकस्ता और भूखी बिल्ली) नाम का ग्रंथ प्रकाशित कराया। इस ग्रंथ में प्रौढ़ता आ गई थी; परंतु आपकी ख्याति के लिये अब भी दो वर्ष की देर थी। सन् १८८१ में आपकी Le Crime de Sylvestre Bonnard (सिल्वेस्त्रि बोनार्द का पाप) नाम की पुस्तक निकली। यह पुस्तक बड़ी प्रसिद्ध हुई। इसके द्वारा बड़े-बड़े साहित्यिकों में आपका भी नाम हो गया; और आगे के लिये असफलता की आशंका भी मिट गई। यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समय महाशय अनातोले फ्रांस की अवस्था ३७ वर्ष की थी, और साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किए उन्हें पूरे १४ वर्ष हो चुके थे। इतने दिनों का संतोष और श्रम अंत में फल लाया। "सिल्वेस्त्रि बोनार्द का पाप" वास्तव में बड़ी उत्कृष्ट पुस्तक है। यह आत्मचर्या के रूप में लिखी गई है। भाषा, विचार, चरित्र-चित्रण, सभी दृष्टि से पुस्तक अमूल्य है। कहते हैं, कथा-नायक सिल्वेस्त्रि बोनार्द के चित्रण में महाशय अनातोले ने अपने ही चरित्र का चित्रण किया है। यह कथन बहुत अंश तक सत्य है। परंतु उस समय अनातोले फ्रांस की अवस्था ३७ वर्ष की थी, और सिल्वेस्त्रि बोनार्द एक वयोवृद्ध पुस्तक-प्रेमी है, यह बात न भूलनी चाहिए। हाँ, अनातोले फ्रांस ने अपने भविष्य की भी इसमें कुछ कल्पना कर ली है। अनातोले ने अपनी रचनाओं में स्वयं अपने चरित्र का कहाँ तक चित्रण किया है, इस पर कुछ विचार हम आगे प्रकट करेंगे। उक्त पुस्तक द्वारा आपको बहुत सम्मान प्राप्त हुआ। आगे, सन् १८९६ में, इसी पुस्तक को सम्मानित करके फ्रांस की विख्यात एकाडेमी ने आपको उस सभा का सदस्य बना लिया था। 'एकाडेमी फ्रैंकेस' का सदस्य होना बड़े गौरव की बात है। इस सम्मान ने आपकी कीर्ति की बड़ी सहायता की।

आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ

आपकी पहली पुस्तक, जैसा बतला चुके हैं, सन् १८६८ ई० में प्रकाशित हुई थी। आपकी अंतिम पुस्तक सन् १९२२ में प्रकाशित हुई। अतएव आपने साहित्य की सेवा ५४ वर्ष तक अवश्य की। आपका जीवन विशेष

कर एक साहित्य-सेवी का जीवन रहा है। उसमें अन्य घटनाएँ बहुत कम हैं। इसी अध्यवसाय में आप दत्त-चित्त रहे। आपकी रचनाओं की सूची लंबी है। तीन दर्जन पुस्तकें आपने लिखी हैं। स्थानाभाव से आपकी सब पुस्तकों के यहाँ नाम भी नहीं दिए जा सकते, और प्रसिद्ध पुस्तकों के भी केवल नाम-मात्र दिए जा सकते हैं। इनके विषय में लिखने के लिये भी बहुत स्थान की आवश्यकता है। जिस क्रम से पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उसी क्रम से प्रकाशन-तिथि सहित उनकी सूची नीचे लिखी जाती है। इनमें वे पुस्तकें नहीं सम्मिलित हैं, जिनका वर्णन आ चुका है—

(१) Le Livre de Mon Ami (मेरे मित्र की पुस्तक), १८८५ ई०। इसमें निजी जीवन की कुछ स्मृतियाँ अंकित की गई हैं।

(२) Thaïs * (थायस), १८९० ई०। यह एक अत्यंत उत्कृष्ट रचना है। यह 'सिल्वेस्त्रि बोनार्द के पाप' से भी अधिक प्रसिद्ध हुई है। अनेकों समालोचकों की सम्मति में यह महाशय अनातोले की सबसे अच्छी रचना है।

(३) Les Opinions de M. Jérôme Coignard (जेरोमी कॉयनार्द के विचार), १८९३ ई०। कहा जाता है, अनातोले ने स्वयं अपने विचारों को जेरोमी कॉयनार्द द्वारा प्रकाशित किया है। यह कथन बहुत कुछ सत्य है।

(४) Le Lys Rouge (लाल लिली), १८९४ ई०। प्रेम और ईर्ष्या की विचित्र कथा है।

(५) L' Anneau d'Amethyste (नीलम की अँगूठी), १८९९ ई०।

(६) Monsieur *Bergeret à Paris* (पेरिस में मुशर बर्जेरेत), १९०१। उक्त दोनों पुस्तकों में बर्जेरेत चरित्र-नायक है, और बर्जेरेत द्वारा भी अनातोले फ्रांस ने अपने विचारों को प्रकट किया है। बर्जेरेत का चित्रण करके आपने अपना ही चित्रण किया है।

* इस पुस्तक का हिंदी में अनुवाद हो चुका है। अनुवादक हैं हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीप्रेमचंद। अनुवाद-ग्रंथ का शीर्षक है "अहंकार"। अनुवाद अभी गत वर्ष ही प्रकाशित हुआ है।

(७) L'Ile des Pingouins (पिंग्विन टापू), १९०८। आपकी इस पुस्तक का बहुत ही प्रचार हुआ। इसमें अनातोले फ्रांस की व्यंग्य-रचना का अच्छा आनंद मिलता है।

(८) La Vie de Jeanne d'Arc (जोन आर्क का जीवन-चरित्र), सन् १९०८ ई०। यह भी अनातोले की प्रसिद्ध रचनाओं में से एक है। इस पुस्तक के लिये अनातोले ने बहुत श्रम के साथ १५वीं शताब्दी के फ्रांस के संबंध के ऊपर बहुत ऐतिहासिक ज्ञान का संग्रह किया था। १५वीं शताब्दी का ठीक-ठीक चित्र इस पुस्तक में मिलता है।

(९) Les Dieux ont Soif (देव-गण प्यासे हैं), १९१२ ई०। यह भी बड़े महत्त्व का ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें फ्रांस की राज्य-क्रांति के समय का वर्णन है।

(१०) La Revolte de Anges (देव-दूतों का विद्रोह), १९१४ ई०। कुछ देव-दूत स्वर्गीय जीवन के बंधनों से भागकर पेरिस नगरी में उतरे हैं, इसलिये कि मनुष्य और स्त्री-समाज के आनंदों का भी अनुभव करें। यह भी व्यंग्यात्मक कथा है।

(११) Le Petit Pierre (बालक पायरी), १९१८ ई०।

(१२) La Vie en Fleun (जीवन की उमंग), १९२२ ई०।

उक्त दोनों पुस्तकें "मेरे मित्र की पुस्तक" के ढंग की हैं। इनमें अनातोले ने आत्मचरित का चित्रण किया है।

आत्मचित्रण

पहले पूर्ण रूप से इस बात का संकेत किया जा चुका है कि अनेक ग्रंथों में अनातोले ने अपने चरित्र का चित्रण किया है। वास्तव में अनातोले ने अपने चरित्र का पुनः-पुनः चित्रण किया है। उनका चरित्र सिल्वेस्त्रि बोनार्द, मुशर बर्जेरेत, जेरोमी कॉयनार्द के चरित्रों से अभिन्न है; और यदि हम उनके चरित्र का मनन करना चाहते हैं, तो हमें इन चरित्रों का मनन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उनके जीवन के कुछ अंशों की झलक हमें ऊपर दी हुई सूची की पहली, ग्यारहवीं और बारहवीं पुस्तकों में मिलेगी। इन पुस्तकों में उन्होंने आत्मचरित्र ही दिया है। यह केवल पाठक की अथवा समालोचक की

कल्पना न समझनी चाहिए। यह स्वयं अनातोले द्वारा स्वीकार की गई बात है। उन्होंने स्वीकार किया है कि इन पुस्तकों में उनके जीवन का ठीक-ठीक, सच्चा वर्णन है। कई चरित्रों के तो उन्होंने नाम भी यथावत् रहने दिए हैं।

रचना-शैली

फ़्रेंच-भाषा का गद्य बड़ा उत्कृष्ट माना जाता है। उक्त भाषा के गद्य के अनातोले माने हुए उस्ताद थे। आपकी रचना-शैली संसार के लिये आदर्श है।

आप अलंकृत शैली के कट्टर विरोधी थे। भाषा में आप सरलता के पक्षपाती थे। सरल शैली से आपका तात्पर्य यह था कि पाठक को शैली सरल जान पड़े, लेखक के लिये चाहे इस प्रकार की शैली में लिखना सरल न भी हो। वास्तव में सरल शैली में लिखना क्लिष्ट शैली अथवा अलंकृत शैली में लिखने से कहीं कठिन है। लेखक का एक प्रधान उद्देश अपनी भाषा को सरल बनाना होना चाहिए। भाषा का सबसे बड़ा अलंकार उसका प्रसाद-गुण है। अनातोले स्वयं इस विषय पर इस प्रकार लिखते हैं—

"सरल शैली श्वेत प्रकाश की तरह है। इसमें कई रंगों का सम्मिलन है, यद्यपि ऊपरी दृष्टि से ऐसा नहीं जान पड़ता। भाषा की सुंदर और स्पृहणीय सरलता केवल देखने से ऐसी जान पड़ती है। वास्तव में यह एक अच्छे विधान का और प्रत्येक शब्द की मितव्ययिता का परिणाम है।"

शब्दों का अपव्यय करना साहित्यिक का बड़ा भारी दुर्गुण है। आपकी रचना में प्रत्येक शब्द मतलब से ही रक्खे जाते हैं। कोई भी शब्द व्यर्थ नहीं रहता। फिर जिस अवसर पर जो शब्द चाहिए, ठीक वही शब्द यदि न व्यवहृत हो, तो अर्थ में भेद हो जाता है। आपका कहना है कि भाषा में पर्यायवाची शब्द होते ही नहीं। प्रत्येक अवसर के लिये केवल एक ही शब्द ऐसा होता है, जो व्यवहृत हो सकता है। पर्यायवाची शब्दों से सच्चा साहित्यिक काम नहीं चला सकता। वह ठीक वही शब्द खोजकर रखता है। ये सभी गुण अनातोले की शैली में विद्यमान हैं। यह बिलकुल सच है कि आपकी रचना के प्रत्येक अक्षर तुले हुए रहते थे। इसके अतिरिक्त आपकी शैली में ओज और प्रवाह भी असाधारण है। आपकी शैली पाठक को चाहे जितनी सरल जान पड़े, वह वास्तव में बड़े श्रम का फल है; और श्रम और सफलता का साथ है।

आपकी विद्वत्ता

आपका पांडित्य भी अगाढ़ था। आप कई शास्त्रों के ज्ञाता थे। इतिहास और पुरातत्त्व में आपकी विशेष गति थी। परंतु आप अपना पांडित्य मौक़े-बेमौक़े दिखाया नहीं करते थे। उनकी रचनाओं के विज्ञ पाठकों का स्वयं इसका पता चल जाता था। इतिहास और पुरातत्त्व की आधुनिक-से-आधुनिक खोजों के परिणामों का उन्होंने बड़ी सरलता के साथ अपने उपन्यासों और गल्पों में समावेश कर लिया है। ऐतिहासिक प्रमाद का एक भी उदाहरण उनकी रचनाओं में न मिलेगा। 'थायस' की कथा ईसाइयों की दूसरी शताब्दी की कथा है। उस शताब्दी के संबंध में हमें ऐतिहासिक ज्ञान बहुत कम प्राप्त है। 'थायस' की रचना के पूर्व उस शताब्दी के हाल का मनन करने के लिये आपने उस समय के संबंध के सभी लिखित तथा अलिखित ईसाई तथा ग़ैर-ईसाई साहित्य का अनुशीलन किया था। इसी प्रकार जोन आर्क का जीवन-चरित्र लिखने के पूर्व आपने पंद्रहवीं शताब्दी के इतिहास का तथा उस शताब्दी से संबंध रखनेवाली पुरातत्त्व की खोजों का खूब मनन कर लिया था। यही बात "देव-गण प्यासे हैं"-नामक ऐतिहासिक उपन्यास के संबंध में भी कही जा सकती है। फ़्रांस की राज्य-क्रांति के इतिहास का खूब मनन कर लेने के बाद आपने उक्त ग्रंथ लिखा है। परंतु, जैसा बताया है, पांडित्य-प्रदर्शन उनका ध्येय कदापि नहीं था, बल्कि इसके विपरीत वह अपने पांडित्य को छिपाए रखने का प्रयत्न करते थे।

कला-कौशल और चरित्र-चित्रण

आपकी कला का आदर्श बहुत ऊँचा था। आप सत्य के उपासक थे। परंतु सत्य से भी अधिक आप सौंदर्य के उपासक थे। वास्तव में आप सत्य और सौंदर्य को अभिन्न समझते थे। आपका अटल विश्वास था कि सत्य सौंदर्य के अंतर्गत है, और सौंदर्य को ग्रहण कर लेनेवाले का अधिकार सत्य पर अनायास ही हो जाता है। एक स्थान पर आप लिखते हैं "यदि मुझसे सत्य और सौंदर्य, इन दोनों में से एक वस्तु चुन लेने को कहा जाय, तो मुझे कुछ भी असमंजस न होगा। मैं सौंदर्य को ग्रहण करूँगा; क्योंकि मुझे विश्वास है, सौंदर्य के अंतर्गत एक ऐसा सत्य है, जो सत्य से भी अधिक ऊँचा और गहरा है।" सौंदर्य की ऐसी कठिन उपासना क्या असाधारण नहीं है?

आपकी कल्पना का क्षेत्र देश, काल, अवस्था तथा चरित्रों की दृष्टि से बहुत विस्तृत रहा है। और, यद्यपि आप अपने चरित्रों की कल्पना किसी देश, काल तथा अवस्था-विशेष में किया करते थे, तथापि आपको मानव हृदय का ऐसा घनिष्ठ परिचय था कि आपके चरित्र, देश, काल, अवस्था से अनियंत्रित और समस्त देश, काल तथा अवस्था के जन पड़ते थे। आपकी सफलता की यही बड़ी भारी कुंजी है।

साहित्य में सफलता प्राप्त करने के लिये सभी प्रकार के पक्षपात का परित्याग आवश्यक है; और जिस दर्जे तक आप पक्षपात का परित्याग कर चुके थे, वह आश्चर्य-जनक है। आपका चरित्र-चित्रण बड़ा यथार्थ और मार्मिक हुआ करता था। इसका कारण यह था कि आप जीवन से निजी परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे; और बिना निजी परिचय प्राप्त किए अपनी रचनाओं में चरित्रों का समावेश नहीं करते थे। आप एक स्थान पर लिखते हैं—"प्रति रविवार को मैं जनता के बीच जाता हूँ। गलियों की भीड़ में मिल जाता हूँ। गलियों में जानेवालों के सम्मुख, तथा मेलों में एकत्रित मनुष्यों, स्त्रियों और बच्चों के बीच में अपने को मग्न कर देता हूँ। मैले-कुचैले वस्त्र पहने हुए तथा गंदे शरीरवाले लोगों को छूता हूँ। उनके पसीने की, उनके बालों की, उनके श्वास की तीक्ष्ण दुर्गंध का अनुभव करता हूँ। और, जीवन के इस कूप में मैं अपने को मृत्यु से बहुत दूर समझने लगता हूँ।" इससे इसका पता चलता है कि अनातोले अपने चरित्रों के यथार्थ चित्रण में क्यों समर्थ होते और छोटे-से-छोटे चरित्र के विषय में कैसे हमारी सहानुभूति प्राप्त कर सकते थे। मानव-हृदय से आप खूब परिचित थे। आपकी कथा चाहे जिस देश-काल की हो, आपका चरित्र-चित्रण पूरा उतरता था; क्योंकि मानव-हृदय सदा से एक-सा रहा है।

दार्शनिकता

प्रत्येक लेखक मानव-जीवन को एक विशेष विचार-केंद्र से देखता है। यही, उसका विशेष विचार-केंद्र, उसकी फ़िलासफ़ी है, उसका दर्शन है। अनातोले की फ़िलासफ़ी क्या है? आपको लोग "हँसता हुआ दार्शनिक" कहते थे। वास्तव में आप संसार को एक विशेष कौतूहल की दृष्टि से देखते थे। आप संसार की त्रुटियों का दिग्दर्शन कराते थे; मानव-जीवन की बुराइयाँ दिखाते थे; परंतु आपका हृदय मलिनता से खाली रहता था। आप अविश्व सन्वादी थे। आपके अविश्वास वाद में भी एक हास्य की, व्यंग्य की, पुट है। आपको धर्म पर, अधर्म पर, नीति पर, राजनीति पर, क़ानून पर, किसी पर विश्वास नहीं था। सभी को आप संदेह की दृष्टि से देखते थे। और, खूबी यह है कि आपको अपने संदेह पर भी संदेह हुआ करता था। आप संसार की वास्तविकता को जानते थे, यहाँ के अच्छे-बुरे के मेल को समझते थे; और यह समझते हुए अपने को यथार्थ चित्रण-मात्र से संतुष्ट रखते थे—संसार को झूठे-मूठे कोरे उपदेश से अपना चेला बनाने की फ़िक्र में नहीं रहा करते थे। आप संसार में सत्य की आवश्यकता स्वीकार करते थे; परंतु माया की, भ्रम की आवश्यकता भी समझते थे। एक स्थान पर आप लिखते हैं—"मुझे सत्य से प्रेम है। मेरा विश्वास है कि मनुष्य को सत्य की आवश्यकता है। परंतु यह निश्चय है कि मनुष्य को माया की ओर भी अधिक आवश्यकता है। इसके द्वारा उसका उत्साह बढ़ता और उसे संतु[illegible] मिलती है। × × × मनुष्य को माया से पृथक् [illegible] लो, वह खेद और निराशा से मर जायगा।" आप [illegible] संसार के दुःख का भी स्वागत करते हैं। आप लिखते हैं: "यदि दुःख केवल इसी संसार में है, और इसी सं[illegible] के जीव दुःख-भोग करते हैं, तो यह संसार और [illegible] लोकों से बढ़कर है; क्योंकि बिना दुःख के जी[illegible] व्यर्थ है।"

कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसकी आप हँ[illegible] उड़ाने के लिये तैयार न हों। आप जीवन की, मृ[illegible] की, मनुष्य के गर्व की, धनवान्-सिंगार की, स्वर्ग और नर[illegible] की बराबर हँसी उड़ाने के लिये उद्यत रहते थे। आ[illegible] कपट-धर्मी बिलकुल नहीं थे। आपके सूक्ष्म विचारों क[illegible] आपके व्यंग्य को, आपकी तीक्ष्णता को—साधारण लेख[illegible] नहीं पा सकते। आपकी समालोचना भी बड़ी सूक्ष[illegible] हुआ करती थी। इसका उदाहरण देखना हो, तो आपक[illegible] La vie Litteraire (जीवन और साहित्य[illegible] पुस्तक देखनी चाहिए। आपकी अधिकांश समालोचना[illegible] खंडनात्मक हैं, मंडनात्मक कम। आप जीवन के संबंध क[illegible] कोई मंडनात्मक फ़िलासफ़ी नहीं पेश करते। कुछ लो[illegible] इसे आपकी त्रुटि कहते हैं। किंतु, आपके विचार में, यदि ऐसा आपने किया होता, तो वह आपकी धृष्टता होती।

भ्रमण

अनातोले ने भ्रमण भी खूब किया। अपने देश से तो अच्छी तरह परिचय प्राप्त कर ही लिया था, किंतु इटली और स्पेन से भी आप प्रायः उतने ही परिचित थे, जितने कि अपने देश से। आप कहते हैं—"नगर क्या हैं ? वास्तव में वे पुस्तकें—सुंदर चित्रों से अलंकृत पुस्तकें हैं, और उन चित्रों में हम अपने पूर्वजों की आकृतियों को पहचान सकते हैं।" इन देशों में तो आपने अपने आमोद के लिये भ्रमण किया था ; परंतु सन् १६०६ ई० में व्याख्यान देने के लिये आर्जेंटाइन-जैसे दूर देश की भी यात्रा की। अभाग्यवश आप अच्छे व्याख्याता नहीं थे, और आपने जो विषय चुना था, उसमें साधारण जनता को विशेष अनुराग नहीं था। इसके अतिरिक्त वहाँ के बड़े पादरी ने आपका विरोध किया। इसलिये आपको इन व्याख्यानों में यथेष्ट सफलता नहीं रही। इसके अनंतर ब्रेजिल में आपने व्याख्यान दिए। वहाँ भी कुछ ऐसी ही असफलता रही। दिसंबर, सन् १६१३ में आप इँगलिस्तान में भी गए। वहाँ आपका बहुत ही आदर हुआ। सभी वर्ग के लोगों ने सम्मिलित होकर आपका स्वागत करने में अपना मान समझा।

विगत युद्ध के समय

अनातोले एक प्रसिद्ध शांति-समर्थक रह चुके थे। परंतु जिस समय जर्मनी से युद्ध छिड़ा, और जर्मनी के बड़े बड़े विद्वानों ने युद्ध के पक्ष का समर्थन किया, तो आप जर्मनी के विद्वानों पर बड़े नाराज़ हुए, और एक प्रकार से उनके इस कार्य का प्रतिवाद करने के लिये आपने अपनी सरकार से अनुरोध किया कि आपको सेना में भरती कर लें। एक बार फिर आप अपनी बग़ल में बंदूक़ रखने के लिये उत्सुक हुए। उस समय आपकी अवस्था ७० वर्ष की थी। परंतु आपका जोश सराहने योग्य था। आपके प्रसिद्ध मित्र पॉल वुर्जे ने यह मत प्रकाशित किया कि साहित्यिक-गण अपने देश की सेवा अपने कार्यों में लगे रहकर अधिक कर सकते हैं। सरकार के उत्तर का भी यही तात्पर्य था।

विवाह

७६ वर्ष की अवस्था में, सन् १६२० के सितंबर-महीने में, आपने अपना विवाह श्रीमती एमा लप्रवाती-नामक एक बहुत ही नेक और कोमल प्रकृतिवाली रमणी से कर लिया। इस विवाह का उद्देश केवल मानसिक सहवास था। यह रमणी अंत तक अपने पति की सब प्रकार से सेवा-शुश्रूषा में लगी रही। क्या यह आपका पहला विवाह था ? नहीं, प्रौढ़ावस्था में, लगभग १८८२-८३ ई० में, आपने एक और विवाह किया था, जिसका हाल जान-बूझकर हमने ऊपर नहीं लिखा। यह विवाह कुछ समय तक बहुत सुखदायक रहा। इस विवाह से सुज़ानी नाम की एक कन्या भी हुई थी। परंतु अभाग्यवश यह विवाह स्थायी न रह सका। सुज़ानी के दो विवाह हुए थे। उसका दूसरा पति गत महायुद्ध में फ्रांस की ओर से लड़ते-लड़ते मारा गया। सुज़ानी भी इसके अनंतर भग्नहृदया होकर मर गई। परंतु वह एक बालक छोड़कर मरी थी—बालक का नाम था लूशियन शिचार्ट। अपने इस पौत्र को अनातोले ने ही पाला। यही उनकी वृद्धावस्था का सबसे बड़ा सुख था। इस बालक को आप इतना प्यार करते थे कि कभी आपने उसकी किसी इच्छा को विफल नहीं किया। बालक, अनातोले और उनकी स्त्री, दोनों का बड़ा प्रेम-पात्र था। अनातोले फ्रांस के इस दूसरे विवाह के संबंध में कुछ टीका-टिप्पणियाँ हुई थीं। यह ख़याल करना कि अनातोले ने बिना खूब सोचे-विचारे ऐसा किया, व्यर्थ है। क्या यह संभव नहीं कि उन्होंने अपना यह विवाह अपने प्यारे पौत्र के हित को ध्यान में रखकर किया हो ?

नोबल-पुरस्कार

सन् १६२१ में आपको जगत्प्रसिद्ध नोबेल-पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। यह आपकी प्रचुर साहित्य-सेवा के उपलक्ष में था। इसमें संदेह नहीं कि आप इस सम्मान के लिये सर्वथा उपयुक्त थे। संसार ने इसके पूर्व ही आपको यथेष्ट सम्मान दे रक्खा था। आश्चर्य तो यह है कि यह पुरस्कार इसके बहुत पूर्व ही आपको क्यों नहीं मिला ! अस्तु। इसने आपके गौरव का और भी प्रचार कर दिया। आप पुरस्कार ग्रहण करने के लिये स्टाकहॉम गए थे। स्वीडन से परिचय प्राप्त किया। आप लिखते हैं—"स्वीडन बड़ा सुंदर देश है। और किसी नगर के देखने से मुझे इतनी प्रसन्नता नहीं हुई, जितनी स्टाकहॉम से।"

लौटते समय आप जर्मनी में भी गए। वहाँ बर्लिन में भेंट करने के लिये आपके पास प्रसिद्ध ज्योतिषी इंस्टन आए थे।

सन् १६२२ में एक घटना हुई, जिसने साहित्य-संसार को चकित कर दिया। रोम में आपकी पुस्तकें "इंडेक्स"

में दर्ज कर दी गई। आपके संपूर्ण ग्रंथ वर्जित हो गए। यही "इंडेक्स" में दर्ज करने का तात्पर्य है। यह हम कह चुके हैं कि आप धर्म के ऊपरी आडंबरों का खूब उपहास करते रहे हैं। इसी कारण आपको पादरी लोगों के अनेक प्रतिरोध सहन करने पड़े। यह उसका अंतिम और सबसे अधिक कौतूहल जनक उदाहरण था। एक ओर नोबेल पुरस्कार की प्राप्ति, और दूसरी ओर 'इंडेक्स' में आपकी संपूर्ण ग्रंथावली का दर्ज किया जाना! क्या इससे आपका मान कम हो गया? नहीं, यह तो अनातोले का एक प्रकार से और भी विज्ञापन हो गया।

मृत्यु

यह कह चुके हैं कि आपके जीवन का कार्य एक प्रकार से समाप्त हो चुका था। आपकी अवस्था ८० वर्ष की हो गई थी। कुछ समय से आपके स्वास्थ्य के विषय में आशंका हो रही थी। आपकी मृत्यु का समय आ पहुँचा था। १२ अॉक्टोबर को, आधी रात के समय, आपने शरीर-त्याग किया। इसके पूर्व २४ घंटे तक आप बेहोश रहे थे। बेहोशी की अवस्था में आपके मन में अपनी माता की स्मृति जाग्रत् थी। बीच-बीच में माता का नाम लेकर कह उठते थे—"मैं मर रहा हूँ"। रात्रि के ११ बजे के बाद आप होश में आ गए थे। आपने अपनी स्त्री से स्पष्ट शब्दों में कुछ बातें कीं; शैंपेन मिला हुआ थोड़ा-सा जल पिया; और डॉक्टरों से यह कहकर कि "अच्छा, अब मौत आ ही गई," आप मृत्यु की गहरी नींद में सो गए। आपकी मृत्यु अत्यंत शांति के साथ हुई।

आपकी कुछ जीवनियाँ

आपके संबंध में अनेकों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। उनमें से कुछ बहुत बड़े साहित्यिकों ने लिखी हैं। कुछ विशेष प्रसिद्ध पुस्तकों का उल्लेख आगे किया जाता है। मॉरिस बैरीज़ ने १८८९ में एक पुस्तक आप पर लिखी थी। जुलेह लिमैत्रे ने १८८६ में आपका हाल अपनी पुस्तक Les Contemporains में लिखा था। ब्रांडिज़ ने १९०८ में एक जीवनी लिखी। आपके अंतिम दिनों का हाल पॉल गेल की लिखी हुई पुस्तक में बहुत ठीक मिलता है। अँगरेज़ी में आपकी सबसे मान्य जीवनी सन् १९२४ ही में लिखी गई है। इसके लेखक हैं जेम्स लिविसमे। यह जॉन लेन-नामक प्रसिद्ध प्रकाशक ने प्रकाशित की है। अनातोले के संपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद भी अँगरेज़ी में हो चुके हैं, और उक्त प्रकाशक ने ३१ जिल्दों में प्रकाशित किए हैं। इनके अनुवादों के संपादन का आरंभ स्वर्गीय फ़ेडरिक चैपमन ने किया था, और पूर्ण इन्हीं महाशय जेम्स लिविसमे ने किया। यही अनुवाद सबसे मान्य है।

उपसंहार

अनातोले फ्रांस की आत्मा को शांति प्राप्त हो! अनातोले की रचनाओं के महत्त्व से संसार अधिकाधिक परिचित हो रहा है। क्या यह आशा करना व्यर्थ है कि हिंदी-साहित्य-सेवी उनकी रचनाओं से स्वयं लाभ उठावेंगे, और उनके अनुवाद करके अपने साहित्य को पुष्ट करते हुए उसका गौरव भी बढ़ावेंगे।

रामचंद्र टंडन

गुरुजन-वंदना

दर धरहु जुगल पद-जलजात;
अखिल ब्रह्मानंद-रसनिधि-बीचि बीच लसात।
बहत त्रिगुण सुगंध वह सुभ लहरि सरस सुहात;
भव तरन के करन कारन पोत-जुग दरसात।
परमहंस सरस्वती श्रीस्वामि आनँद-कंद;
योगिराज प्रसिद्ध सिद्ध अकाम पूर्णानंद।
अति मनोहर कांति-कांत प्रशांत तेज:पुंज;
किधौं बपु धरि अवतर्‌यो भुवि दहन कलि-मल-कुंज।
हरि-हरात्मक परम ईश्वर सकल-कला समेत;
लखहु प्रकट्यो आप कलि में धर्म-थापन हेत।
नित रमा-कर-कंज-सेवित अमल कल पद-कंज;
भूरि भागि सुभक्त परसैं सकल कलुष-प्रभंज।
भव-भँवर से छूटि लूटैं भक्ति-भँवर अथाह;
अमिय-प्रेम सुमधु-मधुर-मकरंद नित अवगाह।
पूज्य स्वामि नृसिंह ललित कल्प-पादप एह;
सकल मन वांछित-फलद सुभ सेव्य सहित सनेह।
कबहुँ बालमुकुंद-बाल-स्वरूप सुछबि अमंद;
लखि नयन, मन सुतन जन निज सुफल करत अनंद।
कबहुँ शशिधर-मुकुट बाघंबर दिगंबर-रूप;
निरखि लहहिं सुचारु फल नहिं परहिं नर भव-कूप।
जे सुनहिं, गावहिं मुदित मन ह्वै प्रेम-पुलकित-गात;
विपुल धन, जन, सौख्य, संतति आदि सुख तिन हाथ।

स्व० गोविंदनारायण मिश्र

अप टु-डेट पुरोहित

[चित्रकार—श्रीमोहनलाल महत्तो]

ग्रेजुएट पुरोहितजी यजमान का कर्म कराने बैठे हैं। टाई, कोट, पैंट की बहार और ग़ज़ब ढा रही है। पैर को पूजा करवाने के लिये दाहने पाँव से मोज़ा और जूता उतार दिया है। यजमान के हाथ में अक्षत-पुष्प लेने पर आप संकल्प बोल रहे हैं—"ॐ अद्य हरि हरि ब्रह्मणए डेटेड दि टेंथ डे ऑफ़ नवंबर......।"

उदयपुर

"Most beautiful among the beauties, the grandest even amid all the grandeur of Rajputana, Udaipur, as I have seen it to-day and as we see it to-night, will leave an impression on our minds which nothing can efface. *With its snowwhite palaces and pavilions*, with its flower gardens and shady groves, with its wooded islands and its exquisite lakes, it seems to the visitor a fitting framework for a dynasty of immemorial age, for incidents of romance and daring, *and for a chief who is* himself an embodiment of the pride, the dignity and the patriotism of his race." *

(*Lord Curzon.*)

राजपूत जाति में बड़े-बड़े वीर पुरुष हो गए हैं, और राजपूताने के सब देशी राज्यों में अत्यंत प्राचीन काल से आज तक मेवाड़† का स्थान प्रतिष्ठा में सर्वप्रगण्य है। इसी मेवाड़-भूमि में यवनों के साथ दीर्घ काल तक कई घोर युद्ध हुए। यह वही वीर-प्रसविनी भूमि है, जिसने प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप जैसे भारत के उज्ज्वल रत्न को उत्पन्न किया था। यहाँ के राजपूतों ने अपनी स्वतंत्रता और धर्म की रक्षा के लिये कई युद्ध किए; क्योंकि इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यहाँ के राजाओं में, विपुल ऐश्वर्य के स्वामी होते हुए भी, सदा यही दृढ़ भावना रही कि 'देश-बलि के सामने है तुच्छ सारी संपदा'। इसीलिये मेवाड़ में कई स्थल ऐसे हैं, जहाँ असंख्य क्षत्रिय-वीर देश तथा कुल मान की रक्षा के लिये बलिदान की वेदी पर चढ़कर वीरोचित गति को प्राप्त हुए हैं। उन स्थानों की धूल भी प्रत्येक हिंदू के लिये, जिसमें देशाभिमान की कुछ भी मात्रा हो, तीर्थ-रेणु के तुल्य पवित्र है। मेवाड़ में भ्रमण कर ऐसे युद्ध-क्षेत्रों तथा अन्य प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों के, जिनका वर्णन कई इतिहास संबंधी ग्रंथों में पढ़ा था, अवलोकन करने की इच्छा चिरकाल से लग रही थी। इस वर्ष, कॉलेज में ग्रीष्म-ऋतु की छुट्टियाँ होने के कारण, मेवाड़-भूमि में यात्रा करने का दृढ़ निश्चय कर वैशाख के कृष्ण-पक्ष में प्रस्थान किया। दूसरी बात यह है कि मेरे पिताजी, पंडित गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा, का ऐतिहासिक प्राचीन वस्तुओं की खोज के लिये दौरा भी इसी राज्य में था। सो मैं भी उनके साथ हो लिया, जिससे मुझे सोने में सुगंध लाभ प्राप्त हुआ। पहले पहल मेवाड़ की प्रसिद्ध राजधानी उदयपुर जाने का निश्चय किया, जहाँ का कुछ वर्णन प्रेमी पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता हूँ।

राजपूताना-मालवा-रेल्वे का चित्तौड़गढ़ जंक्शन है, जहाँ से राजपूताने के ही नहीं, वरन् समग्र भारत के पवित्र तीर्थ चित्तौड़ के क़िले पर जाने का मार्ग है। इस जंक्शन से एक लाइन उदयपुर जाती है, जिसको वर्तमान महाराणा साहब ने ईसवी सन् १८९५ में बनवाया था, और जो 'उदयपुर-चित्तौड़गढ़-रेल्वे' के नाम से प्रसिद्ध है। यह लाइन उपजाऊ समतल प्रदेश में होकर निकली है, और लंबाई में ६९ मील है। चित्तौड़गढ़ से रवाना होने पर सजल समान भूमि आती है, और रेल के दोनों तरफ़ पलाश के वन-के-वन देख पड़ते हैं। साढ़े चार घंटे तक पश्चिम में यात्रा करने पर गाड़ी उदयपुर-स्टेशन पहुँचती है। इस लाइन के निकलने से मेवाड़ की प्राचीन तथा आधुनिक राजधानियाँ जुड़ गईं। उदयपुर-स्टेशन के पहले देवारी-नामक पहाड़ी पर उसी नाम का एक फ़्लैग का स्टेशन बना हुआ है। यहाँ ट्रेन एक बड़े दरवाज़े से होकर निकलती है, जिसके

* उदयपुर-नगर रमणीय स्थानों में सबसे अधिक मनोहर है, और भारत में राजस्थान का मुकुटमणि। आज इसको जिस प्रकार हमने देखा है, और जैसा इसे अभी रात्रि में देख रहे हैं, उसकी हमारे हृदय में एक चिरस्थायिनी स्मृति रह जायगी, जो किसी प्रकार न मिट सकेगी। बर्फ़-जैसे श्वेत महल और मंडप, कुसुमोद्यान, छायादार वृक्ष-कुंज, वृक्षों से हरे-भरे द्वीप तथा अति मनोहर सरोवरों के कारण यह नगर दर्शक को एक अत्यंत प्राचीन राजवंश के लिये, अद्भुत एवं वीरोचित घटनाओं के लिये, तथा वर्तमान महाराणा के लिये—जो कुलाभिमान एवं क्षत्रियोचित गर्व के मूर्तिमान् नरेश हैं—योग्य स्थान प्रतीत होता है।

(लॉर्ड कर्ज़न)

† उदयपुर-राज्य का लोकप्रसिद्ध नाम 'मेवाड़' है, जैसे कि जोधपुर-राज्य का नाम 'मारवाड़'।

लोहे के बड़े-बड़े किंवाड़ इधर-उधर की दीवारों में हैं। रेलवे-लाइन निकलते समय ही पुराने गढ़ का कोट तोड़कर यह दरवाज़ा भी बनाया गया है, जिसका शायद यह कारण हो कि ख़तरे के समय यह सुदृढ़ द्वार बंद कर दिया जाय, और ट्रेनें न निकल सकें। उदयपुर-नगर के आसपास चारों ओर पहाड़ हैं। पूर्व से आनेवाले शत्रु के लिये देवारी होकर ही एक-मात्र मार्ग है, इसलिये प्राचीन काल का गढ़ भी इस स्टेशन के निकट ही बना हुआ देख पड़ता है। यहाँ से पर्वत में एक सुरंग खोदी गई है। इस सुरंग से निकलने पर तीन मील के हलके उतार के बाद ट्रेन उदयपुर-स्टेशन पहुँचती है। यहाँ से नगर ढाई मील के अंतर पर है। स्टेशन पर बहुत-से ताँगे तैयार रहते हैं, जो ५-६ आने व्यय करने पर थोड़ी-सी देर में नगर तक पहुँचा देते हैं।

स्टेशन से शहर को जाने की दो सड़कें हैं। एक हाथीपोल दरवाज़े और दूसरी सूरजपोल दरवाज़े को जाती है। हाथीपोल के बाहर एक जैन-धर्मशाला बनी हुई है, जिसमें ठहरने से यात्रियों को अच्छा आराम मिलता है। इस धर्मशाला में जैनी तथा जैनेतर लोग, सभी ठहर सकते हैं, जाति तथा धर्म-विषयक कोई विशेष प्रतिबंध नहीं है। सूरजपोल के बाहर ही प्रयागदासजी के अस्थलवाले महंतजी की बनाई हुई पक्की, दुमंज़िली धर्मशाला है। उसमें भी यात्रियों के ठहरने आदि का सब तरह से सुबीता है। इनके सिवा शहर में बाग़ के पास तथा सूरजपोल के बाहर सरकारी सराय यात्रियों के ठहरने के लिये बनी हुई है।

नगर-निर्माण के कारण

यहाँ पर यह लिख देना आवश्यक है कि उदयपुर बसने के पूर्व मेवाड़ के राजों की राजधानी चित्तौड़ थी। चित्तौड़-गढ़ में कई बार बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हुईं, असंख्य क्षत्रियों का रक्तपात हुआ, दो बार जौहर भी हुए, जिनमें सहस्रों राजपूत-रमणियों ने सतीत्व-रक्षा के लिये जीते ही अग्नि-प्रवेश किया। इन कई घटनाओं से चित्तौड़ इतिहास में एक सुप्रसिद्ध स्थल है, और कालांतर में इसकी बहुत प्रसिद्धि हुई। परंतु वास्तव में देखा जाय, तो युद्ध के लिये कुंभलगढ़, रणथंभोर आदि दुर्गों के-जैसा उपयुक्त स्थान यह नहीं है। यह गढ़ सुदृढ़ तो इतना है कि रक्षकों के भीतर रहते कोई शत्रु किसी प्रकार इसमें प्रवेश नहीं कर सकता; परंतु यह एक तीन मील लंबी पहाड़ी पर बना हुआ है, जो अन्य पर्वत-श्रेणियों से पृथक् एक मैदान में स्थित है, और मैदान में होने के कारण इस पहाड़ी का घेरा बड़ी सुगमता से डाला जा सकता है, तथा घेरा डालनेवाली शत्रु-सेना क़िले में अवस्थित सैन्य तक रसद का पहुँचना शीघ्र ही रोक सकती है। इस दुर्ग का जब-जब घेरा डाला गया, तभी गढ़ में भोजन-सामग्री विद्यमान रहने तक यह रक्षकों के अधीन रहा, और जब भोजन की सामग्री शेष न रही, तब रक्षक क्षत्रियों को विवश होकर दुर्ग-द्वार खोल-कर शत्रु-सेना से युद्ध करने के लिये बाहर आना पड़ा। और, राजपूतों के अदम्य उत्साह तथा बड़ी वीरता से लड़ने पर भी शत्रुओं की संख्या अत्यधिक होने के कारण अंत में सब रक्षकों के वीरोचित गति प्राप्त करने पर दुर्ग शत्रुओं के अधिकार में हो गया। हिंदूपति महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र विक्रमादित्य (वि० सं० १५८८-१५९२) के समय में भी गुजरात के सुल्तान—बहादुरशाह—ने घेरा डालकर इस इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग को उसी प्रकार अधीन किया, जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है। विक्रमादित्य के बाद जब उनके कनिष्ठ भ्राता उदयसिंह (१५९४-१६२८) गद्दी पर बैठे, तब उन्होंने इस दुर्ग की कमज़ोरी को भली भाँति समझ लिया, और पर्वतों के बीच किसी सुरक्षित स्थान में अपनी नवीन राजधानी स्थापित करने की इच्छा की।

इस नगर के बसाए जाने का एक और भी कारण है। जिस समय हुमायूँ बादशाह शेरशाह सूर से युद्धों में परास्त होकर, और राज्य छूट जाने पर आपत्ति-काल में अपने भाइयों में से किसी की भी सहायता न मिलने पर, अंत में पारस के शाह की शरण में गया, तब वहाँ उसको शाह से सहायता प्राप्त करने के लिये शिया-धर्म भी स्वीकार करना पड़ा। एक दिन वहाँ के शाह तहमास्प ने हुमायूँ से पूछा—"कभी तुमने भारतवर्ष के हिंदू राजों से भी संबंध जोड़कर उनको अपना सहायक बनाया है, या भाइयों पर ही विश्वास कर इतने दिनों राज्य करते रहे?" हुमायूँ ने उत्तर में यही कहा कि इतने दिन भाइयों के ही भरोसे राज्य किया है। फिर शाह ने उसे समझाया, और कहा—"यदि हिंदू राजों को अपने अधीन कर उनसे संबंध जोड़ लेते, तो वे तुम्हें अवश्य सहायता देते, और तुम्हारी ऐसी दीन दशा कभी न हुई होती।" हुमायूँ यह नीति

अच्छी तरह समझ गया, और जब पारस से सहायता प्राप्त कर भारत की तरफ़ लौटा, तब उसकी यही इच्छा रही कि इस बार भारत में अपना राज्य फिर जमने पर हिंदू राजों से अवश्य संबंध स्थापित कर उनको अपना मित्र बना लूँगा, ताकि वे सदा सहायक बने रहें, और साथ-ही-साथ अपने पुनः स्थापित राज्य की नींव भी सुदृढ़ हो जाय। हुमायूँ ने जब पंजाब का कुछ भाग जीत लिया, तब उक्त विचारानुसार अपने कार्य-क्रम का आरंभ करना चाहा; परंतु दुर्दैव से कुछ ही महीनों बाद उसका शरीरांत हो गया।

हुमायूँ के बाद जब उसका पुत्र अकबर सिंहासनारूढ़ हुआ, तब वह अपने पिता को शाह तहमास्प की दी हुई पूर्वोक्त सलाह से पूर्ण परिचित था। अकबर ने इस बात को बहुत अच्छी तरह समझ लिया था कि भारत में एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित करने के लिये प्रजाओं की अपने प्रति प्रदर्शित प्रीति को उत्तरोत्तर बढ़ाना, हिंदू राजों को अपने अधीन करना, और उनसे संबंध जोड़कर उनको अपना सहायक बनाना नितांत आवश्यक है। इसी विचार को सुदृढ़ कर उसने वि० सं० १६१९ में आँबेर के राजा भारमल को अपनी अधीनता स्वीकार कराकर उसकी पुत्री से विवाह कर लिया, और इन हिंदू संबंधियों को राज्य के उच्च पद प्रदान किए। परंतु इतने पर भी बादशाह की इच्छा पूरी न हुई। बादशाह अकबर जानता था कि इन सब राजपूत राजों का नेता मेवाड़ का महाराणा है। इसलिये जब तक उसको अपने अधीन न किया जाय, तब तक अपना मनोरथ सफल न होगा। मेवाड़ के राजपूत भी इस नीति के रहस्य को खूब समझते थे। अकबर के राज्य को बढ़ता हुआ देखकर महाराणा उदयसिंह ने जान लिया था कि बादशाह की चित्तौड़ पर चढ़ाई कभी-न-कभी अवश्य होगी। इसलिये उन्होंने पर्वत-श्रेणियों से घिरे हुए किसी सुरक्षित स्थान में अपनी नई राजधानी स्थापित करने का विचार किया। जहाँ आजकल उदयपुर-नगर बसा है, वहाँ उन्होंने एक विस्तीर्ण सरोवर पाकर, और चारों ओर पर्वतमालाओं का घेरा देखकर, जल के हर तरह के सुबीते का विचार कर, और यह सोचकर कि जलाशय के पूर्वी तट पर एक लंबी पहाड़ी आ जाने के कारण इस पर यदि नगर बसा दिया जाय, और सबसे ऊँचे स्थान पर राजमहल बन जायँ, तो नगर की अपूर्व शोभा होगी, इसी स्थान को अपनी राजधानी बसाने के लिये सर्वथा उपयुक्त समझा, और विक्रम-संवत् १६१६ में उदयपुर-नगर की नींव डाली। फिर दिन-दिन इसकी उन्नति होती रही।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, वह इस इतिहास-प्रसिद्ध नगर के बसने का पूर्वेतिहास है।

नगर की रचना

यह नगर उत्तर-दक्षिण-स्थित एक पहाड़ी के दोनों पार्श्व पर बसा हुआ है, जिसके पश्चिम में पीछोला-नामक विशाल सरोवर है, और पूर्व तथा उत्तर में समान भूमि आ गई है, जिधर नगर बढ़ता जाता है। शहर पुराने ढंग का बना हुआ है। इसके तीन तरफ़ पक्की शहरपनाह है, जिसमें स्थान-स्थान पर गोल बुर्ज़ें बनी हुई हैं, और एक तरफ़ तालाब आ गया है। शहरपनाह में, जिसको यहाँ शहरकोट कहते हैं, सर्वत्र कँगूरे बने हैं, जिनमें गोली तथा तीर चलाने के छिद्र रक्खे गए हैं। इस शहरपनाह की नींव महाराणा अमरसिंह प्रथम (वि० सं० १६५३-१६७६) ने डाली थी। परंतु उस समय कार्य अपूर्ण रहा। फिर महाराणा अमरसिंह द्वितीय (वि० सं० १७५५-१७६७) ने इसका काम जारी किया, और उनके पुत्र महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय (१७६७-१७९०) ने विक्रम-संवत् १७९० में इसे समाप्त किया। नगर के उत्तर तथा पूर्व में, जहाँ पर यह शहरपनाह पर्वतमाला से दूर है, एक चौड़ी खाई, कोट के पास-पास, कई मील तक, खोदी हुई है, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर सरोवर से जल भरा जा सकता है। इस नगर में महलों से रेज़िडेंसी जानेवाली सड़क के सिवा बहुधा सभी रास्ते कम चौड़े हैं।

नगर के निम्नलिखित प्रवेश-द्वार हैं—

१. पूर्व में सूरजपोल और उदयपोल।

२. ईशान-कोण में दिल्ली-दरवाज़ा।

३. उत्तर में हाथीपोल।

४. पश्चिम में चाँदपोल।

५. दक्षिण में किशनपोल।

यहाँ पर शहर के दरवाज़ों को 'पोल' कहते हैं, जो संस्कृत के 'प्रतोली' शब्द का अपभ्रंश है। ये सब दरवाज़े बहुत विशाल, ऊँचे और बड़े मज़बूत बने हुए हैं। इन दरवाज़ों तथा नगरकोट को देखने से यह ज्ञात होता है

कि प्राचीन काल में हमारे यहाँ नगर-रक्षा के लिये क्या-क्या प्रबंध किए जाते थे।

सूरजपोल के बाहर की तरफ़ कर्नल सर वायली की, जो किसी समय उदयपुर के रेज़िडेंट तथा राजपूताने के एजेंट गवर्नर-जनरल रह चुके थे, स्मृति में बनी हुई एक सुंदर छत्री है, जिसके साथ जानवरों के जल पीने का एक बड़ा पक्का स्थान बना हुआ है, और इसी के साथ मनुष्यों के लिये नल द्वारा जल का प्रबंध किया गया है।

उदयपोल का प्राचीन नाम कमलियापोल था, और मरहठों की चढ़ाई के समय से यह द्वार बंद था। परंतु महाराणा सज्जनसिंहजी (वि० सं० १६३०-१६४१) के कुँअर होने की खुशी में खोल दिया गया, और इसका नाम उदयपोल रक्खा गया। इस दरवाज़े के सामने कृष्णगढ़ नाम का मुरहला (गढ़ी) था, जिसकी पुरानी इमारत खँडहर हो जाने पर वहीं वर्तमान महाराणा साहब ने क़ैदियों के लिये एक नया जेलख़ाना बनवाया है। इस जेलख़ाने के दक्षिण में, कुछ दूर पर, आजकल सेना के लिये बारकें बनी हुई हैं।

दिल्ली-दरवाज़े के बाहर एक बड़ा दुमंज़िला होटल, छोटी-सी पहाड़ी पर, बना हुआ है, जो अँगरेज़-यात्रियों के लिये बड़े सुबीते का है। परंतु धर्मनिष्ठ हिंदुओं के लिये तो सरकारी सराय अथवा धर्मशालाएँ ही अच्छे विश्रामालय हैं। पास ही एक दूसरी पहाड़ी पर डाक तथा तारघर का एक सुंदर भवन बना हुआ है।

हाथीपोल के बाहर एक प्राचीन गढ़ी बनी हुई है, जो 'शमशेरगढ़' या 'मुरहला' कहलाती है, जहाँ थोड़ी अवधि की सज़ा पाए हुए क़ैदी रक्खे जाते हैं। यहाँ से पाव मील की दूरी पर रेज़िडेंसी का भवन बना हुआ है। इस दरवाज़े से अनुमानतः २०० गज़ के अंतर पर एक बड़ा लंबा-चौड़ा मैदान है, जो चोगान कहलाता है। इसके दो पार्श्वों पर दो दरीख़ाने बने हुए हैं। यहाँ नवरात्र के दिनों में बड़ा उत्सव रहता है। यहाँ पर भैंसों का बलिदान, पहलवानों की कुश्तियाँ, हाथियों की लड़ाई तथा लोमड़ी, जरख, भालू आदि अन्य वन्य पशुओं के पीछे शिकारी कुत्ते छोड़े जाते हैं, जिसके देखने को लोगों की बड़ी भीड़ रहा करती है।

नगर के पश्चिमी भाग में, तालाब के मध्य में, ब्रह्मपुरी-नामक एक विशाल द्वीप है, जिस पर शहर से जाने के लिये पश्चिम के प्रवेश-द्वार चाँदपोल से एक पुल बना हुआ है। यह पुल मध्य भाग में से ऊँचा है, ताकि इसके नीचे होकर किश्तियाँ, नावें आदि सुगमता से निकल जायँ। पुल पर से दक्षिण की तरफ़ सरोवर का दृश्य बड़ा ही रमणीय प्रतीत होता है। निर्मल जल के दोनों किनारों पर घाटों की पंक्तियाँ, झरोखेंवाली हवेलियाँ, तथा सघन वृक्षों की कुंजवाले मंदिर बने हुए हैं, जिनसे नगर की शोभा बहुत बढ़ गई है। चाँदपोल का पुल पारकर थोड़ी दूर जाने पर उत्तर की तरफ़ अंबापोल आता है, जहाँ से अंबा माता के मंदिर को एक दूसरे पुल पर होकर मार्ग गया है। चाँदपोल के पुल से सीधे चले जाने पर ब्रह्मपोल-दरवाज़े पहुँचा जाता है।

नगर के दक्षिण में किशनपोल है, जहाँ से शहरपनाह माँछले मगरे पर होकर पश्चिम की ओर पीछोला तालाब के किनारे तक पहुँच गई है। यहाँ पर जलबुर्ज़ की खिड़की बनी हुई है। इस दरवाज़े के बाहर लगभग डेढ़ मील पर गोवर्द्धनविलास-नामक प्राचीन राजमहल है, जहाँ महाराणा साहब की गउएँ रहा करती हैं। यह महल महाराणा स्वरूपसिंह (वि० सं० १८६६-१६१८) ने बनवाया था। इसके समीप ही एक छोटा-सा जलाशय तथा बाग़ है।

नगर के भीतर के दर्शनीय स्थान

नगर में प्रवेश करने के लिये सबसे अच्छा मार्ग हाथीपोल-दरवाज़े होकर है। इसमें प्रवेश करते ही मुख्य बाज़ार मिलता है। बाज़ार में जाते ही यात्री का ध्यान आकर्षित करनेवाली प्रथम वस्तु बाएँ हाथ की ओर बना हुआ लैंड्सडाउन हॉस्पिटल है, जिसको वर्तमान महाराणा साहब ने भारत के वायसराय लॉर्ड लैंड्स डाउन के उदयपुर आने की स्मृति में बनवाया था। अस्पताल का भवन सुंदर बना हुआ है, और इसमें स्वच्छता का अच्छा प्रबंध है। मार्ग में दोनों तरफ़ बड़ी-बड़ी दूकानें हैं; परंतु उनमें से अधिकांश आजकल के बाह्याडंबर से रहित हैं। आगे बढ़ने पर घंटाघर मिलता है, जो १०० फ़ीट से भी नीचा है। इसमें उदयपुर का समय रहता है। घंटाघर और हाथीपोल के बीच के भाग का नाम मोतीचोहट्टा है। यहाँ से एक सड़क पूर्व ओर सूरजपोल को भी गई है। आगे बढ़ने पर हलकी चढ़ाई शुरू होती है, जिसमें थोड़ी दूर चलने पर जगदीश का चौक मिल जाता है। यहाँ से एक मार्ग राजमहलों को, दूसरा पश्चिम में

चाँदपोल तथा गनगार घाट को, और तीसरा दक्षिण में सज्जननिवास बाग़ को जाता है।

इसी चौक के पश्चिम किनारे पर जगदीश अथवा जगन्नाथरायजी का विशाल और सुंदर शिखरबंद मंदिर एक ऊँचे स्थान पर बना हुआ है। सड़क से मंदिर-द्वार तक पहुँचने के लिये बहुत-सी सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। द्वार के बाहरी भाग में, सीढ़ियों के दोनों तरफ़ एक-एक, पत्थर के दो हाथी बने हुए हैं। द्वार में प्रवेश करते ही कुछ भाग औरंगज़ेब की चढ़ाई के समय मुसलमानों ने तोड़ डाला था, जो नया बनाया गया है। इसके सिवा खंडित हाथियों की पंक्ति में नए हाथी भी यथस्थान लगा दिए गए हैं। महाराणा जगतसिंह प्रथम (१६८४-१७०६) ने लाखों रुपयों के व्यय से इस देवालय का निर्माण कराकर विक्रम-संवत् १७०६ द्वितीय वैशाख सुदी १५ को इसकी प्रतिष्ठा की थी। जगदीश के मंदिर के पीछे ही 'महाराणा-हाई स्कूल' का भवन है।
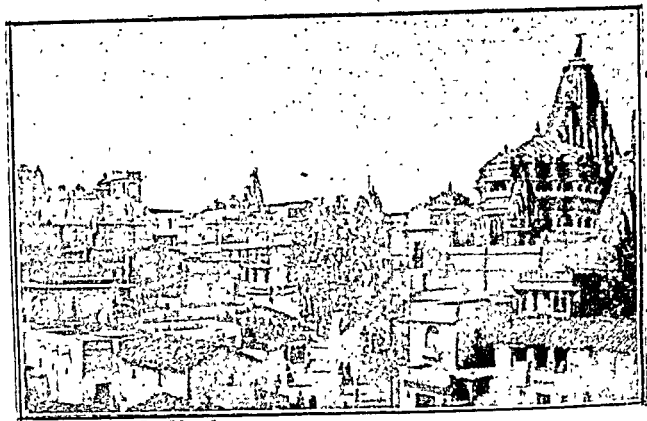
श्रीजगदीशजी का मंदिर और उसके आसपास का नगर का भाग

एक ऊँची छत्री में पीतल की बनी हुई विष्णुवाहन गरुड़ की विशाल मूर्ति दिखाई देती है। यह मंदिर पंचायतन है, अर्थात् मध्य में विष्णु का मुख्य मंदिर, और चारों कोण पर चार छोटे-छोटे मंदिर बने हुए हैं। इनमें ईशान-कोण में शिवजी का, अग्नि-कोण में गणपति का, नैर्ऋत्य में सूर्य का तथा वायव्य-कोण में देवी का मंदिर है। मध्य का मुख्य मंदिर पूर्वाभिमुख है, और उसका शिखर भी बहुत ही ऊँचा है। इस मंदिर के बाहर की तरफ़ चारों ओर बड़ा सुंदर खुदाई का काम बना हुआ है, जिसमें गज-थर, अश्वथर तथा संसार-थर भी प्रदर्शित किए गए हैं। गज-थर के कई हाथी और बाहरी द्वार के पास का

जगदीश-मंदिर से दक्षिण ओर आगे बढ़ने पर राज-महलों के उत्तरी द्वार पर, जिसको 'बड़ी पोल' कहते हैं, पहुँचते हैं। इसके भीतर दोनों तरफ़ महाराणा अमरसिंह के बनवाए हुए दो दालान हैं, जिनके दोनों किनारों पर वर्तमान महाराणा साहब की बनवाई हुई घड़ियाल तथा नक़ारख़ाने की मीनारनुमा छत्रियाँ हैं। बड़ी पोल से थोड़ी दूर चलने पर त्रिपोलियाँ-नामक तीन दरवाज़े मिलते हैं, जिनको महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय (१७६७-१७९०) ने बनवाया था। त्रिपोलियाँ और बड़ी पोल के बीचवाले चौक में पूर्व की ओर आठ तोरणों को एक शृंखला है। ये तोरण भिन्न-भिन्न महाराणाओं के किए
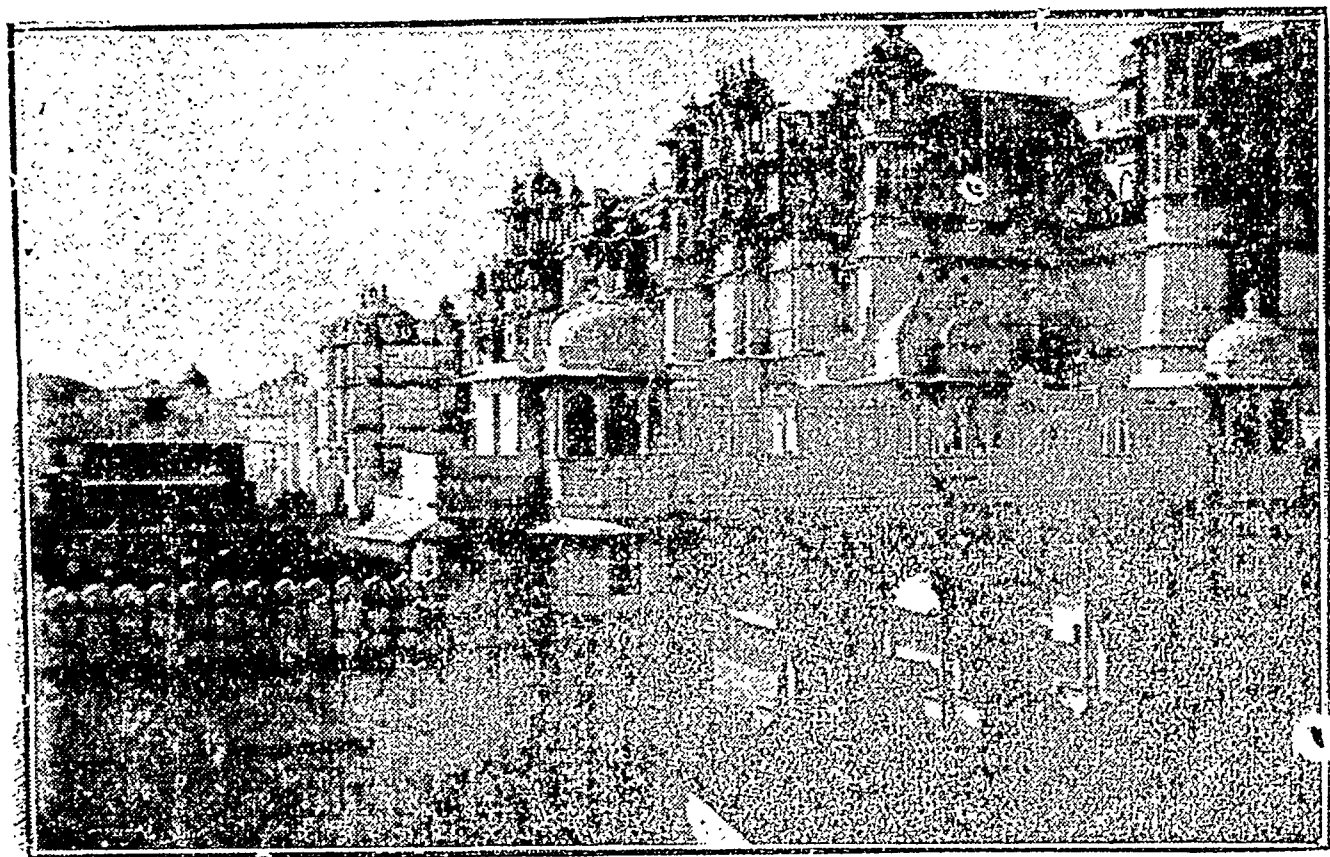
त्रिपोलियाँ और राजमहल

हुए सोने तथा चाँदी के तुला-दानों के स्मारक हैं। सुंदर खुदाई का काम किए हुए दो-दो थंभों पर महराब डालकर ये तोरण बनाए गए हैं। इन तोरणों के ठीक सामने ही कोठार का मकान बना हुआ है।

त्रिपोलियाँ-दरवाज़े से निकलने पर राजमहलों के पूर्वी चौक में पहुँचते हैं, जो बड़ा ही विशाल है। चौक में प्रवेश करते ही दाहने हाथ की ओर महलों की दीवार के समीप अगड़-नामक स्थान है, जहाँ एक थोड़ी-सी ऊँची पत्थर की दीवार के दोनों तरफ़ खड़े होकर हाथी लड़ा करते हैं। जब कभी हाथियों की लड़ाई होती है, तब सहस्रों नगर-निवासी यहाँ इकट्ठे होते हैं, और दर्शकों का बड़ा समारोह रहता है। त्रिपोलियाँ पर बने हुए हवामहल-नामक छोटे-से स्थान की छत पर से हस्ति-युद्ध देखने में बड़ा आनंद आता है। चौक में बाईं तरफ़ हस्तिशाला बनी हुई है, जिसके नीचे लदाव के बड़े-बड़े दालान हैं। हस्तिशाला के दक्षिणी छोर पर सूरज-पोल-दरवाज़ा है, जिसको महाराणा कर्णसिंह (१६७६-१६८४) ने बनवाया था। इस चौक के पश्चिम की ओर अगड़ से ही पुराने महलों की पंक्ति का प्रारंभ होता है। यात्री को महल देखने के लिये चौक के मध्य भाग में से, पश्चिम में जानेवाले मार्ग द्वारा, जाना चाहिए। कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने पर बहुत से थंभोंवाला एक दरीख़ाना मिलता है, जहाँ कभी-कभी दर्बार होता है। फिर दाहने हाथ की तरफ़ जाना चाहिए, जहाँ 'गणेश-ड्योढ़ी'-नामक एक छोटा-सा द्वार है। कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने पर महलों के ऊपरी भाग में पहुँचते हैं, जहाँ पर 'राय आँगन'-नामक सुंदर चौक है। इसमें श्वेत और श्याम संगमरमर की चौकियाँ जड़ी हुई हैं। राय आँगन से राजमहलों में जाने के लिये चार मार्ग हैं। परंतु जो अतीव सुगम है, उसका उल्लेख नीचे किया जाता है।

राय आँगन से दाहने हाथ की तरफ़ जानेवाले एक तंग रास्ते से छोटी चित्रशाला में पहुँचते हैं, जहाँ एक चौक मिलता है, जिसके चारों तरफ़ की दीवारों में काँच की पच्चीकारी से सुंदर मयूर बनाए गए हैं। यहाँ से आगे बढ़ने पर एक छोटे-से दालान में पहुँचते हैं, जिसके बाहर की तरफ़ एक झरोखे में विशाल सुनहरा सूर्य-मंडल बना हुआ है। यहाँ से दो छोटे-छोटे दरवाज़ों में होकर जाने से 'प्रीतम-निवास' महल में पहुँचते हैं, जहाँ काँच तथा चीनी का
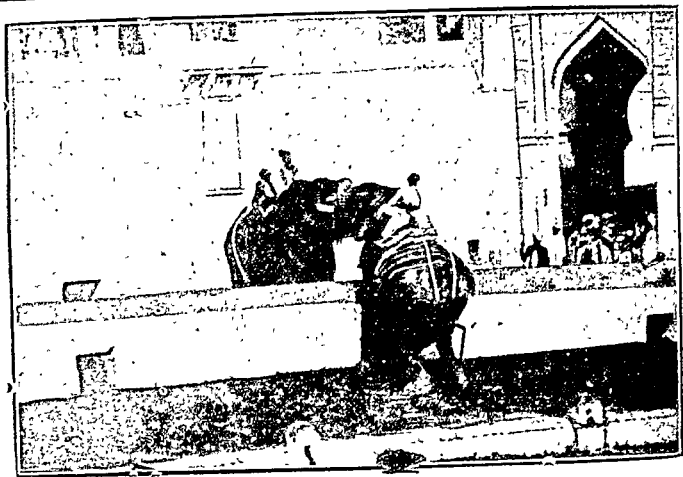
हाथियों का युद्ध

काम देखने योग्य है। छोटी चित्रशाला के इस आँगन के उत्तर में 'मानिक महल' है। इसके भीतर ताकों में अँगरेज़ी तथा चीनी तसवीरें और काँच के भाँति-भाँति के पात्र रक्खे हुए हैं, जो उन दिनों में कौतुक-जनक वस्तुएँ मानी जाती थीं।

यहाँ तक के महल देखकर दर्शक को उसी द्वार से लौटना चाहिए, जिससे छोटी चित्रशाला में पहुँचा जाता है। फिर दाहनी ओर के द्वार से मोतीमहल में प्रवेश करना चाहिए, जहाँ दर्पण तथा सुंदर चित्रों की अच्छी सजावट है। मोतीमहल देख चुकने पर महाराणा संग्राम-सिंह द्वितीय की बनवाई हुई चीनी की चित्रशाला में जाना चाहिए। यहाँ एक मंडप है, जिसमें काँच की पच्चीकारी द्वारा विभिन्न प्रकार के पुष्प अंकित किए गए हैं। पास का एक कमरा नीली तथा सुनहरी चीनी की ईंटों से जटित है, जिससे वहाँ बड़ी चमक रहती है। इनके साथ साथ उन लोगों को लाई हुई चीनी की सुंदर ईंटें भी यहाँ दीवारों में जड़ी हुई हैं, जिनमें पनचक्की-किश्तियाँ तथा ईसाइयों के धार्मिक दृश्य आदि कई भाव-पूर्ण चित्र बने हुए हैं। इस दालान के दक्षिण में महलों की छत पर जाने का मार्ग है, जहाँ से नगर एवं तालाब की अपूर्व शोभा दृष्टिगोचर होती है। चीनी की चित्रशाला के ठीक बाहर ही महाराणा कर्णसिंह का बनवाया हुआ 'दिल-ख़ुशाल' महल है। इसकी दीवारों पर सोने का हलका काम किया हुआ है, और बड़े-बड़े दर्पण लग जाने से इसकी शोभा दूनी हो गई है।

दिलख़ुशाल महल से एक मार्ग बाड़ीमहल को जाता है, जो उसके निर्माता महाराणा अमरसिंह के नाम से 'अमरविलास' भी कहलाता है। ये महल पहाड़ी के अग्र-भाग पर बने हुए हैं, और इनके आगे के आँगन में वृक्ष तथा फूलों की क्यारियाँ लगी हुई हैं, जिनसे एक छोटा-सा बाग़ीचा बन गया है, और इसी से यह बाड़ीमहल कहलाता है। ऐसे तिमंज़िले ऊँचे स्थान पर बाग़ होने का कारण यह है कि इसके नीचे पहाड़ी का अग्रभाग आ गया है। महलों में इतनी ऊँचाई पर बाग़ का होना भी अद्भुत दृश्य है। बाग़ के मध्य में एक छोटा-सा कुंड है जिसके चारों तरफ़ संगमरमर का सुंदर कटहरा बना हुआ

है। यहाँ किंवाड़ों में हाथीदाँत की पच्चीकारी का काम बहुत ही बारीकी के साथ किया गया है, जिससे यह प्रत्येक दर्शक का ध्यान आकर्षित करने के साथ ही वहाँ के शिल्पियों की कारीगरी का परिचायक भी है। बाड़ी-महल की छत पर से संध्या के समय सूर्यास्त का दृश्य देखने में दर्शक को बड़ा ही आनंद आता है; क्योंकि एक तो यह स्थान बहुत ऊँचा है, दूसरे इसके नीचे थोड़ी दूर पर ही सरोवर है। बाड़ीमहल और जलाशय के बीच कर्णविलास-नामक एक भवन है, जहाँ पहले किसी समय दर्बार का रसोईघर था। इसको अब भी 'रसोड़ा' कहते हैं। इस भवन की छत पर दो बड़े थंभों के बीच में पीतल का एक विशाल वलयरूपी ज्योतिष का यंत्र लगा हुआ है, जिसको ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान् जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ने, जब वह उदयपुर आए थे, बनवाकर लगाया था। इन्हीं महाराजा जयसिंह ने दिल्ली, मथुरा, जयपुर, उज्जैन तथा काशी में बड़ी-बड़ी वेधशालाएँ बनवाई थीं, जो अब भी विद्यमान हैं। इस यंत्र के बारे में यहाँ के निवासियों का यह कथन है कि यदि कभी राजा के भोजन में विष मिला दिया जाय, तो इस यंत्र के प्रभाव से उस विष का तनिक भी असर नहीं पड़ सकता, इसीलिये यह जंतर-मंतर यहाँ लगाया गया है।

प्राचीन राजमहलों में एक बड़ा शस्त्रागार है—इसको यहाँ 'सिलहखाना' कहते हैं—जिसमें पुरातन काल के महाराणाओं के विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र संगृहीत हैं। शस्त्रागार देखने के लिये विशेष अनुमति लेने की आवश्यकता रहती है। यहाँ भाँति-भाँति की रत्नजटित तलवारें, कृपाण, खंजर, नाना प्रकार के बाण, धनुष, बंदूक आदि अन्य कई अस्त्र-शस्त्र हैं, जिनमें से कुछ को तो आजकल लोग जानते भी नहीं; परंतु प्राचीन काल में उनका बहुत प्रचार था। यहाँ महाराणा प्रताप के शस्त्र—एक तलवार, भाला, कवच तथा युद्ध के समय सिर पर पहनने का लोहे का टोप—अब भी विद्यमान हैं। ये शस्त्र ऐतिहासिक दृष्टि तथा अन्य भावों से भी विशेष आदरणीय एवं उल्लेखनीय हैं। भाला इतना भारी है कि साधारण मनुष्य तो उसका उपयोग ही नहीं कर सकता, और कवच को तो उठाना ही कठिन कार्य है; क्योंकि यह तो स्पष्ट ही है कि राणा प्रताप-जैसे धीर, वीर, बलवान् पुरुष के शस्त्र-कवचादि यदि इस समय के एक साधारण व्यक्ति से उठ जायँ, तो फिर उनका महत्त्व ही क्या रहेगा? पुराने महलों का देखना यहीं समाप्त होता है।

इस नगर में राजमहलों की बड़ी शोभा है। शहर में सबसे ऊँचे स्थान पर बनाए जाने के कारण, और इनके नीचे ही विस्तृत सरोवर होने से, यहाँ से प्राकृतिक शोभा का अवलोकन करने में बड़ा आनंद आता है। यद्यपि ये प्राचीन महल भिन्न-भिन्न समय में बने हैं, तो भी बनावट की समता बनाए रखने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। प्राचीन राजमहल इतने मज़बूत बने हुए हैं कि सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उनकी छतों में से जल की एक बूँद भी अब तक नहीं टपकती। इनके बनानेवाले आधुनिक इंजीनियर नहीं, किंतु पुराने ढंग के एतद्देशीय शिल्पी ही थे। आजकल के भवनों में केवल बाहरी सुंदरता एवं आडंबर की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है; परंतु इन महलों में सादगी के साथ-ही-साथ दृढ़ता का अधिक विचार रक्खा गया है। एक शृंखला में आ जाने के कारण तालाब तथा बड़े चौक की तरफ़ से ये महल बड़े ही रम्य प्रतीत होते हैं।

अब नए महलों का थोड़ा-सा परिचय दिया जाता है। इन प्राचीन राजभवनों के दक्षिण में महाराणा शंभुसिंह-जी (वि० सं० १९१८-१९३१) का बनवाया हुआ 'शंभुनिवास'-नामक अँगरेज़ी ढंग का दुमंज़िला महल है, जो बहुमूल्य अँगरेज़ी सामान से खूब सजा हुआ है। इसमें योरप की बनी हुई बिल्लौर की मेज़ें, कुर्सियाँ आदि नाना प्रकार की वस्तुएँ सजाई गई हैं। यहाँ तक कि पंखे में भी बिल्लौर का डंडा लगा हुआ है। आजकल शंभु-निवास के निकट ही दर्बार हाल-नामक एक विशाल भवन बन रहा है। शंभुनिवास से दक्षिण में पहाड़ी के अंत पर एक सुविशाल अर्द्धवृत्ताकार बुर्ज़ है, जिसके ऊपरी भाग में वर्तमान महाराणा साहब ने 'शिव-निवास'-नामक नया महल बनवाया है। यहाँ स्थान-स्थान पर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ हैं, जिन पर बनी हुई छत्रियों के ऊपर सुवर्ण-कलश लगे हुए हैं, जिनकी धूप में अलौकिक छटा देख पड़ती है। मध्य के बड़े दरीखाने में रंग-बिरंगे सुंदर काँचों की पच्चीकारी का काम बड़ी उत्तमता के साथ बना है। इस विशाल दरीखाने के अतिरिक्त आठ अन्य कमरे भी बड़े सुंदर बने हुए हैं। इन कमरों में पच्चीकारी की हद कर दी गई है। नाना प्रकार
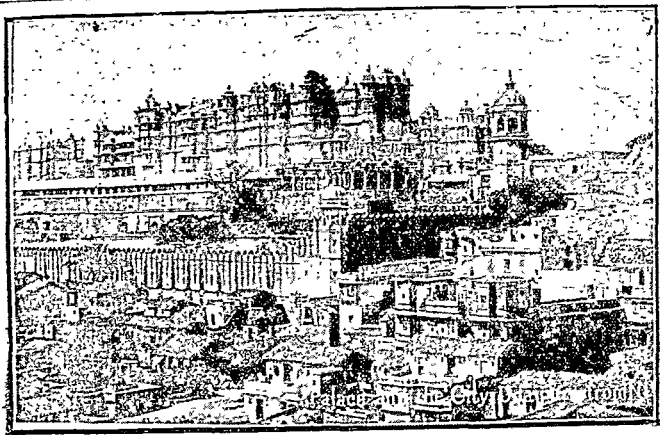
प्राचीन राजमहल और नगर का कुछ भाग
(इस चित्र के बीच में उल्लिखित तुलादान के स्मारक आठ तोरणों की पंक्ति एवं बाड़ीमहल के ऊपरी भाग में वृक्ष दिखाई देते हैं)
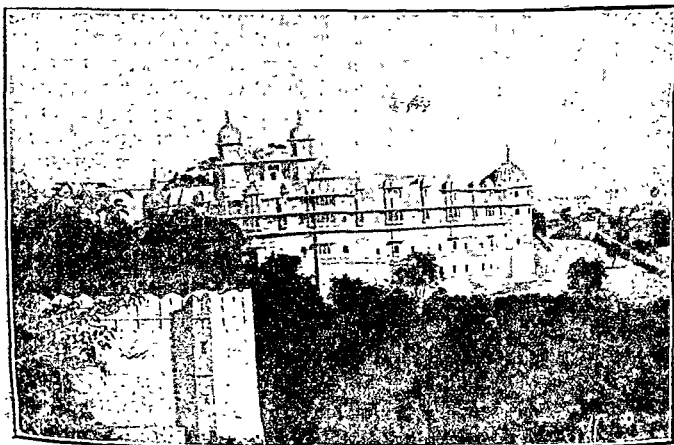
के पुष्प, वृक्ष, पक्षी तथा पशुओं के चित्र दीवारों में रंगीन काँच की पच्चीकारी से इतने सुंदर बने हैं कि इनको देखकर दर्शक का चित्त मुग्ध हो जाता है। इस काम में कारीगरी एवं बारीकी इतनी है कि जहाँ मयूर का चित्र अंकित है, वहाँ उसके पिच्छों का एक-एक तंतु गिना जा सकता है। जैसे काँच की पच्चीकारी दीवारों में है, वैसे ही किवाड़ों पर भाँति-भाँति के बेल-बूटे आदि हाथीदाँत के द्वारा अंकित किए गए हैं। आगरे के ताजमहल में रंगीन पत्थरों की पच्चीकारी अत्यंत उच्च कोटि की है; परंतु यहाँ वही काम काँच तथा हाथीदाँत के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इनके अवलोकन करने से दर्शक को उदयपुर-नरेश के तद्विषयक अनुराग तथा कारीगरों की कार्य-दक्षता का सम्यक् परिचय मिलता है। इन महलों में भी अँगरेज़ी सामान की—विशेष कर बिल्लोर की बनी हुई विभिन्न वस्तुओं की—बड़ी सजावट की गई है। यह बात भी उल्लेखयोग्य है कि इन महलों का एक अंश महाराणा उदयसिंह से लेकर वर्तमान महाराणा साहब तक के बड़े-बड़े तैल-चित्रों से सुसज्जित है। इन चित्रों के अतिरिक्त प्रातः-स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह, उनके पुत्र अमरसिंह, महाराणा राजसिंह और महाराणा जयसिंह, इन चार नरेशों के पूरे तैल-चित्र भारत के सुप्रसिद्ध चित्रकार राजा रविवर्मा द्वारा अंकित किए गए हैं। राजा रविवर्मा चित्रों ही के कार्य के लिये अपने भ्राता राजवर्मा सहित उदयपुर में आकर कई महीने रहे थे। यद्यपि राजा रविवर्मा आज इस संसार में विद्यमान नहीं हैं, परंतु चित्रों के देखने से ठीक ऐसा ही प्रतीत होता है, मानो चतुर चित्रकार ने इनको आज ही समाप्त किया है। इन महलों के एक कमरे में दीवार पर उदयपुर के दर्शनीय स्थानों और सुंदर दृश्यों का रंगीन चित्रण बड़ी ही निपुणता से किया गया है। बीच के चौक में संगमरमर का एक बड़ा फ़व्वारा लगा हुआ है, जिसके चारों ओर उत्कृष्ट खुदाईवाला एक कटहरा है, और अशोक-वृक्ष लगे हुए हैं, जिनके नीचे श्वेत मयूर आनंद से नृत्य कर रहे हैं। शिवनिवास के नीचे से ही पीछोले का 'बड़ी पाल'-नामक बाँध शुरू होता है।

सज्जननिवास-बाग़

नगर के दक्षिणी सिरे पर, शहरपनाह के भीतर, 'सज्जननिवास'-नामक बहुत बड़ा बाग़ है, जो पश्चिम में बड़ी पाल पर समाप्त होता है, जहाँ से दूधतलाव के पास होती हुई एक सड़क 'ख़ास ओदी' जाती है। प्राचीन काल में गुलाबबाग़ नाम का एक छोटा-सा बग़ीचा लगा हुआ था; परंतु महाराणा सज्जनसिंहजी (वि० सं० १९३०-१९४१) ने आसपास के खेत तथा बाड़ी-बग़ीचे सब मिलाकर उस बाग़ को बहुत विस्तृत रूप में परिणत कर दिया, और 'सज्जननिवास' नाम से प्रसिद्ध किया। इस बाग़ को पश्चिमी छोर से देखना शुरू करना चाहिए।

इसका सबसे पश्चिमी भाग, जो बड़ी पाल के ठीक नीचे ही है, 'समोर' कहलाता है। यहाँ बड़ी पाल के बाँध के पास एक सुंदरी स्त्री की संगमरमर की खड़ी मूर्ति है, जिसके हाथ में रक्खे हुए कलश में से जल एक कुंड में निरंतर गिरा करता है। यह जल सरोवर में से एक छिद्र द्वारा इस पात्र में आता है। इस स्थान के समीप ही एक केतकी-कुंज है। बाग़ की सिंचाई के लिये समोर से नल डाले गए हैं, और दूधतलाव से एक नहर ली गई है। यहाँ एक विशाल फ़व्वारा लगा हुआ है, जिसके मध्य में से तो अनेक जल-धाराएँ निकलती ही हैं, परंतु इसके कुंड के चारों ओर बने हुए पत्थर के वृत्त में से छिद्रों द्वारा भी जल की सैकड़ों धाराएँ एकसाथ छूटती हैं, और उनके चक्र में छूटने से बीच में जल का मंडप-सा बन जाता है; फिर कुंड में जल-बिंदु इस तरह से गिरते हैं, मानो वृष्टि हो रही हो। आजकल श्रीमान् महाराजकुमार ने संध्या-समय की सैर के लिये इस फ़व्वारे के निकट ही एक छोटा-सा सुंदर दुमंज़िला महल बनवा लिया है। यहाँ से कुछ दूर आगे बढ़ने पर दो तलइयाँ मिलती हैं, जिनमें कमल-वन हैं। इनमें कहीं कुछ कमल विकसित होकर शोभायमान होते हैं, तो कहीं कुछ कलिकाएँ अपना मुख बंद किए हुए अपूर्व शोभा देती हैं।

समोर से पूर्व में कुछ दूर जाने पर एक कृत्रिम तलइया मिलती है, जिसके किनारे पर श्वेत पाषाण का एक हाथी बना हुआ है। इस तलइया में पहले 'विक्टोरिया रीजिया'-नामक सहस्रदल कमल थे; जिनसे इस तलइया की अलौकिक छटा देख पड़ती थी। कमलों में यह सबसे बड़ा पुष्प है, और इसके पत्ते की परिधि ३२ फुट तक नापी गई है। इन पत्तों के किनारे ऊपर की ओर मुड़े हुए होते हैं। यहाँ एक पत्ते पर कुर्सी रखकर आठ वर्ष का बालक उस पर बिठलाया गया, तो भी वह पत्ता जल में न डूबा। फिर

इस घटना का फ़ोटो भी लिया गया, जिसको मैंने भी देखा है। पत्तों के नीचे के भाग में काँटे होते हैं, और डंडी-सहित पत्ते को एक मनुष्य कठिनाई से ही उठा सकता है। पुष्प का रंग आरंभ में श्वेत होता है; परंतु पीछे से उसमें गुलाबीपन आता जाता है। इस कमल में अन्य कमलों की नाईं छत्ता नहीं लगता; किंतु वह बंद होकर नीचे की ओर झुक जाता है। तब उसके ठीक नीचे जल में मिट्टी का घड़ा रख देते हैं, जिससे कुछ दिनों बाद पुष्प का गूदा बनकर भँग के दाने-जैसे सूक्ष्म बीज घड़े में जमा हो जाते हैं। ये बीज जल ही में जीवित रह सकते हैं, थोड़ी-सी देर भी बाहर रखने से, जल सूखने पर, मर जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व मैंने इन कमलों को देखा था; परंतु यह अनुपम पुष्प अब वहाँ नहीं रहा, जिससे तलइया की सारी शोभा नष्ट हो गई है।

इस तलइया से थोड़ी-सी दूर पूर्व में जाने से दाहने हाथ की तरफ़ जानवरों का संग्रह है, जिसमें सिंह-शिशु, व्याघ्र, सामान्य तथा काले चीते, भालू, जरख एवं भाँति-भाँति के बंदर, कुत्ते आदि नाना प्रकार के जंतु संगृहीत हैं। पास ही के चिड़ियाख़ाने में तरह-तरह की रंगबिरंगी चिड़ियाँ, तोते, मैना आदि पक्षी उड़ते और लोहे की जाली से ढके हुए कुंड में बत्तख़ आदि अनेक जल-जीव तैरते रहते हैं। कहीं-कहीं तो इस बाग़ में वृक्षों की ऐसी घनी कुंजें हैं कि आरपार कुछ भी नहीं दृष्टिगोचर होता। जंतु-संग्रह के उत्तर में "श्रावण-भादवा"-नामक एक स्थान है, जिसमें ताड़ आदि वृक्षों के गमलों तथा हंसराज की अच्छी सजावट है। इसके चारों तरफ़ तथा ऊपर नलों की ऐसी रचना की गई है कि एक चाबी फिराते ही हज़ारों छिद्रों से जल-वर्षा होती है। उस समय ऐसा मालूम होता है, मानो श्रावण-भादों की वर्षा की झड़ी लग गई हो। दर्शक बड़ी चाह से इस स्थान को देखते हैं; और कुछ तो उसमें ठहरकर जल से अपने वस्त्र तर-बतर करने में ही आनंद मानते हैं।

जंतु-संग्रह से थोड़ी दूर पूर्व में सुविशाल, अनेक सुंदर छत्रियों से सुशोभित, वर्तमान महाराणा साहब का बनवाया हुआ विक्टोरिया-हाल नाम का एक भव्य भवन बना हुआ है, जो महारानी विक्टोरिया की जुबिली

विक्टोरिया-हाल

के स्मारक में, ईसवी सन् १८८७ में, बनाया गया था। इसके सामने ही महारानी विक्टोरिया की संगमरमर की खड़ी मूर्ति है। विक्टोरिया-हाल में पुस्तकालय, वाचनालय एवं अजायबघर है। इस भवन में प्रवेश करते ही सामने के बरामदे में ईसा से तीन शताब्दी पूर्व से लगाकर सत्रहवीं शताब्दी तक के शिला-लेखों तथा पाषाण-मूर्तियों का अच्छा संग्रह है। यहाँ के सबसे प्राचीन शिला-लेख से यह ज्ञात होता है कि आज से २,१०० वर्ष पूर्व भी मेवाड़ में अश्वमेध यज्ञ हुआ था। मेवाड़ के वर्तमान राजवंश (गुहिल-वंश) का सबसे प्राचीन लेख राजा अपराजित का, विक्रम-संवत् ७१८ का, है। उसके पीछे के, इस वंश के, कई अन्य शिला-लेख भी हैं, जिनमें महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के कुंभलगढ़ के शिला-लेख की तीन शिलाएँ हैं, जिनको मुसलमानों ने तोड़ डाला था; परंतु उनके टुकड़े जोड़कर वे पीछे की दीवार के साथ लगा दी गई हैं। ये शिलाएँ मेवाड़ के प्राचीन इतिहास के लिये बड़े महत्त्व की हैं। उक्त राजवंश के अतिरिक्त चौहान एवं सोलंकियों के शिला-लेख भी यहाँ सुरक्षित हैं—चौहान राजा सोमेश्वर का एक वि० सं० १२३४ का, और उनके पुत्र सम्राट् पृथ्वीराज के भी दो शिला-लेख हैं—इनमें से पहला वि० सं० १२३६ का है—जो मेवाड़ के जहाज़पुर ज़िले में मिले हैं। इन शिला-लेखों से यह विदित होता है कि पहले मांडलगढ़ से कोटे तक का मेवाड़ का पूर्वी भाग अजमेर के चौहानों के अधीन था। मूर्तियों में विष्णु के चौबीस अवतारों की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

यहाँ के अजायबघर में मेवाड़ में बने हुए भिन्न-भिन्न कारीगरी के नमूनों का यथेष्ट संग्रह है। मेवाड़ में उपयोग होनेवाले सब तरह के सुवर्ण, रजत, काँसे तथा पीतल के आभूषण (जिनको भील-स्त्रियाँ पहनती हैं) यहाँ सजाकर रक्खे गए हैं। इसके अतिरिक्त रँगाई तथा छपाई के काम के नमूने और भारत के प्राचीन काल के ग्रीक, शक एवं कुशान आदि अनेक राजवंशों के सिक्कों की नक़लें, जो इँगलैंड में बनाई गई हैं, यहाँ पर देखने को मिलती हैं। इनके सिवा कई पक्षियों, जंतुओं के कुट्टी भरे हुए मृत शरीर तथा भारत के सब प्रांतों में बाँधी जानेवाली पगड़ियों के नमूने काग़ज़ की कुट्टी के सिरों पर रक्खे हुए हैं। कुछ ज्योतिष-विषयक यंत्र एवं शस्त्र भी संगृहीत हैं। शस्त्रों में एक प्राचीन एकनली बंदूक है, जिसमें 'रिवाल्वर' के समान सात कोठियाँ बनी हुई हैं, जो हाथ से घुमाने पर क्रमशः नाल से जुड़ जाती हैं। इस अजायबघर में सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु शाहज़ादे ख़ुर्रम की, जो पीछे से शाहजहाँ बादशाह कहलाया, जैसी-की-तैसी बँधी हुई असली पगड़ी है, जिसको उक्त शाहज़ादे ने अपने पिता से विद्रोह करके उदयपुर में रहते समय महाराणा कर्णसिंह को पहनाकर उनकी पगड़ी अपने मस्तक पर धारण कर ली थी। राजपूताने में अब भी ऐसी प्रथा जारी है कि राजा, सरदार आदि विशिष्ट जन अधिक मैत्री होने पर स्नेह-प्रदर्शन के लिये सिर पर बँधी हुई पगड़ियाँ परस्पर बदल लिया करते हैं, और फिर वे 'पगड़ी-बदल भाई' कहलाते हैं। शाहज़ादे ख़ुर्रम की यह पगड़ी इसी प्रथा से महाराणा को पहनाई गई थी। इसके सिवा भिन्न-भिन्न महाराणाओं के समय की पगड़ियों के नमूने भी संगृहीत हैं।

लाख के सामान के नमूने और हरक्यूलीज़, कवि होमर आदि अन्य कई प्रसिद्ध ग्रीक-मूर्तियों तथा शिलाओं की प्लास्टर की बनी हुई प्रतिकृतियाँ, एवं मिसर में मिले हुए, भिन्न-भिन्न तीन लिपियों में खुदे हुए, प्रसिद्ध 'रोज़ेटा' के शिला-लेख की भी ठीक वैसी ही प्रतिकृति रक्खी हुई है। इसी शिला-लेख की ग्रीक-लिपि के आधार पर मिसर की चित्रमय-लिपि के पढ़ने की कुंजी निकाली गई थी। इनके साथ-ही-साथ पाषाण-रूप में परिवर्तित वृक्षों की छाल, सीप, शंख एवं मनुष्य, पशुओं आदि की हड्डियों (fossils) का अच्छा संग्रह है, जिनका पंडित गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा ने अपनी काठियावाड़ की यात्रा के समय दिव (Diu)-नामक द्वीप से संग्रह कराया था। इनके सिवा नाना प्रकार के वाद्यों तथा उदयपुर के महाराणाओं, सरदारों और प्रसिद्ध पुरुषों के चित्रों का भी अच्छा संग्रह है।

इस अजायबघर के साथ ही एक पुस्तकालय तथा वाचनालय भी संयुक्त है। इस पुस्तकालय में इतिहास और पुरातत्त्व-संबंधी अँगरेज़ी, संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, उर्दू आदि अन्य भाषाओं की पुस्तकों का बड़ा संग्रह है। फ़ारसी-पुस्तकों के संग्रह में कई हस्त-लिखित भी हैं। ऐतिहासिक ग्रंथों का ऐसा बड़ा संग्रह राजपूताने में अन्यत्र कहीं नहीं है। इनके अतिरिक्त डच-भाषा का एक Water chart (सामुद्रिक नक़्शों की पुस्तक) है, जो ई० सन् १६४०

और १६७० के बीच का छपा हुआ है । इसको डच लोग अठारहवीं शताब्दी ईसवी के प्रारंभ में उदयपुर लाए थे। इस पुस्तकालय में छपी हुई पुस्तकों में सबसे पुरातन होने के कारण विद्वान् यात्री लोग इसको बड़े ध्यान से देखते हैं; और वास्तव में यह एक दर्शनीय वस्तु भी है । इसे देखने से ज्ञात होता है कि इसके छपने के समय तक उत्तरी अमेरिका का थोड़ा ही अंश मनुष्य-जाति को मालूम हुआ था। Daniell's Views of India-नामक पुस्तक के ६ भाग भी, जिनमें भारतवर्ष के कई दर्शनीय स्थानों तथा अनुपम दृश्यों आदि के बड़े ही उत्कृष्ट रंगीन चित्र छपे हुए हैं, और जो आज अप्राप्य-से हैं, पुस्तकालय की पुस्तकों में से देखने योग्य हैं। वाचनालय में अँगरेज़ी, गुजराती, हिंदी तथा उर्दू के कई मासिक, साप्ताहिक एवं दैनिक पत्र रक्खे रहते हैं, जिनसे शिक्षित-वर्ग को बहुत कुछ लाभ पहुँचता है।

विक्टोरिया-हाल के सामने खेलने के स्थान हैं, जहाँ सायंकाल को नगर-निवासी फुटबाल, क्रिकेट, टेनिस आदि अँगरेज़ी खेल खेला करते हैं । अजायबघर के पीछे की तरफ़ एक मैदान है, जिसके चारों तरफ़ लोहे के तारों का घेरा है । उसके भीतर बारहसींगे, हरिण, चीतल, नीलगाय, शुतुर्मुर्ग़, ज़ेबरा, मयूर आदि पशु-पक्षी स्वच्छंद विचरण करते हैं । इस बाग़ में विक्टोरिया-हाल से एक सड़क उत्तर को जाती है, जिसके दोनों किनारों पर बबूल के ऐसे सघन वृक्ष हैं कि वे ऊपर से आपस में मिल गए हैं, और सड़क पर धूप बिलकुल नहीं रहती, जिससे इसको ठंडी सड़क कहते हैं । ग्रीष्म की प्रचंड गरमी में विश्राम करने का यहाँ बड़ा आनंद आता है । अजायबघर से पूर्व कुछ दूर पर 'सर्वऋतु-विलास'-नामक एक प्राचीन महल है, जहाँ पर एक वापी देखने योग्य है । अजायबघर से लौटकर पश्चिम को आनेवाली दाहने हाथ की सड़क के किनारे नवलखा-नामक प्राचीन भवन है, जिसमें इस समय महाराणा-कॉलेज है।

इस बाग़ में वृक्षों की सघनता तथा हरियाली के लिये जो कुछ लिखा जाय, थोड़ा है । इसमें पहले की बनी हुई अनुमानतः बीस बावड़ियाँ और स्थान-स्थान पर जल की नहरें बहती हैं, जिनसे उद्यान-शोभा बहुत ही बढ़ गई है। महाराणा सज्जनसिंह के ही प्रयत्न से आज यह बाग़ ऐसा अपूर्व बन गया है कि इसमें किसी प्रकार की न्यूनता दृष्टि-गोचर नहीं होती। भाँति-भाँति की घुमाववाली सड़कें, जिनके दोनों तरफ़ से नाना प्रकार के पुष्पों की मधुर सुगंध आना, कहीं धातुमयी मूर्तियों के हाथ से फ़व्वारों का चलना, कहीं हौज़ के चारों ओर से फ़व्वारे चलने के कारण वर्षा-सा प्रतीत होना, कहीं जालीदार कुंडों में जल-जंतुओं का क्रीड़ा करना, कहीं लाल-ही-लाल मछलियोंवाले कुंड दिखाई देना, कहीं सिंह, व्याघ्र, तेंदुए, भालू आदि हिंसक जंतुओं का शब्द करना, कहीं लोहे की जालियों के कटहरे के भीतर हरिण, नीलगाय, बारहसींगे, ज़ेबरा आदि तृणचरों का स्वच्छंद विचरण, कहीं तोता, मैना आदि विभिन्न पक्षियों का कलरव, कहीं बीच में कोकिल का कुहू-शब्द यकायक सुनाई देना, कहीं मयूरों का नृत्य, कहीं विस्तृत हरित मैदान में अँगरेज़ तथा मेवाड़ियों का गेंद खेलना, किसी तलइया में विकसित कमल-वन की शोभा, कहीं गुलाबों तथा रंग-बिरंगे पुष्पोंवाली हरित वल्लियों का वृक्षों को आवरण करना, कहीं फलित वृक्षावलि की अलौकिक छटा और ठौर-ठौर वृक्षों की सघन छाया में रक्खी हुई बेंचों तथा कुर्सियों पर नगर-निवासियों का विश्राम करना और मनोमोहक उद्यान-शोभा देखकर सैर करनेवालों का मन यह कभी नहीं चाहता कि यहाँ से उठकर जायँ।

पीछोला-तालाब और जल-महल

प्रसिद्ध पीछोला-तालाब, जो नगर के पश्चिम किनारे पर है, सवा दो मील लंबा और चौड़ाई में अधिक-से-अधिक डेढ़ मील है। इसका बाँध, जो महलों के दक्षिणी किनारे से शुरू होकर माँछले मगरे तक चला गया है, लंबाई में ३३४ गज़ है, और ऊपर उसकी चौड़ाई १०१ फ़ीट है। लोकोक्ति के अनुसार राणा लाखा (वि० सं० १४३६-१४५४) के समय में इसको एक बनजारे ने बनवाया था। इस विषय में यह प्रसिद्ध है कि जब बनजारे के लदे हुए बैल नदी को, जो जहाँ आजकल सज्जननिवास-बाग़ है, वहाँ बहती थी, पार न कर सके, तब उसने अपने बैलों के सुगमता-पूर्वक निकलने और नदी को रोकने के लिये एक बँध बनवाया, जिसको महाराणा उदयसिंहजी ने सुदृढ़ किया । नदी, जिसमें यह बाँध बाँधकर जलाशय बनाया गया है, पश्चिम से सीसारमे-ग्राम के पास होकर आती है । यह सरोवर ऊँचे राजमहलों के पास होता हुआ दोनों ओर बहुत दूर तक चला गया है।

इसके बीच में कई बड़े-बड़े टापू हैं। उनमें से कुछ पर संगमरमर के भव्य महल बने हुए हैं, जहाँ नारंगी, खजूर, ताड़ और नारियल आदि के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लगे हुए हैं; कहीं इधर-उधर सोने के कामवाली सुंदर छत्रियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, और दक्षिणी किनारे पर अर्वली की श्यामवर्ण पहाड़ियों की शृंखला अपनी अद्भुत छटा दिखाती है। इन सब सौंदर्य-युक्त पदार्थों एवं दृश्यों के एक स्थान पर सम्मिलन हो जाने से यात्री को सारा दृश्य ऐसा अपूर्व आनंदकारी तथा सुखमय प्रतीत होता है कि वह इस प्राकृतिक शोभा को देखकर दंग रह जाता है। यह सब इस प्राचीन ऐतिहासिक नगर पर प्रकृति देवी की कृपा का परिणाम है।

सरोवर और जल-महलों का जो पूर्ण रूप से अवलोकन करना चाहता हो, उसे चाहिए कि जलाशय के उत्तरी सिरे पर एक तंग रास्ते में होकर नाव रंगसागर में पहुँचती है, जहाँ दो छोटे-छोटे द्वीप बने हैं, जिनमें कोई मकान नहीं बना है, केवल वृक्ष हैं, जिन पर पक्षी निवास करते हैं। आगे बढ़ने पर चाँदपोल का पुल आता है, जो नगर के पश्चिमी भाग को ब्रह्मपुरी-द्वीप से जोड़ता है। इस पुल के उत्तर का तालाब का भाग, जिसकी अभी तक सैर कर रहे थे, स्वरूपसागर के नाम से प्रसिद्ध है।

इस पुल के नीचे से निकलने के बाद इसके दक्षिण का भाग बड़ा ही मनोहर दिखाई देता है। पुल से ही तालाब के दोनों किनारों पर बड़ी दूर तक पत्थर के बड़े सुंदर घाट बने हुए हैं, जिन पर मंदिर एवं हवेलियाँ खड़ी हुई हैं। तालाब के पूर्वी तट पर नगर तथा राजमहलों की सुंदर छटा दृष्टिगोचर होती है। पश्चिमी तट पर ब्रह्मपुरी-नामक द्वीप है। पुल से थोड़ी दूर पर, पूर्वी तट पर, शिताव-

पीछोला-तालाब और नगर
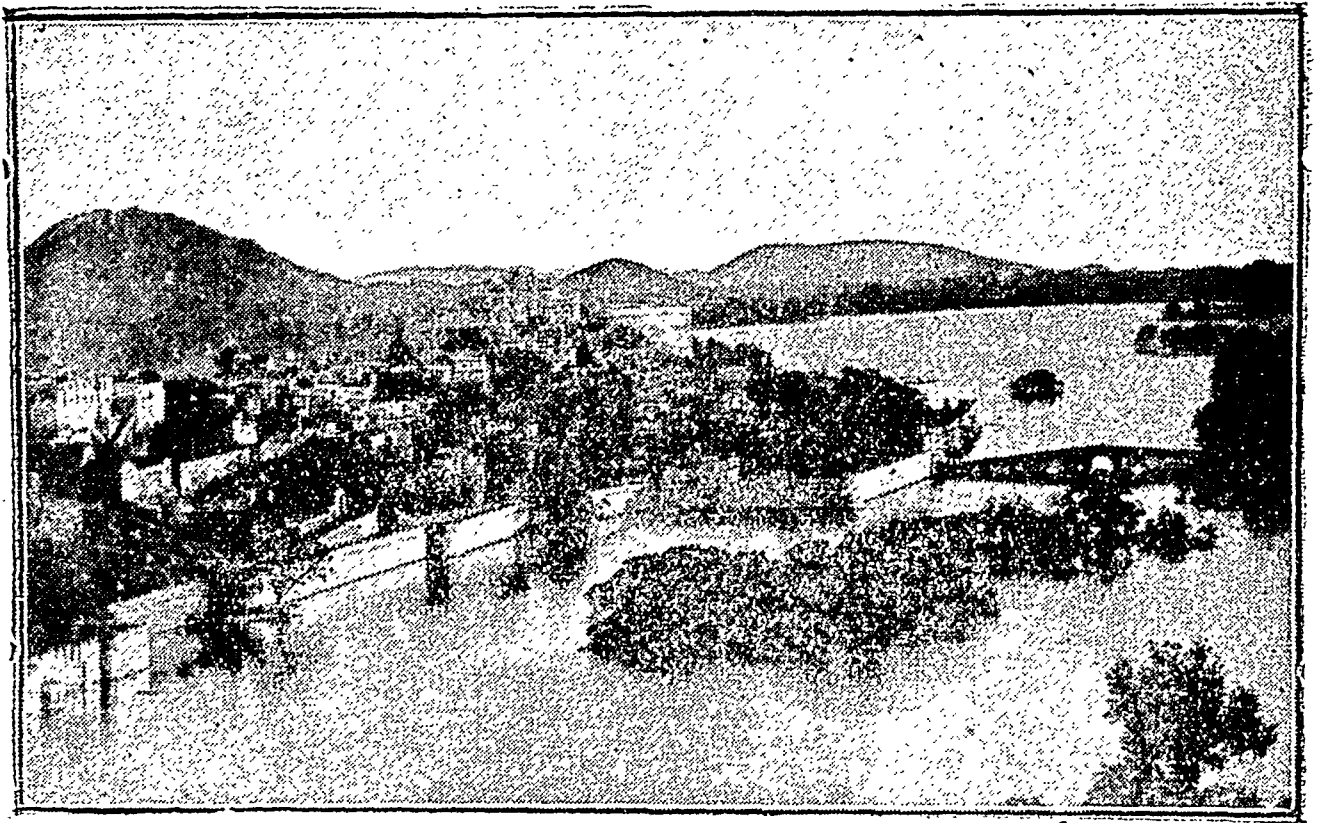
(चित्र के दाहने किनारे पर चाँदपोल का पुल देख पड़ता है; और सरोवर के किनारे-किनारे शहरपनाह, नगर का पश्चिमी भाग और प्राकृतिक शोभा दृष्टिगोचर होती है)

से, जहाँ एक छोटा-सा घाट बँधा हुआ है, नाव में सवार हो। इसी घाट के पास, पानी का निकास है। वर्षाकाल में जब तालाब भर जाने पर चद्दर चलने लगती है, तब यहाँ भी दर्शनीय शोभा रहती है। यहाँ से रवाना होने पोल और पश्चिमी तट पर वृक्ष-कुंज से आच्छादित ऊँचा भीमेश्वर-नामक शिवालय है। इनके बीच का जलाशय का भाग अमरकुंड कहलाता है; क्योंकि महाराणा अरिसिंह द्वितीय (वि० सं० १८१७-१८२९) के समय में यहाँ के
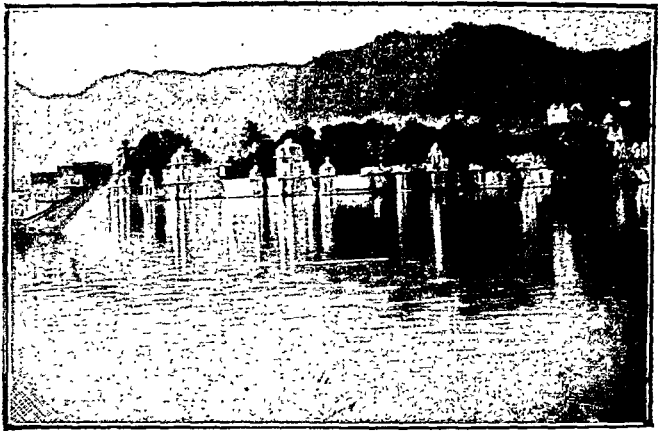
जगनिवास-तालाब के भीतर महल
(दाहनी ओर नया महल और बाईं ओर पुराना महल)

के भाग में हाथियों के सुंदर चित्र उभड़े हुए (In relief) बने हैं। यहीं से शंभुप्रकाश-नामक ऊपर की मंज़िल को मार्ग जाता है। जगनिवास का देखना यहीं समाप्त हो जाता है। अब नाव पर फिर सवार होकर दूसरे जल-महल जगमंदिर को जाना चाहिए, जो जगनिवास से लगभग ४ फ़र्लांग दक्षिण-पश्चिम में बने हुए हैं। जग-निवास से आगे बढ़ने पर जल का मध्य भाग आता है। यहाँ अथाह जल है; और उस स्थान पर नाव में सैर करनेवालों को ऐसा मालूम होता है, मानो उनकी नाव समुद्र में ही चल रही है; क्योंकि जल का फैलाव बहुत दूर-दूर तक है, और यहाँ पर श्यामवर्ण जल की बड़ी-बड़ी लहरें हिलोरे लेती हैं। इसके सिवा सैर करनेवाले लोग यहाँ पर नाव में से हस्त-पुट द्वारा जलपान करने में बड़ा आनंद मानते हैं। इस तरह धीरे-धीरे चलती हुई नाव जगमंदिर पहुँचती है।

महाराणा कर्णसिंह ने १६७६-१६८४ में इनको बन-वाना शुरू किया था। परंतु उनका काम अधूरा ही रहा, उसको उनके पुत्र महाराणा जगतसिंह ने समाप्त किया। इसी से यह महल जगमंदिर कहलाता है। जगमंदिर के बाहर तालाब के किनारे पर पत्थर के हाथियों की एक शृंखला बनी हुई है। जगमंदिर जगनिवास से प्राचीन है, और इसमें इतिहास-प्रेमी के लिये दर्शनीय स्थान भी अधिक हैं। इसमें केवल प्राचीनता ही है, आजकल की भाँति-भाँति की सजावट यहाँ नहीं दृष्टिगोचर होती। प्रवेश कर थोड़ी दूर जाने पर संगमरमर का बना हुआ एक बड़ा गुंबज़दार महल मिलता है, जिसको गोल-महल कहते हैं। इसके विषय में वहाँवालों का यह कथन है कि शाहज़ादा खुर्रम—पीछे से बादशाह शाहजहाँ—अपने पिता जहाँगीर से विद्रोह करके उदयपुर आकर कुछ समय तक रहा था, और उसी के लिये महाराणा कर्णसिंह ने यह महल बनवाया था। परंतु यह भी संभव है कि जब, महाराणा कर्णसिंह के पिता अमरसिंह (१६५३-१६७६) के साथ की जहाँगीर की लड़ाइयों के समय, शाहज़ादा खुर्रम शाही फ़ौज का सेनापति बनकर उदयपुर में रहा था, उस समय उसने उक्त महल को बनवाया हो। इस महल को देखने से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण करने में
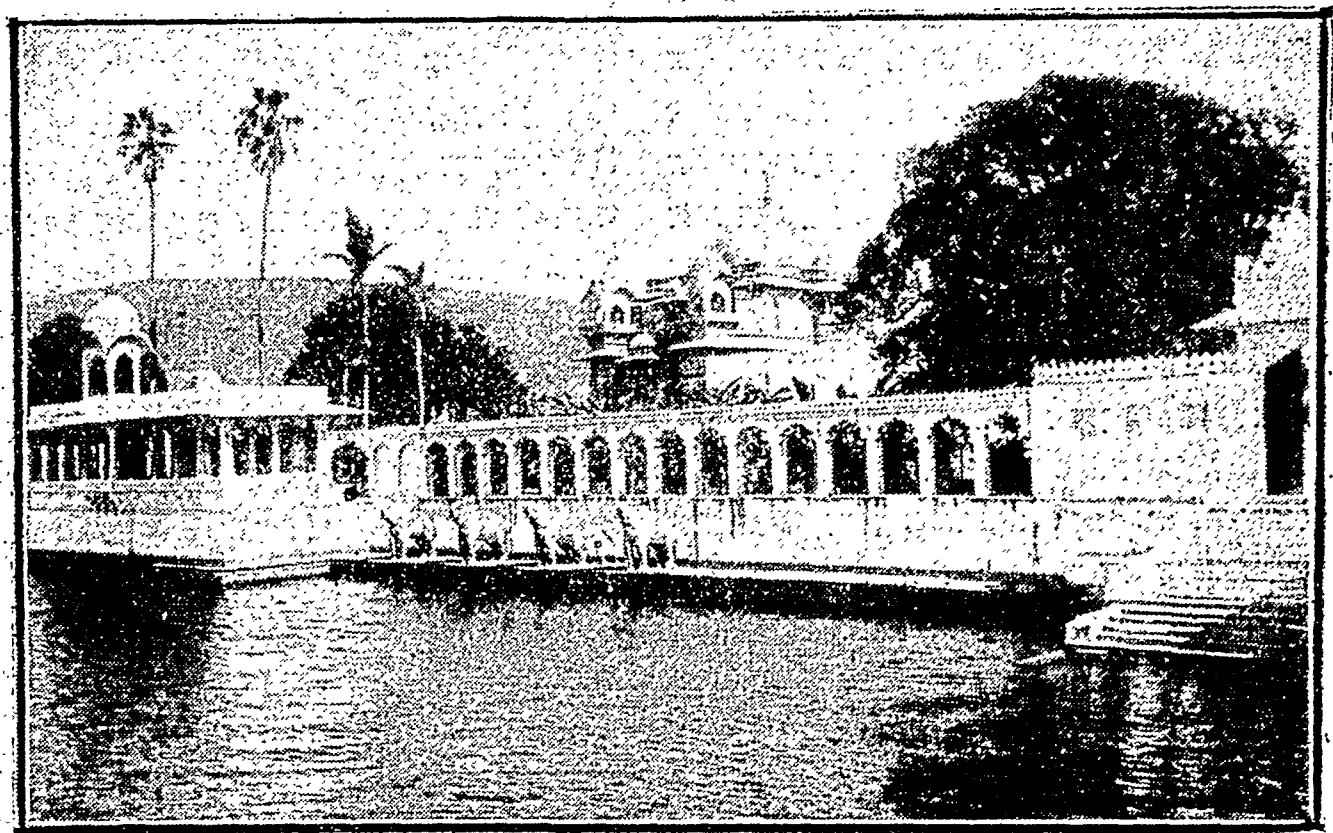
जगमंदिर-नामक जल के भीतर का महल
(किनारे हाथियों की क़तार और बीच में गोल-महल)

आगरे के कारीगरों का हाथ अवश्य था; क्योंकि इसके गुंबज़ आदि में जो पत्थर की पच्चीकारी का काम है, वह मेवाड़ की शैली का नहीं, किंतु आगरे के सुप्रसिद्ध ताजमहल के ढंग का है। आश्चर्य नहीं, इसी महल के गुंबज़ की शैली पर ताजमहल का गुंबज़ भी बना हो; क्योंकि यह ताजमहल से पहले का बना हुआ है। इस महल के सामने एक विशाल चौक है, जिसके मध्य भाग में एक बड़ा हौज़ बना हुआ है। इस हौज़ के चारों किनारों पर एवं चौक के मध्य में फ़व्वारों की पंक्तियाँ बनी हुई हैं, जो ताजमहल के सामने के फ़व्वारों का स्मरण दिलाती हैं। परंतु अब ये बिगड़ी हुई दशा में हैं, जिससे जल-धाराओं के छूटने का आनंद दर्शक को नहीं प्राप्त होता। इनके सिवा कईएक दालान और छोटे-बड़े अन्य स्थान भी हैं। ये पीछे से महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के समय में बने हैं।

जगमंदिर में बहुत बड़ा बग़ीचा लग जाने से इसकी बहुत कुछ शोभा-वृद्धि हुई है। बाग़ के एक कोने में साईं ग़फ़ूर की क़बर है, जो खुर्रम के साथियों में से एक होना चाहिए। गोल-महल के पूर्व पार्श्व में संगमरमर की केवल बारह बड़ी-बड़ी शिलाओं से बना हुआ एक महल है। ईसवी सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह के समय नीमच के कईएक अँगरेज़-कुटुंबों को महाराणा स्वरूपसिंह ने अपने यहाँ शरण देकर सत्कार-पूर्वक इन्हीं महलों में रक्खा था। संध्या-समय जगमंदिर के बाग़ में अगणित तोते आकर बैठते हैं, जिससे वृक्षों के पत्ते ढके जाकर शुक-ही-शुक दीख पड़ते हैं, और ग्रीष्म में मौलसिरी के इतने पुष्प वृक्षों से गिरते हैं, मानो सुमन-वृष्टि हो रही हो। सरोवर के मध्य में स्थित होने से, सायंकाल के समय, बड़ी-बड़ी लहरों के हिलोरे के शब्द, एक ओर श्याम पहाड़ियों की अपूर्व शोभा, पक्षिगण का कलरव तथा सुमन-वृष्टि से यात्री के चित्त को एक अभूतपूर्व आनंद-लाभ होता है।

यदि जगमंदिर से पश्चिम में दृष्टि प्रसारित की जाय, तो जलाशय में दो छोटे-छोटे स्थान और भी दीख पड़ते हैं। उनमें से प्रथम टापू पर बना हुआ छोटा-सा अरसी-विलास महल है, जिसको महाराणा अरिसिंह द्वितीय (१८१७-१८२९) ने बनवाया था। यहाँ पर थोड़े-से वृक्ष हैं, जिनमें जल-मुर्ग़ियों के घोंसले हैं। और देखने

योग्य कोई बात नहीं है। अरसी-विलास से थोड़े ही अंतर पर जल में एक चबूतरा बना हुआ है, जिसे 'नटनी का चबूतरा' कहते हैं। इसके संबंध में यह किंवदंती प्रचलित है कि पुरातन काल में किसी महाराणा ने एक नट-कन्या से यह विचार प्रकट किया था कि यदि वह एक रस्से पर चलती हुई राजप्रासाद से सीसारमा-ग्राम तक, तालाब पर होकर, सफलता-पूर्वक पहुँच जायगी, तो उसको पारितोषिक-रूप आधी मेवाड़-भूमि प्रदान की जायगी। उस नट-पुत्री ने रस्से पर चलते हुए जब बहुत-सा मार्ग तय कर लिया, तब महाराणा के मंत्री को यह भय हुआ कि यदि वह सीसारमा-ग्राम तक पहुँच गई, तो महाराणा की विचार-शून्यता के कारण मेवाड़ को हानि उठानी पड़ेगी। इसी विचार को लक्ष्य में रखकर वह रस्सा कटवा डाला गया, और नट-कन्या तालाब में डूबकर मर गई, जिसका स्मारक यह चबूतरा बना हुआ है।

अब जगमंदिर से नाव पर फिर सवार होकर दक्षिण में थोड़ी दूर जाने पर सरोवर के दक्षिणी तट के पास बने हुए 'ख़ास ओदी'-नामक स्थान पर पहुँचते हैं। मेवाड़ी भाषा में 'ओदी'-शब्द का प्रयोग शिकारगाह के लिये किया जाता है। ख़ास ओदी पहले-पहल महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय ने, अठारहवीं शताब्दी में, बनवाई थी, और वर्तमान महाराणा साहब ने इसके साथ कुछ भवन और बनाकर इसकी सुंदरता बढ़ा दी है। यहाँ एक चौकोर भवन है, जिसके बीच में एक बड़ा चौक है, और कटहरेवाली छत पर बैठने तथा खड़े रहने के लिये स्थान। नीचे के चौक में सिंह और शूकर का युद्ध होता है, और उस छत पर दर्शक बैठते हैं, जहाँ से यह युद्ध देखने में बड़ा ही आनंद आता है। परंतु इसका आनंद प्रत्येक व्यक्ति को नहीं मिल सकता; क्योंकि यह अद्भुत युद्ध जब महाराणा साहब की इच्छा होती है, तभी होता है; और इस छत पर नियमित पुरुषों के बैठने-भर को ही स्थान है। सूर्यास्त के समय ओदी के महलों के नीचे शूकरों के लिये मकई (मक्का) डाली जाती है। उस समय वहाँ सैकड़ों शूकर दूर-दूर के जंगलों से आकर इकट्ठे हो जाते और खाते समय परस्पर ख़ूब लड़ते हैं, जिससे
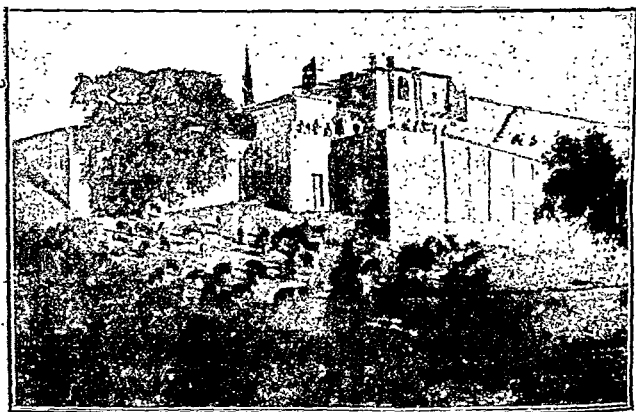
खास ओदी

(सीढ़ियों के पास सिंह-शूकर-युद्ध देखने का स्थान है। नीचे मकई खाते हुए सुअर हैं, जिन्हें महल के नीचे से दर्शक देख रहे हैं)

दर्शकों का बड़ा दिल-बहलाव होता है। इस स्थान पर सुअरों का शिकार नहीं होता। ख़ास ओदी से एक सड़क बबूल के जंगल में होती हुई नगर में, शिवनिवास-महल के समीप, आकर निकली है। ख़ास ओदी को इस सड़क से प्रत्येक मनुष्य जा सकता है, परंतु नाव द्वारा यहाँ पर आने के लिये राजकीय अनुमति की आवश्यकता रहती है।

ख़ास ओदी देखकर पूर्व में चलकर बड़ी पाल पहुँचना चाहिए। यही पीछोले का सुदृढ़ बाँध है। महाराणा भीमसिंहजी के समय (वि० सं० १८५२) में यह बाँध टूट गया था, जिससे नगर का कुछ पूर्वी भाग बह गया, और लोगों का बहुत नुक़सान हुआ। इससे महाराणा जवानसिंह (१८८५-१८६५) ने इसको ऐसा मज़बूत बना दिया कि अब इसके टूटने का डर नहीं रहा। बड़ी पाल के पास जल की सबसे अधिक गहराई है, जो अनुमान चालीस फ़ुट होगी। तदनंतर जलाशय के पूर्वी किनारे के पास-पास उत्तर की तरफ़ नाव से आना चाहिए। यह तो ऊपर लिखा जा चुका है कि राजमहलों की शृंखला तालाब के किनारे की पहाड़ी पर बनी हुई है, परंतु बड़ी पाल से उत्तर की ओर रवाना होने पर ठीक किनारे पर ही महाराणा स्वरूपसिंह के बनवाए हुए अखाड़े के महल हैं, जिनमें एक तरफ़ सेवा के ठाकुर पीतांबरराय का देवालय, और दूसरा गुलाबस्वरूपविहारी का मंदिर है, जिसको महाराणा स्वरूपसिंह की महारानी राठौड़ी ने बनवाया था। आगे चलने पर महाराणा भीमसिंह का बनवाया हुआ पार्वतीविलास महल मिलता है। पार्वतीविलास के बाद रसोड़े का महल, जिसकी नींव शाहज़ादे खुर्रम ने डाली थी, दिखाई देता है। इस महल का विवरण राजमहलों के साथ किया जा चुका है। बस, इस महल से कुछ ही आगे जाने पर गनगौर-घाट के त्रिपोलियाँ दरवाज़े पर नाव छोड़कर नगर में चले जाना चाहिए। इस प्रकार पीछोला-तालाब की आनंदमयी सैर, जिसमें कई अनुपम शोभा-युक्त स्थानों का दर्शन-लाभ होता है, समाप्त होती है।

(आगामी संख्या में समाप्य)

रामेश्वर-गौरीशंकर ओझा

संसक्ति तथा निराकरण

पिछले दिनों मुझे दो विचित्र घटनाओं का ज्ञान हुआ। ज़िला रावलपिंडी के उधर ऊटक-नदी के पास का इलाक़ा कैंपबेलपुर का ज़िला है। इस ज़िले की सारी आबादी प्रायः मुसलमानी है। कहीं-कहीं किसी गाँव या क़सबे में कुछ हिंदुओं के घर पाए जाते हैं, जिनकी अवस्था देखकर मनुष्य को दया आती है।

मैं अपने कमरे में बैठा था कि एक पढ़ा-लिखा भलामानस हिंदू नौजवान उसमें दाख़िल हुआ। वह मेरे पास इसलिये आया था कि मैं लाहौर की हिंदू-सभा का सभापति हूँ, और शायद उसके दुःख में उसकी सहायता कर सकूँ। उसका गाँव 'कोट भाई थानसिंह' के नाम से मशहूर है। नाम से तो यह गाँव हिंदू का बसाया हुआ मालूम होता है, किंतु, जैसा कि उसने कहा, गाँव की सारी ज़मीन का मालिक एक बड़ा मुसलमान ज़मींदार है। ज़मीन का मालिक होने से वह हरएक हिंदू-घरवाले से, जो वहाँ रहते और दूकानें भी करते हैं, साल में कुछ लगान वसूल करता है। सरकारी क़ानून ने उस ज़मींदार को इन हिंदुओं पर बड़ा अधिकार दे रक्खा है।

नए मुसलिम जोश का प्रभाव उस ज़मींदार पर भी जा पड़ा है, और वह अपनी शक्ति को अपने मज़हब के हित में लगाना चाहता है। पहले उसने इस बात का यत्न किया कि हिंदुओं की दूकानों को हटाकर वहाँ पर मुसलमान दूकानदार रक्खे जायँ। हिंदू दूकानदारों की सहायता तथा रक्षा का इस हिंदू नवयुवक ने बीड़ा उठाया। इस पर ज़मींदार को यह फ़िक्र लगी कि किसी तरह उसे गाँव से निकाल दिया जाय। इसलिये उसे हुक्म दिया कि वह उसकी ज़मीन से ख़ाली कर दे, और मकान का सब मलबा आदि उठाकर ले जाय। वह स्वयं ऐसा करने के लिये तैयार भी है, और उस गाँव को छोड़कर किसी अन्य स्थान में जा बसने में अपना सौभाग्य समझता है, यदि दूसरे ग़रीब हिंदू भाइयों की फ़िक्र उसे न सतावे। उनके पास बहुत धन नहीं ; वे कहाँ जायँगे, और क्या करेंगे ? इसलिये ज़मींदार के साथ मुक़दमा

लड़ने में उसने कई हज़ार रुपए ख़र्च कर दिए हैं। अब उसका मुक़द्दमा लाहौर की ऊँची अदालत में होगा। इसी उद्देश से वह लाहौर आया था। अपने इलाक़े के हिंदुओं की दुर्दशा की कथा सुनाकर वह कहने लगा—"वहाँ पर न तो हमारा धर्म सुरक्षित है, न इज़्ज़त। न हम अपने मकानों में रह सकते हैं, और न हम अपना काम-काज स्वतंत्रता-पूर्वक कर सकते हैं।" अंत में उसने यह कहा कि हिंदू-सभा को हम सबकी सहायता करनी चाहिए।

मेरा दिल उसकी दुःख-भरी कहानी से बहुत शोकातुर हो गया। मेरी सहानुभूति उसके साथ थी। परंतु मैं देखता था कि हमारे यहाँ के हिंदू वकील तथा दूसरे धनाढ्य उन विपद्ग्रस्त भाइयों के लिये कुछ करने को तैयार न होंगे। मैंने उससे इतना ही कहा—"जो कुछ तुम कहते हो, सब ठीक है। तुम दुःख में हो; तुम्हें अपना दुःख हिंदू-जाति का दुःख मालूम होता है। परंतु तुम उन हिंदुओं से तो जाकर पूछो, जिन्हें इस प्रकार की कोई तकलीफ़ नहीं है। वे न तो हिंदू-सभा की आवश्यकता का अनुभव करते हैं, और न उन्हें हिंदू-संगठन ही आवश्यक जान पड़ता है।"

शाम को मैं हिंदू-सभा के कार्यालय में जाया करता हूँ। इसी सप्ताह एक शाम को जब मैं कार्यालय में पहुँचा, तब वहाँ पर एक बुढ़िया बैठी हुई थी। पता लगाने पर मालूम हुआ कि वह भी उसी मुसलमानी ज़िले—कैंपबेलपुर—से संबंध रखती है। किराए के लिये माँगती और धक्के खाती हुई वह लाहौर आ पहुँची, और सीधी हिंदू-सभा के कार्यालय में आ गई। चपरासी ने उससे कहा—"जो कुछ तुमको कहना है, इन(मुझ)से कहो।" हाथ जोड़े फूट-फूटकर रोती हुई वह अपनी कथा कहने लगी—"कैंपबेलपुर के ज़िले में 'बहेतर' मेरा गाँव है। वहाँ का मुसलमान ज़मींदार बड़ा ज़बरदस्त है। मेरी बीस बरस की जवान ब्याही हुई लड़की उसने ज़बरदस्ती उठवा मँगाई है। आस-पास के गाँव के मुसलमान सब उसके बंदे हैं। उस लड़की को उसने कई महीनों से छिपा रक्खा है। मुझे न नींद आती है, न भूक लगती है। जो कुछ मेरे पास था, ज़ेवर और सामान, सब मुक़द्दमे में ख़र्च हो गया। कोई हिंदू डर के मारे मेरी सहायता नहीं करता। अब मैं कंगाल भिखारिन बन गई हूँ, और अपने कलेजे के टुकड़े को देखने के लिये तरसती हुई भटकती फिरती हूँ।" मैंने उससे कहा—"बताओ, मैं तुम्हारी किस तरह सहायता कर सकता हूँ? हिंदू-सभा तुम्हारे लिये क्या कर सकती है? तुम यहाँ किस ग़रज़ से आई हो?" वह रोती हुई कहने लगी—"मुझे रावलपिंडी में बताया गया है कि तुम लाहौर में जाओ। वहाँ पर कोई महात्मा हैं, जो तुम्हारे दुःख का इलाज करेंगे।"

मैं सोचने लगा, ऐसी घटनाओं का क्या इलाज हो सकता है। पंजाब में मुसलमानी राज्य-काल में ऐसी घटनाएँ आम तौर से हुआ करती थीं। परमात्मा ने एक 'वैरागी वीर' को हिंदुओं के दुःख-निवारण के लिये प्रेरणा की। उसका तरीक़ा तो सीधा था। जब कोई रोता हुआ दुखिया उसके पास आता, और अपने दुःख की कहानी कहता, तब एक जत्था * उसके साथ रवाना हो जाता, और अपने बाहु-बल से उसके दुःख को दूर कर देता। एक आदमी ने मुझसे कान में कहा—"ऐसी घटनाएँ तो सदा होती ही रहेंगी। इसी कारण हर रोज़ सरकारी अदालतों में मुक़द्दमे चलते हैं। यह तो केवल व्यक्तिगत मामला है; इसे रोकना समाज का काम नहीं। क्या अन्य देशों में ऐसी घटनाएँ नहीं होतीं?" ये शब्द सुनकर मैं चौंक उठा। मैं इसे कोई व्यक्तिगत बात नहीं समझता। मुझे तो इसमें अत्याचार पर तुले हुए एक मज़बूत समाज का दूसरे कमज़ोर समाज पर अत्याचार दिखाई देता है। ऐसी कोई घटना उस प्रांत में कभी सुनने में नहीं आती, जिसमें मुसलमानों का ज़ोर-ज़ुल्म न हो। ज्यों-ज्यों हम सीमा-प्रांत के ज़िलों की ओर बढ़ते हैं, हमें इसके अधिक उदाहरण मिलते हैं। और, बन्नू, कोहाट आदि ज़िलों में तो यह आए-दिन का मामला है। स्वतंत्र इलाक़े के पठानों का तो यह एक पेशा बन गया है। वे अकेले-दुकेले हिंदू स्त्री-पुरुष को उठाकर ले जाते और फिर उसकी मुक्ति के बदले में हज़ारों रुपए माँगते हैं। यदि रुपए न मिले, तो उसे ज़बरदस्ती इस्लाम की दीक्षा दी जाती है।

संभव है, उक्त लड़की को उठा ले जानेवाले दो-तीन आदमी हों; परंतु सारे इलाक़े के मुसलमान उन्हें सब तरह की सहायता देने को तैयार हैं। उनमें से कोई भी ऐसा न होगा, जो इसे बुरा समझता हो। केवल यही नहीं, बल्कि उन गाँवों में जितने हिंदू रहते हैं, वे मुसलमानों से इतना डरते हैं कि उनमें से कोई भी इस

---

* इसी उद्देश से उसके पास सदा कई जत्थे तैयार रहते थे।

अत्याचार के विरुद्ध एक शब्द कहने अथवा अदालत में जाकर गवाही देने को तैयार नहीं हैं।

थोड़े ही समय की बात है कि एक हिंदू नौजवान ने एक मुसलमान लड़की को शुद्ध कराने के पश्चात् उससे विवाह कर लिया था। यदि ऐसी घटनाएँ व्यक्तिगत होतीं, तो इस घटना को भी साधारण बात समझकर इसे छोड़ दिया जाता। परंतु ऐसा नहीं हुआ। उधर के मुसलमान इस बात को कभी नहीं सह सकते कि किसी हिंदू को इतना सिर उठाने का साहस हो। एक मुसलमान पीर ने सिर्फ़ इशारा ही किया, और गाँव के दो-तीन हज़ार मुसलमान इकट्ठे हो गए। उन्होंने पत्थरों से देवकीनंदन की हत्या कर डाली। पुलिस ने कुछ आदमियों को गिरफ़्तार किया। परंतु किसी के भी विरुद्ध कोई सबूत नहीं मिला, और वे सब छोड़ दिए गए।

जो मनुष्य ऐसे उदाहरणों पर विचार करेगा, वह इस परिणाम पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता कि ये घटनाएँ किसी एक व्यक्ति का अच्छा या बुरा कर्म नहीं हैं, बल्कि यह उस संगठित समाज का एक कर्म है, जिसके हृदय में ग़ैर-मज़हब के अनुयायियों के लिये दया या आदर का भाव नहीं पाया जाता। मुझे बड़े ज़ोर की आवाज़ सुनाई पड़ रही है—"क्या हुआ? हिंदुओं को चाहिए कि वे ऐसे निर्दय शत्रुओं के साथ भी दया का बर्ताव करें। हमारा दया-भाव उनकी निर्दयता को दूर कर देगा, और तब ये झगड़े समाप्त हो जायँगे।"

अहिंसा-सिद्धांत की यह सीमा है, जिसके कारण हम सबसे बड़े हिंस्र प्राणी के सामने झुक जाते हैं, और उसके अत्याचार को रोकने के लिये अपना हाथ नहीं उठाते। मुझे खेद है कि मैं इस तर्क को मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। इसका एक कारण यह है कि यह बात मुझे प्रकृति-विरुद्ध दिखाई देती है। प्राणियों में हम देखते हैं कि सृष्टि के आरंभ से भेड़िए भेड़ों को खाते चले आए हैं। किंतु अभी तक न तो भेड़िए के स्वभाव में परिवर्तन हुआ है, और न भेड़ में ही शक्ति आई है। दूसरा कारण यह है कि यह तो सामान्य बुद्धि का मनुष्य भी समझ सकता है कि जब एक बलवान् मनुष्य या समाज दूसरे के सामने झुकता है, तब उस झुकने को नम्रता-भाव-सूचक समझकर आदर की दृष्टि से देखा जाता है। किंतु जब झुकनेवाला भय के कारण दबता है, तब वह उसकी निर्बलता समझी जाती और वह घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। सच्चा दया-भाव केवल उस हृदय में उत्पन्न हो सकता है, जिसके अंदर पहले बल पाया जाता हो। निर्बल हृदय के अंदर दया ऐसी निर्बलता है, जो उसे पहले से भी अधिक कमज़ोर बनाती है। तीसरा कारण यह है कि मैं अहिंसा का अर्थ केवल यही नहीं समझता कि किसी को दुःख न दिया जाय। किसी को दुःख न देना केवल अहिंसा का एक अंग है। अहिंसा का दूसरा अंग यह है कि मेरे अंदर इतना बल होना चाहिए कि कोई दूसरा मुझे दुःख न पहुँचा सके। जब मैं इतना कमज़ोर हूँ कि अपने बलवान् साथी के साथ चलता हुआ गिर-गिर पड़ता हूँ, तब भी हिंसा करने का भागी हूँ। अहिंसा का तीसरा अंग यह है कि मेरे अंदर इतनी शक्ति हो कि मेरे सामने कोई किसी को दुःख न दे सके। मैं देख रहा हूँ कि मेरे गाँव में लूट मच रही है, और स्त्रियों पर हाथ डाला जा रहा है, तब यदि मैं उसे रोकने का प्रयत्न नहीं करता, तो अहिंसक होने के बजाय हिंसक बन जाता हूँ। दूसरे शब्दों में यह कहना उचित होगा कि अहिंसा को दूसरे रूप में देखने से दया और न्याय, दोनों एक बन जाते हैं। अहिंसा का पहला अंग दया है—यह एक बिलकुल निकम्मा भाव है। जो मनुष्य केवल इसी भाव का प्रचार करता है, वह भूल करता है, चाहे वह महात्मा बुद्ध ही क्यों न हो। चिरकाल से दार्शनिकों में इस बात की चर्चा चली आ रही है कि दया और न्याय में कौन उत्तम है। हर्बर्ट स्पेंसर ने भी इस विषय की बड़ी अच्छी व्याख्या की है। मैं समझता हूँ, दया अहिंसा का एक अंग है, और इसमें शेष दो अंगों के सम्मिलित रहने से बल और न्याय आ जाते हैं। इस दृष्टिकोण से देखने से हमें मालूम होता है कि धर्म-शास्त्र में दुष्टों को दंड देने के लिये न्याय के जो नियम बनाए हैं, उनके अंतस्तल में अहिंसा-भाव ही काम करता है।

जो समाज इतना बलवान् नहीं कि दूसरों के साथ न्याय का बर्ताव कर सके, उसमें दया का प्रचार करना उसे ज़हर पिलाना है। मैं चाहता हूँ, संसार में अहिंसा और भ्रातृभाव का प्रचार हो। परंतु इसके साथ ही मैं यह भी चाहता हूँ कि हिंदुओं में इतना बल हो कि वे अहिंसाभाव को दुनिया में क़ायम रख सकें। मैं यह मानता हूँ कि यह बल केवल जातीय संगठन से पैदा हो सकता है। सब

तरह के पुण्य कर्म तथा धर्म एक ओर हैं, और जातीय संगठन दूसरी ओर। मेरी सम्मति में संगठन का पलड़ा भारी रहता है। जहाँ संगठन नहीं होता, वहाँ सब पुण्य और धर्म व्यर्थ हो जाते हैं। और, जिस जाति में संगठन पाया जाता है, चाहे उसमें पुण्य कर्म तथा धर्म न हों, अथवा कम हों, वह जीवित रह सकती तथा बढ़ सकती है। संगठन के बिना कोई समाज नहीं बन सकता। जिस समाज में संगठन जितना अधिक होता है, उतना ही वह बलवान् और सुदृढ़ होता है।

प्रकृति में दो मुख्य तथा परस्पर-विरोधी नियम काम करते हैं—संसक्ति (मिलना) तथा निराकरण (अलग होना)। वैज्ञानिकों का कहना है कि सृष्टि के आरंभ में यह ब्रह्मांड परमाणुओं का अथाह और असीम समुद्र था। पहले उसके अंदर गति हुई। तत्पश्चात् गति के दो रूप हो गए—संसक्ति तथा निराकरण। इन दोनों गतियों के होने से परमाणु पृथक् होते गए, और एकत्र भी। परिणाम-स्वरूप सूर्य, पृथ्वी, चंद्र आदि असंख्य लोक बन गए। संसक्ति के कारण ही ये लोक अपने-अपने रूप में चल रहे हैं। संसक्ति के निश्चित हो जाने पर अब इनमें निराकरण बढ़ जायगा, तब प्रलय का आरंभ होने से इनके विनाश का आरंभ हो जायगा।

मनुष्य-जाति में भी यही दो गतियाँ काम आती हैं। इन्हीं के कारण मनुष्य भिन्न-भिन्न जातियों में बँटा है। जिस जाति में संसक्ति-बल अधिक मात्रा में होता है, वह बलवती होती है, एवं जिसके अंदर निराकरण बढ़ने लगता है, उसका पतन शुरू हो जाता है। मनुष्य-समाज की अवस्था में प्रकृति-नियम से इतना भेद है कि मनुष्य-समाज में संसक्ति को नए सिरे से उत्पन्न किया जा सकता है। कई जातियों में, जो पतन के मार्ग पर अग्रसर थीं, बाह्य शत्रुओं के भय अथवा युद्ध या आंतरिक सामाजिक विप्लव के कारण बल उत्पन्न हुआ।

हिंदू-जाति में इस समय निराकरण की गति काम कर रही है। इस जाति की रक्षा का एक-मात्र उपाय यह है कि निराकरण का बल मिटाकर उसमें संसक्ति का संचार किया जाय।

हिंदू-संगठन का आंदोलन इसी अभिप्राय से शुरू किया गया है। हिंदू-मात्र का धर्म है कि वह इस आंदोलन में सम्मिलित होकर तन, मन तथा धन इसके अर्पण कर दे।

भाई परमानंद

वेश-भूषा में शिष्टाचार

आजकल जब कोट, पतलून, टोप, कालर, नेकटाई और अर्द्ध पतलून का साम्राज्य है, तब किसी को यह बतलाना प्रायः व्यर्थ ही है कि उसे देश, काल और पात्र के अनुसार कपड़े पहनने चाहिए। इन दिनों सर्व-साधारण की, विशेष कर सरकारी नौकरों की, यह धारणा है कि प्रतिष्ठा और पद की प्राप्ति अँगरेज़ी पोशाक पर निर्भर है। यह धारणा मिथ्या नहीं है; क्योंकि उच्च सरकारी नौकरी के लिये विदेशी पोशाक होना बहुधा एक आवश्यक गुण माना जाता है। और कुछ लोग तो केवल पोशाक की प्रभुता ही से प्रतिष्ठित पदों पर स्थापित हो गए हैं। प्रायः ऐसे ही कई कारणों से देशी लोग भी अपने देशी पहनावे का विशेष आदर नहीं करते। विदेशी शासन, जिसे विजित जाति में अपनी सभ्यता, अपनी भाषा और अपनी पोशाक प्रचलित कराने में आनंद प्राप्त होता है, इस रुचि-भिन्नता का विशेष कारण है। यद्यपि मनुष्य की योग्यता बहुधा पोशाक से जानी जाती है—वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः—तथापि उसके लिये विलायती पोशाक अनिवार्य नहीं है। आज भी हिंदोस्तानी समाज में आधे से अधिक लोग अपना पहनावा पहनते हैं, चाहे वह नगर का हो, चाहे ग्राम का। श्रीमान् मालवीयजी-सदृश सज्जन आज भी अपनी पोशाक पहने हुए उच्च प्रतिष्ठा और पद के पात्र हैं। टोप और नेकटाई मालवीयजी की प्रतिष्ठा बढ़ाने में समर्थ नहीं हो सकते।

अँगरेज़ी पोशाक का प्रचार संसार में प्रायः सर्वत्र बढ़ रहा है। ऐसी अवस्था में जिन हिंदोस्तानी लोगों ने इस विदेशी पहनावे को ग्रहण कर लिया है, उनसे उसे, इष्ट होने पर भी, छुड़वाना साध्य नहीं है। तथापि इतना अवश्य हो सकता है कि वे इस पोशाक के साथ अपनी जातीयता का कोई चिह्न सुरक्षित रख सकते हैं। नेकटाई अँगरेज़ों का निजी धार्मिक चिह्न है, जिससे ईसा मसीह के क्रूस का बोध होता है। अतएव हिंदोस्तानी हिंदुओं को उसे छोड़ देना चाहिए। केवल उसे छोड़ देने से उनके वेतन में संभवतः कोई कमी न होगी, और न वे ऊँचे पदों से वंचित रक्खे जायँगे। साथ ही वे, समय पड़ने पर, अँगरेज़ों और ईसाइयों से, जिनमें नेकटाई का विशेष प्रचार है, अलग समझे जा सकेंगे। पराधीनावस्था में भी कुछ स्वाधीनता लिए रहना गौरव और साहस का चिह्न है। नेकटाई के सिवा उन्हें टोप लगाना भी छोड़ देना चाहिए। उसके बदले साफ़ा बाँधने अथवा टोपी लगाने से वे अपनी जातीयता का, कम-से-कम, एक चिह्न स्थिर रख सकेंगे। लाला लाजपतराय-सरीखे सज्जनों को उनके साफ़े ही के कारण हम लोग "अपना" समझ सकते और समझ रहे हैं। ऐसे स्थान में पहुँचने पर, जहाँ हमारा कोई न हो, हम केवल अपनी भाषा सुनकर तथा अपना भेष देखकर ही कुछ ढाढ़स पा सकते हैं। यदि हमें वहाँ इन दोनों चिह्नों में से एक ही चिह्न मिल जाय, तो भी हमारे प्रबोध की सीमा न रहे। अतएव जातीयता और जाति-प्रेम की दृष्टि से हैट और नेकटाई धारण करनेवाले हिंदोस्तानियों का यह प्रधान कर्तव्य है कि वे इनके बदले वेश-भूषा में अपने एक-दो चिह्न अवश्य रक्खें।

धार्मिक और सामाजिक उत्सवों में हम लोगों को अपना ही पहनावा पहनना चाहिए। यदि कोई हिंदोस्तानी हाफ़ पैंट पहनकर मंदिर में पूजा करेगा, अथवा कन्यादान देगा, तो लोग उसकी दासता को धिक्कारेंगे, और उसके स्वाँग पर तालियाँ पीटेंगे। घर में भी हमें बहुधा अपनी जातीय पोशाक में रहना चाहिए।

आजकल बंगालियों का अनुकरण कर हम लोगों में से कुछ लोगों ने खुले सिर रहना स्वीकार कर लिया है। पर हिंदोस्तानी समाज में यह चाल अशिष्ट और अशुभ समझी जाती है। घर से थोड़ी दूर तक इस अवस्था में जाने से हानि नहीं है; पर बाज़ारों अथवा दूसरे मुहल्लों में इस तरह जाना या फिरना अनुचित है। बड़ी अवस्था के शिक्षित लोगों को केवल कुरता पहनकर बाहर जाना भी योग्य नहीं है।

जहाँ तक हो सके, पोशाक देशी कपड़े की हो। आजकल विदेशी वस्त्र का व्यवहार बहुधा अशिष्ट समझा जाता है। यदि देशी सूत का कपड़ा न मिले, तो कम-से-कम देशी पुतलीघरों का कपड़ा काम में लाया जाय। देशी पोशाक के समान, धार्मिक और सामाजिक कृत्यों में, देशी कपड़े का उपयोग आवश्यक और उचित है।

वस्त्रों की बनावट देश की चाल के अनुसार और उपयुक्त हो; पर उसमें बेल-बूटे आदि न रहें। चमकीले तथा भड़कीले कपड़ों का उपयोग बहुत कम किया जाय। रंगों के चुनाव में भी यह ध्य न रखना चाहिए कि वे गहरे न हों। मूल-रंगों की गहराई और भी वर्जनीय है।

कपड़ों के उपयोग में उपयोगिता और शोभा का ध्यान तो रहता ही है, पर इस बात का भी

विचार रक्खा जाय कि शरीर के आवश्यक अंग ढके रहें।

पात्र की अवस्था के अनुसार पोशाक होनी चाहिए। कोई-कोई बूढ़े लोग तरुण पुरुषों के-से सटे हुए और कोई-कोई तरुण पुरुष बूढ़े लोगों के-से ढीले कपड़े पहनते हैं। ऐसा पहनावा बुरा दिखाई देता है। साधारण स्थिति के लोगों को धनाढ्यों अथवा उच्च पदाधिकारियों के समान पोशाक पहनना उचित नहीं। एक बार कचहरी में एक महाशय ऊँचे दरजे की पोशाक पहनकर एक नए आए हुए न्यायाधीश से मिलने गए। न्याया-धीश ने इनसे हाथ मिलाया, और इन्हें अपने बराबर कुरसी देकर इनका उचित सत्कार किया। पीछे जब न्यायाधीश को मालूम हुआ कि सत्कृत सज्जन केवल दफ़्तरी हैं, तब उन्हें इन सज्जन को अपनी अदालत से दूसरी जगह बदलवा देना पड़ा। ऐसी अवस्था के विरुद्ध यह भी न होना चाहिए कि कोई उच्च श्रेणी का मनुष्य साधारण लोगों के-से वस्त्र धारण करे।

बाज़ारी लोगों और गुंडों की एक विशेष प्रकार की पोशाक होती है, जिससे वे तुरंत पहचान लिए जाते हैं। इस प्रकार के परिधान से प्रत्येक शिक्षित और सभ्य व्यक्ति को बचना चाहिए। इस प्रकार की वेश-भूषा निंदनीय समझी जाती और इसे धारण करनेवाले व्यक्ति की ओर से लोगों की श्रद्धा हट जाती है।

कुछ सरकारी विभागों में कर्मचारियों की एक विशेष रूप की पोशाक रहती है, जिसे "वरदी" या "दरेस" कहते हैं। इस वेश-भूषा का अनुकरण केवल शिष्टाचार ही की दृष्टि से नहीं, किंतु क़ानूनी दृष्टि से भी वर्ज्य है।

दूसरी जातियों की पोशाक का अनुकरण करना भी शिष्टाचार के विपरीत है। मुसलमानों में साधारणतः रूमी टोपी का प्रचार है, जिसे कोई-कोई हिंदू भी व्यवहार में लाते हैं, पर यह अनुचित है। कुछ सरकारी महकमों में यह टोपी "दरेस" में शामिल कर दी गई है, जो न होना चाहिए था।

वस्त्रों की उपयोगिता जितनी आवश्यक है, उतनी ही उनकी स्वच्छता भी इष्ट है। बहुमूल्य वस्त्र भी स्वच्छता के अभाव में शोभा की सामग्री नहीं हो सकते। केवल स्वास्थ्य ही की दृष्टि से नहीं, किंतु शिष्टाचार की दृष्टि से भी स्वच्छ वस्त्र धारण करना कर्तव्य है। मैले वस्त्र पहनना धार्मिक दृष्टि से भी निंदनीय है; क्योंकि वे अशुभ समझे जाते हैं।

जिन्हें सामर्थ्य हो, उन्हें क़म-से-कम चार जोड़ी कपड़े अवश्य रखने चाहिए, जिसमें वे उन्हें प्रति सप्ताह बदल सकें। एक ही जोड़ी कपड़े को बार-बार धुलाकर पहनना दरिद्रता का सूचक है। जो लोग दिन में चार बार कपड़े बदलते हैं, वे तो शिष्टाचार को परा काष्ठा तक पहुँचा देते हैं; पर जो सज्जन एक ही कपड़े को महीनों पहने रहते हैं, वे शिष्टाचार को बढ़ने ही नहीं देते।

विशेष अवसरों पर विशेष प्रकार की पोशाक पहनना शिष्ट समझा जाता है। यदि इस समय लोग प्रति दिन की पोशाक पहनते हैं, तो दूसरों को इस बात से असंतोष होता है। विशेष आदर-णीय स्थान में, अथवा विशेष आदरणीय पुरुष के पास, साधारण परिधान में जाना उस स्थान और पुरुष का निरादर करना है।

कपड़े बेमेल न पहने जायँ। कुछ अनुत्तरदायी, पराधीन-प्रकृति सज्जनों ने धोती के साथ टोप लगाने की रीति चलाई है। इसी तरह कोट के

साथ-सटा हुआ पैजामा भी बेमेल समझा जाता है। अँगरखे के साथ पतलून नहीं सोहती, और नेकटाई के साथ दिल्ली के जूते अच्छे नहीं लगते। कोट-पतलून पहनकर ऊपर से अलवान ओढ़ना भद्दा दिखाई देता है।

तिरछी टोपी लगाना अथवा उसे लगाकर बालों की माँग या अलकें दिखाने का प्रयत्न करना गुंडेपन का चिह्न है। साफ़ा अथवा पगड़ी भी तिरछी न बाँधी जाय। कोट के बटन या अँगरखे की तनियाँ खुली रखना अशिष्ट समझा जाता है। धोती पहनने में काँछ का एक छोर बाहर निकालना शिक्षित-समाज में अच्छा नहीं दिखता। कोट-धारियों को इस बात का विचार रखना चाहिए कि कोट की लंबाई कटि पर ही समाप्त न हो जाय। कोट कम-से-कम जंघा के मध्य भाग और अँगरखा घुटनों के ऊपर तक लंबा होना चाहिए।

कई पतलून-प्रेमी सज्जन धोती के ऊपर पतलून पहनकर पीछे एक पोटली-सी बाँधे फिरते हैं। इन बेचारों को एक ओर अपने धर्म की रक्षा और दूसरी ओर पराधीनता के प्रभाव का सहन करना पड़ता है। इसलिये इन्हें इस बात की सुध नहीं रहती कि

"हम कौन हैं, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी।"

विदेशी भेष धारण करनेवाले कुछ महाशय दिन को ही नाइट-कैप (रात्रि की टोपी) लगाते हैं। ये सज्जन पराधीनता-पाश में फँसकर एक ही समय में शिष्टाचार के विरुद्ध तीन-तीन अपराध करते हैं। जिसे अपनेपन का ध्यान नहीं, वह जो कुकर्म न करे, सो थोड़ा।

वेश-भूषा के साथ केशों की भी कथा कह डालना अनुचित न होगा। कुछ हिंदू चोटी कटा डालते हैं। उन्हें अँगरेज़ी ढंग के बालों के साथ चोटी कदाचित् असंगत जान पड़ती है। बंगाली भाई चोटी न रखने पर भी अपना बंगालीपन कुछ-न-कुछ लिए ही रहते हैं; पर हमारे हिंदुस्थानी भाई बिना चोटी के बहुधा जाने नहीं जाते कि ये कौन जाति हैं। जो हिंदुस्थानी चोटी कटाकर दाढ़ी रखते हैं, वे तो और भी विपन्नावस्था में हैं। हिंदू-मुसलमानों के झगड़े में वे दोनों ओर से पीटे जा सकते हैं। अपनापन त्यागने से मनुष्य दोनों दीन से जाता है।

कुछ लोगों को मुछ-मुंडा बनने की धुन सवार है, और कुछ की अधकटी मूछें ऐसी दिखाई देती हैं, मानो उनमें दीमक लग गई हो। ऐसे भेषवालों को कभी-कभी यह लाभ अवश्य हो जाता है कि गाँववाले अथवा अपढ़ लोग उन्हें अधगोरे या किरानी समझकर उनसे डर जाते हैं; पर शिक्षित लोग उन्हें बहुधा टिनपटिया समझने लगते हैं।

केश-किरीट पुरुषों और स्त्रियों की शोभा है। अतएव उसे अनेक प्रकार से सँवारने की रीति प्रचलित है। आजकल पुरुषों में बहुधा छोटे बाल रखने की रीति पाली जाती है; पर अँगरेज़ों की देखादेखी, अधिकांश में, आगे कुछ बड़े बाल रक्खे जाते हैं। इस प्रकार के केश-कलाप में सबसे अधिक तिरस्कृत वह रीति है, जिसमें आगे तो बालों का घोंसला-सा रहता है, और शेष भाग में छोटी दूब का मैदान-सा दिखाई देता है। इस प्रकार के बाल किसी-किसी जगह महतरों में भी प्रचलित हैं।

कामताप्रसाद गुरु

भाग्य का तारा

सैकड़ों तारे गगन में छा रहे;
हास्य की धारा अपूर्व बहा रहे।
पूछ लो उनसे, हमारे भाग्य का
है सितारा कहाँ, कैसा, क्या कहे।
भाग्य के तारे! तुझे जो जानता,
फिर सिवा तेरे किसे मैं मानता?
छोड़कर पूजा सभी देवादि की,
एक तेरा ध्यान ही बस, ठानता।
देख पाऊँ जो तुझे, तो सच कहूँ,
साथ तेरे छोर तक जग के रहूँ।
तेज में तेरे नयन-तारे मिला,
तब अनंत प्रवाह में हरदम बहूँ।
भाग्य-तारे, जो पकड़ पाता तुझे,
गगन-तल से खींचकर लाता तुझे।
क़ैद करता हृदय-नभ में यत्न से,
उदय की फिर रीति सिखलाता तुझे।
ज्ञान का उपवन, बिना तेरी दया,
कंटकों से व्याप्त वन-सा बन गया।
कृपा की जो कोर मिल जावे कहीं,
तो खुले साम्राज्य फिर बिलकुल नया।
तुम दया करना न जानो, दो डरा,
तो मुझे भी ईश का है आसरा।
हाथ में मेरे तुम्हारे भाग्य का
सूत्र हो, देखो तमाशा फिर ज़रा।
देखना फिर क्या नचाता नाच हूँ,
बोल जाए न्याय क्षण में—सच कहूँ।
मूल्य जानोगे दया का तुम सभी,
यों नहीं—चाहे मरण तक या चहूँ।
भाग्य मेरे की धरोहर सौंपकर,
क्या विधाता ने कहा था आह भर—
"कष्ट देना ही उचित है बस, इसे,
तर्स खाना तुम न इसके हाल पर?"
हाथ में लेते उसे फिर टेकते,
हो झटकते फिर उसे—यों खेलते।
कस रहे हो भाग्य की क्यों डोर यों,
ढील देकर तो ज़रा रँग देखते।
ख़याल मुझको कष्ट का अपने नहीं,
कष्ट से क्या मर्द भी डरते कहीं?
डर यही है, अधिक खींचे से वहीं
टूटकर दो टूक वह होवे नहीं!

भुवनारायण दीक्षित

हज़रत रियाज़

रियाज़ की शायरी पर कुछ लिखना कठिन काम है। इस समय उर्दू में कई अच्छे कवि हैं, जिनका नाम दूसरी भाषा के श्रेष्ठ कवियों के साथ लिया जा सकता है। उनकी कविताएँ उच्च कोटि की कविता का उदाहरण हैं। आध्यात्मिक संकेत, दार्शनिक विचार, पवित्र और निर्विकार प्रेम, करुण भाव, काव्यमय कटाक्ष, दूर की वस्तुओं का सूक्ष्म आंतरिक संबंध, मर्मस्पर्शी कल्पना, हृदय की व्यथा, सरसता, कोमलता और शब्द-संगीत, ये सब गुण इन कवियों की कविता में हैं। लेकिन रियाज़ इन सबसे निराले हैं। वह सबसे अनूठे हैं। और, अनूठे की व्याख्या सहज नहीं। मतवाले के झूमने का रहस्य कौन बता सकता है? चढ़े हुए नशे की व्याख्या क्या हो सकती है? वह छेड़-पर-छेड़ करता जाता है, ठठोली कर रहा है, रूठ जाता है, मन जाता है, और रह-रहकर पत्ते की कह जाता है। उर्दू-शायरी के आसमान पर रियाज़ एक मतवाली घटा है, जो झूमती हुई बौछारें करती जा रही है। कभी-कभी बिजली भी उस घटा में चमक जाती है, तो आँखों को चौंधिया देती है। वह बिजली कवि की चपल कल्पना है, जिसका काम ही चिनगारियाँ उड़ाना है। रियाज़ अपने सहयोगियों के दिलों की कसक और मसोस और इनकी व्याख्या से परे हैं। उनकी मस्त आत्मा छुट्टी मना रही है, और इस छुट्टी की अवधि उतनी ही विस्तीर्ण है, जितनी उनकी आत्मा। इन्हें दिल थामकर बैठने की अपेक्षा माशूक़ को अपना चुलबुला दिल दिखलाकर ललचाना अधिक प्रिय है; अपने खोए हुए दिल की याद में ठंडी साँसें भरने की अपेक्षा माशूक़ को दिल की चोरी लगाने में ज़्यादा मज़ा आता है। रियाज़ ने उर्दू-शायरी में दिल

की दुनिया ही पलट दी है। वह माशूक़ के सौंदर्य और उसकी अदाओं पर लोट-पोट हैं; लेकिन अपनी लहर में माशूक़ को ऐसा अपनाए हुए हैं, और उस पर ऐसे छाए हुए हैं कि उससे छेड़ और चुहल करना और उसे लजा देना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। रियाज़ की कविता वास्तव में एक रास है, जहाँ प्रेम और सौंदर्य की अनेक लीलाएँ नज़र आती हैं। वह माशूक़ की अदाओं से उलझते हैं, उससे रार करते हैं, उसके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म कटाक्ष देख लेते हैं, और उसके गुप्त-से गुप्त भाव भाँप जाते हैं। वह जानते हैं कि सौंदर्य प्रेम से भाग-कर उसका पीछा करता है। वह उसे ललचाता है, उसे अपनी राह पर लगाता है, वह उससे हार मनवाकर दम लेता है। मर्मज्ञ प्रेम भोले सौंदर्य पर विजय प्राप्त करता है। रियाज़ के लिये जीवन प्रेम और सौंदर्य की लाग-डाँ है। उनकी आत्मा प्रिया से होली खेलती है। उनका दिल खून भी होता है, तो उनकी चपल कल्पना उससे चिनगारियाँ उड़ा देती है। वह आहें भी करते हैं, तो एक अंदाज़ के साथ। माशूक़ की कमर से कम लचक उनकी आहों में नहीं है। वह अपनी टेक नहीं छोड़ते। वह शरारत के पुतले हैं, और कभी चूकते नहीं। उनकी छेड़ माशूक़ को चिढ़ाती भी हैं, और उसे मुग्ध भी कर लेती हैं।

हज़रत रियाज़

रियाज़ के सहयोगी जीवन का रहस्योद्घाटन करते हैं। मगर रियाज़ स्वयं एक रहस्य बनकर हमारे सामने आते हैं। औरों के यहाँ जीवन की व्याख्या है, और वह अत्यंत ललित और मर्मज्ञता-पूर्ण है; पर रियाज़ स्वयं जीवन हैं। ऐसा चंचल कलाम उर्दू-शायरी में मीर के समय से आज तक देखने में नहीं आया था। उर्दू-शायरी में छेड़-छाड़, शोख़ी, चुलबुलापन, मुआमलाबंदी रियाज़ के सिवा और भी तीन कवियों के यहाँ है। वे कवि हैं जुरअत, इंशा और दाग़। जुरअत और इंशा की कविता में यह गुण होने पर भी ओछापन और बाज़ारी-पन है। दाग़ आगे बढ़े हैं। उनके कलाम में एक बेबाकी और तीखा-पन है, जो एक ख़ास रंग पैदा कर देता है। मगर रियाज़ इन सब-से आगे गए हैं, और बहुत आगे गए हैं। शायरी में अमीर मीनाई के ख़ानदान में होने का उन्हें यह फ़ायदा हुआ कि जो नज़ाकत लखनऊ की सभ्यता की जान थी, वही नज़ाकत कूट-कूट-कर रियाज़ की ज़बान में भी भरी हुई है। इसके अलावा माशूक़ की अदाओं, भावों और कटाक्षों का निरीक्षण इतनी सूक्ष्म दृष्टि से और किसी ने नहीं किया था कि वह ओछे को भी गंभीर बना दे। रियाज़ ने रहस्य-पूर्ण को स्पष्ट और स्पष्ट को रहस्य-पूर्ण करके दिखा दिया है। बाज़ारीपन में भी वह रहस्य और वह उमंग भर दी है कि उनकी कविता बहुत ही उच्च कोटि की हो गई है। छेड़-छाड़ और भाव-चित्रण (मनोभाव-चित्रण और अदाओं की तसवीर) इन शेरों में देखिए—
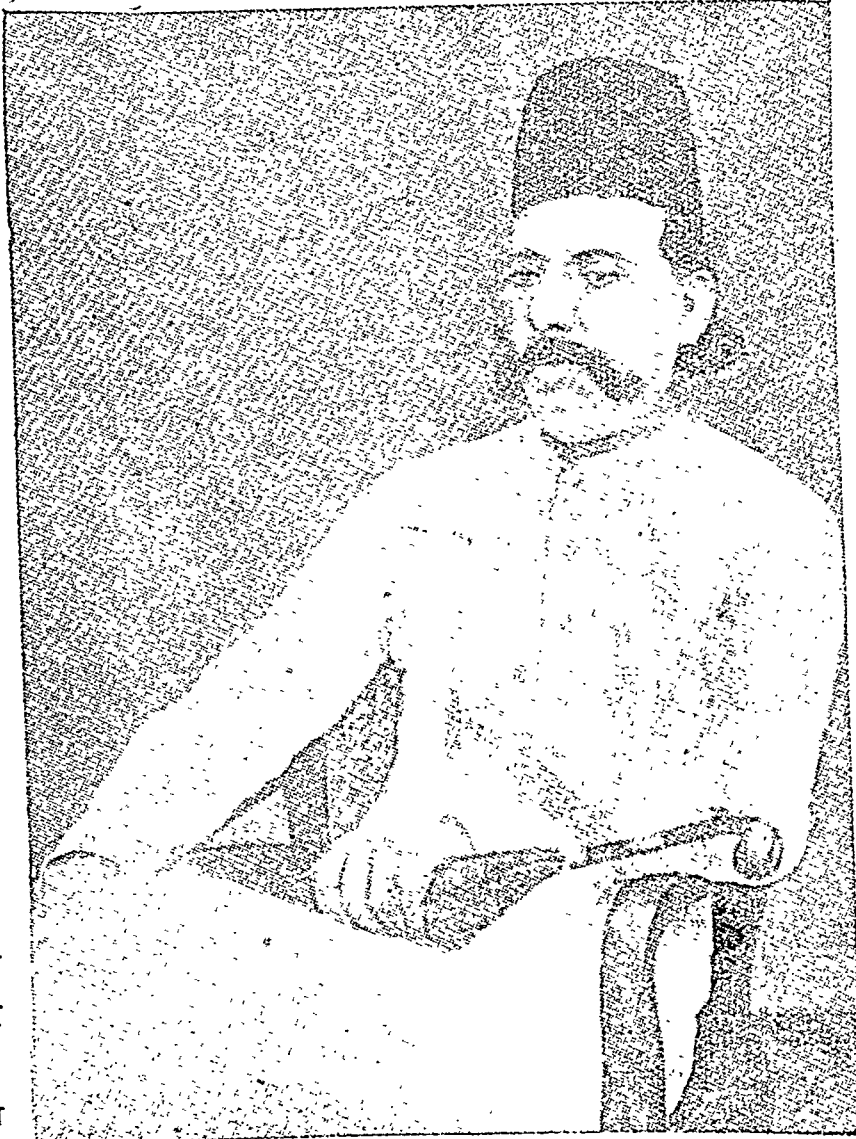
हम आ गए, हम पा गए, हम ले गए उनको ;
वह खोए गए कूचए-दुश्मन से निकलकर।

कोई मुँह चूम लेगा इस "नहीं" पर ;
शिकन रह जायगी यों ही जबीं पर।
धरी रह जायगी यों ही शबे-वस्ल ;
"नहीं" लब पर, शिकन तेरी जबीं* पर।
अरे ओ चर्ख़, देने के लिये दाग़ ;
बहुत हैं चाँद के टुकड़े ज़मीं पर।

कहते हैं, ऐ आसमान, दाग़ देने के लिये ज़मीन पर चाँद के टुकड़े (हसीन माशूक़) बहुत हैं। चाँद के टुकड़ों का ज़मीन पर होना किस स्वाभाविक रूप से कह गए हैं। दाग़ भी पड़ें, तो चाँद में, या चाँद के टुकड़ों में। सताए जायँ, तो हसीन क्यों न सताए जायँ।

मुझे है, ख़ून का दावा मुझे है ;
उन्हीं पर, हाँ ख़ुदाबंदा, उन्हीं पर।
उठाए फिरती है उनको जवानी ;
क़दम पड़ता नहीं उनका ज़मीं पर।
यह क़िस्मत, दाग़ जिसमें, दर्द जिसमें ;
वह दिल, और लोटे दस्ते-नाज़नीं पर।

कहते हैं, भाग्य की यह लीला कि जिस दिल में दाग़ भी है, और दर्द भी, वह और किसी के नाज़ुक हाथों पर लोटे है। करुण भाव में भी चपल वाक्य-शैली नहीं छूटी। रियाज़ चाहें भी, तो छेड़ करने से बाज़ नहीं आ सकते।

नज़ाकत † मुझको क्या-क्या कोसती है ;
तबीयत आई अच्छे नाज़नीं पर ‡।

दूसरी ग़ज़लों के कुछ शेर इसी रंग के देखिए—

हम तो उसकी अदा पे मरते हैं ;
मुँह छुपाए जो कोसता जाए।
है रियाज़ एक ज़वान मस्ते-ख़राम × ;
न पिए और झूमता जाए।

* ललाट

† सुकुमारता

‡ ग़ालिब भी ख़ूब कह गए हैं—

इस नज़ाकत का बुरा हो, वह भले हैं तो क्या ;
हाथ आएँ, तो उन्हें हाथ लगाए न बने।

× मतवाली चालवाला

एक लाजवाब ग़ज़ल के कुछ शेर ये हैं—

फ़ितने* का गुज़र इस भरी महफ़िल में नहीं है ;
चल ऐ निगहे-नाज़, जगह दिल में नहीं है।

फ़ितना निगहे-नाज़ है और दिल भरी महफ़िल है। पहले मिसरे में "फ़ितने का गुज़र" और दूसरे मिसरे में "चल ऐ निगहे-नाज़", ये टुकड़े उस्ताद ही की क़लम से निकल सकते थे, और यह नाज़ुक वाक्य-शैली भी अमीर ही के यहाँ नज़र आ सकती है।

यह नज़ुआ † की मुशकिल कोई मुशकिल है मेरी जान ;
सच है, मेरी मुशकिल किसी मुशकिल में नहीं है।
क्यों तुझसे छुपाऊँ तेरा अरमान शबे-वस्ल ;
क़ुरबान तेरे, चोर मेरे दिल में नहीं है।

धन्य है। दोनों शेर कितने डूबे हुए, कितने सरल, कितने नाज़ुक और कितने स्वाभाविक हैं। बात भी प्यारी और वाक्य-शैली भी प्यारी। कितनी सच्ची बात है। पहले शेर का व्यंग्य और करुण भाव और दूसरे शेर की सचाई मुग्ध कर लेनेवाली है।

बेमौत मरे. मौत कहाँ मर रही जाकर ;
हम आए, तो वह ‡ कूचए-क़ातिल में नहीं है।

करुण भाव में भी इतनी ताज़गी, तीखेपन में भी इतनी नज़ाकत भर देना रियाज़ ही का काम है। रियाज़ की हरएक ग़ज़ल की ज़मीन (छंद) एक रंगमंच है, जिस पर उनकी कल्पना अभिनय कर रही है। मस्ती में बात उनके मुँह से इस तरह निकलती है, जैसे घटा में से बिजली चमक जाय, और वही नज़ाकत, वही स्फूर्ति, वही चमक उनकी बातों में है, जो बिजली में होती है। नीचे-लिखे शेर का तेवर देखने-लायक़ है—

निगह से बढ़ के हैं गुस्ताख़ दस्ते-शौक़ मेरे ;
न कोसिएगा ज़रा हाथ उठा-उठा के मुझे।

यह कहा जा चुका है कि माशूक़ की एक-एक अदा को जैसा रियाज़ ने देखा है, वैसा उर्दू के किसी और शायर ने शायद ही देखा हो। रियाज़ ने माशूक़ के भावों और कटाक्षों में अपना अस्तित्व लीन कर दिया है। वह स्वयं माशूक़ बन गए हैं। लेकिन उनका होश बना रहता है। वह बेसुध भी हैं, और सब कुछ जानते भी हैं। उनकी

* जिससे अपवाद मचे

† प्राण-पीड़ा

‡ मौत

आँखें माशूक़ की एक-एक अदा, एक-एक कटाक्ष देख रही हैं। अद्भुत कल्पना-शक्ति का परिचय ऐसे अवसर पर रियाज़ देते हैं। जवानी के अल्हड़पन, चपलता, लज्जा, कोसने, रूठने और लगावट की जैसी जीती-जागती तसवीरें रियाज़ ने खींची हैं, वैसी बिरले ही किसी कवि ने खींची होंगी। नीचे के कुछ शेर इसके प्रमाण हैं—

उभरे जोबन के लिये आपको आख़िर मिला ;
खमे-गर्दन * के सिवा और निगहबाँ कोई।

सहर होते गया कोई, तो यह कहता गया कोई ;
यही तो हैं कि इनके घर कोई फिर मेहमाँ होगा।

आँचल ढला रहा मेरे मस्तेशबाब का ;
ओढ़ा गया कभी न दुपट्टा सँभाल के।

मेंहदी लगाए बैठे हैं कुछ इस अदा से वह ;
मुट्ठी में उनकी दे दे कोई दिल निकाल के।

आईना तेरी तरह देखते हम भी शबे-वस्ल ;
मुँह हमारा भी तेरे मुँह के बराबर होता।

आते-आते तेरे लब तक वह तबस्सुम † बन जाय ;
इस अदा से कभी हमसे भी हो पैमाँ ‡ कोई।

ऊपर का एक-एक शेर एक-एक तसवीर है। ज़रा ध्यान देकर इन शेरों को पढ़ने की ज़रूरत है। पहला शेर जवानी की लज्जा की तसवीर है। उभरे जोबन का पर्दा सिवा इसके कि गर्दन झुका ले, और क्या हो सकता है। दूसरे शेर में मिलाप की रात में बरजोरी करनेवाले आशिक़ से सुबह को माशूक़ किस मज़े से मलामत करता हुआ बिदा हो रहा है। "यही तो हैं", इस टुकड़े की तारीफ़ असंभव है। तीसरे शेर में माशूक़ के अल्हड़पन की तसवीर है, जिससे कभी सँभालकर दुपट्टा ओढ़ा ही नहीं गया। चौथे शेर में मेंहदी लगाकर बैठने की अदा का चित्र है। पाँचवें शेर की मुआमिलाबंदी, प्रेमी की यह आकांक्षा कि मिलाप की रात माशूक़ के मुँह से मुँह मिलाकर आईना देखें, कितनी स्वाभाविक है। छठे शेर में तो भाव-चित्रण ग़ज़ब का है। प्रेमी की आकांक्षा है कि मिलाप का वादा एक मुस्क्यान के रूप में माशूक़ के होठों पर प्रकट हो जाय। आह, कितना रोचक, कितना अछूता, कितना सच्चा शेर है। कविता इसे कहते हैं।

* गर्दन झुका लेने
† मुस्कुराहट
‡ वादा

लेकिन सौंदर्य इतना चपल है, तो प्रेम उससे कुछ कम नहीं। कोई आग-बबूका है, तो किसी का दिल भी आतश का परकाला है। कहते हैं—

अब वह दिल ठहरे हमारा कि कोई फ़ितनाए-हश्र* ;
खोलता है गिरहेगोशे ए-दामाँ † कोई।

रियाज़ को ज़बान पर कैसा आधिपत्य है। वह भाषा के साथ किस तरह खेलते हैं। कितनी सादी, कितनी टकसाली, कितनी बामहावरा, कितनी पाकीज़ा, कितनी साफ़-सुथरी, कितनी नाज़ुक ज़बान है। और, इस बोलचाल की ज़बान में वह कितनी बात कह जाते हैं, इसका अच्छी तरह पता ऊपर के शेरों से चल गया होगा। नाज़ुक-से-नाज़ुक और सादे-से-सादा शब्द लाते हैं। मालूम होता है, उनकी कल्पना डरते-डरते शब्दों को छूती है, जैसे कोई डरते-डरते ओस की बूँदों को फूलों पर से चुनना चाहे। रियाज़ की निगाह में शब्द से नाज़ुक और सुकुमार शायद ही कोई चीज़ संसार में हो। सारा कलाम कौसर ‡ की मौजों से धुला हुआ है। इस अद्भुत काव्य-रचना की कुछ और मिसालें देखिए—

न आया हमें इश्क करना, न आया ;
मरे उम्र-भर, और मरना न आया।

य, दिल की तड़प क्या लहद×को हिलाती ;
तुम्हें क़ब्र पर पाँव धरना न आया।

यही दिन थे, सौ-सौ तरह तुम सँवरते ;
जवानी तो आई, सँवरना न आया।

सुनाकर वह कहते हैं किस भोलेपन से—
हमें वादा करके मुकरना न आया।

बने नक़्शे-पा + उनके कब गुल लहद पर ;
सबा, जा, तुझे गुल कतरना न आया।

आख़िरी शेर में "सबा, जा", इस टुकड़े की तारीफ़ कौन कर सकता है। एक और ग़ज़ल के कुछ शेर ये हैं—

बहार नाम की है, काम की बहार नहीं ;
कि दस्ते शौक़ किसी के गले का हार नहीं।

जो आज वस्ल में इस तरह चूसे जाते हैं,
इन्हीं लबों से सुनी हज़ार बार "नहीं"।

*प्रलय का उपद्रव
† दामन के कोने की गाँठ
‡ जन्नत की एक नहर का नाम
× क़ब्र
\+ पग-चिह्न

हरम * की तरह नहीं मैकदे † में बेदारी ‡ ;
सिवा हमारे यहाँ कोई होशियार नहीं।
यही चिराग़-लहद थे, यही थे क़ब्र के फूल ;
अब उनके नक्शे-क़दम भी सरे-मज़ार नहीं।

एक-एक शेर को ध्यान देकर पढ़ने की ज़रूरत है। पहले शेर में कहते हैं कि जिस वसंत-ऋतु में मेरा विह्वल हाथ किसी के गले में नहीं पड़ा, वह वसंत-ऋतु नाम की है, काम की नहीं। हाय-हाय, "बहार नाम की है, काम की बहार नहीं।" दूसरे शेर की मुआमिलाबंदी भी देखने-योग्य है। कहते हैं, जो होठ आज वस्ल में इस तरह चूसे जाते हैं, उन्हीं होठों से हज़ारों बार "नहीं" सुनी है। माशूक़ की "नहीं", उसके मानने का बल, उसकी मुसक्यान, उसका लजाना, आँखें नीची कर लेना, मुँह फेर लेना, इन कटाक्षों और क्षणिक घटनाओं को कवि की चपल कल्पना ने अनंत महत्त्व प्रदान कर दिया है। तीसरा शेर बहुत डूबा हुआ है। काबा और मयख़ाना उर्दू-शायरी में बहुत महत्त्व-पूर्ण शब्द हैं, और इन रूपकों का समझना, ख़ासकर रियाज़ के यहाँ इन रूपकों का समझना, इस शेर की कैफ़ियत समझने के लिये ज़रूरी है। आगे चलकर रियाज़ की शराब की शायरी पर कुछ कहा जायगा। उस समय इस शेर का अर्थ और दूसरे मिसरे "सिवा हमारे यहाँ कोई होशियार नहीं" का संबंध कवि के व्यक्तित्व से प्रकट होगा। चौथे शेर की भाषा की सरसता और कोमलता सराहनीय है। आशिक़ की उस क़ब्र की उदासी, जिसके फूल और चिराग़ केवल माशूक़ के चरण-चिह्न हों, उन चिह्नों के मिट जाने से और भी बढ़ गई है। वर्णन-शैली ने उदासीनता को संगीतमय कर दिया है। दूसरे मिसरे में "भी" से रियाज़ ने वह काम लिया है, जो एक पूरे काव्य से भी नहीं हो सकता। "अब उनके नक़्शे-क़दम भी सरे-मज़ार नहीं।" उर्दू की शायरी यह है। ×

* काबा
† शराबख़ाना।
‡ जागृति
× ये दो शेर भी रियाज़ के ख़ास रंग में हैं—
आख़िरी रंग ये ले आई, लहू दे निकली ;
न छुपा, लाख छुपा दश्त में क़ातिल मेरा।
फ़स्ल मत और क़यामत में आई कह हुआ ;
बुतों ने छेड़ दिया सामने ख़ुदा के मुझे।

शब्दों की नज़ाकत देख चुके। अब भाव देखिए। रियाज़ के यहाँ भाव भी कम नाज़ुक नहीं हैं। कहते हैं—

बार होता न शबे-वस्ल नज़ाकत को तेरी ;
लब मेरा मिस्ले-तबस्सुम तेरे लब पर होता।

ऐसे नाज़ुक शेर कविता की दुनिया में भी विरले ही नज़र आते हैं। कहते हैं, मिलाप की रात को तेरी सुकुमारता पर मेरा होठ भारी न होता। वह मुसकान की तरह तेरे होठों पर होता।

रंगे-मय जाम, लबे जाम ये मौजें बनतीं ;
तेरे लब के लिये नाज़ुक लबे साग़र होता।

माशूक़ के कोमल अधरों के लिये कितना नाज़ुक प्याला बनाया है। कहते हैं, शराब का रंग या झलक प्याला, और शराब की मौजें उस प्याले का कोर (लबे-जाम) बनतीं। तेरे होठ के लिये प्याले का कोर भी नाज़ुक बनता।

ज़िंदगी आठ पहर लुत्फ़ से कटती क़ातिल,
साँस की तरह रवाँ सीने में ख़ंजर होता।

कटार सीने में साँस की तरह चलती होती, तो ज़िंदगी आठ पहर लुत्फ़ से कटती।

क्या ज़हर की बुझी हुई निकली थ, मौजे-अश्क * ;
पछताए आस्तीन में हम साँप पाल के।
रौशन किए चिराग़े-लहद लालाज़ार † ने ;
इस मर्तबा तो आग लगा दी बहार ने।
क़ाबू में है उनके वस्ल का दिन ;
जब आए हैं, शाम हो गई है।

इस कल्पना-शक्ति का कुछ ठिकाना है। कहते हैं, वस्ल का दिन माशूक़ के वस में है। माशूक़ के आते ही शाम हो गई है। यह बनावट की बात नहीं है। यथार्थ है। माशूक़ अपने साथ मिलाप का सुअवसर (शाम) लेकर आता है।

रियाज़ अध्यात्मवाद और दार्शनिक उलझनों में नहीं पड़ते। उनकी सीधी-सी बात, उनकी एक ठठोल, उनकी एक छेड़ में बहुत कुछ रहता है। नीचे के शेरों में उन्होंने अध्यात्म और दर्शन को भी अपने ही रंग में रँग दिया है। इस क़िस्म के शेरों का मज़ा तो उनकी शराब की शायरी में आता है, जिसके उदाहरण बाद को दिए

* आँसू की धार या लहर
† क़ब्र पर लाला के फूल ऐसे खिले हुए हैं, मानो क़ब्र पर चिराग़ जल रहे हैं।

जायँगे । इन शेरों में देखिए, पर्दे-पर्दे में वह क्या कह गए हैं—

मुझसे बेपर्दा मिले, मिल के किया गुम मुझको ;
एक इस सारी खुदाई में मिले तुम मुझको ।

इसे कोई चाहे सांसारिक प्रेम अथवा किसी हसीन से छेड़ समझे, चाहे अध्यात्मवाद और ज्योति में ज्योति के मिल जाने की अवस्था का वर्णन । शेर महावरों के पर्दे में कहा गया है । "बेपर्दा मिले", "किया गुम मुझको", ये सब रोज़ाना बोलचाल के महावरे हैं । दूसरे मिसरे में "एक" का शब्द रियाज़ की उस्तादी का एक सबूत है । "एक इस सारी खुदाई में मिले तुम मुझको ।"

शोख़ी से चमककर इधर आए, उधर आए ;
महशर में भी देखा, तो तुम्हीं-तुम नज़र आए ।

क़यामत के दिन जब हश्र के मैदान (महशर) में परमात्मा के सामने सब जमा होंगे, उस समय की एक तसवीर रियाज़ ने खींची है । चाहे इसे कोई किसी हसीन की चंचलता का चित्र समझे, चाहे आदि सौंदर्य की झलक और चमत्कार का चारों ओर नज़र आना समझा जाय । "शोख़ी से चमककर", इस पर्दे में कवि बहुत कुछ कह गया है । और दूसरे मिसरे में "देखा तो तुम्हीं-तुम नज़र आए," यह टुकड़ा रियाज़ ही का हिस्सा है । वाह !

न रोके तूर, तो हम जायँ अर्श से ऊँचे ;
हमारी राह से पत्थर ज़रा हटा देना ।

तूर-पहाड़ पर हज़रत मूसा को परमात्मा का जलवा नज़र आया था, जिसे देखकर उन्हें मूर्च्छा आ गई थी । ऊपर के शेर का तेवर निराला है । तूर जिसके लिये किसी से मिलने का स्थल होगा, उसके लिये होगा । हम तूर से आगे जाकर किसी से मिलेंगे । तूर हमारी राह में रोड़े की तरह अटका हुआ है । "हमारी राह से पत्थर ज़रा हटा देना ।"—तूर इस मिसरे में कितना तुच्छ हो गया है । किस लापरवाही से कहते हैं—"हमारी राह से पत्थर ज़रा हटा देना ।"

तुम्हारे कूचे में कुछ तूरवाले बैठे हैं ;
ज़रा तुम आके लबे-बाम मुस्कुरा देना ।

किसी के कूचे से तूर का और किसी की मुसकिराहट से किसी के जलवे का मुक़ाबिला है । मूसा को "कुछ तूर-वाले" कहना रियाज़ की ख़ास व्यंग्य-पूर्ण शैली की मिसाल है । यह कहने के बदले कि हज़रत मूसा आकर बैठे हैं, यह कहा कि "कुछ तूरवाले बैठे हैं ।" यही मीठी चुटकियाँ, जो लखनऊवालों की विशेषता हैं, भाषा के पारखियों की जान लेती हैं । "कुछ तूरवाले बैठे हैं ।" रियाज़ ने गूढ़-से-गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यों के वर्णन में भी वही चपलता, वही सुकुमारता, वही छेड़, वही व्यंग्य क़ायम रक्खा है, जो उनकी कल्पना पर एक तीव्र मुसकान की तरह झलक रहे हैं । वह मुसकान कितनी मार्मिक, कितनी रहस्य-पूर्ण है, इसका प्रमाण ये सब शेर हैं ।

(आगामी संख्या में समाप्य)

रघुपतिसहाय

विद्या-वागीश गोस्वामी राधाचरणजी
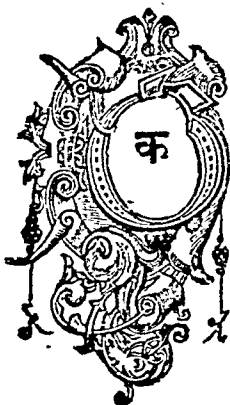
कलियुग-पावनावतार महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य देव के एक शिष्य श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी थे* । भट्टजी के पट्ट शिष्य दामोदरदास गोस्वामी और उनके शिष्य गोपीनाथदास गोस्वामी थे । हमारे चरितनायक के यही मूल पुरुष हैं । यह परम प्रतिष्ठित आचार्य-कुल गौड़ ब्राह्मण हैं । गोस्वामी राधाचरणजी के पिता पंडित गल्लूजी† महाराज वृंदावन में एक पहुँचे हुए महात्मा थे । कविता में इनका उपनाम गुणमंजरीदास था । इनका स्वभाव बड़ा ही सरल और मधुर था । क्रोध तो लेश-मात्र नहीं था । भगवच्चरणारविंदों में इनकी अनन्य निष्ठा थी । व्रजभाषा‡ और व्रजराज के यह

---

* सुप्रसिद्ध भक्ति-विषयक ग्रंथ "श्रीहरिभक्तिविलास" के रचयिता यही गोपाल भट्ट गोस्वामी हैं ।

† गोस्वामी गल्लूजी (गुणमंजरीदास) के बनाए ग्रंथ श्रीयुगलशत, रहस्यपद और पदावशेष प्राप्य हैं ।

‡ फ़ारसी या अँगरेज़ी-शब्द न बोलने का इनका बड़ा कड़ा नियम था । एक दिन साहजी साहब (ललित किशोरी) ने बंदूक़ चलने का वर्णन इस भाँति किया था—"लोह-नालिका में श्याम चूर्ण प्रवेश करके अग्नि जो दीनीं, तो भड़ाम शब्द भयो !"

से प्रतिनिधि होकर कांग्रेस के अधिवेशनों में गए हैं। संवत् १९४३ में गोस्वामीजी ने अपने विचार-स्वातंत्र्य के दो ज्वलंत उदाहरण दिए। एक ग्रंथ 'विदेश-यात्रा-विचार' तथा दूसरा 'विधवा-विवाह-विवरण' लिखा। इसके लिये आपको खूब भली-बुरी सुननी पड़ीं। पर आप अपने मार्ग से एक पग भी पीछे नहीं हटे। संवत् १९४२ में यह वृंदावन के म्युनिसिपल कमिश्नर चुने गए। इस पद पर आप कई साल रहे। वृंदावन के आप ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट भी रह चुके हैं। सारांश यह कि जनता और सरकार, दोनों में ही आपका अच्छा मान रहा है। बुढ़ापे में आप पर एक असह्य वज्रपात यह हुआ कि लगभग आठ वर्ष हुए, आपके दो होनहार सुपुत्रों का शरीरांत हो गया। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगौरचरण गोस्वामी के नाम से तो हिंदी-संसार परिचित ही होगा। इस ठेस के पहुँचने से गोस्वामीजी एक प्रकार से साहित्यिक एवं सामाजिक कार्यों से विरक्त-से हो गए हैं। आज-कल आप अधिकतर भगवद्भजन में ही अपना अमूल्य समय बिताते हैं।

गोस्वामीजी का स्वभाव बड़ा ही मधुर और मिलनसार है। आपके पास बैठकर उठने को जी नहीं चाहता। आपके साथ वार्तालाप करने में किसी साहित्यिक ग्रंथ के पढ़ने का-सा आनंद मिलता है। बीच-बीच में सुपारी का तोड़ा मुँह में डालना और प्रसंग-पर-प्रसंग छेड़ते जाना सचमुच ही कभी भूलने का नहीं है। छोटे-बड़े, पठित-अपठित, अमीर-ग़रीब, सभी गोस्वामीजी से प्रसन्न रहते हैं। विद्यार्थियों पर तो आपकी विशेष कृपा रहती है। श्रीराधारमणजी के सान्निध्य में, उत्सवों के अवसर पर, आपकी भक्ति-विह्वलता देखते ही बनती है।

गोस्वामीजी भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के सहकारी और अंतरंग मित्र हैं। भारतेंदुजी को आप एक दिव्य भगवद्विभूति मानते थे। साहित्य-क्षेत्र में तो उन्हें आपने अपना गुरु तक माना है। गोस्वामीजी ने गद्य और पद्य, दोनों ही लिखे हैं। कविता में आपका उपनाम 'मंजु' है। व्रजभाषा में ही आपने कविता की है। व्रजभाषा का पक्ष लेकर तत्कालीन समाचार-पत्रों में आपने बड़े ही मार्मिक लेख लिखे थे। आप गूढ़-से-गूढ़ एवं सरल-से-सरल विषय पर लिख सकते हैं। परिहास लिखने में तो कमाल करते हैं। 'मिस्टर बूट,' 'रेलवे-स्तोत्र,' 'नापित-स्तोत्र,' 'भंग-तरंग' आदि परिहास पढ़कर मुहर्रमी सूरतवाला भी कुछ देर के लिये हँसी के मारे लोट-पोट हो जायगा। पद्य में आपने 'नवभक्तमाल,' 'दामिनी-दूतिका,' 'ब्रजेंद्र-विजय,' 'निपट नादान,' 'शृंगार-तिलक,' 'श्रीगोपिका-गीत' आदि पुस्तकें रची हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत के कुछ अंश का आपने समाक्षर अनुवाद भी किया है। इनके अतिरिक्त और भी कई छोटी-छोटी पुस्तकें आपने लिखी हैं।

आपकी लेखनी में एक अनूठा और अद्भुत आकर्षण और अनोखी मिठास है। 'सुदर्शन'-पत्र के संपादक विद्वद्वर पंडित माधवप्रसाद मिश्र ने आपको हिंदी-साहित्य का 'बाण भट्ट' लिखा है, जो सर्वथा उपयुक्त जान पड़ता है। स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट भी आपकी बड़ी प्रशंसा किया करते थे। वास्तव में आप हैं भी अक्षय कीर्ति के पात्र। इस वर्ष हिंदी-जगत् ने आपको अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का सभापति चुनकर, अपनी पिछली भूल सुधारकर, बड़ी प्रशंसा और दूरदर्शिता का कार्य किया है।

नीचे गोस्वामीजी की कविता के कुछ उत्तम छंद उद्धृत करके लेख समाप्त करता हूँ—

(१)

सरद सुहानी लगी करद समानी मोहिं,
दरद-दिमानी दम-दम दुख दरसा ;
सुरितु हिमंत बिन कंत बहु दोषवंत,
अखिल अनंत त्यों अतन तन तरसा।
सिसिर, बसंत की बहारें सारें देह माहिं,
जहर-बुझाए पयनाए छत सर-सा ;
ग्रीषम बिताय "मंजु" भीषम तपाय वध-
कारक वियोगिनी को आ फेरि बरसा।

(२)

बृंदावन सघन द्रुमन के समूह जहाँ,
कुहू-कुहू कोकिला करति कलरव राज;
मोर-सोर तरनि-तनूजा-तीर चहुँ ओर,
शीतल समीर मेघ-भीर घोर-घोर गाज।
कुसुम कदंब माहिं दाम डारि रेसम की,
पन्नन की पटली भली है अलंगन छाज;
साज-साज भूषन बसन अभिराम "मंजु",
झूलि रहे स्याम-स्याम सरस हिंडोरे आज।

(३)

चीन मतिहीन होत परम प्रवीनता सों,
जड़-सो जपान देखि इनको अदूस है;
भरमा भरम करै बरमा सुकर्मा जाने,
ग्रीस खीस होत दंत पीस, प्रूस भूस है।
"मंजु कवि" अरब खरब फाँस साँस लेत,
इटली जली-सी जर्मनी-सी बेजलूस है;
सरिस कसानु रिस इँगलिस लोगन की,
ताके सनमुख रोम मोम, रूस फूस है।

(४)

तजि लोक की लाज सनेह-भरी,
निगमागम आयसु तोरे लगी ;
घरहारी घनेरी करैं घतियानि,
चवाइन सों चित चोरे लगी।
"कवि मंजु" हिए में लगी सो लगी,
निसि-बासर साँझऽरु भोरे लगी;
मिलि माधवी-कुंजन में पिय सों,
दिन द्वै तें पियूष निचोरे लगी।

वियोगी हरि

मैं क्या हूँ ?

(१)

मैं हूँ न देव, दानव, दिनेश, किन्नर, गंधर्व, अमर अनंग ;
मैं दीप-शिखा हूँ मंद-मंद, जिसमें जलते अगणित पतंग।
मैं वह भय हूँ, जिसका विलोक—
काँपती धरा, मरता निर्भय, कर लेता बंद नयन त्रिलोक।

(२)

मैं वह रण हूँ, जिसमें अनेक, नाचते प्रेत कर अट्टहास;
मैं चंद्रहास की धार, मृत्यु, मैं हूँ तृष्णा की प्रबल प्यास।
मैं हूँ मतंग मद-पूर्ण चाल;
मैं सावधान, मैं इंद्र-वज्र, मैं ज़हर उगलता हुआ व्याल।

(३)

मैं हूँ भीषण एकांत-वास, मैं बड़वानल, मैं हूँ अनंत ;
मैं भुवन-भास्कर, विश्व-शत्रु, मैं हूँ निदाघ, मैं हूँ दिगंत।
मैं वन-तरुवर-दल-बिच बबूल ,
मैं शिव-लोचन, उन्माद-नाद, मैं रण-तांडव, मैं हर-त्रिशूल।

(४)

मैं गुप्त गुफा, मैं कंटक-वन, मैं प्रबल वह्नि, द्रुत-गति समीर;
मैं हूँ न अमृत, मैं कालकूट, मैं हूँ विधवा की छिपी पीर।
मैं हूँ धवला-गिरि-शिखर एक;
मैं पद्माकर, केशव न कभी, भूषण-कविता की एक टेक।

(५)

मैं वीर शिवाजी का बल हूँ, मैं छत्रशाल की हूँ नस-नस;
मैं रुद्राणी का रौद्र कोप, मैं कमलासन का एक दिवस।
मैं यम हूँ, मैं केतकी-पत्र ;
मैं श्मशान की ज्वलित चिता, मैं विष्णु-चक्र, मैं अटल छत्र।

(६)

मैं भक्त भगीरथ का उपास्य, मैं अरि-मर्दन, मैं हूँ विरोध ;
मैं हूँ विभूति, मैं हूँ विलाप, मैं दुर्वासा का तेज, क्रोध।
सीता-सुहाग, मैं प्रलय-गीत ;
मैं दमयंती की तीव्र दृष्टि, मैं सावित्री-हठ में अतीत।

(७)

मंथरा-चाल, केकयी-द्वेष, मैं श्रवण-पिता-कृत प्रबल शाप ;
मैं हूँ दशरथ की व्यथा मौन, मैं रामचंद्र का विपिन-वास।
मैं अंगद-पद, मैं अचल-अटल ;
मैं मेघनाद की कठिन शक्ति, मैं हूँ लक्ष्मण-स्वभाव चंचल।

(८)

मैं हूँ पांडव-दल-बल संचित, मैं हूँ पांचाली का दुकूल ;
मैं दुर्योधन-अंतस्तल का हूँ एक भयंकर गुप्त शूल।

मैं भीष्म वीर का प्रण कठोर ;
मैं हूँ खौलता हुआ शोणित, मैं कवि-मानस-सागर-हिलोर।

(९)

मैं हूँ छोटा-सा एक मंत्र, मैं कामदेव का अंगराग !
मैं शक्ति देवि का हूँ इंगित, मैं बौद्ध-धर्म, मैं हूँ विराग।
मैं हूँ सागर, मैं प्रबल ज्वार ;
मैं हूँ निशीथ-अभिसार अभय, मैं हूँ अमूल्य, मैं अलंकार।

(१०)

मैं रक्तांजलि, मैं हूँ अटूट, मैं हूँ अदभ्र-विभ्राट-ठाट ;
मैं अद्वितीय, मैं हूँ अगाध, मैं हूँ अनन्य, अनुभव विराट।
मैं हूँ उल्का, मैं उष्ण-देश ;
मैं नर-कंकाल, उजान-कटक, मैं कालरात्रि, मैं काल-वेष।

(११)

मैं हूँ बादल-दल कृष्ण-वर्ण, मैं हूँ गर्जन-तर्जन, विकार ;
मैं हूँ तुषारमय एक भोर, मैं हूँ न मूर्ख, सघनांधकार।
मैं हूँ चातक के लिये उपल ;
मैं चपल कड़कती चल बिजली, मैं सर्वनाश, मैं हूँ पागल।

(१२)

मैं जापानी भूकंप नव्य, मैं हूँ प्रचंड आघात-घात ;
मैं हूँ नन्ही-सी नदी नहीं, मैं हूँ नियगारा का प्रपात।
मैं तप्त ज्येष्ठ, बीभत्स घोर ;
मैं ऊबड़-खाबड़ पथ उजाड़, पथिकों के प्रति मैं प्रकट चोर।

(१३)

मैं दरिद्र-दुख-गर्भ अश्रु, मैं प्रतिहिंसा-प्रण, प्रलय-नाद ;
मैं क्रूर केसरी अभय मत्त, मैं हूँ नटखट, मैं हूँ फ़साद।
मैं हूँ न सरल साहित्य जोश ;
मैं महा कठिन, मैं महा जटिल, मैं महाशब्द, संसार-कोष।

(१४)

मैं रक्त-कुंड, मैं धुआँधार, मैं ऋषि-मुनियों का सफल होम ;
मैं हूँ विप्लव, मैं व्याधि-व्यूह, मैं हूँ रोमांचित रोम-रोम।
मैं हूँ नवीन आदर्श-हर्ष ;
मैं हूँ विरही काँपता एक, मैं हूँ भविष्य, भीषण विमर्श।

"गुलाब"

जीवन-ज्योति

काँटे-जैसे लघु चुभते हैं पड़े पाँव-तले,
पीटे धूल पड़-पड़ दृगों में दुख देती है ;
कीड़ी की-सी बड़ी तुच्छ टीड़ी, दल बाँध-बाँध,
दल देती बड़े-बड़े दलपति की खेती है।
"हरिऔध" हिंदू-जाति में अब कहाँ है जान,
चोट-पर-चोट खा-खाकर भी न चेती है ;
छेड़े, दबे, छोटे-छोटे कीट भी न छोड़ते हैं,
चोट करते हैं चींटे, चींटी काट लेती है।

लट-लट बार-बार लोट-लोट जाते जो न,
कैसे तो हमारी ललनाएँ कोई लूटता ;
फटे जो न होते दिल, फूटे जो न भाग होते,
कैसे लगातार तो हमारा सिर फूटता।
"हरिऔध" कटुता न जाति में जो फैली होती,
कैसे कूट-नीतिवाला कूद-कूद कूटता ;
टूट हो रही है, टूट मंदिर अनेकों गए,
टूटती है मूर्ति, है कलेजा कहाँ टूटता ?

आन-बानवाले बात अपनी बना हैं रहे,
आज भी हमारी आन लंबी तान सोती है ;
कान पर जूँ भी नहीं रेंगती किसी के कभी,
बदके बदों की बदी विष-बीज बोती है।
"हरिऔध" हाथ मलते भी बनता है नहीं,
बार-बार चूर-चूर होता मान-मोती है ;
ललनाएँ छिनीं, किंतु खौलता कहाँ है लहू,
लाल लुटते हैं, आँख लाल भी न होती है।

रोते-रोते रातें हैं बिताते बहुतेरे लोग,
रेते जा रहे हैं गले, घर होते रीते हैं ;
आग हैं लगाते, हैं जलाते बार-बार जल,
चैन लेने देते नहीं, पातकी पलीते हैं।
"हरिऔध" हिंदू मेमने हैं बने, चेते नहीं,
चोट पहुँचाते लहू-चाटवाले चीते हैं ;
पटु हो रहे हैं पीटने में पीट-पीट पापी,
एक कीट से भी बीस कोटि गए-बीते हैं।

माल पर हाथ मार-मार मालामाल बनें,
करके कपाल-क्रिया भरें किलकारियाँ ;
खल कर लहू हाथ अपने लहू से भरें,
तन के छतों से छूटें लहू-पिचकारियाँ।
धज्जियाँ उड़ाई जायँ भोले-भाले बालकों की,
धूल में मिलाई जायँ फूल-जैसी नारियाँ ;
आग तो कलेजे में लगी ही नहीं हिंदुओं के,
कैसे भला आँख से कढ़ेंगी चिनगारियाँ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

क्लर्क-जीवन

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महत्तो]
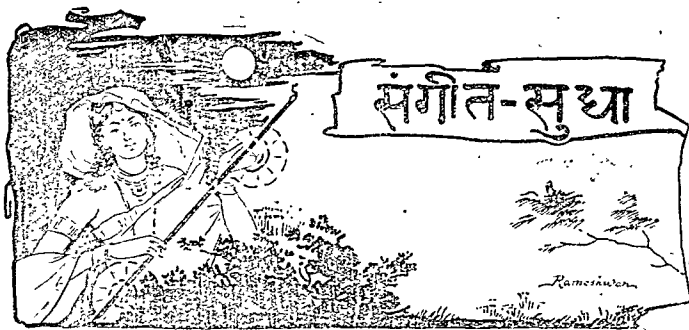
स्वरकार—श्रीयुत "निषाद"] [शब्दकार—पं० गोविंदवल्लभ पंत

पीलू—झपताल *

हे नाथ, निज रूप हमको दिखाओ।
तुम पास आओ, या हमको बुलाओ।
१. ब्रजचंद्र, छिपिए न घन श्याम में अब,
सुधा को बहाओ, उजाला दिखाओ।
२. पुष्पों को अपनी हँसी दान देकर,
कुछ तुम हँसो, कुछ हमें भी हँसाओ।
३. चरणों के शूलों को शुचि फूल कीजे,
कर के सुमन को सुफल प्रभु, बनाओ।

स्थायी

×		२			०		३		
सा	नि̣	सा	ग̱	रे	म	ग̱	रे	नि̣	सा
हे	—	ना	—	थ	नि	ज	रू	—	प
सा	ग	ग	—	म	रेम	पध	गम	पम	गरे
ह	म	को	—	दि	खा-	—	ओ-	—	—
सा	नि̣	सा	ग̱	रे	म	ग̱	रे	नि̣	सा
तु	म	पा	—	स	आ	—	ओ	—	या
सा	ग	ग	—	म	रेम	पध	गम	पम	गरे
ह	म	को	—	बु	ला-	—	ओ-	—	—

* गंगा-पुस्तकमाला में प्रकाशित होनेवाले "वरमाला"-नामक नाटक का प्रार्थना-गीत।

अंतरा

१	नि	सा	ग	ग	म	प	प	ध	ध	प
	व्र	ज	चं	—	द्र	छि	पि	ए	—	न
	ग	म	नी	—	प	मध	प	म	ग	रे
	घ	न	श्या	—	म	मैं—	—	अ	—	व
	ग	ग	ग	ग	रे	ग	म	प	ध	प
	सु	धा	—	को	—	व	हा	—	ओ	—
	म	प	ग	म	प	रेम	पध	गम	पम	गरे
	उ	जा	ला	—	दि	खा—	—	ओ—	—	—

शेष अंतरे भी इसी प्रकार बजेंगे।

१. राजपूताने का इतिहास

यह तो सबको भली भाँति विदित ही है कि राजपूताने का ठीक-ठीक इतिहास आधुनिक शोध के आधार पर लिखा ही नहीं गया। राजपूतों के इतिहास को अंधकार से निकालकर प्रकाश में लाने का प्रथम परिश्रम कर्नल टॉड ने किया था; परंतु उस समय तक भारतवर्ष एवं राजपूताने में प्राचीन शोध के काम का आरंभ ही हुआ था, जिससे उनको अपने इतिहास की रचना बड़वा भाटों की ख्यातों, प्रत्येक राजवंश की प्रचलित दंतकथाओं और भिन्न-भिन्न राज्यों ने जो कुछ अपना इतिहास दिया, उसी पर करनी पड़ी। उन्होंने अपने गुरु यति ज्ञानचंद्र की सहायता से कितने ही शिला-लेखों से भी कुछ प्राचीन इतिवृत्त उद्धृत कर उनके आधार पर कहीं-कहीं प्रचलित भूलों को भी ठीक किया। परंतु कई प्राचीन शिला-लेखों के ठीक-ठीक न पढ़े जाने से उनमें बहुत-सी त्रुटियाँ रह गईं। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो उनका आशय ही बदल गया। ऐसे ही वंशावलियों तथा कई-एक पुराने राजों के समय-निरूपण में भी अशुद्धियाँ रह गईं।

कर्नल टॉड को राजपूताना छोड़े सौ वर्ष हो चुके। इस अर्से में अनेक विद्वानों के बड़े परिश्रम और खोज से राजपूताना और उससे संबंध रखनेवाले बाहरी प्रदेशों से हज़ारों शिला-लेख, सैकड़ों दान-पत्र, कई राजवंशों के प्राचीन सिक्के, कई संस्कृत, प्राकृत, हिंदी एवं मरुभाषा के काव्य, मुँहणोत नैणसी की अपूर्व ख्यात, अनेक बड़वा भाटों की पुस्तकें, कई स्वतंत्र पुरुषों की संगृहीत भिन्न-भिन्न राज्यों की ख्यातें, कई वंशावलियों की पुस्तकें, अनेक फ़ारसी-तवारीख़ें, पुराने शाही फ़र्मान और निशान भिन्न-भिन्न राज्यों के पट्टे-परवाने तथा पुराने पत्र-व्यवहार संगृहीत हुए हैं। प्राचीन शोध की कसौटी पर बड़वा भाटों की ख्यातों में दिए हुए पुराने इतिवृत्त, पुरानी वंशावलियाँ तथा विक्रम-संवत् की तेरहवीं शताब्दी से पूर्व के राजों के संवत् बहुधा कपोल-कल्पित सिद्ध हुए। इतना ही नहीं, नवीन शोध से भारत के इतिहास के साथ-साथ राजपूताने के इतिहास में भी बहुत कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता हुई है।

कर्नल टॉड के पीछे भी कितने ही ग्रंथकारों ने राजपूताने के इतिहास हिंदी या उर्दू-भाषा में प्रकाशित किए। परंतु उनको आधुनिक शोध की बहुमूल्य और प्रचुर सामग्री उपलब्ध न होने से उन्होंने भी बहुधा टॉड का ही सहारा लिया। इसलिये वे भी अपूर्ण ही हैं। राजपूताने के इतिहास की इस त्रुटि को दूर करने के लिये अब तक के शोध से जो सामग्री उपलब्ध हुई है, उसके आधार पर हमने प्राचीन काल से लगाकर आज तक का, राजपूताने के राज्यों तथा राजपूत-वंशों का, विस्तृत इति-

हास चार-चार सौ पृष्ठ के ६ खंडों में प्रकाशित करना निश्चय किया है।

इस इतिहास के आरंभ में राजपूताने का भूगोल-संबंधी संक्षिप्त विवरण, राजपूत-जाति का परिचय, रामायण, महाभारत और पुराणों से प्राप्त राजपूताने से संबंध रखनेवाले राजवंशों का वर्णन, फिर मौर्य, मालव, ग्रीक, क्षत्रप (शक), कुशान, गुप्त, वर्धिक, वर्मांत नामवाले राजा, हूण, गुर्जर, बैस, चावड़ा, प्रतिहार (पड़िहार), परमार, सोलंकी, बघेल, नागवंशी, यौद्धेय, तँवर, दहिया, दाहिमा, निकुंप, डोडिया और गौड़ आदि राजवंशों का, जिनके राज्य अब राजपूताने में नहीं रहे, पर पहले थे, संक्षिप्त परिचय, एवं मुसलमानों के आरंभ के हमलों से लगाकर अकबर तक की उनकी इस देश पर की चढ़ाइयों तथा मरहठों और अँगरेज़ों के संबंध का परिचय दिया गया है। फिर क्रमशः उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़, जोधपुर बीकानेर, किशनगढ़, जयपुर, अलवर, बूँदी, कोटा, सिरोही, करौली, जयसलमेर, झालावाड़, भरतपुर, धौलपुर, टोंक और अजमेर के सर्कारी इलाक़े के इस्तमरारदारों का इतिहास है। ऊपर लिखे हुए प्रत्येक राज्य के इतिहास के आरंभ में वहाँ का भूगोल-संबंधी वर्णन, वहाँ के प्राचीन और प्रसिद्ध स्थानों का विवरण तथा अंत में वहाँ के ताज़ीमी सर्दारों का संक्षिप्त इतिहास रहेगा। स्थल-स्थल पर टिप्पणियों में प्राचीन शिला-लेखों तथा पुस्तकों से अवतरण एवं प्रमाण दिए जायँगे, और वर्तमान राजों के अतिरिक्त पहले के प्रसिद्ध राजों, सर्दारों तथा प्रसिद्ध स्थलों के चित्र भी रहेंगे। इस ग्रंथ का आकार रॉयल अठपेजी रक्खा गया है, और यह उत्तम ऐंटिक काग़ज़ पर, बंबइया टाइप में, छपेगा। जहाँ एक जिल्द समाप्त होगी, वहाँ उसका मुख-पृष्ठ, भूमिका, विषय-सूची, चित्र-सूची और अकारादि क्रम से नामों की पृष्ठांक-सहित सूची दी जायगी, जिससे स्थायी ग्राहकों को जिल्द बँधवाने में सुबीता होगा।

जो महाशय इस पूरे ग्रंथ के स्थायी ग्राहक होना चाहें, वे अपना स्वीकार-पत्र स्पष्ट अक्षरों में लिखकर ता० १ जनवरी, सन् १९२९ ई० के पहले भेज दें, और ग्राहकों की नामावली में अपना नाम दर्ज करावें। ४०० पृष्ठ के प्रत्येक खंड का मूल्य पूरे ग्रंथ के स्थायी ग्राहकों के लिये ६) रु० और अन्य के लिये ८) रु० होगा (डाक-व्यय इससे अलग)। प्रत्येक खंड प्रकाशित होते ही ग्राहकों के पास वी० पी० से भेज दिया जायगा।

राजपूताना म्यूज़ियम, अजमेर } गौरीशंकर-हीराचंद ओझा

× × ×

२. प्राचीन काल का स्वराज्य

(पृथु महाराज)

श्रीमद्भागवत महापुराण कल्पतरु है। इससे ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, नीति, रीति, प्रीति, जो चाहें, सो फल मिल सकता है। आजकल भारत में स्वराज्य की आँधी चल रही है। मैंने सोचा, यह आंदोलन नया है, अथवा पहले भी कभी हमारे देश में था, तो ज्ञात हुआ कि यह 'नुसख़ा' नया नहीं है। प्राचीन काल में हम इसका सुख भोग चुके हैं। श्रीभागवत से कुछ प्रमाण उद्धृत करता हूँ। सूर्यवंश और चंद्रवंश के राज्य से पहले स्वायंभुव मनु के वंश के राजा राज्य करते थे। उनमें अंग राजा बड़ा प्रतापी हुआ। उसका पुत्र बेन दुराचारी था। उसके अत्याचार से खिन्न होकर राजा वन को चला गया। उस समय अराजकता हो गई। कुछ दिनों तक प्रजा ने बहुत कष्ट उठाया। अंत को प्रजा ने समझा-बुझाकर बेन को ही राजा बना दिया। बेन अपना स्वभाव न छोड़ सका। एक नवीन अवगुण और प्रकट हुआ। वह नास्तिकवाद था। बेन ने यज्ञ, दान, पूजा, सब कुछ बंद कर दिया—

"न होतव्यन्न दातव्यन्न यष्टव्यं द्विजातयः ;
इति न्यवारयद्धर्मम्भेरीघोषेण सर्वशः।"

ब्राह्मणों ने पहले बहुत समझाया, परंतु जब वह नहीं माना, तो उस पर आक्रमण किया, और उसे मार डाला! तब फिर अराजकता हो गई!

ऐसे कठिन समय में प्रजा ने पृथु महाराज को राजा नियत किया। सब श्रेणी के लोगों ने उन्हें उपहार दिए, और उन्होंने भी प्रजा के मन के अनुकूल प्रबंध किया। ऊँची-नीची पृथ्वी को समान, ग्राम-नगरों का निर्माण, सब श्रेणी के लोगों के कार्यों का समाधान किया। यही नहीं, अश्वमेध-यज्ञ के अंत में सब प्रजा की सभा को खड़े होकर उपदेश किया, जो लोक, परलोक, दोनों के लिये उपयोगी था। राजा ने सौ अश्वमेध-यज्ञ किए, जो उस समय प्रजा के लिये परमोपयोगी समझे जाते थे। शेष में सस्त्रीक वन में जाकर भगवच्चरणारविंदों को प्राप्त किया।

पृथु महाराज भगवान् के नवम अवतार थे। पृथु के राज्य से ही उनके नाम पर भूमि 'पृथ्वी' कहलाई ; क्योंकि इन्होंने पृथ्वी को दुहकर सर्वोपयोगी बनाया था*।

श्रीराधाचरण गोस्वामी

× × ×

३. अनुचित साहस

मेरी बीमारी के समय में मेरे एक मित्र मुझको 'माधुरी' के तृतीय वर्ष की दूसरी संख्या पढ़ने के लिये दे गए। उस समय कहानियों को छोड़कर और कुछ पढ़ने के लिये मेरा जी नहीं चाहा। 'माधुरी' के पेज उलट-पुलटकर 'जैसे को तैसा' नाम की कहानी निकालकर पढ़ने लगा। अच्छी मालूम हुई। एक कालम पढ़ गया। किंतु आगे चलकर एक वाक्य पर मुझको अटक जाना पड़ा। वह वाक्य था—"सामने से अगर कोई हिंदोस्तानी छाता लगाए चला जाता हो, तो वह (डिकूज़ साहब) जलते तेल के बैंगन हो जाते।" मुझे कुछ ऐसा जान पड़ा कि मैंने इस प्रकार के झक्की मैजिस्ट्रेट का हाल कहीं पढ़ा अथवा किसी से सुना है। किंतु बहुत देर तक सोचने पर भी कुछ याद न आया। लिहाज़ा उस तरफ़ से अपना चित्त हटाकर मैं फिर कहानी पढ़ने लगा। उसके अंत में बाबू गोपाल-राम गहमरी का नाम देखकर मेरा वह भ्रम दूर हो गया। कहानी का प्लॉट अच्छा था। साथ ही पढ़ते समय जो दो-चार भूलें नज़र आई थीं, गहमरीजी के नाम से उनका भी तिरोभाव हो गया। मैंने सोचा, गहमरीजी ठहरे हिंदी के एक पुराने लेखक, उनके लिखे हुए में ग़लती निकालना आसमान पर थूकना है। जासूसी और चक्करदार उपन्यास लिखने के बाद अब वह मौलिक कहानियाँ लिखने लगे हैं, इसको मैंने हिंदी का परम सौभाग्य समझा। कहानी पढ़ने पर मुझको ज्ञात हुआ कि आपने इस कहानी को बड़े परिश्रम से लिखा होगा। इसमें आपने अदालती कारवाइयों और क़ानूनी दफ़ाओं का इतना सच्चा हवाला दिया है कि मुझको इसमें कोई संदेह नहीं रहा कि गहमरीजी या तो खुद वकील हैं, या फिर इस कहानी को लिखने के लिये उन्हें ख़ास तौर से क़ानून का अध्ययन करना पड़ा होगा। और, जगह-जगह अँगरेज़ी के कठिन शब्द देखकर यह तो मैं पहले ही समझ गया था कि आप अँगरेज़ी के पूरे विद्वान् हैं, अँगरेज़ी सभ्यता का आपको पूरा ज्ञान है। इन सब बातों के कारण उस समय मेरी आँखें धुँधली हो गईं, और मैं कहानी की तह के भीतर पैठकर उस पर भली भाँति विचार न कर सका। गहमरीजी ने यह कहानी अच्छी लिखी है, यही कहकर मैंने 'माधुरी' को एक ओर रख दिया।

एक दिन मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा था कि मेरे दिमाग़ में शैतान काम किया करता है। उस दिन की सत्यता मुझको दूसरे दिन सबेरे ज्ञात हुई। एक लेख लिखते समय मुझको ललितकुमार वंद्योपाध्याय की 'सखी'-नामक पुस्तक की आवश्यकता आ पड़ी। मैं उठा और अपने पुस्तकालय की एक आलमारी में उसे खोजने लगा। वह पुस्तक तो न मिली; किंतु उसी साइज़ की 'वसुमती-साहित्य-मंदिर' से प्रकाशित 'मदन पियादा' नाम की एक किताब मेरे हाथ में आ गई। उसको उलट-पुलटकर देखा। उसमें 'गोयंदगणेशेर गवेषणा' के लेखक श्रीहरिदास हालदार की चार कहानियों का संग्रह था। मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि मैंने इस पुस्तक की सब कहानियाँ नहीं पढ़ी हैं। पेज उलटते समय अचानक मेरी नज़र 'छत्रभंग' नाम की एक कहानी के ऊपर पड़ी, और साथ ही नज़र पड़ी "Shut up your umbrella Babu", इस अँगरेज़ी वाक्य पर। क्षण-भर ही में उस कहानी का सारा प्लॉट मेरे दिमाग़ में घूम गया। उस समय मेरे मित्र के कथनानुसार शैतान अवश्य वहाँ पर मौजूद था। मैं पुस्तक को खोजना और लेख लिखना भूलकर उस कहानी को पढ़ने बैठ गया। आज चार साल बाद उस कहानी को फिर से पढ़कर मुझको जो आश्चर्य हुआ, सो तो हुआ ही, किंतु पाठकों को यह जानकर और भी अधिक आश्चर्य होगा कि उस कहानी का एक-एक शब्द गहमरीजी की लिखी 'जैसे को तैसा' नाम की कहानी से मिलता था। दो मस्तिष्कों की एक ही उपज! मैं तो कुछ भी न समझ सका। जब तक श्रीहालदारजी और गहमरीजी के दिमाग़ किसी ऐसे विद्युत्-प्रवाहक तार द्वारा न जुड़े हों कि उसमें एक ही विचारों का प्रवाह होता हो, तब तक ऐसा होना असंभव है। इसलिये मुझको यह सोचते देर न लगी कि गहमरीजी ने 'जैसे को तैसा' कहानी को इसी पुस्तक से जैसे का तैसा उड़ाया है। हिंदी में मौलिकता का ऐसा सच्चा और खरा रूप देखकर

* श्रीमद्भागवत, ४ स्कंध, १३ अध्याय से २३ अध्याय तक देखिए।

मुझको तो हँसी आ गई। साथ ही गहमरीजी पर तरस भी आया।

देहातों में एक प्रकार के चोर होते हैं। वे जानवरों की चोरी में बड़े सिद्धहस्त होते हैं। चोरी का माल छिपाने की ग़रज़ से वे बेचारे जानवर के कान काट डालते हैं; पूँछ काट डालते हैं, और उसकी देह कई जगह लोहे की जलती हुई सीकों से दाग़ देते हैं। ऐसे एक चोर से मैंने एक बार पूछा—"क्यों भाई, चोरी करना तुम बुरा नहीं समझते?" वह बोला—"आप इसको चोरी कहते हैं, किंतु मैं अपना रोज़गार समझता हूँ।" उसकी बात सुनकर मैं चुप रह गया। कहने का मतलब यह कि गहमरीजी ने भी अपने चोरी के माल की हुलिया बदलने में कसर नहीं की। बेचारों को इस बात में सफलता नहीं हुई, यह दूसरी बात है। सबसे पहले तो आपने कहानी का नाम बदला। इस नामकरण में ही आपने ग़लती की। एक साहब दूसरों को छाता लगाए हुए देखकर बहुत चिढ़ते थे। यहाँ तक कि दूसरों के छाते तोड़ डालते थे। किंतु अंत में परिस्थिति ने साहब के इस वहम को छुड़ा दिया। कहानी का यही सारांश है, और इतनी ही सामग्री लेकर मूल-लेखक ने अपनी कहानी का प्लॉट बाँधा है। ऐसी दशा में उसका शीर्षक 'छत्रभंग' बिलकुल ठीक है। किंतु गहमरीजी ने अपनी कहानी का नाम 'जैसे को तैसा' क्या सोचकर रक्खा है, समझ में नहीं आता। कहानी में ऐसा कोई भी पात्र नहीं, जो शुरू से आख़िर तक साहब के विरुद्ध रहा हो। सभी सीधे हैं, सभी साहब से डरते हैं। नए हाकिम भी उनके नाम सम्मन जारी करने में हिचकते हैं; और मुख़्तार ने भी उनके ऊपर जो नालिश की थी, वह 'बार' के सब वकीलों के अनुरोध से।

गहमरीजी ने कहानी के शीर्षक को ही नहीं बदला, उसमें आए हुए अन्य नामों को भी बदल डाला है। उदाहरण के लिये—मु० महकमे की जगह सहसराम, डिक्सन की जगह डिक्रूज़, कामिनी बाबू की जगह नगेंद्रनाथ चटर्जी, टुनिया की जगह झुनिया। मतलब यह कि कहानी का रूप-रंग बदलने में आपने कुछ उठा नहीं रक्खा।

कहानी में आपने अपनी तरफ़ से भी कुछ मिलाया है, और आपकी इस इसलाह ने मूल-कहानी के सारे सौंदर्य को नष्ट कर दिया है। मूल के दोनों मुख़्तार 'मक्खीमार' और 'गबदू' नहीं हैं, और न 'टुनिया' ही भठियारिन है।

एक बात और है। आपकी कहानी पढ़ने से इस बात का पता चलता है कि आपने मूल-कहानी को सामने रखकर उसको लिखा है। किंतु ऐसा करने में भी आपसे कई जगह भद्दी भूलें हो गई हैं। मूल में एक स्थान पर है—"हाकिम साहेब भाविलेन मेडिकल आफिसर आकोज करिया नष्टामि करितेछे।" गहमरीजी लिखते हैं—"साहब ने समझा, मेडिकल अफ़सर बहानेबाज़ी करके काम बिगाड़ रहा है।" व्याकरणानुसार वाक्य ठीक है। किंतु वस्तु-स्थिति पर ध्यान देते हुए आपका वाक्य यों होना चाहिए—"काम बिगाड़ने की ग़रज़ से बहानेबाज़ी कर रहा है।" और फिर मूल-वाक्य के 'आकोज' का अर्थ बहानेबाज़ी नहीं, झगड़ा, विवाद या ईर्ष्या है। * मूल में एक दूसरा वाक्य है—"मुकद्दमार सरासरि विचार करियाछिलेन।" आप उसके प्रत्येक शब्द का अनुवाद करके लिखते हैं—"मुकद्दमा का सरसरी विचार किया।" "सरसरी निगाह डाली" होता है, "सरसरी विचार किया" नहीं। "सरसरी तौर पर विचार किया" होना चाहिए।

इस प्रकार के अधिक उदाहरण देने से संभव है, गहमरीजी कह उठें, उन्होंने उक्त स्थलों पर मूल की भाषा का अनुसरण नहीं किया। ऐसी दशा में मुझे सचमुच ही लाचार होना पड़ेगा। किंतु फिर भी आपकी कहानी में ऐसे कई पैरे हैं, जिनका एक-एक शब्द मूल से मिलता है; और उनमें भाषा-संबंधी कई भूलें हैं। यह तो सब हुआ। किंतु गहमरीजी ने अपनी कहानी में मूल-कहानी की तरह अँगरेज़ी के कठिन शब्दों का प्रयोग क्यों किया? बंगाली लेखक तो यह समझते हैं कि उनकी तरह सभी लोग अँगरेज़ी जानते हैं। क्या आपने भी यही सोचकर ऐसा किया है? इतना ही नहीं, आपने अपनी ओर से भी कुछ शब्द बढ़ा दिए हैं। मूल में मुझको 'प्रेडिसेसर' शब्द नहीं मिला। आपने उसका प्रयोग किया है।

इतना ही लिखना बहुत होगा। क्या गहमरीजी इस बात को स्वीकार करेंगे कि उन्होंने अपनी कहानी को बँगला से लिया है? किंतु है यह बुरी बात। हिंदी में ऐसे बहुत-से लेखक हैं, जिन्होंने इसी प्रकार लिख-लिख-

* 'बँगलाभाषार अभिधान' देखिए।

कर नाम कमाया है, और अभी तक इसी प्रकार की बहुत-सी चोरियाँ देखने में आती हैं। ऐसी दशा में इस बात की आवश्यकता है कि हिंदी-पत्रों में छोटी-से-छोटी बातों के ऊपर खूब कड़ी और निर्भीक समालोचनाएँ लिखी जायँ, साहित्यिक चोरों और डाकुओं की खूब खबर ली जाय। नहीं तो ये लोग थोड़े ही दिनों में अपने अनुचित साहस से हिंदी के नाम को बहुत बदनाम कर देंगे।

कृष्णानंद गुप्त

× × ×

४. भारत के शस्त्रास्त्र

पहले पुरुषों में परस्पर युद्ध होते समय पुरुषार्थ प्रकट होता था। वे किसी प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रहार कम करते थे। जब समीप में उपस्थित रहकर पुरुषार्थ प्रकट करने की कमी हुई, अथवा ईर्ष्यालु भावों का उदय और घात-प्रतिघातादि किसी भी प्रकार से प्राण-नाश की वासना बढ़ी, तब शस्त्रास्त्रों के सहारे विजय पाने का यत्न होने लगा। उस समय वृक्ष-शाखा, पाषाण-खंड, और हड्डी आदि प्रसिद्ध शस्त्र थे; किंतु निर्वैर निवास की न्यूनता और युद्धोद्धतों की वृद्धि होने से घातोपघात के उपयोगी शस्त्रों की और भी वृद्धि हुई। ऐसे शस्त्रों में हल-मूसल और गदा गण्य-मान्य थे। उनके पीछे खड्ग, चक्र और शूल आदि से संहार होने लगा। जब इनसे भी संतोष न हुआ, तब दूर ही से तानकर बाण मारने का अभ्यास बढ़ाया गया। धनुष-बाण और चक्र आदि से दूरस्थ दशा में ही शत्रु-संख्या घटने लगी। अंत में आग्नेयास्त्रों के द्वारा अति दूर से ही तोप, बंदूक़ और तमंचे आदि के द्वारा महा संहार होने लगा, और पुरुषार्थ की अपेक्षा छल-कपट और बुरे भाव बढ़ने लगे। अब जैसे शस्त्रास्त्रों की सृष्टि हुई है, उनमें पुरुषार्थ का प्रयोजन नहीं रहा। अतः पुरुषार्थ-परायण पुरुषों के अस्त्र-शस्त्र अब राजधानियों के शस्त्रागारों में ही सो रहे हैं, और उनके दर्शन भी दुर्लभ होते जाते हैं। आज इस संख्या में प्राचीन काल के कुछ अस्त्र-शस्त्रों के चित्र और नाम प्रकाशित किए जाते हैं, जिनसे पाठक जान सकेंगे कि पहले भारत में भी कितने प्रकार के अस्त्र-शस्त्र होते थे, और एक-एक वीर पुरुष कितने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रहता था—

(१) तलवार, (२) पेशक़ब्ज़, (३) गदा, (४) तलधार, (५) बर्छी, (६) साँग, (७) त्रिशूल, (८) शस्य, (९) उभयशूल, (१०) पटा, (११) भाला, (१२) बाकचुगा, (१३) लोहाँगी, (१४) दुधारा, (१५) फरसा, (१६) फरसी, (१७) फरसीचुगा, (१८) जेली, (१९) बटोरनी, (१६) छोटा फरसा, (२०) चाकू, (२१) लोहपंजा, (२२) धनुष, (२३) अंकुश, (२४) गँड़ासी, (२५) लोहपंज, (२६) धनुष, (२७) तरकस, (२८) मिलोल, (२९) तरकस, (३०) गिलोल, (३१) गोफिया, (३२) धनुष-बाण, (३३) लेजम, (३४) शतघ्नी, (३५) छोटा तीरकस, (३६) मूसल, (३७) हल, (३८) कटारा, (३९) बग़ली गुप्ती, (४०) पेटी, (४१) कोरा गोफिया, (४२) स्कंधरक्षक, (४३) जमधर या तीन कटारे, (४४) गलच्छेदक, (४५) बिछुवा, (४६) सिंहनखा, (४७) तीर, (४८) कातीन, (४९) फरसी, (५०) सिंडासी, (५१) चक्र, (५२) पेशक़ब्ज़, (५३) बाँक, (५४) बंदूक़, (५५) शिरभेदी भाला, (५६) लोह-टोप, (५७) गगनभेदी या हवाई, (५८) गोफिया, (५९) बख़्तर (लोह-वस्त्र), (६०) बंकी, (६१) फुलते की ढाल, (६२) फुलता—पटेबाज़ी का, (६३) कटारा, (६४) तमंचा, (६५) लोहहस्त (सिंहनखा), (६६) रणशृंग या रणसींगा, (६७) ढाल, (६८) मोजा लोह का, (६९) गोलीढाल, (७०) कतीन, (७१) तलवार, (७२) खाँडा (खड्ग), (७३) महिषघ्न खाँडा, (७४) वज्र (प्राणघातक), (७५) तोप, (७६) टोपझिलिम, (७७) फ़ौलादी तोड़ा, (७८) पट्टिश, (७९) कमरपेटी, (८०) टोपी, (८१) कटोरा, (८२) चर्मवस्त्र, (८३) घूघी खाल की, (८४) दुधारा कटारा, (८५) कुल्हाड़ा, (८६) वक्रांकुश, (८७) लाठी, (८८) पींछी, (८९) सिलहपोश, (९०) पद्म, (९१) तीर-कमान, (९२) शंख, (९३) पंचकोण, (९४) धनुष-बाण, (९५) छत्र, (९६) लोह-वस्त्र-पेटिका, (९७) गजपीठ-सुंडरक्षक, (९८) चंद्रार्ध, (९९) बाणपोश, (१००) चर्मवस्त्र, (१०१) परिघ, (१०२) अश्वरक्षक, (१०३) कवच, (१०४) रज्जु, (१०५) सुतीक्ष्ण खड्ग, (१०६) भेदक शूल, (१०७) सहस्रार, (१०८) भुजबंध।

इनके सिवा शास्त्रवर्णित शस्त्र और सैकड़ों हैं, जिनके गुण और स्वरूप इस समय अज्ञात हो गए हैं। और उनको उपयोग में लाना लोग भूल गए हैं। आज मशीन-

भारत के शस्त्रास्त्र (१)

भारत के शस्त्रास्त्र (२०)

भारत के शस्त्रास्त्र (३)
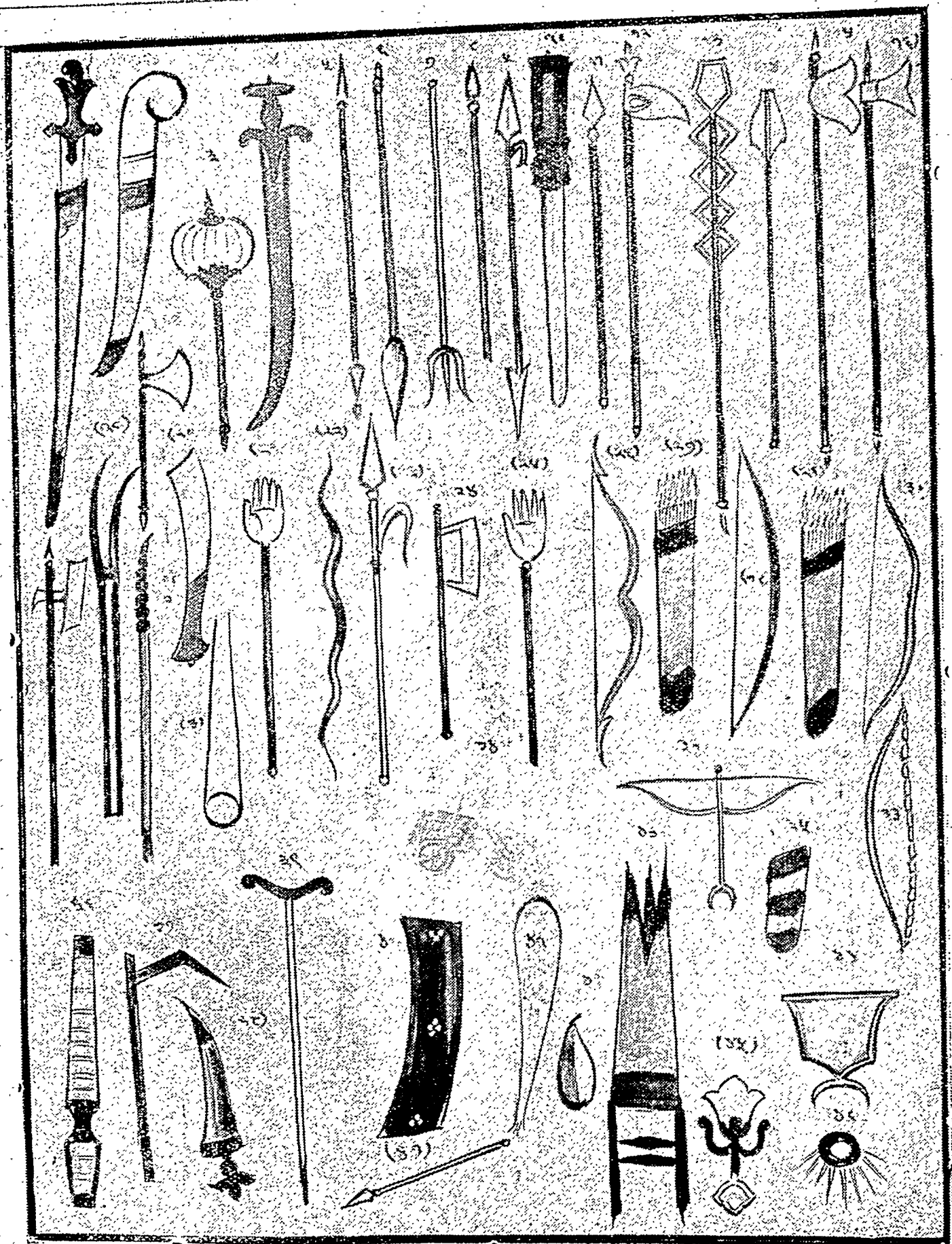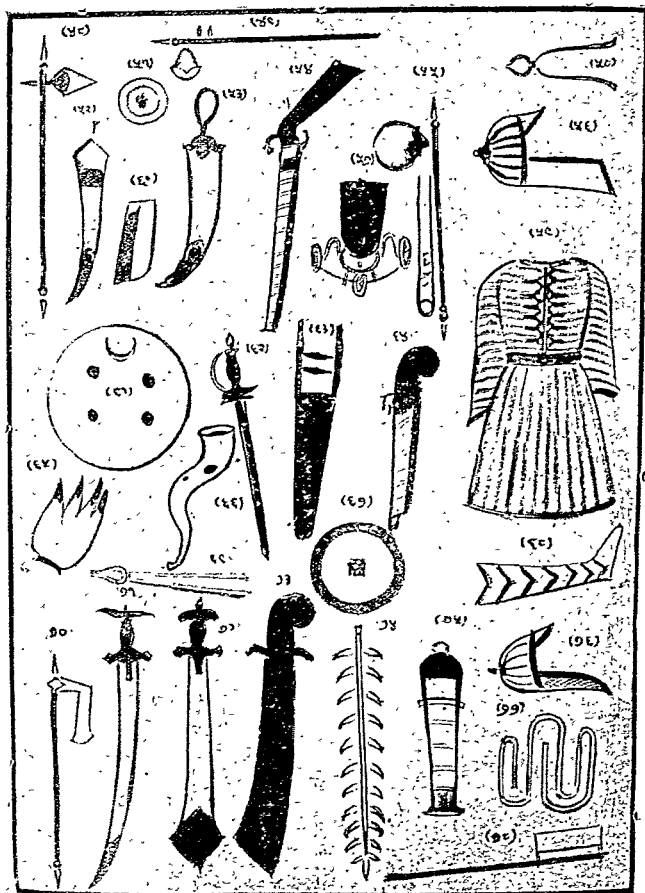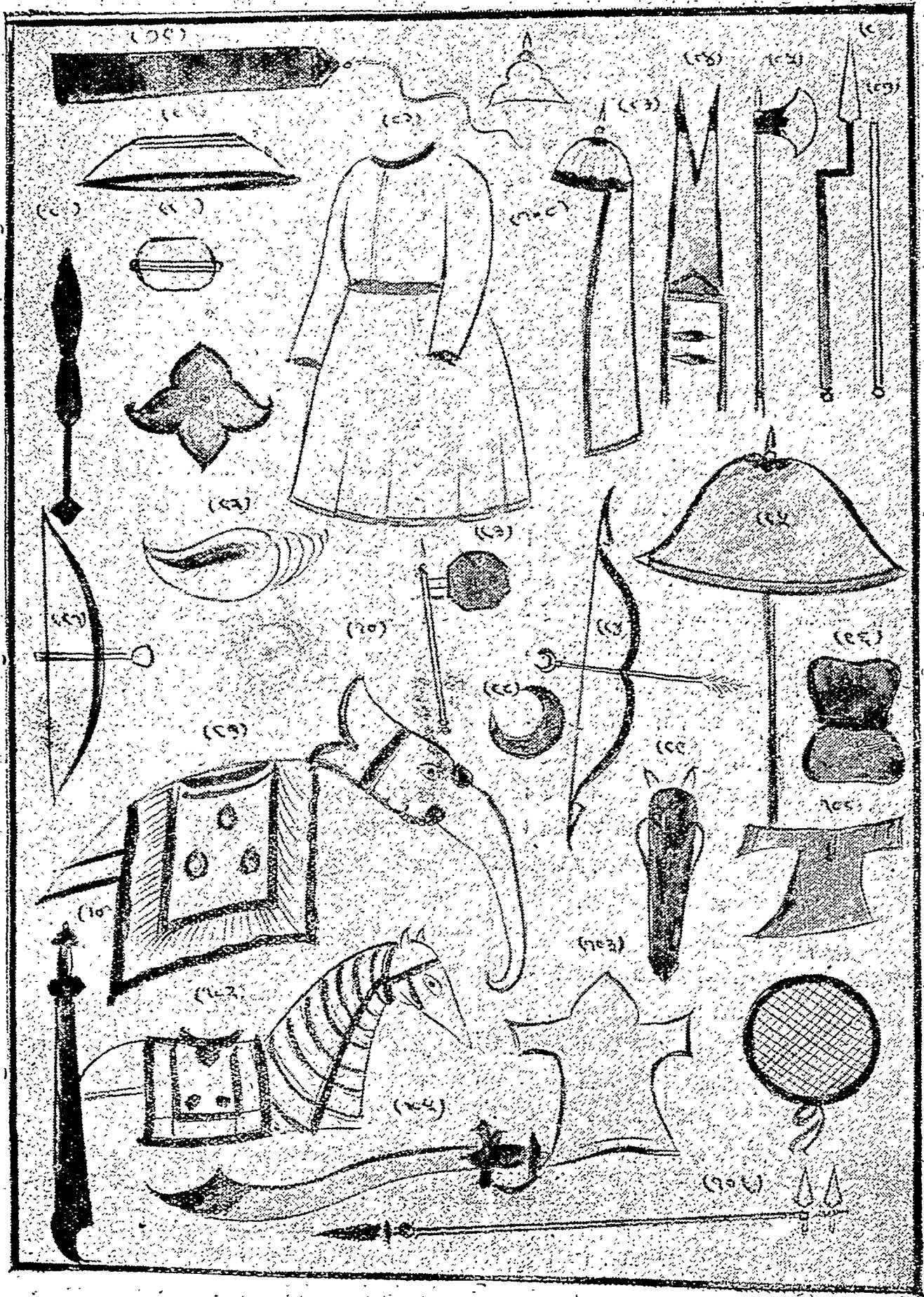
गन के सहारे चाहे क्षण-भर में अगणित नर-देह धड़ाधड़ धरा-शायी कर दिए जायँ, किंतु बाईस सेर वज़न के लोह-वस्त्रों को पहनकर, दो ढाल, दो तलवार, दो कटारे, दो चक्कू, एक बंदूक़, एक तमंचा, एक शूल या भाला और एक धनुष, इन शस्त्रों को धारण कर दो-दो दिन तक लगातार रणभूमि में अविच्छिन्न वाण-वर्षा या शस्त्रास्त्रों का प्रहार करते रहने पर भी यहाँ लोग हृदय में दुर्भाव का प्रवेश नहीं होने देते थे, और शत्रु के असंख्य दुस्त्यज अपराध होने पर भी कपट से उसका सहसा सर्वनाश नहीं करते थे। भारत के वैसे वीर युद्ध में मरने के पीछे अवश्य ही स्वर्ग को जाते थे। अस्तु।

हनूमान शर्मा

× × ×

५. नभोमंडल

शून्य हुआ आकाश, गिर गए हैं क्या तारे ?
नहीं। हृदय से उमड़ पड़े थे अश्रु हमारे।
काला सागर भूमि, त्यागकर यहाँ बहा है !
अथवा काला काल-अखाड़ा यहीं बना है ?
नहीं। शोक से जले हृदय की भस्म बिछाई ;
कूट नीति ने राष्ट्र-एकता ख़ाक बनाई।
चंद्र-देव क्यों छिपे ? क्रोध में क्या ऐंठे हैं ?
नहीं। मलिना देख, दुखित होकर बैठे हैं।
विद्युत् की द्युति बीच-बीच में हो जाती है ;
भारत की तक़दीर, चमक ज्यों सो जाती है।

रामचरणलाल शास्त्री

× × ×

६. महाकवि माघ

भाद्र-मास की माधुरी में पंडित राजधर झा का "महाकवि माघ"-शीर्षक लेख पढ़कर बड़ा आनंद हुआ। पैंतीस वर्ष हुए, लघुत्रयी (रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत) का भाषा-छंदों में अनुवाद प्रकाश करके मैंने बृहत्त्रयी में हाथ लगाया, और किरातार्जुनीय के नव सर्गों और शिशुपालवध के दस सर्गों का अनुवाद भाषा-चौपाइयों में कर डाला। किरात के कुछ सर्गों का अनुवाद सरस्वती में खंडशः छपा था। अब तक माघ के केवल तीन सर्गों का अनुवाद मंडी धनौरा से प्रकाशित 'मनोरमा' में निकला था। अब दोनों को पूरा करने का न शरीर में बल है, न अवकाश। कुछ ऐतिहासिक विषयों की जाँच करने की रुचि रह गई है।

लेखक महाशय ने, महाकवि के वंश का परिचय देते हुए, काव्य के अंत में जो श्लोक दिए हुए हैं, उनमें से पहले को यों पढ़ा है—

"सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः
श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः ;
असक्तदृष्टिर्विरजः सदैव
देवो परः सुप्रभदेव नामा।"

वर्मलाख्य की जगह भिन्न-भिन्न पुस्तकों में भिन्न-भिन्न पाठ हैं। किसी में पद्मनाभ है, किसी में वर्मलात। इतिहास में न वर्मल का पता लगता है, न पद्मनाभ का। लगता है केवल वर्मलात का।

राजपूताने में माड़वार की राजधानी जोधपुर से थोड़ी दूर भीनमाल नगर है। इसको श्रीमाल भी कहते हैं। जैसे इस प्रांत में कन्नौज से कनौजिया ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं, वैसे ही राजपूताने में श्रीमाली ब्राह्मण माने जाते हैं। इस भीनमाल (श्रीमाल) में, विक्रम-संवत् की सातवीं शताब्दी में, चावड़ा-वंश के राजा राज्य करते थे। रायबहादुर पंडित गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा अपने "सिरोही-राज्य के इतिहास" में लिखते हैं—

"भीनमाल के चावड़ों का अधिकार सिरोही-राज्य पर रहा था। वसंतगढ़ में एक शिलालेख वि० सं० ६८२ (ई० सन् ६२५) का मिला है, जो वर्मलात राजा के समय का है। उसका सामंत राज्जिल, जो वज्रभट (सत्याश्रय) का पुत्र था, अर्बुद-देश का स्वामी था, ऐसा उक्त लेख से पाया जाता है। वर्मलात राजा कहाँ का और किस वंश का था, इस विषय में, उक्त लेख में, कुछ भी नहीं लिखा। परंतु प्रसिद्ध माघ कवि, जो भीनमाल का रहनेवाला था, अपने रचे हुए शिशुपालवध (माघ)-काव्य में लिखता है कि उसका दादा सुप्रभदेव राजा वर्मलात का मुख्य मंत्री (सर्वाधिकारी) था। इससे पाया जाता है कि वर्मलात भीनमाल का राजा हो। वहीं के रहनेवाले ब्रह्मगुप्त-नामक ज्योतिषी ने, जो जिष्णु का पुत्र था, श०सं०५५०(वि०सं० ६८५—ई० सन् ६२८) में स्फुट ब्रह्मसिद्धांत-नामक ज्योतिष का ग्रंथ रचा, जिसमें वह लिखता है कि उस समय वहाँ का राजा चाप (चावड़ा)-वंशी व्याघ्र-मुख था। इस वास्ते संभव है, राजा वर्मलात भी, जो उक्त पुस्तक के लिखे जाने से केवल तीन वर्ष पूर्व वहाँ का राजा था, उसी (चावड़ा) वंश का हो, और व्याघ्रमुख उसका उत्तराधिकारी हो।"

गुरुजी प्रणाम

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]

N. K. Press, Lucknow

महाकवि माघ श्रीमाल के रहनेवाले थे, न कि गुजरात के। काल की गति से सर्वाधिकारी का पोता कंगाल हो जाय, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। उदारता भी बहुधा उन्हीं में होती है, जिनके पास धन हो या कभी रहा हो। यदि सुप्रभदेव का राजा वर्मलात का सर्वाधिकारी होना मान लिया जाय, तो महाकवि का समय निश्चित करना बहुत ही सुगम हो जायगा। राजा भोज अनेक हो गए हैं। राजा अज के साले भी 'भोजकुलप्रदीप' थे। धारा के भोजों के विषय में अगले किसी लेख में अपने विचार प्रकट करूँगा।

श्रीअवधवासी सीताराम

× × ×

७. थोथा प्रेम

देखो तो सही, मैंने आज तुम्हारे लिये कितना साज-सिंगार किया था। हाय, न-जाने कितनी बार आईने में अपनी इस मोहिनी मूर्ति को देखा था। जानते हो, किस-लिये? तुम्हें रिझाने के लिये—तुम्हें लुभाने के लिये। पर, निष्ठुर, तुम उस समय न आए।

मैं नहाकर, तिलक लगाकर, हाथ में सुमिरनी लेकर, बैठी। तल्लीन होकर तुम्हारे नाम की माला जपने लगी। मैंने सोचा था, तुम आओगे, तो देखोगे, मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ। ज़रा-सी आहट होती, मेरा दिल धड़कने लग जाता। मैं समझती, तुम आ गए! पर, मैं जान गई, तुम बड़े नटखट हो। भला, उस समय तुम क्यों आने लगे?

मैं जानती थी, तुम बड़े गान-प्रिय हो। हाथ में लेते ही मेरी सुदक्ष उँगलियों के इशारे पर वीणा के तार उन्मत्त होकर नाचने लगे। अंदर से मेरी हृत्तंत्री भी झंकृत हो उठी। मैंने गाया। आह, मत पूछो, कैसा सोज़ था मेरी आवाज़ में, कैसी दिलकश और सुरीली थी मेरी रागिनी। ऐसा गाना मैंने पहले कभी नहीं गाया था। पर ऐ शरारत के पुतले! तुम तब भी न आए।

मैं निराश हो रही थी। इतने में मेरी कुछ सहेलियाँ आ गईं। मेरा बनाव-सिंगार देखकर उन्होंने खूब जी खोलकर मेरी खिल्ली उड़ाई। अपनी झेंप मिटाने के लिये मैं भी उनके साथ हँसने लगी। धीरे-धीरे मेरा मन बहल गया। मैं सब कुछ भूलकर उनके साथ खेलने लगी। मैं खेल में मस्त थी। इतने में किसी ने आकर अचानक मेरी आँखें मूँद लीं। देखा, तुम खड़े-खड़े हँस रहे हो। तुम्हें गले लगाना तो दूर रहा, मैं तो मारे लाज के जैसे ज़मीन में गड़ गई। तुम्हारी यह व्यंग्य-पूर्ण हँसती हुई आँखें मेरे कलेजे में चुभी-सी जा रही हैं।

सच कहो, तुम इस समय क्यों आए? सिर्फ़ मुझे लज्जित करने के लिये?—मेरा अभिमान चूर करने के लिये? यही बताने के लिये न, कि मेरा प्रेम कितना थोथा है?

"अज्ञात"

× × ×

८. विश्व-बंधन

विश्व-सागर से होते पार,
गया गिर मेरे उर का हार।
　　मुझे सुध रही न तरने की,
　　हुई धुन क्रीड़ा करने की,
　　गूँजती थी ध्वनि झरने की,
　　ख़बर कुछ हुई न गिरने की।
तैरते जब कि हो गया क्लांत;
न देखी माला, हुआ अशांत।
　　किया संकल्प हृदयतल में,
　　निकालूँगा माला पल में,
　　सिंधु में हो कि रसातल में,
　　सोच यह फिर कूदा जल में।
करों से उदधि-उदर को चीर;
छानने लगा गर्भ गंभीर।
　　कभी फँसता शैवालों में,
　　कमल-वन के घन जालों में,
　　कभी झप-झुंडों, व्यालों में,
　　थका था, घिरा कसालों में
हार मैं गया, न पाया हार;
हुआ भव-मग्न, न पहुँचा पार।

रामनारायण मिश्र

× × ×

९. डॉक्टर दुर्गाशंकरजी नागर

डी० एस्-सी० ओ०, ई० एम्० एच्० जी०

आपका जन्म संवत् १९९१ के आश्विन-मास में

ग्वालियर-स्टेट के शाहजहाँपुर-ज़िले में, नागर-कुल में, हुआ था। छोटी ही अवस्था में आपके माता-पिता की मृत्यु हो गई, जिससे आप निस्सहाय हो गए। आप बाल्यावस्था से ही हनुमान्‌जी के अनन्य भक्त थे। आप नित्य-प्रति हनुमान्‌जी के मंदिर में जाकर उपासना करते थे। कई बार ऐसे विघ्न भी हुए कि आप मंदिर में न जाने को विवश हुए। परंतु धैर्य के साथ उन सब विघ्नों का सामना करते हुए भी आपने निश्चल भाव से नियम-पूर्वक सेवा जारी रक्खी। विद्याध्ययन में आपको विशेष प्रेम न था; परंतु आप अपने अटल और दृढ़ विश्वास के प्रभाव से परीक्षोत्तीर्ण होते ही रहे। आपको श्रीहनुमान्‌जी की उपासना में कई बार अच्छे-अच्छे अनुभव भी हुए, जिनके कारण आपका विश्वास और भक्ति दृढ़ होती चली गई। आपको हनुमान्‌जी के दर्शन का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ।

मिडिल तक अँगरेज़ी की शिक्षा शाहजहाँपुर में समाप्त करके हाई स्कूल में पढ़ने के लिये फिर आप उज्जैन पधारे। आपकी आर्थिक दशा बहुत हीन थी; परंतु आपके अचल विश्वास और दृढ़ भक्ति के कारण आपको अदृश्य सहायता मिलती रही, और आपका विद्याध्ययन जारी रहा। अदृश्य सहायता में आपको पूर्ण विश्वास है, और इसी के द्वारा अब तक आपका सब कार्य चलता है। आपका विवाह उच्च नागर-वंश में हुआ है, और आपके संतान भी हैं।

डॉक्टर दुर्गाशंकर नागर डी० एस्-सी० ओ०, ई० एम्० एच्० जी०

सन् १९१२ में आपने उज्जैन में शांति-आश्रम नाम की एक संस्था स्थापित की, और उसके अंतर्गत एक पाठशाला भी खोली, जिसमें रात्रि के समय बालकों को अँगरेज़ी, हिंदी आदि में सब स्कूली विषयों की मुफ़्त शिक्षा दी जाती थी। यह पाठशाला ७-८ मास तक ही चली।

इसके पश्चात् सन् १९१४ में सनातनधर्म-सभा तथा पाठशाला स्थापित की, जिसमें रात्रि के समय बिना ननख़्वाह के कई महानुभाव छात्रों को अँगरेज़ी, हिंदी पढ़ाने तथा धार्मिक उपदेश एवं व्यायाम की शिक्षा मुफ़्त देते थे। प्राइवेट स्थान में अपने कुटुंब का निर्वाह कर आप आध्यात्मिक विषयों में उन्नति करते हुए निस्स्वार्थ भावसे सांसारिक सेवा करते रहे।

इस समय आपने आध्यात्मिक विषय में बहुत कुछ उन्नति कर ली। सन् १९१५ में आप Latent Light Culture, Tinnevelly के सदस्य बने। आप अपने अनुभव डॉक्टर संजीवी को सूचित करते रहे, जिससे उक्त डॉक्टर साहब आपसे बहुत प्रसन्न रहे। उन्होंने पुस्तकों द्वारा आपकी अच्छी सहायता की, और इम्तिहान लेकर बी० एस्०
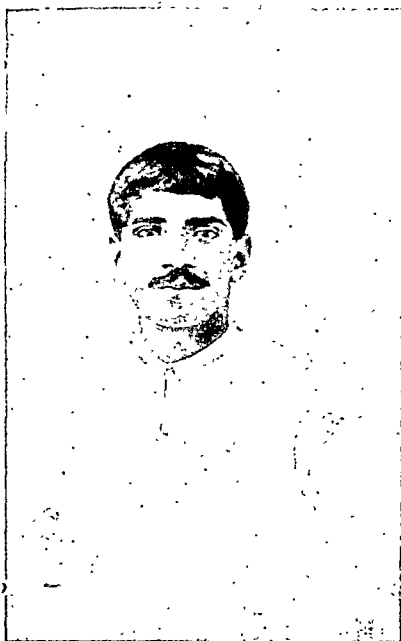
सी०ओ० की डिगरी भी दी। इसके पश्चात् आपके अनुभव और उन्नति से संतुष्ट होकर आपको D. Sc. O. की डिगरी दी। अब आपको योगविद्या तथा मेस्मिरिज़्म के अनेक विषयों का अच्छा अनुभव प्राप्त है, जिसका हाल स्वयं देखने से ही ज्ञात हो सकता है।

आपने आध्यात्मिक विषय में बहुत कुछ खोज की है। जहाँ-जहाँ आपको ऐसी पुस्तकों तथा ऐसे लेखकों का पता लगा, वहाँ स्वयं जाकर देखा। परंतु कोई अनुभवी लेखक नहीं मिला, केवल इधर-उधर से संग्रह कर पुस्तकें छपानेवाले ही मिले, जिन्होंने पुस्तकें केवल धन-प्राप्ति ही की इच्छा से छपा रक्खी थीं, उनको धन-प्राप्ति का साधन बनाया था, और आत्मोन्नति कुछ नहीं की थी। अतएव आपको सब स्थानों से निराश होकर लौटना पड़ा। अलबत्ता थियासोफ़िकल सोसाइटी में अच्छा साहित्य मिला, तथा कार्यकर्तागण भी अनुभवी और सुयोग्य देख पड़े। ऐसे व्यवहारों को देखकर कि लोगों ने ब्रह्मविद्या तथा आध्यात्मिक विषयों पर पुस्तकें छापकर लोगों को केवल धोका देने तथा धन कमाने-मात्र का इसे साधन बनाया है, अनुभव प्राप्त कर उसके द्वारा पुस्तकें नहीं लिखीं, और मूल्य भी उनका बहुत अधिक रक्खा है, आपको बहुत घृणा और दुःख हुआ। इसी कमी को पूरा करने, मनुष्य-जाति को आध्यात्मिक विषयों द्वारा लाभ पहुँचाने, अपने अनुभव द्वारा छोटी-छोटी सस्ती पुस्तकें हिंदी-भाषा में लिखकर, स्वल्प मूल्य पर बेचकर तथा मासिक पत्र निकालकर जनता में आध्यात्मिक विषयों का प्रचार करने तथा मानसिक शक्ति द्वारा रोगों का उपचार करने के उद्देश से सन् १९१८ में, उज्जैन में, 'भर्तृहरि-लाज' के नाम से आपने एक संस्था स्थापित की, जिसमें ये सब कार्य बड़ी सफलता के साथ चल रहे हैं।

आपके ही असीम उद्योग और असाधारण निस्स्वार्थ सेवा का यह परिणाम है कि कई स्थानों पर कई उत्साही सज्जनों ने आपके द्वारा आध्यात्मिक उन्नति कर इसकी शाखाएँ खोल दी हैं, जिनमें हज़ारों रोगी हर साल अपने कठिन और जटिल रोगों से मुक्त होकर नव जीवन प्राप्त करते हैं। साधारण-से-साधारण तथा बड़े-से-बड़े मनुष्यों का एक भाव से बिना किसी स्वार्थ के उपचार होता है, तथा योग्य जिज्ञासुओं को योग तथा ध्यान, प्राणायाम इत्यादि की, उनकी शक्ति और इच्छा के अनुसार, क्रियाएँ सिखाई जाती हैं।

अब तक इस संस्था की शाखाएँ निम्न-लिखित स्थानों पर खुल चुकी हैं—कोटा, नसीराबाद, बड़नगर, लश्कर, खँडवा, तिरोड़ा, नाथाखेड़ी, सिहोर-छावनी और मथुरा। इनमें रोगियों की चिकित्सा का कार्य बड़ी सफलता से हो रहा है।

इस संस्था के उद्देश्यों का पूर्ण रूप से ज्ञान तो इसकी नियमावली देखने से ही हो सकता है, परंतु मुख्य उद्देश्य आत्मोन्नति कर मनुष्य-जाति की सेवा करना ही है; क्योंकि मनुष्य-सेवा ही ईश्वर-सेवा है। अँगरेज़ी में कहावत है—"To love man is to love God." यह संस्था इसका पूर्ण आदर्श है। यदि ध्यान-पूर्वक विचार किया जाय, तो यह बात भी बेशक अक्षरशः सत्य है; क्योंकि जब तक मनुष्य अपने कुटुंबी, इष्ट-मित्र, नगर-निवासी तथा जीव-मात्र से प्रेम करना नहीं सीखेगा, तब तक परमात्मा से प्रेम होना असंभव है, और उसको प्राप्त करना प्रत्येक धर्म और मज़हब का मुख्य ध्येय है।

इस संस्था द्वारा 'कल्पवृक्ष' नाम का एक मासिक पत्र भी निकलता है, जिसमें अनुभव किए हुए आरोग्य होने के नियम, षट्शास्त्र-निरूपण, अष्टांगयोग, राजयोग, लययोग, हठयोग, ब्रह्मविद्या, मेस्मेरिज़्म, हिप्नाटिज़्म, मानसिक चिकित्सा, प्रेतावाहनविद्या, गुप्तविद्या, मनोबल इत्यादि अनेक विषयों पर अनुभवी लेखकों के लेख तथा प्रयोग प्रकाशित होते हैं।

भारतवर्ष में एक समय ऐसा था, जब इस विद्या से यहाँ का बच्चा-बच्चा परिचित था। उस समय की गुरुकुलों की शिक्षा-प्रणाली ही इस प्रकार की थी कि उसमें ब्रह्मचर्य का पालन करना तथा संस्कृत-विद्या का ज्ञान होना आवश्यक था। परंतु अब समय में कुछ ऐसा परिवर्तन हो गया है, और शिक्षा-प्रणाली भी कुछ ऐसी विपरीत हो गई है कि यह विद्या अब यहाँ से प्रायः लुप्त-सी हो गई है। यदि किसी को इसका कुछ बोध भी है, तो वह दूसरों को उसे सिखाना नहीं चाहता। यह केवल इन्हीं महानुभाव की निस्स्वार्थ सेवा और प्रबल परिश्रम का फल है कि अब 'भर्तृहरि-लाज' द्वारा फिर से इस विद्या का प्रचार शुरू हुआ है, जिसके लिये श्रीमान् को हार्दिक धन्यवाद है। आप स्वार्थ छोड़कर अपनी गृहस्थी का पालन लड़कों को पढ़ाकर कर रहे हैं। योगाभ्यास के लिये किसी उचित स्थान का प्रबंध न होने

पर भी आप अपने छोटे-से गृह में निवासकर, जो आध्यात्मिक उन्नति के लिये सर्वथा अयोग्य है, अपनी आध्यात्मिक उन्नति द्वारा संसार को लाभ पहुँचाने को कटिबद्ध हैं।

आपने असंख्य साधारण मनुष्यों के अलावा कई राजों-महाराजों तथा सेठ-साहूकारों की भी चिकित्सा ऐसे समय में की है, जब वे अन्य सब प्रकार की औषधों तथा चिकित्सा से हताश हो चुके थे। वे सब चंगे भी हो गए। दूर के रहनेवाले रोगियों की भी चिकित्सा यथावकाश उनके फ़ोटो द्वारा की जाती है।

इस संस्था में इलाज कराने के लिये दूर-दूर से रोगी आते और स्वस्थ होकर आपको धन्यवाद देते हुए अपने घर वापस जाते हैं। परंतु उज्जैन-जैसी बड़ी नगरी में भर्तृहरिलाज-जैसी संस्था को अभी तक यथेष्ट आर्थिक सहायता नहीं मिलती। हमारी समझ में ऐसी उपयोगी और परमार्थी संस्था को जो कुछ सहायता दी जाय, वह थोड़ी है। यह भी हमारा दुर्भाग्य है कि ऐसी संस्थाओं को सहायता न देकर हम अपने भाइयों को लाभ नहीं पहुँचाना चाहते।

जिनको इस विद्या का ज्ञान प्राप्त करना हो, इसके द्वारा अपना, अपने देश-वासियों और अपने कुटुंबियों का हित करना अभीष्ट हो, वे भर्तृहरिलाज के मंत्री से पत्र-व्यवहार करें। जिनको उज्जैन जाने का सुअवसर प्राप्त हो, वे अवश्य इस संस्था के संस्थापक नागरजी का दर्शन और इस संस्था का निरीक्षण करें।

राधाकांत भार्गव

× × ×

१०. पुकार

मन-मंदिर के इष्टदेव, हे जीवन के आधार!
मेरी जीवन-नौका के तुम सकुशल खेवनहार!
कहूँ कहाँ तक अपने मन की व्यथा, कहो हे प्यारे!
तुम बिन मुझको भूल गए हैं जीवन के सुख सारे।
तुम्हें देखने को मेरे हैं नेत्र विकल, हे प्यारे!
कहाँ छिपे हो, खोजें कैसे? खोज-खोज हम हारे।
मेरा शब्द व्यग्र है अतिशय, कैसे तुम्हें पुकारे?
हत्तंत्री का शब्द श्रवण कर प्रकट होइए, प्यारे!

"कमल"

× × ×

११. पाताल-पानी

इंदौर-नगर होलकर-राज्य की राजधानी है। इस राज्य के महू-नामक परगने में चोरल-नामक एक छोटी-सी नदी है। यह नदी कई स्थानों पर पर्वत पर से नीचे को गिरती हुई बहती है। इसी नदी का एक जल-प्रपात इंदौर से खंडवा जाते हुए, मार्ग में, रेल में से दिखाई देता है। कालाकुंड-स्टेशन से कुछ आगे, घाट चढ़कर ऊपर जाने के

पाताल-पानी का जल-प्रपात

बाद, यह जल-प्रपात दिखाई देता है। जिस स्थान पर जल गिरता है, वहाँ एक बड़ा भारी कुंड-सा बन गया है। कहा जाता है, वह पाताल तक गया है। इसी से इस जल-प्रपात को 'पाताल-पानी' कहते हैं। पास के गाँव और रेलवे-स्टेशन को भी 'पाताल-पानी' कहते हैं। बरसात में इस जल-प्रपात का दृश्य बड़ा ही रमणीय होता है। लगभग १२० फ़ीट की उँचाई से गिरता हुआ पानी चट्टानों से टकराकर नीचे आता है, जिससे छोटे-छोटे जल-कणों के कारण सब सफ़ेद दिखाई देता है। पाताल-पानी-स्टेशन से रेल की सड़क पर से होकर थोड़ी दूर पर जाने के बाद
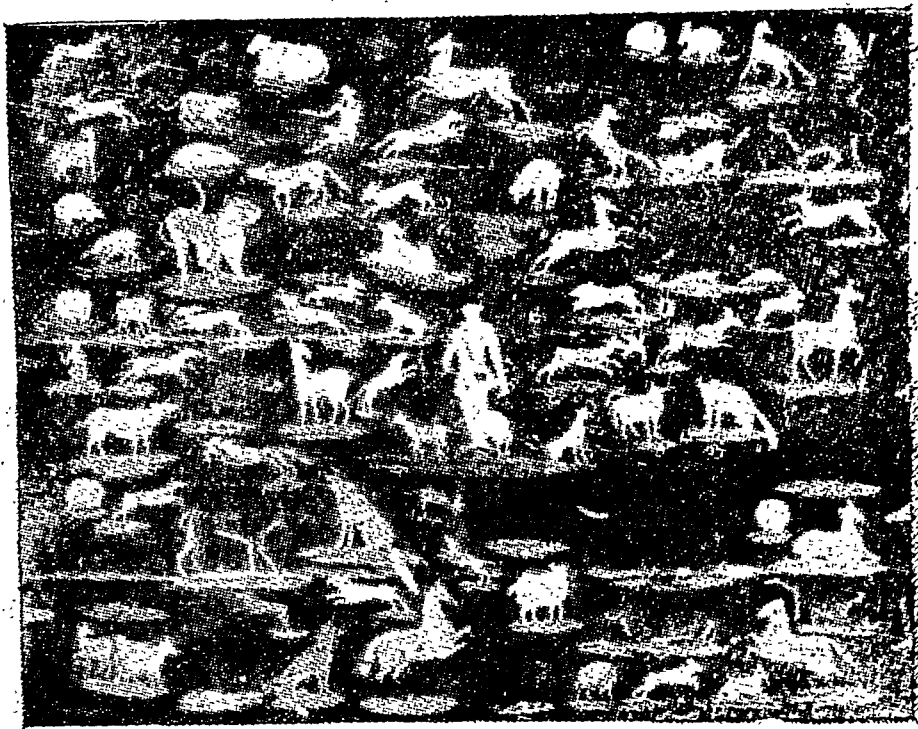
मेंदीकुंड का जल-प्रपात

पेशवा का शिकारख़ाना

यह जल-प्रपात दिखाई देता है। पगडंडी से नीचे कुंड तक भी जा सकते हैं।

'मेंदीकुंड'-नामक एक और जल-प्रपात है। वह इससे अधिक ऊँचा है। किंतु यह रेल में से दिखाई नहीं देता। मेंदीकुंड का जल-प्रपात भी चोरल नदी के जल-प्रपातों में से ही है। इन दोनों ही जल-प्रपातों के पासवाले भूभाग का दृश्य बहुत ही चित्ताकर्षक है। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य अपूर्व है।

× × ×

१२. पेशवा का शिकारख़ाना

पेशवाओं के राज्यकाल में राज्य-व्यवस्था का कार्य भिन्न-भिन्न अठारह विभागों में विभक्त किया गया था। इन विभागों में से एक का नाम 'शिकारख़ाना' (पशु-पक्षीशाला) था। इस शिकारख़ाने का कुछ-कुछ वर्णन ऐतिहासिक काग़ज़-पत्रों और इतिहासों में कहीं-कहीं पाया जाता है। इसका संक्षिप्त वृत्तांत नीचे दिया जाता है—

पेशवाओं को हाथी, शेर आदि प्राणियों का युद्ध देखने का बड़ा शौक़ था। पूना के पास पर्वती-नामक एक टेकड़ी है। इसी टेकड़ी के पास एक बग़ीचे में शिकारख़ाना रक्खा गया था। इसमें नाना प्रकार की बोलियाँ बोलनेवाले भाँति-भाँति के तोता, मैना, चंडूल, बत्तख़, हिरन, अनेक रंग के ख़रगोश, शेर आदि प्राणी रक्खे गए थे। इस शिकारख़ाने में शंभु-नामक एक बाघ था, जो एक छोटे टट्टू के बराबर ऊँचा था। इसकी सारी देह पीली थी। महादजी सेंधिया ने भी उत्तर-हिंदुस्तान से कई गैंडे लाकर इस शिकारख़ाने में रक्खे थे। एक सिंह भी था। ये क्रूर प्राणी लोहे के पिंजड़ों में नहीं रक्खे गए थे। खुले स्थान में मज़बूत जंजीरों से बाँधकर रक्खे गए थे। इनको भोजन भी भर-पेट दिया जाता था, जिससे सभी हृष्ट-पुष्ट हो रहे थे। इन-को खाने-पीने की सामग्री देने और इनकी देख-रेख करने के लिये कई मनुष्य नियुक्त थे। कई मनुष्य इनको भाँति-भाँति के खेल और युद्ध-कला सिखाने के लिये भी तैनात थे। सर्कस के जीवों की तरह ये जीव भी अपने खेल-तमाशे दिखाकर दर्शकों को दंग कर देते थे। उस समय कई अँगरेज़ अधिकारी इस शिकारख़ाने को देखने के लिये जाया करते थे। अँगरेज़ रेज़िडेंट सर चार्ल्स मैलेट ने एक कुशल कारीगर ब्राह्मण से इस शिकारख़ाने के प्राणियों के मिट्टी के नमूने तैयार करवाकर उसी से एक सुंदर चित्र बनवाया था। ऊपर चित्र में उसी के चित्र का एक फ़ोटो दिया गया है।

शंकरराव जोशी

× × ×

१३. महाकवि देव और भरतपुर-राज्य *

फाल्गुण की माधुरी में माननीय याज्ञिकद्वय ने पूज्यपाद गुरुदेव श्री ६ गिरिधारीलालजी के कथन का आश्रय लेकर महाकवि देव का संबंध भरतपुर-राज्य से बतलाया है। वह ठीक ही है।

मैंने भी कतिपय वयोवृद्धों से देव के विषय में एक यह किंवदंती सुनी है कि महाराज सूरजमलजी के दरबार में देवजी का आना समय-समय पर हुआ करता था। एक समय देवजी महाराज के दरबार में पधारे। उस समय कविवर घनआनंदजी भी उपस्थित थे। कविद्वय में वार्तालाप होते समय महाकवि देवजी ने कहा—"घनआनंदजी, आपकी कविता में जो चमत्कार और हृदयग्राहकता है, वह हमारी कविता में क्यों नहीं आती ?" इस पर घनआनंदजी बोले—"महाराज, आप वर्तमान समय के कविशिरोमणि और उत्कृष्ट पंडित हैं; परंतु इस दास की और श्रीमान् की कविता में जो अंतर है, उसका कारण एक रहस्य से पूर्ण है। वह यही कि आप जो वर्णन करते हैं, वह दूसरों पर बीती का, और यह दास अपने ऊपर बीती बात कहता है। जैसे कोई मनुष्य किसी के यहाँ मृत्यु होने पर शोक प्रदर्शित करने जाय, तो उस समय उसको वैसा दुःख का अनुभव नहीं होता, जैसा जिसके घर मृत्यु हो गई हो, उसको होता है।"

अब विचारणीय बात यह है कि याज्ञिकद्वय ने जो किंवदंती पूज्यपाद पंडितजी के कथनानुसार बतलाई है, वह कहाँ तक सत्य है। माननीय महाशयों ने एक कवित्त के अधूरे अंतिम चरण को किंवदंती का आधार बतलाया है। जिस कवित्त का वह अंतिम चरण है, उस का डीग के क़िले से कोई संबंध नहीं है। गुरुदेव ऐसी अलीक बात को कहें, यह संदिग्ध है। मेरे पास भरतपुर-राज्य से संबंध रखनेवाली कविता का संग्रह संवत् १८३० का लिखा है। उसमें वह कवित्त इस प्रकार है—

हेम, हय, हाथी न हथियार यार साथी भए
खंदगीन मंदिर, जहाऊ कठछपरा;
मोहरे भँटारन में ओंडि घन गाड़ि धरे,
धुधकि-धुधकि धुकि धुरि गए धपरा।
"देव" कहै देखो खल खाम न खवाय सक्यो,
खायो तीन पात चुन पहिरे न कपरा;
मरेंहि अचेत भयो ऊजर न मैले भए,
फेले गेह रेत-खेत, खोपरी के खपरा।

यह कवित्त किसी एक मनुष्य को लक्ष्य कर के नहीं कहा गया, और क्रिया-पद भी आसन्न-भूतकालिक है। इस कारण उक्त कवित्त के अंतिम चरण के आधार पर लिखी हुई किंवदंती निर्मूल है।

किसी आगामी लेख में लिखेंगे कि देव ने यह कविता क्यों और किस समय की, और अन्य छः छंदों के विषय में नं० १ तथा नं० २ के वर्णन को सं० १८२१ में महाराज जवाहरसिंहजी द्वारा दूसरी बार दिल्ली लूटने का बताया है। इसमें भी इतिहास से कुछ भ्रांति है; क्योंकि सं० १८२१ में जवाहरसिंहजी ने दिल्ली को लूटा नहीं, केवल दिल्ली का घेरा (मुहासिरा) छः महीने तक डाला था। बादशाह के शरण आने पर दंड लेकर अपने राज्य को लौट आए थे।

विचार से ज्ञात होता है, नं० १ और नं० २ के कवित्त दिल्ली को सं० १८१० में महाराज सूरजमलजी की आज्ञा से जो जवाहरसिंहजी ने लूटा था, उसके वर्णन में हैं। देखो, सुजान-चरित्र जंग, ६, अंक १-२-३। इस लूट के प्रधान जवाहरसिंहजी ही थे (सं० १८०२ में सूदन ने दिल्ली की लूट नहीं लिखी)। सं० १८२१ से पहले ही पानीपत की सन् १७६१ ई० की मरहठों की पराजय के समय की गड़बड़ में महाराज सूरजमलजी ही आगरे को अपने अधिकार में कर चुके थे, और जवाहरसिंहजी अपने पिता महाराज सूरजमलजी के साथ ही अपने वीरत्व का परिचय दे चुके थे। सूदन ने सुजान-चरित्र में महा० जवाहरसिंहजी की वीरता और सेना का वर्णन समय-समय पर ओजपूर्ण कविता में किया है। "आगरे हवेली" आदि कवित्त सं० १८२२ से पहले का हो सकता है।

इन छः छंदों के अतिरिक्त जवाहरसिंहजी के विषय के कुछ छंद देव के कहे और भी हैं। याज्ञिक महोदय इसकी मीमांसा करें कि इन छंदों के कहनेवाले महाकवि देवजी ही हैं, या अन्य कोई देव कवि।

मदनलाल मिश्र

---

* यह नोट आश्विन की संख्या में प्रेस की गलती से छपने से रह गया, और इसका उत्तर छप गया। इस भूल के लिये हम पाठकों से क्षमा-प्रार्थी। इसके उत्तर के लिये देखिए माधुरी की गत संख्या में प्रकाशित सुमन-संचय का पहला नोट।—संपादक

१. सूर्य की शक्ति

संसार में शक्ति पैदा करनेवाले पदार्थों की कमी दिन-दिन होती जा रही है। प्रति दिन पृथ्वी के गर्भ से लाखों टन कोयला निकाला जा रहा है। यदि इसीहिसाब से दो-ढाई सौ वर्ष और कोयला निकाला गया, तो पृथ्वी में कोयला न रह जायगा। पृथ्वी से तेल भी कुछ कम परिमाण में नहीं निकलता। किंतु सारे संसार का तेल सौ वर्ष के भीतर ही ख़तम हो जायगा। मनुष्य-मात्र के लिये जंगल का रहना अत्यावश्यक है। कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य जंगलों को काटकर उससे व्यापारिक संस्थाओं को चलाने की सलाह न देगा। इसके अतिरिक्त जंगलों से इतनी लकड़ी नहीं निकल सकती कि वह इस उन्नतिशील व्यापारिक युग का कुछ वर्षों तक भी काम चला सके। इस समय संसार में जितनी शक्ति की आवश्यकता है, उसका केवल पाँचवाँ हिस्सा ही हम सारे संसार के जल को शक्ति पैदा करने के काम में लगाकर पा सकते हैं। इसके अलावा जल सब जगह सुलभ भी नहीं है। 'विंड-मिलों' की संख्या इतनी कम है कि भविष्य में हम लोग उन पर निर्भर नहीं रह सकते, तो क्या दो-तीन सौ वर्षों के बाद हम शक्तिरहित हो-कर प्राण गँवावेंगे? क्या आज से तीन शताब्दियों के बाद हमारा भोजन पकाने के लिये कोई साधन नहीं रहेगा?

यद्यपि वैज्ञानिक लोग पदार्थ की नश्वरता में विश्वास नहीं करते, तो भी वे इस बात को भूले नहीं हैं कि किसी पदार्थ के निरंतर व्यय का अर्थ उस पदार्थ को ख़तम कर देना है। वे जानते हैं कि एक-न-एक दिन कोयले और खनिज तेल का अंत अवश्यंभावी है। उसका प्रतिकार करने की चेष्टा वे बहुत दिनों से कर रहे हैं। सबसे पहले उनकी दृष्टि सूर्य की ओर फिरी। सूर्य की गरमी उसके आरंभ ही से व्यर्थ जा रही है। यदि उसे किसी तरह जमा करके उससे काम लिया जाय, तो यह महत्त्व-पूर्ण समस्या बहुत जल्दी हल हो जाय।

पाठकों ने देखा होगा, किसी आतशी शीशे के नीचे थोड़ी-सी रुई रखकर उस पर सूर्य का प्रकाश डाला जाय, तो कुछ देर बाद रुई में आग लग जायगी। सूर्य के प्रकाश को सबसे पहले शायद आर्किमेडिस ने एक जगह जमा किया था। प्राचीन कहानियों से पता चलता है कि आर्किमेडिस ने रोड्स में सूर्य के प्रकाश को एक स्थान पर जमा करके उस स्थान पर चढ़ाई करनेवाले रोमन जहाज़ों पर उसे इस तरह डाला कि उनमें आग लग गई। आज के वैज्ञानिक भी सूर्य के प्रकाश को इसी तरह घनीभूत करना चाहते हैं। वे भी आतशी शीशे से काम लेने लगे हैं, और उन्हें कुछ-कुछ सफलता भी हुई है।

संसार के प्रायः सभी देशों के वैज्ञानिक सूर्य की शक्ति से काम लेने की तरकीब सोच रहे हैं। जो उपाय सबसे अधिक सरल और कार्यक्षम होगा, उसी का भविष्य में आदर होगा। न्यूयार्क के प्रसिद्ध वैज्ञानिक टेस्ला अपने अनुसंधान में लगे हुए हैं। बोलोना के Dr. Giacomo Ciamician भविष्य की पृथ्वी को बड़े-बड़े शीशे के चौरस टुकड़ों से, परावर्तक शीशों से, शीशों के नलों तथा गुंबज़ों से आच्छादित देखते हैं।

सूर्य-किरणों को घनीभूत करने के लिये भविष्य में इसी प्रकार के शीशे व्यवहृत होंगे

डॉ॰ ऐबट सूर्य की शक्ति को घरेलू कामों में लगाने में समर्थ हुए हैं। उन्होंने अपने घर (Mount Wilson Observatory) में एक "किरण-ग्राहक" (Ray Catcher) लगा रक्खा है। इसके द्वारा जो गरमी पैदा होती है, उससे उनका भोजन पका करता है। उनका यह 'किरण-ग्राहक' एक दस फ़ीट लंबा और सात फ़ीट चौड़ा शीशा है। सूर्यकिरणें एक स्थान पर केंद्रीभूत होती हैं। इस केंद्र के पास तेल रक्खा रहता है। सूर्य-किरणें तेल को गरम करती हैं। इसी तेल में दो चूल्हे भोजन पकाने के लिये रक्खे रहते हैं। चूल्हों को ३२० फ़ारेनहाइट तक गरम किया गया था। यह तापक्रम ८० पौंड दबाव की भाप तैयार करने के लिये काफ़ी है। ऐबट साहब का कहना है कि यदि अधिक गरमी की आवश्यकता हो, तो इससे बड़े शीशे का व्यवहार करना चाहिए।
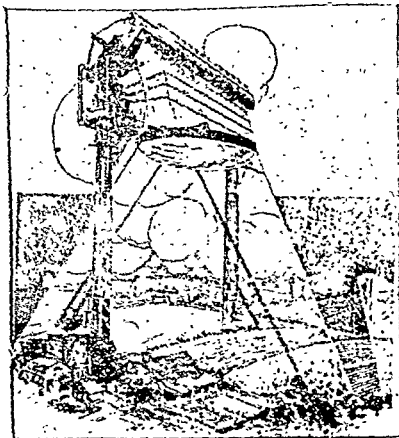
डॉक्टर साहब का कहना है कि "सूर्य का तापक्रम १०,८०० डिग्री फ़ारेनहाइट है। उसकी गरमी का प्रायः ७० फ़ी सैकड़ा हिस्सा पृथ्वी के वायुमंडल से मिलकर पृथ्वी तक पहुँचता है। फ़ी एकड़ प्रायः पाँच हज़ार हार्स-पावर की शक्ति सूर्य की गरमी से निकाली जा सकती है। यद्यपि यह बात सिद्धांत-स्वरूप है, तो भी हम लोग सूर्य की गरमी का फ़ी सदी प्रायः ४० हिस्सा व्यवहार में अवश्य ला सकते हैं। किंतु दुःख की बात यह है कि हम लोगों का जितना ध्यान कोयले से शक्ति प्राप्त करने की ओर है, उतना सूर्य की शक्ति को उपयोग में लाने की ओर नहीं।"

चौबीस वर्ष के एक युवा आविष्कारक, बर्नार्ड ग्रासोमैन ने एक ऐसे निकेल-प्लेटेड आईने का आविष्कार किया है, जो सूर्य की किरणों को एक स्थान पर घनीभूत कर पानी खौलाने की शक्ति रखता है। इसके द्वारा जो भाप बनती है, उससे एंजिन चल सकता है। इस एंजिन से बिजली पैदा की जा सकती है, वाष्प-संचालित मशीन भी चलाई जा सकती है।

लास एंजिलस के वैज्ञानिक विलियम टामस इन सबसे बढ़े हुए जान पड़ते हैं। यह कुछ दिनों तक एडीसन के साथ काम करते रहे हैं। यह सूर्य की किरणों से खनिज पदार्थ गलाने का काम ले रहे हैं। सूर्य की किरणें, जो आरंभ में २४ घन-फ़ीट पर पड़ती हैं, एक ३६ घन-इंच चौड़े शीशे पर घनीभूत होती हैं। वहीं वे खनिज पदार्थ को गलाती हैं।

Dr Charles P. Steinmetz कहते हैं—"यदि हम लोग सूर्य की गरमी से काम लेना न सीखेंगे, तो कुछ ही वर्षों के बाद सारे संसार के मनुष्य मर जायँगे पृथ्वी पर कोयले तथा पानी के द्वारा जो शक्ति उत्पन्न की जा सकती है, उससे सूर्य की शक्ति हज़ारोंगुना अधिक है सूर्य-शक्ति को हमें अन्न-उत्पादन का साधन बनाना पड़ेगा

क्योंकि यद्यपि इस समय पृथ्वी जितना अन्न उत्पन्न करती है, वह संसार-भर के मनुष्यों के लिये काफ़ी है, किंतु वह समय शीघ्र ही आ रहा है, जब मनुष्यों की संख्या बढ़ जायगी, और काफ़ी अन्न न मिलने से उनमें हज़ारों-लाखों की मृत्यु होगी।''

पाश्चात्य वैज्ञानिक सूर्य-शक्ति को व्यवहार में लाने की पूरी चेष्टा कर रहे हैं।

× × ×

२. बेतार में गोप्यता

बेतार द्वारा संवाद भेजने में अब तक गोप्यता नहीं है। किसी एक स्थान से ख़बर भेजने पर वह सारे संसार में उसी प्रकार फैल जाती है, जिस प्रकार तालाब में एक पत्थर फेकने से जल-तरंग। किसी एक स्थान में ईश्वर को आंदोलित कर देने से सारे संसार के ईश्वर में आंदोलन उठ खड़ा होता है, और जहाँ-जहाँ बेतार के सँवाद-ग्राहक यंत्र रहते हैं, वहाँ-वहाँ के यंत्र ख़बर पा जाते हैं। लड़ाई के समय लोग बेतार को गुप्त समाचार भेजने के काम में इसीलिये नहीं ला सकते थे कि वह ख़बर शत्रुओं को भी मालूम हो जाने का डर था। बेतार के आविष्कारक सिगनर मारकोनी इस दोष को दूर करने की फ़िक्र में बहुत दिनों से लगे हुए हैं, अर्थात् वह इस चेष्टा में बहुत दिनों से हैं कि जहाँ और जिस
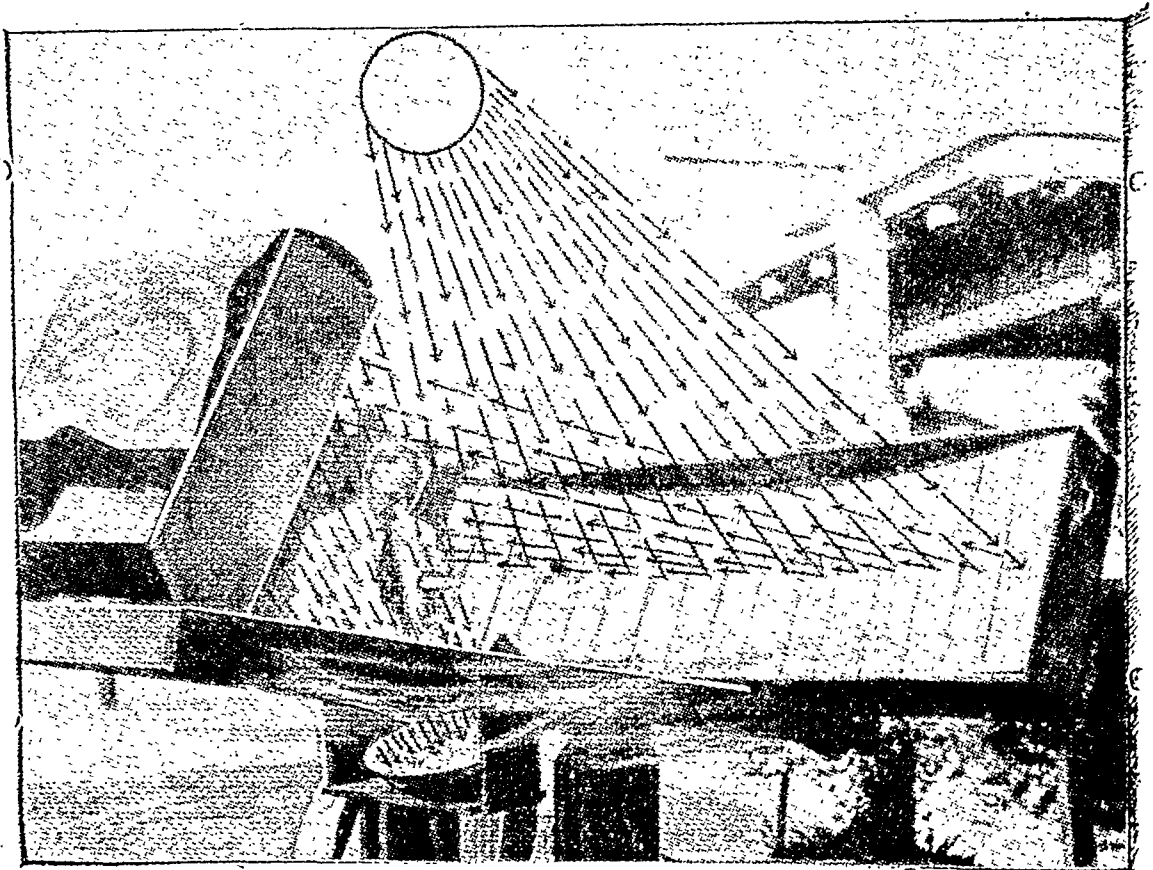
बर्नार्ड के आविष्कृत आईने की परीक्षा हो रही है.

सूर्यकिरणों द्वारा खनिज पदार्थों को गलाना

दिशा में बेतार द्वारा ख़बर भेजी जाय, वहीं का ग्राहक-यंत्र उस ख़बर को सुन सके, वह अन्य दिशा में न फैल जाय।

अभी उस दिन ख़बर मिली है कि मारकोनी महाशय अपनी चेष्टा में सफल हुए हैं। उन्होंने एक ऐसा यंत्र बनाया है, जो बेतार द्वारा भेजे हुए समाचार को नियत स्थान ही पर पहुँचाता है। अपने इस यंत्र के विषय में मारकोनी का कहना है कि—"यह परावर्तक शीशे-जैसा है। जैसे प्रकाश शीशे पर पड़ता है, और आप उसे जिस दिशा मे चाहें परावर्तन कर सकते है, उसी प्रकार मेरे इस यंत्र द्वारा बेतार के समाचार आप इच्छानुसार किसी एक दिशा में भेज सकते हैं। इस यंत्र का काम ईथर की तरंगों को इस शीशे के बीच में केंद्रीभूत कर देना है। ईथर की तरंगें शीशे से टकराती है। शीशे को घुमाकर आप तरंगों को जिस किसी दिशा में भेज सकते हैं।"

रमेशप्रसाद

× × ×

३. लिंग-परिवर्तन

पुराणों में बहुत-सी ऐसी बातें पाई जाती हैं, जो प्रकृति के विरुद्ध देख पड़ती हैं इस कारण कुछ लोग इनको गपोड़बाज़ी समझते हैं। कुछ विद्वान् ऐसे भी है, जो समझते हैं कि पुराण चाहे जब के लिखे हों, परंतु इनमें कुछ बातें ऐसी हैं, जो बहुत पुरानी हैं, और किसी ऐसी प्राचीन सभ्यता की सूचना देती हैं, जो अब प्रायः लुप्त हो गई है। विद्वानों की यह कल्पना आजकल के वैज्ञानिक आविष्कारों से धीरे-धीरे पुष्ट हो रही
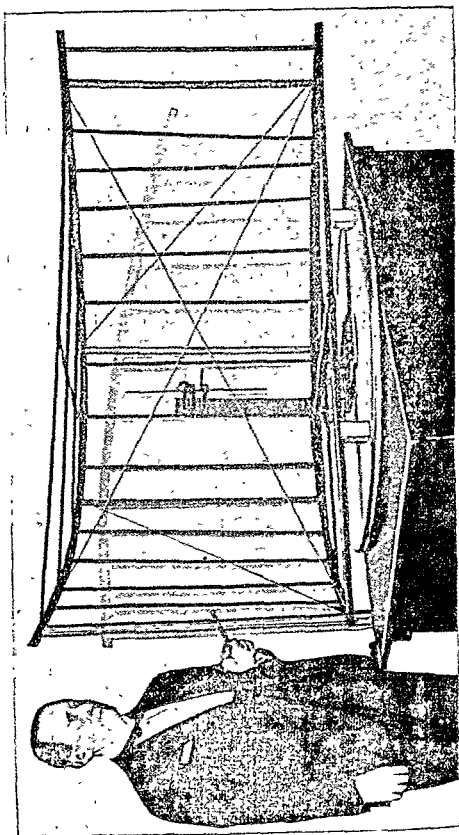
मारकोनी और उनका नया यंत्र

हैं। विश्वामित्र नई सृष्टि के रचने की बात में यह भी दिया हुआ है कि उन्होंने कई प्रकार के नाज और फल भी उत्पन्न किए थे, जो पहले नहीं थे। यह बात अमेरिका के बरबंक-नामक उद्भिद्-विद्या-विशारद ने, बरसों हुए, सिद्ध कर दी। इसने पौदों में अनेक प्रकार के संस्कार करके नए-नए फलों और पौदों की सृष्टि की है। अब इस बात का अनुसंधान हो रहा है कि क्या पुरुष-जाति के जीवधारी स्त्री-जाति में और स्त्री-जाति के जीवधारी पुरुष-जाति में बदले जा सकते हैं।

प्रयाग का लीडर-नामक अँगरेज़ी दैनिक पत्र कहता है कि लंदन के रॉयल इंस्टीट्यूशन में डॉक्टर एफ़० ए० ई० ग्रे ने एक व्याख्यान 'वंशपरंपरा और लिंग' (Heredity and Sex) पर दिया है, जिसमें बतलाया गया है कि पालतू पशुओं में लिंग-परिवर्तन के अद्भुत उदाहरण पाए गए हैं।

ग्रे महोदय का कहना है कि यह बात साधारणतः मानी जाती है कि उच्च कोटि के जीवधारियों में गर्भाधान के समय ही लिंग का निश्चय हो जाता है; परंतु यह बात भी सिद्ध हो गई है कि गर्भाधान के समय लिंग का निश्चय जिन अवयवों (Mechanism) से किया जाता है, वे बदलकर ऐसे हो जाते हैं कि अंत में जीवधारी विरुद्ध लिंग का हो जाता है। कीड़ों-मकोड़ों में यह बात बहुधा देखी जाती है कि आरंभ में एक कीड़ा स्त्री-जाति होता और अपना प्रारंभिक जीवन इसी योनि में बिताकर विकास पाता है, परंतु फिर बदलकर पुरुष-जाति की-सी सब क्रियाएँ करने लगता है।

यह भी संभव है कि कीड़ों का संयोग इस प्रकार कराया जाय कि सभी मादा बच्चे बदलकर नर हो जायँ। लिंग-सूचक ग्रंथियों (Sex glands) का प्रभाव किसी कीड़े की विशेषता पर नहीं होता। एक अनोखी बात यह देखी गई है कि यदि वाटर-बीटल (Water beetle)-नामक कीड़े की मादा का सिर काटकर उसकी जगह नर वाटर-बीटल का सिर लगा दिया जाय, तो मादा नर हो जाती है। इस बात का पता लगाया जा रहा है कि यह परिवर्तन कैसे हो जाता है।

मेंढक, मुर्ग़ (Fowls), कबूतर और बकरों में भी लिंग-परिवर्तन होता हुआ पाया गया है। मेंढकों में देखा गया है कि एक मादा मेंढक पूरा विकास पा चुकने पर नर हो गई। इस 'मादा-नर' मेंढक का संयोग अन्य मादा मेंढक से कराने पर जितने बच्चे हुए, सब मादा थे। निउट (Newt) जाति का नर कीड़ा केवल भोजन के नियंत्रण से मादा हो गया। मिनोज़ (Minnos)-नामक मछली तो ५० फ़ी सदी मादा से नर होती हुई देखी गई है।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

× × ×

४. एक प्रकार की मनोमोहनी मकड़ी

इस मकड़ी का नाम "डाइक्रॉसटिकस मैग्नीफ़िकस रेन बो" है। क्वींसलैंड की रॉयल सोसाइटी के विवरण में मिस्टर एच्० ए० लॉंगमैन ने इस विशालवदना, सुंदर मकड़ी का वर्णन प्रकाशित किया है। यह नाव की शक्ल के-से अंडे देती है। इनमें से प्रत्येक अंडा एक संयोजक द्वारा झाड़ी से सटा हुआ रहता है। उनकी लंबाई ३ या ४ इंच तक नापी गई है, और मध्य भाग का गुरुतम व्यास लगभग एक इंच होता है। अंडे झिल्ली के एक थैले के भीतर सुरक्षित रहते हैं, और दोनों के मध्य में एक पहल हलके मुलायम रेशम का होता है।

अंदरूनी थैले के भीतर अंडे होते हैं, जिनकी संख्या ६०० से अधिक होती है; और ५ थैलों के औसत से प्रत्येक मकड़ी लगभग ३,००० अंडे देती है। अंडों के फूटने के उपरांत मकड़ी इधर-उधर की पत्तियों में चढ़ जाती और बारीक जाला कातने लगती है। इस जाले पर नवजात बच्चे वायु के झकोरों में झूलते और उड़ते रहते हैं। इस प्रकार अपना जीवन स्वतंत्रता के साथ व्यतीत करने के निमित्त वे छोड़ दिए जाते हैं।

रामनारायण मिश्र

१. " प्रेम का रूप "

धुरी जन्मकाल से ही प्रेम-चर्चा नहीं करती थी। माधुरी ही क्या, कोई भी जन्मकाल से ही प्रेम-चर्चा नहीं करने लगता। क्रमशः उसका भी शैशवकाल अब व्यतीत हो चुका है। किशोरावस्था में पदार्पण करते ही उसमें प्रेम-चर्चा छिड़ी है। आशा है, माधुरी-संपादक इसे सदैव माधुरी के हृदय में विकसित करने का प्रयत्न करते रहेंगे। अब की बार जो माधुरी की भाद्रपद की संख्या में श्रीमती भगवतीदेवी का "प्रेम का सत्य रूप"-शीर्षक लेख, महिला-मनोरंजन-विभाग में, प्रकाशित हुआ है, उसमें प्रेम को बड़े आड़े-हाथों लिया गया है। वह कहीं-कहीं मुझे बड़ा अरुचिकर प्रतीत हुआ, इसी से उस विषय में मैं कुछ लिखने को विवश हुआ हूँ। आशा है, माधुरी के महामना संपादक इसे स्थान देंगे।

उस लेख में श्रीमती भगवतीदेवीजी ने प्रेम की विवेचना करते हुए उसके सत्य रूप का दिग्दर्शन कराने की जगह उसके अवगुणों का ही अधिक दर्शन कराया है। यद्यपि उनका स्वयं इस विषय में कुछ स्थिर निश्चय नहीं प्रतीत होता कि इसे बुरा कहें अथवा भला, तथापि किसी अनुभव-विशेषवश या किसी अन्य कारण से प्रेम के प्रति उनकी अश्रद्धा हो गई जान पड़ती है। अस्तु, जो कुछ हो, उनकी जो बात सबसे पहले मुझे खटकी है, वह महात्मा गाँधीजी की प्रेम-व्याख्या। उसे असंभव-सा बतलाकर उसकी उपेक्षा की गई है। पर महात्माजी का बताया हुआ वह पवित्र दांपत्य प्रेम ऐसी उपेक्षित दृष्टि से देखने योग्य कदापि नहीं है। हम यह मानते हैं कि जिस अलौकिक तथा दिव्य प्रेम की झाँकी महात्माजी ने, अपनी विवेचना में, कराई है, वह अवश्य ही दुर्लभ एवं स्वर्गीय वस्तु है; परंतु क्या महात्माजी-जैसे विचारशील व्यक्ति से असंभव कल्पनाओं की आशा की जा सकती है? परंतु शायद इसे देवीजी व्यक्तित्व की दुहाई मानें (यद्यपि उनके-जैसे महात्मा के व्यक्तित्व की दुहाई भी अनुचित नहीं है), इस कारण यह लिखना पड़ता है कि हमारा ज्ञान सीमारहित नहीं है, परिमित है। वह इतना विस्तृत नहीं कि हम विश्व-भर के दंपतियों के प्रेम की मात्रा जान सकें, अथवा उसका अनुमान भी कर सकें। बहुत संभव है, महात्माजी के कहे हुए दांपत्य प्रेम का आनंद कोई भाग्यवान् अब भी उठाते हों। हम यदि उसे असंभव या असंभव-सा कहें, तो यह हमारी संकीर्णहृदयता का यथेष्ट परिचायक है। मेरा तो विश्वास है कि हम यदि अखिल संसार के हृदय को दिव्य दृष्टि से देख पाते, तो वैसा प्रेम हमें अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होता। महात्माजी ने दांपत्य प्रेम का जो आदर्श दिखलाया है, जिस अनुकरणीय दांपत्य प्रेम-प्रणाली की बात उन्होंने कही है, यदि मनुष्य उस पर चले, तो वह यहीं स्वर्ग-सुखोपभोग कर सकता

है। और, जो महानुभाव ऐसा करते हैं, वे ऐसा ही सुख भी उठाते हैं।

प्रेम-प्रेम चिल्लाना संसार का धर्म है। यह बात निर्विवाद है कि सृष्टि की जितनी सचराचर सत्ता है— मनुष्य में, पशु में, पक्षी में, जल में, स्थल में, गगन में—सर्वत्र प्रेम का ही साम्राज्य है; प्रेम का ही प्रखर प्रकाश है। सूर्य, पृथ्वी, चंद्र आदि ग्रह, उपग्रह भी इसी आकर्षण में बद्ध हैं। तब चतुर्दिक् यदि प्रेम की पुकार ही सुन पड़े, तो क्या आश्चर्य है? हाँ, यह मैं अवश्य ही मानता हूँ कि प्रेम का एक रूप नहीं, अनेक रूप हैं। वह कहीं संयोगी जनों के लिये सुधा का सरस, शीतल, शांत प्रवाह है; कहीं विरही जनों को विषम ताप-भरा हृदय-दाह है। वह कहीं योगी जनों का आनंदमय ध्येय है; कहीं चिरतृषित चातक का पेय है। वह कहीं षोड़शी विधवा का उष्ण निःश्वास है; कहीं मिलन का मंजुल आलोक और हास-विलास है। कहीं व्यथित हृदय की अनंत यंत्रणा-भरी तान है; कहीं वसंत में कलित कोकिल का कलगान है। कहीं कुसुम-कोमल है; कहीं कुलिश-कठोर है। कहीं अनुराग है; कहीं विराग है। कहीं मधुर, मोहक, प्रकृत है, सरस है; कहीं तीक्ष्ण, बीभत्स, विकृत है, नीरस है। कहीं अनंत सुषमा का भांडार है; कहीं नारकी यंत्रणाओं का आगार है। वह सर्वत्र है, सर्वविश्रुत है, सर्वानुभूत है। परंतु देवीजी ने प्रेम के विकृत, बीभत्स रूप का वर्णन तो कर दिया, जो भूत—नहीं-नहीं हम भूल गए—शैतान की तरह सबके सिर पर सवार है; किंतु उसका वह 'सत्य-रूप' नहीं बखाना, जो किसी ने नहीं जाना। शैतानी प्रेम से भी वह थोड़ा-बहुत सांसारिक सुख (सुखाभास) होना मानती हैं। आहा, जिसका बीभत्स, शैतानी रूप भी थोड़ा-बहुत सुखाभास करा सकता है, उसका सत्य रूप कितना मधुर, कितना सरस, कितना लोकोत्तरानंददायी होगा? वह तो वर्णनातीत है। खेद है, देवीजी ने भी वह माधुरी के पाठकों से छिपा लिया।

मनुष्य यदि अपने धर्म को, अपनी शक्ति को भूल न जाय, तो वह ऐसी वस्तुओं में आसक्त ही नहीं हो सकता, जो उसकी शक्ति के बाहर हैं। अपनी शक्ति देखकर ही आसक्ति में पड़ना ठीक है, अन्यथा वह अवश्य ही मर्म-व्यथा का पात्र होगा। ऐसी आसक्ति को यदि वासना, लालसा या महत्त्वाकांक्षा कहें, तो ठीक होगा। मनुष्य जब ऐसी वासना में पड़ता है, जो मानव-धर्म के विरुद्ध है, अथवा जिसकी परितृप्ति उसकी शक्ति से बाहर है, तब वह विफल-मनोरथ होता है, फलतः दुःख उठाता है। जब मनुष्य ऐसी वस्तु की लालसा में पड़ता है, जो उसकी पहुँच में नहीं है, या जिसकी प्राप्ति उसके लिये कठिन-साध्य अथवा असाध्य है, तब वह निष्फल प्रयत्न होता और रोता-कलपता है। जब मनुष्य किसी ऐसी महत्त्वाकांक्षा को हृदय में स्थान देता है, जो उसकी स्थिति के लिये दुर्लभ अथवा अलभ्य है, अथवा जिसको प्राप्त करके भी उसकी रक्षा, उसका शासन क्षमता से बाहर है, तब वह उसके लिये नाना प्रकार के झमेले में पड़ता है, कष्ट उठाता, कचहरी-अदालत दौड़ता और कभी-कभी मर भी जाता है। इन सब अनुचित लालसाओं के कारण ही मनुष्य दुःख झेलता है। परंतु इसमें प्रेम का क्या दोष? क्यों मनुष्य अपने धर्म का, कर्तव्य का ध्यान नहीं रखता? क्यों मनुष्य अपनी क्षमता को, शक्ति को भूल जाता है? इसमें अपने-अपने चरित्र-बल तथा नैतिक बल का दोष है। जितना हमारा चरित्र-बल दृढ़ होगा, नैतिक बल पुष्ट होगा, उतना ही हम अपनी अनुचित एवं कठिन-साध्य वासना, लालसा और आकांक्षाओं पर विजय पावेंगे। परंतु जितना ही हमारा चरित्र हीनबल तथा नैतिक बल क्षीण होगा, उतना ही हम अनुचित वासनाओं में फँसते जायँगे। हम अपने चरित्र-बल की हीनता का दोष बेचारे प्रेम के सिर क्यों मढ़ें?

देवीजी ने, आगे चलकर, दंपति-प्रेम के दोष दिखाते हुए, प्रेमजनित दुःख का सारा भाग स्त्रियों के लिये ही निश्चित कर दिया है; पुरुषों को उस भाग से सर्वथा ही वंचित रक्खा है। केवल स्त्रियों को ही प्रेम करनेवाली बताया गया है। हम नहीं कह सकते कि देवीजी को पुरुषों का ऐसा कटु अनुभव क्योंकर हुआ। यदि पुरुष सर्वथा प्रेम-हीन हैं, तो उनमें कोई प्रेमाकर्षण भी नहीं हो सकता। वे स्त्रियों को देवीजी के कथनानुसार फँसा ही नहीं सकते। क्षमा कीजिए, हमारी सम्मति में तो फँसाने की शक्ति पुरुषों में नहीं हो सकती। मैं नहीं समझ सका कि देवीजी एकतरफ़े प्रेम का नवीन सिद्धांत कहाँ से खोज लाईं? मैंने तो सदैव यही सुना है कि—

"हृदय-तुला पर तोल लो; स्नेह, मान, सत्कार को;
अपने दिल से जान लो; मेरे दिल के प्यार को।"

परस्पर मिलन से जितना आनंद होता है; परस्पर के

विरह से भी उतना ही दुःख दोनों को होगा। यदि एक को होगा, तो दूसरे को भी होगा; यदि एक को न होगा, तो दूसरे को भी न होगा। न्यूनाधिक की बात अपने-अपने संस्कार पर निर्भर है।

एक बात और है, जिसे मैं पहले कहना भूल गया। देवीजी एक स्थान पर लिखती हैं—"सब प्रेमों से बढ़कर दंपति-प्रेम ही है; मगर इसमें भी अतिशय कष्ट है। जैसा यह बड़ा हुआ है, वैसा ही दुःखदायी भी है। इसमें तो मृत्यु के सिवा बचाव ही नहीं है। अगर जीता भी रहा तो बड़ी बुरी दशा में।"

मेरी सम्मति में यह बात किसी विधवा युवती की दशा पर अधिक घटित होती है; क्योंकि साथ ही आगे आप कहती हैं—"यह प्रेम का पहाड़ अधिकतर औरतों के सिर पर ही टूटता है। हाँ, क्योंकि पुरुष तो दूसरा, तीसरा, चौथा, इसी प्रकार अनेक विवाह करके अपना वियोग-दुःख भूल जाते हैं; पर बेचारी विधवा स्त्री को तो आजीवन घोर विरहाग्नि में विदग्ध होना पड़ता है। उसके अश्रुभाराक्रांत जीवन की, उसकी विषम विरह-वेदना की, तथा उसके शून्य संसार की वे मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकते, जिन्हें इस निराश प्रेम का कभी अनुभव नहीं हुआ हो।"

अच्छा, तो विषयांतर के भय से इस करुणा-जनक प्रसंग को अधिक न बढ़ाकर इस विषय में मैं यही कहता हूँ कि यदि मेरी क्षुद्र सम्मति के अनुसार देवीजी के ऊपर उद्धृत किए हुए अंश का यही तात्पर्य हो, तो इसमें बेचारे प्रेम को कोसना व्यर्थ है। यह तो समाज का दोष है। क्यों हमारे सामाजिक बंधन इतने कठोर बनाए गए? उनमें समयानुसार परिवर्तन क्यों नहीं किए गए? इन सब बातों का, विधवाओं के करुण क्रंदन का, अश्रु-प्रवाह का उत्तरदाता प्रेम नहीं, समाज है। परंतु मुझ-जैसे क्षुद्र व्यक्ति का ऐसे विषय पर टीका-टिप्पणी करना उचित नहीं। ऐसी बातों की अधिक चर्चा करके मैं अपने धर्म का, हिंदू-धर्म का तथा कदाचित् माधुरी-संपादकों का भी अप्रिय बनना नहीं चाहता। अस्तु।

मेरे सारे कथन का तात्पर्य यही है कि इसमें प्रेम सर्वथा निर्दोष है।

मैं श्रीमती देवीजी के इस कथन से भी सहमत नहीं कि "सांसारिक प्रेम में कष्ट के सिवा और कुछ नहीं है। वे लोग अज्ञानी हैं, जो प्रेम में सुख और अप्रेम में कुछ नहीं मानते।" हाँ, इस कथन का पूर्वार्द्ध उस समय मुझे मान्य होता, जब देवीजी उसे इस प्रकार लिखतीं कि "सांसारिक प्रेम में अधिकांश कष्ट के सिवा और कुछ नहीं है।" शेष उत्तरार्द्ध के विषय में मैं ऊपर जो कुछ कह आया हूँ, वह यदि पर्याप्त नहीं है, तो मुझे और कुछ वक्तव्य नहीं है। जिसकी श्रेष्ठता का सिक्का महाकवि कालिदास, शेक्सपियर और महामना स्कीलर-जैसे सभी प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं, उसमें सुख माननेवाले को जो अज्ञानी कह सकते हैं, वे कदाचित् मुझ-जैसे क्षुद्र लेखकों की बात मानने के लिये कभी तैयार न होंगे। परंतु मैं तो एक बार फिर यही कहूँगा कि दांपत्य प्रेम उच्च कोटि का मानव-धर्म है। इसकी उपेक्षा करना किसी प्रकार भी उचित नहीं। मेरी सम्मति में तो सर्वेश से साक्षात्कार करने का यह भी एक द्वार है। हाँ, देवीजी की एक बात मैं सर्वथा मानता हूँ कि "जिसको जितनी कम आसक्ति हो, उतना ही उसका सौभाग्य समझना चाहिए। सत्य प्रेम की बात और है, मगर बनावटी प्रेम से बढ़कर मनुष्य के लिये कोई भयानक चीज़ नहीं है।" खेद है, देवीजी ने अपने उसी सत्य प्रेम को स्पष्ट नहीं किया, वरन् उसका मत्य रूप दिखाते हुए उसकी बड़ी छीछालेदर की है।

मेरी क्षुद्र मति में जो बात अनुचित जँची, उसी पर लिखने का मैंने दुस्साहस किया। आशा है, देवीजी उदार हृदय से मेरे कथन पर विचार करके मुझे मेरे अपराध के लिये (यदि कुछ हो, तो) क्षमा करेंगी।

एक निवेदन और भी है। मैं देवीजी से वाद-विवाद के लिये कदापि तैयार नहीं हूँ। हाँ, यदि वह आग्रह-पूर्वक अपने मत का मंडन करेंगी, तो, श्रद्धेय माधुरी-संपादकों की आज्ञा से, यदि मुझे उनकी कोई युक्ति या तर्क अनुचित प्रतीत हुआ, प्रत्युत्तर देने की धृष्टता करूँगा। आशा है, हिंदी-भाषा के विद्वान् भी इस विषय पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे। मेरा वक्तव्य यही है—

"जो जन पवित्र प्रेम को है वासना समझे हुए,
या इंद्रियों की तुच्छ तृष्णा साधना समझे हुए;
वे जान क्या सकते कि जीवन-मुक्ति का यह द्वार है?
सर्वेश का होता इसी से सत्य साक्षात्कार है।"

कन्हैयालाल जैन

× × ×

२. स्त्री-सुधार

(गत संख्या से आगे)

अहा, यह कौन देवी है ? कैसी दिव्य छटा है । क्या स्वर्गीय शोभा है । सांसारिक सुखों की आकांक्षा नहीं । विषय-वासना की गंध कहाँ । आत्मशुद्धि, कायिक पवित्रता और सदाचार की आभा उस अचल शांति-पूर्ण मुख-मुकुर में प्रतिबिंबित हो रही है । अपने "गिरिधर गोपाल" की प्रतिमा सम्मुख रक्खे, मानो साक्षात् भक्ति ही मानवी रूप में बैठी है ।

मीरा ने गाया—

"अँसुअन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई ।"

मूर्ति नाच उठी ।

इसी प्रकार अलाउद्दीन को मार भगानेवाली रानी पद्मिनी, स्वामिभक्ति में पुत्र-प्राण-विसर्जन करानेवाली, वीर धाय पन्ना, निश्चिंत भाव से पति को युद्ध-धर्म में प्रवृत्त करने के लिये अपना सिर अपने हाथ काट डालनेवाली सरदार चूड़ावत की प्रिया, क्रूर प्रकृति धर्मांध सम्राट् औरंगज़ेब का चित्र पद-दलित करनेवाली चंचल-कुमारी इत्यादि अनेकानेक तेजःपुंज क्षत्रियाओं की लीलाएँ अभी इतिहास के भीतर भरी पड़ी हैं। बहुत-सी वीर नारियों की कहानियाँ विस्मृति के गर्भ में लीन हो गई हैं ।

"धनि-धनि भारत की छत्रानी
वीर-कन्यका, वीर-प्रसविनी, वीर-वधू जग जानी ;
जिनके जस की तिहूँ लोक में विमल ध्वजा फहरानी ।"

परंतु, हाय, "सबै दिन नाहिं बराबर जात" । समय ने कुछ ऐसा पलटा खाया कि हमारे वे भाव लुप्त होने लगे । विद्या से वैर और अविद्या से प्रेम उत्पन्न हो गया । जातीय मर्यादा का ध्यान जाने लगा । पर्दा-प्रथा प्रचलित हुई । फल-स्वरूप अकर्मण्यता आने लगी । धीरे-धीरे अवनति के गढ़े की ओर हमारी नारियाँ ऐसी अग्रसर हुई कि अपने साथ सारे देश को ले डूबीं !

वर्तमान समय में नारियाँ जिस परिस्थिति को प्राप्त हुई हैं, वह सोचते हृदय विदीर्ण होता है, लेखनी रुक जाती है, मानो कहती है—

"जेहि हाथे हाथी हन्यो, तेहि मेंढक जिन मार ।"

प्राचीन काल में जो स्वधर्म-निरत क्षत्राणियाँ अपने पति-पुत्रों को सैनिक वेष से सुसज्जित कर धर्म-युद्ध के लिये, दुरात्माओं के नाश के लिये, मातृभूमि की रक्षा के लिये, उसकी बलि वेदी में बलिदान के लिये उत्तेजित कर स्वयं भी उनका अनुसरण करती थीं, निरुपाय दशा में सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में आग में जल मरना जिनका साधारण कृत्य था, उन्हीं को आज देखो, क्या-से-क्या हो गई हैं ! कहाँ-से-कहाँ पहुँच गई हैं !

शुद्ध सनातनधर्म के स्थान पर 'अंध-विश्वास' का राज्य है । देवतों का अधिकार प्रेतों के हाथ है । पति परमेश्वर से बढ़कर कहीं पीर, मदारी, नाउत, ओझे पूजे जाते हैं । साहस बिदा हो गया । अब वह वीरता और निर्भीकता कहाँ ? दब्बू, डरपोक और काहिल हो गई हैं । जो धनवती हैं, उन अधिकांश रानी-महारानियों का जीवन मिथ्या भोग-विलास की दलदल में फँसकर मलिन हो रहा है । वे रत्न-जटित स्वर्णालंकार धारण करने में, उत्तमोत्तम विदेशी वस्त्र पहनने में, विविध शृंगार नित्य नए फ़ैशन करके सौंदर्य बढ़ाने में तल्लीन हैं । उन्होंने अपना बड़प्पन सुकुमार बनने में, अपने जीवन की सफलता सांसारिक सुखों के उपभोग में ही समझ रक्खी है । जो निर्धन अथवा साधारण श्रेणी की स्त्रियाँ हैं, उनकी वासना की आग में श्रीमतियों की यह वेष-भूषा घृत का काम करती है । बेचारी अपने भाग्य को कोसने लगती हैं । हाय, हमारे विचार कितने गंदे हो गए ! अपने ध्येय को कैसा भुला दिया ! कुरीतियों में पड़कर हम कितनी नीच हो गईं । हमारी कितनी अपकीर्ति, कितनी निंदा हो रही है ! आह, हमारे विरुद्ध साहित्य ही भर गया है—

"ढोल, गवाँर, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी ।"
"नारी-नारी सब करैं, नारि नरक की खानि ।"
"देखो विचारि कुतिया-सम कामिनी हैं ।"

चिढ़ने की बात नहीं है । वास्तव में हम इस योग्य हो ही गई हैं । हमारी आत्मा संकुचित हो गई है । हम मूर्खा हैं, अज्ञान हैं । इसी से हमारी ऐसी विडंबना हो रही है, हमारा अपमान हो रहा है, हम सताई जा रही हैं । 'कन्या-जन्म का विषाद' हमारी तिरस्कृति का द्योतक है । बाल्य-वृद्ध-अनमेल-विवाह, ससुराल की यातनाएँ, विधवाओं की दुर्गति इत्यादि कठिन अत्याचार सहने पड़ते हैं, सो भी मुँह बाँध के । अपने लिये ज़बान हिलाने का अधिकार नहीं है । नहीं-नहीं, अपने लिये अत्याचारों के विरुद्ध मुख खोलने की कौन बात ? हम

उसे जानती ही नहीं हैं ; उसका अनुभव ही नहीं हमें होता !

"रहम करता बेकसों पर ऐ खुदा, तू भी नहीं ;
अब तो रोने के लिये आँखों में आँसू भी नहीं।"

यदि यही क्रम बना रहा, तो परिणाम क्या होगा, यह जानते हुए भी हमारी इस दीन-हीन दशा की निवृत्ति के उपाय यथेष्ट नहीं होते। हमारे रक्षक पुरुष हमारी ओर विशेष ध्यान नहीं देते। यद्यपि यह सत्य है कि "जो अपनी मदद खुद नहीं करता, उसकी मदद खुदा भी नहीं करता", किंतु जब हममें स्वावलंबन की, अपने पैरों खड़े होने की शक्ति हो, तब न ? सृष्टि-रचना के अनुकूल एवं गार्हस्थ्य धर्म के अनुसार स्त्री-पुरुष का जो संबंध है, वह किसी से छिपा नहीं है। स्त्री और पुरुष परस्पर-सापेक्ष हैं—एक को दूसरे का सहारा है।

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ;
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।"

ऐसे शास्त्र-वचन की दुहाइयाँ देने का पुरुष-समाज ने मानो ठेका ही ले रक्खा है। सो अब उसके मुख से कहने का नहीं, कर दिखाने का समय है। अतएव हमारे रक्षकों को हमारे लिये नहीं, तो अपने मंगल के लिये ही हमें कम-से-कम इस योग्य तो बना देना चाहिए कि हम अपना हिताहित सोच-समझ सकें। तब हम स्वयमेव सब कुछ कर लेंगी। पाश्चात्य रीति-नीति के अनुसार पुरुषों से अलग होकर नहीं, बल्कि उसी पुरानी आर्य-सभ्यता के ढंग से संयुक्त होकर हम कुछ अपना सुधार कर सकती हैं। हमें पुरुषों के करावलंब की बड़ी ज़रूरत है।

यदि पुरुष उस नाशक भविष्य से हमें बचाना और आप बचना चाहते हों, इस अधोगति से मुक्त होकर पूर्वावस्था पर पहुँचना-पहुँचाना चाहते हों, तो शीघ्रातिशीघ्र नारी-सुधार उनको शुरू कर देना चाहिए। उसके मुख्य साधन सुशिक्षा और सद्ज्ञान के प्रचार की ही प्रथम परमावश्यकता है।

बिना स्त्री-सुधार के देशोन्नति कदापि नहीं हो सकेगी। या यों कहिए कि जब तक स्त्रियों की दुर्दशा क़ायम रहेगी, तब तक मातृभूमि का उद्धार कोसों दूर है। प्रकृति के अतिरिक्त पुरुष क्या कुछ कर सकता है ? माया के बिना ब्रह्म शून्य जड़वत् है। भारतीय पुरुष हमारी सहायता के बिना स्वराज्य कभी स्थापित न कर सकेंगे। मुझे आशा ही नहीं, विश्वास है कि स्त्री-जाति को अपना आधा अंग माननेवाली पुरुषार्थी पुरुष-जाति अपनी, समाज की, देश की और अपने आधे अंग की रक्षा, उन्नति और भलाई के लिये स्त्रियों को मनुष्य बनाने का प्रयत्न शीघ्र ही शुरू करके अपनी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और सहृदयता का परिचय देने में कोई बात उठा न रक्खेगी। तथास्तु।

चंद्रावती कुमारि

× × ×

३. एन्यू की स्त्रियाँ

एन्यू उत्तर एशिया के किनारे पर एक टापू है। इस देश की स्त्रियों का जीवन जितना दुःखपूर्ण है, उतना शायद ही और कहीं की स्त्रियों का होगा। ये अपनी सब ज़िंदगी मेहनत-मज़दूरी में ही बिताती हैं ; फिर भी उनके पति इनको भार-रूप ही समझते हैं। बचपन में ही इनके होंठ पर गुदने गोदे जाते हैं। यह रीति बहुत पुरानी है। इसका क्या कारण है, यह किसी को मालूम नहीं। जिस कन्या के गुदने नहीं गुदे रहते, उसका विवाह नहीं होता। ये गुदने प्रायः कानों तक पहुँचते हैं। गोदने के कारण उनका चेहरा मर्दाना—मूछवाला—मालूम पड़ता है।

यहाँ की स्त्रियाँ शरीर की हृष्ट-पुष्ट होती हैं। मेहनत-मज़दूरी वे खूब कर सकती हैं। यहाँ स्त्रियाँ पुरुषों की जीवन-सखी नहीं, दासी ही समझी जाती हैं। यदि मार्ग में कोई स्त्री चली जाती हो, और सामने कोई पुरुष आ जाय, तो उसको तुरंत अपना मुँह फेरकर हाथों से ढक लेना पड़ता है। कारण यह बतलाया जाता है कि उसके श्वास से पुरुष के श्वास लेने की वायु कहीं ख़राब न हो जाय (हिंदोस्तान में घूँघट निकालने का भी तो यही कारण नहीं है

विवाह होने के बाद स्त्री को उसके पति के नाम से पुकारा जाता है। पहनने के कपड़े उनको अपने हाथ से तैयार करने पड़ते हैं। खेती में भी उनको मदद करनी पड़ती है। कपड़े के लिये जंगली वृक्षों की छाल में से तार तैयार किए जाते हैं। यह काम भी स्त्रियाँ ही करती हैं। अपने पति के कपड़े सुंदर सजाने में प्रत्येक स्त्री अपना गौरव समझती हैं। ये स्त्रियाँ अपना समस्त जीवन पुरुषों को प्रसन्न करने ही में बिताती हैं।

छन्नूलाल द्विवेदी

१. साहित्य

'हिंदी-नवरत्न'—लेखक, श्रीयुत मिश्रबंधु। सपादक, पं० दुलारेलाल भार्गव माधुरी-संपादक। प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ। पृष्ठ-संख्या ७०० के लगभग। मूल्य सुनहरी रेशमी जिल्द का ५), और सादी का ४॥) रु०।

यह हिंदी में अपना स्थान अटल रूप से धारण करनेवाली, मिश्रबंधुओं को अमर बनानेवाली, काव्य और साहित्य के गुणों की शोभा बढ़ाने और बखान करनेवाली, जीवनी लेखक, गुणग्राहक, और समालोचकों को ठीक राह बतानेवाली, हिंदी-कविरत्नों का चमत्कार दिखानेवाली, उच्च कक्षाओं में पठन और अध्ययन करने योग्य, हर पुस्तकालय में बड़े आदर से रखने योग्य अत्यंत ही अनमोल पुस्तक है। इसकी आलोचना हिंदी-संसार में काफ़ी तौर से बड़े-बड़े पंडितों द्वारा हो चुकी है। फिर भी मैं इतना कहने का साहस करता हूँ कि इसका नाम 'नवरत्न' के बदले 'रत्नहार' होता, तो इस ग्रंथ में अधिक उदारता आ जाती, और कवियों के चुनाव और उनको भिन्न-भिन्न स्थान देने में न्याय अथवा अन्याय होने की कोई संभावना न होती। यह बात अवश्य है कि लेखकगण ने अपने सिद्धांतों को बड़ी ही योग्यता से सिद्ध किया है। फिर भी उस पर मतभेद हो सकता है, और भिन्न मत रखनेवाला अपने सिद्धांत के अनुसार कवियों के स्थान में परिवर्तन कर सकता है। स्वाद और सुंदरता की तरह कविता भी है, जिसकी शोभा और गुणों का विकास स्वयं नहीं, बल्कि अनुभव करनेवाले पर निर्भर है। प्रेमी को उसकी प्रेमिका ही संसार-भर में सबसे सुंदरी होती है। उसी तरह से 'देव' के प्रेमीगण 'देव' ही को श्रेष्ठ कहेंगे, और 'बिहारी' के प्रेमीगण 'बिहारी' ही को। फिर जिसके प्रेमियों में जितना ही अधिक युक्ति-तर्क का बल होगा, वह उतना ही अपने सिद्धांत की योग्यता से अपने कवि को स्थान के लिये दौड़ में आगे बढ़ा सकता है, और एक दूसरे से, धार्मिक विवादियों की तरह, कह सकता है कि—

"हम आशिक़ उन बुतों के हैं कि तेरी शाख़ हस्ती क्या?
न बोलें मुँह से रगड़े नाक गर तेरा ख़ुदा बरसों।"

जिस तरह हम धर्मों में किसी को प्रथम, द्वितीय स्थान नहीं दे सकते, उसी तरह उत्तम कवियों में प्रथम, द्वितीय बताना कठिन है। हम अधिक-से-अधिक उत्तम, मध्यम, और साधारण तक विभाग कर सकते हैं। इसके बाद विभाग असंभव हो जाता है; क्योंकि हमारी मानुषी दुर्बलता ऐसी है कि यदि हम भक्ति-भाव के प्रेमी हैं, तो शृंगार-रस का पूरी तरह से अनुभव करने के लिये असमर्थ हैं। वही हाल भिन्न-भिन्न रसों के प्रेमियों का है। और, ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं, जो किसी-न-किसी रस का प्रेमी न हो। कवियों को उत्तम, और साधारण बताने के लिये हमको विषय से सरोकार नहीं; क्योंकि वह तो केवल अखाड़ा है—भक्ति-भाव हो, तो क्या, अश्लील भाव हो,

तो क्या—बल्कि उनकी कल्पना, अनोखी सूझ, भावों की नवीन और स्वाभाविक छटा, और कहने के ढंग पर नज़र होनी चाहिए, जो कि अत्यंत ही असंभव है। कारण, कविता का विषय हमारे मन पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहता। और, जब तक हम मनुष्य हैं, उसके प्रभाव से बच नहीं सकते। जैसे, कविता का विषय यदि अश्लील हो, तो फिर वह कविता चाहे कितनी ही उत्तम क्यों न हो, धार्मिक तो पद को सुनते ही कवि को मारने दौड़ेंगे; और दूसरे लोग भी कवि को आदर की दृष्टि से कदापि नहीं देख सकते। इसी तरह यदि विषय उत्तम हुआ, और इसके पर्दे में अश्लील कविता के केवल आधे ही गुण हों, तो भी इस कवि को लोग आसमान पर चढ़ा देंगे। यह कवि का गुण या दोष नहीं है, बल्कि हमारी मानुषी दुर्बलता है, और उनको प्रथम या द्वितीय बताना हमारी योग्यता की सफलता है। कवियों की परीक्षा का फल नहीं। शेक्सपियर या तुलसीदासजी क्यों प्रथम गिने जाते हैं? इसलिये कि उनके प्रेमियों की संख्या सभी से अधिक है, योग्यता और बल में बढ़ी हुई है, और मतभेद करनेवाले विरले ही हैं।

जी० पी० श्रीवास्तव

× × ×

२. विज्ञान

मनोविज्ञान—लेखक, पं० चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी०। संपादक, पं० दुलारेलाल भार्गव माधुरी-संपादक। प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ। पृष्ठ-संख्या १३४। छपाई साफ़-सुथरी। मूल्य ||) सुनहरी रेशमी जिल्द १)

मनोविज्ञान अँगरेज़ी फ़िलासफ़ी की पहली सीढ़ी है। इसका विषय गूढ़ और गंभीर होते हुए भी अत्यंत ही रोचक, उपयोगी, और कुछ सरल भी है; क्योंकि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने इसमें 'आत्मा' की समस्या को हल न होते हुए पाकर केवल मानसिक शक्तियों पर, जिस तरह से उनका अनुभव किया जा सकता है, अपने ध्यान को सीमाबद्ध करके प्रकाश डाला है। प्राच्य वैज्ञानिक मानसिक शक्तियों की जड़ 'आत्मा' या 'जीव' स्थिर करके फिर इस जड़ से मनोविज्ञान के वृक्ष पर हो रहे हैं। इससे इनका ज्ञान संपूर्ण, परम और वास्तविक होने पर भी सुगम नहीं है; क्योंकि इन्हें इस वृक्ष की जड़ अथाह ज्ञान-सागर की ऐसी गहराई में मिली है, जहाँ तक साधारण समझ की पहुँच नहीं होती। परंतु पाश्चात्य वैज्ञानिक किनारे पर फैली हुई इसकी डालियों के सहारे इस वृक्ष पर चढ़ गए हैं। उन्होंने जड़ के झंझट को दूर करके इसके फलों से सरोकार रक्खा है, और इसकी डालियों को झुकाकर साधारण जनता की पहुँच तक कर दी है। प्रोफ़ेसर जेम्स ने इस समस्या को सुलझाने की कुछ कोशिश अलबत्ता की है, परंतु उसमें स्वयं ही उलझकर यह कहकर जान छुड़ाई है कि "आत्मा या जीव वह है, जिसको लोग 'मैं' कहते हैं। और, 'मैं' क्या है, इसको जानने के लिये जब इसे पर ध्यान देता हूँ, तब 'मैं' दो रूप धारण कर लेता है। यानी एक 'मैं' वह, जिस पर ध्यान कर रहा हूँ, और दूसरा 'मैं' वह, जो ध्यान कर रहा है। इस तरह से ध्यान करनेवाला 'मैं' फिर ज्यों-का-त्यों रह जाता है।" इसलिये पाश्चात्य मनोविज्ञान अपनी सुगमता के कारण सर्वसाधारण के लिये हितकर है। फिर भी यह दाल-भात का कौर नहीं है; क्योंकि इसमें कई जगह Emotion, will इत्यादि पर पाश्चात्य वैज्ञानिकों के छक्के छूट गए हैं। और, इस उलझन में पड़कर उन्होंने भिन्न-भिन्न सिद्धांतों की स्थापना की है। इसी पाश्चात्य विज्ञान को निचोड़कर लेखक महोदय ने अपना यह स्वतंत्र 'मनोविज्ञान', अति सरल रीति पर दृष्टांतों द्वारा खूब समझाकर, बड़ी ही योग्यता से लिखा है। और, इसमें उन अंगों पर अच्छा प्रकाश डाला है, जो अध्यापकों के काम के हैं। फिर भी यह पुस्तक सभी के पढ़ने योग्य है; क्योंकि 'मनोविज्ञान' का विषय ही ऐसा है, जो अकेले अध्यापकों ही से नहीं, बल्कि समस्त मनुष्य-जाति से संबंध रखता है। नाटककार, औपन्यासिक भाव और चरित्र रचने और परखनेवालों का तो यह अखाड़ा ही है। वकीलों की जिरह और जासूसों की जासूसी का हथियार इसी तरह थोड़ा-बहुत सभी के लिये लाभकारी है; क्योंकि ज्ञान प्राप्त करना ही मनुष्य का लक्ष्य है। इसलिये ज्ञानेंद्रियों के राजा मन (Mind) की गुप्त बातों को मनोविज्ञान द्वारा अच्छी तरह से जान लेना आवश्यक नहीं, तो अत्युत्तम अवश्य ही है। हम सच्चे हृदय से लेखक महोदय की इस रचना का स्वागत करते और उनको इस विषय पर लेखनी उठाने के लिये बधाई देते हैं। खेद इतना ही है कि इतना गंभीर विषय इतने संक्षेप में लिखा गया।

जी० पी० श्रीवास्तव

× × ×

३. जीवनी

सुकवि-संकीर्तन—लेखक, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी। संपादक, माधुरी-संपादक पं० दुलारेलाल भार्गव। प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ। पृष्ठ-संख्या १६६। मूल्य १), सुनहरी रेशमी जिल्द १॥)

द्विवेदीजी ने सरस्वती में समय-समय पर सामयिक विद्वानों के जो जीवनात्मक परिचय प्रकाशित किए थे, उन्हीं को चुनकर इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। कुछ नाम ऐसे हैं, जिनसे हिंदी-संसार परिचित हैं। माइकेल मधुसूदनदत्त, प्रतापनारायण मिश्र और श्रीविजयधर्म सूरि को यों भी पाठक जानते हैं। परंतु लछिराम, दुर्गाप्रसाद, वलदेवप्रसाद तथा बलदेवदास शायद सरस्वती की फ़ाइल ही में लीन हो जाते, यदि उन्हें इस पुस्तक में स्थान न दिया जाता।

शैली और भाषा की क्या आलोचना की जाय। द्विवेदीजी की मार्जित शैली से हिंदी-संसार परिचित है। अच्छा होता, यदि संग्रह के पश्चात् इन लेखों का सामयिक संशोधन भी हो जाता। कुछ जीवनियाँ ऐसी हैं, जिनके नायक लेख लिखने के समय थे, पर अब नहीं हैं। उदाहरणार्थ कालाकाँकर के राजा रामपालसिंह तथा पं० विशुननारायण दर ही को ले लीजिए। दोनों अब स्वर्गलोक में हैं, परंतु इसका कहीं भी ज़िक्र नहीं है।

मेरा यह अनुमान ही है कि यह लेख-संग्रह सरस्वती से उद्धृत है। परंतु इसका कहीं उल्लेख नहीं है—न संपादक महाशय के "वक्तव्य" में, और न लेखक महाशय के निवेदन में।

आशा है, सुकवि-संकीर्तन के दूसरे संस्करण में उपर्युक्त त्रुटियों पर ध्यान दिया जायगा।

× × ×

४. उपन्यास, कहानी

प्रेम-प्रसून—लेखक, श्रीयुत प्रेमचंद बी० ए०। प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ। पृष्ठ संख्या २६६। मूल्य सादी जिल्द का १) सुनहरी रेशमी जिल्द १॥)

प्रेम-प्रसून प्रेमचंदजी की ११ कहानियों और एक प्रहसन का संग्रह है। कहानियों की रोचकता के विषय में कहने की आवश्यकता नहीं है। अधिकतर कहानियाँ मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका हवाला देने से अच्छा होता। लेखक महाशय ने अपने वक्तव्य में प्रचलित गल्पलेखन-प्रणाली की आलोचना की है। हम लेखक महाशय से सहमत हैं।

प्रेमचंदजी को अच्छे प्रकाशक नहीं मिलते थे। मिलते भी थे, तो शायद साझे की खेती के कारण कोई अपना उत्तरदायित्व ही नहीं समझता था। यह पुस्तक लेखक ही ने छपाई थी, पीछे गंगा-पुस्तकमाला को किसी कारण से प्रकाशनार्थ दे दी। इस कारण छपाई में बहुत कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। लेखक के यश के लिये अन्य खूबियों के होते हुए यह भी आवश्यक है कि उसकी रचनाओं का यथासंभव शुद्ध प्रकाशन किया जाय। आशा है, प्रेमचंदजी अन्य पुस्तकें गंगा-पुस्तकमाला-जैसे अच्छे प्रकाशकों के ही यहाँ प्रकाशित करावेंगे।

अच्छी कहानियों का विवरण लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। पर जिस कहानी को हम प्रेमचंदजी के योग्य नहीं समझते, वह है त्यागी का प्रेम।

आनंदीबाई के पतन की परा काष्ठा कर देना, और वह भी घृणित दृश्य द्वारा, सदाचार के विरुद्ध है। सेवा-सदन में सुमन का और प्रेमाश्रम में गायत्री का भी पतन होता है; परंतु उसी सीमा तक, जिस तक हम आपसे सहमत हैं। इसके पश्चात् जब आप शैलकुमारीजी की उमासुंदरी की-सी दशा अपनी आनंदीबाई की भी करते हैं, तो फिर हम उसकी दाद नहीं दे सकते।

कालिदास कपूर

× × ×

सुदर्शन-चरित्र—अनुवादक, पंडित श्यामसुंदर अवस्थी। प्रकाशक, महालचंद बयेद, प्रोप्राइटर "ओसवाल प्रेस", १६, सीनागोग-स्ट्रीट, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १२१; छपाई-सफ़ाई अत्यंत मनोहारिणी। सादी का मूल्य १॥), और सुनहली रेशमी जिल्द का २)

यह छोटा-सा उपन्यास है। मूल-पुस्तक मारवाड़ी-भाषा में श्रीमान् भिक्षु स्वामी ने सं० १८५० मिती कार्तिक-सुदी पंचमी को नाथद्वारे (मेवाड़) में रची थी। इसमें जैन-धर्म के मूल-तत्त्व का बड़ी सावधानी से दिग्दर्शन कराया है। सुदर्शन सेठ का जीवन-चरित्र जैनियों के लिये एक आदरणीय पाठ्य पुस्तक है। भिन्न-भिन्न जैन-मुनियों ने सेठजी के जीवन पर उपाख्यान लिखे हैं। सुदर्शन सेठ के चरित्र का बड़ा ही मनोहर वर्णन किया गया है। ब्रह्मचर्य के प्रभाव और लाभों का समावेश करके लेखक ने

ग्रंथ को रोचक बनाया है। स्थान-स्थान पर अहिंसा, सत्य, अस्तेय एवं परिग्रह-राहित्य के उल्लेख भी बिना मिले न रहेंगे। कोमलमति बालकों और चंचल-चित्त युवाओं का ऐसे आदर्श पुरुषों के समान होना एक प्रकार असंभव-सा है। अनुवाद अच्छा हुआ है। भाषा सरल और सरस है। पुस्तक में १२ उल्लेखनीय चित्र हैं। चित्र बड़े मनोहर हैं। दो तिरंगे चित्रों को देख दिल हरा हो उठता है। आशा है, हिंदी-प्रेमी पाठक तथा विद्वान् इस ग्रंथ का समुचित आदर करेंगे, ताकि अनुवादक दूसरा ग्रंथ शीघ्र ही लेकर प्रस्तुत हो सकें।

श्रीधर-नारायणदास मेहता

× × ×

५. कविता

वीरांगना वीरा—इस 'काव्याकारा' के 'उज्ज्वल नक्षत्र' के लेखक हैं ठा० भगवतसिंहजी (विशारद)। प्रकाशक हैं महालचंद बयेद, प्रोप्राइटर ओसवाल-प्रेस, कलकत्ता। मूल्य ॥) है। पृष्ठ-संख्या ५२ है, और छंद-संख्या २०६।

विशारदजी ने इसमें वीरा की वीरता का वर्णन पद्य-छंदों (हरिगीतिका) में लिखा है। भूमिका में 'कादर्यता', 'स्वाधीनप्रियता' आदि शब्दों के अतिरिक्त और "बहुत-सी बातें लिख दिया है।", और 'विशारद' की उपाधि के महत्त्व को बढ़ा दिया है। हरिगीतिका-छंद (जिसका नाम अब 'पददलित' छंद हो जाना चाहिए) में 'अहा', 'अहो' की भरमार है; भाषा में कई जगह खड़ी-बोली और ब्रजभाषा की खिचड़ी पक गई है; और वह कहीं-कहीं अधपकी ही रह गई है। 'अधर रदनन तल दिये', 'सादर युगल पद वंदि के', 'स्वीय भुजान से' आदि इसके उदाहरण हैं। इतना होते हुए भी कहानी वीर-रस-प्रधान है, अतएव पढ़ी जानी चाहिए। कोई-कोई स्थल इसमें बहुत अच्छे हैं। वीरा के वीर-वाक्य तो पढ़ते ही बनते हैं। जैसे—

(८५)

'वर वीर क्षत्रीगण समर से विमुख हो मुड़ते नहीं,
क्या क्षुद्र जंबुक-ममकियों से सिंह हैं डरते कहीं?
अतएव बनकर वीरवर! कर्तव्य अब अपना करो,
मर जाइए निज देश हित, पर-वश न जीते-जी मरो।

(८६)

जब तक जगत् में मान है, प्रभु! आप तब तक धारिए,
हैं आप जब तक अंग में कर्तव्य को न बिसारिए।
ठहरो, सुनो, यह शब्द कैसा, गगन से है आ रहा,
"कर्तव्य को छोड़ो नहीं, हा! प्राण के भय में! अहा!

(८९)

हृदयेश! यह शुभ समय छिपने का न है गेह में;
अब जाइए संग्राम में फँसिए न मेरे नेह में।
संग्राम में मर जाइए, वा शत्रुओं को मारिए,
प्रभु! कायरों की भाँति यों आँसू न दृग से ढारिए।

(९०)

इन इंद्रियों के हैं वशी जो, मूर्ख है जाता कहा,
अतएव इसके जाल में फँसिए नहीं प्रभुवर! अहा!
संग्राम में सह-शक्ति लड़ना क्षत्रियों का धर्म है,
फिर जीत हो या हार हो, इसमें न कुछ भी शर्म है।

और भी कई स्थल अच्छे हैं। छंदोभंग और शैथिल्य दोष भी दिखाई देते हैं। छपाने से पहले यदि यह पुस्तक किसी जानकार को दिखा ली जाती, तो बहुत कुछ सुधर जाती। अब भी, कथानक के रोचक और सामयिक होने के कारण, पढ़ने योग्य है। आशा है, दूसरे संस्करण के समय इसका ढर्रा सुधार लिया जायगा।

"कविता-भामिनि-भ्रांत"

× × ×

पांचाली-परिणय—लेखक, साहित्याचार्य श्रीसदाशिव दीक्षित। पृष्ठ-संख्या १०३। छपाई और कागज साधारणतया अच्छा। लेखक से प्राप्य। मूल्य ॥)

इस पुस्तक में 'पांचाली-परिणय' की कथा संस्कृत के वृत्तों में लिखी गई है। लेखक ने शायद संस्कृत का 'बाल-भारत'-काव्य देखकर ही इसे लिखा है। संस्कृत के अन्य श्लोकों के भाव भी इस रचना में यत्र-तत्र पाए जाते हैं। कहीं-कहीं पर पद्य-प्रवाह सुंदर है। यदि लेखक महोदय ने यह काव्य संस्कृत में लिखा होता, तो वे विशेष सफल होते। पर लिखा है उन्होंने इसे हिंदी में, और भरमार की है संस्कृत के उन कठिन शब्दों की, जिनके समझने के लिये हिंदी के साधारण पाठक को कोष टटोलना पड़ेगा। हमारी राय में या तो दीक्षितजी संस्कृत में काव्य-रचना किया करें, या यदि उन्हें हिंदी-साहित्य की सेवा का अनुराग ही है, तो वे उस प्रकार की हिंदी में रचना करें, जिसमें हिंदी में प्रचलित शब्दों और मुहाविरों का ही बाहुल्य हो। हम नीचे कुछ पद्यांश उद्धृत करते हैं। क्या प्रचलित हिंदी इसी भाषा में लिखी जाती है?

शरीरभूपाल-वुधोपलालय
कपाटवक्षःस्थलशोभिमाल्य
परिश्रमाम्भोधरवर्धिताशा
संसारसंतापनिदाघनाशा
मद्भक्तिवल्लीविकसद्विकाशा
मुनीश्वराशीः कुसुमा विजास ।
सद्दूतमन्त्राहतसन्नुजङ्गी
नरेन्द्रकन्यासम भास्वदङ्गी ।
महेशमूर्धस्थनिशान्धघातकी
तरंगिणी धौतसमस्तपातकी ।

यदि साहित्याचार्य दीक्षितजी को इसी रूप में हिंदी लिखना अभीष्ट है, तो वे वैसा करने को स्वाधीन हैं, पर हम लोग उनके इस विचार से सहमत होने में असमर्थ हैं। हमारी राय में इस शैली की हिंदी लिखने से हिंदी-साहित्य को हानि पहुँच सकती है।

× × ×

रसिक-प्रमोद—संग्रहकर्ता, वाबू जयपाल महाराज (ब्रह्मभट्ट)। पृष्ठ-संख्या ७८। मूल्य ।=); संग्रहकर्ता से स्थान सूजा, डाकघर वेगूसराय, ज़िला मुंगेर के पते से प्राप्य। छपाई और कागज़ साधारण।

यह पुस्तक आज से वीस वर्ष पूर्व संवत् १९६१ में छपी थी। संग्रहकर्ता ने इसे अब 'माधुरी' को समालोचनार्थ भेजा है, और यह भी सूचना दी है कि 'माधुरी' के ग्राहकों को पुस्तक विना मूल्य, केवल डाक-व्यय देने से, भेज दी जायगी। संग्रहकर्ता की इस उदारता से 'माधुरी' के जो ग्राहक चाहें, लाभ उठावें। इस संग्रह में व्रजभाषा के प्राचीन कवियों के छंद संगृहीत हैं। हाँ, 'भारतेंदु', 'ललित' आदि कुछ आधुनिक कवियों के भी छंद हैं। कुछ छंद ऐसे कवियों के भी हैं, जो विलकुल साधारण श्रेणी के हैं। संग्रहकर्ता ने अपने छंद भी दिए हैं। साधारणतया यह एक अच्छा संग्रह-ग्रंथ है। इसमें कई घंटे के लिये मनोरंजन की अच्छी सामग्री है। अंत में ६४ से ७७ पृष्ठ तक संग्रहकर्ता ने अपना छंदोबद्ध परिचय दिया है। सुनते हैं, 'द्विजचंद' नाम से कविता करनेवाले कोई सज्जन निम्न-लिखित छंद को अपना बनाया हुआ बतलाते हैं, पर हमने अब तक इसे भारतेंदु हरिश्चंद्र-कृत ही समझ रक्खा था। स्वयं भारतेंदुजी की पुस्तक में तथा अन्य संग्रह-ग्रंथों में हमने इसे भारतेंदु-कृत ही लिखा गया देखा है। नहीं जानते, इसमें वास्तविक रहस्य क्या है? इस रसिक प्रमोद-संग्रह में भी छंद भारतेंदुजी के ही नाम से छपा है। जब तक द्विजचंदजी कोई दृढ़ प्रमाण न दें, तब तक हम इसे हरिश्चंद्र-कृत ही मानते हैं। छंद इस प्रकार है—

ऊधोजू सूधो गहो वह मारग, ज्ञान के तेरे जहाँ गुदरी है;
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्या, इक स्याम की प्रीति प्रतीति खरी है।
ये व्रजवाला सबै इक सी, "हरिचंदजू" मंडलि ही बिगरी है;
एक जो होय, तौ ज्ञान सिखाइए, कूपहिं में यहाँ भाँग परी है।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

६. धर्म

वैदिक धर्म-रहस्य—लेखक, पंडित सभापति उपाध्याय व्याकरणाचार्य, लालघाट, काशी। प्रकाशक, जी० पी० शर्मा, लालघाट, काशी। छपाई-सफ़ाई कागज़ आदि साधारण। मू० ॥)

भूमिका में लेखक महोदय ने प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन के प्रसंग में इस प्रकार उल्लेख किया है—"किसी का कहना है कि प्रथम हिंदुओं का (?) संग्रथन तथा आत्मरक्षण की आवश्यकता है, इसके सिद्ध होने ही से हम लोगों का उद्देश्य सिद्ध हो सकेगा। इसी आशय को लेकर काशीस्थ वैश्यवंशावतंस बाबू भगवान्‌दासजी ने हिंदुओं का संग्रथन तथा आत्मरक्षण नाम का एक लेख लिखा है, जिसके अनुसार कार्य करने से हिंदुओं का संग्रथन तो दूर रहा, किंतु परस्पर में अनेक प्रकार के वैरभाव उत्पन्न होकर भारतवर्ष के (?) मनु इत्यादि स्मृतियों तथा वैदिक मार्गों का सर्वनाश हो जायगा। इसलिये सर्वसाधारण को इस लेख द्वारा सूचित किया जाता है कि बाबू साहब के उक्त लेख के अनुचित अंशों का अनुसरण कदापि न करें; क्योंकि उसके अनुसार कार्य करना अपना मूलोच्छेद करना है।" इससे यह स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि यह पुस्तक किसी स्वतंत्र विषय को लेकर नहीं लिखी गई है, प्रत्युत बाबू भगवान्‌दास के लेखक द्वारा सनातनहिंदू-धर्म पर जो अनुचित आक्षेप किए गए हैं, उनके उत्तर-स्वरूप में ही कुछ बातें कही गई हैं। पुस्तक का जो नाम रक्खा गया है, उससे पाठकों को आपाततः यह आशा हो सकती है कि इस पुस्तक में विशेष रूप से वैदिक धर्म के रहस्यों का अनुसंधान किया गया होगा; गंभीर, दुरूह विषयों

की आलोचना की गई होगी, अथवा किन्हीं विशेष वैदिक तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया होगा। पुस्तक के पढ़ने से यह आशा दूर हो जाती है। सनातनधर्म के सिद्धांतों का प्रतिपादक भी यह ग्रंथ नहीं कहा जा सकता ; क्योंकि इस-में सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ ही नहीं। इसमें तो कुछ आक्षेपों के उत्तर-मात्र हैं। हाँ, उनमें से कुछ उत्तरों के प्रतिपादन में अवश्य ही प्रमाण दिए गए हैं। बाबू भगवान्दास ने अपने लेख में शुद्धि, समुद्रयात्रा, सह-भोजिता, शूद्रादिक के पठन-पाठनाधिकार आदि विषयों को शास्त्र-सम्मत युक्ति-युक्त और ग्राह्य माना है। उपाध्याय महो-दय उनसे सम्मत नहीं। अपने-अपने पक्ष की पुष्टि में पर्याप्त प्रमाण दोनों के ही पास विद्यमान हैं। दोनों के मत युक्ति-संगत हैं। सुतरां इन दोनों में मत द्वैध है। इन विषयों को लेकर शास्त्रकारों में भी मतभेद पाया जाता है। यथार्थ में उनका सामंजस्य करना ही, कम-से-कम सनातनधर्मियों के लिये, सर्वथा समुचित है। एकदेशीय प्रमाणों के आधार पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषयों पर निर्णय पत्र देना सर्वथा असंगत है। उपाध्याय महोदय निर्णयसिंधु में उद्धृत किए गए आदित्यपुराण का उल्लेख करके सिद्ध करते हैं कि समुद्रयात्रा कलिकाल में सर्वथा निषिद्ध है। आपका प्रश्न है—"क्या इतिहास के अतिरिक्त समुद्रयात्रा का साधन कोई विधिवाक्य मिलता है? क्या राजा और ज्ञानियों के अतिरिक्त अधिकतर समुद्रयात्रा का वर्णन किसी औरों का मिलता है ? यदि मिलता भी हो, तो क्या निषेध वचनों के रहते हुए उसका धर्मसंगत कहना प्रामाणिक हो सकता है ? अच्छा होता, यदि उपाध्याय महोदय इस विवाद-ग्रस्त विषय को इस स्थान में न छोड़ते। समुद्र-यात्रा का विषय शास्त्रीय दृष्टि से अनेक बार आलोचित हुआ है। अनेक दिग्गज पंडितों ने दोनों ही पक्ष में अपनी-अपनी सम्मतियाँ दी हैं। स्वतंत्र निबंध भी इस विषय पर लिखे गए हैं, जिनमें उपाध्याय महोदय के उपरि-लिखित प्रश्नों पर पूर्णतया विचार किया गया है, और साधक-बाधक प्रमाणों की समीचीन विवेचना की गई है। यदि उपाध्याय महाशय जयपुरीय "संस्कृतरत्नाकर" की पुरानी फ़ाइल लेकर म० म० पंडित मधुसूदन शास्त्री का 'प्रत्यन्तप्रस्थानमीमांसा'-शीर्षक लेख देखने का कष्ट करते, तो उन्हें सहज में सब संदेहों का समाधान मिल जाता।

सहभोज के संबंध में यद्यपि उपाध्यायजी के विचार परम सुंदर हैं, परंतु आपने अपने मत की पुष्टि में जिस युक्ति का अवलंबन किया है, वह ठीक नहीं है। आप लिखते हैं—"प्राचीन काल में द्विजातियों का परिचय होना सुगम था; क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चांडालादि, इन सब जातियों के वेष × × × इत्यादि कई बातों के नियम रहते थे। इसीलिये पुराणों में कहीं भी द्विजातियों के भोजन का भेदभाव नहीं मिलता, प्रत्युत उनके भोजन का परस्पर संबंध ही मिलता है।" इसके आगे आप लिखते हैं—"यदि यह कोई प्रश्न करे कि जिस-की कुल-परंपरा से शुद्धता ज्ञात है, उसके साथ भोजन करने में क्या दोष है ? तो इसका उत्तर यह होगा कि जिन नियमों को हमारे पूज्य महात्माओं ने स्थापित किया है, उनका तोड़ना भी पाप है, जो कि गुरुओं की आज्ञा न मानना, इस रूप के धर्मशास्त्र-वर्णित पापों में अंतर्गत होता है। जैसे पोस्टकार्डों के ऊपर पता लिखने के भाग में बहुत स्थान के ख़ाली रहने पर भी यदि कुछ समाचार लिख दिया जाय, तो उसके लिये मासूल देना पड़ता है। इसका कारण नियमोल्लंघन-मात्र है।"

ब्राह्मणेतर को पठन-पाठन का अधिकार है या नहीं, इस विषय की विवेचना उपाध्यायजी ने बहुत अच्छी की है। परंतु एक स्थल में आप सभ्य मर्यादा का उल्लंघन कर गए हैं, और आपकी युक्ति बीभत्स-दोष-दूषित हो गई है। आप लिखते हैं—"इस तरह के दृष्टांतों से यह भी आप ऐसे लोगों के मत से सिद्ध हो सकता है कि भगवान् ने वाराहावतार धारण किया है, इसलिये शूकरों की पूजा तथा उनके खान-पान का अनुकरण करना चाहिए। इस पर टिप्पणी करना व्यर्थ है।

अछूतोद्धार के संबंध में ब्राह्मणादि पर जो अनुचित आक्षेप किए गए हैं, उनका उपाध्यायजी ने अच्छा समा-धान किया है। विचार महत्त्वपूर्ण हैं, और युक्ति सार-गर्भित। किंतु यहाँ भी एक स्थल में अश्लीलता आ गई है। कदाचित् वाद-विवाद में इन प्रयोगों के बिना सरसता न आती होगी। ब्राह्मणों पर अपने स्वार्थ के निमित्त मनमाने नियम बना डालने का जो अनुचित आक्षेप किया जाता है, उसका समाधान भी उपाध्याय महोदय ने शास्त्र और युक्ति द्वारा बहुत समीचीन रीति से किया है। अन्यान्य आक्षेपों का समाधान भी मनोरम

रीति से किया गया है। मतद्वैध होना स्वाभाविक है। सनातनधर्म में भी इस समय काल की गति से बहुत-से दोष घुस पड़े हैं। परंतु सर्वथा दोष-शून्य है कौन-सा मत ? सर्वत्र ही गुण और दोष विद्यमान हैं। ऐसी दशा में अपने धर्म को सदोष कहकर परित्याग करना और पर धर्म का ग्रहण करना कदापि न्याय्य नहीं माना जा सकता। पर दोषों का निराकरण करने की चेष्टा करना प्रत्येक समाज-सेवक का धर्म है। सिद्धांतों में कोई आपत्ति है नहीं, उन्हें व्यवहार में लाने की विधि में ही विरोध है। हमारे यहाँ के देवालयों की जो दुर्दशा इस समय हो रही है, वह किसी से छिपी नहीं है। इस आक्षेप को उपाध्यायजी मानते हैं, और उसे सुधारने का आप आदेश करते हैं। यह ठीक है कि मंदिरों का समूल नाश करने से काम न चलेगा। उनमें जो दोष आ गए हैं, उन्हें दूर करना चाहिए। जातीय भाव को जाग्रत् करने के लिये मंदिरादि कितने आवश्यक हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

पुस्तक बड़े श्रम से लिखी गई है, और आक्षेपों के उत्तर भी अनेक स्थलों में सर्वथा समीचीन हैं। पर छापे की अशुद्धियाँ बहुत हैं।

× × ×

वेद और पशु-यज्ञ—लेखक, पंडित जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ, हेड पंडित, डी० ए० वी० हाई स्कूल, काशी। प्रकाशक, चौधरी ऐंड सन्स, पुस्तक-विक्रेता और प्रकाशक, नीची बाग, काशी। मूल्य ।)

"अध्यापक विनोदविहारी राय-नामक एक कृस्तान ने 'ऋषियों का खान-पान' नाम की एक पुस्तक बनाई है। आपने इस पुस्तक में यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि वैदिक काल में ऋषि लोग अन्न के अतिरिक्त मांस-मदिरा इत्यादि सेवन किया करते थे।" इसके उत्तर-रूप में प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। इसमें वेदों के आधार पर राय महाशय के आक्षेपों का खंडन किया गया है। पुस्तक विद्वत्ता-पूर्ण है।

× × ×

सनातन वैदिक वर्ण-व्यवस्था—लेखक, पंडित जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ, उपनाम "बृहस्पति"। प्रकाशक, भारतेंदु-पुस्तकालय, कालभैरव काशी। मूल्य ≶)

पुस्तक का नाम है 'वर्ण-व्यवस्था', परंतु प्रारंभ में प्रश्नोत्तर-रूप में 'जाति' की व्याख्या की गई है, और न्याय-शास्त्र के 'समानप्रसवात्मिका जातिः', इस लक्षण के अनुसार मनुष्यत्व-मात्र का जातित्व प्रतिपादित किया गया है। 'आकृतिग्रहणजातिर्लिङ्गानाञ्च न सर्वभाक्, सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रञ्च चरणैः सह।' इस श्लोक में उद्धृत भिन्न-भिन्न शास्त्रों के भिन्न-भिन्न लक्षणों की लेखक महोदय ने सर्वथा उपेक्षा की है, और केवल अपने मतलब की बात ले ली है। स्मृति और पुराणों के आधार पर यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि ब्राह्मणत्वादि गुण-कर्म पर निर्भर हैं, जन्म पर नहीं। इस विषय पर—अर्थात् जन्म से जाति मानी जाय, अथवा गुण-कर्म से—अनेक बार अनेक स्थलों में वाद-विवाद हो चुका है। अतः इस विषय को यहाँ फिर छेड़ना उचित नहीं प्रतीत होता। हाँ, अपने सिद्धांतों की पुष्टि में लेखक ने पर्याप्त प्रमाणों का संग्रह किया है, और विरुद्ध वचनों की चर्चा भी नहीं की है। आर्यसमाज की दृष्टि से यह पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यही नहीं, इस समय जो जाति-पाँति तोड़क मंडली की प्रबलता प्रति दिन बढ़ती जाती है, उसे देखते हुए इस गुण-कर्म-मात्र से ही ब्राह्मणत्वादि मानना भी कुछ कम महत्त्व की बात नहीं है। जो लोग जाति से ब्राह्मणत्वादि मानते हैं, वे भी गुण-कर्म के महत्त्व को अग्राह्य नहीं करते हैं। अंतर केवल इतना है कि वे जाति के साथ गुण-कर्म आवश्यक समझते हैं।

× × ×

वेदांतसार रामायण—लेखक, पं० हनुमान् शर्मा, जयपुर। प्रकाशक, कन्हैयालालजी शिवसहायजी हवेलीवाले। विना मूल्य वितरित।

मनुष्य में सत्य, शील, दया, धर्म आदि गुण तथा काम, क्रोध आदि दुर्गुण होते हैं। रामचंद्रजी को सत्य रूप तथा उनके सहायकों को पुरुषार्थ; सत्संग आदि सद्-गुण मानकर उनके द्वारा अहंकार-रूपी रावण तथा ईर्ष्या, द्वेष आदि उसके सहायकों का नाश इस पुस्तक में मनोरम रीति से वर्णित है।

आद्यादत्त

× × ×

७. अर्थशास्त्र

बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र—अनुवादकर्ता, लाला कन्नोमल एम्० ए०। प्रकाशक, श्रीयुत मोतीलाल-बनारसीदास, अध्यक्ष पंजाब-संस्कृत-पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर। पृष्ठ-संख्या ११४। छपाई साधारण। मूल्य मालूम नहीं।

श्रीबृहस्पतिजी अर्थशास्त्र के प्रथम आचार्य हैं । इनका अर्थशास्त्र तो अभी तक मिल नहीं सका, परंतु इनके अर्थ-शास्त्र-संबंधी सूत्रों का पता योरप के विद्वानों की कृपा से लगा है । ये सूत्र भारत में पहले-पहल वैदिक मैगज़ीन के अक्टोबर, १६२० के अंक में प्रकाशित हुए थे । इन्हीं सूत्रों को हिंदी के प्रसिद्ध लेखक लाला कन्नोमलजी ने अनुवाद-सहित इस पुस्तक में दे दिया है । इन सूत्रों में राजनीति, अर्थशास्त्र, दंडनीति, धर्मशास्त्र आदि सभी के सिद्धांत दिए हुए हैं । इन सूत्रों में ख़ास तौर से यह बतलाया गया है कि राजा कैसा होना चाहिए, उसे कौन-कौन-सी विद्याएँ पढ़नी चाहिए, उसको कैसा मंत्री रखना चाहिए, उसके अन्य सेवकों में क्या गुण होने चाहिए, उसको कौन-से काम करने चाहिए, और कौन-से काम न करने चाहिए, और विद्या तथा अर्थ की वृद्धि किस तरह करनी चाहिए । इस पुस्तक में लगभग ४५० सूत्र दिए गए हैं । उनका सरल भाषा में हिंदी-अनुवाद भी है । लालाजी ने कठिन सूत्रों पर टिप्पणियाँ भी दे दी हैं, जिनसे उनका अर्थ समझने में बड़ी सहायता मिलती है । पुस्तक के अंत में धर्म-मत तथा संप्रदाय-विषयक, भूगोल-विषयक, युग और मन्वंतर-संबंधी और चाणक्यसूत्रोक्त राजनीति-संबंधी चार परिशिष्ट भी जोड़ दिए गए हैं। इनसे सूत्रों की कई बातें आसानी से समझ में आ जाती हैं । अर्थशास्त्र-प्रेमी *प्रत्येक सज्जन को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए ।* हिंदी-साहित्य को यह उत्तम पुस्तक भेंट करने के लिये हम लाला कन्नोमलजी को हार्दिक बधाई देते हैं ।

दयाशंकर दुबे

× × ×

८. हिसाब-किताब

महाजनी-सार-प्रकाश—लेखक, बाबू जानकीप्रसादजी गट्टानी मु० पेंड्रा, जिला बिलासपुर । प्रकाशक, बाबू मदनगोपालजी मल्ल. पुरुलिया । पृष्ठ-संख्या ७२ । आकार २०×३० सोलहपेजी । छपाई साधारण । मूल्य पाँच आने ।

इस पुस्तक में बारहखड़ी और गिनती से लेकर महाजनी-संबंधी कई महत्त्वपूर्ण बातों का संक्षेप में वर्णन किया गया है । पहले जोड़, बाक़ी, गुणा और भाग के तरीक़े समझाए गए हैं, और उसके बाद ज़बानी हिसाब लगाने के कई गुर बतलाए गए हैं । पत्र लिखने की रीति देने के बाद इसमें नोटिस, बिल, रसीद, बैनामा, रेहन-नामा, तमस्सुक, किरायानामा, वसीयतनामा, हुंडी, इत्यादि के नमूने भी दे दिए गए हैं । इसके बाद रोकड़ और खाता लिखने की रीति उदाहरण-सहित बहुत संक्षेप में बतलाई गई है । अंत में सच बोलने का महत्त्व दिखाते हुए ध्यान देने योग्य दस बातें लिखी गई हैं ।

पुस्तक के आरंभ में विषय-सूची की कमी बहुत खटकती है । पुस्तक ऐसे व्यक्तियों के लिये, जो महाजनी सीखना चाहते हों, बहुत उपयोगी है । हिंदी-कक्षाओं के विद्यार्थी भी इससे लाभ उठा सकते हैं ।

× × ×

आरिथमेटिक-बहीखाता—लेखक, श्रीमान् सागरमल-रामकुमार अग्रवाल । प्रकाशक, गुप्त आदर्स ऐंड को०, मंडी धनौरा, यू० पी० । आकार २०×३० सोलहपेजी । पृष्ठ-संख्या ४८ । छपाई साधारण । मूल्य चार आने ।

यह पुस्तक हिंदी के प्रारंभिक, मिडिल-स्कूल, नार्मल-स्कूल और ट्रेनिंग क्लासों के विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है । इसमें अरिथमेटिक (गणित) के संबंध में तो कुछ भी नहीं लिखा गया, परंतु बहीखाता लिखने के नियम कई उदाहरण देकर बड़े सरल रूप में समझाने का प्रयत्न किया गया है । अभ्यास के लिये बहुत से प्रश्न भी दे दिए गए हैं । पुस्तक अच्छी है । विद्यार्थियों के लिये तो यह बहुत ही उपयोगी है । जो सज्जन हिंदी में *बहीखाता लिखना सीखना चाहते हों, उन्हें यह पुस्तक* अवश्य पढ़नी चाहिए । यदि पुस्तक के आरंभ में विषय-सूची दे दी जाती, तो इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती ।

दयाशंकर दुबे

× × ×

९. गुजराती

मुकुल—प्रकाशक, युगधर्म-कार्यालय, अहमदाबाद । छपाई-सफ़ाई अच्छी । पृष्ठ-संख्या २२८ । मूल्य ॥), सजिल्द १)

अहमदाबाद का 'शिशु-मंडल' 'मुकुल'-नामक एक हस्त-लिखित मासिक पत्र प्रकाशित करता है । इस पुस्तक में, उसी में प्रकाशित बालकोपयोगी छोटी-छोटी, पर मनोरंजक वार्ताओं का संग्रह है । इसके कुछ क़िस्से कल्पित, कुछ अँगरेज़ी से अनूदित और कुछ उसके आधार पर लिखित हैं । पर संग्रह अच्छा है । *बाल-साहित्य* की ऐसी

पुस्तकों की अभी बहुत आवश्यकता है। अच्छा होता, यदि प्रकाशक महोदय महाभारत, रामायण तथा भारतवर्ष की ऐतिहासिक घटनाओं और व्यक्तियों के आधार पर छोटी-छोटी, पर सचित्र, कहानियों को प्रकाशित करते। बाल-कोपयोगी साहित्य में चित्रों का अभाव बहुत खटकता है। ऐसी पुस्तकों का कलेवर स्थूल होना कोई आवश्यक नहीं है। आशा है, युग-धर्म के अनुसार प्रकाशक महोदय इसके तृतीय संस्करण में इन अभावों को दूर कर देंगे।

× × ×

कालापाणीनी कथा—प्रकाशक, वही। छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या २३१। मूल्य १।), खद्दर की जिल्द १॥)

भारत-माता के सुपुत्र श्रीयुत वारींद्रकुमार घोष, श्रीयुत भाई परमानंद, श्रीयुत उल्लासकर दत्त और श्रीयुत उपेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय ने देश-सेवा के नाम पर कालेपानी की यात्रा में जिन कठिनाइयों और पाशविक अत्याचारों के अनुभव किए हैं, उनका उन्हीं की क़लम से लिखा हुआ हाल इसमें दिया है। अंडमन में जाकर किस प्रकार क़ैदियों का जीवन सुधरने के बदले बिगड़ जाता है, कैसे वे चरित्र-हीन हो जाते हैं, क्यों वे अपघात करने को उतारू हो जाते हैं इत्यादि बातें इसके पढ़ने से भली भाँति मालूम हो जाती हैं। अंडमन को रोगों का रंग-महल कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी; क्योंकि मलेरिया, पेचिश, क्षय, आँव, निमोनिया, टायफ़ाइड आदि का वहाँ पूरा साम्राज्य है। वहाँ के क़ैदी शारीरिक और मानसिक परिश्रम से ऊबकर प्रायः आत्महत्या का संकल्प कर लेते हैं। जिसने एक बार मरने का संकल्प किया, उसका बचना फिर कठिन हो जाता है। कारण, वहाँ के लोग निरंतर मृत्यु की ओर अग्रसर होते जाते हैं। वहाँ यमराज और मनुष्य के बीच सदा युद्ध हुआ करता है। धन्य है इन महात्माओं को, जो ऐसी परिस्थिति में रहकर भी अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुए। नवयुवकों को ऐसी पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिए।

× × ×

तत्त्वामृत—लेखक और प्रकाशक, नाराणजी पुरुषोत्तम सांगाणी चाॅना बिल्डिंग, भिंडी बज़ार, बंबई। पृष्ठ-संख्या ४०७। छपाई-सफ़ाई अच्छी। मूल्य २।)

पुस्तक का नाम देखने से तो यही सिद्ध होता है कि इसमें किसी शास्त्रीय विषय की चर्चा की गई होगी। पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। इसमें लेखक के देश-विदेश में प्राप्त किए हुए अनुभव का वर्णन है। इसके लेखक श्रीयुत सांगाणी ने हिंदुस्तान के कोने-कोने की यात्रा की थी। एशिया-खंड में भी इन्होंने खूब पर्यटन किया था। फ्रांस, इँगलैंड, इटली इत्यादि देशों में भी इन्होंने प्रवास किया था। वहाँ की प्रजाओं के गुण-दोष का इन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। उन्हीं का इसमें वर्णन है। अपने अनुभव को उन्होंने चार भागों में विभक्त किया है—१. आचार-विचार, २. सनातन हिंदू-धर्म, ३. व्यापार, और ४. राजकीय प्रवृत्ति।

आचार-विचार के संबंध में श्रीयुत सांगाणी की यह राय है कि सनातन हिंदू-धर्म में निष्ठा रखनेवाला प्रवासी मद्यादि पान किए बिना भी शुद्ध वनस्पति की ख़ुराक से अपना जीवन भली भाँति व्यतीत कर सकता है। जो व्यक्ति अपनी जन्मभूमि में ही भ्रष्ट हो जाता है, उसी के परदेश में भ्रष्ट जीवन बिताने की अधिक आशंका रहती है। धर्म के संबंध में वह लिखते हैं कि अपने तीर्थादि स्थानों तथा आचार्यों में धर्म के बदले अधर्म का अधिक प्रवेश हुआ है। प्रत्येक हिंदू को निर्भय होकर उसको दूर करने में प्रवृत्त होना चाहिए। तप के संबंध में उनका कथन है कि शरीर के कष्ट-व्रत वास्तव में तप नहीं हैं। व्यापार के संबंध में उन्होंने कोई ऐसी मार्के की बात नहीं कही है। राजकीय विषय में वह स्व० लोकमान्य तिलक के अनुयायी थे। पुस्तक नवयुवकों के पढ़ने लायक़ है।

× × ×

१०. मराठी

बूबी—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत स० वा० हुदलीकर, एम्० ए०, स्टेट-जिऑलोजिस्ट, इंदौर। छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या १०४। मूल्य ॥)

लुइज़े कोप्पेन (Louise Koppen)-नामक जर्मन-विदुषी की लिखी हुई इसी नाम की पुस्तक के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें यह दिखलाया गया है कि लड़कों की उचित देख-रेख, उनकी जिज्ञासा का संतोष-जनक उत्तर देने से उनकी नैसर्गिक बुद्धि का अच्छा विकास होता है, और ऐसा न करने से उसके विपरीत। बूबी के-जैसे चपल, बुद्धिमान् बालक हमारे समाज में भी हैं; पर हमारी ही असावधानी के कारण उनका भविष्य

नष्ट हो जाता है। पुस्तक मनोरंजक है। इसमें बालकों के स्वभाव का चित्र बड़ी खूबी से चित्रित किया गया है। ऐसी पुस्तकों की हिंदी में बड़ी आवश्यकता है।

× × ×

शांति-निकेतनमाला (कला ४र्थी)—अनुवादक, श्रीयुत वासुदेव-गोविंद आपटे, बी० ए०। प्रकाशक, श्रीनारायण बलवंत चव्हाण, शांति-निकेतन कचहरी, पूना सिटी। छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या १५२। मूल्य १)

मराठी-भाषा-भाषियों को श्रीयुत कवींद्र रवींद्रनाथ ठाकुर के अमूल्य विचारों से परिचित कराने के लिये यह *शांति-निकेतनमाला निकाली गई है।* इस संख्या में क्या, सभी में रवींद्र की लेखनी से निकले हुए सभी लेख पढ़ने और मनन करने योग्य होते हैं। इनके लेखों को जितनी वार पढ़ो, उतना अधिक आनंद आता है। हिंदी में भी एक ऐसी माला की आवश्यकता है।

छन्नूलाल द्विवेदी

× × ×

११. विविध

व्यभिचार—लेखक, आयुर्वेदाचार्य प्रो० श्रीचतुरसेन शास्त्री। प्रकाशक, भद्रसेन वर्मा। पृष्ठ-संख्या २०८। छपाई और कागज उत्तम। सुंदर कपड़े की जिल्द-सहित। लेखक तथा श्री-आनंदीलाल पोद्दार के चित्रों से संयुक्त। मूल्य २।) । व्यवस्थापक संजीवन-ग्रंथमाला, सिकंदराबाद, बुलंदशहर (यू० पी०) से प्राप्य।

जैसा कि इस पुस्तक के नाम से प्रकट है, इसमें व्यभिचार पर विस्तार के साथ विचार किया गया है। अँगरेज़ी में इस ढंग की बहुत-सी पुस्तकें हैं। केवल Prostitution विषय को लेकर एक लेखक ने कई खंडों में एक बहुत बड़ा ग्रंथ लिख डाला है; पर हिंदी में ऐसे ग्रंथों का अभाव ही है। लेखक ने यही कमी पूरी करने के लिये इस प्रकार की पुस्तकों का लिखना आरंभ किया है। इस पुस्तक में २१ अध्याय हैं, जिनमें नाना प्रकार के व्यभिचार, उनका शरीर पर प्रभाव, उनसे उत्पन्न रोग, ब्रह्मचर्य, बाल्य-विवाह, विधवा-विवाह, सदाचार, व्यायाम, संयम, स्वाध्याय और आत्मचिंतन आदि अनेक उपयोगी विषयों पर उदाहरणों के साथ गंभीरता-पूर्वक, लिखा गया है। व्यभिचार-जन्य कई रोगों की चिकित्सा के संबंध में भी प्रकाश डाला गया है। समाज की मंगल-कामना से प्रेरित होकर ही यह पुस्तक लिखी गई है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। किंतु कभी-कभी अच्छाई के ख़याल से किए गए काम से भी बुराई पैदा हो जाती है। हमें भय है, कहीं व्यभिचार के जिन दाँव-पेंचों का इस ग्रंथ में उल्लेख है, उनसे परिचित हो जाने पर कामुक युवक-मंडल में उच्छृंखलता के भाव न फूट निकलें। इस पुस्तक के लिखने में संभवतः लेखक ने स्वानुभव के अतिरिक्त अन्य बहुत-सी पुस्तकों से भी मसाला संगृहीत किया है। क्या ही अच्छा होता, यदि पुस्तक के अंत में एक सूची देकर ऐसे सब ग्रंथों का पता दे दिया जाता, जिससे इस विषय में दिलचस्पी रखनेवाले पाठकों को विशेष अध्ययन में सुबीता होता।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

नैतिक जीवन—लेखक, श्रीचंद्रराज भंडारी 'विशारद'। प्रकाशक, साहित्य-उद्यान-कार्यालय, अजमेर। पृष्ठ-संख्या १७८। मूल्य १)। छपाई-सफ़ाई और कागज़ अति उत्तम।

यह पुस्तक निबंधों का एक उत्तम संग्रह है। इसमें कुल २३ निबंध हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य भारत के नैतिक *जीवन की समालोचना करके उसके वर्तमान नैतिक अधः*पतन के कारणों और उन्नति के उपायों का पता लगाना है। पुस्तक विचार-पूर्ण है, और इसको पढ़ने से कई एक सामाजिक समस्याएँ विशेष रूप से सामने आ जाती हैं। भंडारीजी का पहला कथन यह है कि "कोई भी जाति किसी दूसरी जाति को गुलाम नहीं बना सकती। कोई भी उसे कायर और निर्धन नहीं कर सकती। जातियाँ अपने ही दोषों से गुलाम होती हैं; और वे आज़ाद भी तभी होती हैं, जब उनकी मूल-व्याधि की चिकित्सा की जाय।" इसके बाद आप इसी कल्पना की पुष्टि में कहते हैं—"हमारी आज़ादी छिन जाने का मूल-कारण व्यक्तिगत स्वार्थों के सम्मुख जातिगत स्वार्थों की उपेक्षा करना ही है। आज भी हम लोग देश की आज़ादी के निमित्त ग़रीबों की झोपड़ियों से इकट्ठे किए हुए पैसों पर भी हाथ साफ़ करने में नहीं चूकते। आज भी हम लोग अपने अछूत मित्रों के प्रति उतने ही घृणा के भाव प्रदर्शित करते हैं। और, ऐसी स्थिति में रहते हुए भी अपने को आज़ाद होने का अधिकारी समझते हैं।" किंतु यदि देखा जाय, तो संसार का कोई देश भी ऐसा नहीं है, जहाँ विश्वासघाती न उत्पन्न हुए हों। यदि आज के स्वतंत्र देश इनसे मुक्त होते, तो युद्ध-काल में शत्रुओं को किसी देश

में जासूसी करके इतनी सफलता न प्राप्त होती । संभव है, हमारे यहाँ विश्वासघातियों की संख्या अधिक हो; किंतु जिस देश में विभीषण हरि-भक्त कहकर पूजनीय समझे जाते हैं, उस देश में देश-द्रोही-शब्द कुछ अधिक अर्थ नहीं रखता । फिर जिस देश में इतनी जिहालत और इतना अज्ञान है, उसमें अवश्य ही स्वार्थत्याग की मात्रा अधिक नहीं हो सकती; क्योंकि स्वार्थत्याग अज्ञानियों, मूर्खों और निर्बलों का काम नहीं है । उसके लिये ज्ञान और शक्ति की आवश्यकता है । असली कारण यह है कि भारत की एक बहुमूल्य वस्तु खो गई है। वह वस्तु हमारा मनुष्यत्व है । आज कई शताब्दियों से हमारा वह रत्न ग़ायब है । जब तक हममें मनुष्यत्व नहीं आता, तब तक हम वैयक्तिक और सामाजिक स्वतंत्रता नहीं प्राप्त कर सकते, राजनीतिक स्वतंत्रता तो दूर की बात है। और, अच्छे मनुष्य बनने से पहले हमें अच्छा पशु बनना आवश्यक है। दिक़्क़त तो यह है कि हम अच्छे पशु भी नहीं हैं। देश के कर्णधारों को चाहिए कि वे पहले इस देश के निवासियों को हृष्ट-पुष्ट पशु बनाने का उद्योग करें । स्वस्थ शरीर हो जाने से मनुष्यत्व आ जाने में विलंब न होगा ।

यों तो सभी निबंध अच्छे हैं, किंतु बाल-शिक्षा-शैली, गृहस्थाश्रम में प्रवेश, विचारों की दरिद्रता और नैतिक पतन विशेष रूप से अच्छे लिखे गए हैं । इधर कुछ दिनों से लोगों में यह प्रवृत्ति चल पड़ी है कि स्कूलों में बालकों को नैतिक और धार्मिक शिक्षा दी जाय । व्याख्यान या सबक़ देने से बालकों के चरित्र को गठित करना पहाड़ से सिर मारना है । उनके चरित्र पर प्रभाव डालने के लिये उनको सद्विचार-पूर्ण वायुमंडल में रखना आवश्यक है। इस विषय पर लेखक ने रवींद्र बाबू की एक सुंदर उक्ति उद्धृत की है । वह कहते हैं—"नीति का उपदेश एक विरोधी विषय है । यह किसी तरह भी मनोहर नहीं हो सकता; क्योंकि जिसको उपदेश दिया जाता है, वह मानो कटहरे में खड़ा कर दिया जाता है । ऐसी अवस्था में या तो वह उपदेश उसका मस्तिष्क नाँघकर ऊपर-ही-ऊपर चला जाता है, अथवा उस पर चोट करता है। इससे केवल हमारा उपदेश देने का प्रयत्न ही व्यर्थ नहीं होता, प्रत्युत इससे कभी-कभी महाअनिष्ट भी खड़ा हो जाता है।" आशा है, स्कूलों में नैतिक उपदेश के वकील इस पर विचार करेंगे ।

पुस्तक उपादेय है । प्रत्येक पृष्ठ में विचार की कुछ-न-कुछ सामग्री मौजूद है । भाषा भी सरल और सुंदर है । हिंदी-संसार में—जिसमें अच्छे निबंधों की कमी है—इसका अच्छा आदर होना चाहिए ।

× × ×

एशिया का जागरण—लेखक, पंडित लक्ष्मणनारायण गर्दे । प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भवन, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता । पृष्ठ-संख्या २७२ + ८ । मूल्य १)

एशिया संसार की परदादी है । वह विद्या और बुद्धि में किसी भी राष्ट्र या महाद्वीप से कम नहीं है । उसकी सभ्यता अपनी अनोखी वस्तु है । किंतु उसकी गति मंद—अति मंद है। आजकल के अन्य राष्ट्रों की तुलना में तो एशिया संसार में सबसे गए-गुज़रे महाराष्ट्रों में है । चीन, जापान, भारत, ईरान आदि के होते उसे मुर्दा कहने का साहस करना ज़रा टेढ़ी खीर है । फिर भी उसे अफ़ीमची या निद्रित कहना कोई विशेष बात नहीं है । हमारे नए, मनचले गोरे लोगों ने भी बूढ़ी एशिया को निद्रामग्न या आसन्न-मृत्यु समझकर उसके अस्थि-पिंजर और रक्त-मांस को बाँटने के मनसूबे कर लिए । एक-दो चोंचें मारीं भी । किंतु बूढ़ी एशिया ने करवँट बदली, अपनी आँखें मींजीं, और फिर कुछ-कुछ आँखें खोल भी दीं । सारे गोरे चकित हो गए । एशिया मरी नहीं, सोती थी ।

पश्चिम ने पूर्व पर धावा किया । भाग्य का फेर ! हज़रत ईसा मसीह का नाम लेकर उनके महाद्वीप में ही उनके पश्चिमी चेले धावा करने लगे । इन मिशनरियों के चरित्र यदि लिखे जायँ, तो दूसरी "अलिफ़लैला" तैयार हो जाय । कहीं ये पहले गए, और कहीं इनके भाई-बंद—पश्चिमी व्यापारियों ने अपने सब्ज़ क़दम पहले रक्खे । थोड़े ही दिनों में इनका स्वरूप लोगों को मालूम हो गया । नेपाल में मिशनरियों को जाने की आज्ञा नहीं है । वहाँ व्यापार के लिये भी अनेक बाधाएँ हैं । इस विषय में वहाँ एक सुंदर कहावत प्रचलित है । उसका अनुवाद एक अँगरेज़ ने यों किया है—"With merchant comes the mesket, with Bible comes the boy-net", अर्थात् व्यापारी के साथ-साथ बंदूक़ आती है, और बाइबिल के साथ संगीन । किंतु इस तत्त्व के समझने में एशिया को कुछ समय लगा था ।

सो अब एशिया जगी है । प्रस्तुत पुस्तक में उसी जागरण का वर्णन है । इसमें १४ परिच्छेद हैं । उनमें चार चीन के

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई और उत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "कर्बला", श्रीयुत प्रेमचंद-लिखित नाटक। मूल्य सादी १।।); सुनहरी रेशमी जिल्द २)

(२) "विजया", गंगा-पुस्तकमाला का बत्तीसवाँ पुष्प। पं० रूपनारायण पांडेय द्वारा अनुवादित और पं० दुलारेलाल भार्गव द्वारा संपादित सामाजिक उपन्यास। सचित्र। मूल्य सादी १।।); सुनहरी रेशमी जिल्द २)

(३) "विश्व-साहित्य", गंगा-पुस्तकमाला का तैंतीसवाँ पुष्प। श्रीयुत पदुमलाल-पुन्नालाल बख्शी-लिखित, और पं० दुलारेलाल भार्गव द्वारा संपादित। मूल्य सादी १।।); सुनहरी रेशमी जिल्द २)

(४) "एशिया में प्रभात", गंगा-पुस्तकमाला का चौंतीसवाँ पुष्प। महात्मा पॉल रिचर्ड-लिखित "The Dawn over Asia" का अनुवाद। ठाकुर कल्याण-सिंह शेखावत बी० ए० द्वारा अनुवादित और पं० दुलारेलाल भार्गव द्वारा संपादित। मूल्य ।।); सुनहरी रेशमी जिल्द १)

(५) "अद्भुत आलाप", गंगा-पुस्तकमाला का पैंतीसवाँ पुष्प। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी-लिखित और पं० दुलारेलाल भार्गव द्वारा संपादित। मूल्य १); सुनहरी रेशमी जिल्द १।)

(६) "आदर्श बहू", उपन्यास। श्रीशिवसहाय चतुर्वेदी द्वारा अनुवादित। मूल्य ।।।); रेशमी १)

(७) "स्वास्थ्यरक्षा", श्रीयुत पंडित बालमुकुंद त्रिपाठी-लिखित। मूल्य ।-)

(८) "वीर अभिमन्यु", पं० गणेशदत्त शर्मा-लिखित सचित्र जीवन-चरित्र। मूल्य १); रंगीन जिल्द १।)

(९) "रेगिस्तान की रानी", पं० कार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय द्वारा अनुवादित। मूल्य १।।); रेशमी जिल्द २।)

(१०) "यूरोप के राजकीय आदर्शों का विकास", श्रीगोपालदामोदर तामसकर-लिखित। मूल्य २।)

(११) "मीठी गुंजार", पंडित राधेश्याम कथा-वाचक-संगृहीत। मूल्य =)

(१२) "जीवनसंग्राम में विजय-प्राप्ति के कुछ उपाय", पंडित माधवराव सप्रे-लिखित। मूल्य १)

(१३) "अर्जुनमोह", राधेश्याम के तर्ज़ पर गीता के प्रथम अध्याय का अनुवाद। पंडित रामनारायण पाठक-लिखित। मूल्य ≡)

(१४) "भक्त स्त्रियाँ", श्रीप्रियंवदा देवी श्रीवास्तव्य-लिखित। मूल्य ।।)

(१५) "सीता-वनवास", पंडित मदनमोहनलाल शर्मा द्वारा लिखित। मूल्य १)

(१६) "ऐतिहासिक कथामाला", अध्यापक श्रीयुत जहूरबख़्श-लिखित ऐतिहासिक कहानियाँ। मूल्य ।।=)

(१७) "वैष्णववाटिका", मुं० हरिजनलाल-रचित। मूल्य ।।।)

विविध विषय

१. लखनऊ-विश्वविद्यालय में हिंदी

ब से यह विश्वविद्यालय खुला है तभी से बी० ए०-परीक्षा के लिये हिंदी, उर्दू, बँगला या मराठी में एक परीक्षा पास कर लेना प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अनिवार्य है। परंतु भारत के अन्य प्रधान विश्वविद्यालयों के समान बी०-ए० की परीक्षा में इतिहास, अर्थ-शास्त्र, अँगरेज़ी, गणित, संस्कृत इत्यादि के समान हिंदी या उर्दू को एक स्वतंत्र विषय के रूप में अभी तक नहीं रक्खा गया। कलकत्ता, बनारस और प्रयाग के विश्व-विद्यालयों में तो हिंदी में एम्० ए० की डिग्री तक प्राप्त की जा सकती है। लखनऊ-विश्वविद्यालय की यह कमी यहाँ के हिंदी-प्रेमी सज्जनों को पहले ही से खटकती थी। इस वर्ष मार्च में, इस विश्वविद्यालय के कोर्ट के अधिवेशन में, पंडित व्रजनाथजी शर्मा ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि बी० ए० में हिंदी और उर्दू भी स्वतंत्र विषय के रूप में रक्खी जायँ। इसके समर्थन में उन्होंने एक सारगर्भित भाषण दिया। कुछ सज्जनों के भाषणों के बाद एक पादरी साहब ने इस प्रस्ताव का बड़े ज़ोरदार शब्दों में समर्थन किया। उसका इतना असर हुआ कि शर्माजी का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। यह प्रस्ताव एक सिफ़ारिश के तौर पर था, और उसका यहाँ के आर्ट फ़ेकल्टी और एकाडेमिक कौंसिल में पास होना आवश्यक था। इस वर्ष वह इन दोनों सभाओं में भी पास हो गया और आगामी वर्ष से बी० ए० की परीक्षा के लिये हिंदी और उर्दू भी स्वतंत्र विषय के रूप में रक्खी जायँगी। इस संबंध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि यह प्रस्ताव पास कराने में सुदूर मदरास-प्रांत के रहनेवाले प्रोफ़ेसर शेषाद्री और डॉक्टर बी० एस्० राम ने बड़ा परिश्रम किया। इनका हिंदी-प्रेम सराहने योग्य है। हमें लज्जा के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि इन्हीं सभाओं के कुछ अन्य भारतीय सदस्य ऐसे भी थे, जिन्होंने इस प्रस्ताव के समर्थन में भाषण देना तो दूर रहा, उसके पक्ष में अपना मत तक नहीं दिया। क्या हम आशा कर सकते हैं कि शीघ्र ही लखनऊ-विश्वविद्यालय में हिंदी एम्० ए० की परीक्षा के लिये भी एक स्वतंत्र विषय के रूप में रक्खी जायगी?

× × ×

२. पेशावर से अफ़ग़ान-सीमा तक नई रेल-लाइन

ऐसे समय में, जब कि भारत-सरकार को प्रति वर्ष करोड़ों रुपयों का घाटा हो रहा है, और अपनी आमदनी बढ़ाने के लिये ग़रीब भारत पर नए-नए कर लगाने पड़ रहे हैं,—

ऐसी आर्थिक कठिनाई के समय में भी—भारत-सरकार सिर्फ़ फ़ौजी काम के लिये पेशावर से अफ़ग़ान-सीमा तक क़रीब २७ मील की एक ऐसी रेलवे-लाइन बनवा रही है, जिस पर ग़रीब भारत का रुपया पानी के समान बहाया जा रहा है। बड़ी व्यवस्थापक-सभा के सदस्य श्रीमान् बाबू गोविंददास के एक प्रश्न के उत्तर से यह पता लगा है कि यह २७ मील की लाइन बनाने में क़रीब दो करोड़ तिरपन लाख रुपए ख़र्च होंगे, अर्थात् प्रत्येक मील की लाइन बनाने का ख़र्च नव लाख रुपए से अधिक होगा। इस लाइन की आवश्यकता तो हमारी नौकरशाही सरकार—और ख़ासकर फ़ौजी विभाग के अफ़सरगण—ही समझ सकते हैं। हमारे विचार से तो भारत में इस समय इससे कईगुनी आवश्यक नई लाइन नागपुर और क़ाज़ीपेठ के बीच की है, जिससे मदरास का दिल्ली से सीधा संबंध हो जायगा, और मदरासवालों को उत्तर-प्रांतों में पहुँचने के लिये कई घंटों का सफ़र कम हो जायगा। उनके रेल-ख़र्च में भी भारी बचत होगी। परंतु हमारी सरकार इस तरफ़ पूर्ण रूप से कब ध्यान देनेवाली है। वह तो यह भी नहीं बता सकती कि नागपुर और क़ाज़ीपेठ के बीच में नई लाइन कितने वर्षों में बनकर तैयार होगी। उसे तो पेशावर से अफ़ग़ान-सीमा तक की लाइन की चिंता अधिक है।

× × ×

२. गत तीन वर्षों का हमारा विदेशी व्यापार

भारत में साधारणतः आयात से निर्यात का मूल्य अधिक ही रहता है। परंतु कभी-कभी निर्यात की कमी के कारण आयात भी अधिक हो जाता है। हमारे देश का अधिकांश कच्चा माल तथा नाज ही विदेश को भेजा जाता है, और उसके बदले में हमको अन्य देशों का बना तैयार माल मिलता है। इस प्रकार के विदेशी व्यापार से देश को लाभ नहीं होता। यदि यहाँ का कच्चा माल देश के अंदर ही तैयार किया जाय, और हमारे निर्यात का अधिकांश भाग तैयार माल हो, तो विदेशी व्यापार की वृद्धि से देश को बड़ा लाभ और देशी उद्योग-धंधों की भी उन्नति हो। नीचे गत तीन वर्षों का आयात और निर्यात (करोड़ रुपयों में) दिया जाता है—

सन्	आयात	निर्यात
१९२१-२२	२८४·३	२३१·४
१९२२-२३	२१७·५	२९९·२
१९२३-२४	२२७·५	३४८·६

इससे मालूम होता है कि प्रति वर्ष क़रीब ६०० करोड़ रुपए का विदेशी व्यापार भारत में होता है। हमारे निर्यात की मात्रा प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है, और आयात पहले की अपेक्षा बहुत कम हो चला है। कुछ ख़ास वस्तुओं का आयात (करोड़ रुपयों में) नीचे दिया जाता है—

	१९२१-२२	१९२२-२३	१९२३-२४
सूती कपड़ा	५३·०	५८·०	५६·२
शक्कर	२७·०	१४·८	१४·८
मशीनें	३२·४	२४·५	२०·२
लोहे और इस्पात का सामान	२१·१	१८·३	१८·०
रेल का सामान	१६·०	११·१	१२·०
रंग का सामान	४·५	४·२	४·३
काँच का सामान	३·०	३·४	३·२
काग़ज़ वग़ैरह	३·२	३·७	३·६
मिट्टी का तेल	३·५	३·४	४·४
दियासलाई	२·१	१·६	१·५

असहयोग-आंदोलन के कारण सूती कपड़ों के आयात में सन् १९२१-२२ में कुछ कमी हो गई थी। इधर इस आंदोलन की शिथिलता के कारण गत दो वर्षों में इन कपड़ों के आयात में वृद्धि हुई। इधर विदेशी कारख़ानेवालों ने अपना कपड़ा अब और भी कम दाम पर भेजना शुरू कर दिया है। संभव है, इस वर्ष (सन् १९२४-२५ में) विदेशी सूती कपड़ों का आयात गत वर्ष से भी अधिक हो। खद्दर-प्रचार की तरफ़ देशवासियों को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। शक्कर, मशीनें, लोहे का सामान, दियासलाई इत्यादि वस्तुओं के आयात में गत दो वर्षों में बहुत कमी हो गई है। मिट्टी के तेल और काग़ज़ तथा काँच के सामान के आयात में कुछ वृद्धि हुई है। परंतु संपूर्ण आयात में तो गत दो वर्षों में क़रीब ३०-४० करोड़ रुपयों की कमी हो गई है। अब ज़रा हमारे निर्यात की ओर ध्यान दीजिए। इसकी वृद्धि गत दो-तीन वर्षों से बराबर हो रही है। कुछ ख़ास वस्तुओं का, गत तीन वर्षों का, निर्यात (करोड़ रुपयों में) नीचे दिया जाता है—

	१९२१-२२	१९२२-२३	१९२३-२४
कपास	५४·०	७१·०	९८·३
सन (जूट)	१४·१	२२·३	२०·०
चाँवल	२४·६	३५·१	३४·६

गेहूँ और उसका आटा	३·३	४·७	१०·२
तेलहन (अलसी, तिल, सरसों, मूँगफली)	१७·४	२७·४	२६·८
चाय	१८·२	२२·१	३१·६
सूती कपड़े और सूत	१५·६	१३·१	१०·६
सन के कपड़े	३०·०	४०·४	४२·३
चमड़ा (कच्चा)	६·०	५·७	७·१
चमड़े का सामान	४·०	५·२	६·०

इस कोष्ठक से स्पष्ट है कि हमारे निर्यात का अधिकांश भाग कच्चा माल है, जिसका अधिक मात्रा में, उसी दशा में, विदेश भेजा जाना देश के लिये बहुत हानिकारक है। यदि सब कपास का देश में ही कपड़ा बनाया जाता, तो लाखों मनुष्यों का उससे निर्वाह होता, करोड़ों रुपयों के विदेशी कपड़े मँगाने की हमें आवश्यकता न पड़ती, और न हमको करोड़ों रुपयों के चाँवल और गेहूँ प्रति वर्ष विदेश भेजने पड़ते। यदि तेलहन का तेल इस देश में निकालकर सिर्फ़ तेल ही विदेश भेजा जाता, तो देश में इस उद्योग की उन्नति होती, और लाखों मन खली हमारे देश में उचित उपयोग के लिये बच रहती। देश की आर्थिक उन्नति चाहनेवाले प्रत्येक सज्जन का यह कर्तव्य है कि वह कच्चे माल के निर्यात को कम करने का और उसे देश के भीतर ही तैयार माल बनाने का प्रयत्न हमेशा करता रहे। आशा है, देश के नेतागण इस तरफ़ उचित ध्यान देंगे।

× × ×

५. शुद्ध खद्दर तैयार करने का एक कारखाना

श्रीयुत एस्० वी० पुजारी बंबई-सरकार के रेवेन्यू-विभाग में सरकारी नौकरी करते थे। वहाँ पर उन्हें ११० रुपए वेतन के मिलते थे। असहयोग-आंदोलन के समय आपने इस नौकरी को छोड़ दिया, और ५००० रुपए क़र्ज़ लेकर बीजापुर में एक छोटा-सा खेत ख़रीदा, और वहाँ पर १०-१२ जुलाहों के साथ रहने लगे। आसपास के गाँवों में आपने क़रीब ६५० चरखे बाँट दिए हैं, और इन चरखों पर जो सूत काता जाता है, उसे इकट्ठा करके पुजारीजी जुलाहों को देते हैं। जुलाहे उसे कपड़ा बुनकर पुजारीजी को दे देते हैं, और वह उस शुद्ध खद्दर को बाज़ार में बेचते हैं। थोड़ा-बहुत कपास पुजारीजी अपने खेत में ही पैदा कर लेते और शेष बाज़ार से ख़रीदते हैं। अपनी सहायता के लिये आपने एक क्लर्क भी रख लिया है। सब तरह का ख़र्च और क़र्ज़ का व्याज चुकाने के बाद श्रीयुत पुजारीजी को ऐसे समय में भी, जब कि खद्दर की माँग बहुत कम हो गई है, ५०-६० रुपए महीने में आसानी से बच जाते हैं। श्रीयुत पुजारीजी यह ऐसा काम कर रहे हैं, जिससे सैकड़ों व्यक्तियों की जीविका चलती है, उनको भी काफ़ी आमदनी होती है, और देश को भी बहुत लाभ होता है। जो काम श्रीयुत पुजारीजी बीजापुर में कर रहे हैं, वही काम उत्साही नवयुवकगण अन्य स्थानों में भी आसानी से कर सकते हैं। हम चाहते हैं, शहर-शहर

बीजापुर-निवासी श्रीयुत एस्० वी० पुजारी
(अपने खेत में रुई चुन रहे हैं)

*और गाँव-गाँव ऐसे छोटे-छोटे कारख़ाने खोले जायँ, जिन*में पुजारी के कारख़ाने के ढंग पर काम होता रहे। हमारे उन शिक्षित नवयुवकों को, जो ४०-५० रुपए की नौकरी के लिये इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, इस काम में शीघ्र लग जाना चाहिए। इन कारख़ानों के द्वारा वे अपनी जीविका स्वतंत्र रूप से, बहुत आसानी से, चला लेंगे, और साथ ही अन्य सैकड़ों व्यक्तियों के, अपनी जीविका प्राप्त करने में, सहायक होंगे। उनके इस काम से देश को भी बड़ा लाभ होगा। आशा है, हमारे शिक्षित नवयुवक-*गण इस तरफ़ उचित ध्यान देंगे।*

× × ×

५. देश में दमन का दौरदौरा

गत २२ ऑक्टोबर को शिमले में एक पत्र-प्रतिनिधि से बातचीत करते समय श्रीयुत देशबंधुदास ने कहा था— "अराजक उपद्रव बढ़ रहे हैं, अब यदि दमननीति का आश्रय लिया गया, तो और भी बहुत-से लोग अराजकों में जा मिलेंगे।" देशबंधु के इस कथन के ठीक चौथे दिन बंगाल-सरकार ने प्रचंड दमन शुरू कर दिया, और प्रायः ७२ *मनुष्य गिरफ़्तार कर लिए गए। गिरफ़्तार लोगों में* कुछ व्यक्ति बहुत प्रतिष्ठित हैं, और कुछ का संबंध स्वराज्य-दल से है। अराजक दल का उन्मूलन करने के लिये एक नए क़ानून की भी सृष्टि की गई है। इस क़ानून का सबसे अधिक आपत्ति-जनक अंश वह है, जिसके बल पर किसी भी बंगवासी की स्वाधीनता में सहज ही बाधा डाली जा सकती है, और वह नित्य पुलिस के सामने हाज़िरी देने के लिये बाध्य किया जा सकता है। इधर तो बंगाल-सरकार ने दमन का प्रारंभ कर दिया है, उधर एक वक्तव्य भी प्रकाशित किया है, जिसका आशय यह है कि जिस नए क़ानून की सृष्टि की जा रही है, उसका प्रयोग एक-मात्र षड्यंत्रकारी *अराजकों के प्रति ही किया जायगा;* अन्य आंदोलनों से उसका कुछ भी संबंध न होगा। सरकार मजबूर होकर ही इस क़ानून का प्रयोग करती है। अराजकों के दबाने का और कोई उपाय सरकार के हाथ में नहीं है इत्यादि। जो हो, बंगाल की राजनीतिक स्थिति इस समय बहुत नाज़ुक हो गई है। जहाँ तक हमें मालूम है, भारत का कोई भी राजनीतिक दल षड्यंत्र और हिंसा का हिमायती नहीं है। कोई भी नहीं चाहता कि बल-प्रयोग से सरकार स्वराज्य देने के लिये मजबूर *की जाय। यह सभी दल चाहते हैं कि स्वराज्य प्राप्त* करानेवाला वास्तविक शासन-सुधार अवश्य हो। क्या नरम, क्या गरम, क्या सहयोगी, क्या असहयोगी, क्या परिवर्तनवादी, क्या अपरिवर्तनवादी, क्या स्वतंत्र, क्या लिबरल, सभी एक स्वर से तुरंत प्रांतिक स्वराज्य के लिये चिल्ला रहे हैं। पर सरकार किसी की बात पर ध्यान नहीं दे रही है। इस कारण इस समय बंगाल में कुछ इने-गिने ख़ुशामदियों को छोड़कर और सभी दल सरकार से रूठे हुए हैं। ऐसी ही स्थिति में इस प्रचंड दमन का श्री*गणेश किया गया है। हम हिंसा के हिमायती नहीं हैं;* पर साथ ही अनुचित दमन के भी विरोधी हैं। इसलिये हम बंगाल की इस दमन-विभीषिका से बहुत चिंतित हैं।

अभी यह दमन बंगाल में ही शुरू हुआ है, मगर कौन कह सकता है कि इसका दौरदौरा देश-भर में न होगा।

× × ×

६. भारत की दशा

इस समय भारत पर ईश्वर का कोप, राजा का कोप, और सहवासी भाई का कोप है। प्रचंड जल-प्रलय में दैवी कोप के दर्शन हैं, बंगाल के भीषण दमन-चक्र में राजा के कोप की झलक है, और हिंदू-मुसलमानों के झगड़ों में सहवासी भाई के रोष का प्रभाव है। भारत इस समय इस तेहरी मार से जर्जर हो रहा है। उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया है। फिर भी यह त्रिरूप रोषानल प्रचंड रूप में धधक रहा है। ईश्वरीय कोप में अपरिमित धन और जीवन स्वाहा हो चुके हैं; सरकारी रोष लोगों की साधारण-से-साधारण व्यक्तिगत स्वतंत्रता को संकुचित कर रहा है; और भाई-भाई के कोप से धन, जन और मान की हानि के अतिरिक्त धार्मिक स्वतंत्रता भी नष्ट हो रही है। भारत ने जितना अधिक स्वराज्य के लिये अनुराग दिखलाया था, आज उसके आचरण स्वराज्य के प्रति उससे अधिक विराग दिखला रहे हैं। असहयोग-जैसे विशाल आंदोलन को चलाकर भारत ने जैसे सारे संसार को चकित कर दिया था, वैसे ही आज अपने अनेक कुकृत्यों से वह बाहरवालों की निगाह में गिरता जा रहा है। भविष्य बड़ा ही चिंताजनक है; पर आशा-ज्योति का धुँधला प्रकाश भी कभी-कभी दृष्टिगत हो जाता है। महात्मा गाँधी का २१ दिन का उपवास, दिल्ली में शांति-परिषद् की बैठक, उसमें स्वीकृत निर्णय, अनेक मुसल-

मान उलमाओं के स्पष्ट कथन, श्रीमती एनीवेसंट का भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों को मिलाने का प्रयत्न आदि ऐसी बातें हैं, जो परिस्थिति को सँभालने के लिये काफ़ी हैं। प्रश्न यह है कि ऊँट किस करवँट बैठेगा? भविष्य के गर्भ में क्या है, यह कौन बतला सकता है? पर यह बात निश्चय-पूर्वक कही जा सकती है कि इस समय सरकार की जकड़बंदी जैसी दृढ़ हो गई है, वैसी और कभी न थी। धार्मिक असहिष्णुता ने भी भयंकर रूप धारण कर रक्खा है। देश के राजनीतिक दलों का प्रभाव बहुत कम रह गया है। दैवी कोप से भी भारत दुखी है। यह भी निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि हिंदू-मुसलमान नेता सचमुच मेल कराना चाहते हैं—भिन्न-भिन्न राजनीतिक दल भी समझौते के लिये तैयार हैं, तथा एकता हो जाने की संभावना भी बहुत अधिक है।

परिणाम चाहे जो हो, पर इस समय भारत की वास्तविक दशा यही है। अवस्था संकटमय और चिंताजनक है; पर निराश होने का कोई कारण नहीं है।

× × ×

७. हिंदी-साहित्य-सभा

काशी के हिंदू-विश्वविद्यालय में एक हिंदी-साहित्य-सभा कई साल से प्रतिष्ठित है। छात्रों में हिंदी-साहित्य के प्रति अनुराग और रुचि उत्पन्न करना इस सभा का उद्देश्य है। प्रतिवर्ष विश्वविद्यालय के उपाधि-वितरण-महोत्सव के अवसर पर छात्रों की व्याख्यान-शक्ति को प्रोत्साहन देने के लिये यह विद्यार्थियों द्वारा कुछ व्याख्यानों का प्रबंध करती है। विषय पहले से निर्द्धारित कर दिए जाते हैं। भिन्न-भिन्न कॉलेजों के सभी छात्र इन व्याख्यानों में भाग ले सकते हैं। इस साल 'राजनीति और धर्म का सम्मिश्रण संसार के लिये अहितकर है' यह विषय रक्खा गया है। व्याख्यान-दाताओं में चार सबसे अच्छे छात्रों को पारितोषिक भी मिलेंगे। दो पारितोषिक तो प्रथम दो सर्वोत्कृष्ट व्याख्यान-दाताओं के लिये हैं। एक पारितोषिक उस छात्र के लिये है, जो उन प्रांतों का हो, जहाँ बोलचाल की भाषा हिंदी नहीं है, तथा एक पारितोषिक सबसे अच्छा बोलनेवाली स्त्री छात्री को दिया जायगा। इन व्याख्यानों के अतिरिक्त केवल हिंदू-विश्वविद्यालय के भिन्न-भिन्न छात्रागारों में रहनेवाले छात्रों के भी व्याख्यानों का अलग प्रबंध किया गया है। विषय है 'हिंदी को राष्ट्र भाषा बनाने के लिये यह परम आवश्यक है कि हिंदी का संस्कृत से घनिष्ठ संबंध बना रहे।' प्रत्येक छात्रागार के दो छात्र इसमें भाग ले सकेंगे। एक निर्दिष्ट विषय के पक्ष में बोलेगा, तथा दूसरा विपक्ष में। दो सर्वोत्कृष्ट व्याख्यान-दाताओं को पारितोषिक मिलेंगे। 'अछूतोद्धार'-विषय पर लेख लिखनेवाले उस छात्र को भी पारितोषिक दिया जायगा, जिसका लेख सबसे अच्छा होगा। इस संबंध में विशेष हाल जानने के लिये 'साहित्य-सभा' के मंत्री श्रीयुत मुकुटविहारी गुप्त बी० ए० से पत्र-व्यवहार करना चाहिए। साहित्य-सभा के उक्त कार्य की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इन व्याख्यानों से हिंदी का महान् उपकार हो रहा है। हर्ष की बात है कि इस वर्ष इन व्याख्यानों में राष्ट्रीय कॉलेजों के विद्यार्थी भी भाग ले सकेंगे। लखनऊ-विश्वविद्यालय में हिंदी के लिये क्या हो रहा है? क्या वहाँ भी ऐसे व्याख्यानों का प्रबंध है? यदि नहीं, तो क्या हिंदू-विश्वविद्यालय की साहित्य-सभा का अनुकरण ठीक न होगा?

× × ×

८. भारतीय ललित कलाओं का उद्धार

भारतीय ललित कलाओं की ओर इस समय स्वदेश और विदेश, दोनों ही स्थानों में, विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। सर्वत्र इस बात की आवश्यकता स्वीकार की जा रही है कि केवल अजायबघरों के बंद कमरों में प्राचीन काल की ललित कलाओं के नमूने रख छोड़ने से काम न चलेगा। इस उपाय से इन नमूनों का संरक्षण हो सकता है; पर इससे उन कलाओं का उद्धार कैसे संभव है? बंबई के भूतपूर्व गवर्नर सर जार्ज लायड ने हाल ही में, विलायत में, यह सलाह दी है कि दिल्ली में एक प्रधान कला-शाला खोली जाय। इस शाला में ललित कलाओं के अध्ययन का प्रबंध किया जाय, तथा सभी उचित मार्गों से उनके पुनरुद्धार के उपाय सोचे जायँ। थोड़े दिन हुए, विलायत में इंडिया-सोसाइटी का जो अधिवेशन हुआ था, उसमें बंबई के कला-स्कूल का वर्णन करते समय इन सब बातों को श्रीग्लैडस्टन हालोमोन ने कुछ विस्तार के साथ कहा था। दिल्ली में प्रधान कला-शाला की आवश्यकता हम स्वीकार करते हैं। पर इसके साथ ही हमारी राय में प्रत्येक प्रांत में ऐसी शालाएँ खोले विना प्रधान शाला की उन्नति न हो सकेगी। फिर, अकेले शालाओं के

खोलने से भी उतना लाभ न होगा, जितना पहले प्रदर्शनियों के द्वारा लोगों में कलाओं के संबंध में अनुराग और उत्साह उत्पन्न करने से। हर्ष की बात है कि इस ओर भी लोगों का ध्यान आकृष्ट हो रहा है। बंगाल में ऐसी प्रदर्शनियाँ हो चुकी हैं, और उनसे लाभ भी बड़ा हुआ है। अब हमारे युक्त-प्रदेश में भी ललित कलाओं के पुनरुद्धार की चर्चा सुनाई पड़ने लगी है। जनवरी, १९२५ में, लखनऊ नगर में, अखिल-भारतवर्षीय संगीत-सम्मेलन के अधिवेशन होंगे। इस सम्मेलन के पृष्ठ-पोषक युक्त-प्रदेश के गवर्नर तथा प्रधान सभापति आनरेब्ल राय राजेश्वरबली (युक्त-प्रांत के शिक्षा-मंत्री) हैं। इस सम्मेलन को सफल बनाने के लिये अभी से कुछ व्याख्यानों का भी प्रबंध किया गया है। हम हृदय से इस सम्मेलन की उन्नति चाहते हैं। हमें विश्वास है कि ऐसे योग्य कार्यकर्ताओं की देख-रेख में इसे पूर्ण सफलता प्राप्त होगी।

× × ×

९. गऊ की भेंट

अपना २१ दिन का निराहार व्रत पूरा करने के उपरांत जिस दिन महात्मा गाँधी ने पारण किया, उसी दिन उनके पास तारों, पत्रों आदि का ताँता लग गया। सभी में लोगों ने निर्विघ्न व्रत समाप्त होने पर उनको बधाई दी थी। इसके सिवा हज़ारों की संख्या में लोगों ने स्वयं उपस्थित होकर भी उनको मुबारकबादी दी। बहुत लोगों ने उनको बहुमूल्य वस्तुएँ भी भेंट कीं। इन सबमें मौलाना मोहम्मदअली की भेंट सबसे बहुमूल्य थी। दान देनेवाले और दान लेनेवाले, दोनों को इस दान से अपूर्व संतोष हुआ। हिंदू लोग मुसलमानों से बिना माँगे किस भिक्षा को पाकर कृतकृत्य होंगे, तथा मुसलमान हिंदुओं को कौन-सी भिक्षा देकर अपने प्रेम का गुलाम बना सकते हैं, इस बात का सजीव उदाहरण मौलाना मोहम्मदअली का यह सजीव उपहार था। महात्माजी को जिस समय इस भेंट की बात मालूम हुई, तो आप आनंद से गद्गद हो गए। उस समय आप दोमंज़िले मकान पर थे। भेंट ऐसी थी कि ऊपर नहीं पहुँचाई जा सकती थी, और महात्माजी में इतना बल न था कि नीचे उतर सकें। पर उसे वह देखना अवश्य चाहते थे। अतः उनकी चारपाई उठाकर बरामदे में लाई गई। वहाँ से, चारपाई पर पड़े-ही-पड़े, उन्होंने नीचे खड़ी अपनी उस भेंट को देख उनकी आँखों में आँसू छलछला आए। उनके मुख-मं[डल] पर संतोष का दिव्य तेज फैल गया। उधर मौलाना मो[ह]म्मदअली के मुख-मंडल पर भी आंतरिक संतोष की झ[लक] झलक रही थी। आप जानते हैं, यह भेंट क्या थी? रत्नों से जड़ा कोई विशाल सिंहासन था? नहीं। तो वह क्या था, जिससे महात्माजी इतने प्रसन्न हुए? नहीं, एक साधारण-सी गऊ थी। आप जानते हैं, मौलाना को कैसे मिली थी? एक क़साई उसे ज़िबह करने लिये लिए जाता था। मौलाना ने उसकी रक्षा की, उस ख़रीद लिया, और फिर महात्माजी को अर्पण कर दिय[ा]। गऊ की भेंट में कुछ न था, पर गऊ के साथ जिस [भाव] का समावेश है, वह भारत की राष्ट्रीयता के लिये इत[ना] बहुमूल्य है कि उसके लिये जो कुछ भी मूल्य दिया [जाय], वह थोड़ा है।

× × ×

१०. खनिज-विद्या और धातु-शास्त्र की शिक्षा

काशी-विश्वविद्यालय में इंजिनियरिंग की सुशिक्षा का जैसा प्रबंध है, वैसा भारत-भर में अन्यत्र कहीं नहीं। भारत ही क्या, कुछ बहुत उन्नत देशों को छोड़कर अन[्य] साधारण उन्नत देशों में भी इस विषय की शिक्षा की ऐसी सुव्यवस्था बहुत कम देखने में आती है। कई विदेशी विद्वानों ने भी इस इंजिनियरिंग-विभाग की भूरि-भूरि प्रशंसा की है, इसकी कार्य-शैली के प्रति अपना आंतरिक संतोष प्रकट किया है। वास्तव में यह विभाग काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय के लिये गौरव की वस्तु है। अब विश्वविद्यालय एक और विभाग खोलकर खनिज-विद्या (Mining) और धातु-शास्त्र (Mettalurgy) की शिक्षा की भी व्यवस्था करने जा रहा है। इन विषयों में विश्वविद्यालय बी० एस्-सी० की डिग्री देगा। खनिज-विद्या की शिक्षा में भू-गर्भ से कोयला खोद निकालने की शिक्षा पर सबसे अधिक ज़ोर दिया जायगा। धातु-शास्त्र में सभी धातुओं की शिक्षा का प्रबंध किया जायगा। पर लोहे और इस्पात की शिक्षा पर सब से अधिक ध्यान दिया जायगा। भारत के किसी भी प्रांत का कोई भी विद्यार्थी, वह चाहे जिस जाति या विचार का हो, इसकी शिक्षा प्राप्त कर सकता है। फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री तथा गणित-विषय को लेकर जिन विद्यार्थियों ने

ी भी भारतीय विश्वविद्यालय से साइंस में इंटर डेएट-परीक्षा पास की है, वे इस विषय की शिक्षा लिये भरती किए जा सकेंगे। भारतवर्ष में खनिज-ग और धातु-शास्त्र की शिक्षा का प्रबंध और किसी विश्वविद्यालय में नहीं है। सबसे पहले काशी का -विश्वविद्यालय ही इस काम को करने जा रहा है। रतवर्ष की आर्थिक उन्नति के लिये यह परमावश्यक कि इस देश की रत्नगर्भा वसुंधरा की अपरिमित संपत्ति ही नष्ट न होने दी जाय। अब तक उसका जो कुछ योग किया गया है, सो विदेशियों के द्वारा। इस कारण उससे जो कुछ लाभ हुआ है, वह भी विदेशियों को ही। शी-विश्वविद्यालय में यदि उक्त दोनों विषयों की शिक्षा ा संतोषप्रदायक प्रबंध हो जायगा, तो देश के नवयुवकों ो जीविकोपार्जन का एक ऐसा नया मार्ग मिलेगा, जिससे श की आर्थिक उन्नति भी होगी। तथास्तु।

× × ×

११. गुरुकुल के ऊपर विपत्ति

इस साल की बाढ़ ने जो हानि की है, वह यहाँ के ीवित निवासियों की स्मृति में अभूतपूर्व है। चार दिन क प्रलयकालीन सदृश मूसलधार वर्षा होती रही। इससे ो धन-जन की हानि हुई, उसका अनुमान करना भी असंभव है। आज सहस्रों मनुष्य गृह-हीन हो गए हैं, और उनके खाने-पीने तक का ठिकाना नहीं रह गया। किंतु इस बाढ़ ने कई एक सार्वजनिक संस्थाओं को भी हानि पहुँचाई है। उनमें गुरुकुल के ऊपर जो विपत्ति आई है, वह बहुत गहरी है। गुरुकुल की वर्तमान अवस्था से संपूर्ण संतुष्ट न होने पर भी हम उसे एक आदर्श और उपादेय संस्था समझते हैं। इस बाढ़ ने—सुनते हैं—कॉलेज-भवन तथा कुछ अन्य इमारतों को छोड़कर, उसका सर्वस्व नष्ट कर दिया है। इसके पुनरुद्धार में दो लाख रुपए के व्यय होने का अनुमान किया जाता है। स्वामी श्रद्धानंदजी ने इसके लिये अपील की है, और उसमें उन्हें बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है। और, कोई कारण नहीं कि गुरुकुल के लिये समय पाकर यह रक़म न मिल जाय। किंतु हाल ही में हमें जानकर साश्चर्य दुःख हुआ कि गुरुकुल के संचालकों ने गुरुकुल को काँगड़ी से हटाने का निश्चय कर लिया है। इस विषय पर स्वामी श्रद्धानंदजी ने निम्नलिखित पत्र समाचार-पत्रों में छपवाया है—

"गुरुकुल-भूमि को अंतिम प्रणाम!

मैं अभी गुरुकुल काँगड़ी से वापस आ रहा हूँ। मैं उन लोगों को हार्दिक धन्यवाद और आशीर्वाद देता हूँ, जिन्होंने ऐसे समय में भी, जिसमें बाढ़-पीड़ितों की दुःख से त्राहि-त्राहि मची हुई है, और जिस समय हिंदुओं के हृदय कोहाट के भाइयों के दुःख से पीड़ित थे, मेरी अपील पर ध्यान देकर धन द्वारा गुरुकुल की तत्काल सहायता की।

मैं उस भूमि को अंतिम प्रणाम करने गया था, जिसे अपनी आत्मिक जननी कहता हूँ। यद्यपि पिता दयानंद ने मुझे नास्तिकता के पथ से हटाकर धर्म के सीधे मार्ग पर लगाया, तथापि मैं उस पवित्र भूमि के गर्भ में बैठकर द्विजन्मा हुआ था, जहाँ कदाचित् दयानंद देवी माता की गोद में ध्यानस्थ बैठे थे। वहाँ मैंने देखा, स्थानीय अधिकारियों की घबराहट का कारण अभूतपूर्व बाढ़ थी। परमपिता के अनुग्रह और ब्रह्मचारियों के वीरत्व-पूर्ण उद्योग के कारण अधिकांश सामान बच गया है, और एक पखवारे के बाद मैं जो रुपया गुरुकुल के संचालकों को भेंट करूँगा, उससे आशा है, क्षति की पूर्ति हो जायगी। भविष्य में भवन तथा सामान के लिये धन की सहायता पंडित विश्वंभरनाथ बी० ए० व्यवस्थापक गुरुकुल काँगड़ी, ज़िला बिजनौर, के पते से भेजी जानी चाहिए।

पंजाब-आर्य-प्रतिनिधि सभा की कार्यकारिणी समिति ने, जो गुरुकुल की संचालक समिति है, मेरी विनीत प्रार्थना के विरुद्ध यह निश्चय किया है कि गुरुकुल को उस धार्मिक, एकांत और पठन-पाठन के वायुमंडल से, जो हिमालय के चरणों पर गंगा माता के निकट उत्पन्न किया गया था, हटाकर किसी दूसरे स्थान में स्थापित कर दिया जाय। किंतु मैं संचालक समिति को धन्यवाद देता हूँ, जिसने मुझे उक्त बैठक में बुलाकर मेरी सलाह ली, जिसके कारण मुझे यह अवसर मिला कि मैं उस महान्, भाव-प्रेरक दृश्य के एक बार अंतिम दर्शन कर सकूँ, जिसकी प्रशंसा पूर्वी और पश्चिमी, सभी विद्वानों ने की थी, और जिसके स्थान पवित्र स्मृतियों के कारण तीर्थ हो रहे हैं। मेरी प्रार्थना है कि सर्वशक्तिमान् परमपिता अध्यापकों और ब्रह्मचारियों पर ऐसा प्रभाव डालें, जिससे अंतिम समय में उनकी आत्माएँ कुल के प्रारंभिक दिनों के भावों और आदर्शों से रँग जायँ। किंतु मुझे तो उस पवित्र

स्थान और अपने आत्मिक संग्राम की स्मृति जीवन के अंत तक ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी।"

इस पत्र को पढ़कर आदर्श-शिक्षावादियों को बड़ा क्षोभ होगा। स्वामी श्रद्धानंदजी को इससे जो वेदना हुई है, उसका कोई आश्चर्य नहीं। यदि गुरुकुल की संचालक समिति अपने उक्त प्रस्ताव को कार्य में परिणत करके गुरुकुल को काँगड़ी से हटा दे, तो बड़ी भारी भूल करेगी। कई साल की बात है, हम एक अमेरिकन अध्यापक के साथ गुरुकुल गए थे। गंगा बढ़ी हुई थीं। हम लोग 'तमेड़' पर बैठकर गंगा पार हुए और गुरुकुल पहुँचे। उस समय वहाँ की कुछ कक्षाओं को दिल्ली के आस-पास कहीं हटाने की चर्चा चल रही थी। जब हमने यह बात अध्यापक महोदय से कही, तब उन्होंने कहा कि काँगड़ी में प्रकृति की जो अव्यक्त शिक्षा मिलती है, और ब्रह्मचारियों के हृदय पर जो उसका अचिंत्य प्रभाव पड़ता है, वह अमूल्य है। किंतु गुरुकुल के अध्यक्षों ने कुछ दर्जे वहाँ से हटा ही दिए। अब आज सारे गुरुकुल को हटाने का प्रस्ताव किया जा रहा है। मालूम पड़ता है, वहाँ के अध्यक्षों में शिक्षा-संबंधी कल्पना और आदर्शों का दिवाला निकल गया है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने इस विषय में एक स्थान पर कहा है—

"इस अवस्था (विद्यार्थी-जीवन) में केवल ब्रह्मचर्य पालन नहीं, किंतु विश्व-प्रकृति की अनुकूलता भी चाहिए। शहर हमारे स्वाभाविक निवासस्थान नहीं हैं। मनुष्यों के काम-काजों की आवश्यकताओं के कारण ये बन गए हैं। विधाता की यह इच्छा कदापि नहीं है कि हम जन्म लेकर ईंट, काठ और पत्थरों की गोद में पलकर मनुष्य बनें। हमारे ऑफ़िसों और शहरों के साथ फल-फूल-पत्र और चंद्र-सूर्य का कोई संबंध नहीं। ये शहर हमें सजीव और सरस विश्व-प्रकृति की छाती से छीनकर उत्तप्त-उदर में डालकर पचा जाते हैं। × × × काम-काज के चक्कर में पड़कर सिर टकराने के पहले अर्थात् सीखने के समय—उस समय, जब कि बच्चों की मानसिक शक्तियाँ बढ़ती हैं—उन्हें प्रकृति की सहायता की बहुत ही आवश्यकता होती है। और, इसलिये यदि हम आदर्श विद्यालय स्थापित करना चाहें, तो हमें मनुष्यों की बस्ती से दूर, निर्जन स्थान में, खुले हुए आकाश में और विस्तृत भूमि पर, झाड़-पेड़ों के बीच, उनकी व्यवस्था करनी चाहिए।"

गुरुकुल का वर्तमान स्थान शिक्षालय के लिये सब प्रकार से आदर्श है। नीची पहाड़ियों की सुंदर श्रेणियाँ, गंगाजी की कलकल-निनाद-पूर्ण दिव्य धारा, जल-वायु की उत्कृष्टता, तपोभूमि-तुल्य पवित्र स्थान—ये सब एक जगह एकत्र मिलना दुर्लभ हैं। यदि अंत में गुरुकुल अपने स्थान से हटाया गया, तो प्रत्येक आदर्श शिक्षा-प्रेमी को दुःख होगा। सैकड़ों बाढ़ें गुरुकुल या अन्य संस्था को हानि नहीं पहुँचा सकतीं। हाँ, हानि केवल एक ही वस्तु से पहुँच सकती है, वह है मनुष्य की कल्पना-हीन बुद्धि।

× × ×

१२. हिंदू-संगठन का विरोध करना नादानी है

गत २६ सितंबर को दिल्ली में जिस ऐक्य-सम्मेलन का कार्यारंभ हुआ था, वह सकुशल समाप्त हुआ। भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों से ३०० के लगभग प्रतिनिधि पधारे थे। यह सम्मेलन अभूतपूर्व था। इसके पहले, कांग्रेस के सिवा, और कभी सभी पार्टियों और मतों के मुख्य-मुख्य मुखिया लोग इस उद्देश्य से एकत्र सम्मिलित नहीं हुए थे, और न पहले कभी ऐसी विकट परिस्थिति ही उपस्थित हुई थी। हर्ष का विषय है कि इस सम्मेलन में हिंदू-संगठन का विरोध नहीं किया गया। इस समय भारत की दो मुख्य जातियों के हृदयों में जो ज़हरीले दुर्भाव जड़ जमाते जा रहे हैं, वे भारत के जातीय जीवन के लिये बड़े ही भयंकर हैं। हिंदू-मुसलमान इस तरह धर्म के नाम पर लड़-झगड़कर कभी सुख-समृद्धि और वृद्धि का मुख नहीं देख सकते। दोनों जातियाँ जब तक परस्पर हिल-मिलकर देश की दशा सुधारने में तन-मन-धन-जीवन से नहीं जुट जातीं, तब तक दोनों के अधिकारों की रक्षा अधिकतर औरों के कृपा-कटाक्ष पर ही निर्भर रहेगी। वे औरों के अनुग्रह-निग्रह को शिरोधार्य करने के लिये विवश बने रहेंगे। उनको पराधीनता-पाश के गंदे फंदे में गला फँसाकर सरकार के बंदे बनकर चुपचाप अत्याचार और अविचार का प्रत्येक प्रहार बारंबार सहन करना पड़ेगा। गुमराही की तबाही में नादिरशाही की वाह-वाही करनी पड़ेगी। घर की फूट और गृह-कलह से किस देश, किस जाति, या किस समाज का कब कहाँ कल्याण हुआ है? हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सभी भारतवासी भाई-भाई हैं। सब अपने धर्म, आचार, व्यवहार, अधिकार आदि की स्वतंत्रता अथवा विशेषता बनाए रखकर भी परस्पर पूर्ण प्रेम-प्रीति का पालन और

प्रतीति-नीति का संचालन कर सकते हैं। यह महत्त्व-पूर्ण तत्त्व सब समझदार उदार हिंदू और मुसलमान जानते और मानते हैं। किंतु कई कारणों से आज सब ओर क्रोधपरायण, विरोध के पक्षपाती, अर्द्धशिक्षित, अधकचरे अभिमानी, अबोध धर्माचार्यों की अथवा लूट-मार के लिये मौक़ा ढूँढ़नेवाले शरारती गुंडे-बदमाशों की बन आई है। समझदार हिंदू-मुसलमानों की शिथिलता और उपेक्षा ने और भी दुष्टों को सिर उठाने में सुविधा कर दी। धर्मांध मौलवियों को कुफ़ मिटा देने की पुरानी मुसलमानी राज्य-काल की सनक फिर सवार हो गई। सब हिंदुओं को आर्य-समाज का साथ देते देखकर कट्टर उल्मा सशंक हो उठे। नौमुसलिमों की शुद्धि और हिंदू-जाति का संगठन होने के समाचार ने क्रोध की आग में घी का काम किया। दीन-इसलाम सच्चा मज़हब है; मुसलमानों को हक़ हासिल है कि वे हर एक बशर को, चाहे जिस तरह हो, मुसलमान बनाते रहें। मगर मुसलमान या नौमुसलिम को दीन-इसलाम से निकालना, कभी नहीं हो सकता—मुसलमान अपने दुशमनों की यह गुस्ताख़ी कभी नहीं माफ़ कर सकते। जनाब अब्दुलबारी साहब तो मुरतिद (मुसलमानी मज़हब छोड़नेवाले) को क़त्ल कर डालने का फ़तवा निकाल चुके हैं। ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब ने शुद्धि के मुक़ाबले में, उचित-अनुचित सभी उपायों से, एक करोड़ हिंदुओं को मुसलमान बनाने का प्रण कर लिया है। उधर हिंदू अगर आग़ाख़ाँ साहब की हिंदू-अवतार बनकर हिंदुओं को धर्म-भ्रष्ट करने की साज़िश अथवा देश के प्रत्येक प्रांत में हिंदू-जाति की स्त्रियों, लड़कों और विधवाओं को फुसलाकर, धोका देकर अथवा ज़बरदस्ती उड़ाना और मुसलमान बनाना देखकर उसके जवाब में उचित उपायों से अपने आदमियों की रक्षा करना चाहते हैं, तो सुशिक्षित, समझदार और हिंदू-मुसलिम-मेल के पक्षपाती मुसलमान नेता भी उसका विरोध करते नज़र आते हैं। उन्हीं मुसलमान भाइयों के साथ कुछ हिंदू विद्वान्, नेता और संपादक भी हिंदू-जाति की शुद्धि और संगठन का विरोध करते हुए कहते हैं कि "शुद्धि का कार्य बेमौक़े और व्यर्थ ही शुरू किया गया है, और हिंदू-संगठन भी अनुमोदन के योग्य नहीं है। कारण, इससे राष्ट्रीयता को धक्का पहुँचेगा। हिंदुओं को चाहिए कि वे हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी भारतीयों का सम्मिलित संगठन करें, और प्रत्येक जाति का मनुष्य अपने को पहले भारतीय और उसके उपरांत हिंदू, मुसलमान आदि समझे।" हमें अधिक खेद इन्हीं हिंदू भाइयों की उक्त उक्ति और युक्ति पढ़-सुनकर होता है। हमारी राय में किसी महान् संगठन के भीतर उसके अंशस्वरूप जो व्यक्ति या दल होते हैं, उन्हें पहले अपने तईं संगठित और सुदृढ़ बनाने की बड़ी ज़रूरत होती है। रस्सी की लड़ों में से जो लड़ ख़ुद कमज़ोर होगी, अथवा यों कहिए कि उसके सूतों या सूक्ष्म तंतुओं का संगठन ढीला या कमज़ोर होगा, वह रस्सी को भी कमज़ोर कर देगी। इसी तरह प्रत्येक तंतु के अच्छी तरह मिले हुए और मज़बूत होने से सारी रस्सी पाएदार और अच्छी तरह काम देने-वाली होगी। इसी प्रकार राष्ट्रीय संगठन के लिये उसकी अंगीभूत प्रत्येक जाति या समाज को अपना मज़बूत संगठन करना चाहिए। अगर एक छोटी-सी जाति भी कमज़ोर और विच्छिन्न होगी, तो वह कार्य-सिद्धि में बाधा डालेगी। हिंदू-जाति अगर अपनी विशेषता, अपने आचार-विचार की औरों के आचार-विचार से भिन्नता एवं, औरों के अनुकरण पर, अपनी प्राचीन परंपरागत सभ्यता मिटाकर अन्य जातियों के गरोह में अपनी सत्ता लीन कर देगी, तो वह फिर किस काम की रह जायगी? शक्ति संगठन में ही रहती है। अतएव संगठनहीन हिंदू-जाति शक्तिहीन होकर और जातियों के लिये भारस्वरूप हो जायगी, और अन्य साथियों को भी आगे न बढ़ने देगी।

भारत के सर्वजातीय संगठन या सम्मिलन की बात छोड़ दीजिए, हिंदुओं और मुसलमानों में भी परस्पर सच्चा मेल तब तक नहीं हो सकता, जब तक हिंदू शक्तिहीन रहेंगे, और उनमें फूट फैली रहने के कारण पूर्ण रूप से संगठन न होगा। जोड़ी का एक जानवर ताक़तवर और दूसरा मरझिल्ला होने से क्या हाल होता है, यह किसी को बतलाना न पड़ेगा। मरझिल्ला जानवर ताक़तवर साथी को भी गाड़ी खींचने नहीं देता। कमज़ोर, बिखरी हुई हिंदू-जाति शहज़ोर और संगठित मुसलमानों को भी उन्नति की राह में अग्रसर न होने देगी। इसके सिवा जब हिंदू-जाति की संगठित शक्ति आत्मरक्षा की क्षमता प्राप्त करती हुई यह प्रमाणित कर देगी कि उस पर आक्रमण करना या बेजा दबाव डालना आसान नहीं है, तब स्वयं सब सहवासी और सहयोगी जातियाँ सम्मान-सहित सच्चे सौहार्द का समर्थन

करने लगेंगी। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, जापान का उदाहरण आपके सामने है। अतः हिंदू-जाति का उद्धार, उन्नति और रक्षा संगठन से ही हो सकेगी। संगठन का विरोध करना नादानी है, बुद्धिमानी नहीं।

× × ×

१३. नौकरशाही और वेतन-वृद्धि

सन् १९१९ के शासन-सुधार से पहले भारतीय शासन की बागडोर नौकरशाही सरकार के हाथ में पूर्ण रूप से थी। यह सरकार भारतीय जनता के प्रति कुछ भी उत्तरदायी नहीं थी, और अपनी इच्छा के अनुसार क़ानून बनाकर उन पर अमल करती थी। इस प्रकार यहाँ के सरकारी अधिकारियों को अपरिमित अधिकार प्राप्त थे। प्रायः सब भारी-भारी जगहें भी उनके लिये नियत थीं। शासन-सुधार से इन अफ़सरों के अधिकारों में कुछ कमी हो गई। प्रांतों में कुछ विभाग ऐसे मंत्रियों को सौंपे गए, जो कौंसिल के लिये जनता द्वारा चुने गए थे। इन विभागों के सब कार्यों के लिये मंत्री जनता के प्रति उत्तरदायी हो गए, और इन विभागों के सब अफ़सरों को मंत्रियों की मातहती में काम करना पड़ा। इस प्रकार इन अफ़सरों का मनमानी करने का पुराना अधिकार लुप्त हो गया। इधर मंत्रियों को भी इन अफ़सरों को दंड देने तथा बरख़ास्त करने का पूरा अधिकार न मिलने के कारण अपने विभागों का काम सुचारु रूप से चलाने में बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। ग़रीब भारत में इन अफ़सरों को पहले ही से इतना वेतन मिलता था और मिल रहा है, जितना कि संसार के अन्य किसी देश में इसी प्रकार के अफ़सरों को नहीं मिलता। इसलिये, गत ८,१० वर्षों में वस्तुओं के मूल्य में जो वृद्धि हुई है, उसके लिये इनके वेतनों में उतनी वृद्धि नहीं की गई। अपने अधिकारों की कमी होने पर इन लोगों ने अपनी वेतन-वृद्धि के लिये प्रयत्न शुरू कर दिया। इँगलैंड में इसके संबंध में आंदोलन किया गया, और उसके फलस्वरूप ब्रिटिश-सरकार द्वारा ली साहब की अध्यक्षता में एक कमीशन भारतीय बड़ी व्यवस्थापक सभा के विरोध करने पर भी नियुक्त किया गया। इस कमीशन में तीन भारतीय सदस्य भी थे। कमीशन ने भारत के प्रधान स्थानों में भ्रमण किया, और अफ़सरों की तथा नेताओं की गवाहियाँ सुनीं। हज़ारों रुपए मासिक तनख़्वाह पानेवाले अफ़सरों ने कमीशन को यह समझाने का प्रयत्न किया कि उनको जो वेतन मिलता है, वह उनकी आवश्यकताओं के लिये काफ़ी नहीं है, और इसी कमी के कारण उनको दिन-पर-दिन अधिक क़र्ज़दार होना पड़रहा है। इन अफ़सरों की तरफ़ से ४८ वर्षवाले एक ऐसे अफ़सर का मासिक ख़र्च, जिसका मासिक वेतन १,६२५) है, नीचे-लिखे अनुसार बतलाया गया—

प्रॉविडेंट फ़ंड	१४२)
बीमे की किस्त	११०)
इनकमटैक्स (आय-कर)	१२५)
बँगले का किराया	१४२)
नौकर	२०८)
घरू ख़र्च (भोजन इत्यादि)	२२०)
कपड़े	१२०)
आकस्मिक ख़र्च	१५०)
क्लब	४०)
लड़कों की शिक्षा	५००)
पहाड़ का ख़र्च	२२०)
डाक्टर इत्यादि	४०)
	२,१०७)

इस प्रकार उपर्युक्त अफ़सर को क़रीब ३००) भारतवासियों की औसत आमदनी से अधिक वेतन मिलने पर भी क़रीब ५००) प्रतिमास क़र्ज़ लेकर अपना काम चलाना पड़ता है। यदि हमारे अफ़सरों की दशा सचमुच ऐसी ही है, तो या तो उन्हें नौकरी छोड़कर शीघ्र ही अपने देश चले जाना चाहिए, या अपना ख़र्च कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। इन अफ़सरों ने कई अन्य प्रकार की असुविधाएँ भी बतलाईं। भारतीय ग़ैर-सरकारी गवाहों ने भारतीयों को ही बड़ी जगहों पर नियुक्त किए जाने पर ज़ोर दिया, और इन अफ़सरों को भारतीय जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होने की आवश्यकता बतलाई। कमीशन ने अंत में यह सिफ़ारिश की कि—

(१) अफ़सरों के वेतन और भत्ते इत्यादि में कुछ वृद्धि की जाय, जिसके कारण भारत-सरकार और प्रांतीय सरकारों को प्रतिवर्ष एक करोड़ से अधिक रुपया और ख़र्च करना पड़े।

(२) हस्तांतरित विभागों में अफ़सर साधारणतः

प्रांतीय सरकारों द्वारा नियुक्त किए जायँ, और मंत्रियों का उन पर पूर्ण अधिकार रहे।

(३) बड़ी जगहों पर भारतीय अधिक संख्या में नियुक्त किए जायँ। भारतीय व्यवस्थापक सभा की गत सितंबर की बैठक में सरकार ने यह प्रस्ताव किया कि कमीशन की सिफ़ारिशें कुछ थोड़े परिवर्तन के साथ स्वीकार कर ली जायँ। स्वराज्य-दल के नेता श्रीमान् पंडित मोतीलाल नेहरू ने इन सिफ़ारिशों को अस्वीकार करने का प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष में कई भाषण हुए। जबलपुर के सुप्रसिद्ध हिंदी-हितैषी श्रीमान् बाबू गोविंददासजी ने एक सारगर्भित व्याख्यान देकर पंडित मोतीलालजी नेहरू के प्रस्ताव का समर्थन किया। अंत में नेहरूजी का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, और सरकार की हार हुई। परंतु मालूम होता है कि व्यवस्थापक सभा के विपक्ष में राय देने पर भी कमीशन की सिफ़ारिशों पर शीघ्र अमल किया जायगा। इँगलैंड के नवीन चुनाव अनुदार दल की अभी जो भारी जीत हुई है, उससे तो यहाँ के अफ़सरों की वेतन-वृद्धि की आशाएँ और भी दृढ़ हो गई हैं।

× × ×

१४. क्या मध्य-एशिया मनुष्यों का आदिम निवास-स्थान है ?

आनेवाली वसंत-ऋतु में अमेरिका के कुछ विज्ञानवेत्ता मंगोलिया की गोबी मरुभूमि की खोज करने के लिये फिर निकलेंगे। इन लोगों का अनुमान है कि भूतल का यही भाग मनुष्य का आदिम निवास-स्थान है।

अमेरिकन म्यूज़ियम ऑफ़ नैचुरल हिस्ट्री के राय चैपमैन ऐंड्रूज़ इस दल के मुखिया हैं। इन्होंने हाल ही में मंगोलिया की खोज दो बरस तक की है, जिससे बहुत ही महत्त्व-पूर्ण बातों का पता लगा है।

इन खोजों से इस बात का पुष्ट प्रमाण मिलता है कि एशिया और अमेरिका किसी प्राचीन युग में एक दूसरे से मिले हुए थे, और मध्य-एशिया ही मानव-जाति का आदिम निवास-स्थान था। यह भी सिद्ध होता है कि इस समय भूपृष्ठ पर जितने जीवधारी पाए जाते हैं, उनमें से बहुतों का आदि स्थान यही मध्य-एशिया था।

इसी भूभाग में लाखों बरस की गड़ी हुई मनुष्य की पाषाणप्राय हड्डियाँ (fossilised bones) खोदकर देखी जायँगी, क्योंकि ऐसा अनुमान किया जाता है कि मंगोलिया के पर्वतों में ऐसे मनुष्यों की हड्डियाँ अवश्य गड़ी होंगी, जो लाखों बरस पहले यहाँ बसते थे।

ऐंड्रूज़ महोदय का कहना है कि पहली यात्रा में आदिम मनुष्यों की हड्डियों का पता इसलिये नहीं लगा कि तब हम लोग पर्वत के नीचे उचित तह तक नहीं पहुँच सके थे, परंतु ज्यों-ज्यों हम खोज करते थे, त्यों-त्यों नई-नई बातों का ज्ञान होता था। विश्वास है, दूसरी यात्रा में हम लोग उचित स्थान पर पहुँच जायँगे।

पहली यात्रा में सबसे महत्त्व-पूर्ण खोज यह थी कि २५ अंडे 'दानवासुर' (dinosaur) के मिले थे, जिनमें से किसी-किसी के भीतर पूरे बच्चे भी पाए गए हैं। ऐसे अंडे एक करोड़ वर्ष से भी अधिक पहले के आँके जाते हैं।

इन अंडों से इस बात का प्रमाण तो मिल ही गया कि ७०-८० फ़ीट लंबे बृहत्काय 'दानवासुर', जिनका आकार आजकल की छिपकली से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, ऐतिहासिक काल के लाखों बरस पहले अंडे दिया करते थे, और उनको उसी तरह सेया करते थे, जैसे आजकल पेट के बल चलनेवाले छोटे-छोटे कीड़े (reptiles)। इन्हीं अंडों के पास ७० खोपड़ियाँ ऐसे सींगवाले दानवासुरों की मिली हैं, जो किसी युग में अमेरिका के राकी पर्वत में रहते थे। इससे जान पड़ता है कि किसी प्राचीन युग में मंगोलिया और राकी पर्वत थल-भाग से मिले हुए थे, और इनके बीच में समुद्र नहीं था अर्थात् एशिया और अमेरिका दोनों एक महाद्वीप के भाग थे।

२० खोपड़ियाँ ऐसे पशु (Titan-otheres) की मिली हैं, जिनकी पाषाणप्राय (fossilised) हड्डी उत्तरी अमेरिका के डकोटा प्रांत में पाई गई थी। इससे भी सिद्ध होता है कि एशिया और अमेरिका पहले मिले हुए थे।

× × ×

१५. काला मूँगा

भारतवर्ष में अब तक प्रायः मोहनमाला तथा पहुँची आदिक आभूषणों में लाल मूँगे पहने जाते हैं। आधुनिक सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ शनैः-शनैः इसका व्यवहार कम होता जा रहा है। प्रचलित लाल मूँगे के नाम तथा रूप-रंग से तो प्रायः सभी परिचित हैं, परंतु काले मूँगे

का नाम शायद बहुत कम लोगों ने सुना होगा। यह मूँगा जावा-द्वीप के निवासी बहुधा पहनते हैं। वे इसकी चूड़ियाँ बनाते और उन्हें बड़े गर्व के साथ धारण करके अपना सौंदर्य बढ़ाते हैं। आभूषण के रूप में धारण करने के अतिरिक्त जावा-निवासियों का यह दृढ़ विश्वास है कि इसके पहनने से गठिया और अन्यान्य वात-व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। स्वेज़ से लेकर सुदूर प्रशांत महासागर पर्यंत समस्त पूर्वीय भूभाग में इस काले मूँगे की अद्भुत शक्तियों पर अब भी प्रचलित विश्वास है।

यूनान देश में भी एक प्रकार का काला मूँगा प्रयोग में लाया जाता था, जिसे यूनानी लोग बिच्छू के डंक मारने पर और अन्यान्य चिकित्साओं तथा अद्भुत कौतुकों में प्रयोग करते थे। रोम और यूनान-वासी काले मूँगे की भाँति के एक सामुद्रिक लचीले पदार्थ का प्रयोग जानते थे। इसे वे लोग एंटीपैथीज़ के नाम से पुकारते थे।

यद्यपि आजकल के विज्ञान के उन्नतिशील युग के वैज्ञानिक इस बात पर विश्वास न करेंगे कि मूँगे में कोई जादू या टोना-निवारण की शक्ति हो सकती है, परंतु प्लिनी-नामक एक प्राचीन यूनानी लेखक के भावों को (जिनसे हमें एंटीपैथीज़ के पूर्व प्रयोग की सूचना मिलती है) हम जिस प्रकार समझ सकते हैं, उससे हमें ज्ञात हुआ है कि उनका अभिप्राय एक प्रकार के आश्चर्य-जनक गुणों से संपन्न एक सामुद्रिक मूँगे से है, जिसके ऊपर एक मुलायम छिलका होता था। प्लिनी महाशय ने असली एंटीपैथीज़ की पहचान यह बतलाई है कि यदि वह दूध में डालकर उबाला जाय, तो दूध में गुग्गुल अथवा लोबान की-सी सुगंध आने लगती है।

मैनचेस्टर-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर सिडनी जे० हिक्सन एफ़्० आर्० एस्० का कहना है कि "मैंने अभी हाल में एंटीपैथीज़ के एक टुकड़े को, जो मेरे पास था, दूध में डालकर घंटों औटाया, तब जाकर कहीं ज़रा-ज़रा-सी हल्की सुगंध गुग्गुल की आने लगी। फिर भी दूध के रंग में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, और न मूँगे पर ही कोई असर हुआ। इन प्रत्यक्ष दर्शित कारणों से, जब तक मैं और रासायनिक परीक्षाएँ न कर लूँ, तब तक के लिये मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि काले मूँगे की उक्त सुगंधवाली दुग्ध-परीक्षा ही ठीक है।"

काले मूँगे का वर्णन बाइबिल (Job XXVIII, Verse 18) में भी आता है, जिससे मालूम होता है कि यहूदी लोग भी काले मूँगे को प्रयोग में लाते थे, पर भारतवर्ष में इस विचित्र मूँगे के प्रयोग का कोई भी प्रमाण हमें उपलब्ध नहीं हो सका।

× × ×

१६. दंगे के बाद लखनऊ

लखनऊ का दंगा समाप्त हो गया। नगर में ऊपरी शांति फिर स्थापित हो गई। व्यापारियों का कारोबार फिर पूर्ववत् जारी हो गया। इक्के, ताँगे, घोड़ा-गाड़ी आदि फिर पूर्ववत् चलने लगे। यह सब ठीक है, पर भीतरी शांति का अभी कहीं पता नहीं। झगड़े का प्रधान कारण आरती का बंद होना अब भी ज्यों-का-त्यों बना है। महावीरजी का मंदिर ज्यों-का-त्यों मौजूद है, पर उसमें संध्या को अब तक आरती नहीं होती। नगर के हिंदू-मात्र इस बात से व्यथित हैं। उनको दृढ़ विश्वास है कि उनकी सभ्यता-पूर्ण सहनशीलता से अनुचित लाभ उठाया जा रहा है। उधर मुसलमानों की नमाज़ बड़ी धूम-धाम से होती है। दूर-दूर से लोग नमाज़ में सम्मिलित होने के लिये बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित होते हैं। बड़ी शान और शौक़त के साथ नमाज़ होती है। अज़ाँ की ध्वनि दूर-दूर तक गुंजार करती है। हिंदू यह सब दृश्य देखते हैं, और यह भी देखते हैं कि चिरकाल से स्थित उनके महावीरजी के मंदिर में संध्या-समय आरती नहीं हो सकती। क्या कोई कह सकता है कि इससे हिंदुओं के दिलों पर गहरी चोट नहीं लग रही है? क्या उनका यह सोचना ग़लत है कि हमारे धार्मिक कृत्यों में हस्तक्षेप किया जा रहा है? जब कि हिंदुओं के हृदयों में ऐसे असंतोष के भाव भरे हुए हैं, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि लखनऊ में संपूर्ण शांति हो गई? इस प्रकार दंगे के पहले का मूल-कारण ज्यों-का-त्यों मौजूद है, और उससे उत्पन्न असंतोष भी कम परिमाण में नहीं, वरन् रात-दिन बढ़ते हुए परिमाण में एकत्रित हो रहा है। नीच श्रेणी के मुसलमान समझते हैं, हमारी विजय हो गई, हिंदू हार गए। इस भाव से प्रेरित होकर वे लोग, जो अकड़बाज़ी दिखलाते हैं, वह घाव पर नमक छिड़कने के समान कष्टदायिनी हो रही है। परस्पर की यह तनातनी यहीं तक परिमित नहीं है, वरन् नित्य ही यह भिन्न-भिन्न रूपों में

दिखलाई पड़ती है। हिंदू लोगों की ओर से जहाँ सत्य-नारायण की कथा होती है, मुसलमानों की ओर से वहाँ मौलूद शरीफ़ की बड़ी-बड़ी मजलिसें बैठती हैं। दोनों में ही खूब जमाव होता है। दोनों ही जातियाँ अपने संख्या-बल का प्रदर्शन करके आतंक फैलाना चाहती हैं। मुसलमानों ने उन रोज़गारों का करना आरंभ कर दिया है, जो वे पहले कभी न करते थे। हिंदू भी अपनी सहज अहिंसा-प्रवृत्ति को दबाकर झटका मांस बेचने के लिये उद्यत हो गए हैं। उनके लिये एक नया 'सूना गृह' खोला गया है। हिंदुओं को मुसलमान बनाने का काम ज़ोरों पर है, तो हिंदुओं की ओर से भी शुद्धि के कार्य में काफ़ी चहल-पहल है। मुसलमानों का उर्दू दैनिक 'हमदम' यदि हिंदुओं के प्रति नित्य ज़हर उगलता है, तो हिंदुओं की दैनिक "आरती" भी विष-शोधन-कार्य से विरत नहीं दिखलाई पड़ रही है। स्थिति ऐसी ही है। चाहे इसे शांति कहिए, अथवा भीतर-ही-भीतर सुलगनेवाली अशांति। सूर्यास्त के समय आरती होने के मार्ग में यदि इसी प्रकार से रुकावट डाली गई, तो भविष्य में बड़े अनिष्ट की आशंका है। नहीं जानते, महात्माजी इस मामले का निपटारा कब तक करेंगे। स्थिति नित्यप्रति नाज़ुक होती जाती है। ईश्वर लखनऊ के हिंदू-मुसलमानों को सुमति दे।

× × ×

१७. 'हमदम'

लखनऊ से एक उर्दू दैनिक पत्र निकलता है। इसका नाम है 'हमदम'। इसकी बिक्री भी खूब होती है। असहयोग के दिनों में तो यह बहुत अधिक बिकता था। साधारणतः इसका संपादन भी अच्छा होता है; पर वास्तव में यह मुसलमानों का पत्र है, और अधिकांश में उन्हीं के भावों की प्रतिध्वनि इसमें सुनाई पड़ती है। इधर जब से लखनऊ में हिंदू-मुसलमानों का दंगा हुआ, तब से तो यह खुल्लमखुल्ला मुसलमानों का पक्षपात करता है। दंगे के दिनों में अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लोग तो अधिकतर स्थानीय आई० डी० टी० पत्र पढ़ते थे; पर अँगरेज़ी न जाननेवाले लोगों को इसी का आश्रय लेना पड़ता था। खेद है, हिंदी का कोई दैनिक उस समय था ही नहीं। दंगे के कुछ ही समय बाद 'आरती' नाम की एक स्थानिक दैनिक पत्रिका निकल गई। यह एक पैसे में बिकती है। लखनऊ में इसका इतना अधिक प्रचार हुआ है कि लोगों को देखकर आश्चर्य होता है। अब 'आनंद' भी दैनिक रूप में दर्शन देने लगा है। दोनों ही पत्र छोटे आकार के हैं। पर 'आरती' ने 'हमदम' से अच्छा मोर्चा लिया है। प्रायः दोनों में झड़प हो जाया करती है। यह तो स्पष्ट ही है कि 'आरती' की बदौलत 'हमदम' के बहुत-से ग्राहक टूट गए हैं, इससे वह 'आरती' से बहुत असंतुष्ट है। 'हमदम' तीन पैसे में बिकता है। यद्यपि इसे पढ़नेवाले बहुत-से पाठक अब 'आरती' को ही पढ़ते हैं, फिर भी इसका प्रचार कम नहीं हुआ। बात यह है कि हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमानों को अख़बार पढ़ने का शौक़ अधिक है। फिर दंगे के समय इसने मुसलमानी पक्ष का समर्थन भी खूब किया है। इस कारण इस समय मुसलमानों ने इसको विशेष रूप से अपना रक्खा है। लखनऊ के बाहर भी इसके ग्राहकों की संख्या बहुत है। इसके संपादक हैं सैयद जलीब देहलवी। आप उर्दू के अच्छे लेखक हैं, और बड़ी परिमार्जित विशुद्ध भाषा लिखते हैं। 'हमदम' के अग्रलेख प्रायः अच्छे होते हैं, यद्यपि उनमें इसलाम की वकालत का सदा ध्यान रहता है। उर्दू के पत्रों में 'हमदम' का स्थान बहुत ऊँचा है, और इसने प्रशंसनीय रीति से इसलाम की सेवा की है। इस पत्र के जन्मदाताओं में स्वर्गवासी लेफ़्टिनेंट शेख़ शाहिद हुसैन साहब भी थे। अब इस पत्र का मालिक कौन है, इस विषय में कुछ मतभेद-सा दिखलाई पड़ता है। हाल ही में गदिया के ताल्लुक़दार श्रीयुत मुशीर हुसैन किदवाई ने एक पत्र छपवाकर यह प्रकट किया था कि शेख़ साहब के बाद अब 'हमदम' पत्र हमारा है, और शीघ्र हम उसके सुधार की चेष्टा करेंगे। उस पत्र में उन्होंने अपने को 'हमदम' की वर्तमान नीति का समर्थक नहीं बतलाया था। इस पत्र के उत्तर में सैयद देहलवी साहब ने किदवाई साहब की बातों का प्रतिवाद करके पत्र पर उनकी मिल्कियत अस्वीकार की थी। इस पत्र के उत्तर में किदवाई महोदय ने फिर दूसरा पत्र छपवाकर अपनी पहले की बातों का समर्थन किया है। इस प्रकार से यह विवाद बढ़ता जाता है। हम चाहते हैं, यह विवाद अधिक बढ़कर 'हमदम' को हानि न पहुँचावे। 'हमदम' की उन्नति हमें अभीष्ट है, पर हम चाहते हैं कि वह इसलाम की हिमायत करता हुआ भी हिंदुओं का दिल न दुखावे।

× × ×

१८. महर्षि वाल्मीकि का आश्रम

भाद्रपद की माधुरी में पाठकों ने रायबहादुर श्रीयुत हीरालाल बी० ए०, एम्० आर्० ए० एस्० का 'मध्य-भारत में रावण की लंका'-शीर्षक लेख पढ़ा होगा। उस पर विशेषज्ञों की आलोचना अपेक्षित है।

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के संबंध में भी वाल्मीकीय रामायण में ही मतद्वैध पाया जाता है। वाल्मीकीय रामायण में, प्रारंभ ही में, मिलता है कि जाह्नवी से थोड़ी ही दूर तमसा-नदी के तट पर उनका आश्रम था। लक्ष्मण-सीता-सहित रामचंद्र जब वन के लिये प्रस्थित हुए, तब दूसरे दिन प्रयाग में, भरद्वाज मुनि के आश्रम में, पहुँचे। वहाँ से उन्होंने चित्रकूट के लिये प्रयाण किया। यमुना नदी पार करने के बाद वे चित्रकूट पहुँचे, और वहाँ पहुँचकर वाल्मीकि मुनि का अभिवादन किया—

गङ्गायमुनयोः सन्धिमादाय मनुजर्षभ।
कालिन्दीमनुगच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम्॥ ४॥
अथासाद्य तु कालिन्दीं प्रति स्रोतः समागताम्।
तस्यास्तीर्थं प्रचलितं प्रकामं प्रेक्ष्य राघव।
तत्र यूयं प्लवं कृत्वा तरतांशुमतीं नदीम्॥ ५॥
स पन्थाश्चित्रकूटस्य गतस्य बहुशो मया।
रम्यो मार्दवयुक्तश्च दावैश्चैव विवर्जितः॥ ९॥
आरोप्य सीतां प्रथमं संघाटे परिगृह्य तौ।
ततः प्रतेरतुर्यत्तौ प्रीतौ दशरथात्मजौ॥ १८॥
कालिन्दीमथ सीता तु याचमाना कृताञ्जलिः।
तीरमेवाभिसंप्राप्ता दक्षिणं वरवर्णिनी॥

(वा० रा०, अयो० कांड, सर्ग ५५)

ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया।
रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोरमम्॥ १२॥
मुनयश्च महात्मानो वसन्त्यस्मिन् शिलोच्चये।
अयं वासो भवेत्तात वयमत्र वसेमहि॥ १५॥
इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन्॥ १६॥

(वा० रा०, अ० कां०, सर्ग ५६)

वाल्मीकीय रामायण के राम-नामक टीकाकार ने इस प्रकरणस्थ अनुपपत्ति को समझाने की चेष्टा की है। वह लिखते हैं—"या तो उस समय वाल्मीकि चित्रकूट में आए होंगे, अथवा प्राचेतस वाल्मीकि न होंगे, वाल्मीकि-नामक अन्य कोई मुनि होंगे।" परंतु यह ठीक नहीं। अध्यात्म-रामायण भी बहुत प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। उसमें प्राचेतस वाल्मीकि का ही आश्रम चित्रकूट में माना गया है—

प्रातरुत्थाय यमुनामुत्तीर्य मुनिदारकैः।
कृतप्लवेन मुनिना दृष्टमार्गेण राघवः॥
प्रययौ चित्रकूटाद्रिं वाल्मीकेर्यत्र चाश्रमः।

(अ० रा०, अयो०, ६ सर्ग)

इन प्रमाणों के आधार पर वाल्मीकि मुनि का आश्रम रामचंद्रजी के वनगमन-काल में मार्ग में यमुना से दक्षिण पड़ा था। दूसरा पक्ष यह है कि वाल्मीकि का आश्रम कानपुर के समीप गंगाजी के तट पर (वर्तमान बिठूर-ग्राम) था। बिठूर में ही वाल्मीकि-आश्रम था, यह परंपरा से प्रसिद्ध चली आती है। वाल्मीकीय रामायण में जब सीताजी को निर्वासित करने के लिये लक्ष्मणजी ले गए हैं, तब मार्ग में गोमती-नदी पड़ी है। उसके बाद गंगा-नदी पार करके वाल्मीकि के आश्रम के समीप उन्होंने सीताजी से विदा ली है—

ततो वासमुपागम्य गोमतीतीर आश्रमे।
प्रभाते पुनरुत्थाय सौमित्रिः सूतमब्रवीत्॥
योजयस्व रथं शीघ्रमद्य भागीरथीजलम्।
शिरसा धारयिष्यामि त्र्यम्बक इवौजसा॥
निर्गम्य लक्ष्मणो गङ्गां शुभां नावमुपारुहत्।
गङ्गां संतारयामास लक्ष्मणस्तां समाहितः॥
ततस्तीरमुपागम्य भागीरथ्याः स लक्ष्मणः।
उवाच मैथिलीं वाक्यं प्राञ्जलिर्बाष्पसंवृतः॥
तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम्।
पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथाः शुभे॥
राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुङ्गवः।
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः॥
उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे।

(वा० रा०, उ० कां० अ० ४६-४७)

इसके अतिरिक्त जब शत्रुघ्न लवण राक्षस के नाश-निमित्त मधुपुर जा रहे थे, उस समय वाल्मीकिजी के आश्रम में उन्होंने विश्राम किया था। उसी रात्रि में सीताजी के दो पुत्र हुए थे।

इसी प्रकार जब वह बारह वर्ष बाद राम-दर्शन के लिये अयोध्या लौट रहे थे, तब भी वाल्मीकि के आश्रम में ठहरे थे। इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि अयोध्या से मधुपुर (मथुरा) जाने-आने में, मार्ग में, वाल्मीकि

का आश्रम पड़ता था। चित्रकूट होकर मथुरा जाने का कहीं संकेत नहीं मिलता—

द्विरात्रमन्तरे शूर उष्य राघवनंदनः।
वाल्मीकेराश्रमं पुण्यमगच्छद्वासमत्तमम्॥
भगवन्वस्तुमिच्छामि गुरो कृत्यादिहागतः।
श्वः प्रभाते गमिष्यामि प्रतीचीं दारुणां दिशम्॥
यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत्।
तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम्॥

लौटती बार शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचते हैं—

स गत्वा गणितान् वासान् सप्ताष्टौ रघुनन्दनः।
वाल्मीकाश्रममागत्य वासं चक्रे महायशाः॥
(वा० रा०, उ० कां०)

इस प्रकार वाल्मीकि मुनि के आश्रम के संबंध में विप्रतिपत्ति प्राप्त होती है। संभव है, दोनों ही स्थानों में उनका आश्रम रहा हो—प्रधानतः बिठूरवाले आश्रम में निवास करते रहे हों, और यदा-कदा चित्रकूट में; और रामचंद्रजी के वनगमन-काल में अपने चित्रकूटवाले आश्रम में संयोग-वश रामचंद्रजी को मिल गए हों। आशा है, विद्वान् लोग इस संबंध में विशेष अन्वेषण करेंगे।

× × ×

१९. अजीर्ण की औषध

एक बार एक राजा ने पूछा—"अजीर्णस्य औषधम् किम्?" उत्तर मिला—"वमन, विरेचन, निद्रा, वारि।" इनके साथ ही उपवास को भी शामिल कर यदि देखा जाय, तो इनसे सस्ती और आसान औषध अजीर्ण की नहीं मिलेगी। किंतु इन सस्ती औषधों पर लक्ष्य ही कौन करता है। डॉ० विलियम वालश ने अपने एक लेख में कहा है कि आजकल सैकड़े पीछे २० मनुष्य अजीर्ण-रोग से पीड़ित हैं। देशी-विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में अजीर्ण-रोग की दवाओं के विज्ञापनों की संख्या का कुछ शुमार नहीं है।

अजीर्ण प्रायः सभी बीमारियों की जड़ है। अजीर्ण से होनेवाली बीमारियों के यदि केवल नाम ही लिखे जायँ, तो एक पुस्तक तैयार हो जाय। जो लोग स्फूर्तिशील जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें अजीर्ण-रोग होता ही नहीं। किंतु जो लोग सुस्त रहते हैं, जिनके जीवन में किसी प्रकार की चंचलता नहीं रहती, उनमें सैकड़े पीछे नव्वे मनुष्य इस बीमारी के शिकार बने रहते हैं।

अजीर्ण की एक औषध कसरत भी है। कसरत करने से रक्त जल्दी-जल्दी चलने लगता है, भूक बढ़ती है, त्वचा साफ़ होती है, गुर्दा विकार-रहित हो जाता है, मस्तिष्क साफ़ होता है, सारे शरीर का स्वास्थ्य उन्नत होता है। कसरत से पेट की पेशियाँ मज़बूत होती हैं, लीवर कार्य-शील बन जाता है, आँत भोजन को जल्दी पचा सकती है। जो लोग अधिक श्रमवाली कसरत करना पसंद नहीं करते, उनके लिये कई आसान कसरतें निकाली गई हैं। प्रति दिन इन कसरतों को केवल पंद्रह मिनट करने ही से अजीर्ण पास नहीं फटक सकता। कितने ही मनुष्य इससे भी अधिक समय को यों ही गँवा दिया करते हैं। खुली हवा में दस मिनट कसरत करना घर में आधे घंटे कसरत करने के बराबर है। नाव खेना, तैरना, घोड़े या पहाड़ पर चढ़ना, ज़ोरों से एक-दो मील टहलना आदि कसरतें अजीर्ण में हितकारी हैं। जो लोग ऑफ़िस में काम करते हैं, उनके लिये टहलने से अच्छी दूसरी कसरत हो ही नहीं सकती।

यदि आप घर से बाहर कसरत के लिये नहीं निकल सकते, तो घर ही में कसरत कीजिए। गहरी साँस लेना बड़ा ही लाभकारी है। प्रति दिन सुबह किसी खुली हुई खिड़की या द्वार के पास खड़े होकर बीस लंबी-लंबी साँसें धीरे-धीरे लो, और धीरे-ही-धीरे छोड़ो। जल्दी-जल्दी साँस लेने और छोड़ने से फ़ायदा न होगा। उँगली से नाक का एक छेद बंद कर, खुले हुए नाक के छेद से धीरे-धीरे साँस लो, फिर दूसरे नाक के छेद को बंद कर पहले छेद से हवा को बाहर निकालो। इसके अलावा और भी चार हलकी कसरतों का ज़िक्र किया जाता है। वे भी अजीर्ण के लिये हितकर हैं। उन्हें सुबह और शाम, जब पेट ख़ाली हो, करना चाहिए। यदि आप मोटे हो गए हैं, और पतले होना चाहते हैं, तो भी ये कसरतें आपको फ़ायदा पहुँचावेंगी। जो लोग दुबले-पतले तथा बहुत कमज़ोर हैं, वे इन कसरतों से लाभ उठा सकेंगे। ये हलकी हैं, इसलिये सभी अवस्था के मनुष्य इन्हें कर सकते हैं।

कसरत नं० १—बिछौने या ज़मीन पर पैर फैलाकर चित्त लेट रहिए। दहने घुटने को उठाकर छाती से सटाइए। फिर उसे फैला दीजिए। अब बाएँ घुटने से भी इसी प्रकार कसरत कीजिए। कसरत करते समय सिर और कंधा ज़मीन से उठना न चाहिए। प्रत्येक पैर से बीस या तीस बार कसरत करनी चाहिए।

कसरत नं० २—पहली ही अवस्था में दोनों पैरों को एक ही बार उठाकर छाती से लगाइए। पुनः पैर फैला दीजिए। पाँच से शुरू करके बीस बार तक ऐसा कीजिए।
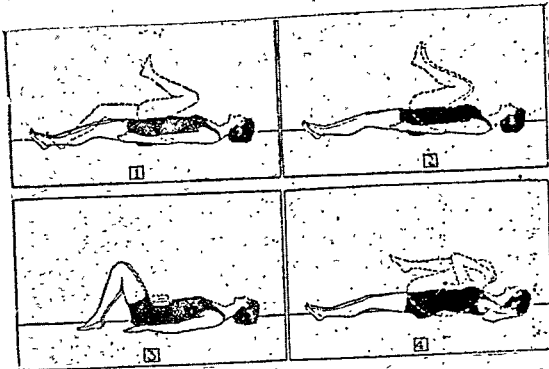
कसरत के चार तरीक़े

कसरत नं० ३—चित्त होकर लेटिए, और पैरों को समेट लीजिए (जैसा चित्र में दिखाया गया है)। पेट पर एक भारी पुस्तक रखिए, और पेट की नसों को फैलाकर तथा सिकोड़कर (साँस लेकर नहीं) पुस्तक को नीचे-ऊपर कीजिए। इस प्रकार १००-२० बार कीजिए।

कसरत नं० ४—पैर फैलाकर लेटिए। सिर के नीचे दोनों हाथ रखिए। हाथ की सहायता से सिर को उठाकर और दहने घुटने को समेटकर गाल छूने की चेष्टा कीजिए। इसी प्रकार बाएँ घुटने से कीजिए।

आशा है, इन कसरतों द्वारा पाठक लाभ उठावेंगे।

× × ×

२०. आवश्यक सूचना

माधुरी का प्रकाशन प्रारंभ करके प्रायः १३-१४ महीने तक हम लोग उसे बिलकुल ठीक वक़्त पर ही निकालते रहे। उसकी इस विशेषता से हिंदी-प्रेमी बहुत संतुष्ट रहे, और इसीलिये उसकी ग्राहक-संख्या धड़ाधड़ बढ़ती गई। लेकिन, खेद है, परसाल गोमती में विकट बाढ़ आ जाने के कारण माधुरी जो एक बार पिछड़ गई, तो फिर अभी तक देर करके ही निकलती रही—सब प्रकार के साधन मौजूद होते हुए भी प्रेस, कार्य-बाहुल्य के कारण, इस शिकायत को दूर न कर सका। अस्तु। अब माधुरी के प्रेमी पाठकों और अनुग्राहक ग्राहकों को यह सूचना देते हुए हमें हर्ष होता है कि माधुरी की यह संख्या निश्चित तिथि* पर ही निकल रही है, और भविष्य में भी माधुरी के समय पर निकलते रहने का प्रेस ने पूर्ण प्रबंध कर दिया है। आशा है, अब इस संबंध में भी माधुरी से शिकायत का कोई मौक़ा न आवेगा।

इस संख्या से माधुरी के टाइप भी बदलकर नए कर दिए गए हैं। इससे छपाई और भी सुंदर एवं शुद्ध हुई है। अगर हिंदी-भाषा-भाषियों की ऐसी ही कृपा बनी रही, तो भविष्य में माधुरी को और उन्नत करने की चेष्टा की जायगी।

× × ×

२१. पृथ्वी के गर्भ में क्या है?

वैज्ञानिक इस विषय की खोज में बहुत दिनों से लगे हुए हैं कि पृथ्वी के गर्भ में क्या है? अब तक निश्चित रूप से कोई कुछ नहीं कह सका। अनुमान ही पर सब कोई सब बातें कह रहे हैं। सबसे आधुनिक सिद्धांत पहले के सभी सिद्धांतों से भिन्न है। डॉ० ई० डी० विलियमसन तथा डॉ० एल्० एच० ऐडमसन ने भूकंप के कारणों पर विचार करते समय पता लगाया है कि पृथ्वी के भीतर सोना, प्लैटिनम तथा लोहे-से भारी पदार्थ हैं। इसीलिये शायद पृथ्वी को हिरण्य-गर्भा कहते हैं। इन पदार्थों के चारों ओर २,००० मील की गोलाई में लोहा और लोहा-निकेल की मिश्रित धातु है। इसके ऊपर लोहे और पत्थर का एक परत पड़ा हुआ है। इसे १०० मील मोटी पत्थर का एक सतह घेरती है। सबसे ऊपर कड़े पत्थर (Granite) की एक सतह ३२ मील मोटी है, जिस पर पृथ्वी के मनुष्य—जिनकी संख्या प्रायः १, ६ ६, ६ ०, ० ०, ० ० ० है—रहते हैं।

* इस संख्या को प्रेस ने केवल ५ दिन में छापा है।
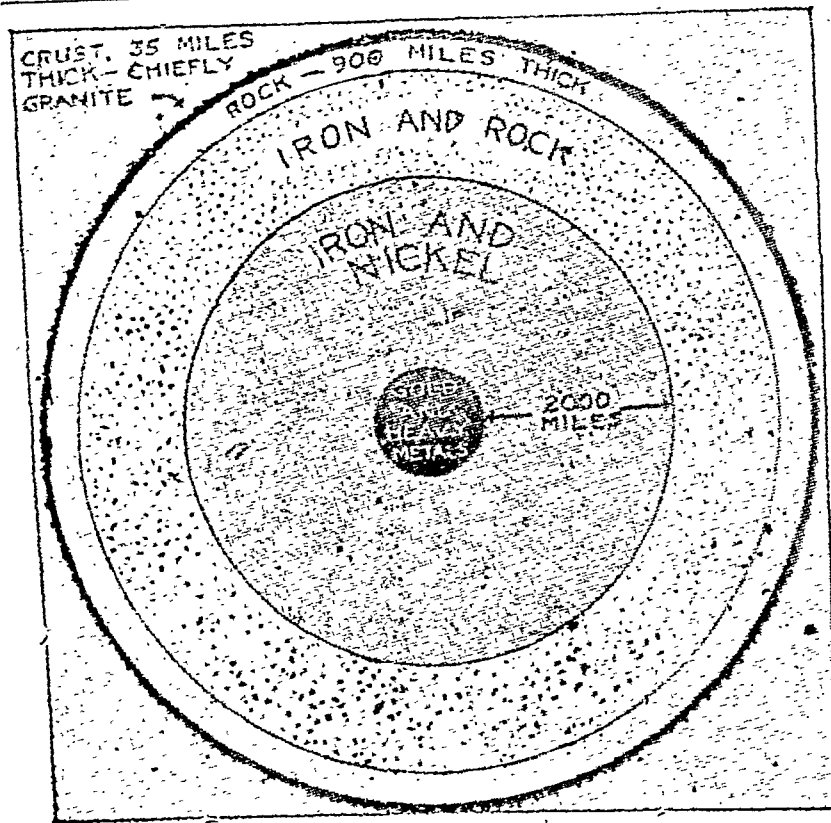
पृथ्वी के गर्भ का दृश्य

२२. मनुष्य के हृदय की परीक्षा

हृदय मनुष्य-शरीर का एक प्रधान अंग है। हृदय की बीमारी एक ऐसी बीमारी है, जिसका ठीक-ठीक निर्णय करना कोई आसान काम नहीं है। सभी जानते हैं कि हृदय शरीर के भीतर रहता है। ऊपरी परीक्षाओं द्वारा हृदय के कार्य का ठीक पता नहीं लग सकता। ब्रिटिश जातीय अस्पताल में एक्स-किरण के पटोग्राफ़-यंत्र के द्वारा हृदय के रोगों की परीक्षा की जाती है। इस यंत्र को "Orthodia-graph" कहते हैं।

इस यंत्र के द्वारा डॉक्टर हृदय की परीक्षा करते हैं, और उसी समय पैंटोग्राफ़ रोगी के हृदय की गति को एक काग़ज़ पर अंकित करता जाता है। इस चित्र को देखकर तथा हृदय की अवस्था का पता लगाकर डॉक्टर दवा की व्यवस्था करता है।

× × ×

२३. क्या सूर्य ठंडे हो रहे हैं?

डॉक्टर ऐवट नाम के प्रसिद्ध ज्योतिषी का कहना है कि सूर्य की गरमी पहले से तीन-चार डिग्री कम पृथ्वी पर आती है। पृथ्वी की ऋतु कई वर्षों तक जल्दी-जल्दी बदलती रही है, इसी से ऐसा होता रहा। नहीं कहा जा सकता कि सूर्य ही की गरमी कम हो रही है, या पृथ्वी की ऋतु उसका कारण है।
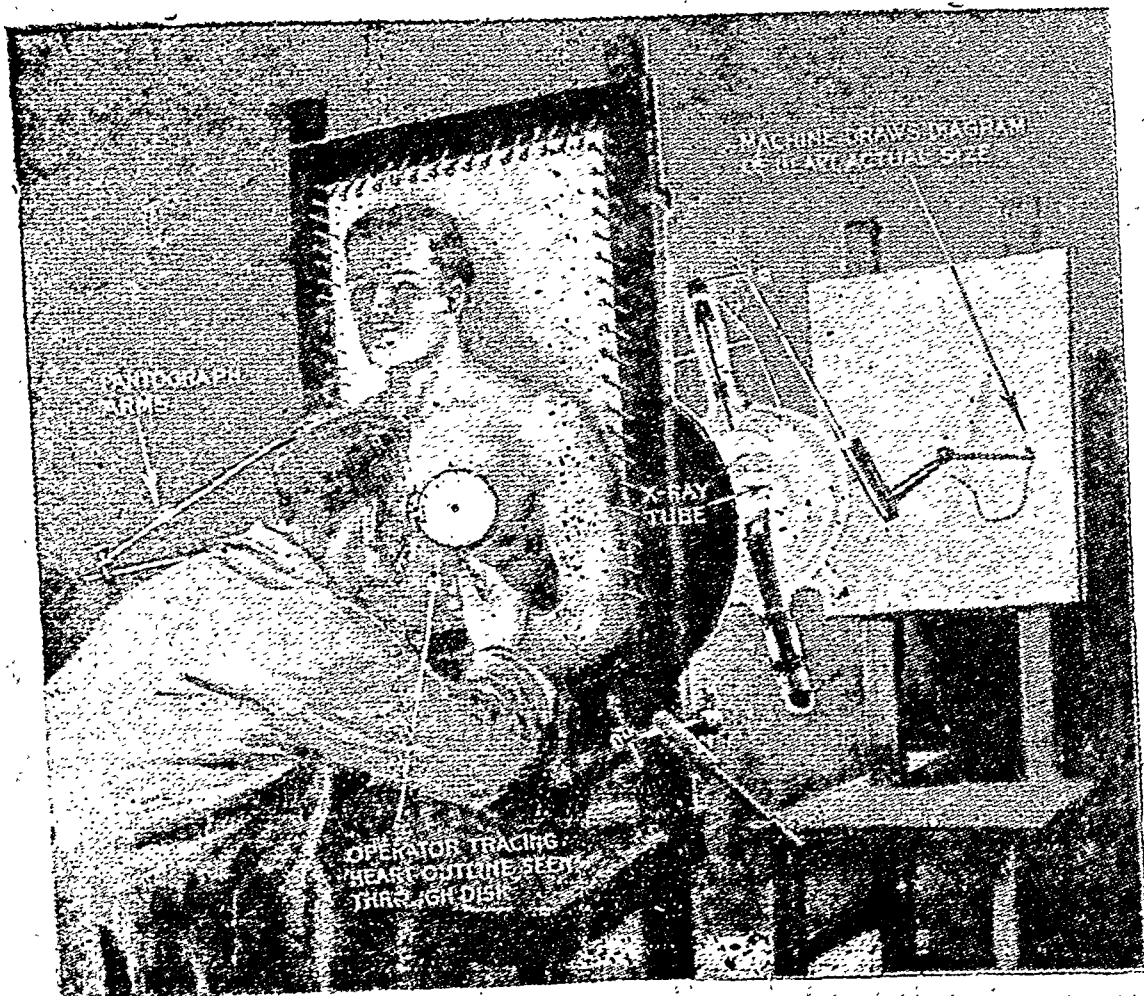
आर्थोडियोग्राफ के द्वारा हृदय की परीक्षा

× ×

१. रंगीन

पहले चित्र का नाम है "ग्राम-कुटीर"। देखिए तो, इस चित्र में चित्रकार की कल्पना ने क़लम के द्वारा कैसी करामात दिखाई है! ग्राम के आसपास हरे-भरे फूले-फले वृक्षों का झुरमुट है, और उसी के एक एकांत शांत स्थान में एक कुटीर। स्थान की शांति आँखों के आगे आकर उन्हें शीतल, मुग्ध बना देती है। इस एक अंश से ही ग्रामों की शांति-विषयक विशेषता स्पष्ट हो गई है। बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में भी बहुत ही चतुर मालूम पड़ते हैं। आशा है, भविष्य में भी वह कभी-कभी माधुरी के लिये ऐसे ही चित्र बनाने की कृपा करेंगे।

दूसरा चित्र "संगीत-सुता" श्रीयुत एम्० ए० रहमान चग़ताई की क़लम की करामात है। आप भारतवर्ष के एक सुप्रसिद्ध चित्रकार हैं। आपका चित्रांकण-कौशल दर्शनीय है। माधुरी पर आपकी यह विशेष कृपा है, जो समय-समय पर आप उसके लिये चित्र भेजते और भिजवाते रहते हैं।

तीसरा चित्र "गुरुजी प्रणाम" भी माधुरी के पाठकों के सुपरिचित बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा की ही कारीगरी है। चित्र का भाव बिलकुल स्पष्ट है। उस पर कुछ लिखना फ़िज़ूल है। भगवान् ऐसे छद्मवेषधारी गुरुओं से भारतवर्ष को बचावे।

र्ष ३ ; खंड १]　　मार्गशीर्ष, ३०१ तुलसी-संवत　　[संख्या ५ ; [illegible] संख्या २९

संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥)　　छमाही मूल्य ३॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ३ खंड १	मार्गशीर्ष-शुक्ल ७, ३०१ तुलसी-संवत् (१९८१ वि०)— ३ दिसंबर, १९२४ ई०	संख्या ५ पूर्ण संख्या २९

तुलसी की कविता

बिसद बिबेकी बर संत हंस-बंसनि कौं
  महिमा महान मंजु मानसरवर की;
कहै "रतनाकर" रसिक कवि भक्त काज
  राम-सुधा-सींची साख देव-तरवर की।
भव-भय-भूत-भीति निखिल निवारन कौं
  जंत्र-मंत्र-पाटी लिखी सिद्ध-कर वर की;
दास तुलसी की कल कबिता पुनीत लसै
  जग-हित हेत नीकी नीति नरवर की।

"रत्नाकर"

बाल-रवि

उदधि-मंथन से अभी निकला हुआ,
क्या सुधा का कलश शोभा पा रहा ?
देव- दानव- वृंद- कर- संघर्ष से,
जो प्रभा क्षिति पर क्षितिज पर छा रहा।
दानवों के रक्त से सींचा हुआ,
विष्णु का या चक्र नभ में सोहता ?
दिग्वधू के भाल पर सौभाग्य का,
बिंदु या सिंदूरमय मन मोहता ?
भित्ति-संधि-स्थान से या पूर्व के,
स्वर्ग की न्यारी झलक झाँकी गई।
देवतों की दिव्य दीप्ति दिगंत से,
फैलती फिरती नभस्थल में नई।
विश्व के साम्राज्य से मद-मत्त हो,
शलभ-सा था मदन जिसमें जल मरा,
प्रलय करने के लिये फैला हुआ,
नेत्र है या शंभु का वह तीसरा ?
शेष की फण-मणि धरा को फोड़कर;
विश्व में आलोक या फैला रही ?
फण सहस्रों के घने फूत्कार की—
दाह से नव कांति यह दिखला रही।

भूपनारायण दीक्षित

नागरी-वर्णमाला की वैज्ञानिकता

मनुष्य की सार्थक ध्वनियों के उन निश्चित चिह्नों के विशेष समूह का नाम वर्णमाला है, जिनके द्वारा वह अपने हृद्-गत विचारों को लिपि-बद्ध कर सकता है। उक्त वाक्य से वर्णमाला की परिभाषा के विषय में ठीक वही ज्ञान होता है, जो उस अवस्था में भी होता, जब मैं यही भाव अपने शब्दों द्वारा (बोलकर) प्रकट करता। इसका कारण यह है कि उक्त वाक्य में क्रम से वे ही चिह्न दिए हुए हैं, जो उस भाव के उच्चारणार्थ आवश्यक शब्दों के लिये निश्चित हैं। ध्वनियाँ सार्थक हों या निरर्थक, कंठ के स्पंदनीय भाग से ही उत्पन्न होती हैं। किंतु इस उत्पत्ति-स्थान के अतिरिक्त भी कुछ शारीरिक अवयव ऐसे हैं, जिनकी सहायता लगभग समस्त ध्वनियों की उत्पत्ति में आवश्यक है। वे हैं तालु, मूर्द्धा, दंत और ओष्ठ। सानुनासिक ध्वनियाँ उनके स्पंदन अर्थात् कंपों को नासिका की राह से निकलने के कारण उत्पन्न होती हैं। अतएव इससे यह न समझ लेना चाहिए कि नासिका भी एक सहायक अवयव है; क्योंकि वे ध्वनियाँ भी, जो मूल ही से सानुनासिक नहीं हैं, उनके भी कंप यदि सीधे मुँह से न निकलकर नासिका के द्वारा निकले जायँ, तो सानुनासिक हो सकती हैं। उदाहरणार्थ 'ज' चिह्न के द्वारा बोधित होनेवाली ध्वनि के कंप मुँह के मार्ग से न निकाले जाकर यदि नासिका के मार्ग से निकाले जायँ, तो उसका उच्चारण वह होगा, जो 'जँ' चिह्न के पढ़ने पर होता है। किंतु यह ध्यान रहे कि इस अवस्था में सहायक अवयव तालु ही है, जिसके द्वारा 'ज' ध्वनि भी उच्चारित होती है। अतएव ध्वनि का सहायक उच्चारण-स्थान, उसके सानुनासिक कर देने पर भी, नहीं बदलता। नासिका, ध्वनियों के कंपों के बाहर आने के कारण, केवल मार्ग का कार्य करती है। इसलिये वह सहायक उच्चारण स्थानों के अंतर्गत नहीं है। अनेक ऐसी ध्वनियाँ भी हैं, जो एकसाथ दो अथवा उससे अधिक शारीरिक अवयवों की सहायता से उच्चरित होती हैं, जैसे 'व' चिह्न द्वारा निश्चित ध्वनि दंत और ओष्ठ की सहायता से।

ध्वनि और उसके उच्चारण-स्थान के संबंध की यह छोटी-सी प्रस्तावना यहाँ इसलिये दी गई है कि उससे इस लेख का यथार्थ विषय समझने में सुगमता हो। नागरी-वर्णमाला की वैज्ञानिकता सिद्ध करने के लिये मैं दो मार्गों का सहारा लूँगा—एक वर्णमाला का वैज्ञानिक निरीक्षण, और दूसरा, अपनी बुद्धि के अनुसार, उसके इस रूप में आने तक का वैज्ञानिक क्रम-निश्चय।

हमारे ऋषियों ने संस्कृत-वाणी के लिये जो वर्णमाला संस्कृत और निर्द्धारित की थी, वही आज भी हमारी वर्णमाला है। अतएव नागरी की वर्णमाला ऋषि-प्रणीत है। महर्षियों ने अपने अतुल ज्ञान-बल से इस वर्णमाला का आविष्कार किया होगा। आज उसी वर्णमाला की मुझ-जैसा अल्पज्ञ यह जाँच करने बैठा है कि उसमें कितनी वैज्ञानिकता है! तथापि यदि पूर्ण नहीं, तो थोड़ी-बहुत जो कुछ भी वैज्ञानिकता इस वर्णमाला में निकाल सकूँगा, उसे ही इस लेख के द्वारा मैं, आधुनिक वैज्ञानिक रीति से, प्रकट करने का यत्न करूँगा।

नागरी-वर्णमाला के मुख्य दो विभाग हैं—स्वर और व्यंजन। उनमें स्वर केवल १४ हैं, और व्यंजन ३३। यदि उन स्वरों में मुख्य स्वर देखे जायँ, तो वे केवल ६ निकलेंगे; क्योंकि शेष उन्हीं के दीर्घ रूप हैं। व्यंजन के भी सात विभाग किए गए हैं, जिनमें से प्रथम पाँच पाँचों वर्ग हैं, और शेष दो अंतःस्थ और ऊष्म। इस प्रकार पूर्ण वर्णमाला के छोटे-बड़े कुल आठ विभाग हैं। नागरी-वर्णमाला, उच्चारण-स्थानानुसार, इस प्रकार और विभाजित है—

अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह ··· ···	कंठ्य।
इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, श ···	तालव्य।
ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष ···	मूर्द्धन्य।
लृ, ॡ, त, थ, द, ध, न, ल, स ···	दंत्य।
उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म ··· ···	ओष्ठ्य।
ए, ऐ ··· ··· ··· ···	कंठ्य-तालव्य।
ओ, औ ··· ··· ··· ··· ···	कंठोष्ठ्य।
व ··· ··· ··· ··· ··· ···	दंतोष्ठ्य।

इस स्थान-विभाग के अलावा एक और भी विभाग है। वह है व्यंजनों का वर्ग-भेद। प्रथम २५ व्यंजनों को ५ वर्गों

में विभाजित करके उनके नाम प्रथमाक्षर के अनुसार रख दिए गए हैं। शेष आठ व्यंजनों के दो विभाग चार-चार अक्षरों के किए हैं, जिनके नाम उनके गुण के अनुसार अंतःस्थ और ऊष्म रक्खे गए हैं। इस प्रकार—

क, ख, ग, घ, ङ—कवर्ग; च, छ, ज, झ, ञ—चवर्ग; ट, ठ, ड, ढ, ण—टवर्ग; त, थ, द, ध, न—तवर्ग; प, फ, ब, भ, म—पवर्ग; एवं य, र, ल, व—अंतःस्थ और श, ष, स, ह—ऊष्म हैं।

वर्ग-विभाग को स्मरण रखकर स्थान-विभाग पर दृष्टि डालने से आपको ज्ञात होगा कि प्रत्येक वर्ग के पूरे पाँच अक्षरों का उच्चारण एक ही स्थान से होता है। और, यह भी मालूम होगा कि इन वर्गों के स्थान मूल हैं, मिश्रित नहीं। अर्थात् पाँचों (क्रम से, कंठ, तालु, मूर्द्धा, दंत और ओष्ठ) मूल-स्थानों (अवयवों) में से प्रत्येक की सहायता से पाँच-पाँच अक्षरों के एक-एक वर्ग का उच्चारण होता है। अथवा यों कहिए कि प्रत्येक वर्ग केवल एक ही अवयव की सहायता से उच्चरित होता है। अब शेष व्यंजनों—अंतःस्थ और ऊष्माक्षरों—के स्थान-विभाग की ओर देखिए। आपको पता चलेगा कि ये भी लगभग एक निश्चित नियम के अनुसार ही विभाजित हैं। अंतःस्थ के अक्षर य, र, ल, व को ले लीजिए। इनमें 'य' का जो उच्चारण-स्थान है, उसके बाद का स्थान 'र' का और उसके बाद का 'ल' का है। ऊष्म के भी प्रथम तीन अक्षरों के क्रम से ये ही उच्चारण-स्थान हैं। रहे अंतःस्थ और ऊष्म के दो अंतिमाक्षर; सो उनमें अवश्य कुछ उच्छृंखलता प्रतीत होती है। नियमानुसार तो 'व' और 'ह' को केवल ओष्ठ-स्थान ग्रहण करना चाहिए था; किंतु 'व', 'ह' नियम क्या जानें। फिर भी बेचारा 'व' तो इसलिये पूर्ण दोषी नहीं है; क्योंकि आपके उच्चारण-स्थान में ओष्ठ उपस्थित ही है। रहा 'ह', सो हः हः हः! लेखक की इस उपेक्षा पर कुछ विज्ञ पाठक अवश्य क्रुद्ध होंगे, और संभव है, वे इसको अवैज्ञानिक (unscientific) समझें। किंतु आगे चलकर क्रम-निश्चय में मैं यह बतलाऊँगा कि 'व' और 'ह' को वैज्ञानिक रीति पर ये स्थान क्यों ग्रहण करने पड़े। अस्तु।

आइए, अब वर्णमाला के शेष अक्षरों (स्वरों) के स्थान-विभाग के क्रम की ओर लक्ष्य करें। वर्गों के स्थान-क्रमानुसार अ, आ; इ, ई; ऋ, ॠ; लृ, ॡ; उ, ऊ; ए, ऐ; और ओ, औ के उच्चारण-स्थान उसी क्रम से हैं, जिस क्रम से पाठशालाओं में स्वर सिखलाए जाते हैं। उसमें और इस क्रम में केवल तीसरे और पाँचवें स्थान का ही अंतर पड़ता है। उसके अनुसार उ, ऊ के उच्चारण-स्थान के पश्चात् ऋ, ॠ और लृ, ॡ के उच्चारण-स्थान होने चाहिए थे। किंतु ऐसा नहीं हो सकता। अतएव उक्त क्रम से ही स्वर पढ़ाए जायँ, तो कोई हानि नहीं।

अब उच्चारण-स्थानों के क्रम की वैज्ञानिकता भी देखिए। इन अवयवों का क्रम बिलकुल वैज्ञानिक है। ध्वनि की उत्पत्ति में सहायक, शरीर के सबसे भीतर का अवयव कंठ ही है। पेट की उचित क्रियाओं द्वारा जब वायु ऊपर की ओर आती है, तब उसे जो प्रथम अवयव मिलता है, वह कंठ ही है। इसलिये कंठ्य अक्षरों का (स्वर के प्रथम दो अक्षर और प्रथम वर्ग का समूह) स्थान प्रथम है। यहाँ से स्पंदन आगे बढ़ता है; और इसी क्रिया में जब जीभ इन स्पंदनों को तालु के द्वारा विशेष स्वरूप देती है, तो उच्चारण तालव्य हो जाते हैं। शरीर के भीतर से बाहर की दिशा में कंठ के बाद तालु का दूसरा स्थान है। इसलिये स्वर के दूसरे दो अक्षरों और दूसरे वर्ग के समूह को दूसरा स्थान (तालव्य) दिया गया। ठीक इसी प्रकार तालु के बाद का स्थान मूर्द्धा है, और मूर्द्धा के बाद क्रम से दंत और ओष्ठ।

अब आइए, इन अक्षरों की आकृति में वैज्ञानिकता ढूँढें। जब उच्चारण के अनुसार इनके इतने विभाग किए गए हैं, अथवा जब वर्णमाला के प्रणेताओं का इतना विभाग वैज्ञानिक है, तो पूर्ण आशा होती है कि उन्होंने इन स्थान-क्रमानुकूल उच्चरित होनेवाली ध्वनियों की आकृतियों में भी कोई वैज्ञानिकता अवश्य रक्खी होगी। वास्तव में ऐसा है भी। किंतु इससे प्रथम 'आकृति' के विषय में कुछ जान लेना आवश्यक है। आकृति का अर्थ यहाँ पर सार्थक शब्दों के काम में आनेवाली ध्वनियों के निश्चित चिह्नों की बनावट है। अतएव, जब इन ध्वनियों के उच्चारण की दृष्टि से इनके उक्त विभाग कर दिए गए हैं, तो यह आवश्यक ही है कि प्रत्येक स्थान की ध्वनियों की आकृतियाँ भिन्न-भिन्न हों, और एक ही उच्चारण-स्थान द्वारा उत्पन्न ध्वनियों की आकृतियों में कुछ-न-कुछ समता रहे। दूसरी बात इनके उपयोग से संबंध रखती है। इनका उपयोग या तो इनके द्वारा अपने

भावों को लिपि-बद्ध करना होता है, और या लिपि-बद्ध भावों को इनकी सहायता से पढ़कर समझना। इसलिये यह आवश्यक ही है कि ये आकृतियाँ एक दूसरी से बिलकुल भिन्न हों, और भेद प्रत्यक्ष हो; इतना सूक्ष्म भेद न हो कि जिससे दृष्टि-दोष के कारण कुछ-का-कुछ पढ़ लिया जाय। उर्दू-अक्षरों में यह गुण नहीं है। उन अक्षरों में भेद बहुत ही सूक्ष्म (केवल बिंदुओं का ही) रक्खा जाता है। उर्दू में बिंदुओं की न्यूनाधिकता ही से कुछ-का-कुछ अक्षर बन जाता है। आकृतियों में प्रत्यक्षता के अलावा दूसरा गुण सरलता भी होना आवश्यक है। अँगरेज़ी के *X* अथवा *E* अक्षर की भाँति न होना चाहिए; क्योंकि ऐसे अक्षरों के निश्चित मोड़ों के अभ्यासार्थ ही बालकों को बहुत समय लगाना पड़ता है। तीसरे, आकृतियाँ ऐसी होनी चाहिए कि उनका उपयोग लिखने और पढ़ने (छापने), दोनों ही में सरलता से हो सके। इसके लिये प्रत्येक चिह्न इतना मुख़्तसर—छोटा और सरल—बनना चाहिए कि उसके लिखने में न तो देर लगे, और न अधिक स्थान ही ख़र्च हो। यदि सरल और थोड़ा ही स्थान घेरनेवाले चिह्न निश्चित हों, तो उनके उपयोग से थोड़े ही काग़ज़ पर अधिक मात्रा में विचार लिखे व छापे जा सकते हैं, और उनका सीखना भी सहज होता है। सौभाग्य से हमारी ऋषि-प्रणीत वर्णमाला में ये तथा और भी गुण पूर्ण रूप से पाए जाते हैं। यही कारण है कि हमको इस नए आविष्कार के ज़माने में भी छापेख़ाने के सुबीते के लिये अँगरेज़ी की तरह अलग ही एक वर्णमाला नहीं बनाना पड़ी। एक भाषा की चार-चार वर्णमालाएँ! कितनी भद्दी बात है!! वर्णमाला की आकृतियाँ देश की अतीत-स्थिति को प्रदर्शित करती हैं; क्योंकि केवल उसी देश की वर्णमाला पूर्ण और सर्वगुणालंकृत हो सकती है, जो इसके निर्माण के समय सबसे अधिक वैज्ञानिक ज्ञान-संपन्न रहा हो। समस्त योरपियन देशों की वर्णमालाओं का हमारी नागरी-वर्णमाला से मुक़ाबला कर देखिए। इस वर्णमाला-जैसी पूर्ण और सर्वगुण-संपन्न, मेरे विचार में तो, एक भी नहीं निकल सकती। तभी तो कहते हैं कि हमारा देश—भारतवर्ष—पूर्व-काल में इनकी अपेक्षा न-जाने कितना अधिक उन्नत एवं वैज्ञानिक ज्ञान-संपन्न था। देखा पाठको, हमारी वर्णमाला पूर्व-काल की आपेक्षिक उन्नति के प्रदर्शन में भली भाँति कितनी सहायक है। इस विचार से हम भी कभी इतने उन्नत रह चुके हैं, जितना कि तब कोई न था। इस वाक्य की सत्यता में बिलकुल संदेह नहीं रह जाता। निस्संदेह और देशों ने तो अभी, हमारे सो जाने पर, होश सँभाला है; और सुप्तावस्था में हमारी जो बची-खुची चीज़ें हमारे आस-पास बिखरी पड़ी रह गई थीं, उन्हीं को देख-देखकर थोड़ा-बहुत ज्ञान-संचय कर लिया है। नहीं तो बतलाइए, इन उन्नत महापुरुषों को गणित किसने सिखलाया? क्या अरबवालों ने? नहीं, इनका गुरु हमारा देश ही है; क्योंकि अरबवालों ने हमसे सीखकर ही उन्हें सिखाया था। यह बात अब सबको स्वीकृत है। इसी भाँति ज्योतिष, रसायन आदि सबके विषय में जानिए। इसमें किंचित् अतिशयोक्ति नहीं। तो भी इस निद्रा ने हमारी बड़ी हानि की है। सोना वही अच्छा, जिससे जागने पर सोने से पूर्व की अवस्था की अपेक्षा अधिक शांत और तीव्र बुद्धि हो। किंतु यह जागना तो, यदि अब भी जाग गए हों, उस पुनः पैदा हुए जीव की अवस्था को पहुँचना है, जिसके समस्त पूर्व-संस्कार नष्ट हो चुके हों। बुद्धिमान् होकर सोए थे, और अब मूर्ख होकर जागे। मूर्खता यहाँ तक बढ़ गई कि अब अपनी ही वस्तुओं को नहीं पहचान पाते। हमारी वर्णमाला भी उन्हीं और वैसी ही वस्तुओं में से एक है। अब हमको स्मरण नहीं कि हमने और हमारे पूर्वजों ने यह वर्णमाला किन-किन वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर बनाई थी। इधर-उधर के लोगों ने हमारी सुप्तावस्था में हमारी वर्णमाला को भी केवल इसीलिये नहीं चुरा लिया; क्योंकि उन्होंने अभी तक उसकी विशेषता और वैज्ञानिकता नहीं समझ पाई है। चोर आया, चोरी भी की; किंतु एक नवीन प्रकार के रत्न को यह समझकर छोड़ गया कि वह कोरा काँच है। यह हमारा सौभाग्य है। अन्यथा विलायती वस्त्र, चूड़ी आदि सामग्री की भाँति आज हमें पूर्ण रूप से विलायती वर्णमाला का भी उपयोग करना पड़ता। हर्ष इस बात का है कि अब भारतीय भी अपने पूर्व-संचित ज्ञान को फिर से जाँचने (Revise) का यत्न कर रहे हैं। इस कार्य में सफलीभूत श्रीजगदीशचंद्र वसु का नाम उल्लेखनीय है। आपने भारतीय पुराना सिद्धांत वैज्ञानिक संसार के सम्मुख सिद्ध करके रख दिया है। अस्तु। अब विषयांतर को छोड़कर आइए, यह देखें कि जो गुण वर्णमाला की आकृतियों में होने

चाहिए, वे हमारी वर्णमाला में कैसे और किस मात्रा में विद्यमान हैं।

पूर्वोल्लिखित आवश्यक विभाग के अनुसार हमारी वर्ण-माला के एक-एक स्थान से उच्चरित होनेवाले अक्षरों की आकृतियाँ भिन्न होने पर भी समान हैं। उदाहरणार्थ चवर्ग को ही लीजिए। चवर्ग संपूर्ण अक्षरों का एक विभाग है, अतएव इसके अक्षरों की आकृतियों में कुछ-कुछ समता अवश्य होनी चाहिए। किंतु आकृतियों का यह ढंग किसी और वर्ग के अक्षरों की आकृतियों के ढंग से बिल-कुल भिन्न होना भी उचित है। देखिए, बात यही है। बतलाइए, क्या च, छ, ज, झ, ञ में समता नहीं है? मेरे विचार से तो प्रत्येक वर्ग के प्रथमाक्षर के लिये जिस चिह्न की आवश्यकता पड़ती है, ठीक वही, लगभग उतना ही, चिह्न उस विभाग और वर्ग के शेष अक्षरों के बनाने के लिये भी पर्याप्त होता है। कहीं-कहीं अधिक चिह्नों की भी आवश्यकता पड़ती है। किंतु कुछ ही। जैसे 'च' के बनाने में जो कुछ किया गया है, यथार्थ में 'ज' के बनाने में भी उसी की आवश्यकता पड़ती है; क्योंकि 'च' का ठीक उलटा 'ज' होता है। अर्थात् 'च' की पाइ (ा) के साथ लगे हुए 'च' चिह्न को उलटकर लगा दें, तो वह 'ज' हो जायगा; क्योंकि च और ज एक दूसरे के उलटे रूप हैं। इस प्रकार 'च' और 'ज' की आकृतियों के ढंग में समता होते हुए भी उनके स्वरूप में स्पष्ट भिन्नता है; और यही आकृतियों का पूर्वोल्लिखित प्रथम आवश्यक गुण है। इन दोनों की आकृतियों में भेद प्रत्यक्ष है। चवर्ग में केवल 'ज' ही 'च' के ढंग का हो, यह बात नहीं है—'छ' 'झ' 'ञ' भी हैं। देखिए, 'छ' में 'च' के च को दो बार लिखकर ६ में केवल एक घुंडी और लगा दी है; जिससे 'छ' सुंदर बन जाय। तब भी कहीं-कहीं तो 'छ' ७-जैसा ही लिखा जाता है। अब इसी प्रकार 'झ' के भागों को देखिए। वे ये हैं—

। स्थानानुकूल (१ और २ द्वारा दिखलाए गए स्थानों में) लगे हुए दो 'ज' ही 'झ' बनाने के लिये पर्याप्त होते हैं। 'ञ' में भी (ञ) दो 'ज' की परिस्थिति पाई जाती है; क्योंकि 'ञ' 'च' के समान ढंग का पहले ही लिखा जा चुका है। इस-लिये संपूर्ण वर्ग (चवर्ग) समान आकृतियों का होने पर भी स्पष्ट रूप से भिन्न ही है।

यह तो हुई चवर्ग की बात। अब टवर्ग को लीजिए। 'ठ', 'ड', 'ढ' और 'ण' में से प्रत्येक में आपको 'ट' की छाया मिलेगी। चवर्ग और टवर्ग में से प्रत्येक के अक्षरों की आकृति में अपना-अपना सादृश्य है; किंतु चवर्ग और टवर्ग के अक्षरों में कोई सादृश्य नहीं। ऐसा ही चाहिए भी। केवल विषय के समझाने में सरलता होने की दृष्टि से ही ये दो वर्ग उदाहरण-स्वरूप यहाँ समझाए गए हैं। पाँचों वर्गों और शेष अन्य विभागों की आकृतियों में भी विभा-गानुकूल सादृश्य अवश्य दिखाया जा सकता है। कवर्ग में 'ख' का स्वरूप विवाद-ग्रस्त है। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन इस पर विचार भी कर चुका है। अतएव यह सिद्ध हो गया कि प्रत्येक विभाग में अक्षरों के स्वरूप का ढंग एक-सा है। इससे क्या बात सिद्ध हुई? यही कि नागरी-वर्ण-माला केवल आठ प्रकार की आकृतियों से विभाजित है। इससे वर्णमाला में एक सरलता और आ गई। वह यह कि ४७ अक्षरों की वर्णमाला सीखनेवाले विद्यार्थी बालक को ४७ प्रकार के चित्र याद न करने पड़ेंगे। उसके स्मृति-पटल पर केवल आठ ही स्वरूप चित्रित होंगे। यह संख्या अधिक नहीं है। यही कारण है कि शिक्षक लोग वर्णमाला पढ़ाते समय प्रत्येक संपूर्ण विभाग अलग-अलग याद करने को देते हैं, जिससे सब अक्षर मिलकर विद्यार्थी बालक के स्मृति-पटल पर केवल एक ही प्रकार का चित्र अंकित कर देते हैं। फिर इसी अंकित चित्र के विश्लेषण से बालक बिना देखे ही उस चित्र से संबंध रखनेवाले विभाग के कुल अक्षरों को लिखने लग जाता है। नागरी-वर्णमाला, अधिक (४७) अक्षरों की होने पर भी, बालकों को शीघ्र याद हो जाने का यही कारण है। यहाँ यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि शीघ्र याद हो जाने का गुण ऋषियों ने इच्छा से ही रक्खा है; क्योंकि यह वे भली भाँति जानते थे कि वर्णमाला बालकों को सिखलाई जायगी, अतएव अत्यंत सरल और सुग्राह्य होनी चाहिए।

प्रत्येक वर्ग के अक्षरों में समता होने से एक लाभ यह भी है कि जो छोटे बच्चे इसको लिखना सीखते हैं, उन्हें किसी वर्ग का प्रथम अक्षर लिखना सीख लेने से उसी वर्ग के और-और अक्षरों का लिखना सरल हो जाता है। फिर यदि ये अक्षर कहीं लिखे हुए हों, तो उन्हें देखकर बालक को यह ज्ञान भी तुरंत हो जाता है कि अमुक अक्षर अमुक वर्ग का है। कारण, एक ही वर्ग की आकृ-

तियाँ समान स्वरूप की होती हैं। वर्ग का पता लग जाने के बाद वह केवल उसी वर्ग के अक्षरों (जिनकी संख्या अधिक-से-अधिक ५ होती है) को याद करेगा, और फिर उसके एक-एक अक्षर को मिलाकर शीघ्र ही यह बता देगा कि वह अक्षर कौन-सा है। इसके विपरीत, उसे ४७ अक्षरों को क्रम से याद करके उनमें अभीष्ट अक्षर ढूँढना नहीं पड़ता, और काम भी शीघ्रता से हो जाता है। जो क्रिया वर्णमाला के किसी अक्षर को पहचानने के लिये करनी पड़ती है, ठीक वही किसी पुस्तक को पढ़ने के लिये भी करनी पड़ती है। अतएव जिस वर्णमाला के अक्षरों में अधिक शीघ्रता से पहचाने जाने का जितना अधिक गुण होगा, उतनी ही अधिक शीघ्रता से उसकी पुस्तकें भी पढ़ी जा सकती हैं। पूर्वोल्लिखित प्रथम और द्वितीय गुणों (स्पष्ट भिन्नता और सरलता) का अब तक पूर्ण विवेचन हो चुका। अब शेष गुणों के विषय में लिखते हैं। तीसरे गुण के अनुसार लिखने और छापने की वर्णमाला एक ही होनी चाहिए। सो अभी तक तो इस वर्णमाला के अलावा दूसरी वर्णमाला की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई, और न होगी ही। इसके अक्षरों की बनावट भी इतनी सरल है कि इनके टाइप ढालने में कोई असुविधा नहीं होती। इतने वैज्ञानिक निरीक्षण द्वारा यह पता चलता है कि हमारी वर्णमाला पूर्ण, सुविभाजित, सरल और सुग्राह्य है। संसार में ऐसी सर्वगुण-संपन्न वर्णमाला शायद ही और किसी भाषा की हो। वर्णमाला में यह सर्वगुण-संपन्नता वैज्ञानिकता के आधिक्य के कारण ही जाननी चाहिए।

जैसा कि इस लेख के आरंभ में कह चुका हूँ, अब मैं अपने मत के अनुसार वर्णमाला की उत्पत्ति का क्रम बतलाने का यत्न करूँगा। वर्णमाला की उत्पत्ति पर अब तक कई लेख निकल चुके हैं। संभवतः भाषा में इस विषय पर दो-एक पुस्तकें भी मौजूद हों। पुरानी 'सरस्वती' में भी एक लेखमाला निकल चुकी है। इन लेखों अथवा पुस्तकों के लेखकों ने वर्णमाला की उत्पत्ति के विषय में चाहे जो कुछ लिखा हो, किंतु जब निरीक्षण द्वारा इसकी वैज्ञानिकता में कुछ संदेह नहीं रह जाता, तब विश्वास होता है कि इसकी उत्पत्ति भी वैज्ञानिक क्रम से हुई होगी। पाठक निम्न-लिखित क्रम को देखकर विचार करें कि निश्चय-पूर्वक यही क्रम रहा होगा, या नहीं।

किसी पाश्चात्य विद्वान् ने ठीक ही कहा है "आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है"। इसलिये संसार के आरंभ-काल में जब भारतवर्ष के लोगों को बिना लेखन-पद्धति के कष्ट प्रतीत होने लगा, तब उन्हें वर्णमाला निकालने की सूझी होगी। वैसे तो आरंभ-काल में सभी देशों को यह प्राकृतिक आवश्यकता प्रतीत हुई होगी, और इसीलिये जल्दी या देर में अपने-अपने सुबीते और ज्ञान के अनुसार उन्होंने कुछ चिह्नविशेष—वर्णमाला—निश्चित भी कर लिए होंगे; किंतु बुद्धिमत्ता और वैज्ञानिकता उसी देश की समझी जा सकती है, जिसने उस समय ऐसी सरल, सुग्राह्य और पूर्ण वर्णमाला बना डाली हो, जिसमें फिर किसी प्रकार के सुधार अथवा जोड़ने की कुछ आवश्यकता न पड़ी हो। हमारी वर्णमाला ऐसी ही है। अस्तु। वर्णमाला के आविष्कार की आवश्यकता समझकर उस समय के ऋषि-महर्षियों ने, अपने गंभीर विचार द्वारा, सबसे पहले सार्थक शब्दों के उच्चारण में काम आनेवाली प्रत्येक ध्वनि ढूँढ निकालने का यत्न किया होगा। ऐसी समस्त ध्वनियों को इकट्ठा करना सचमुच अत्यंत कठिन था। किंतु थोड़ी ही खोज करने के बाद उनके ध्यान में यह बात आ गई होगी कि कार्य उतना कठिन नहीं है, जितना कि ऊपर से देखने में जान पड़ता है। बात भी ऐसी ही थी। समझाने के लिये हिंदी-भाषा में उदाहरण देता हूँ। सार्थक ध्वनियों के संकलन के लिये सबसे पहली बात जो ध्यान में आती है, वह व्यावहारिक शब्दों में ध्वनियों का निकालना ही है। "सीताराम"-शब्द से जब ध्वनियाँ निकाली जायँगी, तो उनका प्रथम स्वरूप 'सी', 'ता', 'रा' और 'म' के द्वारा बोध होनेवाली ध्वनियों के द्वारा प्रकट किया जा सकता है। किंतु जब नवीन शब्द "सीर" की ध्वनियों को अलग करेंगे, तो वे होंगी, 'र' और 'सी' ध्वनि। इसी प्रकार "सरौता"-शब्द की ध्वनियाँ होंगी, 'ता', 'स' और 'रौ' (क्रम की कोई आवश्यकता नहीं है)। अब इन्हीं सब ध्वनियों पर विचार करिए। पता चलेगा कि 'सी', 'सो' और 'स' और 'रा', 'रौ' और 'र' ध्वनियों में कितनी पारस्परिक समता है। इतना हो चुकने पर यह पता लगाना कुछ भी कठिन न होगा कि 'सी' और 'सौ' मूल-ध्वनियाँ नहीं हैं। इसी प्रकार 'रौ' और 'रा' को भी समझिए। अब कर्णेंद्रिय द्वारा इन मिश्रणों का पृथक्करण किया जाय, तो यह भी प्रकट हो जायगा कि 'सी', 'स'

ध्वनि के साथ 'औ' ध्वनि के योग (मिश्रण) से और 'रौ' ध्वनि भी 'र' ध्वनि के साथ उसी ध्वनि 'औ' के मिश्रण से बनी है। अतएव मूल-ध्वनियाँ हैं 'स', 'र' और 'औ'। और-और ध्वनियों ('सी', 'री', 'पू' इत्यादि) के पृथक्करण से यह भी पता चल जाता है कि मूल-ध्वनियाँ यही 'स', 'र', 'औ', 'ई', 'ऊ' और 'प' हैं। इस प्रकार संग्रह हुआ 'स', 'र', 'प' और 'औ', 'ई', 'ऊ'। इतना समझ चुकने के बाद यही समझना कि 'स', 'र', 'प' और 'औ', 'ई', 'ऊ', ये तीन-तीन अलग-अलग प्रकार की ध्वनियाँ हैं, रह जाता है, और कुछ नहीं। स्पष्ट ही है कि 'औ', 'ई', 'ऊ', ये ध्वनियाँ किन्हीं और ध्वनियों ('स', 'र', 'प', 'क', 'ल', 'म' इत्यादि) में से प्रत्येक के साथ मिश्रित की जा सकती हैं। अतएव ये मिश्रण के काम में आनेवाली ध्वनियाँ हुईं; और पीछे की ध्वनियाँ वे हुईं, जिनके साथ उनका मिश्रण बनाया जाता है। नमक, शक्कर और गंधक, जो क्रम से पानी और कार्बन बाई सल्फ़ाइड (Carbon by sulphide) में घुल जाते हैं। घुलनेवाले पदार्थ (Soluble substances) कहलाते हैं, और वे घोलनेवाले (Salvent)। घुलने का स्वभाव और घोलने की शक्ति, ये दोनों भिन्न गुण माने गए हैं। अतएव 'औ', 'ई', 'ऊ' और 'र', 'स' इत्यादि भिन्न-भिन्न गुण के हुए। पूर्वोल्लिखित रीति से यदि पृथक्करण के लिये व्यावहारिक शब्दों की कोई भी ध्वनि न छोड़ी जाय, तो पूर्ण आशा है कि घोलनेवाली (मिलानेवाली) ध्वनियाँ 'अ', 'आ', 'इ', 'ई', 'उ', 'ऊ' और 'अं', 'अः', इन ध्वनियों से न एक कम मिलेंगी, न अधिक। ऋषियों ने यही महत् कार्य संपादित किया है। सचमुच इतनी मूल-ध्वनियों को, जिनसे अधिक व्यवहार में आती ही न हों, निकालकर याद कर लेना बड़ा कठिन कार्य है; किंतु असंभव नहीं है। अतएव हम मानते हैं कि ऋषियों ने इसी रीति पर "घोलनेवाले" और "घुलनेवाले" पदार्थों के गुण की संपूर्ण ध्वनियाँ निकाल ली थीं। वे ध्वनियाँ वैसे दो विभागों के अनुसार ये ही होनी चाहिए थीं—अ, आ, इ, ई, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, और क, ख, ग, घ, ङ; च, छ, ज, झ, ञ; ट, ठ, ड, ढ, ण; त, थ, द, ध, न; प, फ, ब, भ, म; य, र, ल, व; श, ष, स, ह। प्रथम १६ या १४ (इसका कारण आगे दिया जायगा कि १४ ही क्यों, १६ क्यों नहीं) ध्वनियाँ 'स्वर' कहलाईं। कारण, इनमें से किसी के साथ और मूल-ध्वनियों को मिला दें, तो उस मूल-ध्वनि का स्वर बदल जाता है। यथा 'म' + 'ऊ'='मू' ध्वनि इत्यादि। यहाँ समझने की बात यही है कि 'म' का उच्चारण म + ऊ = मू हुआ, न कि ऊ का उच्चारण (म+ऊ=) मू हुआ है। और-और संपूर्ण ध्वनियों से मिलकर उनके स्वर को बदलनेवाली प्रथम १४ ध्वनियाँ अपने गुण के अनुसार स्वर, और अन्य ध्वनियों के साथ मिलाए जानेवाले व्यंजन (Objects) अर्थात् अंतिम तेंतीस ध्वनियाँ व्यंजन कहलाईं। यहाँ यह लिख देना उचित जान पड़ता है कि इस क्रिया तक इन ध्वनियों के कोई चिह्न निश्चित नहीं किए गए थे, अतएव आविष्कारक ऋषि-महर्षियों को इन्हें मुँह-ज़बानी ही याद करना पड़ा होगा। आगे की क्रियाएँ भी याद करके ही करनी पड़ी होंगी; क्योंकि आकृति-निश्चय अभी बहुत दूर है। अस्तु। इन संकलित ध्वनियों की वैज्ञानिक परीक्षा करने के लिये जो बात सबसे प्रथम बुद्धि में आती है, वह है इनके उत्पत्ति-स्थान के विषय में। अतएव विचार-पूर्वक संपूर्ण संकलित ध्वनियों के उत्पत्ति-स्थान निश्चित कर चुकने के पश्चात् ऋषियों ने इन्हें स्थानानुसार विभाग में याद किया होगा। पिछले कथन में कोई भी शंका नहीं हो सकती; क्योंकि विज्ञान का अर्थ ही किसी विषय का क्रम और नियमानुकूल विचार है। निस्संदेह उनका ध्वनि-विभाग-क्रम इस प्रकार रहा होगा—

ध्वनियाँ, जो पीछे इन चिह्नों के द्वारा प्रकट की गईं	ध्वनियों के उच्चारण-स्थान
अ, आ; क, ख, ग, घ, ङ; ह	कंठ
इ, ई; च, छ, ज, झ, ञ; य, श	तालु
ऋ, ॠ; ट, ठ, ड, ढ, ण; र, ष	मूर्द्धा
ऌ, ॡ; त, थ, द, ध, न; ल, स	दंत
उ, ऊ; प, फ, ब, भ, म	ओष्ठ
ए, ऐ	कंठ और तालु
ओ, औ	कंठ और ओष्ठ
व	दंत और ओष्ठ

यहाँ पर कई प्रश्न उठ सकते हैं। इसका क्या प्रमाण है कि ऋषियों ने भी ये स्थानानुकूल विभाग ठीक इसी क्रम से याद किए होंगे, जो ऊपर दिया हुआ है? कंठ-

स्थान से उच्चरित ध्वनियों का क्रमानुसार प्रथम स्थान ही क्यों है ? अंतिम क्यों नहीं ? क्या कोई और दूसरा क्रम नहीं हो सकता ? इन सब प्रश्नों का उत्तर पहले ही दे दिया गया है। स्थानों के क्रम बदले जा सकते हैं; किंतु और किसी क्रम में वह वैज्ञानिकता नहीं रहेगी, जो इसमें है। वैज्ञानिकता उचित क्रम से जमाने ही में है। शब्द-कंपन जब शरीर के भीतर की ओर से बाहर आते हैं, तब उन्हें जो पहला स्थान मिलता है, वह कंठ ही है। इसी विचार से तालु, मूर्द्धा इत्यादि के दूसरे, तीसरे आदि स्थान हैं। यह क्रम यहाँ तक वैज्ञानिक है कि ए, ऐ; ओ, औ; और व भी अपने-अपने उचित स्थान ही पर हैं। इसके पश्चात् ऋषियों ने स्वर-ध्वनियों को छोड़कर (क्योंकि अब आगे व्यंजनों के ही विभाग करने हैं। स्वर इतने अधिक नहीं हैं कि उनके विभाग की आवश्यकता पड़ती) शेष ध्वनियों को उनके उच्चारण-स्थानानुसार विभाग में देखा, तो व्यंजनों की अधिक-से-अधिक पाँच-पाँच ध्वनियाँ प्रत्येक मूल-स्थान में पाईं। फलतः उन्होंने यह सोच लिया कि किन्हीं पाँच ध्वनियों का एक-एक विभाग बन सकता है। किंतु ऐसा करने पर कोई-न-कोई ८ ध्वनियाँ (यथा ५×५ मूल-स्थान=२५ व्यंजन, ३३–२५=८) बच रहती हैं। ऋषियों ने सोचा, विभिन्न उच्चारण-स्थानवाली इन किन्हीं ८ ध्वनियों का अलग विभाग करना पड़ेगा। इसलिये ये आठ ध्वनियाँ यदि किन्हीं अन्य गुणों में समान हों, तो बहुत अच्छा हो। विचार और निरीक्षण से उन्हें इन ३३ में ८ ऐसी ही ध्वनियाँ मिल गईं, जिनकी चार-चार ध्वनियों में एक-से गुण हैं। गुण के अलावा उनमें से प्रत्येक चार की अंतिम ध्वनियों को छोड़कर शेष तीन-तीन में उच्चारण-स्थान की समता भी मिल गई। अर्थात् पहले ४ में की प्रथम और दूसरे ४ में की भी प्रथम ध्वनि का उच्चारण-स्थान एक ही है। ये ध्वनियाँ क्रम से हैं—य, र, ल, व (क्योंकि 'य' तालु से, 'र' मूर्द्धा से और 'ल', 'व' बाद के स्थानों से उच्चरित होते हैं), और 'श', 'ष', 'स', 'ह'। 'य', 'र', 'ल', 'व', ये चार अक्षर एक गुण के, और 'श', 'ष', 'स', 'ह', ये एक गुण के हैं। पहले अंतःस्थ हैं, और दूसरे ऊष्म। इन्हीं गुणों पर इनके ये ही नाम पड़े। शेष जो २५ ध्वनियाँ रह गई थीं, उनमें से पाँच-पाँच प्रत्येक मूल-स्थान से उच्चरित होती थीं। इसलिये ऋषियों ने उनके पाँच विभाग किए। फिर प्रत्येक विभाग की पाँचों ध्वनियों का क्रम निश्चित किया। इस क्रम-निश्चय के अनुसार प्रत्येक विभाग के उच्चारण में एक-सा उतार-चढ़ाव रक्खा। ध्वनि के इस उतार-चढ़ाव को अँगरेज़ी में टोन (Tone) कहते हैं। टोन एक-सा होने के कारण यदि एक विभाग का उच्चारण याद हो गया हो, तो बालकों को अन्य वर्गों के उच्चारण में न कष्ट ही पड़ता है, और न समय ही अधिक लगता है। पहले विभाग के उच्चारण की अपेक्षा नवीन विभाग के उच्चारण में उन्हें केवल एक नए अवयव की ही सहायता लेना पड़ती है; और इस भाँति, सब विभागों में टोन एक-सा होने के कारण, उसी टोन में उच्चारण-स्थान के बदलने ही-भर से बालक चाहे जिस विभाग का उच्चारण कर सकते हैं। टोन के विचार से ऐसे प्रत्येक विभाग में सानुनासिक ध्वनियाँ अंत में रक्खी गईं। जैसे ङ, ञ इत्यादि। ऐसे प्रत्येक विभाग का नाम 'वर्ग' पड़ा, और प्रत्येक वर्ग अपने प्रथमाक्षर के वर्ग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जैसे कवर्ग, चवर्ग इत्यादि। अब तो पाठक समझ गए होंगे कि हमारी वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर का वही स्थान क्यों है ? वर्ण-माला में अक्षरों के स्थान तक वैज्ञानिकता से बद्ध हैं। किसी अक्षर का स्थान-भंग करना मानो उसके अत्यावश्यक बंधन को तोड़ना, उसे गुण-विहीन कर देना है।

यहाँ तक केवल मूल-ध्वनियों को याद कर-करके विभिन्न-गुणानुसार विभाजित किया गया। अब उनके अंतर्गत ध्वनियों को वैज्ञानिक रीति पर आकृतियाँ देना रह गया। पहले आकृतियों के कुछ वैज्ञानिक गुण दिए जा चुके हैं। वे सब प्रस्तुत वर्णमाला में पूर्ण रूप से पाए जाते हैं। अतएव यह कहना असत्य नहीं कि ऋषियों ने ध्वनियों की आकृति निश्चित करते समय उन गुणों का ध्यान अवश्य रक्खा होगा। अ, आ, इ … से … अं, अः तक स्वर-ध्वनियों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि अंतिम दो स्वर-ध्वनियाँ (अं और अः) नवीन ध्वनियाँ नहीं हैं। यदि 'अ'-ध्वनि के कंपों को हम नासिका के मार्ग से निकालें, तो उसका उच्चारण 'अं' हो जायगा, और यदि उन्हीं कंपों को मुँह के ही द्वारा अधिक वायु-वेग के साथ बाहर निकालें, तो 'अः' होगा। इसीलिये 'अ' और 'अं', 'अः' में कोई अंतर नहीं। यही कारण है कि स्वर १६ नहीं, १४ ही माने गए। इन

१४ स्वर-ध्वनियों को और भी ध्यान से देखने से पता चलेगा कि प्रकारानुसार स्वर-ध्वनियाँ केवल ६ ही हैं। 'अ' और 'आ' ध्वनियों के प्रकार में क्या अंतर है ? कुछ नहीं। दूसरा पहले का दीर्घ है। बस, यही बात 'इ', 'ई' और 'उ', 'ऊ' इत्यादि के विषय में भी जानिए। फलतः भिन्न-भिन्न प्रकार की स्वर-ध्वनियाँ ६ ही हैं। शेष उन्हीं की दीर्घ ध्वनियाँ हैं। यही कारण है कि जो चिह्न या आकृति 'अ' ध्वनि के लिये निश्चित की है, उसमें और उसकी दीर्घ ध्वनि के चिह्न 'आ' में कुछ ही अंतर रक्खा गया है। जो दीर्घ है, उसमें ह्रस्व की अपेक्षा ा या और कोई अन्य चिह्नविशेष है। समान आकृतियों में चिह्न की अधिकता दीर्घत्व-सूचक है। इस प्रकार व्यंजन में, उनके विभागानुकूल, समान आकृतियाँ बनाई गईं। व्यंजन के प्रत्येक विभाग की आकृतियों में समता रक्खी गई, और विभाग-विभाग में विषमता। इन कारणों से जो गुण इस वर्णमाला में आ गए हैं, वे पहले ही लिखे जा चुके हैं। लेख को व्यर्थ बढ़ाना उचित नहीं।

मेरे विचार से ऋषियों ने सपरिश्रम ध्वनि ही के सहारे विभाग करते-करते अंत में ये आकृतियाँ निश्चित की हैं, जिनका समूह हमारी नागरी-वर्णमाला कहलाती है। संभव है, इस लेख में कुछ बातें छूट गई हों, अथवा कुछ आवश्यकता से अधिक खींच-खाँच की गई हो। उसके लिये मैं पाठकों से, इस पर एक बार विचार करने की प्रार्थना करता हुआ, क्षमा माँगता हूँ।

जगन्नाथ पांडेय

सच्चा कवि

(१)

राजदरबार में नए कवि की कविता सुनने के लिये यथेष्ट संख्या में रईसों तथा दरबारियों की भीड़ एकत्र हुई थी। सब लोग अपने-अपने स्थान पर शिष्टता-पूर्वक बैठे हुए महाराज के आने की राह देख रहे थे। एक ओर एक युवक, जिसकी अवस्था २५ वर्ष के लगभग थी, सिर झुकाए चुपचाप बैठा था। महाराज के सिंहासन के निकट एक अर्द्धवयस्क सज्जन, जो राज-कवि थे, बैठे हुए अपनी मूछें मरोड़ रहे थे, और बीच-बीच में युवक पर एक तीव्र दृष्टि डालकर सिर झुका लेते थे। उनके मुख पर व्यंग्य-पूर्ण मृदु हास्य की एक हलकी रेखा दौड़ जाती थी।

सहसा महाराज के सिंहासन के पीछे पड़ा हुआ मख़मली परदा हटा, और दो चोबदार चाँदी की छड़ियाँ लिए हुए आकर सिंहासन के दोनों ओर खड़े हो गए। उनमें से एक ने दरबारी ढंग से महाराज के आने की सूचना दी। सब लोग सँभलकर बैठ गए।

फिर मख़मली परदा हटा, और एक ३० वर्ष का सुंदर मनुष्य आँखों में चकाचौंध पैदा कर देनेवाले वस्त्र तथा जवाहरात-जड़े गहने पहने बड़ी शान के साथ धीरे-धीरे सिंहासन की ओर आया। उसे देखकर सब लोग खड़े हो गए, और सबने दरबारी शिष्टता के अनुसार प्रणाम किया। सबके प्रणाम के उत्तर में महाराज ने केवल सिर हिला दिया, और आकर सिंहासन पर बैठ गए। सिंहासन के दाहनी ओर एक वृद्ध सज्जन, जिनके मुख पर विद्वत्ता तथा अनुभव-शीलता के चिह्न विद्यमान थे, खड़े थे। महाराज के बैठ जाने पर वह भी अपने स्थान पर बैठ गए। थोड़ी देर तक दरबार में पूरा सन्नाटा रहा। तदनंतर महाराज ने दाहनी ओर बैठे हुए वृद्ध सज्जन से कुछ धीमे स्वर में कहा। वृद्ध सज्जन उठे, और उन्होंने एक युवक की ओर देखकर कहा—"मोहनलाल !"

युवक तुरंत खड़ा हो गया, और उसने कहा—"श्रीमन् !"

वृद्ध—"महाराज तुम्हें देखना चाहते हैं। आगे आओ।"

युवक अपने वस्त्र सँभालता हुआ, शिष्टता-पूर्ण निर्भीकता के साथ, धीरे-धीरे महाराज के सिंहासन के सम्मुख आकर खड़ा हुआ। उसने एक बार फिर महाराज को प्रणाम किया, और चुपचाप हाथ बाँधकर खड़ा हो गया। महाराज ने एक बार युवक को सिर से पैर तक ध्यान-पूर्वक देखा। उनके मुख पर संतोष की रेखा झलक उठी। उन्होंने वृद्ध सज्जन से धीमे स्वर में कहा—"इस युवक को देखकर मैं बहुत संतुष्ट हुआ।" फिर महाराज ने युवक की ओर देखकर कहा—"मोहनलाल, मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम एक अच्छे कवि हो। अच्छा, अपनी रचना सुनाओ।"

लिख-पढ़ सकता हूँ, उसकी टक्कर का लिखनेवाला आस-पास के दो-चार राज्यों में न निकलेगा।"

महाराज ने कुछ मुसकिराकर कहा—"इसमें क्या संदेह है।"

प्रवीण—"परंतु श्रीमान् ने मुझमें न-जाने क्या त्रुटि देखी, जो मेरे होते हुए एक छोकरे को रख लिया। क्या मैं श्रीमान् की आज्ञा का पालन करने में असमर्थ समझा गया?"

महाराज—"नहीं प्रवीणजी, यह बात तो नहीं है। मैं तो केवल यह समझता हूँ कि गुण की क़दर अवश्य होनी चाहिए। यदि ऐसा न होगा, तो गुणों का लोप हो जायगा।"

प्रवीण—"यह ठीक है श्रीमन्; परंतु गुण-ग्राहकता उतनी ही होनी चाहिए, जितनी की उचित हो।"

महाराज कुछ भौंहें सिकोड़कर बोले—"तो क्या आप मुझ पर यह दोषारोपण करते हैं कि मैंने कुछ अनुचित गुण-ग्राहकता से काम लिया है?"

महाराज को कुछ अप्रसन्न होते देख प्रवीणजी का हृदय काँप उठा। वह हाथ जोड़कर बोले—"नहीं श्रीमन्, ऐसा कहने की धृष्टता मैं कदापि नहीं कर सकता। मेरा तात्पर्य यह है कि श्रीमान् ने जो उदारता दिखाई है, उसके योग्य वह युवक कदापि नहीं है।"

महाराज अधिकतर अप्रसन्न होकर बोले—"इसका भी अर्थ वही है; केवल शब्दों का हेर-फेर है।"

स्वार्थ मनुष्य को अंधा कर देता है। प्रवीणजी इस समय स्वार्थ के इतने वशीभूत हो गए थे कि उन्हें इसका ध्यान नहीं रहा था कि कौन बात कहनी चाहिए, और कौन नहीं। वह केवल इसलिये व्याकुल हो रहे थे कि जैसे बने, वैसे महाराज का हृदय मोहनलाल की ओर से फेर दें। इस व्याकुलता और जल्दी ने उनको बड़ी भद्दी परिस्थिति में डाल दिया।

महाराज को अधिकतर अप्रसन्न होते देखकर कविजी महाराज ने लड़खड़ाती हुई जिह्वा से कहा—"नहीं श्रीमन्, मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं। मेरे कहने में कुछ फ़र्क़ पड़ गया है—इसके लिये श्रीमान् मुझे क्षमा करें।"

महाराज प्रवीणजी की हास्यास्पद घबराहट देखकर हँसी न रोक सके। वह ज़ोर से हँस पड़े। महाराज को हँसते देख कविजी की जान-में-जान आई। उन्होंने कहा—"क्या करूँ श्रीमन्, वृद्ध हो चला हूँ। सब इंद्रियाँ शिथिल होती जा रही हैं। कहना कुछ चाहता हूँ, मुँह से निकलता कुछ है।"

महाराज हँसते हुए बोले—"प्रवीणजी, अभी तो आप कह रहे थे कि इस समय भी आप जो कुछ लिख-पढ़ सकते हैं, उसकी टक्कर का लिखनेवाला आस-पास में कोई है ही नहीं?"

प्रवीण—"हाँ श्रीमन्, यह तो मैं अब भी कहता हूँ। जहाँ तक कविता का संबंध है, वहाँ तक मेरी बुद्धि बड़ी प्रखर है। पर वैसे साधारण बात-चीत में भ्रम हो जाता है।"

महाराज उसी प्रकार हँसते-हँसते बोले—"अरे, कोई मोहनलाल को तो बुलाओ।—प्रवीणजी, आपने ऐसी सुंदर कविता लिखी है कि मैं चाहता हूँ, मोहनलाल भी उसे इसी समय सुने।"

एक दास तुरंत मोहनलाल को बुलाने के लिये गया। मोहनलाल इस स्थान में परदेशी था, और अकेला भी। अतएव उसे महल से मिले हुए मकानों में से एक मकान रहने के लिये दे दिया गया था।

इधर मोहनलाल के बुलाने की बात सुनकर प्रवीण मन-ही-मन बड़े कुढ़े। पर करते क्या? बेचारे चुपचाप खड़े रहे। परंतु थोड़ी देर में मन-ही-मन यह सोचकर कि अच्छा है, आने दो, उसे भी पता लगेगा कि कविता इसे कहते हैं, उन्होंने अपने जी को ढाढ़स दिया।

थोड़ी देर में मोहनलाल आ गया। मोहनलाल को देखते ही महाराज ने कहा—"अरे भाई मोहन, देखो, हमारे प्रवीणजी ने कैसी सुंदर कविता लिखी है।—हाँ प्रवीणजी, ज़रा फिर से पढ़िए।"

प्रवीणजी ने दूने आवेश के साथ कविता पढ़नी शुरू की।

कविता समाप्त होने पर महाराज ने मोहन से पूछा—"कहो, कैसी कविता है?"

मोहनलाल ने कहा—"क्या बात है! प्रवीणजी की टक्कर का लिखनेवाला इधर तो कोई है ही नहीं। यदि छोटा मुँह बड़ी बात न समझी जाय, तो मैं यह कहूँगा कि प्रवीणजी श्रीमान् की सभा के भूषण हैं।"

प्रवीणजी ने अपने प्रति मोहनलाल के ये शब्द अवाक् होकर सुने। वह नहीं समझ सके कि मोहनलाल ने ये शब्द यथार्थ प्रशंसा में कहे, अथवा व्यंग्य से।

महाराज ने कहा—"सुनिए प्रवीणजी, मोहनलाल क्या कहता है।"

मोहनलाल ने कहा—"मैं जो कुछ कहता हूँ, शुद्ध-हृदय से कहता हूँ। मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मुझे प्रवीण-जी की सेवा में रहने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। मैं कविता लिखना सीख जाऊँगा।"

महाराज ने प्रवीणजी की ओर एक रहस्य-पूर्ण दृष्टि से देखा। उस दृष्टि में ये भाव थे कि देखा तुमने, तुम्हारे प्रति मोहन के ऐसे उच्च भाव हैं, और तुम्हारे उसके प्रति ऐसे नीच!

प्रवीणजी ने इस दृष्टि का तात्पर्य समझ लिया। उन्होंने मर्माहत होकर अपनी आँखें नीची कर लीं। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। इस समय भी उन्होंने मोहन के आगे अपनी पराजय समझी। केवल महाराज की उस दृष्टि ने यह फ़ैसला कर दिया कि मोहन विजयी हुआ, और प्रवीणजी, आप परास्त!

(४)

उक्त घटना के बाद प्रवीणजी मोहनलाल से और भी अधिक घृणा करने लगे। वह उसके कट्टर शत्रु हो गए। उन्होंने सोचा—इसी दुष्ट के कारण मैं महाराज की दृष्टि से गिरता जा रहा हूँ। यदि यह न आता, तो यह नौबत काहे को पहुँचती। यह कल का छोकरा संत बनने का ढोंग रचकर मुझे महाराज की दृष्टि से गिरा रहा है। कितना चालाक है, कितना धूर्त है! मैं बड़ा बुद्धि-हीन हूँ, जो अपने हृदय के भाव स्पष्ट खोल देता हूँ। यदि मैं भी इसी की तरह संत बनने का ढोंग रचूँ, तो अच्छा रहे। परंतु, नहीं, मुझसे तो ढोंग कदापि न रचा जायगा। मैं तो शुद्ध-हृदय मनुष्य हूँ, जैसा भीतर, वैसा बाहर। मुझे कपट नहीं आता। जिसको मित्र समझूँगा, उसे हृदय में भी मित्र समझूँगा, और बाहर भी; और जिसे शत्रु समझूँगा, उसे हृदय में भी शत्रु समझूँगा, और बाहर भी। कुछ भी हो, मैं इस ढोंगी युवक को दरबार से निकलवाकर ही छोड़ूँगा। कल का छोकरा मेरे सामने राजकवि बनकर बैठा है। इसमें संदेह नहीं कि कभी-कभी दुष्ट बड़े गहरे भाव लाता है। पर इससे क्या हुआ? अब तो पगड़ी उलझ ही गई है; मैं भी ऐसी-ऐसी कविताएँ लिखूँगा कि महा-राज स्वयं कह देंगे कि प्रवीणजी, मोहनलाल क्या कविता लिखेगा—वह तो आपके सामने छोकरा है। हुँह! मोहन-लाल राजकवि! राजकवि प्रवीण के सिवा भला और कौन हो सकता है? एक म्यान में दो तलवारें कभी नहीं रह सकतीं। या तो वही राजकवि रहेगा, या मैं ही।

इसी तरह की बातें सोच-सोचकर प्रवीणजी ने नए उत्साह के साथ कविताएँ लिखना शुरू कर दिया। इसमें संदेह नहीं कि प्रवीणजी बड़े अच्छे कवि थे, बड़ी सुंदर कविताएँ लिखते थे। इधर मोहनलाल की प्रतिद्वंद्विता के कारण वह बड़ी अच्छी कविताएँ लिखने लगे थे। उधर मोहनलाल भी अच्छी कविताएँ लिखता था। इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए।

एक दिन महाराज ने एक समस्या दी, और मोहन-लाल तथा प्रवीणजी, दोनों से उसकी पूर्ति करने के लिये कहा। समस्या-पूर्ति के लिये एक सप्ताह का समय दिया गया।

एक सप्ताह बीत जाने पर महाराज ने दोनों कवियों को बुलवाया। प्रवीणजी समस्या-पूर्ति करके ले आए थे; पर मोहनलाल नहीं लाया था। महाराज ने पूछा—"क्यों मोहन, तुमने पूर्ति की?"

मोहन ने उत्तर दिया—"नहीं श्रीमन्, मैंने तो नहीं की।"

महाराज ने विस्मित होकर पूछा—"क्यों? क्या समय कम दिया गया था।"

प्रवीणजी बीच ही में बोल उठे—"समय यथेष्ट था। इससे अधिक समय और क्या होता!"

महाराज ने कहा—"हाँ, समय यथेष्ट था। मैंने स्वयं सोच-समझकर समय दिया था। फिर भी पूर्ति न करने का क्या कारण है?"

मोहनलाल चुप रहा।

महाराज ने पूछा—"क्यों, क्या कारण हुआ? क्या तुम्हारी समझ में समय कम था?"

मोहनलाल ने कहा—"नहीं श्रीमन्, समय तो यथेष्ट था।"

महाराज—"फिर?"

मोहनलाल—"श्रीमन्, उस समस्या की पूर्ति में मेरा कुछ जी नहीं लगा।"

महाराज की भौंहें तन गईं। उन्होंने कहा—"क्या कहा, जी नहीं लगा?"

मोहनलाल—"हाँ श्रीमन्।"

महाराज अधिकतर क्रुद्ध होकर बोले—"क्यों, जी न लगने का कारण ?"

मोहनलाल चुप रहा।

महाराज कुछ उत्तेजित होकर बोले—"क्यों, तुम उत्तर क्यों नहीं देते ?"

मोहनलाल अभी तक सिर झुकाए खड़ा था। अब सीधा तनकर खड़ा हो गया। उसने कहा—"श्रीमन्, कविता लिखना कुछ खेल नहीं है। संसार की कोई शक्ति कवि से ज़बरदस्ती कविता नहीं लिखा सकती। कवि की जब इच्छा होगी, जब उसका जी चाहेगा, जब उसे स्फूर्ति होगी, तभी वह कविता लिखेगा। किसी की आज्ञा का पालन करने के लिये कवि कभी कविता नहीं लिखता। जो केवल आज्ञा-पालन करने के लिये कविता लिखते हैं, वे सच्चे कवि नहीं, वरन् घृणित तुच्छ हैं। मैं अत्यंत शिष्टता-पूर्वक श्रीमान् से यह निवेदन करूँगा कि जो सच्चा कवि है, वह केवल अपनी इच्छा और अपने हृदय का दास होता है—अन्य किसी का नहीं। यदि श्रीमान् ने मुझे केवल इसलिये अपने चरणों में आश्रय दिया है कि जब, जिस समय और जिस विषय पर श्रीमान् आज्ञा करें, उसी विषय पर, उसी समय पर, मैं कविता लिखूँ, तो मैं अपने में इतनी क्षमता नहीं पाता। अतएव अत्यंत दीनता-पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि मैं भविष्य में श्रीमान् की सेवा करने के सर्वथा अयोग्य हूँ। इस कारण, यदि श्रीमान् आज्ञा देंगे, तो कल अपने देश को लौट जाऊँगा।"

यह कहकर मोहनलाल ने महाराज को झुककर प्रणाम किया, और चुपचाप महाराज के सामने से चला गया।

मनुष्य चाहे जितना स्वार्थी, हठधर्मी, क्रोधी तथा अत्याचारी हो, परंतु निर्भीकता-पूर्वक कही हुई सच्ची और सीधी बात उसके हृदय पर प्रभाव अवश्य डालती है—चाहे वह एक क्षण ही के लिये क्यों न हो।

महाराज मोहनलाल की निर्भीकता-पूर्वक; परंतु साथ ही शिष्टता-पूर्ण, कही गई बातों से इतने प्रभावित हुए कि जब मोहनलाल उनके सामने से चला गया, तब उन्हें यह ध्यान आया कि वह एक शक्ति-संपन्न राजा हैं, और मोहनलाल एक साधारण मनुष्य। अब उनके राजसी रक्त ने ज़ोर मारा। उनका मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। उन्होंने प्रवीणजी की ओर देखकर कहा—"आपने इस लड़के की धृष्टता देखी !"

महाराज को क्रुद्ध देखकर प्रवीणजी मन-ही-मन अत्यंत प्रसन्न, परंतु ऊपर से गंभीर होकर बोले—"श्रीमन्, अपराध क्षमा हो। मैं तो पहले ही से कहता था कि यह लड़का राजसभाओं के योग्य कदापि नहीं है। परंतु—"

महाराज प्रवीणजी की बात पूरी होने के पूर्व ही बोल उठे—"आपने सत्य कहा था। पर मैंने यह सोचकर कि युवक होनहार है, और प्रोत्साहन मिलने से एक अच्छा कवि होगा, इसे आश्रय दिया था। मगर वह जो कहा है कि जो जिसका पात्र नहीं, उसके साथ वैसा व्यवहार करने से परिणाम बुरा होता है—वही हुआ। ख़ैर, मैं इसे इसका समुचित दंड दूँगा—"

प्रवीणजी बोल उठे—"निश्चय दंड देना चाहिए। लोगों को मालूम होगा कि एक शक्तिशाली राजा के सामने धृष्टता करने का यह परिणाम होता है।"

महाराज ने उसी समय यह आज्ञा निकाली कि मोहन-लाल तुरंत गिरफ़्तार करके कारागार में डाल दिया जाय।

प्रवीणजी महाराज की इस आज्ञा से मन-ही-मन अत्यंत प्रफुल्लित होकर घर लौटे। उन्होंने सोचा—उनकी मनस्का-मना पूरी हुई; उनके मार्ग का काँटा दूर हो गया।

(५)

उक्त घटना हुए छः मास व्यतीत हो गए। मोहनलाल कारागार में पड़ा हुआ जीवन के दिन व्यतीत कर रहा है।

इधर प्रवीणजी अपने पुत्र अंबिकाप्रसाद को राजकवि बनाने के लिये जी-जान से चेष्टा कर रहे हैं। परंतु प्रतिभा ईश्वरदत्त होती है; वह चेष्टा और परिश्रम करने से उत्पन्न नहीं हो सकती। यदि प्रतिभा चेष्टा और परिश्रम से उत्पन्न हो सकती, तो संसार में उसका उतना मूल्य और आदर न होता, जो अब तक रहा है, और है। अंबिकाप्रसाद कविता तो करने लगा, परंतु उसकी कविताएँ अत्यंत साधारण होती थीं। उनमें कोई चमत्कार न था। प्रवीणजी यह देखकर बड़े हताश हुए। उन्होंने सोचा—जान पड़ता है, राजकवि की उपाधि मेरे ही जीवन तक है। हा ! मैं तो चाहता था कि यह कम-से-कम दो चार पीढ़ियों तक रहती—मेरा नाम चलता ; पर विधाता की इच्छा नहीं है। कितने आश्चर्य की बात है कि मेरा सगा पुत्र मेरे रक्त-वीर्य से

बना हुआ ; पर उसमें वह बात नहीं उत्पन्न होती, जो मुझमें है।

ऐसी ही बातें सोचकर प्रवीणजी का हृदय बड़ा दुखी हुआ ; परंतु फिर भी उन्होंने चेष्टा नहीं छोड़ी।

शाम का समय था। महाराज अपने बाहरी राजकक्ष में बैठे हुए थे। पास ही मंत्री तथा अन्य राजसभा के कुछ सभ्य बैठे थे। प्रवीणजी एक कविता सुना रहे थे। कविता समाप्त होने के कुछ समय उपरांत महाराज ने कहा—"प्रवीणजी, आपकी यह कविता तो साधारण रही। इसमें कोई विशेष बात नहीं है।" सभासदों ने भी महाराज की बात का समर्थन किया। तब प्रवीणजी कुछ अप्रतिभ होकर बोले—"महाराज, यह कविता जिस समय मैंने लिखी थी, उस समय जी कुछ ख़राब था। इसलिये अच्छी नहीं बनी।"

महाराज ने कहा—"कवि लोग तो जी ख़राब होने के समय कविता लिखते ही नहीं। आप भी अभी तक ऐसा ही करते रहे हैं।"

प्रवीणजी—"हाँ श्रीमन्! यह तो श्रीमान् का कथन उचित ही है। ख़ैर, मैं कल ही एक सुंदर कविता बनाकर श्रीमान् की सेवा में उपस्थित करूँगा।"

एक सभासद बोल उठा—"प्रवीणजी, जिन दिनों मोहनलाल का-आपका साथ था, उन दिनों आपने जो कविताएँ लिखीं, वे अपूर्व थीं। वैसी कविताएँ आपने उसके पहले भी कभी नहीं लिखी थीं; और अब तो, बुरा न मानिएगा, आपकी कविताएँ अत्यंत साधारण होती हैं।"

प्रवीणजी ने उक्त सभासद की ओर एक तीव्र दृष्टि डाली, और बोले—"मेरी कविताओं से और मोहनलाल से क्या संबंध?"

सभासद—"मोहनलाल से संबंध कुछ भी नहीं है; परंतु उसके राजकवि रहने तक के काल से संबंध अवश्य है।"

उसी समय महाराज बोल उठे—"हाँ, यह तो आपने बड़ी बारीक बात कही। मैं भी कुछ ऐसा ही समझता हूँ। प्रवीणजी, यह बात बिलकुल ठीक है कि आपकी कविता में अब वह मधुरता, वह गहनता, वह चमत्कार नहीं रहता, जो उस समय रहता था, जब मोहनलाल राज-कवि था। इसका क्या कारण है?"

प्रवीणजी हतबुद्धि होकर बोले—"श्रीमन्, मैं क्या कारण बताऊँ? मैं स्वयं नहीं जानता कि क्या कारण है। अच्छा, कल मैं श्रीमान् को एक कविता सुनाऊँगा। आशा है, उसे सुनकर श्रीमान् का यह विचार जाता रहेगा।"

महाराज ने कहा—"अच्छी बात है, सुनाइएगा।"

प्रवीणजी उस दिन रात को एक बजे तक बैठे कविता लिखते रहे। परंतु लिख चुकने पर जब उन्होंने उसे आलोचनात्मक दृष्टि से पढ़ा, तो वह स्वयं उन्हें पसंद न आई। उन्होंने फिर उसे परिष्कृत किया।

दूसरे दिन जब महाराज को कविता सुनाई, तो उन्होंने कहा—"कविता अच्छी है; पर वह बात नहीं आई।"

प्रवीणजी भी हृदय में समझते थे कि महाराज की यह बात ठीक है। प्रवीणजी ने महाराज से कुछ न कहा। उदास होकर घर आए।

रात को उन्होंने सोचना शुरू किया—क्या कारण है कि अब वैसी सुंदर कविता नहीं बनती, जैसी कि मोहन-लाल के समय में बनती थी? अब हृदय में वह तरंग ही नहीं उठती, वह जोश ही नहीं उत्पन्न होता, वे भाव ही नहीं उदय होते। न इस बात की परवा रहती है कि कविता सर्वांगसुंदर हो, उसमें कहीं ढूँढने पर भी कमज़ोरी न मिले।

सोचते-सोचते उनके ध्यान में यह बात आई कि उस समय उन्हें यह चिंता रहती थी, यह भय रहता था कि कहीं मोहनलाल की कविता उनकी कविता से बढ़ न जाय। वह यह सहन नहीं कर सकते थे कि उनकी कविता मोहनलाल की कविता से हेठी रहे। उनके सामने प्रत्येक समय यह उद्देश रहता था कि ऐसी कविता लिखी जाय, जिसके आगे मोहनलाल की कविता धूल हो जाय। इसी कारण उस समय उनके हृदय में उमंग रहती थी, जोश रहता था। प्रतिद्वंद्वी को परास्त करने की धुन उस समय उनकी कवित्व-शक्ति को जाग्रत् रखती थी। प्रतिद्वंद्विता का भय उन्हें अपनी कविता को सर्वांगसुंदर बनाने के लिये विवश करता था। मोहनलाल से प्रतियोगिता का भाव उन्हें इस बात के लिये विवश करता था कि वह नए-नए भाव अपनी कविता में लावें। परंतु अब वह बात नहीं रही। प्रतिद्वंद्वी का भय नहीं है; न इस बात की चिंता है कि किसी की कविता से उनकी कविता की तुलना की जायगी; न इस बात का डर है कि यदि दूसरे की कविता

उनकी कविता से बढ़ गई, तो उनकी सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जायगी। जब ये सब बातें नहीं रहीं, तो अब न वह उमंग है, न वह जोश; न वह परिश्रम है, न वह सूझ। जिस प्रकार शत्रु के आक्रमण का भय होने से मनुष्य की आँख नहीं झपकती, वह हर समय चैतन्य रहता है, उसी प्रकार प्रतिद्वंद्वी के भय के कारण उनकी प्रतिभा सचेत रहती थी। पर जिस प्रकार जब मनुष्य को किसी का भय नहीं रहता, तो वह आराम से पैर फैलाकर सो जाता है, उसी प्रकार प्रतिद्वंद्वी का भय न रहने से उनकी प्रतिभा भी सो गई।

प्रवीणजी ने सोचा, तो इससे यह निष्कर्ष निकला कि उन्होंने उस समय जो इतनी अपूर्व कविताएँ लिखीं, उसका कारण केवल मोहनलाल की प्रतिद्वंद्विता ही थी। ओफ्! यदि यह बात थी, तो उसका मेरा प्रतिद्वंद्वी बनकर रहना मेरे लिये हितकर था। जिस बात को मैंने अपने लिये अहितकर समझा था, वह मेरे लिये परम हितकर थी।

आज प्रवीणजी की आँखें खुल गईं। वह अपने जीवन की एक बड़ी भूल को समझ गए। वह सच्चे कवि थे, और एक सच्चे कवि का हृदय रखते थे। वह संसार में कविता से अधिक किसी को न प्यार करते थे। जिस व्यक्ति के कारण उनकी कविताएँ सर्वप्रिय हुईं, जिसके कारण उनकी कविता ने ऐसा मोहन-रूप धारण किया कि सबको मुग्ध कर लिया, उससे अधिक संसार में उनका प्यारा और कौन हो सकता है? प्रवीणजी के मुख से निकला—"हा, मोहन, मैंने उस समय तुम्हारा मूल्य नहीं समझा था—घृणित स्वार्थ ने मुझे अंधा कर दिया था।" कवि की आँखों से अश्रु-धारा बह चली, वह बच्चों की तरह रोने लगे।

* * *

प्रवीणजी महाराज के सामने हाथ जोड़े खड़े थे। महाराज ने पूछा—"कहिए प्रवीणजी, आप क्या कहना चाहते हैं?"

प्रवीणजी ने कहा—"महाराज, मैं श्रीमान् का पुराना दास हूँ। मैंने श्रीमान् की बहुत सेवा की है; और अभी जब तक जीवित हूँ, करता रहूँगा। आज तक मैंने श्रीमान् से कभी कुछ याचना नहीं की। जो कुछ श्रीमान् ने स्वेच्छा से हाथ उठाकर दे दिया, वह ले लिया, और सदैव संतुष्ट रहा। परंतु आज मैं श्रीमान् से एक भिक्षा माँगता हूँ।"

महाराज ने उत्सुक होकर मुसकिराते हुए कहा—"प्रवीणजी, आज आप इतनी दीनता क्यों प्रकट कर रहे हैं? मैंने आपको ऐसी दीनता प्रकट करते हुए इसके पहले कभी नहीं देखा।"

प्रवीणजी—"महाराज, मैं अपनी कविता के लिये सब कुछ कर सकता हूँ। आज मेरी परम प्यारी कविता पर घोर संकट है। इसीलिये मैं श्रीमान् के सामने इतना दीन बनने को विवश हुआ।"

महाराज उसी प्रकार मुसकिराते हुए बोले—"क्यों, क्यों, उस पर क्या संकट आ पड़ा?"

प्रवीणजी के नेत्रों से आँसू बहने लगे। उन्होंने कहा—"वह मोहनलाल के साथ कारागार में बंद है।"

महाराज का मुख एकदम गंभीर हो गया। उन्होंने कहा—"क्या कहा, मोहनलाल के साथ कारागार में बंद है?"

प्रवीणजी ने आँसू पोछते हुए कहा—"हाँ श्रीमन्।"

महाराज—"तो आप क्या चाहते हैं?"

प्रवीण—"यही कि मोहनलाल को मुक्त करके उसे उसी पद पर नियुक्त कीजिए, जिस पद पर वह था।"

महाराज—"परंतु प्रवीणजी, वह तो आपका प्रतिद्वंद्वी है।"

प्रवीण—"हाँ, ऐसा प्रतिद्वंद्वी है, जैसा प्रतिद्वंद्वी मनुष्य को बड़े सौभाग्य से मिलता है। ऐसा प्रतिद्वंद्वी है, जिस पर मनुष्य गर्व कर सकता है! वह ऐसा प्रतिद्वंद्वी है कि ईश्वर सबको ऐसा ही प्रतिद्वंद्वी दे। जब तक वह मेरे सामने रहा, तब तक मेरी कविता की उन्नति हुई। आपने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा था कि मोहनलाल के समय में मैंने जो कविताएँ लिखीं, वे अद्वितीय हैं।"

महाराज—"हाँ, यह बात तो मैं अब भी कहता हूँ।"

प्रवीण—"तो, महाराज, जिस प्रतिद्वंद्वी ने मुझसे ऐसी कविताएँ लिखवाईं, उस प्रतिद्वंद्वी का मिलना कितने बड़े सौभाग्य का सूचक है! जिस दिन से वह कारागार गया, उसी दिन से मेरी कवित्व-शक्ति भी लुप्त हो गई। वह उसी के साथ चली गई। अतएव मैं यही भिक्षा माँगता हूँ कि, उसे मुक्त कर दीजिए।"

महाराज ने कुछ देर तक सोचकर कहा—"अच्छा, आपने आज प्रथम बार मुझसे याचना की है; मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।"

महाराज ने उसी समय मोहनलाल को मुक्त करने की आज्ञा निकाली।

मोहनलाल कारागार से मुक्त करके महाराज के सामने लाया गया।

प्रवीणजी ने दौड़कर उसे गले से लगा लिया, और महाराज से बोले—"श्रीमन्, आज से यह मेरा पुत्र है। मेरे बाद आपकी सभा में मेरे आसन पर यही बैठेगा।"

महाराज ने विस्मित होकर कहा—"पर, आपका पुत्र अंबिकाप्रसाद?"

प्रवीण—"वह मेरे आसन के सर्वथा अयोग्य है। वह मेरे शरीर का पुत्र है, और मोहनलाल मेरी आत्मा का। इसलिये मेरे आसन का उत्तराधिकारी यही है।

महाराज ने प्रवीणजी पर एक प्रशंसात्मक दृष्टि डालकर कहा—"प्रवीणजी, आप सच्चे कवि हैं।"

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक

उदयपुर

(कार्तिक की संख्या से आगे)

फ़तह-सागर

दयपुर के उत्तर में, देवाली-ग्राम के पास, पहले एक तालाब बना हुआ था, जिसको देवाली का तालाब कहते थे। बाँध ऊँचा न होने के कारण उसका जल दक्षिण में बहुत दूर तक नहीं फैल सकता था। वर्तमान महाराणा साहब ने उस सरोवर का एक सुदृढ़ और ऊँचा बाँध नए सिरे से बनवाया, जिससे उसका जल दक्षिण में दूर-दूर तक फैलता हुआ पीछोले के उत्तरी तट से आगे तक पहुँच गया है। अब इस तालाब को महाराणा साहब के नाम पर फ़तह-सागर कहते हैं। दोनों तालाबों के बीच का अंतर बहुत ही थोड़ा रह जाने के कारण एक नहर काटकर दोनों जोड़ दिए गए हैं। उस नहर के अंत पर, फ़तह-सागर के किनारे, एक मज़बूत लकड़ी का द्वार बना हुआ है। जब ये दोनों सरोवर भरे हुए होते हैं, तब यह द्वार खोल देने पर नाव सुगमता-पूर्वक पीछोले से फ़तह-सागर तक चली जाती है। यह तालाब डेढ़ मील लंबा है, और इसकी सबसे अधिक चौड़ाई एक मील है। फ़तह-सागर को भरने के विशेष प्रबंध के लिये देवाली-ग्राम से लगभग चार मील दूर की एक नदी में 'बाँध' बाँधकर नहर द्वारा उसका जल लाया गया है। फ़तह-सागर का बाँध २,८०० फ़ीट लंबा है। श्रीमान् ड्यूक ऑफ़ कॅनाट (Duke of Connaught) के हाथ से इसकी नींव डाली जाने के कारण इसका नाम कॅनाट-बाँध है। इस तालाब के किनारे-किनारे पहाड़ियों को काटकर पाषाण के सुंदर कटहरेवाली एक सड़क बनाई गई है, जो अंदाज़न सवा मील की होगी। बाँध के ऊपर छत्रियाँ बनी हुई हैं। ठीक मध्यभाग में एक संगमरमर का बना महल है, जो पहले वर्तमान शिवनिवास-महल के द्वार के समीप बना हुआ था, और वहाँ से हटाकर यहाँ स्थापित किया गया है।

बाँध पर आनेवाली घुमावदार सड़क के एक तरफ़ सघन वृक्षों से आच्छादित पहाड़ियाँ, दूसरी ओर बहुत दूर तक सरोवर का जल, और संध्या-समय अस्तंगत सूर्य की रक्ताभ किरणों का जल में प्रतिबिंब—यह सारा दृश्य दर्शक के चित्त में आनंद की उमंग उठाता है। इस सड़क पर सायंकाल का भ्रमण बड़ा ही सुखमय होता है। यह दिल-बहलाव के लिये मुख्य स्थान है। नगर के श्रीमान् लोग सायंकाल को ताँगे या बग्गियों में बैठकर तालाब के किनारे भ्रमण करने आते हैं। मनुष्य की कैसी भी खिन्न अवस्था क्यों न हो, फ़तह-सागर के बाँध से अपूर्व सौंदर्यमय प्राकृतिक शोभा का अवलोकन करने पर क्षण-भर के लिये तो वह आनंद में मग्न हो ही जाता है। बाँध के पास जल की ऊँचाई पचास फ़ीट से भी अधिक है। वर्षा-ऋतु में सरोवर के भर जाने पर जब कॅनाट-बाँध के दक्षिणी सिरे से उसकी चद्दर चलने लगती है, उस समय यहाँ देखने का बड़ा आनंद आता है। यहाँ नगर-निवासियों का नित्यप्रति बड़ा जमघट लगा रहता है। फ़तह-सागर में आनेवाली नहर कुछ ऊँचाई से ढलवाँ हिस्से पर होकर तालाब में गिरती है। चौमासे में जब यह नहर खूब भरी हुई होती है, तब तालाब की छोटी-बड़ी मछलियाँ तीर के समान वेग के साथ नीचे से नहर के ऊपरी भाग तक चली जाती हैं। दर्शकों को यह दृश्य देखकर ऐसा प्रतीत होता है,

यहाँ पर दूकानें लग जाती हैं, और मनुष्य अपने इष्ट-मित्रों सहित भोजन करते हैं। कोई झूलों पर झूलते हैं, कोई संगीत की तान छेड़ते हैं। इस तरह सब अपनी-अपनी मौज में मस्त रहते हैं। इसी तरह दूसरे दिन स्त्रियों का मेला लगता है। इन दो दिनों में इस बाड़ी के सब फ़व्वारे दिन-भर चलते रहते हैं, और प्रति वर्ष लोगों को इस आनंद के रसास्वादन का सुअवसर प्राप्त होता है। इस बाड़ी के इर्द-गिर्द एक बहुत बड़ा बाग़ है, जिसमें आम, नारंगी, जामुन, अनार आदि मेवे के सैकड़ों वृक्ष हैं। जगह-जगह अंगूर की लताएँ छाई हैं। इस बाग़ के मेवे की बिक्री से सहस्रों रुपए वार्षिक आमदनी होती है। सहेलियों की बाड़ी भी मन-बहलाव के लिये उपयुक्त स्थान है।

हरिदासजी की मगरी

ब्रह्मपुरी-द्वीप के पश्चिम में पीछोला-तालाब का जो भाग है, उसके पश्चिमी किनारे पर एक पहाड़ी है, जिसको हरिदासजी की मगरी कहते हैं। इस पहाड़ी के चारों तरफ़ कोट खींचकर अंदाज़न् एक मील लंबी और इससे कुछ कम चौड़ी जगह घेरी गई है। यहाँ इस हाते में, वृक्षों के नीचे साँभर, चीतल, मृग, नीलगाय, शूकर आदि पशु फिरा करते हैं। इस पहाड़ी पर एक छोटा-सा महल है, जिसके साथ भी ख़ास ओदी के समान सिंह-शूकर-युद्ध के लिये स्थान बना हुआ है। संध्या-समय जब पशुओं को दाना डाला जाता है, तब यहाँ भी ख़ास ओदी की तरह सुअर इकट्ठे होते हैं। हरिदासजी की मगरी से नगर का तो थोड़ा ही भाग दृष्टिगोचर होता है, परंतु सरोवर तथा राजमहलों का आध मील दूरी से एक अनिर्वचनीय शोभा-युक्त दृश्य देख पड़ता है, और दर्शक को दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ती है।

उदयपुर के पश्चिम में एक कोस दूर बाँसदरा-पहाड़ पर, जो नगर से १,१०० फ़ीट और समुद्र की सतह से ३,१०० फ़ीट ऊँचा है, महाराणा सज्जनसिंह ने सुंदरमहल बनवाना आरंभ किया था, और उसका नाम सज्जनगढ़
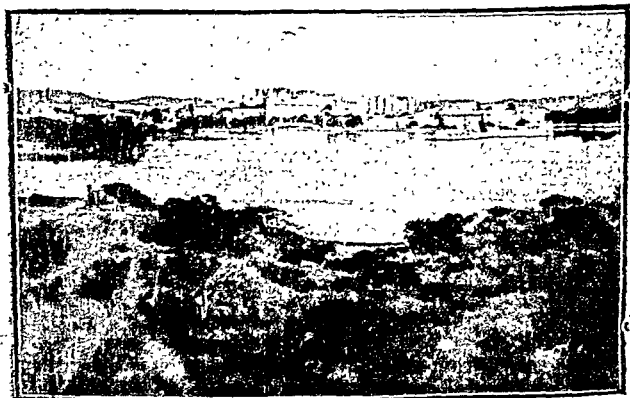
हरिदासजी की मगरी से सरोवर और राजमहल आदि का दृश्य
(राजमहलों के अंत से दाहनी ओर बड़ी पाल का कुछ अंश चित्र में देख पड़ता है)

रक्खा था। ब्रह्मपोल दरवाज़े से पहाड़ की तलहटी तक चलकर एक कोस की चढ़ाई चढ़ने से गढ़ पर पहुँचा जाता है। सज्जनगढ़ के महलों में जो काम महाराणा सज्जनसिंह के समय में अपूर्ण रह गया, उसे वर्तमान महाराणा साहब ने किसी प्रकार पूर्ण कराया। इसकी पहली मंज़िल में, जो महाराणा सज्जनसिंह के समय में बनी थी, पत्थर में खुदाई का काम बड़ा सुंदर बना हुआ है। यहाँ वायु बड़े वेग से चलती है और ऊँचाई के कारण पीछोला, राजमहल, नगर, फ़तह-सागर, दूर-दूर के कई ग्राम एवं चारों ओर की पर्वत-माला की प्राकृतिक शोभा का दृश्य देखने में अपूर्व आनंद आता है। इसी कारण दर्शक दो मील की चढ़ाई चढ़कर ऊपर जाने पर अपना सारा श्रम क्षण-भर में भूल जाता है। उष्ण-काल में यहाँ गरमी बहुत कम रहती है, और चातुर्मास में प्रकृति-सौंदर्य के निरीक्षण के लिये यह सर्वोत्तम स्थान है। यह महल बनवाते समय महाराणा सज्जनसिंहजी की बहुत बड़ी भावनाएँ थीं; सज्जनगढ़ पर पीने के लिये जल, कुछ ही दूर उत्तर में, पहाड़ियों के बीच में बने हुए 'बड़ी के तालाब' से पंप के द्वारा इतनी ऊँचाई पर पहुँचाने का विचार किया था; परंतु इस गढ़ के निर्माता के असामयिक निधन से जल-पान के लिये जल का कोई यथेष्ट प्रबंध अभी तक नहीं हो सका। इसीलिये यात्री सज्जनगढ़ में कुछ घंटों से अधिक नहीं ठहर सकता।

वैद्यनाथ का शिवालय

पीछोले-तालाब के दाक्षिणी सिरे के निकट सीसारमा-ग्राम है। इसी गाँव के समीप पीछोले में एक बड़ा विस्तृत कमल-वन है, जिसकी शोभा इधर से ही देखी जा सकती है। इस ग्राम में वैद्यनाथ-नामक शिवालय देखने योग्य है। इस शिवालय को महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय की माता, देवकुमारी, ने, जो बेदला के राव सबलसिंह की पुत्री थीं, बनवाया था। महाराणा संग्रामसिंह ने अपनी मातृभक्ति के कारण लाखों रुपए व्यय कर इस देवालय की प्रतिष्ठा वि० सं० १७७२, माघ-सुदी १२ को बड़ी धूम-धाम से की थी। इस उत्सव में कोटे के महाराव भीमसिंह, डूँगरपुर के रावल रामसिंह आदि बहुत-से प्रसिद्ध राजवंशी विद्यमान थे*। इसी अवसर पर राजमाता ने सुवर्ण का तुला-दान किया था। मंदिर में दो बड़ी-बड़ी शिलाओं पर खुदी हुई, विक्रम-संवत् १७७९ की प्रशस्ति लगी हुई है, जिसमें उक्त उत्सव का विस्तृत वर्णन है। यह प्रशस्ति मेवाड़ के इतिहास एवं इतिहास-प्रेमियों के लिये बड़े महत्त्व की है।

आहाड़

उदयपुर से अनुमान डेढ़ मील के अंतर पर ईशान-कोण में रेल्वे-स्टेशन के निकट आहाड़-नामी प्राचीन नगर के खँडहर हैं, जिनको जैन-ग्रंथों तथा प्राचीन शिला-लेखों में आघाटपुर अथवा आटपुर लिखा है। यहाँ गंगोद्भेद (गंगोभेव)-नामक एक पुरातन तीर्थ-रूप चतुरस्र कुंड है। इसके मध्य में एक प्राचीन छत्री बनी हुई है, जिसको लोग उज्जयिनी के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य के पिता गंधर्वसेन का स्मारक बतलाते हैं। यह कुंड यहाँ पर बड़ा ही पवित्र माना जाता है, और सैकड़ों नगर-निवासी समय-समय पर स्नानार्थ यहाँ आते हैं। यह कुंड अत्यंत प्राचीन होने से जीर्ण-शीर्ण हो गया था; परंतु उदयपुर के भूतपूर्व दीवान कोठारी बलवंतसिंहजी के प्रयत्न से इसका जीर्णोद्धार हो जाने से लोगों के लिये स्नानादि का बड़ा सुबीता हो गया है। फाल्गुन के शुक्ल-पक्ष में एकादशी के दिन यहाँ भीलों का बड़ा मेला लगता है। इस कुंड के दक्षिण में शिवालय के सामने दूसरा चतुरस्र कुंड तथा तिवारियाँ बनी हुई हैं, जहाँ लोग कार्त्तिकी पूर्णिमा आदि तिथियों पर श्राद्ध किया करते हैं। इन्हीं कुंडों के निकट अहाते से घिरा हुआ महाराणाओं का दाह-स्थान है, जिसको यहाँ महासती कहते हैं। महाराणा प्रताप (१६२८-१६५३) के बाद राणाओं का अंत्येष्टि-संस्कार यहीं होता रहा। यहाँ बहुत-सी छोटी-बड़ी छत्रियाँ हैं, जिनमें महाराणा अमरसिंह प्रथम, महाराणा अमरसिंह द्वितीय तथा संग्रामसिंह द्वितीय की

---

* प्रासादवैवाह्यविधिं दिदृक्षुः
　　कोटाधिपो भीमनृपोऽभ्यगच्छत्;
रथाश्वपत्तिद्विपनद्धसैन्यो
　　दिल्लीपसम्मानितबाहुवीर्यः ॥ १५ ॥
यो डूंगराख्यस्य पुरस्य नाथो
　　दिदृक्षया रावलरामसिंहः;
सोऽप्यागमत्तत्र समग्रसैन्यो
　　देशान्तरस्था अपि चान्यभूपाः ॥ १६ ॥
(वैद्यनाथ के मंदिर की प्रशस्ति, प्रकरण पाँचवाँ)

सारी रोशनी दूनी दिखाई पड़ती है ; और इस रोशनी का सारा दृश्य इतना चित्ताकर्षक प्रतीत होता है कि मानो सुवर्णमयी लंका ही दीख रही हो । बंबई की दीपमालिका रोशनी के लिये प्रसिद्ध है ; परंतु जिन्होंने उदयपुर का यह दृश्य देखा है, वे बंबई की बिजली की रोशनी की शोभा को इस देशी दीप-शोभा के सामने तुच्छ समझते हैं ।

राजवंश

उदयपुर-नगर के परिचय के साथ ही पाठकों को यहाँ के राजवंश के उज्ज्वल गौरव का यत्किंचित् परिचय कराना असंगत न होगा । यहाँ के राजा भगवान् रामचंद्र के मुख्य वंशधर हैं ; और सीसोदिया (गुहिलोत) कहलाते हैं । यहाँ का राजवंश भारत के सब राजों में शिरोमणि माना जाता है । भारतीय यहाँ के राजों को 'हिंदुआ सूरज' और आधुनिक हिंदी-लेखक इनको 'हिंदू-पति' एवं 'आर्य-कुल-कमल-दिवाकर' की उपाधियों से भूषित करते हैं, जो सर्वथा उचित है । यहाँ के महाराणाओं ने सदा धर्म को सर्वोपरि वस्तु समझा है, इसी से इनके राज्य-चिह्न में भी दृढ़ धर्म-पालन-सूचक "जो दृढ़ राखै धर्म को, तिहि राखै करतार" लेख रहता है । इस वंश के महान् गौरव की एक बात यह भी है कि संसार के राजवंशों में मेवाड़ का वंश ही सबसे प्राचीन है ; और अनुमान १४०० वर्ष से इसी देश पर यह वंश अविच्छिन्न राज्य करता चला आता है । ऐसा उदाहरण समस्त संसार के इतिहास में शायद ही और कोई मिले । इस वंश में गुहिल, बापा, खुम्माण, जैत्रसिंह, हम्मीर आदि अनेक प्रतापी एवं धर्मरक्षक राजा हुए । इसी वंश में महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण)-जैसा वीर, विजयी, शिल्प का अद्वितीय प्रेमी, संगीत का आचार्य और सरस्वती देवी का परमोपासक राजा उत्पन्न हुआ था । इसी वंश में महाराणा साँगा (संग्रामसिंह प्रथम १५६५-१५८४) ने जन्म लिया था । उनकी जब बाबर के साथ लड़ाई हुई, तो बहुधा सारे हिंदू-राजों ने उनके झंडे के नीचे रहकर, विधर्मियों से युद्ध कर प्राणोत्सर्ग करने में ही अपना गौरव माना था । इसी वंश में प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह (वि० सं० १६२८-१६५३) उत्पन्न हुए, जिनका नाम आज भी प्रत्येक हिंदू अभिमानसहित स्मरण करता है, और जिनकी प्रशंसा के गीतों की गूँज भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक सुनाई देती है । राज्य-सुख को अति तुच्छ मानकर, जंगलों में नाना प्रकार के दुःख धैर्य-पूर्वक सहन करते हुए, कुल-गौरव और धर्म की रक्षा के लिये, अकबर-जैसे महान् सम्राट् से बरसों तक लड़ते रहने पर भी, स्वातंत्र्य के प्रिय उपासक, पुरुष-पुंगव राणा प्रताप ने अपनी यही प्रतिज्ञा स्थिर रक्खी कि "ईश्वर के अतिरिक्त किसी को अपना सिर न नवाऊँगा ।" राजपूताने में राणा प्रताप के प्रताप-संबंधी दोहे, सोरठे आदि अब तक लोगों के मुख से सैकड़ों सुनने में आते हैं, जिनमें से केवल दो सोरठे उदाहरणार्थ पाठकों के सम्मुख रक्खे जाते हैं—

"अकबर पथर अनेक, के भूपति भेला किया ;
हाथ न लागौ हेक, पारस राण प्रतापसी * ।
अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हिंदू तुरक ;
मेवाड़ौ तिण माँह, पोयण फूल प्रतापसी † ।"

बादशाह अकबर की कूट-नीति भी राणा प्रताप का सिर न झुका सकी ; और उक्त बादशाह इस आर्य-कुल-कमल-दिवाकर को अधीन न कर सकने का दुःख अंत में अपने साथ ही ले गया । राणा प्रताप के लगभग आधी शताब्दी बाद इसी वंश में आदर्श-राजनीतिज्ञ राजसिंह का जन्म हुआ, जिन्होंने औरंगज़ेब से टक्कर ली । मुग़लों के उस समय में राजा लोग शाही दरबार में घंटों खड़े-खड़े थक जाने पर अर्द्धचंद्राकार अग्रभाग-वाली आसा-नामक लंबी लकड़ी को अपना सहारा बनाते थे, और मुसलमान अमीरों की अध्यक्षता में उनको बरसों विदेश में व्यतीत करने पड़ते थे । उस समय भी मेवाड़ का कोई महाराणा न तो बादशाह के दरबार में कभी उपस्थित हुआ, और न किसी शाही सेनापति की अधीनता में कभी लड़ने को गया । इसी कारण अनेक योरपियन एवं मुसलमान इतिहास-लेखकों और विदेशी यात्रियों ने भी इस वंश की उज्ज्वल कीर्ति का गुण-गान किया है । जिस प्रकार धर्मप्रिय, देशाभिमानी एवं वीर राजों ने इस वंश की कीर्ति सर्वत्र फैलाई है,

---

* अकबर ने अन्य राजा-रूपी अनेक पत्थर एकत्र किए, परंतु पारस-रूपी एक महाराणा प्रतापसिंह हाथ नहीं लगा ।

† अकबर एक अथाह समुद्र (बड़ा सरोवर) है, जिसमें हिंदू और यवन डूब गए हैं ; परंतु मेवाड़-पति महाराणा श्री-प्रतापसिंह उसमें कमल के समान हैं, अर्थात् उस जल में नहीं डूबते, परंतु ऊपर-ही-ऊपर तैरते रहते हैं ।

उसी प्रकार इस वंश में क्षत्रिय-रमणियाँ भी हुईं, जिन्होंने अपने धर्म और सतीत्व-रक्षा के लिये अग्नि में प्राणाहुति देकर संसार के सामने जो आदर्श उपस्थित किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। कहाँ तक लिखा जाय, एक किशोर वय की राजकुमारी कृष्णकुमारी ने अपने पिता के राज्य की रक्षा के लिये सहर्ष विष-पान कर प्राणोत्सर्ग किया था, जो इतिहास में एक अपूर्व घटना है। इन घटनाओं से विदित होता है कि इस वंश की क्षत्रिय-रमणियों में भी, स्वदेश और धर्म-संबंधी, कैसी समुन्नत भावनाएँ विराजमान थीं। समय की अनंत एवं परिवर्तनशील गति ने अनेक राजवंशों के नाम-निशान तक मिटा दिए, और अनेकों का अधःपतन कर दिया; परंतु इस अति पुरातन राजवंश की गौरव-पताका अभी तक वैसी ही फहरा रही है।

श्रीमान् वर्तमान महाराणा सर फ़तहसिंहजी साहब सदा से शांत वृत्ति के होने पर भी पूर्ण परिश्रमी, दृढ़व्रती, न्यायशील, निर्लोभ, दयालु, प्रजापालक, बड़े ही सच्चरित्र एवं धर्मनिष्ठ नरेश हैं, जिससे इनमें प्राचीन काल का राजर्षि-शब्द चरितार्थ होता है। आपको सदा से प्राचीन आदर्श ही प्रिय हैं, और अपने कुल की मान-मर्यादा को भली भाँति निबाहना और कुल-धर्म का पालन करना ही आपका परम लक्ष्य है। मदिरा आदि समस्त दुर्व्यसनों से आप सर्वदा बचे रहते हैं। इनमें एक विशेषता यह भी है कि राजपूत रईसों की रीति के अनुसार अनेक विवाह न कर आपने एकपत्नी-व्रत का ही पालन किया है। ७५ वर्ष की वृद्धावस्था में भी आप जवानों से अधिक श्रमशील हैं; और अपने आरोग्य के विचार से राजधर्म के अनुसार सिंह, व्याघ्र, चीते, शूकर आदि हिंसक एवं प्रजापीड़क पशुओं का शिकार करते हैं। परंतु अनेक जीवों का संहार करना आपको कदापि अभीष्ट नहीं है—

"देखना हो जो कहीं आदर्श आत्मत्याग का;
सत्य, शुचि, स्वातंत्र्य-प्रियता, देश के अनुराग का।
मित्र, तो करते हुए दृढ़ पाश निज विश्वास का;
पृष्ठ कोई खोल लो मेवाड़ के इतिहास का।"

(मेवाड़-गाथा, पृष्ठ ५)

रामेश्वर-गौरीशंकर ओझा

रति-रहस्य

माधुरी की किसी गत संख्या में मैंने 'नागर-सर्वस्व' पर एक लेख लिखा था। उसको पढ़कर अनेक सज्जनों ने उस पुस्तक को देखने की उत्कंठा दिखलाई। परंतु पुस्तक संस्कृत में है, और उस पर टीका भी संस्कृत ही में है, इसलिये बहुत कम लोग उससे लाभ उठा सके हैं। जो पत्र उसके संबंध में मुझे प्राप्त हुए हैं, उनसे पता लगता है कि जनता में काम-शास्त्र के विषय का ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा प्रबल रूप में विद्यमान है। लोगों को इस शास्त्र के असली ग्रंथ नहीं मिलते, इसलिये वे नक़ली ग्रंथों को खरीदकर अपनी ज्ञान-पिपासा बुझाना चाहते हैं। पर धन बटोरने-भर के उद्देश्य से लिखी हुई उन नक़ली पुस्तकों से उन्हें क्या प्राप्त हो सकता है? मैंने भी स्वयं कोक-शास्त्र, रति-शास्त्र, असली काश्मीरी कोक-शास्त्र इत्यादि नामों के अनेक ग्रंथ देखे हैं। परंतु उनमें मतलब की बात कुछ भी नहीं पाई। वे सब अँगरेज़ी-पुस्तकों के छायानुवाद-मात्र हैं, जिनमें दवाओं के नुसखों की ही भरमार है। पुस्तकें बेचनेवाले एक और चाल भी चलते हैं। लोगों ने सुन रक्खा है कि सरकार ने कोक-शास्त्र का छापना बंद कर दिया है। इसलिये असली कोक-शास्त्र छपा हुआ नहीं हो सकता। हस्त-लिखित पुस्तकें ही असली हैं। जनता के इस भ्रम से लाभ उठाकर कई लोग हस्त-लिखित कोक-शास्त्र गुप्त रूप से बेचते हैं, और लोग उन्हें बड़े-बड़े दामों पर बड़ी श्रद्धा से

खरीदते हैं। ये हस्त-लिखित प्रतियाँ हिंदी, उर्दू और गुरुमुखी में मैंने भी देखी हैं। इनमें नग्न स्त्री-पुरुषों के रंगीन चित्र रहते हैं, और ये असली सचित्र कोक-शास्त्र के नाम से बेचे जाते हैं। मैंने, बहुत दिन हुए, एक बार एक ऐसी ही पुस्तक खरीदी थी। पर मुझे तो उसके देखने से यही निश्चय हुआ कि इन पुस्तकों के लेखकों को इस विषय का कुछ भी ज्ञान नहीं। गंदे आसनों के चित्र देकर पाठक की काम-वासना को उत्तेजित करना ही इनका मुख्य उद्देश्य होता है। कोक का नाम लेकर ही ये अपना व्यापार चला रहे हैं। वास्तव में जिन ज्ञानियों ने काम-शास्त्र का आविष्कार किया था, वे बड़े ही उच्च चरित्र के पुरुष थे। उन्होंने मानवी प्रकृति का खूब अध्ययन करके ही ये सचाइयाँ निकाली थीं। उनके ग्रंथ नृवंश-विद्या और आचार-शास्त्र के विद्यार्थियों के लिये बड़े ही काम की चीज़ हैं। विद्वानों और विचारकों की जानकारी के लिये यहाँ महामति पंडित कोक्कोक-कृत काम-शास्त्र का कुछ परिचय दिया जाता है, ताकि वे असली से नक़ली की पहचान कर सकें।

पंडित कोक्कोक की असली पुस्तक का नाम 'रति-रहस्य' है। इसे ही साधारण लोग कोक-शास्त्र कहते हैं। यह संस्कृत में है। इस पर टीका भी संस्कृत में ही है। इसका हिंदी आदि किसी भी देशी भाषा में अनुवाद अभी तक नहीं छपा। अँगरेज़ी में भी इसका अनुवाद नहीं मिलता। जर्मनी के मंस्टर-विश्वविद्यालय के संस्कृताध्यापक श्रीमान् श्मिड ने एक प्रकाशक के लिये इसका अँगरेज़ी में अनुवाद किया है। परंतु वह, कदाचित् सरकारी रिपोर्टरों के डर से, अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। जर्मनी में इसका अनुवाद मिलता है।

कोक्कोक के विषय में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। एक कथा, जिसका प्रोफ़ेसर श्मिड ने भी अपनी जर्मन-पुस्तक Beiträge Zur Indisohen Erotik Des Liebeslebien Des Sanskrit volkes (संस्कृत लोगों का प्रेम-जीवन) में उल्लेख किया है, इस प्रकार है—पंडित कोक्कोक राज-दरबार के रत्नों में से एक था। एक दिन हस्तिनी-जाति की कोई स्त्री नग्नावस्था में दरबार में आ गई। मारे लज्जा के लोगों ने मुँह छिपा लिए; परंतु उसे कुछ भी लज्जा न हुई। राजा ने स्त्री से पूछा—तुझे राजदरबार में नग्न होकर आने का साहस कैसे हुआ? उस स्त्री ने उत्तर दिया—मुझे इस सभा में कोई पुरुष ही नहीं देख पड़ता, सब नपुंसक हैं। तब राजा ने अपने दरबारियों को उस स्त्री की कामाग्नि शांत करने की आज्ञा की। पर कोई भी सफल न हो सका। तब राज-सभा का अपमान होते देख काम-शास्त्र का ज्ञाता पंडित कोक्कोक उसे अपने घर ले गया, और उसने उसे इस प्रकार तृप्त किया कि वह उसकी दासी बन गई, और मारे लज्जा के उसने चटपट वस्त्र पहन लिए। तब राजा के कहने से लोगों के उपकार के लिये पं० कोक्कोक ने अपना यह ग्रंथ लिखा। मालूम नहीं, इस दंत-कथा में कितना सत्यांश है। रति-रहस्य में यह कथा नहीं मिलती। उसके आरंभ में भूमिका-स्वरूप केवल इतना ही लिखा है कि "श्रीवैन्यदत्त महाराज की काम-कला में उत्सुकता होने के कारण कोक्कोक-नामक विद्वान् ने इस ग्रंथ का निर्माण किया है।" वैन्यदत्त किस स्थान के राजा थे, इसका भी कुछ पता नहीं चलता। पं० कोक्कोक चाहे किसी भी प्रांत में उत्पन्न हुए हों, परंतु उनका ग्रंथ बहुत अद्भुत है। इसमें उन्होंने अपने से पहले सभी आचार्यों

के मतों का संग्रह कर दिया है। पुस्तक का आरंभ इस प्रकार होता है—

जिसने स्त्रियों को अपने साथ लेकर तीनों लोकों को जीत लिया है, वह विचित्र चरित्रवाला कामदेव तुम्हारी सब इच्छाओं को पूर्ण करे ॥ १ ॥

महादेवजी के ललाट-स्थित तीसरे नेत्र की ज्योति से जले हुए भी जिस कामदेव ने उन्हीं महादेव के आधे शरीर का मालिक, बलात्कार से, शीघ्रता के साथ, नारी को बना दिया, उस चंद्रमा के मित्र, हर्षों के स्थान, उलटी चालवाले, दिव्य गुणयुक्त, सांसारिक शृंगार आदि रसों के भोगनेवाले पुरुष के इष्टदेव श्रीमान् कामदेव की सर्वदा जय हो ॥ २ ॥

त्रिलोकविजयी महावीर कामदेव के ये साधन सदा जय को प्राप्त हों—

भ्रमर-रूपी नौकर-चाकर, स्तुति-पाठक कोयल, चंद्रमा-रूपी श्वेत छत्र, मस्त हाथी-रूपी मलयानिल, पतले शरीरवाली लता का धनुष, और चंचल कटाक्ष-रूपी शरावली ॥ ३ ॥

श्रीवैन्यदत्त महाराज की काम-कला में उत्सुकता होने के कारण कोकोक-नामक विद्वान् ने इस ग्रंथ का निर्माण किया है।

यह ग्रंथ काम-कला के ज्ञान के लिये प्रदीप के समान है। इसको विद्वान् पुरुष अवश्य देखें ॥ ४ ॥

प्राचीन मुनियों के ग्रंथों का बार-बार पर्यालोचन कर, और उनसे अर्थ-रूपी दुग्ध दुहकर, तथा उस अर्थ-दुग्ध को बड़ी सावधानता से विचार-पूर्वक मथकर यह सार-संग्रह किया गया है। यह बड़ा स्वादु, हितकर, तथा सुंदर कामिनियों के यौवन के विस्तार से भोग करने योग्य, सबसे बड़ा है, जिसका लोहा देवतों ने भी माना है। श्रेष्ठ विद्वानों को उचित है कि वे इसका अवश्य सेवन करें ॥ ५ ॥

काम-शास्त्र के ये ही मुख्य प्रयोजन हैं कि पहले तो वश में न होनेवाली स्त्री को आसानी से वश में करना, फिर वश हुई स्त्री के हृदय में अपने प्रति राग उत्पन्न करना, और अनुरक्त के साथ यथाविधि रमण करना ॥ ६ ॥

परमात्मा के ज्ञान से उत्पन्न होनेवाले महान् आनंद के सदृश इस सुरत-सुख को, सूक्ष्म काम-कला की विचित्रता को, न समझनेवाला मूर्ख पुरुष नहीं जान सकता, अर्थात् सुरत-सुख के भोगने के लिये काम-कला का जानना अत्यावश्यक है ॥ ७ ॥

जो पुरुष काम-शास्त्र में मूढ़ है, काम-कला के तत्त्वों को नहीं जानता, और फलतः स्त्रियों की (मृगी, पद्मिनी आदि) जातियों के स्वभावों, गुणों, तथा देश-विशेष में उत्पन्न होने के कारण उनके विशेष धर्मों, चेष्टाओं, भावों, और इशारों को नहीं समझ सकता, वह कामिनियों के यौवन को प्राप्त करके भी सर्वदा उस यौवन-सुख से वंचित रहता है। यदि किसी बंदर के हाथ में नारियल दे दिया जाय, तो वह उससे क्या लाभ उठा सकता है?

पहले यहाँ नंदकेश्वर और गोणिका-पुत्र, इन दोनों के मतों का संग्रह करेंगे। तदनंतर वात्स्यायन का मत दिया जायगा—

वात्स्यायन काम-सूत्र के अतिरिक्त अन्य मुनियों के शास्त्रों में जो कुछ हमने देखा है, उसी को यहाँ कहते हैं; क्योंकि मुनियों की वाणी में साधारणतः श्रद्धा हो ही जाती है ॥ ८। ९ ॥

अब पुस्तक में वर्णित विषय सुनिए—

१. चार प्रकार की स्त्रियों के अलग-अलग लक्षण; उनके सामान्य लक्षण; रति में प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाली तिथियाँ; किस आसन से किस जाति की स्त्री से रमण करना चाहिए; वशीकरण औषधियाँ। इस परिच्छेद का नाम जात्यधिकार है।

२-३. सब जातियों में समान चंद्रकला का निरूपण; वात्स्यायन मुनि के मतानुसार लिंग की दीर्घता और योनि की विशालता से पुरुषों तथा

स्त्रियों के भेद। काल, वेग और प्रमाण के अनुसार सम, उच्च और नीच रति: चार प्रकार के पुरुष-भेदों का निरूपण। यहाँ रति-रहस्य का तीसरा परिच्छेद समाप्त हो जाता है।

४. आयु के अनुसार (बाला, तरुणी आदि), प्रकृति के अनुसार (श्लेष्मादि) और सत्त्व के अनुसार (देव-सत्त्व, गंधर्व-सत्त्वादि) स्त्रियों के विभाग; स्त्रियों के नाश के कारण; स्त्री के पति से वैराग्य और अनुराग के लक्षण। इस चौथे परिच्छेद का नाम सामान्य-धर्माधिकार है।

५. भिन्न-भिन्न प्रांतों और देशों की स्त्रियों के स्वभाव; काल, वेग और प्रमाण आदि की दृष्टि से एक दूसरे से प्रतिकूल स्त्री; पुरुषों के लिये रमण करने के उपाय। यह देश-ज्ञानाधिकार नाम का पाँचवाँ परिच्छेद है।

६-१०. आलिंगन, चुंबन, संपुट और नख-क्षत के भेद; सामान्य बाह्य रति का निरूपण; सुरताधिकार; सुरत-गोष्ठी के योग्य गृह; सुरत-बंध अर्थात् भिन्न-भिन्न जातियों की स्त्रियों के साथ सुख-पूर्वक रमण के लिये उपयुक्त आसन; रति-भाव का लक्षण; ताड़न, हनन और शब्द (हुंकार और सीत्कार आदि)। यहाँ सुरताधिकार समाप्त हो गया है।

११. विवाह क्यों करना चाहिए; किस प्रकार की स्त्री के साथ करना और किसके साथ नहीं करना चाहिए; विवाह के अनंतर का मंगलाचार। यहाँ कन्या-विश्रंभण नाम का ग्यारहवाँ परिच्छेद समाप्त होता है।

१२. विवाहिता बाला पति के साथ किस प्रकार वर्ताव करे; भार्या के कर्तव्य।

१३. परप्रमदाभियोग अर्थात् दूसरे पुरुष की स्त्री के साथ संबंध। इसके विषय में ग्रंथकार ने यह चितावनी दी है—"यह आयु और यश का शत्रु और पाप का मित्र है। काम की विशेष दशा में ही इसका उपयोग करना चाहिए। अविवाहिता स्त्री तथा ब्राह्मणी के साथ जो गमन करता है, उसके यहाँ सदा अपवित्रता रहती है, और प्रति दिन ब्रह्महत्या के समान पाप होता है।" काम की दस दशाएँ; आसानी से वश में होनेवाली स्त्रियाँ तथा स्त्रियों के विषय में सिद्ध पुरुष। इस परिच्छेद की सहायता से मनुष्य दुष्ट पुरुष से अपनी स्त्री की रक्षा कर सकता है।

दूतियों के भेद और उनके कार्य—

१४. वशीकरणाधिकार। इसमें स्त्री-पुरुषों को वश में करने के लिये जादू-टोने और मंत्र-यंत्र दिए गए हैं।

१५. सकल स्त्रीप्रस्तावभेद योग। इसमें लिंग, योनि, वीर्य और रज से संबंध रखनेवाले रोगों की ओषधियों के नुसखे हैं।

बस, इन्हीं पंद्रह परिच्छेदों में "रति-रहस्य" समाप्त हुआ है। इसमें चित्रादि कुछ भी नहीं हैं। मालूम होता है, पं० कोकोक ने पूर्व आचार्यों के मत का अंधाधुंध संग्रह नहीं किया; वरन् उनके कथन की परीक्षा करने के पश्चात् ही उसे अपने ग्रंथ में स्थान दिया है। एक स्थल पर उसने लिखा है—"गुणपताका में श्लेष्म आदि प्रकृतियों का जो अधिक लक्षण कहा गया है, और वह अनुभव से ठीक उतरा है, उसको भी स्पष्ट रूप से यहाँ कहा जाता है।"

जर्मन-विद्वान् शिमड की राय है कि रति-रहस्य का जो संस्करण इस समय छपा हुआ मिलता है, उसमें बहुत-सी बातें लोगों ने पीछे से मिला दी हैं, ऐसा मालूम होता है। प्रक्षिप्त अंशों की संस्कृत कोकोक की पुरानी संस्कृत से तुलना

करके झट पहचानी जा सकती है। कह नहीं सकते, जादू-टोनेवाला परिच्छेद मूलग्रंथकार का अपना है या प्रक्षिप्त। वात्स्यायन के काम-सूत्र, रति-रहस्य, नागर-सर्वस्वम् आदि प्राचीन ग्रंथों की सहायता से मैंने "भारतीय काम-कला"-नामक एक पुस्तक तैयार की है। उसमें निष्प्रयोजन बातों को छोड़कर इन ग्रंथों की सभी उपयोगी बातें ऐसे वैज्ञानिक ढंग से लिखी गई हैं कि काम-शास्त्र की उपयोगिता स्वयं देख पड़ने लगती है। इस शास्त्र के रहस्यों को समझनेवाले लाला कन्नोमलजी एम्० ए० प्रभृति अनेक विद्वानों को वह मैंने दिखाई भी है। उन्होंने उसको संपूर्ण, सर्वांग-पूर्ण बताते हुए बहुत पसंद किया है। परंतु खेद है, मैं उसे अभी तक प्रकाशित करने में असमर्थ रहा। यदि मेरी पुस्तक प्रकाशित हो जाय, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि पाठकों को उसकी सहायता से इस प्राचीन शास्त्र का सम्यक् ज्ञान हो जायगा। परंतु वह पुस्तक कब तक छप सकेगी, यह मैं नहीं कह सकता। कारण, जिन रिपोर्टों के आधार पर सरकार इन पुस्तकों को अश्लील ठहराकर ज़ब्त करती है, उनके लेखक इतने उच्च और उदार विचार के विद्वान् नहीं होते कि वे इस शास्त्र की उपयोगिता को समझ सकें। बंबई के स्वर्गीय जस्टिस तैलंग और पायर्स ने "काम सूत्र" की बड़ी प्रशंसा की है। इसी प्रकार और कई योरपियन और देशी विद्वानों ने इन पुस्तकों का नृवंश-विद्या के विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी बताया है। परंतु सरकारी रिपोर्टर जस्टिस तैलंग नहीं। वे अपनी ज़िम्मेदारी से बचने के लिये ऐसी पुस्तकों को बंद करने का ही परामर्श दे देते हैं। अस्तु। जो भाई काम-शास्त्र-संबंधी ग्रंथों के विषय में कुछ अधिक पूछना चाहते हों, वे मुझे साहित्य-सदन, लाहौर के पते पर जवाबी कार्ड लिखने की कृपा करें। मैं उनको उत्तर देने का यत्न अवश्य करूँगा। अब तक इस शास्त्र की कोई एक सौ अप्रकाशित संस्कृत-पुस्तकों का पता लग चुका है। उनके संबंध में, समय मिलने पर, माधुरी में एक लेख लिखने का मेरा विचार है। आशा है, वह लेख पाठकों की जानकारी को बढ़ानेवाला सिद्ध होगा।

संतराम

भरत-मिलाप

भरत से मिलने आते राम !
भरतखंड की विशद भूमि में, जहाँ भक्ति का मान;
देखूँ कोई मनुज हुआ है, भैया भरत-समान।
सोचकर मन में राम कृपाल,
चल दिए बनकर ऊषा-काल,
ओढ़कर श्वेत रंग का शाल,
मिला अचेत मोह-निद्रा में, भारतवर्ष तमाम;
भरत से मिलने आते राम !
भरत बंधु की याद आ गई, भूल गया इतिहास;
पतित दशा में बंधु हमारा, हुआ यही विश्वास।
हृदय में थी मिलने की आस,
प्रकट थे चिंता के उच्छ्वास,
बनी वह चिंता भानु-प्रकास,
क्रमशः तेज बढ़ा चिंता का, श्रम पाया अविराम;
भरत से मिलने आते राम !
दोपहरी तक थे उत्तेजित, फिर हो चले उदास;
कोना-कोना खोज लिया है, किया पूर्ण उपवास।
निराशा से बनकर घनश्याम,
खड़े थे निर्जन वन में राम,
हो गया काला देश तमाम,
रात नहीं, है प्रलय हृदय का, बनो मित्र निष्काम;
भरत से मिलने आते राम !

"नयन"

जाने के कारण आलम को औरंगज़ेब के समय का मानना युक्तिसंगत नहीं मालूम होता। उस छंद में आलम-शब्द कवि के नाम के लिये नहीं, किंतु 'जगत्' के अर्थ में आया है। एक ही छंद के आधार पर दो आलम कवियों का मानना भी क्लिष्ट-कल्पना ही होगी। "माधवानल-कामकंदला" के आधार पर अकबर के समय में ही आलम का मानना ठीक होगा।

दोहासार-संग्रह के दोहे निम्न-लिखित हैं—

'आलम' प्रेम वियोग में उठत अटपटी झार ;
मन लागै, जियरा जरै, लाज होत बरि छार।
हित चित दै सब ही सुनौ साँच कहत है 'शेख' ;
संगत तैसो होय फल यामें मीन-न-मेख।
'शेख' सुमन औ गुणी पुरुष तीजो ठौर न जायँ ;
कै सबके सिर पर रहैं कै बन माँझ बिलायँ।

मल्ल

विनोद में नं० ७४३ पर मल्ल कवि का कविता-काल सं० १८०७ लिखा है ; और यह भी लिखा है कि वह भगवंतराय असोथरवाले के यहाँ थे। एक छंद इस कवि का भगवंतराय के स्वर्गवासी होने पर लिखा गया है। मल्ल कवि भगवंतराय खीची के यहाँ रहे होंगे, और वह छंद भी इन्होंने कहा होगा ; परंतु उनका कविता-काल सं० १८०७ शुद्ध नहीं प्रतीत होता। उक्त 'दोहासार-संग्रह' में ही, जो सं० १७२० में बना, मल्ल कवि जो कुछ दोहे लिखे हैं। अतएव मल्ल कवि का कविता-काल सं० १७२० से पूर्व ही होना चाहिए। इन दोहों के कहने के समय यदि मल्ल की आयु २० वर्ष की भी हो, तो संवत् १८०७ तक उनकी आयु १०७ वर्ष की होगी, जो विचारणीय है। दोहे नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

उत्तम संगम 'मल्ल' कहि प्रीति अनेक अधिकाय ;
नीच नेह अरु खल शब्द घटत-घटत घटि जाय।
तेई सज्जन 'मल्ल' कहि जे समरस सब ठौर ;
ईख-दंड औ, दुजन नर गाँठ-गाँठ रस और।
कामी अदिन मूढ़ मन कृष्ण चरन चित ठाय ;
घर-घर डोलत 'मल्ल' कहि हस्ती चढ़ चैं तैं काहि।
तपत बुझी तन काम की भयो सकल उर चैन ;
प्रीछे बड़ो कवि 'मल्ल' कहि मिले नैन सौं नैन।

पुखी

इस कवि के लिये विनोद में, सं० १८७४ पर, लिखा है कि यह संवत् १८०३ में उत्पन्न हुए थे। यह यदि १८०३ में उत्पन्न हुए थे, तो इनका कविता-काल १८२[illegible] के बाद ही होगा। विनोद में भी इनका नाम गनेश (१८२१), मनबोध झा (१८२०), किशोर (सं० १८२५), और दत्त (सं० १८२७) के बाद ही लिखा है, जिससे मालूम होता है कि मिश्र महाशयों ने पुखी का कविता-काल संवत् १८२७ के पश्चात् ही माना है। परंतु दलपतराय-बंसीधर ने अपने ग्रंथ 'अलंकार-रत्नाकर' में पुखी के छंद दिए हैं। इस ग्रंथ को मिश्रबंधु १७९२ में बना बतलाते हैं, और जिन कवियों के छंद 'अलंकार-रत्नाकर' में दिए हैं, उनकी सूची भी विनोद में दी है, जिसमें पुखी का नाम मौजूद है। फिर न-मालूम १८०३ में उत्पन्न होनेवाले पुखी का नाम उसके जन्म से ११ वर्ष पूर्व ही अलंकार-रत्नाकर में किस तरह आ गया! मिश्रबंधु ही इसका कुछ समाधान कर सकेंगे। 'अलंकार-रत्नाकर' के बनने का शुद्ध संवत् १७९८ है—

सतरह सौ अठयानबे माह पच्छ सित बार ;
शुभ बसंत पाँचै भयो यह ग्रंथ अवतार।

यदि यह संवत् शुद्ध माना जाय, तो भी विनोद में लिखा पुखी कवि का जन्मकाल तथा कविता-काल अशुद्ध ज्ञात होता है।

सखीसुख

इस कवि का वर्णन विनोद में सं० १०१८ पर दिया है। जन्म-काल १८०७ और कविता-काल १८३१ माना है। इस कवि का भी एक छंद दलपतराय-बंसीधर के 'अलंकार-रत्नाकर' में दिया हुआ है, जिससे सिद्ध है कि इस कवि का कविता-काल सं० १७९८ से पूर्व ही होना चाहिए। छंद यह है—

पावस दरोगा पल पवन महावत हैं
कारे-कारे झूमत पै जरगन पठाए हैं ;
लसैं बक-पत दंति-गाजनि घंटा-धुनि
धुरवा सुढिन जल भींच-भींच नाए हैं।
इंद्र को धनुष लाल चित्र रंग दामिनि सो
अबर जरी के ओढ़-ओढ़ चमकाए हैं ;
आज वृंदाबन स्यामा-स्याम औ 'सखीसुख'
मदन के गजराज मुजरा को आए हैं।

इसलिये विनोद में दिया हुआ काल अशुद्ध है। इससे ४०-५० वर्ष पूर्व होना चाहिए।

अनीस

विनोद में इस कवि का वर्णन नं० १८१५ पर किया गया है। इसका रचना-काल १९११ माना गया है। अनीस का निम्न-लिखित अन्योक्ति का परम प्रसिद्ध छंद भी विनोद में उद्धृत किया गया है—

"सुनिए बिटप प्रभु, सुमन तिहारे संग
राखिहौ हमैं, तौ सोभा रावरी बढ़ाइहैं ;
तजिहौ हरख कै तो बिलगु न मानैं कछू,
जहाँ-जहाँ जैहैं, तहाँ दूनो रस छाइहैं।
सुरन चढ़ैंगे, नर-सिरन चढ़ैंगे बर,
सुकवि 'अनीस' हाट-बाट में बिकाइहैं ;
देस में रहैंगे, परदेस में रहैंगे,
काहू बेस मैं रहैंगे, तऊ रावरे कहाइहैं।"

यह कवित्त उक्त 'अलंकार-रत्नाकर' में भी उद्धृत किया गया है। मिश्रबंधुओं ने भी विनोद के पृष्ठ ७०२ में उन कवियों की नामावली दी है, जिनके छंद 'अलंकार-रत्नाकर' में उदाहरणों में रक्खे हैं। उस नामावली में भी अनीस का नाम लिखा है। फिर न-मालूम सं० १७९८ में वर्णित अनीस का कविता-काल ११३ वर्ष पश्चात् संवत् १९११ क्यों माना गया है। क्या मिश्रबंधु इसका कोई समाधान करेंगे? हम नहीं कह सकते कि अनीस का कविता-काल क्या है; परंतु उक्त छंद अनीस का नहीं प्रतीत होता। दलपतराय-वंशीधर ने छंद के तृतीय चरण का पाठ 'अलंकार-रत्नाकर' में इस तरह दिया है—

"सुरन चढ़ैंगे, नर-सिरन चढ़ैंगे, कहूँ
सुकवि अतिथि हाथ-हाथन दिपाइहैं।"

हमने यह पाठ सं० १९३८ में, उदयपुर के राजयंत्रालय में, मुद्रित हुए अलंकार-रत्नाकर से लिखा है। या तो मिश्रबंधुओं ने भूल से इस कवित्त को अनीस का मानकर उसका नाम छंद में दिया है, और या मिश्र महोदयों के पास की पुस्तक में यदि अनीस ही पाठ है, तो अनीस का कविता-काल उन्होंने अशुद्ध लिखा है। या तो छंद अनीस का नहीं है, और 'अलंकार-रत्नाकर' में अनीस का नाम ग़लत दिया है, या अनीस का कविता-काल अशुद्ध है।

दिनेश

विनोद में नं० ११७२ पर इनका वर्णन किया गया और कविता-काल १८६४ लिखा है। 'अलंकार-रत्नाकर' में इनकी कविता का उद्धृत होना मिश्रबंधु मानते हैं। अतएव इन कवि का कविता-काल सं० १८६४ न होकर सं० १७९८ से पूर्व ही होना चाहिए। यदि दो दिनेश माने जायँ, तो दोनों का वर्णन विनोद में होना चाहिए।

नेह

नं० १५२७ पर, अज्ञातकालिक प्रकरण के कवियों में, इस कवि का नाम लिखा है। 'अलंकार-रत्नाकर' में नेह के कवित्त उदाहरण में दिए जाने के कारण इस कवि का कविता-काल १७९८ से पूर्व का होता है। इसको अज्ञात काल में न लिखकर उत्तरालंकृत प्रकरण में लिखना उचित है।

हरिवल्लभ

इस कवि का वर्णन नं० ११३६ पर किया गया और इसका समय १८७५ से पूर्व माना है। इस कवि का वर्णन उत्तरालंकृत प्रकरण के वेनीप्रवीण-काल में किया गया है। वास्तव में हरिवल्लभ-कृत गीता का अनुवाद सं० १७०१ में हुआ था। हमारे पास सं० १८७४ की लिखी हुई एक पुस्तक में हरिवल्लभ ने अपना वर्णन इस तरह किया है—

"यह गीता अद्भुत रतन श्रीमुख कियौ बखान ;
बार-बार निर्बाद किय परा भक्ति कौ ज्ञान।
'हरिवल्लभ' भाषा रची गीता रुचिर बनाय ;
सदाचार-निरणै भयौ अष्टादश अध्याय।

* * *

सतरह सौ एकोत्तरा, माघ-मास, तिथि ग्यास ;
गीता की भाषा करी हरिवल्लभ सुखरास।
लिखी सूर द्विज हूँ जु हौं हरिवल्लभ मो नाम ;
भोगन कुल भगवान कौ बसौं सु मथुरा-ठाम।
बसौं सु मथुरा-ठाम, भवन सुंदर में आए ;
तिनकी कृपा-प्रसाद कछू तेऊ मैं गाए।
यहि सेवा मति आन बुद्धि हरि-चरनन रक्खी ;
हितहरिबंस प्रणम्य कवी हरिवल्लभ लक्खी।"

इससे विदित होगा कि इस कवि का कविता-काल सं० १७०१ है, और इसका वर्णन १७४ वर्ष पूर्व के सेनापति-काल में होना चाहिए। शायद मिश्रबंधुओं के पास की पुस्तक अपूर्ण है; और उसमें कवि के पुस्तक लिखने का काल और कवि का अपना वर्णन नहीं दिया है। इसी कारण मिश्रबंधुओं को पुस्तक लिखने के काल से कवि का कविता-काल निर्णय करना पड़ा है।

बंसी

विनोद में नं० ४४८ पर ओड़छा-निवासी लालमनि के पुत्र बंसी का वर्णन किया गया है। इस कवि का ग्रंथ 'सजनवहोरा' और कविता-काल सं० १७२३ लिखा है। 'सजनवहोरा' का शुद्ध संवत् १७८० है—

"संवत सौ सतरह के ऊपर बरस असी में बरनौ ;
कायथ-बंस लालमनि के सुत कहत जगत कौ तरनौ।
या कानर को 'सजनबहोरा' कान सुनै, मुख गावै ;
मन दृढ़ करि परतीति प्रीति सों अटल पदारथ पावै।
निर्मल तन हरिभजन राधिकारमन सदा मन भावै ;
कहत सु 'बंसी' जो नर-नारी 'सजनबहोरा' गावै।"

कोविद

नं० ४८६ पर कोविद मिश्र (चंद्रमणि मिश्र) ओड़छे-वाले का कविता-काल सं० १७३७ दिया है, और उनके दो ग्रंथ 'राजभूषण' और 'हितोपदेश' बतलाए हैं। 'राज-भूषण' महाराज उदोतसिंह ओड़छा-नरेश के लिये बनाया गया था। यह ग्रंथ सं० १७७६ में बना है—

"नृप उदोत-मन में बसत राजधरम की रीति ;
बरनत हौं यह जानिकै मुनि-मति सों नृप नीति।
सतरह सै सत्तरि छै जुत (?) मधु-मास, सित पाख ;
भानु बार दसवीं सवान (?) ग्रंथ-जन्म अभिलाख।"

महाराज उदोतसिंह का राज्य-काल सं० १७४६ से १७६२ तक था। उनके पश्चात् पृथ्वीसिंह का राज्य-काल १७६२ से १८०७ तक रहा। महाराज पृथ्वीसिंहजी की आज्ञा से हितोपदेश बना था। अतएव इस कवि का कविता-काल १७३७ न होकर सं० १७७६ होना चाहिए।

रसरंग

नं० ६५० पर रसरंग का वर्णन करते हुए उनका कविता-काल सं० १७८० लिखा है। विवरण में लिखा है कि पहले धामीयों के चेले हुए, फिर टट्टिन-वादी संप्रदाय में आकर भगवद्रसिक के शिष्य हो गए। नं० १३३ पर भगवद्रसिकजी का समय १६२७ लिखा है। इस प्रकार गुरु और शिष्य के समय में १५३ वर्ष का अंतर आता है, जो संभव नहीं है।

करन

नं० ६३१ पर पन्ना-वासी करन भट्ट के वर्णन में उनका जन्मकाल सं० १७१४ और कविता-काल १८२४ लिखा है। विवरण में वर्णन किया है कि महाराजा सभासिंह, मानसिंह एवं हिंदूपति के यहाँ थे। महाराज सभासिंह का राज्य-काल संवत् १७६६ से १८०६ तक था। अतएव इस कवि का कविता-काल १८२४ अशुद्ध मालूम होता है; क्योंकि यदि करन भट्ट ने महाराज सभासिंह के यहाँ कविता की थी, तो वह १८०६ से पूर्व ही हो सकती है। जब कविताकाल १८०१ होगा, तो जन्मकाल जो दिया गया है, वह अशुद्ध ही हो सकता है।

महाकवि

नं० ७१६ पर महाकवि का कविता-काल सं० १७६२ के लगभग लिखा है। हमको इस कवि का एक छंद, औरंगज़ेब की प्रशंसा में, मिला है। छंद सं० १८१५ की लिखी हुई 'जस-कवित्त' नाम की पुस्तक में इस प्रकार दिया हुआ है—

औरँगजेब दई ठहवाइकै बेदर दुज्जन की सबसी है ;
सोर परयो नवखंड असं (?), असंडल हू के मई दव-सी है।
न कलंक मयंक के अंक 'महाकवि' जो छबि (?) नील बसी है ;
दारू के दिग्ग भभूका उड़यो, सु गयो बिधि-मंडल में दवसी है।

इससे मालूम होता है, यह कवि औरंगज़ेब के समय में हुआ था। इस कवि का कविता-काल १७६४ से पूर्व ही होना चाहिए ; क्योंकि औरंगज़ेब सं० १७६४ में मरा था। संवत् १७६२ सही नहीं मालूम होता। वास्तव में कालिदास त्रिवेदी का नाम ही महाकवि था। कालिदास का औरंगज़ेब के समय में होना निश्चित ही है। अतः जो समय महाकवि का विनोद में दिया है, वह अशुद्ध है।

सरसदास

नं० ३६१ पर सरसदास के लिये लिखा है कि सरस-दास की बानी सं० १७२० में बनी। यह महाशय टट्टीसंप्र-दाय के वैष्णव और वृंदावनवासी थे। सरसदास का जन्म सं० १६११ में आश्विन-शुक्ल १५ को हुआ था। ३० वर्ष की आयु में इन्होंने नागरीदासजी से उपदेश लिया, और श्रावण-सुदी १५, सं० १६८३ को महल पधारे (वैकुंठवासी हुए)। जब सरसदास सं० १६८३ में वैकुंठवासी हो चुके थे, तो १७२० में 'सरसदास की बानी' नाम का ग्रंथ बनना ठीक नहीं मालूम होता। उक्त वर्णन हमने नवनीत कवि-कृत 'हरिदासवंशानुचरित' से लिया है।

प्रेमदास अग्रवाल

नं० ११४१ पर अजयगढ़वाले प्रेमदास अग्रवाल का कविता-काल सं० १८२७ लिखा है। वास्तव में इस कवि

का कविता-काल इससे ३० वर्ष पूर्व होना चाहिए। कारण, इन्होंने सं० १८२७ में 'प्रेमसागर' नाम का ग्रंथ बनाया था—

"संवत कहौं अठारह सौ की सत्ताइस की साला ;
आश्विन तिथि बदि चौथ-पंचमी भई कथा तिहि काला।"

इन्होंने दूसरा ग्रंथ—'नासकेतु की कथा'—सं० १८३५ में बनाया था—

"भादौं-बदि तिथि पंचमी सुभ पैंतिस की साल ;
संवत बसु अरु दस लिखित भई कथा तिहि काल।"

तीसरा ग्रंथ—'पंचरत्न गेंद-लीला'—सं० १८४५ में बनाया था—

"संवत लिखित अठारह सौ को पैंतालिस की साला ;
मारग-बदि द्वादसी सोम दिन पूरन भई बिसाला।"

इसलिये इनका कविता-काल सं० १८२७ से पूर्व होना चाहिए।

खुमान

नं० ११२६ पर खुमान कवि का वर्णन है। मिश्र-बंधुओं ने अपनी जाँच से इनका कविता-काल १८७० लिखा और इनके बनाए हुए ग्रंथ 'लक्ष्मणशतक', 'हनुमान्-नख-सिख' इत्यादि बतलाए हैं। लक्ष्मणशतक १८५५ में बना है। इसी कवि की रचना 'नृसिंह-चरित्र' सं० १८३६ में बना था—

"संबत नवै गुनै बसु कुमुदै बंधु निबंध पवित्र ;
नरहरि-चौदस कौ भयौ श्रीनरसिंह-चरित्र।"

विनोद में कवि का जो जन्मकाल १८४० लिखा है, उससे एक वर्ष पूर्व यह संवत होता है। इससे मालूम होता है कि कवि का जन्मकाल और कविता-काल, दोनों विनोद में अशुद्ध लिखे हैं।

कवियों का काल-निर्णय करने में विनोद में जो भूलें की गई हैं, उनमें से कुछ का वर्णन हमने ऊपर किया है। ऐसी और भी अनेक भूलें विनोद में मौजूद हैं। उन सब-का वर्णन यहाँ पर करने से लेख बहुत बढ़ जायगा। हम आशा करते हैं, मान्य मिश्रबंधु द्वितीय संस्करण छपवाने के पहले यथासंभव ऐसी भूलों को संशोधित करने का प्रयत्न अवश्य करेंगे।

अब हम कुछ और तरह की भूलें भी दिखलाते हैं। कहीं-कहीं कवियों के नामों में भूल की गई है, या एक कवि का ग्रंथ दूसरे के नाम पर लिखा गया है। यथा—

महाराज छत्रसाल और लाल

नं० ४३४ पर पन्ना-नरेश महाराज छत्रसाल का वर्णन करते हुए लिखा है कि इनके 'राजविनोद' और 'गीतों का संग्रह' नाम के दो ग्रंथ खोज में मिले हैं। फिर नं० ४५३ पर लाल कवि के वर्णन में लिखा है कि लाल ने "छत्रप्रकाश", "विष्णुविलास", और "राजविनोद" नाम के तीन ग्रंथ रचे हैं। लाल महाराज छत्रसाल के कवि थे। वास्तव में 'राजविनोद' महाराज छत्रसाल का बनाया हुआ नहीं, लाल कवि का ही बनाया हुआ है।

नागरीप्रचारिणी-सभा की सन् १९०६—८ की खोज की रिपोर्ट में यह भूल की गई है ; राजविनोद महाराज छत्रसाल और लाल कवि, दोनों के नाम पर अलग-अलग लिखा गया है। वही भूल विनोद में भी की गई। न तो रिपोर्ट के लिखने के समय बाबू श्यामसुंदरदासजी ने ही रिपोर्ट में इन ग्रंथों के दिए गए अवतरण पढ़े, और न विनोद के लिखने के समय मिश्रबंधुओं ने ही यह कष्ट उठाया। यदि रिपोर्ट के नं० २२ A और ४३ C पर उद्धृत अवतरणों को देखा जाता, तो सहज में मालूम हो सकता था कि ये दोनों ग्रंथ एक ही हैं, और वह एक ग्रंथ लाल कवि का बनाया हुआ है। ग्रंथ का अंतिम छंद दोनों अवतरणों में एक ही दिया है। ४३ C पर जो लिखा है, उसको हम नीचे उद्धृत करते हैं, जिससे विदित होगा कि उक्त ग्रंथ लाल कवि का ही रचा हुआ है—

"जग-जीवनि जाग जगावतु है ; परब्रह्म-स्वरूप बतावतु है।
इमि लाल सदं गुन गावतु है ; हिय और सरूप न लावतु है।
इच्छा दै अच्छरहि सखी ब्रज माँह बसाई ;
बाल-बिलास दिखाइ रास-रस-रंग रमाई।
अछिर मां परतच्छि धाम लाला दरसाई ;
सखियनि बिरहि मनाइ जोग माया उहसाई।
सुरतें भ्रम भ्रमजाल महँ लाल हेरि, प्रेमनि पग्गय ;
सखियन समेत श्रीछत्रसाल उर सु श्रीजुगल स्वरूप जग्गय।"

नं० २२ A पर भी यही छंद अक्षरशः अवतरण में दिया है। एक ही ग्रंथ को दो कवियों के नाम पर देने की भूल विनोद में की गई है॥

सबसुख और प्रताप कवि

नं० ११६३ पर लिखा है—"सबसुख कायस्थ, बलवंत-पुर, ज़िला झाँसी, कविता-काल १८६०, चरखारी-नरेश महाराज विक्रमाजीत के यहाँ थे।" नं० ११७६ पर लिखा

है—"प्रताप कवि कायस्थ, झाँसी, ग्रंथ चित्रगुप्त-प्रकाश, कविता-काल १८६९, राव रामचंद्र झाँसीवाले के समय में थे।" इस तरह दो कवियों का वर्णन विनोद में किया है। नागरीप्रचारिणी-सभा, काशी की खोज-रिपोर्ट में भी दोनों को अलग-अलग माना है। किंतु वास्तव में यह एक ही कवि है। रिपोर्ट में यह भूल की गई, और विनोद में उसको जैसे-का-तैसा लिख दिया गया। खोज की रिपोर्ट में ही जो अवतरण दिए हुए हैं, उन्हें देखने तक का किसी ने कष्ट नहीं उठाया। खोज करनेवाले एजेंट ने जो लिख दिया, उसी को बाबू श्यामसुंदरदासजी ने भी आँख मूँद लिख मारा, और मिश्रबंधुओं ने भी उसका संशोधन नहीं किया।

खोज की रिपोर्ट में जो अवतरण दिए गए हैं, उन्हीं को हम अपने कथन के प्रमाण में पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं। प्रताप कवि के नाम से पृष्ठ ६२ पर और सबसुख के नाम से पृष्ठ १०६ पर अवतरण दिए हैं। दोनों के आदि-अंत के छंद अक्षरशः एक ही हैं—

"विनवौं हरि-हर-ब्रह्म को गनपति-पद मन लाय;
जगतजननि बागेश्वरी, बिगरी देहु बनाय।"

ग्रंथ के बनने का समय भी एक-से ही छंद में दोनों जगह वर्णन किया गया है—

"सुरगुरु प्रथम बिचारकै ता ऊपर बसु आनि;
दीप अनल ता पर धरहु सो संबत ठहरानि।
दै विक्रम-तीजा परब अरु पुनि तीजा मास;
चंद्रवार सबसुख-करन चित्रगुप्त-परकास।"

अंत का छंद भी दोनों अवतरणों का वही है—

"सबकी अस्तुति जोरि कर बरनौं बिबिध प्रकार;
दोष न दीजे चतुर नर, लीजे चूक सँभार।"

इन अवतरणों से स्पष्ट विदित होगा कि प्रताप और सबसुख एक ही मनुष्य हैं। इनको दो मानना भूल है।

राधाकृष्ण चौबे और कृष्ण कवि

नं० १०७६ पर चित्रकूटवाले राधाकृष्ण चौबे का वर्णन किया है। ग्रंथ "बिहारी-सतसैया" पर पद्य-टीका और "कृष्ण-चंद्रिका", ये दो लिखे हैं। कविता-काल १८०५ के पूर्व लिखा है। खोज की रिपोर्ट में बाबू श्यामसुंदरदास ने यही विवरण नं० ६६ पर दिया है; परंतु जो अवतरण रिपोर्ट में दिए गए हैं, उनसे मालूम होता है कि बिहारी-सतसई के प्रसिद्ध टीकाकार कृष्ण कवि के ग्रंथ से ही ये अवतरण दिए गए हैं। यह कोई पृथक् ग्रंथ नहीं है। यदि अवतरणों को बाबू साहब या मिश्रबंधु देखते, तो उनको ज्ञात हो जाता कि प्रसिद्ध टीकाकार कृष्ण कवि और राधाकृष्ण चौबे एक ही हैं। या राधाकृष्ण चौबे केवल 'कृष्ण-चंद्रिका' के ही कर्ता होंगे; बिहारी-सतसई की टीका कृष्ण कवि की ही की हुई है।

दलपतराय-वंशीधर ने अपने ग्रंथ 'अलंकार-रत्नाकर' में भी राधाकृष्ण माथुर का उदाहरण दिया है। इससे सिद्ध है कि राधाकृष्ण चौबे सं० १७६८ के पूर्व हुए थे। उनका कविता-काल १८५० ठीक नहीं है। विनोद में खोज की रिपोर्ट के आधार पर ही यह भूल की गई कि राधाकृष्ण चौबे को कृष्ण कवि से पृथक् माना गया।

महाराज शत्रुजीतसिंह और बखतेश

नं० ६२३ पर महाराज शत्रुजीतसिंह, बुँदेले, दतिया-नरेश के लिये लिखा है कि इन्होंने 'रसराज' की टीका सं० १८२० में बनाई। वास्तव में यह टीका बखतेश की बनाई हुई है—

"भूप बली बखतेश, के अनुज महामन मान;
सत्रजीत मो सौं कह्यो, कीजै अर्थ-बिधान।
सुनत सुजन सुख पावई जो भाषत रत बेस;
बुध-अनुमत रसराज को कह्यो अर्थ बखतेस।"

अब हम विनोद की वे भूलें दिखलाते हैं, जिनमें एक ही कवि का दो नंबरों पर वर्णन किया है—

नं० ३७६ पर जनमुकुंद के नाम पर 'भ्रमरगीत' ग्रंथ लिखा है, और रचना-काल १६८७। किंतु वास्तव में भ्रमरगीत महाकवि नंददासजी की ही रचना है। यद्यपि कुछ पुस्तकों में "जनमुकुंद पावन भयौ यह सुभ लीला गाय" ऐसा पाठ भी मिलता है; पर अधिक पुस्तकों में "नंद-दास पावन भयौ यह सुभ लीला गाय" यही पाठ है। हमारे पास भ्रमरगीत की बहुत-सी हस्त-लिखित प्रतियाँ हैं, और उनमें प्रायः नंददासजी का ही नाम अधिकतर मिलता है। इसलिये या तो जनमुकुंद नंददासजी का ही नाम था, और या लेखक के प्रमाद से नंददास की जगह "जनमुकुंद" पाठ लिखा गया है, और वही कुछ प्रतियों में चलता रहा है।

नं० ४३५ पर जोधपुर के नेनसी मूतानानिया ओसवाल का वर्णन किया गया है। ग्रंथ 'मारवार की ख्यात' और कविता-काल १७३२ लिखा है। नं० ४८८ पर भी ओस-वाल के नाम से 'मूता-नेनसी की ख्यात' और रचना-काल

सं० १७३७ लिखा है। एक जगह कवि के नाम से और दूसरी जगह उसकी जाति के नाम से वर्णन किया गया है।

अनाथदासजी का वर्णन नं० ४५२ और ५२० पर, दो जगह, किया गया है। ग्रंथ 'विचारमाला' लिखा है। आश्चर्य की बात यह है कि एक जगह सं० १७२६ कविता-काल लिखा है, और दूसरी जगह जन्म सं० १७१६ और रचना-काल १७४२ लिखा है। क्या अनाथदासजी ने १० वर्ष की उमर में ही कविता करना आरंभ कर दिया था ?

नं० ४५३ पर बालकृष्ण नाम का 'ग्वाल-पहेली' ग्रंथ लिखा गया है। ८६४ पर भी 'ग्वाल-पहेली' के कर्ता बालकृष्ण का वर्णन है।

नं० ५३८ पर पृथ्वीसिंह दीवान उपनाम रसनिधि के ग्रंथ 'रतनहज़ारा' का समय सं० १७६० लिखा है। इन्हीं कवि का वर्णन ८८६ नं० पर, रसनिधि के नाम से, फिर किया गया है। यहाँ पर कविता-काल सं० १८११ से पूर्व लिखा है।

नं० ८३५ पर कांधला, मुज़फ़्फ़रनगर के लालजी कायस्थ ने 'भक्त-उरवसी' (भक्तमाल) का ग्रंथ लिखकर कविता-काल १८०८ लिखा है। फिर नं० ६४१ पर भी चंद्रदास (लालजी कायस्थ) का ग्रंथ 'भक्त-उरवसी' (नाभादास-कृत भक्तमाल की टीका) और कविता-काल १८२५ लिखा है।

लेख बढ़ जाने के भय से हम ऐसे प्रत्येक कवि का वर्णन अलग-अलग न करके नीचे उनके नाम लिखते हैं, जिनसे विदित होगा कि एक ही कवि का विनोद में दो या दो से अधिक जगह पर वर्णन किया गया है—

(१) स्वामी ललितकिशोरीजी नं० ७२७-८८८
(२) किश्वर अली नं० १०२४-१०२५
(३) तेजसिंह कायस्थ बुंदेलखंडी नं० ६४७-११७०
(४) दीनदास नं० १२२१-१४६३
(५) जवाहरसिंह नं० ८४३-१६६४
(६) लक्ष्मण नं० १८२७-१६७८
(७) ठाकुरप्रसाद मिश्र नं० १८१४-२०१३

विनोद में इस तरह की और भी बहुत-सी भूलें हैं, जो विचार से पढ़ने पर सहज ही मालूम हो सकती हैं। उन सबको यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

हमने विनोद की यह आलोचना केवल इस उद्देश्य से की है कि ग्रंथकर्ता महाशयों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो, और द्वितीय संस्करण में हिंदी के इस एक-मात्र इतिहास में ऐसी भद्दी भूलें न रहने पावें।

कवियों का विवरण लिखने में भी कुछ भूलें हुई हैं, और श्रेणी-प्रदान करने की अपनी चलाई नई प्रणाली में भी मिश्रबंधुओं ने कुछ भूलें की हैं। उनको यदि संपादक महाशय चाहेंगे, तो हम आगे किसी लेख में बतलावेंगे।

मयाशंकर याज्ञिक
जीवनशंकर याज्ञिक
भवानीशंकर याज्ञिक

हज़रत रियाज़

(गत संख्या से आगे)
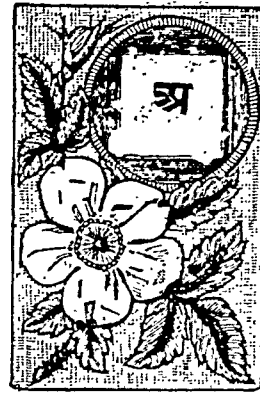
अब रियाज़ की कविता के उस अंग पर एक दृष्टि डालेंगे, जिसकी रचना करके उन्होंने उर्दू-कविता के वायुमंडल में और भी गहरा समाँ बाँधा है। उर्दू-कविता की वाटिका में उनकी कल्पना का नृत्य हम देख चुके। अब उस मतवाली घटा की ओर आँख उठाइए, जो उर्दू-कविता के आकाश पर झूम रही है। शराब की शायरी जैसी रियाज़ ने की है, वैसी उर्दू, फ़ारसी क्या, शायद किसी भाषा में नहीं हुई। रियाज़ ने शराब के मज़मून कहकर ग़ज़ल की ज़मीन (छंद) को आसमान पर पहुँचा दिया है। दल-की-दल घटाएँ उठती चली जा रही हैं, जो पृथ्वी की ओर इस तरह झुकती हैं, मानो एक साँस में समुद्र को सोख लेंगी। इस घटा में बिजलियाँ भी चमक रही हैं, जिनसे चिनगारियाँ उड़ रही हैं, बौछार भी हो रही है, और रियाज़ की रंगीन कल्पना इंद्रधनुष की तरह आकाश-मंडल के गले में हार बनकर लटक रही है—

एक रंग है कि जमा हुआ है;
एक समाँ है कि बँधा हुआ है।

शराब के मज़मून उर्दू और फ़ारसी में औरों ने भी बाँधे हैं, और खूब बाँधे हैं; लेकिन रियाज़ का रंग निराला है। वह चूर भी हैं, मतवाले भी हैं, और होश में भी हैं। मयख़ाना, साक़ी, शराब, शराब की लहर, शराब के प्याले और सुराही के मज़मूनों को जिस आन-बान और जिस ढंग से रियाज़ बाँध गए हैं, वैसा न किसी ने बाँधा है, और न कोई बाँध ही सकता था। शराब-संबंधी शब्दों

और रूपकों से जो काम रियाज़ ने लिया है, वह कोई और नहीं ले सका था। आप शराब पीकर प्याला उछाल देते हैं, तो वह और कवियों की उच्च-से-उच्च कल्पना से भी ऊपर चला जाता है। वह घटा की ओर इस तरह देखते हैं, मानो जीवन का—नहीं-नहीं, सारे ब्रह्मांड का—रहस्य उसी घटा में छिपा हुआ है। जब उनके हाथ में छलकता हुआ पैमाना होता है, तो उनके मुख पर वह उमंग, वह उत्साह और उच्छ्वास नज़र आता है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। इन शेरों में रियाज़ की रूह खिंची हुई है, और वह शराब के मज़मून के रूप में झलक रही है।

रियाज़ ने शराब के मज़मून को ऐसा अपनाया है, वह उसमें ऐसे डूब गए हैं, ऐसे शराबोर हैं, मानो शराबी का रूप ही उनका वास्तविक स्वरूप है। उनका दीन, उनका ईमान, उनकी भावनाएँ-आकांक्षाएँ, सब शराब के एक प्याले में तैर रही हैं। एक-एक भाव अनंतता को अपनी ओट में लिए हुए है। उनकी अनंत आत्मा के संकल्प-विकल्प सब एक घूँट शराब में छिपे हुए हैं। रियाज़ के लिये शराब का एक प्याला एक अथाह सागर है। शराबी का रूप उनके लिये ऐसा स्वाभाविक हो गया है कि प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक कार्य, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक अवसर में वह शराब की बोतल बग़ल में लिए हुए आते हैं। काबा, मसजिद, नमाज़ और वाज़, ये सब स्थान और अवस्थाएँ उनकी इस अवस्था से लिपटी हुई हैं। जैसे आदमी साँस लेना कहीं नहीं बंद करता, उसी तरह रियाज़ शराब पीना कहीं नहीं बंद करते। वह नमाज़ पढ़ेंगे, भगवान् का नाम लेंगे, उपदेश सुनेंगे, लेकिन शराब का प्याला मुँह से लगा होगा। वह मसजिद, काबा, वाज़ (सदुपदेश) का ज़िक्र करते हुए अकस्मात् शराब का नाम लेंगे, और इस स्वाभाविक ढंग से कि सुननेवाला पहले चौंककर रह जायगा, फिर झूम जायगा। वह शराब का नाम भी अक्सर नहीं लेते। केवल उसकी ओर संकेत करके रह जाते हैं, और संकेत भी ऐसा सूक्ष्म कि मानो यह तो होता ही रहता है। कभी वह महज़ 'वह' कहकर उसकी ओर संकेत करेंगे, कभी 'आए, चले, उड़े' कहकर, कभी 'संकदेवाली', कभी 'बोतलवाली', कभी 'हमारी चीज़' कहकर उसकी ओर संकेत करेंगे। बिलकुल शराबियों की-सी उनकी बातचीत होगी। उनको इसकी फ़िक्र नहीं कि उनकी शराब मारफ़त (ज्ञान) की शराब समझी जाय। नहीं, नहीं, उनके इन शेरों में शराब की बू उड़ते हुए होश की तरह उड़ रही है। फ़रिश्ते क़ब्र में उनके कर्मों का हिसाब करने जाते हैं, तो वहाँ शराब की बू ऐसी उड़ रही है कि वह भाग जाते हैं, और रियाज़ आँखें बंद करके फिर चैन से सो जाते हैं। इन मज़मूनों को इतना गहरा, इतना चोखा कर दिया है कि अध्यात्म और ज्ञान का धोका नहीं होने पाता। उन्होंने शराबी की टेक नहीं छोड़ी; जिसको अध्यात्म और ज्ञान देखना हो, वह इसी प्याले इसी बोतल में देखे। निराकार और निर्गुण को ग़रज़ हो, तो साकार और सगुण में प्रकट हो। रियाज़ को क्या पड़ी है कि वह निराकार की अवहेलना करें। जो निराकार, निर्गुण को अपने रहस्य-पूर्ण अस्तित्व का गर्व है, तो वह उनकी मद-भरी आँखों को देख ले। रियाज़ की कल्पना का चमत्कार इसी से प्रकट हो जाता है कि उन्होंने जन्म से आज तक शराब छुई तक नहीं, मुँह लगाना तो दूर रहा। लेकिन रियाज़ ही के जीवन की घटना है कि उनके एक मित्र ने, जिनके वहाँ वह गए हुए थे, अपने पीने के लिये जब शराब की बोतलों की आलमारी खोली, तो बोतलों को देखकर रियाज़ की अजब हालत हो गई। कल्पना अपना काम कर गई, और वह देर तक बेसुध रहे। अच्छा, अब रियाज़ की शराब की शायरी के कुछ नमूने देखिए—

घटा छाई, ये बौछारें हमीं पर ;
अरे वायज़, कहाँ तक हम पिए जायँ ?

घटा छाई हुई है। ऐसे समय वायज़ (उपदेशक) से पाला पड़ा है, जो हमको सुनाकर हमीं पर दोषारोपण (मद-पान का) कर रहा है। अब तक हमने सहा (उसकी बातें पीते गए), लेकिन अब हम कहाँ तक पिए जायँ। "घटा छाई" के बाद "ये बौछारें हमीं पर", इस टुकड़े का जवाब हो नहीं सकता। "कहाँ तक हम पिए जायँ", अपनी बेताबी की तसवीर खींच दी है। महावरे यों लाए जाते हैं।

दे दे तू मेरी जवानी, तेरे सदक़े साक़ी ;
है वही तेरे छलकते हुए पैमाने में।
किस अंदाज़ से साक़ी से अपनी जवानी माँगी है !

वो आ रहा है असा * टेकता हुआ वायज़ ;
बहा दे इतनी कि साक़ी, कहीं न थाह मिले।

* लाठी

यह क्या मज़ाक़ फ़रिश्तों को आज सूझा है ;
ख़ुदा के सामने ले आए हैं पिलाके मुझे।

क़यामत के दिन ख़ुद पीकर महशर में आना तो कई कवियों ने लिखा है, लेकिन फ़रिश्ते जिसे परमात्मा के सम्मुख ख़ुद पिलाकर ले जायँ, वह कैसा शराबी होगा ! "यह क्या मज़ाक़ फ़रिश्तों को आज सूझा है", इस 'आज' के शब्द को तो देखिए, कितनी नाट्यात्मक (dramatic) शैली है !

कुछ हवा में अजीब मस्ती है ;
कहीं बरसी है आसमान से आज।

शराब का नाम भी नहीं लिया। "कहीं बरसी है", बस, इतना ही कहा।

काटे कटती नहीं मुझ मस्त से बरसात की रात ;
मैकदेवाली जो मिल जाय, तो कुछ काम चले।

यह 'मैकदेवाली' सिवा रियाज़ के कोई कह नहीं सकता था।

वहीं रहते, वहीं पीते, वहीं सिजदे करते ;
एक गोशे में पसे-ख़ुम * कहीं बिसतर होता।
एक ही चुल्लू के हैं कौसरो-तसनीम † रियाज़।
ख़ाक उड़ती जो लबेख़ुश्क मेरा तर होता।

बस, कौसरो-तसनीम एक ही चुल्लू के हैं। मैं अपने सूखे होंठ भी उनमें तर करता, तो वहाँ ख़ाक उड़ जाती। निराकार को एक ही चुल्लू में पी जाता। सचमुच ख़ाक उड़ जाती। "एक ही चुल्लू के हैं"—कितनी महावरेदार भाषा है ! "ख़ाक उड़ती" रियाज़ का तेवर है।

नमाज़ भी यहीं पढ़ते, यहीं वज़ू करते ;
शिकार भी बते-मय ‡ का किनारे × जू करते।

नमाज़, वज़ू, बते-मय का शिकार (शराब पीना), सब साथ-साथ दरिया के किनारे करते। सच है, नमाज़ और वज़ू इस शिकार के विना पूरे कैसे होते। कमी रही जाती थी।

शररे-संग से अच्छी है परी शीशे की ;
इन बुतों का न बने बंदए-एहसाँ कोई।
रिंद प्यासे हों, तो देने से हो पानी के दरेग़ ;
ज़ाहिदे ख़ुश्क-सा देखा नहीं इंसाँ कोई।

* शराब के घड़े के पीछे।
† कौसर और तसनीम जन्नत में शराब की दो नहरें हैं।
‡ बत्तख़ की तरह बना हुआ शराब का बरतन।
× दरिया के किनारे।

इन्हीं मयख़ानों में हैं पीरे-मुग़ाँ एक-से-एक ;
क़िबलए-दीं है कोई, काबए-ईमाँ कोई।
अब मुझे पीरे-ख़राबात का है हुक्म रियाज़ ;
जाके आबाद करूँ मसजिदे-वीराँ कोई।

पहले शेर में कहते हैं कि पत्थर को चिनगारियों (बुतों या हसीनों के ज़ुल्म) से शीशे की परी (शराब) अच्छी, जो ज़ुल्म भी नहीं करती, और हसीन भी है। अतः इन बुतों का कोई एहसान न ले। बुत माशूक़ को भी कहते हैं, और उसका अर्थ मूर्ति भी है, और मूर्ति प्रायः पत्थर की ही होती है। इस रियायत से बुतों के ज़ुल्म को "शररे-संग" अर्थात् पत्थर की चिनगारी कहा है। कितना लतीफ़ ख़याल है ! दूसरे शेर में कहते हैं कि रिंद यानी मतवाले प्यासे हैं, और ज़ाहिद (परहेज़गार) इन प्यासों को पानी तक नहीं देता। शुष्क-हृदय ज़ाहिद-सा कोई इंसान न होगा। शराब का नाम तक नहीं आया ; लेकिन रियाज़ की शैली से परिचित इस 'प्यासे' और इस 'पानी' का अर्थ ख़ूब समझते हैं। सच है, शराब आख़िर पानी ही तो है। तीसरा शेर बड़े मार्के का है। कहते हैं, इन्हीं मयख़ानों में एक-से-एक पीरे-मुग़ाँ (पुरानी शराब पिलानेवाले) हैं। इन धर्माचार्यों में कोई 'क़िबलएदीं' है, तो कोई 'काबए-ईमाँ' है, अर्थात् हमारा मक्का और तीर्थस्थल ये ही हैं। "एक-से-एक" का ठाठ भी देखने योग्य है। चौथे शेर में कहते हैं, मुझ पुराने शराबी को मयख़ाने के अध्यक्ष का आदेश है कि जाकर कोई वीरान मसजिद आबाद करूँ।

कहते हैं—

कहाँ उड़ेगी, न ज़ाहिद को कुछ पता देना ;
चमन में आए, तो रिंदो, हवा बता देना।
बज़्म मतवाली थी, क्या ख़ुम से उड़ा ली मैंने ;
हाथ थामा न किसी ने सरे-महफ़िल मेरा।

इन दोनों शेरों में भी शराब का नाम तक नहीं आया। "कहाँ उड़ेगी", "क्या ख़ुम से उड़ा ली मैंने" काफ़ी है।

नशे के पेंग में सूझी न किसी को साक़ी ;
मौजे-मय बनके छुरी चल गई मयख़ारों में।

नशे के पेंग और शराब की लहर का छुरी बनकर चल जाना ! क्या बात कह गए हैं !

एक और ग़ज़ल के ये शेर हैं—

जिस दिन से हराम हो गई है,
मय ख़ुल्द*-मुक़ाम हो गई है।

अब तो स्वर्ग ही में मिलेगी।

तौबा से घटी ये क़द्रो-क़ीमत;
अब दाम-के-दाम हो गई है।

शराब का नाम तक नहीं लिया। सबने तौबा कर ली, और कई रुपए बोतल से घटकर "दाम-के-दाम" हो गई।

तौबा से हमारी बोतल अच्छी;
जब टूटी है, जाम हो गई है।

लखनऊ के एक मुशायरे में रियाज़ ने जब अपनी ग़ज़ल पढ़ते-पढ़ते यह शेर पढ़ा, तो मुशायरा उलट गया। सात-सात बार यह शेर उनसे पढ़वाया गया—

समझे थे जिनको फूल वो निकले शरेर-संग;
शीशे मेरे नसीब से पत्थर के हो गए।

फूल फूल को भी कहते हैं, शराब को भी, और माशूक़ को भी। यहाँ शराब से प्रयोजन है। कहते हैं, जिन्हें हम फूल समझे थे, वे (गले से उतरते ही) चिनगारियाँ हो गईं। शीशे (जिनमें शराब रक्खी थी) "मेरे नसीब से पत्थर के हो गए", जिनसे बजाय-फूल (शराब) चिनगारियाँ निकलीं।

मक़्ते में कहते हैं—

इन मयकशों में सबसे हम अच्छे रहे रियाज़;
पीकर के जाम साक़िए कौसर के हो गए।

प्याला पीकर अपने को साक़ी को समर्पण कर दिया। अतः "सबसे हम अच्छे रहे रियाज़।"

रियाज़ ज़िला सीतापुर के प्रसिद्ध और पुराने क़स्बे ख़ैराबाद के रहनेवाले हैं। उठती हुई जवानी के साथ-साथ आपकी शायरी का भी उठान हुआ। इनकी शायरी का वतन लखनऊ है। उस समय लखनऊ में मसहफ़ी के शागिर्द हज़रत असीर की तूती बोल रही थी। आप उनके शागिर्द हुए। असीर के बाद आप असीर के शिष्य-शिरोमणि हज़रत अमीर मीनाई के शागिर्द हुए। तबीयत पारे की तरह चपल थी। एक आँच की कसर थी। कुछ दिनों में उस्ताद हो गए, और हज़रत अमीर अपने होनहार शागिर्द की उन्नति पर गर्व करने लगे। कविता की नियमित सेवा (अद्भुत काव्य-रचना) करने के सिवा एक मासिक पत्रिका "गुलकदाए-रियाज़" निकालनी शुरू की। ख़ैराबाद से यह पत्रिका निकाली। उसके बाद उसे लखनऊ उठा लाए। लखनऊ से उसे गोरखपुर लाए, और गोरखपुर ही को अपना घर बना लिया। इनकी उम्र के पचीस बरस गोरखपुर में कटे, जहाँ से "रियाज़ुल-अख़बार" (राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक साप्ताहिक), "फ़ितना" और "इत्रे-फ़ितना" बरसों तक जारी रहे। रियाज़ जब तक गोरखपुर में रहे, एक चीज़ रहे। गोरखपुर उनका था, और वह गोरखपुर के थे। गोरखपुर में उनके व्यक्तित्व की धूम थी। जिधर से झूमते हुए निकल जाते थे, लोग देखते रह जाते थे। एक-एक गली उनकी छानी हुई थी। गोरखपुर से जितना प्रेम रियाज़ को था, और है, किसी गोरखपुरवाले को भी उतना न होगा। गोरखपुर में रियाज़ की जवानी कटी; और जवानी के महत्त्व और रहस्यों का अनुभव रियाज़ से बढ़कर विरले ही को हुआ होगा। गोरखपुर से रियाज़ का इतना घनिष्ठ संबंध हो गया था कि अक्सर लोग उनको रियाज़ गोरखपुरी कहते थे। जवानी से लेकर लगभग पचास साल की अवस्था तक आप गोरखपुर ही में रहे। उसके बाद से अब प्रायः अपने जन्मस्थान ख़ैराबाद ही में रहते हैं। गोरखपुर का ज़िक्र आपकी ग़ज़लों में अक्सर आया है। कहते हैं—

रियाज़ अहबाबे-गोरखपूर अक्सर याद आते हैं;
ज़ुबाँ पर मेरी अकसर ज़िक्रे-गोरखपूर रहता है।

एक और स्थान पर कहते हैं—

हम अपने ख़ूने-तमन्ना से सींच आए हैं;
हसीं लगाएँ मँगाकर हिनाए*-गोरखपूर।

"हम अपने ख़ूने-तमन्ना से सींच आए हैं"—अब और क्या कहना है!

वो गलियाँ याद आती हैं, जवानी जिनमें खोई है;
बड़ी हसरत से लब पर ज़िक्रे-गोरखपूर आता है।

यह शेर हिंदुस्तान-भर में मशहूर हो गया था।

लेखक के पिता से रियाज़ की गाढ़ी मित्रता थी। वह रियाज़ का ज़िक्र बड़े प्रेम और सम्मान से करते थे। दोनों की जवानियाँ गोरखपुर में कटी थीं, और दोनों साथ-साथ मुशायरों में अपना कलाम पढ़ते थे। रियाज़ को देखने के पहले पिता से और अन्य लोगों की ज़बानी इन पंक्तियों का लेखक रियाज़ के बारे में बहुत कुछ सुन चुका था।

* स्वर्गवासिनी।

* मेंहदी।

देखने का अवसर आज से तीन साल पहले प्राप्त हुआ। रियाज़, गोरखपुर छोड़ने के बाद भी, नियमित रूप से साल में एक या अधिक बार गोरखपुर आते हैं। लेखक असहयोग-आंदोलन में सम्मिलित हो चुका था। अपने पूज्य उस्ताद हज़रत वसीम ख़ैराबादी से, जो रियाज़ के चचाज़ाद भाई होते हैं, यह आकांक्षा कई बार प्रकट कर चुका था कि रियाज़ को देखने के लिये जी चाहता है। एक दिन तीसरे पहर उस्ताद वसीम रियाज़ को लेखक के यहाँ लिवा लाए। अवस्था साठ साल से ऊपर थी, लेकिन वही छरहरा बदन, वही मस्त चाल, वही गोरा-चट्टा अंगूर की तरह रंग, ऊँचा ललाट, मद-भरी आँखें और सुघड़ मुँह। देखते ही लेखक को ध्यान आया। यह शख़्स जवानी में कितना हसीन रहा होगा! साठ साल से अधिक अवस्था में भी रियाज़ अपना यह शेर याद दिलाते हुए आए—

है रियाज़ एक जवान मस्त-ख़राम;
न पिए, और झूमता जाए।

आते ही लेखक ने रियाज़ का हाथ चूमा। परिचय होते ही रियाज़ ने कहा—"आपको देखता हूँ, तो हज़रत इबरत (लेखक के स्वर्गवासी पिता का उपनाम) की याद आती है।" फिर असहयोग का ज़िक्र करते हुए कहा—"असली शायरी यही है, अर्थात् दुनिया में आकर कुछ करना।" फिर आपने अपने रियाज़ुल-अख़बार और उस समय के अपने राजनीतिक उद्योगों की कुछ चर्चा करते हुए कहा—"आजकल जो हड़तालों की इतनी धूम है, ऐसी पहली हड़ताल मैंने गोरखपुर में, आज से बीस साल पहले, कराई थी जब कमिश्नर की तरफ़ से कुछ ज़्यादती हुई थी। आज से बीस साल पहले रियाज़ुल-अख़बार के एक एडीटर को हाकिमों के ख़िलाफ़ एक मज़मून लिखने पर जेल हुई थी।" लेखक श्रद्धा-पूर्वक मुग्ध होकर ये बातें सुनता रहा। फिर शेर-शायरी की चर्चा चली। लेखक की इस ओर कुछ रुचि जानकर रियाज़ ने कहा—"शेर में पेचीदगी, खटकनेवाले शब्द और कठिन भाषा नहीं लानी चाहिए। सीधी-सादी बातें कहनी चाहिए।" कुछ देर इसी तरह बातें होती रहीं। लेखक ने सकुचाते हुए कहा—"आपके कुछ शेर सुनने की इच्छा है।" रियाज़ ने कहा—"मुसीबत यह है कि मुझे अपने शेर याद नहीं। मुझे शेर याद ही नहीं रहते।" इसमें कोई बनावट नहीं थी। सचमुच उनको अपने शेर बहुत कम याद रहते हैं। उस समय तो लेखक को यह एक त्रुटि-सी प्रतीत हुई; वह कवि कैसा, जिसे अपनी कविता याद नहीं; पर अब यह रहस्य कुछ-कुछ समझ में आया है। बात शायद यह है कि शेर कहते हुए रियाज़ अपने होश में नहीं रहते। वह कुछ बेसुध-से हो जाते हैं, और इस अवस्था में शेर उनकी क़लम से निकल जाता है। इसके अतिरिक्त इतनी नज़ाकत, लताफ़त, आनबान, और लोच कलाम में होते हुए भी उनकी कविता में कृत्रिमता या परिश्रम के चिह्न नहीं हैं। उनसे अपनी कविता सुनाने के लिये कहना किसी फ़ौआरे या गहरे स्रोत से यह आशा करना है कि वह निकले हुए पानी की गति और दिशा बतलावे। लेखक देख रहा था कि रियाज़ उसकी इच्छा पूरी न कर सकने के कारण कुछ लज्जित और दुःखित हो रहे थे। बड़ी मुशकिल से एक ग़ज़ल के तीन शेर उन्हें याद आए। दोनों की बात रह गई। वे शेर थे—

चैन जाकर तहे*ज़मीं भी नहीं;
अब ठिकाना मेरा कहीं भी नहीं।
कितनी नाज़ुक हैं चूड़ियाँ उनकी;
ऐसी तो चीनी-आस्तीं भी नहीं।
आह के मारे अश्क के चलते;
आसमाँ भी नहीं, ज़मीं भी नहीं।

कुछ और बातें होती रहीं। बातों-बातों में आपने यह भी कहा कि शेर में भाव, विचार और कल्पना से कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण स्थान भाषा का है। जो शेर ज़बान से निकल गया, उसका जवाब हो ही नहीं सकता।

दूसरी बार रियाज़ से भेंट हुई थी आज से लगभग दो महीने पहले। लेखक की उनसे भेंट इस बार गोरखपुर के स्टेशन पर हुई। वह गोरखपुर में आजकल अपना दीवान छपाने के लिये कुछ दिनों से आकर ठहरे हुए हैं। दीवान का नाम होगा "परीख़ाना"; और उर्दू में यह कुल ढाई-तीन सौ ग़ज़लों का पहला दीवान होगा। इसके प्रथम संस्करण का मूल्य २०) होगा। अभी बहुत कम इस बात की सूचना लोगों को मिली है; लेकिन जिस दिन रियाज़ का दीवान निकलेगा, वह दिन उर्दू-साहित्य

---

* ज़मीन के नीचे।

† कुर्ता।

के इतिहास में स्मरणीय होगा। रियाज़ ने कहा—"मेरी आरज़ू थी कि मेरा दीवान गोरखपुर में छपे, और गोरखपुरवाले उसे छपावें।" यह भी मालूम हुआ कि गोरखपुर के बाहर एक बहुत बड़े रईस उनका दीवान कई हज़ार रुपए लगाकर बड़े ठाट-बाट से छपवाने को कहते थे, लेकिन रियाज़ से उनकी यह प्रार्थना थी कि कुछ बहुत शोख़ और चुलबुले शेर निकाल दिए जायँ ; क्योंकि उनकी राय में वे कुछ अश्लील थे। रियाज़ ने उनसे तो कहकर टाल दिया, पर इस घटना का ज़िक्र लेखक से करते हुए उन्होंने कहा—"मेरे जिन शेरों को वह निकाल देना चाहते थे, उनमें से हरएक शेर की क़ीमत मेरी निगाह में उनकी सारी रियासत की क़ीमत से ज़्यादा है।" फिर ग़ालिब का यह शेर पढ़ा—

धौल-धप्पा उस सरापा-नाज़ की आदत नहीं ;
हम ही कर बैठे थे ग़ालिब पेश-दस्ती एक दिन।

और कहा कि इस शेर को कोई कुछ कहे, कोई इसे ख़िलाफ़-मज़ाक़ समझे, ख़ासकर "धौल-धप्पे" को, लेकिन वही शब्द इस शेर की जान है।

चालीस बरस से रियाज़ का नाम प्रसिद्ध है। हिंदुस्तान के कोने-कोने में आपकी ख्याति पहुँच चुकी है। चालीस बरस से उनके नाम और कलाम की धूम बँधी हुई है। लेकिन रियाज़ की शायरी पर जान देनेवाले इस बात को तरस गए थे कि रियाज़ का दीवान छपता, और हम उसे आँखों से और कलेजे से लगाते। उन कुछ व्यक्तियों ने अपने को धन्य समझा, जिनको पत्र-पत्रिकाओं से कुछ ग़ज़लें मिल गईं। मौलाना हसरत मोहानी ने, सुनते हैं, सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं से रियाज़ का कलाम परिश्रम से जमा किया था। लेकिन ऐसी खोज करनेवाले और परिश्रमी संग्रहकर्ता हिंदुस्तान में कम हैं। इन पंक्तियों का लेखक भी अपने भाग्य को सराहता है कि रियाज़ का कलाम इतना दुष्प्राप्य होने पर भी वह अपना स्मृति से, और कुछ पत्रिकाओं से, कुछ उस्ताद वसीम और ऐसे ही क़द्रदानों के अनुग्रह से, इतने शेर पाठकों की भेंट कर सका।

रियाज़ ने उर्दू-शायरी पर थोड़ा एहसान नहीं किया है। जब तक हिंदुस्तानी-भाषा हिंदुस्तान में क़ायम है, तब तक रियाज़ का नाम भुलाया नहीं जा सकता। रियाज़ ने ठेठ हिंदुस्तानी में काव्य-रचना की है, और चमत्कारपूर्ण उत्कृष्ट रचना की है। रियाज़ की कविता सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, गहन-से-गहन, चपल-से-चपल, मार्मिक-से-मार्मिक और तत्त्व से पूर्ण है। जहाँ कृत्रिमता है, वहाँ भी वाक्य-चमत्कार में कल्पना की अद्भुत छवि नज़र आती है। हिंदी की खड़ी बोली के कवि रियाज़ की कविता के अध्ययन और मनन से बहुत लाभ उठा सकते हैं ; क्योंकि रियाज़ सचमुच हिंदी के ही कवि हैं। जितने शेर उनके उद्धृत किए गए हैं, उनसे भली भाँति प्रकट हो गया होगा कि उनकी कविता में बहुत कम फ़ारसी के शब्द या समास हैं। सीधी-सादी बातें हैं, लेकिन कितनी मनोहर, कितनी हृदयग्राही, कितनी तीक्ष्ण, कितनी डूबी हुई, और कितनी पहुँची हुई। उनकी कविता का अध्ययन करना एक अत्यंत चपल व्यक्तित्व से परिचय प्राप्त करना है।

जितने शेर उनके उद्धृत किए गए हैं, और जितने आगे उद्धृत किए जाते हैं, वे उनकी तीन-साढ़े तीन सौ चुनी हुई ग़ज़लों में से लगभग केवल सौ शेर हैं। जब तक उनका दीवान छप नहीं जाता, तब तक इन्हीं को ग़नीमत समझना चाहिए। अब रियाज़ के कुछ और शेर देकर लेख समाप्त किया जाता है—

उनके आँचल में अदा बनकर क़यामत छुप चुकी ;
वह मेरी जानी हुई, मेरी वह पहचानी हुई।
अताब*-यार का इसके सिवा जवाब न था ;
हम आए, तो लिए आईना रूबरू आए।
उतरनेवाले अभी तक न बाम† से उतरे।
तड़पनेवाले तड़पकर फ़लक को छू आए।
न हो य' कहने को हम बेकहे गए वायज़ :
हरम को जाते हुए मुँह बुतों का छू आए।
दबी ज़बान से मेरा भी ज़िक्र कर देना ;
कलीम‡ तूर प' उनसे जो गुफ़्तगू आए।
रियाज़ थी जो मुक़द्दर में बाज़गश्ते-शबाब× :
जवान होने को पीरी में लखनऊ आए।
छुपके रातों को कहीं आप न आए, न गए ;
बेसबब नाम हुआ आपका रौशन कैसा।

* माशूक़ के ग़ुस्से का।
† कोठे।
‡ हज़रत मूसा।
× जवानी का पलटना।

है अभी मेरे बुढ़ापे में जवानी कैसी ;
है अभी उनकी जवानी में लड़कपन कैसा।
पारसा बनके रियाज़ आए हैं मयख़ाने में ;
आए बैठे हैं बचाए हुए दामन कैसा।
नज़अ में यार से पैमाने वफ़ा करते हैं ;
उस दग़ाबाज़ से हम आज दग़ा करते हैं।
सौंपते जाते हैं अल्लाह को उनकी बातें ;
हम न शिकवा, न शिकायत, न गिला करते हैं।
वह भी क्या वक़्त है, जब दिल हैं शगुफ़्ता होते ;
वह भी क्या वक़्त है, जब फूल खिला करते हैं।
पहले जब वादिए-गुरबत * में क़दम रक्खा था ;
दूर तक यादे-वतन आई थी समझाने को।
अरे सैयाद, हमी गुल हैं, हमी बुलबुल हैं ;
दाग़े-दिल हैं कि क़फ़स में चमनिस्ताँ कोई।
हम आँखें किए बंद तसौवर † में पड़े हैं ;
ऐसे में कोई छम से जो आ जाय, तो क्या हो।

कविता की सदाबहार वाटिका में भी ऐसे फूल नित्य नहीं खिला करते, और ऐसी कलियाँ नित्य नहीं चटकतीं, न ऐसी मतवाली हवा चलती है, न ऐसी अनुपम सुगंध बराबर उड़ती है। जिस समय यह आत्मा गुप्त लोकों से ख़ैराबाद के एक कुलीन मुसलमान के घर उतरी थी, तब आदि-सौंदर्य ने अपनी चपल छवि का मुकुट उसके सिर पर रक्खा था। आदि-प्रकाश की किरणें उसकी कल्पना को जगमगाती हुई उसकी कविता के रूप में चारों ओर पड़ रही हैं। एक कवि के जन्म के समय अविनाशी काल के झरोखे से झाँकता है, और जब अविनाशी आँखें फेर लेता है, तब कवि का इस संसार से प्रस्थान होता है, और कवि की वाणी मौन में लीन हो जाती है। रियाज़ ख़ुद कह चुके हैं—

शायरी है रियाज़ के दम तक ;
फिर कहाँ लोग इस तबीयत के !

रघुपतिसहाय

---

* परदेस की राह में।

† ध्यान।

भारतीय रेलों की वर्तमान अवस्था

इस समय यह चर्चा बड़ी गरम है, बल्कि एक प्रकार से स्थिर हो चुका है कि भारतीय रेलों का प्रबंध कंपनी के हाथ से निकलकर स्टेट (राज्य) के हाथों में आनेवाला है। गत वर्ष फ़रवरी में बड़ी व्यवस्थापक सभा की जो बैठक हुई थी, उसमें यह प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित किया गया था कि रेलों (ईस्ट इंडियन और ग्रेट पेनिनसुला रेलवे) का प्रबंध कंपनी से ले लिया जाय। बड़ी व्यवस्थापक सभा ने इस प्रस्ताव का स्वीकार भी कर लिया था। इससे आशा थी कि निकट-भविष्य में रेलों की समस्या हल हो जायगी। पर उसके बाद (अभी थोड़े ही दिन हुए) कामंस सभा ने जो घोषणा की है, उससे तो यही आशंका होती है कि रेलों का प्रबंध स्टेट के हाथ में नहीं रहेगा। केवल हस्तांतरित करने के लिये ही यह हो रहा है। अर्थात् वर्तमान कंपनी के हाथ से इंतिज़ाम का काम ले लिया जायगा, और दूसरी कंपनी को सौंप दिया जायगा। इस बात की संभावना है कि यह नई कंपनी "भारतीय" हो। यह भारतीय शब्द भी रहस्य से ख़ाली नहीं है। हम इस पर आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ भारतीय रेलों का संक्षिप्त इतिहास दे देना अप्रासंगिक न होगा।

भारतीय रेलों का इतिहास

इतिहास के विद्यार्थियों को भली भाँति मालूम है कि भारत में रेलों के खोलने की आंतरिक नीति क्या थी। ब्रिटिश-शासन की नींव दृढ़ तथा शक्ति-संगठन करने के लिये ही यह महान् प्रयास किया

गया था। दूसरा अभिप्राय योरपियन पूँजीपतियों का रुपए लगाने का अवसर और स्थान देना भी था। तदनुसार यहाँ जितनी रेलवे-लाइनें बिछीं, सबमें योरपियनों के ही रुपए लगे। भारतीय पूँजीपति इन कंपनियों के हिस्सेदार नहीं हो सकते थे। इस तरह की व्यवस्था अन्य देशों में भी हुई थी; पर वहाँ और यहाँ की अवस्था में एक घोर अंतर रहा है। वहाँ की कंपनियों को सारी ज़िम्मेदारी अपने सिर पर लेनी पड़ी थी; पर भारत में खुली कंपनियों को भारत-सरकार की ओर से अभय-दान का परवाना मिल गया। इस अभय-दान की व्यवस्था इस प्रकार थी। रेलों की कमाई से आमदनी हो या न हो, पर पूँजीपतियों को कम-से-कम ५) रु० सैकड़े लाभ मिलना ही चाहिए। कई वर्षों तक रेलों से बराबर घाटा होता रहा, और इस ५) रु० सैकड़े की पूर्ति प्रजा के ऊपर कर लगाकर की जाती रही। प्रायः ५० वर्षों तक यही अवस्था थी। अंत को भारत-सरकार ने इन रेलों को खरीदा। खरीदारी भी विचित्र ढंग की थी। हिस्सों के मूल्य मूल लागत से चौथाई या उससे भी अधिक ज्यादा दिए गए। इसके बाद रेलों के प्रबंध, सुधार तथा विस्तार आदि के लिये जितने रुपयों की आवश्यकता पड़ी, सब भारत की पूँजी से दिए गए, चाहे वे प्रजा पर कर लगाकर दिए गए, अथवा प्रजा की रक्षित पूँजी का ऋण लेकर दिए गए। इस तरह यह प्रत्यक्ष है कि जिन जिन कंपनियों के हाथ में इस समय रेलों का प्रबंध है, उनकी पूँजी इन रेलों में नहीं लगी है। ये केवल ठेकेदार हैं, और भारत की प्रजा के धन से लाभ उठाकर अपनी जेबें भर रहे हैं। जिन रेलों को आज के न-जाने कितने वर्ष पहले ही राष्ट्र की संपत्ति हो जाना चाहिए था, वे आज भी कंपनियों के हाथ में हैं। भारत-सरकार तथा योरपियन समाज आज भी उन्हीं कंपनियों का हिमायती है, और इसी बात की हामी भर रहा है कि रेलों का प्रबंध कंपनियों के ही हाथ में रहे। पर इस व्यवस्था के प्रतिकूल इतना अधिक शोर-गुल होने लगा है कि इन्हें बाध्य होकर परिवर्तन करना ही पड़ेगा। इसलिये अब दूसरे ही प्रबंध की कल्पना की जा रही है। उसका नाम रक्खा गया है—

राज्य की संपत्ति और कंपनी का प्रबंध।

अब इन लोगों का कहना यह है कि भारतीय रेलों का प्रबंध रहे कंपनी के ही हाथ में, पर कंपनी भारतीय बना दी जाय। तथापि इस नई कंपनी के कम-से-कम आधे संचालक योरपियन ही रहें। भारत-सरकार बराबर यही कहती आ रही है कि भारतीय रेलों से भारतीय प्रजा को अच्छा आर्थिक लाभ होगा। यदि यह बात सच है, तो भारत-सरकार इस लाभ का भागी कंपनियों को क्यों बनाना चाहती है? एक बात यह भी मार्के की है कि ये कंपनियाँ अपने घर की कुछ भी पूँजी नहीं लगावेंगी। पूँजी भारतीय प्रजा की ही रहेगी। केवल प्रबंध के लिये ही इन्हें लाभ का यह अंश दिया जायगा। अगर ये कंपनियाँ लागत की पूँजी का हिस्सा देकर भी हिस्सेदार होना चाहें, तो भी वांछनीय नहीं है। इससे भी भारत का कोई लाभ नहीं है। आपत्ति-विपत्ति के दिन तो सारा भार प्रजा के ऊपर था, दुःख उठाकर उसने पहली कंपनियों की पूँजी अदा की; रेलों के सुधार और विस्तार के लिये पेट काटकर रुपए दिए; और अब जब लाभ का दिन आया, नफ़ा होने लगा, तो उसके भागी दूसरे हों! यह कहाँ का न्याय है?

भारतीय कंपनी

हम ऊपर लिख आए हैं कि भारत-सरकार आज भी कंपनी के प्रबंध की ही हिमायती है। पर इसके विरुद्ध जो आंदोलन हो रहे हैं, उन्हें ठंडा करने और हमारी आँखों में धूल झोंकने के लिये वह भारतीय कंपनी की स्थापना का आश्वासन दे रही है। पर यदि विचार करके देखा जाय, तो मालूम होगा कि यह नई कंपनी नाम-मात्र के लिये ही भारतीय कंपनी रहेगी; क्योंकि प्रत्येक कंपनी के कम-से-कम आधे संचालक योरपियन ही रहेंगे। ऐसी अवस्था में जितनी नई पूँजी की आवश्यकता पड़ेगी, उसका अधिकांश इँगलैंड से ही आवेगा। इससे रेलों के अधिकार की व्यवस्था और भी जटिल हो जायगी। कारण, आज तक रेलों के लिये विलायत से जो रुपए आए हैं, वे बतौर क़र्ज़े के। पर अब जो रुपए आवेंगे, वे बतौर हिस्सेदारी के। इससे जहाँ हम लोग भारतीय रेलों का प्रबंध बड़ी व्यवस्थापिका सभा के हाथ में चाहते हैं, वहाँ वह उन योरपियन संचालकों और पूँजीपतियों के हाथ चला जायगा। इससे हमें कोई लाभ न होगा। जो अवस्था इस समय है, वही बनी रहेगी, पर दशा और भी ख़राब हो जायगी; क्योंकि पूँजी, सामान तथा प्रबंध करने के लिये आदमियों का आना ज्यों-का-त्यों बना रहेगा। आज अगर हम जापानी और भारतीय रेलों की तुलनात्मक आलोचना करने बैठते हैं, तो दोनों की अवस्था में हमें महान् अंतर दिखाई देता है। भारतीय रेलें जापानी रेलों से कहीं पुरानी हैं। दोनों की स्थापना विदेशी पूँजी से हुई थी। पर आज जापानी रेलों का सारा प्रबंध जापानियों के हाथ में है। रेलवे-कर्मचारी जापानी हैं, रेलवे का सारा सामान जापानी है। इधर भारतीय रेलों की अवस्था आज भी वही बनी है, जो स्थापना के समय थी। रेल के उच्चतर कर्मचारी आज भी विदेशी हैं, और रेलवे-संबंधी सारा सामान योरप से ही आता है।

अन्य देशों में रेलों का प्रबंध

यहाँ पर यह भी उचित प्रतीत होता है कि दो शब्द अन्य देशों की रेलों की अवस्था पर लिख दिए जायँ। सबसे पहले हम बेलजियम-देश को ही लेते हैं। लीग के प्रोफ़ेसर महीम ने लिखा है कि जिस दिन से बेलजियम की रेलों का प्रबंध सरकार ने अपने हाथ में ले लिया, उस दिन से जन-साधारण को, विशेष कर ग़रीब प्रजा को, इतना लाभ पहुँचने लगा कि वह अनुमान के बाहर है। किराया इतना सस्ता हो गया है, माल-भाड़ा इतना कम कर दिया गया है कि उसके सामने रेलों की आय से जो आर्थिक लाभ हो रहा है, उसकी कोई परवा ही नहीं करता। स्विट्ज़रलैंड की रेलों की भी यही अवस्था है। विदेशी पंजे से बचाने के लिये ही वहाँ की सरकारों ने रेलों का प्रबंध अपने हाथ में ले लिया है। जर्मनी की रेल-व्यवस्था का इतिहास और भी कौतूहल-जनक है। किसी समय जर्मनी की रेलवे राज्य की संपत्ति थी; पर अब वह राष्ट्र की संपत्ति हो गई है। राष्ट्र की ओर से रेलों का प्रबंध देखने के लिये एक मिनिस्टरी बोर्ड बना है। उसका प्रधान राष्ट्रीय सरकार की सभा का एक सदस्य है। इस बोर्ड के हाथ में रेलों का सारा इंतिज़ाम, देखभाल, कर्मचारियों को रखना, रेल की पूँजी तथा आय-व्यय सँभालना और किराए की दर नियत करना है। प्रत्येक लाइन के लिये एक डाइरेक्टर है, जो एक मिनिस्टरी बोर्ड के अधीन है। प्रत्येक डाइरेक्टर की सहायता के लिये एक कमेटी बनी है, जो भिन्न-भिन्न कार्यों

की देखरेख करती है। इस कमेटी की स्थापना केवल दो अभिप्रायों से की गई है। एक तो यह कि रेलवे के कर्मचारी किसी तरह की मनमानी कारवाई न करने पावें, और दूसरे यह कि आर्थिक दृष्टि से किसी के साथ ज्यादती या रियायत न होने पावे, तथा किराए इस तरह रक्खे जायँ कि भिन्न-भिन्न अवस्था के लोगों को समान सुविधा मिलती रहे। इस देश में भी इस समय इसी तरह के प्रबंध की आवश्यकता है। आजकल तो दूना किराया देकर कुछ लोग दसगुना आनंद लूटते हैं, और बेचारे ग़रीब बैठने-भर के लिये भी जगह नहीं पाते!

कंपनियों की योग्यता

जो लोग इस बात के पक्षपाती हैं कि रेलों का प्रबंध सरकार के हाथ में नहीं कंपनी के ही हाथ में रहना चाहिए, उन लोगों ने अंकों द्वारा यह दिखलाने का यत्न किया है कि जो रेलें स्टेट के हाथ में हैं, उनका व्यय कंपनी के प्रबंध में स्थित रेलों से कहीं अधिक है। उन लोगों को यह बतला देने की आवश्यकता है कि इस बहुव्यय का कारण प्रबंध की योग्यता नहीं है। इसका एक कारण तो कोयले की महँगी है। अवध-रुहेलखंड रेलवे की लाइनें कोयले की खानों से कहीं दूर हैं। उन्हें यहाँ से कोयला ढोकर इन सुदूर प्रदेश में ले जाना पड़ता है। इससे यह ख़र्च भी उसी में शामिल होकर व्यय की रक़म को बढ़ा देता है। ईस्ट इंडियन रेलवे को इस बात का लाभ है कि कोयला उसे घर पर ही मिल जाता है। अब ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवे की बात लीजिए। हर तरह की सुविधाएँ होने पर भी कार्यकर्ताओं की अयोग्यता और फ़िज़ूलख़र्ची के कारण इन्हें लाभ विशेष नहीं होता। कंपनी-प्रबंध के हिमायतियों का कहना है कि कोयले के कारण यदि यह बात होती, तो ईस्टर्न बंगाल रेलवे को लाभ क्यों नहीं होता? इस लाइन को कोयला तो घर बैठे मिल जाता है? इस संबंध में इन महानुभावों को यह स्मरण रखना चाहिए कि एक तो ईस्टर्न बंगाल रेल की लाइनें बरसात में इतनी ज्यादा टूटा करती हैं कि उनकी मरम्मत में ही बहुत ख़र्च पड़ जाता है; दूसरे अधिकांश माल जो इस लाइन से आता है, वह पाट का हलका माल होता है। इससे किराया बहुत ही कम मिलता है। यदि ईस्ट इंडियन रेलवे की भाँति इस लाइन को भी वज़नी माल ढोने का मौक़ा मिले, तो इसे भी बहुत अधिक लाभ हो सकता है।

इस संबंध में हम अपनी ओर से अधिक लिखना नहीं चाहते। आकवर्थ-कमेटी की रिपोर्ट से ही कुछ अंश उद्धृत कर देना काफ़ी होगा। उक्त कमेटी ने लिखा है—"हम लोगों ने अनुसंधान किया, तो मालूम हुआ कि जो लाइनें स्टेट के हाथ में हैं, उनमें भी सुधार और उन्नति का उतना ही चाव है, जितना कंपनी के प्रबंध की लाइनों में।" यह परिणाम भारत-सरकार के उस ख़रीते से बिलकुल मिलता-जुलता है, जो इस संबंध में उसने १९१७ के अगस्त-मास में भारत-मंत्री के पास भेजा था। उसमें भी यही बात लिखी थी, और वर्तमान रेलवे-बोर्ड के सदस्यों का भी यही मत है।

इस संबंध में इससे अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। संक्षेप में अब यह लिख देने की आवश्यकता है कि ग्रेट इंडियन पेनिनसुला और ईस्ट इंडियन रेलों का इंतिज़ाम स्टेट को अपने हाथ में ले लेना चाहिए। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि निकट-भविष्य में इस व्यवस्था से किसी विशेष लाभ की संभा-

वना नहीं है; क्योंकि न तो भारत-सरकार ही भारतीय जनता की हित-कामना करती है, और न रेलवे के संचालक ही भारतीय हैं। और, नई कंपनी भी—जिसकी स्थापना होने की संभावना है—अँगरेज़ों की ही है। कारण, इसके संचालक अधिकतर अँगरेज़ हैं। यह प्रबंध केवल भविष्य के लाभ के लिये स्वीकार किया जाता है। यदि भारतीयों के भाग्य से किसी दिन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई, तो उस दिन इस व्यवस्था का वास्तविक लाभ देखने में आवेगा। इस समय तो भारतीयों का उतना ही अधिकार रहेगा, जितना पहले था, और उसी तरह वे उच्च नौकरियों से भी वंचित रहेंगे।

रेलों को वास्तव में भारतीय बनाने का यह अभिप्राय है कि संपूर्ण प्रबंध भारतीय कर्मचारियों के हाथ में हो, और समस्त साज-सामान इसी देश का बना हो। भारत की विस्तृत भूमि में धन-जन की इतनी कमी नहीं है कि रेलों का प्रबंध तक न हो सके। खनिज पदार्थ, जो रेलों के लिये आवश्यक हैं, बहुतायत से मिल सकते हैं। कंपनी और स्टेट को उचित था कि इनका उपयोग कर यहीं लोको-मोटिव आदि बनवाने का यत्न करते, और भारतीयों को इस बात की शिक्षा देकर उन्हें योग्य बनाते। पर उन्हें यह कभी अभीष्ट नहीं था; क्योंकि इससे विलायतवालों की घोर क्षति होती।

भारत तथा भारतीय जनता का हित भारतीय रेलें स्टेट के अधिकार में आ जाने और उन पर बड़ी व्यवस्थापक सभा का शासन रहने में ही है। व्यवस्थापक सभा को इस प्रबंध का भार भारतीयों के हाथ में देने का यत्न करना चाहिए।

छविनाथ पांडेय

चिंतिता

नदी-तीर व्याकुला शिथिल-सी प्रिय शृंगार उतार—
शिला-खंड पर कौन मौन हो बैठी है उस पार?
ढुलक रही मुरझे कपोल पर गर्म अश्रु की धार;
भीग रहा उर, छिन्न हो गया है प्रफुल्लता-हार।
कर निशीथ-चिंता बाला ने तड़प कर दिया भोर;
किसी ओर भी सफल कामना का न मिल रहा छोर।
सघन घनों में चमक गई थी मिलन-तड़ित् उस रोज़;
अलसाई आँखें करती हैं जीवन-धन की खोज।
दिखती नहीं शुष्क अधरों में वह पिछली मुसकान;
शरच्चंद्रिका-सी छवि उसकी अहो, हो गई म्लान।
आज ढह गए सौख्य-सदन वे, हृत्तल हुआ मसान!
श्याम-विरह में जले जा रहे वियोगिनी के प्रान।
वृंदावन की बीथी भूली, व्रज है कोसों दूर,
भटकेगी किस मौन-मार्ग में वह छवि-छटा विसूर?
यहाँ कौन सुनता है उसके ऊँचे-ऊँचे चाव?
इकटक जल-तरंग में अपने बहा रही है भाव।
नलिनी को अब कहाँ सामने इसके आती लाज़?
नीड़ों में विहंग-दल उसकी हँसी उड़ाता आज!
अपनी चालों पर मतवाला करता नृत्य मराल;
भरती है चौकड़ी मृगावलि चतुर खेलती चाल।
कितनी तीव्र लालसा इसके होगी, हे भगवान!
असमय में क्यों मुरझाती है यह लतिका हैरान?
रह-रह गूँज रहे कानों में वे अतीत के गान,
एक बार भी क्यों न सुनाती मुरली मीठी तान?
इस निर्जन प्रदेश में, पकड़े ग्वाल-सखों का छोर,
आँख-मिचौनी खेल रहे हैं किस तम में चित-चोर?
इसे जलाने के हित अथवा, वन पपिहा निरुपाय,
प्राणों के प्यासे रटते हैं श्याम 'पी कहाँ' हाय!
अपना सुंदर भवन छोड़कर आई इतनी दूर;
फिर भी यहाँ कहाँ कल पाती? है चिंता में चूर।
कितनी ही कल्पना उठाकर बनती है अनजान;
होती है निराश भावों से और अधिक हैरान।
क्यों इसने स्वीकार किया है यह पागल व्यवसाय?
इसे कौन-सी व्याकुल-धारा बहा रही है, हाय!
किस नाटक के वह नटनागर बने अनोखे पात्र;
आशाओं के चित्र हो रहे हैं मरीचिका-मात्र।

"गुलाब"

सेनापति का शीत-वर्णन

कविवर सेनापति कान्यकुब्ज ब्राह्मण, दीक्षित थे। वृद्ध होने पर क्षेत्र-संन्यास लेकर वृंदावन में रहने लगे थे। कवित्त-रत्नाकर में सेनापतिजी ने अपने पितामह, पिता और गुरु के नाम लिखे हैं। उससे यह भी पता चलता है कि आपका निवास-स्थान गंगाजी के निकट ही कहीं था। सेनापतिजी के एक पद्य से यह सूचित होता है कि मुसलमानों के शासन-काल में वह कोई सरकारी नौकर थे। आप श्रीरामचंद्रजी के बड़े भक्त थे। एक स्थल पर सेनापतिजी ने लिखा है—

"बारानसी जाय मनकरनी अन्हाय मेरो,
शंकर सों राम-नाम पढ़िबे को मन है।"

सेनापति ने अपनी कविता की स्वयं जी भरकर प्रशंसा की है! उनका ऐसा करना 'आत्मस्तुति' भले ही कहा जाय, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि वास्तव में उनकी कविता परम प्रशंसनीय है। पंडितराज जगन्नाथ आदि और भी अनेक बड़े-बड़े कवियों ने अपनी कविता की प्रशंसा की है, इसलिये सेनापतिजी के इस कार्य में कोई नवीनता भी नहीं है। आपकी कविता प्रायः शुद्ध व्रज-भाषा में है। उसमें अनुप्रास और यमक की अच्छी छटा देख पड़ती है। रूपकों और उपमाओं का भी आपने खूब आदर किया है। श्लेष-पूर्ण कविता सेनापतिजी की एक विशेषता है। 'कवित्त-रत्नाकर' के एक पूरे तरंग ही में श्लेष-पूर्ण कविता है। आपने अपने छंदों के चोरी हो जाने के डर से प्रायः प्रत्येक छंद में अपना नाम रख दिया है। सेनापतिजी के 'काव्यकल्पद्रुम'-नामक ग्रंथ का अभी तक कोई पता नहीं लगा। 'कवित्त-रत्नाकर' की एक हस्त-लिखित प्रति मेरे पुस्तकालय में मौजूद है। उसकी एक अन्य प्रति का भी पता लग रहा है। उसमें अधिक छंद होने का अनुमान किया जाता है।

'माधुरी' के गत ज्येष्ठ के अंक में कविवर सेनापतिजी का 'ग्रीष्म-वर्णन' दिखलाया जा चुका है। आज पाठकों के मनोरंजनार्थ यहाँ पर उनके शीत-ऋतु-संबंधी कुछ पद्य देने का विचार है। आपने अपने षट्ऋतु-वर्णन में प्राकृतिक शोभा का बड़ा मनोहर चित्रण किया है।

आइए, सेनापतिजी की शीत-ऋतु की कविता का रसास्वादन कीजिए। अच्छा, तो शरद् ही से शुरू कीजिए।

पावस का अवसान है। नीले आकाश में शशधर की अपूर्व शोभा दिखलाई पड़ती है। सरोवरों का जल निर्मल हो गया है। उनमें विकसित कमल कैसे मनोहर हैं! प्रकृतिदेवी की छटा दर्शनीय है!

सेनापतिजी ने इस समय जिस शोभा का प्रसार देखा, वह यह है—

"पावस-निकास, ताते पायो अवकास,
भयो जोन्ह को प्रकास, सोभा ससि रमनीय को;
बिमल अकास, होत बारिज बिकास,
'सेनापति' फूले कास, हितु हंसन के हीय को।
छिति न गरद, मानो रँगे हैं हरद,
सालि सोहत जरद, को मिलावै हरि पीय को;
मत्त हैं दुरद, मिट्यो खंजन-दरद,
रितु आई है सरद सुखदाई सब जीय को।"

शरद् के प्रारंभ में कभी-कभी कुछ बादल इकट्ठे हो जाते हैं, और हलकी वृष्टि भी हो जाया करती है। पर इन मेघों और वर्षा-काल के बादलों में बड़ा अंतर होता है—

चिंता-मग्ना

[चित्रकार—श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू]

कर को बीजन कर रह्यो, पिय-सुमिरन के साथ—

सोचति नारि घरी-घरी कब धौं मिलिहैं नाथ

N. K. Press, Lucknow.

"खंड-खंड सब दिगमंडल जलद सेत,
'सेनापति' मानौ शृंग फटिक-पहार के।
× × ×
सलिल सहल मानौ सुधा के महल, नभ
तूल के पहल किधौं पवन-अधार के।"

शरद्-ऋतु की रात्रि का दृश्य है। चाँदनी की सफ़ेद चाँदनी पृथ्वी पर बिछी है। सघन वनों में मालती और सरोवरों में कुमुदिनी के फूल खिल रहे हैं। अंधकार का कहीं नाम-निशान नहीं रह गया!

सेनापतिजी का यह अपूर्व प्राकृतिक वर्णन देखिए—

"कातिक की राति थोरी-थोरी सियराति,
'सेनापति' है सोहाति सुखी जीवन को गन है;
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन वन,
फूलि रहे तारे, मानौ मोती अनगन है।
उदित विमल चंद, चाँदनी छिटिकि रही,
राम को-सो जसु अध-ऊरध नगन है;
तिमिर-हरन भयो सेत है बरन, सब
मानहु जगत छीर-सागर-मगन है।"

आहा! सुंदर शारदीय-चंद्रालोक से अलंकृत रजनी का कैसा सजीव चित्र है! कैसी मधुर शब्दावली और कैसा स्वाभाविक वर्णन है!

अब शीत का रंग देखिए। हिमालय के शिखर से उतरती हुई हिम (शीत और बर्फ़) की प्रबल सेना आगे बढ़ती चली आती है—ऐसा सुनकर गरमी (उष्णता), 'सूर' (सूर्य और शूर-वीर) को पीछे छोड़कर, भाग खड़ी हुई! बेचारी को कहीं किसी ने भी आश्रय नहीं दिया! 'रुई' ने भी उस भयभीता को इस दुरवस्था में अधिक काल के लिये प्रश्रय देने का साहस नहीं किया। सब ओर से निराश होकर उसने स्त्री के 'ऊँचे कुच-कनकाचल' पर मज़बूत क़िलेबंदी करके 'शीत' से संग्राम छेड़ा है—

"सूरै तजि भाजी बात 'कातिक मैं जब सुनी,
हिम की हिमाचल ते चमू उतरति है।
× × ×
पूस मैं तिया के ऊँचे कुच-कनकाचल मैं,
गढ़वै गरम भई सीत सों लरति है।"

और भी—

"धायो हिम-दल हिम-भूधर ते 'सेनापति',
अंग अंग जग थिर जंगम ठिरत है।
× × ×
उत्तर ते भाजि सूर ससि को सरूप करि,
दच्छिन के छोर छिन अधिक फिरत है।"

शीत-सेना के प्राबल्य से भयभीत भगवान् मरीचिमाली ने हतप्रभ होकर, उत्तर की ओर से किसी तरह भागकर, दक्षिण-दिशा में कुछ समय के लिये अड्डा जमाया है। शीत-काल में सूर्य उत्तरायण से दक्षिणायन में आते हैं, यह प्रसिद्ध ही है।

बड़े ज़ोर का जाड़ा पड़ रहा है। तुषार भी प्रबल वेग से गिरता है। लोग परेशान हैं। सरदी से ठिठुरकर हाथ-पैर बेक़ाबू हो गए हैं। भगवान् भुवन-भास्कर तेजहीन-से हो गए हैं। धूप की प्रखरता नष्ट हो गई है। जान पड़ता है, शीत से बचने के लिये सूर्य ने भी अपने किरण-रूप हाथ समेटकर आकाश-रूपी वस्त्र में छिपा लिए हैं! शीत से पीड़ित व्यक्ति का यह काम स्वाभाविक ही है—

"जोर जड़कालो आयो, परत प्रबल पालो,
लोगनि को लालो परो, जियैं कित जाइकै;
ताप्यो चाहै बारि कर तिन न सकत टारि,
मानौ हैं पराए ऐसे भए ठिठुराइकै।
चित्र को-सो लिख्यो तेजहीन दिनकर भयो;
अति सियराइ घाम गयो पतराइकै;
'सेनापति' मेरी जान सीत के सताए सूर,
राखे हैं सकोरि कर अंबर छिपाइकै।"

आलोचना का उत्तर

(आश्विन की संख्या से आगे)

(४)

छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत, अति दीनता दिखाइ ;
बलि-बामन को ब्यौंत सुनि, को बलि तुम्हें पत्याइ ?

आर्या

निहितार्द्धलोचनायास्त्वं तस्माहरसि हृदयपर्यंतम् ;
न सुभग समुचितमीदशमंगुलिदाने भुजं गिलसि ।

उपर्युक्त दोहे तथा आर्या की तुलना से असंतुष्ट होकर लक्ष्मणसिंहजी लिखते हैं—"आर्या में जिस ख़ूबसूरती से 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि' का रूप दिखलाया गया है, दोहे में उसका आभास भी नहीं। × × × 'निहितार्द्ध-लोचना' × × × की समता के लिये 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि' बहुत ही उपयुक्त, उत्तम और मनोहारी कथन है। परंतु 'छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत' की तुलना के लिये दोहे में कोई शब्द नहीं। × × × आधी आँख देख लेने-भर से हृदय पर अधिकार करने की अभिलाषा का 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि' से बहुत मेल खाता है।" 'अति दीनता दिखाइ, छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत' का भाव अधिक सुंदर तथा सौहार्द-सूचक है। यहाँ राधा की सखी कृष्ण (विष्णु) के एक पुराने चरित्र का परिचय देकर, एक सुविख्यात घटना का उदाहरण देकर, कृष्णजी से कह रही है—'माफ़ कीजिएगा, हम आपका विश्वास नहीं कर सकतीं ; आपने ही तो दीन होकर पहले उँगली छुई, फिर पहुँचा पकड़ा; बलि-बामन की करतूत को सुनकर आपका कौन विश्वास करे ? अर्थात् आपने जब से वामन-रूप रखकर बेचारे बलि को छल लिया, तब से आप पर विश्वास नहीं होता। अतएव क्षमा कीजिएगा। आप तो राधाजी की उँगली छूकर पहुँचा पकड़ना चाहते हैं; तनिक दर्शन और संभाषण-रूपी उँगली छूकर उनके समस्त मन, प्राण आदि पर अधिकार जमाना चाहते हैं। आप पहुँचा पकड़ने की चेष्टा न करें ; क्योंकि वामन-रूपी आपका छल हमें याद है। कहीं आप प्यारी सखी राधा के साथ ऐसा दुर्व्यवहार न कर बैठें (फिर-फिरकर पीठ भी न दिखावें) ; अतः आपको कौन पतियाय ?'

पाठकगण, आप दोहे के चमत्कार पर तनिक विचारिए। दोहे में बलि-वामन की कथा से बताया गया है कि दोहे की नायिका और नायक कृष्ण और राधा के अतिरिक्त कोई और नहीं है। दूसरे बलि-वामन के उदाहरण से साफ़ बतला दिया गया है कि तुम (कृष्ण) विश्वास-पात्र नहीं हो। तुम तो पहले अति दीन, नम्र बन जाते हो, और फिर सीधी तलवार चला देते हो, कठोर-पाषाण-हृदय हो जाते हो ; पहले उँगली छूते हो—स्पर्श करते हो, फिर पहुँचा पकड़ लेते हो। आहा ! "छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत, अति दीनता दिखाइ" में कितना तकल्लुफ़, कितनी नज़ाकत और नम्रता है, इसको सहृदय का हृदय या कोई प्रेमी जन ही समझ सकता है ! कहाँ धीरे-धीरे कोमल उँगली का स्पर्श करना, और कहाँ कठोर हाथों से कोमल कलाई पर क़ब्ज़ा कर लेना ! एक ही पद में नम्रता और कठोरता की परा काष्ठा हो गई है ! और, "अति दीनता दिखाइ" ने तो "छ्वै छिगुनी"-रूपी अँगूठी में मणि की पदवी पाई है। परंतु 'आर्या' तो एक झमेले में फँस गई। लक्ष्मणसिंहजी के नए भाष्य ने तो उस बेचारी को गोरख-धंदे में फँसा दिया। 'आर्या' में आधी नज़र से देखा है नायिका ने, परंतु उसके हृदय पर अधिकार करना चाहता है नायक। अर्थात् उँगली तो छुई है नायिका ने, पर पहुँचा पकड़ने की कोशिश कर रहा है नायक ! कैसी अच्छी शराफ़त है ! "अंगुलिदाने भुजं गिलसि" का प्रयोग (उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना) एक ही पुरुष के लिये उपयुक्त है ; परंतु 'आर्या' के पहले पद में उँगली पकड़ी है नायिका ने, और पहुँचा पकड़ने की चेष्टा कर रहा है नायक ! पूर्वापर-विरोध दोष है—अर्थ का अनर्थ है ! प्रयाग में गंगा और यमुना, मिलने के बजाय, विपरीत दिशाओं को बह निकलीं। हाय ! 'आर्या' के कवि से कैसी भद्दी भूल हो गई !

लक्ष्मणसिंहजी फ़रमाते हैं—"अंगुलिदाने भुजं गिलसि से 'छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत' में महाविरे की चुस्ती हमें नहीं देख पड़ती।" बारीक बातें और बारीक चीज़ें तीक्ष्ण बुद्धि और सूक्ष्म दृष्टि से देख पड़ती हैं। 'छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत' में महाविरा चुस्त ही नहीं है, वह 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि' से कहीं श्रेष्ठ है। दोहे में उँगली

के कोमल स्पर्श से कोमलता, नम्रता, तकल्लुफ़ और नज़ाक़त टपक रही है, और 'पहुँचो गिलत' कठोरता और ढिठाई का साफ़-साफ़ परिचय दे रहा है। फिर 'अति दीनता दिखाइ' ने तो 'छ्वै छिगुनी' से मिलकर ग़ज़ब ही कर दिया है। वह चमत्कार 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि'-जैसे रूखे शब्दों में कहाँ !

इसके आगे चलकर श्रीलक्ष्मणसिंहजी ने 'आर्या' का भावार्थ निम्न-लिखित रीति से किया है—"नायिका आपको देखते ही अपना हृदय सौंप चुकी है, अतः अब आपको भी उस पर अवश्य ही कृपा करनी चाहिए।" यदि नायिका नायक को देखते ही उसे अपना हृदय सौंप चुकी है, तो 'तस्याहरसि हृदयपर्यंतम्' की उक्ति किसके लिये है ? क्या नायिका की सखी यह श्रीगोवर्द्धनाचार्य के लिये तो नहीं कह गई ? और, यदि नायिका की सखी नायक से नायिका के ऊपर कृपा करने के लिये कहती है (अर्थात् वह भी उससे प्रेम करे, उसके पास जाय ; क्योंकि वह तो अपना हृदय सौंपे बैठी है), तो 'न सुभग समुचितमीदृशमंगुलिदाने भुजं गिलसि' यह किसके प्रति कहा गया है ? फिर उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ने की समस्या किस पर घटाई जायगी ? कारण, 'आर्या' में नायिका की सखी ने नायक से 'तस्याहरसि हृदयपर्यंतम्' कहकर उसको नायिका का पहुँचा पकड़ने से रोका है। परंतु श्रीलक्ष्मणसिंहजी के भावार्थ में नायिका की सखी ने नायक से 'आप भी कृपा करिए' कहकर नायक को पहुँचा पकड़ने के लिये निहोरा है! 'आर्या' और लक्ष्मणसिंहजी के बीच घोर संग्राम छिड़ गया। पर मज़ा तो यह है कि लक्ष्मणसिंहजी 'आर्या' के पूर्ण पक्षपाती हैं। यह तो वही बात हुई कि कोई ईसाई 'सत्यार्थ-प्रकाश' के मनमाने अर्थ करके कहे—"देखो, स्वामी दयानंद पक्के ईसाई थे। वह प्रभु ईसा के परम भक्त थे। उन्होंने जगह-जगह बाइबिल का समर्थन किया है।"

पाठकगण, आप श्रीलक्ष्मणसिंहजी से उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान करने की प्रार्थना करें। हमारी लेखनी में इतनी शक्ति नहीं है कि दोहे की पूर्ण श्लाघा कर सके। दोहे का अर्थ असीम है। यदि दोहे की उक्ति नायिका की ओर से लगाई जाय, तो दोहा हृदय की कली-कली को खिला देता है—भूका-प्यासा भी तृप्त हो जाता है। राधाजी व्यंग्य के साथ ताना मारती हैं—किसी हँसी के विषय पर कृष्णजी को छेड़ती हैं। राधा ने कृष्णचंद्र की किसी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है। रसमयी क्रीड़ाओं, लीलाओं तथा हाव-भावों में से एकआध कृष्णजी के अनुरोध से वह कर जाती हैं। कृष्णजी तन्मय होकर जब कुछ और अधिक कराना चाहते हैं, तब राधाजी मान करके ताना मारती हैं—'ज़्यादा मुँह ही लगे जाते हो ?' अर्थात् 'छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत, अति दीनता दिखाइ !' कितना सुंदर भाव है। कहिए, हृदय पसीजा या नहीं ? मगर ज़रा 'आर्या' की नायिका से 'आर्या' कहला दीजिए। कैसा करुणा-जनक रहस्य उपस्थित हो जाता है। आँखों से आँसू वह निकलते हैं; खुशी ग़म में बदल जाती है; वीणा की मधुर ध्वनि को मृत्यु का हाहाकार दबा लेता है; बीभत्स दृश्य आँखों के सामने नाचने लगता है; समस्या विषम हो जाती है। 'आर्या' का नायक किसी और स्त्री से आँख लड़ा बैठा है, और अब उसके हृदय पर अधिकार जमाने की चेष्टा कर रहा है। नायिका भी जान गई है कि वह बाला मुझसे अधिक सुंदर है ; तभी तो नायक उसके लिये बेचैन है। नायिका का सौंदर्य चंद्रमा के निकलने पर तारों के समान मलिन हो गया है। अतः नायिका दुखी और निराश-सी होकर रोती हुई विनय करती है—"आधी नज़र से कहीं तुम्हें उसने देख-भर लिया है; इतने ही पर तुम उसके हृदय तक पर क़ब्ज़ा करना चाहते हो ? सुभग ! यह ठीक नहीं है (मैं हाथ जोड़ती हूँ, ऐसा न करो)—उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ते हो।" ऐसी दशा में 'आर्या' की नायिका दया के योग्य है !

दोहे की नायिका और नायक हर हालत में कृष्ण और राधा के अतिरिक्त कोई भिन्न व्यक्ति नहीं ठहरते ; परंतु आर्या की नायिका की उक्त उक्ति के अनुसार नायक कोई कामी और नीच पुरुष जान पड़ता है, जैसे पर-स्त्रीगामी पुरुष हर नगर में देख पड़ते हैं। वह नायिका भी कोई साधारण स्त्री ही जान पड़ती है, जो इस नवीन बाला के रूप के सामने लुप्तप्राय होना चाहती है। अस्तु। श्रीलक्ष्मणसिंहजी ने 'आर्या' के नायक और नायिका को कृष्ण और राधा सिद्ध करने के लिये कामशास्त्र की बड़ी प्रबल युक्ति से काम लिया है। हम पाठकों के विनोदार्थ उसे उद्धृत किए देते हैं—

"आधी नज़र से देखते ही हृदय का अपहरण हो जाना नायक के सौंदर्यातिशय को स्पष्ट सूचित करता है। इतना अधिक सौंदर्य, जिस पर ज़रा-सी निगाह पड़ते ही

मन बेक़ाबू हो जाय, सिवा श्रीकृष्ण के अन्यत्र नहीं हो सकता।" शाबाश! आपने सारे कामशास्त्र का सारांश यहाँ दे दिया। हम यहाँ लक्ष्मणसिंहजी की प्रशंसा किए विना नहीं रह सकते। यदि वद्वैत के सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक को विष्णु-रूप माना जाय, तो 'माधुरी' के पृष्ठ, लक्ष्मणसिंहजी, उनकी क़लम-दावात तथा सारे स्त्री-पुरुष विष्णु-रूप (राधा-कृष्ण) ही ठहरते हैं। प्रत्येक कविता तथा गाथा आदि के नायक और नायिकाएँ कृष्ण-राधा से भिन्न हो ही नहीं सकतीं। ऐसे सिद्धांत के आधार पर यह लिखना कि 'इतना अधिक सौंदर्य, सिवा श्रीकृष्ण के, अन्यत्र नहीं हो सकता', निरर्थक हो जाता है। यदि यह माना जाय कि चूँकि आधी नज़र से देखते ही हृदय नायक पर मुग्ध हो गया (यद्यपि आर्या में इसका वर्णन नहीं है। हाँ, साधारण प्रेम का अनुमान किया जा सकता है), अतः नायक अति सुंदर था, और इतनी सुंदरता सिवा कृष्ण के और किसी को नसीब नहीं—क्योंकि नायिका आधी नज़र से ही देखकर बेक़ाबू हो गई—अतः आर्या के नायक और नायिका कृष्ण और राधा ही हैं, तो इसके उत्तर में हम यह निवेदन करते हैं कि प्रेम सर्वत्र आधी नज़र में ही होता है। अर्द्ध-कटाक्ष में हृदय मिल जाते हैं, पूरा कटाक्ष तो किसी भी कवि की नायक-नायिकाओं में नहीं हुआ। महाकवि कालिदास के काव्यों में तो राजपुरुषों ने कांताओं के नाम-मात्र कटाक्ष पर ही हृदय अर्पण कर दिया है। अनेक कवियों की अनेक नायिकाएँ कटाक्षों पर मुग्ध हो गई हैं। अनेक दास्तानों में तो इश्क़ यहाँ तक ज़हर उगल गया है कि सोती-सोती शाहज़ादियाँ ख़्वाब में इश्क़ की आग में झुलसने लग गई हैं। संयुक्ता ने तो पृथ्वीराज का चित्र-मात्र ही देखा था; वहाँ तो कटाक्ष की कल्पना भी नहीं हो पाई थी; पर वह चित्र-दर्शन से तन्मय हो गई थी! यदि लक्ष्मणसिंहजी खोज करेंगे, तो सहस्रों अर्द्ध-कटाक्ष के उदाहरण उन्हें मिल जायँगे। क्या वह सबको राधा-कृष्ण मानेंगे? रेखागणित के प्रश्नों को हल करने में जैसी कल्पना का आश्रय लिया जाता है, वैसी कल्पनाओं से श्रीलक्ष्मणसिंहजी कृतकार्य न होंगे। अतः लक्ष्मणसिंहजी इतने घोर पक्षपात का व्यर्थ परिश्रम न करें।

(५)

स्वारथ, सुकृत न, श्रम वृथा, देख विहंग बिचार;
बाज, पराए पानि पर, तू पंछीहि न मार।

आर्या

आयासः परहिंसा वैतंसिकसारमेय तव सारः;
त्वामपहाय विमाज्यः कुरंग एषोऽधुनैवान्यैः।

उपर्युक्त दोहे में बाज़ के ऊपर तथा 'आर्या' में कुत्ते के ऊपर दोषारोपण किया गया है। कुत्ते और बाज़ को समान वृत्तिवाला बताते हुए लक्ष्मणसिंहजी कहते हैं—"जैसे कुत्ता पर-मुखापेक्षी होता है, वैसे ही पालतू बाज़ भी मांस के टुकड़े के लालच से उससे भी चाहे जिस तरह का शिकार पकड़वा लो। × × × वह बेचारा बाज़ भी रस्सी छोड़कर कहाँ जाय? इसलिये बाज़ का भी अनर्थक कार्य इतना आश्चर्यजनक नहीं। इसमें बाज़ और कुत्ता, दोनों समान हैं।" लक्ष्मणसिंहजी ने 'पालतू' विशेषण से बाज़ को कुत्ते के समान निंदित कर्म करने के लिये बेवस सिद्ध करने की यथासाध्य चेष्टा की है। हमारी समझ में प्रत्येक व्यक्ति की, किसी-न-किसी विशेषण का लक्ष्य बनकर ही, पाप की ओर प्रवृत्ति होती है। परंतु अधिक दोषी वही ठहराया जाता है, जो न्यून विवशता के कारण अधिक निंदित कर्म करने लग जाता है। कुत्ता स्वभावतः पालतू जीव है। संसार-भर में कुत्ते मनुष्यों के घरों में ही पलते हैं। जो नहीं पाले जाते, वे भी मनुष्यों से सुपरिचित होते हैं। वे गाँव और क़स्बों में मनुष्य के आश्रित रहते हैं। जिस स्थान पर मनुष्य नहीं रहते, वहाँ कुत्तों का सर्वथा अभाव रहता है। यह बात सिद्ध है कि कुत्ता मनुष्य का आश्रित है। कुत्ते का जीवन मनुष्य के दिए भोजन पर निर्भर है। यों यदि कुत्ता 'आर्या' का उपदेश मान ले, तो वह स्वभावतः अपने स्वामी के घर पर रहकर स्वामिभक्ति करेगा। वह उसकी दी हुई जूठन खाकर स्वामी के घर की रक्षा करेगा; क्योंकि स्वभाव के अनुसार (क्योंकि कुत्ते की जाति का यह स्वभाव है कि जो उसे भोजन दे, या उसको आश्रय देकर पाले, वह उसकी आज्ञा मानता है। वह चोर से घर की रक्षा करना विना सिखलाए ही सीख लेता है। और, जो कुत्ते ग्राम आदि में किसी व्यक्तिविशेष के घर नहीं पलते, वे अशिक्षित होने पर भी, अपने स्वभाव के अनुसार, ग्रामवासियों की आज्ञा का पालन करते हैं। वे उनके जान-माल की चौकीदारी भी करते हैं। जो जिसका स्वभाव होता है, वह दूर नहीं हो सकता, यथा—नीम न मीठी होय, लाख गुड़-घी के सींचे।) वह अपने स्वामी की आज्ञा

मानने और शिकार-जैसा निंदित कर्म करने को भी बाध्य है। यदि कुत्ते ने आर्या का उपदेश मान लिया, तो भी वह शिकार और अपने स्वामी को छोड़कर (यद्यपि यह बात कुत्ते की प्रकृति के विरुद्ध और असंभव है) अन्य ग्रामवासियों का मुखापेक्षी रहेगा। कुत्ता मनुष्य का सन्निकट पड़ोसी और आज्ञाकारी सेवक है। अतः 'आर्या' का उपदेश कुत्ते के लिये मानो ऊसर में बीज बोना है। परंतु बाज़ की दशा इसके विपरीत है। वह कुत्ते की तरह सेवक नहीं, स्वच्छंदचारी है। पंजों में बँधी हुई दुवाल बतला रही है कि उसने अभी हृदय से इतायत मंज़ूर नहीं की; जब अवसर पावेगा, आकाश का रास्ता पकड़ेगा। बाज़ से स्वाभिमान-रक्षा की बहुत आशा है। तभी तो विहारी ने उसको सचेत करने के लिये कहा है—"बाज, पराए पानि पर, तू पंछीहि न मार।" बाज़ दोहे के उपदेश का अधिकारी है, पात्र है। परंतु कुत्ते की दशा वैसी नहीं है। आपका यह कथन कि बाज़ भी पालतू होने के कारण चिड़िया मारने के लिये मजबूर है, बिलकुल निरर्थक है। विवशता में कोई जीव हिंसा करके हिंसा से निवृत्त नहीं हो सकता। परंतु सिंह अपनी इच्छा से स्वच्छंद होकर अनेक मृगों को मारकर भी हिंसा का भागी नहीं होता; क्योंकि हिंसा करना (पराया मांस खाना) सिंह का स्वाभाविक गुण है। किंतु मनुष्य का स्वाभाविक गुण हिंसा नहीं है, चाहे वह कितना ही मजबूर क्यों न हो। अतः बाज़ पराए लिये पक्षी मारने का अपराधी है; क्योंकि पराई सेवा करना उसका स्वभाव नहीं। शायद लक्ष्मणसिंहजी कहें कि बाज़ भी कुत्ते की तरह मांसाहारी जीव है, और इस कारण वह अपने स्वामी को छोड़कर भी पक्षियों को मारेगा ही; वह फिर भी हिंसा-वृत्ति-दोष से मुक्त नहीं हो सकता; ऐसी दशा में विहारी का उपदेश निरर्थक है। इसके उत्तर में हमारा यह निवेदन है कि विहारी बाज़ को हिंसा-वृत्ति से बरजते हैं। उनके दोहे में हिंसा-शब्द का पता तक नहीं है। वह जानते थे कि मांस-भक्षण बाज़ का स्वभाव है। इसी से उन्होंने प्रकृति-विरुद्ध आदेश देने की चेष्टा नहीं की। उनका उपदेश 'स्वारथ, सुकृत न, श्रम वृथा' तथा 'पराए पानि पर' शब्दों तक ही परिमित है। विहारी बाज़ को स्वच्छंदचारी बताते हुए उपदेश देते हैं—"ऐ बाज़, तू पराए हाथ पर (पराए लिये) पक्षियों को मत मार—इसमें (पराधीन होकर दूसरे के लिये शिकार मारने में) न तो तेरा स्वार्थ है, न तेरी कुछ प्रशंसा है; फिर क्यों वृथा श्रम करता है?" कैसा स्वाभाविक, संगत उपदेश है! परंतु 'आर्या' ने प्रकृति-विरुद्ध उपदेश देने की चेष्टा की है। 'पर-हिंसा'-शब्द रखकर ही कुत्ते को प्रकृति के विरुद्ध उपदेश दिया गया है। वह स्वभावतः पराए लिये नहीं, तो अपने लिये, अवकाश मिलने पर, ज़रूर ही हिंसा करेगा। कुत्ता अपने स्वभाव को छोड़कर 'आर्या' का उपदेश मानने के लिये मजबूर किया गया है। 'आर्या' ने कुपात्र को उपदेश देने की चेष्टा करके धोका खाया है। आगे चलकर लक्ष्मणसिंहजी कहते हैं—"आर्याकार कुत्ते को पाप से निवृत्त करते हुए स्पष्ट बतलाते हैं कि शिकार पकड़ने या मारने में किया हुआ तेरा परिश्रम वृथा है। तेरे हिस्से में केवल पर-हिंसा है। कारण, इस हरिण का मांस, जिसे तू मार रहा है, अभी तुझको दूर हटाकर, लोग बाँट लेंगे; तू व्यर्थ ही क्यों पाप-भागी बनता है? परंतु विहारीलाल बाज़ से 'स्वारथ, सुकृत न, श्रम वृथा' कहकर यह नहीं बता सके कि इस काम में क्यों स्वार्थ और सुकृत नहीं है, और क्यों परिश्रम व्यर्थ है। उन्होंने बाज़ को सलाह-भर दी है। बाज़ यदि इतना विचारवान् होता, तो उसकी ऐसे पाप-कार्य में प्रवृत्ति ही क्यों होती?" 'पराए पानि पर' बीज-रूप से पूर्णतया बाज़ को पक्षी-वध से बरज रहा है। बाज़ अनेक बार अपने स्वामी के लिये पक्षी मार चुका है, और स्वामी ने उसे उन पक्षियों के मांस से वंचित रक्खा है। तभी तो विहारी कहते हैं—"ऐ बाज़, तू पराए लिये पक्षी मत मार।" 'पराए पानि पर' में कितना सारगर्भ अर्थ निहित है, इसे मर्मज्ञ पाठक स्वयं जानते होंगे। परंतु 'आर्या' में कुत्ता आज ही शिकार के लिये गया है। उसने जाकर हरिण की गरदन पकड़ी ही है, अर्थात् वह हरिण का वध कर ही रहा है कि इतने में 'आर्या' उपदेशक का लबादा लादकर झट-से आ धमकी, और लगी कहने—"कुत्ते! इस हिंसा से बाज़ आ। जिसे तू मार रहा है, उसे ये सब, तुझे हटाकर, बाँट लेंगे।" कुत्ते को इसका व्यक्तिगत अनुभव कुछ भी नहीं है कि हरिण उससे छीना जायगा, या नहीं। वह 'आर्या' के उपदेश पर कैसे विश्वास करे कि उसका कथन सत्य है? यदि 'आर्या' कुत्ते को अनेक शिकारों के बाद उपदेश देती, तो शायद कुत्ते पर कुछ प्रभाव पड़ता। हम लक्ष्मणसिंहजी से पूछते हैं कि यदि

कुत्ता कहे कि आर्या, तुम झूठी हो; मेरा स्वामी मुझसे हिरन नहीं लेगा, तो आप 'आर्या' की ओर से क्या सफ़ाई पेश करेंगे? कविवर विहारीलाल इस दोष से मुक्त हैं। वह 'आर्या' की तरह कल्पित भविष्यवाणी नहीं करते। वह तो दो शब्दों में—'पराए पानि पर'—ही बाज़ को विस्तार-पूर्वक संपूर्ण उपदेश दे गए हैं। उन्होंने बाज़ को पक्षी-वध से बाज़ रहने के लिये, उसकी प्रकृति के अनुकूल, युक्ति-पूर्ण कारण बताया है, जिसमें पीछे से शंका करने की किसी को आवश्यकता ही न पड़े। मतलब कितना सूक्ष्म और उपदेश कितना पूर्ण है! अब पाठकगण समझ गए होंगे कि विहारी का दोहा कितना मुकम्मिल और सारगर्भ है। उसके सम्मुख 'आर्या' का उपदेश अनेक शंकाओं से परिपूर्ण है।

(क्रमशः)

हरगुलाल वाशिष्ठ

बाबू जगन्मोहन वर्मा
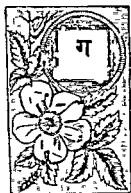
गत मास में श्रीयुत बाबू जगन्मोहन वर्मा की अचानक मृत्यु के कारण हिंदी-संसार को जो क्षति पहुँची, वह अकथनीय है। अभी हिंदी-साहित्य को आपसे बहुत कुछ आशा थी। पर ईश्वर की इच्छा को कौन टाल सकता है? आपका जन्म, विक्रम-संवत् १९२७ में, आश्विन-कृष्णा चतुर्दशी को, बस्ती-ज़िले की डुमरियागंज-तहसील के अंतर्गत देवीपार-गाँव में, हुआ था। देवीपार में कायस्थों की पुरानी बस्ती है। वर्माजी के पूर्वजों ने प्रायः दो-ढाई सौ वर्ष पहले इसे बसाया था। प्राचीन समय में यहाँ एक छोटा-सा क़िला था, जिसके खँडहर अभी तक वर्तमान हैं।

आपके पिता श्रीयुत ठाकुर मजराजसिंह घर ही पर रहकर अपनी ज़मींदारी की देख रेख करते थे। आपकी माता नेपाल-राज्य के एक उच्च पदाधिकारी की कन्या थीं। आपके पिता बड़े विद्या-व्यसनी और अरबी-फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता थे। जिस युग में आपका जन्म हुआ, उस समय आपके कुटुंब में अँगरेज़ी पढ़ने की प्रथा न थी; फ़ारसी और अरबी तक शिक्षा समाप्त हो जाती थी। आप पाँच वर्ष की अवस्था में फ़ारसी और उर्दू पढ़ने के लिये मदरसे में बिठाए गए। १६ वर्ष की अवस्था तक आपको घर ही पर फ़ारसी और उर्दू की शिक्षा मिली। उसी अवस्था में आपका विवाह बस्ती-निवासी लाला अयोध्याप्रसादजी की पुत्री से हुआ। अयोध्याप्रसादजी डिपुटी इंस्पेक्टर ऑफ़ स्कूल्स थे। आपने वर्माजी का विद्यानुराग देख उन्हें अपने साथ रखकर पढ़ाना निश्चय किया। वर्माजी बस्ती में उन्हीं के साथ रहकर अँगरेज़ी, गणित तथा हिंदी की शिक्षा पाने लगे। परिश्रम और प्रतिभा के बल से आपने चार ही वर्ष में एंट्रेंस पास कर लिया। फिर फ़ैज़ाबाद के कॉलेज में भरती हुए। यहीं आपको संस्कृत पढ़ने की चाट लगी। पहले आपने यहाँ के पंडितों से वाल्मीकीय रामायण और अष्टाध्यायी पढ़ी। इसके बाद आपको संस्कृत-साहित्य के अध्ययन में ऐसा आनंद आने लगा कि आपने अँगरेज़ी पढ़ना छोड़ दिया, और स्वतंत्र रूप से संस्कृत पढ़ना शुरू किया। वर्माजी को अपने पिता और श्वसुर से विद्याध्ययन में बराबर सहायता मिलती रही।
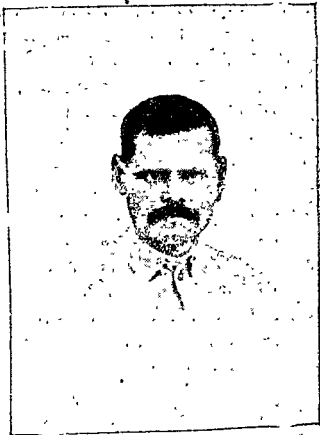
बाबू जगन्मोहन वर्मा

कॉलेज छोड़ने के बाद आपने उत्तर-भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में भ्रमण किया। इस यात्रा में आप व्याकरण, निरुक्त, न्याय, दर्शन, वेदांत, उपनिषद्, संहिता, प्राकृत, पाली, बौद्ध-साहित्य तथा भिन्न-भिन्न प्रांतीय भाषाओं का

अध्ययन करते रहे। बीच-बीच में आप कई जगह सरकारी और ग़ैर-सरकारी नौकरियाँ भी करते रहे। आप ऐसे स्वतंत्र विचार के थे कि कहीं अधिक दिनों तक नौकरी न कर सके।

१९०९ में काशी की नागरीप्रचारिणी-सभा ने कोश का कार्यारंभ किया। तब आप भी उसके संपादन-विभाग में सम्मिलित हुए। कोश का दफ़्तर जब काश्मीर चला गया, तब आप वहाँ न गए। जब सभा ने काशी में कोश का काम फिर शुरू किया, तब आप अपनी पहली जगह पर काम करने लगे, और सन् १९१७ तक करते रहे। इसके बाद एक वर्ष तक प्रयाग के इंडियन-प्रेस में रहकर आपने तुलसीदास के ग्रंथों की खोज की। अंत को आपने, स्वतंत्र रूप से जीविका-निर्वाह करते हुए, काशी में रहना निश्चित किया। इसी विचार से काशी में एक मकान भी बनवा लिया था।

सन् १९२२ में आपके पिता का देहांत हुआ। उनकी मृत्यु से आप बड़े दुखी हुए। परिवार का सारा भार आप ही पर आ पड़ा। चिंताओं के कारण आप बीमार रहने लगे। पहले आप कभी बीमार नहीं पड़ते थे। धीरे-धीरे स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। आप जीवन से हताश होने लगे। इस वर्ष, गत मार्च में, अपने चाचा की मृत्यु का समाचार सुनकर आपने पटने के खड्गविलास-प्रेस से अपने शोक-पूर्ण पत्र में लिखा था—"चाचा भी चल बसे, अब मेरी पारी है। मैं भी अपने अंतिम दिन गिन रहा हूँ।" मंदाग्नि के कारण क्रमशः आपका शरीर क्षीण होने लगा। सब दवाएँ व्यर्थ हुईं। ज्वर भी आने लगा। एका-एक आँत में फोड़ा भी हो गया। अवस्था विशेष शोचनीय हो गई। आप बस्ती के अस्पताल में पहुँचाए गए। डॉक्टर ने कोरा जवाब दे दिया। गत ११ ऑक्टोबर को आप बहुत कमज़ोर हो गए। करवट बदलना भी कठिन था! पर आपका चित्त प्रसन्न था; स्मरण-शक्ति भी ठीक थी। उसी दिन, लगभग १ बजे दिन को, आपके चेहरे की आकृति बदलने लगी। आध ही घंटे के बाद आप इस लोक से बिदा हो गए।

वर्माजी का स्वभाव बड़ा ही सरल था। अहंकार का लेश भी आपमें न था। पर थे बड़े आत्माभिमानी और स्वतंत्रता-प्रेमी। साधारण-से-साधारण मनुष्य से भी मित्रों का-सा व्यवहार रखते थे। आत्मगौरव की रक्षा के लिये बड़े-से-बड़े लोगों को भी फटकार दिया करते थे। जब बस्ती की कलेक्टरी कचहरी में काम करते थे, तब एक दिन कलेक्टर ने आपको ऐसे समय बुला भेजा, जो दफ़्तर का समय न था। आपने उस समय जाने से साफ़ इनकार कर दिया। दूसरे दिन दफ़्तर में पहुँचने पर कले-क्टर ने उस दिन न आने का कारण पूछा। आपने निर्भी-कता से उत्तर दिया—"मैं १० बजे से ४ बजे तक का नौकर हूँ, चौबीसों घंटे का नहीं।" इतना कहकर आपने नौकरी छोड़ दी।

बनावटीपन आपमें छू नहीं गया था। सादगी आपको बहुत पसंद थी। आप बड़े स्पष्टवक्ता थे। मुँह-देखी बातें करना आपने सीखा ही न था। इसीलिये कुछ लोग आप-से चिढ़े रहते थे। धार्मिक विचार आपके बड़े स्वतंत्र थे। वेदों को आप अपौरुषेय नहीं, एक ऐतिहासिक ग्रंथ मानते थे। पर स्वतंत्र विचार के होने पर भी आप कहा करते थे—"मनुष्य के विचार चाहे जितने स्वतंत्र हों, पर वह जिस समाज में रहना चाहता है, उसकी सभी बातें उसे माननी चाहिए।" आचार-विचार में आप एक कट्टर हिंदू थे।

साहित्य-सेवा में तो आपने अपना सारा जीवन ही बिता दिया। आप बड़े उद्भट अध्ययनशील भी थे। मृत्यु के कुछ दिनों पहले आपने तंत्रों के अध्ययन का निश्चय किया था। भिन्न-भिन्न भाषाओं से आपको बड़ा प्रेम था। बँगला, गुजराती, मराठी आदि तो आप जानते ही थे, पर योरपियन भाषाओं के भी अनुरागी थे। अभी कुछ ही दिन हुए, डॉक्टर गणेशप्रसाद एम्० ए०, डी० एस्-सी० से आप जर्मन-भाषा सीख रहे थे। कुछ दिनों तक एक चीनी साधु को अपने यहाँ रखकर आपने चीनी-भाषा सीखी थी। ज़ंद-भाषा में भी आप अच्छी योग्यता रखते थे। आप वैज्ञानिक दृष्टि से भाषाओं का अध्ययन करते थे। भाषा-विज्ञान पर आपने एक पुस्तक लिखना भी शुरू किया था। उसका कुछ अंश पूर्ण हो चुका है; पर पुस्तक अभी अप्रकाशित ही है।

आपकी पुस्तकें अधिकतर काशी की नागरीप्रचारिणी-सभा ने छपाई हैं। समय समय पर पत्र-पत्रिकाओं में आपके अनेक लेख निकला करते थे। लेख अधिकतर स्वतंत्र, मौलिक और खोज-संबंधी होते थे। इधर कुछ दिनों से आप काव्य-साहित्य पर भी लिखने लगे थे। आपकी प्रवृत्ति शुष्क विषयों की ओर से हटकर धीरे-धीरे काव्य
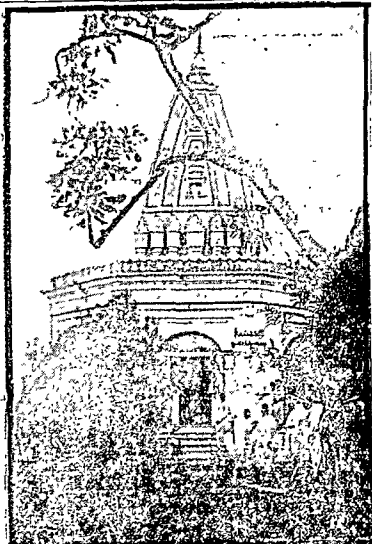
ऋषिकुल में शिवजी का मंदिर

हमारे विद्यार्थी शीघ्र ही ब्रह्मचारियों से हिल-मिल गए। वास्तव में हमारे विद्यार्थियों को जितना आनंद ऋषिकुल में मिला, उतना और कहीं नहीं। हम लोग ब्रह्मचारियों की भी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। उनकी नम्रता, शील और सेवा के भाव अभ्यागत विद्यार्थियों के लिये अति उत्तम शिक्षा के विषय थे। यही नहीं, उनकी दिनचर्या भी इन विद्यार्थियों ने ध्यान-पूर्वक देखी। अभाग्यवश अँगरेज़ी-स्कूलों में धार्मिक शिक्षा का प्रायः बिलकुल ही अभाव रहता है। हमारे यहाँ के अधिकतर बोर्डिंग-हाउसों में भी इस ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता। किंतु यहाँ विद्यार्थियों ने देखा, उनके दिन का एक विशेष भाग धार्मिक कृत्यों के लिये अलग नियत है। ब्रह्मचारियों की सादी रहन-सहन, उनके भोजन की सादगी इन विद्यार्थियों के लिये एक आदर्श थी। ऋषिकुल में ठहरने का प्रत्यक्ष प्रभाव यह पड़ा कि हमारे कुछ विद्यार्थियों ने लौटकर वेद पढ़ना शुरू कर दिया है।

आश्रम के विद्यार्थियों ने हम लोगों की अभ्यर्थना में एक दिन भोज दिया। उस दिन के मोहनभोग का स्वाद बहुत दिनों तक हमें न भूलेगा। एक दिन संध्या-समय सभा भी की, जिसमें व्याख्यान, गायन

ऋषिकुल का पुस्तकालय, और उसके अंदर वेद-मंडप
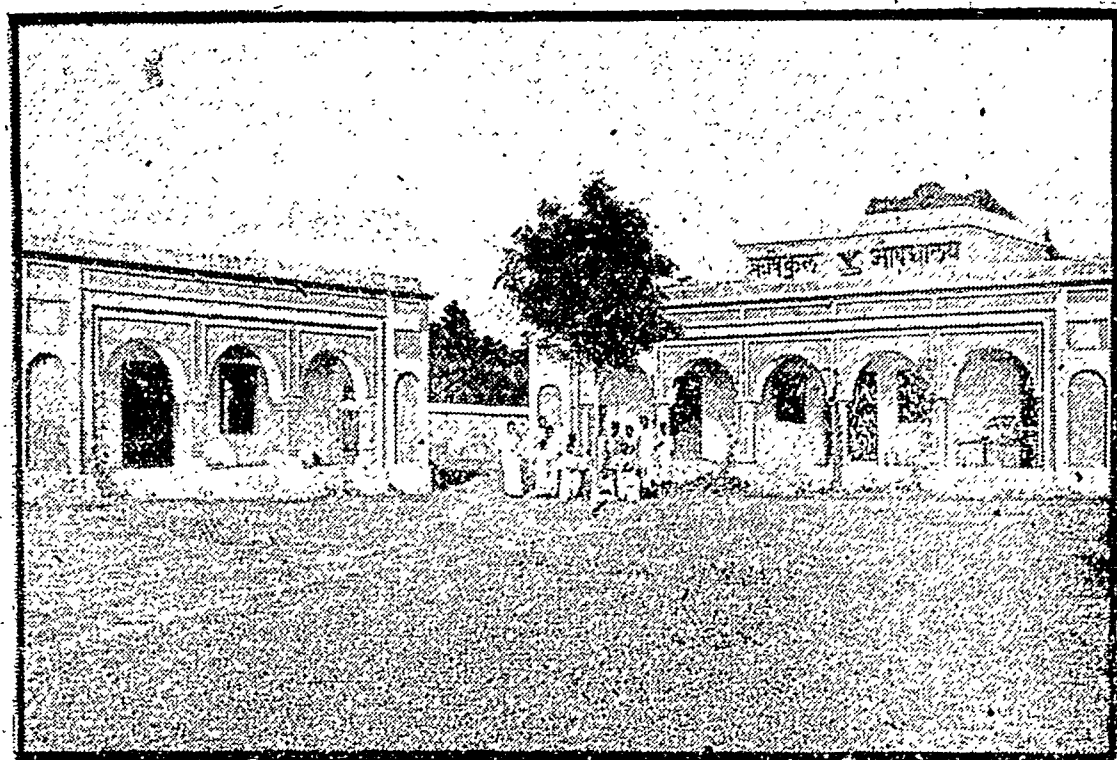
ऋषिकुल का औषधालय और रोगियों के रहने का स्थान

आदि हुए। एक फुट-बाल का मैच भी हुआ, जिसमें बाज़ी ब्रह्मचारियों के हाथ रही; किंतु हाकी के मैच में अतिथि लोगों ने मैदान मार लिया। एक दिन बहस भी हुई। विषय था 'विधवा-विवाह'। संस्कृत-विद्यार्थियों की यह बहस हम लोगों के लिये एक पूरी-पूरी मनोरंजन की सामग्री थी।

हरिद्वार

हरिद्वार बड़ा ही दिव्य स्थान है। किंतु अब धीरे-धीरे इसमें अन्य तीर्थों और शहरों के सारे अवगुण आ रहे हैं। इसके चार मुख्य भाग हैं—हरिद्वार, मायापुर, कनखल और ज्वालापुर। हरिद्वार में हरि की पैंड़ी पर एक लंबा-

हरि की पैंड़ी
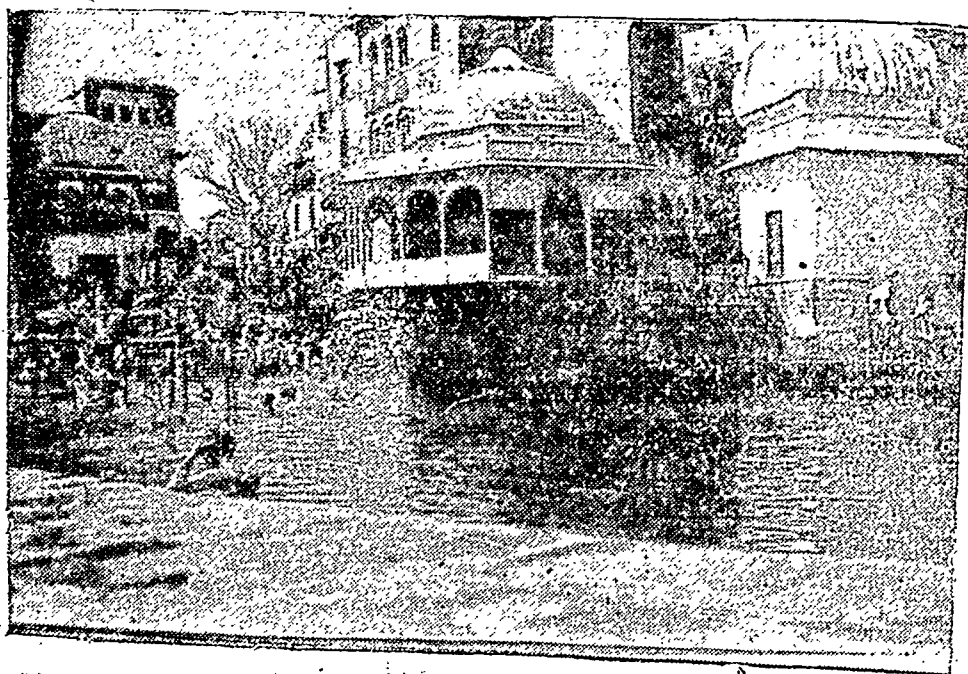
चौड़ा चबूतरा—स्टेशनों के प्लेट-फ़ार्म की तरह—बना हुआ है। यहाँ सामने, एक छोटे-से टापू में, हरे-हरे पेड़ों का एक सघन और सुंदर झुरमुट है। किनारे के मंदिर, गंगाजी का कलकल-निनाद, सामने की पहाड़ियाँ, हरियाली और घाट—इन सबके सम्मिश्रण से इस स्थान का दृश्य कुछ अपूर्व ही हो गया है। जल अत्यंत शीतल और मीठा है। यहाँ घाटों पर नक़ली साधुओं, पंडों और यात्रियों की अच्छी भीड़ रहा करती है। पास ही बाज़ार है, जिसमें गंगाजी के प्रसाद से लेकर सोडा-वाटर और बरफ़ तक मिल सकती है।

गुरुकुल के रास्ते में, गंगाजी की रेती में, लड़के विश्राम कर रहे हैं

मायापुर में गंगाजी से नहर काटी गई है। 'बाँध' बाँधकर और फाटक लगाकर ऐसा प्रबंध किया गया है कि गंगाजी का बहुत-सा जल नहर में चला जाता है। फाटकों का रास्ता घटा-बढ़ाकर नहर में जल का परिमाण न्यूनाधिक किया जा सकता है।

कनखल

कनखल में दक्ष प्रजापति का मंदिर है। उसी के समीप घाट है। यहाँ मछलियाँ बहुत अधिक हिली हुई हैं। इसी स्थान में अखाड़े भी हैं। निरंजनी, निर्वाणी, निर्मले, उदासी आदि सभी पंथों के अखाड़े हैं। अखाड़े क्या हैं, बड़े-बड़े महल हैं। ज्वालापुर में एक महाविद्यालय भी है, जिसमें अधिकतर आर्यसमाजी सिद्धांतों के अनुसार मुफ़्त शिक्षा दी जाती है। शिक्षा का क्रम उत्तम और प्रबंध प्रशंसनीय है।

गुरुकुल

२७ मई को, प्रातःकाल, हम लोग गुरुकुल देखने चले। हरिद्वार से गुरुकुल ४ मील है। किंतु गाड़ी का रास्ता कुछ घूमकर गया है। हमारा एक दल प्रातःकाल ५ बजे ही चल दिया था; किंतु दूसरा दल ७ बजे से पहले न चल सका। कनखल में दक्ष प्रजापति के मंदिर के नीचे, घाट पर, दोनों दलों के मिलने की बात थी। वहाँ से सब लोग एकसाथ चले। सूर्य कुछ ऊपर चढ़ आए थे। हम लोगों ने गंगा की पहली और दूसरी धाराओं को पार करके 'नील-धारा' के पुल पर विश्राम किया। वहीं स्नान भी किया। थोड़ा-बहुत जल-पान करने के उपरांत हम लोग आगे बढ़े। यद्यपि कनखल में गुरुकुल-वाटिका के नाम से प्रसिद्ध एक गुरुकुल का कार्यालय है, और वहाँ से हम लोगों को एक पथ-प्रदर्शक भी मिल सकता था, तथापि हम लोगों ने अपने बुद्धि-बल का भरोसा करके वहाँ से कोई सहायता लेने की आवश्यकता न समझी। रास्ते में सिवा पुल के टोल लेनेवाले मुंशी के और कोई मिला भी नहीं। परिणाम यह हुआ कि हम लोग पगडंडी छोड़कर गाड़ी की लीक के सहारे आगे बढ़े। किंतु कुछ आगे चलकर गुरुकुल की ओर बढ़ने की जगह काँगड़ी-गाँव की ओर चले गए। सूर्य का तेज भी तेज़ हो गया था। कुछ दूर चलकर हमें अपनी भूल मालूम हुई। लौट पड़े। रास्ते में कई सूखे नाले पार करने पड़े। गरमी और धूप के कारण नीचे की बालू जलने लगी थी। रास्ते में अधिकांश रियाँ (एक प्रकार के बबूल) के ही पेड़ थे। सभी लड़के अपना-अपना सफ़री सामान लादे हुए थे। इस कारण गरमी, प्यास और बोझ ने लड़कों को परेशान कर डाला। अंत को एक साइनबोर्ड मिला, जिसमें गुरुकुल का रास्ता बतलाया गया था। कितना अच्छा होता, यदि गुरुकुल के अधिकारी नील-धारा के बाद ही एक ऐसा साइनबोर्ड लगवा देते। अस्तु। हम लोग आगे बढ़े। थोड़ी-ही देर में गुरुकुल का फाटक दिखाई पड़ने लगा। बस, फिर क्या था, यात्रियों की सरस्वती जाग उठीं;
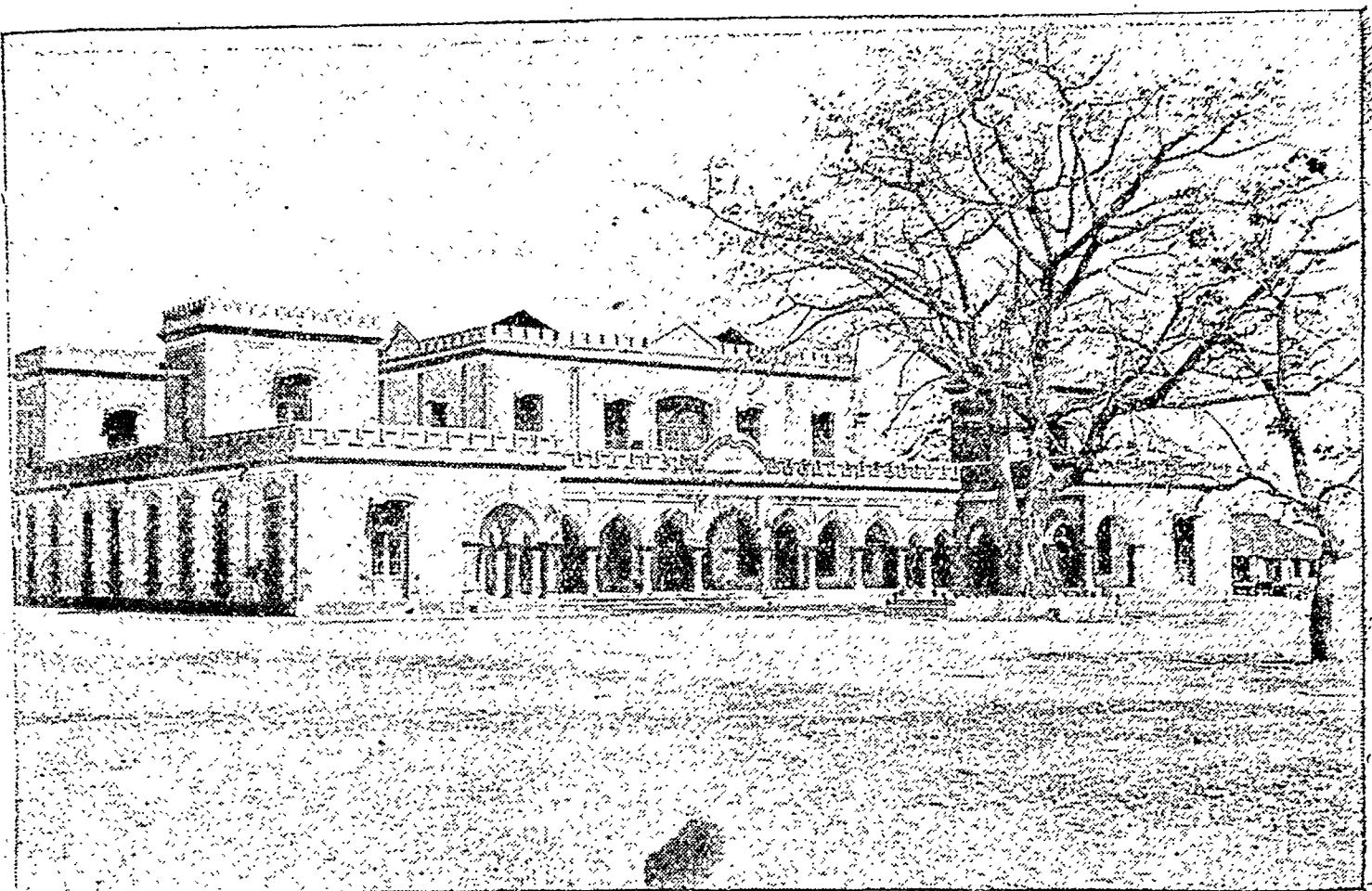
गुरुकुल-काँगड़ी-महाविद्यालय (कॉलेज) का भवन

मानो सब लोगों में कविता करने की प्रतिभा प्रकट हो गई। चटपट अँगरेज़ी-तुकों से अलंकृत यह कविता बना डाली गई—

"लखहु यह गुरुकुल-फाटक ग्रैंड[1];
सात समुद्र पार करि आए, प्रज्वलित महती सैंड[2]।
सूखी कीचड़मय गाड़ी की लीक न हुइहै एंड[3];
एक, एक, पुनि एक, एक फिर, किते रोर्ड[4] के बैंड[5]।
तब बबूल के जंगल बिच यह देखी ऋषि की लैंड[6];
पूछत राह, मौन सब साधे, ह्याँ को किहिको फ्रैंड[7]।
स्वागत-हित बहु बिल्व-वृक्ष मनु लिए पीत फल हैंड[8];
अहो भाग्य, जो हम शरीर सों पहुँचे गुरुकुल-लैंड।"

शाम को यहाँ एक बंगाली स्वामीजी से भेंट हुई। वह कुछ दिनों यहाँ अध्यापन का कार्य भी कर चुके हैं। उनके जीवन का एक मुख्य कार्य मछली खाने के विरुद्ध उपदेश देना भी था। बेचारे सुबोध बाबू (हमारे साथी) को उनके उपदेश सुनने ही पड़े। किंतु अब इस उमर में उन्होंने अपने को मछली छोड़ने में असमर्थ पाया। स्वामीजी का एक तर्क यह भी था कि यदि बंगाल के तालाबों से मछलियाँ निकालकर न खाई जायँ, तो वे मच्छड़ों के अंडों को खा जायँगी, और सारे बंगाल में मलेरिया-रोग कम हो जायगा। यदि किन्हीं महाशय की पहुँच बंगाल के "ऑनरेबिल मिनिस्टर ऑफ् पब्लिक हेल्थ" तक हो, तो उसे चाहिए, वह इस महत्त्व-पूर्ण प्रस्ताव को उनके कानों तक पहुँचा दें।

संध्या को हम लोग गुरुकुल की सैर करने निकले। शिक्षालय के लिये यह आदर्श स्थान है। एक ओर पहाड़ियाँ हैं और दूसरी ओर गंगाजी। दोनों से घिरा हुआ यह स्थान शिक्षा के लिये सर्वथा उपयुक्त है। यह भूखंड बड़ा ही रमणीय और मनोरम है। प्रकृति देवी की जो प्रेरणा इस स्थान में हो सकती है, वह कहीं अन्यत्र दुर्लभ है। सच तो यह है कि इस स्थान का दृश्य देख-

१. *Grand*=विशाल। २. *Sand*=बालू। ३. *End*=अंत। ४. *Road*=रास्ता। ५. *Band*=मोड़। ६. *Land*=भूमि। ७. *Friend*=मित्र। ८. *Hand*=हाथ।
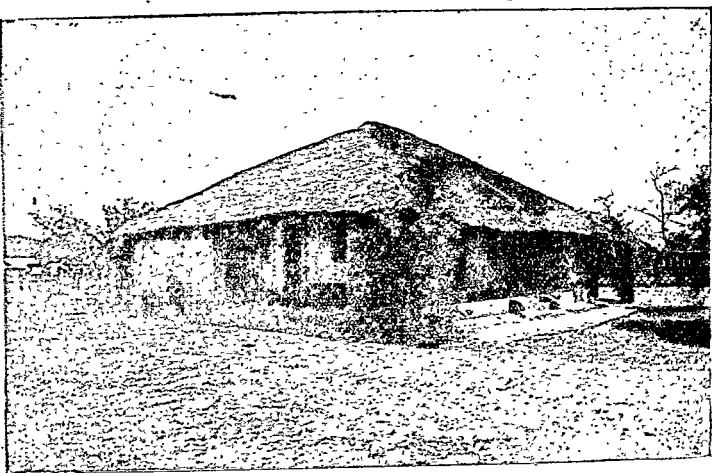
गुरुकुल-काँगड़ी में स्वामी श्रद्धानंदजी का निवास-स्थान

कर हमें यहाँ के अध्यापकों और विद्यार्थियों के प्रति डाह-सा होने लगा। जो कुछ कमी यहाँ थी भी, वह बाग़ लगाकर और सुंदर भवन बनाकर पूरी कर दी गई है।* खेलने के लिये सुंदर और लंबे-चौड़े मैदान हैं। स्नान के लिये एक अत्यंत सुंदर स्नानागार है। कॉलेज का छात्रालय अलग है, और स्कूल का अलग। स्कूल के छात्रालय के पास ही पाकशाला और औषधालय भी है। यहाँ छुआछूत और कच्ची-पक्की का झगड़ा या विचार कुछ नहीं है। पाकशाला में सभी वर्णों के लोग जाते और रसोई बनाते हैं। औषधालय में अँगरेज़ी और देशी, दोनों ही तरह की ओषधियाँ रहती हैं। स्कूल और छात्रावास के बीच में यज्ञशाला बनी है। यह बहुत बड़ी और अत्यंत सुंदर है। संध्या-समय की उपासना देखने के लिये हम लोग यहाँ ठहर गए। ऋषिकुल की तरह न यहाँ उच्च स्वर से वेद का गायन हुआ, और न उतना हवन ही। धीमे स्वर से वेद-मंत्र पढ़कर संध्या और थोड़ा-सा हवन करके संध्योपासना समाप्त की गई।

रात को सोने के लिये स्थान का प्रश्न बड़ा कठिन था। गरमी के दिन थे। बाग़ के बीच में मकान होने के कारण ज़मीन में सोना ख़तरे से ख़ाली न था। छत एक तो छोटी थी, दूसरे उस पर चढ़ने के लिये सीढ़ी भी न थी। मगर अपनी स्काउट-मास्टरी का उपयोग करके हमने कुल लड़कों को ऊपर चढ़ा दिया। केवल सुबोध बाबू, अपने स्थूल शरीर पर विश्वास न रखने के कारण, लाचार होकर वहीं नीचे मेज़ पर लेटे रहे।

प्रातःकाल हम लोग गुरुकुल देखने गए। लड़कों ने छात्रालय, साइंस की प्रयोगशालाएँ, म्यूज़ियम (अजायब-घर) आदि देखे। यहाँ का पुस्तकालय बहुत बड़ा और सुंदर है। अँगरेज़ी की पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। अँगरेज़ी-पत्र भी आते हैं। किंतु हिंदी-ग्रंथों की कमी है। हिंदी-पत्र भी कम आते हैं। माधुरी तक नहीं पहुँचती।

* बड़े ही खेद की बात है कि हाल की बाढ़िया में गुरुकुल की इमारतों को बड़ी हानि पहुँची है, और अब गुरुकुल वहाँ से हटाने का निश्चय किया जा चुका है, जैसा कि गत संख्या के एक नोट में हम लिख चुके हैं।—संपादक
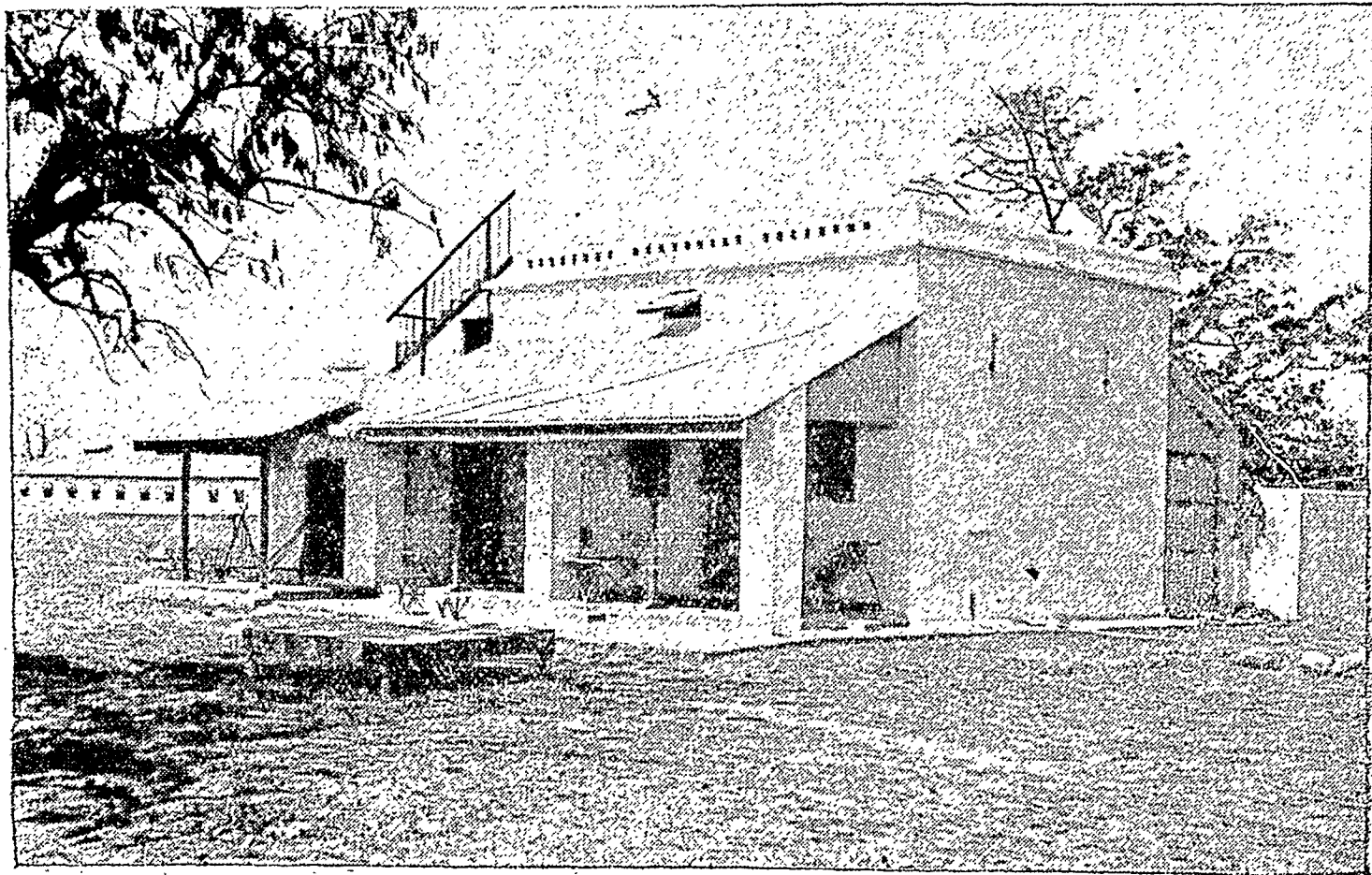
काँगड़ी की संपत्ति गुरुकुल को समर्पण करनेवाले महाशय अमरसिंहजी का मकान
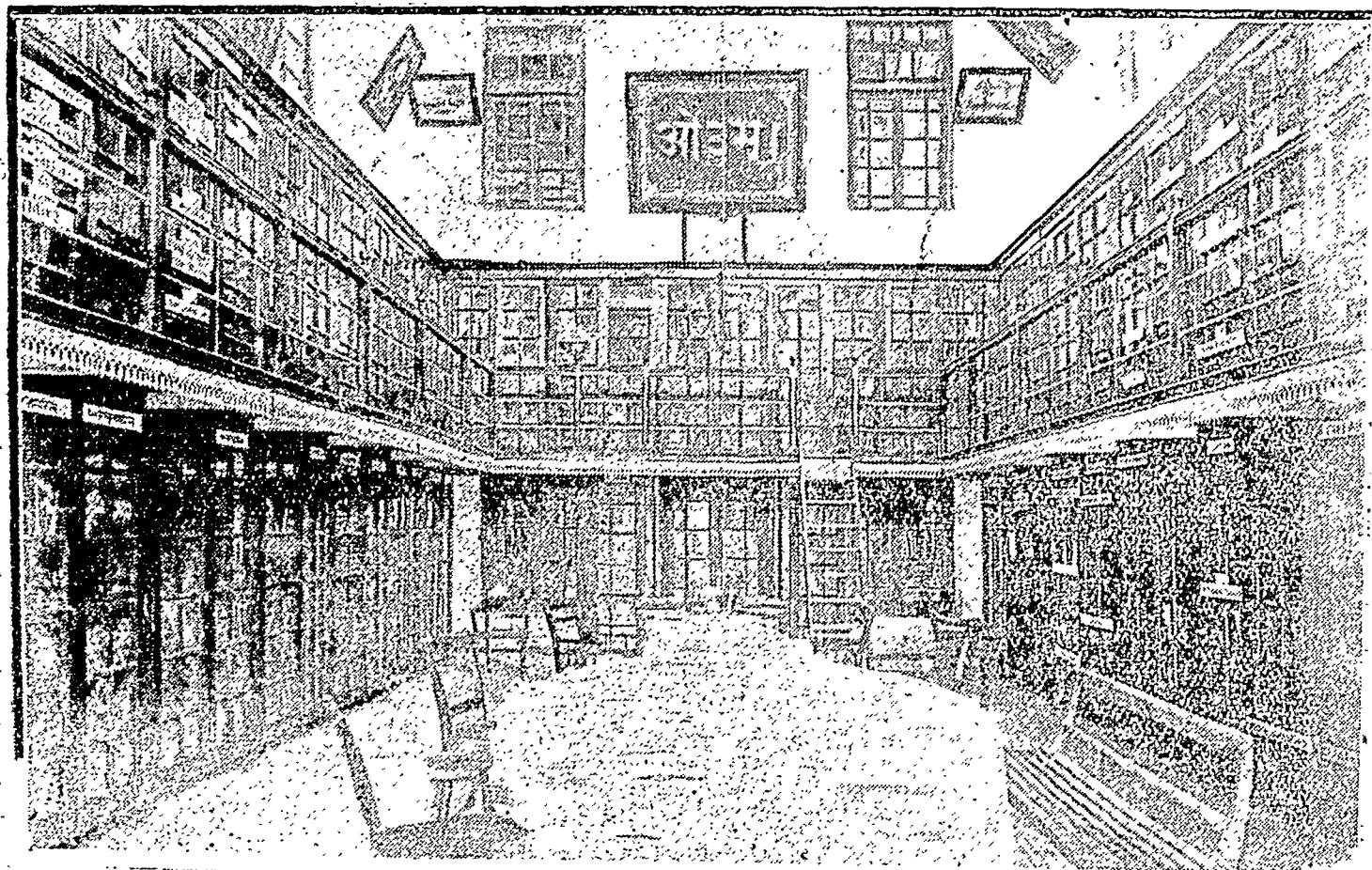
गुरुकुल का पुस्तकालय

हृषीकेश पहुँचे। काली कमलीवाले बाबा रामनाथजी ने बड़े प्रेम से हम लोगों का स्वागत किया। मक्खन और मट्ठे से हम लोगों को जल-पान कराया, और ठहरने के लिये एक अत्यंत सुंदर स्थान दिया। स्नान करने के बाद संध्या को हम लोग घूमने निकले। यहाँ भरतजी का में काली कमलीवाले बाबा के बराबर यहाँ क्या, और बहुत-सी जगहों में भी कोई स्थान न मिलेगा।

दूसरे दिन सबेरे ही हम लोग लछमन-झूला देखने चले। रास्ते में कैलाश-आश्रम मिला, जो बड़ा दिव्य स्थान है। इसमें कुछ बड़े योग्य संन्यासी रहते हैं।

लछमन-झूले के नीचे, गंगाजी के किनारे, चट्टानों पर विद्यार्थी विश्राम कर रहे हैं

लछमन-झूले को हमारे कुछ विद्यार्थी पार कर रहे हैं

प्राचीन मंदिर है। गंगाजी का दृश्य ऐसा सुंदर बहुत कम देखने को मिलेगा। जल का वह चीत्कार-गर्जन वाल्मीकि के "शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि" की याद दिलाता है। हृषीकेश में कुछ दैवी विभूति है। अब तो यहाँ बीसों बहुत अच्छी धर्मशालाएँ बन गई हैं, किंतु प्रबंध आगे मुनी की रेती है, जो गढ़वाल-राज्य में है। यहाँ राज्य की ओर से अस्पताल, लकड़ी का कारखाना और पशुशाला है। पशुशाला अभी आरंभिक अवस्था ही में है। यहाँ से गंगाजी के उस पार स्वर्गाश्रम का दृश्य बड़ा ही रमणीय मालूम पड़ता है। रास्ते में साधुओं की बहुत-सी कुटियाँ

लछमन-झूले पर विद्यार्थी बंदरों को चने खिला रहे हैं
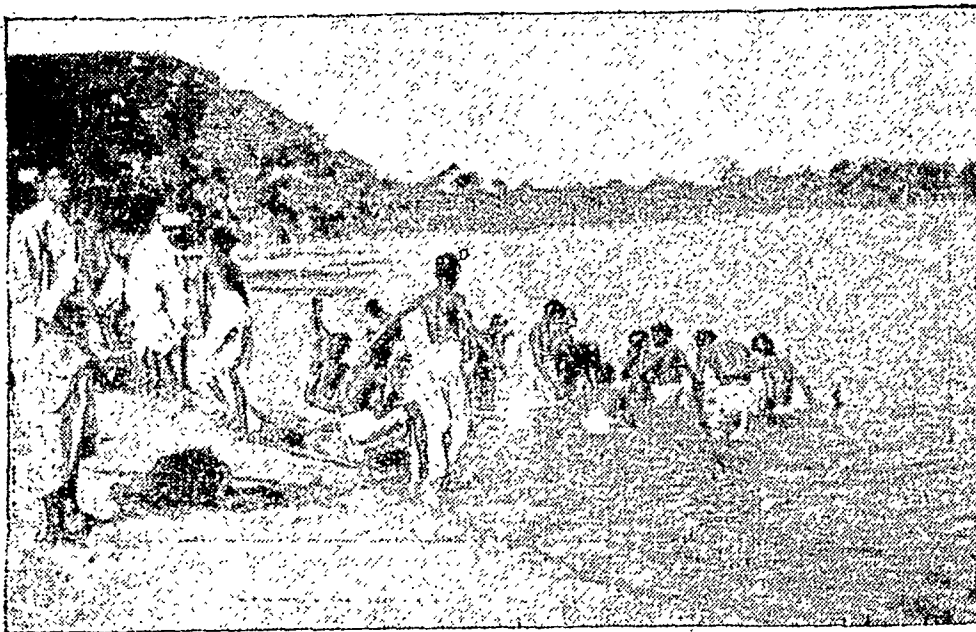
विद्यार्थी लछमन-झूले के नीचे गंगाजी में स्नान कर रहे हैं

मिलीं। यहाँ स्वर्गीय रायबहादुर बैजनाथजी का स्थापित किया हुआ "स्वामी रामतीर्थ-पुस्तकालय" भी है।

यों गंगाजी का अनिर्वचनीय दृश्य देखते हुए हम लोग लछमन-झूले पहुँचे। किसी समय यह पुल रस्सों का बना और बड़ा भयंकर था। किंतु मारवाड़ी-समाज के रत्न स्वर्गीय रायबहादुर सूरजमलजी ने इस पुल को बनवा दिया है। अब यह लोहे के रस्सों में सधा हुआ है। खेद है कि हाल की बाढ़ ने इस पुल को भी हानि पहुँचाई है। यहाँ गंगाजी दो ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के बीच में होकर बह रही हैं, जिससे उनकी सुंदरता में कुछ भयंकरता भी आ गई है। गंगाजी यहाँ गहरी हैं, और धारा भी वेगवती है। ह लोग किनारे चट्टानों पर बैठकर विश्राम करने लगे। बंदर भी बहुत हैं। हमारे साथ के कुछ बंदर भी उनके स खेल करने लगे। ये बंदर मनुष्यों से इतने हिल गए कि हमारे कई विद्यार्थियों ने और हमने हाथ में चने उन्हें खिलाए। यहाँ लक्ष्मणजी का एक मंदिर है कुछ देर आराम कर हम लोगों ने पुल पार किया पार में सुंदर, श्वेत रेत बिछी हुई थी। बालकों ने

सोतों से नहरें लाई गई हैं । इनकी प्रशंसा में हमारे विद्यार्थी कवियों ने कहा है—

"नहर जो यह, तो नाली क्या ?
भरी जो यह, तो ख़ाली क्या ?"

ये खुली हालत में शहर में होकर बहती हैं, अतएव पीने के लिये इनका पानी ठीक नहीं। इसके लिये टंकियों से पानी मँगाना पड़ता था । लखनऊ के रहनेवाले लड़कों को (जहाँ का वाटर-वर्स बदनाम होने पर भी ऐसे स्थानों से सैकड़ों-दर्जे अच्छा है, और जिसकी क़दर बाहर जाकर मालूम पड़ती है) जल का यह संकोच कुछ अखरता था । फिर भी छिब्बरजी ने भरसक जो कुछ हो सका, किया।

हम लोगों को सोने के लिये बोर्डिंग की चारपाइयाँ दी गईं । ऋषिकुल में इतने दिनों ब्रह्मचर्य के साथ ज़मीन में सोने के बाद चारपाई पाकर कितने ही लड़के बड़े प्रसन्न हुए । किंतु उनमें खटमलों का एकच्छत्र राज्य था। इतने अधिक खटमल—बीरबहूटी के आकार से लेकर अणु के समान सूक्ष्म आकार तक के—देखने का हम लोगों को कभी सौभाग्य या दुर्भाग्य नहीं हुआ था । हम लोगों की

विद्यार्थी देहरादून का इंपीरियल फ़ॉरेस्ट कॉलेज देखकर वापस आ रहे हैं

जो दशा थी, उसका आभास इस तुकबंदी से कुछ-कुछ लग सकता है—

"तुम्हरी महिमा अपार खटमल खटकीरा;
हृदयहीन जानत नहिं तुम तो पर-पीरा।
खटियन की चारि कोन, वे हैं तुव प्रकृत भौन,
पाट औ किवाड़ जौन, तिनके तुम कीरा।
खाट छाँड़ि भूमि परे, तितहूँ तुम आइ भरे,
नींद देखि तुमहिं डरे, माजन में पीरा।
मारत हम तुमहिं थके, ढूँढ़त हम तुमहिं छके,
नष्ट तुमहिं करि न सके, रक्तबीज-बीरा।
तुम तो हौ हठी हूल, छाए अब देहरादून;
यश करहिं तुमहिं मून, मिटहि तार-मीरा।"

डी० ए० वी० कॉलेज में मांस के उपयोग और जीव-हिंसा का निषेध है । किंतु प्रिंसिपल साहब से छिपकर हमारे विद्यार्थियों ने कितने ही खटमलों को "कछु मारेसि, कछु मर्देसि, कछुक मिलाएसि धूर ।" बहुतों ने अपनी लालटेनों को यज्ञ-कुंड बनाकर खटमलों की आहुति देकर अपने को पुण्य का भागी समझ लिया ।

देहरादून शिवालिक और दून पहाड़ियों के बीच की तलहटी में छोटा, किंतु खुला हुआ बसा है । यहाँ इंपीरियल फ़ॉरेस्ट कॉलेज, प्रिंस ऑफ़ वेल्स का मिलिटरी कॉलेज, फ़ॉरेस्ट म्यूज़ियम, वायसराय की कोठी, गुरुद्वारा आदि स्थान दर्शनीय हैं । इनमें से अधिकांश स्थान हमारे विद्यार्थियों ने देखे । सबसे अधिक रोचक स्थान फ़ॉरेस्ट म्यूज़ियम (जंगल-विभाग का संग्रहालय) था । उसको देखकर लड़कों को बहुत-सी नई बातें मालूम हुईं, और उनके

देहरादून के पास विद्यार्थी पहाड़ी खेतों की सैर कर रहे हैं

साधारण ज्ञान की वृद्धि हुई । यहाँ नज़दीक़ की जनरल गिलिस्पी और वीर गोरखा सेनापति बलभद्रसिंह के स्मारक हैं । इनकी कथा कभी अलग लिखेंगे । देहरादून सिख-गुरुद्वारे के आसपास बस गया है । यहाँ का जल-वायु बहुत अच्छा है । जिन दिनों लखनऊ में ११८ डिग्री की गरमी पड़ रही और असह्य लू चल रही थी, उन दिनों यहाँ कुछ लोग रात्रि को बरामदे में सोते थे; और दिन में पंखे की याद तक न आती थी । बाज़-बाज़ सड़क धूल में हमारे लखनऊ की सड़कों की बराबरी करने का दावा पेश करती थीं ; किंतु उनकी संख्या कम ही थी ।

देहरादून के आसपास भी कुछ बड़े भव्य, रमणीय और दर्शनीय स्थान हैं । इनमें गुच्चूपानी, सहस्रधारा, द्रोणाश्रम (नालापानी) आदि स्थान मुख्य हैं । हमारे विद्यार्थी इन तीनों स्थानों को देखने गए थे । द्रोणाश्रम में रुद्रेश्वर महादेव का एक मंदिर है । पास ही द्रोणकुंड है, जिसका जल क्षय-रोग के लिये लाभदायक बतलाया जाता है । यहाँ साधुओं का एक स्थान भी है । पहले यहाँ जगन्नाथ-गिरिजी रहते थे । उन्होंने नेपाल, तिब्बत आदि स्थानों में पर्यटन कर संस्कृत की प्राचीन पुस्तकों का अच्छा संग्रह किया था । यह संग्रह अब भी वर्तमान है । इसमें योग-विषयक पुस्तकें अधिक हैं । गुच्चूपानी अपने ढंग का एक ही स्थान है । यह देहरादून से कोई ४ मील दूर है ।

गुच्चूपानी की गुफा में हमारा एक विद्यार्थी

सत्य कहाँ है ?

(१)

पटने में बाबू निहालचंद की तूती बोलती थी। वह ज़िले के प्राण थे; सारा ज़िला उन पर जान देता था। ज़बानी रियाया की सेवा करनेवाले, बात के धनी बहुत थे; लेकिन काम के धनी और भूकी, नंगी, असहाय रियाया को अपने पैरों पर खड़ी करनेवाला कोई था, तो निहालचंद थे। व्याख्यान देना उन्हें न आता था। कुछ ऐसे पढ़े-लिखे भी न थे। दो-तीन साल फ़ेल होने के बाद किसी तरह एंट्रेंस पास किया। एफ़० ए० में लगातार पाँच साल फ़ेल हुए। छठे साल परीक्षा देने का साहस न हुआ। पढ़ना छोड़ दिया। घर में लेन-देन का काम होता था। बाप के इकलौते बेटे थे। ज़मींदारी नाम को थी। पिता के मरने के बाद से सारा कारोबार निहालचंद के ऊपर आ पड़ा था। सुबोधराय से उनकी गहरी दोस्ती थी। स्कूल में दोनों सहपाठी थे। सुबोधराय मामूली प्रतिभा के विद्यार्थी न थे। सरस्वती उनकी जिह्वा पर वास करती थी। एम्० ए० तक वह बराबर प्रथम ही होते रहे। दर्शन और समाज-शास्त्र में सुबोधराय की असाधारण गति थी। वह पटना-कॉलेज में चार साल तक इन विषयों के मुख्य अध्यापक रहे। बाद को हथुआ-राज्य के मैनेजर हो गए थे। सात साल के पहले उन्होंने निहालचंद को किसान-बैंक खोलने की राय दी थी, और उन्हें इस काम के लिये प्रस्तुत किया था। सात साल पहले जब किसान-बैंक खोलने की भावना इन दोनों के दिलों में उत्पन्न हुई थी, उस समय ज़िले के किसानों की दशा शोचनीय थी। घर-घर दरिद्रता का राज्य था। एक ओर महाजन, ज़मींदार, पुलीस, सब मिलकर रियाया को सताते थे, तो दूसरी ओर क़हत, रोग, भूक, मुक़द्दमेबाज़ी और अविद्या। रियाया का जीवन कष्टमय हो गया था। त्राहि-त्राहि करती हुई रियाया ज़िंदगी के दिन काटती थी। उसकी दारुण दशा की ओर कोई ध्यान देनेवाला नहीं था। सुबोधराय ने पहले-पहल निहालचंद का ध्यान इधर खींचा और निहालचंद से किसान-बैंक खुलवाया था।

सात साल के अंदर किसान-बैंक ने दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति की। ज़िले की हर तहसील में उसकी शाखाएँ खुल गई थीं। निहालचंद ने अपनी दो-ढाई लाख की संपत्ति उसमें लगा रक्खी थी। ज़िले के छोटे-बड़े किसानों ने, जो लाखों की संख्या में थे, अपनी छोटी-छोटी पूँजियाँ बैंक में लगा दी थीं। छोटे-छोटे ज़मींदार भी अपनी बची-खुची पूँजी बैंक में लगा चुके थे। सात साल के अंदर बैंक की दस-बारह लाख की हैसियत हो गई थी। शहर में भी वृद्धाओं, विधवाओं, महाजनों, नौकरों और मज़दूरों आदि सभी ने अपना सामान बेच कर रुपए इन बैंकों में जमा कर दिए थे; और बैंक के दिए ब्याज से घर-बैठे उनको जीविका का ठिकाना हो गया था। किसानों को क़र्ज़ा बहुत कम सूद पर इन बैंकों से मिलता था। मुख्य बैंक ने कई कारख़ाने भी खोल रक्खे थे, जिनसे हज़ारों की जीविका चलती थी। पाठशालाएँ, औषधालय, पुस्तकालय और कहीं-कहीं पंचायतें भी बैंक के मुनाफ़े से क़ायम कर दी गई थीं। यह सब काम निहालचंद के पवित्र संकल्प और उद्योग का फल था। इस बहुव्यापक सेवा की बदौलत पटना-ज़िले में निहालचंद बेताज के राजा हो रहे थे। किसान-बैंक उन्होंने क्या खोला, प्रजा के लिये कल्पवृक्ष लगा दिया।

(२)

किसान-बैंक पर विपत्ति की घोर घनी घटाएँ घिर रही थीं; किसान-बैंक की किश्ती मँझधार में डाँवाडोल हो रही थी। तीन साल पहले ज़िले के दो बिगड़े हुए रईस ज़मींदार, जिनकी धाक अब भी ज़िले में बँधी हुई थी, बाबू निहालचंद के पास किसान-बैंक से क़र्ज़ा लेने आए। उनकी सारी जायदाद ऋण के भारी बोझ से लदी हुई थी, और नीलाम पर चढ़ रही थी। उन्होंने निहालचंद से कहा—"लाखों को आपने महाजनों के चंगुल में पड़कर बरबाद होने से बचाया है। हम लोगों को भी आप ही रखिएगा, तो रहेंगे; नहीं तो सारी संपत्ति बिक जायगी, और हम उजड़ जायँगे।" निहालचंद को उन पर तरस आ गया। वह बैंक से क़र्ज़ा दिलाने के लिये राज़ी हो गए। बैंक के दो कारपरदाज़ ठीक किए गए, जिन्होंने उनकी संपत्ति के संबंध के सब काग़ज़ात देखना शुरू किया। इन रईसों ने कारपरदाज़ों का ईमान कुछ धन देकर डिगा दिया। जायदाद मुशकिल से ७०-७५ हज़ार की थी, मगर

ताई गई पाँच लाख की। बात पक्की हो गई। उसी जायदाद पर चार लाख रुपए का ऋण दे दिया गया।

जब इस क़र्ज़े की अदाई का नियत समय पूरा होने लगा, तब भंडा फूटा। लेकिन अब हो क्या सकता था ? उन रईसों या अपने विश्वासघाती कारपरदाज़ों को जेल भिजवाने से बैंक तो न बचता। दस-बारह लाख की हैसियत का बैंक चार लाख का धक्का नहीं सँभाल सकता था। बैंक की इस बुरी हालत की ख़बर भी धीरे-धीरे फैलने लगी। कितने ही लोगों ने अपना सर्वस्व ही बैंक में लगा दिया था। ज़िले में सनसनी फैल चली, और लोग अपनी-अपनी जमा वापस लेने लगे। रुपए निकालनेवालों और तगादगीरों का जैसे ताँता लग गया। किसान-बैंक डाँवाडोल हो रहा था।

निहालचंद का बुरा हाल था। एक तो लाखों घरों की बरबादी के साथ ही अपनी बदनामी की चिंता, और उस पर सर्वसाधारण को लाभ पहुँचानेवाली एक उपयोगी सार्वजनिक संस्था के व्यर्थ विनाश का क्षोभ और लज्जा उनके हृदय को अत्यंत अधीर कर रही थी। बैंक की घड़ियाँ टल रही थीं। सोचने का भी समय न था। और, सोचते ही क्या ? जिस दीन-दुखिया जनता को अंगारों की सेज से उठाकर उन्होंने अपने पैरों पर खड़ा किया था, उस पर ग़ज़ब फट पड़नेवाला था। वह देख रहे थे, आफ़त का पहाड़ फट रहा है, और उनकी निराशा से भरी हुई दृष्टि उस पहाड़ को रोकने में असमर्थ है। आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था, और प्रति क्षण वह बढ़ता ही जाता था। आधी बेहोशी की हालत में उनकी आत्मा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रही थी। रह-रहकर यही कहते थे कि अब क्या होगा ! यह व्यक्तिगत विपत्ति या व्यक्तिगत बेइज़्ज़ती न थी। वह मौत भी नहीं माँग सकते थे। विधाता से यह भी नहीं कह सकते थे कि धरती फट जाय, और मैं उसमें समा जाऊँ। कारण, ऐसा होने से लाखों किसान, मज़दूर, वृद्धाएँ, विधवाएँ और नौकरी-पेशा ग़रीब गृहस्थ उस कठोर आघात से कैसे बच सकते थे, जो उन पर होनेवाला था ? उनकी अधीर आत्मा और हृदय से बारंबार यही शब्द निकलते थे कि अब क्या होगा !

इस घोर अंधकार में आशा की एक झलक नज़र आई। लेकिन वह अँधेरी रात में डँसकर उलट जानेवाली नागिन के उज्ज्वल पेट की तरह थी। सुबोधराय ने उनको यह झलक दिखलाई थी, और वह सिर्फ़ इतना चाहते थे कि निहालचंद चुप रहें, वह इसी झलक से सारा अंधकार दूर कर देंगे। बैंक के ऊपर आई हुई आफ़त की ख़बर पाकर सुबोधराय हथुआ से पटने आए थे। निहालचंद से उनका प्रस्ताव यह था कि हथुआ में चार-लाटरी पड़नेवाली है। पहला इनाम (first prize) सात लाख का है। दस-दस रुपए के टिकट हैं, और सारे हिंदुस्तान में धड़ाधड़ बिक रहे हैं। छोटे-बड़े इनाम सब मिलाकर पंद्रह लाख के हैं, और चालीस लाख के क़रीब टिकट बिक चुके हैं। सुबोधराय बस, इतना ही चाहते थे कि निहालचंद इस लाटरी में एक टिकट ले लें। उन दोनों के बीच इस संबंध में ये बातें हुई थीं—

निहाल०—"अगर मैं टिकट ले भी लूँ, तो इसका क्या ठीक कि इनाम मुझे ही मिलेगा ?"

सुबोध०—"तुम टिकट ले लो, बाक़ी ज़िम्मा मेरा रहा।"

निहाल०—"कैसे ?"

सुबोध०—"पहला इनाम तुम्हारे ही नाम निकलेगा।"

निहाल०—"कैसे ?"

सुबोध०—"सात लाख का इनाम तुम्हारे नाम निकलेगा। रियासत का मामला है। सब कुछ मेरे हाथ में है। सात लाखवाला इनाम और तुम्हारा टिकट, दोनों साथ-साथ निकलेंगे। एक ऐसा गुप्त निशान दोनों पर लगा रहेगा कि किसी को इस मिली भगत का पता भी नहीं चलेगा, और उठानेवाला दोनों टिकट साथ-साथ उठावेगा। मैंने सब ठीक कर लिया है।"

निहाल०—"सुबोध, तुम क्या कह रहे हो ? लाखों आदमियों ने टिकट ख़रीदे हैं। उन सबके साथ इतना बड़ा विश्वासघात तुम कैसे करोगे ? याद रक्खो, सबको तुम पर विश्वास है। उसी विश्वास पर सबने टिकट लिया है।"

सुबोध०—"लाटरी जुए से कम घृणित नहीं है। शहर के रहनेवाले मूर्ख, मुफ़्तख़ोर, जुआरी, घर-बैठे अमीर बनने की इच्छावाले, बेकार, बेफ़िक्र, दस रुपए लगाकर लाखों पाने की आशा रखनेवाले लोगों ही ने टिकट लिए हैं। ऐसे मूर्खों का विश्वासपात्र बनना और जैसा वह मुझ पर विश्वास रखते हैं, वैसा ही काम करना मेरे लिये कुछ गर्व

लिये नहीं कर रहे हो। इसके अलावा तुम भी बेफ़ायदा बदनामी और बेइज़्ज़ती क्यों उठाओगे ?"

निहाल०—"मैं जेल जाने के लिये तैयार हूँ।"

सुबोध०—"लेकिन आपके जेल जाने से लाखों घर, जिनका कोई सहारा नहीं है, बरबाद होने से कैसे बचेंगे ? कितने ही तो आत्महत्या कर लेंगे। कितने ही निराशा और इस वज्राघात की चपेट से पागल हो जायँगे। कम-से-कम ईश्वर और धर्म के ऊपर से तो उनका विश्वास अवश्य ही उठ जायगा। बनिए, महाजन, ज़मींदार, पुलीस, भूक, दरिद्रता, अकाल, बेकारी वग़ैरह मुसीबतों में पड़कर लाखों किसान और उनके निरपराध बाल-बच्चे मर जायँगे। उस समय तुम्हारा सत्य कहाँ होगा ? इसी समय तुम इतने व्याकुल हो रहे हो—तुम्हारा सत्य कहाँ है ? मैंने माना कि तुमको जेल और बदनामी की चिंता या पर्वा नहीं है; लेकिन तुम्हारा यह त्याग इख़लाक़ी फ़ज़ूल-ख़र्ची है। इसमें किसको लाभ है ? ग़ौर करके देखो, मैं जो कुछ करने को कह रहा हूँ, उसमें किसी की हानि नहीं है। लाटरी में टिकट लेनेवाले तो जुआ खेल ही रहे हैं। अगर उनसे सत्य बोलकर इस बैंक को सँभालने के लिये, इसके द्वारा लाखों प्रजा को बरबादी से बचाने के लिये कहा जाय, तो कोई बात तक न सुनेगा। निहालचंद, इस बैंक की रक्षा को ईश्वरीय आज्ञा समझो। इस बैंक के टूटने से चोरी, झूठ, बेईमानी और अत्याचार वग़ैरह कम न होंगे, बढ़ेंगे ही।"

निहालचंद सुबोधराय को कुछ जवाब न दे सके। वह हताश और मर्माहत होकर चुपचाप बैठे रहे। रह-रहकर यही उनके मुख से निकलता था कि अब क्या होगा ?

(२)

किसान-बैंक के हिस्सेदारों की सभा हो रही थी। बैंक के बीचवाले बड़े हाल में हिस्सेदारों, रुपए जमा करने-वालों और दर्शकों की भीड़ खचाखच भरी थी। सारी सभा में सन्नाटा छाया हुआ था। हिस्सेदार और बैंक में रुपए जमा करनेवाले लोग निहालचंद को बुरा-भला कहते और कोसते थे। कोई डाइरेक्टरों को गालियाँ दे रहा था। कोई कहता था—"अँगरेज़ी अमलदारी न होती, तो इन हत्यारों (डाइरेक्टरों) का ख़ून कर डालते। कोई कहता था—जैसे हमारा सर्वनाश हुआ है, वैसे ही निहालचंद का भी सत्यानास हो। कोई कहता था—हमने विश्वास करके घर के सब बरतन और गहने बेचकर बैंक में रुपए जमा किए थे। जो सज़ा घर में आग लगानेवाले को होती है, वही निहालचंद को लोग देना चाहते थे। आज निहाल-चंद वह निहालचंद नहीं रहे, जो किसी समय पटने में विना ताज और तिलक के राजा थे। आज उनके माथे पर कलंक का टीका लगा हुआ था। आज वह एक मनहूस, अपराधी और दग़ाबाज़ आदमी की हैसियत से जनता के आगे उपस्थित थे। लोग कह रहे थे—

"बेईमान बैंक की बदौलत सेठ बना फिरता था।"

"अजी साहब, ज़रूर यह रिशवत लेता था। नहीं तो दीवालियों को कोई क़र्ज़ देता है ?"

"बीबी के लिये लाखों का ज़ेवर बनवा लिया। घर भर लिया।"

"मैं तो भाई कहीं का न रहा।"

"मुझे तो तीन फ़ाक़े हो चुके हैं। बैंक के ब्याज ही से गुज़र होता था।"

"बुढ़ौती में भीख माँगनी पड़ेगी !"

"इसका तो मुँह न देखना चाहिए।"

"भगवान्, यह निर्वंश हो ; इसका सत्यानास हो !"

"बच्चा बारह साल से कम के लिये न जायँगे।"

"तभी सज़ा मिलेगी।"

"हत्यारा कहीं का !"

नगरनिवासी हिस्सेदार और रुपए जमा करनेवाले यह शाप और गालियों की वर्षा निहालचंद के ऊपर कर रहे थे। अगर उन ग़ुस्से की निगाहों में जलाने की शक्ति होती, तो निहालचंद कब के ख़ाक हो चुके होते ! क्रोध, घृणा, तिर-स्कार और धिक्कार का वायुमंडल भी कितना ज़हरीला और असह्य होता है, इसका कटु अनुभव निहालचंद को हो रहा था। लेकिन यह बाण-वृष्टि शहरवाले ही कर रहे थे। देहाती किसान मन मसोसे चुपचाप, हताश बैठे हुए थे। वे गालियाँ और शाप देने में शरीक न थे। बैंक बंद होने की घोषणा की जानेवाली थी। वायुमंडल कंपित हो रहा था। डाइरेक्टरों के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, और निहालचंद सिर झुकाए एक कुरसी पर बैठे थे।

इतने में मोटर पर सुबोधराय बैंक पहुँचे। मुसकिराते हुए सभा में आए। सबको बुलाया, और बैठ जाने को

कहा । लेकिन फिर भी सैकड़ों आदमी खड़े ही रहे । उन्होंने कहा—"भाइयो, बैंक न टूटेगा । बाबू निहालचंद के नाम सात लाख की लाटरी पड़ी है । निहालचंद जैसे धर्मात्मा थे, वैसे ही भगवान् ने उनकी बात रख ली, और ज़िले को—उस ज़िले को, जिसे बाबू साहब ने अपने खून से सींचा है—भगवान् ने बरबाद होने से बचा लिया । बैंक अवश्य टूट रहा था, मगर इसमें बाबू निहालचंद या बैंक के डाइरेक्टरों का कुछ भी दोष न था । बैंक के दो कर्मचारी, जो भागे हुए हैं, दोषी हैं । उन्होंने घूस ली थी, और दो दीवालियों को क़र्ज़ दिला दिया था । पुलीस उनकी तलाश में है । कल बाबू निहालचंद के नाम लाटरी पड़ी है । बैंक का सब क़र्ज़ वह खुद अदा करेंगे, और बैंक धूम से चलेगा ।"

सभा में एक स्वर से ये ध्वनियाँ गूँज उठीं—"बाबू निहालचंद की जय !", "बाबू सुबोधराय की जय !" किसान स्तंभित हो गए । लेकिन शहरवाले कब माननेवाले थे ? क्रोध और तिरस्कार आनंद में बदल गया । आनंद-नाद होने लगे । "जय-जयकार" और "धन्य है" की पुकार बार-बार होने लगी । उजाला हो गया । लोग विह्वल हो गए, अपने आपे से बाहर हो गए । खुशी सँभाले नहीं सँभलती थी । लोग परस्पर गले मिलने लगे । एक दूसरे को गोद में उठाने लगा । उधर बेचारे निहालचंद का इस भीड़ में कहीं पता नहीं था । वह पीछे की भीड़ फाड़ते हुए किसी तरह जनता के सामने आए । वह कुछ कहना चाहते थे । सुबोधराय भाँप गए, यह कुछ ऊटपटाँग बकेंगे । तुरंत चिल्ला उठे—"बोलो बाबू निहालचंद की जय !" सभा जय-जयकार से गूँज उठी । बेचारे निहाल-चंद कुछ बोलने ही नहीं पाए । उनका हाथ पकड़े हुए सुबोधराय उन्हें अपनी मोटर पर घसीट लाए, और लोगों से फिर जय-जयकार बुलवाकर मोटर बढ़ा दी ।

जनता का क्या पूछना । देहात की 'असभ्य' और 'अशिक्षित' जनता के मुख पर सच्चा आनंद और संतोष था; लेकिन वह उछल-कूद नहीं रही थी । उन लोगों की ख़ामोश निगाहें परमात्मा को धन्यवाद, बाबू निहालचंद को आशीर्वाद और एक दूसरे को मुबारकबाद दे रही थीं । उधर तरह-तरह की बातें हो रही थीं । शहरवाले उछलते-कूदते, शोर मचाते, वाह-वाह करते चले जा रहे थे—

"मैं कहता था कि बाबू निहालचंद का कोई क़सूर नहीं है ।"

"भाई धोका किस कारबार में नहीं होता ?"

"निहालचंद ही का जीवट था कि सात लाख की रक़म बैंक को दे दी ।"

"आख़िर न देते, तो उनका कोई क्या कर लेता ? मुक़द्दमा बैंक टूटने पर चलता, वे आँच निकल जाते । उनकी बेईमानी कहीं से साबित न होती ।"

"निहालचंद धन्य हैं !"

"यार, बैंक टूट जाता, तो बड़ा अनर्थ होता !"

"कुछ न पूछो ।"

"सुना है, निहालचंद को रायबहादुर का ख़िताब मिलनेवाला है ।"

इसी क़िस्म की बातें करते हुए आनंद-मग्न लोग अपने-अपने घर जा रहे थे ।

(४)

निहालचंद जब मोटर पर चढ़कर सुबोधराय के साथ चले, तो उनसे कुछ कहते न बनता था । कुछ देर के बाद सुबोधराय से कहा—"यार, तुमने ग़ज़ब किया !" सुबोध-राय ने कहा—"ग़ज़ब-वज़ब कुछ नहीं । मैं तुमसे झूठ थोड़े ही बोलता था । चलो, आज देहात की सैर करें ।" सोफ़र से कहा—"कुसम्ही ले चलो ।" संध्या के समय कुसम्ही-गाँव में दोनों उतरे । सुबोधराय ने कहा—"तुम सत्य-सत्य चिल्ला रहे थे । ये मौज़े, जो इतने हरे-भरे नज़र आ रहे हैं, ये किसान, जो इतने प्रसन्न और संतुष्ट नज़र आ रहे हैं, उजड़ जाते । तब क्या होता ?"

टहलते-टहलते दोनों एक किसान के झोपड़े के सामने से गुज़रे, जिसमें एक बुड्ढा किसान बरामदे में उदास बैठा था । वह दोनों हाथों से अपना सिर थामे और आँखें ज़मीन की ओर गड़ाए हुए था । सुबोधराय ने पूछा—"भाई, क्या मामला है ?" इतने में उसकी वृद्धा स्त्री घर से निकली, और इन लोगों से चटाई पर बैठ जाने को कहा । उस स्त्री ने कहा—"बाबू, आज हम लोग इस गाँव से उजड़ गए । तीन बीघे खेती थी । बाप-दादे की मौरूसी थी । ज़मींदार की नीयत बदल गई । पटवारी को कुछ ले-देकर खेवट में खेत अपने नाम लिखवाकर हम लोगों के ऊपर सरासरी कर दिया । हम लोग बेपढ़े-लिखे गँवार ठहरे । क्या जानें, पटवारी क्या लिख रहा है । बैंक में दो

सौ रुपए जमा थे। परमाल नातिन के ब्याह के लिये वे रुपए बैंक से निकाल लिए। लड़की को देवी माई (चेचक) उठा ले गईं। इधर ज़मींदार ने नालिश कर दी। मुक़द्दमा लड़ने के लिये रुपए रक्खे थे, वे भी चोरी में चले गए। गहना-गुरिया, बरतन बेचकर मुक़द्दमे की पैरवी की। मुक़द्दमा हार गए। अब इस गाँव से हम लोग उजड़ गए। आज ही फ़ैसला सुनाया गया है। बाबू, इसी से यह इतने उदास बैठे हैं।"

यह कहानी सुनकर निहालचंद और सुबोधराय धक-से रह गए। देखते-ही-देखते बुड्ढे को मूर्च्छा आ गई। बुढ़िया घबराकर उठी, और बुड्ढे को सँभाला। कुछ देर बाद बुड्ढे की आँख खुली। बुढ़िया ने कहा—"धीरज धरो। जो बदा था, वह हुआ। अपना जी छोटा न करो। अभी मैं ठाकुर साहब (गाँव के ज़मींदार, जिन्होंने उनको उजाड़ा था) के यहाँ कूट-पीस सकती हूँ। चार चौपए (मवेशी) हैं; तुम इनको चरा सकते हो। अब हम लोगों को जीना ही कितने दिन और है ? जब तक पैरुख (पौरुष) चलेगा, तब तक मेहनत-मज़दूरी करके जिएँगे, उसके बाद भगवान् उठा लेंगे। लड़कों को भगवान् ने उठा ही लिया। लड़के की दो अंधी लड़कियाँ हैं। जब तक हम लोग हैं, तब तक अपना पेट काटकर इनका पेट भरेंगे। उसके बाद भगवान् हैं। जी छोटा न करो।"

यह कहते-कहते बुढ़िया की आँखें भर आईं; लेकिन वह अपने को सँभालकर बुड्ढे को ढाढ़स देती रही। निहालचंद और सुबोध का दिल भर आया। निहालचंद ने बुढ़िया को कुछ दान देना चाहा। बुढ़िया ने कहा—"बाबू, जनम-भर भीख नहीं माँगी, और न भीख ली। अभी हम लोगों के हाथ-पैर हैं।" यह सुनकर निहालचंद और सुबोधराय की आँखें खुल गईं। अब इन लोगों से वहाँ न ठहरा गया। दोनो उठ पड़े।

रास्ते में निहालचंद ने एक ठंढी साँस भरके सुबोधराय से कहा—"सुबोध, तुम्हारे सवाल का जवाब आज मिल गया। तुम कहते थे—सत्य कहाँ है। सत्य इस बुढ़िया की आत्मा में है। साठ साल की उम्र में जिसका घर लुटे, जिसका सर्वनाश हो, जिसका कोई सहारा न हो, जिसके हाथ-पाँव क़रीब-क़रीब जवाब दे चुके हों, उसमें यह धैर्य, यह संतोष, यह दृढ़ता और यह आत्म-विश्वास! बैंक का रुपया, जो इनकी सारी ज़िंदगी की कमाई थी, नष्ट हो गया, खेत छिन गया, औलाद मर गई, और औलाद की औलाद दो अंधी लड़कियों का भार भी ऊपर है। उस पर यह हौसला कि जिस ज़मींदार ने इनका खेत इतने छल और क्रूरता से इनसे ले लिया है, उसी के यहाँ कूट-पीसकर इज़्ज़त के साथ अपना पेट पालने का उच्च विचार! सत्य यहाँ है। संसार में ये जहाँ सिर उठाकर निकलेंगे, इनकी विजय होगी। हार में भी इनकी विजय होगी। दुनिया के ज़ालिम इनका धन लूट सकते हैं, इनके खेत छीन सकते हैं, बुढ़ापा इनके शरीर को निर्बल बना सकता है, मौत इनके प्राण ले सकती है; लेकिन इनकी आत्मा पर कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकता। पुरुषार्थ का कवच पहने हुए ये आत्माएँ जीवन-संग्राम में क़िस्मत के तीरों का मुक़ाबला कर रही हैं। शांत, गंभीर, धैर्यवान् आत्माओं में सत्य का निवास है। बैंक टूट सकते हैं; लेकिन इनकी आत्माएँ नहीं टूट सकतीं। भविष्य सत्य का है, और सत्य इनमें और इनका है। जब बैंक टूट रहा था, तब हम लोगों की घबराहट का इस आत्मा के धैर्य से मुक़ाबला करो। जैसे कमज़ोर हम थे, वैसे ही किसानों की आत्मा को भी हमने समझा था। हमारे पाँव डिग गए; लेकिन यह आत्मा नहीं डिगी। सत्य यहाँ है।"

सुबोध—"तुम सच कहते हो। सत्य यहाँ है।"

रघुपतिसहाय

कर्बला *

(आलोचना)

प्रेमचंदजी का स्थान आधुनिक हिंदी-साहित्य में ऊँचा है। आपकी रचनाओं का प्रचार भी ख़ूब है। हिंदी-पाठक आपकी नई रचनाओं की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से किया करते हैं। 'कर्बला' आपकी एक नई रचना है। यह नाटक है। यों तो प्रेमचंदजी ख़ास तौर से कहानी लिखने में सिद्ध-हस्त हैं, परंतु आपने

---

* नाटक—लेखक, श्रीयुत प्रेमचंद बी० ए०। प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ। पृष्ठ-संख्या २८+२४४। मूल्य, ३॥), सुनहरी-रेशमी जिल्द ३); प्रकाशन-तिथि, सं० १९८१ वि०।

साहित्य के अन्य अंगों की ओर भी ध्यान दिया है। आप-के दो उपन्यास प्रसिद्ध हो चुके हैं, तीसरा छप रहा है। नाटक भी आपके दो निकल गए। पहला नाटक था 'संग्राम'; 'कर्बला' आपका दूसरा नाटक है।

'कर्बला' में जो सफलता प्रेमचंदजी को प्राप्त हुई है, वह 'संग्राम' में नहीं प्राप्त हुई थी। इसके कई कारण हैं। 'संग्राम' पहला नाटक था, उसमें नाट्य-मंच की आवश्यकताओं पर आप उतना ध्यान नहीं दे सके थे। परंतु यह मुख्य कारण नहीं है। मुख्य कारण यह है कि 'संग्राम' नाटक होने पर भी आपकी अन्य रचनाओं से अभिन्न था। उस नाटक में किसी नए विषय का संयो-जन नहीं किया गया था। उसके पात्रों में कई ऐसे थे, जिनके चरित्रों से हम प्रेमचंदजी की अन्य रचनाओं द्वारा परिचित हो चुके थे। 'कर्बला' हमारे साहित्य के लिये एक नितांत नूतन वस्तु है। हिंदी ही क्या, (प्रेमचंदजी का यह अनुमान सत्य जान पड़ता है) "कदाचित् किसी भी भाषा में इस विषय पर नाटक की रचना नहीं हुई।" इस नाटक की कथा, मुसलमानी धार्मिक इतिहास की एक प्रधान और मार्मिक कथा है। हज़रत हुसेन का चरित्र धार्मिकता, वीरता और आत्म-समर्पण का एक ज्वलंत उदाहरण है; और यदि सारी मुसलमान-जाति उनकी स्मृति को, इतनी शताब्दियों से, प्रति वर्ष जीवित रखती आई है, तो इसमें तनिक भी आश्चर्य की बात नहीं है। प्रेमचंदजी ने अपनी भूमिका के आरंभ में ही लिखा है—"प्रायः सभी जातियों के इतिहास में कुछ ऐसी महत्त्व-पूर्ण घटनाएँ होती हैं, जो साहित्य-कल्पना को अनंत काल तक उत्तेजित करती रहती हैं। साहित्य-समाज नित्य नए-नए रूप में उनका उल्लेख करता है; छंदों में, गीतों में, निबंधों में, लोकोक्तियों में, व्याख्यानों में, बारंबार उनकी आवृत्ति होती रहती है; और फिर भी आनेवालों के लिये गुंजाइश बनी रहती है। हिंदू-इतिहास में रामायण और महाभारत ऐसी ही घटनाएँ हैं। मुसलिम-इतिहास में कर्बला के संग्राम को वही स्थान प्राप्त है।" आश्चर्य और खेद की बात तो यह है कि मुसलमानों से इतना संपर्क रहते हुए भी हिंदी-भाषियों ने उनके साहित्य और इतिहास की इस अमूल्य कथा को अब तक अपनाने का प्रयत्न नहीं किया था। प्रेमचंदजी की रचना हमारे साहित्य को इस लांछन से बरी करती है। एक का दूसरे के साहित्य का मनन करना पारस्परिक सहानुभूति का महान् साधन है। इस दृष्टि से भी हम इस रचना का स्वागत करते हैं। इस विषय का चुनाव स्वयं प्रेमचंदजी की रचना के हक़ में तो अच्छा हुआ ही है, यह हमारी एक जटिल राजनीतिक समस्या को हल करने में भी किंचित् सहा-यक हो सकता है। हम यह भी निस्संकोच कह सकते हैं कि प्रेमचंदजी मुसलमानी विषयों पर लेखनी उठाने के पूर्ण अधिकारी हैं। उन्हें अपने विषय की जानकारी है। परंतु जानकारी से कम आवश्यकता सहानुभूति की नहीं होती। प्रेमचंदजी में दोनों बातें विद्यमान हैं।

कथा के विषय में यहाँ पर विस्तार से कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। स्वयं प्रेमचंदजी ने, संक्षेप में, २८ पृष्ठों में, नाटक के आरंभ में, विषय-परिचय करा दिया है। देखना यह है कि नाटक-रचना की दृष्टि से लेखक को 'कर्बला' में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है। हम ऊपर कह चुके हैं कि यह नाटक लेखक के पहले नाटक से अधिक सफल रहा है। इससे यह न समझना चाहिए कि हम इस नाटक को त्रुटि-रहित अथवा आदर्श मानते हैं। चरित्र-चित्रण, भाषा तथा कथा-निर्माण के विषय में दो-दो बातें लिखना अनुपयुक्त न होगा।

इस नाटक के चरित्र दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं। एक तो ऐतिहासिक, दूसरे कल्पित। ऐतिहा-सिक चरित्रों के चित्रण में लेखक नियंत्रित-सा रहता है। इतिहास कल्पना को सीमा-बद्ध कर देता है। साधारण श्रेणी के लेखकों के लिये इसमें सुविधा है। बड़े लेखकों के लिये यह नियंत्रण बाधक हो जाया करता है। ऐतिहा-सिक चरित्रों के चित्रण की सफलता इसी में है कि ऐति-हासिक आधार को ग्रहण करते हुए चरित्रों की मानवता व्यक्त की जाय। इतिहास घटनाओं को अंकित करता है, उनकी विवेचना करता है। परंतु वह मानव-हृदय की अंतरंगतम बातों पर लक्ष्य करने में असमर्थ है। मानव-हृदय की सूक्ष्म गतियों और प्रेरणाओं पर इसका प्रकाश नहीं पड़ता। यह क्षेत्र साहित्यिक का है। और, ऐतिहा-सिक आधार को व्यर्थ न करते हुए जो साहित्यिक जितना अधिक मानव-हृदय का चित्रण कर सकता है, उसकी उतनी ही सफलता मानी जाती है। इस नाटक का विषय

एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना है। उस घटना पर साहित्यिक कल्पनाएँ भी हो चुकी हैं। इसे ध्यान में रखते हुए, प्रेमचंदजी, साधारण श्रेणी के लेखकों की अपेक्षा, चरित्र-चित्रण में विशेष सफल हुए हैं, इस पर संदेह किया जा सकता है। कल्पित चरित्र सभी गौण हैं। इनमें कुछ चरित्र हिंदू हैं, कुछ मुसलमान। मुसलमान-चरित्र कथा में खप जाते हैं। उनका चित्रण भी उपयुक्त हुआ है। हिंदू-चरित्र कुछ असंगत जान पड़ते हैं। मेरी समझ में इनका समावेश न किया गया होता, तो अच्छा था। इन चरित्रों के समावेश से कथा की रोचकता या मार्मिकता में कुछ वृद्धि नहीं होती। और, इससे न हिंदुओं को प्रसन्नता होगी, न मुसलमानों को तुष्टि, यदि लेखक का इनमें से कोई एक तात्पर्य है। प्रेमचंदजी कहते हैं, हिंदुओं के, कर्बला-संग्राम में, हुसैन के साथ सम्मिलित होने की वार्ता इतिहास-सिद्ध है। आर्यों के अरब में बसने के संबंध में भी वह यह बतलाते हैं कि लोगों का अनुमान है, या तो वे अश्वत्थामा के वंशज थे, जो महाभारत के अनंतर वहाँ जा बसे थे, और या वे उन लोगों में से थे, जिन्हें सिकंदर यहाँ से क़ैद करके ले गया था। कुछ भी हो, यदि हिंदू-चरित्र इस नाटक में न सम्मिलित किए जाते, तो कोई हानि न थी। बल्कि अब हिंदू-चरित्रों के समावेश के कारण कुछ शंकाएँ उत्पन्न होती हैं। अरब-निवासी आर्य अश्वत्थामा के वंशज (प्रेमचंदजी ने उन्हें अश्वत्थामा का वंशज माना है) क्यों माने जायँ? अश्वत्थामा और हुसैन के बीच बीसियों शताब्दियों का अंतर है। उस बीच में क्या इन आर्यों की रहन-सहन और जीवन में देश-काल का कुछ असर नहीं पड़ा? क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आर्य, शासक न होते हुए भी, अपनी विशेषता बनाए रख सके? यदि उनमें परिवर्तन हुआ, तो उसे निर्द्धारित करने के क्या साधन हैं? अश्वत्थामा के वंशज, अरब-निवासी, हुसैन के समकालीन आर्यों का नामकरण (हरजसराय, साहसराय, भीरुदत्त, रामसिंह इत्यादि) किसी युक्ति के साथ किया गया है, अथवा यों ही? हुसैन के समय तक कट्टर हठ-धर्मी, मूर्ति-विध्वंसक मुसलमान जाति के बीच में रहते हुए आर्य लोग अपने मंदिरों की स्थिति को तथा संध्या-वंदन, हवन, पूजा-पाठ की परिपाटी को कैसे क़ायम रख सके? ये तथा इस प्रकार के ऐसे ही अन्य प्रश्न उठते हैं, जिनके उत्तर में अनुमानों का उपस्थित करना पर्याप्त नहीं है। फिर तीसरे अंक में योगी का प्रवेश कराना और उससे कहलाना कि महर्षि मुहम्मद ने ओंकार की ध्वनि से जगत् को निनादित कर दिया है, नितांत असंगत तथा हास्यास्पद है। योगी के अन्य कथनों पर भी घोर आपत्ति हो सकती है। इन सब बातों को देखते हुए मैं फिर यही कहूँगा कि हिंदू-चरित्रों की सृष्टि इस रचना में न हुई होती, तो अच्छा था।

प्रेमचंदजी की भाषा के विषय में विशेष वक्तव्य नहीं है। इस नाटक के अधिकांश चरित्र मुसलमान हैं। उनसे उर्दू-भाषा का व्यवहार कराना ही उपयुक्त था। उर्दू-भाषा प्रेमचंदजी की मँजी हुई है, उस भाषा पर आपको पूर्ण अधिकार है, और आप उस भाषा के माने हुए मुंशी हैं। आपके अधिकांश पाठक जानते हैं कि हिंदी-साहित्य-क्षेत्र में आने के पूर्व आप उर्दू के इने-गिने लेखकों में थे। अतएव आपकी भाषा बहुत सुंदर, महावरेदार और ललित हुई है, इसमें संदेह नहीं। मुझे केवल एक आपत्ति है। वह यह कि आपने जगह-जगह चोखी उर्दू-भाषा के बीच ऐसे संस्कृत-शब्दों का उपयोग किया है, जो साफ़ खटकते हैं। ऐसे अनेकों उदाहरण दिए जा सकते हैं, परंतु दो-तीन ही देकर मैं संतोष करूँगा।— "जिस नबी से आपने इस्लाम की रोशनी पाई, जिसकी ज़ात से आपको यह रुतबा मिला, जिसने आपकी आत्मा को अपने उपदेशों से जगाया, जिसने आपको अज्ञान के गड्ढे से निकालकर आफ़ताब के पहलू में बैठा दिया" (पृष्ठ ४); "मैं इस हुक्म की ताईद करता हूँ। जा, और फिर ऐसी छोटी-छोटी बातों के लिये मेरे आराम में बाधा न डालना" (पृष्ठ २३); "आप अपनी ग़रज़ के गुलाम हैं, दौलत के गुलाम हैं। रसूल ने आपको हमेशा सब्र और संतोष की हिदायत की" (पृष्ठ १८)। ये अनायास संकलित उदाहरण हैं। कौन-कौन शब्द खटकते हैं, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। एक बात और है। अरब-निवासी हिंदुओं से क्लिष्ट हिंदी-भाषा का व्यवहार कराया गया है। यह नहीं चाहिए था। उनकी भाषा मुसलमानों की भाषा से अभिन्न होनी चाहिए थी। पुश्तहा-पुश्त अरबों के बीच में रहकर उनकी भाषा से इनकी भाषा की बहुत कुछ समता होना ही स्वाभाविक था। इन बातों को छोड़कर प्रेमचंदजी की भाषा बड़ी उत्तम हुई है।

यह भी विचार करने की आवश्यकता है कि प्रस्तुत नाटक का नाट्य-मंच पर सफलता-पूर्वक अभिनय हो सकता है कि नहीं। संभव है, हमारे मुसलमान भाइयों को इसका अभिनय किए जाने में कुछ आपत्ति हो। परंतु यह प्रश्न अलग है। ऐसी कोई आपत्ति न रहने की अवस्था में क्या इसका अभिनय सफल हो सकेगा? प्रेमचंदजी इसके विषय में स्वयं सम्मति देते हैं—"नाटक दृश्य होते हैं, और पाठ्य भी। पर हमारा विचार है कि दोनों प्रकार के नाटकों में कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। × × × हमने यह नाटक खेले जाने के लिये नहीं, पढ़े जाने के लिये लिखा है। मगर हमारा विश्वास है कि यदि कोई इसे खेलना चाहे, तो बहुत थोड़ी काट-छाँट से खेल सकता है।" यह मैं पहले ही स्वीकार कर लेना चाहता हूँ कि 'थोड़ी काट-छाँट से' यह नाटक सफलता-पूर्वक खेला जा सकता है। साथ ही मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि मैं 'पढ़े जाने के लिये' लिखे गए नाटकों का क़ायल नहीं हूँ। परंतु अपने विचारों को प्रकट करने के पूर्व मैं उक्त अवतरण के पूर्वांश पर ध्यान देना चाहता हूँ। प्रेमचंदजी ने नाटकों को दो भागों में विभाजित किया है, एक दृश्य और दूसरे पाठ्य। इस वर्गीकरण को मैं कुतूहल की दृष्टि से देखता हूँ। यह हमारी ही शताब्दी की गढ़ंत है। इस प्रकार का वर्गीकरण अक्सर पाश्चात्य साहित्य में कुछ लोग करते हैं। प्रेमचंदजी का वर्गीकरण उनके पाश्चात्य नाट्य-साहित्य से अच्छी तरह परिचित होने का संकेत करता है। परंतु मैं इस प्रकार के वर्गीकरण को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूँ—विशेष कर यह जानते हुए कि इस प्रकार के वर्गीकरण का श्रीगणेश कैसे हुआ। नाटक दृश्य-काव्य है; नाटक की रचना नाट्य-मंच पर अभिनय किए जाने के लिये ही होती है। नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल या असफल हो सकते हैं। असफल नाटक भी बहुत-से लिखे गए हैं। इनके लेखकों में कुछ बड़े लेखक भी थे। उन्होंने तथा उनके समर्थकों ने एक नए वर्गीकरण की आवश्यकता समझी। असफल नाटकों को 'पाठ्य' नाटकों की श्रेणी में सादर स्थान मिला। इस नई श्रेणी में स्वयं शेक्सपियर तक के कुछ असफल नाटक खींच लाए गए। यद्यपि मैं जानता हूँ कि शेक्सपियर के सभी नाटक अभिनय के मतलब से लिखे गए थे। तात्पर्य यह कि पाठ्य-नाटकों का वर्ग वास्तव में असफल नाटकों का वर्ग है। वास्तव में हम केवल पढ़े जाने के लिये लिखे गए नाटकों की कल्पना नहीं कर सकते। नाटक खेले जाने के लिये ही लिखे जाते हैं, और लिखे जाने चाहिए। मैं असफल नाटकों को पाठ्य-नाटकों के प्रतिष्ठित नाम देने का प्रतिपक्षी नहीं हूँ। जहाँ मैं उक्त पाश्चात्य वर्गीकरण का विपक्षी हूँ, वहाँ पाश्चात्य नाट्य-मंच की कुछ अच्छी बातों के ग्रहण करने का प्रबल पक्षपाती भी। वे बातें इस नाटक में नहीं मिलतीं। पाश्चात्य नाट्य-मंच बड़ी उन्नत अवस्था में है। हम उससे बहुत-सी उपयोगी बातों की शिक्षा ले सकते हैं। हिंदी-नाटक-रचयिताओं को आधुनिक पाश्चात्य नाट्य-मंच की प्रगति से अभिज्ञ रहना आवश्यक है। मैं केवल दो-तीन बातें यहाँ बतलाऊँगा, जिन्हें ग्रहण करना हमारे नाटक-रचयिताओं के लिये अच्छा होगा। पहली बात तो नाटक की 'स्वगत' उक्ति के संबंध में है। नाटकों में पात्रों के बहुत-से उद्गार 'स्वगत' होते हैं, अर्थात् वे नाटक के किसी अन्य पात्र के प्रति न होकर दर्शक-वृंद के प्रति होते हैं। किसी भी पात्र के मन में क्या भाव उठते हैं, उनका उसी के शब्दों द्वारा दर्शक-वृंद पर स्पष्ट प्रकट किया जाना अस्वाभाविक है। यदि उन्हें व्यंजित करने की आवश्यकता ही हो, तो चतुर रचयिता और ढंग से व्यंजित कर सकता है। 'स्वगत उक्ति' नाटक की परंपरागत वस्तु अवश्य है, परंतु है बहुत अस्वाभाविक। अतएव इसे उड़ा देना ही अच्छा है। मेरे सामने 'कर्बला' के दूसरे अंक का १२वाँ दृश्य खुला हुआ है। इसके आरंभ में ही 'मुसलिम' की 'स्वगत' उक्ति है। भाव मन में चाहे जितने यथार्थ हों, पर "उफ़! इतनी गरमी × × × वहाँ चलकर पानी माँगूँ, शायद मिल जाय।" (पृष्ठ ११४-१५), यह संपूर्ण उक्ति अस्वाभाविक जान पड़ती है। यह केवल एक उदाहरण है। आधुनिक पाश्चात्य नाटकों से इस 'स्वगत' का लोप हो गया है। अच्छा ही हुआ। मेरा दूसरा वक्तव्य 'अभिनय-संकेतों' के विषय में है। प्रत्येक दृश्य के आरंभ में, तथा बीच-बीच में भी, दृश्य-रचना तथा अभिनय के संबंध में, कोष्ठकों में, निर्देश लिख दिए जाते हैं। ये अभिनय-संकेत बड़े काम के होते हैं। इनके द्वारा लेखक अपनी कल्पना के अनुसार अभिनय कराने में समर्थ होता है। पाश्चात्य नाटकों में ये अभिनय-संकेत बड़े विस्तार और विचार के साथ लिखे जाते हैं।

मैंने दो-तीन पृष्ठ तक के 'अभिनय-संकेत' देखे हैं। हिंदी में बहुत संक्षिप्त अभिनय-संकेतों के लिखने की प्रथा है। बहुत-सा कार्य लेखक अभिनेताओं की रुचि पर अथवा मंच के प्रबंधक की राय पर छोड़ देता है। ऐसा न होना चाहिए। नाटक-रचयिता को नाट्य-मंच की आवश्यकताओं का ज्ञान होना चाहिए, और उसे अपनी कल्पना के अनुकूल 'संकेत' भी पूर्ण रूप से देना चाहिए। इस नाटक में अभिनय-संकेत कहीं तो अपर्याप्त हैं, और कहीं दोष-पूर्ण। एक उदाहरण (पृष्ठ २६ से लिया है) यह है—

"(मदीने के सब नगरवासियों का प्रवेश)।

सब—ऐ अमीर आप हमें × × × × × अपने क़दमों से जुदा न कीजिए।

(रोते हैं)"

'ऐ अमीर' से 'कीजिए' तक ६ पंक्तियों का कथन है। इस छोटे-से उदाहरण में तीन असंगत बातें हैं। एक तो मदीने के 'सब' नगरवासियों का मंच पर प्रवेश असंभव है। उसी प्रकार 'सब' का एकसाथ मिलकर ६ पंक्तियों की वक्तृता देना भी असंभव है। तीसरे सबका मिलकर एकसाथ रोना अस्वाभाविक है; और अगर सब साथ रोए भी, तो उस समय नाट्य-मंच की क्या हालत होगी, यह कल्पना करने से जी घबराता है। अभिनय-संकेतों का देना भी पूर्ण कौशल का कार्य है, और इस पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए। उक्त उदाहरण को भी एक स्फुट उदाहरण समझना चाहिए। एक बात और कहना है। यदि नाटक बहुत विस्तृत न हुआ करें, तो अच्छा है। छोटे, परंतु सुंदर नाटकों की रचना कहीं अच्छी है।

इस नाटक में गाने कम हैं। वे भी लेखक द्वारा रचित नहीं हैं। उर्दू-कवियों की ग़ज़लें तथा मर्सियों के कुछ बंद उद्धृत कर लिए गए हैं। श्रीयुत श्रीधर पाठक की एक भारत-स्तुति भी उद्धृत की गई है।

रामचंद्र टंडन

"मन में"

रह गई सब मन-की-मन में।

चाहती थी पैरों लगकर, चरण-रज सादर सिर पर धर,
युगल दृग-पात्रों में जल भर, निरंतर पूज्य पाद धोकर,
सम्मिलित हो जाती जन में ;
रह गई सब मन-की-मन में।

चुने थे फूल बिछाने को, हार गूँथा पहनाने को,
रही जीवन-सुख पाने को, भाग्य को राह दिखाने को,
खड़ी हो इस वन निर्जन में ;
रह गई सब मन-की-मन में।

सोचती थी, न सुनाऊँगी, नेक जिह्वा न हिलाऊँगी,
मूकता ही दिखलाऊँगी, कहे बिन ही कह जाऊँगी,
आँसुओं को ले लोचन में ;
रह गई सब मन-की-मन में।

चरण फिर वह धरने को थी, न विधि से यों डरने को थी,
विरह-सागर तरने को थी, दुखावधि इति करने को थी,
किंतु कब बल अबला-तन में ?
रह गई सब मन-की-मन में।

* * *

कोउ गाय चरावन को पठवै, कोउ नाम गिनावत चोरन में ;
कोउ नाच नचावत तारिन दै, कोउ बात सुनावत बोलन में।
सब मान गँवाय, हँसाय भयो, बसि मूढ़ अहीर के टोलन में ;
ब्रज छोड़ो, हटाओ, भुलाओ लला, तुम आओ, रहो अब मो मन में।

रामलाल शुक्ल "नीरद"

कल्पना

कोकिला, रसालवन, सिसिर न होत जहँ,
कविता-कुमोदिनी को चंद्रिका किधौं छई ;
कैधौं काव्य-मंडप में दीप-सिखा जगमगी,
राग अनहत की प्रतिध्वनि सुनी गई।
बसत बसंत जिन कुंजनि की मधु-माखी,
जोग की कै जोगिनि ही विजोगिनि है भई।
स्वसा सुख-स्वप्न की, रसिकता-सरित-मीन,
चंचल सो चित्त चकवा की चारु चकई।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

संपादकजी और लेखक-मंडली

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महतो]

लेखक-मंडली—ललित लेख लिखकर लाए हैं,
(खुशामद से) छाप दीजिए आप!
युगप्रवर्तक लेख-रत्न ये—
संपादकजी— (घबराकर, बात काटकर) अरे बाप रे, बाप!
क्षमा कीजिए, भरी हुई है
इनसे तो अलमारी;
ढेर देखकर ढेर हो रही
अक्ल हमारी सारी!

स्वरकार—"व्याकुल"]

[शब्दकार—"व्याकुल"

ठुमरी, सोहनी—तीन ताल

देखो कान्ह, मोसे मग नाहीं अटको।
झटक-पटक मोरी मटकिया पटकी,
बाराजोरी कर मोरी चूनर न झटको। देखो०।
अंतरा—डगर, चलत नारी हँसत निरख-निरख मोरी कुगत
"व्याकुल पिया" तोरो बिनती करत अब, मानो, मानो, जाने दो पनघट को। देखो०।

दे	ए	खो	का	आ	न्ह	मो	से	म	ग	ना	हीं	अ	ट	का	ओ
	×										×	×	×		×
धानी	सा	नी	धा	मा	गा	गा	गा	मा	धा	नी	सा	सा	रे	नी	सा
झ	ट	फ	प	ट	क	मो	री	म	ट	कि	या	प	ट	की	ई
×	×	×	×		×										
सा	रे	सा	रे	नी	सा	नी	धा	मा	धा	नी	धा	मा	मा	गा	०
बा	रा	जो	री	क	र	मो	री	चू	न	र	न	झ	ट	को	ओ
								×	×	×	×	×		×	
सा	सा	गा	गा	मा	मा	धा	नी	सा	रे	सा	रे	सा	नी	सा	०
ड	ग	र	च	ल	त	ना	ओ	री	हँ	स	त	नि	र	ख	नि
							×	×	×	×	×	×	×	×	
गा	गा	गा	मा	मा	मा	धानी	सा	सा	सा	सा	सा	सा	सा	सा	नी
र	ख	मो	ओ	री	कु	ग	त	व्या	आ	कु	ल	पि	या	तो	री
			×					×		×	×	×	×	×	×
नी	धा	माधा	नीसा	नी	धानी	धा	धा	गा	०	गा	गा	गा	गा	मा	धा
बि	न	ती	क	र	त	अ	ब	मा	आ	नो	मा	आ	नो	जा	ने
×	×	×	×	×	×		×	×	×	×	×		×		
मा	गा	रे	सा	रे	सा	नी	सा	सा	रे	सा	रे	नी	सा	नी	धा
दो	ओ	प	न	घ	ट	को	ओ								
			×	×	×		×								
मा	धा	नी	सा	सा	रे	नी	सा								

सुमन-संचय

१. दीनबंधु एंड्रूज़ और महात्मा गांधी

भारतमित्र-संपादक गर्देजी ने एक बार मुझसे कहा था—"मि० एंड्रूज़ और महात्माजी को साथ-साथ बातें करते देखने में बड़ा आनंद आता है।" मैंने इस सुंदर दृश्य को कितनी ही बार देखा है, कभी शांति-निकेतन के तारागण-पूर्ण कोमल आकाश के नीचे, तो कभी कलकत्ते के कोलाहल-मय वायुमंडल में, और फिर कभी जुहू के कल्लोल-प्रताड़ित समुद्र-तट पर। जब-जब मैंने इस दृश्य को देखा, तब-तब मुझे गर्देजी के उपर्युक्त कथन की सत्यता प्रतीत हुई। इन दोनों महापुरुषों में कौन-कौन गुण और वस्तुएँ ऐसी हैं, जिनका सम्मिश्रण हृदय को आनंद-प्रद प्रतीत होता है? एक ओर गांधीजी की महान् आत्मा है, तो दूसरी ओर मिस्टर एंड्रूज़ का विशाल हृदय। इधर महात्माजी की Iron will (सुदृढ़ इच्छा-शक्ति) है, तो उधर दीन-बंधु एंड्रूज़ का मातृवत् कोमल स्वभाव। गांधीजी का व्यक्तित्व हिमालय के उच्चातिउच्च शिखर के समान ऊँचा, और एंड्रूज़ की मनुष्यता गंगा-जल के समान निर्मल। एक अखंड संयम में विश्वास करता है, तो दूसरा अपरि-मित स्वतंत्रता में। दोनों ही भारत-भक्त और मनुष्य-समाज के प्रेमी हैं। इस लेख का उद्देश्य इन दोनों की तुलना करना नहीं है। महात्माजी एंड्रूज़ को अपना सगा, छोटा भाई मानते हैं, और मि० एंड्रूज़ भी उन्हें बड़े भाई के समान ही अत्यंत आदर की दृष्टि से देखते हैं। एक लिखता है—"My dearest Charlie", तो दूसरा लिखता है—"My dearest Mohan!"

इन दोनों का प्रथम मिलन सुदूर दक्षिण-आफ़्रिका में हुआ था। जिस समय गांधीजी दक्षिण-आफ़्रिका में अपना सत्याग्रह-संग्राम चला रहे थे, उस समय मि० एंड्रूज़ दिल्ली में श्रीमान् गोखले के साथ उसी संग्राम की सहा-यता के लिये प्रयत्न कर रहे थे। मि० गोखले के आदेशा-नुसार मि० एंड्रूज़ अपने मित्र पियर्सन साहब को साथ लेकर आफ़्रिका गए थे। मि० एंड्रूज़ कहते हैं—"जब हमारा जहाज़ भूमि के किनारे पहुँचा, तो हमें समुद्र-तट पर कितने ही हिंदुस्तानी देख पड़े। ये सब हम दोनों को लेने के लिये आए थे। मि० पोलक को मैं पहचान गया; क्योंकि मैं उनसे दिल्ली में मिल चुका था। उन्हें वहाँ उप-स्थित देखकर आश्चर्य हुआ; क्योंकि मेरा ख़याल था कि वह अब तक जेल में ही होंगे। मि० पोलक ने मुझसे कहा—"सब नेता छूट गए हैं।" मैंने उनसे फ़ौरन् ही पूछा—"Where is Mr. Gandhi?" (मिस्टर गांधी कहाँ हैं?) महात्माजी ने, जो निकट ही खड़े हुए थे, मुसकिराकर कहा—"I am Mr. Gandhi" (मैं ही गांधी हूँ।) उनके दर्शन करते ही मेरे अंतः-करण में यही प्रेरणा हुई कि उनकी चरण-रज अपने

मि० ऐंड्रूज़. महात्मा गांधी मि० पियर्सन

सुनकर और उनकी आँखों को देखकर थोड़ी ही देर में मुझे उनकी उज्ज्वल सचाई और निर्भय आत्मा का पता लग गया। जितना ही मैं उनके साथ रहा, मेरी यह धारणा और भी प्रबल होती गई।"

इस प्रकार इन दो महापुरुषों का प्रथम मिलन हुआ। इसके बाद अनेक महत्त्व-पूर्ण अवसरों पर मि० एंड्रूज़ को गांधीजी की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जनरल स्मट्स से समझौता होते समय वह गांधीजी के साथ ही थे। जोहांसबर्ग में गांधीजी ने कहा था—"मुझे निःसंदेह इस बात पर विश्वास है कि जिन-जिन राजनीतिज्ञों और प्रधान पुरुषों से मि० एंड्रूज़ मिले, उन सबके हृदय मि० एंड्रूज़ के विचारों से प्रभावित हो गए थे।"

गांधीजी के भारत को लौटने के बाद तो एंड्रूज़ साहब का उनसे और भी घनिष्ठ संबंध हो गया है। कुली-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन में, पंजाब की दुर्घटना के समय, पिछली बीमारी में, और अभी हाल के २१ दिन के उपवास में मि० एंड्रूज़ को जो सौभाग्य गांधीजी के सत्संग का मिला है, वह बहुत कम आदमियों को नसीब हुआ होगा। ऐसे आदमियों की संख्या अत्यल्प है, जो गांधीजी के विषय में अधिकार-पूर्वक लिख सकें—महीने-भर में उनका संपूर्ण चरित लिख डालनेवालों की बात मैं नहीं कहता—और इन अल्पसंख्यक अधिकारी लेखकों में मि० एंड्रूज़ का स्थान अत्युच्च है।

माथे से लगा लूँ। तुरंत ही मैंने उनके चरण छुए। महात्माजी ने मंद स्वर से कहा—"Pray do not do that, it is a humiliation to me" (कृपया ऐसा न कीजिए, ऐसा करना मुझे लज्जित करना है।) गांधीजी उस समय सफ़ेद धोती और कुरता पहने हुए थे, और उनका सिर मुड़ा हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह शोक-सूचक चिह्न धारण किए हुए हैं। मैंने उनसे कहा—"जहाज़ में रास्ते-भर मैं आपके दर्शन करने के लिये उत्कंठित रहा हूँ।" गांधीजी के शब्दों को

महात्माजी के प्रति मि० एंड्रूज़ का प्रेम निराला ही है। गांधीजी कभी-कभी हँसकर कहा करते हैं—"एंड्रूज़ तो

दीनबंधु ऐंड्रूज़

तार के द्वारा भी प्रेम भेजते हैं। सिंगापुर से तार देते हैं—"My dearest love to you इत्यादि।" पिछले उपवास के दिनों में मि० ऐंड्रूज़ महात्माजी के 'चौकीदार' थे। इस चौकीदारी का वर्णन उन्होंने बड़े अभिमान के साथ गुजरात-महाविद्यालय तथा आश्रम में किया था।

महात्माजी के अनेक सिद्धांतों से मि० ऐंड्रूज़ सहमत नहीं हैं; यथा आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन का सिद्धांत। महात्माजी इसके पक्ष में हैं, और मि० ऐंड्रूज़ विपक्ष में। विदेशी कपड़े जलाने के विरुद्ध भी मि० ऐंड्रूज़ ने अपनी आवाज़ उठाई थी। प्रत्येक कांग्रेस-मेंबर को चरखा कातना अनिवार्य कर देने के प्रस्ताव के भी वह विरोधी हैं। संभवतः और भी कुछ बातों में दोनों का मतभेद हो। लेकिन इस मतभेद से दोनों के पारस्परिक प्रेम में कुछ भी अंतर नहीं पड़ता। अभी थोड़े दिन हुए, मि० ऐंड्रूज़ दिल्ली से साबरमती आ गए थे। "यंग इंडिया" के संपादन का काम उन्हें करना था। इस बीच में महात्माजी का एक पत्र उन्हें मिला, जिसमें लिखा था—"I have missed you every moment to-day. Oh your love!" (मुझे आज पल-पल पर तुम्हारी याद आई है। आह तुम्हारा प्रेम!")

महात्मा गांधी

इन दोनों महापुरुषों का प्रेम एक विशेष सिद्धांत का भी सूचक है। जब तक पश्चिम पूर्व के सम्मुख उसी शिष्य-भाव से नहीं आवेगा, जिस भाव से मि० ऐंड्रूज़ गांधीजी के सम्मुख आए हैं, तब तक पूर्व और पश्चिम का मिलन असंभव ही रहेगा।

साबरमती　　　　बनारसीदास चतुर्वेदी

× × ×

२. आकुल आह्वान

विधुर मानस के आकुल भाव, व्यक्त कर, सुना रुदन गंभीर—
खींच उर तीव्र जलन का चित्र, प्रलय-पट पर, उमड़ा दृग-नीर!
हार—हाँ गया; मिला वह नहीं, 'हृदय' जो द्रवीभूत हो जाय,
सुधा-सरवर से भी अवितृप्त लौट आया अब हो निरुपाय।
प्रबल पीड़ा-पथ पर हूँ पड़ा, न-जाने कब कर दूँ प्रस्थान?
चाह है, सुन लूँ अंतिम बार, प्रेममय जीवन-धन! तव गान।
प्रलय-वारिधि का भीषण ज्वार, क्षुब्ध हो, सीमा को कर पार—
उमड़ता बढ़ा चला आ रहा, आज करने मेरा संहार!
हिला है रहा हृदय, विक्षिप्त पवन, उन लहरों को झकझोर;
न-जाने निठुर वेग कब मुझे, बहाकर ले चल दे किस ओर?
इसी से उत्कंठित हो आज, करुण स्वर में करता 'आह्वान'!
खोल निज छवि-मंदिर का द्वार, देख जाओ मुझको तज मान!
न-जाने कौन फूँक कब गया, अनल, जो जला रहा उर-गेह?
नयन वे मुझसे कब फिर गए, सदा बरसाते थे जो नेह?
दिव्य तम 'उत्कंठा का राज्य' ध्वंस हो गया, हुआ मैं दीन!
नहीं अवगत कर दे कब काल, क्रुद्ध हो मुझे नाश में लीन?
इसी से उछल रहा है हृदय, विकल हो, मेरा बारंबार।
चरण पर तेरे हे हृदयेश! ढार दूँ अंतिम दृग-जल-धार।
नष्ट कर आकुलता की सृष्टि, दूर कर दारुण अंतर्दाह—
निकल जाने को है सन्नद्ध, दग्ध अंतस्तल-अंतिम 'आह'!
देर केवल बस, है अब यही, चूम लूँ तेरा पावन प्यार,
तृप्त आकुल आँखें हो जायँ, पान कर रूप-सुधा का सार।
लिपटकर हृदय रोत रो पड़ूँ, प्रेम-विह्वल हो अंतिम बार।
शांत जीवन को करने शांत, आह! अब आ जा! प्राणाधार!

जनार्दनप्रसाद झा "द्विज"

× × ×

३. हिंदू-जाति की शोचनीय दशा

समय का बुरा प्रभाव न-जाने हिंदू-जाति ही पर क्यों ऐसा अधिक देख पड़ता है कि इस नई सभ्यता के युग में भी इस पर अनेक प्रकार के अत्याचार होते ही रहते हैं, और यह चूँ तक नहीं करती। हिंदू-जाति के निर्जीव होने के प्रमाण सब ओर सैकड़ों सहज ही पाए जाते हैं।

नई मनुष्य-गणना से पता चलता है कि हिंदुओं की संख्या प्रति दिन घटती ही चली जाती है। सन् १९११ में हिंदुओं की संख्या २१,७५,८६,८९२ थी; परंतु १९२१ में घटकर २१,६७,३४,५८६ रह गई, या यों कहिए कि हिंदू ८,२२,३०६ दस साल में घट गए। जहाँ अन्य जातियाँ बढ़ रही हैं, वहाँ हिंदुओं की संख्या घटती जाती है। इधर हिंदू एक फ़ी सैकड़े घट रहे हैं, उधर मुसलमान पाँच फ़ी सैकड़े बढ़ रहे हैं। यही नहीं, हिंदुओं की जन्मसंख्या भी घट रही और मृत्यु-संख्या बढ़ रही है। आयु भी हमारी घटती ही चली जाती है। वीरता की जगह कायरपन ने अपना डेरा जमा रक्खा है, और अन्य जातियों की दृष्टि में हमारी जाति एक नामर्द और निर्जीव जाति हो रही है।

बिहार-प्रांत में हिंदुओं की संख्या २८,७६,११८ है। उनमें से एक साल के भीतर ६,५५,२९२ मौत के मुँह में गए, जिनमें १,९९,२२३ बालक थे, और उनकी अवस्था १२ महीने से कम ही थी। इस प्रांत में हिंदुओं ही पर कराल काल का कोप अधिक रहा है। यहाँ हिंदुओं, मुसलमानों और ईसाइयों की आबादी फ़ी हज़ार वर्ग-मील के हिसाब से इस तरह है—

हिंदू	३३·५
मुसलमान	२८·०
ईसाई	१९·७

क्या ये अंक हमारी शोचनीय दशा की सूचना नहीं दे रहे हैं? क्या हमारा भविष्य अंधकारमय नहीं दिखाई देता? हमारे ह्रास का सिलसिला अगर यों ही जारी रहा, तो वह भयंकर दिन भी आ रहा है, जब हमें अपनी इस लापरवाही पर पश्चात्ताप करना कैसा, सिर पर हाथ रखकर रोना पड़ेगा।

आशा की बात यही है कि हिंदू-जाति दिन-दिन बाल-विवाह तथा अनमेल विवाह का कटु फल चखकर इन कुरीतियों को हटाने का प्रयत्न कर रही है, और आशा-जनक सुधार भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इस आंदोलन को जीवित रखना हमारा कर्तव्य होना चाहिए। इन कुरीतियों के दूर हो जाने से विधवाओं की समस्या भी बहुत कुछ हल हो जायगी।

हिंदुओं को अपनी शारीरिक उन्नति की ओर भी शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए। आत्मा तथा मन भी हमारा साथ तभी देगा, जब हमारे शरीर के अंग-प्रत्यंग पुष्ट होंगे। हमारे ह्रास का यह एक बड़ा कारण है कि हम अपने शरीर को पुष्ट बनाने पर कम ध्यान देते हैं। विदेशियों से हमें शिक्षा लेनी चाहिए। वे शरीर-रक्षा के लिये अंत समय तक प्रयत्न करते ही रहते हैं। पर आर्म्स ऐक्ट भी हमें बहुत कुछ निर्जीव बना रहा है। जिनकी तलवारें

के झंकार से कभी संसार काँपता था, जिनकी वीरता का सिक्का बड़े-बड़ों के हृदयों पर जमा था, आज दैव-गति से या कर्मों के फल से उन्हीं के वंशधर हम गीदड़ बने हुए हैं। अछूतों का प्रश्न भी अब पहले की तरह जटिल नहीं रहा। इधर भी जागृति के चिह्न दिखाई देने लगे हैं। अब केवल "प्यार करो, उन्हें उठाओ" कहने से ही काम नहीं चलेगा; बल्कि अपने व्याख्यानों, प्रस्तावों और निश्चयों को कार्य-रूप में परिवर्तन करने में ही हमारा कल्याण है। जाति-पाँति के भेद, छुआ-छूत और घृणा इत्यादि के भावों में भी उचित सुधार की आवश्यकता है।

धार्मिक आडंबर भी हमारी उन्नति में काँटे बो रहा है। मुसलमानों में भी फ़िर्के हैं; पर साथ-साथ उनमें संगठन है, जिसके कारण कोई भी उन्हें नीचा नहीं दिखा सकता। पर हमारे यहाँ के संप्रदाय अपनी डेढ़ चाँवल की खिचड़ी अलग ही पकाना चाहते हैं, और कभी यह विचार नहीं करते कि हम सभी एक ही वृक्ष की भिन्न-भिन्न शाखाएँ हैं।

जैसा कि गया की हिंदू-सभा ने निश्चय किया है कि एक सभा स्थापित की जाय, जिसमें समस्त प्रांत के हिंदू प्रतिनिधि रहें, और जिसका यह उद्देश्य हो कि वे हिंदू-जाति को दूसरों के हमले तथा अन्याय-अत्याचार से बचाकर हिंदू-जाति का संगठन करें। साथ-साथ सभा यह भी निश्चित करे कि हिंदू-सभा के नियम ऐसे विस्तृत तथा उदार हों कि समस्त संप्रदायों के हिंदू उसमें शामिल हो सकें। हिंदू-सभा के मुख्य उद्देश्य ये हों—

१. बिखरी हुई हिंदू-जाति को एक सूत्र में बाँधना।

२. धर्म के मुख्य-मुख्य सिद्धांतों का प्रचार करना।

३. हिंदू-मुसलमानों में एकता का सच्चा बीज बोना।

४. व्यायामशाला स्थापित करना, तथा प्रति वर्ष विशेष उत्सव मनाना।

५. बाल-विवाह इत्यादि कुरीतियों को रोकना।

६. अछूतों का उद्धार करना।

७. हिंदुओं को दूसरों के हमले और अत्याचार से बचाना, चाहे वह हमला शारीरिक हो या धार्मिक।

वर्मा

× × ×

४. कविता-कामिनी

सुकवि-विधाता-सृजिता कविता-कामिनी;
सद्शैली-परिधान-धारिणी प्रियतमा।
अमित अलौकिक अलंकार-आभूषिता;
होती है सर्वत्र समादृत सर्वदा।
सहज अमेय विलोक इसे सुषमा-युता,
है मयंक-वदनी भी स्ववदन ढाँकती।
इस अभिवाद्या श्रवणीया को देखकर,
सती असत्कुल होती, बगलें झाँकती।
है इसकी चंचला बनी परिचारिका—
है सुश्रूषा करती इसको पालती।
विश्व-मोहिनी बनकर कविता-कामिनी—
फिरती है निरपेक्ष मोहिनी डालती।

सभामोहन अवधिया

× × ×

५. आर्यों का गृह-निर्माण

मानव-जाति की सभ्यता का विकास किस क्रम से हुआ, यह जानने की सामग्री हमारे पास नहीं है। पर वेदों के कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनमें प्राचीन आर्यों की सभ्यता के विकास का इतिहास छिपा हुआ है। आज हम उन्हीं शब्दों के आधार पर यह बतलाना चाहते हैं कि वैदिक काल के पूर्व आर्यों की कैसी दशा थी, और किस क्रम से उन लोगों ने सभ्यता प्राप्त की—

१—'नीलम्' वेदों में गृह के अर्थ में आता है। यथा ऋग्वेद० ८। १। १७। १। "आपो महः शूरः सनाद-नीळः"। पर 'नील (ड़)' उसे कहते हैं, जो वृक्ष के ऊपर बनाया जाता है। यह शब्द आर्यों की उस अवस्था का द्योतक है, जब वे लोग वृक्षों के ऊपर गोरिल्लों की भाँति मचान बनाकर रहते थे। उनमें वाणी का विकास हो चला था, और सभ्यता का विकास अंकुरित हो रहा था। वे नंगे और असहाय थे, और वृक्षों के फल तोड़-कर खाते थे। उस समय न तो उनको धातुओं का ज्ञान था, और न वे किसी प्रकार के शस्त्र ही का बनाना और उसका प्रयोग करना जानते थे। वन्य, हिंसक जंतुओं से रक्षा की कोई सामग्री उनके पास सिवा इसके न थी कि भागकर वृक्षों पर चढ़कर अपने प्राणों की रक्षा करें। उनकी भाषा भी अति संकुचित और एकाच् तथा आदिम अवस्था में थी, जिसे हम अंकुरित कह सकते हैं। स्वयं

'नील'-शब्द भी आदिम अवस्था में "नीड्"-सा एकाच् ही रहा होगा, जो पीछे 'द्यच्' हो गया। यद्यपि निघंटु के टीकाकार देवराज यज्वा ने नीलम् की व्युत्पत्ति "नी-धातु से 'दृगाड्क्रोडकुहोडादयः इति उडच्प्रत्ययः, प्रत्ययादेर्लोपो गुणाभावश्च निपात्यते। नीयते पदार्थाः, नयति मुखनिःश्वासनमिव।" की है, पर यह ठीक नहीं प्रतीत होती। नीड-शब्द का 'नीर' और 'इला' से स्फोट-संबंध है। 'इला' का पाठ निघंटु में सबसे पहले आदि ही में पृथ्वी के नामों में आता है। वहाँ स्वयं यज्वा महाशय ने इण् गतौ से 'इला'-शब्द की व्युत्पत्ति 'इण् गतौ' से "कांदिभ्यो कित् इत्यस्मिन्सूत्रे बहुलानुवृत्तेःअनमन्तादपि भवति—इति वचनात् डप्रत्ययः कित्वाद्गुणाभावः" के अनुसार 'ड' प्रत्यय लगाकर किया है। 'इण्' के णकार का 'ल' हो जाना स्वभावसिद्ध है। जहाँ गति हो, जहाँ लोग पहुँचें, उसे 'इल' कहते हैं। इसी कारण वैदिक शब्द 'इला' का प्रयोग पृथ्वी के अर्थ में हुआ। इसी 'इल'-शब्द में 'न' निषेधार्थक लगाकर आदिम आर्य 'नील' वृक्ष पर अपने बनाए हुए घोसले या मचान को कहते थे। कारण यह था कि वहाँ हिंसक प्राणियों की गति या पहुँच नहीं हो सकती थी। पीछे मंत्रों के समय में वही 'नील'-शब्द घर के अर्थ में आदिम वासना को लेकर ऋषियों ने प्रयुक्त किया। 'नीर'-शब्द का जल के अर्थ में प्रयोग होने का भी यही कारण है कि पानी में लोग नहीं जा सकते थे। यह नीर*शब्द 'इला' का उलटा था, जैसे आजकल खुश्की और 'तरी' बोलते हैं, वैसे ही वैदिक काल में 'इला' और 'नीर'-शब्दों का प्रयोग होता था।

२—'दुरोणे', और 'दुर्या', इन दोनों शब्दों का पाठ भी गृह-नाम में है। 'दुरोण' द्रोणि, हिंदी 'दून' मिलते-जुलते और एक ही शब्द के रूपांतर हैं। 'दुरोण' पर्वतों के बीच की सँकरी दरी को कहते हैं, और 'दुर्या' भी उसी का वाचक शब्द है। आर्य लोग पीछे पहाड़ों की दरारों में छिपकर शीत और हिंसक प्राणियों से अपनी रक्षा करते थे। स्वयं निरुक्तकार लिखते हैं—"दुरोण इति गृहनामदुःखा भवन्ति दुस्तर्याः" अर्थात् दुःख कठिनाई से हटाए जाते हैं। यहाँ आर्य लोग दुःखों से बचने के लिये रात काटते थे।

३—'अस्तम्', 'पस्तम्' ये दोनों शब्द भी वेदों में घर के अर्थ में हैं। 'अस्त' तिरोभाव या छिपने को कहते हैं। जहाँ कहीं अपने शत्रुओं से छिपने का स्थान मिलता था, चाहे भूमि पर हो या वृक्षादि पर, उसे अस्त कहते थे। पस्तम् में 'प' 'प्र' उपसर्ग का संभवतः पूर्वरूप है, अर्थात् जहाँ अच्छी तरह छिप सकें।

४—'गर्त' की भी परिगणना गृह-नाम में है। गर्त गड्ढे को कहते हैं। वह गढ़ा, जो स्वाभाविक हो। ऐसे गढ़ों में भी प्राचीन प्राग्वैदिक आर्य छिपकर रात को हिंसक जंतुओं से अपने प्राणों की रक्षा किया करते थे। यहाँ तक तो वे शब्द हुए, जो उस अवस्था के हैं, जब वे अपने हाथों से अपने लिये किसी प्रकार का ऐसा आश्रय भूमि पर नहीं बना सकते थे, जिसमें वे रात को शीतोष्ण और हिंसक जंतुओं के आक्रमण से अपनी रक्षा कर सकें। अब आगे ऐसे शब्द दिए जाते हैं, जो उस समय के हैं, जब वे अपने लिये रक्षा-स्थान बनाने और अस्त्रों का प्रयोग करने लगे, चाहे वे अस्त्र लकड़ी, हड्डी या धातु, किसी के हों; क्योंकि यहाँ हम उनके अस्त्रों की आलोचना नहीं करना चाहते। ऐसा करने से विषयांतर में जाना होगा, और लेख बहुत बढ़ जायगा। अतः हम उन्हीं शब्दों को लेंगे, जो गृह से संबंध रखते हैं।

५—'कृदरः'-शब्द का वास्तविक अर्थ है वह 'दर' या दरारा, जो खोदकर बनाया गया हो। जब आर्यों को अपनी समुचित रक्षा दरों आदि में न देख पड़ी, और खोदकर बनाने की शक्ति हो गई, तो पर्वतों या ऊँची भूमि में वे कृत्रिम 'दरारे' या मान बनाकर रहने लगे।

६—'कृत्तिः'। 'कृत्ति' चमड़े को कहते हैं। आर्य लोग पीछे के काल में चमड़े से अपने घरों को बनाते थे। यही 'कृत्ति'-शब्द 'कृत्तिवास' में भी है, जो उस व्यक्ति को सूचित करता है, जिसका वस्त्र या आच्छादन चमड़े का हो। फिर पीछे के काल में वे लोग अपने बनाए हुए चमड़े के घरों या डेरों को लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर, माल्य होने की दशा में, ले जाने लगे थे। उस समय वह उसे 'गय' (अर्थात् जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा सकें) कहते थे। जान पड़ता है, उनकी यह चमड़े की छोलदारी बहुत भारी न होती थी कि एक आदमी उसे न ले जा सके। यह गय उनकी संपत्ति थी, इसी कारण गय का पाठ धन के नामों में भी है। इसके अतिरिक्त एक और छोटी छोलदारी होती थी, जो बकरे के चमड़े से बनाई जाती थी। उसे लोग "अजज्म" कहते थे।

* संस्कृत में र और ल में भेद नहीं माना जाता।

७—'छदि' यह एक प्रकार की झोपड़ी थी, जिसे लोगों ने उस समय बनाना आरंभ किया था, जब एक स्थान पर रहने लगे थे। यह पत्तों से या तृण से बनाई जाती थी, और इसमें एक ही कक्षा या कोठरी होती थी। फिर धीरे-धीरे दो-चार कोठरियों को एक में मिलाकर छाने लगे थे। उसे लोग 'अमा' कहते थे। इसी से अमा-शब्द का अर्थ 'साथ के' हो गया है; क्योंकि कई कक्षाएँ एक-साथ मिली-जुली होती थीं, जिनका एकसाथ मान लोग नहीं कर सकते थे।

८—'शर्म' उस घर को कहते थे, जिसमें आँगन होता था। लोगों ने इसे बहुत पीछे बनाना शुरू किया था। कल्याण या सुख की सारी सामग्री इसमें वे संग्रह कर सकते थे, इस कारण इसे वे शर्म कहते थे। अंत में बड़े-बड़े लोगों ने 'प्रासाद' बनाना शुरू किया। उन्हें ऊपर से पाटते थे। इन पर छाँद नहीं होता था, छतें होती थीं। पीछे जब ईंटें बनाने लगे, तब इसे ईंटों से बनाते थे।

वेदों में आए गृह-शब्दवाची उक्त शब्दों के वास्तविक अर्थों पर विचार करने से इस बात का पता चलता है कि आर्यगण कैसे-कैसे किस-किस अवस्था में कहाँ-कहाँ रहते और अपने वास-स्थान को किस प्रकार बनाते थे।

(स्वर्गीय) जगन्मोहन वर्मा

× × ×

६. "अश्रु"

कौन छिपे हो उर अंतर में—नीरव जल आगार।
करुणालय हो,
लीलामय हो,
सदा सदय हो,
कौन बसे हो मुक्ता-हार।
कौन हृदय में रहकर करते प्रेम-स्रोत-संचार।
सिंधु-हृदय के,
प्रेम प्रणय के,
मान विनय के,
कोमल नयनों के शृंगार।
वज्र-हृदय को पिघलाते तुम, 'जगतीतल के सार'।
विह्वल मन को,
व्याकुल जन को,
तापित तन को,
बरसाकर अविरल जल-धार।
शांत किया करते हो निशि-दिन 'मानस के उद्गार'।
हृदय भवन के,
प्रिय बंधन के,
जग जीवन के,
प्रेमी पुरुषों के आधार।
अबलाओं की—विधवाओं की—आहों के भंडार।
मानस-जल हो,
अति कोमल हो,
नवल धवल हो,
सुख-दुख में लेते अवतार।
चंचल-लोचन-रत्न 'अश्रु' तव महिमा अपरंपार।

चंद्रनाथ मालवीय "वारीश"

× × ×

७. विदेशी पत्रों का प्रचार

भारत में सभी भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार की बड़ी बुरी हालत है। किसी 'पत्र' की ग्राहक-संख्या दस हज़ार होना भी आश्चर्य की बात समझा जाता है। मगर विदेशी पत्र-पत्रिकाओं का प्रचार हज़ारों नहीं, लाखों हैं, और उस पर वहाँ किसी को आश्चर्य नहीं होता। नीचे अमेरिका और इँगलैंड के कुछ पत्रों की ग्राहक-संख्या दी जाती है। यह संख्या दि यंग सिटीज़न पत्र से ली गई है—

अमेरिका

पत्र का नाम	ग्राहक-संख्या
दि सैटर्डे ईवनिंग पोस्ट	२१,००,०६८
दि लेडीज़ होम जर्नल	१७,६६,००२
दि पिक्टोरियल रिव्यू	१७,६५,४३०
दि अमेरिकन मैग़ज़ीन	१६,०४,४३३
दि ऊमेन्स होम कंपैनियन	१४,६७,५०६
दि कास्मोपोलिटन	६,८३,३६०
दि लिटररी डाइजेस्ट	६,००,०००
दि कंट्री जेंटिलमैन	७,६४,७००
दि नैशनल जॉग्रेफ़िक मैग़ज़ीन	७,३४,२८४
दि रेड बुक मैग़ज़ीन	७,३३,५७६

इँगलैंड

पत्र का नाम	ग्राहक-संख्या
दि टाइम्स	७,६१,८६६
दि न्यूज़ ऑफ़ दि वर्ल्ड	३०,००,०००

डेली हेरल्ड	२,००,०००
डेली मिरर	१०,०२,८८२
डेली क्रॉनिकल	१०,००,०००
जॉन बुल	७,१६,२५५
श्राटोकार	४१,३५३
पंच	१०,००,०००
पिक्चर शो	२,६८,३८०
पेंसर्स	४,७८,६२१
ब्वॉयूज़ मैगज़ीन	२,०४,३५१
ब्वॉयूज़ श्रोन पेपर	३६,०००
गुड हाउस-कीपिंग	१,४४,४२६
माई मैगज़ीन	१,०६,१०१
संडे ऐट होम	२०,०००
इलस्ट्रेटेड ड्रेस-मेकर	६,१३,६१२
लेडीज़ जर्नल	४,४२,६३१
स्पोर्ट टाइम्स	५८,६६१
ब्रिटिश वीकली	८०,०००

क्या कभी भारत में भी इतनी शिक्षा का प्रचार होगा कि यहाँ के पत्रों की ग्राहक-संख्या यहाँ तक पहुँच सकेगी ?

नंदकिशोर अग्रवाल

× × ×

८. नाश

जगत् में सबका नियमित नाश।
उषा का वंकिम भृकुटि-विलास,
निशा का किंचित् मंजुल हास;
छटा का यह सुंदर शृंगार,
प्रकृति का यह स्वच्छंद विहार।
श्ररुण-मंडल का रजत प्रकाश,
गगन-मंडल का पुष्पित वास;
छटाओं का यह अद्भुत मेल,
प्रकृति का है क्षणभंगुर खेल।
कुसुम-कलियों की मृदु मुसकान,
हरित विटपों की छवि श्रम्लान;
ललित-लतिका कुसुमित द्रुम-वृंद,
चटकना कलिका का स्वच्छंद।
सभी में है सौंदर्य विकास,
सभी का होता तो भी ह्रास;
क्षणिक है जीवन-स्वप्न-विकाश,
जगत में सबका नियमित नाश।

श्रीजगन्नाथ मिश्र "कमल"

× × ×

९. शरद

श्रमल प्रकास भयो, खंजन लखान लागे,
फूले इंदीवर, भीर-भौंर गुंजरत की;
धारि सिर छत्र चंद, बिहँसत मंद-मंद,
श्राभा त्यों श्रमंद छवि बाढ़ी उडगन की।
बहत 'सरोज' सोंधी परिमल-सनी पौन,
स्वच्छ सरितान सोहै जोड़ी सारसन की;
प्रकृति बधाई मानो जगत को देन श्राई,
सुखद सुहाई ऋतु सरद है मन की।

त्रिभुवननाथसिंह "सरोज"

× × ×

१०. भुवनेश्वर का मंदिर

(रवींद्रबाबू के एक लेख का अनुवाद)

उड़ीसे के भुवनेश्वर-मंदिर को जिस समय मैंने पहले-पहल देखा, उस समय मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो मैं कोई नए ग्रंथ का पाठ कर रहा हूँ। मन में विचार किया, इन पुंजीभूत प्रस्तरों में भाव-प्रकाशन की शक्ति है। बहु शताब्दियों से स्तंभित इस मूक-भाषा में अवश्य विशेषता है, यह सोचकर हृदय की दशा और ही कुछ होने लगी।

ऋक्-रचयिता ऋषि छंदों में मंत्रों की रचना कर गए हैं। यह मंदिर भी प्रस्तर का मंत्र है; हृदय की बात प्रत्यक्ष होकर खड़ी हुई आकाश से बातें कर रही है।

मनुष्य के हृदय ने इस जगह पर कौन-सी बात प्रकट कर रक्खी है? भक्ति ने क्या-क्या रहस्य प्रकाशित कर रक्खे हैं? मनुष्य को अनंत के अनंत भांडार से अपने अंतःकरण में कौन-सी वाणी की उपलब्धि हुई थी, जिसके प्रकाश की प्रकांड चेष्टा से इस शैल-पादमूल में विस्तीर्ण प्रांतर आकीर्ण होकर स्थित है।

ये जो सैकड़ों देवालय हैं, जिनमें से अनेकों में आज संध्या के समय आरती नहीं होती, दीपक नहीं जलता, शंख-ध्वनि नहीं होती, तथा जिनके खोदित प्रस्तर-खंड आज धूल में लोट रहे हैं, वे क्या किसी व्यक्तिविशेष की कल्पना को आकार देने की चेष्टा नहीं कर रहे हैं? ये सब उस प्राचीन काल की, उस अज्ञात युग की, भाषा
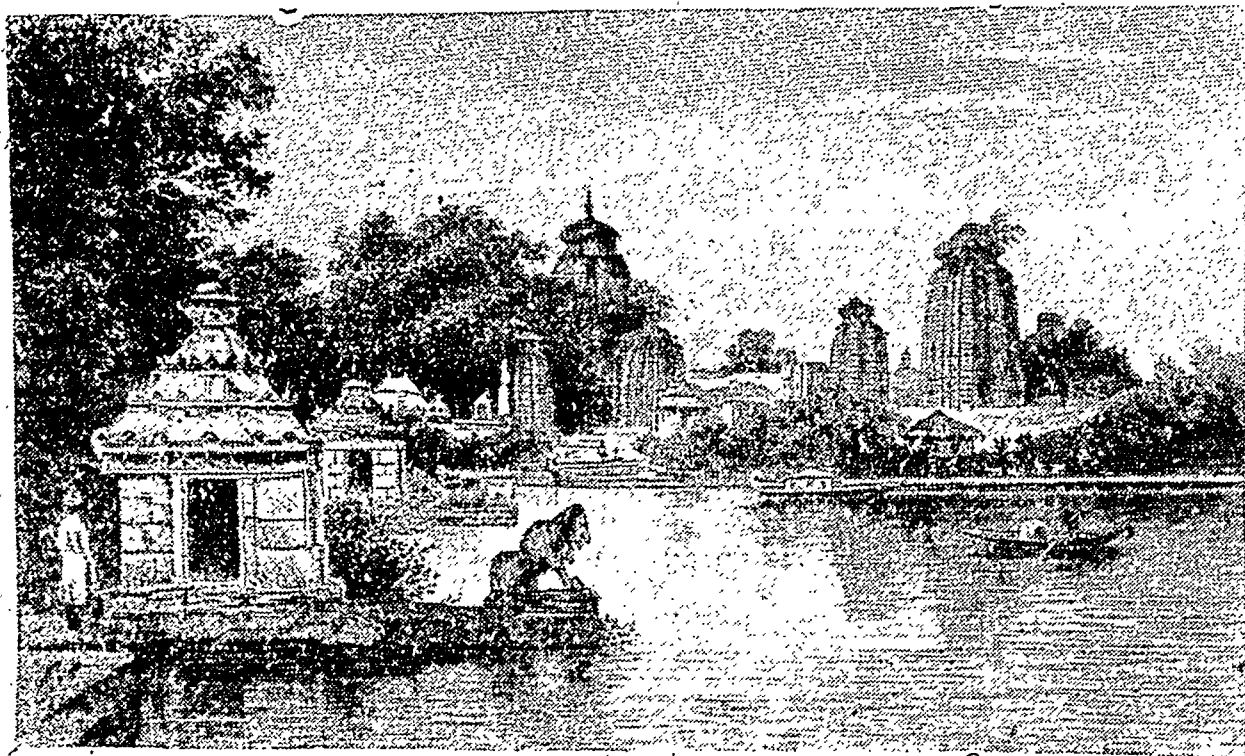
भुवनेश्वर का मंदिर

के बोझ से दबे हुए हैं। ये देवालय-श्रेणियाँ अपनी निगूढ़, निस्तब्ध चित्-शक्ति के द्वारा दर्शक के अंतःकरण को सहसा जिस भावांदोलन में उद्बोधित कर देती हैं, उसकी आकस्मिकता, उसकी समग्रता प्रकट करना कठिन है। विश्लेषण करके खंड-खंड रूप में उसके प्रकाश की चेष्टा करनी होगी। मनुष्य की भाषा इस स्थल पर, इन प्रस्तरों के आगे, अपनी पराजय स्वीकार करती है। प्रस्तर को क्रम-क्रम से वाक्य गूँथना नहीं पड़ता—वह स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहता; किंतु जो कुछ उसे कहना होता है, वह उस सबको एकसाथ कह देता है। एक पलक भपकने-भर के समय में वह समस्त मन पर अधिकार जमा लेता है। सुतरां मन ने क्या समझा, क्या सुना, क्या पाया, उसे भाव द्वारा हृदयंगम कर लेने पर भी भाषा द्वारा समझने का समय नहीं मिलता। अंत को स्थिर होकर उसे क्रमशः अपनी भाषा में समझाना पड़ता है।

मैंने देखा, मंदिर का सारा शरीर चित्रों से विभूषित है। कहीं तिल धरने को भी ख़ाली जगह नहीं है। जहाँ आँख पड़ती है, और जहाँ आँख नहीं पड़ती, सभी स्थानों पर चित्र खुदे हुए हैं। सर्वत्र ही शिल्पी की निरलस चेष्टा ने कार्य किया है।

इसके चित्र-समूह ख़ास करके पौराणिक चित्र नहीं हैं, दशावतार-लीला या स्वर्ग-लोक की देव-कहानी के ही चित्र लिखित हैं—यह नहीं कहा जा सकता। मनुष्य के जीवन में प्रति दिन जो छोटी-बड़ी, भली-बुरी घटनाएँ होती हैं, उन्हीं के चित्रों से मंदिर ढका हुआ है। मनुष्य के खेल और कार्य, युद्ध और शांति, घर तथा बाहर के मामले, इन सभी विषयों के चित्रों से मंदिर का कलेवर मंडित है। इन चित्रों को देखने से इनके निर्माण का कोई स्थिर उद्देश्य ज्ञात नहीं होता। इन चित्रों के द्वारा केवल यही व्यक्त किया गया है कि यह संसार किस तरह चल रहा है। ये चित्र इस विशाल संसार की प्रकृत स्थिति और गति के नक़्शे कहे जा सकते हैं। इन चित्रों के द्वारा यह अंकित करने की चेष्टा की गई है कि संसार जिस तरह, जिस रूप में चल रहा है, वह यह है। इन चित्रों में ऐसे चित्र भी देख पड़ेंगे, जिनके विषय में मन में एकाएक यह विचार उठता है कि ये देवालयों में अंकित करने योग्य नहीं हैं। इन चित्रों में चुन-चुनकर केवल अच्छे चित्र ही नहीं दिए गए—अच्छे भी हैं, बुरे भी हैं। इनमें तुच्छ और महत्, गोपनीय (गुप्त रखने योग्य) और घोषणीय, सब प्रकार के चित्र हैं।

किसी गिरजाघर के भीतर जाकर देखिए। वहाँ दीवार पर अँगरेज़ समाज की प्रति दिन की घटनाओं के

चित्र टँगे मिलेंगे। कोई खाना खा रहा है, कोई dog-cart (कुत्तागाड़ी) हाक रहा है, कोई whist खेल रहा है, कोई पियानो बजा रहा है, कोई अपनी संगिनी की कमर में हाथ डाले नाच रहा है।

इन दृश्यों को देखकर मन में विचार उठने लगेगा कि क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ; क्योंकि गिरजाघर संसार को सर्वतोभाव से दूर कर अपनी स्वर्गीयता प्रकट करने की चेष्टा करता है। मनुष्य वहाँ मर्त्य-संस्पर्श-विहीन देव-लोक के आदर्श ढूँढ़ता है।

भुवनेश्वर-मंदिर की चित्रावली के दर्शन से पहले मन में विस्मय उत्पन्न होता है। ऐसा न भी होता; पर हम लोगों ने शैशव-काल से स्वर्ग और मर्त्य को भिन्न-भिन्न जो मान रक्खा है, उसी का यह फल है। यहाँ मनुष्य देवता के शरीर के ऊपर अवस्थित-सा ज्ञात होता है। मनुष्य अपने मानव-स्वभाव-सुलभ आचारों के सहित उपस्थित है। उसका शरीर धूल से सना है। वह उसे झाड़े-पोंछे और साफ़ किए बिना ही आ पहुँचा है। गतिशील, कर्मरत, धूलि-लिप्त संसार की प्रतिकृति निःसंकोच भाव से ऊपर उठकर देवता की प्रतिमूर्ति को ढके हुए है।

मैं मंदिर के भीतर गया। वहाँ एक भी चित्र नहीं है। प्रकाश नहीं है। अनलंकृत, निभृत अस्फुटता के बीच में देवमूर्ति निस्तब्ध होकर विराजमान है। इसका एक बृहत् अर्थ मन में उदय हुए बिना नहीं रह सकता। मनुष्य ने इस पत्थर की भाषा में जो कुछ कहने की चेष्टा की है, वह उस बहु दूर काल से मेरे मन में ध्वनित हो उठा। वह बात यह है कि देवता दूर पर नहीं हैं। वे हम सबके मध्य में ही हैं। वे जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, पाप-पुण्य और मिलन-विच्छेद के बीच चुपचाप विराजते हैं। यह संसार ही उनका चिरंतन मंदिर है। सजीव, सचेतन, विपुल देवालय प्रति दिन विचित्रता-पूर्ण चित्रकारी से चित्रित होकर रचे जा रहे हैं।

ऐसा देवालय किसी समय न तो नूतन होता है, और न कभी पुरातन। इसका महत् ऐक्य, इसकी सत्यता, इसकी नित्यता कभी नष्ट नहीं होती। कारण, समस्त सांसारिक चंचलता और विचित्रता के बीच एक नित्य सत्य सर्वदा प्रकाशित रहता है।

भारतवर्ष में भगवान् बुद्ध ने मनुष्य को महत्ता का उपदेश दिया था—उसे बड़ा बनाया था—ऊपर उठाया था। उन्होंने जाति-भेद का विचार त्याग दिया था, याग-यज्ञ करने के बंधन से मनुष्य को मुक्त कर दिया था। उन्होंने देवता को मनुष्य के लक्ष्य से हटा दिया था। उन्होंने मनुष्य की आत्मशक्ति का प्रचार किया था। दया एवं कल्याण की प्रार्थना उन्होंने स्वर्ग से नहीं की, उन्होंने मनुष्य के अंतस्तल से उन गुणों का आह्वान किया था। इस प्रकार श्रद्धा से, भक्ति से मनुष्य की अंतःज्ञानशक्ति और उद्यम को वे महीयान् करने में समर्थ हुए। मनुष्य एक दीन, दैवाधीन, हीन पदार्थ नहीं है, इस बात की उन्होंने घोषणा की। यथासमय हिंदुओं का चित्त जाग्रत् होकर कहने लगा—"भगवान् बुद्ध की वाणी यथार्थ है—मनुष्य दीन नहीं है, मनुष्य हीन नहीं है। कारण, मनुष्य में जो शक्ति है, जिस शक्ति के द्वारा मनुष्य को भाषा प्राप्त हुई है, बुद्धि प्राप्त हुई है, नैपुण्य प्राप्त हुआ है, समाज संगठन-पूर्वक संसार के संचालन की पटुता प्राप्त हुई है, वही दैवी शक्ति है।"

बुद्धदेव ने जिस अभ्रभेदी मंदिर की रचना की, नव-प्रबुद्ध हिंदुओं ने उसी मंदिर के भीतर देवता को प्राप्त किया। बौद्ध-धर्म हिंदू-धर्म के अंतर्गत हो गया। मानव के बीच देवता का प्रकाश, संसार के बीच देवता की प्रतिष्ठा, हम लोगों के हर घड़ी के सुख-दुःख के भीतर देवता का संचार ही नव हिंदू-धर्म के मर्म की बात हो उठी। शाक्त की शक्ति, वैष्णव का प्रेम घर में और बाहर सर्वत्र विस्तृत हो चला। मनुष्य के क्षुद्र काम-काज में शक्ति का प्रत्यक्ष हाथ है, मनुष्य के स्नेह-प्रीति के संबंध में दिव्य प्रेम की प्रत्यक्ष लीला अत्यंत निकटवर्ती है, यह स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। देवता के इस आविर्भाव में छोटे-बड़े का भेद मिटा देने की चेष्टा दिखाई देने लगी। समाज में जो लोग घृणित थे, वे भी अपने को दैवी शक्ति का अधिकारी मानकर अभिमान करने लगे—प्राकृत के, पुराणों में इसके इतिहास विद्यमान हैं। उपनिषद् में एक मंत्र है—

"वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः।"

अर्थात् वह एक वृक्ष के सदृश आकाश में स्तब्ध भाव से स्थित है। भुवनेश्वर-मंदिर उस मंत्र का कुछ विशेष भाव से यह कहकर उच्चारण कर रहा है कि जो एक है, वह इस मानव-संसार के बीच स्तब्ध होकर

विद्यमान है। जन्म-मृत्यु का आवर्तन हम लोग आँखों से देख रहे हैं, सुख-दुःख का उत्थान-पतन होता चला जा रहा है, पाप-पुण्य के प्रकाश और छाया से संसार-भित्ति खचित हो रही है। ये सब विचित्र और चंचल हैं। इनके बीच में, जो वर्तमान है, वह एक है। जो निरंतर स्थिर है, उसी के ये सब अस्थिर 'शांति-निकेतन' हैं। जो नित्य है, उसी की ये परिवर्तन-परंपरा हैं, चिरप्रकाश हैं। देव और मानव, स्वर्ग और मर्त्य; बंधन और मुक्ति का यही अनंत सामंजस्य—इस पत्थर की भाषा के द्वारा ध्वनित हो रहा है। उपनिषद् में यह बात एक उपमा के द्वारा प्रकट की गई है—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते :
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ।"

(मुंडकोपनिषद् ४४)

अर्थात् दो सुंदर पक्षी एकत्र संयुक्त होकर एक वृक्ष में निवास कर रहे हैं। उनमें से एक स्वादु पिप्पल आहार करता है, और अन्य अनशन अवस्था में रहकर उसे देखा करता है।

जीवात्मा और परमात्मा का यही सायुज्य भाव है, यही सारूप्य भाव है, यही सालोक्य भाव है। यह भाव ऐसे अनायासगम्य रूप में, ऐसी सहज उपमा द्वारा, ऐसे सरल साहससहित क्या और किसी स्थल पर व्यक्त किया गया है? जीव के साथ भगवान् का कैसा सुंदर साम्य इस उपमा में प्रकट किया गया है! मानो प्रत्यक्ष चक्षु से देखकर यह बात लिखी गई हो। अरण्यचारी कवि ने मानो अपने दो सुंदर पक्ष-धारी पक्षी के तुल्य ससीम और असीम को पास-पास मिलकर रहते हुए देख लिया हो। इस निगूढ़ तत्त्व को बृहद् बनाकर किसी प्रकांड उपमा के आडंबर का आश्रय उपनिषत्कार ने नहीं लिया। दो छोटे-छोटे पक्षी जिस भाँति स्पष्ट रूप में देख पड़ सकते हैं, जिस भाँति सुंदर भाव से दृश्यमान हैं, दोनों के बीच में जैसा नित्य परिचय और सरलता है, ये सब बातें किसी बृहत् उपमा के द्वारा इतने अच्छे ढंग से प्रकट नहीं की जा सकतीं। उपमा क्षुद्र होकर भी उस सत्य को बृहत् करके प्रकट कर रही है। बृहत् सत्यद्रष्टा का जो निश्चिंत साहस है, वह क्षुद्र उपमा के रूप में सरलता-पूर्वक यथार्थ भाव से व्यक्त हुआ है।

ये दोनों ही पक्षी हैं। दोनों के पक्ष परस्पर संयुक्त हैं। ये संगी हैं, एक ही वृक्ष पर रहा करते हैं। इन दोनों में से एक भोक्ता है, दूसरा साक्षी। एक चंचल है, दूसरा स्थिर।

भुवनेश्वर-मंदिर भी मानो यही मंत्र सुना रहा है। उसने देवालय से मानवत्व को अलग नहीं कर दिया। वह दोनों पक्षियों को प्रतिष्ठित करके सत्य की घोषणा कर रहा है।

किंतु भुवनेश्वर-मंदिर में और भी कुछ विशेषत्व देख पड़ता है। ऋषि-कवि की उपमा में निभृत अरण्य की एकांत निर्जनता के बीच परमात्मभाव एकाकी अवस्था में देख पड़ता है। इस प्रकार की उपमा की दृष्टि में प्रत्येक जीव परमात्मा के साथ संयुक्त है। इससे जो ध्यान का चित्र हृदय में प्रकट होता है, उससे हम यह देख सकते हैं कि जो "मैं" भोग कर रहा है, भ्रमण कर रहा है, वही "मैं" के बीच "शान्तं शिवमद्वैतम्" स्तब्ध भाव से आविर्भूत है। किंतु एक के साथ केवल एक का संयोग भुवनेश्वर-मंदिर में लिखित नहीं है। वहाँ समस्त मनुष्य, अपने समस्त कर्मों के साथ, समस्त भोगों के साथ, अपने तुच्छ और बृहत् समस्त इतिहास को लिए हुए समग्र भाव से एक होकर स्वीय मध्यस्थल में, अंतरतर रूप में, साक्षी रूप में, भगवान् को प्रकाश कर रहा है। वह भी निर्जन में या योग में नहीं, किंतु सजन में, कर्म के मध्य में। वह संसार को—इस लोकालय को—देवालय के रूप में व्यक्त कर रहा है। वह समष्टि-रूप में मनुष्य को देवत्व के पद पर अभिषिक्त कर रहा है। पहले तो उसने छोटे, बड़े, सब मानवों को अपने प्रस्तर-पट में समान करके सजा रक्खा है। फिर उसने यह व्यक्त किया है कि परम ऐक्य का स्थान कहाँ है, और वह परम ऐक्य क्या पदार्थ है? इसी भूमा ऐक्य के अंतरतर आविर्भाव के द्वारा प्रत्येक मानव, समग्र मानव-जाति के साथ मिलकर, महीयान् बना हुआ है। पिता के साथ पुत्र, भ्राता के साथ भ्राता, पुरुष के साथ स्त्री, पड़ोसी के साथ पड़ोसी, एक जाति के साथ दूसरी जाति, एक काल के साथ अन्य काल, एक इतिहास के साथ अन्य इतिहास देवात्मा के साथ सम्मिलित हो रहा है। *

लोचनप्रसाद पांडेय

× × ×

* श्रीभुवनेश्वर में जो श्रीशिवजी का विशाल मंदिर है, वह उड़ीसे की प्राचीन मंदिर-निर्माण-कला का एक सुंदर निदर्शन और स्मारक है। इतिहासकारों का कथन है कि केसरी-वंश के राजा शैव थे और उन्हीं के शासन-काल में भुवनेश्वर

११. अनंत दुःख

कब अनंत आँखों से तेरा, हे अनंत, दर्शन होगा ?
कब अनंत जिह्वाओं से प्रभु, तेरा गुण-कीर्तन होगा ?
कब अनंत कानों से मधुमय तेरा नाम-श्रवण होगा ?
कब अनंत बाँहों से प्यारे, तेरा आलिंगन होगा ?
तुझ असीम में सीमाएँ सब कब जाएँगी टूट ?
बेहद दुख अनंत होने का कब जावेगा छूट ?

वंशीधर

× × ×

१२. महिला-महत्त्व

(१)

माताओ ! कहने को अबला-व्यक्ति आप हैं,
पर सचमुच पुरुषों की सबला-शक्ति आप हैं।
गुण अथवा अवगुण-शिक्षा का द्वार आप हैं;
हित, अनहित, उन्नति, अवनति-आधार आप हैं।
जो नर-नारी हैं विश्व में, सबकी माता आप है
जगदीश्वर-प्रकृति-स्वरूप हो जग-निर्माता आप है

(२)

जन्माने को हमें जन्म जग में धरतीं तुम;
जन्मभूमि के सम लालन-पालन करतीं तुम।
सरस्वती होकर सारी जड़ता हरतीं तुम;
लक्ष्मी होकर ऋद्धि-सिद्धि से घर भरतीं तुम।
निज सती-तेज से शलभ-सम पापी जन को जारतीं
तुम दुर्गा बनकर दल-सहित महिषासुर संहारतीं

(३)

सत्यवान-से मृत पति पुनः जिलाए तुमने;
रामचंद्र-से ईश्वर गोद खिलाए तुमने।
कृष्णचंद्र-से योगीश्वर उपजाए तुमने;
कालिदास, तुलसी-से सुकवि बनाए तुमने।
तुमने रावण-से भूप का नाश शीघ्र ही कर दिया
दुःशासन का संहार कर धर्मराज्य स्थापित किया

(४)

अवसर पर आगे ही तुमने पैर बढ़ाया;
'जौहर-व्रत' तक कर स्वदेश का धर्म बचाया।
कायर से कायर को विजयी-वीर बनाया;
मर करके जीने का 'जीवन-पाठ' पढ़ाया।
है कौन काम इस विश्व में जो तुम कर सकतीं नहीं
तुम झुक जाओ जिस ओर को, सिद्धि सफलता है वहीं

(५)

तुम 'रमेश' नर-धर्म-कर्म की प्रतिपालक हो;
बृहत् गृहस्थाश्रम-नौका की संचालक हो।
सुंदरता - सौहार्द - सरलता - शील - मूर्ति हो;
सदाचार-सुख-शांति-समस्या-सुलभ-पूर्ति हो।
तुममें सतीत्व है, सत्य है, परमात्मा की भक्ति है
इस काल-चक्र के बदलने की भी तुममें शक्ति है

शिवराम (रमेश) शर्मा 'विशारद'

के मंदिरों की रचना हुई थी। भुवनेश्वर ने उड़ीसे के शिव-भक्त राजों की राजधानी भी थी। हंटर साहब अपने प्रसिद्ध ग्रंथ Orissa में एक जगह पर लिखते हैं—

"The Kesari, or Lion-live, was essentially a Siva-worshipping dynasty Temples to the All-Destroyer formed the great public works of the six centuries during which it ruled Orissa. Their founder began the lofty plan at Bhuvaneshwar about 500 A. D, two succeeding monarchs laboured on it and the fourth of the house completed it in A. D. 657."

अर्थात् भुवनेश्वर के सबसे उच्च मंदिर की नींव ईसवी सन् ५०० में डाली गई थी, और चार पीढ़ियों में वह बनकर तैयार हुआ था। सन् ६५७ ई० में प्रारंभकर्ता के प्रपौत्र के पुत्र के शासन-काल में मंदिर की प्रतिष्ठा हुई थी। केसरी-वंश के राजों की नामावली नीचे दी जाती है—

(१) ययातिकेसरी (सन् ४७४ से ५२६ ई०)।

इसने उड़ीसे से यवनों को भगाकर केसरी-वंश की स्थापना की। इसने श्रीजगन्नाथस्वामी की दारुमयी मूर्ति को जो शत्रु के भय से पुरी-क्षेत्र से अन्यत्र ले जाकर रक्खी गई थी, वापस लाकर पुनः पुरी में स्थापित किया।

श्रीभुवनेश्वर के मंदिरों के निर्माण का कार्यारंभ निम्न-लिखित समय में हुआ—

(२) सूर्यकेसरी (सन् ५२६ से ५८३ ई०)।

(३) अनंतकेसरी (सन् ५८३ से ६२३ ई०)।

(४) ललाटेंदुकेसरी (या अलाबुकेसरी) (सन् ६२३ से ६७७ ई० तक)

इन्हीं के समय में भुवनेश्वर के मंदिर बनकर तैयार हुए।

विज्ञान-वाटिका

१. सिर के एक बाल से मनुष्य की पहचान हो सकती है

उत्तम सूक्ष्मदर्शक-यंत्र से हाल ही में यह अद्भुत आविष्कार हुआ है कि मनुष्य के एक बाल से उसकी जाति, चरित्र और प्रकृति का पता लगाया जा सकता है। इस आविष्कार से यह भी जाना जा सकता है कि किन युक्तियों से मनुष्य के बालों की शोभा बढ़ाई जा सकती है। मनुष्य की प्रकृति का पता लगाने के लिये उसका एक बाल जितना काम दे सकता है, उतना काम उसके अँगूठे की छाप भी नहीं दे सकती।

यह तो सभी जानते हैं कि सीधे और घुँघराले बालों में तथा नरम, चमकीले और मोटे, काले बालों में क्या अंतर होता है। अब नवीन सूक्ष्मदर्शक-यंत्र से यह प्रकट होता है कि यदि बाल को क़ैंची से काटकर उसके तिर्यक्छेद्य (transverse section) को ध्यान से देखा जाय, तो इसमें एक ही केंद्र के चारों ओर कई मंडलाकार लकीरें, स्तर और चिह्न देख पड़ते हैं, जो प्रत्येक मनुष्य के बालों में भिन्न-भिन्न होते हैं।

यह सिद्ध है कि अपराधी का पता लगाने के लिये अँगूठे के छाप की परीक्षा बहुत सहायक होती है। परंतु बाल की जाँच करके अपराधी का पता लगा लेने की रीति कई बातों में श्रेष्ठ समझ पड़ती है। इस आविष्कार के सहारे बरटीलियन महाशय ने बाल के रंग, रेशे और तिर्यक्छेद्य की बनावट के आधार पर एक विस्तृत और क्रमबद्ध सारणी बनाई है, जिससे मनुष्य के पहचानने और उसके अपराध का पता लगाने में बहुत सहायता मिलेगी। इस संबंध में एक फ़रासीसी लेखक लिखता है—"अब तो चोर को दस्ताने पहनने के साथ-साथ सिर भी घुटाए रखना पड़ेगा; क्योंकि दस्ताने पहनकर वह अँगूठे की छाप पढ़नेवालों के चंगुल से बच सकता है, लेकिन बाल-परीक्षकों से कैसे छुटकारा पावेगा?"

बाल की परीक्षा कैसे की जाती है, यह भी लिखना उचित होगा। यदि अपराध का पता लगानेवालों के पास दो अज्ञात मनुष्यों की उँगलियों की छाप हो, तो वे यही बतला सकते हैं कि ये दो मनुष्य भिन्न-भिन्न हैं। इसके सिवा और कुछ नहीं कह सकते। इन छापों से न तो उनके शरीर की बनावट का पता चल सकता है, और न यही जाना जा सकता है कि अपराधी दुबले-पतले हैं या मोटे, रोगी हैं या स्वस्थ, जवान हैं या बूढ़े। परंतु यदि दो बाल ऐसे हों, जो देखने में काले, सीधे, एक ही लंबाई के और प्रायः एक ही रेशे के हों, तो सूक्ष्मदर्शक-यंत्र से यह बतलाया जा सकता है कि कौन बाल पुरुष का है, और कौन स्त्री का; किस बालवाले व्यक्ति की अवस्था ३० वर्ष के लगभग है, और किसकी अवस्था ५० वर्ष के लगभग; वह व्यक्ति काकेशियन है या हिंदू, चीनी है या जापानी; उसका रंग पीला है या काला, गोरा है या लाल; वह रोगी है या नीरोग; उसके स्वभाव में स्थिरता है या चंचलता इत्यादि।

बालों के परीक्षकों को इतना ज्ञान नहीं हो सकता कि बाल अँगरेज़ का है या अमेरिकन का, स्पेनिश का है या फ़रासीसी का; परंतु वे काकेशियन, हिंदू, चीनी और जापानी का भेद बतला सकते हैं। कारण, जाति की भिन्नता के साथ-साथ बालों की बनावट में भी भिन्नता पाई जाती है।

बालों के परीक्षकों को इस बात का भी पता लग गया है कि लाल बालवाली लड़की के बाल लाल क्यों हैं। सूक्ष्मदर्शक-यंत्र से यह देखा जा सकता है कि लाल बाल में लाल रंग (Pigment) की नलियाँ और भूरे बालों में भूरे रंग की नलियाँ हैं। इस परीक्षा से यह भी जाना गया है कि एक लड़की के बाल सीधे, दूसरी के लहरियादार और तीसरी के घुँघराले क्यों हैं।

बालों की रक्षा करने के लिये पुराने लोगों के जो नियम थे, उनमें से कई तो इस आविष्कार से भ्रममूलक सिद्ध हो गए। परंतु डॉक्टरों के मतों का समर्थन हो गया। कुछ नई बातें भी प्रकट हुई हैं।

ये सात प्रकार के बालों के तिर्यक्छेद के चित्र बहुत बढ़ाकर दिए गए हैं, जिनसे प्रकट होता है कि इनमें परस्पर कैसी भिन्नता है—

१—एक बलवान् मनुष्य के सिर के बाल का चित्र, जो बहुत बढ़ाकर दिखाया गया है। रेशे का मध्यवर्ती अखंड मंडल देखिए। इसी से मनुष्य के बल का पता लगता है।
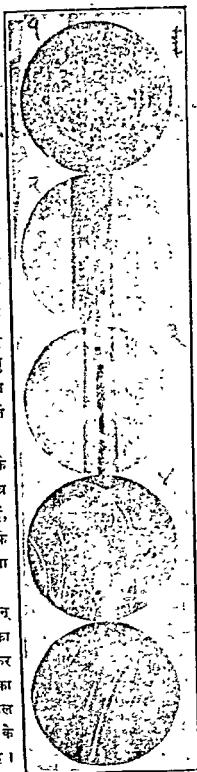
२—हलके और नरम बालोंवाली तथा नीली आँखवाली लड़की के सिर का बाल। भीतरी नली में रंग का अभाव है, जिससे ज्ञान पड़ता है कि लड़की अस्वस्थ और पीली रहती है।

३—लाल रंग के बालवाली लड़की का बाल। ऊपरवाली लड़की के बाल से मिलाइए और देखिए, दोनों में कितनी भिन्नता है। रेशेवाली नली के भीतर जो काले धब्बे देख पड़ते हैं, वही लाल रंग है।

४—घुँघराले बालोंवाली लड़की का बाल। टेढ़ी-टेढ़ी श्वेत लकीरों से घुँघरालेपन का पता चलता है।

५—लहरियादार बाल। श्वेत लकीरों की कुछ वक्रता प्रकट करती है कि बाल लहरियादार है। ऐसे बाल को सीधा रखने के लिये चाहे जितना यत्न कीजिए, सफलता न होगी।

६—हलके और नरम बालोंवाली तथा नीली आँखोंवाली लड़की (Blonde girl) के बाल का तिर्यक्छेद (Cross section)। पेड़ के तने के मंडलों की तरह इसमें भी कई एक केंद्रिक मंडल हैं।

७—एक कसरती मनुष्य के बाल का तिर्यक्छेद। इसमें काले रंग (Pigment) से भरी हुई एक पुष्ट नली है, जिससे मनुष्य के रहन-सहन, स्वस्थता और क्रियाशीलता का परिचय मिलता है।

बाल का जीवन उस मनुष्य के जीवन से, जिसके सिर का वह होता है, उसी प्रकार भिन्न होता है, जिस प्रकार गेहूँ की बाली का जीवन उस मिट्टी से भिन्न होता है, जिससे गेहूँ उत्पन्न होता है। यह इस सीधी-सी बात से सिद्ध होता है कि मनुष्य के मर जाने पर उसके सिर के बाल कई दिन तक बढ़ते रहते हैं।

गेहूँ के पौदे या घास की तरह बाल भी बढ़ता है; परंतु बाल उनसे कई गुना पुष्ट होता है। जितनी सावधानी से किसान गेहूँ के पौदे को खेत में सँभालता है, उतनी ही सावधानी से यदि स्त्री अपने बालों को सँभाले,
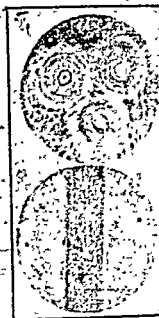
अर्थात् उनको स्वच्छ हवा पहुँचाती रहे, [illegible]नुसार भोजन दे; और उनकी ठीक तरह से देख-भाल रक्खे, तो कंघी करने, रँगने, मोड़ने, लहरियादार बनाने और खूब कसकर बाँधने से उनको जो नुकसान पहुँचता है, उसे वे सहज ही सह सकते हैं, जब कि इसी तरह से अन्य चीज़ें घास-फूस इत्यादि नष्ट हो जायँगी।

गंजे पुरुष अधिक देखे जाते हैं; परंतु गंजी स्त्रियाँ बहुत कम होती हैं। इसका कारण यही है कि स्त्रियाँ अपने बालों को सुरक्षित रखने का उद्योग करती हैं, जिससे उनके बालों को उचित भोजन मिल जाता है, और वे स्वच्छ भी बने रहते हैं; इसके प्रतिकूल पुरुष अपने बालों की ओर कुछ ध्यान नहीं देते।

सूक्ष्मदर्शक-यंत्र की परीक्षाओं से यह बात अच्छी तरह सिद्ध होती है कि साबुन और पानी के अधिक व्यवहार से बालों को हानि पहुँचती है। वनस्पतियों से निकाला हुआ तेल (जैसे तिल, गरी, बादाम इत्यादि का तेल) इनका प्रधान भोजन है। बहुत धोने से बाल की चिकनाई कम पड़ जाती है, और उसके भीतर का रंग उत्पन्न करनेवाली ग्रंथियाँ निर्बल पड़ जाती हैं। दो सप्ताह में केवल एक बार बालों को खूब धोकर साफ़ कर लेना चाहिए; और तब अगर चिकनाई में कमी जान पड़े, तो बादाम का तेल या कोई अन्य निर्दोष तेल बाल की जड़ में खोपड़ी पर खूब मलना चाहिए।

कुछ लोग बालों को काला करने के लिये ख़िज़ाब लगाने के बड़े शौक़ीन होते हैं। उनके संबंध में केश-परीक्षकों का यह मत है कि कोई-कोई ख़िज़ाब तो बालों को एकदम नष्ट कर देता है, और कुछ ऐसे होते हैं, जिनसे कोई हानि नहीं होती। जो स्त्री अपने बालों को नरम बनाने के लिये पेराक्साइड (peroxide) का व्यवहार करती है, वह अपने बालों को मानो विष खिलाती है; क्योंकि पेराक्साइड कोई रंग नहीं, वरन् एक तीव्र रासायनिक पदार्थ है, जो बाल के भीतर प्रवेश करके उसके सब तंतुओं को निर्जीव कर देता और उसके प्राकृतिक रंग और जीवट को भी मिटा देता है। हाँ, जो लोग बालों में मेंहदी लगाते हैं, उनको कोई हानि नहीं होती; क्योंकि मेंहदी एक प्राकृतिक और निर्दोष रंग है, और उससे बाल की जीवट नष्ट नहीं होती।

इसलिये यदि किसी को बाज़ार में बिकनेवाले ख़िज़ाब [illegible]

[illegible]

[illegible]

२. सूर्य का टुकड़ा

[illegible] पृथ्वी इन दोनों भागों में से एक के निकट और दूसरे से दूर रहेगी। यहाँ की ऋतुओं में भी परिवर्तन होगा।

किसी सिद्धांत का पता लगते ही लोग यह विचार करने लगते हैं कि इसका प्रभाव हम पर क्या पड़ेगा? इसका फल क्या होगा? हम सब सोचेंगे, तो अपनी भलाई की बात। हम तो यही कहेंगे कि सूर्य के टूटने से हमारा कोई नुकसान न होगा। किंतु ऐसा होने का नहीं। सूर्य के टूटते ही उसके दोनों हिस्से एक केंद्रिक शक्ति द्वारा बँध जायँगे, और दोनों एक दूसरे के चारों ओर परिक्रमा लगाया करेंगे। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि पहले चंद्रमा भी पृथ्वी का एक अंग था; किंतु कालांतर में वह पृथ्वी से अलग हो गया। चंद्रमा को जितना छोटा हम लोग समझते हैं, उतना छोटा वह असल में नहीं है; उसका व्यास पृथ्वी के व्यास का प्रायः एक-चौथाई अर्थात् २,१६९ मील के लगभग है। पृथ्वी और चंद्रमा को ध्यान में रखते हुए जब हम देखते हैं कि एक ही जलता हुआ अग्नि-गोलक टूटकर दो भागों में विभक्त हो जाता है, तब यदि सूर्य में भी वैसा ही हो, [illegible]र्य की क्या बात है? खैर, यह तो हुई सूर्य [illegible] प्रश्न यह है कि तब हमारी [illegible] [illegible]वी पर प्रभाव हो जायगा?

[illegible] रिविउ के आधार पर

सूर्य के टूटने से यदि उसके दो बराबर के हिस्से हुए, तो वे तुरत गेंद-से गोलाकार हो जायँगे, और प्रत्येक का व्यास ६,७०,००० मील का होगा। किंतु वे सुरंत थाली-से चिपटे होने लगेंगे, और तब उनका घेरा भी बढ़ जायगा; क्योंकि विश्वास किया जाता है कि चंद्रमा के अलग हो जाने के बाद पृथ्वी भी चिपटी हो गई थी। एक बार अलग हो जाने पर दोनों हिस्से एक दूसरे से दूर होते जायँगे, किंतु वे अपनी कक्षा पर चक्कर बराबर लगाते रहेंगे, और एक दूसरे को, आकर्षण-शक्ति के नियमानुसार, खींचते भी रहेंगे। पृथ्वी तथा उसके साथी अन्यान्य ग्रह तब इन दोनों के चारों ओर घूमेंगे।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस दिन ऐसा होगा, उसी दिन पृथ्वी पर प्रलय हो जायगा; क्योंकि सूर्य के दो हिस्से होने से उसका आकार बढ़ जायगा। इसलिये उसकी गरमी भी पृथ्वी पर अधिक पड़ने लगेगी। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि आजकल जितनी गरमी पड़ती है, उससे ४६० फ़ारेनहाइट अधिक गरमी उस समय पड़ेगी। पृथ्वी के मध्यभाग में जो मनुष्य रहते हैं, वे एकाएक इतनी गरमी बरदाश्त करने में असमर्थ होकर मर जायँगे। हा, वे उत्तरी तथा दक्खिनी ध्रुवों में आश्रय ले सकते हैं; किंतु वहाँ भी गरमी के दिनों में इतनी गरमी पड़ेगी कि मनुष्यों का रहना असंभव हो जायगा। पृथ्वी पर के दिन बड़े होंगे, और ऋतुओं में फेर-फार हो जायगा। किंतु उस समय पृथ्वी पर कोई मनुष्य ही नहीं रहेगा, जो इन परिवर्तनों को देखे। दूसरे ग्रह में यदि मनुष्य रहते हों, और इस परिवर्तन के बाद भी बचे रहें, तो वे पृथ्वी को मृत संसार समझकर इसकी खोज-ख़बर न लेंगे।

सारे सौर-जगत् में उथलपुथल मच जायगी, और इसके बाद कौन ग्रह, नक्षत्र तथा तारे किस विशेष स्थान को ग्रहण करेंगे, और किस नियम को मानकर चलेंगे, यह भविष्य के गर्भ में छिपा हुआ है। ऊपर जितनी आनुमानिक बातें लिखी गई हैं, उनमें यह बात पहले ही मान ली गई है कि सूर्य के बराबर-बराबर के दो भाग होंगे। किंतु ऐसा नहीं भी हो सकता है। यदि एक हिस्सा बड़ा और दूसरा छोटा हुआ, तो छोटा हिस्सा चंद्रमा की तरह बड़े हिस्से के चारों तरफ़ घूमा करेगा। वह सूर्य के चारों ओर घूमनेवाला नया ग्रह होगा।

हम लोगों के डरने की कोई बात नहीं है; क्योंकि ऐसा होने में *अभी वर्षों लग जायँगे। उस समय तक इस समय* के किसी भी मनुष्य का बचा रहना संभव नहीं है। ऐसे परिवर्तन होने में लाखों वर्ष लग जाते हैं। इस सिद्धांत पर बहस करने में कोई हानि नहीं; किंतु इस पर कम-से-कम आजकल के मनुष्यों का भाग्य अवलंबित नहीं है। जो लोग ज्योतिष-शास्त्र में दिलचस्पी लेते हैं, उनके मनोरंजन के लिये ही यह नोट लिखा गया है।
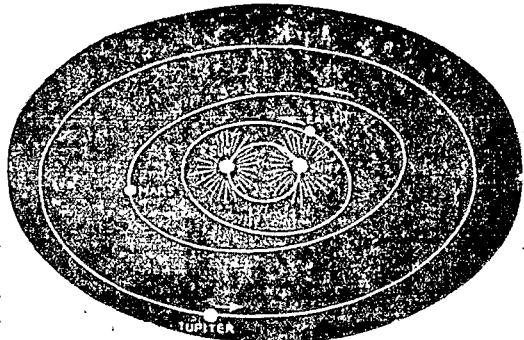
सूर्य के दो बराबर टुकड़े होने का दृश्य

× × ×

३. सहारा की तलो

वैज्ञानिक इस पृथ्वी का प्रत्येक हिस्सा छान डालने की फ़िक्र में हैं। कुछ दिन पहले जिस सहारा को लोग पहुँच तथा अनुसंधान के बाहर का (*Inaccessible and unexplored*) प्रदेश बतलाते थे, उसे कुछ मनुष्यों ने मोटरकार में बैठकर पार किया, और इस मरुभूमि को

नूरजहाँ

[चित्रकार—श्रीयुत रामनाथ गोस्वामी]

सहज रूप की माधुरी, तापै सजे सिंगार ;
नूरजहाँ की नूर लखि होति हूर की हार।

N. K. Press, Lucknow.

बहुत-सी छिपी हुई बातों का पता लगाया। मरुभूमि की सतह की अभी सारी बातें जानी भी नहीं गईं कि कुछ लोग उसकी तली के अनुसंधान में लग गए।

धूप में सहारा की गरम बालू पर चलते हुए थके-माँदे प्यासे बटोही से यदि कोई यह कहे कि तुम्हारे पैरों के नीचे ठंडे पानी का समुद्र है, तो वह उस पर कितना विश्वास करेगा? चाहे उसे इस कथन पर विश्वास हो या नहीं, किंतु वैज्ञानिकों का तो ऐसा ही अनुमान है। मरुभूमि की समतल-भूमि के २००-३०० फ़ीट नीचे समुद्र है, जिसमें समुद्री जीव रहते हैं।

मोटरकार में बैठकर सहारा को पार करने का श्रेय फ़्रांस के मनुष्यों को है। उन लोगों ने अपने यात्रा-काल में कुछ प्राकृतिक कुएँ (Artesian Wells) देखकर अनुमान किया था कि मरुभूमि के नीचे अवश्य पानी होगा। इसके बाद, हाल में, लोगों ने भूमि के नीचे से 'पंप' द्वारा पानी निकालकर अपने अनुमान की पुष्टि की है। पानी निकालने का एक और प्रयोजन सहारा को उपजाऊ बनाने का था। सहारा के नीचे से जो पानी निकला, उसके साथ कुछ जल-जीव भी ऊपर आए, जिनमें ज़िंदा केंकड़े तथा छोटी-छोटी मछलियाँ थीं। इनका आकार उन मछलियों से मिलता था, जो पैलेस्टाइन के आसपास की झीलों में पाई जाती हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि ये जीव सहारा के नीचे कहाँ से आए? मरुभूमि की उत्पत्ति समुद्र से होती है। समुद्र का कुछ हिस्सा चारों ओर स्थल-भाग से घिर गया, और उसी के ऊपर सहारा मरुभूमि बनी। इसका प्रमाण यह है कि सहारा के नीचे के समुद्र से जो प्राणी निकले थे, वे दृष्टि-शक्तिविहीन थे। हज़ारों वर्षों से अंधकार में रहते-रहते उनकी आँखें बेकार हो गई थीं। इसलिये अनुमान किया जाता है कि सहारा के नीचे के समुद्र का संबंध किसी समुद्रविशेष से नहीं है, बल्कि वह स्थल से घिरा हुआ एक अंधकार-पूर्ण स्वतंत्र जल-भाग है।

सहारा के नीचे समुद्र

×　　×　　×

४. हजामत बनाने की मशीन

यह बात बहुत दिनों से प्रमाणित हो चुकी है कि एक ही छुरे तथा ब्रश से दो मनुष्यों की हजामत बनाना हानिकारक है। हानि यह होती है कि एक के जिस्म की बीमारी दूसरे को हो जाती है, या हो जाने की संभावना रहती है। बाज़ार के हज्जामों से जो लोग हजामत बनवाते हैं, वे जान-बूझकर अपने को रोगों के हाथ में सौंप देते हैं। कम-से-कम मैं अपना अनुभव कह सकता हूँ कि जब-जब मुझे बाज़ार के नाइयों से हजामत बनानी पड़ जाती है, तब-तब मेरी दाढ़ी में फुंसियाँ हो जाती हैं। इसलिये बहुत-से लोग अपना निज का अस्तुरा आदि हजामत बनाने का सामान रखते हैं। जो लोग साधारण अस्तुरा व्यवहार में नहीं ला सकते, वे 'सेफ़्टी-रेज़र' इस्तेमाल करते हैं। अब एक 'इलेक्ट्रिक रेज़र' निकला है। इससे दाढ़ी बनाना 'सेफ़्टी-रेज़र' से भी आसान है। दाढ़ी को साबुन से भिगोकर मशीन को जिस्म से सटाकर लगा दीजिए, मिनट-भर के अंदर ही सब सफ़ा-चट!

इलेक्ट्रिक रेज़र

×　　×　　×
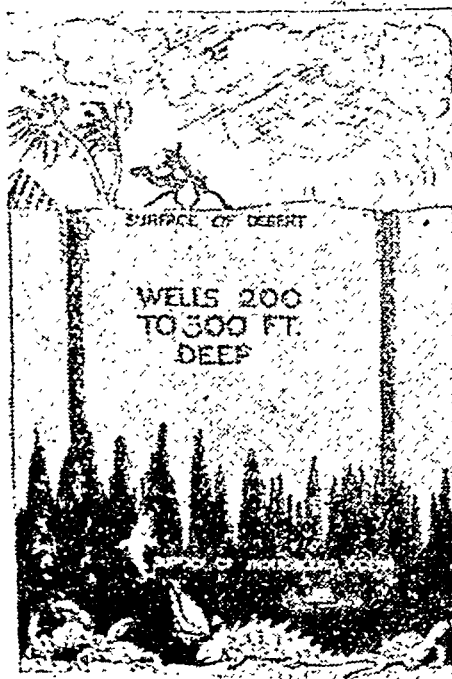
५. बहरों का स्कूल

न्यूयार्क शहर में बहरों और गूँगों के लिये एक स्कूल है। वहाँ के विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिये रेडियो काम में लाया जाने लगा है। प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अलग-अलग "फ़ोन" होता है, जिसका संबंध बीच में रक्खे हुए टेबिल के साथ रहता है, और उस टेबिल का संबंध एक शक्तिशाली ग्राहक यंत्र के साथ होता है। संभव नहीं कि सब विद्यार्थी एक-से बहरे हों। इसलिये प्रत्येक लड़के या लड़की के बहरेपन के अनुसार उसके फ़ोन में
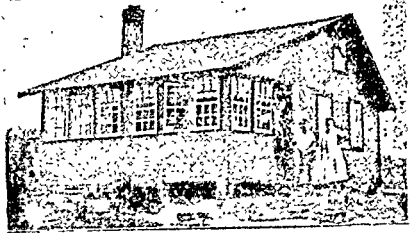
पुराने अख़बारों का घर

बहरों का स्कूल

"रेजिस्टेंस क्वाएल" (अवरोधक तार) लगाकर आवश्यकतानुसार शब्दोत्पादन की व्यवस्था कर दी जाती है।

इस प्रकार रेडियो ने बहरों तथा गूँगों की शिक्षा के लिये एक नया क्षेत्र बना दिया है। उक्त स्कूल के अधिकारियों का कहना है कि इससे सहज तथा सुगम तरीक़ा, गूँगों तथा बहरों को शिक्षा देने का, अब तक कोई नहीं है। इससे बहुत शीघ्र लड़के शिक्षित किए जाते हैं, और इस प्रकार की शिक्षा में उन्हें आनंद भी आता है।

× × ×

६. रद्दी अख़बारों का उपयोग

भारतवर्ष में रद्दी अख़बारों का एक ही उपयोग है, अर्थात् बनिए की दूकान में सामान देने के लिये। किंतु पाश्चात्य देशवाले रद्दी अख़बारों से आश्चर्यजनक काम निकालते हैं।

क्षण-भंगुर पदार्थों की उपमा काग़ज़ के मकान से दी जाती है; किंतु राकपोर्ट के एलिस स्टेनमैन ने अपनी स्त्री तथा लड़की की सहायता से काग़ज़ का एक मकान बनाया है। उसमें जितना काग़ज़ लगा है, सब पुराने अख़बारों का है, जिन्हें लेई से साट-साटकर मज़बूत बनाया गया है। मकान के ऊपर जल-रोधक (Water proof) वार्निश पोत दी गई है, जिससे जल पड़ने पर वह ख़राब नहीं होता। बाहर, भीतर, ऊपर, नीचे चारों तरफ़ अख़-

बार-ही-अख़बार हैं। इस पर भी वह काफ़ी मज़बूत है। इस मकान में खिड़कियाँ भी लगाई गई हैं, जिनसे होकर प्रकाश और वायु आती है।

× × ×

७. मज़दूरों की राय

भारतवर्ष में मज़दूरों की बड़ी दुर्दशा है। उनकी खोज-पूँछ करनेवाला कोई नहीं है। किंतु अन्यान्य देशों के जिस संस्था में काम करते हैं, अपने को उस संस्था का हिस्सेदार समझते हैं। उनके मालिक भी उन्हें अपनों ही में से एक समझते हैं। इसी कारण अमेरिका के कई कारख़ानों के मालिकों ने अपने कारख़ाने में ऐसे बक्स लगा रक्खे हैं, जिनमें प्रत्येक मज़दूर अपनी राय लिखकर डाल देता है। राय कारख़ाने की उन्नति या काम करने के तरीक़े में फेर-बदल करने के संबंध में होती है।

मज़दूरों की चिट्ठियों की जाँच होती है, और जिसकी राय उपयुक्त समझी जाती है, उसे इनाम भी दिया जाता है। एक कंपनी ने केवल एक वर्ष में प्रायः ६० हज़ार रुपए मज़दूरों को उनकी अमूल्य सम्मतियों के लिये दिए थे। उन रायों में बतलाया गया था कि किस तरह काम करने से सस्ता काम होगा, जो वस्तुएँ फेंक दी जाती हैं, उन्हें किस प्रकार काम में लाया जा सकता है, किन तरीक़ों को छोड़ने और किन्हें काम में लाने से काम करने में सुगमता होगी तथा अधिक धन पैदा किया जा सकेगा, किस प्रकार के औज़ारों के व्यवहार से मज़दूरों की जान जोखिम से बच सकती है इत्यादि। क्या यहाँ के कारख़ानों के मालिक इस प्रथा को काम में लाकर अपना तथा मज़दूरों का हित करेंगे?

मज़दूर अपनी राय लिखकर बक्स में डाल रहा है

× × ×

८. दस हज़ार रुपए का अंडा

उत्तरी एटलांटिक प्रदेश में एक समय एक प्रकार की चिड़िया रहती थी, जिसे Auk कहते थे; किंतु अब उस जाति की कोई भी चिड़िया नहीं पाई जाती। इसी चिड़िया का सबसे अंतिम अंडा दस हज़ार रुपए में बिका था। आक बत्तक के आकार का पक्षी था। वह पानी में डुबकी लगा सकता, किंतु उड़ नहीं सकता था; क्योंकि उसके पंख बहुत छोटे-छोटे होते थे। वह एक बार में एक ही अंडा देता था। इस चिड़िया को तथा इसके अंडे को उस प्रदेश के मनुष्य खाते भी हैं। इसीलिये लोग उन्हें मार डालते थे। अब ऐसी अवस्था पहुँच गई है कि उस जाति के पक्षी का नाम-निशान तक मिट गया है।
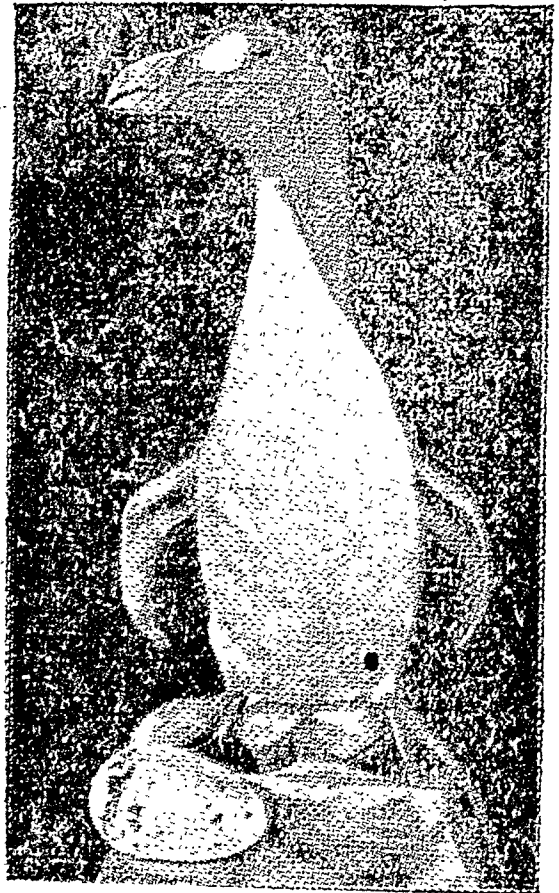
'आक' और उसका अंडा

रमेशप्रसाद

१. चीन में नारी जागरण

संघाई से प्रकाशित होनेवाले 'नॉर्थ चाइना हेरल्ड' पत्र में चीन में स्त्रियों की जागृति के अनेक समाचार प्रकाशित हुए हैं। प्राचीन चीन की स्त्रियाँ जिस अवस्था में थीं, उसे आजकल की स्त्रियाँ शायद ही पसंद करें। चीन के नीति शास्त्र में लिखा है— "चरखे से सूत निकालना, साटन आदि कपड़े बुनना और सीने-पिरोने का काम करते रहना ही स्त्रियों का सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है। दूसरे के सोने, चाँदी, हीरे, मणि, मुक्ता आदि देखकर लोभ करना अच्छा नहीं। स्त्रियाँ अपने ही हाथों से मोज़े, जूते, और पोशाक वग़ैरह तैयार करें—उसके बदले में अन्न, धन आदि आप ही आ जायँगे। सदा अपने हित के कामों में मन लगाया करें। ऐसा करने से मिथ्या कल्पनाओं के झंझट में पड़कर व्यर्थ कष्ट उठाना नहीं पड़ेगा।"

चीन की युवतियां (ये चिकित्सा-शास्त्र पढ़ती हैं)

शास्त्र-वचन के प्रभाव से हो, चाहे सामाजिक शासन के कारण हो, चीन की रमणियाँ इसी प्रकार अपना जीवन बिताया करती थीं। किंतु वे रत्नालंकार, हीरे, माणिक, मुक्ता आदि के प्रलोभन से अपने को नहीं बचा सकीं। इससे ज्ञात होता है, यह एक सनातन स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मगर अब वह युग नहीं रहा। चारों ओर इस समय जीवन-संग्राम में नवयुग का आंदोलन जारी है। चीन में भी नवयुग का आंदोलन पहुँच गया है। सारे संसार के नर-नारी थोड़ा-बहुत इस जागरण के युग में चेत चुके हैं।

मंचू-राजवंश का प्रभाव नष्ट होने के समय का चीन का इतिहास देखने से जाना जाता है कि उस समय चीनियों के द्वारा स्थापित एक भी बालिका-विद्यालय न था। केवल विदेशी ईसाई पादरियों ने कुछ गर्ल्स स्कूल खोल रक्खे थे। चीन के धर्मग्रंथों की आज्ञा के अनुसार ही मा-बाप अपनी बालिकाओं को शिक्षा दिया करते थे, और उसी शिक्षा को वे उनके लिये यथेष्ट, उत्तम एवं उपयोगी समझते थे।

सन् १९०१ ई० में पहले-पहल चीन में बालिका-विद्यालय खोलने की चेष्टा की गई थी। उसी समय से नारी-समाज में शिक्षा-प्रचार बढ़ने लगा। इस समय चीन की गवर्नमेंट ३३६३ प्राइमरी स्कूलों का संचालन करती है। उनमें १ लाख ६४ हज़ार ७ सौ लड़कियाँ पढ़ती हैं। १० मिडिल स्कूल हैं। इनमें पढ़नेवालियों की संख्या १ हज़ार १३८ है। ६१ नार्मल स्कूल भी हैं। इनमें ६ हज़ार ८ सौ ७३ छात्री पढ़ रही हैं। २१ औद्योगिक स्कूल हैं। इनमें पढ़नेवाली बालिकाओं की संख्या १ हज़ार ७ सौ ९१ है। इनके अलावा रेशम का सूत कातना, सीना-पिरोना तथा दस्तकारी आदि की तरह-तरह की उपयोगी शिक्षाएँ भी दी जाती हैं। इन विद्यालयों में ऐसी शिक्षा भी दी जाती है, जिससे स्त्रियाँ आप अपनी जीविका चला सकें। नारी-शिक्षा का प्रचार इस तरह बढ़ रहा है कि बहुत संभव है, निकट-भविष्य में चीन की स्त्रियों का एक अलग युनिवर्सिटी क़ायम हो जाय। संपूर्ण चीन-देश की सभी पाठशालाओं में प्रायः २ लाख ९० हज़ार स्त्रियाँ पढ़ती-लिखती हैं। चीन में नारी-शिक्षा-विस्तार के बारे में एक बात ख़ास तौर से ध्यान देने योग्य है। अनेक सुशिक्षित युवतियाँ आजकल विदेशों में जाकर भिन्न-भिन्न विषयों की उच्च शिक्षा प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा रखती हैं। हर साल अधिक-से-अधिक संख्या में वे बाहर विदेशों को जाने भी लगी हैं। वे इस उद्योग में सफलता भी पाने लगी हैं। कुछ शिक्षित महिलाएँ सब बातों में पुरुषों की बराबरी करने और समान अधिकार पाने का दावा भी करने लगी हैं। चीन का नारी-समाज जिस ऊँचे आदर्श को लेकर आगे बढ़ रहा है, उससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उनकी सफलता निश्चित है।

चीन की एक युवती खेल खेल रही है

इसी विषय में 'नॉर्थ चाइना हेरल्ड' लिखता है—"स्त्रियाँ अगर आप अपने विश्वास को दृढ़ बनाकर अपने पैरों पर खड़ा होना सीख जायँ, तो यह बड़े ही आनंद की बात है। मगर स्त्री और पुरुष का जो परस्पर संबंध है, वह तो बना ही रहेगा। चीन में इन दिनों जो प्रथा प्रचलित है, उसके अनुसार वहाँ की स्त्रियों पर पुरुषों का पूरा दबाव और प्रभाव है। पुरुष कई विवाह करते हैं; उपपत्नी भी रख सकते हैं। ये प्रथाएँ वहाँ अब तक प्रचलित हैं। उन्हें जड़ से उखाड़े बिना घर की स्त्रियों का सम्मान या प्रतिष्ठा होने की संभावना कम है।"

चीन ने इस समय समाज-सुधार के काम में भी हाथ बढ़ाया है। पढ़े-लिखे मनुष्य नैतिक चरित्र पर दृष्टि रखने लगे हैं। शिक्षा-विस्तार के साथ-साथ जब आत्म-ज्ञान उत्पन्न होगा, जातीयता का स्वरूप तथा नर-नारी का संबंध समझने का सुअवसर प्राप्त होगा, उस समय समाज की अनेक बुराइयाँ आप सामने आ जायँगी, और मिट जायँगी। चीन के समाज-हितैषी उसी शुभ सुअवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

मिस यंग

(मार्किन-कॉलेज में अपनी प्रतिभा का विशेष परिचय देनेवाली)

गोपीनाथ वर्मा

× × ×

२. स्त्री-समाज की अवनति

उस सकल ब्रह्मांड के कर्ता अंतर्यामी परमेश्वर की लीला बड़ी ही विचित्र है। सारा संसार ही उसकी संतान है। उसने प्रत्येक प्राणी-मात्र को स्वतंत्रता का अधिकार दिया है। परंतु, तो भी, संसार में संतोष नहीं देख पड़ता। लोग परस्पर एक दूसरे की स्वतंत्रता छीनने के लिये ज़बरदस्ती करते हैं। उस सर्वशक्ति-संपन्न स्त्री-समाज पर पुरुषों ने अत्याचार करना शुरू कर दिया, और उनकी स्वतंत्रता पर हाथ साफ़ किया। इतने पर भी उसे चैन से न बैठने दिया। उन्हें दासी समझकर मनमाने अत्याचारों की भरमार की, जिससे समाज सदा अवनति-पथ पर ही अग्रसर होता गया। उनके लिये सुख भी दुःख की भाँति सदा खटकता रहा; उन्होंने अपने महाभयंकर, संकटमय जीवन को दिन गिनते-गिनते व्यतीत किया। वे स्त्रियाँ, जो पुरुष की अर्द्धांगिनी समझी जाती थीं, आज अनबोल पक्षी के समान सैकड़ों अत्याचार सह रही हैं। पुरुषों के इन हृदय-विदारक, महाकठोर वाक्यों को सुन-सुनकर उनके कोमल हृदय पाषाण को भी कठिनता में हरा रहे हैं कि "स्त्रियाँ कभी स्वतंत्रता की अधिकारिणी नहीं हैं", "लड़कियों को कभी पढ़ाना नहीं चाहिए", "कभी पर्दा नहीं हटाना चाहिए।" इस प्रकार के देश को अवनति के गर्त में ढकेलनेवाले और सुंदर रमणीय ललनाओं के कोमल हृदयों के टुकड़े-टुकड़े कर देनेवाले वाक्य सुनते रहने पर भी वे बेचारी असहाय अबलाएँ मुक्त कंठ से यह उत्तर नहीं दे सकतीं कि लड़कों को तो पढ़ाने के लिये अच्छे-से-अच्छे उद्योग किए जा रहे हैं, कभी विलायत भेजते हैं, कभी अमेरिका—अथवा उनके लिये उत्तम-से-उत्तम अध्यापकों की खोज होती है। परंतु लड़कियों के लिये घर में पढ़ने की भी आज्ञा नहीं, इसलिये कि वे फ़ैशन की पुतलियाँ बन जायँगी; घरों के काम नहीं करेंगी। पर क्या उन स्वार्थियों ने आँखों पर पट्टी बाँध ली है, क्या उनको दिखाई नहीं देता कि लड़के फ़ैशन के पुतले हैं या लड़कियाँ? लड़कों के एक-एक सूट पर जितना ख़र्च होता है, उतना लड़कियों के लिये किसी भी बात पर नहीं। नहीं जानते, धर्म किस चिड़िया का नाम है। बहुत तो अपनी जाति छोड़कर मुसलमान अथवा ईसाई भी बन जाते हैं।

वे उच्च घरानों की लड़कियों पर अत्याचार करते हैं। क्या इससे कोई हानि नहीं होती? बड़ी-बड़ी भयंकर हानियाँ हो रही हैं। सबसे पहले तो जो गृहिणी होती है, उसी की वे अवज्ञा करते हैं। उसके दुःख-सुख पर ध्यान ही नहीं देते। वह आँख की किरकिरी के समान बात-बात में खटकती रहती है। परस्पर के प्रेम का नाम तो वे जानते ही नहीं। बाहर के ही आनंद में मग्न रहकर रुपए-पैसे का सत्यानाश करते हैं। इतनी प्रत्यक्ष बातें देखी जाने पर भी लड़कियों पर ही दोष लगाया जाता है। लड़कियाँ अपने लिये कितनी ही फ़िज़ूल-ख़र्ची क्यों न करें, पर अपने आचरण को नहीं भ्रष्ट करतीं। मगर लड़के जान-बूझकर अपने आचरण बिगाड़ते हैं। यदि घर में पैसा नहीं, तो उधार लेकर ही अपने शौक़ पूरे करते हैं। लड़कियाँ रुपए होने पर भी घर के सब परिश्रम के काम करती हैं। पुरुष स्त्री के जीते-जी तीन-तीन, चार-चार विवाह तक कर लें, मगर स्त्रियाँ पति के मरने पर भी फिर ब्याह करने की अधिकारिणी नहीं हैं। कहाँ तक अत्याचार गिनाए जायँ। पग-पग पर स्त्रियों के लिये दुःख और शोक विद्यमान है। उनका आशाओं अभिलाषाओं से भरा जीवन निराशा से भारू हो जाता है। वे जिधर आँख उठाकर देखती हैं, उधर ही अत्याचारों के भयंकर तीर उनके हृदय को छेदते नज़र आते हैं। अभागिनी ललनाएँ जब प्राचीन माताओं के जीवन पर दृष्टि डालती हैं, तो अश्रुओं की धारा रोके नहीं रुकती। वे भारत की ही ललनाएँ थीं, जो जन्मकाल से ही दुर्गा समझकर पूजी जाती थीं, गृहिणी बनने पर गृह-लक्ष्मी कहलाती थीं। वे पुरुषों की अर्द्धांगिनी थीं। उनकी सूखी घास की टूटी-फूटी झोपड़ी में भी नंदन-कानन की-सी सरसता नृत्य करती थी। हा हंत! वर्तमान दशा बड़े-बड़े राजों के महलों में भी घोर अशांति मचा रही है। आनंद का नाम ही जैसे संसार से उठ गया है। सबलाओं को अबला कहना शुरू कर दिया। सदा उद्योगिनियों को अनुद्योगिनी बना दिया। परंतु उन्होंने अबला नाम रखने से पहले यह न विचार किया कि अगर वे अबला हैं, तो हम भी निर्बल हैं; क्योंकि वे हमारी जननी हैं। *निर्बल से सबल की उत्पत्ति नहीं हुआ करती।*

हा स्त्री-समाज! तू इन अत्याचारों को सहकर और सर्वस्व लुटाकर भी जीता है! क्या अपने प्राचीन पापों का फल भोग रहा है? तेरी कठोरता देखकर पृथ्वी भी कठोर हो गई। तुझे उदर-दरी में स्थान देने के लिये वह भी विदीर्ण

नहीं होती। तेरे जीवन का क्या कुछ उद्देश्य नहीं है? उस अखंड ब्रह्मांड के कर्ता ईश्वर की क्या तू संतान नहीं है? सुख से तेरा क्या कोई संबंध नहीं है? दुःख ही क्या तेरा पहरेदार है? हे पुरुषो, स्मरण रक्खो, यदि स्त्रियों पर अत्याचार करते हो, तो अपने ही ऊपर अत्याचार कर रहे हो। उनका दुःखित हृदय तुमको कल पाने न देगा। स्त्रियों को परदे में बंद रखकर अपना ही बल घटा रहे हो। समझ लो, उनको परदे में रखने की आवश्यकता नहीं है। वे स्वयं अपनी रक्षा करने के लिये सदा उद्योगिनी रहेंगी, और तुम्हारे काम में भी हाथ बटाने के लिये तत्पर रहेंगी। फिर तुम प्राचीन सीता, शकुंतला, दमयंती आदि देवियों के साथ उनकी तुलना करते हुए तनिक भी नहीं हिचकोगे। पर जब तक तुम अपना आचरण नहीं सुधारोगे, तब तक भारत में प्रसन्नता का वृक्ष नहीं उग सकता।

स्त्रियों को ईश्वर ने वही शक्ति दी है, जो पुरुषों को। पर उनको अपनी पूर्ण शक्ति प्रकट करने के लिये कर्मक्षेत्र में अवसर नहीं मिलता। यदि दुर्भाग्य-वश अवसर भी मिल जाता है, तो उन्नति करने के लिये कुछ भी सहायता नहीं मिलती। जितना वे स्वयं उद्योग कर सकती हैं, बस, वही उनके पल्ले पड़ता है। फिर भी यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्रियों में पुरुषों से अधिक शक्ति है। जो काम पुरुष दो वर्ष में कर सकते हैं, उसी को स्त्रियाँ एक वर्ष में कर सकती हैं।

आजकल लोग स्वराज्य की खोज में लगे हुए हैं। जब तक वे स्त्री-समाज को पूरी स्वतंत्रता न देंगे, और उनको उत्साहित न करेंगे, तब तक कभी सफलता नहीं मिल सकती। जिस काम को स्त्रियाँ करने का उद्योग करती हैं, वह काम अवश्य ही सफल होता है। यद्यपि स्त्रियों ने भी स्वराज्य की प्राप्ति के लिये बहुत कुछ आंदोलन और सहायता अब तक की है, तथापि ऊपर-लिखी रुकावटों से और बातों में उनका बहुत-सा समय नष्ट होता रहा है। यदि स्त्रियाँ और बातों को छोड़कर, अपनी दशा सुधार कर, केवल अपने पतियों, पुत्रों को देश-कार्य के लिये उत्साहित करतीं, तो अब तक सब काम बन गया होता। स्वराज्य किसी चिड़िया का नाम नहीं है, जो उड़कर भारत में आ जायगी। आनंद-मंगल का ही दूसरा नाम स्वराज्य है। इसके अक्षर ही बता रहे हैं कि स्व-राज्य अर्थात् अपना राज्य। अपना राज्य तभी होगा, जब हम प्रत्येक जाति से—चाहे स्वदेश की हो, चाहे विदेश की—द्वेष-भाव छोड़कर, मिलेंगे, आनंद-पूर्वक अपने देश की सेवा करेंगे, सब नर-नारियों को बहन-भाई समझकर उनसे प्रेम करेंगे। ऐसी स्थिति में स्वयं ही सभी प्राणी आनंद-पूर्वक रह सकते हैं। 'स्वराज्य' का अर्थ किसी जाति या किसी वर्ग से द्वेष रखना या भेद-भाव का व्यवहार करना नहीं है।

महारानी विक्टोरिया दिखा गई हैं कि दुनिया में कोई न तो ग़रीब है, और न अमीर। सबसे प्रेम-भाव रक्खो। वह स्वयं महारानी होने पर भी ग़रीब अनाथों के घर जा-जाकर वस्त्र-अन्नादि दिया करती थीं। वह अपने हाथ से काम करने को तुच्छ नहीं समझती थीं। इधर हमारे देश की बहनों को एक तो देश-सेवा करने का अवसर ही नहीं मिलता, दूसरे यदि मिलता भी है, तो वे उसका महत्त्व नहीं समझ पातीं—परिश्रम को घृणित कार्य समझती हैं। मैं भारतीय माताओं की निंदा नहीं करती। मगर यह मेरी प्रत्यक्ष देखी हुई बात है। माताओं को उचित है कि जहाँ तक अवसर मिले, अनाथों की सहायता करके उनके दुःख दूर करें। देश के सुख-दुःख का कारण स्त्रियाँ ही हैं। उन्नति और अवनति का भी मूल स्त्रियाँ ही हैं। अतएव हे भारतीय नवयुवको! स्त्रियों पर अत्याचार मत करो। वे तुम्हारी माताएँ हैं। देखो, तुम्हारे सामने सभी देश उन्नति कर रहे हैं; केवल तुम्हारा ही देश ऐसा है, जो अवनति कर रहा है। सहस्रों अनाथ भूके मर रहे हैं। कोई उनकी ख़बर नहीं लेता। भारत की महादुर्दशा हो रही है। यह सब स्त्रियों पर अत्याचार करने का परिणाम है। अब भी तुम सब मुसीबतों से बच सकते हो, अपने दुर्व्यवहार को छोड़ दो। पत्नी को अर्द्धांगिनी समझ उससे स्नेह का बरताव करो। और हे भगिनियो, तुम भी यथाशक्ति अपनी दशा सुधारो। माताएँ सुयोग्य बनकर अपनी संतान को उचित शिक्षा दें, जिसमें उनकी संतान कायरता से बचकर, महाबलवान्, पराक्रमी और निर्भय होकर, देश की रक्षा करने को कटिबद्ध हो जाय। स्त्रियाँ भी देश-रक्षा करती हुई अपने जीवन को सफल करें, तो देखोगे, थोड़े ही दिनों में भारत का भाग्य-भानु उदय होता हुआ दृष्टिगोचर होगा। उसकी प्यारी प्रभा चारों ओर फैल जायगी। आनंद लहलहाने लगेगा। भारत सुख-धाम स्वर्ग बन जायगा।

शकुंतलादेवी गुप्ता

१. शारीरक

सरल शरीर-विज्ञान—प्रकाशक, 'साहित्य-संवर्द्धिनी समिति, ११७ हरिसन रोड, कलकत्ता । पृष्ठ-संख्या ।||= + १५८; आर्टपेपर पर छपे हुए २२ हाफ़टोन चित्र; बढ़िया सुनहरी रेशमी जिल्द; मूल्य ||।)

कलकत्ते में 'साहित्य-संवर्द्धिनी समिति' की ओर से "श्रीविष्णु-सस्ती-पुस्तकमाला" अँगरेज़ी की Everyman's Library, Nelson's six-penny series के ढंग पर निकाली जा रही है। इस पुस्तकमाला में सिर्फ़ काग़ज़, छपाई और जिल्द का मूल्य पाठकों से लिया जाता है; लिखाई तथा चित्रों को बनाने वग़ैरह का ख़र्च समिति के फ़ंड से दिया जाता है।

यह पुस्तक डॉक्टर त्रिलोकीनाथ वर्मा-कृत "हमारे शरीर की रचना"-नामक पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। वास्तव में यह पुस्तक बहुत जगह उपर्युक्त पुस्तक से इतनी मिलती-जुलती है कि पाठक को यह भ्रम होता है कि दोनों के लेखक एक ही हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि "सरल शरीर-विज्ञान" में "हमारे शरीर की रचना" का कहीं नाम तक नहीं लिखा गया, कृतज्ञता स्वीकार करना तो अलग रहा !

इस पुस्तक में दस प्रकरण हैं, जिनमें जननेंद्रियों को छोड़कर शरीर की शेष सब साधारण बनावट और उसके कार्य; अत्यंत सरल भाषा में, साफ़ चित्रों की सहायता से, समझाए गए हैं। प्रचलित पारिभाषिक शब्दों का ही प्रयोग किया गया है, इससे इस पुस्तक को पढ़ने के बाद पाठकों को इससे बड़ी पुस्तकों के पढ़ने और समझने में बड़ी आसानी होगी। यह पुस्तक वास्तव में इतनी अच्छी और सस्ती है कि हम आशा करते हैं, जिन प्रांतों में हिंदी का चलन है, वहाँ के शिक्षा-विभाग इसे अपने यहाँ की कन्या-पाठशालाओं तथा हिंदी-मिडिल स्कूलों के लिये पाठ्य ग्रंथ नियत करेंगे। इस समुचित सम्मति के पश्चात् हम इस पुस्तक की अशुद्धियाँ बतलाना भी अपना बड़ा कर्तव्य समझते हैं। यह अत्यंत आवश्यक है कि विज्ञान-संबंधी जो कोई ग्रंथ हिंदी में छपे, उसमें सब बातें बिलकुल ठीक हों। "साहित्य-संवर्द्धिनी समिति" से हमारी विनय है कि वह 'सरल विज्ञान-सीरीज़' के संपादन का काम विज्ञान जाननेवालों के ही सिपुर्द करे। साहित्य और विज्ञान दो अलग-अलग चीज़ें हैं; वैज्ञानिक पुस्तकों की त्रुटियाँ वैज्ञानिक ही समझ सकता है, केवल साहित्य जाननेवाला नहीं।

पृष्ठ ८, पंक्ति १२—'नाड़ियाँ' की जगह नालियाँ होना चाहिए। पृष्ठ २२, पं० ३—"सफ़ेद पेशियों" की जगह "पेशी के सफ़ेद भाग में" होता, तो अच्छा होता। पृष्ठ २६, पं० १०—ये गोल-गोल चीज़ें बिना अणुवीक्षण के नहीं दिखाई दे सकतीं, यह बात यहाँ स्पष्ट कर देनी चाहिए थी। पृष्ठ २७, पं० ११—"पैतास" की जगह

पैंतालिस' होना चाहिए। पृ० २७, पं० १६—कीड़े कण में घुसते हैं, न कि ग्लोबिन में।

पृष्ठ ३४, पं० २०—'ग्राहक कोष्ठ' की जगह 'क्षेपक कोष्ठ' चाहिए। पुस्तक में 'रसायनिक' की जगह 'रासायनिक' और 'केशिका' की जगह 'कैशिका' होना चाहिए। पृष्ठ ६५, पं० ११—'गौदुमी' से क्या मुराद है, समझ में नहीं आता। जवान मनुष्य के फुप्फुस का रंग स्याही या नीलापन लिए हुए कुछ-कुछ स्लेट के रंग-जैसा होता है। पृष्ठ ६६, पं० ८—गौदुमी फिर छपा है। पृष्ठ ६६, पं० १६—'वायु-कणों' की जगह 'वायु-प्रणालिकाओं' होना चाहिए। पृ० ७२, पं० ६-१२ तक—यह बात ठीक नहीं है, और इसके लिखने की कोई आवश्यकता भी न थी। पृ० ७३, पं० २० और पृ० ७४, पं० ५ से वायुमंदिर की बनावट का साफ़ ज्ञान नहीं होता। पृ० ८८, पं० ८—कर्बोज में केवल शकर ही नहीं आती, श्वेतसार और काष्ठोज भी शामिल है। पृ० ८८, पं० २२—वास्तव में भोजन के कर्बोज में श्वेतसार की अधिकता होती है, न कि शकर की। पृ० ६१, पं० १०—दाल की जगह आलू की तरकारी से काम नहीं लिया जा सकता। दाल प्रोटीन ग्रहण करने के लिये खाई जाती है; आलू का अधिक भाग श्वेतसार होता है, प्रोटीन नाम-मात्र। पृ० ६३, पं० ४—शकर मूत्राशय में नहीं जाती, न पित्त पित्ताशय में छनकर जाता है। पृ० ६३, पं० १७—दूध के दाँत २½ वर्ष में निकल आते हैं, न कि ७-८ वर्ष में। पृ० ६३ पं० २१-२२—२५ वर्ष की अवस्था तक दाँतों की संख्या २४ ही नहीं रहती। साधारणतः १७ वर्ष के बाद २४ से अधिक दाँत निकल आते हैं; २५ वर्ष की आयु में तो बहुत-से लोगों के पूरे ३२ दाँत आ जाते हैं। पृ० ६५, पं० १-२—दाँत जबड़ों की हड्डियों में जड़े रहते ह। पृ० ६५, पं० ८; पृ० १०२, पं० १८; पृ० १०८, पं० १४; पृ० ११६, पं० २१; पृ० १२०, पं० १४ में 'शकर' की जगह 'श्वेतसार' होना चाहिए। पृ० १०८, पं० १२—यह पंक्ति निकाल डालनी चाहिए। पृ० ११५, पं० १६—'ग्राहक-तंतु' की जगह 'ग्राहकांकुर' होना चाहिए। पृ० १२४, पं० १—"रचना गैसों द्वारा हुई है", ठीक नहीं है। पृ० १२६, पं० १६—"मूत्राशय या गुर्दा", मूत्राशय और चीज़ है, और गुर्दा और। पृ० १२६, पं० २०-२१; पृ० १२७, पं० ७, ८, १२, १४ में 'मूत्राशय' की जगह 'गुर्दा' होना चाहिए। पृ० १४०, पं० १६—मस्तिष्क वात-तंतु से बनता है, न कि मांस-तंतु से। पृ० १४२, पं० ११-१२—सुषुम्णा का निर्माण हड्डियों से नहीं होता, यह तो वात-मंडल का एक भाग है। पृ० १४४—सुषुम्णा की बनावट ग़लत बतलाई गई है। पृ० १४६—यह पूरा पृष्ठ संशोधन के क़ाबिल है। पृ० १५०, पं० ३ ग़लत है।

आशा है, संपादक महाशय इस पुस्तक में, आरंभ में ही, शुद्धि-पत्र लगा देंगे, और अगली आवृत्ति में तो ये अशुद्धियाँ रहने ही न पावेंगी।

एक डॉक्टर

× × ×

२. उपन्यास और कहानी

कर्मफल—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत मधुसूदनदास गुजराती, प्रोप्राइटर गुर्जर ऐंड कंपनी, ५२ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता। छपाई-सफ़ाई साधारणतः अच्छी। पृष्ठ-संख्या २१२। एक रंगीन और चार सादे चित्र भी हैं। मूल्य १॥)

लेखक के शब्दों में यह एक शिक्षाप्रद, सामाजिक उपन्यास है। हिंदी में मौलिक उपन्यासों के अभाव को दूर करने के लिये आपने इसे लिखा है। अतः आपका प्रयास प्रशंसनीय है। पर शैली में सरसता का अभाव है, और भाव में भावुकता का। इस पर कलकत्ते की पूरी छाप लगी है।

प्रेमचंद अपने धनी माता-पिता का इकलौता बेटा था। बालकपन ही में उसका विवाह हो गया था। पढ़ने-लिखने की उसको आवश्यकता न थी। उससे अच्छी और रास्ते की बात कहने के लिये किसी को, उसके माता-पिता के डर के कारण, हिम्मत न पड़ती थी। माता-पिता का स्नेह उसका शत्रु हो गया। अपनी स्त्री का मुँह प्रेमचंद को ज़हर हो गया। इष्ट-मित्रों की संगति से वह मदिरा और वेश्या का पूरा उपासक बन गया। इन्हीं की भक्ति में उसने अपना सर्वस्व भस्म कर दिया। यहाँ तक कि सुशीला को भी उसने मारकर घर से निकाल दिया। माता-पिता भी उससे आजिज़ आकर घर से चल दिए। अब उसके मित्रों की बन आई। वह झूठे-सच्चे जाल में जकड़ा गया; पर साध्वी सुशीला ने उसे मुक्त किया।

रामलाल की निर्भीकता और दृढ़ता अवश्य प्रशंसनीय है। पर विमला की वकालत और उससे रामलाल के

साथ उसका विवाह कहाँ तक संभव है, इस पर पाठक स्वयं विचार करें। संभव है, रामलाल के हृदय में विमला के प्रेम का बीजारोपण ही उसकी दृढ़ता का कारण हो! तहसीलदार के सुधार की उसकी निःस्पृह आकांक्षा पर इससे आँच आने की संभावना है। क्या रामलाल ने विमला ही को, अपने कर्मों के फल में, पाने की आशा से इतने झंझट उठाए थे? ख़ैर, लेखक ने अपने अनुभव का यथासाध्य अच्छा ही ख़ाका खींचा है।

यह देखकर और भी आश्चर्य हुआ कि पुस्तक में प्रेस के प्रेतों ने 'विश्वंभर' तक को न छोड़ा। मालूम होता है, विश्वंभर ने उनका यथायोग्य सम्मान करने में कोताही की थी। पुस्तक का मूल्य अधिक है।

छन्नूलाल द्विवेदी

× × ×

संसार-विजयी—संपादक, श्रीयुत दुर्गाप्रसाद खत्री। प्रकाशक, लहरी-बुकडिपो, काशी। पृष्ठ-संख्या १०२; मूल्य ॥)

यह "जीवन-गल्पमाला" की दूसरी संख्या है। इस पुस्तक में बारह कहानियाँ हैं, जिनके लेखक बा० मथुरा-प्रसाद खत्री, बा० दुर्गाप्रसाद खत्री आदि पाँच सज्जन हैं। इनमें से कई अच्छी हैं, और बाक़ी साधारण। कोई-कोई कहानी तो सत्यनारायण की कथा की नानी है। भाषा-संबंधी भूलें भी पाठकों के हृदय पर प्रायः चुटकी लेती रहती हैं। नहीं कहा जा सकता कि कहानियाँ मौलिक हैं या नहीं; टाइटिल पर इस विषय में कुछ प्रकाश नहीं डाला गया। और, भूमिका की आवश्यकता ही क्या थी! ऐसी दशा में यदि किसी पाठक को भावापहरण अथवा कथापहरण का संदेह हो, तो वह क्षम्य है। 'संसार-विजयी'-शीर्षक कहानी कुछ शिथिल होने पर भी एक विशेष प्रकार की शिक्षा देती है। इस शिक्षा को हम बहुत उत्तम समझते हैं; परंतु पद-दलित देशों के लिये नहीं, रण-मद से अंधे और लूट-खसोट से आतुर देशों के लिये। भारतवासियों को परोक्ष भाव से भी अहिंसा-व्रत की शिक्षा देना या उनमें युद्ध के विरुद्ध भाव उत्पन्न करना उन्हें और भी भीरु और अकर्मण्य बनाना है। हिंदी-संसार में कहानियाँ बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। अतएव प्रत्येक कहानी-लेखक का कर्तव्य है कि वह जो कुछ लिखे, सो बहुत सोच-समझकर। और, देश-वासियों को सुदृढ़, सुसंगठित, कर्मवीर और निर्भय बनाने का ही प्रयत्न करे, न कि कायर बनाने का। इस समय योरप के सभी देशों में युद्ध के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले दल बन गए हैं, और बन रहे हैं। वहाँ इन दलों की आवश्यकता भी है। किंतु यहाँ अभी ऐसे दलों की आवश्यकता नहीं; क्योंकि युद्ध करता ही कौन है, और युद्ध करने की क्षमता ही किसमें है? अस्तु। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

"स"

× × ×

३. नाटक

अज्ञातवास-नाटक—लेखक, आनंदप्रसाद कपूर। प्रकाशक, लहरी-बुकडिपो, काशी। पृष्ठ-संख्या, ११७; मूल्य ।)

यह 'नाटक-कुसुममाला' की पहली संख्या काशी के 'श्रीयुत बाबू गंगाप्रसादजी गुप्त के पूज्य कर-कमलों में सादर समर्पित' है। तीन चित्र भी हैं, जिनमें से दो रंगीन हैं। तीनों ही चित्र साधारण हैं। नाटक में हमें कोई विशेषता नहीं देख पड़ी। हाँ, कुछ बातें खटकती अवश्य हैं। भाषा-संबंधी भूलों के विषय में तो कुछ न कहना ही अच्छा। तुक-बंद-गद्य लिखने के प्रयत्न में महावीरों की जो खींचा-तानी हुई है, उसका साधारण-सा एक नमूना यह है—

"मुझे तेरा काल यहाँ खींच लाया; बस अब सती के अपमान का बदला सहने के लिये तैयार हो जा, मृत्यु के आलिंगन के हेतु हुशियार हो जा।"

विराम-चिह्नों की भूलें भी भरी पड़ी हैं। पद्य की शिथिलता देखकर जूड़ी आती है। देखिए, भीमसेनजी युधिष्ठिर को कैसी डाँट बताते हैं—

"जाने दो जाने दो, कह आपने ही सदा
ऐसे भयंकर और दारुण दुख पाले हैं;
उससे ही होकर उत्साहित नीच लोग
दे के कष्ट नाकों में दम कर डाले हैं।
विवश हूँ नहीं तो आज देखता न यह मैं
कौन-से मसाले से ये हाथ बना डाले हैं;
तेरे परिवार-सहित शीघ्र तुझे दुर्योधन,
काले विकराल काल डसने ही वाले हैं।"

'दाया', 'डारो', 'फारो' आदि शब्द खड़ी बोली के पद्य की शोभा अलग ही बढ़ा रहे हैं।

"तेरी जान मेरे हाथ से बचने न पाएगी;
मेरे आघात से विश्वंभरा तक काँप जाएगी।"

इसमें पहली पंक्ति रो-रोकर कह रही है कि या तो मुझे इस दूसरी पंक्ति के साथ बिठलाइए मत, और यदि बिठलाना ही है, तो उसके बराबर बनाकर बिठलाइए, छोटी बनाकर नहीं; वरना मेरी जान सचमुच ही न बचने पावेगी।

यदि इतने पर भी आपको संतोष न हो, तो लीजिए, शेर और सोरठे का विवाह देखिए—

"वो वेग का प्रवाह भी इकदम में थम गया ;
ऐसी बही बयारि, उसी ठौर में जम गया।"

बस, अब अधिक लिखना व्यर्थ है। लेखक महोदय से हमारी प्रार्थना है कि वह यदि सचमुच ही हिंदी-सेवा करना चाहते हैं, तो जो कुछ लिखें, खूब सोच-समझकर लिखें। ऐसी रचनाओं से उनकी शान नहीं बढ़ सकती। पुस्तक का मूल्य अधिक है।

× × ×

विचित्र जागृति—लेखक, श्रीयुत शिवचंद्र। प्रकाशक, श्रीयुत अमृतलाल जैन, व्यवस्थापक लोकमान्य-पुस्तक-भंडार, जबलपुर। पृष्ठ-संख्या ३२। मूल्य लिखा नहीं।

इसे हम प्रहसन कहें या प्रहसन का गया-श्राद्ध! इसकी रचना 'वर्तमान समाज-स्थिती' पर की गई है। गद्य में जगह-जगह 'शेढे' लटकाए गए हैं, और पद्य की दशा यह है—

"हम सब स्वागत आज करत हैं।
तुम स्वागत हम आज करत हैं॥
जन रंजन-हित साज धरत हैं।
तुम स्वागत-हित शीश नवत हैं॥"

'इम्तिहान लेनेवालों' को 'साले' की गाली दिलवा दी गई है! इसमें हर तरह की इतनी भूलें भरी हैं कि हमें तो रोना आता है। हँसी जिसे आवेगी, उसे आवेगी। न कुछ बात है, न बात कहने का ढंग। यद्यपि लेखक ने 'उदार पाठकगण' से पहले ही कह दिया है कि 'पुस्तक में कुछ ग़लतियाँ अवश्य रह गई हैं', और उनसे क्षमा की प्रार्थना भी की है; परंतु हमें पूरा विश्वास है कि पाठक-गण चाहे कितने ही उदार हों, इस अनधिकार-चेष्टा के लिये लेखक को शायद ही क्षमा करें। हम लेखक को हतोत्साह नहीं करना चाहते, उनसे केवल इतनी प्रार्थना करते हैं कि वह पुस्तक छपाने की जल्दी न करें; पहले कुछ अभ्यास कर लें।

"पूरनमल"

× × ×

४. काव्य

रसपुंज-कुंडलिया—लेखक, पं० लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी (रसपुंज कवि)। प्रकाशक, पं० वेणीमाधव चतुर्वेदी, बघाँव, सहतवार, बलिया। पृष्ठ-संख्या ३८; छंद-संख्या ११२; मूल्य ≈)

कवि महोदय ने इसमें अनेक विषयों पर अपने विचार प्रकट किए हैं। रचना कहीं-कहीं अच्छी है, तो कहीं-कहीं बहुत ही साधारण। आपके विचारों में आधुनिकता है। बातें खरी कही गई हैं। ऐसा ही चाहिए भी। कहीं-कहीं पुरानी और नई भाषा की खिचड़ी भी हो गई है, जो बुरी लगती है। कविजी से हमारी प्रार्थना है कि वह समाज-सुधार के काम में अपनी शक्ति लगाने की कृपा करें। पाठकों के मनोरंजन के लिये दो उदाहरण दिए जाते हैं—

(१)

"तरनि खिलावत कोकनद, कोक प्रेममय होय ;
उडगण छिपिगे गगन में, चिमगादुर रहे सोय।
चिमगादुर रहे सोय, भगे तस्कर मुख बाए ;
सज्जन चित्त विनोद परस्पर प्रेम जगाए।
बरनत कबि 'रसपुंज' पथिक चहुँ ओर न आवत।
धाने-धानि अंबुज आदि जिनहि बर तरनि खिलावत।"

(२)

"बावन लक्ष अहै यहाँ मुफ़्तख़ोर की जाति ;
इत-उत भारत में रहैं, जिनकी जाति न पाँति।
जिनकी जाति न पाँति, चिलम पर चरस उड़ावें ;
सम करि तीनों भाग, उदर हलुवा से बुड़ावें।
बरनत कवि 'रसपुंज', मुचंडे और अपावन ;
बिन श्रम के नित खाहिं, महाछलिया लछबावन।"

"स"

× × ×

विधवा—रचयिता, पं० राजाराम शुक्ल। प्रकाशिका, श्रीमती फूलकुमारी मेहरोत्रा, संपादिका स्त्री-दर्पण, कानपुर। पृष्ठ-संख्या ८०। छपाई और काग़ज़ साधारण। मूल्य ॥)

इस पुस्तक के प्रारंभ में एक १२ पृष्ठ की, राजारामजी की लिखी, अवतरणिका है, और फिर ८ पृष्ठों में श्रीपरशुरामजी की लिखी एक प्रस्तावना। इसके बाद ६० पृष्ठों में, विधवाओं के संबंध में, १९ पद्य-बद्ध निबंध हैं। इनमें विधवाओं के वेष, विवाह और व्रत आदि को लेकर

कविता की गई है। शुक्लजी की कविता में शब्दाडंबर और जटिलता नहीं है। वह प्रायः सरल है। पर कहीं-कहीं 'निराभरणा सरस्वती' के समान यह सरलता फबती नहीं है। विषयाओं के संबंध में आजकल बहुत अधिक कविता होती है, इसलिये पुस्तक के विषय में कोई नवीनता नहीं है।

× × ×

अंत्याक्षरी—लेखक, पं० कामताप्रसाद गुरु। प्रकाशक, मिश्र-बंधु-कार्यालय, जबलपुर। पृष्ठ-संख्या ६४। मूल्य ।।) ; प्रकाशक से प्राप्य। छपाई और कागज़ साधारण।

उर्दू में बैतबाज़ी का ख़ासा प्रचार है। शायद बैतबाज़ी से संबंध रखनेवाली कुछ पुस्तकें भी उर्दू में हैं। हिंदी में बैतबाज़ी के ढंग पर ही यह अंत्याक्षरी पुस्तक लिखी गई है। पुस्तक लड़कों के काम की है। छुट्टी के समय में दो-चार लड़के अंत्याक्षरी के सहारे अपना मन-बहलाव भली भाँति कर सकते हैं। पद्यों का चुनाव विशेष अच्छा नहीं हुआ।

× × ×

सुमन-संचय—प्रकाशक, श्रीनवलकिशोर भरतिया बी० ए०, मंत्री श्रीमारवाड़ी पुस्तकालय, कानपुर। पृष्ठ-संख्या ७२। मूल्य ।=)

कानपुर में मारवाड़ी-अग्रवाल-महासभा के अवसर पर एक बृहत् कवि-सम्मेलन भी हुआ था। इस सुमन-संचय में उसी सम्मेलन में पढ़ी जानेवाली कविताओं का संग्रह है। यह दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में वे कविताएँ हैं, जो पुरस्कृत हुई हैं। दूसरे में अपुरस्कृत चुनी हुई अन्य कविताएँ हैं। संग्रह देखने योग्य है, यद्यपि किन कविताओं पर पुरस्कार मिलना चाहिए था, तथा किन पर नहीं, यह विषय मत-भेद से ख़ाली नहीं है।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

५. इतिहास

सम्राट् अशोक—लेखक, श्रीयुत संपूर्णानंदजी बी० एस्-सी०, एल्० टी०। प्रकाशक, प्रकाश-पुस्तकालय, कानपुर। ५ चित्र तथा मान-चित्र। पृष्ठ-संख्या १६१; मूल्य १)

सम्राट् अशोक संसार के केवल आदर्श वादी सम्राट् ही न थे, किंतु उन्होंने अपने आदर्शों को कार्य-रूप में परिणत करने का जो हार्दिक प्रयत्न किया था, उसके कारण वह संसार के आदर्श सम्राटों में गिने जाते हैं। संसार में आदर्श-वादियों की कमी न कभी थी, और न है; किंतु अशोक-सा आदर्श इतिहास में और कोई नहीं दिखलाई पड़ता। अशोक का प्रेम किसी जाति या राष्ट्र-विशेष से न था। वह मनुष्य-मात्र के सेवक और हितचिंतक थे। अपने शिला-लेखों में उन्होंने एक जगह कहा है—"देव-प्रिय चाहते हैं कि मनुष्य-मात्र दुःख-निवृत्ति, आत्मसंयम, निष्पक्षता और सुख का अनुभव करें।" उनका प्रेम मनुष्यों से भी आगे बढ़कर पशुओं तक पहुँच गया था, और उन्होंने पशुओं के लिये भी अस्पताल आदि बनवाए थे। अशोक ने कलिंग-देश को विजय करके देखा कि सांसारिक विजय रक्त-पात के ऊपर निर्भर है। वह अनित्य है। उससे संसार में केवल दुःख-ही-दुःख बढ़ता है। अशोक क्या, बहुत-से विजेताओं के हृदय में कभी-न-कभी ये विचार उत्पन्न हुए थे। वाटरलू के बाद वेलिंगटन की भी आँखों से आँसू निकल आए थे; और उसने कहा था—"यद्यपि संसार में सबसे भयंकर वस्तु बड़ी भारी हार है, किंतु उसके बाद जो वस्तु सबसे अधिक भयंकर है, वह है बड़ी विजय।" किंतु अशोक में और अन्य विजेताओं में यही भेद था। युद्ध की बुराइयों के संबंध में उन्हें श्मशान-वैराग्य नहीं हुआ, बल्कि उन्होंने उसके बाद से मनुष्यों के शरीरों पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा उनके हृदयों पर आत्मिक विजय प्राप्त करने का निश्चय किया। कलिंग-विजय के संबंध में उनकी प्रशस्ति संसार के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य है। उसके अंतिम अंश में वह कहते हैं—"देवप्रिय का विश्वास है कि सबसे प्रधान विजय वह है, जो धर्म के द्वारा प्राप्त होती है, और वही विजय देवव्रत ने प्राप्त की है। × × × और जो विजय इस प्रकार सर्वत्र प्राप्त हुई है, जो विजय सर्वत्र प्राप्त हुई है, उससे सुख होता है। पर यह सुख भी छोटी वस्तु है। देवप्रिय उसी को बहुमूल्य समझते हैं, जिसका पर-लोक से संबंध है। × × × इसलिये मेरे जितने लड़के या पोते हों, वे किसी नई विजय को उचित न समझें, इसलिये ऐसी विजय के अवसर पर, जो केवल तलवार द्वारा संभव हो, वे लोग शांति और संधेयन को अच्छा समझें। इसलिये कि वे लोग उसी विजय को अच्छा समझें, जो धर्म के द्वारा प्राप्त होती है। उससे इस लोक में और परलोक में आनंद मिलता है। इस प्रयत्न में उनको

सुख मिले, उससे इस लोक में और परलोक में सुख मिलता है।"

आर्य-आदर्शों पर चलनेवाले ऐसे सम्राट् के बारे में बहुत-से शिक्षित भारतीय भी बहुत कम जानते हैं। यह हमारी शिक्षा-प्रणाली का दोष है। हिंदी में अशोक के बारे में कोई स्वतंत्र पुस्तक न थी। कुछ दिन हुए, एक उपन्यास अवश्य निकला था, जो मराठी का अनुवाद था; किंतु उसमें ऐतिहासिक अशोक को नाटकीय कथा में छिपाकर उनका रूप विकृत कर दिया गया था। प्रसन्नता की बात है कि बाबू संपूर्णानंदजी ने उस कमी को दूर करने का उद्योग किया है। यह पुस्तक बहुत अच्छे ढंग से लिखी गई है। ऐतिहासिक तथ्यों के साथ-साथ उनकी उचित समालोचना भी यथास्थान कर दी गई है। ऐतिहासिक रीति से इस प्रकार लिखी हुई पुस्तकें हमारी भाषा में बहुत कम हैं। अतः हम इस पुस्तक का हृदय से स्वागत करते हैं। इसके अंत में तत्कालीन शिल्प और कला पर भी एक परिच्छेद जोड़ दिया गया है। हिंदी-लेखक अभी तक इस विषय से उदासीन-से थे। हर्ष है कि लेखक ने इस विषय को भी अपनी पुस्तक में उचित स्थान दिया है। पुस्तक इस योग्य है कि हिंदू-इतिहासकाल की पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित की जाय। प्रत्येक प्राचीन आर्य-सभ्यताभिमानी को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

श्रीनारायण चतर्वेदी

× × ×

६. फुटकल

राजपूत-जाति को संदेश (सचित्र)। लेखक, कप्टेन ठा० केसरीसिंह देवड़ा, जागीरदार गलथनी, रिटायर्ड स्क्वाड्रन कमांडर, जोधपुर। प्रकाशक वही। पुस्तक मिलने का पता—ठिकाणा गलथनी, पो० एरनपुरा-रोड (मारवाड़)। मूल्य १।)

इस पुस्तक के आवरण-पृष्ठ पर लिखा है—"राजपूत-क्षत्रिय जाति के प्राचीन गौरव तथा अर्वाचीन हीन अवस्था का दिग्दर्शन, उसके धर्म का विवेचन, उसके संगठन-एकता की आवश्यकता तथा उसकी कुरीति-निवारण और सुरीति-प्रचार आदि विषयों का संक्षेप में सचित्र वर्णन।" इसमें राजपूतों को उन्नति के पथ में अग्रसर होने की सलाह दी गई है। 'बिछुड़ों का भरत-मिलाप'-नामक परिच्छेद में मलकानों की शुद्धि की आवश्यकता दिखलाने के साथ ही इस कार्य की प्रशंसा भी की गई है। पुस्तक क्षत्रियों के पढ़ने-योग्य है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

प्रेम—अनुवादक, पंडित भुवनेश्वर झा बी० ए० (रुद्र)। प्रकाशक, भारती-पुस्तकमाला, २२ सरकार लेन, कलकत्ता। ३३वें पृष्ठ से प्रारंभ होकर ७८ पृष्ठ पर समाप्त। मूल्य ॥)

इस पुस्तक के मूल लेखक बंगाल के सुप्रसिद्ध नेता स्वर्गीय बा० अश्विनीकुमार दत्त थे। वास्तव में यह उनके तीन व्याख्यानों का संग्रह है। इनमें 'प्रेम' पर कुछ नए ही ढंग से विचार किया गया है। भाव बहुत अच्छे हैं। कलकत्ता-युनिवर्सिटी के 'हिंदी पोष्ट ग्रेजुएट लेक्चरर' श्रीयुत श्रीगंगापतिसिंहजी बी० ए० ने इसकी भूमिका लिखी है। इसमें पृष्ठ-संख्या ३३ से क्यों प्रारंभ की गई, यह समझ में नहीं आता। पहले ३२ पेज हुगली की बाढ़ में बह गए क्या? पुस्तक है तो वास्तव में ४६ पेज की, और जँचा दी गई है ७८ पेज की! प्रत्येक पृष्ठ पर नीचे 'भारती-पुस्तकमाला' छपा है, जो बहुत बुरा मालूम होता है।

"स"

× × ×

७. गुजराती

महात्मा टाल्स्टाय—अनुवादक, गोवर्द्धनदास-महानदास अमीन। संपादक, भिक्षु अखंडानंदजी। प्रकाशक, सस्तुं-साहित्य-वर्द्धक कार्यालय, अहमदाबाद और बंबई। बढ़िया काग़ज़, छपाई सुंदर। पृष्ठ-संख्या ६०० से ऊपर। आकार बड़ा। मूल्य सादा का २।) सजिल्द का २॥।)

यह चरित्र विविधग्रंथ-पुस्तकमाला में प्रकाशित हुआ है। रूस के विश्वविख्यात महात्मा टाल्स्टाय का नाम और यश हिंदी-भाषा के पुस्तक-प्रेमियों से छिपा नहीं है। प्रताप-प्रेस तथा अन्य कई प्रकाशकों ने उनके जीवन से संबंध रखनेवाली कई छोटी-मोटी पुस्तकें निकाली हैं। हमारे हिंदी-पाठकों को इतने विस्तृत चरित पढ़ने का सौभाग्य अभी तक नहीं प्राप्त हुआ। किसी बड़े पुस्तक-प्रकाशक को चाहिए कि इस कमी को शीघ्र पूरा करे। मूल-पुस्तक मराठी में है। लेखक पंडित प्रभाकर-श्रीपति मिश्र हैं। अँगरेज़ी-पुस्तकों से सहायता लेकर ग्रंथ को बड़ा उपयोगी बना दिया गया है।

चरित-नायक के विषय में कुछ कहना छोटे मुँह बड़ी बातें बनाना है। पर, तो भी, पुस्तक की उपयोगिता दिखलाने के लिये सुसाहित्य की वृद्धि तथा पुस्तक-प्रेमियों का ध्यान आकर्षित किए बिना काम नहीं चलता। आपके इस बृहत् जीवन के प्रारंभ का अवलोकन करने से मालूम होता है, आपने एक अमीर ज़मींदार-घराने में जन्म लिया था। अमीरों के यहाँ धर्म तथा नीति की जो दशा रहती है, वही इनके चारों ओर थी। पर काउंट लियो टाल्स्टाय की योगभ्रष्ट आत्मा ने इसे स्वीकार नहीं किया, और समय पाकर हमारे देश में महात्मा गांधीजी ने जो हलचल पैदा कर दी है, उसके बीज लियो टाल्स्टाय के जीवन तथा लेखों में मिलते हैं। महात्मा गांधीजी को काउंट लियो टाल्स्टाय पर अपूर्व श्रद्धा है। आफ़्रिका के सत्याग्रह के समय उन्होंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। इस विषय में और क्या लिखें, पुस्तक स्वयं ही कह रही है। इसमें २७ प्रकरण हैं। प्रत्येक प्रकरण उपदेश तथा शिक्षा से भरा है। काउंट लियो टाल्स्टाय ने केवल रशिया में ही नहीं, समस्त संसार में एक नए प्रकार की खलबली पैदा कर दी है। सारा संसार आपके लेख और पुस्तकें बड़े चाव से बराबर पढ़ता है। उसी महात्मा का जीवन-चरित इस पुस्तक में दिया है। पुस्तक बड़ी खोज और परिश्रम के साथ लिखी गई है। हरएक गुजराती जाननेवाले को यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। कारण, इससे लाभ होने के सिवा हानि की तो स्वप्न में भी कोई आशा नहीं। पुस्तक के प्रारंभ में महात्मा टाल्स्टाय के २ चित्र दिए हैं। इतनी बड़ी पुस्तक में प्रूफ़-रीडरों की असावधानी से ग़लती रह जाना स्वाभाविक है। अतः भिक्षु अखंडानंदजी ने पाठकों की सुविधा के लिये दो शुद्धि-पत्र प्रारंभ में लगा दिए हैं।

(स्व०) श्रीधर-नारायणदास मेहता

× × ×

८. पत्र-पत्रिकाएँ

कवि—संपादक, कविवर त्रिशूल। वार्षिक मूल्य ३); पृष्ठ-संख्या ४८। "मैनेजर कवि-कार्यालय, फ़ीलखाना, कानपुर", इस पते से प्राप्य।

यह पत्र पहले गोरखपुर से प्रकाशित होता था। फिर कुछ दिन बंद भी रहा। अब इसका संपादन और प्रकाशन कानपुर से ही होगा। हमारे सामने जो ८वीं संख्या है, उसमें १८ गद्य-पद्यमय लेख हैं। गद्य की अपेक्षा पद्य-भाग अधिक है। समस्या-पूर्तियाँ भी हैं। पद्य-भाग में खड़ी बोली की भी कविताएँ हैं, और ब्रजभाषा की भी। कुछ कविताएँ अच्छी हैं, और कुछ साधारण कोटि की। हम पत्र की उन्नति चाहते हैं।

× × ×

साहित्य—संपादक, पं० देवीप्रसादजी द्विवेदी। कानपुर से निकलता है। वार्षिक मूल्य ३) है।

समालोच्य संख्या युग्म संख्या (संख्या २-३) है। इसमें ६४ पृष्ठ और १६ गद्य-पद्यमय लेख हैं। 'भरतपुर-राज्य के कवि', 'आमों की टोकरी', 'देव और केशव'-शीर्षक लेख तथा 'विहार', 'रसचंद्रिका' और दो-एक समस्या-पूर्तियाँ अच्छी हैं। हम पत्र की उन्नति चाहते हैं। संपादकीय टिप्पणियों में अभी उन्नति की बहुत गुंजाइश है। ईश्वर इस पत्र को चिरायु करे।

× × ×

अग्रसर—साप्ताहिक समाचार-पत्र। वार्षिक मूल्य ३); संपादक, ठाकुर रामकिशोरसिंह बी० ए०। पृष्ठ-संख्या १६। मिलने का पता—हनुमान-प्रेस, ३ माधव सेठ-लेन, कलकत्ता।

इस पत्र का संपादन योग्यता-पूर्वक होता है। पत्र हिंदू-संगठन का समर्थक है। हम इसकी उन्नति चाहते हैं।

× × ×

शंकर—साप्ताहिक समाचार-पत्र। वार्षिक मूल्य ३॥); पृष्ठ-संख्या १२। संपादक, पं० बदरीदत्त जोशी। मिलने का पता—व्यवस्थापक 'शंकर', मुरादाबाद।

पत्र का संपादन संतोष-जनक रीति से होता है। आशा है, इसकी उन्नति होती रहेगी।

× × ×

ब्राह्मण-हितैषी—पाक्षिक पत्र। संपादक, पं० बिहारी-लालजी गौड़। दीपमालिका के लक्ष्मी-अंक में १६ पृष्ठ हैं। वार्षिक मूल्य २॥) है।

यह नारायण-समिति, मैनपुरी से मिलता है। साधारणतः अच्छा पत्र है। पर अभी उन्नति की बहुत कुछ गुंजाइश है। इस लक्ष्मी-अंक के नीचे 'विशाल' अंक लिखा है। इसका भाव समझ में नहीं आया।

× × ×

महावीर—साप्ताहिक पत्र । संपादक, श्रीरघुनंदन झा । वार्षिक मूल्य ३) ; पृष्ठ-संख्या १२ ।

महावीर-कार्यालय, सहारनपुर से मिलता है । अच्छा पत्र है ।

× × ×

आर्य-जगत्—साप्ताहिक पत्र । वार्षिक मूल्य ४) ; पृष्ठ-संख्या १२ । संपादक, श्रीखुशहालचंद । मैनेजर 'आर्य-जगत्', 'आर्य-समाज-मंदिर', अनारकली, लाहौर के पते से प्राप्य ।

यह आर्य-प्रादेशिक प्रतिनिधि-सभा पंजाब, सिंध और बलूचिस्तान का मुख-पत्र है । पत्र अच्छा है ।

× × ×

माहेश्वरी-जगत्—संपादक, गणेशप्रसाद शारदा । पत्र का समालोच्य १६वाँ अंक देखने से नहीं जान पड़ता कि यह पाक्षिक है, या मासिक, अथवा साप्ताहिक । वार्षिक मूल्य १॥)

संपादक ही से हनुमान-प्रेस ३, मैडहोसेट लेन, कलकत्ता के पते पर मिल सकता है । जातीय पत्र है ।

× × ×

भूत—साप्ताहिक पत्र । पृष्ठ-संख्या १६ । वार्षिक मूल्य २); संपादक, श्रीबालचंद्र अष्ठाना । भूत-कार्यालय, बुलानाला, काशी के पते से प्राप्य ।

गोस्वामी तुलसीदासजी की निम्न-लिखित चौपाई 'भूत'-जैसे पत्रों के संबंध में भी चरितार्थ होती है—

"बातुल, भूत-बिबस, मतवारे, ए नहिं बोलत बचन सँभारे ।"

× × ×

देश—साप्ताहिक पत्र । आकार बड़ा । पृष्ठ-संख्या ८ । संस्थापक, श्रीराजेंद्रप्रसाद । वार्षिक मूल्य ३) है । संपादक, श्रीमथुराप्रसादसिंह बी० ए०, बी० एल्० । सर्चलाइट मिशन-प्रेस, पटना के पते से प्राप्य ।

समाचारों का संग्रह और संपादन अच्छा होता है । बिहार के इस एक-मात्र बृहत् पत्र को और भी उच्च कोटि का बनाना चाहिए ।

× × ×

हिंदू—साप्ताहिक पत्र । वार्षिक मूल्य ३) । संपादक, बी० डी० शर्मा । पता—मैनेजर 'हिंदू', १६२-१६४ हरीसन रोड, कलकत्ता ।

पत्र में ८ पृष्ठ हैं । संपादन अच्छे ढंग से होता है ।

× × ×

कैलास—साप्ताहिक समाचार-पत्र । वार्षिक मूल्य ३॥); आकार बड़ा । पृष्ठ-संख्या १२ । संपादक, पं० ज्वालादत्त शर्मा । 'कैलास कार्यालय, मुरादाबाद' के पते से मिलता है ।

इधर हिंदी में कई नए साप्ताहिक पत्र निकले हैं, उनमें कैलास का स्थान श्रेष्ठ है । इसमें साहित्यिक लेखों का भी समावेश रहता है । इसकी हम हृदय से उन्नति चाहते हैं ।

× × ×

हितचिंतक—मासिक पत्र । पृष्ठ-संख्या २४ । आवरण-पृष्ठ पर तो संख्या पाँच लिखी है, पर अंदर संख्या ५ और ६ हैं, इससे जान पड़ता है कि यह युग्म संख्या है । वार्षिक मूल्य १॥) ; संपादक और प्रकाशक, प्रभुदयाल शर्मा वैद्य, हितचिंतक कार्यालय, पटना । इसी पते से प्राप्त ।

इसमें व्यापार और वैद्यक से संबंध रखनेवाली बातें और चुटकुले छपे हुए हैं । पत्र को अभी अधिक उन्नत करने का उद्योग करना चाहिए ।

× × ×

पुरवार-जाति-हितैषी—मासिक पत्र । संपादक, श्रीजगन्नाथ पुरवार । वार्षिक मूल्य २) ; पृष्ठ-संख्या ३६ । "मंत्री "पुरवार-महासभा", छत्रपुरी खिड़की, अमरावती, बरार ।

जातिय पत्र है । उन्नति की बड़ी आवश्यकता है ।

× × ×

आर्यकुमार - मासिक पत्र । आकार छोटा । पृष्ठ-संख्या ३२ । वार्षिक मूल्य २) ; संपादक, डॉक्टर केशवदेव शास्त्री एम्० ए० ।

समालोचना के लिये जो १२वीं संख्या सामने है, उसमें गद्य, पद्य, दोनों ही मिलाकर कोई ११ लेख हैं । पत्र का संबंध 'आर्यसमाज' से है । आर्यकुमारों में श्रृंखलित रूप से विद्याभिरुचि जाग्रत् कराने में यह पत्र सहायक हो, यही हमारी आंतरिक इच्छा है । पत्र में अभी बहुत अधिक उन्नति की गुंजाइश है ।

× × ×

किसान—राष्ट्रीय पाक्षिक पत्र । पृष्ठ-संख्या १६ । वार्षिक मूल्य २) है । संपादक, पं० रघुवरदयाल मिश्र विशारद । मिलने का पता—किसान-कार्यालय, कलेक्टरगंज, कानपुर ।

इस पत्र के द्वारा किसानों के स्वत्वों का समर्थन होता है । पत्र अच्छा है ।

× × ×

सावधान—साप्ताहिक समाचार-पत्र । पृष्ठ-संख्या १२ । वार्षिक मूल्य ३) ; संपादक, मदन शर्मा 'माधव' । मिलने का पता—व्यवस्थापक 'सावधान', भिवानी, पंजाब ।

यह पत्र राष्ट्रीय विचारों का है ; पर हिंदू-संगठन का भी समर्थक जान पड़ता है । पंजाब में जितने अधिक हिंदी-पत्रों का जन्म हो, उतना ही अच्छा । हम चाहते हैं, यह पत्र चिरायु हो ।

× × ×

संदेश—साप्ताहिक समाचार-पत्र । पृष्ठ संख्या १६ । वार्षिक मूल्य ३॥) ; संपादक, पं० नेकीराम शर्मा । 'संदेश'-कार्यालय, भिवानी (पंजाब) के पते से प्राप्य ।

इस पत्र के संपादक पंजाब के एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित नेता हैं । पत्र हिंदू-भावों की रक्षा बड़ी तत्परता से करता है । ऐसे पत्रों के प्रकाशन से पंजाब में हिंदी-प्रचार की शुभ सूचना मिलती है । हम पत्र को सब प्रकार से समुन्नत देखना चाहते हैं ।

× × ×

नायी ब्राह्मण (हनुमान-अंक)—कानपुर से प्रायः ३ वर्ष से यह 'नायी ब्राह्मण'-नामक पत्र निकलता है । इसका वार्षिक मूल्य २) है । प्रकाशक, श्रीरेवतीप्रसादजी एम्० आर० ए० एस्० ।

यह नायी-जाति का जातीय पत्र है । समालोच्य अंक 'हनुमान-अंक' के नाम से उक्त पत्र का विशेषांक है । इसमें श्रीहनुमान्जी की प्रशंसा में लेख हैं । सिद्ध यह किया गया है कि श्रीहनुमान्जी नायी थे । नायी लोग ब्राह्मण हैं, इसलिये श्रीहनुमान्जी भी ब्राह्मण थे । यही दलील लेकर इस अंक के लेख लिखे गए हैं । देखते हैं, एक ओर तो वर्ण-व्यवस्था को तोड़ने का घोर प्रयत्न हो रहा है, और दूसरी ओर अब तक किसी वर्ण-विशेष में गिने जानेवाले लोग प्रायः अपने को उससे अच्छे माने जानेवाले वर्ण में परिगणित कराने का उद्योग कर रहे हैं । उदाहरण के लिये नायी लोग अब अपने को ब्राह्मण बतलाते हैं । सुना है, 'चमार' अपने को 'चामर' क्षत्रिय साबित करते हैं, तथा 'कुरमी' भी अपने को ज़ोरों से कूर्मवंशी क्षत्रिय मानते हैं । एक शास्त्रीजी के मुँह से सुना है कि 'भंगी' भृंगी ऋषि के वंशज हैं । जो हो, इस प्रकार के उद्योग से तो वर्ण-व्यवस्था की शृंखला कसती ही जाती है । दिखलाई पड़ता है कि भारत में ब्राह्मण और क्षत्रियों में परिगणित होने का लोभ अब भी बहुत प्रबल है । वर्ण-व्यवस्था का उन्मूलन करनेवाले सुधारकों को इस नई समस्या को भी सुलझाने के लिये तैयार रहना होगा । यदि सचमुच भारत के २० लाख नायी ब्राह्मण ही हैं, तो बड़ी ख़ुशी की बात है । आगामी मर्दुमशुमारी के समय कम-से-कम २० लाख ब्राह्मणों की वृद्धि तो अवश्य ही देखने को मिलेगी ।

× × ×

विकास—मासिक पत्र । संपादक, श्रीकुलदीपसहायजी बी० ए० । पृष्ठ-संख्या ४८ । वार्षिक मूल्य ४) ; मिलने का पता—ई० राघवेंद्रराव, चेयरमैन डिस्ट्रिक्ट-कौंसिल, बिलासपुर ।

यह बिलासपुर-ज़िले की डिस्ट्रिक्ट कौंसिल के शिक्षा-विभाग का मुख-पत्र है । इधर कई महीनों से इस पत्र का प्रकाशन बंद था ; पर अब यह फिर निकलने लगा है । अॉक्टोबर का जो अंक हमारे सामने है, उसमें गद्य-पद्य-मय १२ लेख हैं । पं० मधुमंगल मिश्र, पं० कामताप्रसाद गुरु, पं० लोचनप्रसाद पांडेय तथा पं० गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री के लेख विशेष महत्त्व के हैं । हम पत्र की हृदय से उन्नति चाहते हैं ।

× × ×

९. प्राप्ति-स्वीकार

महाराज अलवर का भाषण—फ़ुलस्केप साइज़ के पृष्ठ १२ । काग़ज़ और छपाई सुंदर । अभी हाल ही में, १०-६-२४ को, आबू पहाड़ पर क्षत्रिय-उपकारिणी महासभा का २७वाँ वार्षिकोत्सव हुआ था । उसके सभापति अलवर-नरेश थे । उस अवसर पर महाराज ने जो भाषण दिया था, वही अब मुद्रित रूप में वितरित किया गया है । भाषण मार्के का है, और सब दाँत खोलकर स्पष्ट शब्दों में कह दी गई हैं । सनातनधर्म के संबंध में महाराज की यह राय ध्यान देने योग्य है—"कोई जन केवल भोजन-वस्त्र अथवा विलायत जाने से सनातनधर्म का तिरस्कार करे, तो यह उसकी इच्छा है । सनातनधर्म में तो हर मनुष्य को उन्नति देने के अनेक मार्ग हैं । सनातन-धर्म के माने ही देखिए क्या हैं ? सनातन यानी Eternal और धर्म यानी Laws । धर्म-शब्द इतना विस्तृत है कि उसके अंदर खाना, पीना, बैठना, उठना-बोलना इत्यादि सब बातों का तज़करा है । ग़रज़ कि आपकी दिनचर्या में कोई ऐसा समय नहीं, जो आपके धर्म से ख़ाली हो ।" भाषण के बीच-बीच में संस्कृत के श्लोक और हिंदी के पद्य

आदि भी हैं। अंत में दो छंद हैं, जिनमें एक देवजी का है।

× × ×

वर्ण-निर्णयक (?) प्रश्नोत्तरी—लेखक एवं प्रकाशक, बा० गनेशीलाल। पृष्ठ-संख्या ७५। मिलने का पता—प्रकाशक, सराय वेगा, डा० सिकंदरा, ज़ि० आगरा।

× × ×

दान का अधिकारी कौन है?—संकलनकर्ता, श्रीविष्णुशरणदेव। पृष्ठ-संख्या ४८। मूल्य ।); कुसुमांजलि-मुद्रण-कार्यालय, मोतिहारी के पते से प्राप्य। इस पुस्तक में सात्विक दान की महिमा का वर्णन है।

× × ×

रिपोर्ट—श्रीमारवाड़ी-विद्यालय, अमृतसर का वार्षिक विवरण। मंत्री विहारीलाल बागला से प्राप्य।

× × ×

धर्मरत्नमाला—लेखक, पं० गंगाविष्णु मिश्र, धर्माचार्य सनातनधर्म-व्यापारिक कॉलेज, कानपुर। पृष्ठ-संख्या ३८। मूल्य ≡); लेखक से प्राप्य।

× × ×

स्तोत्रमाला—लेखक, पं० गंगाविष्णु मिश्र धर्माचार्य, सनातनधर्म-व्यापारिक कॉलेज, कानपुर। पृष्ठ-संख्या १७। मूल्य –); लेखक से प्राप्य।

× × ×

श्राद्ध-गुणविवरण—लेखक, परमर्षि श्रीजिन-मंडन गणि। अनुवादक, पन्यास श्रीसोहनविजयजी महाराज। प्रकाशक, मंत्री श्रीआत्मानंदजी जैन-ट्रैक्ट-सोसाइटी, अंबाला शहर। इसी पते से प्राप्य। पृष्ठ-संख्या २४। मूल्य –)॥

× × ×

खरवा-नरेश श्रीगोपालसिंहजी की वक्तृता—प्रकाशक, हिंदू-सभा, अजमेर। पृष्ठ-संख्या २८। संभवतः बिना मूल्य प्रकाशक से प्राप्य। अभी विगत कार्तिक-मास में, श्रीपुष्कर-क्षेत्र में, राजपूताना-प्रांतीय हिंदू-सभा का प्रथम वार्षिकोत्सव हुआ था। उस अवसर पर सभा के सभापति खरवा-नरेश श्रीरामगोपालसिंहजी ने एक बड़ी ही सुंदर और सारगर्भित वक्तृता दी थी। वही अब पुस्तकाकार छपाकर प्रकाशित की गई है। वक्तृता पढ़ने-योग्य है।

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई और उत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुई—

(१) "सर्पिणी", पंडित राम मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०-लिखित उपन्यास। मूल्य ॥=)

(२) "साहित्य परिचय", पंडित रामदीन मिश्र काव्य-तीर्थ-संगृहीत। मूल्य ।-)

(३) "रस-परिज्ञान", पंडित जगन्नाथप्रसाद वैद्य-लिखित। मूल्य ॥≈)

(४) "संस्कृत-व्याकरण की उपक्रमणिका", पंडित देवदत्त त्रिपाठी और पंडित रामदहिन मिश्र द्वारा अनुवादित। मूल्य ।=)

(५) "रोगोत्पादक मक्खी", पंडित जगन्नाथप्रसाद वैद्य-लिखित। मूल्य ≈)

(६) "हिंदी-कवितावली", बाबू भगवतीचरण बी० ए०, एल्० टी० द्वारा संगृहीत। मूल्य -)

(७) "भगवान् महावीर", चंद्रराज भंडारी 'विशारद'-लिखित जीवन-चरित्र। मूल्य रेशमी जिल्द का ४॥)

(८) "हक़ीक़त-बलिदान", लेखक व प्रकाशक, शंभूनाथ श्रटाक। मूल्य ।)

(९) "श्रीविष्णुप्रिय", श्रीगौरचरण गोस्वामी द्वारा लिखित। मू० =)

(१०) "वीरश्रेष्ठ सावरकर", श्रीसिद्धनाथ-माधव लोंढे द्वारा अनुवादित। मू० ॥=)

(११) "उपासना-प्रकाश", साधन-संग्रह के संग्रह-कर्ता द्वारा संगृहीत। मू० ॥)

(१२) "शिव-सती", श्रीमती लक्ष्मीदेवी द्वारा लिखित। मू० ॥=)

(१३) "दांपत्य-विज्ञान", पं० शिवशंकर मिश्र द्वारा लिखित। रेशमी जि० २)

(१४) "पाप का अंत", कुँअर व्रजेंद्रसिंह द्वारा लिखित उपन्यास। मू०॥=)

(१५) "पथ्य", श्रीव्यास पूनमचंद-तनसुख वैद्य द्वारा लिखित। मू० १)

(१६) "चरित्र-चिंतन", श्रीछविनाथ पांडेय बी०ए०, एल्-एल्० बी० द्वारा लिखित। मू० १।)

(१७) "महामाया", श्रीदुर्गाप्रसाद गुप्त द्वारा लिखित सचित्र ऐतिहासिक नाटक। मू० १)

(१८) "रामदर्शन", महाशय राजबहादुर 'शरर' बी० ए० द्वारा लिखित। मू० =)

(१९) "प्रेमपुष्प", श्रीयुत साधुशरणजी द्वारा लिखित। मू० ॥)

(२०) "गुलामी का नशा", श्रीठाकुर लक्ष्मणसिंह बी० ए०, एल्-एल्० बी० द्वारा लिखित नाटक। मू० ।≈)

(२१) "अंत्याक्षरी", पं० कामताप्रसादजी गुरु द्वारा लिखित। मू० ॥)

विविध विषय

१. पं० माधवरावजी सप्रे बी० ए०
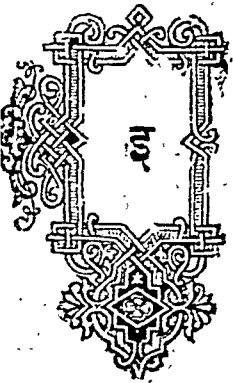
इस वर्ष के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति वृंदावन-निवासी पं० राधाचरणजी गोस्वामी नियुक्त हुए थे; परंतु कुछ गार्हस्थ्य आपत्तियों के आ जाने के कारण आप उपस्थित नहीं हो सके। इधर पं० माधवरावजी सप्रे का नाम भी बहुसम्मति से चुने हुए पाँच सभापतियों की सूची में था, अतएव आप ही देहरादून के सम्मेलन के अध्यक्ष बनाए गए।

पं० माधवरावजी सप्रे ने अपने जीवन में हिंदी की जो बहुमूल्य सेवा की है, उसको देखते हुए आपको सम्मेलन का सभापति बनाना बहुत ही उचित हुआ। सप्रेजी की मातृभाषा मराठी है; परंतु फिर भी आपने राष्ट्रभाषा के नाते हिंदी को अपनाया है। यह बात आपके लिये भूषण है।

पंडित माधवरावजी सप्रे का जन्म १६ जून, सन् १८७१ में, दमोह (सी० पी०)-ज़िले के पथरिया-नामक ग्राम में, हुआ था। चार वर्ष की अवस्था में आप अपने माता-पिता के साथ बिलासपुर चले आए; और वहीं आपकी शिक्षा का प्रारंभ हुआ। आपकी अवस्था सिर्फ़ आठ ही वर्ष की थी कि आपके पिता का देहांत हो गया। बड़े भाई पं० बाबूरावजी के निरीक्षण में सप्रेजी रायपुर के हाई स्कूल में पढ़ने लगे। वहीं से सन् १८९० में आपने प्रवेशिका-परीक्षा पास की। उस समय रायपुर के हाई स्कूल में उद्यानमालिनी, शकुंतला, उत्तर-रामचरित्र

पं० माधवरावजी सप्रे बी० ए०

(देहरादून-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति)

इत्यादि के भाषांतरकर्ता, प्रसिद्ध साहित्य-प्रेमी पंडित नंद-लालजी दुबे और मराठी "काव्यसंग्रह" के संपादक पं० वामनदाजी ओक अध्यापन का कार्य करते थे। इन्हीं सज्जनों के सत्संग से आपके हृदय में साहित्य-प्रेम का अंकुर उत्पन्न हुआ। आपके सहपाठी स्वर्गीय पं० रामराव राजा-राम चिंचोलकर थे। यह भी बहुत बड़े साहित्य-प्रेमी थे।

जिस वर्ष सप्रेजी ने प्रवेशिका-परीक्षा पास की, उसी वर्ष दुर्भाग्यवश आपकी माता का भी देहांत हो गया। परंतु सप्रेजी ने विद्याध्ययन बराबर जारी रक्खा; और जबलपुर-कॉलेज में जाकर भरती हो गए। परंतु बीमार हो जाने के कारण आपको उस समय कॉलेज छोड़ देना पड़ा। इसके बाद पेंडरा में, अपने बड़े भाई के पास, रह-कर सप्रे महाशय ठेकेदारी का काम करने लगे। पर इस प्रकार के व्यवसाय में आपका मन न लगना स्वाभाविक ही था। इसमें आपको बहुत घाटा उठाना पड़ा। इसलिये आप सन् १८६४ में लश्कर (ग्वालियर) चले आए; और वहाँ के कॉलेज में, एफ़० ए०-क्लास में, भरती होकर फिर विद्या-ध्ययन करने लगे। परंतु विघ्नों ने फिर भी साथ न छोड़ा। एफ़० ए० पास करने के बाद आपकी धर्मपत्नी बीमार हो गईं, इस कारण आपको लश्कर से काँकेर-राज्य (ज़ि० राय-पुर) लौट आना पड़ा। वहाँ स्वयं भी अस्वस्थ हो गए। इस कारण फिर पढ़ाई में विघ्न पड़ा। परंतु सप्रेजी ऐसे विघ्नों की परवा नहीं कर सकते थे। विद्याध्ययन करने की उनको उत्कट अभिलाषा थी। अतएव फिर नागपुर के कॉलेज में प्रविष्ट होकर अंत को सन् १८९८ ई० में आपने बी० ए० की डिगरी प्राप्त की।

बी० ए० पास करने के बाद आप पेंडरा (ज़ि० बिलास-पुर) के राजकुमार के शिक्षक नियत हुए। साथ ही आप अपने परम प्रिय कार्य साहित्य-सेवा में भी दत्तचित्त हुए। सन् १९०० में आप अपने परम प्रिय साहित्यिक मित्र स्वर्गीय पं० रामरावजी चिंचोलकर की सहायता से 'छत्तीस-गढ़ मित्र'-नामक मासिक पत्र निकालने लगे। जिन्होंने 'छत्तीसगढ़ मित्र' के दो-एक अंक भी देखे होंगे, उनको यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि मासिक पत्रों के उस प्रारंभिक काल में भी यह पत्र किस योग्यता के साथ संपादित होता था। विस्तृत समालोचना का हिंदी-साहित्य में उस समय भी पूर्ण अभाव ही था। इसी पत्र ने पहले-पहल हिंदी में विस्तृत और मार्मिक आलोचना की शैली प्रचलित की थी। परंतु खेद की बात है कि अर्थाभाव के कारण उक्त पत्र अधिक दिन तक नहीं टिक सका। सिर्फ़ तीन वर्ष चलाकर, सप्रेजी को पत्र बंद कर देना पड़ा। इसके बाद आप 'सरस्वती' में बराबर, अपने सुंदर और उपयोगी लेख लिखते रहे। उन्हीं दिनों के लगभग काशी की नागरीप्रचारिणी-सभा का एक डेपुटेशन भारतवर्ष के प्रधान-प्रधान नगरों में नागरी-प्रचार और धन-संग्रह के लिये घूमने को निकला। पंडित माधवराव सप्रे भी इसमें बड़े उत्साह के साथ सम्मिलित हुए; और अपनी शक्ति-भर सभा को लाभ पहुँचाया। सभा ने जब वैज्ञानिक कोश के संपादन का कार्य अपने हाथ में लिया, तब सप्रेजी ने भी उसमें योग दिया। उसमें अर्थ-शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह आप ही ने किया है।

सन् १९०६ ई० में सप्रेजी नागपुर के देशसेवक-प्रेस के मैनेजर नियत हुए। एक प्रेस से संबंध हो जाने के कारण साहित्य-सेवा का कार्य करने के लिये फिर आपको अच्छा अवसर मिला। हिंदी-साहित्य में गंभीर, राष्ट्रीय और राजनीतिक साहित्य की न्यूनता का अनुभव आप पहले ही से कर रहे थे। अतएव देशसेवक-प्रेस से 'हिंदी-ग्रंथ-माला' नाम की एक मासिक पत्रिका आप निकालने लगे। 'स्वाधीनता', 'महारानी लक्ष्मीबाई', 'शिक्षा', 'निबंध-संग्रह' इत्यादि राष्ट्रीय ग्रंथ पहले-पहल इसी ग्रंथमाला में प्रकाशित हुए थे। पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी भी तभी से नागपुर जाकर आपके कार्य में सम्मिलित हो गए, और सन् १९१३ तक आपके सभी साहित्यिक और सार्वजनिक कार्यों में योग देते रहे। अस्तु।

सप्रेजी की बहुत दिन से इच्छा थी कि लोकमान्य तिलक का 'केसरी'-पत्र हिंदी में निकाला जाय। अपनी इसी इच्छा की पूर्ति के लिये आपने, अपने कुछ मित्रों की सहायता से, सन् १९०७ में 'हिंदी-केसरी' निकाला। उस समय हिंदी के पत्रों में राजनीतिक आंदोलन का प्रायः अभाव-सा ही था। 'हिंदी-केसरी' ने हिंदी-भाषा-भाषियों में जो राजनीतिक जागृति उत्पन्न की थी, उसका अनुभव अब भी बहुत-से लोग करते हैं। परंतु सरकार के प्रकोप से 'हिंदी-केसरी' शीघ्र ही बंद हो गया। पंडित माधवराव सप्रे राजद्रोह के अपराध में पकड़े गए; परंतु सरकार से क्षमा-याचना करके मुक्त हुए।

सप्रेजी ने यद्यपि अपने संबंधियों और कुछ नरम

दल के मित्रों के दबाव में आकर क्षमा-याचना की थी, परंतु किसी प्रकार भी हो, सरकार से क्षमा-याचना करना घोर पाप है! हृदय की निर्बलता है! अतएव सप्रेजी की जनता में बड़ी निंदा हुई। सप्रेजी का हृदय भी उस समय बड़ी चंचलावस्था में था। उसी समय छत्रपति शिवाजी महाराज के गुरु श्रीसमर्थ रामदासजी के संप्रदाय के एक साधु से आपकी भेंट हो गई। उनके उत्तेजना देने से आप धार्मिक क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। जप, तप और धार्मिक ग्रंथों के स्वाध्याय से आपके चित्त को शांति मिली।

परंतु सप्रेजी एक कट्टर देश-भक्त और लोकोपकारी व्यक्ति हैं। अतएव जनता की सेवा किए विना, केवल जप, तप और स्वाध्याय में ही, आप बहुत दिन नहीं पड़े रह सकते थे। आपकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ने फिर आपको देश-हितैषी कार्यों की ओर आकर्षित किया; और आप अपने केंद्रस्थल रायपुर में रहकर ही साहित्य-सेवा और देश-सेवा में प्रवृत्त हुए। ग्रंथ-लेखन और भजन-कीर्तन के साथ-ही-साथ रायपुर में आपने कई सार्वजनिक कार्यकर्ता तैयार किए, और उनकी सहायता से एक आदर्श पुस्तकालय और कन्या-पाठशाला की स्थापना की। ये दोनों संस्थाएँ सफलता-पूर्वक आज केवल जनता की सहायता से ही चल रही हैं।

सन् १९१६ में जब मध्यप्रदेश के कुछ उत्साही सज्जनों ने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को जबलपुर में बुलाया, तब सप्रे महाशय भी उसमें जाकर सम्मिलित हो गए, और सम्मेलन के निमित्त मध्य-प्रांत के अच्छे-अच्छे कार्यशील सज्जनों का संगठन किया। सम्मेलन बड़ी शान के साथ हुआ। इससे मध्यप्रदेश में, और विशेषकर जबलपुर के आस-पास के क्षेत्र में, बहुत अच्छी साहित्यिक जागृति हो गई। सप्रेजी का उत्तेजना और पुरुषार्थ से ही दूसरे वर्ष वहाँ से 'कर्मवीर'-नामक एक बहुत ही उत्तम साप्ताहिक पत्र निकला, और इसने जनता की अच्छी सेवा की। परंतु कुछ मतभेद के कारण सप्रेजी उससे अलग हो गए। प्रांत के दुर्भाग्य स 'कर्मवीर' अधिक दिन नहीं चल सका। जबलपुर के 'हिंदीमंदिर' की स्थापना में भी प्रधान उद्योग सप्रेजी का ही था।

इस समय फिर सप्रेजी पं० माखनलालजी चतुर्वेदी के सहयोग से, खंडवे से, 'कर्मवीर' निकालने का उद्योग कर रहे हैं।

सप्रेजी बड़े ही मिलनसार, मिष्टभाषी और चरित्र के विशुद्ध हैं। आपकी सहनशीलता का अनुभव सभी आपके परिचित लोगों को है। आपकी संयोजना-शक्ति विलक्षण है। पर कुछ कारण ऐसे पड़ जाते हैं कि आपकी संयोजना प्रायः स्थायी नहीं होती। फिर भी साहित्य-सेवा और देश-सेवा के अपने व्रत में आप बराबर दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते जाते हैं। चाहे कैसा ही बड़ा प्रलोभन हो, आपको इस व्रत से टाल नहीं सकता। मध्यप्रदेश के कार्यकर्ताओं में आपका बहुत अच्छा प्रभाव है।

× × ×

२. पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

देहरादून के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष पं० नरदेव शास्त्री की जन्मभूमि दक्षिण-हैदराबाद है। आपकी प्रारंभिक शिक्षा मराठी-भाषा में, पूने के नूतन मराठी-विद्यालय में, हुई। इसके बाद संयोगवश आप पंजाब में आ गए। आपके पिता आर्य-सामाजिक विचार के थे। अतएव उन्होंने दयानंद-हाईस्कूल में आपको अँगरेज़ी की शिक्षा प्राप्त करने के लिये भरती करा दिया।

पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

(देहरादून-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष)

वहीं से सन् १८९६ ई० में आपने मिडिल पास किया। फिर ब्राह्मसमाज के 'यूनियन एकाडेमी'-नामक हाई स्कूल से आपने, सन् १८९८ में, प्रवेशिका-परीक्षा पास की। इसके बाद संस्कृत के अध्ययन की ओर आपकी विशेष रुचि हुई, और सन् १९०२ ई० में आपने पंजाब की शास्त्री-परीक्षा पास की।

इसके बाद वेदाध्ययन करने के लिये आप वेदों के सुप्रसिद्ध ज्ञाता पं० सत्यव्रतजी सामाश्रमी की सेवा में कलकत्ते चले आए, और सन् १९०६ में, ऋग्वेद में, 'वेदतीर्थ' की परीक्षा पास की। बंगाल में आप ऋग्वेद के प्रथम 'वेदतीर्थ' थे। संस्कृत-कॉलेज (कलकत्ता) के आप कई वर्ष तक परीक्षक भी रहे। इसके बाद आपको कई ऊँची-ऊँची नौकरियाँ भी मिलती रहीं; परंतु प्रारंभ से ही आप इतने स्वातंत्र्यप्रिय हैं कि आपने उन ऊँचे-ऊँचे पदों की कुछ भी परवा नहीं की।

इस बीच में आप गुरुकुल फ़र्रुख़ाबाद (जो अब वृंदावन में है), गुरुकुल काँगड़ी, महाविद्यालय, ज्वालापुर इत्यादि कई स्वतंत्र शिक्षा-संस्थाओं में अध्यापन का कार्य कर चुके हैं। ज्वालापुर के महाविद्यालय से तो आपका संबंध १९०८ से चला आता है। इस विद्यालय की जो कुछ उन्नति इस समय दिखाई दे रही है, उसका बहुत कुछ श्रेय आप ही को है। अध्यापन और प्रबंध, दोनों ही कार्यों से आपने इसकी अपूर्व सेवा की है।

सन् १९२० ई० से आप प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। तब से बराबर आप देहरादून को केंद्र बनाकर उत्तरी ज़िलों में स्वराज्य के आंदोलन का कार्य कर रहे हैं। उक्त प्रांत में आज जो राजनीतिक जागृति दिखाई दे रही है, उसका अधिकांश श्रेय शास्त्रीजी को ही है। इस बीच में आप पंद्रह मास तक जेल-निवास करके 'वेदतीर्थ' के साथ ही 'जेलतीर्थ' भी हो चुके हैं। शास्त्रीजी ने अपनी 'कारावास-कहानी' बड़े रोचक ढंग से लिखी है। जेल में 'गीताविमर्श'-नामक एक ग्रंथ भी आपने लिखा है। यह भी प्रकाशित हो चुका है।

राष्ट्रभाषा हिंदी में आपने और भी कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें आर्य-समाज का इतिहास, वैदिक स्वराज्य, आनंदबाग़ में आर्य-दरबार आदि मुख्य हैं। शास्त्रीजी हिंदी के सुलेखक हैं। आपकी भाषा विनोद-पूर्ण होती है। आप कई वर्ष तक 'भारतोदय'-पत्र में पं० पद्मसिंह शर्मा के सहकारी संपादक भी रहे हैं। सारांश कि शिक्षा-सुधार और हिंदी-प्रचार आपके जीवन का प्रारंभ ही से, व्रत रहा है।

देहरादून के सम्मेलन को जो कुछ सफलता प्राप्त हुई है, वह आपके ही प्रयत्नों का फल है। अनेक विघ्न-बाधा के रहते हुए भी आपने जिस धैर्य और साहस के साथ सम्मेलन की सफलता के लिये प्रयत्न किया, वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

× × ×

३. देहरादून में हिं० सा० सम्मेलन

देहरादून में हिं० सा० सम्मेलन का पंद्रहवाँ वार्षिक अधिवेशन समारोह के साथ सानंद और सकुशल समाप्त हो गया। जल-प्रलय के कारण यों ही प्रतिकूल परिस्थिति का सामना था, उस पर भारतीयों की स्वाभाविक विशेषता (अर्थात् आपस की फूट) ने अपना गहरा रंग जमा रक्खा था। हृषीकेश के भरत-मंदिर के स्वामी महंत परशुरामजी से देहरादून के कुछ लोग नाराज़ हैं। उनका कहना है कि महंतजी के आचरण निंदनीय हैं, वह हिंदू-समाज में आदर-मान पाने के लायक़ नहीं हैं। परशुरामजी ने सम्मेलन के प्रतिनिधियों का आतिथ्य-सत्कार करने का भार अपने ऊपर लेने की इच्छा प्रकट की, और स्वागतकारिणी ने इसे स्वीकार कर लिया। इसी कारण वहाँ के बहुत-से लोगों ने सम्मेलन का बहिष्कार करने की ठान ली। नोटिसबाज़ी भी की गई, जनता और प्रतिनिधियों को सम्मेलन में सम्मिलित न होने की सलाह भी दी गई। इस विरोधी पार्टी में स्वामी सत्यदेव-जैसे सुशिक्षित समझदार पुरुष भी थे। परशुरामजी के आचारों का हमें ज्ञान नहीं है; पर हम इतना अवश्य कहेंगे कि अगर कोई कुचरित्र व्यक्ति किसी अच्छे काम में शरीक हो, तो उसमें क्या हानि है? साधारण और व्यक्तिगत कारण से किसी सार्वजनिक और सर्वोपयोगी कार्य में विघ्न डालना उचित नहीं। अस्तु। अधिवेशन के निर्वाचित सभापति गोस्वामी राधाचरणजी महाराज अपने पौत्र की तबियत एकाएक बहुत ख़राब हो जाने से पहुँच नहीं सके। अतः उनके स्थान पर सुप्रसिद्ध हिंदी-प्रेमी और साहित्यिक पं० माधवरावजी सप्रे बी० ए० सभापति बनाए गए। सभापति-पद के लिये निर्वाचित पाँच नामों में आपका भी नाम आया था। सप्रेजी सर्वथा इस सम्मान के हक़दार
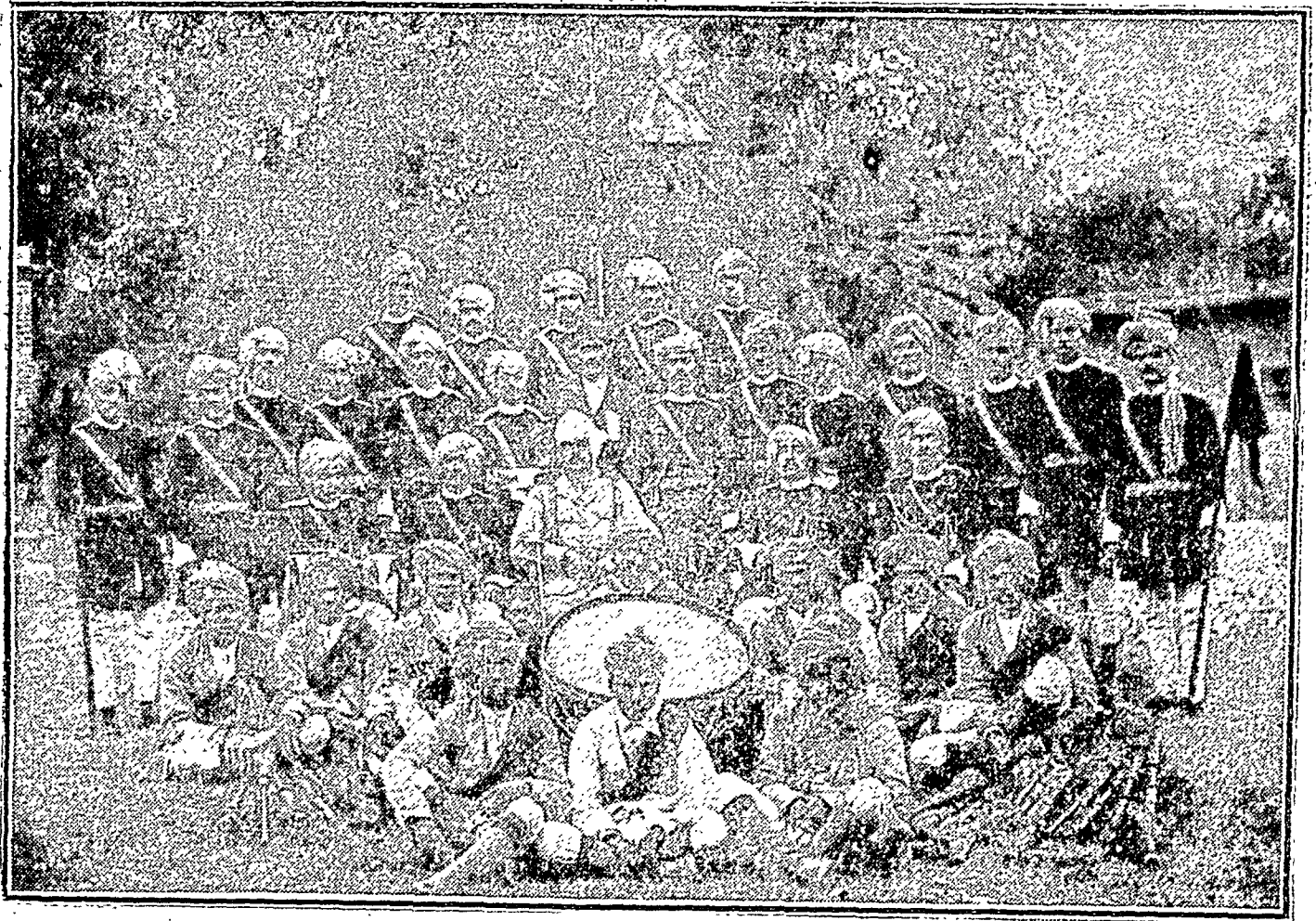
शिवाजी-दल
(इसने जलूस में अच्छा काम किया था)

टंडनजी नाभा नरेश संत मानसिंह पं० अमरनाथ वैद्य (स्वागत-मंत्री) इत्यादि

पंडाल के अंदर

स्वागतकारिणी-समिति के कुछ सदस्य

(बीच में सम्मेलन-सभापति और स्वागताध्यक्ष)

थे, और बहुत शीघ्र आपको इस पद पर बिठाने की संभावना थी। गोस्वामीजी को सभापति बनाने के लिये माधुरी ने जन्म-वर्ष से ही लिखना शुरू कर दिया था, और इस बार उनके सभापति निर्वाचित होने से इन पंक्तियों के लेखक यत्परो नास्ति आनंदित हुए थे। पर ईश्वरेच्छा से गोस्वामीजी इस बार भी सभापति के आसन को सुशोभित न कर सके। आशा है, शीघ्र ही फिर गोस्वामीजी को सभापति बनाने का आयोजन किया जायगा। पहले दिन सप्रेजी के स्वागत का जलूस बड़ी धूमधाम और शान के साथ निकाला गया। परंतु इंद्रदेव ने अपनी पुरानी आदत से लाचार होकर इस शुभ कार्य में विघ्न उपस्थित किया। वर्षा ज़ोर से होने के कारण उस दिन सम्मेलन न हो सका। दूसरे दिन दोपहर के बाद वेद-पाठ, मंगलाचरण, राष्ट्रीय गान, स्वागत-गान आदि के उपरांत स्वागताध्यक्ष पं० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ ने अपना छपा हुआ भाषण पढ़ा। आपका भाषण आडंबर-शून्य और हृदयग्राही था। आप महाराष्ट्र होकर भी हिंदी के हिमायती और सुलेखक हैं। सम्मेलन को इस बार इतनी भी सफलता मिलने का अधिकांश श्रेय आप ही के अनवरत उद्योग, अविचलित उत्साह और विशेष व्यक्तित्व को है। प्रतिनिधियों की उपस्थिति, स्थिति और परिस्थिति के विचार से, अच्छी ही थी। दर्शक भी अच्छी संख्या में उपस्थित हुए थे। स्त्रियाँ भी दो-तीन सौ के लगभग आती थीं। यह नई बात थी। गुरुकुल के ब्रह्मचारी, जालंधर के कन्या-महाविद्यालय की लड़कियाँ और अध्यापिकाएँ, स्वयंसेवक के रूप में, अपने कर्तव्य का पालन अच्छी तरह करती देख पड़ती थीं। ख़ैर, शास्त्रीजी के बाद पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी आदि कई सज्जनों ने सप्रेजी की प्रशंसा के साथ उनके सभापति बनने के प्रस्ताव का अनुमोदन और समर्थन किया। फिर सप्रेजी ने उठकर सभापति के आसन को अलंकृत किया। माला आदि से सत्कार और हर्ष-ध्वनि के बाद सप्रेजी ने संक्षेप में ज़बानी

ही अपना वक्तव्य सुनाया। कुछ ख़ास बातें दूसरे दिन कहने का वादा करके आप बैठ गए। फिर सम्मेलन की वार्षिक रिपोर्ट प्रधान मंत्री ने उपस्थित की। सहानुभूति-सूचक पत्र, तार वग़ैरह, जो बाहर से आए थे, पढ़े गए। विशेष महत्त्व का संदेश महात्माजी का था। महात्माजी ने अपने हाथ से पेंसिल से लिखकर जो पत्र भेजा था, उसमें लिखा था—"आपके तार आए। भाई मनजीत-सिंह ने भी ख़ूब समझाया। पर मुझे समझाने की ज़रूरत ही क्या है? हिंदी-भाषा के प्रति मेरा प्रेम भारत के सभी हिंदी-प्रेमियों को मालूम है। मेरा पहुँचना इस समय असंभव है। मेरे आगे इतना काम है कि उसे छोड़कर कहीं मैं जा नहीं सकता। इसीलिये मुझे क्षमा कीजिए। मैं सम्मेलन की सफलता चाहता हूँ।" माननीय मालवीयजी, श्रीरामदास-गौड़, बा० श्यामसुंदरदास, पं० अंबिकाप्रसाद-वाजपेयी आदि कोई १०० सज्जनों के पत्र और तार आए थे। इसके उपरांत पंजाब की श्रीमती पार्वतीदेवी और पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के भाषण हुए। पं० माधवजी शुक्र ने एक गीत गाया। इसी बीच में नाभा-नरेश महाराज रिपुदमनसिंहजी अपने सहचरों-सहित सम्मेलन में उपस्थित हुए। जन-समूह ने आपका स्वागत-सम्मान बड़े जोश के साथ किया। श्रीयुत पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने महाराज के शुभागमन पर हर्ष प्रकट करते हुए गद्गद स्वर और अश्रु-रुद्ध कंठ से उनकी देश-भक्ति और हिंदी-प्रेम का वर्णन किया। फिर सेठ जमनालाल बजाज का तार पढ़ा गया। आपने यह शुभ सूचना भी दी थी कि वह जयपुर-राज्य में हिंदी का प्रचार करने में सफल हुए हैं, और वहाँ शीघ्र ही हिंदी के राजभाषा माने जाने की पूर्ण आशा है। फिर पंजाब-प्रवासिनी और कई हिंदी-ग्रंथों की प्रणेत्री बंग-बाला श्रीमती हेमंतकुमारी चौधरानी का भाषण हिंदी-प्रचार के ऊपर हुआ। पहले दिन यहीं पर सभा-विसर्जन हुआ। रात्रि को क़ौमी पाठशाला (लाहौर) के छात्रों ने कवि-दरबार का अभिनय दिखाया। इसमें पात्र वर्तमान कवियों के रूप में उपस्थित होकर कविताएँ पढ़ते थे। सुकवि श्रीमती सुभद्राकुमारी का पाठ अच्छा करने पर ख़ुश होकर गंगा-पुस्तकमाला के संपादक ने अपनी माला की २०) की पुस्तकें श्रीमती पार्वतीदेवी की सुपुत्री कुमारी विद्यावती को दीं। कवि-दरबार बहुत मनो-रंजक था। नाभा-नरेश ने इस दरबार को भी अपनी उपस्थिति से सुशोभित किया था। आप हिंदी की कविताएँ सुनकर बहुत ख़ुश हुए। दूसरे दिन दोपहर के बाद फिर कार्यारंभ किया गया। कुछ कविताएँ और चुने हुए अच्छे लेख पढ़े गए। इसके बाद प्रस्तावों की बारी आई। प्रस्तावों पर आगे के नोट में लिखा गया है। अंत में टंडनजी के ओजस्वी भाषण ने उपस्थित जन-समूह पर बड़ा असर डाला। आपका कहना था कि हिंदी के लेखक अब स्वतंत्र रचनाओं की ओर झुकें, और देश की उन्नति के सहायक ग्रंथ लिखना शुरू करें। सभापति महोदय के अंतिम भाषण में भी बहुत कुछ काम की बातें थीं, जिन पर ध्यान देने की बड़ी आवश्यकता है। धन्यवाद की प्रथा का पालन होने के बाद अधिवेशन समाप्त किया गया। अगले साल वृंदावन में सम्मेलन का अधिवेशन होना तय पाया है। रात को देहरादून के कुछ सज्जनों ने भक्त सूरदास नाटक का अभिनय करके प्रतिनिधियों को प्रसन्न किया।

× × ×

४. सम्मेलन की कुछ और बातें

इस बार एक प्रस्ताव बड़े महत्त्व का पास हुआ है। वह है भारत का एक प्रामाणिक इतिहास हिंदी में लिख-वाना। यह प्रस्ताव स्वनामधन्य बाबू शिवप्रसाद गुप्तजी ने उपस्थित किया था। अनुमोदन पं० गिरिधर शर्मा चतु-र्वेदी ने किया। भारत का सच्चा और निष्पक्ष होकर लिखा गया इतिहास न होना वास्तव में हिंदी और हिंदुस्थान की एक बहुत बड़ी कमी है। राष्ट्रभाषा कही जानेवाली हिंदी के सेवकों का यह अवश्य करणीय कर्तव्य हो गया है कि वे इस अभाव को दूर करने में लग जायँ। इसमें संदेह नहीं कि काम बहुत बड़ा है, ज़िम्मेदारी भी इसमें बड़ी भारी उठानी होगी। इसमें केवल धन ही की आवश्यकता नहीं है, पुरातत्त्व-इतिहास आदि के साथ ही पाश्चात्य भाषाओं के पारदर्शी, अध्ययनशील, अध्यवसा-यशील विद्वानों तथा संस्कृत, प्राकृत, फ़ारसी और बँगला आदि प्रांतीय भाषाओं के पंडितों के सहयोग की भी बड़ी आवश्यकता है। यह काम ३-४ या १०-५ आदमियों के करने का नहीं है। इस काम को सुसंपन्न करने के लिये भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों के पुरातत्त्व-प्रेमियों और ऐतिहासिक खोज में लगे रहनेवाले विद्वानों की एक सुसंगठित मंडली बनानी पड़ेगी। इतिहास के भिन्न-भिन्न अंशों को तद्विषयक विशेष ज्ञान और योग्यता रखनेवाले महानुभावों से, अथवा

उनकी सहायता से, लिखवाना या उनका संपादन कराना पड़ेगा। इस कार्य में यथेष्ट धन ख़र्च होगा। पर धन की कमी तो न होनी चाहिए। ऐसे महत्त्व-पूर्ण कार्य के लिये क्या भारत के राजे-महाराजे धन देने को तैयार न होंगे? हम सम्मेलन के कर्णधारों से सविनय निवेदन करते हैं कि वे इस प्रस्ताव को कार्य-रूप में परिणत करने की चेष्टा में तुरंत तत्पर होकर लग जायँ। अगर प्रस्ताव पास होकर दाख़िल-दफ़्तर हो गया, और अन्य प्रस्तावों की तरह इस प्रस्ताव का काम भी कछुए की चाल से चलाया गया, तो कदाचित् कुछ भी न हो सकेगा, और इसका भी परिणाम अन्य उपयोगी प्रस्तावों के परिणाम से अभिन्न ही होगा। सम्मेलन अगर अपने दो ही प्रस्तावों को—हिंदी के बृहत् संग्रहालय की स्थापना और भारत के सच्चे इतिहास की रचना को—पूर्ण कर सका, तो उसका जन्म सार्थक समझा जायगा, और उसके ये दोनों कार्य ही उसकी कीर्ति को तब तक अमर कर रक्खेंगे, जब तक हिंदी-भाषा का अस्तित्व भू-मंडल पर बना रहेगा। इस कार्य का आयोजन करने के लिये एक उपसमिति बना भी ली गई है। शेष प्रस्तावों में (१) पं० विनायकराव, पं० रामस्वरूप शर्मा, पं० श्रीकृष्ण जोशी, बाबू जगन्मोहन वर्मा, श्रीयुत कीर्तिनारायणसिंह आदि हिंदी-हितैषियों की मृत्यु पर शोक और उनके परिवार से सहानुभूति प्रकट की गई; (२) म्युनिसिपल बोर्डों, ज़िला-बोर्डों और कौंसिलरों से उक्त संस्थाओं की कारवाई हिंदी ही में करने का अनुरोध किया गया; (३) अरबी या रोमन-लिपि में हिंदी या उर्दू लिखनेवालों से अनुरोध किया गया कि वे राष्ट्र की आवश्यकता पर ध्यान रखते हुए भरसक नागरी-अक्षरों का ही व्यवहार करें; (४) देश के राजों, सार्वजनिक संस्थाओं और म्युनिसिपल तथा ज़िला-बोर्डों के अधिकारियों से अनुरोध किया गया कि वे सम्मेलन की पाठ्य पुस्तकों के पठन-पाठन का प्रबंध करके सम्मेलन की परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों के लिये सुविधा कर दें; (५) पंजाब के शिक्षा-विभाग ने स्कूली पाठ्य पुस्तकों में जो अधिकांश उर्दू की किताबें मंज़ूर कर ली हैं, और हिंदी-भाषा तथा हिंदी-भाषी विद्यार्थियों के प्रति उदासीनता प्रकट की है, उसके लिये सम्मेलन ने खेद प्रकट किया, और यह अनुरोध भी किया कि उक्त शिक्षा-विभाग के अधिकारी इस नीति को बदलकर हिंदी को यथोचित स्थान दें; (६) उर्दू-पत्रों के हिंदी-प्रेमी और हिंदू संचालकों से अपने समय, शक्ति और पत्र का कुछ स्थान हिंदी-प्रचार के काम में लगाने, और संभव हो, तो हिंदी के नए पत्र निकालने का भी अनुरोध किया गया। इन सब प्रस्तावों की पूर्ति का संबंध और लोगों से होने के कारण इनके कार्य-रूप में परिणत होने में संदेह हो सकता है; किंतु इतिहास-रचना के प्रस्ताव की पूर्ति अपने हाथ में होने से उसकी सिद्धि में संदेह के लिये स्थान नहीं है। इस दृष्टि से भी यही एक प्रस्ताव महत्त्व का है। इस सम्मेलन में कई विशेषताएँ देख पड़ीं। जैसे दोनों सम्मेलनों के सभापतियों की अनुपस्थिति, कार्य-काल तीन की जगह दो ही दिन होना आदि। एक उल्लेख के योग्य विशेषता यह भी थी कि इस बार मंगलाप्रसाद-पुरस्कार किसी को नहीं दिया गया। इस बार दर्शन-विषय पर पुरस्कार दिया जानेवाला था। जितनी पुस्तकें इस विषय की आई थीं, उनमें से कोई पुस्तक एक से अधिक निर्णायक की सम्मति नहीं प्राप्त कर सकी। पाँच निर्णायकों ने पाँच ही जुदी-जुदी पुस्तकों को अपनी राय में पुरस्कार के योग्य ठहराया। अतः निश्चय हुआ कि हिंदी में अभी ऐसी कोई सर्वमान्य और महत्त्व की दार्शनिक पुस्तक लिखी ही नहीं गई, जिसे पुरस्कार दिया जाता। लेखकों को इस विषय पर ग्रंथ लिखने के लिये एक साल का और समय दिया गया। अगले अधिवेशन में दर्शन और विज्ञान की उन पुस्तकों के लेखकों को, जिन्हें निर्णायकों का बहुमत प्राप्त होगा, दोनों दफ़े के पुरस्कार एकसाथ दिए जायँगे। हमारी राय में यह बहुत अच्छा हुआ। यह पुरस्कार हिंदी में उत्कृष्ट ग्रंथ लिखने के लिये उत्साहित करने के उद्देश्य से दिया जाता है। चाहे जिस श्रेणी की किसी-न-किसी रचना के लिये पुरस्कार देने की रस्म अदा कर देना उसका दुरुपयोग करने के बराबर ही अनुचित होता। अब ज़रा कवि-सम्मेलन का हाल भी सुन लीजिए। निर्वाचित सभापति पं० श्रीधरजी पाठक नियत तिथियों से ३-४ दिन पहले ही देहरादून से प्रस्थान कर गए थे। उनके अभाव में पं० किशोरीलालजी गोस्वामी की शरण ली गई। पर आप भी ट्रेन मिस हो जाने से समय पर न पहुँच सके, और यह अयाचित गौरव सौभाग्यशाली परिहास-प्रिय पं० जगन्नाथजी चतुर्वेदी के हिस्से में आया। कवियों की यों ही कमी थी, उस पर कविता के नाम से जो कुछ पद्य पढ़े भी गए, उनको थर्ड

क्रास की रचना कहने में भी हमें तो संकोच होता है। फड़कती हुई भाषा और मस्त बना देनेवाले भाव अत्यंता-भाव का उदाहरण हो गए थे। इस कमी का सारा दोष कवियों के ही मत्थे मढ़ना अन्याय होगा। दोष बहुत कुछ समस्याएँ देनेवालों का था। हम पहले की संख्या में लिख चुके हैं कि समस्याएँ अधिक हैं, और उनमें कई ऐसी भी हैं, जिनकी पूर्ति अच्छे-से-अच्छे कवि की क़लम से भी नीरस ही निकलेगी। समस्या-पूर्ति में कवि बहुत अंशों में परवश और विवश हो जाया करता है। उसी समस्या की पूर्ति अच्छी और रसवती युवती-सी मनोहारिणी हो सकेगी, जिसमें कवि को कल्पना का चमत्कार दिखाने के लिये काफ़ी गुंजाइश रहेगी। "करको करकी करको करके"-जैसी समस्याओं की पूर्ति में क्या सरसता ख़ाक लाई जा सकती है! अस्तु। कवि-सम्मेलन में कई रचनाएँ ग़नीमत थीं। एक महिला की रचना (जिनका नाम कदाचित् सुशीलादेवी है, और जो जालंधर के कन्या-महाविद्यालय की छात्री हैं) उत्कृष्ट थी। उसे माधुरी-संपादक श्रीदुलारेलाल भार्गव ने एक पदक दिया। उर्दू का मुशायरा ज़ोरदार और शानदार रहा। उसमें अच्छी कविताएँ पढ़ी गईं। हमारे हिंदी के होनहार नवयुवक कवियों को उर्दू के कवि-मंडल से बहुत कुछ शिक्षा लेने की आवश्यकता देख पड़ती है। एक नियम तो उन्हें अवश्य ही अपनाना चाहिए। उर्दू के कवि-जगत् का यह नियम अथवा प्रथा है कि प्रत्येक कविता करनेवाला किसी-न-किसी शायर का शागिर्द अवश्य होता है, और वह अपनी प्रत्येक रचना को सर्वसाधारण के सामने उपस्थित करने के पहले उस्ताद को दिखा लेता है। दो कवि-मित्रों में भी एक दूसरे की इसलाह लेने में संकोच नहीं किया जाता। हर-एक फ़न या कला को सीखते समय पहले भूल-से-भूल होती है, काम बिगड़ जाया करता है। सुधरते-सुधरते, अभ्यास और शिक्षा ही के द्वारा, साधना—तपस्या—की आराधना करनेवाले बिरले साधकों को सिद्धि-लाभ का सौभाग्य प्राप्त होता है। स्वयंभू या स्वयंसिद्ध निपुणता का दावा करनेवाले दुनिया में दया के पात्र हो सकते हैं, सच्चे सम्मान के अधिकारी नहीं। यह जानकर कविता-प्रेमी नए कवियों को अपनी रचनाओं का संस्कार कराने, भाषा को परिमार्जित बनाने और भावों का उत्कर्ष बढ़ाने में किसी योग्य और कहे हुए कवि-कोविद की सहायता लेते रहना चाहिए। इसमें अपनी हेठी समझना महामूर्खता है। कवि-सम्मेलनों के संयोजकों से भी हमारी यही विनय कि जब तक उन्हें अच्छे कवियों से उपस्थित होने व कविता भेजने की निश्चित स्वीकृति न मिल जाय, तब त सम्मेलन न करें। समस्याएँ देने की शक्ति अगर अपने न हो, या चुनी हुई चोखी समस्याएँ नई न सूझ पड़ें, पहली दशा में अन्य प्रतिभाशाली और कवि की सहृदय रखनेवालों से सहायता लेना उचित होगा, और दूस हालत में पुरानी कविताओं के चरण या टुकड़े ही समस के रूप में रखना बुरा न होगा।

इस बार सम्मेलन में २०० से अधिक प्रतिनिधि पहुँचे थे। प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित पुरुषों में कुछ के नाम ऊपर आ चुके हैं; कुछ ये हैं—पं० झाबरमल्ल शर्मा, श्रीयुत भीमसेन विद्यालंकार, पं० पद्मसिंहजी शर्मा, प्रो० दयाशंकर दुबे, प्रि० श्रीनारायण चतुर्वेदी, पं० छबीलेलाल गोस्वामी, पं० रामजीलाल शर्मा, पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, पं० रामरत्न, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, बाबू रामचंद्र वर्मा इत्यादि। अंत में हम अतिथि-सत्कार करनेवाले स्वयं-सेवकों की सराहना करना अपना कर्तव्य समझते हैं। उन्होंने जिस प्रेम और भक्ति-भाव के साथ समागत हिंदी-सेवकों की सेवा और सहायता की, उसका वर्णन करना असंभव है; वह अनुभव करने ही की चीज़ थी। महंत परशुरामजी भी स्वयं उपस्थित रहकर बहुत ही सज्जनता, शिष्टता, नम्रता और सुशीलता के साथ प्रतिनिधियों को सब तरह की सुविधा पहुँचाते रहे। आपका विनम्र व्यवहार हमें अभी तक याद है। हाँ, एक बात तो रह ही गई। सम्मेलन की समाप्ति के पहले अपील करने पर इतनी सहायता देने के वचन मिले—

१०१) पं० भोलानाथ शर्मा
२०१) महंत परशुरामजी
५०१) महंत लक्ष्मणदासजी
५०१) एक सज्जन (टंडनजी पर न्योछावर करके दिए)
२१) पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी
२१) पं० रामजीलाल शर्मा
१०१) डी० ए० वी० कॉलेज देहरादून
२१) पं० रामचंद्र वैद्य

इस प्रकार सफलता-पूर्वक हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का यह अधिवेशन समाप्त हुआ। आशा है, अगले साल

वृंदावन का सम्मेलन और भी धूमधाम से होगा, और सफलता भी अच्छी होगी।

× × ×

५. इँगलैंड के नवीन निर्वाचन का फल

आख़िर इँगलैंड में मज़दूर-सरकार १० मास से अधिक न टिक सकी। भारत के कुछ लोगों को मज़दूर-दल से बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। पर मसल वही हुई कि "आए घन आए घन आइकै उघरिगे।" मज़दूर-सरकार के कारण भारत का जो अधिक-से-अधिक लाभ हुआ, वह यही कि महात्मा गांधी छूट गए, और दमन में कुछ कमी रही। पर जाते-जाते उसने दमन को भी आश्रय दिया, और ज़ोरों के साथ दिया। बंगाल में नए आर्डिनेंस का प्रयोग और ६० के लगभग स्वराजिस्टों की गिरफ़्तारी का उत्तर-दायित्व मज़दूर-सरकार पर ही है। अंतरराष्ट्रीय मामलों में मज़दूर-सरकार का सबसे बड़ा काम रूस से संधि और फ़्रांस-जर्मनी की उलझनों को सुलझाने का सफल प्रयत्न है। मज़दूर-सरकार हारी, और बहुत बुरी तरह से हारी। कंज़र्वेटिवों का बहुमत इतना प्रबल हो गया है कि और सब दल मिलकर भी सफलता-पूर्वक उसका विरोध नहीं कर सकते। हाँ, एक बात अवश्य हुई। इस बार लेबर-पार्टी को जितने वोट मिले हैं, उतने इसके पूर्व कभी नहीं मिले थे। दूसरी उल्लेख योग्य बात यह हुई कि लिबरल-दल का अस्तित्व ही एक प्रकार से संदिग्ध हो गया। उस दल के प्रधानतम नेता लॉर्ड ऐस्क्विथ तक निर्वाचन में नहीं चुने गए। अब इँगलैंड में दो ही प्रधान दल रह गए, एक कंज़र्वेटिव और दूसरा लेबर। बहुत संभव है, पाँच वरस के बाद जब नया निर्वाचन हो, तो उसमें एक बार मज़दूर-दल की फिर तूती बोले।

× × ×

६. मिस्टर मांटेगु की मृत्यु

दि राइट आनरेबिल एडविन सैमुएल मांटेगु का जन्म सन् १८७९ ईसवी में हुआ था। लॉर्ड स्वेथिलिंग के आप द्वितीय पुत्र थे। आपने क्लिफ़टन, लंदन स्कूल तथा कैंब्रिज के ट्रिनिटी-कॉलेज में शिक्षा पाई थी। आपका ब्याह बैरन शेफ़ील्ड की पुत्री लेडी वेनीशिया स्टैनली के साथ हुआ था। आप सन् १९०६ से १९२२ तक बराबर पार्लियामेंट के सदस्य रहे। सन् १९१४ में प्रिवी कौंसिल के भी सदस्य रहे। १९०६ से १९०८ तक आप पार्लियामेंट के चैंसलर ऑफ़ एक्सचेकर के मंत्री थे। इसके बाद दो बरस तक इँगलैंड के प्रधान मंत्री के सेक्रेटरी रहे। १९१० से १९१४ तक आप भारत के सहकारी मंत्री रहे, और १९१७ से १९२२ तक भारत के प्रधान मंत्री। इसके अतिरिक्त समय-समय पर आपने और भी कई उत्तरदायित्व-पूर्ण पदों को सुशोभित किया। १५ नवंबर, सन् १९२४ ईसवी को आपने शरीर-त्याग किया।

भारत के सहकारी-मंत्रित्व के पद पर जिस समय आप थे, उस समय मिस्टर मारले और मिस्टर ऐस्क्विथ से आपका घनिष्ठ संबंध रहा। जिस समय आप पार्लियामेंट में प्रविष्ट हुए, उस समय आपकी अवस्था केवल २६ वर्ष की ही थी। पहले-पहल बजट पर इन्होंने पार्लियामेंट में जो भाषण किया, उससे यह बात भली भाँति प्रकट हो गई थी कि भारतीय मामलों की इनको काफ़ी जानकारी है। फिर तो भारतवासी प्रति वर्ष बजट के अवसर पर इनके व्याख्यान सुनने को लालायित रहने लगे। सन् १९१२ ईसवी में आपने भारत की भी यात्रा की थी। इसके बाद सन् १९१६ में, शासन-सुधारों के संबंध में, आपने इस देश में पुनः पदार्पण किया। भारत-मंत्री की हैसियत से २० अगस्त, १९१७ को जो स्वराज्य-संबंधी घोषणा आपने कराई, वह भारत की राष्ट्रीयता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी रहेगी। इसके बाद १९१९ का गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट तो प्रसिद्ध ही है। सेना में किंग्स कमीशन प्राप्त करने के मार्ग में भारतीयों को जो अड़चनें थीं, वे भी इन्हीं की कृपा से दूर हुईं। श्रीमती एनी बेसेंट को भी नज़रबंदी से उतनी जल्दी छुटकारा न मिलता, यदि मांटेगु साहब अधिकारी न होते। लॉर्ड सिंह को पार्लियामेंट का सहकारी मंत्री का पद प्रदान करने और बाद को बिहार का गवर्नर बनाने में भी इस प्रभावशाली व्यक्ति का हाथ था। जहाँ इनके द्वारा भारत का भारी हित हुआ, वहाँ रौलट ऐक्ट, पंजाब-हत्याकांड और जनरल डायर की निरंकुशताओं से इनके अधिकार-काल की कड़ी आलोचना भी की जा सकती है। यह भारत का दुर्भाग्य था कि १९२२ ईसवी के निर्वाचन में यह हार गए, और सदस्य न चुने जा सके।

ऊपर मि० मांटेगु के जीवन के संबंध में जो सिंहाव-

लोकन दिया गया है, उससे पाठकगण समझ सकते हैं कि इनका और भारत का कितना प्रगाढ़ संबंध था। इसमें कोई संदेह नहीं कि मांटेगु-जैसे आदरणीय अँगरेज़ों की भलमनसाहत देखकर ही भारत को कभी-कभी ढाढ़स बँध जाता है, और उसे ख़याल होता है कि संभव है, ऐसे महान् व्यक्ति के सजातीयों के हाथों स्वराज्य मिल जाय नहीं तो अधिकांश लोगों को तो अब इस संबंध में सिवा अपने और ईश्वर के और किसी का सहारा नहीं रह गया। आज इस समय भारत के राजनीतिक गगन-मंडल में निराशा की घनघोर घटाएँ उमड़ रही हैं। ऐसे अवसर पर मांटेगु-सदृश आशा की क्षीण प्रकाश-रश्मि का बुझ जाना और भी अपशकुन की बात है। मांटेगु की मृत्यु से भारत दुखी है, और उनके कुटुंबवालों के प्रति समवेदना प्रकट करता है। यह भारत का दुर्भाग्य है कि मांटेगु का शरीरपात इस अवसर पर हुआ। इस संबंध में केवल एक बात यह और कहनी है कि यद्यपि मांटेगु महोदय यथार्थ में भारत-हितैषी थे, पर उनकी शासन-सुधार-योजना ने भारत के राष्ट्रीय आंदोलकों में वह फूट उत्पन्न कर दी, जिससे इस समय इस अभागे देश का सर्वनाश हो रहा है।

× × ×

७. बालुका-संग्रहालय

चूने और सीमेंट में बालू मिलाने की भी चाल है। बालू के दाने सीमेंट और चूने के प्रसंग से परस्पर मिलकर कभी-कभी पत्थर की मज़बूती को भी मात करते हैं। अमेरिका के शिकागो-नगर में एक लेविस-इंस्टीट्यूट है। यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की बालुओं के बहुत-से नमूने इकट्ठे किए गए हैं। मतलब यह कि पूर्ण रूप से अध्ययन किया जाय कि किस प्रकार की बालू और चूने तथा सीमेंट के संयोग से अधिक-से-अधिक मज़बूती प्राप्त की जा सकती है। अध्ययन का काम प्रायः समाप्त हो गया है, और प्रत्येक प्रकार की बालू को लेकर जो अनुसंधान-फल प्राप्त हुआ है, वह सब लिख लिया गया है। गहरी गवेषणा करनेवालों के लिये वह हर समय सुलभ रहता है। इस बालुका-संग्रह के काम में पूरे १० वर्ष लगे हैं, और इस समय संग्रहालय में तीन सहस्र बोतलों में इतनी ही प्रकार की बालू एकत्रित रक्खी है। अध्यवसाय, विद्या-व्यसन तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के प्रति यथार्थ अनुराग ऐसे ही कामों से प्रकट होता है। जिस देश में मामूली-से-मामूली बात की खोज इस ख़ूबी से होती है, उसके समृद्धि-संपन्न होने में किसी को भी आश्चर्य न होना चाहिए।

× × ×

८. नक़ली मोती की रामकहानी

नक़ली मोती बाज़ार में ख़ूब बिकते हैं। कोई घर ऐसा न होगा, जहाँ नक़ली मोती न ख़रीदे जाते हों। परंतु यह किसी को नहीं मालूम कि ये मोती कैसी घिनौनी चीज़ से—अर्थात् दुर्गंधि-युक्त मछली के सेल्हर से—बनाए जाते हैं। मिलेडी (Milady's)-नामक पानीदार मोती ठोस काँच के मनके से बनाए जाते हैं, जिस पर एक प्रकार का लेप चढ़ा दिया जाता है। इस लेप में रवेदार गुएनिन (Guanin) का रंग दिया जाता है, जो मछली के सेल्हर से तैयार किया जाता है।

साइंटिफ़िक अमेरिकन पत्र कहता है कि जब योरपियन युद्ध के कारण फ़्रांस का एसेंस डी ओरिएंट (Essence D'Orient) का व्यापार मंदा पड़ गया, तब अमेरिका के रसायनवेत्ताओं ने तुरंत ही इस चीज़ का बनाना आरंभ कर दिया। जापानी भी इस व्यापार में ख़ूब उन्नति कर रहे हैं। आजकल नक़ली मोती अच्छे और सस्ते मिलते हैं; क्योंकि इस व्यापार में अमेरिका, फ़्रांस और जापान, तीनों में ख़ूब होड़ है।

एसेंस डी ओरिएंट अथवा मुक्ता-सार, जिसका लेप नक़ली मोती पर चढ़ाया जाता है, बहुत-सी मछलियों के सेल्हर में होता है, और इसी से नक़ली मोती पर चमक आती है। सूक्ष्मदर्शक-यंत्र से परीक्षा करने पर देख पड़ता है कि इस सीपी के सदृश चमकीली चीज़ में छोटे-छोटे पत्ती की तरह रवे होते हैं। जब सेल्हर की ऊपरी तह पानी में रगड़ी जाती है, तब चमकीले कण पानी में तैरने लगते हैं। इसको बहुत ही घने कपड़े से छानते और छान चुकने पर थिराने को रख देते हैं। फिर कई बार धोते और निथारते हैं। अंत में तीव्र एमोनिया मिलाकर घोल को बहुत देर तक थिराने देते हैं, जिससे प्रोटीनेशस पदार्थ घुल-मिलकर एक हो जाता है। जो गाढ़ा-गाढ़ा द्रव होता है, वही मुक्ता-सार है।

डॉक्टर डोनेल्ड के० टेस्लर ने इस रीति में और भी संशोधन किए हैं। चमकीले रवों को पानी में नहीं थिराते, वरन्

एसीटोन (Acetone), एमाइल एसीटेट (Amyle Acetate) या अन्य आरगैनिक घोल (Organic solvent) में घोलते हैं। यह लेप पानी से तैयार किए गए लेप की अपेक्षा उत्तम होता है; क्योंकि इसको ब्रुश से सहज ही मनकों पर चुपड़ सकते हैं। यह लेप कई रंग का बनाया जा सकता है। वही मुक्ता-सार सबसे उत्तम समझा जाता है, जिसमें बहुत अच्छी चमक होती और धीरे से हिलाने पर बहुत सुहावना भँवर उठता है। जिसका रंग चाँदी की तरह श्वेत या तनिक गुलाबी लिए होता है, वही अच्छा समझा जाता है।

उत्तम कोटि का मुक्ता-सार वह है, जिसके रवे छोटे और एक तरह के हों। इन रवों का आकार उस मछली के आकार के अनुसार छोटा-बड़ा होता है, जिसके सेल्हर से ये निकाले जाते हैं। हेरिंग (Herring) और एलवाइफ़ (Alewife) नाम की मछलियों के सेल्हर से जो मुक्ता-सार तैयार किया जाता है, उसके रवे छोटे होते और उत्तम कोटि के समझे जाते हैं। शैड (Shad)-नामक मछली के सेल्हर से बनाया हुआ सार नीच कोटि का समझा जाता है।

एच्० एफ़्० टेलर ने एक युक्ति निकाली है, जिससे शैड से निकाले हुए छोटे-बड़े रवों को भी अलग करके उत्तम कोटि का लेप तैयार किया जा सकता है। घोल को काँच की नलियों में इस प्रकार बहाते हैं कि बड़े रवे बैठ जाते और छोटे रवे बहकर अलग हो जाते हैं। बोतलों में जमाकर अलग करने की रीति भी सोची गई है। इस प्रकार शैड-मछली से निकाले गए रवे भी क़ीमती बनाए जा सकते हैं।

जो मोती मोम भरकर तैयार किए जाते हैं, उनके लिये मुक्ता-सार थिराने दिया जाता है। अमोनिया भी निथार ली जाती है, और उसकी जगह शुद्ध जिलेटीन या मछली की सरेस छोड़ दी जाती है, जिससे गाढ़ा जिलेटीन का घोल तैयार हो जाता है। फिर कोई कृमिनाशक औषधि (Antiseptic) मिला दी जाती है। यदि हलका गुलाबी रंग लाना होता है, तो कोई रंगीन पदार्थ, जैसे इओसीन (जिससे लाल स्याही बनती है) या केसर का सत ज़रा-सा छोड़ देते हैं। जब मनका गरम और दाँतदार तकवे पर घूमता रहता है, तभी इस घोल को पिपेट से उसमें डाल देते हैं। जिस समय जिलेटीन मनके की भीतरी दीवार पर फैल जाती है, उसी समय ईथर छोड़कर उसको ठंडा कर देते हैं, जिससे जिलेटीन तुरंत ही जमकर कड़ी हो जाती है। जब भीतर से मनका सूख जाता है, तब खोखली जगह में मोम भर देते हैं। बहुधा जापानी मोम और पैराफ़ीन मोम समान भाग में मिलाकर मनके में भरते हैं। सस्ते मोती खोखले काँच के मनके से बनाए जाते हैं। वे काँच की लंबी नली के साँचे में फुलाकर एकसाथ बहुत-से तैयार किए जाते हैं। परंतु अच्छे मोती नरम और रंगहीन काँच से अलग-अलग तैयार किए जाते हैं।

पाएदार मोती (Indestructible Pearls) कई ढंग से बनाए जाते हैं। एक रीति यह है कि ठोस मनके को साधारण मुक्ता-सार में डुबाते हैं, जिसमें कुछ जिलेटीन भी मिली रहती है। फिर वे सुखाए जाते हैं। इसके पीछे पाइराक्सीलिन (Pyroxylin) या सेलूलोज़ एसीटेट (Cellulose Acetate) के घोलों में क्रम से कई बार डुबाते हैं। इससे मोती पर पानी का प्रभाव नहीं पड़ता। जब अच्छी तरह लेप चढ़ जाता है, तब नरम चमड़े और खरिया-मिट्टी के चिकने चूर्ण से रगड़ देते हैं। इससे आब आ जाती है।

इसी प्रकार की और भी कई रीतियाँ हैं, जिनके लिखने की आवश्यकता नहीं है। मुक्ता-सार अभी तक तो मछली के सेल्हर से बनाया जाता है, परंतु संभव है कि बहुत शीघ्र यह पदार्थ रसायनशाला में ही तैयार हो सके; क्योंकि रसायनवेत्ता इसकी खोज में लगे हुए हैं।

× × ×

९. तिब्बत में मृतक-सत्कार

तिब्बत एक ऐसा देश है, जहाँ के वृत्तांत और रीति-रवाज को जानना बाहरी लोगों के लिये एक प्रकार से असंभव ही है। विश्व-पर्यटक डॉक्टर स्वेन हीडन ने छद्मवेष से तिब्बत में जाकर और वहाँ कुछ दिन रहकर जो जानकारी हासिल की थी, उसे अपने भ्रमण-वृत्तांत में वह लिख गए हैं। तिब्बत में मृतक-संस्कार किस तरह किया जाता है, इस पर उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह बहुत ही रोचक और कौतूहलवर्द्धक है। उसी के आधार पर यह नोट लिखा जाता है। तिब्बत में लामा-धर्म प्रचलित है, जो बौद्ध-धर्म का ही विकृत रूप है। वहाँ तासी-लामा, दलाई-लामा,

भिक्षु-संप्रदाय, मठ-मंदिर, तीर्थ, धर्म-ग्रंथ, प्रार्थना-चक्र, मंत्र-तंत्र, गंडे-तावीज़ आदि की भरमार है। ज़िंदगी-भर तो तिब्बती मनुष्य इन सबके फेर में पड़ा ही रहता है, किंतु मरने पर भी इन सबसे उसका छुटकारा नहीं होने पाता। जब किसी तिब्बती की मृत्यु अनिवार्य मालूम पड़ती है, तब उसके सगे-संबंधी चारों ओर उसे घेरकर बैठ जाते और प्रार्थना-मंत्र पढ़ने लगते हैं। जब वह आदमी मर जाता है, तब विशेष रूप से प्रार्थना की जाती है। इस प्रार्थना का उद्देश्य यह होता है कि मृत व्यक्ति की आत्मा सहज ही शरीर के बंधन से मुक्ति प्राप्त करे, तथा परलोक के अज्ञात मार्ग में भी कुछ दूर तक शांति के साथ जा सके। मरनेवाला कोई भिक्षु हुआ, तो उसकी लाश तीन दिन तक, और अगर कोई साधारण मनुष्य हुआ, तो पाँच दिन तक (कभी-कभी और भी अधिक दिन तक) घर ही में रक्खी रहती है। इन दिनों में प्रार्थना और अंतिम आचार-अनुष्ठान होते रहते हैं। मरने के बाद लाश को रोज़मर्रह की मामूली पोशाक के समान ही नए कपड़े की पोशाक पहनाई जाती है। फिर उसे एक कपड़े में लपेटकर श्मशान में ले जाते हैं। भिक्षु की लाश को उसी के साथी दो-एक भिक्षु उठाकर ले जाते हैं। साधारण मनुष्यों की लाश को ले जाने के लिये एक जाति ही अलग है, जिसे लग्बा (Lagbas) कहते हैं।

यह एक घृणित जाति (हमारे यहाँ के महाब्राह्मणों के समान तो नहीं ?) समझी जाती है। इन लोगों के साथ किसी का कोई सामाजिक व्यवहार नहीं रहता। ये लोग अपने ही समाज में ब्याह-शादी कर सकते हैं, और मुर्दे उठाने के सिवा दूसरा रोज़गार-धंदा करने का अधिकार भी इन्हें नहीं है। ये लोग बस्ती के सिरे पर एक किनारे अत्यंत हीन अवस्था में रहते हैं। इनके घरों में किवाड़े नहीं होते—आज्ञा ही नहीं है। तिब्बत-सरीखे ठंडे मुल्क में इस प्रथा से इन्हें कितना कष्ट होता होगा, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। धन होने पर भी ये लोग अच्छा घर बनाकर उसमें रह नहीं सकते। मठ-मंदिर आदि की चौहद्दी के भीतर पैर भी रखना इनके लिये मना है। मृत्यु के उपरांत अपनी आत्मा की सद्‌गति और शांति-लाभ के लिये ये कोई धार्मिक अनुष्ठान स्वयं नहीं कर सकते। अगर इनमें से किसी को मरने के बाद शांति पाने की कामना होती है, तो वह किसी लामा को कुछ धन देकर उसके द्वारा प्रार्थना करा सकता है।

लाश को श्मशान में ले आने के बाद सब कपड़े उतार डाले जाते हैं। भिक्षु की लाश हुई, तो उसे उठाकर लानेवाले भिक्षु ही उन कपड़ों को बाँट लेते हैं। परंतु यदि साधारण मनुष्य की लाश हुई, तो उसकी पोशाक (मृत स्त्री के गहने वग़ैरह भी) लग्बा लोग ले लेते हैं। पार्सियों में जैसे लाश को Tower of Silence (पार्सियों के श्मशान) में रख आते हैं, और गिद्ध-चील्ह-कौए आदि उसे नोच-नोचकर खा जाते हैं, वैसे यही तिब्बत में भी होता है। अंतर यही है कि पार्सी लोग समूची लाश रख आते हैं, लेकिन तिब्बती लोग उसके टुकड़े-टुकड़े करके गिद्ध आदि को खिलाते हैं। टुकड़े करने का काम लग्बा लोग ही करते हैं। साधारण मनुष्यों की तो बात नहीं, भिक्षुओं की लाश की भी यही दशा होती है। इस काम की मज़दूरी लग्बा लोगों को लाश पीछे एक रुपए से पौने दो रुपए तक दी जाती है। लाश के टुकड़े करने का काम लग्बा लोगों को सौंपने के बाद ही सब लोग श्मशान से चल देते हैं। शायद वे इस बीभत्स दृश्य को देखना नहीं चाहते; और दुर्गंध भी उन्हें वहाँ नहीं ठहरने देती। श्मशान में एक खूँटा गड़ा होता है, और उसमें रस्सी बँधी होती है। लग्बा लोग लाश के गले में वही रस्सी बाँधकर उसके पैर पकड़कर घसीटते और अकड़ी हुई लाश को सीधा कर लेते हैं। इसके अलावा लामा लोगों में से अनेक बड़े-बड़े भिक्षु ध्यानस्थ बुद्ध-मूर्ति के समान पलथी मारकर, पद्मासन से बैठकर, मृत्यु की प्रतीक्षा करते हैं, अतः मरने के बाद भी वे उसी तरह रक्खे जाते हैं। ऐसी तीन-चार दिन की अकड़ी हुई लाशों को खींच-खींचकर सीधा करने में लग्बा लोगों को बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। लाश सीधी कर लेने पर पहले देह-भर का चमड़ा खींचकर अलग कर दिया जाता है। सिर भी धड़ से अलग कर देते हैं। फिर लग्बा लोग "चील्ह-चिरहोर!" की-सी आवाज़ लगाकर गिद्ध आदि मांस-भोजी पक्षियों को बुलाकर इकट्ठा करते और ये झुंड-के-झुंड आकर भोजन करने लगते हैं। लग्बा लोग पास ही बैठे रहते हैं। थोड़ी ही देर में सारा मांस उड़ जाता और ख़ाली हड्डियाँ रह जाती हैं। लग्बा लोग फिर अपने काम में जुट जाते हैं। वे पत्थर पर हड्डियों को पीसकर उसे मस्तिष्क के भीतर की वस्तु के साथ अच्छी तरह मिला-

कर, सानकर, उन पक्षियों की ओर फेंकते और पक्षी खाते हैं। पिसी हड्डियों के साथ मस्तिष्क-सार मिलाए बिना गिद्ध वग़ैरह उसे नहीं छूते। लम्बा लोग बीच-बीच में विश्राम करते, भोजन करते और चाय पीते हैं। उन्हें किसी तरह की घृणा नहीं होती। शायद वे लोग ज़िंदगी-भर में कभी नहाते भी नहीं हैं। किसी-किसी लाश का चमड़ा न उधेड़कर धड़ से सिर जुदा कर दिया जाता है। उसके बाद लाश को लंबाई में बीच से दो टुकड़े करके फिर उनके छोटे-छोटे टुकड़े कर डालते हैं, और तब पक्षियों को बुलाकर खिलाते हैं। लड़के, जवान, बूढ़े और नर-नारी, सभी का अंतिम सत्कार वहाँ इसी तरह किया जाता है। तिब्बत के लोग केवल आत्मा की सद्गति का ही बड़ा ख़याल रखते हैं; शरीर के शोचनीय परिणाम पर वे ध्यान ही नहीं देते। मरने के बाद आत्मीय लोग आत्मा की सद्गति के लिये पूजा-पाठ-प्रार्थना आदि करके ही छुट्टी पा जाते और शरीर लम्बा लोगों को सौंप देते हैं; श्मशान तक भी बहुधा साथ नहीं जाते। हाँ, लामा लोगों में जो विशेष पद के समझे जाते हैं, उनकी लाश आग में जलाने का नियम है। ऐसे पुण्यात्मा और विशिष्ट लामा लोग मृत्यु के समय बुद्ध-मूर्ति के-से आसन से बैठकर ही शरीर-त्याग करते हैं। मरने के बाद उनके सगे-संबंधी लोग—जो भिक्षु ही होते हैं—उनकी चिता के लिये लकड़ी जमा करके, उनके चेले फाड़कर, उन पर मंत्र-तंत्र लिखते हैं। कोई-कोई एक बड़े काग़ज़ पर धर्माचार के अनुसार तरह-तरह के चित्र भी अंकित करते हैं, और कोई-कोई—संभवतः मृत व्यक्ति के भृत्यगण—काग़ज़ पर लकड़ी की मोहर और लाल स्याही से तरह-तरह के प्रार्थना-मंत्र भी छाप देते हैं। इधर घर के भीतर मुर्दे के पास बैठकर चार भिक्षु उसकी आत्मा के लिये प्रार्थना करते हैं। यह प्रार्थना तीन दिन और तीन रात तक होती है। मुर्दा एक सुंदर सुसज्जित खाट पर बैठा होता है। उसे तरह-तरह के वस्त्र पहनाए जाते हैं। पैरों में पादुका, मुँह पर एक पतला खदाख (Khadakh) वस्त्र, सिर पर एक लाल और नीले रंग की पगड़ी—मुकुट से मिलती-जुलती—होती है। बिछौने पर इस मूर्ति के सामने एक काष्ठासन के ऊपर कई प्रतिमूर्तियाँ, बरतन वग़ैरह और दो जलती हुई मोमबत्तियाँ रक्खी होती हैं। अंत्येष्टि के पहले लाश को एक सफ़ेद कुर्ता भी पहनाया जाता है। घुटनों के ऊपर एक चौकोर कपड़ा डाल दिया जाता है। इस कपड़े पर एक बड़ा भारी घेरा और अन्यान्य चित्र अंकित रहते हैं। सिर पर एक काग़ज़ की टोपी पहना दी जाती है। ऊपर लिखे पहनावे में लाश को श्मशान ले जाकर चिता पर बिठाते और लकड़ियों में आग लगाते हैं। आग जलाने के लिये लकड़ियों के चेले और काग़ज़ वग़ैरह डाले जाते हैं। उनकी समझ में काग़ज़, लकड़ी आदि पर लिखी प्रार्थना परलोक में भी आत्मा के साथ जाती है। अग्नि-सत्कार के बाद शरीर की बची हुई राख और हड्डियों को एक लामा कैलास-पर्वत पर ले जाता और वहाँ पत्थर के बने एक पवित्र स्थान में रख आता है (कैलास-पर्वत तिब्बत में ही है; और वह २१,८१८ फ़ीट ऊँचा है)। तिब्बत के प्रधान पुरुष को तासी-लामा कहते हैं। मरने के बाद उनकी लाश गाड़ी जाती है। इस कार्य के लिये तासी-लामा की राजधानी शिगाजी में एक ख़ास जगह बनी हुई है। यहाँ प्रत्येक तासी-लामा की समाधि अलग बनी है, और उस पर एक मंदिर-सा बना है। इस समाधि-स्थान में अब तक पाँच नए-नए समाधि-सौध बन चुके हैं। वर्तमान तासी-लामा छठे लामा हैं। तीसरे तासी-लामा एक बार, १७७९ सन् में, चीन के मंचू-राजा के बुलाने से चीन की राजधानी पिकिन में पधारे थे। दैवसंयोग से वहीं उनकी मृत्यु हो गई। वहाँ एक सोने के बने शवाधार में उनकी लाश रखकर तीन महीने तक प्रार्थना-पूजा आदि धार्मिक अनुष्ठान होते रहे। उनके शिगाजी के समाधि-स्थान तक उनकी लाश को मनुष्य ही कंधे पर लादकर लाए। इतनी दूर इस तरह लाश लाने में सात महीने लगे थे। इस प्रकार तिब्बत में भिन्न-भिन्न श्रेणी के मनुष्यों के लिये अंतिम सत्कार की भिन्न-भिन्न व्यवस्था है।

× × ×

१०. लखनऊ-विश्वविद्यालय में हिंदी का कार्य-क्रम

गत मास की 'माधुरी' में हिंदू-विश्वविद्यालय में हिंदी-प्रचारक संस्थाओं का उल्लेख करते समय हमने आशा प्रकट की थी कि लखनऊ-विश्वविद्यालय भी हिंदी के संबंध में पश्चात्पद होना पसंद न करेगा। परंतु हमें यह लिखते दुःख होता है कि अब तक भी हिंदी के संबंध में किसी विशेष महत्त्व के कार्य का प्रारंभ नहीं किया गया। युक्तप्रांत में हिंदी-प्रचार के दो ही तीन प्रधान केंद्र हैं। उनमें से

काशी में हिंदी-प्रचार का पुनीत कार्य अनेक वर्षों से सुचारु रूप से चल रहा है। हिंदू-विश्वविद्यालय ने भी उसके साहाय्य में अपनी यथेष्ट सहानुभूति प्रदर्शित की है; और अपने महत्त्व-पूर्ण कार्यों के द्वारा हिंदी-भाषा की वह कितनी अधिक सेवा कर रहा है, यह किसी विज्ञ व्यक्ति से छिपा नहीं है। प्रयाग में अच्छा कार्य हो रहा है। प्रयाग-विश्वविद्यालय का नवीन संस्करण लखनऊ के पश्चात् ही आरंभ हुआ है। परंतु इस थोड़ी ही अवस्था में वह हिंदी की जितनी सेवा कर रहा है, वह वास्तव में आश्चर्यजनक है। इतने थोड़े ही समय में वहाँ के विश्वविद्यालय में हिंदी को उच्च परीक्षाओं में ही स्थान नहीं मिला, बल्कि हिंदी-कवि-सम्मेलन, हिंदी-एसोसिएशन इत्यादि का समारोह करके उसने वहाँ के हिंदी-जीवन में नवीन प्राण का संचार कर दिया है। गत वर्ष महामहोपाध्याय डॉक्टर गंगानाथ झा के सभापतित्व में कवि-सम्मेलन का कार्य बड़े समारोह के साथ संपन्न हुआ था। इस वर्ष भी उपाधि-वितरण के समय कवि-सम्मेलन की योजना की गई थी। हिंदी-एसोसिएशन के द्वारा, विशेषज्ञ लोगों के व्याख्यान आदि के द्वारा, कितना उपकार किया जा रहा है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। परंतु लखनऊ-विश्वविद्यालय इसका ममय भी हिंदी के लिये कानों में तेल डाले पड़ा है। परीक्षाओं में ही हिंदी 'विषय' हो जाने से उसके कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। यह भी नहीं कहा जा सकता कि यहाँ हिंदी में उत्साह रखनेवाले छात्र नहीं हैं। यहाँ के छात्र काशी, प्रयाग आदि में जाकर वहाँ से पारितोषिक प्राप्त कर चुके हैं। ऐसी स्थिति में यहाँ अब तक हिंदी के प्रचारार्थ किसी संस्था का जन्म न होना केवल अधिकारिवर्ग की उदासीनता ही घोषित करता है। ऐसे सुविज्ञ तथा हिंदी-भाषा से यथार्थ स्नेह रखनेवाले वाइस चैंसलर की अध्यक्षता में भी यदि हिंदी और संस्कृत को समुचित प्रोत्साहन न मिला, तो इसे केवल अदृष्ट-दोष ही कहना पड़ेगा। इस विश्वविद्यालय को इस बात का विशेष गौरव प्राप्त है कि इसे पंडित बदरीनाथ भट्ट बी० ए० के सदृश लब्धप्रतिष्ठ सुलेखक और सुकवि अध्यापक मिल गए हैं। ऐसी दशा में भी यदि भट्ट महोदय से अधिकारिवर्ग हिंदी की समुचित सेवा न करा सका, तो इसे हिंदी का सरासर दुर्भाग्य ही कहना पड़ेगा। अध्यापक सुयोग्य हैं, छात्रवर्ग हिंदी-प्रेमी हैं, प्रधानाधिकारी हिंदी के पृष्ठपोषक हैं, तो भी दैवदुर्विपाक से हिंदी को यहाँ पूर्ण प्रोत्साहन नहीं मिल रहा है। इसी को कहते हैं—"विपरीततामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।" इतनी सुविधा यदि अन्यत्र रहती, तो वहाँ आज न-जाने क्या दशा होती। हमारी समझ में तो यहाँ हिंदी के ह्रास का प्रधान कारण अधिकारिवर्ग की उदासीनता-मात्र है। हृदय में तद्विषयक स्नेह अवश्य है, पर कमी है केवल कार्य प्रारंभ करने की। डॉक्टर चक्रवर्ती महोदय से हमारा विशेष अनुरोध है कि वह हिंदी को पूर्ण प्रोत्साहन देकर, इस उपालंभ को दूर कर, हिंदी-भाषा को अनुगृहीत करें। हमें पूर्ण विश्वास है कि वह हमारी इस विनीत प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे, और शीघ्र ही हिंदी के प्रचारार्थ समुचित संस्था का प्रबंध करके उसके अभ्युदय में योग देंगे।

× × ×

११. विज्ञान-युग

वर्तमान काल में पाश्चात्य देश विज्ञान-विषय में विशेष उन्नतिशील हो रहे हैं, यह निश्चित सिद्धांत माना जाता है। पाश्चात्य देशों के साथ इस समय स्पर्द्धा करने का भारत के पास न तो साधन ही है और न शक्ति ही। यह बात दूसरी है कि अब भी जगदीशचंद्र वसु और प्रफुल्लचंद्र राय-जैसे भारत-विज्ञानाकाश के समुज्ज्वल नक्षत्र अपनी निर्मल ज्योति का संसार में प्रसार कर रहे हैं। परंतु भारत के जिस विज्ञान-मार्तंडमंडल की महामहिम प्रदीप्त अंशुमाला समस्त भूमंडल को प्रकाशित करती थी, उसकी इस समय चर्चा-मात्र करना उपहास का कारण माना जाता है। अन्य लोगों की तो बात दूर रही, हम लोग भी अभी अपने प्राचीन गौरव को ठीक-ठीक स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं; फिर अन्य लोग यदि उस पर अविश्वास करें, तो कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं। परंतु यह अवश्य है कि जैसे-जैसे पाश्चात्य पंडितगण नवीन-नवीन खोज करते जाते हैं, वैसे-वैसे भारत की लुप्तप्राय विद्याओं के अस्तित्व का प्रमाण पुष्ट होता जाता है। सर ऑलिवर लॉज प्रभृति प्रख्यात विज्ञानवेत्ताओं के परिश्रम के कारण आज दिन प्रेत-योनि पर पढ़े-लिखे लोग भी विश्वास करने लगे हैं; नहीं तो लोग इसे पहले केवल कपोल-कल्पित ही समझते थे। सर जगदीशचंद्र वसु की वैज्ञानिक परीक्षाओं के प्रभाव से ही आज दिन यह माना जाने लगा है

कि वृक्ष आदि में भी संज्ञा होती है, उन्हें भी सुख-दुःख का अनुभव होता है ; नहीं तो मनु महाराज का यह श्लोक "तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना। अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः।", अनुभव-शून्य और पोप-वाक्य माना जाता था। इस युग में जब तक प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा कोई स्वयं अनुभव नहीं कर लेता, तब तक सहसा किसी बात के मानने के लिये तैयार नहीं होता। विज्ञान के द्वारा जिन-जिन शास्त्रीय प्रमाणों का प्रत्यक्ष अनुभव होता जाता है, केवल वे ही क्रमशः प्रमाण-कोटि में प्रविष्ट होते जाते हैं। इस दृष्टि से नवीन विज्ञान भारत के प्राचीन शास्त्रों का अत्यधिक उपकार कर रहा है। जो धर्मशास्त्र केवल ब्राह्मणों के स्वार्थ-साधन के हेतु माने जाते हैं, विज्ञान के माहात्म्य से वे ही उत्कृष्ट सिद्धांत के प्रतिपादक प्रमाणित होंगे, और हो रहे हैं। रासायनिक प्रक्रिया द्वारा पारे से सुवर्ण बनाने की विद्या भारत में प्राचीन काल से चली जाती है। अब भी अनेक साधु लोग जंगली पत्तियों का प्रयोग करके साधारण परिमाण में सुवर्ण तैयार कर अपना निर्वाह करते देखे जाते हैं। यह स्पष्ट ही है कि राजदंड के भय तथा अपनी निःस्पृह वृत्ति के कारण ये साधुजन प्रचुर परिमाण में प्रकट रूप से यह कार्य नहीं करते, और न अपनी विद्या ही दूसरे को सहसा बताते हैं। परंतु ऐसे लोगों का सर्वथा अभाव नहीं, जो इस विद्या म निष्णात हैं। अनेक लोग ऐसे भी देखे गए हैं, जो इस विद्या में पारगामिता प्राप्त नहीं कर सके; परंतु बहुत कुछ अंशों में कृतकार्य हो गए हैं। अब तक उनकी बात पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता था, और न कोई विश्वास ही करता था। अब पाश्चात्य वैज्ञानिकवृंद अपनी परीक्षाओं से सिद्ध कर रहे हैं कि पारे से सुवर्ण बना लेना सर्वथा संभव है। अभी हाल ही में, लंदन के 'मैंचेस्टर गार्जियन'-नामक पत्र में, ऐसी ही एक वैज्ञानिक परीक्षा का विवरण छपा है। वह लिखता है कि जर्मनी के एक विज्ञानविशारद ने परीक्षाओं द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि सोने की खान ही सोना प्राप्त करने का एक-मात्र साधन नहीं है। कम-से-कम रासायनिक प्रक्रियाशाला में परीक्षा-रूप से वह सुवर्ण-निर्माण-विद्या सिद्ध हो चुकी है। कीमिया बनाने का यह बहुत प्राचीन स्वप्न कि अन्य क्षुद्र धातुओं से भी सुवर्ण बनाना संभव है, सत्य सिद्ध हो गया है। यह ठीक है कि अभी इस प्रक्रिया में व्यय इतना अधिक पड़ता है कि मूल्य की दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं है ; परंतु यह प्रायः निश्चित है कि शीघ्र ही ऐसा समय आनेवाला है, जब सुवर्ण का महत्त्व इतना न रह जायगा, और इसका परिणाम संसार के बाज़ार पर किस विचित्र प्रकार का होगा, इसका अनुमान अर्थशास्त्रज्ञ अच्छी तरह कर सकते हैं। इस नवीन वैज्ञानिक गवेषणा से हमारे एक और भारतीय सिद्धांत की पुष्टि होती है। परमाणुवादवाले यह सिद्ध करते आए हैं कि प्रत्येक पदार्थ में भिन्नता का प्रधान हेतु परमाणुओं की मात्रा का तारतम्य-मात्र है। प्रत्येक पदार्थ परमाणुओं के तारतम्य बदल देने से चाहे जिस पदार्थ में परिणत किया जा सकता है। विज्ञान की महिमा है, विज्ञान का युग है, और इसलिये विज्ञान ही इस समय हमारी समुन्नति का साधन हो सकता है।

× × ×

१२. म्युनिसिपल गज़ट

इस बार के म्युनिसिपल निर्वाचन से कलकत्ता-कार्पोरेशन में स्वराज्य-दल का पूर्ण रूप से प्राधान्य है। कार्पोरेशन के मेंबर स्वयं देश-बंधु दास हैं। इसके इक्ज़ीक्यूटिव् ऑफ़िसर श्रीसुभाषचंद्र बसु थे। बंगाल-आर्डिनेंस की बदौलत आप इस समय हिरासत में हैं। आप इतने परिश्रम और तन्मयता से कार्पोरेशन का काम करते थे कि योरपियन नागरिकों ने भी आपकी प्रशंसा की है। हाल ही में कलकत्ता-कार्पोरेशन ने एक अपना 'म्युनिसिपल गज़ट' निकाला है। इसमें कार्पोरेशन-संबंधी सूचनाएँ तो रहेंगी ही, पर ऐसे लेख भी छपेंगे, जिनके पढ़ने से कार्पोरेशन के काम में सहायता पहुँच सकेगी। भारतवर्ष में यह गज़ट अपने ढंग का पहला है। हमारी राय में यह गज़ट देशी भाषा में प्रकाशित होना चाहिए, जिससे सर्वसाधारण को भी इससे लाभ हो सके, और म्युनिसिपलिटी के मामलों में नागरिक अपने स्वत्व और उत्तरदायित्व को समझ सकें। लखनऊ का म्युनिसिपल बोर्ड भी प्रायः स्वराज्य-दलवालों के ही हाथों में है। क्या वे लोग ऐसा कोई गज़ट हिंदी में नहीं निकाल सकते? इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसे एक गज़ट की आवश्यकता सर्वत्र है। आशा है, म्युनिसिपल-सम्मेलन में इस विषय पर भी विचार किया जायगा।

× × ×

१३. महात्मा गांधी और स्वराज्य-पार्टी

२१ दिन के निराहार व्रत के पूर्ण होने के साथ ही महात्मा गांधी को एक नवीन समस्या का सामना करना पड़ा। हिंदू-मुसलमान-समस्या अभी सुलझने भी न पाई थी, शांति-परिषद् से लौटे हुए प्रतिनिधियों की सफ़र की थकावट दूर भी न हुई थी कि बंगाल में निरंकुश आर्डिनेंस के द्वारा ७२ बंगाली गिरफ़्तार कर लिए गए, जिनमें से ६० के लगभग स्वराज्य-दल के हैं। सरकार के इस प्रबल दमन से सारे भारतवर्ष में खलबली मच गई, और सबकी निगाह उत्पीड़ित स्वराज्य-दल की ओर घूम गई। महात्मा गांधी ने परिस्थिति पर गंभीरता-पूर्वक विचार किया, और तब स्वराज्य-पार्टी का साथ देने को तैयार हो गए। इसके बाद ही कलकत्ते में स्वराज्य-दल की सभा हुई, और उसमें महात्मा गांधी उपस्थित हुए। एक बार उन्होंने बंगालियों के बीच में जाकर बातचीत की, फिर जाँच की, और उन्हें निश्चय हो गया कि सरकार का यह वार असल में हिंसाप्रिय अराजकों पर नहीं है, वरन् अहिंसात्मक आंदोलनकारी स्वराज्य-दल को कुचल डालना ही ब्यूरोक्रेसी को अभीष्ट है। महात्माजी ने तुरंत स्वराज्य-दलवालों से समझौता कर लिया। उन्होंने असहयोग को स्थगित कर दिया, और स्वराज्य-दलवालों को कांग्रेस का अंग मान लिया। यह भी स्वीकार कर लिया कि वे कौंसिलों में जो कुछ काम करते हैं, वह कांग्रेस ही की ओर से। महात्माजी के इस कार्य से कांग्रेस का अपरिवर्तन-वादी दल बहुत असंतुष्ट हुआ; पर महात्माजी ने उसे भी राज़ी कर लिया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मैं स्वराज्य-दल के साथ वैसा ही चिपटा रहूँगा, जैसे शिशु अपनी माता से। महात्माजी का कार्य-क्रम यहीं तक नहीं समाप्त हुआ। इसके कुछ ही समय बाद बंबई में भारत के भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों का इस विचार से एक सम्मेलन हुआ कि ऐसी कोई सूरत ढूँढ़ निकाली जाय, जिससे अब की बार बेलगाँव-कांग्रेस में सभी विचार के लोग सम्मिलित हो सकें, और एक बार कांग्रेस में फिर से एकता स्थापित हो जाय। इस सम्मेलन का काम भी समाप्त हो गया है, और आशा की जाती है कि सन् १९२५ में जो कांग्रेस होगी, उसमें सब दल अवश्य मिल जायँगे। इस बंबईवाले सम्मेलन में एक बात बड़े मार्के की रही। एक प्रस्ताव पास करके सम्मेलन ने सरकार की बंगालवाली दमन-नीति का घोर विरोध किया। इस प्रस्ताव के समर्थकों में लिबरल-दल के धुरंधर नेता मि० चिंतामणि भी थे। श्रीमती एनी बेसेंट और उनके तीन अनुगामियों ने प्रस्ताव के कुछ अंश का विरोध किया; पर और सबने एकस्वर से प्रस्ताव का समर्थन किया, और वह पास भी हो गया। यह मानना पड़ेगा कि यह महात्मा गांधी का ही काम था कि ऐसे प्रस्ताव को इतने ज़बर्दस्त बहुमत से पास करा लिया। अब इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं रह गया कि देश एकस्वर से दमन का विरोधी है। क्या सरकार लोकमत की इतनी उपेक्षा करेगी? उधर संकट के समय स्वराज्य-दल को बिना किसी संकोच के जिस प्रकार महात्माजी ने अपना लिया है, वह भी उनके विशाल हृदय के अनुरूप ही है। इधर एक पत्र-प्रतिनिधि से बात करते हुए महात्माजी ने कौंसिलों में स्वराज्य-दलवालों के कार्य-कलाप की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने कहा है कि यद्यपि मैं कौंसिल-प्रवेश का विरोधी हूँ, पर यह मानता हूँ कि स्वराज्य-दलवालों ने कौंसिलों में जाकर नौकरशाही के मन में बेढब आतंक फैला दिया है। जान पड़ता है, महात्माजी की पृष्ठपोषकता और सरकार के दमन की बदौलत स्वराज्य-दल का प्रभाव देश में और भी बढ़ जायगा।

× × ×

१४. भारतीय सभ्यता की प्राचीनता का नवीन प्रमाण

'हारप्पा' और 'मोहांजो दारो'-नामक स्थान, पंजाब और सिंध-प्रदेश में हैं। पुरातत्त्व-विभाग की ओर से इन दोनों ही स्थानों में खुदाई का काम हो रहा था। एक स्थान में यह काम रायबहादुर दयाराम साहनी की देख-रेख में हो रहा था, और दूसरे स्थान में श्रीराखालदासजी बनर्जी के निरीक्षण में। पाठकों को स्मरण होगा कि कई साल हुए, 'तक्षशिला' की खुदाई में कई बड़े महत्त्व की चीज़ें प्राप्त हुई थीं। तब से पंजाब के भग्नावशेषों की खुदाई में पुरातत्त्व-विभाग कुछ ख़ास दिलचस्पी ले रहा है। उपर्युक्त 'हारप्पा' और 'मोहांजो दारो' की ओर भी लोगों की आँखें लगी हुई थीं। परिणाम भी अद्भुत ही निकला। यद्यपि अभी खुदाई का काम पूरा नहीं हुआ, फिर भी जो कुछ भी काम हो चुका है, उससे भारतीय इतिहास में युगांतर उपस्थित करनेवाली बातों का पता चला है। भूगर्भ के भीतर, बहुत गहरे में, किसी अत्यंत

प्राचीन बस्ती के भग्नावशेष मिल गए हैं। इनमें दीवारें हैं, कुएँ हैं, हौज़ हैं। हौज़ सुंदर संगमरमर के पत्थरों के बने हैं। मिट्टी के कई प्रकार के खिलौने भी मिले हैं। चूड़ियों और छुरियों के भी अंश मिले हैं। कई प्रकार के विचित्र बरतन और अँगूठियाँ देखकर चकित होना पड़ता है। पर सबसे अधिक आश्चर्य में डालनेवाली जो चीज़ें मिली हैं, वे हैं उस समय के प्रचलित सिक्के और कुछ मुहरें, जिन पर चित्र-भाषा में कुछ लिखा हुआ है। पुरातत्त्व-वेत्ताओं ने इन सब चीज़ों को बहुत ध्यान से देखा। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका खूब गहरा अध्ययन किया गया। पृथ्वी के वर्तमान धरातल से उस गहराई तक, जहाँ इन नगरों के भग्नावशेष मिले हैं, कई प्रकार की मिट्टी के पर्त स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। भूगर्भ-तत्त्व के जाननेवाले लोग इन पर्तों का औसत से समय निर्धारित कर लेते हैं। 'हारप्पा' और 'मोहांजो दारो' के संबंध में भी इन सभी बातों पर विचार किया गया। इतिहासज्ञों ने यह निर्णय किया है कि ये नगर कम-से-कम आज से ५,००० वर्ष पहले के हैं, और इस बात की सूचना देते हैं कि जिस समय ये आबाद थे, उस समय सभ्यता की दशा खूब उन्नत थी। भारत की प्राचीन सभ्यता की उन्नतावस्था प्रतिपादित करानेवाले जितने साधन अब तक उपलब्ध थे, उनमें ये भग्नावशेष सबसे प्रबल और नितांत असंदिग्ध हैं। पुरातत्त्व-विभाग के प्रधान मिस्टर मार्शल ने इस नवीन खोज का सविस्तर वर्णन इँगलैंड के प्रधान-प्रधान पत्रों में छपवा दिया है। सौभाग्य से मार्शल साहब के इन लेखों पर उन विद्वानों की निगाह पड़ गई, जिन्होंने मेसोपोटामिया और ईराक में बैबिलोनियन सभ्यता की खोज में खुदाई का काम करवाया था। इन विद्वानों ने जब भारतवर्ष में पाई जानेवाली उन चीज़ों को ईराक में पाई जानेवाली चीज़ों से मिलाया, तो वे बिलकुल मिल गईं। इस साम्य ने एक नई ऐतिहासिक समस्या उपस्थित कर दी है। बैबीलोनियन खोज में जो चीज़ें मिली थीं, उनके विषय में इतिहासज्ञों का मत है कि उनसे किसी 'सुमेरियन' नाम की बहुत प्राचीन सभ्यता का पता चलता है। बैबीलोनियन सभ्यता से यह बिलकुल अलग और पुरानी है, तथा बैबीलोनियन सभ्यता पर इसका पूर्ण प्रभाव पड़ा, और यह कहीं बाहर से—संभवतः पूर्व से—बैबीलोनिया में आई। इस 'सुमेरियन'-सभ्यता का समय भी इन इतिहासज्ञों ने प्रायः वही माना है, जो 'हारप्पा' में प्राप्त ध्वंसावशेषों का माना गया है। संसार की सभ्यताओं में एशिया की सभ्यता सबसे प्राचीन मानी जाती है। एशिया की सभ्यता में 'बैबीलोनिया' की सभ्यता बहुत पुरानी मानी गई है; पर 'सुमेरियन'-सभ्यता इससे भी पुरानी और बैबीलोनियन को संस्कृत करनेवाली मानी गई है। अब 'हारप्पा' आदि की खुदाई से यह प्रमाणित होता है कि 'सुमेरियन'-सभ्यता को जन्म देनेवाला भारतवर्ष ही है। तब तो यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं को जन्म देनेवाला संसार-गुरु भारतवर्ष ही है।

× × ×

१५. आंध्र-प्रांत में हिंदी का प्रचार

यह बड़े ही आनंद की बात है कि मदरास के आंध्र-प्रांत में हिंदी का प्रचार बड़े उत्साह के साथ किया जा रहा है। अभी हाल ही में, १४ नवंबर को, गंटूर-नगर में आंध्र-प्रांत में काम करनेवाले हिंदी-प्रचारकों का एक सम्मेलन हुआ था। उक्त सम्मेलन की स्वागत-समिति के मंत्री श्रीरामानंदजी शर्मा ने अधिवेशन का विस्तृत विवरण भेजा है। इस विवरण के पढ़ने से जान पड़ता है कि आंध्र-प्रांत में हिंदी का भविष्य बहुत अच्छा है। इस समय उस प्रदेश में ८१ प्रचारक काम कर रहे हैं। गंटूर-सम्मेलन में बड़ा समारोह रहा। सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री-नउमविल्लि वेंकट लक्ष्मीनरसिंहराव ने अपना भाषण हिंदी में पढ़ा। ये महाशय गंटूर-म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन हैं, और नगर के प्रभावशाली बैरिस्टर भी। सम्मेलन के सभापति अँगरेज़ी की 'जन्म-भूमि'-पत्रिका के संपादक डॉक्टर भोगराज पट्टाभिपीतारामय्याजी थे। आपने हिंदी में भी भाषण दिया, और तेलगू में भी। आपने उन लोगों की शंकाओं का भली भाँति निराकरण कर दिया, जो समझते हैं कि मदरास में हिंदी के प्रचार से उक्त प्रांत की देशी भाषाओं को हानि पहुँचेगी। आपका भाषण बड़ा ही ज़ोरदार और प्रभावशाली था। इस सम्मेलन की काररवाई दूसरे दिन भी हुई। नगर-कीर्तन के द्वारा भी प्रचार-कार्य किया गया। सम्मेलन में १४ प्रस्ताव स्वीकृत हुए। पहले तीन प्रस्ताव स्वर्गीय प्रतापनारायणजी वाजपेयी के स्मारक, श्रीसत्यमूर्तिजी को हिंदी का [illegible] लेने के लिये धन्यवाद तथा महात्मा गांधी की दीर्घ

कामना से संबंध रखते हैं। चौथे प्रस्ताव में मदरास-सरकार की इसलिये निंदा की गई है कि उसने हिंदी को राष्ट्रभाषा मानना स्वीकार नहीं किया। ग्यारहवें प्रस्ताव में यह कहा गया है कि आगामी चैत्र-मास में एक 'हिंदी-सप्ताह' विशेष समारोह के साथ मनाया जाय। शेष प्रस्तावों में प्रचार की कार्य-शैली से संबंध रखनेवाली बातें हैं। सारे विवरण को पढ़ने से जान पड़ता है कि मदरास में हिंदी-प्रचार का काम करनेवाले अपने समय का सदुपयोग कर रहे हैं, और उनमें यथार्थ देश-भक्ति के भाव भरे हुए हैं। हाँ, दो-एक बातें हमें अवश्य खटकीं। पहली बात तो यह है कि संभवतः प्रचारकों को कुछ अर्थ-कष्ट है। इस कष्ट के दूर होने का तत्काल ही समुचित प्रबंध होना चाहिए। प्रयाग-साहित्य-सम्मेलन अपने सच्चे प्रचारकों के अर्थ-कष्ट को जितनी जल्दी दूर कर सके, उतना ही अच्छा। हमारा विश्वास है कि धनाभाव से मदरास में प्रचार का कार्य नहीं रुकेगा। इसलिये इस त्रुटि की हमें विशेष चिंता नहीं। पर हमें जिस बात की सबसे अधिक चिंता है, उसका आभास १०वें प्रस्ताव में है। इससे पता चलता है कि उक्त प्रांत में हिंदी का प्रचार करनेवाले दो संघटन हैं। यहाँ तक भी कोई हर्ज न था। पर यह बात भयानक है कि इन दो संघटनों में परस्पर अनुचित प्रतिद्वंद्विता है। हमारी राय तो यह है कि अभी मदरास में हिंदी का मार्ग इतना प्रशस्त नहीं हुआ कि उसके प्रचारक फूट देवी का आश्रय लेकर अलग-अलग काम करें, और भिन्न-भिन्न केंद्रों में अपनी शक्ति को बाँटकर सफलता देवी से दूर हटते चले जायँ। इस डाइन फूट ने हमारे छोटे-बड़े सभी राष्ट्रीय कामों में अड़चनें डाली हैं। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि मदरास में हिंदी-प्रचार के काम में इसकी छाया भी न पड़ने पावे। क्या अपना सर्वस्व त्यागकर मातृभाषा का प्रचार करनेवाले हमारे देश-भक्त इस छोटे-से मामले में भी मिलकर काम नहीं कर सकते? हमारा विश्वास है, वे कर सकते हैं, और करेंगे भी। तभी मदरास में राष्ट्रभाषा हिंदी का अभिषेक होगा। तथास्तु।

× × ×

१६. कोहाट और महात्माजी

अपना २१ दिन का निराहार-व्रत पूरा कर चुकने के बाद महात्माजी ने सबसे पहले कोहाट जाने की इच्छा प्रकट की; परंतु चूँकि उन्हें नौकरशाही के हथकंडे मालूम हैं, और वह जानते हैं कि ब्यूरोक्रेसी तिल को ताड़ बना देने में बहुत सिद्धहस्त है, इसलिये सीधे कोहाट जाने के पूर्व उन्होंने वायसराय को इस संबंध में सूचना दे दी। वायसराय ने तुरंत उनको लिख भेजा कि नहीं, अभी आप वहाँ कदापि न जाइएगा; नहीं तो सरकार सुलह कराने का जो प्रयत्न कर रही है, वह व्यर्थ हो जायगा। महात्माजी ने वायसराय की निषेधाज्ञा को मान लिया, और नहीं गए। ख़ैर, यह तो घटना का यथातथ्य-वर्णन है। पर इस संबंध में कहना यह है कि क्या कोई स्वप्न में भी इस बात पर विश्वास कर सकता है कि महात्माजी के कारण हिंदू-मुसलमान-वैमनस्य बढ़ सकता है! यों सरकार चाहे, जो कहा करे। हमारा विश्वास है कि महात्माजी के कोहाट जाने से मेल-मिलाप की समस्या सहज ही में सुलझ जाती। पर होता वही है, जो ईश्वर को स्वीकार होता है। यद्यपि इस समय श्रीगांधीजी कोहाट नहीं जा सके, फिर भी उनका ध्यान सदा कोहाट ही की ओर रहता है। हाल ही में एक विज्ञप्ति निकालकर उन्होंने इस प्रश्न पर फिर से प्रकाश डाला है। उनका कहना है—"कोहाट का प्रश्न सारे भारत का प्रश्न है। इसलिये देश के प्रत्येक हिंदू-मुसलमान को उसमें दिलचस्पी लेनी चाहिए। समझौता ऐसा होना चाहिए कि दोनों जातियों के सम्मान की रक्षा हो। सरकार कहती है कि दोनों जातियों में मेल कराने के लिये वह उत्सुक है। यदि बात ऐसी ही है, तो उसे चाहिए कि समझौते की शर्तों को सर्व-साधारण के सामने प्रकट करके सबको अवसर दे कि उसके अनुकूल या प्रतिकूल सम्मति दे सकें।" नहीं जानते, सरकार महात्माजी की इस नेक सलाह को मानेगी या नहीं। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि जो समझौता चोरी-छिप्पा होगा, उससे किसी को भी संतोष न होगा। अब तक सरकार की ओर से जो सबसे बड़ी सहानुभूति-सूचक बात प्रकट हुई है, वह यह है कि कोहाट-पीड़ितों की सहायता में जो फ़ंड खुला है, उसमें वायसराय ने पंद्रह सौ रुपए तथा और कई ऊँचे कर्मचारियों ने भी प्रकाश्य रूप से चंदा दिया है।

× × ×

१७. भारतवर्ष का कर-भार

भारतवर्ष के राज्य-पदाधिकारियों का कथन है कि इस देश में प्रजा का कर-भार जितना हलका है, उतना

भू-मंडल के किसी देश का नहीं है। इसका प्रमाण यह दिया जाता है कि इँगलैंड में राजकीय आय का ⅙ भाग करों से प्राप्त होता है, और भारतवर्ष में केवल ¼। किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह कथन बिलकुल ही भ्रामक सिद्ध होता है। कर-भार का भारी या हलका होना प्रजा की आय पर निर्भर है। प्रजा की आय जितनी ही अधिक होगी, उसमें कर-भार के सहन करने की शक्ति भी उतनी ही अधिक होगी। एक आदमी पंसेरी-भर आटे में से पाव-भर किसी फ़क़ीर को विना किसी कष्ट के दे सकता है, लेकिन पाव-भर में से आध पाव दान देना आसान नहीं है। ऐसा दान देनेवाले को खले विना नहीं रह सकता। औसत हिसाब से इँगलैंड के प्रत्येक व्यक्ति की संपत्ति की मूल्य ६,०००) है, और वार्षिक आय ७२०) रु०। पर भारतवर्ष में संपत्ति का औसत कुल १८०) और वार्षिक आय ४३) रु० है। वार्षिक आय ≈)॥ रोज़ाना से अधिक नहीं बैठती। इस प्रकार प्रजा की दैनिक आय जब केवल ≈)॥ है, तो उससे चाहे जितना कम कर लीजिए, वह उसे असह्य ही प्रतीत होगा। इँगलैंड की कुल जातीय आय २,२५० मिलियन पौंड है। इस पर कर ६०० मिलियन पौंड अर्थात् ७½% है। भारत की कुल आमदनी १७० मिलियन पौंड है, और कर ४५ मिलियन पौंड है। यहाँ भी प्रति मनुष्य ७½% के हिसाब से कर का बोझ पड़ता है। इससे यह प्रकट हो जाता है कि भारतवर्ष का कर-भार इँगलैंड-जैसे धनसंपन्न देश की अपेक्षा ज़रा भी कम या हलका नहीं है। और, जब आय के हिसाब से देखिए, तो यह कथन कि भारत का कर-भार हलका है, सर्वथा भ्रम सिद्ध होता है। यह बात भी विचारणीय है कि इँगलैंड में जितना कर प्रजा से लिया जाता है, उसका बहुत बड़ा भाग किसी-न-किसी रूप में फिर प्रजा को वापस मिल जाता है। वहाँ शासन का ख़र्च भारत की अपेक्षा बहुत कम है, और पेंशन की मद में करोड़ों रुपए विदेश को नहीं भेजने पड़ते। दोनो देशों के कर्मचारियों के वेतन की तुलना कीजिए, तो आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। इँगलैंड में प्रधान मंत्री का वेतन केवल ६,००० पौंड है। भारत में यह वेतन एक हाई कोर्ट के जज को मिलता है। प्रांतीय गवर्नरों का इसका दूना और वायसराय का इसका चौगुना वेतन है। ऐसी अवस्था में भारत के कर-भार को हलका बताना जले पर नमक छिड़कने के सिवा और क्या समझा जा सकता है ?

× × ×

१८. महमूद ग़ज़नी और फ़िर्दौसी

फ़िर्दौसी फ़ारसी का बड़ा प्रसिद्ध कवि है। इसकी रचना शाहनामा इसकी अमर कीर्ति है। कहते हैं, उसने यह महाकाव्य महमूद ग़ज़नी के आदेश से लिखा था। जब पुस्तक तैयार हो गई, तो महमूद ने हुक्म दिया कि फ़िर्दौसी को हर शेर के लिये एक चाँदी का सिक्का पुरस्कार में दिया जाय। फ़िर्दौसी ने समझा था, कम-से-कम एक शेर के लिये एक स्वर्ण-मुद्रा मिलेगी। चाँदी की मुद्राएँ उसने नहीं लीं, और नाराज़ होकर दरबार से चला गया। उसी गुस्से में बादशाह की एक हजो भी कह डाली। अब रिसाला 'उर्दू' में एक विद्वान् मुसलमान लेखक ने सिद्ध किया है कि यह कथा सर्वथा निर्मूल है। उनका कहना है कि महमूद ग़ज़नी बड़ा कविता-प्रेमी और कवियों का क़दरदान बादशाह था। उसके दरबार में ४०० से अधिक कविजनों को आश्रय मिलता था। उंसरी इस कविमंडल का नेता था। कई बार बादशाह ने एक-एक कविता के इनाम में उंसरी का मुँह मोतियों से भरवा दिया था। एक दूसरे कवि को उसने एक क़सीदे के पुरस्कार में १४,००० स्वर्ण-मुद्राएँ प्रदान की थीं। इन प्रमाणों के होते हुए यह क्योंकर माना जा सकता है कि उसने फ़िर्दौसी-जैसे कवि के साथ इतनी कृपणता का व्यवहार किया होगा। संभवतः किसी द्वेषी कवि ने महमूद की कीर्ति को कलंकित करने के लिये इस किंवदंती की सृष्टि की है।
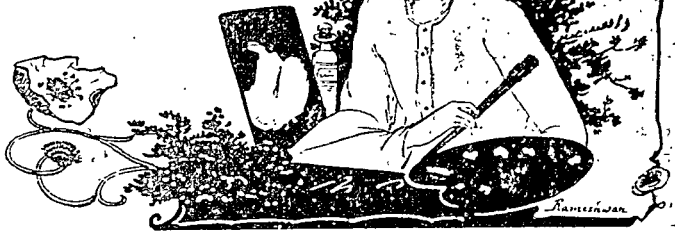
१. रंगीन

पहला चित्र बलि-वामन है। इसके चित्रकार श्रीयुत रामकृष्णदेव गर्गजी हैं। किसी पुराने चित्र की नक़ल है। इसकी कथा पौराणिक है। राजा बलि अपने गुरु शुक्राचार्य की कृपा से यज्ञ करके अजेय हो उठे थे। इन असुराधिप ने देवतों को जीतकर स्वर्ग से निकाल बाहर किया। देव-माता अदिति से अपने पुत्रों का दुःख न देखा गया। उन्होंने विष्णु को प्रसन्न कर वर माँगा। विष्णु ने पुत्र होकर देवतों को फिर राज्य दिलाने का वर दिया, अदिति के गर्भ से स्वयं वामन-अवतार लिया, बलि से यज्ञशाला में जाकर तीन पग पृथ्वी रहने को माँगी। बलि के दान देने पर वामन से विराट् बन गए, और तीनों लोक इस तरह प्राप्त कर इंद्र को दे दिए। चित्र में राजा बलि वामन को दान दे रहे हैं। उनकी रानी और एक भृत्य भी है। चित्र दर्शनीय है। किंतु इसमें दो-एक त्रुटियाँ रह गई हैं। एक यह कि वामनजी की आयु बहुत अधिक दिखाई गई है। वामनजी तो जन्म के कुछ ही समय बाद राजा बलि से भिक्षा माँगने चले गए थे। दूसरी यह कि वामनजी जब बलि के पास गए थे, तो वह यज्ञशाला में थे। पलंग या तख़्त पर नहीं बैठे थे, और न उनके पास पीकदान ही रक्खा था। ये दोनों दोष न होते, तो चित्र बहुत ही उत्कृष्ट होता। इसका कारण, चित्रकार की भागवत की कथा से अनभिज्ञता जान पड़ती है। पुरानी चित्रकारी के नमूने के तौर पर ही हम इसे प्रकाशित कर रहे हैं।

दूसरा चित्र श्रीयुत काशिनाथ गणेश खातूजी का "चिंता-मग्ना" है। चिंता का भाव और तन्मयता कैसी अच्छी रीति से व्यक्त की गई है।

तीसरा चित्र है जगत्प्रसिद्ध सुंदरी-शिरोमणि और जहाँगीर बादशाह की प्यारी बेगम नूरजहाँ का। नूरजहाँ के असली चित्र की यह कापी श्रीयुत रामनाथजी गोस्वामी ने की है। नूरजहाँ की कथा प्रसिद्ध है, अतएव यहाँ पर लिखने की आवश्यकता नहीं। चित्र में नूरजहाँ बैठी शृंगार कर रही हैं; एक सखी चँवर डुला रही है, दूसरी आईना लिए खड़ी है, और तीसरी के हाथ में गजरा है। सबसे बढ़कर कमाल यह है कि दूर पर यमुना में बजरे पर जहाँगीर का जो सैर करना दिखाया गया है, वह केवल ½ इंच स्थान में! चित्र की ख़ूबियाँ ग़ौर करने पर अच्छी तरह दिखाई देती हैं।

२. व्यंग्य-चित्र

पहला व्यंग्य-चित्र है दो जोरुओं के बीच में। चित्रकार हैं श्रीयुत गुरुस्वामी। दो स्त्रियों की खींचातानी में पड़े हुए पुरुषपुंगव की दयनीय दुर्दशा दर्शनीय है।

दूसरा व्यंग्य-चित्र है संपादकजी और लेखक-मंडली। श्रीयुत मोहनलाल महत्तो गयावाल ने इसको बनाया है। महत्तोजी व्यंग्य-चित्र बनाने में उत्तरोत्तर उन्नति करते जा रहे हैं। आपकी कविताएँ भी अच्छी होती हैं। हम आपकी उन्नति देखकर बहुत प्रसन्न हैं। युग-प्रवर्तक (?) लेखकों और कवियों की रचनाओं की बाढ़ के मारे संपादकजी कितने बदहवास हैं, यह चित्र में आपने बड़ी ही ख़ूबी से दिखाया है।

वर्ष ३ ; खंड १] पौष, ३०१ तुलसी-संवत [संख्या [illegible] ; पूर्ण संख्या ३०

संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥) छमाही मूल्य ३॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

प्रतीक्षा

[चित्रकार—श्रीयुत ए० आर० असग़र]

पाँउ न आयो, ध्यान मैं, मूँदे लोचन बाल ;
पलक उघारी पलक मैं, आयो होइ न लाल ।

(महाकवि मतिराम)

N. K Press, Lucknow.

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ३ खंड १ | पौष-शुक्ल ७, ३०१ तुलसी-संवत् (१९८१ वि०)— १ जनवरी, १९२५ ई० | संख्या ६ पूर्ण संख्या ३०

विश्व-संगीत ❀

विश्व-गीत के गायक बंधो, नित्य नया है तेरा गान ;
तरल तरंगों की तालों पर थिरक रही है जिसकी तान।
मेघ-मृदंग, नदी-नद-नूपुर, वात-नाद-वीणा कर धार,
सुंदर साज सजाकर नटवर बंद किया चेतन का द्वार।
सात स्वरों के सुख-सागर पर तैर रहा सारा संसार ;
शांत, मुग्ध उस नीरवता में उठता है मानस-उद्गार।
आदि काल से तू गाता है, अब मुझको भी गाने दे ;
ऐ रागी, ऐ चतुर गवैए, लय में लय हो जाने दे।

सुशीलादेवी स्नातिका

❀ देहरादून के कवि-सम्मेलन में माधुरी-संपादक श्री-दुलारेलाल भार्गव द्वारा स्वर्ण-पदक से पुरस्कृत।

हिंदू-धर्म की क्रमोन्नति

उपक्रम

हमने इस विषय पर अपने भारतवर्ष के इतिहास के दोनों भागों में, ढाई-तीन सौ पृष्ठों में, अपने विचार, प्राचीन आधारों की सहायता लेकर, प्रकट किए हैं। इसी विषय पर एक छोटा-सा लेख माधुरी में भी हमने लिखा था, जिसके अंत में यह कहा गया था कि अधिक ग्रंथावलोकन से जब इस विषय पर कुछ और ज्ञान-वृद्धि होगी, तब प्रिय पाठकों की सेवा में फिर उपस्थित होने की धृष्टता की जायगी। आजकल डाउसन महाशय के लिखे हिंदू-क्लासिकल कोश (Classical Dictionary) तथा सर रामकृष्ण-गोपाल भांडारकर के लिखे वैष्णव

तथा शैव मत पर ग्रंथ देखने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ, तो इस प्राचीन विषय पर कुछ विचार और उत्पन्न हुए। ये दोनों ग्रंथ अँगरेज़ी में हैं। इसलिये अपने प्राचीन विचारों में इनके देखने से जो वृद्धि हुई है, उसका कुछ वर्णन यहाँ पर किया जाता है।

हिंदू-धर्म के सबसे प्राचीन विचार ऋग्वेद तथा पारसियों के अवस्ता-ग्रंथ में प्राप्त होते हैं। उनके देखने से जान पड़ता है कि हमारे पूर्वपुरुष सबसे पहले वरुण को सर्वोत्कृष्ट देवता मानते थे। इसकी कुछ छाया ऋग्वेद में भी मिलती है। उसमें लिखा है कि यह आकाश और पृथ्वी को स्थिर रखनेवाले, प्रकृति के शुद्धता-पूर्वक संचालक, सत्य और ज्योति के स्वामी, सूर्य का मार्ग बनानेवाले और संसार-भर को ठीक मार्ग पर रखनेवाले हैं। इस वर्णन में इनका पद पीछे पूज्य होनेवाले भगवान् विष्णु के पद से बहुत कुछ मिलता है। वैदिक समय से पूर्व इनका पद इससे भी ऊँचा है। यह बात ऋग्वेद और अवस्ता को मिलाकर पंडितों ने निकाली है। ऋग्वेद में इंद्र का पद सब देवतों से ऊँचा है। यहाँ तक कि विष्णु के विषय में भी कहा गया है कि वह इंद्र से कम हैं, और उपेंद्र कहकर भी उनका सम्मान ही किया गया है। ऋग्वेद ही में इंद्र, अग्नि, वरुण, मरुत्, सोम आदि की पूर्ण महिमा अवश्य है, किंतु ईश्वर का विचार नहीं छोड़ा गया। स्कंद, विश्वकर्मा, प्रजापति आदि शब्दों से उनका स्मरण किया गया है, और यह भी माना गया है कि इंद्रादि ईश्वरीय प्रभाव से ही महत्ता-युक्त हैं। उपनिषद्-साहित्य में ईश्वर का ज्ञान और भी बढ़ गया है। यह पीछे से त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) का माहात्म्य बढ़कर इंद्र आदि को तुच्छ कर देता है। इसके भी पीछे अवतारों का विचार उठता है। हमने लिखा है कि आदिकवि महर्षि वाल्मीकि बुद्ध भगवान् के पूर्ववर्ती थे। यह भी कहा है कि उनके समय तक अवतारों का विचार नहीं उठा था। हमारा कथन था कि भगवान् गौतम बुद्ध की महत्त्व-पूर्ण जीवनी तथा खंडनात्मक उच्च उपदेशों से भारत में पहले-पहल व्यक्तित्व का बड़ा भारी माहात्म्य बढ़ा, जिससे बुद्ध भगवान् के प्रति अवतार का विचार स्थिर हुआ, और पीछे से आठ पूर्ववर्ती और एक परवर्ती व्यक्तियों में भी अवतार का भाव जोड़कर दशावतार-संबंधी विचारों की कल्पना हुई। इसी विषय पर डाउसन तथा भांडारकर महाशयों के ग्रंथों से जो विचार मिलते हैं, उनका सूक्ष्म रूप से वर्णन करके हम यहाँ पर धार्मिक क्रमोन्नति भी दिखलावेंगे। त्रिमूर्ति के विषय में हमने अपना यह विचार प्रकट किया था कि यह कल्पना आर्य तथा अनार्य सभ्यताओं के मिश्रण का फल है।

डाउसन की खोज का सारांश

पहले डाउसन की खोज का फल दिया जाता है। वेद में शिव का उल्लेख नहीं है, किंतु रुद्र का है, जिससे शिव के विचार निकले हैं। यजुर्वेदीय शतरुद्रिय में रुद्र कृपाकर हैं, न कि भयानक। अथर्व-वेद में वह पशुओं के रक्षक हैं; किंतु उनकी भयानकता बढ़ी हुई है। वह अंधकार-पूर्ण, काले, भयानक तथा घातक हैं। उनसे यह प्रार्थना की जाती है कि वह अन्यत्र जायँ, तथा मानव जाति पर क्षयी, विष या आकाशीय अग्नि से आक्रमण न करें। ब्राह्मण-ग्रंथों का कथन है कि जब रुद्र उत्पन्न हुए, तब इसलिये रोने लगे कि उन्हें कोई नाम नहीं मिला था। इस पर प्रजापति ने उन्हें रुद्र नाम दिया। उपनिषदों में रुद्र कहते हैं—"मैं अकेला और औरों से पूर्व था; मैं अब भी हूँ; और भविष्य में भी रहूँगा।" उनका आदि, मध्य अथवा अंत नहीं है। उमा उनकी स्त्री हैं। रामायण में वह महादेव हैं; किंतु स्वतंत्र देवता का भाव उनमें अधिक है, और परमात्मा का कम। महाभारत में वह ब्रह्मा, विष्णु और इंद्र के उत्पादक तथा स्वामी हैं। महाभारत में शिव, विष्णु और कृष्ण का अभिन्न या एक ही होना भी कहा गया है। पुराणों में शैव पुराण शिव का माहात्म्य बढ़ाते हैं, तथा वैष्णव पुराण विष्णु का। इस प्रकार वैदिक रुद्र अगले युग में बढ़ते-बढ़ते महान् तथा शक्ति-संपन्न शिव हो गए। तो भी विनाश-संबंधी विचार उनमें स्थापित रहे। फिर भी, जो कुछ वह नष्ट करते हैं, उसका पुनरुद्धार भी कर देते हैं। इसी से वह ईश्वर भी हैं। उनका धनुष पिनाक है।

डाउसन के मतानुसार ऋग्वेद में विष्णु सर्वोत्कृष्ट नहीं हैं। उनके तीन पगों का कथन है। वह अजित, स्थिर और कर्ता हैं। ब्राह्मण-ग्रंथों में उन्हें नवीन गुण मिलते हैं, और उनके विषय में ऐसी कथाएँ भी लिखी जाती हैं, जो वेदों में अज्ञात हैं। मनुस्मृति में उनका नाम आया है; किंतु उसमें उनके भारी देवता होने के विचार नहीं हैं। महाभारत तथा पुराणों में विष्णु, सत्त्वगुण-युक्त होकर, दया-

और भलाई करनेवाले कहे गए हैं। जल में विचरण करने से वह नारायण हैं। वैष्णव लोग उन्हें सर्वोपरि सर्वशक्तिमान् मानते हैं। वह प्रजापति और परमेश्वर हैं। महाभारत में विष्णु सर्वोपरि हैं; किंतु हर जगह ऐसा नहीं लिखा है। उसमें सब मिलाकर विष्णु और शिव समान माने गए हैं।

ब्रह्मा हिंदू-त्रिमूर्ति के पहले देवता हैं। वह उस ब्रह्मांड से निकले, जिसे प्रजापति अथवा ईश्वर ने बना रक्खा था। ब्रह्मा लाल रंग के हैं। चतुरानन, अष्टकर्ण आदि उनके नाम हैं। ब्रह्मा का नाम वेदों और ब्राह्मण-ग्रंथों में नहीं मिलता; उनमें सृष्टि-कर्ता को हिरण्यगर्भ, प्रजापति आदि नामों से पुकारा गया है। शतपथ-ब्राह्मण में लिखा है कि नपुंसक-लिंग ब्रह्म ने देवतों को उत्पन्न किया। शतपथ और मनु का कथन है कि परमात्मा ने जल उत्पन्न करके उसमें बीज डाला, जो सोने का अंडा हो गया। इसी अंडे में परमात्मा संसार के बनानेवाले ब्रह्मा के रूप में उत्पन्न हुआ। जल में विचरण करने के कारण ब्रह्मा नारायण कहलाए। अतएव हम देखते हैं कि यद्यपि आगे चलकर नारायण विष्णु का नाम हुआ, तथापि यहाँ पर वह ब्रह्मा का नाम है। रामायण में लिखा है कि पहले सर्वत्र जल-ही-जल था, जिसमें पृथ्वी बनी। उसी से स्वयंसत्तात्मक ब्रह्मा हुए। तब उन्होंने वराह बनकर पृथ्वी को उठाया, और सारे जगत् को उत्पन्न किया। विष्णुपुराण में लिखा है कि नारायण कहलानेवाले ब्रह्मा ने सब जीवधारियों को बनाया। पूर्व कल्पों में प्रजापति ने जैसे मत्स्य, कच्छ आदि रूप रक्खे थे, वैसे ही वह वराह होकर जल में घुसे। लिंगपुराण का कथन है कि वाराह अवतार ब्रह्मा का था। डाउसन ने ब्रह्मा का इसी प्रकार वर्णन किया है। हमने श्वेताश्वतर तथा मुंडक-उपनिषद् में भी ब्रह्मा का वर्णन पाया है। यथा—"जो ब्रह्मा को आदि में उत्पन्न करता और उसको वेद आदि देता है, उस आदिपुरुष के हम मुमुक्षु शरण हैं।" (श्वेताश्वतर) "ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।" (मुंडक)

अवतार का विचार तो ऋग्वेद में नहीं है, किंतु उसमें विष्णु के तीन पगों का वर्णन है। इसी कथन से यथासमय अवतार-संबंधी विचार निकले। तैत्तिरीयसंहिता, तैत्तिरीय-ब्राह्मण तथा शतपथ-ब्राह्मण में कहा गया है कि प्रजापति ने वराह का रूप धारण किया। यही प्रजापति पीछे से ब्रह्मा कहलाए। प्रजापति ने वराह होकर पृथ्वी को ऊँचा किया। रामायण (वाल्मीकि-कृत) में भी ब्रह्मा का वराह होकर पृथ्वी को ऊँचा करना कहा गया है। शतपथ-ब्राह्मण में लिखा है कि प्रजापति ने कच्छप-रूप धारण करके संतान उत्पन्न की। यह कर्म "अकरोत्" करके लिखा गया है। इसी से वह कूर्म कहलाए। मत्स्यावतार का सबसे प्रथम कथन महाप्रलय के संबंध में शतपथ-ब्राह्मण में है। अतएव प्राचीन ग्रंथों में मत्स्य, कच्छप और वाराह अवतार प्रजापति अथवा ब्रह्मा के कहे गए हैं। महाभारत में विष्णु सब देवतों में उत्कृष्ट कहे गए हैं, और उनके कई अवतारों का उल्लेख भी है। पुराणों में इस विचार की पूर्ण उन्नति हुई है। भागवत पुराण का कथन है कि वेदों को बचाने के लिये विष्णु ने मत्स्य का अवतार लिया। मत्स्य, कच्छप, वराह और नृसिंह के अवतार सत्ययुग में हुए। श्रीभागवत में २२ अवतार लिखे हैं।

उक्त कथनों से प्रकट है कि प्राचीन ग्रंथों में, अर्थात् गौतम बुद्ध से पहले के ग्रंथों में, केवल मत्स्य, कच्छप तथा वाराह अवतारों का ही कथन है, बल्कि यह कहना चाहिए कि ब्रह्मा या प्रजापति का उन रूपों में विशेष कार्य करना लिखा है। अतः मनुष्यों में कोई भी पुरुष अवतारी नहीं माना गया था। और, जो तीन अवतार माने गए, उनके विषय में भी जन्म-मरणादि के कथन नहीं हुए, केवल इतना विचार हुआ कि ब्रह्मा ने वे रूप धारण करके समय-समय पर कार्यविशेष किए। त्रिमूर्ति के विषय में भी गौतम बुद्ध के पूर्व अथवा ब्राह्मण-काल तक काफ़ी उन्नति नहीं हुई, अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश का एकीकरण और एक ईश्वर के तीन अंग होना बहुत प्रकट नहीं हुआ।

सर भांडारकर की खोज पर विचार

भांडारकर महाशय ने इस विषय पर डाउसन से अधिक श्रम किया है; और बहुत-से चमत्कार-पूर्ण विचार लिखे हैं। आपने सिद्ध किया है कि यद्यपि ऋग्वेद में विष्णु तथा रुद्र, दोनों का उल्लेख है, तथापि अन्य वेद तथा वैदिक साहित्य देखने से प्रकट होता है कि ईश्वरता का भाव रुद्र के संबंध में बहुत प्राचीन काल से उठा था, और विष्णु के संबंध में बहुत पीछे। ऋग्वेद के ऋषियों ने भयानक और नाशकारी शक्तियों में रुद्र का भाग देखा।

इनके उदाहरण तूफ़ान, गाज, मरी आदि हैं। फिर भी रुद्र केवल हानिकारक नहीं हैं, बल्कि आराधना करने से उक्त व्याधियों को हटाकर मनुष्य को लाभ पहुँचाते हैं। इस दशा में वह रुद्र न होकर शिव हैं। इस प्रकार रुद्र-शिव-संबंधी विचार वेदों में उठा। शिव होने में ये पशुप तथा वैद्यराज हैं। यजुर्वेद की शतरुद्रिय में शिव के साथ ईश्वर-संबंधी विचार जुड़ गए हैं। कपर्दी के रूप में आप अग्नि से मिले हुए हैं; क्योंकि अग्नि का धुआँ जटाओं के समान होता है। शतरुद्रिय के अंत में शिव, शंभु, शंकर आदि के लाभकारी नाम आते हैं। अथर्व-वेद में भव तथा शर्व दो पृथक् देवता हैं, जो सबसे शीघ्र बाण चलानेवाले माने गए हैं। देवतों ने भव को व्रात्यों (जातिच्युत लोगों) का संरक्षक बनाया। शतपथ तथा कौषीतकी ब्राह्मणों में रुद्र उपस के पुत्र कहे गए हैं, और यह लिखा है कि प्रजापति ने इन्हें आठ नाम दिए, जिनमें रुद्र, शर्व, उग्र और अशनि हानिकर हैं, तथा भव, पशुपति, महादेव और ईशान लाभकर। अथर्व-वेद कहता है कि रुद्र विष भेजते हैं, और इनके बाणों से मनुष्य या देवता कोई भी नहीं बच सकता। इस प्रकार यजुर्वेद तथा अथर्व-वेद में शिव पूर्ण ईश्वरता पा जाते हैं। आश्वलायन-गृह्यसूत्र में कहा गया है कि रुद्र को प्रसन्न करने के लिये बैल का बलिदान दिया जाता था। गृह्यसूत्रों के समय तक रुद्र की भयानकता शेष रही, और उन्हें प्रसन्न करने की आवश्यकता थी। श्वेताश्वतरोपनिषद् में शिव की कुछ-कुछ वैसी ही महिमा है, जैसी गीता में विष्णु की। मुंडकोपनिषद् में माया प्रकृति है, और मायी महेश्वर। जिस समय न दिन था, न ज्योति; न सत्ता न अभाव; केवल अंधकार-मात्र था; उस समय केवल शिव विद्यमान थे। वह न तो पुरुष हैं, न स्त्री, न लिंगहीन व्यक्ति। इन स्थानों पर ऐसा नहीं समझ पड़ता कि विष्णु की महिमा घटाने को शिव की महिमा बढ़ाई गई हो, बल्कि ये वर्णन स्वाभाविक हैं। उस समय तक विष्णु की महत्ता थी ही नहीं, और केवल शिव परमात्मा थे। वासुदेव कृष्ण के पूजन का विधान पीछे से बढ़ा, और तब शैव तथा वैष्णव मत पृथक् हुए। केनोपनिषद् में उमा देवी देवतों को ईश्वर का महत्त्व समझाती हैं। उमा शिव की स्त्री हैं, अतः उन्होंने रुद्र अथवा शिव को ही ईश्वर बतलाया होगा, ऐसा अनुमान कुछ असंगत नहीं माना जायगा।

महाभारत में शिव की महिमा यथेष्ट वर्णित है। उपमन्यु ऋषि कहते हैं—"महादेव ही ऐसे देवता हैं, जिनके लिंग तक का पूजन होता है।" जब इनके सामने बैल पर सवार उमा और शिव प्रकट हुए, तब हंसारूढ़ ब्रह्मा और गरुड़गामी नारायण दोनों ओर उनकी सेवा में विद्यमान थे। इससे शिव का महत्त्व बढ़ा हुआ देख पड़ता है। अनुशासन-पर्व में यह भी लिखा है कि शिव व्रात्यों (अर्थात् अनार्यों) के उपास्य देव हैं। निषाद-जाति भी इनका पूजन करती थी। किसी समय भारत में नागों की पूजा होती थी, तथा अनार्य लोगों में भूत भी पूजे जाते थे। इधर महादेव के आभूषण सर्प हैं, और वह भूतपति भी कहे जाते हैं। ऋग्वेद के सातवें मंडल में लिखा है—"हे इंद्र, तू शिवपूजकों के हाथ से वेदपाठियों का सताया जाना बंद कर।" उसी मंडल में एक स्थान पर इंद्र के द्वारा शिश्नपूजकों के वध का भी वर्णन है। ऋग्वेद के इन वर्णनों से प्रकट होता है कि लिंग-पूजा अनार्यों में प्रचलित थी। इन बातों से स्पष्ट है कि शिव के पूजन और उनके संबंध के अनेक विचारों में अनार्यों का भारी असर पड़ा है। ऋग्वेद में आर्यों और अनार्यों का परस्पर शत्रुता रखने का वर्णन है। किंतु यजुर्वेद में अनार्यों के साथ आर्यों के प्रेम-पूर्ण व्यवहार का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद की रचना के काल में दोनों दलों में मेल हो चुका था। इसीलिये जहाँ ऋग्वेद लिंगपूजकों को बुरा कहता है, वहाँ यजुर्वेद के शतरुद्रिय में शिव परमेश्वर माने गए हैं। और, महाभारत के काल में तो आर्य-जातियाँ भी लिंग-पूजन को सादर अपना चुकी थीं, और रुद्र को ईश्वर मानने लगी थीं, यह विचार महाभारत से ही पुष्ट होता है। इस प्रकार शिव-संबंधी उच्च विचारों की महत्ता यजुर्वेद के काल में ही पूर्ण रूप से मान्य हो गई थी।

अब हम विष्णु-संबंधी विचारों की प्राचीनता पर ध्यान देते हैं। ऋग्वेद में विष्णु का उल्लेख है अवश्य, मगर इस विषय की ऋचाएँ थोड़ी ही हैं। विष्णु के तीन पगों में दो देख पड़ते हैं, तीसरा नहीं। बुद्धिमान् लोग विष्णु का "परमम् पदम्" जानते हैं। वहाँ मधुकूप है, और वह देवगण को प्रसन्न करनेवाला है। विष्णु इंद्र के साथी तथा सहायक हैं। इंद्र से इनका पद छोटा है। यजुर्वेद तथा अथर्व-वेद में शिव की महिमा जितनी बढ़ाई गई है,

उतनी विष्णु की नहीं। ब्राह्मण-काल में विष्णु की महिमा बढ़ने लगी। ऐतरेय-ब्राह्मण में लिखा है कि देवतों में अग्नि का सबसे नीचा तथा विष्णु का सबसे ऊँचा पद है। शतपथ-ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार विष्णु भगवान् देव-मंडली में सर्वोपरि हैं। शतपथ-ब्राह्मण में वामन के विषय में लिखा है कि देवतों तथा असुरों में यज्ञ-स्थान के लिये झगड़ा हुआ, तो असुरों ने कहा—हम वामन के बराबर भूमि देंगे। इस पर वामन पृथ्वी पर लेट गए, और लेटे-ही-लेटे इतना बढ़े कि सारी पृथ्वी पर फैल गए। सारी पृथ्वी देवतों को मिल गई। मैत्रेय-उपनिषत् में भोजन को भगवान् विष्णु का रूप कहा गया है; क्योंकि वही संसार का पोषण करता है। कठोपनिषत् में कहा है कि मनुष्य-देहधारी जीव की उन्नति का चरम उत्कर्ष विष्णु के परम पद की प्राप्ति ही है। महाभारत में विष्णु परमात्मा माने गए हैं। नारायण और कृष्ण के नाम से भी उनका उल्लेख है। वासुदेव का इन दोनों से अभिन्न होना भी कहा गया है। श्रीभगवद्गीता में वह रुद्र तथा ब्रह्मा से बड़े कहे गए हैं (यह मत भांडारकर की राय के ख़िलाफ़ है)। गीता में अर्जुन को और अश्वमेध-पर्व में उत्तंक ऋषि को जिस विराट् स्वरूप या विश्वरूप के दिखलाने का वर्णन है, वह विष्णु ही का रूप बतलाया गया है। ये दोनों रूप वासुदेव कृष्ण ने दिखलाए थे, अतः वह विष्णु ही का अवतार थे। शांति-पर्व में भी कृष्ण को विष्णु माना है। अन्य पुराणों में भी विष्णु परमात्मा कहे गए हैं। उनमें नारायण और वासुदेव कृष्ण का विष्णु से भी अधिक महत्त्व प्रकट किया गया है। श्रीयुत भांडारकर के मत से विष्णु वैदिक, नारायण दार्शनिक, और वासुदेव ऐतिहासिक देवता हैं। आपकी यह भी सम्मति है कि वासुदेव कृष्ण का पूजन भगवान् कृष्ण के समय से ही प्रचलित हो गया था। उनका कहना है कि भीष्म ने स्वयं कहा है—सात्वतों की विधि से वासुदेव का पूजन करना चाहिए, और यह प्रकट ही है कि कृष्ण सात्वत-वंश की संतान थे। इसी से भांडारकर कहते हैं कि कृष्ण का पूजन सात्वत-वंशियों में उन्हीं के समय में चल चुका था। पर हमें यह बात ठीक नहीं जँचती। सात्वत-वंश अवश्य था, किंतु भीष्म-पर्व तथा 'नारायणीय' में वासुदेव का जो सात्वत-विधि से पूजन वर्णित है, उसका उस सात्वत-वंश से कोई संबंध नहीं है। कारण, वहाँ सात्वत-शब्द से उस वंश का नहीं, सदुपासकों का बोध होता है। उसका अर्थ यही है कि अच्छे उपासकों की विधि से वासुदेव का पूजन किया जाय। सात्वत-वंशियों की विधि का अर्थ लगाने को क्लिष्ट-कल्पना के सिवा क्या कहा जा सकता है? जितने लोग सत् के उपासक हैं, वे सब सात्वत कहलाते हैं। पुराणों में और भारत में भी सात्वत-वंशियों में कृष्ण-पूजा प्रचलित होने का कहीं भी उल्लेख नहीं है। मुशल-पर्व में उन्हीं लोगों ने भगवान् कृष्ण के सामने ही उनके पुत्र-पौत्रों की हत्या कर डाली, और स्वयं कृष्ण पर भी प्रहार किए। वे सात्वत (यादव) कृष्ण को देवता की तरह पूजते थे, यह अनुमान असंगत ही सिद्ध होता है। यादवों में कई घराने कृष्ण से जलते थे—यथा कृतवर्मा आदि।

हाँ, यह अवश्य माननीय है कि विष्णु, नारायण, वासुदेव तथा कृष्ण आगे चलकर एक ही माने गए। भांडारकर का कथन है कि इन तीन पूजन-विधानों के अतिरिक्त एक चौथा विधान जो बालक कृष्ण की महिमा का निकला है, वह अर्वाचीन है। हरिवंश, वायुपुराण और भागवत में बाल कृष्ण तथा बाल गोपाल कृष्ण की महिमा वर्णित है। किंतु आपका विचार है कि उसका प्रतिपादन महाभारत में नहीं है। सभा-पर्व में जहाँ शिशुपाल ने कृष्ण का विरोध करते हुए उनके प्रति जो गोपाल-शब्द का प्रयोग तथा पूतना-वध, गोवर्द्धन-धारण आदि का उल्लेख किया है, उस स्थल को आप प्रक्षिप्त मानते हैं। आपका कथन है कि ऋग्वेद गोविंद गउओं का खोज पाने को कहते हैं; और उसी से पौराणिक गोविंद-शब्द निकला है। शांति-पर्व में कृष्णचंद्र ने यह भी कहा है—"मैंने खोई हुई पृथ्वी पाई थी, इसलिये मेरा नाम गोविंद हुआ।" भगवान् कृष्ण के गोपियों के साथ विहार करने का वर्णन महाभारत में अवश्य ही नहीं है। यहाँ तक कि उनकी निंदा तक में उनके शत्रु शिशुपाल ने उन्हें पर-स्त्री-गामी होने का कलंक नहीं लगाया। आजन्मब्रह्मचारी भीष्म ने भी कृष्ण की सच्चरित्रता का माहात्म्य कहा है। यदि कृष्ण का चरित्र दूषित होता, तो शिशुपाल उस दोष को कहने में कुछ कोताही न करता, और न भीष्म-जैसे देवस्वरूप सदाचारी उनकी महिमा का बखान ही इस तरह श्रद्धा-पूर्वक करते। ये सब बातें शिशुपाल-वध के वर्णन को प्रक्षिप्त न मानने पर भी सिद्ध होती हैं।

रूप विष्णु का रूप है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि महाभारत विष्णु को रुद्र से इस स्थान पर बड़ा मानता है। मगर कुछ अन्य स्थानों में शिव को विष्णु से बड़ा कहा गया है। इन कारणों से हमारी समझ में भी यह कथन उचित होगा कि सब मिलाकर महाभारत के मत में शिव और विष्णु समान हैं।

अवतार

नारायणीय में वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम और कृष्ण नाम के छः अवतार कहे गए हैं, और फिर थोड़ी ही दूर आगे चलकर दशावतार का उल्लेख है। हंस, कूर्म, मत्स्य और कल्कि अवतार यहाँ और जोड़े गए हैं। हरिवंश में भी छः अवतार कहे गए हैं; किंतु वायुपुराण, वराहपुराण और अग्निपुराण में दस अवतार का उल्लेख है। और भागवत में सो बाईस, तेईस या सोलह अवतार हैं। सब मिलाकर दस अवतार ही प्रधान हैं। ऊपर दिखलाया जा चुका है कि कूर्म, मत्स्य तथा वराह पहले प्रजापति या ब्रह्मा के अवतार माने गए, फिर पीछे पौराणिक वर्णनों में ये तीन पूर्ववर्ती अवतार भी परवर्ती अवतारों के साथ विष्णु के अवतार माने जाने लगे। मनुष्यों में अवतार का विचार गौतम बुद्ध के पीछे से उत्पन्न हुआ। मत्स्य, कूर्म तथा वराह के जन्म-मरणादि नहीं कहे गए, केवल उनके विशेष कार्यों का कथन है। वराह के विषय में श्रीभागवत में इतना अवश्य कहा गया है कि वह ब्रह्मा की नासिका से छींकते समय निकले। किंतु वराहजी की भी मृत्यु का कहीं कथन नहीं है। अतएव यदि अधूरे वर्णनों के कारण ये अवतार न माने जायँ, तो कहा जा सकता है कि अवतार की कल्पना गौतम बुद्ध के पीछे हुई है। यदि उन्हें अवतार मान ही लें, तो भी यह कहना पड़ेगा ही कि मनुष्य-योनि में अवतार की कल्पना बुद्ध के पीछे की गई है, तथा विष्णु के भी अवतारों की कल्पना बुद्ध के बाद की है। त्रिमूर्ति के विषय में भी ऊपर के कथन से प्रकट है कि रुद्र और शिव, दोनों वैदिक देवता हैं, और रुद्र में ईश्वरीय भाव की कल्पना यजुर्वेद तथा अथर्व-वेद ही के समय में की गई है; किंतु विष्णु में इस भाव का आरोप ब्राह्मण-ग्रंथों में ही किया गया—विशेषतः नारायण के रूप में। पौराणिक समय में भगवत्, वासुदेव आदि नामों तथा विष्णु के अवतारों की प्रधानता हुई। ब्रह्मा का नाम वाल्मीकीय रामायण में आया है। उसके पीछेवाले ग्रंथों में भी वह पाया जाता है। अतएव प्रकट है कि त्रिमूर्ति की कल्पना सूत्र-काल में हुई, और विष्णु के अवतारों की पौराणिक काल तथा महाभारत में। शिव का पूजन तो अवैदिक तथा वैदिक समय से ही होता था, और विष्णु को भी यज्ञ में भाग मिलता था; किंतु प्रश्न यह है कि विष्णु, नारायण अथवा वासुदेव को ईश्वर मानकर कब से पूजा जाने लगा? यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है। नारायण का पूजन नारायणीय में लिखा है; किंतु उसका समय अनिश्चित है। महाभारत एक प्राचीन ग्रंथ अवश्य है। किंतु उसमें समय-समय पर नए अंश जुड़ते रहे हैं। अतः बिना किसी बाहरी प्रमाण के मिले यह नहीं कहा जा सकता कि उसका कोई ख़ास अंश कितना प्राचीन है।

यह स्पष्ट प्रकट है कि श्रीभगवद्गीता में भगवान् कृष्णचंद्र के पूजन का विधान है। गीता के समय-संबंधी विचार हमारे भारतीय इतिहास में हैं, जिनसे प्रकट है कि महाभारत विक्रम के पहले की छठी या सातवीं शताब्दी के पूर्व का ग्रंथ है। उसी के अंतर्गत गीता है, जिसे महाभारत का एक प्राचीन भाग माना जाता है। गीता का भी समय विक्रम-पूर्व छठी शताब्दी के लगभग मानना चाहिए। विक्रम-पूर्व की चौथी शताब्दी का बना निर्देश-नामक एक बौद्ध ग्रंथ है। उसमें लिखा है कि कुछ लोग वासुदेव तथा बलदेव की देव-भाव से भक्ति करते थे। बलदेव की भक्ति व्यूहों के विचार से संबंध रखती है। यह व्यूह-विचार गीता में नहीं है। इससे प्रकट है कि जिस समय गीता बनी थी, उस समय तक व्यूहों की कल्पना नहीं की गई थी। नहीं तो गीता में उसे भी स्थान मिलता। इससे भी सिद्ध है कि गीता 'निर्देश' से पहले का ग्रंथ है। अतएव ज्ञात होता है कि विक्रम-पूर्व छठी शताब्दी के लगभग वासुदेव कृष्ण का पूजन होता था, और वि०-पूर्व की चौथी शताब्दी के पहले व्यूहों की कल्पना उत्पन्न हो चुकी थी। पतंजलि विक्रम-संवत् के पहले दूसरी शताब्दी में हुए हैं। आपने पाणिनीय व्याकरण के भाष्य में लिखा है कि पाणिनि ने वासुदेव-शब्द का जैसा प्रयोग किया है, उससे वासुदेव का पूज्य देवता होना प्रकट है। इससे यह ध्वनित होता है कि पतंजलि तथा पाणिनि के समय में भी वासुदेव पूज्य देवता थे। पाणिनि का समय विक्रम-संवत् के पूर्व सातवीं या आठवीं

शताब्दी है। वि० सं० पूर्व की दूसरी शताब्दी का घोसुंडी का एक शिला-लेख मिला है, जिसमें संकर्षण तथा वासुदेव के पूजन-मंडप का वर्णन है। बेसनगर का इसी समय का एक और लेख मिला है, जिसमें देवतों के देवता वासुदेव के लिये गरुड़ध्वज बनने का कथन है। विक्रम से पहले की पहली शताब्दी का नानाघाटवाला लेख भी वासुदेव तथा संकर्षण की पूजा सिद्ध करता है। मेगास्थिनीज़ विक्रम के ३०० वर्ष पहले भारत में आया था। उसके लेख से प्रकट है कि शौरसेन लोग वासुदेव का पूजन करते थे। भांडारकर महाशय का मत है कि गीता के समय तक श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार नहीं माने गए थे। इस कथन से हमारा मत भिन्न है, जिसके कारण ऊपर दिए जा चुके हैं। गुप्त-घराने के शासक सिक्कों पर अपने को परम भागवत लिखते थे। सं० ५४० के एक लेख में लिखा है कि जनार्दन के लिये एक ध्वज-स्तंभ बनाया गया। सं० ५५२ के एक ताम्रपत्र से प्रकट है कि जननाथ-नामक किसी राजा ने भागवत के मंदिर की मरम्मत के लिये एक गाँव लगाया था। कुतुब मीनार के निकटवाली लोहे की दिल्ली-किल्ली गुप्त-महाराज चंद्रगुप्त (दूसरे) की है। इसका समय विक्रम की पाँचवीं शताब्दी है। इस लौह-स्तंभ में लिखा है कि यह विष्णु का ध्वज-स्तंभ है। मेघदूत में कालिदास ने गोपाल कृष्ण का उल्लेख किया है। भांडारकर महाशय कालिदास को पाँचवीं शताब्दी का मानते हैं; किंतु हम लोगों ने कालिदास को प्रथम शताब्दी का माना है, जिसके कारण प्रायः २५ पृष्ठों में, हमारे भारतीय इतिहास में, लिखे हैं। वराहमिहिर के समय में भागवत लोग विष्णु के पूजक माने जाते थे। धर्म-परीक्षा नाम का एक जैन-ग्रंथ मिला है। यह संवत् १०७० का बना है। इससे गौतम बुद्ध का उस समय अवतार माना जाना सिद्ध है। विष्णु तथा भगवान् कृष्ण की पूजा की कल्पना के जो समय भांडारकर महाशय ने लिखे हैं, वे ऊपर दिए जा चुके हैं।

अब दाशरथि राम की पूजा के समय के संबंध में विचार किया जाता है। वाल्मीकीय रामायण के प्राचीन अंशों में राम अवतार नहीं माने गए। किंतु उसके नवीन या प्रक्षिप्त अंशों में ऐसा हुआ है। ये नवीन भाग वि० पू० तीसरी शताब्दी के समझे गए हैं। नारायणीय (महाभारत के अंश) तथा पुराणों में भी राम अवतार माने गए हैं। रघुवंश में कालिदास ने भी यह माना है। उक्त 'धर्म-परीक्षा' में अमितगणि ने भी अवतार माना है। भांडारकर का विचार है कि वायुपुराण पाँचवीं शताब्दी के आसपास का ग्रंथ है। इसमें भी श्रीराम अवतार हैं। अमरसिंह तथा पतंजलि ने राम का वर्णन नहीं किया। छठी शताब्दी के भवभूति ने राम के शील-गुण का बहुत उत्कृष्ट वर्णन किया है। मध्वाचार्य ने संवत् १३२१ के आसपास नरहरितीर्थ को राम और सीता की असली मूर्तियाँ लाने के लिये जगन्नाथ-पुरी भेजा, और दिग्विजय राम की मूर्ति को यह स्वयं बदरिकाश्रम से लाए। तेरहवीं शताब्दी के महामंत्री हेमाद्रि ने व्रतखंड में रामनवमी-व्रत का वर्णन किया है। इन कारणों से भांडारकर का मत है कि रामचंद्र का पूजन ग्यारहवीं शताब्दी से आरंभ हुआ होगा, यद्यपि उनका अवतार होना पौराणिक ग्रंथों में भी लिखा है।

रामानुजाचार्य ने गोपाल कृष्ण का वर्णन नहीं किया, यद्यपि वह नारायण, वासुदेव तथा व्यूहों के पूजक थे। आपने कृष्णोपासना पर नहीं, नारायणोपासना पर ज़ोर दिया है। उधर मध्वाचार्य ने कृष्णोपासना मुख्य मानी है, किंतु गोपियों का उल्लेख नहीं किया।

आपका समय संवत् १२५४ माना गया है। यह आपकी मृत्यु का समय है। आपकी अवस्था ७६ वर्ष की कही गई है। रामानुजाचार्य संवत् १०७३ में उत्पन्न हुए थे। आपकी आयु १२० वर्ष की होना कहा जाता है। निंबार्क स्वामी का समय अनिश्चित है; किंतु इतना ज्ञात है कि वह रामानुजाचार्य के कुछ ही पीछे हुए थे। उनकी मृत्यु का समय संवत् १२१६ अंदाज़ा जाता है। इन्होंने ही पहले-पहल राधा की भक्ति कहकर वैष्णव धर्म को कलंकित किया। रामानुजाचार्य ने द्विजों को ही शिष्य किया; किंतु उनकी शिष्य-परंपरा के महात्मा रामानंद ने, जो चौदहवीं शताब्दी के हैं, शूद्रों तक को शिष्य बनाया। आपके विचार इतने अधिक उदार थे कि अहिंदू कबीरदास को भी आपने प्रसन्नता से शिष्य बनाया। आपका शरीरांत होना संवत् १४६७ में, १११ वर्ष की अवस्था में, कहा जाता है। वैष्णव मत में आपने सीता-राम-संबंधी उच्च प्रकार की भक्ति जोड़ी। आपके शिष्य कबीरदास ने राम-भक्ति से अवतार-संबंधी विचार हटाकर दार्शनिक तत्त्व स्थापित करना चाहा। तुलसीदास ने संवत्

१५८१ से १६८० तक जीवित रहकर दाशरथि राम की भक्ति प्रचलित की ; किंतु उन्हें विष्णु का अवतार न मानकर परमात्मा का माना। महाप्रभु वल्लभाचार्य का जन्म संवत् १५३५ में हुआ। आपने राधा-कृष्ण को पूजा, और बालक कृष्ण में ही संबंध रक्खा। आपके सहपाठी चैतन्य महाप्रभु ने अपने उपदेशों से बंगाल को पुनीत किया। आपका शरीरांत संवत् १५६० में हुआ। आपने भी राधा-कृष्ण की भक्ति सिखलाई। सखी-संप्रदाय के वैष्णवों का प्रभाव संसार पर अच्छा नहीं पड़ा। हरिवंश, विष्णु-पुराण और श्रीभागवत में भगवान् के गोपियों के साथ रास करने का वर्णन है ; किंतु उनमें राधा का उल्लेख नहीं है। राधा से प्रीति की कल्पना इन ग्रंथों के पीछे की गई जान पड़ती है। सीता-राम के प्रेम का पोषक वैष्णव-संप्रदाय उत्तर है। दक्षिण के अब्राह्मण वैष्णव नामदेव और तुकाराम ने भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का रुक्मिणीवर आदि नामों से पूजन किया है, न कि राधावल्लभ के नाम से। नामदेव हिंदी के भी कवि थे। अयोध्या में सीता-राम की भक्ति विशेष है, और मथुरा में राधा-कृष्ण की।

वैष्णव धर्म के साथ दर्शन-शास्त्र का भी विकास होता गया। महात्मा शंकराचार्य हमारे सबसे बड़े दार्शनिक आचार्य हैं। आपका मत अद्वैतवाद है। रामानुज आदि अद्वैतवादी नहीं हैं। भांडारकर का मत है कि चैतन्य महाप्रभु की भक्ति असली थी ; किंतु महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा उनके संप्रदाय की भक्ति असली कम थी, दिखाऊ अधिक। तुकाराम सत्रहवीं शताब्दी के महात्मा थे। इस प्रकार भांडारकर महाशय ने गीता से लेकर तुकाराम तक (पाँचवीं शताब्दी वि०-पू० से विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी तक) वैष्णव धर्म का उत्थान-पतन दिखलाया है। वैष्णव धर्म में अवतारों की प्रधानता है, किंतु शैव धर्म में स्वयं शिव की।

शैव मत

रुद्र और शिव की प्राचीनता का उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं। हम देख चुके हैं कि भारत में लिंगपूजक लोगों का समय वेदों के पूर्व था, और वे उस समय बुरे समझे जाते थे। ऋग्वेद में रुद्र की महिमा का वर्णन है। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में रुद्र ही शिव और ईश्वर हो गए हैं। महाभारत में आर्य लोग भी शिव-लिंग के पूजक पाए जाते हैं। उपनिषदों में आप अकेले ईश्वर हैं। गीता में पहले-पहल विष्णु आपके आगे बढ़ जाते हैं, किंतु औसत से महाभारत तथा पुराणों में विष्णु और शिव समान माननीय हैं। इतना अवश्य कहना चाहिए कि रुद्र और शिव का पूजन भय से किए जाने के कारण कुछ नीचे दर्जे की उपासना है ; किंतु विष्णु की पूजा प्रेम पर अवलंबित होने के कारण श्रेष्ठतम है। यह एक स्वाभाविक नियम है कि विचारों की उच्चता समय के साथ उन्नति करती चलती है। इसीलिये हम देखते हैं कि भय के आधार पर अवलंबित शिव का पूजन प्राचीन काल से चला आया था ; किंतु प्रेमावलंबी विष्णु-पूजन ने उससे बहुत पीछे उन्नति की। शिव-पूजन ने भी समय के साथ उन्नति अवश्य की, और उसमें भय की मात्रा घटती और प्रेम की बढ़ती गई—यहाँ तक कि वर्तमान काल में उसमें भय का अभाव-सा है, और प्रेम-ही-प्रेम विद्यमान है। महाभारत में लिंग-पूजा का वर्णन है। किंतु पतंजलि के ग्रंथ में नहीं है। संभवतः महर्षि पतंजलि ने उसे नापसंद करके न लिखा हो। कुशान राजा वेम कडफ़ाइज़ेज़ वि०-सं० शुरू होने के समय में हुए थे। आपके सिक्कों पर शिव की मानुषी मूर्ति बनी है ; लिंग नहीं अंकित है। संभवतः महाभारत में लिंग-पूजन के वर्णन का जो अंश है, वह उक्त समय के पीछे का होगा। पतंजलि के समय में शिव, स्कंद और विशाख की मूर्तियाँ पुजती थीं। कभी-कभी ये बहुमूल्य धातुओं की भी बनवाई जाती थीं।

शैव संप्रदाय की कई शाखाएँ या भेद हैं। सबसे प्राचीन लकुलिन अथवा नकुलीश का नाम मिलता है। इन्होंने पाशुपत संप्रदाय चलाया। इसका वर्णन महाभारत के नारायणीय भाग में है। भांडारकर महाशय का मत है कि यह संप्रदाय वि०-पू० दूसरी शताब्दी में चला था। छठी शताब्दी के वराहमिहिर का कथन है कि शंभु-प्रतिमा की स्थापना ब्राह्मणों से करानी चाहिए। हियनसांग ने पाशुपत लोगों का बारह बार उल्लेख किया है। सातवीं शताब्दी में महाराष्ट्र-देश के कापालिकों का वर्णन मिलता है। संवत् १०१२ में राष्ट्रकूट के महाराज तीसरे कृष्ण ने एक गाँव उस गंगन शैव को दिया था, जो संपूर्ण शैव सिद्धांतों का ज्ञाता कहा गया है। छठी शताब्दी के कवि भवभूति मालतीमाधव-नाटक में शंकर के एक मंदिर का वर्णन करते हैं। कालिदास, श्रीहर्ष, भवभूति और अनेक अन्य कवियों ने ग्रंथारंभ में शिव की प्रार्थना की है। सुबंधु, बाण तथा भट्टनारायण ने शिव तथा हरि

दोनों की प्रार्थना की है। सभी शैव संप्रदाय लाकुल कहलाते थे। शिव-पूजन के अंग हँसना, गाना, नाचना, हुड़कार और साष्टांग प्रणाम आदि थे। क्राथन, स्पंदन, मंदन, शृंगारण, अवितत्करण और अवितद्भाषण से भी शिव-पूजन होता था। पशु जीवात्मा को कहते हैं, और पशुपति शिव को। शैव संप्रदाय के विचार पाशुपत संप्रदाय से बहुत उच्च हैं। स्वामी शंकराचार्य ने पाशुपत मतावलंबी नीलकंठ को शास्त्रार्थ में हराया था।

कापालिकों का मत यह है कि जो मनुष्य छः मुद्रिकाओं का सार और उनका व्यवहार जानता है, वह जीवात्मा को स्त्री की योनि पर बैठा हुआ मानकर मुक्ति प्राप्त करता है। कालामुख-संप्रदाय में भी शैव और मदिरा आदि से संबंध रखनेवाले ऐसे ही नीच विचार मिलते हैं।

रुद्र के विषय में जो भयानक विचार थे, वे भैरव और उनकी स्त्री चंडिका के विषय में अब तक वर्तमान हैं। काश्मीर के दो शैव संप्रदाय कहे गए हैं, जिनका पूजन प्रधान, उच्चतर और उचित हैं। उनमें से एक के चलानेवाले कल्लट संवत् ६११ में हुए थे, और दूसरे के चलानेवाले सोमानंद दसवीं शताब्दी में। वीर शैव अर्थात् लिंगायत-संप्रदाय के चलानेवाले वासव दाक्षिणात्य-नरेश विज्जल के मंत्री थे, जिनका राज्य-काल संवत् १२१४ से दस वर्ष तक रहा। यह भी कहा जाता है कि वासव ने लिंगायत-मत की केवल उन्नति की। आराधक और लिंगायत नाम के दो संयुक्त संप्रदाय हैं। ये लोग ब्राह्मणों के शत्रु हैं; और ये मत भी ब्राह्मणों के धर्म से पृथक्-से हैं। ये लोग शिव के पूरे शरीर को लिंग कहते हैं। भावलिंग, प्राणलिंग और इष्टलिंग, ये लिंगस्थल के तीन भेद हैं। भावलिंग सत् है, प्राणलिंग चित् है, और इष्टलिंग आनंद। प्रयोग, मंत्र और क्रिया से ये ही तीनों कला, नाद और बिंदु बनते हैं। इन तीनों के भी और दो-दो भेद हैं। यथा—पहले के महालिंग, और प्रसादलिंग, दूसरे के चरलिंग और शिवलिंग, तथा तीसरे के गुरुलिंग और आचारलिंग। जब इन छहों पर छः शक्तियों का प्रभाव पड़ता है, तब छः प्रकार के रूप उत्पन्न होते हैं। इन सबका वर्णन शैव ग्रंथों में है। भांडारकर महाशय ने भी किया है। यह एक प्रकार का शैव दर्शन है। हिमाचल से मैसूर तक शैव जंगमों के पाँच बड़े स्थान हैं। ये कठिन शैव प्रश्नों पर विचार करते हैं। वीर शैव लोग गायत्री के स्थान पर पंचाक्षरी मंत्र जपते हैं, और जनेऊ की जगह शिव-लिंग धारण करते हैं। कांचीपुर में अनेक शैव मंदिर हैं, जिनके लेखों से प्रकट है कि छठी शताब्दी में वहाँ शैव संप्रदायों का बड़ा ज़ोर था। दक्षिण में ६३ भारी शिव-भक्त हो गए हैं।

शक्ति-पूजन

वेदों में शक्ति-पूजन का पता नहीं है। महाभारत के भीष्म-पर्व में अर्जुन ने विजयार्थ दुर्गा की प्रार्थना की है। विंध्यवासिनी देवी पहले यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होकर कंस के हाथ से मारी गई थीं। यह कथा हरिवंश में है। दुर्गा की एक स्तुति में यह भी कहा गया है कि वह शबर, पुलिंद, बर्बर आदि जंगली जातियों की देवी हैं। वह मद्य तथा मांस से प्रसन्न होती हैं। दुर्गा-पाठ में भी इनके बहुत-से वर्णन हैं। केनोपनिषद् में उमा का नाम आया है। काल के तीन रूप हैं—साधारण, भयानक, और कामुक। तंत्रों में कामुक विचार आनंद-भैरवी, त्रिपुरसुंदरी, और ललिता के संबंध में कहे गए हैं। महाभैरवी उत्पादिका शक्ति हैं, और महाभैरव नाशकारी। बिंदु और नाद के मेल से काम, कला, कामकला आदि की उत्पत्ति हुई है। त्रिपुरसुंदरी शिव और शक्ति के मिलने का फल हैं। शक्तिपूजकों का धर्म है कि पुरुष होकर भी अपने को स्त्री समझने के विचार की आदत डालें; क्योंकि ईश्वर स्त्री है। सबको स्त्री होने की इच्छा रखना चाहिए। त्रिपुरसुंदरी की पूजा तीन प्रकार से होती है। पहली विधि महापद्मवनस्थ शिव की गोद में बैठी हुई देवी का ध्यान करना है। दूसरी विधि चक्र-पूजा है। तीसरी योनि के चित्र का पूजन है। इस प्रकार ६ चित्र भोजपत्र या रेशमी कपड़े पर बनाए जाते हैं। उसे श्रीचक्र कहते हैं। शाक्तों के दो भेद हैं—कौलिक और समयिन। कौलिक सजीव स्त्री-योनि की पूजा करते हैं; किंतु समयिन उसके विचार-मात्र की। पूर्वकौल चित्र में योनि का पूजन करते हैं; किंतु उत्तरकौल सजीव, सुंदरी स्त्री की योनि के पूजक हैं। इस पूजन को भैरवीचक्र कहते हैं, और इसमें वर्ण-विचार नहीं रह जाता। यथा—

"प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः;
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्।"

यह पूजन-विधान स्पष्ट ही परम निंद्य और बुरा है। ललिता और उपांग ललिता के पूजन-विधान अच्छे भी हैं।

गाणपत्य संप्रदाय

रुद्र के बहुत-से गण हैं। उनके स्वामी गणपति अथवा विनायक हैं। अथर्वशिरस् उपनिषत् में रुद्र विनायक भी कहे गए हैं। महाभारत के अनुशासन-पर्व में कई गणेश्वर और विनायक माने गए हैं, जो देवतों में से हैं, सर्वत्र वर्तमान हैं, और मनुष्यों के कर्मों के साक्षी हैं। शतरुद्रिय में लिखा है कि गणपति बहुतेरे हैं, और वे सर्वत्र वर्तमान हैं। मानव गृह्यसूत्र में चार विनायक कहे गए हैं। ये विघ्नकारक हैं। याज्ञवल्क्य-स्मृति में लिखा है कि रुद्र और ब्रह्मदेव ने षट्नामधारी एक विनायक को गणपति बनाकर मनुष्यों के कामों में कठिनाइयाँ और विघ्न डालने का काम सौंपा। अतएव हम देखते हैं कि सूत्र के चार विनायक स्मृति में एक ही गणपति विनायक हो गए, और अंबिका इनकी माता हुईं। अपने कार्य से यह शत्रुता-पूर्ण और हानिकर हैं; किंतु उपासना करने से मित्र और लाभकर हो सकते हैं। उक्त सूत्र में उल्लेख होने से प्रकट है कि विनायक ईसा के पूर्ववर्ती हैं। गुप्त-काल के लेखों में गणपति का नाम नहीं है। किंतु इलोरा की दो गुफाओं में इनके चित्र हैं। ये गुफाएँ नवीं शताब्दी की हैं। अतएव समझ पड़ता है कि छठी और नवीं शताब्दियों के बीच में इनका पूजन प्रचलित हुआ। संवत् ६१६ के एक शिला-लेख में विनायक को दंडवत् लिखी है। इनके हाथी का सिर कैसे लगा, यह अज्ञात है। इलोरा के चित्रों तथा भवभूति के ग्रंथों में इनके हाथी का सिर मिलता है। ऋग्वेद के ब्रह्मणस्पति-सूक्त में बृहस्पति तथा गणपति, दोनों ब्रह्मणस्पति कहे गए हैं।

अनंतानंद गिरि ने गाणपत्यों के छः संप्रदाय कहे हैं। उनमें पहले महागणपति के उपासक हैं, जो उन्हें कर्ता कहते हैं। उनका यह भी कथन है कि जब ब्रह्मा आदि नष्ट हो जाते हैं, तब भी महागणपति रहते हैं। हेरंबसुत उच्छिष्ट-गणपति के उपासक थे। इस संप्रदाय के लोग वाम-मार्गी और धरलील-गणपति के उपासक हैं। इनमें जाति-भेद नहीं है। इनके यहाँ विवाह इत्यादि का बंधन ठीक नहीं माना गया, और मैथुन में कोई रोक नहीं है। नवनीत, स्वर्ण, और संतान नाम के तीन अन्य गणपतियों के उपासक अपनी समझ में श्रौत विधि से उपासना करते हैं। उनका कथन है कि गणपति प्रत्येक धार्मिक कार्य में प्रथम पूजे जाने से सब देवतों में मुख्य और अन्य देवगण उनके अंग-मात्र हैं। गणपति का पूजन छठी शताब्दी में चला है, और प्रत्येक हिंदू इनको हर धर्मकार्यों के आदि में तथा अन्य कार्यों के आरंभ में पूजता है। स्कंद का भी पूजन होता था, और सूर्य का भी पूजन प्रचलित था। सूर्योपासक मग ब्राह्मण थे, जो फ़ारस से आए हुए समझे गए हैं।

उक्त वर्णन से प्रकट है कि एक प्रकार से दक्षिण-मार्ग और वाम-मार्ग प्रत्येक धर्म में हैं। वैष्णवों में विष्णु, नारायण, वासुदेव, भगवन्, रुक्मिणीवल्लभ कृष्ण तथा सीता-राम-संबंधी उपासनाएँ दक्षिण-मार्गी हैं; किंतु राधा-कृष्ण की उपासना कुछ-कुछ वाम-मार्ग की ओर झुकती है। शैव, शाक्त और गाणपत्य उपासनाओं में भी दक्षिण-मार्ग और वाम-मार्ग हैं। यह अवश्य है कि किसी उपासना में दक्षिण-मार्ग का प्राधान्य है, और किसी में वाम का, किंतु हैं दोनों प्रायः सभी में। हम यह भी देखते हैं कि प्रत्येक देवता के संबंध के विचार समय के साथ उच्चतर होते चले गए हैं। आजकल हिंदू-समाज में यह बात १००० में ९९९ को भी न ज्ञात होगी कि रुद्र, शिव आदि में भयानक थे, और समय पाकर दयालु माने गए। यह भी बहुत ही कम लोग जानते हैं कि शिव-लिंग का पूजन वास्तव में शिश्न-पूजन है। वे तो शिव-लिंग को साक्षात् सदाशिव मानकर पूजते और शिव को योगिराज तथा भोलानाथ समझते हैं, न कि हानि पहुँचानेवाला। उनका पूजन लाभार्थ किया जाता है, न कि हानि से बचने को। यही दशा गणपति की है। यह कौन जानता है कि बेचारे विघ्नविनाशक विद्वान् गणेश किसी समय विघ्न उपस्थित करनेवाले थे।

"अंकुस लिए बिघन को डाटै; बिकट कटक संकट के काटै।" ऐसे विचार उनके विषय में हैं, न कि विघ्न उपस्थित करने के। उनका पूजन विघ्नेश होने के कारण न होकर आज विघ्नविनाशन के रूप में होता है। शिव और गणेश आज पूर्ण उन्नति कर चुके हैं, और उनके विषय में हानिकारक होने के प्राचीन कथन सुनकर लोग चौंक पड़ेंगे। केवल ऐतिहासिक विचारों से प्राचीन वर्णनों का उल्लेख किया गया है। इन कथनों से ऐसा न समझना चाहिए कि हमारे देवगण किसी समय वास्तव में भयानक थे। शक्ति-पूजन के विषय में अब भी कुछ-कुछ प्रचंड विचार मौजूद हैं, और यद्यपि शक्तिपूजकों में भी दक्षिण-मार्गवाले बहुतेरे

है, तथापि आज दिन शक्तिपूजक को लोग बहुत करके वाम-मार्गी ही समझ लेते हैं। शक्ति-पूजन के विचारों में अभी बहुत उन्नति होनी बाक़ी है।

भारतीय दर्शन-शास्त्र के विचार भी धार्मिक उपदेशकों के भिन्न-भिन्न होते आए हैं। सबसे महत्त्व-पूर्ण विचार ईश्वर-संबंधी है। सबसे कठिन प्रश्न यही उठता है कि यदि ईश्वर सर्वव्यापी है, तो संसार के बाहर भी उसकी व्याप्ति है या नहीं? बादरायण ब्रह्मसूत्र में लिखा है कि यद्यपि ईश्वर संसारव्यापी कहा गया है, तथापि वह संसार से पृथक् भी माना जाता है। ये दोनों विचार एक दूसरे के प्रतिकूल ह। व्यास-भगवान् ने यह आपत्ति तो प्रकट कर दी है, किंतु इसका कोई समुचित उत्तर नहीं लिखा, बल्कि उपनिषदों के दोनों कथनों को ग्राह्य माना है। हमारे यहाँ संसार की उत्पत्ति के तीन प्रकार या विचार हैं— आरंभवाद, परिणामवाद और विवर्तवाद। आरंभवाद का प्रयोजन यह है कि संसार किसी एक ही समय में एकसाथ ईश्वरेच्छा से बन गया। यह सबसे स्थूल विचार है। परिणामवाद का प्रयोजन यह है कि संसार परमाणुओं की दशा से उन्नति करता हुआ करोड़ों वर्षों में अपनी वर्तमान उन्नत दशा को पहुँचा है। विवर्तवाद स्वामी शंकराचार्य का है। उनका कथन स्थित तो परिणामवाद ही पर है, किंतु वह उसमें संसार के माया होने का विचार जोड़ देता है, अर्थात् यह कहता है कि परमाणु इत्यादि वास्तव में असत् हैं, और मनुष्य अज्ञानवश उन्हें सत् समझता है। इस प्रकार संसार को असत् कहकर शंकराचार्य व्यास भगवान् के उठाए हुए संदेह को शांत करते हैं। समझ यह पड़ता है कि उक्त शंका के शमनार्थ ही स्वामीजी ने विवर्तवाद निकाला है; क्योंकि यदि ईश्वर को सर्वव्यापी मानें, और संसार को ससीम समझें, जैसा कि लोग प्रायः मानते हैं, तो यह कठिनाई आ पड़ती है कि जो ईश्वरांश संसार में है, वह उसके बाहरवाले भाग से असम होगा; क्योंकि उसमें संसार नहीं है। इसी से स्वामी शंकराचार्य ने यह माना है कि वास्तव में संसार कहीं भी नहीं है। अतः ईश्वर के विविध अंशों में कोई भेद नहीं आता। तथापि स्वामीजी के अद्वैतवाद को मानने से जीव की भी सत्ता मिट जाती है, और जीव तथा ईश्वर का सेवक-सेव्य-भाव नष्ट हो जाता है, जिससे वैष्णव मत को धक्का लगता है। इसी से बहुतेरे भक्तों ने शांकर अद्वैतवाद नहीं माना। महर्षि रामानुजाचार्य का मत है कि वस्तु और जीवात्मा के मुख्यांश ईश्वर में ही, उसके अंग अथवा गुणों की भाँति, हैं। इसे भांडारकर ने पसंद किया है। किंतु यह विचार हलका देख पड़ता है; क्योंकि इसमें या तो ईश्वर का शरीर मानना पड़ेगा, या उसमें गुणों की स्थापना होगी। यदि संसार सत् है, तो उसे गुण-मात्र मानना ठीक न होगा। कारण, वस्तु गुण से भिन्न है। महात्मा निंबार्क का विचार है कि प्रकृति और जीवात्मा ईश्वर के अंग या अंश नहीं हैं, वरन् इनकी सत्ता उसकी इच्छा पर है। यह भी कहने-भर की बात है। वस्तु के सत् मानने से उसका वास्तविक अस्तित्व मानना पड़ेगा। या तो शंकर स्वामी की भाँति उसे असत् मानें, या ईश्वर से पृथक्। उसकी सत्ता तथा ईश्वर से ऐक्य, ये दोनों बातें साथ-साथ मान्य नहीं हो सकतीं। विष्णु स्वामी का मत है कि प्रकृति सत्-मात्र है, जीव सत्-चित् है, और परमात्मा सच्चिदानंद। यह भी कथन-मात्र जान पड़ता है।

विचार करने से इतना और समझ पड़ता है कि संसार को ससीम मानने की आवश्यकता ही क्या है? स्यात् अनंत है ही, और वह संसार का अंग भी है। अतः ईश्वर और संसार, दोनों को अनंत मानने से सारा झगड़ा दूर हो जाता है; क्योंकि ऐसी दशा में ईश्वर के दो भिन्न भागों की कल्पना करने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

मिश्रबंधु

डिक्री के रुपए

(१)

नईम और कैलास में इतनी शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक अभिन्नता थी, जितनी दो प्राणियों में हो सकती है। नईम दीर्घकाय विशाल वृक्ष था, कैलास बाग़ का कोमल पौदा; नईम को क्रिकेट और फ़ुटबाल, सैर और शिकार का व्यसन था, कैलास को पुस्तकावलोकन का; नईम एक विनोदशील, वाक्चतुर, निर्द्वंद्व, हास्यप्रिय, विलासी युवक था। उसे 'कल' की

चिंता कभी न सताती थी। विद्यालय उसके लिये क्रीड़ा का स्थान था, और कभी-कभी बेंच पर खड़े होने का। इसके प्रतिकूल कैलास एक एकांत-प्रिय, आलसी, व्यायाम से कोसों भागनेवाला, आमोद-प्रमोद से दूर रहनेवाला, चिंताशील, आदर्शवादी जीव था। वह भविष्य की कल्पनाओं से विकल रहता था। नईम एक सुसंपन्न, उच्च पदाधिकारी पिता का एक-मात्र पुत्र था। कैलास एक साधारण व्यवसायी के कई पुत्रों में से एक था। उसे पुस्तकों के लिये प्रचुर धन न मिलता था, वह माँग-जाँचकर काम निकाला करता था। एक के लिये जीवन आनंद का स्वप्न था, और दूसरे के लिये विपत्तियों का बोझ। पर इतनी विषमताओं के होते हुए भी उन दोनों में घनिष्ठ मैत्री और निस्स्वार्थ, विशुद्ध प्रेम था। कैलास मर जाता, पर नईम का अनुग्रह-पात्र न बनता; और नईम मर जाता, पर कैलास से बेअदबी न करता। नईम की ख़ातिर से कैलास कभी-कभी स्वच्छ, निर्मल वायु का सुख उठा लिया करता था। कैलास की ख़ातिर से नईम भी कभी-कभी भविष्य के स्वप्न देख लिया करता था। नईम के लिये राज्यपद का द्वार खुला हुआ था, भविष्य कोई अपार सागर न था। कैलास को अपने हाथों से कुआँ खोदकर पानी पीना था, भविष्य एक भीषण संग्राम था, जिसके स्मरण-मात्र से उसका चित्त अशांत हो उठता था।

(२)

कॉलेज से निकलने के बाद नईम को शासन-विभाग में एक उच्च पद प्राप्त हो गया, यद्यपि वह तीसरी श्रेणी में पास हुआ था। कैलास प्रथम श्रेणी में पास हुआ था; किंतु उसे बरसों एड़ियाँ रगड़ने, ख़ाक छानने और कुएँ झाँकने पर भी कोई काम न मिला। यहाँ तक कि विवश होकर उसे अपनी क़लम का आश्रय लेना पड़ा। उसने एक समाचार-पत्र निकाला। एक ने राज्याधिकार का रास्ता लिया, जिसका लक्ष्य धन था, और दूसरे ने सेवा-मार्ग का सहारा लिया, जिसका परिणाम ख्याति, कष्ट और कभी-कभी कारागार होता है। नईम को उसके दफ़्तर के बाहर कोई न जानता था; किंतु वह बँगले में रहता, हवागाड़ी पर हवा खाता, थिएटर देखता और गरमियों में नैनीताल की सैर करता था। कैलास को सारा संसार जानता था, पर उसके रहने का मकान कच्चा था, सवारी के लिये अपने पाँव थे। बच्चों के लिये दूध भी मुशकिल से मिलता था, साग-भाजी में काट-कपट करना पड़ता था। नईम के लिये सबसे बड़े सौभाग्य की बात यह थी कि उसके केवल एक पुत्र था; पर कैलास के लिये सबसे बड़ी दुर्भाग्य की बात उसकी संतान-वृद्धि थी, जो उसे पनपने न देती थी। दोनों मित्रों में पत्र-व्यवहार होता रहता था। कभी-कभी दोनों में मुलाक़ात भी हो जाती थी। नईम कहता था—"यार, तुम्हीं मज़े में हो, देश और जाति की कुछ सेवा तो कर रहे हो। यहाँ तो पेट-पूजा के सिवा और किसी काम के न हुए।" पर यह पेट-पूजा उसने कई दिनों की कठिन तपस्या से हृदयंगम कर पाई थी, और वह उसके प्रयोग के लिये अवसर ढूँढ़ता रहता था।

कैलास ख़ूब समझता था कि यह केवल नईम की विनयशीलता है। यह मेरी कुदशा से दुखी होकर मुझे इस उपाय से सांत्वना देना चाहता है। इसलिये वह अपनी वास्तविक स्थिति को उससे छिपाने का विफल प्रयत्न किया करता था।

विष्णुपुर की रियासत में हाहाकार मचा हुआ था। रियासत का मैनेजर अपने बँगले में, ठीक दोपहर के समय, सैकड़ों आदमियों के सामने, क़त्ल कर दिया गया था। यद्यपि ख़ूनी भाग गया था, पर अधिकारियों को संदेह था कि कुँअर साहब की दुष्प्रेरणा से ही यह हत्याभिनय हुआ है। कुँअर साहब अभी बालिग़ न हुए थे। रियासत का प्रबंध कोर्ट ऑफ़ वार्ड्स द्वारा होता था। मैनेजर पर कुँअर साहब की देख-रेख का भार भी था। विलास-प्रिय कुँअर को मैनेजर का हस्तक्षेप बहुत ही बुरा मालूम होता था। दोनों में बरसों से मनमुटाव था। यहाँ तक कि कई बार प्रत्यक्ष कटु वाक्यों की नौबत भी आ पहुँची थी। अतएव कुँअर साहब पर संदेह होना स्वाभाविक ही था। इस घटना का अनुसंधान करने के लिये ज़िले के हाकिम ने मिरज़ा नईम को नियुक्त किया। किसी पुलीस-कर्मचारी द्वारा तहक़ीक़ात कराने में कुँअर साहब के अपमान का भय था।

नईम को अपने भाग्य-निर्माण का स्वर्ण-सुयोग प्राप्त हुआ। वह न त्यागी था, न ज्ञानी। सभी उसके चरित्र की दुर्बलता से परिचित थे, अगर कोई न जानता था, तो हुक्काम लोग। कुँअर साहब ने मुँह-माँगी मुराद पाई। नईम जब विष्णुपुर पहुँचा, तो उसका असाधारण आदर-सत्कार हुआ। भेंटें चढ़ने लगीं, अरदली के चपरासी, पेश-

कार, साईस, बावरची, ख़िदमतगार, सभी के मुँह तर और मुट्ठियाँ गरम होने लगीं। कुँअर साहब के हवाली-मवाली रात-दिन घेरे रहते, मानो दामाद ससुराल आया हो।

एक दिन प्रातःकाल कुँअर साहब की माता आकर नईम के सामने हाथ बाँधकर खड़ी हो गईं। नईम लेटा हुआ हुक़ा पी रहा था। तप, संयम, और वैधव्य की यह तेजस्वी प्रतिमा देखकर उठ बैठा।

रानी उसकी ओर वात्सल्य-पूर्ण लोचनों से देखती हुई बोलीं—हुज़ूर, मेरे बेटे का जीवन आपके हाथ में है। आप ही उसके भाग्य-विधाता हैं। आपको उसी माता की सौगंद है, जिसके आप सुयोग्य पुत्र हैं, मेरे लाल की रक्षा कीजिएगा। मैं तन, मन, धन आपके चरणों पर अर्पण करती हूँ।

स्वार्थ ने दया के संयोग से नईम को पूर्ण रीति से वशीभूत कर लिया।

(३)

उन्हीं दिनों कैलास नईम से मिलने आया। दोनों मित्र बड़े तपाक से गले मिले। नईम ने बातों-बातों में यह संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया, और कैलास पर अपने कृत्य का औचित्य सिद्ध करना चाहा।

कैलास ने कहा—मेरे विचार में पाप सदैव पाप है, चाहे वह किसी आवरण में मंडित हो।

नईम—और मेरा विचार है कि अगर गुनाह से किसी की जान बचती हो, तो वह ऐन सवाब है। कुँअर साहब अभी नौजवान आदमी हैं। बहुत ही होनहार, बुद्धिमान्, उदार और सहृदय हैं। आप उनसे मिलें, तो ख़ुश हो जायँ। उनका स्वभाव अत्यंत विनम्र है। मैं, जो यथार्थ में दुष्ट-प्रकृति का मनुष्य था, बरबस कुँअर साहब को दिक़ किया करता था। यहाँ तक कि एक मोटरकार के लिये उसने रुपए न स्वीकार किए, न सिफ़ारिश की। मैं यह नहीं कहता कि कुँअर साहब का यह कार्य स्तुत्य है; लेकिन बहस यह है कि उनको अपराधी सिद्ध करके उन्हें काले पानी की हवा खिलाई जाय, या निरपराध सिद्ध करके उनकी प्राण-रक्षा की जाय। और भई, तुमसे तो कोई परदा नहीं है, पूरे २० हज़ार की थैली है। बस, मुझे अपनी रिपोर्ट में यह लिख देना होगा कि व्यक्तिगत वैमनस्य के कारण यह दुर्घटना हुई है, राजा साहब का इससे कोई संपर्क नहीं है। जो शहादतें मिल सकीं, उन्हें मैंने ग़ायब कर दिया। मुझे इस कार्य के लिये नियुक्त करने में अधिकारियों की एक मसलहत थी। कुँअर साहब हिंदू हैं, इसलिये किसी हिंदू कर्मचारी को नियुक्त न करके ज़िलाधीश ने यह भार मेरे सिर रक्खा। यह सांप्रदायिक विरोध मुझे निस्पृह सिद्ध करने के लिये काफ़ी है। मैंने दो-चार अवसरों पर कुछ तो हुक्काम की प्रेरणा से और कुछ स्वेच्छा से मुसलमानों के साथ पक्षपात किया, जिससे यह मशहूर हो गया है कि मैं हिंदुओं का कट्टर दुश्मन हूँ। हिंदू लोग तो मुझे पक्षपात का पुतला समझते हैं। यह भ्रम मुझे आक्षेपों से बचाने के लिये काफ़ी है। बताओ, हूँ तक़दीरवर कि नहीं?

कैलास—अगर कहीं बात खुल गई, तो?

नईम—तो यह मेरी समझ का फेर, मेरे अनुसंधान का दोष, मानव प्रकृति के एक अटल नियम का उज्ज्वल उदाहरण होगा! मैं कोई सर्वज्ञ तो हूँ नहीं। मेरी नीयत पर आँच न आने पावेगी। मुझ पर रिश्वत लेने का संदेह न हो सकेगा। आप इसके व्यावहारिक कोण पर न जाइए, केवल इसके नैतिक कोण पर निगाह रखिए। यह कार्य नीति के अनुकूल है या नहीं? आध्यात्मिक सिद्धांतों को न खींच लाइएगा, केवल नीति के सिद्धांतों से इसकी विवेचना कीजिए।

कैलास—इसका एक अनिवार्य फल यह होगा कि दूसरे रईसों को भी ऐसे दुष्कृत्यों की उत्तेजना मिलेगी। धन से बड़े-से-बड़े पापों पर परदा पड़ सकता है, इस विचार के फैलने का फल कितना भयंकर होगा, इसका आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

नईम—जी नहीं, मैं यह अनुमान नहीं कर सकता। रिश्वत अब भी ९० फ़ी सदी अभियोगों पर परदा डालती है। फिर भी पाप का भय प्रत्येक हृदय में है।

दोनों मित्रों में देर तक इस विषय पर तर्क-वितर्क होता रहा; लेकिन कैलास का न्याय-विचार नईम के हास्य और व्यंग्य से पेश न पा सका।

(४)

विष्णुपुर के हत्याकांड पर समाचार-पत्रों में आलोचना होने लगी। सभी पत्र एक स्वर से राजा साहब को ही लांछित करते और गवर्नमेंट को राजा साहब से अनुचित पक्षपात करने का दोष लगाते थे; लेकिन इसके साथ

यह भी लिख देते थे कि अभी यह अभियोग विचाराधीन है, इसलिये इस पर टीका नहीं की जा सकती।

मिरज़ा नईम ने अपनी खोज को सत्य का रूप देने के लिये पूरे एक महीने व्यतीत किए। जब उनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई, तो राजनीतिक क्षेत्र में विप्लव मच गया। जनता के संदेह की पुष्टि हो गई।

कैलास के सामने अब एक जटिल समस्या उपस्थित हुई। अभी तक उसने इस विषय पर एक-मात्र मौन धारण कर रक्खा था। वह यह निश्चय न कर सकता था कि क्या लिखूँ। गवर्नमेंट का पक्ष लेना अपनी अंतरात्मा को पद-दलित करना था, आत्मस्वातंत्र्य का बलिदान करना था। पर मौन रहना और भी अपमानजनक था। अंत को जब सहयोगियों में दो-चार ने उसके ऊपर सांकेतिक रूप से आक्षेप करना शुरू किया कि उसका मौन निरर्थक नहीं है, तब उसके लिये तटस्थ रहना असह्य हो गया। उसके वैयक्तिक तथा जातीय कर्तव्य में घोर संग्राम होने लगा। उस मैत्री को, जिसके अंकुर पचीस वर्ष पहले हृदय में अंकुरित हुए थे, और अब जो एक सघन, विशाल वृक्ष का रूप धारण कर चुकी थी, हृदय से निकालना, हृदय को चीरना था। वह मित्र, जो उसके दुख में दुखी और सुख में सुखी होता था, जिसका उदार हृदय नित्य उसकी सहायता के लिये तत्पर रहता था, जिसके घर में जाकर वह अपनी चिंताओं को भूल जाता था, जिसके प्रेमालिंगन में वह अपने कष्टों को विसर्जित कर दिया करता था, जिसके दर्शन-मात्र ही से उसे आश्वासन, दृढ़ता तथा मनोबल प्राप्त होता था, उसी मित्र की जड़ खोदनी पड़ेगी! वह बुरी सायत थी, जब मैंने संपादकीय क्षेत्र में पदार्पण किया, नहीं तो आज इस धर्म-संकट में क्यों पड़ता! कितना घोर विश्वास-घात होगा! विश्वास मैत्री का मुख्य अंग है। नईम ने मुझे अपना विश्वास-पात्र बनाया है, मुझसे कभी परदा नहीं रक्खा। उसके उन गुप्त रहस्यों को प्रकाश में लाना उसके प्रति कितना घोर अन्याय होगा! नहीं, मैं मैत्री को कलंकित न करूँगा, उसकी निर्मल कीर्ति पर धब्बा न लगाऊँगा, मैत्री पर वज्राघात न करूँगा। ईश्वर वह दिन न लावे कि मेरे हाथों नईम का अहित हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि मुझ पर कोई संकट पड़े, तो नईम मेरे लिये प्राण तक दे देने को तैयार हो जायगा। उसी मित्र को मैं संसार के सामने अपमानित करूँ, उसकी गरदन पर कुठार चलाऊँ! भगवन्, मुझे वह दिन न दिखाना।

लेकिन जातीय कर्तव्य का पक्ष भी निरस्त्र न था। पत्र का संपादक परंपरा-गत नियमों के अनुसार जाति का सेवक है। वह जो कुछ देखता है, जाति की विराट् दृष्टि से देखता है। वह जो कुछ विचार करता है, उस पर भी जातीयता की छाप लगी होती है। नित्य जाति के विस्तृत विचार-क्षेत्र में विचरण करते रहने से व्यक्ति का महत्त्व उसकी दृष्टि में अत्यंत संकीर्ण हो जाता है, वह व्यक्ति को क्षुद्र, तुच्छ, नगण्य समझने लगता है। व्यक्ति को जाति पर बलि देना उसकी नीति का प्रथम अंग है। यहाँ तक कि वह बहुधा अपने स्वार्थ को भी जाति पर वार देता है। उसके जीवन का लक्ष्य महान् और आदर्श पवित्र होता है। वह उन महान् आत्माओं का अनुगामी होता है, जिन्होंने राष्ट्रों का निर्माण किया है, जिनकी कीर्ति अमर हो गई है, जो दलित राष्ट्रों की उद्धारक हो गई हैं। वह यथाशक्ति कोई ऐसा काम नहीं कर सकता, जिससे उसके पूर्वजों की उज्ज्वल विरदावली में कालिमा लगने का भय हो। कैलास राजनीतिक क्षेत्र में बहुत कुछ यश और गौरव प्राप्त कर चुका था। उसकी सम्मति आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। उसके निर्भीक विचारों ने, उसकी निष्पक्ष टीकाओं ने उसे संपादक-मंडली का प्रमुख नेता बना दिया था। अतएव इस अवसर पर मैत्री का निर्वाह केवल उसकी नीति और आदर्श ही के विरुद्ध नहीं, उसके मनोगत भावों के भी विरुद्ध था। इसमें उसका अपमान था, आत्मपतन था, भीरुता थी। यह कर्तव्य-पथ से विमुख होना और राजनीतिक क्षेत्र से सदैव के लिये बहिष्कृत हो जाना था। एक व्यक्ति को, चाहे वह मेरा कितना ही आत्मीय क्यों न हो, राष्ट्र के सामने क्या हस्ती है! नईम के बनने या बिगड़ने से राष्ट्र पर कोई असर न पड़ेगा। लेकिन शासन की निरंकुशता और अत्याचार पर परदा डालना राष्ट्र के लिये भयंकर सिद्ध हो सकता है। उसे इसकी परवा न थी कि मेरी आलोचना का प्रत्यक्ष कोई असर होगा या नहीं। संपादक की दृष्टि में अपनी संम्मति सिंहनाद के समान प्रतीत होती है। वह कदाचित् समझता है कि मेरी लेखनी शासन को कंपायमान कर देगी, विश्व को हिला देगी। शायद सारा संसार मेरी

क़लम की सरसराहट से थर्रा उठेगा, मेरे विचार प्रकट होते ही युगांतर उपस्थित कर देंगे। नईम मेरा मित्र है, किंतु राष्ट्र मेरा इष्ट है। मित्र के पद की रक्षा के लिये क्या अपने इष्ट पर प्राणघातक आघात करूँ?

कई दिनों तक कैलास के व्यक्तिगत और संपादकीय कर्तव्यों में संघर्ष होता रहा। अंत को जाति ने व्यक्ति को परास्त कर दिया। उसने निश्चय किया कि मैं इस रहस्य का यथार्थ स्वरूप दिखा दूँगा; शासन के अनुत्तरदायित्व को जनता के सामने खोलकर रख दूँगा; शासन-विभाग के कर्मचारियों की स्वार्थ-लोलुपता का नमूना दिखा दूँगा; दुनिया को दिखा दूँगा कि सरकार किनकी आँखों से देखती है, किनके कानों से सुनती है। उसकी अक्षमता, उसकी अयोग्यता, और उसकी दुर्बलता को प्रमाणित करने का इससे बढ़कर और कौन-सा उदाहरण मिल सकता है? नईम मेरा मित्र है, तो हो; जाति के सामने वह कोई चीज़ नहीं है। उसकी हानि के भय से मैं राष्ट्रीय कर्तव्य से क्यों मुँह फेरूँ, अपनी आत्मा को क्यों दूषित करूँ, अपनी स्वाधीनता को क्यों कलंकित करूँ? आह, प्राणों से प्रिय नईम! मुझे क्षमा करना, आज तुम-जैसे मित्र-रत्न को मैं अपने कर्तव्य की वेदी पर बलि चढ़ाता हूँ। मगर तुम्हारी जगह अगर मेरा पुत्र होता, तो उसे भी इसी कर्तव्य की बलि-वेदी पर भेंट कर देता!

दूसरे दिन से कैलास ने इस दुर्घटना की मीमांसा शुरू की। जो कुछ उसने नईम से सुना था, वह सब एक लेख-माला के रूप में प्रकाशित करने लगा। घर का भेदी लंका ढाहे! अन्य संपादकों को जहाँ अनुमान, तर्क और युक्ति के आधार पर अपना मत स्थिर करना पड़ता था, और इसलिये वे कितनी ही अनर्गल, अपवाद-पूर्ण बातें लिख डालते थे, वहाँ कैलास की टिप्पणियाँ प्रत्यक्ष प्रमाणों से युक्त होती थीं। वह पते-पते की बातें कहता था, और उस निर्भीकता के साथ, जो दिव्य अनुभव का निर्देश करती थी। उसके लेखों में विस्तार कम, पर सार अधिक होता था। उसने नईम को भी न छोड़ा, उसकी स्वार्थ-लिप्सा का ख़ूब ख़ाका उड़ाया। यहाँ तक कि वह धन की संख्या भी लिख दी, जो इस कुत्सित व्यापार पर परदा डालने के लिये उसे दी गई थी। सबसे मज़े की बात यह थी कि उसने नईम से एक राष्ट्रीय गुप्तचर की मुलाक़ात का भी उल्लेख किया, जिसने नईम को रुपए लेते हुए देखा था। अंत में गवर्नमेंट को भी चैलेंज दिया कि जो उसमें साहस हो, तो मेरे प्रमाणों को झूठा साबित कर दे। इतना ही नहीं, उसने वह वार्तालाप भी अक्षरशः प्रकाशित कर दिया, जो उसके और नईम के बीच हुआ था। रानी का नईम के पास आना, उसके पैरों पर गिरना, कुँअर साहब का नईम के पास नाना प्रकार के तोहफ़े लेकर आना; इन सभी प्रसंगों ने उसके लेखों में एक जासूसी उपन्यास का मज़ा पैदा कर दिया।

इन लेखों ने राजनीतिक क्षेत्र में हलचल मचा दी। पत्र-संपादकों को अधिकारियों पर निशाने लगाने के ऐसे अवसर बड़े सौभाग्य से मिलते हैं। जगह-जगह शासन की इस करतूत की निंदा करने के लिये सभाएँ होने लगीं। कई सदस्यों ने व्यवस्थापक-सभा में इस विषय पर प्रश्न करने की घोषणा की। शासकों को कभी ऐसी मुँह की न खानी पड़ी थी। आख़िर उन्हें अपनी मान-रक्षा के लिये इसके सिवा और कोई उपाय न सूझा कि वे मिरज़ा नईम को कैलास पर मान-हानि का अभियोग चलाने के लिये विवश करें।

(५)

कैलास पर इस्तग़ासा दायर हुआ। मिरज़ा नईम की ओर से सरकार पैरवी करती थी। कैलास स्वयं अपनी पैरवी कर रहा था। न्याय के प्रमुख संरक्षकों (वकील-बैरिस्टरों) ने किसी अज्ञात कारण से उसकी पैरवी करना अस्वीकार किया। न्यायाधीश को हारकर कैलास को, क़ानून की सनद न रखते हुए भी, अपने मुक़द्दमे की पैरवी करने की आज्ञा देनी पड़ी। महीनों अभियोग चलता रहा। जनता में सनसनी फैल गई। रोज़ हज़ारों आदमी अदालत में एकत्र होते थे। बाज़ारों में अभियोग की रिपोर्ट पढ़ने के लिये समाचार-पत्रों की लूट होती थी। चतुर पाठक पढ़े हुए पत्रों से घड़ी रात जाते-जाते दुगने पैसे खड़े कर लेते थे; क्योंकि उस समय तक पत्र-विक्रेताओं के पास कोई पत्र न बचने पाता था। जिन बातों का ज्ञान पहले गिने-गिनाए पत्र-ग्राहकों को था, उन पर अब जनता की टिप्पणियाँ होने लगीं। नईम की मिट्टी कभी इतनी ख़राब न हुई थी; गली-गली, घर-घर, उसी की चर्चा थी। जनता का क्रोध उसी पर केंद्रित हो गया था। वह दिन भी स्मरणीय रहेगा, जब दोनों सच्चे, एक दूसरे पर प्राण देनेवाले, मित्र अदालत में आमने-सामने खड़े हुए, और कैलास

समय था, जब बाज़ी तुम्हारे हाथ रहती थी, अब मेरी बारी है। तुमने मौक़ा-महल तो देखा नहीं, मुझी पर पिल पड़े।

कैलास—सरासर सत्य की उपेक्षा करना मेरे सिद्धांत के विरुद्ध था।

नईम—और सत्य का गला घोटना मेरे सिद्धांत के अनुकूल।

कैलास—अभी एक पूरा परिवार तुम्हारे गले मढ़ दूँगा, तो अपनी क़िस्मत को रोओगे। देखने में तुम्हारा आधा भी नहीं हूँ; लेकिन संतानोत्पत्ति में तुम-जैसे तीन पर भारी हूँ। पूरे सात हैं, कम न बेश।

नईम—अच्छा लाओ, कुछ खिलाते-पिलाते हो, या तक़दीर का मरसिया ही गाए जाओगे? तुम्हारे सिर की क़सम, बहुत भूका हूँ। घर से बिना खाना खाए ही चल पड़ा।

कैलास—यहाँ आज सोलहो दंड एकादशी है। सब-के-सब शोक में बैठे उसी अदालत के जल्लाद की राह देख रहे हैं। खाने पीने का क्या ज़िक्र! तुम्हारे बैग में कुछ हो, तो निकालो। आज साथ बैठकर खा लें, फिर तो ज़िंदगी-भर का रोना है ही।

नईम—फिर तो ऐसी शरारत न करोगे?

कैलास—वाह, यह तो अपने रोम-रोम में व्याप्त हो गई है। जब तक सरकार पशुबल से हमारे ऊपर शासन करती रहेगी, हम उसका विरोध करते रहेंगे। खेद यही है कि अब मुझे उसका अवसर ही न मिलेगा। किंतु तुम्हें २००००) में से २०) भी न मिलेंगे। यहाँ रद्दियों के ढेर के सिवा और कुछ नहीं है।

नईम—अजी, मैं तुमसे २० हज़ार की जगह उसका पँचगुना वसूल कर लूँगा। तुम हो किस फेर में?

कैलास—मुँह धो रखिए!

नईम—मुझे रुपयों की ज़रूरत है। आओ, कोई समझौता कर लो।

कैलास—कुँअर साहब के २० हज़ार रुपए डकार गए, फिर भी अभी संतोष नहीं हुआ? बदहज़मी हो जायगी!

नईम—धन से धन की भूक बढ़ती है, तृप्ति नहीं होती। आओ, कुछ मामला कर लो। सरकारी कर्मचारियों द्वारा मामला करने में और भी ज़ेरबारी होगी।

कैलास—अरे तो क्या मामला कर लूँ। यहाँ काग़ज़ों के सिवा और कुछ हो भी तो!

नईम—मेरा ऋण चुकाने-भर को बहुत है। अच्छा, इसी बात पर समझौता कर लो कि मैं जो चीज़ चाहूँ, ले लूँ। फिर रोना मत।

कैलास—अजी तुम सारा दफ़्तर सिर पर उठा ले जाओ, घर उठा ले जाओ, मुझे पकड़ ले जाओ, और मीठे टुकड़े खिलाओ। क़सम ले लो, जो ज़रा भी चूँ करूँ।

नईम—नहीं, मैं सिर्फ़ एक चीज़ चाहता हूँ, सिर्फ़ एक चीज़।

कैलास के कौतूहल की कोई सीमा न रही। सोचने लगा, मेरे पास ऐसी कौन-सी बहुमूल्य वस्तु है? कहीं मुझसे मुसलमान होने को तो न कहेगा। यही धर्म एक चीज़ है, जिसका मूल्य एक से लेकर असंख्य तक रक्खा जा सकता है। ज़रा देखूँ तो, हज़रत क्या कहते हैं।

उसने पूछा—क्या चीज़?

नईम—मिसेज़ कैलास से एक मिनट तक एकांत में बातचीत करने की आज्ञा।

कैलास ने नईम के सिर पर एक चपत जमाकर कहा—फिर वही शरारत! सैकड़ों बार तो देख चुके हो, ऐसी कौन-सी इंद्र की अप्सरा है?

नईम—वह कुछ भी हो, मामला करते हो, तो करो; मगर याद रखना, एकांत की शर्त है।

कैलास—मंज़ूर है। मगर फिर जो डिक्री के रुपए माँगे गए, तो नोच ही खाऊँगा।

नईम—हाँ, मंज़ूर है।

कैलास—(धीरे से) मगर यार; नाज़ुक-मिज़ाज स्त्री है; कोई बेहूदा मज़ाक़ न कर बैठना।

नईम—जी, इन बातों में मुझे आपके उपदेश की ज़रूरत नहीं। मुझे उनके कमरे में ले तो चलिए।

कैलास—सिर नीचा किए रहना।

नईम—अजी आँखों में पट्टी बाँध दो।

कैलास के घर में परदा न था। उमा चिंता-मग्न बैठी हुई थी। सहसा नईम और कैलास को देखकर चौंक पड़ी। बोली—आइए मिरज़ाजी, अब की तो बहुत दिनों में याद किया।

कैलास नईम को वहीं छोड़कर कमरे के बाहर निकल आया। लेकिन परदे की आड़ से छिपकर देखने लगा कि इनमें क्या बातें होती हैं। उसे कुछ बुरा ख़याल न था, केवल कौतूहल था।

नईम—हम सरकारी आदमियों को इतनी फ़ुरसत

कहाँ ? डिक्री के रुपए वसूल करने थे, इसीलिये चला आया हूँ।

उमा कहाँ तो मुसकिरा रही थी, कहाँ रुपए का नाम सुनते ही उसका चेहरा फ़क़ हो गया। गंभीर स्वर में बोली—हम लोग स्वयं इसी चिंता में पड़े हुए हैं। कहीं रुपए मिलने की आशा नहीं है; और उन्हें जनता से अपील करते संकोच होता है।

नईम—अजी आप कहती क्या हैं ? मैंने तो सब रुपए पाई-पाई वसूल कर लिए।

उमा ने चकित होकर कहा—सच ! उनके पास रुपए कहाँ थे ?

नईम—उनकी हमेशा से यही आदत है। आपसे कह रक्खा होगा, मेरे पास कौड़ी नहीं है। लेकिन मैंने चुटकियों में वसूल कर लिया। आप उठिए, खाने का इंतज़ाम कीजिए !

उमा—रुपए भला क्या दिए होंगे। मुझे एतबार नहीं आता।

नईम—आप सरल हैं, और वह एक ही काइयाँ। उसे तो मैं ही खूब जानता हूँ। अपनी दरिद्रता के दुखड़े गा-गाकर आपको चकमा दिया करता होगा।

कैलास मुसकिराते हुए कमरे में आए, और बोले—अच्छा अब निकलिए बाहर ! यहाँ भी अपनी शैतानी से बाज़ नहीं आए ?

नईम—रुपयों की रसीद तो लिख दूँ !

उमा—क्या तुमने रुपए दे दिए ? कहाँ मिले ?

कैलास—फिर कभी बतला दूँगा।—उठिए हज़रत।

उमा—बताते क्यों नहीं, कहाँ मिले ? मिरज़ाजी से कौन-सा परदा है ?

कैलास—नईम, तुम उमा के सामने मेरी तौहीन करना चाहते हो ?

नईम—तुमने सारी दुनिया के सामने मेरी तौहीन नहीं की ?

कैलास—तुम्हारी तौहीन की, तो उसके लिये २० हज़ार रुपए नहीं देने पड़े !

नईम—मैं भी उसी टकसाल के रुपए दे दूँगा।—उमा, मैं रुपए पा गया। इन बेचारे का परदा ढका रहने दो।

प्रेमचंद

ऋण-परिशोध

"Here is sir, Palazzo Foscari."—होटल के पथ-प्रदर्शक के मुँह से करुणा और वेदना से भरे हुए ये शब्द निकले। हम प्रायः पचीस यात्री वेनिस की सबसे बड़ी नहर (Canal Grande) की दाहनी और बाईं ओर के इतिहास-प्रसिद्ध और नयनाभिराम भव्य भवनों को देखने निकले हैं। होटल का गाइड सब इमारतों का थोड़ा-थोड़ा परिचय देने के लिये साथ आया है। उसने करुण तथा व्यथा-पूर्ण कंठ से कहा—"Here is sir, Palazzo Foscari" (श्रीमन्, यह फ़ोस्कारी का महल है)। सबकी दृष्टि बाईं ओर मुड़ी, और फिर सब पथ-प्रदर्शक का मुँह उत्सुकता से ताकने लगे। किंतु वह यह कहकर चुप हो गया कि यहाँ एक पुराने नगरपति (doge) ने अपना दुःख-पूर्ण जीवन बिताया था। मैं एकटक उस महल को देखता रहा। संगमरमर का सुंदर भवन है। किसे अनुमान हो सकता है कि इसकी एक-एक कोठरी में वे सर्द आहें भरी हैं, जो बड़े-से-बड़े वज्र-हृदय का रक्त सहज में जमा देंगी ? आह वेनिस ! वेनिस ! तू सौंदर्य में अनुपम है। प्रकृति ने तुझे सँवारा है। नश्वर प्राणियों ने तुझे अविनश्वर कला से मंडित किया है। किंतु तेरा चरित्र क्रूर है, वज्र से भी कठोर है। तू वह ज़हरीला साँप है, जो अपने को दूध पिलानेवाले के ही हाथ में काटता है। तू वह मित्रघाती है, जो अपने उठानेवाले को रसातल पहुँचाता है। पाठक, यह पालात्सो फ़ोस्कारी इसका जीता-जागता प्रमाण है।

छः सौ बरस की पुरानी बात है। फ़्रांसेस्को फ़ोस्कारी वेनिस-नगर की शासन-सभा (सेनेट) का सदस्य था। खूबसूरत, हट्टा-कट्टा, नौजवान वह जब सेनेट में व्याख्यान देता था, तो उसके मुँह से शब्द क्या, आग के शोले निकलते थे। शरीर स्फूर्ति से परिपूर्ण, और सिर सदा ऊँचा। वे शब्द मानो संसार में फ़ोस्कारी की तेजस्वी आत्मा की धाक जमाते थे। डोज मोसेनिगो की फूँक-फूँककर आगे क़दम बढ़ानेवाली राजनीति से फ़ोस्कारी कभी सहमत नहीं हुआ। जब मोसेनिगो शांति का प्रस्ताव करता, तो सब सदस्य सहमत हो जाते; किंतु फ़ोस्कारी रास्ते

कड़ुआ बना हुआ प्रतिहिंसा का प्यासा यह वीर मेस्किया के प्रति यों विष उगलने लगा—"भगवान् ने जब मुझे काल के गाल से खींच लिया है, तो साफ़ है कि यह घटना उस मित्रद्रोही, अत्याचारी का नाश करने के लिये हुई है, जिसे जीतने की वेनिस उचित अभिलाषा रखता है। मेरा परम सौभाग्य है कि मैं अब वेनिस को स्वदेश स्वीकार कर रहा हूँ, जहाँ नवागतों का हृदय से स्वागत किया जाता है। मैं यही निवेदन करता हूँ कि आप मुझे हथियार और यह आज्ञा दीजिए कि मैं अपना स्वार्थ आपके साथ मिला दूँ। फिर देखिए, मेरी तलवार क्या जौहर दिखाती है।"

कारमानियोला ने प्रतिज्ञा पूरी करने में देर न लगाई। उसने बारह हज़ार सैनिकों की सहायता ले मेस्किया पर चढ़ाई कर दी, और सन् १४२६ में वहाँ के राजा को ऐसा पछाड़ा कि उसे संधि की प्रार्थना करनी पड़ी। नतीजा यह निकला कि राजधानी-समेत मेस्किया का सारा सूबा, फामोनिका की घाटी तथा आसपास की कुछ और भूमि वेनिस में मिला ली गई। ३० दिसंबर, १४२६ को संधि-पत्र पर हस्ताक्षर हुए। कारमानियोला का परिवार आज़ाद किया गया। अब यह विजयी सेनापति सदा के लिये वेनिस में बस गया। प्रजातंत्र ने इसे खूब पुरस्कार दिया, और ख़िलत के साथ पात्रीसिया की उच्च पदवी भी। इस अवसर पर फ़ोस्कारी फूला न समाया। कारमानियोला का सम्मान फ़ोस्कारी का गुणगान था। क्या यह फ़ोस्कारी नहीं था, जिसने इस रणबाँकुरे को वेनिस की सेवा के लिये निमंत्रित किया? क्या यह जय उसकी नीति की जय नहीं थी? कारमानियोला उसका घनिष्ठ मित्र बन गया। उसने सेनाध्यक्ष के सम्मान में बड़ी-बड़ी दावतें दीं। उसे इज़्ज़त से लाद दिया। अविलंब ही कारमानियोला को अपनी तलवार की शान दिखाने का दूसरा अवसर मिला। मिलान का ड्यूक १४२७ ई० के आरंभ में ही अपने पड़ोसी छोटे-मोटे राजों पर टूट पड़ा। कारमानियोला को यह अच्छा मौक़ा मिल गया। वह तुरत इन राजों की सहायता को पहुँचा, और उसने ड्यूक को माकालो में ज़बर्दस्त शिकस्त दी। ड्यूक को सुलह करनी पड़ी। उसके राज्य का एक हिस्सा वेनिस में मिला लिया गया। मिलान के ड्यूक का सिर नीचा देखकर वेनिस में घर-घर अपार हर्ष छा गया। डोज फ़ोस्कारी की तो नीति की जीत ही हो गई। उसके दिल का पुराना अरमान निकला। मोसेनिगो के शांति के उपदेश को उसने झूठा साबित कर अपनी दुर्दमनीय युद्ध की अभिलाषा उचित सिद्ध कर दी।

१४वीं मार्च, १४२८ को माकालो का विजयी वीर वेनिस वापस आया। डोज, शासन-सभा के सदस्य तथा बड़े-बड़े घरानों के प्रतिनिधि उसको लेने गए। डोज की शाही नाव बूसेंटाउरो में उसका स्वागत किया गया। फिर बड़ी धूमधाम और बाजे-गाजे के साथ वह एक सुंदर, भव्य भवन में पहुँचाया गया। यह बड़ा महल उसे उसकी सेवा के पुरस्कार में प्रजातंत्र की ओर से दिया गया। इसके अतिरिक्त उसे तीन हज़ार डूकाट का वेतन और बारह हज़ार डूकाट सालाना आमदनी की जागीर मिली। यह जागीर उन सूबों में थी, जो उसने अपने बाहुबल के प्रताप से जीते थे। इस समय उसके सौभाग्य का सूर्य मध्याह्न पर था। अतुल सुख और सम्मान का चक्र अब पलटा खाना चाहता था। समय आ गया था, जब वह अपमान और दुःख के उतने ही अधिक अंधकारावृत गहरे गड्ढे में ढकेला जाय, जितना ऊपर एक बार अपने विक्रम से चढ़ा था। इस पर अपनी सम्मति देता हुआ ऐतिहासिक वेल लिखता है—"वेनिस का शासन ठीक वैसा ही था, जैसा फ़्रीमेसन-दल का आंतरिक प्रबंध। इसके ऊपर अंधकारमय रहस्य का ऐसा मोटा परदा पड़ा हुआ था कि उसकी आज्ञाएँ आसमान से उतरी हुई जान पड़ती थीं। इस शांत नगर में, जिसका भेद किसी को न मालूम हुआ, आदर और सम्मान सदा अविश्वास और सतर्कता के साथ-साथ बढ़ते थे। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि सेंट० मार्को के प्रजातंत्र ने निरंतर अपने नागरिक को केवल इसलिये उन्नति के शिखर पर चढ़ाया है, सिर्फ़ इसलिये पूर्ण प्रतिष्ठा का पात्र बनाया है कि इसके बाद ही फ़ौरन् या तो उसके ललाट पर अपमान का अमिट कलंक लगाया जाय, या उसे अकस्मात् मृत्यु का ग्रास बनाया जाय। उसकी उपाधियाँ और प्रशंसा उन फूलमालाओं और पुष्प-गुच्छों के सदृश थीं, जिनसे वेनिस-निवासी उन अभागों को सजाते थे, जो सूली पर चढ़ाए जाते थे। शासन-सभा से प्रशंसित और पुरस्कृत होने का अर्थ सज़ायाफ़्ताओं के रजिस्टर में दाख़िल किया जाना था। धाक, नाम और प्रभाव आदि वेनिस में नाश की निशानी थे; क्योंकि जिस पर एक हाथ से इनकी बौछार की जाती थी, उसके सिर के ऊपर दूसरे हाथ से सदा

तलवार लटकाई जाती थी। डर यह रहता था कि कहीं ऐसा न हो, यह एक सबके ऊपर प्रभाव डालकर प्रभुता के पद पर पहुँच जाय। एक का बहुत ऊँचा उठना सर्व-साधारण के लिये भय का कारण था। यह वह खुला ख़तरा था, जिसे जैसे हो, हटाने की चेष्टा की जाती थी।" कारमानियोला का प्रताप और उसकी प्रतिष्ठा सार्वजनिक संकट का रूप धारण करने लगी। वेनिस के कुलीन उसका विक्रम और बढ़ता हुआ सम्मान देख उससे जलने लगे। प्रजातंत्र के उच्च पदाधिकारी उसे संदेह और अविश्वास की दृष्टि से देखने लगे। सारांश यह कि उसका भाग्यचक्र पलटने की तैयारी करने लगा, और वेनिस अपनी नृशंस क्रूरता और 'ते के न जानीमहे' वाली नीचता का पुनरभिनय दिखाने को आगे बढ़ा।

१४३१ ई० में वेनिस और मिलान के बीच फिर संग्राम आरंभ हुआ। कारमानियोला स्थल-सेना का संचालक बनाकर रणभूमि को भेजा गया। किंतु इस बार उसे हो क्या गया! उसकी अकर्मण्यता और असावधानता देखकर वेनिस-निवासियों के आश्चर्य की सीमा न रही। ओलियो के तट पर, सोंसिनो स्थान पर, उसने शत्रु की दृष्टि से छिपे रहने का प्रयत्न किया, और इस मूर्खता-पूर्ण रण-नीति से दो हज़ार जवान खेत रह गए। इसके अतिरिक्त जल-सेना की सहायता करने में उसने अजीब लापरवाही दिखाई। वेनिस के द्वेषी अमीर-उमरा यह देख आपे से बाहर हो गए। साथ ही उन्हें सुअवसर मिला कि अपनी उन्नति के पथ के इस काँटे को कुचल दें। वेनिस का इतिहास-लेखक दारू (D.ru) अपने ग्रंथ में प्रश्न उठाता है कि "क्या कारमानियोला अति सावधान हो गया था, या अत्यंत अकर्मण्य? अथवा, क्या वह वेनिस के प्रजातंत्र से घृणा करने लगा था, जिसने उसके ऊपर दो-तीन और सहयोगी लाद दिए थे? नहीं तो क्या एक विकट वीर और कर्मपटु के जीवन में भी वह समय आता है, जब उसकी बुद्धि जवाब दे देती और ख्याति मिट्टी में मिल जाती है?" फिर क्या था, उसके ऊपर नाना प्रकार के संदेह होने लगे। कोई कहने लगा, वह विस्कौंटी से फिर मिल गया है। कोई बोला, वह विश्वासघाती है; सेँ० मार्को के प्रजातंत्र को शत्रु के हाथ बेचना चाहता है। तुरत उसके लिये अदालत बिठाई गई। मोसेनिगो के बाद डोज-पद का प्रार्थी पिएत्रो लोरेदानो का पुत्र जाकोपो लोरेदानो उन कुचक्रियों में प्रधान था, जो सेनापति का नाश करने पर तुले हुए थे। उसके हृदय में अपने पिता के अपमान की ज्वाला धधक रही थी। वेनिस के शाही घराने का सपूत बिना प्रतिहिंसा-वृत्ति चरितार्थ किए कैसे रह सकता है। जाकोपो अपने दिल की आग शत्रु के रक्त से बुझाना चाहता था। उसका ज़हरीला दिल पग-पग पर शत्रु को डसने में ही अपने अस्तित्व की सफलता समझता था। इसलिये ऐसा सुयोग वह हाथ से क्यों जाने देता! वह जानता था कि कारमानियोला फ़ोस्कारी का मित्र है। अतएव सेनाध्यक्ष के लिये एक ही सज़ा है। इस देशद्रोही को प्राण-दंड दिया जाय। फ़ोस्कारी वीर कारमानियोला के लिये लड़ा; पर जाकोपो अपने निश्चय पर डटा रहा। वह बीच-बीच में बुलंद आवाज़ में पुकारता रहता था—"उसका पुरस्कार प्राण-दंड है। चाहे जैसे हो, उसके कारण वेनिस की अपमान-पूर्ण पराजय हुई है।" फ़ोस्कारी ने बहुत लड़-भिड़कर अदालत से हुक्म निकलवाया कि कारमानियोला वेनिस आकर अपनी रण-नीति की सफ़ाई पेश करे। वह आया, और उसने अपना स्पष्टीकरण न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया। रात-भर सेनेट-सभा में उस पर विचार हुआ, और अंत में उसकी सफ़ाई समायत के लायक़ न मानी गई। फ़ैसला दिया गया कि उसे प्राणवध का दंड दिया जाय। इस फ़ैसले में आठ महीने लग गए। सेनेट-सभा में इस पर ज़ोर का वादविवाद हुआ। तीन सौ सदस्य खूब लड़े-भिड़े। पर वाह रे वेनिस के शासन-तंत्र! हवा को भी ख़बर न लगने पाई कि सेनेट में क्या हो रहा है। "षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः"—छः कानों में जाते ही भेद फूट जाता है; किंतु छः सौ कानों में भेद गया, और न फूटा। और सुनिए, जब कारमानियोला फ़ोस्कारी से पूछने गया कि सेनेट-सभा में मेरा क्या निर्णय हुआ है, तो उसने रोज़ की तरह सरल भाव से यह अस्पष्ट उत्तर दिया—"हाँ, रात-भर सभा में ही रहा। आपके विषय में बड़ा वाद-विवाद हुआ।" इससे पाठक सहज ही वेनिस की राजनीति का अनुमान कर सकते हैं। फ़ोस्कारी ने अपने परम मित्र से कपट किया। उसका हृदय इस क्रूर निर्णय से जल-भुनकर ख़ाक हो गया था; किंतु उसने हँसकर उत्तर दिया। वाह, क्या आत्मसंयम है! हृदय रोता है, पर आँखें हँसती हैं। क्यों? किसके भय से? वेनिस के!

वेनिस के! मेरी लेखनी में शक्ति नहीं कि इस भीषण भय का वर्णन कर सकूँ। किंतु इस विभीषिका का अमर चित्र विक्टर ह्यूगो अपने अंजिलो नाटक में पादुआ के स्वेच्छाचारी शासक अंजिलो के चरित्र में खींच गया है। अंजिलो अभिनेत्री टिस्वे से कहता है—"सुनो टिस्वे, तुमने सच कहा है कि यहाँ मैं जो चाहूँ, सो कर सकता हूँ। मैं इस नगर का अतुल बल-शाली अधिपति हूँ। मैं पोदेस्ता (podesta) हूँ, जिसे वेनिस ने पादुआ के सिंहासन पर बिठाया है। वह ठीक उसी तरह मेरे चंगुल में है, जिस प्रकार शेर के चंगुल में मेमना। निस्संदेह मैं यहाँ हर्ता, कर्ता, विधाता हूँ; किंतु मेरा प्रताप कितना ही अमर्यादित क्यों न हो, प्यारी टिस्वे, मेरे ऊपर एक भयानक और रहस्यमय शक्ति है। वह है वेनिस। अभागी टिस्वे, क्या तू समझती है कि यह 'वेनिस'-शब्द क्या अर्थ रखता है? वेनिस का तात्पर्य है 'शाही सूली', और दस सदस्यों की समिति (Decimvira e)। ओह! हाँ! दस सदस्यों की समिति! टिस्वे, हमें धीमे-धीमे बोलना चाहिए। कौन कह सकता है कि यहाँ इधर-उधर किसी कोने में उसका कोई भेदिया छिपकर हमारी बातें न सुन रहा होगा। समिति के ये दस सदस्य वे हैं, जिन्हें हममें से कोई नहीं जानता, किंतु वे हमें भली भाँति जानते हैं। ये वे आदमी हैं, जिनकी प्रभुता पर्वों और उत्सवों पर नहीं, किंतु सूली के काष्ठ-दंड पर दिखाई पड़ती है। आह! हम सबकी जान इनके हाथ में है। तुम्हारी, मेरी— हाँ, हाँ, ठीक इसी तरह डोज की भी। ये लोग सिर पर ताज नहीं रखते, और न न्यायाधीशों या धर्माध्यक्षों की भाँति ख़ास पोशाक ही पहनते हैं, जिससे कोई उन्हें पहचान सके। एक भी चिह्न नहीं है, जिससे कोई कह सकता हो कि समिति के दस सदस्यों में से यह भी है। × × × किंतु उनके सेवक, उनके भेदिए, उनके जल्लाद सर्वत्र हैं। × × × जहाँ उन्होंने किसी पर उँगली उठाई कि वह गिरफ़्तार कर लिया जाता है, और गिरफ़्तार होते ही समझ लो कि वह ख़तम हो गया! वेनिस का सब काम सूनसान, रहस्यमय और पक्का होता है। सूली की आज्ञा निकलने से लेकर सूली पर चढ़ने तक सब काम चुपचाप और अलक्षित भाव में होता है। इस बीच में चीख़ना असंभव है। किसी के सहृदय लोचन असहाय हैं। दंडित का मुँह कपड़ा ठूँसकर बंद कर दिया जाता है, और जल्लाद का चेहरा बुरक़ा डालकर। मैंने अभी सूली की बात कही थी; पर वह ठीक नहीं। वेनिस में आदमी सूली पर नहीं मरता, वह ग़ायब हो जाता है। किसी कुटुंब का एक सदस्य अकस्मात् लापता हो जाता है। कौन जाने, वह कहाँ चला गया? शायद तहख़ाने की काल-कोठरियाँ या ओर्फ़ानो की नहर यह रहस्य जानती हो। कभी-कभी आदमी रात को ऐसा शब्द सुनता है, मानो कोई चीज़ पानी में डाल दी गई है। फिर वही शांति। हाँ, इधर सर्वत्र नाच-कूद, गाना-बजाना, राग-रंग, थिएटर और पाँच महीने का कार्निवाल-उत्सव चलता है। साधारण मनुष्य यह वेनिस देखता है। ऐ अभिनेत्री टिस्वे! ऐ सौंदर्य की सम्मानित प्रतिमे! तुम इसका यह रूप पहचानती हो, और मैं—सेनेटर—दूसरा रूप। × × × मैं रात को कभी-कभी चौंककर पलँग पर बैठ जाता हूँ। कान लगाकर सुनता हूँ। मालूम पड़ता है, दीवार के पीछे कोई चल रहा है। मैं टिस्वे, इस भूत से डरा हुआ जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मैं पादुआ का नरेश हूँ, किंतु मेरा मालिक यह भूत है। × × × मुझे सज़ा देने का पूरा अधिकार है, किंतु क्षमा करने का नाम को भी नहीं। इसलिये मैं पादुआ का स्वेच्छाचारी शासक और वेनिस का ग़ुलाम हूँ। टिस्वे! टिस्वे! दस सदस्यों की समिति मेरे ऊपर कड़ी नज़र रखती है। × × × जो नौकर मेरी सेवा करता है, वह उसका ख़ुफ़िया है। जो मित्र मुझे प्रणाम करता है, वह जासूस है। पादरी, जिसके सामने मैं अपने पाप स्वीकार करता हूँ, उसका भेदिया है। स्वयं मेरी पत्नी, जो मुझे सदा अपने प्रेम का पाठ पढ़ाती है—हाँ, हाँ वह भी—टिस्वे—उसका गुप्तचर है।" यह दस सदस्यों की समिति वेनिस के डोज के सिर पर भी डेमोक्लीस की तरवार की तरह लटकती रहती थी। इसका जो आतंक सर्वत्र फैला हुआ था, उससे कमल के समान कोमल हृदय वज्र-से कठोर बन गए थे। फ़ोस्कारी तो वास्तव में वीर था। वह नीतिज्ञ था। समझता था कि मैं इस समय जिस प्रतिष्ठित पद पर हूँ, पहले उसकी मर्यादा है, तब मेरी, और मेरे इष्ट-मित्रों की। बस, वह अपने आँसू विष के घूँट की तरह पी गया। जनरल को देशद्रोही के लायक़ सज़ा का हुक्म हुआ। वह वेनिस आया, और कमांडिंग अफ़सर फ़्रेडेरिगो कौंतारिनी के महल में रहा। दूसरे रोज़ कौंतारिनी उसे शहर ले गया। सेनेट के सब सदस्य उसकी अगवानी को आए। इन्हीं सबने रात को बैठकों में तूफ़ानी बहस-मुबाहसा करके उसे यम के घर पहुँचाने का

हुक्म दिया था ! कारमानियोला को डोज के महल तक सम्मान के साथ पहुँचाने के लिये आठ कुलीन उपस्थित थे। डोज के महल में पहुँचते ही सब लोगों से कहा गया—"अनेक धन्यवाद। अब आप घर पधारिए; क्योंकि जनरल नगरपति के साथ बहुत देर तक बातचीत करेंगे।" कारमानियोला महल के बाहरी कमरे में बैठे हैं कि अब डोज उन्हें बुलाता है। कुछ संभ्रांत वंशजों से वह गपशप लड़ा रहे हैं। सब सदा की भाँति है। संदेह का कहीं भी कुछ कारण नहीं है। फिर क्यों न वह हँस-हँसकर मज़े के साथ बातें करें। शाम का वक़्त था। अब रात होने लगी। दूत आया, और बोला—"डोज का स्वास्थ्य इधर कुछ बिगड़ गया है, इसलिये आज शाम को वह मिल न सकेंगे।" कारमानियोला उठा, और निश्चिंतता के साथ घर को रवाना हुआ। जब वह आँगन में पहुँचा, और बाहर की तरफ़ मुड़ने लगा, तो एक साथी ने कहा—"महोदय, इस तरफ़ को पधारिए।"

"क्यों, उधर तो मेरे घर का रास्ता नहीं है !"

"इसे तहख़ाने में ले जाओ।"

बस, फिर क्या था। भेदियों ने तुरंत घेर लिया। साथ ही एक दरवाज़ा खुला, और उसके भीतर से कारमानियोला क़ैदख़ाने पहुँचाया गया। वह चीख़ उठा—"मेरा सर्वनाश हो गया।" तीन रोज़ उसने भोजन न खाया। चौथे रोज़ उसे दस सदस्यों की समिति के यंत्रणागार में ले गए, और असह्य यंत्रणाएँ देने लगे। वीर ने कहा—"मेरा कोई अपराध नहीं है।" इस पर उसका शरीर स्थान-स्थान पर काटने लगे। उसका पाँव धीरे-धीरे जलते हुए कोयलों पर रखकर जलाया जाने लगा। यानी सब प्रकार की यातनाएँ उसे दी गईं, और अंत में उससे स्वीकार कराया गया कि उसका दोष है। इस प्रकार यह सबूत मिल गया कि वह प्राण-वध की उचित सज़ा पा रहा है। ५ मई, १४२८ को वह सेँ० मार्को पहुँचाया गया। उसके मुँह में कपड़ा ठुँसा हुआ था। उसने एक बार आसमान की तरफ़ देखा। वह बहुत देर तक सेँ० मार्को के स्तंभ के ऊपर फहराते हुए प्रजातंत्र की पताका को देखता रहा। इसी स्थान में कितनी ही बार उसकी जय मनाई गई थी ! उसके हृदय में विचारों का जो तूफ़ान उठा, उसे उसका दिल ही जाने। उसने इसके बाद अपनी गरदन नंगी की, और जल्लाद के कुल्हाड़े के नीचे रख दी। इस जवाँमर्द की गरदन धड़ से अलग करने के लिये तीन बार वार करना पड़ा। माकालो का विजयी वीर वेनिस की सेवा का फल पा गया !

कारमानियोला की यह दुर्गति हुई। उसके परम मित्र डोज फ़ोस्कारी के महल के सामने क्रूरता से बिना अपराध उसकी गरदन मारी गई। पर फ़ोस्कारी को हृदय की आग से अपने आँसू सुखाने पड़े। उसे वेनिस के नियम के अनुसार सेनेटरों के साथ कारमानियोला की मृत देह देखनी पड़ी। इस नृशंस हत्याकांड को देखकर उसे आह निकालने का भी अवसर नहीं था। उसके चेहरे पर यदि अलक्षित भाव से भी दया, करुणा, मैत्री, सहानुभूति, समवेदना आदि के भाव देखे जाते, तो तुरंत वह कारमानियोला के समान अपराधी समझा जाता; और यह 'अक्षम्य अपराध' था। इस पर भी अब फ़ोस्कारी का निर्वाचन बहुत लोगों को खटकने लगा। सार्वजनिक मत पलटा खाने की तैयारी करने लगा। फ़ोस्कारी का कट्टर शत्रु जाकोपो लोरेदानो डोज से संबंध रखनेवाली प्रत्येक छोटी-से-छोटी घटना का सूक्ष्म निरीक्षण कर रहा था। वह सदा इन घटनाओं से लाभ उठाने के लिये सतर्क था। वह भला ऐसा सुअवसर क्यों छोड़ता ! उसने चाणक्य की भाँति दृढ़ संकल्प कर लिया था कि डोज के कुल का नाश करके ही शांत हूँगा। इस बात का इससे बड़ा और प्रमाण क्या हो सकता है कि उसने अपने वहीखाते में फ़ोस्कारी को क़र्ज़दारों की सूची में दर्ज किया था, और कारण लिखा था—"मेरे वंश के अपमान के लिये।"

इतने में कोंतारिनी-कुल के एक आदमी के ख़ून की चेष्टा की गई। हत्यारा पकड़ा गया। उसे यंत्रणा दी गई। उसके हाथ तोड़े गए। फाँसी की सज़ा दी गई। किंतु पता न चला कि उसने दोष स्वीकार करते समय कहा क्या। जो हो, इस घटना के बाद फ़ोस्कारी दस सदस्यों की समिति के सामने अपना इस्तीफ़ा लाया। वह अस्वीकृत हुआ। वेनिसवालों ने शायद सोचा हो कि त्याग-पत्र स्वीकार करने से मज़ा ही क्या रहा। जिसे कष्ट देना है, यदि तिल-तिल करके उसका रक्त, उसके प्राण न सुखाए, तो फिर कैसी प्रतिहिंसा, कैसी यंत्रणा ! इसलिये फ़ोस्कारी डोज के पद से हटाया न गया। इतने में, सन् १४४३ में, फ़िलिफ़ मारिया विस्कौंटी ने फ़्रांसेस्को के पुत्र जाकोपो फ़ोस्कारी पर यह अभियोग लगाया कि उसने

डाली ली है। किसी से नज़र लेना वैसे ही बुरा काम है; पर वेनिस में इसके विरुद्ध ख़ास क़ानून था। जाकोपो फ़ोस्कारी दस सदस्यों की समिति और डोज के सामने लाया गया। फ़्रांसेस्को फ़ोस्कारी को हिम्मत नहीं पड़ी कि अपने बेटे के ऊपर जज बनने से इनकार कर दे। उसे अपने पद का ख़याल और वेनिस के राजतंत्र का—जो दस सदस्यों की समिति के हाथ में था—भय था। वह डरा कि अपनी इस दुर्बलता से वह कहीं अधिक गहरे कुएँ में न ढकेल दिया जाय। उसके लड़के का मुक़द्दमा क्या हुआ, न्याय का निरा उपहास किया गया। उसे अपराध स्वीकार करने के लिये कठोर यंत्रणाएँ दी गईं। असह्य वेदना से मुक्ति पाने के लिये उसने दोष स्वीकार करना उचित समझा। इस स्वीकृति के कारण स्वयं उसके पिता डोज फ़्रांसेस्को फ़ोस्कारी ने उसे आजीवन देश-निकाले की सज़ा दी। डोज सुनहरे चँदोवे के नीचे सिंहासन पर विराजमान है। उसका पुत्र दुस्सह यंत्रणा और मार से रक्त-

डोज के महल का फाटक और सीढ़ियाँ
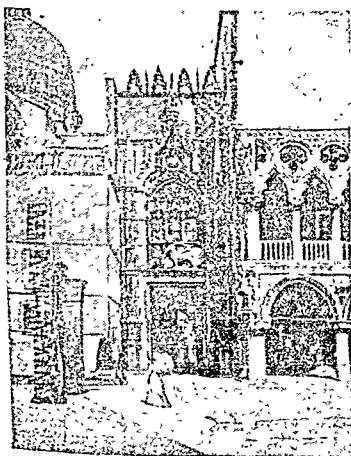
हीन, दुर्बल, क्षत-विक्षत देह, जीर्ण-शीर्ण, बड़े-बड़े बिना सँवारे बाल और वैसी ही दाढ़ी लेकर, हथकड़ी-बेड़ी पहने, चोर और डाकुओं की तरह, अपने पिता के सामने, उसके मुँह से अपना दंड सुनने को, कटहरे में खड़ा है। जब फ़ोस्कारी फ़ैसला सुनाने उठा, तो दस सदस्यों की समिति के सब मेंबर अपनी गंभीर और भयानक आँखों से उसके चेहरे की हरएक हरकत और उसके शब्दों की ध्वनि के एक-एक लहजे पर ध्यान दे रहे थे कि उसके हृदय में अपनी संतति का वात्सल्य प्रबल है, या राष्ट्र का आदर-भाव। किंतु धन्य है फ़ोस्कारी, और उसका आत्मसंयम! उसने अविचलित और उदासीन भाव से अपने पुत्र को देश-निकाले का हुक्म पढ़ सुनाया। जब उसने पहरेदारों से उसे अदालत से हटाने को कहा, तब उसकी आँखों में आँसू की बूँद भी न थी। न उसने लड़के से विदाई ली। उसे एक-मात्र चिंता यही थी कि उसका घोर-से-घोर शत्रु भी उसकी ओर उँगली न उठा सके, उसकी इज़्ज़त में बट्टा न लगा सके। इसलिये वह इस विकट परीक्षा के समय राजा हरिश्चंद्र की भाँति अटल रहा। वह जानता था कि मेरा पुत्र निष्कलंक है, निरपराध है। उसे भली भाँति मालूम था कि मेरा बेटा शत्रुओं की सुलगाई हुई आग में मेरे अपने हाथों से झोंक दिया जा रहा है। वह जाकोपो फ़ोस्कारी से ख़ूब परिचित था, और जानता था कि वह ऐसा नीच काम नहीं कर सकता। वह दुश्मनों की चाल समझता था; किंतु अपना कर्तव्य नहीं छोड़ सकता था। इसीलिये वह अपने को सँभाले रहा।

जाकोपो फ़ोस्कारी नापोली दि रोमानिया भेजा गया। पर वह रास्ते में ही ट्रीस्ट में बीमार पड़ गया। उसने अपने पिता को लिखा कि वह उसे अपनी सिफ़ारिश से किसी स्वास्थ्यकर स्थान को भिजवा दे। फ़ोस्कारी ने यह पत्र समिति के सामने ज्यों-का-त्यों पेश कर दिया। उसने उस पर अपने मुँह से एक शब्द भी कहना उचित न समझा। न उसके हाव-भाव से ही किसी प्रकार की चिंता झलकती थी। उसके लड़के का पत्र क्या था, मानो साधारण अपराधी की अर्ज़ी। समिति ने उसे ट्रेविज़ो को बदल दिया, और हुक्म लगाया कि वह रोज़ वहाँ के गवर्नर के पास हाज़िरी दे। यदि इसका उल्लंघन हो, तो उसे फाँसी दी जाय। कुछ साल वहाँ कटे। इतने में समिति का अध्यक्ष अकस्मात् मारा गया। फ़ोस्कारी का कुल बदनाम हो

चुका था। सो थोड़े परिश्रम से ही जाकोपो लोरेदानो ने फ़ोस्कारी के निर्वासित पुत्र को इसमें लपेट लिया। फ़ोस्कारी का एक नौकर संदेह में पकड़ा गया। उसे इसलिये सब प्रकार की यंत्रणाएँ दी गईं कि वह अपराध स्वीकार कर ले; किंतु उसने अपने को निर्दोषी बताया। तब जाकोपो फ़ोस्कारी को इन अपार यंत्रणाओं का शिकार बनाया गया। उसने भी अपराध अस्वीकार किया। तो भी वह कानेआ को निर्वासित किया गया। यहाँ से उसने फिर अपने पिता को मर्मस्पर्शी शब्दों में पत्र लिखा कि मुझे किसी तरह रिहाई दिला दो। किंतु फ़ोस्कारी नियमित रूप से सब पत्र यथासमय समिति के सम्मुख उपस्थित करता गया। अपने पत्रों का कुछ फल न होते देख जाकोपो इस उपाय से हताश हो गया। बहुत सोच-विचार के बाद उसने निश्चय किया कि मिलान के नए ड्यूक को लिखना चाहिए। उसकी सहायता से शायद कुछ हो। उसने उसे चिट्ठी लिखी; पर वह पकड़ ली गई। अपराध पर अपराध! किसी विदेशी को वेनिस के भीतरी राजकाज में हाथ डालने का मौक़ा देना वेनिस में घोर देशद्रोह समझा जाता था। जाकोपो ने वही किया था। वह तुरंत वेनिस लाया गया। उसकी फिर हर तरह की दुर्गति की गई। कठोर यंत्रणा के बीच जब उससे पूछा गया कि तुमने मिलान के ड्यूक को क्यों पत्र लिखा, तो उसने उत्तर दिया—"स्वयं अपने पिता की क्रूर शांति से पागल होकर मैंने यही ठीक समझा कि यह अर्ज़ी लिखूँ, और इस प्रकार समिति के हाथ तक पहुँचाऊँ। मुझे निश्चित रूप से ज्ञात था कि मैं अकथनीय यातना सहूँगा। किंतु मुझे यह आशा थी कि मैं वेनिस जाकर अपने माता-पिता, स्त्री और बाल-बच्चों को तो एक बार देख लूँगा। मैं आप लोगों से इस मनोरथ को पूर्ण करने के लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ। उसके बाद आप जो चाहें, ख़ुशी से करें।" उसका दंड कठोर कर दिया गया; लेकिन उसकी इच्छा पूरी न करने का कोई कारण न मिला। फिर भी यह रोक रक्खी गई कि घर के भीतर वह अकेले अपने कुटुंबियों से नहीं मिल सकता। यह भेंट महल के गोल कमरे में पहरेदारों के सामने हो सकती है, अन्यथा नहीं। कठोर-से-कठोर हृदय को रुला देनेवाली इस भेंट का वर्णन कौन कर सकता है! अस्सी वर्ष का बुड्ढा पिता, पुत्र-शोक से जर्जर तथा बुढ़ापे से भग्न-स्वास्थ्य व्याकुल माता, और घोर विलाप करती हुई चार बच्चों सहित जाकोपो फ़ोस्कारी की स्त्री, सब मिले। स्त्री ने देखा, नवयुवक, तेजस्वी और सौंदर्य की खान उसका प्यारा जाकोपो नहीं, उसका प्रेत सामने खड़ा है। उसके अंग-अंग में यंत्रणा के नीले घाव विभीषिका की भयंकरता बढ़ा रहे थे। उसका शरीर चकनाचूर हो गया था।
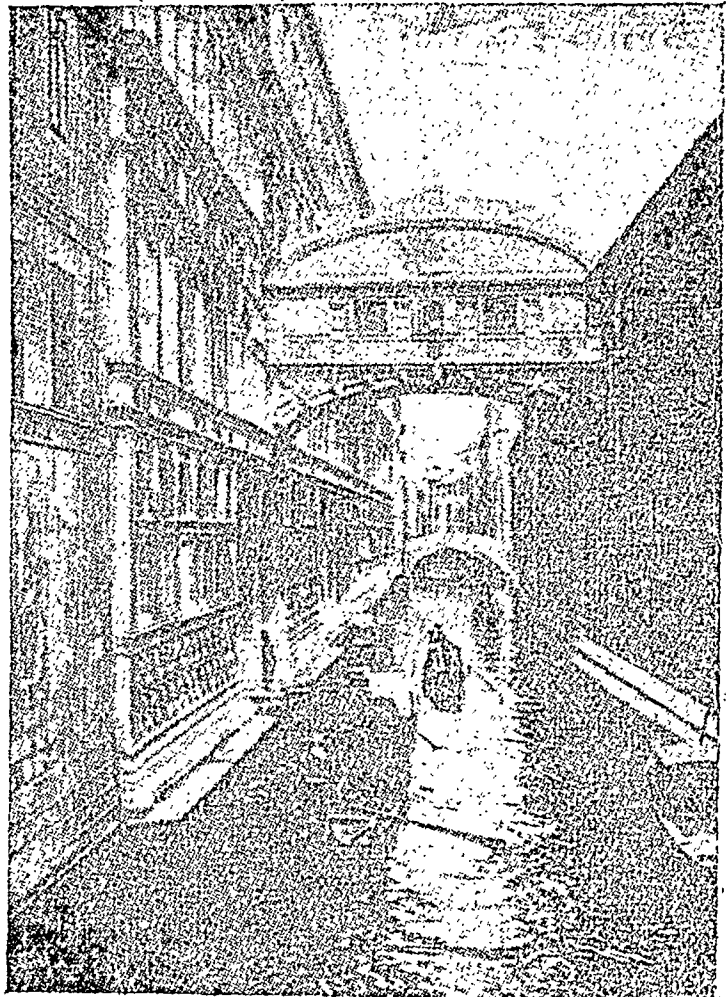
पोते दाइ सोस्पिरी

(यह वह दुखियों के निश्वास से पूर्ण पुल है, जो अंधे क़ैदख़ाने को जाता है। असंख्य निरपराधों ने यहाँ निष्फल आँसू बहाए हैं)

वह नर-कंकाल आसमान की तरफ़ हाथ उठाकर भगवान् की शपथ ले, चिल्लाकर अपनी निर्दोषिता सिद्ध करना चाहता था। उसने अपने पिता से प्रार्थना की कि वह उसके दंड की भयंकरता किसी तरह कम करा दे। पुत्र ने घुटने टेक दिए, और अश्रु-धारा सावन-भादों की नदी की भाँति बहा दी। पिता ने अपने दुलारे को उठाया, उसे गले लगाया, और अटल भाव से उत्तर दिया—"नहीं प्रिय पुत्र, मैं यह नहीं कर सकता, और न करूँगा। बेटा,

तुझे जो दंड मिला है, उसको तुझे स्वीकार करना चाहिए। *प्रजातंत्र के नियमों का पालन उनके विरुद्ध ज़बान हिलाए बिना किया करना !*" कैसा स्तंभित करनेवाला उपदेश है ! स्वभावतः प्रश्न उठता है कि पिता की मोह-ममता का स्रोत भी क्या इस निर्दयता से सूख सकता है ? अथवा उत्तरदायित्व का कठोर विधान मनुष्य को देवता या पशु बना देता है ? इस वीरता और धीरता की जोड़ कम मिलेगी।

कुछ दिनों के बाद असल हत्यारा पकड़ा गया, और मालूम हुआ कि जाकोपो फ़ोस्कारी निर्दोष है। समिति को लाचार होकर यह आज्ञा निकालनी पड़ी कि डोज का अभागा पुत्र रिहा कर दिया जाय। परिवार की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। बूढ़े बाप ने अपार हर्ष से वह संदेश जाकोपो के पास पहुँचाने को कांदिया को दूत-पर-दूत भेजे। किंतु अब बहुत विलंब हो चुका था। दयामय ईश ने जाकोपो की पुकार सुन ली थी, और अपने पास बुलाकर उसकी व्यथा दूर कर दी थी। वह वेनिस के पापियों के अधिकार से दूर चला गया था। घरवालों के पास उसकी लाश ही आई।

यह देख बूढ़े फ़ोस्कारी की दशा राम को वनवास देने के बाद महाराज दशरथ की-सी हो गई थी। इसके अतिरिक्त वह क्रोध से जलकर ख़ाक हो गया था। जिनकी सेवा में उसने अपना सर्वस्व से भी अधिक वार दिया, उन वेनिस-निवासियों की अकृतज्ञता ने उसके हृदय में *आग लगा दी थी।* कोई दूसरा होता, तो इस स्थिति में पागल होकर अनर्थ कर डालता; पर फ़ोस्कारी शांत रहा। हाँ, उसने अब बाहर आना और सेनेट के काम में शामिल होना बंद कर दिया। किंतु डोज का यह व्यवहार भी कई लोगों को खटका। लोरेदानो फिर षड्यंत्र रचने लगा कि फ़ोस्कारी अपने पद से हटाया जाय। उसने कहा, जो डोज राजकाज में भाग नहीं लेता, वह अपने पद के अयोग्य है। कई आपत्तियों के रहने पर भी समिति और पचीस सेनेटरों की कमेटी इस प्रश्न पर विचार करने बैठी। ग़लती से डोज के भाई मार्को फ़ोस्कारी को भी मीटिंग का न्योता दे दिया गया था। वह एक कोठरी में बंद कर दिया गया, और उससे कहा गया कि यहाँ की एक बात भी बाहर मुँह से मत निकालना; नहीं तो जान खो बैठोगे। किंतु फ़ोस्कारी को निकालने के प्रस्ताव के नीचे उसका नाम भी समर्थकों में लिख लिया गया।

डोज को निकालने का अधिकार किसी को न था। इसलिये यह निश्चय किया गया कि उससे अपनी इच्छा से पदत्याग करने के लिये कहा जाय। फ़ोस्कारी इससे पहले दो बार पदत्याग की चेष्टा कर चुका था। उस समय उससे क़सम ले ली गई थी कि फिर वह कभी त्याग-पत्र नहीं देगा। इसलिये जब समिति के सदस्य यह नया संदेश लेकर उसके पास गए, तो उसने विषाद-पूर्ण गंभीरता से कहा—"मैंने शपथ ले रक्खी है, और मैं उसे न तोड़ूँगा।" जब कमेटी ने यह संवाद सुना, तो यह निश्चय किया कि फ़ोस्कारी को पंद्रह सौ डूकाट की पेंशन देकर उसे शपथ तोड़ने से बचा लिया जाय। जब यह समाचार फ़ोस्कारी के पास पहुँचा, तो उसने कहा—"*प्रजातंत्र की यह आज्ञा है। मैं इसे शिरोधार्य करूँगा।*" तुरत उसने शाही पोशाक उतारी, और साधारण नागरिक के कपड़े पहन लिए। इसके बाद उसने अपनी बूढ़ी पत्नी, भाई, बहू, नाती तथा संबंधियों को अपने पास बुलाया, ताकि सब एकसाथ उस महल से विदा हों, जहाँ वह ३५ बरस राजसिंहासन पर बैठ चुका था। जब उसने सीढ़ियों से नीचे उतरना चाहा, तो समिति के मंत्री ने उससे पीछे के रास्ते से बाहर जाने को कहा। मतलब यह बताया कि सॉ० मार्को के पियात्सो पर एकत्रित जनता में हलचल न मचे। इस पर फ़ोस्कारी से न रहा गया। उसका चेहरा तमतमा उठा। उसने अपने ओजस्वी शब्दों में कहा—"ऐ नवयुवक, तेरी बुद्धि को क्या हो गया है, जो तू मुझे ऐसी राय देता है ? क्या मैंने अपने जीवन में जनता को कभी ऐसा अवसर दिया है, जिसके कारण मैं उससे डरूँ ? अथवा, क्या इस समय ऐसा कारण उपस्थित है ? बस, यहाँ से हट जा, और मेरा रास्ता मत रोक। इन्हीं सीढ़ियों पर से मैं ऊपर चढ़ा था, और इन्हीं पर से नीचे उतर रहा हूँ। सारा संसार यह देख ले कि मैं फाटक पर यहाँ की अपने पाँव की धूल भी यहीं झाड़े जाता हूँ, और यहाँ से अपने दुर्भाग्य और केवल मातृभूमि की सेवा के सिवा अपने साथ और कुछ नहीं लिए जा रहा हूँ।"

यह कहता हुआ सिर ऊँचा किए हुए फ़ोस्कारी हाथी की-सी *धीमी चाल से नीचे उतरा।* बाहर पियात्सो खचाखच भरा हुआ था। लोरेदानो के अनुयायी जनता को फ़ोस्कारी के *विरुद्ध भड़काने की कोशिश में थे कि वह उस पर टूट पड़े!* किंतु जब नंगे-सिर बूढ़ा फ़ोस्कारी अपनी श्वेत केशोंवाली

पत्नी, बहू, नानी तथा संबंधियों के साथ बाहर निकला, तो इन सबका रोना-धोना सुन स्वयं उत्तेजक अवाक् हो गए। भीड़ पीछे हट गई। फ़ोस्कारी ने एक बार फिरकर महल की ओर देखा, और कहा—"मातृभूमि की सेवा ने मुझे इसके भीतर बुलाया था, और मेरे शत्रुओं की दुष्टता ने यहाँ से बाहर निकाला। भगवान् करें, उनका क्रोध केवल मुझे कष्ट दे, मातृभूमि को नहीं। प्रजातंत्र की जय!" इस पर जनता एक स्वर से पुकार उठी—"प्रजातंत्र की जय!", और फ़ोस्कारी के महल तक उसके पीछे-पीछे हो ली। अपने भवन के बाहर फ़ोस्कारी ने कुटुंबियों और इष्ट-मित्रों को चारों ओर खड़ा किया, तथा सबसे उच्च स्वर में शपथ लिवाई कि वे उसके शत्रुओं की बुराई भूल जायँ, और पहले की तरह प्रजातंत्र की सेवा में सदा तत्पर रहें।

यह घटना २० ऑक्टोबर, सन् १४५६ की है। इस तारीख़ को लोरेदानो ने अपनी वही में फ़ोस्कारी के नाम पर जो ऋण चढ़ा रक्खा था, उसके सामने लिखा L'ha pagata (ल-आ पागाता), अर्थात् उसने क़र्ज़ चुका दिया। सुंदर वेनिस का इससे असुंदर चित्र और क्या हो सकता है? जर्मनी का कवि गेटे बहुत ठीक कह गया है—"Wir mögen die welt kennen lernen, wie wir wollen, sie wird immereine Tagseite und eine Nachtseite behalten." (हम चाहे जिस दृष्टि से संसार को देखें, किंतु उसमें सदा प्रकाशमय और अंधकारमय, दोनों तरह के दृश्य विद्यमान रहते हैं)। वेनिस के विषय में यह सबसे अधिक चरितार्थ होता है।

हेमचंद्र जोशी

अंचल में

प्रिये, छिपाकर कहाँ चलीं निज निधि नवीनतम अंचल में?
प्रणय भिखारी प्रति उदारता क्या है नहीं दृगंचल में?
कानन में है खिली कली, तो क्या पराग-प्रेमी मधुकर
तरसेंगे, आकर लिपटेंगे या पाकर सुगंध सुखकर?

"सहिष्णु"

हे कदंब!

हे कदंब, अब देख न पड़ता क्यों तुममें आनंद-विकास?
वन की छोटी पगडंडी के तट पर तुम क्यों खड़े उदास?
अट्टहास, उल्लास, नृत्य की कहाँ बह रही सरस हिलोर?
छोड़ कृष्ण से नाता तुमने पकड़ लिया है किसका छोर?
कहाँ गोपियाँ गूँथा करतीं अब नीचे फूलों के हार?
खोए किस विकार से तुमने गौरव के अमूल्य उपहार?
आस-पास काँटों का वन है, बंद हो गई पहली राह;
कहाँ बह रहा जुही-कुंद की कलियों से लावण्य-प्रवाह?
पागल-सी वह किधर बह गई अब यौवन की प्रबल उमंग?
जरा-जीर्ण तुम खड़े हुए हो हा! किस दस्यु समय के संग?
वृंदावन का वही विपिन है; किंतु कहाँ द्वापर की बात?
शून्य रूप भावुक हृदयों में करता रह-रहकर आघात।
फागुन बीत गया, होली में कहाँ ग्वालवालों के ग़ोल?
मसले अहो कहाँ माधव ने मोहिनियों के गोल कपोल?
रंग-भरी पिचकारी का अब देख न पड़ता हाय, कमाल;
आसमान कब लाल हो गया किस दिन ऐसा उड़ा गुलाल?
सावन चला गया कितने ही मस्त बजाते सुख की ढोल;
किंतु तुम्हारी हरी डाल पर पड़ा न मोहन का हिंडोल।
ऊँची-ऊँची पैंगों ने कब लिया तुम्हारा मृदु मुख चूम?
कहाँ गोपियों के झूलों की दिखलाई दी अनुपम धूम?
तरुवर, तुमको भूल गए क्यों अहो एकदम कृष्ण कठोर?
चीर चुराकर छिपे किसी दिन थे तुम पर ही माखन-चोर!
क्रीड़ा-स्थल वह कहाँ आज है, जिस पर था तुमको अभिमान?
व्याकुल वंशी का सुन पड़ता कहाँ आज आकुल आह्वान?
दौड़-दौड़कर व्रज-वनिताएँ अब होतीं हैं कहाँ अधीर?
शून्य पड़ा तल आज तुम्हारा, स्मृति की केवल खिंची लकीर।
अग़ल-बग़ल से सुन पड़ती है शेरों की खूँख़ार दहाड़;
घूम रहे हैं रीछ मौज़ से, चीते रहे शिकार पछाड़।
झाँक रहे मृत्तिका-गुफा से छिन-छिन बच्चों सहित शृगाल;
डाल-डाल में तने हुए हैं, सिर्फ़ मकड़ियों ही के जाल।
श्यामा जहाँ नाचती थी, है वहीं उल्लुओं का अब वास;
रहा शेष क्या? बाक़ी है बस, तुममें रूप और इतिहास।
सन-सन-सन-सन-सन चलता है अब केवल उन्मत्त समीर;
पत्र-पत्र से सिहर-सिहरकर उपजाते तुम मन में पीर।
फिर भी नहीं टूट पड़ते हो, सोच रहे क्या खड़े उदास?
हे कदंब, क्यों दिखलाते हो अब अपना उन्माद-विकास?

"गुलाब"

दूसरों के लिये ऐसा अमोघ उपाय सोच निकालते हैं, वे अपने को और दूसरों को भी धोका देते हैं। हम यह प्रयत्न करेंगे कि जो नियम इस चातुरी के मुख्य आधार हैं, उनका यहाँ दिग्दर्शन करा दिया जाय। वे ऐसे नियम होंगे, जिनका प्रयोग प्रयोग करनेवाले पर, समय पर और आनुषंगिक प्रसंगों पर निर्भर है। अस्तु।

आइए, पहले सट्टेबाज़ों में क्या गुण होने चाहिए, इसी पर विचार करें। हमारी समझ में तो सट्टेबाज़ में आत्मविश्वास (Self-reliance), विवेचना (Judgment), साहस (Courage), विज्ञता (Prudence) और नम्रता (Pliability) का होना ज़रूरी है। अब इनके बारे में अलग-अलग विचार कीजिए।

१. आत्मविश्वास। प्रत्येक मनुष्य को खुद ही विचारना और अपने ही निश्चयों का अनुसरण करना चाहिए। जॉर्ज मैकडॉनल्ड ने कहा है—"कोई भी मनुष्य दूसरे मनुष्य के-से विचार या मंतव्य नहीं रख सकता। जैसे एक मनुष्य के लिये दूसरे मनुष्य की आत्मा अथवा शरीर को प्राप्त करना असंभव है, वैसे ही यह भी।" मतलब यह है कि यदि हम भूल करके उससे यह ज्ञान प्राप्त करें कि भूल किस कारण से हुई, तो हमारी ऐसी भूल उस सफलता से कहीं अच्छी है, जो हमें दूसरों के निर्णयों से प्राप्त होती है। आत्मविश्वास ही सफलता की नींव और एक-मात्र कुंजी है।

२. विवेचना। समतोल बुद्धि (एक के साथ दूसरे की ठीक-ठीक तुलना का गुण, जिसे विवेक-बुद्धि भी कहते हैं) सट्टे के खिलाड़ी में होना अनिवार्य है।

३. साहस। उसमें मन के निर्णयों के अनुसार काम करने की हिम्मत भी होनी चाहिए। सट्टे में मिराबो (Mirabeau) की यह कहावत अत्यंत उपयोगी और काम की है—"साहसी रहो ; और भी अधिक साहस रक्खो; सदैव साहस को दृढ़ रक्खो।"

४. विज्ञता। आपत्ति (ख़तरे) का अंदाज़ लगाने की शक्ति के साथ-साथ कुछ-कुछ फुर्तीलापन और ख़बरदारी होना भी सट्टेबाज़ के लिये आवश्यक है। उसमें साहस और ऐसी कार्यकारिणी बुद्धि की समान मात्रा होनी चाहिए। बुद्धि तो विचारने और साहस उसके अनुसार कार्य करने के लिये होना ज़रूरी है। लॉर्ड बेकन ने कहा है—"मनुष्य को विचार करते समय सब आपत्तियाँ प्रत्यक्ष दिखाई दे जानी चाहिए। परंतु कार्य करते समय उनमें से कोई भी उस समय तक उसके सामने न आनी चाहिए, जब तक वह बहुत ही भयंकर न हो जाय।" इन्हीं गुणों से संबंध रखनेवाला एक और गुण है, जिसे हम तत्परता (Promptness) कह सकते हैं। सच बात तो यह है कि इस गुण का प्रादुर्भाव इन्हीं पूर्वोक्त गुणों से होता है। जब मन में विश्वास हो जाय, तब कार्य होना ही चाहिए। मकबेथ ने कहा है—"अब से मेरे मन के सर्वप्रथम विचार मेरे हाथ के सर्वप्रथम काम भी होंगे।" मतलब यह कि विचार किया जाय, और विचार करने के बाद उस पर शीघ्र ही अमल भी किया जाय।

५. नम्रता। सट्टेबाज़ में रुख़ बदल सकने की शक्ति अथवा संशोधन करने की बुद्धि का होना भी आवश्यक है। "जो मन लगाकर, ध्यान देकर, देखने का अभ्यासी है, और जो बार-बार इसी प्रकार देखा करता है, वही सदैव भयंकर होता है।"—यह समरसन की उक्ति है।

सट्टे के अलेख्य नियम

ऊपर कहे गए सभी गुण सट्टेबाज़ में होना अनिवार्य है। परंतु इनसे भी आवश्यक यह है कि उसमें इनकी बराबर तुली हुई मात्रा हो। किसी एक की कमी अथवा आधिकता उसके सारे गुणों को मिट्टी में मिला देती है। इन गुणों का इस प्रकार सम-परिमाण में पाया जाना सचमुच साधारण या सहज बात नहीं है। जैसे वे मनुष्य बहुत ही कम हैं, जिनका जीवन सफल कहा जा सकता है, वैसे ही वही हाल सट्टेबाज़ों का है। सट्टे में कृतकार्य होनेवाले विरले ही होते हैं। और, असफलता तो प्रायः सभी के लिये निश्चित रहती है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र या अंश की भाषा पृथक्-पृथक् है। वह भाषा-विभाग चाहे परिमार्जित एवं सुंदर न भी हो, पर स्पष्ट तो ज़रूर ही है। किंतु हमें हमारे प्रतिपाद्य विषय के विवेचन में मामूली भाषा का ही उपयोग करना होगा। यहाँ पर इस विषय के नियमों के संबंध में जो कुछ कहा जायगा, वह किसी ख़ास सट्टे को लक्ष्य में रखकर नहीं। ये नियम सब प्रकार के सट्टे के लिये ठीक हैं। ये विश्वव्यापी एवं सार्वभौम हैं। पर सुबीते के लिये हम अपने बाज़ार के किसी भी सट्टे के व्यापार को उदाहरण के तौर

पर ले सकते और इनको उसमें घटित कर सकते हैं। कारण, प्रत्यक्ष उदाहरण से ही इन नियमों का प्रभाव हमें अच्छी तरह ज्ञात हो सकता है। इसी तरह वह सहज में समझाया भी जा सकेगा। इन नियमों के दो भेद किए जा सकते हैं। एक तो वे, जो स्वतंत्र हैं; और दूसरे वे, जो परावलंवित अर्थात् किसी दूसरे के आश्रित हैं।

स्वतंत्र नियम

१. "कभी बेहद व्यापार न करो"।—पूँजी की जितनी समाई हो, उससे अधिक व्यापार कर लेना आपत्ति को स्वयं निमंत्रण देना है। इस प्रकार का वित्त-बाहर व्यापार हो जाने पर भाव की घट-बढ़ में सट्टेबाज़ शीघ्र ही अस्त-व्यस्त या डाँवाडोल हो जाता है। ऐसे अवसर पर उसका निश्चय, उसकी मीमांसा, उसका विवेक, सब कुछ बेकार हो जाता है।

२. "कभी दूने मत करो"।—यानी अपनी जो स्थिति हो, उसके एकदम विपरीत स्थिति कभी न पैदा करो। उदाहरणार्थ, यदि तुम तेज़ी में हो, तो एकदम सब माल बेचकर कभी उतनी ही मंदी में मत आओ। ऐसा करने से कभी-कभी सफलता भी हो सकती है; पर है यह बहुत ही ख़तरनाक। कारण, अगर बाज़ार फिर से तेज़ होने लगे, तो तुम्हारी धारणा, तुम्हारा रुख़ पहले ही का-सा फिर हो जायगा। फलतः तुम अपना बेचान काटकर फिर तेज़ी में आओगे। अब अगर यह भी धारणा झूठी ठहरे, तो इसका अंतिम परिणाम तुम्हारा पूर्ण नाश ही होगा। अतएव यदि आवश्यक जान पड़े, तो अपनी पहले की स्थिति में धीरे-धीरे और सावधानी के साथ परिवर्तन करना ही उचित होगा। ऐसा करने से हमारी मीमांसा, हमारा निर्णय भी स्थिर रह सकेगा, और हमारे मन की समता भी नष्ट न होगी।

३. "या तो शीघ्रता करो, या बिलकुल न घबराओ"।—इसका अभिप्राय यह है कि ज्यों ही तुम्हें आपत्ति का खटका हो, त्यों ही शीघ्र बचाव की सूरत कर लो। लेकिन अगर तुम दूसरे आदमियों को उस विपत्ति या ख़तरे की ख़बर लगने के पहले ही ऐसा उपाय नहीं कर सकते हो, तो स्थिति को पकड़े रहो, अथवा अपना थोड़ा-सा व्यापार कम कर दो, या सलटा दो।

४. "यदि तुम्हारे मन में कभी किसी प्रकार का संदेह हो जाय, तो अपना व्यापार कुछ हलका कर दो।"—कारण, ऐसे समय में मन, अपनी रक्षा के लिये, न तो अपनी आदर की हुई स्थिति से और न अपने व्यापार ही से संतुष्ट रहता है। एक मनुष्य ने अपने एक मित्र से एक बार कहा था कि बाज़ार की अपेक्षा उसके निजी व्यापार की स्थिति क्या है, इस सोच में वह रात को अच्छी तरह सो भी नहीं सका। मित्र ने उसका चट यही उत्तर दिया, और ठीक ही दिया कि भाई, बस, नींद आने की स्थिति तक तुम बेच डालो।

परावलंवित नियम

परावलंवित नियमों के संबंध में पहले ही कहा जा चुका है कि अवस्थाविशेष, व्यक्तित्व और सट्टा खेलनेवाले सट्टेबाज़ की प्रकृति के अनुसार इन नियमों का संशोधन किया जा सकता है। अतएव ये लिखे नहीं जा सकते।

अन्य आवश्यक बातें

ऊँचा औसत लगाना नीचा औसत लगाने से हमेशा अच्छा है। हमारा यह कथन साधारण लोगों को सही न जान पड़ेगा; क्योंकि लोग बाज़ार मंदा जाने पर और पोते करना ही ठीक समझते और अक्सर ऐसा ही करते भी हैं। जैसे-जैसे बाज़ार मंदा जाता है, वैसे-वैसे नीचा धड़ा बाँधने के लिये वे पोते ही करते जाते हैं। ऐसा करने से यह भी बहुत अधिक संभव है कि बाज़ार का रुख़ फिर पलटकर पूर्ववत् हो जाय, और हानि से बचाव भी हो। यह देखा गया है कि पाँच दफ़े में चार दफ़े बाज़ार उलट जाता है। पर पाँचवीं दफ़े लगातार मंदा जाता हुआ बाज़ार देखकर सट्टेबाज़ का सिर चक्कर खा जायगा, और तब वह अपना सारा 'लेना' नुक़सान में बेच देगा। यह हानि भी उस समय शायद इतनी भारी होगी कि उसका परिणाम भी उसकी बर्बादी ही होगी। यही नहीं, अपने साथ वह बाज़ार को भी भ्रष्ट कर देगा।

अब ऊँचा औसत लगाने पर विचार कीजिए। यह नीचा औसत लगाने के बिलकुल विपरीत है। यानी पहले कुछ माल पोते किया जाता है; इसके बाद जैसे-जैसे बाज़ार बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे धीरे-धीरे और माल पोते कर लिया जाता है। परंतु माल इस तरह पोते करते समय यह बात सदा ध्यान में रक्खी जाती है कि व्यापार हद से ज़्यादा न हो जाय। इस तरह से सट्टा खेलने में बड़ी सावधानी और चौकसी रखनी पड़ती है; क्योंकि बाज़ार औसत तक अनेक बार पहुँच जाया करता है, और यहीं इस प्रकार का व्यापार करने में ख़तरा है। औसत के पहुँचते ही अपना

कोष्ठ के जीवन के लिये मध्यांश तथा बहिरंश, दोनों आवश्यक हैं। उनके पदार्थों का परस्पर विनिमय होता है। जितने उद्भिद् और प्राणी हैं, वे सब कोष्ठों की समष्टियाँ हैं। कोई-कोई जीव, अर्थात् उद्भिद् या प्राणी, इतने छोटे हैं कि वे एक ही कोष्ठ-वाले हैं। कोई-कोई दो, चार या अधिक कोष्ठों से निर्मित हैं। बड़े-बड़े जीवों में असंख्य कोष्ठ हैं। ये कोष्ठ कहाँ से आते हैं? कोष्ठों के विभाग से कोष्ठों की संख्या की वृद्धि होती है। जब कोई कोष्ठ साधारण कोष्ठों से बड़ा हो जाता है, तब उसका प्रोटोप्लास्म दो भागों में विभक्त हो जाता है। पहले मध्यांश, पीछे बहिरंश, दोनों भाग अलग-अलग हो जाते हैं। एक-एक भाग में कुछ मध्यांश और कुछ बहिरंश रहता है। फिर दोनों भागों के बीच में एक परदा पड़ जाता और वह कोष्ठ की दीवारों के साथ मिल जाता है। फिर दोनों खंड अलग होकर दो स्वतंत्र कोष्ठ बन जाते हैं। फिर ये भी यथासमय बँट जा सकते हैं। जितने जीव हैं, वे सब पहले एक ही कोष्ठ के होते हैं; पीछे उस कोष्ठ के बारंबार विभाग से छोटे जीव बड़े जीव बन जाते हैं। पर कोई-कोई एक ही कोष्ठ के रह जाते हैं।

सजीव कोष्ठों ही का विभाग होता है। सजीव कोष्ठ का क्या लक्षण है? सजीव कोष्ठ वही हैं, जिसमें सजीव प्रोटोप्लास्म है। प्रोटोप्लास्म की सजीवता का क्या लक्षण है? सजीवता का लक्षण है क्रियाशीलता। जिसमें पदार्थों के रूप का परिवर्तन हमेशा होता रहता है, वही सजीव है। प्रोटोप्लास्म के पाँच मुख्य उपादान हैं—कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सिजन, नाइट्रोजन और गंधक। प्रोटोप्लास्म में इन मूल-पदार्थों के अलावा कुछ अन्य मूल-पदार्थों का भी थोड़ा-थोड़ा अंश पाया जाता है। इन मूल-पदार्थों से प्रोटोप्लास्म में नाना प्रकार के मिश्र पदार्थ बनते हैं। कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सिजन के रासायनिक मिश्रण से कार्बो-हाइड्रेट (स्टार्च, चीनी, सेल्युलस इत्यादि) बनते हैं। कार्बन और हाइड्रोजन के रासायनिक संयोग से चिकने पदार्थ (तेल, घी, चर्बी इत्यादि) बनते हैं। कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सिजन और नाइट्रोजन के रासायनिक संयोग से प्रोटीन (दाल, मांस इत्यादि) बनते हैं। जिन सब मूल-पदार्थों के नाम लिए गए हैं, उनके परमाणुओं (Atoms) के विभिन्न प्रकार के मिश्रण से नाना प्रकार के साधारण तथा उच्च कोटि के यौगिक पदार्थों के अणु (Molecules) बन सकते हैं। जिस जीव के शरीर या शरीर के अंशों में जिस प्रकार के यौगिक पदार्थ हैं, उनमें उसी प्रकार के यौगिक पदार्थ निर्मित होते हैं। जीव-शरीर में खाद्य, जल, ऑक्सिजन और उपयोगी उत्ताप की सहायता से अणु बनते हैं। प्रोटोप्लास्म ही में यह निर्माण-क्रिया चलती है। इस निर्माण-क्रिया को मेटाबोलिज़्म (Metabolism) कहते हैं। जिन रासायनिक परिवर्तनों के कारण जीव-देह में खाद्य से प्राप्त साधारण यौगिक पदार्थों द्वारा उच्च कोटि के यौगिक पदार्थ बनते जाते हैं, उनको एनाबोलिज़्म (Anabolism) कहते हैं, और जिन रासायनिक परिवर्तनों के कारण उच्च कोटि के यौगिक पदार्थ टूटकर साधारण यौगिक पदार्थों में परिणत होते हैं, उन्हें केटाबोलिज़्म (Katabolism)। एनाबोलिज़्म से जीव-शरीर की पुष्टि होती है, और केटाबोलिज़्म से क्षय। केटाबोलिज़्म के द्वारा जीव-शरीर में दूषित पदार्थ बनते हैं, जो पसीने, मूत्र और मल आदि के रूप में शरीर से निकल जाते हैं। एनाबोलिज़्म और केटाबोलिज़्म, ये दोनों मेटाबोलिज़्म के दो विभाग हैं।

प्रोटोप्लास्म ही में इन दोनों प्रकार के परिवर्तनों की धाराओं का मिश्रण पाया जाता है; और यही जीवन का लक्षण है। जब केटाबोलिज़्म से एनाबोलिज़्म अधिक होता रहता है, तब जीव की वृद्धि होती है। जब इसके विपरीत कार्य होता रहता है तब क्षय और अंत में मृत्यु होती है। अतएव देखा जाता है कि खाद्य के रूप में अजीव पदार्थ जीव-देह में प्रवेश करता और वहाँ सजीव प्रोटोप्लास्म की शक्ति से सजीव बन जाता है। पीछे उसमें से कुछ अजीव (अर्थात् देह के लिये अनिष्टकारी) पदार्थ बनकर बाहर निकल जाते हैं। खाद्य अपने अंतर्गत शक्ति को जीव-देह में छोड़कर, अर्थात् शक्तिहीन होकर देह से अलग हो जाता है। यह शक्ति प्रोटोप्लास्म के परिवर्तनों की सहायता करती है।

प्रोटोप्लास्म की सजीवता के तीन लक्षण पाए जाते हैं—(१) उत्तेजित होना, (२) बढ़ना और (३) उत्पादन करना।

(१) प्रोटोप्लास्म को दो प्रकार से उत्तेजना मिल सकती है—(क) देह के बाहर से और (ख) देह के भीतर से। बाहरी उत्तेजना ताप, ठंड, आघात इत्यादि से मिल सकती है। बाहरी उत्तेजना से एकाएक मेटाबोलिज़्म अर्थात् परिवर्तनों का आरंभ हो सकता है। परंतु एक भीतरी परिवर्तन से दूसरे भीतरी परिवर्तन को उत्तेजना मिलती अर्थात् दूसरा परिवर्तन शुरू हो जाता है। जिन पदार्थों से प्रोटोप्लास्म घिरा है, इस उत्तेजना ही के कारण, उनसे उसका संबंध हो जाता है; अर्थात् उनके द्रव्यों के साथ प्रोटोप्लास्म के द्रव्यों का विनिमय शुरू होता है, जिसमें उसकी पुष्टि या क्षय होता है। भीतरी उत्तेजनाओं में ताप एवं जल प्रधान हैं। ये मेटाबोलिज़्म के सहायक होते हैं।

(२) अब जीवों के बढ़ने के विषय में कहा जाता है। पहले ही कहा जा चुका है कि एक कोष्ठ बंद होकर दो हो जाता है। इसी तरह दो से चार होते हैं, और चार से आठ इत्यादि। कितने ही जीव एक-कोष्ठ हैं कितने ही बहु-कोष्ठ। जीव एक-कोष्ठ हों, चाहें बहु-कोष्ठ, उनके अंशों में विशेषता आ जाती है। एक अंश से खाद्य-संग्रह तथा परिपाक होता है; एक अंश से अंग-संचालन-क्रिया होती है; एक अंश से अनुभव का कार्य होता है; और एक अंश मल-त्याग करनेवाला है। बहु-कोष्ठ जीवों में इन कार्यों के लिये कोष्ठों की विशेष-विशेष श्रेणियाँ बँध जाती हैं। जैसे उद्भिद्-जीव मूल से रस ग्रहण करता है, पत्तों के विवरों से खाद्य-संग्रह करता है, और फूलों के द्वारा संतान उत्पन्न करता है, इत्यादि। मा का दूध पीनेवाले जीवों के भी इन सब कार्यों के लिये उपयोगी अंग-प्रत्यंग हैं। अतएव देखा जाता है कि कोष्ठ समाज-बद्ध रहते हैं, और उनके जितने विभिन्न समाज हैं, वे परस्पर सहायता करते हुए जीव को जीवित रखते हैं। जितने बहु-कोष्ठ जीव हैं, वे आदि में एक-कोष्ठ ही उत्पन्न होते हैं। क्रमशः उस एक कोष्ठ के विभाग से बहुत कोष्ठ हो जाते हैं। भ्रूण की अवस्था ही से यह विभाजन का काम चलता रहता है; और इसी अवस्था में कोष्ठ समाज-बद्ध होकर अंग-प्रत्यंग उत्पन्न करते हैं।

(३) अतएव यह निश्चित है कि हरएक कोष्ठ पहले के किसी एक कोष्ठ से और हरएक प्रोटोप्लास्म पहले के किसी एक प्रोटोप्लास्म से उत्पन्न होता है। आदि का प्रोटोप्लास्म कहाँ से आया था? इस प्रश्न के समाधान के लिये और भी कुछ विचार आवश्यक है। उत्पादन-क्रिया दो प्रकार से हो सकती है—(क) कोष्ठ के विभाग से, और (ख) दो कोष्ठों

और बुद्धसिंह के समय में भी लगभग ४० वर्ष का अंतर था। बूँदी-राज्य के कवि गुलाब ने भी ललित-ललाम की टीका में इसका कोई उल्लेख नहीं किया; और न अनिरुद्ध-सिंह अथवा बुद्धसिंह की प्रशंसा का कोई छंद ही उद्धृत किया। याज्ञिकद्वय * भी मेरी इस राय से सहमत हैं कि मतिराम भूषण को सं० १७६७ में बूँदी नहीं ले गए; भूषण ने स्वतंत्र यात्रा ही की होगी, और वह फिर कुछ दिनों के बाद वापस चले आए होंगे।

(३) भूषण और साहू के मिलने का उल्लेख साहू के शिकार खेलने के वर्णन के अनुकूल पाया जाता है। शिवाजी को शिकार खेलने का अवकाश ही कहाँ था? कहीं इसका उल्लेख भी नहीं है।

(४) मिश्रबंधु महोदय मानते हैं कि शिवाजी से मिलने के पूर्व भूषण राजा अवधूतसिंह † के यहाँ रहे थे। यह रीवाँ-नरेश अवधूतसिंह सं० १७५७ वि० में गद्दी पर बैठे थे, जिसके २० वर्ष पूर्व ही महाराज शिवाजी का देहांत हो चुका था। अतः भूषण का उनके यहाँ से शिवाजी के यहाँ पहुँचना असंभव है। रुद्रसाहि सोलंकी भी रीवाँ-राज्य के बघुआने में ही थे, जिनसे भूषण को भूषण की उपाधि प्राप्त हुई। अतः उपाधि-प्राप्ति का समय भी अवश्य सं० १७५७ के पश्चात् ही किसी समय मानना पड़ेगा। इस प्रमाण से निश्चित होता है कि भूषण शिवा-जी के दरबार में नहीं, साहूजी के ही दरबार में पहुँचे थे। बाबू रुद्रसाहि की प्रशंसा में चिंतामणि का छंद भी इसी अनुमान को पुष्ट करता है।

(५) ठाकुर शिवसिंह ‡ सेंगर ने अपने 'सरोज'-ग्रंथ में भूषण का जन्म-काल सं० १७३८ वि० माना है। जब उनकी दी हुई किंवदंतियाँ भी ठीक मानी जाती हैं, तब यह जन्म-संवत्, जो इतिहास के अनुकूल पाया जाता है, न मानना कहाँ तक न्यायसंगत है?

इन उपर्युक्त पाँच प्रमाणों का किसी समालोचक सज्जन ने उत्तर देने का कष्ट नहीं उठाया। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमाणों को भी यथास्थान उपस्थित करूँगा। इस पूर्व समालोचक महाशयों की समालोचना पर विचार करना उचित प्रतीत होता है—

(१) त्रिपाठीजी ने ज्येष्ठ, सं० १९८१ की 'प्रभा' भूषण पर एक लेख लिखते हुए यह कहा है 'वृत्त-कौमुदी'-ग्रंथ उन्होंने नहीं देखा; अतः नहीं क सकते कि "उसकी भाषा ललित-ललाम से मिलती या शिथिल है।"

मैंने अपने लेख में वृत्त-कौमुदी से १६ छंद उद्धृत कि थे। तुलना के लिये ललित-ललाम से भी कुछ छंद उद् कर दिए थे। उन पर विचार न करके त्रिपाठीजी केवल न देखने का बहाना कर दिया है। वृत्त-कौमुदी का पूरा पता लेख में दिया हुआ था। त्रिपाठीजी चाह तो सुगमता से देख सकते थे। फ़तहपुर प्रयाग थोड़ी ही दूर पर है।

(२) त्रिपाठीजी ने दूसरी शंका यह की है कि वृ कौमुदी से उद्धृत छंदों में मतिराम का नाम नहीं है; कि अन्य छंदों में से प्रत्येक में मतिराम का नाम पाया जाता है। त्रिपाठीजी ध्यान से मतिराम के ग्रंथों का अवलोकन करते, तो उन्हें सुगमता से ऐसे बहुत-से छंद मिल जाते, जिनमें मतिराम का नाम नहीं है। शिवसिंह-सरोज से एक छंद यहाँ उद्धृत किया जाता है। यह छंद पहले भी उद्धृत किया जा चुका है—

"दाता एक जैसो शिवराज भयो जैसो अब,
फतेसाह सीनगर-साहिबी समाज है;
जैसो है चितौर धनी राजा नरनाह भयो,
तैसोई कुमाऊँ-पति पूरो रज लाज है;
जैसे जसवंत यशवंत महाराज भए,
जिनको मही में अजौं बाढ़यो बलसाज है;
मित्र साहिनंद संबुँदेल-कुल-चंद जग,
ऐसो अब ठादत स्वरूप महाराज है। †"

यह छंद छंदसार-पिंगल का है, जिसे त्रिपाठीजी कविता-कौमुदी में मतिराम का रचा बतलाते हैं। साथ ही आप वृत्त-कौमुदी और छंदसार-पिंगल को एक ही ग्रंथ मानते हैं।

* देखो माधुरी, आषाढ़, सं० ८१ वि०, पृ० ७३४ से ७४४ तक।

† देखो इंपीरियल-गजेटियर पृष्ठ १८२, जिल्द २१ में अवधूतसिंह का राज्य-काल सन १७००-१७५५।

‡ देखो शिवसिंह-सरोज पृ० ४६७।

* देखो नागरीप्रचारिणी-पत्रिका भाग ४, अंक ४, पृ० ४३५।

† देखो शिवसिंह-सरोज पृ० २५६।

वास्तव में है भी यही बात। फिर भी उसी छंदसार-पिंगल से उद्धृत कवि-वंश-परिचय से आप असम्मति प्रकट करते हैं। यह कितना विरोधी कथन है, पाठक स्वयं विचार करें।

तीसरी शंका ग्रंथ के नाम के संबंध में है।

जब ग्रंथ के प्रारंभ में ही यह दोहा पाया जाता है, तब नाम की शंका व्यर्थ है—

"वृत्त-कौमुदी* ग्रंथ की सरसीसिंह सरूप ;
रचा सुकवि मतिराम सो पढ़ौ, सुनौ कवि-भूप।"

फिर ग्रंथ का नाम प्रारंभ में ही स्पष्ट दिया हुआ है। तब वृत्त-कौमुदी नाम तो ग्रंथ का मानना ही चाहिए था। प्रकरण के अंत में 'छंदसार-संग्रह' नाम भी पाया जाता है; परंतु मुख्य नाम वृत्त-कौमुदी ही मानना चाहिए। ग्रंथ के टाइटिल-पेज पर भी यही नाम दिया हुआ था। अब नाम कुछ भी रक्खा जाय, छंदसार-पिंगल और वृत्त-कौमुदी, दोनों एक ही ग्रंथ हैं।

(४) त्रिपाठीजी आलीजाह-प्रकाश† और जगद्-विनोद को एक ही ग्रंथ मानते और एक किंवदंती का उल्लेख करते हुए रसराज को औरंगज़ेब की प्रशंसा में रचा हुआ बतलाते हैं।

त्रिपाठीजी को विदित नहीं है कि आलीजाह-प्रकाश और जगद्विनोद, ये पद्माकर के दो भिन्न-भिन्न ग्रंथ हैं। जगद्-विनोद छप चुका है, और आलीजाह-प्रकाश लश्कर में एक सज्जन के पास, हस्त-लिखित प्रति के रूप में, मौजूद है। इसी प्रकार रसराज की किंवदंती भी निराधार ही है। यदि यह किंवदंती सत्य मान ली जाय, तो भी इस लेख पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, और न भूषण और मतिराम के भाई होनेवाली किंवदंती ही सत्य सिद्ध होती है। छंदसार-पिंगल‡ (वृत्त-कौमुदी) के उद्धृत छंदों से यह स्पष्ट विदित होता है कि यह ग्रंथ मित्रसाहिनंद ने स्वरूप-सिंह बुँदेले के आश्रित रहकर बनाया था।

त्रिपाठीजी ने इन बातों पर विचार तक नहीं किया, और न ऐतिहासिक प्रमाणों पर ही दृष्टि डाली।

केवल मौखिक आज्ञा (Ruling) द्वारा अग्राह्य कह देना त्रिपाठीजी-जैसे साहित्य-सेवियों के लिये उचित नहीं कहा जा सकता।

(५) त्रिपाठीजी ने लिखा है कि वह भूषण व मतिराम को समकालीन मानते हैं। यदि मेरे लेख को त्रिपाठी-जी ध्यान से पढ़ते, तो विदित हो जाता कि मैं भी दोनों को समकालीन मानता हूँ। अतः यह शंका ही निर्मूल है।

(६) त्रिपाठीजी ने अपने लेख में एक और बड़ी भूल की है। आप लिखते हैं, भूषण व मतिराम दोनों बूँदी-नरेश* के आश्रित थे। परंतु आपको यह ध्यान में रखना चाहिए था कि मतिराम† रावराजा भाऊसिंह के आश्रित थे, और भूषण रावराजा भाऊसिंह के छोटे भाई के प्रपौत्र बुद्धसिंह‡ के दरबार में गए थे। फिर ज्ञात नहीं, आपने कैसे एक ही राजा के आश्रय में दोनों कवियों को बतला दिया ?

उक्त बातों पर विचार करने से स्पष्ट विदित होता है कि त्रिपाठीजी की शंकाएँ कितनी निराधार हैं। इन्हीं के आधार पर त्रिपाठीजी उक्त लेख लिखने में मेरा दुस्सा-हस बतलाते हैं !

मिश्रबंधु महोदयों+ ने भी एक विस्तृत लेख, मेरे लेख के उत्तर में, वैशाख, सं० ८१ की माधुरी में, प्रकाशित कराया है।

उसकी प्रत्यालोचना करने की भी फिर धृष्टता करता हूँ। आशा है, मिश्रबंधु महोदय मुझे क्षमा करेंगे।

मिश्रबंधुओं ने लेख में उद्धृत छंदों की संपूर्ण अशु-द्धियों का दोष मुझ पर आरोपित करने की कृपा की है, यद्यपि वे सब भूलें या तो मूल-प्रति में ही थीं, अथवा प्रेस की कृपा से हो गई हैं। ऐतिहासिक तथ्य को जानने के लिये मैं, मिश्रबंधुओं की भाँति, संशोधन का पक्षपाती नहीं हूँ। काव्य की दृष्टि से यह खराद चाहे आनंद-

---

* देखो नागरीप्रचारिणी-पत्रिका के चौथे अंक में भूषण और मतिराम-संबंधी लेख।

† देखो प्रभा (ज्येष्ठ, सं० ८१) में भूषण और उनकी कविता-शीर्षक लेख।

‡ देखो वृत्त-कौमुदी पृ० १—५।

* देखो ज्येष्ठ, सं० ८१ की प्रभा में भूषण और उनकी कविता-शीर्षक लेख।

† देखो ललित-ललाम के छंद ७४, ७५, ७६।

‡ देखो शिवराज-भूषण के स्फुट काव्य का छंद नं० ३ और टाड-राजस्थान में बूँदीराज का वर्णन।

+ देखो वैशाख, सं० ८१ की माधुरी में भूषण व मतिराम के समय और वंश के निरूपण के संबंध का लेख।

महोदय भी छंदसार-पिंगल को मतिराम-कृत मानते हैं। अतः वृत्त-कौमुदी ग्रंथ से उद्धृत छंद भी अवश्य माननीय होने चाहिए।

छंदसार-पिंगल का रचयिता मतिराम कमाऊँ-नरेश उद्योतचंद के आश्रय में भी रहा था, और उसने वहीं रहकर अलंकारपंचाशिका* (सं० १७४७ में) रची।

सं० १७४५ से पूर्व ललित-ललाम ग्रंथ बूँदी-नरेश भाऊसिंह † के आश्रय में रचा गया था, और संभव है, रसराज की रचना ललित-ललाम से भी पूर्व हुई हो, जैसा कि याज्ञिकद्वय भी मानते हैं। विकास की दृष्टि से भी यही अनुमान होता है; क्योंकि मतिराम प्रारंभ में शृंगारिक कवि थे, और धीरे-धीरे उनकी रचना वीर-रस की ओर बढ़ती गई। उपलब्ध ग्रंथों में सतसई और रसराज ही उनके सबसे अधिक शृंगारिक ग्रंथ हैं। ललित-ललाम में शृंगार और वीर, दोनों रसों का सम्मिश्रण है। उसके पश्चात् अलंकारपंचाशिका रची गई, जिसमें वीर-रस की प्रधानता है। छंदसार-पिंगल (वृत्त-कौमुदी) केवल वीर-रस का ग्रंथ है। ये सब ग्रंथ क्रमशः भिन्न-भिन्न समयों में, थोड़े-थोड़े अंतर से, भिन्न-भिन्न राजों के आश्रय में, रचे गए। इससे अनुमान होता है कि इन ग्रंथों का रचयिता एक ही मतिराम है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ ग्रंथ और भी मतिराम ने रचे होंगे। इन ग्रंथों का रचना-काल २०-२५ वर्ष से अधिक नहीं प्रतीत होता।

मैंने छंदसार-पिंगल ‡ आदि से अंत तक पढ़ा। मुझे कहीं उसमें शंभुनाथ सोलंकी के नाम का पता न चला। ज्ञात नहीं, मिश्रबंधु महोदय कैसे शंभुनाथ सोलंकी के नाम को छंदसार-पिंगल के साथ संबद्ध करते हैं। मिश्रबंधुओं ने एक दोष यह भी मुझ पर आरोपित करने की कृपा की है कि मैंने संपूर्ण छंदों को छंदोभंग करके उद्धृत किया है। सन् १९०३ की खोज-रिपोर्ट + से जो दो छंद शिवराज-भूषण-निर्माण-संबंधी उद्धृत किए हैं, वे ज्यों-के-त्यों ही उद्धृत कर दिए थे। शिवराज-भूषण में दिए हुए छंदों को मूल में प्राप्त न कर सका। परंतु यह कब संभव है कि शिवराज-भूषण के छंदों में संशोधन न किए गए हों।

खराद पर चढ़े हुए शिवराज-भूषण के स्फुट-काव्य का निम्नलिखित आठवाँ छंद देखिए, और उसका शुद्ध रूप से मिलान कीजिए, तो विदित हो जायगा कि ऐसे संशोधनों से अर्थ में कितना परिवर्तन हो जाता है।

नागरीप्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित शिवराज-भूषण से उद्धृत—

"सारस-से सूबा, करवानक-से साहिजादे,
मोर-से मुगल मीर-धीर में धचै नहीं;
बगुला-से बंगस, बलूचियौ बतक-ऐसे,
काबिली कुलंग याते रन में रचै नहीं।
'भूषनजू' खेलत सितारे में सिकार संभा
सिवा को सुवन जाते दुवन सचै नहीं;
बाजी सब बाज की चपेटैं चंग चहूँ ओर
तीतर तुरक दिल्ली-भीतर बचै नहीं॥ ८॥"*

इस छंद के तीसरे और चौथे चरण में बहुत अंतर पड़ गया है। लिखा भी कई स्थानों पर ऐसा ही मिला है, तथा कई सज्जनों से सुना भी यही गया है। अतः यह छंद ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर देना ही उचित प्रतीत होता है।

पाठांतर यह है—

"भूषन सितारे में खेलत सिकार साहू
संभा को सुवन जाते दुवन सचै नहीं;
बाजीराव बाज की चपेट चंग चहूँ ओर
तीतुर तुरक दिल्ली भीतर बचै नहीं।"

प्रथम दो पद पूर्ववत् हैं। यह छंद बाजीराव और साहू की प्रशंसा में रचा गया था। परंतु मिश्रबंधु महोदय बाजीराव से पूर्व ही भूषण का परलोकवास† मानते हैं; इसी से यह खराद की गई। लेकिन खोज में अब तो भूषण-कृत कई छंद प्राप्त हो गए हैं, जो बाजीराव की प्रशंसा में कहे गए थे। बंगस का युद्ध भी बाजीराव से ही हुआ था, जिसका इसमें उल्लेख है। ऐसे उदाहरण का

* देखो अलंकारपंचाशिका का निर्माण-काल।

† देखो टाड-राजस्थान, भाग २, के बूँदीराज के वर्णन में भाऊसिंह का निधन-काल।

‡ देखो छंदसार-पिंगल की हस्त-लिखित प्रति। वह स्वरूप-सिंह बुँदेले को समर्पित किया गया है।

+ देखो १९०३ की हिंदी-पुस्तकों की खोज-रिपोर्ट पृ० ४३।

* देखो शिवराज-भूषण स्फुट-काव्य का ८वाँ छंद, पृ० १६९।

† देखो शिवराज-भूषण की भूमिका, छंद २२।

याज्ञिकद्वय * ने भी उल्लेख किया है, जहाँ पर मिश्रबंधुओं ने लालमणि के रचे छंद को भूषण-कृत मान लिया है ।

शिवराज-भूषण के छत्रशाल हाड़ा-विषयक† छंद और आषाढ़, सं० ८१ की माधुरी के भूषण व मतिराम-संबंधी लेख से भी यही प्रमाणित होता है ।

याज्ञिकद्वय ने जिस हाड़ा-विषयक छंद का उल्लेख किया है, वही छंद मुझे भी एक प्राचीन प्रति में, जो मऊ के मिश्रों के यहाँ मिली थी, उसी रूप में प्राप्त हुआ है । जहाँ मिश्रबंधु महोदय "हाथी ते उतरि हाड़ा जूझ्यो लोह लंगर दै" यह पाठ मानते हैं, वहाँ मुझे "हाथी ते उतरि हाड़ा जूझ्यो कवि लालमनि" पाठ ही मिला है । अतः मैं इस खराद (संशोधन) को ऐतिहासिक-दृष्टि से अत्यंत हानिकर समझता हूँ ।

शिवराज-भूषण‡ का निर्माण-काल श्रावण, सं० १७३० वि० माना गया है । मिश्रबंधु महोदय यह भी मानते हैं कि उसमें सं० १७१६ से + सं० १७३० तक की घटनाओं का ही उल्लेख है । परंतु उससे इतिहास का मिलान करने पर उसमें बहुत-सी घटनाएँ श्रावण, सं० १७३० के पश्चात् की दी हुई देख पड़ती हैं । उदाहरण-स्वरूप यहाँ कुछ घटनाओं का उल्लेख कर देने से निर्माण-काल पर अधिक प्रकाश पड़ सकता है ।

(१) भूषण ने कर्नाटक × के युद्ध का वर्णन कई छंदों में किया है । शिवराज-भूषण के छंद नं० ११७, २०७, २६१ और ३५७ में इस युद्ध का अच्छा वर्णन किया गया है । इतिहासज्ञों को भली भाँति विदित है कि कर्नाटक पर शिवाजी की चढ़ाई सन् १६७६ (सं० १७३३ वि०) में हुई थी । इससे पूर्व कोई युद्ध या चढ़ाई कर्नाटक पर नहीं हुई । अतः यह वर्णन शिवराज-भूषण के निर्माण से ३ वर्ष पीछे का है, तथा प्रारंभ, मध्य और अंत में भिन्न-भिन्न स्थलों पर आया है । मिश्रबंधु महोदय भी ऐसा ही मानते हैं ।

(२) बिदनौर* का वर्णन छंद नं० १९६ में किया गया है । उससे चौथ लेने तथा संधि करने की घटना शिवराज-भूषण समाप्त होने के ४ मास पीछे की है, और पूर्वार्द्ध में उसका वर्णन आया है ।

(३) बहलोल† को सन् १६७४ (सं० १७३१ वि०) में मराठों ने हराया था । अंत को बाध्य होकर उसे संधि करनी पड़ी थी । उसके पश्चात् मुग़लों की सेना की सहायता देने के लिये भी वह दो-एक युद्धों में गया था । सन् १६७४ से पूर्व कभी वह मराठों से नहीं लड़ा । उसका वर्णन भूषण ने कई छंदों में किया है । छंद नं० ९६, १६१, २३६, ३५६, ३५८ और ३५९ में विस्तार के साथ उसका वर्णन किया गया है । ये घटनाएँ भी शिवराज-भूषण के निर्माण-काल के पीछे की हैं ।

(४) भड़ौंच‡ की लूट सन् १६७५ (सं० १७३२) में हुई थी । इससे पहले मराठों ने कभी नर्मदा को पार नहीं किया था । यह घटना शिवराज-भूषण के निर्माण-काल से २ वर्ष पीछे की है । छंद ३५९ में इसका वर्णन किया गया है ।

(५) ख़वासख़ाँ‡ सन् १६७३ में बीजापुर का रीजेंट हुआ था । उसी ने बहलोल को परनाले पर शिवाजी से लड़ने भेजा था, जहाँ वह बुरी तरह हारा । उसके बाद ही यह मुग़लों की ओर से भी लड़ा था । सं० १७३० वि० से पूर्व मराठों से इसका कोई युद्ध नहीं हुआ । छंद २०६, २५४, ३१२ और ३२८ में इसका वर्णन आया है । अतः यह घटना भी पीछे की है ।

(६) मोहकमसिंह+के विषय में मिश्रबंधुओं ने लिखा है—"यह कोई छोटा सरदार होगा । इतिहास से इसका पता नहीं चलता ।" परंतु सन् १६९५ (सं०१७५२ वि०) में यह औरंगाबाद का सूबेदार था, और १०,००० सवार

---

* देखो आषाढ़, ८१ की माधुरी में याज्ञिकद्वय का भूषण व मतिराम-संबंधी लेख, और प्रभा (ज्येष्ठ, सं० ८१) में त्रिपाठीजी का भूषण-संबंधी लेख ।

† देखो शिवराज-भूषण पृ० १५८, छंद नं० २ ।

‡ देखो शिवराज-भूषण का निर्माण-काल, पृ० १३२ ।

+ देखो शिवराज-भूषण की भूमिका ।

× देखो शिवराज-भूषण के छंद नं० ११७, २०७, २६१ और ३५७ ।

* देखो शिवराज-भूषण में छंद नं० १५७ और ग्रांट डफ़ की हिस्ट्री के प्रथम भाग में सन् १६७३ का वर्णन ।

† देखो, ग्रांट डफ़ की हिस्ट्री मराठा प्रथम भाग, और बहलोल तथा हुस्सा का युद्ध, पृ० २२८-२३० ।

‡ देखो पूर्व का इतिहास ।

+ देखो Selections from records, Maratha period, Vol. I, Part I, P. 14, और सरस्वती (आषाढ़, ८१) में सलावतख़ाँ के बारे में लेख ।

साथ लेकर मराठों से लड़ा था। इस युद्ध में मोहकमसिंह की सेना की बड़ी दुर्दशा हुई थी। इसका वर्णन छंद २३१ और २२६ में किया गया है। यह जाट और भरतपुर का राजकुमार था।

(७) याकूतख़ाँ* के साथ सन् १६७८ (सं० १७३५ वि०) के अंत में मराठों से युद्ध हुआ था। उसे यह पदवी बीजापुर के राजा की ओर से सन् १६७८ (सं० १७३५ वि०) में दी गई थी। पहले इसका नाम शीदी अंभोल था। याकूतख़ाँ का वर्णन छंद नं० ६३ में आया है।

(८) सफ़दरजंग* दिल्ली का वज़ीर और अवध का नवाब था। शिवाजी के समय में इसका नाम नहीं पाया जाता। परंतु बाजीराव पेशवा से इसका युद्ध हुआ था। यह घटना शिवराज-भूषण के निर्माण-काल से बहुत पीछे की है। छंद नं० १०३ में इसका वर्णन पाया जाता है।

(९) परनाले*के युद्ध सं० १७३० के पश्चात् ही हुए हैं। इनका उल्लेख शिवराज-भूषण में विस्तार से हुआ है।

(१०) तलबख़ाँ†से मराठों का युद्ध सं० १७४३ वि० में हुआ था। वह पईंवाट के मैदान में बुरी तरह हारा तथा पकड़ा भी गया। शिवराज-भूषण में इसका वर्णन किया गया है।

(११) भूषण‡ ने एक कवित्त में अपने आश्रयदाताओं का उल्लेख किया है। वह कवित्त यह है—

"मोरँग जाहु कि जाहु कमाऊँ सिरीनगरै कि कवित्त बनाए;
बांधव जाहु कि जाहु अमेर कि जोधपुरै कि चितौरहि धाए।
जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै कि दिलीसहु पै किन जाहु बुलाए;
'भूषण' गाय फिरौ महि मैं बनिहै चित चाहि सिवाहि रिझाए।"

मिश्रबंधु महोदय मोरंग से मोरभंज का अनुमान करते, और श्रीनगर को काश्मीर का श्रीनगर मानते हैं। यथार्थ में मोरंग रीवाँ-राज्य या बुंदेलखंड का कोई नगर होना चाहिए। संभव है, यह रुद्रसाहि सोलंकी या स्वरूपसिंह बुँदेले की राजधानी हो। श्रीनगर तो निश्चित रूप से बुंदेलखंड का नगर है, जहाँ फ़तहसाहि के आश्रय में मतिराम कवि रहे थे। रीवाँ-राज्य में तो अवधूतसिंह के आश्रय में भूषण का रहना अवश्य ही पाया जाता है। यह अवधूतसिंह * सं० १७५७ में गद्दी पर बैठे और १८१२ वि० तक सिंहासनारूढ़ रहे। अतः निश्चित है कि शिवराज-भूषण सं० १७५७ वि० से पूर्व कदापि नहीं रचा गया। कमाऊँ-नरेश के दरबार में भी वह सं० १७५७ से १७७७ तक के बीच में किसी समय गए थे। आमेर-नरेश जयसिंह सवाई के आश्रय में भी भूषण का रहना पाया जाता है। यह जयसिंह† सं० १७५६ से १८०० वि० तक वर्तमान थे। शिवराज-भूषण रचे जाने के पूर्व भूषण ने जोधपुर और चित्तौर का भी चक्कर लगाया था। शायद जोधपुर-नरेश से उचित सम्मान न पाने के कारण ही उन्होंने अपने ग्रंथ में महाराजा जसवंतसिंह‡ की घोर निंदा की है, यद्यपि वह शिवाजी से मिल भी गए थे; और मिर्ज़ा जयसिंह का उल्लेख प्रशंसात्मक ही किया है, यद्यपि उनके कारण हिंदू-जाति को हानि ही पहुँची थी।

कुतुब और एदिलशाह का वर्णन शायद इस छंद में काव्य की उत्कर्षता दिखाने के लिये ही वह लाए हों। अथवा बीजापुर या गोलकुंडा में स्थित किसी महाराष्ट्र-सरदार के समीप गए हों, तो संभव हो सकता है। कारण, बीजापुर और गोलकुंडा, दोनों ही राज्य उस समय तक नष्ट हो चुके थे। दिल्लीपति औरंगज़ेब के विषय में तो यह आशा ही न करनी चाहिए कि उसने भूषण को कभी अपने दरबार में बुलाया होगा। हाँ, उसके पीछे के बादशाहों ने यदि भूषण को बुलाया हो, तो संभव हो सकता है। जहाँदारशाह की प्रशंसा में एक छंद भी भूषण का पाया जाता है। मिश्रबंधु महोदय स्वयं ही मानते हैं कि भूषण कमाऊँ में गए थे। अतः इस उल्लेख से निश्चित है कि भूषण ने अपना यह ग्रंथ साहू के समय में ही रचा था।

उक्त प्रमाणों से इस निर्माण-काल के संबंध में दो ही बातें सिद्ध हो सकती हैं। या तो भूषण ने स्वयं ही शिवाजी के आश्रित कवि बनने और कहलाने का उद्योग किया हो,

---

* देखो छंद नं० ६३, १०३, १०७, १७८, २०७, २५४, ३५७ और ग्रांट डफ की हिस्ट्री का प्रथम भाग।

† देखो यदुनाथ सर्कार-कृत औरंगज़ेब का इतिहास चौथा भाग, परिशिष्ट में ईश्वरदास नागर की सूची, और शिवराज-भूषण छंद नं० १०३। वास्तव में तलबख़ाँ मारा नहीं, पकड़ा गया था।

‡ देखो शिवराज-भूषण छं० २४९, पृ० ८७, और नोट।

* देखो इंपीरियल-गज़ेटियर जिल्द २१, पृ० २८२।

† देखो इंपीरियल-गज़ेटियर में जयपुर का वर्णन।

‡ देखो शिवराज-भूषण के छंद ३५, ३२० और ३६४।

+ देखो शिवराज भूषण के पृ० ८७ में फ़ुट-नोट।

क्रोध और शांति

[चित्रकार—श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू]

क्रोध, विरोध विकारवश है अबोध की भ्रांति :
करती उसको शांत यह उधर देखिए शांति ।

N. K. Press Lucknow.

और या किसी दूसरे कवि ने विवाद होने पर यह दोहा रचकर मिला दिया हो। कविता देखने से तो इसी अनुमान की पुष्टि होती है कि किसी ने पीछे से रचकर मिला दिया है, वह भी अपूर्ण तथा अशुद्ध रूप में। रहा प्रत्यक्ष की भाँति वर्णन करना, सो मेरे विचार से आदर्श चरितों को अवतार मानकर उनका इसी भाँति वर्णन किया जाता है। अतः भूषण को शिवाजी का समसामयिक मानना सरासर भूल तथा ऐतिहासिक वर्णन के विरुद्ध है। इस संबंध में आगे चलकर और भी कई पुष्ट प्रमाण देने का प्रयत्न करूँगा।

मेरे विचार से शिवराज-भूषण का निर्माण-काल सं० १७८० के लगभग होना चाहिए।

शिवराज-भूषण में दिलेरखाँ, खाँजहाँ, बहादुर आदि सैनिकों तथा ऐसे कई स्थानों का वर्णन आया है, जिनकी घटनाएँ सं० १७३० के पश्चात् हुई हैं और जिनका उल्लेख इस लेख में स्थानाभाव से किया नहीं जा सकता।

मिश्रबंधु महोदय लिखते हैं कि मैंने निर्माण के दोहे में रविवार* की कल्पना व्यर्थ ही कर ली है। उस दोहे में 'भान'-शब्द स्पष्ट दिया है, जिसे मिश्रबंधु महोदय भरती का शब्द 'मान' लिखते हैं। जब दोहे में मास का उल्लेख ही नहीं है, तब उसकी सचाई की जाँच ही क्या हो सकती है? अतः मेरे विचार से तो यह कल्पित संवत् है।

आगे चलकर मिश्रबंधु महोदयों ने शिवराज-भूषण† के वर्तमानकालिक और आशीर्वादात्मक वर्णनों का उल्लेख किया है, जिसका उत्तर ऊपर दिया जा चुका है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी आदर्श चरित को अवतार मानकर ऐसे वर्तमानकालिक ही वर्णन किए हैं, जैसा कि पूर्व लेख में प्रमाणित कर चुका हूँ।

मिश्रबंधु महोदयों ने एक यह पद भी उद्धृत किया है—

"और बाम्हननि देखि करत सुदामा-सुधि
मोहिं देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ?"

यह केवल अलंकार का उदाहरण-मात्र है। वास्तविक घटना नहीं है, और न इस संबोधन को प्रत्यक्ष का रूप देना चाहिए। भूषण का मान जैसा शिवाजी के दरबार में माना जाता रहा है, उससे भी इसका खंडन होता है।

इसके बाद मिश्रबंधुओं ने भूषण द्वारा महाराजा छत्रशाल के 'लालछितिपाल'* अर्थात् बालक महाराज कहे जाने का उल्लेख किया है। परंतु लालछितिपाल का अर्थ राजपुत्र होता है, और बहुधा वंश-परंपरा के राजों के लिये इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है। अतः ये उदाहरण किंचिन्मात्र भी मेरे लेख का विरोध नहीं करते। इसके विरुद्ध भूषण ने छत्रशाल के लिये स्पष्ट 'डोकरा'†-शब्द का प्रयोग किया है—

"बालपने में तहौवरखान ‡ को सैनसमेत अँचै गयो भाई;
ज्वानी में रुंडी औ खुंडी हने त्यों समुद्र + अँचै कछु वार न लाई।
बैस बुढ़ापे की भूख बढ़ी गयो बंगस वंससमेत चबाई;
खाए मलिच्छन के छोकरा पै तबौ डोकरा को डकार न आई।"

मिश्रबंधु महोदय केवल अवस्था बढ़ने के विचार से इसे भूषण-कृत मानने का निषेध करते हैं। परंतु अब तो इसके पीछे के भी भूषण-कृत कई छंद (बाजीराव पेशवा, सवाई जयसिंह और भगवंतराय खींची की प्रशंसा में) पाए गए हैं। ऐसी दशा में तो भूषण की अवस्था ११७ वर्ष से बढ़कर १२६ वर्ष से भी आगे पहुँचती है। मेरे विचार से ये सब छंद भूषण-कृत ही हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

मेरे लेख× में दो-एक भूलें मुझसे अथवा प्रेस की असावधानी से हो गई हैं। उनका उल्लेख करना भी आवश्यक है—

(१) मैं जब भूषण को मतिराम के अंतिम समय में मानता हूँ, तब मतिराम की कविता का प्रभाव भूषण की कविता पर ही पड़ा होगा, भूषण का मतिराम पर नहीं। यह सिद्धांत शृंगार से वीर-रस की ओर विकसित होने के कारण मतिराम का प्रभाव और भी स्पष्ट हो जाता है।

* वैशाख, सं० ८१ की माधुरी में भूषण-संबंधी लेख।

† देखो वैशाख, सं० ८१ की माधुरी में भूषण व मतिराम-संबंधी मिश्रबंधुओं का लेख।

* देखो वैशाख, सं० ८१ की माधुरी में भूषण व मतिराम-संबंधी मिश्रबंधुओं का लेख।

† देखो शिवराज-भूषण की भूमिका का पृ० ६५।

‡ तहौवरखाँ सं० १७३८ में मारा गया था। यह छत्रशाल बुँदेले से लड़ा था। देखो शिवराज-भूषण की भूमिका, पृ० ६५।

+ अब्दुल सैयद दिल्ली-नरेश जहाँदारशाह का समकालीन था। यह सं० १७६९ से सं० १७७७ तक रहा।

× देखो नागरीप्रचारिणी-पत्रिका भाग ४, अंक ४ में लेखक का भूषण व मतिराम-शीर्षक लेख।

संभव है, यह अज़ूउद्दीन मोहम्मद या ज़ियाउद्दीन मोहम्मद में से कोई हो, जो कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए हैं, और मुग़लों की सेना में उच्च अधिकारी थे।

याज्ञिकद्वय रामसिंह कछवाहे का सं० १७३२ तक वर्तमान रहना मानते हैं। ज्ञात नहीं, इस विषय में उनका आधार क्या है?

शायद ईश्वरदास नागर * की सूचना से, जो कि यदुनाथ सरकार ने औरंगज़ेब के इतिहास, भाग ४ के परिशिष्ट में दी है, यह बात उन्होंने उद्धृत की है। परंतु ईश्वरदास नागर के वर्णन से यह विदित नहीं होता कि यह रामसिंह जयपुर-नरेश या कछवाहा-जाति के थे। केवल नाम-साम्य से प्रमाण मान लेना असंगत है।

यदुनाथ सरकार भी नागरजी के कथन को विश्वास-योग्य नहीं मानते। रामसिंह† सं० १७५५ तक जीवित रहे, और उनके पुत्र विष्णुसिंह सं० १७५६ में काबुल में मरे। इनके विषय में स्पष्ट उल्लेख है कि इन्होंने बहुत थोड़े दिनों तक राज्य किया। टाड-राजस्थान सं० १७४६ में रामसिंह की मृत्यु मानता है, जो कि अशुद्ध है।

यदि रामसिंह के समय में भी भूषण को विद्यमान मानें, तो उस समय उनकी अवस्था १७ वर्ष की होती है। मैं रामसिंह के दरबार में भूषण का रहना विश्वास-योग्य नहीं मानता। याज्ञिकद्वय ने जिस प्रकार जहाँदारशाह के स्थान में दाराशाह मान लिया है, उसी प्रकार ऐरच को पौरच मानकर भूल की है। ऐरच बुंदेलखंड का एक नगर है, जो इस समय गिरी दशा में है। पूर्वकाल में यह प्रसिद्ध नगर तथा एक समृद्धिशाली राज्य की राजधानी था। वहीं अठारहवीं शताब्दी के अंत में अमरसिंह राज्य करते थे, जिनके आश्रित रहकर नीलकंठ कवि ने सं० १७६८ वि० में अमरेस-विलास रचा। अतः अनिरुद्धसिंह-संबंधी छंद सं० १७६८ के बाद ही कभी उन्होंने रचा होगा।

चिंतामणि‡ कवि का भाऊसिंह की प्रशंसा में छंद बनाना संभव हो सकता है; क्योंकि सं० १७४५ में भाऊसिंह वर्तमान थे। और, जयपुर-नरेश रामसिंह + तो सं० १७५४ वि० तक जीवित थे। बाबू रुद्रसाहि सोलंकी का तो सं० १७५७ के पश्चात् भी वर्तमान रहना पाया जाता है। चिंतामणि कवि ने भाषापिंगल-नामक ग्रंथ सं० १७६७ वि० में, मकरंदशाह भोंसला के आश्रय में, रचा था। मकरंदशाह * भोंसला का सं० १७६५ के पश्चात् वर्तमान रहना प्रमाणित होता है। सं० १७६५ तक नागपुर में मुसलमानों का अधिकार था। इसी वर्ष राघोजी भोंसला और मकरंदशाह ने मुसलमानों को निकाल बाहर किया, और नागपुर में मराठों का अधिकार हो गया। फिर राघोजी तथा मकरंदशाह में भी अधिकार के लिये झगड़ा हुआ। अंत को राघोजी नागपुर छोड़कर चले गए, और उस पर मकरंदशाह भोंसला का अधिकार रहा। वहीं पर, मकरंदशाह के आश्रित रहकर, सं० १७६७ वि० में, चिंतामणि कवि ने भाषा-पिंगल ग्रंथ रचा। उसके दो-तीन वर्ष पश्चात् वहीं पर, उन्हीं के आश्रय में, कविकुल-कल्पतरु-नामक ग्रंथ रचा। अतः सं० १८०० के बाद तक चिंतामणि का जीवित रहना निश्चित है। भूषण को भाभी के तानेवाली घटना से यह अनुमान होता है कि चिंतामणि भूषण से अवश्य १०-१५ वर्ष बड़े होंगे। अतः शिवाजी, जहाँगीर तथा शंभाजी आदि के दरबार में भूषण, मतिराम और चिंतामणि की मौजूदगी तथा उनको सगा भाई मानने से चिंतामणि की अवस्था १४६ वर्ष के लगभग होती है। जब याज्ञिकद्वय १२३ वर्ष की अवस्था तक भूषण का कविता करना संभव मानते हैं, तो शायद चिंतामणि का १४६ वर्ष की अवस्था तक कविता करना भी ठीक मानने लगें।

छत्रसाल हाड़ा की प्रशंसा में भूषण और चिंतामणि, दोनों के छंद पाए जाते हैं। याज्ञिकद्वय और मिश्रबंधु महोदय उक्त दोनों कवियों को छत्रसाल हाड़ा के आश्रित नहीं मानते। इसी प्रकार शिवाजी की प्रशंसा में भी उनकी रचना समझना उचित है।

भूषण कवि के आश्रयदाताओं की सूची देखने से विदित होता है कि उनमें से कोई शिवाजी के पूर्व क्या, समकालीन भी नहीं है। वह सूची लिखी जाती है—

* यह ईश्वरदास नागर दुर्गादास नागर का समकालीन और मुग़लों की सेना में था। देखो औरंगज़ेब, चतुर्थ भाग का परिशिष्ट।

† देखो टाड-राजस्थान द्वितीय भाग, पृ० ५७७।

‡ देखो टाड-राजस्थान भाग २ में बूँदी का वर्णन।

\+ देखो टाड-राजस्थान भाग २ में जयपुर-वर्णन।

* ग्रांट डफ़-कृत मराठों का इतिहास प्रथम भाग व अन्य इतिहास, तथा कविकल्पतरु व भाषा-पिंगल का निर्माण-काल—"कहत अंक मन द्वीप द्वै जानु बराबर लेहु।"

नाम	राज्य-काल संवत् विक्रमीय
(१) बाबू रुद्रसाहि सोलंकी*	सं० १७१७ के लगभग वर्तमान
(२) महाराजा अवधूतसिंह रीवाँ-नरेश†	,, १७१७ से सं० १८१२ तक
(३) महाराजा साहू सतारा-नरेश‡	,, १७६५ से १८०५ ,,
(४) बाजीराव पेशवा+	,, १७७७ से १७९७ ,,
(५) कमाऊँ-नरेश जगत्चंद्र×	,, १७६५ से १७७७ ,,
(६) महाराजा छत्रशाल बुँदेला÷	,, १७२८ से १७९१ ,,
(७) रावराजा बुधसिंह बूँदी-नरेश=	,, १७६४ से १७९८ ,,
(८) जयसिंह सवाई जयपुर-नरेशऽ	,, १७५६ से १८०० ,,
(९) भगवंतराय खींची असोथर-नरेश○	,, १७९७ से १८५९ ,,
(१०) अनिरुद्धसिंह ऐरच-नरेश (बुंदेलखंड) ⌒	,, १७९८ के पश्चात् वर्तमान
(११) जहाँदारशाह	,, १७६९ से १७७७ तक

इन ११ आश्रयदाताओं में से नं० १, २, ३, ५, ६, ७ का वर्णन शिवराज-भूषण में आ चुका है। नं० ४ व ८ का वर्णन भी पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने ज्येष्ठ, सं० ८१ की प्रभा में किया है, तथा छंद भी उद्धृत कर दिए हैं। नं० ९ का वर्णन नागरीप्रचारिणी-पत्रिका भाग ४, अंक ४ में मेरे लेख से आ गया है, तथा इस लेख में भी उसका उल्लेख किया गया है। नं० १० व ११ का उल्लेख याज्ञिकद्वय ने आषाढ़, सं० ८१ की माधुरी में किया है।

विचारणीय यह है कि जिन जयसिंह की प्रशंसा में छंद कहा गया है, क्या वह जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह ही हैं? छंद यह है—

"भले भाई भासमान भासमान भान जाको
　भानत भिखारिन के भूरि भय-जाल है;
भोगन को भोगी भोगीराज-कैसी भाँति भुजा
　भारी भूमिभार के उबारन को ख्याल है।
भावतो समानि भूमि-भामिनी को भरतार
　'भूषन' भरतखंड भरत-भुवाल है;
बिभौ को भँडार औ भलाई को भवन भाग
　भाग-भरे भाल जयसिंह भुवपाल है।"*

इस छंद में जयसिंह की वेधशालाओं का उल्लेख है। इन वेधशालाओं में से उज्जैन की सं० १७७५ में और दिल्ली की १७७६ में बनवाई गई थी। बूँदी आदि के नरेशों ने जो राज्य जयपुर का दबा लिया था, उसके उद्धार का जो इन्होंने बड़ा प्रयत्न किया था, उसका भी उल्लेख इस छंद में पाया जाता है। जयपुर की कचहरी आदि का भी उल्लेख किया है। नगर-निर्माण सं० १७८४ में हुआ था। अतः यह छंद अवश्य जयपुर-नरेश की प्रशंसा में, और सं० १७७६ वि० के पश्चात् ही रचा गया है। रामसिंह आदि जयपुर-नरेशों की प्रशंसा भी जयसिंह के लिये ही थी। अब एक छंद बाजीराव पेशवा की प्रशंसा में भी सुनिए। उसमें छत्रशाल और पेशवा, दोनों का उल्लेख है—

"बाज-बाज राजे ते निवाजे हैं नजरि करि,
　बाजे-बाजे राजे काटि काढ़े असि मत्ता सों;
बाँके-बाँके सूबा नालबंदी दै सलाह करैं,
　बाँके-बाँके सूबा करे एक-एक लत्ता सों।
बाजीराव गाजी ने उबारयो आइ छत्रसाल,
　आमिल बिठायो बल करिकै चकत्ता सों;

* देखो भूषण व चिंतामणि के रुद्रसाहि-संबंधी छंद और बाबू की उपाधि होने से अनुमान।

† देखो इंपीरियल-गजेटियर जि० २१, पृ० १८२।

‡ देखो मराठों का इतिहास।

+ देखो मराठों का इतिहास।

× देखो इंपीरियल-गजेटियर से कमाऊँ का इतिहास।

÷ देखो बुंदेलखंड का इतिहास।

= देखो टाड-राजस्थान में बूँदीराज का इतिहास।

ऽ देखो टाड-राजस्थान में जयपुर-राज्य का वर्णन।

○ देखो भगवंतराय-रासा पृष्ठ १।

⌒ देखो अमरेस-चरित का निर्माण-काल व अमरेस के वंशजों का वर्णन।

* देखो प्रभा ज्येष्ठ, सं० ८१।

गाढ़े-गाढ़े गढ़पति कोटिराय द्वार दे-दे,
गाढ़े-गाढ़े गढ़पति आवैं तेरे कंता सों।" *

बाजीराव† पेशवा ने सं० १७६१ (सन् १७३४) में छत्रशाल को सहायता दी थी, जिसके उपलक्ष में छत्रशाल ने बाजीराव को उसी समय कुछ क़िले और रुपए दिए थे, तथा मरने से पूर्व अपने राज्य का ⅓ भाग बाजीराव पेशवा को पुत्र मानकर दिया था। एक दूसरे कवित्त में भी "बगुला से बंगस" कहकर इसी युद्ध का उल्लेख किया है।

भगवंतराय‡ खींची के मृत्यु-समय पर रचे गए छंद का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। वह छंद सं० १७९७ वि० के परचात् ही रचा गया है। श्रीयुत बाबू व्रजरत्नदासजी+ ने मेरे द्वारा प्राप्त भगवंतराय-रासा को अपनी टिप्पणी के साथ नागरीप्रचारिणी-पत्रिका भाग ५, अंक १ में प्रकाशित किया है। उसमें आपने सं० १७९७ अशुद्ध मानकर सं० १७९३ शुद्ध माना है, और सं० १७९२ में उक्त तिथि का वार से मिलान होना बतलाते हैं। परंतु उक्त बाबू साहब की दोनों सम्मतियाँ अशुद्ध हैं, और रासे को भी कुछ अशुद्ध रूप में ही प्रकाशित कराया है, जो कि खराद के फल-स्वरूप ही हुआ प्रतीत होता है। नि० का० भी सं० १७९७ ही शुद्ध है। इस पर अन्य लेख में विचार किया जायगा। अतः यह निश्चित है कि सं० १७९७ वि० तक भूषण अवश्य जीवित थे।

शिवाजी के समसामयिक राजों में भूषण के आश्रयदाता अकेले छत्रशाल× हैं। वह भी शिवाजी के मरने के परचात् ५४ वर्ष तक जीवित रहे थे; और भूषण के "साहू को सराहौं के सराहौं छत्रसाल को" वाले छंद से स्पष्ट विदित होता है कि साहू से मिलने के पश्चात् ही भूषण छत्रशाल के यहाँ गए थे। वह समय अवश्य सं० १७८० वि० के पश्चात् ही होगा। 'डोकरा' कहने से भी इसी अनुमान की पुष्टि होती है।

शिवाजी के पूर्व का एक भी राजा नहीं है, जिसके आश्रय में भूषण ने निवास किया अथवा उसकी प्रशंसा में कोई छंद रचा हो। कोई शिवाजी के समकालीन व्यक्ति भी भूषण का आश्रयदाता नहीं प्रतीत होता। शिवाजी के मरने के पश्चात् भी लगभग ३० वर्ष तक कोई व्यक्ति भूषण का आश्रयदाता नहीं देख पड़ता। जितने आश्रयदाता अब तक खोज से प्राप्त हो सके हैं, सब सं० १७६० के पश्चात् ही वर्तमान थे। अतः निश्चित रूप से भूषण का जन्म-संवत् १७३८ मानना ही युक्ति-संगत है। सं० १६७२ में जन्म लेकर सं० १७९७ वि० तक भूषण का यत्र-तत्र कविता करते फिरना कभी विचार में नहीं आ सकता, जब कि भूषण की अवस्था १२५ से ऊपर थी, और वह भी कम-से-कम ली गई है। संभव है, इससे पूर्व जन्म हुआ हो, और सं० १७९७ के पश्चात् तक भी वह जीते रहे हों, जो कि अधिक संभव है। चिंतामणि * की तो इससे भी कठिन समस्या है। वह नागपुर में ३४५ वर्ष की अवस्था में बैठे ग्रंथ रचते पाए जाते हैं। एक ही नहीं, दो-दो ग्रंथ इसी अवस्था के रचे पाए जाते हैं। अतः चिंतामणि का जन्म सं० १७२५ वि० के आसपास ही संभव हो सकता है। उनके आश्रयदाताओं से भी इसी अनुमान की पुष्टि होती है। भिन्न नामों की अपेक्षा, जो कि फुटकल छंदों में पाए जाते हैं, मुख्य नाम और प्रसिद्ध ग्रंथ का उद्धरण ही विशेष माननीय होना चाहिए।

छंदसार-पिंगल (वृत्त-कौमुदी) में वर्णित मतिराम का वंश-परिचय मुझे तो प्रसिद्ध मतिराम का ही प्रतीत होता है। चाहे कविता के विकास की दृष्टि से, और चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से, दोनों प्रकार इसी अनुमान की पुष्टि होती है। फूलमंजरी और ललित-ललाम में रचना-काल का ५० वर्ष से अधिक समय का अंतर है। अतः मेरे अनुमान से फूलमंजरी के रचयिता मतिराम प्रसिद्ध मतिराम से भिन्न थे; परंतु छंदसार-पिंगल और रसराज के रचयिता मतिराम का भिन्न-भिन्न होना कभी विचार में नहीं आ सकता, और न इसका प्रमाण ही अब तक कोई मिला है।

दो भूषण मानने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती ; और न इसके लिये कोई प्रमाण ही है। इसके विरुद्ध शिवराज-भूषण में भिन्न-भिन्न आश्रयदाताओं का

---

* देखो प्रभा ज्येष्ठ, सं० ८१।

† देखो ग्रांट डफ-कृत मराठों का इतिहास, प्रथम भाग।

‡ देखो नागरीप्रचारिणी-पत्रिका भाग ४, अंक ४ में भूषण व मतिराम-संबंधी लेखक का लेख।

+ देखो नागरीप्रचारिणी-पत्रिका भाग ५, अंक १।

× देखो शिवराज-भूषण की भूमिका पृ० ६५, छत्रशाल-दशक व मिश्रबंधु-विनोद में भूषणचरित्र।

* देखो—पिंगल-भाषा, कविकुलकल्पतरु, और मिश्रबंधु-विनोद में चिंतामणि का जन्म-काल और कविता-काल, तथा मकरंदशाह भोंसला का राज्य-काल एवं मराठों का इतिहास।

संकेत से उल्लेख भी आ गया है, जिसे मिश्रबंधु महोदयों ने भी अपने ग्रंथ में यत्र-तत्र स्वीकार किया है। अतः भूषण कवि एक ही हो गए हैं; और वह शिवाजी के आश्रित न थे। शिवराज-भूषण के निर्माण-काल के संबंध में भी मेरी राय से कल्पित संवत् दिया गया है, जिसके विषय में इस लेख में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

मतिराम-कृत छंदसार-पिंगल से वंश-परिचय देकर इस लेख को समाप्त करता हूँ—

निर्माण-काल

"संवत सत्रह से बरस अट्ठावन सुभ साल;
कार्तिक-सुक्ल त्रयोदसी करि विचार तेहि काल।

वंश-परिचय

तिरपाठी बनपुर बसै बत्स-गोत्र सुनि गेह;
विबुधचक्रमनि पुत्र तहँ गिरिधर गिरिधर-देह।
भूमिदेव बलभद्र हुव तिनहि तनुज पुनि गान;
मंडित पंडितमंडली मंडन मही महान।
तिनके तनय उदार-मति बिस्वनाथ हुव नाम;
दुतिधर स्रुतिधर को अनुज सकल गुनन को धाम।
तासु पुत्र मतिराम कवि निज मति के अनुसार;
सिंह सरूप सुजान को बरन्यो सुजस अपार।"*

इससे स्पष्ट विदित होता है कि भूषण मतिराम के सगे भाई नहीं थे। संभव है, ममेरे या फुफेरे भाई हों। भूषण और चिंतामणि भाई ही प्रतीत होते हैं; क्योंकि दोनों का समय भी एक ही है।

नीलकंठ का अमरेस-विलास† भी सं० १७९८ वि० में रचा गया था। अतः नीलकंठ भी भूषण और चिंतामणि के समकालीन ही थे। इन्हीं अमरेश के पुत्र अनिरुद्धसिंह की प्रशंसा में भूषण-कृत कवित्त पाया जाता है। अतः भूषण सं० १७९८ के पश्चात् तक वर्तमान थे।

ऊपर 'सारस से सूवा'-वाले छंद में 'मिश्रबंधुओं' के संशोधन की बात कही गई है। पर यह ठीक नहीं है; क्योंकि वैसा पाठ 'शिवसिंह-सरोज' में भी है। पर यह निश्चित है कि भूषण और मतिराम भाई न थे, न भूषण शिवाजी के आश्रित। 'भूषण'-पदवी देनेवाले रुद्रसाहि सोलंकी ईस्वी अठारहवीं सदी के प्रारंभ में हुए थे। यह बात रीवाँ-स्टेट-गज़ेटियर के पृष्ठ ८० पर लिखी है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि अठारहवीं शताब्दी में अंगोरी और बिजौरा के हरिहरशाह (हृदयशाह) के पुत्र रुद्रशाहि रीवाँ-राज्य के जागीरदार थे। अंगोरी मेरी राय में मोरंगी है। इसी समय रीवाँ-नरेश अवधूतसिंह भी थे। ये बातें मेरे पक्ष को प्रबल करती हैं। कन्होजी भोंसला (१७४३ ई०, १८०० सं०) राघोजी का भाई नागपुर में था। चिंतामणि और भूषण निस्संदेह भाई थे। मतिराम की कविता का प्रभाव भूषण पर पड़ा। भूषण की कविता का प्रारंभ-काल और मतिराम का अंत-काल समान था। मतिराम पहले हुए।

आशा है, विज्ञ पाठक तथा समालोचक सज्जन इस पर पुनः विचार कर उचित निर्णय करने की कृपा करेंगे; और पक्षपात छोड़कर विचार करने का कष्ट उठावेंगे। इस संबंध में जितनी शंकाएँ अब तक उत्पन्न हुई हैं, यथाशक्ति उन सबका समाधान करने का प्रयत्न किया गया है। आशा है, मिश्रबंधु महोदय तथा अन्य समालोचक सज्जन पुनः विचार करने की कृपा करेंगे।

भागीरथप्रसाद दीक्षित

* देखो छंदसार-पिंगल (वृत्त-कौमुदी), पृ० २।

† देखो खोज-रिपोर्ट सन् १९०३, नं० ९१।

‡ मिश्रबंधु-विनोद भाग २, पृ० ४६५ में अमरेस-विलास सं० १६०८ का रचा बतलाया गया है।

आश्रम में गांधीजी

जीवनी-लेखकों में शिरोमणि प्लूटार्क ने एक जगह पर लिखा है—"मनुष्य के गुणों और अवगुणों की यथार्थ जाँच सदा उसके प्रसिद्ध कार्यों से ही नहीं होती, बल्कि प्रायः एक क्षुद्र कार्य, एक छोटी-सी बात अथवा मज़ाक़ से मनुष्य के असली चरित्र पर जो प्रकाश पड़ता है, वह उसके लड़ाई के दिनों के बड़े-से-बड़े घिराव और युद्धों से नहीं पड़ सकता।"

बात निस्संदेह ठीक है। महात्मा गांधीजी के असली महत्त्व को यदि आप जानना चाहें, तो आप उनके निकट रहकर उनके चरित्र पर दृष्टि डालें। कितने ही नेता हमारे यहाँ ऐसे हैं, जिनके प्राइवेट और सार्वजनिक जीवन में बड़ा अंतर है, जो कौंसिल में मादक-द्रव्य-निषेध के प्रस्ताव का ज़ोरों से समर्थन करते हुए भी स्वयं घर पर सुरादेवी की अर्चना करने में कोई हानि नहीं समझते। पर महात्मा-

आश्रम में गांधीजी

जी के आंतरिक और वाह्य, दोनों जीवन एक-से हैं। कहा जाता है, स्विट्ज़रलैंड से ट्रिएस्ट-नामक बंदरगाह की ओर आते हुए आल्प्स-पर्वतश्रेणी का दृश्य अत्यंत मनोहर प्रतीत होता है। वहाँ आल्प्स-पर्वतश्रेणी इतनी निकटस्थ देख पड़ती है कि वह अपने प्रचंड महत्व से दर्शक पर भारी प्रभाव डालती है; और हिमालय का दृश्य दूर से देखने में अपनी अनंतता से विचित्रता-पूर्ण और अत्यंत रमणीय प्रतीत होता है। पर गांधीजी में पर्वतश्रेष्ठ आल्प्स और नगाधिराज हिमालय, दोनों के ही गुण वर्तमान हैं। वह दूर से भी उतने ही मनोहर हैं, जितने निकट से।

प्रातःकाल में

आश्रम का सर्वोत्तम दृश्य यहाँ की प्रातःकाल की प्रार्थना है। महात्माजी सदा नियमानुकूल चार बजे उठा करते और बराबर ठीक समय पर, प्रार्थना के स्थान पर, उपस्थित हो जाते हैं। उनकी नियमानुवृत्ति आश्चर्य-जनक है। जहाँ अन्य साधुओं का दिन ७-७½ बजे शुरू होता है, वहाँ गांधीजी के दिन का प्रारंभ उससे तीन घंटे प्रथम ही हो जाता है। जब पुण्य-सलिला साबरमती के तट पर बैठकर आश्रम-वासी अपनी प्रातःकालीन प्रार्थना करते हैं, उस समय का क्या कहना है! ऊपर आकाश में सुंदर तारागण; सामने शीतल, मंदवाहिनी साबरमती; चारों ओर स्वच्छ वायु; सुनने के लिये गायनाचार्य शास्त्री खरे का मधुर स्वर; और दर्शन के लिये संयम-मूर्ति गांधीजी। इससे अधिक मनोहर दृश्य और हो ही क्या सकता है? उस समय अनेक कंठों से एकसाथ यह श्लोक निकलता है—

"प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्;
यत् स्वप्नजागरसुषुप्तिमवैति नित्यं
तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः।"

जिस समय अन्य आश्रम-वासियों के साथ गांधीजी कहते हैं—

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्;
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।"

उस समय हम अनुभव कर सकते हैं कि महात्माजी के जीवन का उद्देश्य क्या है। जहाँ देश के अनेक लीडर शासन की बागडोर अपने हाथ में लेने के लिये और शासक

होने का गौरव भोगने के उद्देश्य से प्रयत्न कर रहे हैं, वहाँ महात्माजी के राजनीतिक आंदोलन में पड़ने का एक-मात्र उद्देश्य दुःख-तप्त प्राणियों के दुःख दूर करना है। प्रार्थना के बाद कभी-कभी गांधीजी कुछ कहते भी हैं। दुर्भाग्य-वश किसी ने उन महत्त्व-पूर्ण प्रवचनों का संग्रह नहीं किया। अब तो कुछ दिनों से श्रीयुत महादेव भाई का ध्यान इस ओर गया है। यहाँ पर मैं गांधीजी के एक प्रवचन का सारांश उद्धृत किए बिना नहीं रह सकता।

उस समय भारत के राजनीतिक वायु-मंडल में बिजली-सी फैली हुई थी; बारडोली में सत्याग्रह की तैयारियाँ हो चुकी थीं; देश की आँखें गुजरात की ओर लगी हुई थीं; देश-भक्तों के दिल उछल रहे थे, और मातृभूमि को स्वाधीन देखने के मनोहर चित्र उनके हृदय-पट पर खिंच रहे थे। उस दिन सन् १९२२ की २६वीं जनवरी थी। महात्माजी आज कुछ कहनेवाले हैं; क्योंकि आज वह बारडोली जाने को हैं। यह बात हम सबको मालूम ही थी। इसलिये चार बजे न उठनेवाले मेरे-जैसे आदमी भी वहाँ पहुँच गए। प्रार्थना इत्यादि के बाद महात्माजी ने कहा—

"आप लोगों से मैंने आपके अनुभव कल पूछे थे। उस समय आपने मेरे भी अनुभव जानने की इच्छा प्रकट की थी, सो मैं आपसे अभी कहूँगा। पहले की अपेक्षा विषय-वासनाओं पर मैंने अधिक क़ाबू कर लिया है, और मैं अपने दोषों को भी अब अच्छी तरह देखने लगा हूँ। उन दोषों को स्वीकार करने की शक्ति भी मुझमें आ गई है।

"पूर्ण सत्य, पूर्ण अहिंसा और पूर्ण ब्रह्मचर्य तो सिद्धांत में ही पाया जा सकता है, लेकिन उसे हम अपना आदर्श बनाकर उसकी ओर बराबर बढ़ सकते हैं। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि अदर्शनीय वस्तु को देखना भी ब्रह्मचर्य को खंडित करना है; न सुनने-योग्य वस्तु को सुनना भी ब्रह्मचर्य-स्खलन है; और न खाने-योग्य वस्तु को खाना भी वही है। पूर्ण ब्रह्मचारी कभी बीमार पड़ ही नहीं सकता। बीमार होना तो किसी पाप का परिणाम है। मुझे याद आता है कि एक बार जहाज़ में बीमार होने पर मि० ऐंड्रूज़ ने मज़ाक़ में मुझे लिखा था—'मैं बीमार हो गया हूँ। आपके सिद्धांत के अनुसार तो मैंने कोई-न-कोई पाप किया होगा।' मैंने उन्हें लिख दिया था कि ज़रूर, लेकिन यहाँ आपको पाप की व्याख्या व्यापक रीति से करनी चाहिए।"

इस प्रकार एक घंटे तक महात्माजी बोलते रहे। प्रत्येक बात उनकी आत्मा के गंभीरतम प्रदेश से निकल रही थी, और उस समय के शांति-पूर्ण वायु-मंडल में उनके शब्द विचित्र शक्ति के साथ धारा-प्रवाह-रूप में चले आ रहे थे। अंत में उन्होंने कहा—

"कल मैं प्रोफ़ेसर वसवानीजी की एक पुस्तक पढ़ रहा था। उसमें एक दृष्टांत आया है। जिस समय महाराणा प्रताप अपनी मृत्यु-शय्या पर लेटे हुए थे, उस समय उनका चेहरा बड़ा रंजीदा और चिंता-पूर्ण था। उनके सरदारों ने उनसे पूछा—'महाराज, आपको क्या चिंता है?'

महाराणा ने कहा—'मुझे चिंता यही है कि आप लोग मेरे पीछे कहीं ऐश-आराम में न पड़ जायँ, और अपनी स्वाधीनता को न खो बैठें।' राजपूतों ने महाराणा प्रताप को विश्वास दिला दिया कि नहीं, हम लोग भोग-विलास में नहीं पड़ेंगे। जब महाराणा को यह आश्वासन मिला, तब वह शांत हुए, और उनके मुख पर वही प्रसन्नता और तेज झलकने लगा। महाराणा की मृत्यु के बाद राजपूत लोग अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ नहीं रह सके। कोई परलोक की बात नहीं जानता; पर यदि कोई जानता, तो कह सकता कि महाराणा प्रताप की आत्मा स्वर्ग में अवश्य पूर्ण आनंद न पाती होगी।

"महाराणा प्रताप तो ऐसे वीर हो गए हैं कि संसार में उनके समान देश-भक्त बहुत कम हुए हैं। लेकिन उनके उद्देश्य से इस समय हम लोगों का उद्देश्य बहुत बड़ा है। वह एक राज्य की स्वाधीनता के लिये लड़ रहे थे, पर हम लोग तो संपूर्ण भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिये लड़ रहे हैं।

"मैं आज बारडोली जाऊँगा। पहले तो जब कभी मैं जाता था, महीने-डेढ़ महीने बाद लौट आता था; लेकिन इस बार मैं अपने काम को समाप्त किए बिना नहीं लौटना चाहता। वैसे तो कौन जानता है कि मुझे कब यहाँ लौटना पड़े; क्योंकि मालवीयजी अभी राउंड टेबिल कानफ़्रेंस का प्रयत्न कर रहे हैं; परंतु मेरी इच्छा यही है कि जिस काम को करने के लिये मैं बारडोली जा रहा हूँ, उसे ख़तम करके ही लौटूँ। महादेव ने जेल से लिखा था कि जब ब्रिटिश-सरकार ने जगलुलपाशा को मिसर से देश-निकाला दे दिया, तब संभव है कि भारत-सरकार आपको भी देश-निकाला दे दे। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि सरकार ऐसा करेगी; पर यदि वह ऐसा करे भी, अथवा यदि मैं बारडोली में ही गोली से मारा जाऊँ, तो मुझे वहाँ

पर उस समय यह संतोष होना चाहिए कि आप लोग (आश्रम-निवासी) अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। एक छोटी-सी चीज़ से बढ़ाकर यह बना-बनाया आश्रम मैं आपको सौंपता हूँ। आप लोग संयम-पूर्वक रहकर इसकी उन्नति करें—व्यक्तिगत उन्नति और सामुदायिक उन्नति।"*

जिस समय गांधीजी ने अपना कथन समाप्त किया, उस समय बिलकुल सन्नाटा था। मानो साबरमती का जल मंद गति से बहते हुए धीरे-धीरे 'संयम'-'संयम' कह रहा था, चिड़ियों की चहचहाहट 'संयम' के उपदेश से परिपूर्ण थी। यदि Wireless broad-casting (बेतार के तार) के द्वारा महात्माजी का वह महत्त्व-पूर्ण 'संयम'-संबंधी उपदेश संपूर्ण देश में फैला दिया जाता, यदि हम लोग, यदि देशवासी, यदि चौरीचौरावाले 'संयम' से काम लेते, तो आज हमारे देश का इतिहास ही पलट गया होता। पर ऐसा नहीं होना था। हम लोगों के असंयम से ही गांधीजी को असफलता मिली।

आश्रम में जो १२५-१५० आदमी रहते हैं, उनमें से

एक कुटुंब के मुखिया के रूप में

प्रत्येक इस बात का अनुभव करता है कि 'बापू' हमारे पूज्य और कुटुंब के ही हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धांत का पाठ करनेवाले अनेक कार्यकर्ता प्रायः अपने माता, पिता तथा निकट-संबंधियों तक की ओर से बेपर्वाह होते हैं ; लेकिन 'बापू' जगत्-बंधु होने के पहले आश्रम के 'बापू' हैं। वह बराबर इस बात का ख़याल रखते हैं कि आश्रम में कौन बीमार है। संध्या-समय बीमारों के पास जाकर उनकी तबियत का हाल पूछना वह अपना विशेष कर्तव्य समझते हैं। यहाँ पर मुझे एक घटना याद आती है। १० मार्च, १९२२ की संध्या का समय था। हम सब लोगों को यह ख़बर मिल चुकी थी कि आज सरकार गांधीजी को गिरफ़्तार करनेवाली है। महात्माजी ने प्रार्थना के बाद अपने भाषण में कहा भी था कि आज संभवतः पुलीस मुझे गिरफ़्तार करेगी। प्रार्थना के बाद गांधीजी एक मज़दूर को, जिसके हाथ में चोट थी, देखने के लिये गए। इसके तीन घंटे बाद पुलीस-सुपरिंटेंडेंट ने उन्हें गिरफ़्तार किया। उस दिन भी महात्माजी अपने कर्तव्य को नहीं भूले। कहाँ तो अपनी गिरफ़्तारी, जो देश की एक महत्त्व-पूर्ण घटना थी, और कहाँ वह ग़रीब मज़दूर ! पर बड़े-से-बड़े कामों को करते हुए भी महात्माजी छोटे-से-छोटे आदमी को भी नहीं भूलते। वह जानते हैं कि देश की स्वाधीनता के लिये मज़दूर का हाथ उतना ही ज़रूरी है, जितना किसी राजनीतिज्ञ का दिमाग़।

अभी अपनी बीमारी के बाद भी जब गांधीजी जुहू से लौटे, और जब कि वह स्वयं निर्बल थे, तब भी बीमारों के पास बराबर जाया करते थे। उनसे प्रत्येक बात पूछते—क्या खाया था, कितना खा सकते हो, जीभ का स्वाद कैसा है, शरीर में शक्ति मालूम होती है या नहीं इत्यादि अनेक प्रश्न करते, बड़ी सावधानी के साथ उनके उत्तरों को सुनते, और उचित परामर्श देकर उनके साहस को बढ़ाते थे। सच तो यह है कि महात्माजी की एक मुसकिराहट ही समझदार बीमारों के लिये औषध का काम कर सकती है।

जिस दिन गांधीजी बारडोली जानेवाले थे, उसके एक

छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान

दिन पहले उन्होंने आश्रम के सब आदमियों को बुलाया, और उन सब से अपने-अपने अनुभव पूछे। बातचीत में आपने कहा—"मैंने इस बात को देखा है कि जहाँ आप लोग पेशाबख़ाने में पेशाब करते हैं, वहाँ बदबू आया करती है। इसलिये आप लोगों को उचित है कि साथ ही कुछ पानी लेते जाया करें, जिसे उस स्थान पर डाल दिया करें। इससे बदबू नहीं आवेगी।"

इस विषय में तो महात्माजी पारंगत हैं। आश्रम में

अतिथि-सत्कार

अनेक अतिथि आया करते हैं। सैकड़ों ही आदमी महात्माजी से मिलने आते हैं; लेकिन आज तक किसी भी आदमी को यह अनुभव न हुआ होगा कि गांधीजी हमारी ओर से लापर्वाह हैं। उनसे वह यही कहा करते हैं कि आप आश्रम को अपना स्थान ही समझिए। उनको किसी प्रकार की असुविधा न होने पावे, इसके लिये वह चिंतित रहते हैं। बातचीत के लिये उन्हें अपना अमूल्य समय भी देते हैं।

जिस समय गांधीजी जुहू में थे, उस समय सर्वेंट्स ऑफ़ इंडिया सोसाइटी के एक नवीन मेंबर, मिस्टर दुबे, वहाँ आए। संध्या की प्रार्थना के समय गांधीजी ने पूछा—दुबे कहाँ हैं ?

* गुजराती का बहुत मामूली-सा ज्ञान होने के कारण मैं महात्माजी के प्रवचन को पूर्णतया नहीं समझ सका। फिर भी जो सारांश मैंने लिखा है, वह प्रामाणिक है।

मैंने कहा—वह तो स्टेशन पर गए।

महा०—क्यों ?

मैं—सामान लेने के लिये।

महा०—क्या वह अकेले ही चले गए ? उनकी तबियत तो कुछ ख़राब थी ? किसी को साथ नहीं लेते गए ?

मैं—अकेले ही गए हैं।

फिर गांधीजी ने कहा—उनकी अच्छी तरह देख-भाल रखना। उन्हें ऐसा न मालूम होना चाहिए कि हम किसी दूसरे के घर पर हैं।

मि० पाल रिचार्ड गांधीजी से मिलने के लिये आश्रम में आए। महात्माजी उन्हें अपने साथ टहलने के लिये ले गए, और उनसे बड़ी देर तक बातचीत की। दूसरे दिन प्रातःकाल ६ बजे मि० पाल रिचार्ड जानेवाले थे। सबेरे ही गांधीजी उन्हें पहुँचाने के लिये और चलते समय दो बातें कहने के लिये आ गए। अक्सर अँगरेज़ लोग और उनकी महिलाएँ महात्माजी के दर्शनार्थ आया करती हैं। सभी गांधीजी के मधुर स्वभाव और वाक्-चातुर्य के विषय में उत्तम-से-उत्तम भाव लेकर जाते हैं।

एक घटना मुझे यहाँ पर याद आती है। एक अँगरेज़ पादरी साहब अपनी मेम साहब तथा अपने एक नव-युवक मित्र के साथ गांधीजी से मिलने के लिये आए। महात्माजी ने बहुत देर तक उनसे बातचीत की। इसके बाद संध्या की प्रार्थना का समय आया। दोनों अँगरेज़ तथा मेम साहबा भी उसमें सम्मिलित हुईं। प्रार्थना के बाद गांधीजी ने पादरी साहब से कहा—"मुझे वह गीत बड़ा सुंदर लगता है, जिसके अंत में आता है—When the mists have rolled away. क्या आपको वह याद है ?" पादरी साहब ने कहा—"हाँ, हमें याद है।" महात्माजी ने कहा—"उसी को आप गाइए।" दोनों अँगरेज़ों ने उसे गाना आरंभ किया—

When the mists have rolled in splendour
From the beauty of the hills,
And the sun-light falls in gladness
On the river and the rills,
We recall our Father's promise,
In the rainbow of the spray:
We shall know each other better,
When the mists have rolled away,
We shall know as we are known,
Never more to walk alone,
In the dawning of the morning
Of that bright and happy day!
We shall know each other better,
When the mists have rolled away.*

उन दिनों असहयोग-आंदोलन बड़े ज़ोरों पर था, और गांधीजी के विरुद्ध अँगरेज़ों के पत्रों में अनेकों लेख निकल रहे थे। वायु-मंडल पारस्परिक अविश्वास के भावों से परिपूर्ण था। अँगरेज़ लोग सभी भारतीयों को भय तथा घृणा की दृष्टि से देखते थे, और भारतीय जनता प्रत्येक अँगरेज़ को धोकेबाज़ और मनुष्यता-हीन समझती थी। उस समय के वातावरण में गांधीजी का यह प्रिय गीत कुछ विशेष अर्थ रखता था, और उन अँगरेज़ों ने इस अंश को बड़े गद्गद कंठ से गाया था—

"We shall know each other better,
When the mists have rolled away."

समय का सदुपयोग

यदि हम महात्माजी को आश्रम में काम करते हुए देखकर फिर अन्य नेताओं को अपने समय का व्यय (या अपव्यय ?) करते हुए देखें, तो हमें ज़मीन-आसमान का अंतर मालूम पड़ेगा। गांधीजी को अपने प्रत्येक मिनट का ख़याल है, और वह उसका सदुपयोग करते हैं। जो समय किसी आदमी को मिलने के लिये देते हैं—उनसे मिलनेवालों की संख्या भी थोड़ी नहीं होती—उस समय उससे मिलने के लिये बराबर तैयार रहते हैं। उन्हें अपने तथा दूसरे के समय का बड़ा ध्यान रहता है। एक बार मैंने इस विषय

---

* इसका भावार्थ यह है—जब पर्वत के सौंदर्य को आवृत करनेवाली घटा दूर हो जायगी, और जब नदी-नालों पर सूर्य का प्रकाश पड़ेगा, तब हम अपने परमपिता से की हुई प्रतिज्ञा को स्मरण करेंगे, और अविश्वास की घटा के दूर हो जाने पर, एक दूसरे के हृदय को भली भाँति पहचान लेंगे। फिर हम उस प्रभात के उषःकाल में तथा उस प्रकाश-पूर्ण सुखमय दिन में संसार-यात्रा के पथ पर अकेले ही न जायँगे। अज्ञान और अविश्वास के बादल दूर हो जाने पर हम लोग एक दूसरे को अच्छी तरह जान लेंगे।

बस, अब अगले ही निमेष में मैं अपने को शिशु पाऊँ;
यह संसार सभी हो बालक, ओः, तब कितना हरषाऊँ।
हँसें, हँसावें, हिल-मिल गावें, नहीं दुःख का हो लवलेश;
सरल हृदय हों, कभी कुटिलता का उनमें हो नहीं प्रवेश।
मृदु मुसकान मनोहर मन के भावों का बस, करे प्रकाश :
छाया पड़े नहीं चिंता की, जरा-मरण के टूटें पाश।
देख मनोहर लीलापति की लीला सब विस्मित होवें;
उछलें, कूदें, ताली पीटें, गावें, अति पुलकित होवें।
खूब खिलौने सजा-सजाकर खेलें, करते रहें विनोद;
जब थक जावें खेल-खेलकर, तब जा बैठें माँ की गोद।

वागीश्वर

पाश्चात्य जगत् और भारत की किसानी

मनुष्य-मात्र से अपने-अपने देश की किसानी का घनिष्ट संबंध है। पर इस बात को जाननेवाले लोगों की संख्या बहुत थोड़ी होती है। जिस देश में इस बात को जाननेवाले लोगों की संख्या अधिक होती है, वही देश अपनी किसानी की उन्नति कर सकता है; वही देश अपनी किसानी की उन्नति के कारण संसार में ख्याति, कीर्ति और सम्मान के योग्य होता है। किसी देश में किसी श्रेणी का ऐसा मनुष्य न होगा, जो यह न चाहता हो कि मुझे खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने तथा आमोद-प्रमोद की चीज़ें स्वल्पाति-स्वल्प मूल्य में अधिक-से-अधिक मिला करें। रंक से लेकर राजा तक के चित्त में यह लालसा सदा जाग्रत् रहा करती है। पर इसकी पूर्ति उसी देश में होती है, जहाँ के सब श्रेणी के लोग, अपने देश की किसानी और कला-कौशल की रक्षा तथा वृद्धि के लिये अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सहायता देते रहते हैं। यह कोई नहीं कहता कि हम तो हाईकोर्ट के जज हैं, ऐडवोकेट हैं, वकील हैं, गल्ले के व्यापारी हैं, सूत के व्यापारी हैं, कपड़े के व्यापारी हैं, हुंडी-पुर्ज़े के व्यापारी हैं, कलेक्टर हैं, ज़िला-मैजिस्ट्रेट हैं, पत्र-संपादक हैं, विकट कवि हैं, धुरंधर नाटककार हैं; हमसे और किसानी से क्या संबंध? किसानी की चिंता किसानों और ज़मींदारों को करनी चाहिए; क्योंकि उससे प्रत्यक्ष लाभ वे ही लोग उठाते हैं। उक्त लोगों की यह युक्ति किसी अंश तक युक्त प्रतीत होती है; पर सर्वांश में वह ठीक नहीं। भिन्न-भिन्न प्रकार के धंधे और व्यवसाय करनेवालों का स्वार्थ भिन्न-भिन्न होने पर भी उन सबका किसानी से एक-सा स्वार्थ है; क्योंकि वे सभी चाहते हैं कि हमको खाने-पीने तथा आमोद-प्रमोद की सब चीज़ें थोड़े दामों पर विपुल मात्रा में मिला करें। कहना न होगा कि ऐसा चाहनेवालों को वे चीज़ें नहीं मिलतीं। वे मिलती उन्हें ही हैं, जो तदर्थ सच्चा प्रयत्न करते रहते हैं। हमारे इस निवेदन से माधुरी के मेधावी पाठक जान चुके होंगे कि किसानी का संबंध देश के प्रत्येक जन से रहा करता है, चाहे वह उसे जानता-मानता हो, या उसकी उपेक्षा करता हो।

जिस देश के लोग देश की किसानी से अपने उक्त संबंध को मानते और उसकी रक्षा तथा वृद्धि में दत्त-चित्त रहते हैं, उस देश की किसानी उनकी अभीष्ट लालसाओं को पूर्ण करती रहती है। इस कथन के समर्थन में हम पहले माधुरी के पाठकों को अमेरिका की किसानी का संक्षिप्त इतिहास भेंट करके पीछे से उन्हें भारत की किसानी का वर्तमान इतिहास भी बतलावेंगे। संभवतः पाठक पूछने लगेंगे कि भारत की किसानी का वर्तमान वृत्तांत समझाने के लिये अमेरिका की किसानी का इतिहास सुनाने की क्या आवश्यकता है? उनके इस प्रश्न के उत्तर में हमारा यह निवेदन है कि जिस प्रकार अपने पाठकों को श्रीरामचंद्रजी के बल और पुरुषार्थ का सच्चा परिचय कराने के लिये आदिकवि को रावण के बल-पराक्रम का वर्णन करना पड़ा था, उसी प्रकार हमें अमेरिका की वर्तमान किसानी का यहाँ संक्षिप्त वर्णन देना आवश्यक जान पड़ता है। आशा है, माधुरी के भारत-दशासुधारक पाठक उसे सावधानता-पूर्वक पढ़ने की कृपा करेंगे।

धन और विज्ञान ने अमेरिका के विद्वानों को यह बात समझा दी है कि संसार में वही देश समृद्धिशाली हो सकता है, जिसके अधिकतर निवासी अपनी प्रतिदिन की आवश्यक वस्तुओं को थोड़े व्यय और समय में अधिक मात्रा में उत्पन्न कर सकते हैं। बस, इस ज्ञान के प्राप्त होते ही उस देश के विद्वान् वैसे उपायों की खोज में लग गए। खोज बड़ी उपयोगी वस्तु है। जो सत्यता और परिश्रम के साथ उसकी सेवा करते हैं, वे निस्संदेह

उसमें सफलता प्राप्त करते हैं। उस देश के भिन्न-भिन्न विद्वान् प्रकृति के भिन्न-भिन्न तत्त्वों की भिन्न-भिन्न और संयुक्त शक्तियों की खोज में जुट पड़े। किसी ने जल और अग्नि की सम्मिलित अद्भुत शक्ति का पता लगाया, तो किसी ने वायु की तरंगों की शक्ति का ज्ञान प्राप्त किया, और किसी ने बिजली की प्रबल शक्ति की खोज की। उक्त खोज की बात वहाँ के धनवानों को जब ज्ञात हुई, तब उन लोगों ने उन खोजों को कार्य-रूप में परिणत करने के लिये मुक्त-हस्त होकर अपना धन दिया। बँदरिया के बच्चे की तरह उसे वे पकड़े नहीं रहे। परिणाम यह हुआ कि देश के एक कोने से दूसरे कोने तक मनुष्य, व्यवसाय-सामग्री तथा वाणिज्य-समाचार आदि के जाने-आने के लिये ऐसे साधन प्राप्त हो गए, जिनकी कृपा से लंबी-से-लंबी यात्रा थोड़े व्यय और समय में संभव हो गई। इसका फल यह हुआ कि देश में वाणिज्य-व्यवसाय की ख़ासी उन्नति हुई; और उसके साथ ही देश भी समृद्धि-शाली होने लगा।

दूर-दूर की उपयोगी वस्तुओं के आदान-प्रदान में आशातीत सफलता देनेवाले तार, रेल, टेलीफ़ोन, नौ-संचालन आदि साधनों की जब यथेष्ट प्राप्ति वहाँ के विद्वानों ने कर ली, तब उनका ध्यान अपने देश की कृषि की ओर आकृष्ट हुआ। वे लोग सोचने लगे कि आज दिन हमारी धरती गेहूँ, कपास, क्लोवर, अलफ़ाल्फ़ा आदि की जितनी उपज देती है, उतनी ही वह दे सकती है, या उससे भी अधिक? इस दिशा में खोज और अनु-संधान करने से उन्हें मालूम हो गया कि यदि धरती की जुताई उचित रूप से की जाय, और उसके गुण-धर्मों के ज्ञान को समझकर उसमें बीज बोया जाय, तो वह अधिक उपज दे सकती है। बस, फिर क्या था। इस बात का पता लगते ही उचित जुताई के लिये उपयुक्त औज़ारों की खोज की जाने लगी; साथ ही भिन्न-भिन्न प्रकार की धरती के भिन्न-भिन्न गुणों का पता भी लगाया जाने लगा। इस दिशा में भी उन्हें आशातीत सफलता हुई। कहना न होगा कि इस सफलता के श्रेय के अधिकारी अधिकतर वहाँ के धनकुबेर श्रीयुत कारनेगी और मैक-कारमिक-जैसे सज्जन ही हैं, जिन लोगों ने अपनी गाढ़ी कमाई का विपुल धन विद्वानों की खोजी हुई युक्तियों को काम में लाने के लिये ख़र्च किया।

अमेरिका के कृषि-विज्ञान ने अपने देश के किसानों को आज दिन यह समझा दिया है कि जिसे अपने खेतों से अधिक-से-अधिक उपज लेने की इच्छा हो, उसे खेती का काम करने के पहले नीचे लिखी हुई बातों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। साथ ही उस ज्ञान से थोड़े व्यय और थोड़े समय में अधिक लाभ देनेवाले उपायों को काम में लाना भी सीख लेना चाहिए—

(१) यथेष्ट और उत्तम जुताई।

(२) धरती के गर्भ में पौदों के भोजन का यथेष्ट संग्रह।

(३) जिस धरती में जिस धान्य को जिस समय पैदा करने की शक्ति हो, उसमें उस समय उसी धान्य को बोना।

(४) बीज की उत्तमता।

(५) धरती की उत्पादिका-शक्ति के ख़र्च हो जाने पर उसकी पूर्ति करते रहना।

(६) उपज को लागत से अधिक दामों पर बेचना।

(७) खेती के कार्य-क्रम को सावधानी से बनाना, और तदनुसार उचित हेर-फेर के साथ उसे काम में लाना।

(१) यथेष्ट और उत्तम जुताई। अमेरिका के कृषि-विज्ञान ने वहाँ के किसानों को यह समझा दिया है कि तुम अपने खेतों से यदि अधिक उपज लेना चाहते हो, तो तुम्हें उन्हें यथेष्ट मात्रा में अच्छी तरह जोतना चाहिए; क्योंकि धरती की यथेष्ट गहरी, और वह भी यथासमय, जुताई किए बिना धरती के गर्भ में जल, वायु, उष्णता और खार का संग्रह नहीं हो सकता। इनके अभाव के कारण वहाँ पौदों के भोजन काफ़ी तैयार नहीं हो सकते। परिणाम यह होता है कि जहाँ कुछ थोड़ा भोजन उन्हें मिल जाता है, वहाँ के पौदे पैदा होकर थोड़ी-सी उपज दे देते हैं; किंतु जहाँ उन्हें भोजन नहीं मिलता, वहाँ वे जमकर बढ़ते ही नहीं। इसलिये किसान को चाहिए कि वह अपने खेत के गर्भ में पौदों के भोजनों का पूरा-पूरा संग्रह करने के लिये सदा सचेष्ट रहा करे। इस काम के लिये वहाँ के किसान लोग वर्तमान शस्य के पक जाने पर उसे काटते ही खेत में हल चला देते हैं, जिससे ऊपर की मिट्टी नीचे और नीचे की ऊपर हो जाती और उसके कणों में वायु तथा उष्णता का प्रवेश होता रहता है। दूसरे धान्य को

बोने का समय आने तक उक्त प्रकार से धरती को कई बार जोतकर वे उसे यथेष्ट गहराई तक महीन कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि वर्षा का जल जब उन खेतों पर बरसता है, तब वह उनके भीतर जाकर जमा हो जाता है। जल के वहाँ पहुँचते ही वह वहाँ के संचित द्रव्यों को द्रव-रूप में परिवर्तित कर पौदों की कोमल जड़ों द्वारा खींचे जाने-योग्य बनाने में सहायता देने लग जाता है। धरती के गर्भ में भिन्न-भिन्न प्रकार की सूक्ष्म वनस्पतियाँ रहा करती हैं। वे पौदों के भोजनों को द्रव-रूप में बदलने का काम किया करती हैं। जिन खेतों के गर्भ में इन सूक्ष्म वनस्पतियों का अभाव हो जाता है, उनमें पौदों का भोजन यथेष्ट रहने पर भी वह द्रव-रूप में नहीं आ सकता। परिणाम यह होता है कि उसकी फ़सल या तो सूख जाती है, या कमज़ोर होकर थोड़ी उपज देती है।

उक्त प्रकार से यथेष्ट और उत्तम जुताई करने के लिये उत्तम-उत्तम औज़ारों की आवश्यकता होती है। सन् १८०० ई० के उत्तरार्द्ध में वहाँ जो औज़ार थे, वे यथेष्ट गहरी तथा महीन जुताई नहीं कर सकते थे। अतः वहाँ के विद्वानों ने उनमें सुधार करना शुरू किया। आज दिन वहाँ खेती के औज़ारों की संख्या २५-३० है। जिस खेत में गेहूँ बोना होता है, उसको जोतने के लिये जिस हल की आवश्यकता होती है, उससे कपास का खेत अच्छी तरह नहीं जोता जाता। अतः गेहूँ के लिये अलग और कपास के लिये अलग हल बनाए गए हैं। इसी प्रकार अन्यान्य धान्यों के लिये व्यवस्था की गई है। कहना न होगा कि यह सब तभी हुआ है, जब उस देश के विद्वानों ने उन पर विचार करने में समय और धनवानों ने उन्हें अस्तित्व में लाने के लिये प्राणों से प्यारे धन को लगाया। भारत के विद्वान् कहते हैं कि हमें खेती से क्या मतलब ? खेती तो निरक्षर-भट्टाचार्यों का काम है ! उसी प्रकार यहाँ के धनवान् कहा करते हैं कि हम खेती के सुधार में अपना धन क्यों लगावें ? आपस की यही फूट भारत की किसानी को चौपट कर रही है।

(२) धरती के गर्भ में पौदों के भोजन का यथेष्ट संग्रह। जिस प्रकार जलचर, स्थलचर और वायुचर प्राणियों को भोजनों के साथ-साथ प्रकाश, उष्णता और वायु की आवश्यकता रहा करती है, ठीक उसी प्रकार धरती के गर्भ में उत्पन्न होकर, वहाँ फैलकर, अपना भोजन ढूँढ़नेवाली पौदों की कोमल जड़ों को भी उनकी आवश्यकता रहा करती है। ऊपर लिखा जा चुका है कि पौदों की जड़ों को तभी पूरी-पूरी उष्णता, प्रकाश और वायु मिल सकता है, जब खेत की काफ़ी जुताई करके उसकी मिट्टी महीन और मृदु कर दी जाती है। जिस खेत की जुताई काफ़ी और अच्छी की जाती है, उसी खेत में पौदों का भोजन बहुत-सा तैयार हो सकता है, दूसरे में नहीं।

खेत के किस भाग में कौन-सा भोज्य पदार्थ है, कौन-सा कम है, कौन-सा बिलकुल नहीं है, इसका पता किसान को तभी लग सकता है, जब वह खड़ी फ़सल के पौदों को खेत में घुसकर ध्यान-पूर्वक देखता है। वह इस प्रकार कि खेत के जिस भाग में वह देखे कि फ़सल बढ़ी तो खूब है, पर उसमें दाने कम हैं, तो उसे जान लेना चाहिए कि उस स्थान में फ़सल को बढ़ानेवाला द्रव्य तो यथेष्ट है, पर उसमें ज़्यादह दाने पैदा करनेवाला कम। जिस स्थान में वह देखे कि फ़सल उगी तो है, पर बढ़ी नहीं है, उस स्थान में वह समझ ले कि वहाँ पौदे को बढ़ानेवाला द्रव्य कम है। जिस स्थान में वह देखे कि फ़सल बिलकुल जमी ही नहीं, उस स्थान में समझ ले कि नमी नहीं है—इत्यादि। इस प्रकार अभावों का ज्ञान प्राप्त कर उसे वहाँ चिह्न लगा देना चाहिए, और फिर जहाँ जिस बात की कमी हो, वहाँ उसकी पूर्ति करनेवाली खाद देकर वह कर देनी चाहिए। जहाँ दाने कम हों, वहाँ हड्डी की, और जहाँ पौदे उगे न हों, वहाँ गोबर की खाद देनी चाहिए। लकड़ी की राख की खाद से दानों में मिठास पैदा होती है। इस प्रकार जब पूर्ति की जाती है, तब धरती के गर्भ में पौदों के भोजनों का यथेष्ट संग्रह बना रहता है। अमेरिका के कृषि-विज्ञान ने यह बात वहाँ के किसानों को समझाकर बड़ा उपकार किया है।

(३) जिस धरती में जिस धान्य को जिस समय पैदा करने की शक्ति हो, उसमें उस समय उसी धान्य को बोना। अमेरिका के कृषि-विज्ञान ने रासायनिक प्रक्रिया से यह बात प्रकट कर दी है कि खेत की किस धरती के खंड में गेहूँ को, किसमें अलसी को, और किसमें कपास को अधिकता के साथ पैदा करने की कितनी शक्ति नैसर्गिक रूप में रहती है, और कितनी उसे कृत्रिम रूप से दी जानी

चाहिए। इस बात का ज्ञान प्राप्त करके वहाँ के किसान अपनी तथा देश की माँग और आवश्यकता के अनुसार अपने खेतों में बीज बोते और उनका यथेष्ट सावधानी के साथ लालन-पालन कर उनसे अच्छी उपज लेते हैं।

(४) बीज की उत्तमता। वहाँ के कृषि-विज्ञान ने वहाँ के किसानों को यह बात समझा दी है कि जो बीज नीरोग, बलिष्ठ, शुद्ध और निर्दोष होता है, वही अधिक उपज दे सकता है। इसके विपरीत होने पर वह अधिक उपज नहीं दे सकता। अतः वहाँ के किसान बीज का चुनाव और उसकी रक्षा बड़ी सावधानी से करते हैं। एक जाति के गेहुँओं में दूसरी जाति के गेहुँओं का एक दाना भी नहीं मिलने पाता। वह यदि मिल ही जाता है, तो उसके पौदे को खेत से उखाड़कर फेंक देते हैं। इसी प्रकार की सावधानी अलसी, कपास आदि के बीजों के विषय में भी की जाती है।

(५) धरती की उत्पादिका-शक्ति के ख़र्च हो जाने पर उसकी पूर्ति करते रहना। अमेरिका के स्वदेश-प्रेमी विद्वानों और धनाढ्यों ने जब अपने देश की किसानी की उपज बढ़ाने के अभिप्राय से, थोड़े समय और ख़र्च से, बहुत-सी जुताई, बुआई, कटनी और उड़ावनी आदि के औज़ार और यंत्र बना दिए, तब वहाँ के किसानों का हर्ष अपनी सीमा के पार हो गया। उन लोगों ने समझ लिया कि अब हमारी खेती यंत्रों द्वारा होती रहेगी, अतः हमें किसानी के लिये घोड़े आदि पशुओं को पालने का व्यय नहीं उठाना पड़ेगा। खेती के यंत्रों को साल-भर में थोड़ा-सा तेल और कोयला या लकड़ी दे देने से ही हमारा काम चल जायगा। मगर उनका यह हर्ष बहुत दिनों तक नहीं रह सका; क्योंकि कृषि-विज्ञान ने उन्हें पशुओं की आवश्यकता का ज्ञान बहुत शीघ्र करा दिया।

कृषि-विज्ञान ने वहाँ के किसानों को इस बात के जान लेने का सुबीता कर दिया है कि एक मन गेहूँ, अलसी या कपास पैदा करने में धरती के गर्भ में संचित किया हुआ शस्य का भोजन कितना ख़र्च हो जाता है, फिर प्रकृति किस सीमा तक उसकी पूर्ति करती है, और किसान को उसे किस मात्रा तक पूरा करना होता है। किसान को जो पूर्ति करनी पड़ती है, उसे वह अपने कृषि-पशुओं की सहायता बिना नहीं कर सकता। अतः उसे उन्हें पालना ही पड़ता है। उस देश में हल और दूसरे औज़ार घोड़ों से चलाए जाते हैं। अतः वहाँ के किसानों को इसके लिये घोड़े पालने पड़ते हैं। जब से कृषि-तत्त्व-पारंगत रासायनिकों ने यह बात प्रमाणित कर दी है कि जिस प्रकार गऊ का दूध मनुष्य का पोषण करने में सब पशुओं के दूध से अधिक उपयोगी है, उसी प्रकार उसका गोबर और मूत्र भी धरती की उत्पादिका-शक्ति को पैदा करने में सबसे अधिक उपयोगी है। तभी से अमेरिका के किसान गउओं का लालन-पालन बड़ी चतुराई, सावधानी और प्रेम से करने लगे हैं। वह इस प्रकार कि उनको वे साफ़-सुथरे, यथेष्ट प्रकाश और वायु-युक्त घरों में रखते हैं। यथासमय नीरोग, पवित्र और बलिष्ठ चारा-दाना देते हैं। दिन में तीन बार शुद्ध और मीठा जल पिलाते हैं। प्रत्येक ऋतु में गरमी-सरदी की मात्रा के अनुसार स्नान कराते हैं। बाँधकर चारा खिलाते हैं। चरने के बहाने एक मील का चक्कर रोज़ दिलाते हैं। उनके वंश की शुद्धता न बिगड़ने देने पर वे पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। उच्च वंश की उत्तमोत्तम-गुणसंपन्न गऊ को उसी की जाति के असगोत्र साँड़ से संयुक्त कराते हैं। अपने खेतों में उनके लिये शुद्ध और पुष्ट चारा-दाना पैदा करते हैं। गउओं को दाने के साथ अलसी, मूँगफली और कपास-जैसे स्निग्ध उद्भिजों की खली देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वहाँ की गउएँ हर बेंत में १०० मन के ऊपर दूध देती हैं। उनका गोबर और मूत उनके खेतों की उत्पादिका-शक्ति को सबसे अधिक बढ़ाता है। अब तो वहाँ यह नियम-सा हो गया है कि प्रत्येक किसान सौ एकड़ पीछे पंद्रह गउएँ पालता है। वे उसे दूध-घी से यथेष्ट लाभ कराती रहती हैं; साथ ही अपने गोबर से उसके खेतों की उत्पादिका-शक्ति को भी बढ़ाती रहती हैं। वहाँ के देश-हितैषियों ने लेखा लगाकर प्रकाशित किया है कि ऐसी गउओं की संख्या आज दिन वहाँ दो करोड़ से ऊपर है। वहाँ के किसान उन गउओं की संख्या बढ़ाने में तत्पर रहा करते हैं। यहाँ हम अपने विचारशील पाठकों से इस बात का स्मरण रखने के लिये साग्रह प्रार्थना करते हैं कि गउओं के दूध, गोबर और मूत्र की जिस उपयोगिता को अमेरिकावालों ने अभी बीस-चौबीस वर्ष पहले ही जान पाया है, उसे भारत के ऋषि-मुनियों ने लाखों नहीं, तो हज़ारों वर्ष पहले अवश्य जान लिया था। इसीलिये उन्होंने प्राण-पण से उनकी रक्षा करने का उपदेश दिया है। भारत के वर्तमान हिंदू इस

बात को बिलकुल भूल गए हैं। अब फिर जब यह बात भारत के हिंदू-किसान के मन में अमिट रूप से जमा दी जायगी, तभी भारत में गो-वध बंद होगा। एक नहीं, अनेक पिंजरापोल भले ही खोलें, पर उनसे गो-वध बंद न होगा। कृषि और गऊ के उक्त संबंध को भारतवासी भूलें नहीं, इस अभिप्राय से व्यासजी ने भगवद्गीता में यह लिख दिया है कि—

"कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।"

इस पंक्ति का यही अर्थ है कि जो धरती के उद्भिज्ज पदार्थों का व्यवसाय करे, उसे उचित है कि वह किसानों और गउओं की उचित सेवा करता रहे। गउओं की उचित सेवा करने से उसे शुद्ध और पवित्र दूध-घी मिलता रहेगा, और उनके पुत्रों तथा गोबर और मूत से खेतों की धरती उपजाऊ बनी रहेगी, जिससे वे मनमानी उपज लेकर अपना व्यवसाय करते रहेंगे। आज दिन बंबई, कलकत्ता, करांची, नागपुर, कानपूर और जबलपुर आदि स्थानों में बसकर करोड़ों का माल बाहर भेजनेवाले व्यवसायी इस बात को भूल गए हैं कि वे अपने देश के कच्चे उद्भिज्ज पदार्थों को भारत से बाहर भेजकर भारत की धरती की उत्पादिका-शक्ति को किस प्रकार क्षीण करके भारत को श्री-विहीन बनाने का अक्षम्य पाप कर रहे हैं। उनका अज्ञान और उनकी स्वार्थपरता उन्हें यह मालूम ही नहीं होने देती कि उनका यह भी कभी कर्तव्य है कि वे भारत की कृषि और उसकी गउओं की रक्षा किया करें; अन्यथा वे नहीं, तो उनकी संतति दीन-हीन हो जायगी। हमारी इस प्रार्थना का तत्त्व समझने के लिये वे लोग अमेरिका के धनी व्यवसायी कारनेगी और मैककारमिक के चरित्रों का अनुकरण करें, और भारत की कृषि और गउओं की सच्ची रक्षा करने में अग्रसर हों। जब वे ऐसा करेंगे, तभी सच्चे व्यवसायी होकर भारत का हित कर सकेंगे।

अमेरिका के वैज्ञानिक और धनी लोगों ने रासायनिक प्रक्रिया से आज दिन कोई पचास ऐसी कृत्रिम खादें बनाई हैं, जो धरती की उत्पादिका-शक्ति को बढ़ाने में सहायता दिया करती हैं। किसान लोग अपने खेत के गर्भ में जिस तत्त्व की कमी पाते हैं, उसको पूरा करने के लिये वे उससे भरी हुई खाद ख़रीदकर अपने खेतों में डालते हैं। इस प्रकार वे अपने खेतों की ख़र्च हो गई उत्पादिका-शक्ति की पूर्ति करते रहते हैं।

(६) उपज को लागत से अधिक दामों पर बेचना। अमेरिका के अर्थ-विज्ञान ने वहाँ के किसानों को समझा दिया है कि अगर खेती से लाभ उठाकर अपने बाल-बच्चों को उचित रीति से पालना और लिखाना-पढ़ाना हो, तो उन्हें उचित है कि वे खेती करके ख़ासा धन कमाएँ। जब उनकी कमाई में ख़ासा लाभ होगा, तभी वे अपना तथा अपने आश्रित कुटुंबियों का भली भाँति लालन-पालन कर सकेंगे, और तभी अपने बालक-बालिकाओं को मनुष्योचित शिक्षा दे सकेंगे। ऐसा करने के लिये उन्हें अपनी खेती की लागत का कौड़ी-कौड़ी का हिसाब रखना चाहिए। जब वे लागत का पूरा-पूरा हिसाब रक्खेंगे, तभी उपज की नाप-तौल होने पर उन्हें मालूम हो सकेगा कि वह किस भाव से उनके घर पड़ी है, और तभी वे उसमें अपना मुनाफ़ा जोड़कर उसे बेच और उससे ख़ासा लाभ उठा सकेंगे। वे अपनी खेती के व्यय का लेखा न रक्खेंगे, तो उन्हें उपज के बेचते समय यह मालूम ही न हो पावेगा कि उनको उपज की बिक्री से लाभ हो रहा है या हानि। ऐसा करने के लिये उन्हें सहकारिता से सहायता मिलेगी।

(७) खेती के कार्य-क्रम को सावधानी से बनाना, और तदनुसार उचित हेर-फेर के साथ उसे काम में लाना। अमेरिका के कृषि-विज्ञान ने अपने किसानों को यह समझा देने का प्रबंध कर दिया है कि धरती से जितने पदार्थ उत्पन्न किए जाते हैं, उनके उपयोगी अंश को मनुष्य अपने काम में लाया करे, और शेष अंश को धरती के गर्भ में लौटा दिया करे। ऐसा करते रहने से धरती की उत्पादिका-शक्ति बनी रहती और उससे ख़ासी उपज होती रहती है। जैसे, जो किसान अपने खेत से कपास की जितनी उपज लेता है, वह उसके लिये अपने खेत की उतनी ही उत्पादिका-शक्ति ख़र्च करता है। यदि वह उस उत्पादिका-शक्ति की पूर्ति न करेगा, तो उसका खेत निस्सत्त्व होकर ऊसर हो जायगा। अतः उसे उचित है कि वह कपास से रुई निकालकर अपने काम में लावे, और बिनौला अपनी गउओं को खिलावे, जिससे उसकी गउएँ दूध-मक्खन अधिक दें, साथ ही उनका गोबर और मूत्र इतना बलवान् हो कि वह खेत की उत्पादिका-शक्ति बढ़ाने में समर्थ हो। यही बात अलसी, तिल्ली, मूँगफली, गेहूँ, जई आदि के विषय में चरितार्थ होनी चाहिए।

उक्त प्रतिपादन से यह बात स्पष्ट है कि जो लोग अपने देश का कच्चा माल विदेश भेजने का व्यवसाय किया करते हैं, वे अपने देश के जीवन-सर्वस्व कृषि के घोर शत्रु हैं; क्योंकि उनके व्यापार से देश की धरती की उत्पादिका-शक्ति विदेश चली जाती और इस प्रकार धरती की उत्पादिका-शक्ति क्षीण होती जाती है। कहना न होगा कि अमेरिका के व्यापारियों का ध्यान जब से प्रकृति के इस रहस्य की ओर गया है, तब से वहाँ के व्यापारी अपने देश के कच्चे माल को विदेश भेजकर स्वदेश की धरती को ऊसर बनाने का पाप नहीं करते।

वहाँ के किसानों को विज्ञान ने यह समझा दिया है कि खेतों पर जो वनस्पति जमती या वायु से उड़कर उन पर आ गिरती है, वह जब वहीं पड़ी रहकर सड़ जाती और धरती के गर्भ में पहुँच जाती है, तभी धरती के गर्भ में पहुँचे हुए वर्षा के जल को रोक रखने का काम करती है। जिस धरती के गर्भ में इस प्रकार सड़ी हुई वनस्पति का अंश उपज के कारण ख़र्च हो जाता है, उसमें उसे पहुँचाने के लिये वहाँ के किसान 'काऊलो' नाम की घास बोकर उसकी पूर्ति करते रहते हैं। भारत में सन बोकर उसकी पूर्ति की जा सकती है। सन की पत्तियाँ और डंठल सड़कर जब धरती के गर्भ में चले जाते हैं, तब वे वहाँ वर्षा के जल को रोक रखने का काम करते हैं।

अमेरिका के किसानों को वहाँ के कृषि-विज्ञान ने यह लेखा बनाकर समझा दिया है कि गेहूँ, अलसी, कपास आदि की जड़ें एक मन गेहूँ आदि पैदा करने के लिये धरती के गर्भ से अपना कितना भोजन ले लेती और कितना छोड़ देती हैं। किसी-किसी धान्य की जड़ें ऐसी होती हैं, जो थोड़ा भोजन देतीं, किंतु अपनी जड़ों में उससे अधिक भोज्य द्रव्य छोड़ देती हैं। इस बात को जाननेवाले वहाँ के किसान उसी क्रम से फ़सलें बोते हैं। आलू की फ़सल ऐसी है, जो थोड़ा भोजन करती, पर अपनी जड़ों द्वारा धरती में अधिक भोज्य पदार्थ छोड़ देती है। अतः वहाँ के किसान आलू के बाद अधिक भोजन करनेवाली गेहूँ की फ़सल बोते हैं। इस प्रकार का कार्य-क्रम वहाँ के किसान कई वर्षों का बना रखते हैं।

वहाँ के किसान इस बात को भली भाँति जान चुके हैं कि किसानों को फ़सल बोने के समय तीन बातों पर सदा एक-सी दृष्टि रखनी चाहिए। यथा—अधिक मूल्य देनेवाली फ़सल, घर के ख़र्च में आनेवाली फ़सल, और कृषि के पशुओं के काम में आनेवाली फ़सल। इस सिद्धांत को मानकर वहाँ का किसान अपनी जोत की धरती को तीन समान भागों में बाँट लेता और उनमें अदल-बदलकर धान्य बोता रहता है। वह ऐसा कभी नहीं करता कि कपास, संतरे या मूँगफली की अधिक माँग को देख अपनी जोत की धरती में वे ही चीज़ें बो दे, और अपने घर-ख़र्च तथा पशु-ख़र्च के लिये बाज़ार से चीज़ें ख़रीदे। कारण, उसे मालूम है कि बाज़ार से चीज़ें लेने में वे उतनी सस्ती नहीं पड़तीं, जितनी घर की खेती में।

अब आगे भारत की किसानी का थोड़ा-सा वृत्तांत दिया जाता है। आशा है, विज्ञ पाठक उसे भी देख लेने की कृपा करेंगे।

भारत की वर्तमान सरकार ने भारत की भूमि पर अधिकार रखनेवालों को कई प्रकार के नाम दे रक्खे हैं। उनके नाम ये हैं—राजा, महाराजा, ज़मींदार, ताल्लुक़ेदार, माफ़ीदार, उबारीदार, ठेकेदार, मालगुज़ार और गौंटिया इत्यादि। इनमें प्रत्यक्ष खेती करनेवाले बहुत थोड़े ही हैं। शेष सब किसानों से खेती कराकर उनसे राजस्व (लगान) लेते हैं। उसका एक नियत अंश वे सरकार को देते और शेष अपने घर रख लेते हैं। सरकार अपने अंश की नियत मात्रा को समय-समय पर घटाती-बढ़ाती रहती है। कहीं-कहीं वह किसानों के राजस्व—लगान—को भी बढ़ाती-घटाती रहती है। उसकी यह क्रिया बंदोबस्त के नाम से कही-सुनी जाती है। किसानों से उनके स्वामी लगान के सिवा और भी रक़में कई बहानों से ले लिया करते हैं। अपने अज्ञान के कारण किसान लोग वे रक़में उन्हें दे दिया करते हैं। नहीं देते, तो उनका काम नहीं चलता। अनधिकृत धन लेनेवाला मालगुज़ार अपने किसान की आर्थिक दशा पर कभी ध्यान नहीं देता। इसका परिणाम यह होता है कि दिन-दिन बड़े-बड़े किसानों की संख्या का भयंकर ह्रास होता जा रहा है। उनके स्थान में जो बनते हैं, उनकी संख्या बहुत थोड़ी रहती है। किसानों के बिगड़ जाने के कई कारण हैं। उनमें जो प्रधान-प्रधान हैं, उनका उल्लेख नीचे किया जाता है—

(१) धरती की जोत को ठीक-ठीक न किया जाना।

(२) धरती को उपजाऊ बनाए रखना न जानना।
(३) किसानी के पशुओं को पालने में उपेक्षा।
(४) बीज के चुनाव में परा काष्ठा की उपेक्षा।
(५) खेती के आय-व्यय का लेखा रखना न जानना।
(६) खेती करने में परा काष्ठा की उत्साह-हीनता।

(१) धरती की जोत को ठीक-ठीक न किया जाना। भारत में आज दिन भी साठ-सत्तर वर्ष की अवस्था के किसान विद्यमान हैं। प्रसंग पड़ने पर वे अपने लड़कों और नातियों से यह कहा करते हैं कि हम जब जवान थे, तब इन खेतों में दस-पंद्रहगुनी उपज होती थी; पर अब न-जाने क्यों वह पाँच-छःगुनी से अधिक नहीं होती। इसका कारण स्पष्ट ही है। लगातार खेती करते रहने के कारण उनके खेतों का ऊपरी भाग निस्सत्त्व हो गया है। अगर उसकी गहरी जुताई की जाय, तो उनकी धरती से अब भी पूर्ववत् उपज मिलने का वह एक साधन होगा। गहरी जुताई के लिये वैसे ही हल-बक्खर चाहिए। पर हमारे किसानों के पास अब तक वे ही हल-बक्खर हैं, जिनका आविष्कार हज़ारों वर्ष पहले मरीचि आदि ऋषियों ने किया था। आविष्कार और सुधार मेधावी विद्वानों द्वारा ही किए जाते हैं। हमारे देश के वर्तमान विद्वान् खेती को हेय और तिरस्कार-योग्य मानते हैं। "हालिनो ब्राह्मणा नष्टाः" कहकर वे उन ब्राह्मणों का उपहास करते हैं, जो खेती करनेवाले हैं। जिस खेती से उत्पन्न किए हुए धान्य आदि पदार्थों पर पंडित-मूर्ख, राजा-रंक, जज-सिपाही आदि सभी अवलंबित रहा करते हैं, उसकी इस प्रकार उपेक्षा और हँसी करनेवाले लोग भारत को छोड़ अन्यत्र क्वचित् ही होंगे। यहाँ के राजों-महाराजों की बात कौन कहे, जो लोग दो-चार गाँव के मालगुज़ार होते हैं, वे तक स्वयं अपने खेतों को देखने जाना अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं। उनकी खेती स्वार्थांध गुमाश्तों, मुनीमों तथा निरक्षर हलवाहों के हाथ में रहा करती है। इस अत्यंत उपेक्षा का फल भी उन्हें मिलता जा रहा है—उनके हाथ से गाँव निकलते जा रहे हैं। पर उनका ध्यान उस ओर अणु-मात्र भी नहीं जाता। एक मालगुज़ार, ज़मींदार या किसान कम उपज के कारण ऋण-ग्रस्त होकर जब अपने इलाक़े, गाँवों और खेतों को खोता है, तब दूसरा धनवान् उन्हें बड़े चाव और उत्साह के साथ ख़रीदता और उसी अज्ञान के साथ उनमें खेती करता है, जिसके कारण वह संपत्ति अपने पूर्ववर्ती स्वामी को नष्ट-भ्रष्ट करके उसके पास आई है। कहाँ पारावार है इस मोह-माया का! कहाँ ठिकाना है इस अज्ञता का!

भारत की किसानी का सुधार अब बहुत शीघ्र किया जाना चाहिए। इस ओर भारत के ज्ञानी और धनी लोगों को यथेष्ट ज्ञान और धन का दान देना चाहिए। पूना की किरलोसकर कंपनी-जैसी अनेक कंपनियाँ बना दी जानी चाहिए, और उनके द्वारा भारत की धरती की यथेष्ट गहरी जुताई करनेवाले हल-बक्खर बनवाए जाने चाहिए। तभी भारत की धरती की यथेष्ट जुताई हो सकेगी, और तभी उससे ख़ासी उपज मिल सकेगी।

(२) धरती को उपजाऊ बनाए रखना न जानना। भारत के किसान धरती को उपजाऊ बनाए रखना अणु-मात्र भी नहीं जानते। हमारे इस कथन को पाठकगण अति रंजित न मानें। मध्य-प्रदेश के गाँवों में हमने बहुत भ्रमण किया है। वहाँ हमने देखा है कि किसानों के घरों के पास गोबर के ढेर-के-ढेर पड़े-पड़े वहीं सड़-गल जाते हैं; पर वे लोग उन्हें अपने खेतों में नहीं डालते। उन्हें जो इस बात का तनिक भी ज्ञान होता कि गो-वंश का यह गोबर खेतों की उपज बढ़ाने में बड़ा उपयोगी है, तो वे उसकी ऐसी दुर्दशा कभी न करते। बहुत थोड़े किसान कभी-कभी गोबर को सुखाकर खेतों में डालते हैं। वे उसकी आवश्यकता को जानकर उसे खेतों में नहीं डालते, यों ही डाल देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जहाँ उसकी अत्यंत आवश्यकता है, वहाँ वह डाला नहीं जाता, और जहाँ उसकी आवश्यकता नहीं है, वहाँ डाला जाता है। हमारे किसान भाई यह बात नहीं जानते कि फ़सल काट लेने के बाद धरती के गर्भ में जिस उत्पादिका-शक्ति की कमी हो जाती है, उसकी भिन्न-भिन्न प्रकार की खादों द्वारा पूर्ति करते रहना भी किसानों का काम है।

(३) किसानी के पशुओं को पालने में उपेक्षा। भारत-भर के किसान इस बात को जानते हैं कि भारत में किसानी के काम में लाए जानेवाले पशु बैल ही हैं। वे ही धरती पर हल चलाते हैं। वे ही खेतों में बीज बोते हैं। वे ही फ़सल को खेतों से लादकर खलिहान में लाते हैं। वे ही अपने पाँवों से रौंदकर उसे माँजते हैं। वे ही उसे बेचने के लिये बाज़ारों में पहुँचाते हैं। इतना सब करने

पर भी उन पशुओं को न तो पेट-भर चारा यथासमय दिया जाता है, और न शुद्ध पानी ही। दाना देने की तो बात ही न कहिए। बड़े-बड़े मालगुज़ार और ज़मींदार जो बड़े-बड़े घोड़े पालते हैं, उनको तो हरी घास और चार-चार, छः-छः सेर चने रोज़ खिलाते हैं; पर जो बैल साल-भर परिश्रम करके उनके लिये धरती से हज़ारों रुपयों का माल पैदा करते हैं, उनकी यह उपेक्षा कि न तो उनके रहने के लिये साफ़-सुथरा घर रहता है, और न उनको कभी मुट्ठी-भर दाना दिया जाता है। फ़सल को रौंदते समय वे जो कुछ खा लेते हैं, वही उनको मिलता है। विचार करके देखा जाय, तो वह भी उनको नहीं मिलता; क्योंकि वह सब गोबर के साथ बाहर निकल जाता है। कभी-कभी बैल गेहूँ, चना आदि इस तरह अधिक खा जाते हैं, और उसके कारण पेट फूल जाने पर वे मर जाते हैं। वही दाना यदि उन्हें यथेष्ट मात्रा में दिया जाय, तो वह उनके शरीर को बलिष्ठ बना सकता है। पर वह उपेक्षा के साथ दिया जाता है, इसी कारण लाभदायक नहीं होता।

जिस प्रकार बैलों की उपेक्षा की जाती है, उससे कहीं बढ़कर गउओं की उपेक्षा होती है। जब तक वे दूध देती हैं, तब तक तो उन्हें थोड़ा-सा चारा और दाना घरपर दिया जाता है; पर दूध के बंद होते ही उनका घर का चारा-दाना बंद कर दिया जाता है। जंगल में जो चारा मिलता है, उसी पर उन्हें रहना पड़ता है।

जिस जाति की जो गऊ है, उसे उसी के असगोत्र सजातीय साँड़ से संयुक्त करने से उसके दूध और वंश की रक्षा हो सकती है। इस बात को बड़े-बड़े ज़मींदार और मालगुज़ार तक नहीं जानते। किसानों का जानना तो असंभव ही है। इसका परिणाम यह हुआ और होता जाता है कि उच्च वंश की अधिक दूध देनेवाली गउओं की संख्या घटती जाती है। उनके स्थान में सात-आठ छटाँक दूध देनेवाली गउओं की और उनसे पैदा होनेवाले छोटे-छोटे बैलों की संख्या बढ़ती जाती है। दो-चार साल में जब वे बेकाम हो जाते हैं, तब किसान उनको कसाइयों या उनके दलाल उच्च जाति के हिंदुओं के हाथ बेचकर अपने उदर की ज्वाला को शांत करते हैं।

यह सब क्यों होता है? इसका एक उत्तर यही है, भारतीय किसान इस बात को सर्वथा भूल गए हैं कि गऊ का दूध सबसे बढ़िया भोजन है, और उसका गोबर और मूत्र सबसे बढ़िया खाद। भारत में गो-वध बंद करानेवाले जब तक यह बात भारत के किसानों को फिर से समझा न देंगे, तब तक गो-वंश का उचित पालन नहीं किया जा सकेगा; और जब तक उनका उचित लालन-पालन न किया जायगा, तब तक उनका वध भी बंद न हो सकेगा। गऊ के दूध और गोबर तथा मूत्र के उपयोग की महत्ता को जानने के कारण ही हिंदू उसकी रक्षा के पक्षपाती हैं।

(४) बीज के चुनाव में परा-काष्ठा की उपेक्षा। भारत के बड़े-बड़े मालगुज़ार और किसान तक इस बात को नहीं जानते कि जैसा उत्तम बीज बोया जाता है, वैसी ही उत्तम उपज उससे होती है। उन्हें जैसा सड़ा-गला बीज मिल जाता है, वैसा ही वे बो देते हैं। आज दिन भारत में सुगंधित तथा महीन चावल और लंबे तंतु की रुई का मिलना असंभव हो गया है। ढाके की मलमल के लिये रुई कहाँ से आती थी? वह भारत में ही पैदा की जाती थी। उसका लोप क्यों हो गया? बीज की रक्षा की उपेक्षा के कारण। यही बात सब धान्यों के बारे में है। किसान लोग एकदानी गेहूँ, चना, अलसी, अरहर, धान पैदा करना भूल ही गए हैं। अब यह काम ग़ल्ले के व्यापारियों के हाथ में चला गया है। वे मिश्रित धान्य को मनमाने सस्ते भाव पर ख़रीदकर यंत्रों द्वारा उसे विदेश में बिकने-योग्य बनाते और उससे ख़ासा धन कमाते हैं। किसान लोग थोड़ी-सी उपेक्षा या लापरवाही से किसान-संगठन के अभाव के कारण अपना बहुत-सा लाभ गँवा देते हैं।

(५) खेती के आय-व्यय का लेखा रखना न जानना। भारतवर्ष में मारवाड़ी लोग जमा-ख़र्च का हिसाब रखने में बड़े चतुर हैं। पर वे भी खेती का लेखा अच्छी तरह रखना नहीं जानते। हमने उस दिन एक पंद्रह सौ गाँव के मालगुज़ार मारवाड़ी से जब पूछा कि आप अपनी सीर की खेती के व्यय में प्रति वर्ष ख़र्च होनेवाली बैलों की शक्ति का मूल्य कितना लिखा करते हैं, तब वह चुप होकर हमारे मुख की ओर देखने लगा, और कहने लगा, यह ख़र्च तो हम जोड़ते ही नहीं। जब बड़ों का यह हाल है, तब छोटों की बात क्या। निरक्षर किसान खेती के ख़र्च को जानता ही नहीं। वह तो परिश्रम और

ख़र्च करता जाता है; जो उपज होती है, उसे बेचता जाता है। कम उपज के कारण जब वह ऋण से गूलर के पेड़ की तरह लद जाता है, तब अपनी धरती से हाथ धो बैठता है। यही हाल मालगुज़ारों का होता है। उपज का हिसाब न जानने के कारण वे सदा घाटे में रहते हैं, महाजनों के यहाँ से क़र्ज़ ले-लेकर सरकारी जमा देते जाते हैं। किसानों से पूरी-पूरी भरपाई हो नहीं पाती। जब क़र्ज़ बढ़ जाता है, तब गाँव खोकर वे भी किसान बन जाते हैं।

(६) खेती करने में परा काष्ठा की उत्साह-हीनता। किसानों को यदि किसानी के नए-नए उपाय बताए जाते हैं, तो उन्हें सुनकर काम में लाने में वे बहुत उत्साह-हीनता दिखाते हैं। यह बात उन्नति में बहुत बड़ी बाधा हो रही है।

किसानों और मालगुज़ारों की उक्त प्रकार की दुर्दशा को देखने की शक्ति और ज्ञान न रखनेवाले भारत के चूडांत विद्वान् जब कहते हैं कि भारत के किसान कृषि-विज्ञान में दक्ष हैं, तब यही कहना पड़ता है कि भारत की उन्नति में अभी बहुत देर है।

इस लेख में अमेरिका और भारत की किसानी का वर्णन इस अभिप्राय से किया गया है कि भारत का उत्कर्ष चाहनेवाले सच्चे नेता और नायक दोनों की तुलना करके देखें कि वहाँ के किसान अपनी खेती को कितनी साव-धानी, चतुराई, प्रेम और चाव के साथ करते हैं, और उसके विपरीत यहाँ के किसान उसे कितनी असावधानी, उपेक्षा और अज्ञान के साथ करते हैं।

जिस किसानी की उपज पर भारत की प्रत्येक श्रेणी का आदमी अवलंबित रहता है, उसकी उक्त प्रकार की गिरी हुई दशा देखकर क्या भारत के प्रत्येक सामर्थ्यवान् जन का यह कर्तव्य न होना चाहिए कि वह अपने किसान भाई को सहायता देकर अपने देश की किसानी की, पाश्चात्य देश की किसानी की तरह, उन्नति और उसके द्वारा भारत को धन-धान्यसंपन्न करे? होना तो अवश्य चाहिए। "परोपकाराय सतां विभूतयः।"—इसी सिद्धांत-वाक्य ने अमेरिका की किसानी की उन्नति की है। भारत परोप-कार के लिये चिरकाल से प्रसिद्ध है। आशा है, उसके दानवीर उसकी किसानी की उन्नति में धन लगाने से कभी मुँह न मोड़ेंगे। तथास्तु।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

भारतीय जीवन के कुछ शोचनीय दृश्य

भारत के राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक अधःपात के कारण इस समय हमारे जीवन की जो दुर्दशा हो रही है, वह बड़ी ही भयंकर और शोचनीय है। हम लोगों का जीवन ऐसा अस्वाभाविक और आरोग्यवर्द्धक तथा शांति-प्रद नियमों के ऐसा प्रतिकूल बन रहा है कि यदि इसकी शीघ्र ही सुध न ली गई, तो हमारा, जाति-रूप से, भीषण विध्वंस अवश्यंभावी है। देखते हैं, हम लोगों की जीवनी-शक्ति और उसके साथ ही आयु दिन-पर-दिन घटती जा रही है। दरिद्रता और बेकारी ज़ोर पकड़े रही है, जिससे शारीरिक और नैतिक ह्रास बराबर बढ़ रहा है। लोगों के जीवन एक निर्जीव मशीन के सदृश हो रहे हैं, जिन-में आनंद नाम को भी नहीं। घर और बाहर, सब कहीं बुभुक्षा और अभाव-जनित भीषण अशांति की भयंकर मूर्ति विराजमान देख पड़ती है। जिधर कान दो, उधर मर्मस्पर्शी हाहाकार सुनाई देता है। जीवन-संग्राम इतना तीव्र रूप धारण कर रहा है कि परिवार के बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, सब बारहों महीने, दिन-रात, काम करने पर भी गृहस्थी का ख़र्च नहीं चला पाते। खान-पान और घर-गृहस्थी के ख़र्च तथा चिंताएँ इतनी बढ़ रही हैं कि एक औसत दर्जे का भारतीय मनुष्य जीवन का आनंद लेने के लिये एक दिन भी छुट्टी नहीं पा सकता। आप लाहौर-जैसे किसी बड़े नगर के जीवन पर तनिक गहरी दृष्टि डालिए, आपको हमारी बात की सत्यता में कुछ भी संदेह न रह जायगा।

जहाँ मैं रहता हूँ, उसके सामने एक लोहार की दूकान है। मैं देखता हूँ, वह लोहार रात के ग्यारह बजे काम बंद करता और सबेरे चार बजते ही फिर शुरू कर देता है। उसको छुट्टी मनाते मैंने कभी नहीं देखा। इसी प्रकार हलवाई सबेरे ही भट्टी के सामने बैठता है, और रात के आठ बजे से पहले नहीं उठता। उसकी दूकान रात के बारह एक बजे तक खुली रहती है। इसी प्रकार ठठेरे, सुनार आदि अन्य शिल्पियों का हाल है। शरीर हाड़-मांस

का ही है ; लोहे का तो है नहीं। इतने घोर श्रम में वह थककर चकनाचूर हो जाता है। इसी से इन लोगों को सायं-काल वारुणी की शरण लेनी पड़ती है। इसकी कृपा से उनकी शारीरिक क्लांति और मानसिक चिंता कुछ काल के लिये दूर हो जाती है। अब से कुछ वर्ष पहले मैं देखता था कि भिन्न-भिन्न व्यवसायी विशेष दिनों में—एकादशी, त्रयोदशी, अमावास्या और पूर्णिमा को—अपनी दूकानें बंद रक्खा करते थे। लाहौर के पुस्तक-विक्रेताओं ने भी मास में एक रविवार को छुट्टी रखने का नियम किया था ; परंतु अब उनके यहाँ मास में एक दिन भी छुट्टी नहीं होती।

मैं एक दिन अपने एक डॉक्टर मित्र की दूकान पर बैठा था। वहाँ एक बूढ़ा रोगी आया। उसकी आँख में कोई रोग था। डॉक्टर ने कहा—तुम्हें चार दिन तक काम छोड़कर चिकित्सा करानी पड़ेगी, तब आराम होगा; नहीं तो कष्ट उठाओगे। बुड्ढा बोला—डॉक्टरजी, आप चार दिन कहते हैं, मैं तो चिकित्सा के लिये एक दिन भी नहीं दे सकता। कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे मुझे काम न बंद करना पड़े। डॉक्टर ने कहा—तुम्हें तो बेशक फ़ुरसत नहीं, परंतु रोग तो अवकाश न होने का बहाना सुनकर दूर न हो जायगा।

हमारे दूकानदारों के पास वायु-सेवन और व्यायाम के लिये कोई समय नहीं। वे कहते हैं—क्या ग्राहक और मृत्यु का भी कोई समय नियत है ? न-मालूम वे किस समय आ जायँ। इससे इन लोगों की जठराग्नि बहुत मंद पड़ जाती है। फिर ये नाना प्रकार की स्वादिष्ट मिठाइयाँ देखकर अपनी जीभ को नहीं रोक सकते। परंतु उन्हें पचाने की शक्ति इनमें नहीं। इसलिये ये सब दिन कोई-न-कोई औषध खाते ही रहते हैं। सबेरे जैसे घर के लिये भाजी लेना इनका एक दैनिक कार्य है, वैसे ही बोतल लेकर डॉक्टर या वैद्य की दूकान पर जाना भी इनके आवश्यकीय दैनिक कामों में से एक है। इसके विना इन्हें खाना ही नहीं पच सकता। पश्चिमी देशों के दूकान-दार हमारी तरह नहीं, उनके काम के घंटे नियत हैं। उस समय के बाद वे विश्राम करते हैं, क्लब में खेलने जाते हैं, सैर करते हैं, मछलियाँ पकड़ते हैं, सवारी करते और टेनिस खेलते हैं। शिमले में मैंने देखा है कि छुट्टी के दिन अँगरेज़ लोग—आबाल-वृद्ध और स्त्री-पुरुष—सब जल-पान की सामग्री साथ लेकर वन-विहार के लिये घर से निकल जाते और दिन-भर वन में व्यतीत करके सायं-काल हँसते-खेलते घर लौट आते हैं। हम लोगों को तो छुट्टी मनाना भी नहीं आता। घर आने पर भी दूकान और दफ़्तर के झगड़े-झमेले और चिंताएँ साथ लगी रहती हैं। हमारी जाति का जीवन रोने-धोने और चिंता का ही जीवन बन रहा है।

यह बात केवल दूकानदारों की ही नहीं है, सरकारी नौकर और उच्च पदाधिकारी भी इस रोग से मुक्त नहीं हैं। एक जज साहब का कथन है कि लोग समझते हैं, हमें खूब आनंद है। चार-पाँच सौ रुपए वेतन मिलता और काम केवल तीन-चार घंटे करना पड़ता है। परंतु वे लोग हमारी वास्तविक अवस्था को नहीं जानते। सच जानिए, ये पाँच सौ रुपए हमारे लहू की एक-एक बूँद निचोड़ लेते हैं। हम इतने थक जाते, और हमारा मस्तिष्क इतना मूढ़-सा हो जाता है कि जब घर आकर हम भोजन करने बैठते हैं, तब भी यही मालूम होता है, मानो कोई मुक़द्दमा सुन रहे हैं। हम अपने गार्हस्थ्य और सामाजिक जीवन का कुछ भी आनंद नहीं उठा सकते।

लाहौर के एक धनकुबेर के विषय में, जो सरकार में भी एक बहुत ऊँचे पद पर काम कर चुके हैं, सुना है कि उन्होंने अपने बाल-बच्चों से मिलने के लिये दिन में केवल आधघंटा रक्खा है। नियत समय पर बच्चे आ जाते हैं, फिर समय हो जाने पर, घंटी बजते ही, वे दूसरे दिन के लिये पिता से चटपट अलग हो जाते हैं।

अँगरेज़-समाज में यह रीति है कि दिन-भर के काम के बाद क्या सरकारी कर्मचारी, और क्या दूकानदार, सब क्लब में जाते और आपस में मिलकर हँसते-खेलते हैं। उस समय सरकारी कर्मचारी यह भूल जाता है कि मैं गवर्नर हूँ, और वह दूकानदार। उस समय वे सब एक जाति के भाई-बंद होते हैं। उस समय वे दफ़्तर और दूकान की बातें छोड़कर अन्य आवश्यक और मनोरंजक विषयों पर बातचीत करते हैं। इससे उनमें सदा समता का भाव और प्रेम स्थिर रहता है। उनमें अपने भाइयों को तुच्छ और अपने को उच्च समझने का भाव उत्पन्न नहीं होने पाता। साथ ही मनोविनोद और व्यायाम भी हो जाता है। परंतु भारतीय समाज की अवस्था इसके सर्वथा विपरीत

है। यहाँ डिपुटी साहब अपनी बिरादरी में भी डिपुटी हैं, श्मशान में भी डिपुटी हैं, घर में भी डिपुटी हैं, भार्या के सामने भी डिपुटी हैं, और पिता के सामने भी डिपुटी। वह ब्याह-शादी में शामिल होते हैं, तो वहाँ भी उन्हें यही मालूम होता है कि हम अदालत की कुर्सी पर बैठे हैं, और बिरादरीवाले जितने जन सामने उपस्थित हैं, वे हैं हमारे चपरासी और अहलकार। वह उन पर उसी प्रकार हुक्म चलाते और अपना रोब दिखाते हैं। इस संबंध में मेरे एक मित्र का अपना अनुभव सुनने योग्य है—

लाला दीवानचंदजी को एक ब्याह में जाने का मौक़ा हुआ। उसमें एक डिपुटी साहब भी शामिल हुए थे। सारी बिरादरी उनके आदर-सत्कार में लगी हुई थी। डिपुटी महाशय सब पर हुक्म चला रहे थे। ऐसा संयोग हुआ कि कुछ देर के बाद बिरादरी के सभी लोग उठकर चले गए। वहाँ केवल डिपुटी महाशय और लाला दीवानचंदजी ही रह गए। दीवानचंदजी डिपुटी महाशय से कुछ दूर पर बैठे थे। वह खद्दर के साधारण कपड़ों में थे। दोनों परिचित भी न थे। उन दोनों के बीच, एक समान अंतर पर, एक लोटा पड़ा था। डिपुटी महाशय ने अपने स्वभावानुसार दीवानचंदजी को आज्ञा की कि मुझे लोटा उठा देना। दीवानचंदजी उनका अनुचित व्यवहार तो पहले ही देख चुके थे, उन्हें उनकी यह चेष्टा बहुत बुरी मालूम हुई। उन्होंने डिपुटी साहब को जतलाने के लिये घरवालों के नौकर को आवाज़ दी—अरे बुधे! नीचे आकर डिपुटी साहब को लोटा देना। अस्तु, नौकर ने आकर डिपुटी साहब को लोटा दिया। पर डिपुटी साहब मन-ही-मन बड़े लज्जित हुए। रात्रि को उन्होंने इधर-उधर पूछकर दीवानचंदजी का परिचय प्राप्त किया, और उनके पास आकर अपनी सफ़ाई पेश करने लगे। लाला दीवानचंदजी ने उनसे कहा—इसमें आपका दोष नहीं, जिस संगति में आप रहते हैं, उसने आपको ऐसा बना दिया है। मैंने जो कुछ किया है, वह किसी अभिमान के भाव से नहीं। यदि कोई वयोवृद्ध यहाँ बैठा होता, और वह आपको लोटा उठाकर देने लगता, तो मैं उसको कभी ऐसा न करने देता, और स्वयं उठकर दे देता। परंतु जब लोटा आपसे और मुझसे समान अंतर पर था, तो क्या आप स्वयं नहीं उठा सकते थे? उनकी इन बातों से डिपुटी महाशय होश में आ गए, और रुष्ट होने के बदले उनके भक्त बन गए।

सर्वसाधारण और देसी सरकारी कर्मचारियों के बीच इस प्रकार की एक बड़ी खाईं पैदा हो जाने से सरकारी कर्मचारियों की भी बड़ी हानि है। जब ये लोग पेंशन लेकर घर आते हैं, तब इनकी प्रभुता और हुकूमत सहनेवाला वायुमंडल इनको नहीं मिलता। वे सुगमता से अपने को अपनी परिवर्तित परिस्थिति के अनुकूल नहीं बना सकते। अतएव निकम्मे बनकर शीघ्र ही पंचत्व को प्राप्त हो जाते हैं। इसके विपरीत हम अँगरेज़ों को देखते हैं कि बड़े-बड़े अफ़सर पेंशन लेने के बाद व्यापार चलाते और दीर्घायु भोगते हैं।

पश्चिमी सभ्यता हमारे नवयुवक और नवयुवतियों को बेतरह चौंधिया रही है। वे अपनी पुरानी संस्थाओं के गुण-दोषों का विचार किए बिना उन्हें छोड़कर अंधाधुंध पाश्चात्य रीतियाँ ग्रहण करना चाहते हैं। इससे प्राचीन शांतिदायिनी पवित्रता का नाश हो रहा है, और उसका स्थान भयंकरी उच्छृंखलता ले रही है। हम मानते हैं कि हमारी संस्थाओं में बहुत-से दोष आ गए हैं, और उनमें सुधार करने की आवश्यकता है। परंतु वह सुधार बहिष्कार करने से नहीं हो सकता। आगे हम दो सत्य घटनाएँ देते हैं, जिनसे पता लगेगा कि पश्चिमी सभ्यता का हम पर कैसा अहितकर प्रभाव पड़ रहा है।

कुछ वर्ष की बात है, एक देहाती नवयुवक मैट्रीक्युलेशन पास करके लाहौर के इंजीनियरिंग स्कूल की ओवरसियर-क्लास में भरती हुआ। उसने पहले कभी लाहौर नहीं देखा था। यहाँ की चहल-पहल देखकर चौंधिया गया। जब वह ठंडी सड़क पर अँगरेज़ पति-पत्नियों को एक दूसरे का हाथ पकड़े टहलते देखता, तो उसके मन में लहर उठती कि मैं भी अपनी पत्नी को लेकर इसी प्रकार घूमा करूँगा। परंतु दैवयोग से उसका विवाह एक ऐसी ग्रामीण कन्या से हुआ था, जो एक अक्षर भी पढ़ना नहीं जानती थी, और जिसे नगर-सुंदरियों के बनाव-चुनाव और हाव-भाव का कुछ भी ज्ञान न था। छुट्टियों में जब वह घर गया, तब उसने अपने माता-पिता से स्पष्ट कह दिया कि मैं इस स्त्री के साथ अपना जीवन नहीं व्यतीत कर सकता। बेचारे माता-पिता को बड़ी चिंता हुई। वे लगे लोगों से परामर्श लेने। एक

ब्राह्मसमाजी वृद्ध सज्जन ने उन्हें परामर्श दिया कि लड़की को लाकर अमृतसर की किसी कन्या-पाठशाला में भरती कर दो। इससे एक तो वह थोड़ा बहुत लिख-पढ़ जायगी, दूसरे नागरिक स्त्रियों के बनाव-चुनाव और बातचीत का ढंग भी उसे आ जायगा। उन्होंने ऐसा ही किया। लड़की जवान पहले ही थी। वे दो-तीन वर्ष से अधिक समय तक उसे पाठशाला में न रख सके। इस बीच में उसने तीसरी कक्षा पास कर ली। पर इतने से क्या बन सकता था? कहाँ फ़ैशन की पुतली गौरांग रमणियों का स्वतंत्रता-पूर्वक विचरण! और कहाँ यह तीसरी कक्षा में उत्तीर्ण एक ग्रामीण लड़की! युवक के माता-पिता ने अपने पुत्र को लाहौर में कहला भेजा कि अब तुम्हारी स्त्री जैसी तुम चाहते थे, वैसी ही बन गई है। आकर देख लो। अब तुम्हें छुट्टियों में घर से बाहर रहने के लिये कोई कारण नहीं हो सकता। अस्तु, वह युवक घर आया। रात्रि को उसकी माता ने दोनों को एकांत में भेज दिया। बाबू साहब जब स्त्री को बुलाने लगे, तो वह अपने स्त्रीसुलभ संकोच के कारण कुछ चुप-सी रही। इस पर आप रुष्ट होकर कहने लगे—देखो जी, इसका मिज़ाज ही ठिकाने नहीं, हम बुलाते हैं, यह अभिमान से बोलती ही नहीं। हम ऐसी स्त्री नहीं चाहते। बाँह में बाँह देकर वायुसेवन करने के उनके हवाई क़िले सब एकदम ढह गए, और वह हताश होकर घर से भाग गए। सुना है, उन्होंने शिमले में जाकर नौकरी कर ली, और फिर घर वापस नहीं आए।

ऐसी ही एक और घटना हाल में घटी है। एक युवक की कोई चार वर्ष पहले लुधियाने में सगाई हुई थी। युवक गत वर्ष इंजीनियर हो गए। अब लड़कीवालों ने विवाह करना चाहा। तिथि निश्चित हो गई। परंतु जब इंजीनियर महाशय छुट्टी लेकर घर पहुँचे, तो आपने आते ही कहा कि मैं लड़की को देखे विना विवाह नहीं करूँगा। घर-वालों ने समझाया कि सगाई हुए इतने वर्ष हो गए हैं, अब ऐसी शर्त करना ठीक नहीं। देखना था, तो सगाई के समय देख लेते। इस तरह सगाई छोड़ने से लड़कीवालों का अपमान है। दूसरे हम भी लड़कियोंवाले हैं। कल को हमारे साथ भी ऐसा ही होगा, तो हम क्या करेंगे? पर इंजीनियर साहब ने एक न मानी। तब लड़कीवालों ने कहा कि अच्छा अपनी बहन या किसी दूसरी संबंधिनी स्त्री को भेजकर लड़की को देख लो। परंतु वह इस पर भी सहमत न हुए। होते भी कैसे, इंजीनियरी के मद में मतवाले हो रहे थे। वह यही कहते कि मैं अपनी आँखों से देखे विना कदापि विवाह नहीं कर सकता। तब लड़की-वालों ने कहला भेजा कि बहुत अच्छा, हमें स्वीकार है, आप बिरादरी के दस आदमी साथ लेकर आइए, ताकि सबके सामने बात का निश्चय हो जाय। इंजीनियर महाशय के भाइयों ने साथ जाने से इनकार कर दिया, इसलिये वह बिरादरी के लोगों और मित्रों को ही साथ लेकर गए। सुना है, लड़की सब-असिस्टेंट सर्जन-क्लास पास थी। उसने भी कहला भेजा कि यदि आप देखेंगे, तो मैं भी देखूँगी; मुझे भी हाँ या ना करने का अधिकार रहेगा। इंजीनियर महाशय तो अपने को कन्हैया समझते थे। उन्होंने झट कह दिया कि हाँ, ज़रूर अधिकार होगा। जब इंजीनियर महाशय का मित्रमंडल लुधियाने पहुँचा, तो कन्या के भाई ने अपने आँगन में कुर्सियों की अर्द्धचंद्राकार पंक्ति बिछाकर उन पर उनको बिठा दिया। एक ओर अपनी बिरादरी के भी कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति बिठा दिए। मध्य में दो कुर्सियाँ एक दूसरे के आमने-सामने बिछा दीं। उनमें से एक इंजीनियर महाशय के लिये थी, और दूसरी कन्या के लिये। जब सब लोग बैठ गए, तो कन्या के भाई ने इंजीनियर महाशय से पूछा—अच्छा, अब मैं अपनी बहन को लाऊँ?

इंजीनियर महाशय ने उत्तर दिया—हाँ ज़रूर लाइए। कन्या का भाई गया, और बहन को बाँह से थामे हुए ले आया। लड़की अत्यंत रूपवती थी। वह कुर्सी पर बैठने के बदले कुर्सी की पीठ को पकड़कर इंजीनियर महाशय के सामने खड़ी हो गई। तब कुछ मिनट के बाद उसके भाई ने इंजीनियर महाशय से पूछा—मिस्टर सों, आपकी अब क्या सम्मति है?

इंजीनियर महाशय उस रूप-राशि को देखकर मुग्ध हो चुके थे। बोले—हाँ, मैं इन्हें स्वीकार करता हूँ। इस पर लड़की ने तत्काल कहा—परंतु मैं आपको अस्वीकार करती हूँ। इतना कहकर वह भीतर चली गई। इंजीनियर महाशय पर वज्रपात हो गया। वह अपना-सा मुँह लेकर घर लौट आए। विवाह की तिथि बहुत निकट थी। जब विवाह न हुआ, तो लोग पूछने लगे। इंजीनियर महाशय मारे लज्जा के कुछ उत्तर न दे सकते थे।

इस घटना के वर्णन करने का अभिप्राय यह नहीं कि हम वर और वधू के एक दूसरे को देखने को बुरा समझते हैं, परंतु जिस ढंग से नवयुवक आजकल ये काम करते हैं, वह बहुत ही निंदनीय और अपमानजनक है। इसके साथ ही हम मुसलमानों के-से परदे को भी बहुत ही हानिकारक और प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध समझते हैं। वर और वधू का एक दूसरे को देखकर पसंद करने के बाद ही विवाह करना उचित और स्वाभाविक है। "अंधी-कानी, गंजी-बावली क़बूल।" का सिद्धांत मनुष्य-प्रकृति के विरुद्ध है। मानवी प्रकृति ऐसे अस्वाभाविक और हानिकारक बंधनों को स्वीकार करने को तैयार नहीं। यही कारण है कि वह इन कृत्रिम दीवारों और परदों को फाड़कर किसी-न-किसी प्रकार बाहर निकलने का यत्न करती है। अपने इस कथन की पुष्टि में हम लाहौर के "ज़मींदार"-नामक मुसलमान-पत्र की एक टिप्पणी उद्धृत करते हैं। वह लिखता है—

"हिंदुस्तानी मुसलमानों की सुशिक्षिता कन्याओं ने आजकल एक नवीन रीति ग्रहण कर रक्खी है। वे स्त्रियों की सामयिक पत्रिकाओं और संवाद-पत्रों में नैतिक या गार्हस्थ्य-संबंधी लेख लिखने के स्थान में साहित्यिक पत्रिकाओं में टैगोर की अनुराग-शैली का अनुकरण करती हैं। अत्यंत चित्ताकर्षक और मनोमोहक शब्दों में प्रेम के भावों का प्रकाश करती हैं। और लेख के अंत में अपना नाम नहीं लिखतीं; बल्कि "मिस अमुक" लिखकर अपनी रुचि की रुचिरता, रूप की मनोहरता और कौमार्य की घोषणा और प्रकाश कर देती हैं। परिणाम यह होता है कि कई साहित्यिक रुचि रखनेवाले कुँवारे नवयुवक मिस साहब के माता-पिता तक पहुँच प्राप्त करके उन्हें उचित और योग्य वर का चुनाव करने में सहायता देते हैं।

रूप और लावण्य की घोषणा करने में भारत की रहन-सहन ने जो बाधाएँ उपस्थित कर रक्खी हैं, उन पर विजय पाने की अच्छी रीति आविष्कृत हुई है। पिछले दिनों एक साहित्यिक पत्रिका में एक मिस साहिबा ने अपनी एक यात्रा का वृत्तांत लिखते हुए कहा कि मैं एक जरा-जीर्ण वृद्धा से मिली। उसके बाल सफ़ेद थे, और उसका रूप और कांति काल-धूलि की कणिकाओं की भेंट हो चुकी थी। वार्तालाप में उस बुढ़िया ने 'मिस साहिबा' से कहा कि बेटी! कभी मैं भी तुम्हारी तरह रक्त और श्वेत थी, मेरे केश भी तुम्हारे अलकों के सदृश घने, काले और कमर तक पहुँचते थे।

देख लीजिए, किस ढंग से लेखिका ने अपने रूप-लावण्य, अपने यौवन, और अपने केश-पाश की लंबाई का विज्ञापन दिया है। इक़बाल ने ऐसी ही लड़कियों के लिये कहा है कि—

"शौक़े-तहरीर मज़ामीं में घुली जाती है;
बैठकर परदे में बे-परदा हुई जाती है।"

क्या ही अच्छा हो, यदि भारतीय मुसलमान भी तुर्कों की भाँति अपने महिला-समाज को परदे की स्वास्थ्य-नाशक क़ैद से मुक्त करके स्वतंत्रता के खुले प्रकाश में आने की आज्ञा दे दें। हमारा पूर्ण विश्वास है कि जिस दुराचार की आशंका से वे स्त्रियों को परदे में बंद रखते हैं, स्वतंत्रता के पापनाशक प्रकाश से वह अपने आप नष्ट हो जायगा; क्योंकि पाप सदा अंधकार में ही हुआ करते हैं। इस प्रकार के बंधन किसी को पाप से दूर नहीं रख सकते। मन की पवित्रता ही स्त्री-पुरुषों को पाप-पंक में गिरने से बचा सकती है।"

इस समय हिंदू-समाज में एक और बड़ी विषमता उत्पन्न हो गई है। लोगों ने लड़कियों की विवाह-योग्य आयु को तो ऊँचा कर दिया है, परंतु लड़के अभी तक छोटी आयु ही में ब्याह दिए जाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि लड़कियों को योग्य वर नहीं मिलते। वे बीस-बीस, बाईस-बाईस वर्ष तक कुमारी बैठी रहती हैं। जो वर मिलते हैं, वे या तो रँडुए होते हैं, या फिर दहेज के रूप में बहुत-सा धन माँगते हैं। पिछले दिनों ट्रीब्यून में एक नोटिस निकला था, जिसमें एक युवक ने साफ़ लिखा था कि मैं एक ऐसी युवती से विवाह करना चाहता हूँ, जिसका पिता मुझे विलायत जाने के लिये बीस हज़ार रुपए देने का वचन दे। ऐसे सौदे बंगाल में सुना करते थे; परंतु वह रोग अब पंजाब आदि दूसरे प्रांतों में भी फैलता जा रहा है। एक बात और भी है। बड़े-बड़े सिद्धांती और धार्मिक लोग भी जब अपनी कन्या के लिये वर ढूँढ़ने बैठते हैं, तो सदाचार और विद्या की कुछ भी परवा न करके वर का धन ही देखते हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि बड़े-बड़े घरानों की विदुषी कन्याएँ उनसे कम विद्वान्, परंतु धनाढ्य रँडुओं

को दी जाती हैं ; क्योंकि कोई भी कुँवारा युवक रँडुए के समान धनवान् नहीं हो सकता । यह धन-लोलुपता एक दिन हिंदू-समाज को अपना रंग अवश्य दिखलावेगी ।

जब हम अपने प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालते हैं, तो मालूम होता है कि पूर्वकाल में मनुष्य आजकल के सदृश दिन-रात काम में न लगे रहते थे । श्रीकृष्ण का जीवन कैसा आनंदमय था । सब लोग समय-समय पर आनंदोत्सव मनाया करते थे, खाते, पीते, नाचते, कूदते, गाते और बजाते थे । आठ वर्ष के बालक कृष्ण गोपियों के साथ व्यभिचार नहीं कर सकते थे । यवन-सभ्यता के कुसंस्कार से ही आज हम उस जीवन की पवित्रता का अनुमान नहीं कर सकते । वे लोग अपना जीवन हमारी तरह रोते-धोते नहीं काटते थे । यही कारण है कि उस समय राजयक्ष्मा-जैसे भयंकर रोग इस देश में पैर न रख सकते थे । इस समय आवश्यकता है इस बात की कि हमारे नेता लोग जातीय जीवन को स्वाभाविक बनाने की ओर ध्यान दें ; उसमें से उन दोषों को दूर करने का यत्न करें, जो उसकी जीवनी-शक्ति को चूस रहे हैं । इसमें असावधानता करने से फिर पश्चात्ताप करना पड़ेगा ।

संतराम

केटा-बलोचिस्तान

भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम में बलोचिस्तान के नाम से एक पहाड़ी प्रदेश है । यही बलोचिस्तान भारतवर्ष की पश्चिमोत्तर सीमा को बताता है । केटा इसी सीमा-प्रांत की राजधानी है । उसका संक्षिप्त वर्णन आज पाठकों की भेंट किया जाता है । यद्यपि इस लेख का मुख्य उद्देश्य केटे का वर्णन करना ही है, तथापि पाठकों के विनोदार्थ बलोचिस्तान पर कुछ प्रकाश डालना उचित जान पड़ता है ।

प्रारंभिक निवासी

ईसा से सातवीं शताब्दी में दक्षिणी पशिया से आई हुई बलोच-जाति के नाम से इस प्रांत का नाम बलोचिस्तान पड़ा है। यद्यपि ये बलोची यहाँ के प्रारंभिक निवासी माने जाते हैं, तथापि आजकल इनकी संख्या अफ़ग़ान और ब्रूहियों से बहुत कम है । अनुसंधान से पता लगा है कि ये बलोची, जो कई छोटी-छोटी जातियों में विभक्त हैं, वास्तव में ईरान के रहनेवाले थे । कुछ विद्वानों की सम्मति है कि ये लोग ऐलिप्पो के रहनेवाले हैं । मरी, बुकती, बुलेदी, मगस्सी और रिंड इनकी प्रसिद्ध जातियाँ हैं । इनमें से मगस्सी और रिंड कुछ काल के उपरांत ब्रूहियों में सम्मिलित हो गए ।

सीमा तथा पर्वत

बलोचिस्तान उत्तर की ओर ख़ुरासान-पर्वतमाला से (जिसकी ऊँचाई अधिक-से-अधिक १२,००० फ़ीट है), पूर्व में सुलेमान से पश्चिम में ख़ारान और चिग़ाई से तथा दक्षिण की ओर किर्थीर-पर्वतमाला से घिरा हुआ है । इनके अतिरिक्त मैदान का भाग कच्छी और लासबेला के नाम से प्रसिद्ध है । यहाँ के पर्वत, जो सर्वथा शुष्क, निर्जन, भद्दे तथा वीरान हैं, हिमालय-पर्वतमाला से अत्यधिक भिन्नता रखते हैं । ये पर्वत भारतवर्ष की उपजाऊ भूमि के लिये, जिसे शस्य-श्यामला कहा गया है, सर्वथा अयोग्य हैं । जिसने एक बार भी मरी, डलहौज़ी, काश्मीर, मंसूरी, नैनीताल, शिमले तथा अलमोड़े में से किसी एक स्थान की भी यात्रा की है, वह इन पर्वतों में भ्रमण करना कभी नहीं पसंद करेगा । दूर-दूर तक सूखे और ऊँचे टीलों के अतिरिक्त कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता । इन पर्वतों पर आँखें हरियाली से अपने को ठंडा करने के लिये तरसती हैं । कहीं-कहीं उपत्यका और तराइयों में वृक्ष देखने में आ जाते हैं । न कहीं पर सुंदर पक्षियों की मधुर बोलियाँ कानों को आनंद देती हैं, और न कहीं गंगा का-सा गंभीर नाद-युक्त प्रवाह हृदय को उल्लास ही देता है । यदि कहीं पर कुछ है भी, तो वे छोटे-छोटे पहाड़ी नाले हैं, जिनसे खेतियों को भी पानी दिया जाता है ।

यह प्रांत मानसून वायु के क्षेत्र से सर्वथा बाहर रह जाता है । यही कारण है कि यहाँ वर्षा बहुत कम और अनियमित होती है । सबसे अधिक वर्षा शाहरिग् में होती है । परंतु यहाँ भी आज तक $११\frac{३}{४}$ इंच से अधिक वर्षा कभी नहीं हुई ।

वर्णन नहीं है। इसका कारण चाहे कुछ भी हो, पर यह बात निश्चित है कि जो अवस्था आज इस प्रांत की है, वह कुछ वर्ष पहले न थी। वह स्थान, जहाँ पर आजकल क्वेटा बसा हुआ है, कुछ वर्ष पहले सर्वथा निर्जन तथा वीरान था। इन्हीं कुछ वर्षों में इस प्रदेश ने इतनी उन्नति की है कि एक मनुष्य यह बात कभी ध्यान में ही नहीं ला सकता कि यह स्थान कुछ वर्ष पहले बिलकुल निर्जन होगा। जिस-जिस प्रदेश ने इस अँगरेज़-जाति की चरण-वंदना या चरण-स्पर्श किया है, उसके चिरकाल से सोए हुए भाग्य ने एक बार फिर से जागने का सौभाग्य

हन्ना-घाटी और झील

प्राप्त किया है। इससे मेरा यह तात्पर्य नहीं कि हम हिंदोस्तानी इन बातों के करने में असमर्थ हैं। हमारे पास भी यदि साधन हों, तो हम फिर से एक बार इस भारतवर्ष को प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता और उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँचा सकते हैं।

क्वेटा की स्थिति

क्वेटा पंजाब की राजधानी लाहौर से, रेलवे की माप के अनुसार, ७५८ मील की दूरी पर पश्चिम में स्थित है। चमन तक, जो क्वेटे से उत्तर की ओर ८८ मील की दूरी पर है, नॉर्थ वेस्टर्न रेलवे ही गई है। चमन एन्० डब्ल्यू० आर० का अंतिम स्टेशन है, और यहीं पर ब्रिटिश-राज्य की सीमा समाप्त होती है। यहाँ से आगे उत्तर-पश्चिम की ओर अफ़ग़ानिस्तान की सीमा का आरंभ होता है। दोनों राज्यों की सीमा की संधि पर एक क़िला है। यहाँ से कंधार, जिसका प्राचीन नाम गांधार था, तीन दिन का रास्ता है। यदि आप रेलवे का नक़्शा उठाकर देखें, तो आपको पता लगेगा कि जो लाइन लाहौर से दक्षिण-पश्चिम की ओर गई है, वह यदि क्वेटे की तरफ़ सीधी ले जाई जाय, तो क्वेटे की दूरी वर्तमान दूरी से आधी रह जायगी। रेलवे-लाइन पहले तो बहुत दूर तक धुर दक्षिण-पश्चिम की ओर गई है, और फिर यहाँ से एकदम उसका रुख़ उत्तर-पश्चिम की तरफ़ हो गया है। रेलवे के आबेगुम-स्टेशन से पर्वतमाला शुरू होती है। रेलवे-लाइन लगातार १६० मील तक इस पर्वत-श्रेणी को काटती हुई चली गई है। इसी रास्ते का नाम दर्रा बोलन है।

क्वेटे की सी० आई० डी०

क्वेटा-स्टेशन पर पहुँचते ही सबसे पहली और मार्के की बात जो प्रत्येक नए यात्री को देखने में आती है, वह है पुलीस के सी० आई० डी०-विभाग (ख़ुफ़िया) की कार्यदक्षता। कोई यात्री किसी तरह इनके चंगुल से बचकर नहीं निकल जा सकता। क्वेटा-स्टेशन पर तो इनकी धूम है ही, पर उससे पहले के सिबी-स्टेशन पर भी, जहाँ से बलोचिस्तान की सीमा का आरंभ है, यही बात देखने में आती है। ज्यों ही आप सिबी-स्टेशन पर पहुँचेंगे कि आपको इस

विभाग के कई कर्मचारी फिरते हुए दिखाई देंगे। इनका कार्य है प्रत्येक यात्री का नाम, पूरा पता, पिता का नाम और आजीविका इत्यादि अपनी नोटबुक पर लिख लेना। विश्वविद्यालय के छात्रों, वकीलों और विशेष कर कांग्रेस के आदमियों से तो इनकी पूरी शत्रुता होती है। यदि किसी ने सिर पर गांधी-टोपी पहन रक्खी हो, तो उसे शिकारपुर से ही वापस कर दिया जाता है। जिस यात्री पर पुलीस को थोड़ा-सा भी संदेह हो जाय, उस पर कड़ी नज़र रक्खी जाती है, और जब तक वह यात्री केटे में रहता है, उसकी निगरानी में रक्खा जाता है। केटे से बलोचिस्तान की सीमा के बाहर तक ट्रेनों में सी० आई० डी० के कर्मचारी रहते हैं, जिनका काम केवल यही देखना होता है कि अमुक यात्री बलोचिस्तान की सीमा से बाहर हो गया है या नहीं।

छावनी

केटा जन-संख्या तथा क्षेत्रफल के विचार से भारतवर्ष के बड़े शहरों में नहीं गिना जा सकता। पर सीमा-प्रांत की राजधानी और बड़ी विशाल तथा प्रबल छावनी होने के कारण इसका बड़ा महत्त्व है। यदि यहाँ की छावनी को सारे भारतवर्ष की छावनियों में से सबसे बड़ा दर्जा दिया जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी। यहाँ की छावनी बड़े विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई है। गोरे, सिख, मुसलमान, पठान, और गोरखे सेनाओं म भर्ती हैं। यहाँ की छावनी में बेतार के तार का होना ही इसकी महत्ता का निदर्शन है।

निवासी

ख़ास केटा-शहर में यहाँ के असली निवासियों की संख्या बहुत कम है। यहाँ के निवासी अन्य प्रांतों से आकर बसे हुए हैं। भारतवर्ष के प्रत्येक विभाग के मनुष्य यहाँ दृष्टिगोचर होते हैं। अधिकतर पंजाब, सिंध तथा देराग़ाज़ीख़ान के लोग यहाँ आकर बसे हैं। केटे की जन-संख्या कुछ हज़ार ही होगी। यहाँ पर अधिक संख्या उन बाबुओं की है, जो सरकारी दफ़्तरों में नौकर हैं। यहाँ पर दफ़्तरों की तो भरमार ही है। प्रत्येक मत के अनुयायी यहाँ पर देख पड़ते हैं। उनमें हिंदुओं और मुसलमानों की ही संख्या सबसे अधिक है।

बलूची और उनका रहन-सहन

न्याय-प्रबंध

सीमा-प्रांत होने के कारण यहाँ के न्याय-प्रबंध में पंजाब तथा और प्रांतों के न्याय-प्रबंध से कुछ विशेषताएँ हैं। कुछ नियम तो ऐसे हैं, जो केवल यहीं पर लागू हो सकते हैं। न्याय-प्रबंध के विषय में सबसे आश्चर्यजनक बात जो देखने में आती है, वह है वकीलों का सर्वथा अभाव। जुडीशल-कमिश्नर की आज्ञा बिना कोई वकील किसी कचहरी में

मालूम होता है कि शायद यह कोई क़िला होगा। इस बाज़ार में कुल मिलाकर ६० के लगभग दूकानें हैं, जहाँ फल और साग के सिवा कोई और चीज़ नहीं बिकती।

कपड़ा-मार्किट, जिसका असली नाम मैकमहन-मार्किट है, क्वेटे की दर्शनीय चीज़ों में से एक है। यहाँ बड़े-बड़े व्यापारियों की दूकानें हैं, जिनमें हर तरह का कपड़ा मिलता है।

इनके अतिरिक्त ए० जी० जी० की कोठी (Residency), सेंट मेरी चर्च, पटेल का कारख़ाना और एडवर्डसराय ऐसे स्थान हैं, जो यात्री का ध्यान अपनी ओर खींचते हैं। बाज़ारों में सूरजगंज, मिनियारी, पसारी, शिकारपुरी और कंधारी-बाज़ार प्रसिद्ध हैं। लोगों के निवासस्थानों में बाबू-मुहल्ला, ग़रीबाबाद और इस्लामाबाद प्रसिद्ध हैं। क्वेटा दिन-दिन उन्नति ही करता चला जाता है। पिछले बीस-तीस वर्षों में यह शहर बहुत विस्तृत हुआ है।

क्वेटे के सिवा बलोचिस्तान में और कई ऐसे स्थान हैं, जिनका वर्णन फिर कभी यदि अवकाश मिला, तो पाठकों को सुनाया जायगा। क्वेटे का वर्णन यहीं पर समाप्त किया जाता है।

शंकरदेव

समस्या-पूर्ति*

समस्या—"गी"

धारण त्रिलोकी करे धर्म एक धारणा ही,
लोक-लोक धर्म ऋषि-योजना बतावेगी;
सोई धर्म राजा, प्रजा, जीव सचराचर ने,
त्याग दिया, हाय घोर दुर्दशा दिखावेगी।
धर्म, फ़र्ज़, ड्यूटी मान सब जन पाल लेते,
होते डाँवाडोल, कहो, चाल किसे भावेगी;
सोचते क्या, धर्म धरो, कर्मयोगी बन जाओ,
'श्रीपति' बनावें, तभी बात बन जावेगी।

समस्या—
"कोई रूप में रूप नहीं अपनो तुम रूप अनूप बखानत हौ।"

(दुर्मिल)

घनश्याम लखौ निज सूरति को, घनश्याम को आपु लजावत हौ;
लकुटी कर धूसर बेस चलौ, बनि ग्वाल इतै इतरावत हौ।
बस कूबरी दूबरी-चित्त चढ़े, जग जानै तऊ मन मानत हौ;
कोई रूप में रूप नहीं अपनो, तुम रूप अनूप बखानत हौ।

समस्या—"बल है"

अत्याचारी पापियों से कौन महापाप बचे,
ज्वाला जगी इंद्रियों की जीता जल-थल है;
चोर, व्यभिचारी झूठे बेईमान हाट लगे,
मद्यपान गोवध मचाई हलचल है।
घोर महामारी अति-वृष्टि ईति-भीति कर,
क्रुद्ध महा रुद्र किया प्रलय को जल है;
भौतिक विकार के प्रचंड वेग दंड देवें,
आँखें न उघारें हाय कोपो दैवी बल है।

समस्या—"हिंद के निवासी हिंदू हिंदी बोलते रहें।"

आहा हिंदी-लेखकों के गद्य-पद्य शोरेदार,
शौकदार, शानदार शब्द तोलते रहें।
राम पाक अर्थ बद लगद शरीर देख,
यावनी समझ हिंदी-कोष छोलते रहें।
कसिबा करीम भाई सब ही विशुद्ध किए,
शब्द-शुद्धि करने में धोती खोलते रहें।
'श्रीपति' प्रमाण शब्द-शास्त्र से विशुद्ध सिद्ध,
हिंद के निवासी हिंदू हिंदी बोलते रहें।

समस्या—"करकी करको करका करके।"

(दुर्मिल वृत्त)

कर भेरत-भेरत भारी परे, दुख भारी भरौ अब लौं डरके;
खल भूति अचानक लागे घुरो, लखि बालन मार धरे धरके।
नँद-नंदन बेगु बचाओ अबै, मनमंडल पै परलौ सरके;
परजा उर दानव कंस रजा, कर कीकर को करका करके।

समस्या—"सारो जग जीति लियो हीजड़े के जाए ने।"

पूरन परम ब्रह्म नामी को पुरुष-चिह्न,
चीन्ह नाहिं पायो जरमति के बिकाए ने;
नाम-लिंगु जान्यो पहिचान्यो निज जाति बेसु,
कुमति कुबुद्धि क्लीब कोसपाठी पाए ने।
'श्रीपति' को न्यारो-न्यारो लिंग वाच्य-वाचक को,
भेदाभेद लखौ नाहिं ब्रह्म सौं ठगाए ने;
हीजड़ा दिवानो नाचो हीजड़ी समस्या पाय,
सारो जग जीति लियो हीजड़े के जाए ने।

हरिशंकर शर्मा (श्रीपति)

---

* पंचदश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन (देहरादून) के कवि-सम्मेलन की कुछ समस्या-पूर्तियाँ।

पादरी और पंडित

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महत्तो]

योरप के पादरी और भारत के पंडित, दोनों हैरान हैं। पादरी साहब की हैरानी का कारण योरप की महिलाओं का पुरुषों का-सा पहनावा पहनना है, और भारतीय पंडितों की हैरानी का कारण भारतीय नवयुवकों का स्त्रियों का श्रृंगार करना।
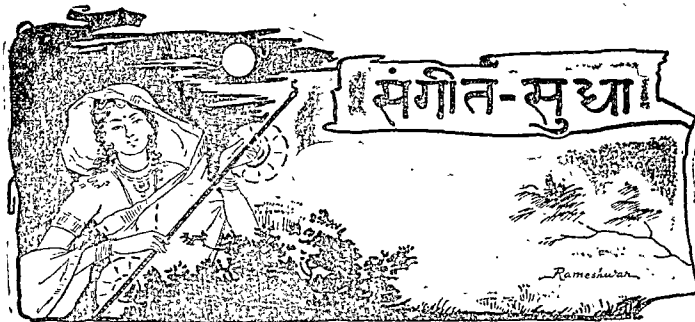
देशमिश्र-तिताला

स्वरकार—"र"] शब्दकार—"ग"]

मोरी कर पकरत गई बँगुरी ;
ऐसो ढीठ वाने सुनी न एकहु ,
कहत रही मानो-मानो मोरी नेकहु ,
पै न सुनी मोरी गही अँगुरी । मोरी कर० ।

स्थायी

मो	री	क	र	पक	रत	ग	ई	वँ	गु	र	०	०	ई
सा	रे	म	प	नी	नी	सा	नी	ध	प	म	ग	रे	रे
ऐ	सो	ढी	ठ	वा	ने	सु	नी	न	ए	क	हु		
ध	प	प	प	म	प	प	म	ग	ग	रे	रे		

अंतरा

कहत		र	ही	मानो-मानो		मो	री	ने	क	हु		
मम		प	प	नी	नी	स	स	स	स	स		
पै	न	सु	नी	मो	री	ग	ही	अँ	गु	री	...	ई
स	रे	म	रे	स	स	नी	धा	प	ग	रे	रे	रे

१. 'औध' कवि का समय और 'द्विजचंद' की रचना

(प्रत्यालोचना)

ई डेढ़ बरस हुए, नागरीप्रचारिणी-पत्रिका में मैंने रायबरेली-ज़िले के कुछ कवियों के ऊपर एक लेख लिखा था। अधिकतर उसमें 'औध'कवि के 'रघुनाथसिकार'-नामक ग्रंथ की आलोचना थी। गत आश्विन-मास की माधुरी में, उसी के संबंध में, एक संक्षिप्त आलोचना पं० विपिनविहारीजी मिश्र ने लिखी थी। उससे मुझे कुछ नई बातें अवश्य ज्ञात हुई हैं। उसमें मेरे लेख की एकआध त्रुटियाँ भी दिखाई गई हैं। इसके लिये मिश्रजी को अनेक धन्यवाद। मिश्रजी से मुझसे इस विषय में कुछ दिनों तक पत्र-व्यवहार भी हुआ था। दो-तीन महीनों से इधर उनका कुछ समाचार अलबत्ता नहीं मिला।

मुझे विशेष धोका हुआ था 'औध'जी के समय-निर्णय में। इसका कारण यह था कि मैंने सचमुच 'शिवसिंह-सरोज' नहीं देखा था, जैसा कि मिश्रजी ने अनुमान किया है। पर उसका एक कारण और था। ग्रंथ के आदि में एक त्रिभंगी छंद है—

"दश आठ-आठ षट् कला चरन ठट, राग-सहित रट शिवसंगी।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इसमें समय-निरूपण है। मैंने लेख में लिखा था—"इसके अंतिम पद में शायद रचना-समय भी दिया हुआ है।" मेरा यह अनुमान ही था, और इस हिसाब से दस आठ=१०+८=१८ और आठ षट्=८+६=१४ अर्थात् १८१४ संवत् हुआ। परंतु मिश्रजी का कथन है कि पुस्तक पहला बार १८६६ ई० (अर्थात् संवत् १९२३) में छपी थी। इससे संभव है, रचना का समय १८८६ हो। यदि यह ठीक है, तो मेरी त्रुटि केवल यही थी कि मैंने 'दस आठ' एवं 'आठ षट्' दोनों को जोड़ दिया था।

पर आलोचना में मिश्रजी ने और बहुत कुछ लिख मारा है। उसी के संबंध में मुझे कुछ कहना है। आप लिखते हैं—"रायबरेली-ज़िले के साहनपुरवा-नामक गाँव में लखनऊ के (ऊँचेवाले) कुछ वाजपेयी रहते हैं।" यह मिश्रजी का भ्रम है। वहाँ 'ऊँचेवाले' नहीं, 'खालेवाले' वाजपेयी रहते हैं। मिश्रजी ने अपने एक पत्र में यह बात स्वीकार भी की है। पं० चंपारामजी ने भी यही लिखा है, और मिश्रजी ने चंपारामजी के लेख का उल्लेख भी किया है। शायद वह आलोचना की धुन में लेख की यह बात भूल गए। आगे चलकर आप फिर कहते हैं—"शिवसिंह-सरोज में यद्यपि इनके कई ग्रंथों के नाम लिखे हैं, पर 'रघुनाथसिकार' का उल्लेख नहीं है। संभव है, 'शिवसिंह-सरोज' के रचना-काल के समय (?) तक यह ग्रंथ न बना हो।"

क्यों मिश्रजी, क्या आप सीधा जोड़ना भी भूल गए आलोचना की मौज में? आप कहते हैं—'रघुनाथसिकार'

१८६६ ई० अर्थात् १९२३ संवत् में छपा था, और यह भी ठीक है कि "शिवसिंह-सरोज सं० १९३४ वि० में बना था।" इसका अर्थ तो यह हुआ कि 'शिवसिंह-सरोज' के ११ वर्ष पूर्व ही 'रघुनाथसिकार' छप चुका था। है यह बात कि नहीं ?

दूसरी बात है द्विजचंद की कुछ पंक्तियों के विषय में। मिश्रजी कई कवियों के एक ही उपनाम रखने के कुछ विरोधी हैं। द्विजचंद और हरिचंद में तो आपने 'काफ़ी फ़र्क़' बतलाया है ; पर कहिए, 'औध' और 'हरिऔध' पर आपकी क्या राय है ? इधर तीन-चार महीनों से बराबर मैं इस बात का पता लगा रहा हूँ कि वास्तव में वे दोनों कवित्त किसके हैं, द्विजचंद या हरिचंद के। मिश्रजी को कविताओं की चोरी के विषय में सेनापति का 'कथन स्मरण हो आया' था। पर, मिश्रजी, सेनापति तो अभी कल के हैं, सैकड़ों वर्ष पहले काश्मीर के प्रसिद्ध कवि बिल्हण भी इसके विषय में कह गए हैं—

"साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः ;
× × × लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति।"

इससे थोड़े ही कुछ होता है। बिल्हण ने स्वयं आगे चलकर इसका प्रतिकार किया है। वह कहते हैं, महाकवियों की इससे कुछ हानि नहीं हो सकती। उपमा के लिये वह कहते हैं, देवतों ने समुद्र में से सभी रत्न निकाले, पर "अद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः—"समुद्र वैसे-का-वैसा ही है।

द्विजचंदजी अभी जीवित हैं। मैंने उनके सुयोग्य पौत्र मित्रवर रामनारायणजी मिश्र एम्० एस्-सी० से इन दोनों कवित्तों के विषय में कई पत्र लिखवाए। द्विजचंदजी की आँखें अब काम नहीं करतीं। पत्रों के उत्तर रामनारायणजी की बुआ ने लिखे थे। इधर दो महीने से मिश्रजी स्वयं घर पर, अपने बाबाजी के पास, हैं। अभी कुछ दिन हुए, उन्होंने मेरे पास एक पत्र लिखा है। उसमें वह लिखते हैं—

"भाई रामाज्ञा,

× × × बाबा अब भी उन कवित्तों को अपना ही कहते हैं। वह हरिश्चंद्रजी के विषय में और कई × × × बातें बतलाते हैं। मैं चाहता हूँ माधुरी की आलोचना का उत्तर आपसे ही लिखवाऊँ। × × ×

तुम्हारा रामनारायण"

इस पर भी, जैसा विपिनविहारीजी ने लिखा था, 'कुछ टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है ! (?)' मिश्रजी महाराज, मैंने स्वयं ही द्विजचंदजी को उन कवित्तों का लेखक नहीं मान लिया था, रामनारायणजी ने कहा था। और, अब तो, जैसा आप चाहते थे, 'स्वयं डॉक्टर साहब भी' मुझसे सहमत हैं। 'प्रेम-माधुरी' और 'हज़ारा', दोनों को देखकर इस पत्र के सामने कुछ कहते ही नहीं बनता। मिश्रजी ने चंपारामजी के विषय में लिखा था—"आपने कविवर × × × के पौत्रों से उनका वृत्तांत ज्ञात किया है, अतः उसके प्रामाणिक होने में कुछ भी संदेह नहीं हो सकता।" कहिए, रामनारायणजी भी तो एक कविवर के पौत्र ही हैं, और शायद उन पौत्रों से कहीं योग्य भी हैं। क्या मैं भी कहूँ कि इसके 'प्रामाणिक होने में कुछ भी संदेह नहीं हो सकता ?'

मिश्रजी ने यह भी लिखा है—"पत्रिका में प्रकाशित छंद कितने अपूर्ण और अशुद्ध हैं।" जितने अशुद्ध और अपूर्ण आप शायद समझते हों, उतने तो वे नहीं हैं। पाठक दोनों का मिलान करके देख सकते हैं। पर जब यहाँ मूल में ही झगड़ा लगा है, तो डाल-पत्तों की क्या बात।

मुझसे ही त्रुटि नहीं हुई थी, मिश्रजी को स्वयं आलोचना के ताव में कुछ भंग की तरंग आ गई थी। कहिए, अब तो आप एक मुझे ही न कहिए, पूरी पंक्ति लिखकर अलबत्ता विश्राम कर सकते हैं—

"एक जो होय, तौ ज्ञान सिखाइए, कूप ही में इहाँ भाँग परी है।"

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी

× × ×

२. हिंदू-मुसलमानों की एकता

हिंदू-मुसलिम-एकता मृदु लता रोपी गई थी कभी,
आघात-प्रतिघात-आतप लगे सो क्षीण ही हो रही ;
ईर्ष्या-द्वेष-दवाग्नि-दग्ध-हृदया स्पर्द्धादि-वाताहता,
हा ! दुर्दैव ! सदैव यों विषमता कैसे सहेगी भला ?
अत्याचार, नृशंसता, नृपशुता, बीभत्सता, दुष्टता
हों एकत्र विवेक-शून्य जन में, क्या हो वहाँ की दशा ?
पापी एक अनेक पाप-कृति में पर्याप्त होता सदा,
होता है जब संघ दुष्ट जन का, रक्षा वहाँ हो कहाँ।
जो कोहाट-निवासि हिंदु-जनता प्रारंभ से जानती,
होवेगी यह दुर्दशा ब्रिटिश की साम्राज्य-छाया-तले,

दूती

[एक प्राचीन चित्र से]

बाल-बेलि सूखी सुखद यहि रूखे रुख-घाम ;
फेरि डहडही कीजिए सुरस सींचि घनस्याम ।
(म० बिहारीलाल)

N. K. Press, Lucknow.

तो क्यों पूर्ण प्रबंध को न करती, क्यों भूलती आपको,
होता है यह हाल, मानव जभी भूले निजी रूप को।
दावा जो करते हमीं जगत में हैं सभ्य-चूड़ामणि,
वे ही निष्ठुर हो तटस्थ लखते थे राक्षसी वृत्ति को;
रोमांचोद्गम हो रहा न किसके कोहाट की याद से?
ऐसा कौन कठोर का हृदय है, जो चूर्ण होगा नहीं ?
अत्याचार कठोर यों जगत में जो और होते कहीं,
होतीं यों अवमानिता यदि कहीं पत्नी, सुता या वधू;
तो होती रण-रक्त-रंजित मही दुर्दाम संग्राम में,
मूलोच्छेद हुए विना न रहता पापिष्ठ दुर्वृत्त का।
सीता को हर ले गया जब महापापी छली रावण,
तो कैसा अति घोर युद्ध सहसा छेड़ा गया भीषण;
पापी थे जितने निशाचर महा भू-भार-से हो रहे,
तीखे सायक के प्रहार करके मारा उन्हें राम ने।
दुष्टों से अवमानिता जब हुई वीरांगना द्रौपदी,
कैसी भीषण भीम ने समर में की तो प्रतिज्ञा कड़ी;
भीष्म-द्रोण-समान धर्म-रत जो साक्षी रहे दृश्य के,
वीरों की गति से बचे न रण में, वे भूमिशायी हुए।
जो दुश्शासन दुष्ट, लंपट महा, पापी, कुचाली, छली,
जो दुर्योधन, कर्ण, शल्य, शकुनी दुष्टाग्रणी थे बली,
जीते एक बचे नहीं समर में, मारे गए वे सभी,
होता न्याय-विरोध है सफल क्या संसार में सर्वदा?
हैं संतान विशुद्ध आर्यकुल की, है रक्त भी तो वही,
तो भी हा! हम हैं नपुंसक महानिर्वीर्य, निश्चेष्ट-से;
'हिंसा पातक है' यही निबल का सर्वत्र ही मंत्र है,
लातें खाकर भी न शांति मिलती, हा! स्वप्न स्वातंत्र्य है।
हिंसा का यह तत्त्व है—निबल को कोई सतावे नहीं,
जो दुर्वृत्त, नृशंस और कपटी, वे वध्य हैं धर्मतः;
गीता में इस तत्त्व की विमलता श्रीकृष्णजी ने कही,
क्या दुर्योधन आदि के हनन का था मर्म ये ही नहीं?
पापी व्यक्ति-विनाश, साधु जन की रक्षा, सदा धर्म है;
श्रीकृष्णादिक की यही सतत ही शिक्षादि का मर्म है;
होती है जब धर्म-हानि, बढ़ता भू में दुराचार है,
लेते हैं तब जन्म ईश्वर स्वयं हर्ता धरा-भार के।
हो संतान प्रसिद्ध वीरगण की, आलस्य छोड़ो, उठो,
भूले हो निज रूप को तुम, ज़रा वीरत्व से काम लो;
दुष्टों का सब भाँति घात करना सीखो, बनो विक्रमी,
देखो, भारत-भूमि के अब तुम्हीं आधार आलंब हो।
संतों का उपकार, नाश खल का, रक्षा सती की करो,
हिंदू हो अथवा भला यवन हो, हैं बंधु ही सर्वथा;
सत्य-प्राण बनो, तजो कुटिलता, मिथ्या न बोलो कभी,
सच्चे आर्य बनो, समस्त जग के आदर्श होगे तभी।
गांधी के उपवास का फल तभी होगा सही सर्वथा,
हिंदू, मुसलिम, क्रिश्चियन, सब स्वयं हों एकता में पगे;
फूलेगी तब ही तथा फलवती होगी लता-एकता,
वैसे तो इसका नहीं दिख रहा भू में कहीं भी पता।
हे ईश, प्रणतार्तिनाशक, प्रभो, भूले हमें क्यों भला?
दे सद्बुद्धि सदैव आप हमको सन्मार्गगामी करें;
होवे भारत-भूमि ईति-रहिता, हो एकता वास्तवी,
न्यायी और पराक्रमी सब सुखी, हों न्याय-निष्ठाव्रती।

ठाकुर

× × ×

३. महाकवि विहारीलाल

माधुरी के किसी पिछली संख्या में श्रीयुत शार्दूलजी ने श्रद्धेय मिश्रबंधुओं का ध्यान उक्त महाकवि के प्रति आकृष्ट किया है। इसी संबंध में मैं यहाँ कुछ लिखता हूँ। आशा है, विज्ञ-समाज में इन पंक्तियों से महाकवि विहारीलाल के जीवन पर विशेष प्रकाश पड़ेगा। शार्दूलजी ने लिखा है कि उक्त कवि का निवास-स्थान—बसुआ गोविंदपुरा—ग्वालियर-राज्यांतर्गत नहीं, अलवर और जयपुर-राज्य के अंतर्गत है। वास्तव में बाँदीकुई-जंकशन से आगे देहली-लाइन पर ये दोनों गाँव वर्तमान हैं—बसुआ जयपुर-राज्य में है, और गोविंदपुरा अलवर-राज्य में।

दूसरी बात आपने विहारीलालजी के ककोर-कुलोत्पन्न न होने और वरवारी होने के विषय में लिखी है। आपने श्रीयुत कृष्ण कवि को उनका पुत्र नहीं माना, और साथ ही अमरकृष्णजी वरवारी को उनका वंशज बतलाया है। ये बातें अक्षरशः सत्य हैं।

इसके प्रमाण देने के पूर्व यह देखना है कि इनको ककोर-कुलोत्पन्न माननेवाले सज्जन क्या प्रमाण रखते हैं। केवल इस किंवदंती पर कि कृष्ण कवि उक्त महाकवि के पुत्र थे, और उन्होंने अपने को ककोर-कुलोत्पन्न लिखा है, यह महाकवि भी अवश्यमेव ककोर-कुलोत्पन्न थे, अंध-विश्वास कर लेना कहाँ तक युक्तियुक्त और संगत है, यह मैं विज्ञ जनों पर ही छोड़ता हूँ।

दूसरा प्रमाण इस विषय के समर्थनकर्ताओं के पास

मिश्र ज्वालाप्रसाद-कृत विहारी-सतसई की टीका है, जिसमें इस दोहे का पहला चरण ही केवल छपा है—

"माथुर-वंस ककोर-कुल, बसत मधुपुरी-गाँव ;
चौबे केसव को तनय, दास बिहारी नाँव ।"

यह दोहा बहुत कम प्रतियों में पाया जाता है। मेरे पास विहारी-सतसई की संवत् १८१७ की लिखी हस्तलिखित प्रति है। उसमें भी यह दोहा नहीं है। इससे यह प्रकट होता है कि उक्त दोहा बाद को जोड़ दिया गया है।

पक्षांतर में आपके घरवारी होने के प्रमाण ये हैं। यह कहीं लेख-बद्ध प्राप्त नहीं है कि कृष्ण कवि उक्त महाकवि के पुत्र थे, अतः हम उनको विहारीलालजी का पुत्र नहीं मान सकते। फिर जब कृष्ण कवि अपनी जाति, अल्ल आदि स्वयं लिख सकते थे, तो वह अपने पिता का नाम ही क्यों न दे सके? यदि विहारीलालजी के समान गुणगणालंकृत कवि उनके पिता होते, तो कृष्ण कवि अपने को ऐसे सुयोग्य पिता का पुत्र कहकर अवश्य गौरवान्वित करते। अतएव यह मत कि वह ककोर-कुलोत्पन्न थे, निर्मूल सिद्ध होता है।

दूसरा कारण यह है कि प्रसिद्ध भाषा के आचार्य कुलपति मिश्र विहारीलालजी के भांजे थे, जैसा कि मिश्र-बंधुओं ने माना है, और भी कई सज्जनों ने लिखा है, और स्वयं मिश्रजी ने अपने ग्रंथ संग्राम-सार (महाभारत के द्रोण-पर्व का पद्यानुवाद) में एक स्थान पर लिखा है—

"कविवर मातामह सुमिरि केसव केसव राय ;
कहौं कथा भारत्थ की भाषा छंद बनाय ।"

केशव राय महाकवि विहारीलालजी के पिता थे, यह प्रसिद्ध ही है। अतएव इनका विहारीलालजी से संबंध निश्चय होगा। हमारे यहाँ चतुर्वेदियों का विवाह-संबंध मिश्र और घरवारियों में प्रचलित है। परंतु ककोर-कुलवालों और मिश्रों में परस्पर विवाह आदि संबंध नहीं होते। इससे भी यही सिद्ध होता है कि विहारीलालजी घरवारी थे।

तीसरी बात अमरकृष्णजी घरवारी के विहारीलालजी का वंशज होने की है। इसके भी कई प्रमाण हैं। जयपुर-निवासी पूज्यवर, विद्यानिधि, व्याकरणाचार्य पं० गिरिधरजी शर्मा न्यायशास्त्री ने "चतुर्वेदी-पत्रिका" के प्राचीन अंकों में इस विषय पर विशेष प्रकाश डाला और लिखा है कि जयपुर में अमरकृष्णजी का कुल विहारीलाल के वंशजों के नाम से प्रसिद्ध है। आप जयपुर के हैं, और वहाँ की जन-श्रुति इस विषय में विशेष मूल्य रखती है। आपने यह भी लिखा था—"अमरकृष्णजी कहते हैं कि हमारे पास ताम्रपत्र के रूप में जयपुर-नरेश की दी हुई सनद भी थी। परंतु वह परिवार के पारस्परिक झगड़ों के कारण लुप्त हो गई है, और अब उपलब्ध नहीं।"

केवल इतना ही नहीं, स्व० मुंशी देवीप्रसादजी ने भी, जिन्होंने राजपूताने के कवियों के विषय में बहुत अनुसंधान करके उनके सूक्ष्म परिचय को "कविरत्न-माला" नाम की पुस्तक में प्रकाशित किया है, विहारीलालजी को घरवारी लिखा है। यह भी लिखा है कि उनके पूर्व-पुरुषों तथा जन्म-मरणादि की तिथियों का पता नहीं है। आपका यह भी कथन था कि आपको बहुत परिश्रम के बाद मिरज़ा राजा के दादा महाराज मानसिंह की प्रशंसा में उनका एक कवित्त मिला है। उसको पाठकों के विनोदार्थ, अप्रासंगिक होते हुए भी, मैं उद्धृत करता हूँ—

"महाराज मानसिंह पूरब पठान मारे,
सोनित की सरिता अजौं न समिटत है;
सुकवि बिहारी अजौं उठत कबंध कूदि,
आजु लगि रन ते रनोंहीं ना मिटत है।
आजु लौं पिसाचन की चहलन ते चौंकि-चौंकि,
सची मघवा की छतिया में लपिटत है;
आजु लगि ओढ़े है कपाली आली खालें,
आजु लगि काली-मुख लाली ना मिटत है।"

अतएव आपने भी विहारी को घरवारी माना है।

तीसरा प्रमाण विहारीलालजी से लेकर अब तक की वह वंशावली है, जो आपने उक्त पुस्तक में लिखी है। वह पाठकों के लाभार्थ नीचे दी जाती है। अमरकृष्ण के पिता बालकृष्ण "वंश-भास्कर" में लिखते हैं—

"जिहि विप्र बिहारी बंस जात,
कवि बालकृष्ण प्रभु अन्नदात।"

और, अमरकृष्णजी भी लिखते हैं—

"प्रथम बिहारीदास प्रकट जिन सतसती कृत,
बिसद ज्ञान के धाम, कहूँ लवलेस न दुरमत।
तिनके गोकुलदास तनय तिन खेमकरनमनि;
दयाराम सुत जासु, बहुरि तिनके मानिक मनि।
मे गनेस तिनके तनय, बालकृष्ण तिनके प्रगठ;
गुन-निपुन, चतुरता-सदन सो कविता-तिय-नायक कहठ।

तिनके भो अतिमंदमति, कविजन-किंकर जानि ;
विद्या-बिमल-बिबेक बिन, अमरकृष्ण पहिचानि ।"

अमरकृष्णजी को इन्होंने घरवारी लिखा है, अतएव विहारीलालजी भी घरवारी सिद्ध हुए।

विहारी को ककोर-कुलोत्पन्न बतलानेवाले कहते हैं कि जैसे मिरज़ा राजा जयसिंह और उनके प्रपौत्र जयसिंह सवाई, ये दोनों एक ही नाम के राजा हुए हैं, वैसे ही विहारीलाल नाम के दो चौबे कवि भी हुए हैं। उनमें से एक, जो सतसईकार है, ककोर हैं। यह मिरज़ा राजा के समय में हुए थे। दूसरे घरवारी थे, यह सवाई राजा जयसिंह के समय में हुए थे। वे यह भी कहते हैं कि प्रथम को केवल सात सौ मोहरें मिली थीं, और दूसरे को सनद और माफ़ी आदि भी। पर थोड़ा-सा ध्यान देने पर ये बातें असत्य सिद्ध हो जाती हैं।

यदि सरोजकार के संवत् मानें, तो पहले जयसिंह १६०२ में और दूसरे १६५५ में हुए। पर निम्न-लिखित दोहे के अनुसार यह समय-निर्द्धारण ठीक नहीं प्रतीत होता।

"संवत गृह ससि जलधि छिति, छठि तिथि, वासर चंद ;
चैत मास, पख कृष्ण मैं पूरन आनँदकंद ।"

टाड-राजस्थान के अनुसार मिरज़ा राजा जयसिंह का समय सन् १६२२ से १६६८ तक (यानी लगभग संवत् १६८६ से १७२५ तक) है। अतएव इनके समय में ही सतसई का और विहारीलालजी का होना संभव है। सतसई के कई दोहों में इनको जयसाह कहके संबोधित किया है, और इन्हीं का नाम जयसाह था भी।

यहाँ तक तो यह सिद्ध किया गया कि जयसाह के समय में ही सतसईकार विहारीलालजी हुए, और उनका संवत् भी वही ठीक रहा, अब हम यदि सवाई जयसिंह के यहाँ दूसरे प्रसिद्ध कवि विहारीलाल अथवा विहारीदास का होना मान लें, तो भी हमारे अभीष्ट में कोई बाधा नहीं आती, सिद्ध करना यह है कि सतसईकार विहारी ही घरवारी थे। ऊपर कहा गया है कि कुलपति मिश्र का और इनका संबंध था, और कुलपति मिश्र * भी इन्हीं के समय में हुए। इस दोहे से यह प्रकट हो जायगा—

"सतरह सौ तेंतीस सम गुनजुत फागुन मास;
कृष्ण पच्छ, तिथि सप्तमी, कियो ग्रंथ परकास।"

यदि इन दोनों का समकालीन होना और दूसरे विहारीलाल के पिता का नाम केशवराय होना मान लिया जाय, तो भी यह सतसईकार ही घरवारी हुए। यही अमरकृष्ण सतसईकार विहारीलालजी के वंशज हैं। वह घरवारी हैं, अतः विहारीलालजी भी घरवारी सिद्ध हुए। सनद और मोहरों का विषय विवादग्रस्त नहीं है। यह कहीं नहीं लिखा कि विहारीलाल को सात सौ दोहों पर केवल सात सौ ही मोहरें मिलीं। यह भी संभव है कि माफ़ी भी मिली हो। जब उनके वंशज स्वीकार करते हैं कि उनके पास सनद थी, और वह पारस्परिक झगड़ों में खो गई, तो इस विषय में बिना प्रमाण शंका करना भूल है।

उमरावसिंह पांडेय

× × ×

४. टूटे तार

(धुन आसावरी)

गए टूट वीणा के तार।
कैसे मैं ध्वनि मधुर निकालूँ, निज हार्दिक उद्गार;
कहाँ मिलेगा वह शिल्पी, जो करे इसे तैयार;
क्योंकर तार जुटाए जो फिर बहे वही स्वर-धार।
सूना हृदय पड़ा है मेरा, सूना है संसार;
नीरव को ध्वनिमय कर स्वामी, भर असार में सार।
मृत-सी यह निस्पंद पड़ी है, टूट गए हैं तार;
गान दुःख के गाती थी जो, करती दुख को प्यार।
हाँ, आता था हृदय हिलाना, रोदन था आधार;
नहीं हृदय में सुख, करुणा का, करती थी संचार।
रोती थी जग के हित दुख से, धोती पाप-विकार;
मृदुल तान वह कहाँ गई हा, कह दो हे करतार।

अमर

× × ×

५. निवेदन

गत चैत्र-मास की माधुरी में "तुलसीदासजी की उक्तियों में प्रकृति-पर्यवेक्षण की प्रतिकूलता" नाम का एक छोटा लेख छपा है। उसके लेखक हैं श्रीयुत कालीप्रसादसिंहजी चौधरी। आपने "फूलै फलै न बेंत, यदपि सुधा बरषहिं जलद" इस गोस्वामीजी के सोरठे

* आपने अपना संग्राम-सार संवत् १७३३ में पूर्ण किया था, जिससे अनुमान होता है कि आप अवश्य संवत् १७०० के लगभग वर्तमान होंगे।

में श्रीबाबू श्यामसुंदरदासजी बी० ए० द्वारा बतलाए हुए प्रकृति-विरुद्धता दोष का उद्धार किया है, और सम्मति दी है कि साहित्यालोचन के द्वितीय संस्करण में वह अंश निकाल डाला जाय। चौधरी साहब के दूषणोद्धार का सारांश यह है कि—"बेत फूलता-फलता नहीं। अगर थोड़ी देर के लिये बेत का फूलना-फलना मान भी लिया जाय, तो गोस्वामीजी को बेत का अर्थ काष्ठ नहीं, आकाश विवक्षित होगा; क्योंकि बेत संस्कृत के वियत्-शब्द का विकृत और परिवर्तित रूप है।"

पर मेरी समझ में 'वियत्' शब्द को तोड़-मरोड़कर बेत लिखना तुलसीदासजी की प्रांजल रचना-शैली के विपरीत मालूम होता है। गोस्वामीजी को यदि आकाश ही अभिप्रेत होता, तो आकाश-वाचक किसी सरल शब्द को लिख देते। दरअसल उक्त सोरठे का पूर्वार्द्ध महात्मा शेख़ सादी की गुलिस्ताँ के निम्न-लिखित क़ता का अनुवाद है—

"अब्र गर आबे-ज़िंदगी बारद;
हरगिज़ अज़ शाख़ बेद बर न खुरी।"

अर्थात् मेघ अगर आबे-ज़िंदगी अर्थात् अमृत बरसावे, तो भी तू बेत से फल न खायगा। गोस्वामीजी * के समय में सादी के ग्रंथों का प्रचार हो गया था। गोस्वामीजी साधु महात्मा थे। उन्होंने जिस तरह अपने पूर्ववर्ती संस्कृत-कवियों की सूक्तियों का सार लिया है, उसी तरह एक फ़ारसी-कवि के भी भाव को भी ग्रहण किया है। यह उनकी गुणग्राहिता और उदारता का ज्वलंत उदाहरण है। वास्तव में प्रकृति-विरुद्धता-दोष के उत्तरदाता सादी ही हैं। गोस्वामीजी ने उन्हीं के विश्वास के आधार पर रचना की होगी, न कि अपने प्राकृतिक अनुभव से। मैं बाबू श्यामसुंदरदासजी के इस मत से सहमत हूँ कि बेत ज़रूर फूलता-फलता है। मैंने दुर्गा † नाम के एक कडेरी से, जो मेरे यहाँ कुर्सियाँ बीनने आता है, सुना है कि बेत फूलते हैं। संस्कृत-साहित्य के प्रसिद्ध प्रकृति-वर्णन-पटु भवभूति कवि ने उत्तररामचरित में वेतस-लता के कुसुमों का वर्णन भी किया है। शंबूक राम से कहता है—"इस प्रदेश (मध्यमारण्य) में जिन वेतस (बेत)-लताओं पर मतवाले पक्षी बैठे हैं, उनके फूलों से सुगंधित तथा शीतल निर्मल जलवाली नदियाँ बह रही हैं। यथा—

"इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीर*वीरुत्-
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति;
× × ×
× × निर्झरिण्यः।"

वैद्यक के निरुक्त-रत्नाकर ग्रंथ में बेत के बीजों का भी उल्लेख है। बीजों का गुण इस तरह वर्णित है—

"वेत्रबीजं तु तुवरं स्वाद्वम्लं रूक्षपित्तलम्।
रक्तदोषं कफं चैव नाशयेदिति कीर्तितम्।"

बेत के बीज स्वादिष्ट, खट्टे, रूखे, पित्त करनेवाले और रक्त-दोष तथा कफ के नाशक होते हैं। बेत अगर फूलता-फलता नहीं, तो बीज कहाँ से आते हैं? सति कुड्ये चित्रं कुड्याभावे कुतश्चित्रम्? सादी या तुलसी-जैसे विश्व-कवियों से अगर कोई भूल हो जाय, तो उनके व्यापक पांडित्य या कवित्व में धब्बा कभी नहीं लगने का। ग़लती किससे नहीं हुई? मुनीनां च मतिभ्रमः। आशा है, हिंदी के अन्य विद्वान् भी इस पर अपना मत प्रकाशित करेंगे।

रामसेवक पांडेय

× × ×

६. पुकार

हे हरि लेहु पुनि अवतार।
देश की दुर्दशा टारहु करहु सुख-आगार।
पुनि सुनावहु बाँसुरी की वह मधुर गुंजार;
करहु सबके हिय-सरोवर प्रेम-रस-संचार।
देश-सेवा रासमंडल रचहु, करहु सुधार;
कर्मगीता पुनि सुनावहु, हरहु अंध विचार।
दैन्य, दुख, आलस्य-दानव को करहु संहार;
पूतना-परतंत्रता सों बेगि होहि उबार।
धर्म-गोवर्द्धन उठाए सत्य-चक्र सुधार;
इंद्र पर-कृत हरहु केसव वृष्टि-अत्याचार।

* श्रद्धेय गोस्वामीजी का जन्म-काल १५८९ विक्रमीय संवत् है, और सादी का ग्रंथ-प्रणयन-काल ६५२ हिजरी अर्थात् १२०५ संवत्।

† मैंने उससे फूल माँगे हैं। मिलने पर मैं माधुरी में चौधरी साहब को सूचना दूँगा।

* वानीर बेत का नाम है—
"अथ वेतसे
रथाभ्रपुष्पविदुलवानीरवञ्जुलाः।" अमरकोष, पृ० ४१।

वहि चले राष्ट्रीयता की विमल जमुना-धार ;
फूट-कालीनाग को करि देहु अब संहार।
फिर सोई हम और तुम हों प्रान, प्रानाधार
भरत-भू के कुंज मैं पुनि रचैं विविध विहार।
पुनि सोई कृषिकर्म होवै, पुनि सोई गोचार ;
पुनि मचै दधि-कीच घर-घर, होइँ गीत मलार।
पुनि सोई सुख-चैन होवै, सोई प्रेम-प्रचार ;
'भवन' मोहन होइ फिर यह प्रेममय संसार।

भुवनेश्वरप्रसाद

× × ×

७. भारत में परलोक-विद्या का आंदोलन

परलोक-विद्या का अस्तित्व हाल में बहुत लोगों को मालूम हो गया है। प्राचीन काल में इस विद्या से भारत के निवासी परिचित थे। किंतु उसका नवीन संस्करण अमेरिका में सन् १८४८ से हुआ है। इस बात को सभी पढ़े-लिखे लोग जानते होंगे। अमेरिका में यह ज्ञान होने पर थोड़े ही समय में इँगलैंड आदि पाश्चात्य देशों में उसका प्रवेश हो गया। "पुत्रादिच्छेत्पराजयम्" के न्याय

वी० डी० ऋषि

से योरपियन लोग इस विद्या की उन्नति में अग्रसर हुए। महायुद्ध के दावानल में हज़ारों मनुष्य मरते थे। इस कारण उनके विरह-दग्ध संबंधियों में से अधिकांश का चित्त स्वभावतः इस विद्या की ओर खिंच गया। परलोक-विद्या के साधनों से मृत आत्माओं का पारलौकिक अस्तित्व निस्संदेह सिद्ध होता है। इसलिये इन साधनों से हज़ारों दुःखी मनुष्यों को कल्पनातीत शांति प्राप्त हुई। जिस पर अपना असीम प्रेम था, उस मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर उसकी स्थिति के संबंध में जानने का कौतूहल और इच्छा हरएक मनुष्य को स्वभावतः होती है। उस इच्छा की पूर्ति होने के बाद परलोक क्या है, कहाँ है, इस विद्या का धार्मिक महत्त्व क्या है, इन सब बातों का ज्ञान प्राप्त करके उसे संसार में फैलाने की ओर योरप और अमेरिका के विद्वानों का ध्यान गया। हरएक काम को लगातार तत्परता के साथ करना पाश्चात्य लोगों का स्वभाव है। अतएव उन्होंने इसके लिये सुसंगठित प्रयत्न किए। गत वर्ष समस्त संसार के परलोक-विद्याप्रेमियों की कांग्रेस बेलजियम में हुई थी। उसमें कई महत्त्व-पूर्ण प्रस्ताव पास हुए। इस विद्या के प्रचार और उन्नति के लिये एक अंतरराष्ट्रीय संघ का निर्माण भी हुआ। इस संघ की बड़ी कमेटी की बैठक आगामी अगस्त-मास में होगी, और कांग्रेस का आगामी अधिवेशन १९२६ में।

भारत में कुछ वर्ष पहले इस विद्या के साधन लोगों को मालूम थे। किंतु इस विद्या को यथेष्ट और यथोचित प्रोत्साहन किसी से नहीं प्राप्त हुआ। बंगाल के बाबू शिशिरकुमार घोष उन दिनों अँगरेज़ी में इस विषय का हिंदू-स्पिरिचुअल नाम का एक मासिक पत्र प्रकाशित करते थे। उस मासिक के लेखों से पढ़े-लिखे लोगों को परलोक-विद्या का कुछ-कुछ ज्ञान होता था। किंतु इस देश के भिन्न-भिन्न भाषाओं में निकलनेवाले देशी तथा अँगरेज़ी पत्रों ने लेख लिखकर, इस विद्या के जानकारों ने भाषण देकर तथा प्रयोग दिखलाकर इस विद्या की लोकप्रियता और प्रचार बढ़ाने का कार्य नहीं किया।

इस समय इस संबंध में जो चर्चा हो रही है, उसका आरंभ सन् १९२१ में हुआ था। गत वर्ष इस विद्या का प्रचार करने के लिये भारत-विद्या-प्रसार-मंडल की स्थापना यहाँ की गई। इस विद्या का प्रचार और इसे लोक-प्रिय बनाना ही उक्त मंडल का उद्देश्य है। इस मंडल के सभासद्

भारत के सिवा इँगलैंड आदि देशों में भी हैं। इस संस्था से भारतवासियों को इस विद्या का महत्त्व प्रतीत होगा।

गत वर्ष मैंने मध्य-भारत, युक्त-प्रांत और आंध्र-प्रदेश में जाकर, कई शहरों में घूमकर, प्रचार-कार्य किया था। कोकोनडा में अखिल भारतीय परलोक-विद्या-परिषद् हुई थी। भारत में इस परिषद् का वह प्रथम अधिवेशन था। इसका द्वितीय अधिवेशन अब की बेलगाँव में कांग्रेस के अवसर पर करने का विचार है। कोकोनडा की बैठक में इस विद्या के प्रचारार्थ एक कमेटी स्थापित की गई थी। अमृतबाज़ारपत्रिका के संपादक बाबू पीयूषकांति घोष महाशय भी उस कमेटी के एक सदस्य हैं। इटली में इस विद्या से संबंध रखनेवाली अंतरराष्ट्रीय सामयिक कांग्रेस होनेवाली है। उसमें जाने के लिये मैं भारत का प्रति-निधि चुना गया हूँ। इसी से यह प्रकट होगा कि विदेशियों पर हमारे प्रयत्नों का कितना प्रभाव हुआ है।

इस परलोक-विद्या का जन्मस्थान भारतवर्ष ही समझा जाता है। किंतु इस समय अन्य देशों के लोग हरएक बात में अवनति के गड्ढे में गिरे हुए भारत से बहुत आगे बढ़ गए हैं। भारत के प्रत्येक आंदोलन को योरप के लोग बड़े ग़ौर से देखते रहते हैं। यही हाल यहाँ के इस विद्या के आंदोलन का है। सर आर्थर कोनन डायल, मि० जान-लुई, स्पिरिचुअलिस्ट नेशनल यूनियन के मंत्री मि० ओटन और मिस्टर आर० ए० बुश आदि सम्माननीय सज्जनों ने हमारे इस विद्या के आंदोलन में सच्ची सहानुभूति दिखलाई है। मि० लुई अपने मासिक पत्र में भारत के इस विद्या के आंदोलन के बारे में प्रायः लिखते रहते हैं। उन्हीं के प्रयत्न से सर कोनन डायल की उदार सहायता हमें मिली है।

भारत के राजनीतिक नेता इस विद्या के आंदोलन की ओर ध्यान नहीं देते। यह अवश्य ही दुर्भाग्य की बात है। कोकोनडा की परिषद् में मैंने बतलाया था कि यह आंदोलन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सभी आंदोलनों का परिपोषक है। सर कोनन डायल का कहना है कि संसार की बिगड़ी हुई स्थिति इसी आंदोलन से सुधरेगी। महात्माजी की इच्छा के अनुसार मृत्यु का भय कम करने में यह आंदोलन बहुत बड़ी सहायता करेगा। इस विद्या का संदेश अगर भारत में घर-घर पहुँचाया जाय, तो यहाँ धर्म का अभाव बहुत कुछ दूर हो सकता है। इससे भारत को नया चैतन्य और नई शक्ति प्राप्त होगी। आशा है, भारतवासी लोग इस विद्या की ओर अधिक ध्यान देंगे।

विश्वनाथ दामोदर ऋषि

× × ×

८. उषा

जगी उषा अब नभ की करवट नील
तारे-जड़ी ओढ़नी तम की टार ;
खोले दृग कलियों ने लज्जाशील
भारत का प्रातः का पाकर प्यार।
द्रुम-डालों पर चिड़ियाँ विविध किशोर
रहीं चुहल कर निज-निज पति के पास ;
नीलम-जटित बाग़ में सुंदर मोर
रहा मोरनी सँग कर मनहर रास।
कज्जल घन के टुकड़े नभ के बीच
अब रखते हैं, देखो, उजला भगवाँ रंग ;
तरु-अट्टालिका कोयल* सहित हुलास
छोड़े मंजु प्रभाती तान अभंग।
लीलावती प्रिया सम मंद बयार
है चल रही जनाती गज की झूम ;
कनक-रश्मियाँ, प्यारी भानु-कुमारि,
सोह रहीं मेघों के अंचल चूम।
कैसा अनुपम है यह ब्राह्म-मुहूर्त,
है आनंदित अभिनंदित यह सृष्टि ;
रमी हुई है नभ में एक स्फूर्ति
हो उमाह की जग में रही सुवृष्टि।
ऐसे में हो कोई थल एकांत,
स्वच्छ सलिल का होवे जहाँ प्रसार ;
खिले फूल हों, साथिन हो बस 'शांति',
करूँ और मैं बैठा वहाँ विचार।

रामानुजदयालु

× × ×

* यह कविता पिछली जुलाई में लिखी गई थी (और अब तक अप्रकाशित रही है)। कवि-संप्रदाय के मतानुसार कोयल केवल वसंत में ही बोलती है ; पर असल में वह वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, तीनों ऋतुओं में बोलती है। इसीलिये इस कविता में उसकी 'तान' की बात आई है।—लेखक

९. समय

वाह रे समय! बलिहारी! ज्यों ही हम तुम्हारी याद कर तुम्हारे विषय में कुछ लिखने लगे कि तुम चल दिए। अजी, ज़रा ठहरो तो सही। क्यों भागे जाते हो? इतनी तेज़ी है, जिसका कुछ ठिकाना नहीं। क्या कुछ सुनते नहीं? इतने निठुर हो कि तुम्हें काल कहें, तो अनुचित नहीं। ऐसे भाग रहे हो कि तुम्हारी सूरत देख नहीं पड़ती। क्या वायुरूप हो? नाम लेते ही उलटे पैरों भाग खड़े हुए। उलटे पैर तो भूतों के कहे जाते हैं। तो क्या तुम भूत हो गए? तुम्हारी माया समझ में नहीं आती। तुम्हारी काया देख नहीं पड़ती। और, छाया ऐसी फैली हुई-सी जान पड़ती है कि, आगे, पीछे और सामने तुम्हारा ही विस्तार हो रहा है। तुम्हें किसी की परवा ही नहीं। बस, अपनी धुन में चले जा रहे हो। कहाँ जा रहे हो, कब तक जाते रहोगे, फिर कभी लौटोगे कि नहीं, इसका कुछ अनुमान ही नहीं होता। तुम्हारे प्रमाण या परिमाण का कुछ ठिकाना नहीं। निमेप, विपल, पल, घड़ी, घंटा, पहर, दिन, रात, सप्ताह, महीनों, वरसों, युग, युगांतर, मन्वंतर, कल्प आदि में तुमको छोटे-बड़े टुकड़े करके बाँधा; पर तुम कब बँधनेवाले हो? ऐसे अनेकों तुम्हारे नाम लेते लुप्त हो गए; पर तुम्हारा अंत न हुआ। तुम कैसे भूत हो? परोक्ष भी तुम, अपरोक्ष भी तुम। सामान्यभूत के रूप में भी तुमको बताया, अनद्य-तन-भूत भी तुमको कहा। कितने ही रूप-रूपांतर तुम्हारे भूत रूप के लोगों ने कल्पित किए; वर्तमान में कर रहे हैं, और भविष्य में भी कई नाम, रूप करके बनावेंगे; पर तुम्हारा वास्तविक रूप क्या है, यह कौन कह सकता है। हमारे सामने वर्तमान होते-होते तुम पर भूत-सा सवार हो जाता है, और तुम अदृश्य हो उड़ जाते हो। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि तुम्हारे अदृश्य गति से चले जाने पर भी तुम आते-से जान पड़ते हो। जैसे सूर्य अस्त होकर दूसरे दिन निकलता है, वैसे तुम भी नित्यप्रति आते रहते हो। जैसे रात आई और बीती, वैसे ही तुम्हारा आना-जाना लगा रहता है। कभी तुम्हारा आना रमणीय खिली हुई चाँदनी की शोभा दिखाता है, जब शीतल शांतिमय प्रकाश से जगत् का मन-चकोर अमृतमय सुख का आस्वाद लेकर प्रफुल्लित होता है। कभी फिर काली, घनी अँधियारी की भयंकर घोर कालिमा की विभी-षिका दिखाते और निशाचर, चोर, डाकू, अत्याचारी, व्यभिचारी जनों की दुर्वासनाओं को पूरी करनेवाले बनकर आते हो। कभी अरुणोदय के पूर्व ब्राह्म-मुहूर्त की उत्तम पुण्यमय वेला दिखाते हो, जब ऋषि, मुनि, तपस्वी, साधु, सज्जन नित्यकर्म से निवृत्त हो भगवद्भजन में लीन हो जाते हैं, या विद्यार्थीगण अपने अध्ययन-पाठ में प्रवृत्त होते हैं। कभी अरुणोदय में प्रकृति की लालिमा दिखाते, संसार को पक्षिकुल के कल-नाद द्वारा निद्रा से जगाते और चकवा-चकई का प्रिय मिलन कराते हो। सूर्य भगवान् के सातों घोड़े जब रश्मियों से खिंचे, एक चक्रवाले रथ में जुते आकाश-मार्ग में चलने की तैयारी करते हैं, तब तुम संसार को नित्यक्रिया में लगाते और जीवन के संग्राम में भिड़ाते हो। ऐसा तुम्हारा प्रभात का रूप होता है। कभी फिर प्रभाकर की प्रखर किरणों का प्रभाव ठीक सिर के ऊपर दिखाकर, जगत् को क्लांत-सा बनाकर, विश्राम करने पर तत्पर करते हो। कोई वृक्ष की छाया में लेटा है, तो कोई रमणीय भवन के भीतर कोमल आसनों पर सुखासीन हो शीतल वायु का सेवन करता है, और कोई कुटुंब के बाल-बच्चों के साथ भोजन-पानादि में लगा हुआ जगत् के काम चलानेवाले को भूल रहा है। कभी-कभी विश्राम प्राप्त कर संसारी पुरुष कामकाज में लिपटता भटकता फिरता है, और प्रातःकालवाला चरखा फिर चलाता है। कभी फिर घूमता-फिरता आमोद-प्रमोद-विनोद के स्थानों में जाकर मन को शांति की गोद में बिठलाने की चेष्टा करने को चंचल हो उठता है।

धन्य हो समय! तुम्हारी महिमा अपरंपार है! सत्ययुग में हरिश्चंद्र के समान राजों का राज्य तुमने देखा; त्रेता में राम-राज्य की अलौकिक कला देखी; द्वापर में महाभारत कराया, धर्मराज और दुर्योधन दुःशासनादि का विरोध दिखाकर भारत के क्षत्रियत्व का विनाश देखा; और इस कलि में भी विक्रम, भोज, हर्षवर्द्धन का पराक्रम देखा, पृथ्वी-राज महाराज की वीरता और जयचंद की स्वार्थपरता देखी, अकबर की विचित्र नीति और औरंगज़ेब की दुराग्रही दु-र्नीति देखी, अब ब्रिटिश-शासन का चमत्कार देख रहे हो। देशवासी अपने को भूले, अपने स्वामी को भूले, अपने सुशासन की योग्यता को भी भूलते दिखाई पड़ रहे हैं, यह सब तुम्हारी ही लीला है। कभी देश को बनर्जी और मेहता के निदेश में, कभी गोखले और तिलक के आदेश

में, कभी महात्मा गांधी के उपदेश में, और कभी फिर गांधी-नेहरू के मत-भेद में भटकता दिखाया। पहले ख़िलाफ़त में हिंदू-मुसलमानों ने परस्पर मेल दिखाया, और अब आपस में मार-काट, लूट-मार मचा रक्खी है, यह भी तुम्हारी ही कृपा है। एक वह दिन था, जब स्वामी श्रद्धानंदजी दिल्ली की जामा-मसजिद में मुसलमानों की नमाज़ के समय उपस्थित रहकर उपदेश देते थे, एक यह दिन है, जब स्वामी श्रद्धानंद की कौन कहे, मसजिद के सामने हिंदू-धर्म के उत्सव का बाजा तक नहीं बजने पाता। यह भी तुम्हारी ही लीला है।

धन्य हो समय! तुम-सा अमय और प्रलय तक भी लय न होनेवाला और कौन होगा? पश्चिम जाकर पीछे हटते हो, पूर्व जाकर आगे बढ़ते हो। यहाँ एक हो, तो १५ डिग्री पूर्व में तुमको लोग दो बताते हैं, और ३० डिग्री पूर्व पर तीन। कहीं १२ घंटे तक का अंतर दिखाते हो। वाह री तुम्हारी शक्ति—कहीं रात अधिक करते हो, कहीं दिन अधिक, कहीं जाड़ा अधिक, तो कहीं गरमी अधिक। धन्य हो समय!

भवानीदत्त जोशी

× × ×

१०. त्रिपाठी-बंधु

महाकवि भूषण और मतिराम त्रिपाठी-बंधुओं में मुख्य हैं। चिंतामणि इनके बड़े और नीलकंठ (उपनाम जटाशंकर) छोटे भाई जन-श्रुति में प्रसिद्ध हैं। हिंदी-साहित्य के इतिहासकार ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने, तथा मिश्रबंधु-विनोद एवं हिंदी-नवरत्न में हमने, इस जन-श्रुति के आधार पर, इन त्रिपाठी-बंधुओं का समय और संबंध निर्धारित किया था। कुछ दिन हुए, पंडित भागीरथ-प्रसाद दीक्षित ने, वृत्तकौमुदी-नामक संवत् १७५८ के एक ग्रंथ के आधार पर, हमारे विचारों में संदेह प्रकट किया तथा नागरीप्रचारिणी-सभा, काशी के उद्योगी मंत्री बाबू श्यामसुंदरदास ने दीक्षितजी के कथन को आदर दिया है। इसके विषय में, माधुरी में, हमने हाल ही में एक लेख लिखा था, जिसमें दीक्षितजी की शंकाओं पर विचार किया गया था। इन्हीं दिनों याज्ञिकद्वय ने इस विषय पर अपनी भी खोज का फल माधुरी में छपाया है, जिससे दीक्षित महाशय के कथनों का खंडन और हमारे कथनों का बहुत करके मंडन होता है। दीक्षित महाशय की प्रधान आपत्तियाँ ये दो थीं कि भूषण मतिराम के भाई न थे, और वह शिवाजी के राजकवि न होकर उनके पौत्र साहूजी महाराज के राजकवि थे।

हमने अपने उक्त लेख में इस बात के कई कारण दिए हैं कि भूषण शिवाजी महाराज के ही राजकवि थे। शिवाजी के विषय में भूषण ने लिखा भी है—

"देसन-देसन ते गुनी आवत जाचन ताहि;
तिनमें आयो एक कवि भूषन कहियत जाहि।"

बुंदेलखंड के महाराज छत्रसाल संवत् १७०६ में उत्पन्न हुए थे। इन्हें भूषण लालछितिपाल कहते हैं। इससे भी भूषण का जन्मकाल संवत् १७०६ के बहुत पहले का समझ पड़ता है। याज्ञिकद्वय ने भूषण का रचा हुआ दाराशाह का एक छंद लिखा है। दारा का शरीरांत संवत् १७१६ में हुआ था। भूषण-रचित दाराशाह का छंद वर्तमान काल में वर्णित होने और दारा के प्रभाव का पूर्ण कथन करने से संवत् १७१६ से दो-चार साल पहले का ही सिद्ध होगा।

इसी भाँति मिरज़ा राजा जयसिंह के पुत्र महाराजा रामसिंह की प्रशंसा का भी भूषण-रचित एक छंद वर्तमान-काल का कथन करता है। इनका राजत्व-काल संवत् १७२३ से संवत् १७३२ तक है। याज्ञिकद्वय ने चिंतामणि और मतिराम के भी छंद शाहशुजा, शिवाजी, छत्रसाल आदि की प्रशंसा-वर्णन के लिखे हैं। इन बातों से छत्रपति शिवाजी के समय में आप लोगों ने त्रिपाठी-बंधुओं का होना भली भाँति सिद्ध कर दिया है। आपने कई छंद त्रिपाठी-बंधुओं के बहुत ही उपयोगी लिखे हैं, जिनसे हमारे प्राचीन विचारों का बहुत कुछ समर्थन होता है। ऐसे उपयोगी छंद खोज निकालने के लिये याज्ञिकद्वय को हम हृदय से धन्यवाद देते हैं। एक स्थान पर हमने अनुमान किया था कि भूषण को यह उपाधि देनेवाले रुद्रशाह सोलंकी इस घराने के बंधुआने में होंगे। आपने चिंतामणि का एक छंद लिखा है, जिसमें रुद्रशाह का बाबू होना प्रत्यक्ष ही कहा गया है। यथा—

"प्रबल प्रचंड महाबाहु बाबू रुद्रशाह
तासों बैर रचत बचत खल कत है।"

भूषण, मतिराम तथा चिंतामणि का भाई होना भी आपने दो प्राचीन आधारों से सिद्ध किया है, अर्थात् संवत् १८८७ के ग्रंथ वंश-भास्कर से एवं संवत् १८०८ के

ग्रंथ तज़किर-ए-सर्व आज़ाद से। इन दोनों में ये तीनों लोग भाई लिखे हैं । वंशभास्कर भूषण, मतिराम और चिंतामणि को इसी क्रम से बड़ा और छोटा मानता है; किंतु दूसरा ग्रंथ भूषण और मतिराम को यद्यपि चिंतामणि का भाई कहता है, तथापि बड़ाई-छुटाई का निर्देश नहीं करता। वंशभास्कर शिवसिंह-सरोज से केवल ४३ वर्ष पहले का ग्रंथ है । इसलिये समय के विचार से वह सरोज से बहुत पुराना नहीं है। किंवदंती चिंतामणि को बड़ा भाई कहती है, जिसका समर्थन सरोज भी करता है। ऐसी दशा में चिंतामणि को छोटा भाई मानना बहुत दृढ़ नहीं समझ पड़ता। त्रिपाठी-बंधु ज़िला कानपुर के रहनेवाले थे, और शिवसिंह उसी से मिले हुए ज़िला उन्नाव के। इसलिये इनके कथनों के सामने राजपूताने के ग्रंथ वंशभास्कर का कथन आँख मूँदकर नहीं माना जा सकता; क्योंकि अपने देश के मामले दूर के लोग अपने लोगों से अच्छा नहीं जान सकते। कथन दोनों के केवल जनश्रुति पर अवलंबित हैं। यह भी कहा जाता है कि भूषण ने अपनी भावज की लवण-संबंधी कटूक्ति सुनकर ही घर छोड़ा। यह बात याज्ञिकद्वय भी मानते हैं। यदि भूषण के बड़ा भाई ही न होता, तो भावज कहाँ से आती ? इन कारणों से, किसी पुष्टतर प्रमाण के अभाव में, हम चिंतामणि को बड़ा, भूषण को मँझला, मतिराम को सँझला और जटाशंकर को छोटा भाई अब भी मानते हैं। याज्ञिकद्वय का मतिराम के गोद जाने का विचार प्रमाणाभाव से अग्राह्य समझ पड़ता है । वृत्त-कौमुदी किसी दूसरे मतिराम का ग्रंथ जान पड़ता है। यदि फूल-मंजरी इन्हीं मतिराम का मानें, तो इन भाइयों का जन्मकाल और भी पीछे हटता है। फूल-मंजरी संवत् १६८३-८४ में मरनेवाले जहाँगीरशाह की आज्ञा से बनी । यदि यह ग्रंथ अपने मतिराम का मानें, तो उनका जन्मकाल संवत् १६४८ के लगभग जाता है, और भूषण का इससे भी पहले । उधर भूषण संवत् १७७२वाली साहूजी महाराज की चढ़ाई का कथन करते हैं। इसलिये त्रिपाठी-बंधुवाले मतिराम से इतर किसी अन्य मतिराम ने फूल-मंजरी बनाई होगी, ऐसा अनुमान होता है। वंशभास्कर और 'तज़किर-ए-सर्व आज़ाद' में जटाशंकर का नाम न होने से भी शिवसिंह द्वारा लिखित भ्रातृत्व की किंवदंती असिद्ध नहीं ठहरती। जटाशंकर अपने अन्य तीनों भाइयों से बहुत कम नामी थे। इसलिये यदि किसी-किसी ने उनका नाम न लिखा हो, तो आश्चर्य की कोई बात नहीं; और शिवसिंह के द्वारा लिखी हुई भाईपन की कथा जब और बातों से समर्थित होती है, तब केवल इसी में उसके न मानने का कोई विशेष कारण नहीं समझ पड़ता।

संवत् १८७२ में विहारीलाल कवि ने एक ग्रंथ में अपने को मतिराम का प्रपौत्र लिखा है, और अपने पिता तथा पितामह के नाम जगन्नाथ और शीतल बतलाए हैं। आप भी अपने को कश्यप-गोत्री कनवजिया तिवारी बतलाते हैं। यही त्रिपाठी-बंधु का कुल-गोत्र है। संवत् १७६० के लोकनाथ और १७९१ के दास कवि ने भूषण का प्रचुर धन कमाना लिखा है । यथा—

"भूषन निवाज्यो जैसे सिवा महराजजू ने
बारन दे बावन धरा पै जस छात्र है;
बुद्धजू दिवान 'लोकनाथ' कविराज कहैं
दियो इकलौरा पुनि धौलपुर गाँव है।"
"एकन के बहु संपति केसव भूषन ज्यों बरबीर बड़ाई;
दास कवित्तन की चरचा बुधिवंतन को सुखदै सब ठाँई।"

इन छंदों से स्पष्ट है कि भूषण का प्रचुर धन कमाना उन्हीं के समय में प्रसिद्ध था। उक्त कथनों से भूषण और मतिराम का भाई तथा शिवाजी का समकालीन होना भी सिद्ध है। याज्ञिकद्वय का त्रिपाठी-बंधु तथा मिश्रबंधु पर कई उपयोगी छंद खोज निकालने का भारी ऋण है, जिसके लिये एक बार फिर अनेकानेक धन्यवाद दिए जाते हैं। आपने हमारे कुछ कथनों पर संदेह भी प्रकट किया है। अब उन पर भी विचार किया जाता है। आपके ऐसे विचार नीचे लिखे जाते हैं—

(१) मिश्रबंधुओं की बात ही निराली है।

(२) मतिराम के स्वर्ग-वास का संवत् १७७३ माननीय नहीं है। यह मालूम नहीं होता कि मिश्रबंधु ने यह अनुमान किस आधार पर किया है कि मतिराम का बूँदी से संबंध राव बुद्ध के समय तक रहा, और उन्हीं के समय छूटा।

(३) बूँदी-नरेश छत्रसाल का एक छंद, जो मिश्रजी ने भूषण-कृत माना है, वास्तव में चिंतामणि-कृत है।

(४) मिश्रजी ने भूषण-कृत शृंगार-रस का एक ही छंद माना है; किंतु ऐसे छः छंद और हैं। (वे लिखे भी गए हैं)

इन चारों बातों के उत्तर संक्षेप में लिखे जाते हैं—

(१) निरालापन आपने यह दिखलाया है कि हमने भूषण का जन्मकाल एक बार सं० १६६२ मानकर दूसरी बार उसे १६७० के लगभग माना। अपनी सम्मति उचित नई बातों को जानकर बदल देना ही अच्छा है। हमें इसमें कोई निरालापन देख नहीं पड़ता; वरन् हठवाद अनुचित समझ पड़ता है। यदि यथार्थ बात मान लेना हिंदी-लेखकों में निरालापन समझा जाय, तो इसका अर्थ यही निकलेगा कि वह एक असाधारण बात है; अर्थात् हिंदी के अधिकतर लेखक हठवादी हैं, और नई घटनाएँ खुलने पर भी अपने प्राचीन विचार छोड़ने को तैयार नहीं रहते। ऐसा कथन अनुचित है। नई बात ज्ञात होने से प्राचीन विचारों में परिवर्तन सदा ही होना चाहिए। जब खोज से जटाशंकर का अमरेश-विलास ग्रंथ सं० १६६८ का निकला, और जनश्रुति उन्हें भूषण का छोटा भाई मानती थी, जिसे अकारण अशुद्ध कहने को हम तैयार न थे, तब भूषण के जन्म-काल को पीछे हटाए बिना विचार शुद्ध नहीं बैठते थे। पहले सौ साल से ऊपर का जीवन हमने संदिग्ध माना था; किंतु उसे असंभव तब भी नहीं कहा था। जब अन्य पुष्ट प्रमाण मिले, तब उसी बात को संभव मान लिया। इसमें मत-भेद का होना संभव है; किंतु एक बार के लिखे हुए विचार का छोड़ना हम कदापि अनुचित नहीं मानते।

(२) मतिराम ने ललितललाम राव भाऊसिंह की प्रशंसा में बनाया। राव भाऊसिंह का शरीरांत सं० १७४२ में हुआ। रावराजा बुद्धसिंह सं० १७६३ के लगभग गद्दी पर बैठे। उनकी प्रशंसा का भूषण-कृत एक छंद हमने भूषण-ग्रंथावली में लिखा है। एक और ऐसा ही छंद याज्ञिकद्वय ने भी लिखा है। इन बातों से हमने अनुमान किया था कि मतिराम अपने भाई भूषण को अपनी सरकार बूँदी-नरेश के यहाँ ले गए होंगे। याज्ञिकद्वय ने भी एक अच्छा छंद इस किंवदंती को दृढ़ करते हुए लिखा है कि मतिराम भूषण को अपनी अन्य सरकार कुमाऊँ-नरेश उद्योतसिंह के यहाँ ले गए थे। इसी भाँति भूषण के राव बुद्ध की प्रशंसावाले दो छंदों से हमारा अनुमान है कि मतिराम भूषण को बूँदी ले गए होंगे। इसी के पीछे भूषण ने यह छंद लिखा है—

"और रावराजा एक मन में न लाऊँ अब
साहू को सराहौं के सराहौं छत्रसाल को।"

इससे उनके रावराजा बुद्धसिंह से रुष्ट होने की ध्वनि निकलती है। बुद्धसिंह को सं० १७६४ में रावराजा की उपाधि मिली थी। इसी से हमें समझ पड़ा कि मतिराम का संबंध बूँदी से रावराजा बुद्धसिंह के समय तक रहा। रसराज ललितललाम के पीछे का ग्रंथ समझ पड़ता है; क्योंकि वह ललितललाम से प्रौढ़तर है। रसराज को मतिराम ने किसी को अर्पण नहीं किया। इसी से हमें समझ पड़ा कि इसके बनने के समय उनका बूँदी से संबंध नहीं रहा था। भूषण सं० १७७२ तक की घटनाओं का वर्णन करते हैं। इसी से उनका इस काल तक जीवित रहना सिद्ध है। मतिराम भूषण से छोटे होने के कारण उनसे एक साल पीछे तक रहे होंगे, ऐसा अनुमान किया गया था। इसी से उनका मरण-काल सं० १७७३ के लगभग कहा गया था। मतिराम के भी छंद साहूजी तथा छत्रसाल की प्रशंसा में हैं। साहूजी का वैभव सं० १७६४ के पीछे हुआ था। इन कारणों से मतिराम का सं० १७६४ के पीछे तक जीवित रहना सिद्ध ही है। सं० १७७३ का समय केवल अनुमान-मात्र अवश्य है।

(३) जिस छंद के विषय में मत-भेद है, उसका पाठ हमने भूषण-ग्रंथावली में यों लिखा है—

"दारासाहि नौरँग जुरे हैं दोऊ दिल्ली-दल
एकै गए भाजि, एकै गए रुँधि चाल मैं;
बाजी कर कोऊ दगाबाजी करि राखी जेहि
कैसे हू प्रकार प्रान बचत न काल मैं।
हाथी ते उतरि हाड़ा जूझ्यो लोह-लंगर दै
एती लाज कामैं, जेती लाज छत्रसाल मैं;
तन तरवारिन मैं, मन परमेसुर मैं,
प्रान स्वामि-कारज मैं, माथो हर-माल मैं।"

याज्ञिकद्वय के पाठ में मुख्य भेद इतना ही है कि "हाथी ते उतरि हाड़ा जूझ्यो लोह-लंगर दै" के स्थान पर "हाथी ते उतरि हाड़ा लख्यो कवि लालमनि" है। आप कहते हैं, हाथी से उतरकर लड़ने में उसे लोह-लंगर से रोकने की आवश्यकता नहीं रहती। यह कोई बात नहीं है। हाथी छोड़ने पर भाग न जाय, और युद्ध के पीछे सवारी के काम आवे, अथवा उसकी आड़ से युद्ध किया जाय, इसलिये उतरने पर भी लोह-लंगर लगाने की आवश्यकता पड़ सकती थी। हमने जो पाठ लिखा है, वह बंगवासी-प्रेस, कलकत्ता तथा श्रीकल्पतरु-प्रेस, बंबई की प्रतियों में

मिला था। यदि यह छंद भूषण-कृत न होकर चिंतामणि-कृत होता, तो उक्त प्रतियों में भूषण-कृत छत्रसाल-दशक में स्थान ही क्यों पाता ? इन कारणों से हमको अपने लिखे हुए पाठ में कोई अशुद्धता नहीं देख पड़ती।

(४) भूषण-कृत श्रृंगार-रस का एक ही छंद हमको मिला था। भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है, और इसके विविध प्रांत आपस में बड़ी दूरियों पर हैं। अतएव जो बात एक प्रांत में बहुत सुगमता से प्राप्त होती है, वही कभी-कभी दूसरे प्रांत में अप्राप्य रहती है। यदि याज्ञिक-द्वय द्वारा उद्धृत भूषण के श्रृंगार-रस के छंद त्रिपाठी-बंधु-वाले भूषण के हों, तो बड़ी प्रसन्नता की बात है। आपने इन महाकवियों के कई अच्छे-अच्छे तथा हम लोगों को अद्यावधि अज्ञात छंद प्रकाशित किए हैं। वर्तमान समय में हिंदी-लेखकों की संख्या बढ़ रही है, और हमारे महा-कवियों पर उन लोगों की दृष्टि भी अच्छी है। इनके विषय में लोगों का ध्यान आकृष्ट करने को हमने इन बीस-पचीस वर्षों में कई बार कई पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आजकल, बहुत दिन पीछे, इस विषय पर हमारे लेखकों ने ध्यान दिया है। यदि इसी प्रकार की लिखा-पढ़ी भविष्य में भी रही, तो अन्य कवियों के विषय में भी अच्छी ज्ञान-वृद्धि हो जायगी।

याज्ञिक महाशयों ने सम्मन कवि के विषय में लिखा है कि उनके कुछ दोहे सं० १७२० के संग्रह-ग्रंथ दोहासार में हैं। हमने विनोद में सम्मन का समय सं० १८३४ तथा १८६० जो लिखा है, वह जहाँ तक हमें स्मरण है, शिवसिंह-सरोज के आधार पर लिखा गया है। यदि दोहा-सार सचमुच सं० १७२० का ग्रंथ हो, तो सम्मन का समय पीछे हटेगा। उनके विषय में हमें कुछ विशेष कहना नहीं है।

मिश्रबंधु

× × ×

११. तू ही है

ऊषा के विस्तृत अंचल में तेरा भरा हुआ आलोक ;
सकल विश्व-वस्तुओं बीच है तेरी नहीं कहीं पर रोक।
चढ़ता है पतंग गगनांगन में पाकर तेरा आदेश ;
तेरी दिव्य कांति निधि पाकर तेज-पुंज बन रहा दिनेश।
नूतन कलियों के विकास में है तेरा ही मृदुमय हास ;
मुकुलित फूलों की सुगंध में तेरी मिलती सुखमय वास।
तेरी छटा छूटती है उस दिव्य दामिनी-दर्शन में ;
अट्टहास वह तेरा है नव नील-जलद के गर्जन में।
अविरल गिरि-प्रपात-स्वर में है तेरा मिलता अनुपम राग ;
पहन पीत पट मूर्तिमान है तुही फूल में और पराग।
कल-कल कालिंदी-कलरव में वीणा-अधर-जनित झंकार ;
सुना-सुनाकर तुही निरंतर करता है श्रम का संचार।
पत्र, हमारी इसी लेखनी में, मसि में बनकर अनजान ;
तुही लिखाता है—मुझमें कुछ शक्ति नहीं—हे कृपानिधान।
जगत्-जीव, जग-जनित वस्तुओं में, जग में तेरा आगार ;
जल में, थल में, अचल और चल में हो सदा विश्व साकार।
तो अब हमें बता दे, क्यों हम विश्व-विमुख होकर हे नाथ,
तुझे और ही ठौर ढूँढ़ते हैं तजकर तेरा ही साथ।

"सहिष्णु"

× × ×

१२. पतंग

ख़ुद जला, लेकिन फ़ुज़ूँ की रौनक़े-हुस्ने-शमा ;
इक नज़ीरे आशिक़े-सादिक़ है पर्वाना मेरा।

शाम का झुटपुटा हो चला था। आज उनके आने की पक्की ख़बर थी। मैं उनके कमरे को सजाने जा रही थी। मेरे हाथ में एक दीपक था। उसे मैंने बड़ी सावधानी से आँचल के भीतर छिपा लिया था। हवा चल रही थी, डर था, कहीं बुझ न जाय।

इतने में न-जाने कहाँ से एक पतंग आ गया। वह दीपक के चारों ओर मँडलाने लगा। मैंने उस पर दया करके कहा—"चला जा रे! क्यों मरने आया है? व्यर्थ ही जल जायगा।"

पर पतंग ने न माना, बराबर उड़ता ही रहा। वह मानो मेरी ख़ुशामद कर रहा था। मैंने क्रोध में भरकर कहा—"यह दीपक मेरा है। तेरा इस पर क्या अधिकार?"

कंबख़्त की ढिठाई तो देखो। मेरे मुँह के पास आकर गुनगुनाने लगा। शायद कह रहा था—"हाँ, दीपक तुम्हारा ही है। पर क्षण-भर के लिये मुझे भी इसमें जल मरने दो। दया करो ; मेरे दिल की यही एक छोटी-सी हसरत है—इसे पूरा कर लेने दो। मेरे इस निष्फल जीवन का—जानते हो—यही निष्कर्ष है कि मैं अपने को जलाकर प्रियतम के सौंदर्य की श्री-वृद्धि करूँ।"

उसकी यह हरकत मुझे अच्छी न लगी। मैंने उसे बहुतेरा झिड़का, और कोसा; पर वह न हटा। मैं एकदम

झला उठी। अपने दाहने हाथ से उसे झटक दिया। बेचारी नन्ही-सी जान थी, अँधेरे में कहीं विलीन हो गई।

सखी री! मैं कब से उनका इंतज़ार कर रही हूँ। थककर बिलकुल अधीर हो गई हूँ। पर हाय, अब तू यह सुनाने आई है कि वह न आवेंगे। समझी, प्राणनाथ, तुम्हारे इस क्रोध का कारण मैं समझी! सचमुच मैं तुम्हारे अयोग्य हूँ।

हे मेरे छोटे-से निस्स्वार्थ गुरुदेव, मुझे क्षमा करना। तुम मुझे सच्चे प्रेम की शिक्षा देने आए थे; पर मैंने तुम्हारा अपमान किया। आओ, आओ, अब हम-तुम, दोनों एकसाथ जलें। यह छोटा-सा टिमटिमाता हुआ दीपक तुम्हारे लिये है, तुम इसमें जल मरो। और मैं?—मैं जलूँगी अपने अपमानित प्रेम की अग्नि में। अंतर केवल इतना है कि तुम क्षण-भर में जलकर प्रियतम की गोद में सो जाओगे, और मैं न-जाने कब तक, शायद अनंत काल तक, यों ही धीरे-धीरे सुलगती रहूँगी!

"अज्ञात"

× × ×

१३. दोस्तों की पहचान

हम लोग जब कभी किसी मित्र से रास्ते में मिलते हैं, तो हँसते हुए हाथ जोड़ते या सलाम करते और इस प्रकार अपनी मित्रता का परिचय देते हैं। परंतु 'साउथ सी आइलैंड' का निवासी जब अपने किसी मित्र को देखता है, तो उसके सिर पर एक लोटा पानी उँडेल देता और उसे सिर से पैर तक तर करके अपनी मित्रता का चिह्न दिखाता है। मध्य-आफ़्रिका में एक जाति के लोग किसी मित्र से मार्ग में मुलाक़ात हो जाने पर उसका कपड़ा उतार लेते और अपने बदन में लपेट लेते हैं। गोल्ड कोस्ट के निवासी मित्र को देख अपनी चादर उतार बाँह पर लटका लेते हैं। मोरक्को के निवासी अगर घोड़े पर सवार अपने किसी पैदल दोस्त के सामने पहुँचते हैं, तो एकदम सरपट घोड़ा दौड़ाते और उसके सिर पर पहुँच एकाएक घोड़ा रोक पिस्तौल छोड़ते हैं। अँगरेज़ मित्र को देख टोपी उतार लेते हैं। चीन-निवासी टोपी न पहने हों, तो पहन लेते हैं। जापान-निवासी दोस्त को देख जूता उतारते हैं। मंडाले में अगर आपका बर्मा के राजा से सामना हो जाय, तो आपको तुरंत जूता उतार देना पड़ेगा। फ़ारस के शाह के सामने आप नंगे पैर ही जा सकेंगे। चिटागांग के रहनेवाले मित्र से मिलने पर उसके गाल पर अपनी नाक रगड़कर ज़ोर से साँस खींचते हैं। मंगोलिया-निवासी मित्रों के गाल सूँघते हैं। अरब में मित्रों के घुटने या पैर चूमने की चाल है। ब्रेज़िल में ज़ूपी-नामक एक जाति है। उस जाति का मनुष्य किसी मित्र के घर आने पर उसको एक कुर्सी दे देता और चुपचाप बैठा रहता है। कई मिनटों के बाद वह ज़ोर से चिल्लाकर पूछता है—"तुम अभी हो"; मानो उसे उसके अस्तित्व में ही संदेह हो। इसके बाद फिर दोनों मित्रों में बात-चीत शुरू होती है।

छन्नूलाल द्विवेदी

× × ×

१४. "पंजासाहब"

भाद्रपद की माधुरी में इस विषय का मेरा लेख छपा है। पंजासाहब की स्थापना का ठीक-ठीक कारण यह बतलाया जाता है कि जिस समय गुरु नानक साहब हसनअबदाल पहुँचे, उस समय जंगल इत्यादि बहुत थे, और जल का कहीं नाम-निशान तक न था, केवल 'वली कंधारी' पर एक चश्मा था, जो तीन कोस ऊँची पहाड़ी पर था। गुरु नानक साहब के साथ भाई मरदाना रबाबी था। उसको प्यास ने बहुत सताया। पर जल न मिलने से उसको वली कंधारी जाना पड़ा, जहाँ पर उस स्थान के फ़क़ीर ने जल देने से इनकार कर दिया। वह दूसरी दफ़े गया, फिर भी जल न मिला। तीसरी दफ़े फिर गुरु नानक साहब ने उसको भेजा, और सविनय प्रार्थना की कि जल दे दे। परंतु उस फ़क़ीर ने यही उत्तर दिया कि यदि गुरु नानक साहब में कोई शक्ति है, तो वह जल क्यों नहीं वहीं से पिलाता? अगर फिर तू आया, तो मैं तुझे मार डालूँगा। जब वह बात गुरु नानक साहब को मालूम हुई, तो उन्होंने अपनी शक्ति से जल को नीचे खींच लिया, और उस दिन से नीचे जल-ही-जल हो गया। फ़क़ीर को इस पर बहुत क्रोध आया। उसने ऊपर से पहाड़ को ढकेल दिया, और गुरु नानक साहब ने अपने दाहने हाथ में उस पहाड़ को रोक लिया। तब से इस पंजे का निशान हो गया, और इस शहर का नाम पंजासाहब रक्खा गया।

पिछले लेख में जो कुछ कारण लिखा गया था, वह

ग़ैर मज़हब के लोगों से सुना हुआ होने के कारण प्रामाणिक न था। यह कारण सिख-भाइयों से सुना होने के कारण प्रामाणिक है।

जयदेव-राजपाल

× × ×

१५. रम्य रेवा

मेकल की मौजी कन्या है, धन्या है चौदह लोकों में,
फल चार विश्व के बहते हैं, रेवा, तेरे जल-ढोकों में।
'कंटक' से 'अमर' कहाने को तूने तन काट बहाया है,
भूधर-असुरों को चूर-चूर कर 'नूर' जगत् में छाया है।
तू सरिता है अमृत-भरिता, हरती जड़ता, शठता है तू,
तू करती है कल्याण सदा, भरती ममता, समता है तू।
भृगु-क्षेत्र भले भोले ब्रह्मा, ब्राह्मण सुब्रह्म का थाना है;
ओंकार-अंक में अंबा का देखा भरपूर ख़ज़ाना है।
अमल कमल-से धवल उपल ये छाती पर छितराए हैं;
हैं मणि-मोती भंडार भरे, जो तेरा मुकुट सजाए हैं।
धवल धार तेरी तरणी धरणी पर है भव-सागर में;
तू नहीं समाती सागर में, पर भर जाती है गागर में।
तू 'सीपी' में बहनेवाली 'सागर' की शान बढ़ाती है;
भ्रम-भीति भयानक हरती है, भीषण भव-भार घटाती है।
प्रिये अंक के कंकर शंकर त्रिभुवन-नाथ कहाते हैं;
कल्प-वृक्ष तेरे तट के तिनके तरुवर बन जाते हैं।
ये बिंदु सिंधु के सानी हैं, कनिका मनिका से भारी हैं;
आवर्त मृत्यु के अंतक हैं, जल-सीकर जीवन-धारी हैं।
लीलामय, लोल लहरवाली, लोचन-ललाम सुखकारी है;
धारा-प्रवाह में जीवन के तेरी यह धारा प्यारी है।

नरसिंहदास अग्रवाल

× × ×

१६. कर्बला

मित्रवर श्रीयुक्त रामचंद्र टंडन ने मेरे 'कर्बला'-नामी ड्रामा की आलोचना करते हुए यह शंका प्रकट की है कि इस नाटक में हिंदू-पात्र क्यों लाए गए। उनका कथन है—"हिंदू-पात्रों के समावेश से न हिंदुओं को प्रसन्नता होगी, न मुसलमानों को तुष्टि, इसलिये हिंदू-पात्र न लाए जाते, तो कोई हानि न होती।" यह ड्रामा ऐतिहासिक है, और इतिहास से यह पता चलता है कि कर्बला के संग्राम में कुछ हिंदू-योद्धाओं ने भी हज़रत हुसैन का पक्ष लेकर प्राणोत्सर्ग किए थे, अतः उन पात्रों का बहिष्कार करना किसी भाँति युक्तिसंगत न होता। रही यह बात कि उनके समावेश से हिंदू और मुसलमान, दो में से एक को भी प्रसन्नता न होगी, इसके लिये लेखक क्यों कुसूरवार ठहराया जाय? आज हिंदू और मुसलमान, दोनो जातियों में वैमनस्य है, इसलिये संभव है कि ऐसे मिश्रित दृश्य रुचिकर न हों; लेकिन ज़रा ग़ौर से देखिए, तो इस दृश्य में ऐसी कोई बात नहीं है, जिस पर किसी हिंदू या मुसलमान को आपत्ति हो। हिंदू-जाति यदि अपने पुरखाओं को किसी धर्म-संग्राम में आत्मोत्सर्ग करते हुए देखकर प्रसन्न न हो, तो सिवा इसके और क्या कहा जा सकता है कि हममें वीर-पूजा की भावना भी नहीं रही, जो किसी जाति के अधःपतन का अंतिम लक्षण है। जब तक हम अर्जुन, प्रताप, शिवाजी आदि वीरों की पूजा और उनकी कीर्ति पर गर्व करते हैं, तब तक हमारे पुनरुद्धार की कुछ आशा हो सकती है। जिस दिन हम इतने जाति-गौरव-शून्य हो जायँगे कि अपने पूर्वजों की अमर कीर्ति पर आपत्ति करने लगें, उस दिन हमारे लिये कोई आशा न रहेगी। हम तो उस चित्त-वृत्ति की कल्पना करने में भी असमर्थ हैं, जो हमारे अतीत गौरव की ओर इतनी उदासीन हो। हमारा तो अनुमान है कि हिंदू इच्छा न रहने पर भी इस बात से प्रसन्न होंगे और उस पर गर्व करेंगे। हाँ, मुसलमानों की तुष्टि के विषय में हम निश्चयात्मक-रूप से कुछ नहीं कह सकते। लेकिन, चूँकि मुसलमान लेखकों ने यह अन्वेषण किया है, और उन्हीं के आधार पर हमने हिंदू-पात्रों का समावेश किया है, इसलिये इस विषय में शंका करने के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता कि मुसलमान तुष्ट होंगे। यदि मुसलमानों को एक महान् संकट में आर्यों से सहायता पाने पर खेद होता, तो वह इसका उल्लेख ही क्यों करते। आजकल की समुन्नत जातियाँ भी संकट के अवसर पर दी गई सहायता का एहसान मानने में अपना अपमान नहीं समझतीं। फिर कोई कारण नहीं कि मुसलमान क्यों आर्यों की प्राणपण से दी गई सहायता का अनादर करें। हाँ, यदि हिंदू लोग आज उस एहसान के बल पर मुसलमानों के सामने शेख़ी बघारने लगें, तो संभव है, मुसलमानों के मन में कृतज्ञता की जगह द्वेष का भाव उत्पन्न हो जाय, और वे उस घटना को भूल जाने की चेष्टा करने लगें।

समालोचक महोदय को दूसरी शंका यह हुई है कि यदि आर्यों का अरब में जाकर बसना मान लिया जाय,

तो यह क्योंकर हो सकता है कि महाभारत-काल से हुसेन के समय तक वे लोग अपने धार्मिक आचार-विचार की रक्षा कर सके, कैसे मंदिर बनवा सके, कैसे रियासत बना सके, अतएव उनकी वेष-भूषा तथा भाषा भी अरबों ही से मिलनी चाहिए थी। अरब-जैसी मूर्ति-विध्वंसक जाति के बीच में रहकर वे कैसे अपनी जातीयता का पालन कर सके?

हमारे मित्र को मालूम होगा कि महाभारत-काल में अरब या ईरान आर्यों के लिये कोई अपरिचित स्थान न थे। परस्पर गमनागमन होता रहता था। उस समय मुसलमान-धर्म का जन्म न हुआ था, और अरब-जाति मूर्ति-पूजा में रत थी। एक नहीं, अनेक देवतों की पूजा होती थी। बहुत संभव है, उनकी वेष-भूषा भी आर्यों से मिलती-जुलती रही हो। सिदियन, हूण, कुशन आदि जातियाँ उत्तर-पच्छिम से आकर आर्यों में सम्मिलित हो गई। इससे प्रकट होता है कि उस समय उनमें और आर्यों में विशेष सादृश्य था। कम-से-कम यह अनुमान किया जा सकता है कि आर्यों और अरबों में उतनी विभिन्नता न थी, जितनी इस समय है। हुसेन के समय तक मुसलमान-धर्म का प्रादुर्भाव हुए ५० वर्ष से अधिक न हुए थे। उस वक्त तक ईरान भी पूर्ण रीति से मुसलमान-सेनाओं के सामने परास्त न हुआ था। जब हम जानते हैं कि महाभारत-काल में प्रतिमा-पूजा का प्रचार न हुआ था, और इसका कोई प्रमाण नहीं कि अश्वत्थामा के अरब-निवासी वंशज मूर्ति-पूजक थे, तो मुसलमानों को उनसे ख़्वामख़्वाह लड़ने का क्या कारण हो सकता था? ऐसी दशा में यदि वे आर्य अपने आचरण का पालन कर सके, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। उनका नामकरण हमने नहीं किया है, हमने उनके वही नाम लिख दिए हैं, जो हमें इतिहास में मिले। यह इस बात की एक और दलील है कि इतना ज़माना गुज़रने पर भी वे आर्य-वीर अपनी वंशपरंपरा को भूले न थे। जब हम देखते हैं कि पारसी-जाति शताब्दियों से भारतवर्ष में रहने पर भी अपने धर्म और आचरण को निभाती चली जाती है, तो आर्यों के विषय में ऐसी शंका करना सर्वथा निर्मूल है।

प्रेमचंद

१. भावी युद्ध

संसार के बहुत-से मनुष्य युद्ध के नाम से नाक-भौं सिकोड़ने लगे हैं; किंतु राज्यलोलुप जातियों के सिर पर युद्ध का भूत सदा सवार रहता है। वे युद्ध-संबंधी नई-नई सामग्रियों के आविष्कार में सदा लगी रहती हैं। बुद्धिमानी और बहादुरी इसी में है कि बिना एक भी मनुष्य का संहार किए युद्ध में विजय प्राप्त की जाय। इसलिये ये जातियाँ ऐसे आविष्कारकों को प्रश्रय देती हैं, जो शत्रु के नाश के लिये नई-नई चीज़ों और ढंगों का आविष्कार करते हैं। सभ्यता ज्यों-ज्यों उन्नति करती जायगी, त्यों-त्यों मनुष्य शत्रु से दूर रहकर ही युद्ध करने में अपनी कुशल समझेंगे। असभ्य युग के मनुष्य हाथापाई से युद्ध करते थे। उसके बाद लोग गदा, तलवार, लाठी आदि का व्यवहार करने लगे। फिर धनुष-बाण का समय आया। उसके बाद बंदूक़, तोप आदि का आविष्कार हुआ। अब तो उनका भी समय जाता रहा—रेडियो का समय आया है।

हम लोग अपने प्राचीन ग्रंथों में पढ़ते हैं कि प्राचीन समय के योद्धा द्वंद्व-युद्ध में ऐसे ही अस्त्रों का व्यवहार करते थे। चालकों में जिनकी बुद्धि अधिक होती थी, वे ही विजय पाते थे। अर्जुन व अश्वत्थामा का युद्ध प्रसिद्ध है। इसमें अश्वत्थामा की हार इसीलिये हुई कि वह ब्रह्मास्त्र को शांत करने तथा लौटाने की शक्ति नहीं रखते थे। वीर लोगों के ऐसे युद्ध में कोई अग्न्यस्त्र द्वारा अग्नि उत्पन्न करता था, तो दूसरा वारुणास्त्र द्वारा उसे शांत करता था। एक सर्पास्त्र छोड़कर चारों तरफ़ सर्पों को उत्पन्न करता था, तो उसका विपक्षी गरुड़ास्त्र द्वारा सर्पों का नाश करता था। जो कोई अपनी रक्षा का उपाय नहीं जानता था, वही हारता था।

इस युग में रेडियो द्वारा भी प्रायः इसी तरह का युद्ध होगा। वह यांत्रिक योद्धाओं (Mechanical Soldiers) की सेना युद्ध-क्षेत्र में भेजेगा, तथा उन्हीं के द्वारा युद्ध करावेगा। लोग अभी इसे कपोल-कल्पना कह सकते हैं; किंतु जब हम लोग यह देखते हैं कि रेडियो नाविक-रहित जहाज़ और वायुयान का संचालन कर सकता है, तब सैनिक-रहित युद्ध भी उसके द्वारा होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। एक वर्ष के लगभग हुआ, फ़्रांसवालों ने चालक-रहित वायुयान ज़मीन से हवा में उड़ाया था। उस वायुयान पर एक भी जीवित मनुष्य न था। वह रेडियो की सहायता से उसी प्रकार उड़ा, जैसे कोई मनुष्य ही चला रहा हो। उसका चालक था तो ज़मीन ही पर, किंतु वायुयान हर समय, हर जगह उसके क़ब्ज़े में रहा। इंजीनियरों ने यह भी बतलाया है कि वायुयान से इच्छानुसार गोला बरसाना भी संभव है।

रेडियो का सैनिक

भविष्य में लड़ाकू वायुयानों को ज़मीन पर बैठकर इंजीनियर नहीं चलावेंगे। ये मनुष्य-रहित लड़ाकू वायुयान एक दूसरे वायुयान द्वारा चालित होंगे, जो उनके पीछे होगा। इसी पर बैठकर एक मनुष्य युद्ध में गए हुए कई वायुयानों को चला सकेगा, उनसे गोला बरसा सकेगा, शत्रुओं पर आक्रमण करने का हुक्म देगा, और शत्रु-सेना के नष्ट हो जाने पर उसे अपने स्थान पर लौटा लावेगा। कुछ ही मनुष्य आसानी से सौ-सौ वायुयानों की देख-रेख रख सकेंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह देख-रेख रेडियो द्वारा ही होगी।

एक वर्ष से कुछ ऊपर की बात है, जब अमेरिकावालों ने नाविक-रहित लड़ाकू जहाज़ों को समुद्र में भेजकर यह सिद्ध कर दिया कि इस्पात के बने जलयान भी रेडियो की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते। 'आयोवा'-नामक जहाज़ के 'बायलर' रेडियो द्वारा ही झोंके जाते थे। जहाज़ को चलाना, घुमाना आदि काम रेडियो द्वारा ही होते थे। पीछे से जाता हुआ एक जहाज़ 'आयोवा' की चाल पर नज़र रखता था। जब 'आयोवा' इस जहाज़ की दृष्टि से ओझल हो गया, तो एक वायुयान इशारे से चालक व्यक्ति को उसकी गति का पता बताने लगा। 'आयोवा' को देखने से जान पड़ता था कि कोई कैप्टेन उसको चला रहा है। किंतु असल में उस पर एक भी व्यक्ति नहीं था।

Science and Invention-नामक पत्र के संपादक डॉक्टर H. Gernback ने रेडियो द्वारा चालित एक यांत्रिक पुलीस (Radio Police Automation) की बात सुनाई है। यह यंत्र भीड़ को तितर-बितर करने की क्षमता रखता और लड़ाई में सैनिकों का काम कर सकता है। इन सैनिकों को न डर है, न वे पीछे हटना जानते हैं। उनके लिये न खाई खोदने की आवश्यकता है, न किसी प्रकार के बचाव की। बंदूक़ की गोली उनके शरीर पर असर नहीं करती; ज़हरीली गैस उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। केवल शक्तिशाली तोप, नदी या मज़बूत बेड़े उनकी गति को रोक सकते हैं।

इस यंत्र में २० से लेकर ६० घोड़ों तक की शक्ति का एक पेट्रोल-एंजिन लगा हुआ है। इसी एंजिन के द्वारा यह चलता और हाथ-पैर हिलाता है। रेडियो की सहायता से यह एंजिन चलाया जाता है। इसे जो कुछ आज्ञा देनी हो, रेडियो द्वारा दीजिए; यह तुरंत उसका पालन करेगा। यह ज़हरीली गैस का भी प्रयोग कर सकता है। चित्र में पाठक इसकी शकल देखें। यह मनुष्य-सा है। इसके दो पैर और दो हाथ हैं। अपने पेट में एंजिन और गैस का भंडार भरे रहता है। आँखों की जगह पर इसमें एक बत्ती लगी हुई है। मनुष्य से कैसी अद्भुत समता है?

× × ×

२. मंगल के मनुष्य

'माधुरी' के आश्विन के अंक में मैंने शुक्र-निवासियों के विषय में कुछ लिखा था। इस बार मंगल-वासी मनुष्यों के विषय में सुनिए। मंगल आकार में पृथ्वी से छोटा है, इसलिये उसके ठंडे होने में पृथ्वी से बहुत कम समय लगा होगा। आजकल पृथ्वी जिस अवस्था में है, उस अवस्था को मंगल लाखों वर्ष पहले ही पार कर चुका है। इसलिये दोनों ग्रहों के जल-वायु में समता नहीं है। मंगल में एक प्रकार से वायु का अभाव-सा है। किंतु

इसमें संदेह करने का स्थान नहीं कि एक समय वह भी वायु से इसी प्रकार घिरा हुआ था, जैसे पृथ्वी। समय पाकर उसका लोप होता गया, और अब शायद वहाँ उतनी ही पतली वायु है, जितनी पतली हिमालय की चोटी पर। इसका अर्थ यही हो सकता है कि वायु की कमी के कारण वहाँ के निवासियों के हृदय बहुत बड़े हो गए होंगे। इसे आप केवल सिद्धांत ही न समझिए। पृथ्वी पर भी इस बात की परीक्षा हो चुकी है कि जो मनुष्य पतली वायु में रहते हैं, उनका हृदय साधारण मनुष्यों के हृदय से बड़ा होता है। प्रो० जे० बारक्राफ़्ट ने Cholas Indians के (जो पेरूवियन पहाड़ में १२,००० फ़ीट की ऊँचाई पर रहते हैं) हृदय की परीक्षा की थी, और इस नतीजे पर पहुँचे थे कि उनका हृदय साधारण मनुष्यों के हृदय से बड़ा होता है। साधारण हृदय ७६ सेंटिमीटर का और उन 'चोलों' का हृदय ६२ सेंटिमीटर का होता है।
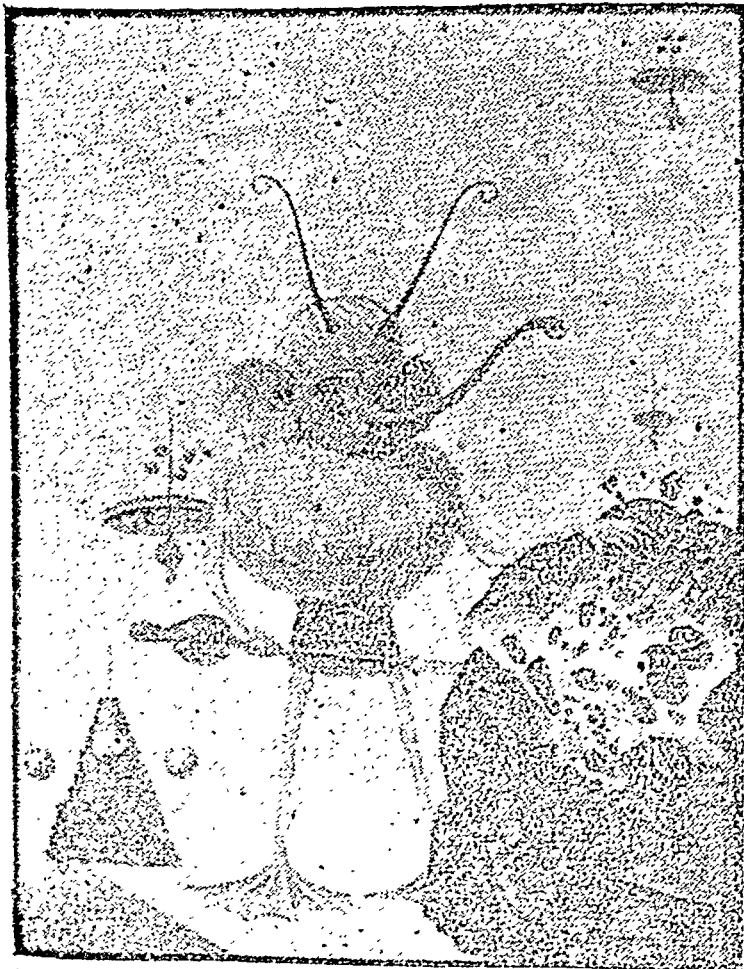
मंगल-वासी मनुष्य का एक आदर्श

मंगल का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से कम है; क्योंकि वह पृथ्वी से बहुत छोटा है। पृथ्वी पर जिस मनुष्य का वज़न १५० पौंड है, उसका वज़न मंगल पर केवल ५३ पौंड ही होगा। जितनी चेष्टा से मनुष्य ४ फ़ीट कूद सकता है, उतनी ही चेष्टा से एक मंगल-निवासी ११ फ़ीट कूद सकता है। जिस शक्ति से मनुष्य केवल २०० पौंड का बोझ उठा सकता है, उतनी ही शक्ति लगाकर मंगल के वाशिंदे ५६४ पौंड का बोझ उठा सकते हैं।

मंगल में गुरुत्वाकर्षण इतना कम है कि यदि वहाँ मनुष्य रहते हों, तो वे १५-२० फ़ीट लंबे होते होंगे। सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँच जाने के कारण शायद ही वे हाथ से कोई काम करते हों। उनके अधिकांश काम मशीनों द्वारा होते होंगे। उनके हाथ भी सूख गए होंगे, और हड्डी के ढाँचे पर चमड़े के आवरण के अतिरिक्त और कुछ भी न होगा। उनके पैर भी हाथों ही के समान केवल हड्डी का ढाँचा-भर रह गए होंगे। कारण, उनसे चलने का काम बहुत कम लिया जाता होगा। मशीनें ही उनको एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती होंगी।

मैं ऊपर लिख आया हूँ कि मंगल का वायु-मंडल बड़ा पतला है। इसलिये वहाँ गंध का अनुभव करना कठिन है। पतली हवा में गंध की चाल बड़ी धीमी होती है। इसलिये मंगल-वासी को गंध ही के पास जाना पड़ता है, गंध उसके पास नहीं आती; अतएव उसकी नाक हाथी की सूँड-जैसी होती है। शब्द-संचालन भी पतली वायु में बड़ी धीमी गति से होता है। मंगल-वासी लोग शब्द ग्रहण करने के लिये बड़े-बड़े कानों से सुसज्जित रहते होंगे। मंगल-वासियों की आँखें निकली हुई या उभरी हुई होती होंगी; क्योंकि वहाँ की विषुवत्-रेखा के पास भी बर्फ़ जमी रहती होगी। इसलिये उनके शरीर का घने बालों से ढका रहना संभव है। ये बाल उनके शरीर को गरम रखकर ठंडक से उनकी रक्षा करते होंगे। उनके सिर में दो सींग भी होंगे, जिनकी तुलना हम अपने 'टेलीपैथिक आर्गन' से कर सकते हैं।

यह तो हुई वैज्ञानिकों के अनुमान की बात। पर असल में ईश्वर ही जानें, मंगल में मनुष्य रहते हैं, या नहीं; और यदि रहते हैं, तो उनका आकार कैसा है। पाठकों के मनोविनोदार्थ यहाँ शुक्र के वाशिंदे पशु का भी एक चित्र दिया जाता है। उसकी तुलना मंगल के मनुष्य के साथ
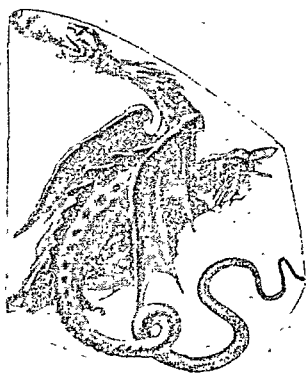
शुक्र में रहनेवाला पशु

करके वे देख सकते हैं कि दोनों में कितनी विषमता या अंतर है। मनुष्य से उनकी तुलना ही नहीं हो सकती। मंगल के मनुष्य पृथ्वी के मनुष्यों से पहले के और शुक्र के मनुष्य पीछे के हैं।

× × ×

३. अग्नि-वर्षा

मैं H. Grindell-Mathews की 'मृत्यु-किरण' (*Death rays*) के विषय में पहले लिख चुका हूँ। उसी का प्रतिद्वंद्वी "Death rocket" के रूप में प्रकट हुआ है। इसके आविष्कारक आरनेस्ट वेल्स हैं। आप इँगलैंड के रहनेवाले हैं। इस यंत्र का व्यवहार आक्रमण तथा बचाव, दोनों कामों में हो सकता है। यह आक्रमणकारियों पर गले हुए धातुओं की अग्नि-वर्षा कर बात-की-बात में उन्हें नेस्त-नाबूद कर दे सकता है। यह गोला आकाश में बहुत ऊँचा जाकर स्वयं फट पड़ता है, और इससे गली हुई धातु निकलकर प्रायः १०० घन-गज़ पर गिरती है। इस सीमा के भीतर जितने पदार्थ होते हैं, उनमें आग लग जाती है, और वे थोड़ी ही देर में जलकर ख़ाक हो जाते हैं। गोला पाँच मील ऊँचा हवा में जा सकता है। इसे आकाश में भेजने के लिये एक विशेष प्रकार के यंत्र की आवश्यकता होती है।

आरनेस्ट वेल्स और उनका नवाविष्कृत गोला
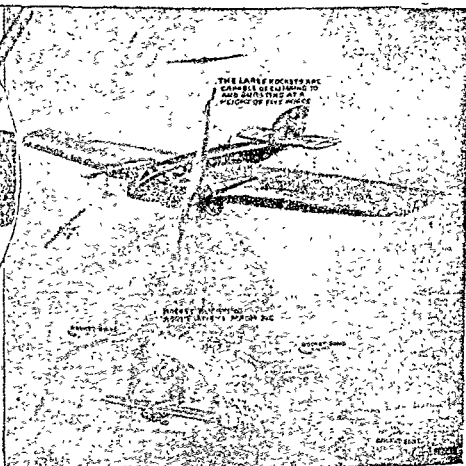
अग्नि-वर्षा का एक दृश्य

अब तक ऐसा कोई अचूक गोला नहीं तैयार हुआ था, जो वायुयानों को नष्ट कर सके। सभी राष्ट्र वायुयानों के डर से काँपते थे; क्योंकि उनके पास उससे त्राण पाने का कोई अच्छा साधन नहीं था। सभी शक्तिशाली राष्ट्र ऐसे साधन की खोज में थे। अंत में मि० वेल्स ने यह गोला तैयार ही कर डाला। इसने वायुयान के डर को बहुत कुछ दूर कर दिया है; क्योंकि उक्त गोले द्वारा बड़ी आसानी से वायुयान नष्ट-भ्रष्ट किए जा सकते हैं। अब मि० वेल्स इस बात की खोज में लगे हैं कि यदि उनका गोला किसी शहर के ऊपर उड़ते हुए वायुयान पर छोड़ा जाय, तो वह केवल वायुयान को ही नष्ट कर सके; नीचे के मनुष्यों, घरों आदि पर उसका हानिकारक प्रभाव न पड़े।

देखें अभी मृत्यु के और कितने साधन आविष्कृत होते हैं!

× × ×

४. पारे से सोना

जिस दिन से रसायन-शास्त्र की उत्पत्ति हुई, उसी दिन से उस शास्त्र के ज्ञाता घटिया धातुओं से सोना-चाँदी बनाने की फ़िक्र तथा चेष्टा में लगे हैं। इसके

प्रो० मिथ

पहले बहुत-से विद्वानों ने प्रकाशित कराया था कि वे ऐसा कर सकते हैं; किंतु जनता के सामने उन्होंने अपनी करामात नहीं दिखलाई, या दिखलाई भी, तो असफल ही रहे। अब फिर जर्मनी से ख़बर आई है कि बर्लिन-टेकनिकल स्कूल के प्रो० मिथ ने पारे से सोना बनाने में सफलता पाई है। उन्होंने जितना सोना बनाया है, उसका मूल्य चार रुपए से अधिक न होगा। आजकल के वैज्ञानिकों ने पदार्थों की बनावट की जो धारणा कर रक्खी है, उसके अनुसार यह असंभव भी नहीं कहा जा सकता। किंतु इस सफलता से अभी कोई आर्थिक लाभ नहीं देख पड़ता। कारण, चार रुपए का सोना बनाने में यदि ६,००,०००) रु० ख़र्च हो जायँ, तो कौन-सी बुद्धिमानी हुई? इस हिसाब से एक पौंड सोना बनाने में तीन करोड़ रुपए लगेंगे। अस्तु।

जिस प्रक्रिया द्वारा यह परिवर्तन होता है, उसका ज़िक्र यदि थोड़े में लिख दूँ, तो पाठकों का मनोरंजन होगा। पारा विद्युत्भट्ठी की असाधारण गरमी में डाल दिया जाता है, जिससे उसके परमाणुओं के 'इलेक्ट्रोन' टूटकर अलग हो जाते और फिर नए सिरे से सुसंबद्ध होते हैं। यह नई अवस्था सोने की होती है। अभी कोई यह नहीं कह सकता कि पारे ने सोने की ही अवस्था क्यों पाई, चाँदी, लोहे या अन्य किसी धातु का रूप क्यों नहीं ग्रहण किया। यह भी कहना मुशकिल है कि क्या करने से पारा सोने के अतिरिक्त अन्य धातुओं के रूप में भी बदला जा सकता है। प्रायः सभी वैज्ञानिक आविष्कार घटना-चक्र पर अवलंबित हैं। इस आविष्कार में भी उक्त सिद्धांत लागू है। प्रो० मिथ एक बार एक ऐनक लेकर, जिसके पीछे पारा लगा हुआ था, परीक्षा कर रहे थे। परीक्षा किसी अन्य विषय की थी; किंतु वह ऐनक इस प्रकार रक्खी हुई थी कि उस पर एक तेज़ रोशनी बहुत देर तक पड़ती रही। मिथ साहब ने अकस्मात् एक दिन उस ऐनक की परीक्षा करते में देखा कि कहीं-कहीं का पारा सोना हो गया है। उन्हें उसका कारण जानने के लिये बहुत दूर नहीं जाना पड़ा। आजकल के वैज्ञानिकों की धारणा है कि पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु 'इलेक्ट्रोन'-नामक एक पदार्थ से बनी हुई है। प्रत्येक वस्तु के परमाणु 'इलेक्ट्रोन' के भिन्न-भिन्न

प्रकार से संबद्ध होने के फल-स्वरूप हैं। बहुत गरमी के द्वारा परमाणुओं का टूटना और उनके इलेक्ट्रोनों का दूसरे प्रकार से संबद्ध होना ही धातुओं का रूपांतरित होना है। पारे के सोने के रूप में बदलने का भी यही कारण है।

यदि सस्ते में पारा सोने के रूप में बदला जा सकने लगेगा, तो संसार की 'करेंसी' में भारी उथल-पुथल मच जायगी। इस समय एक पौंड पारे का दाम चार रुपए से भी कम है; किंतु एक पौंड सोना बिना १,२२०) खर्च किए नहीं मिल सकता। कौन कह सकता है कि भविष्य में पारा सोने के मोलों और सोना पारे के मोलों न बिकेगा?

× × ×

५. विचित्र दौड़

यदि लगातार पाँच दिन तक एक घोड़े और मनुष्य की दौड़ होती रहे, तो क्या आप बतला सकते हैं, किसकी जीत होगी? घोड़े की? नहीं, मनुष्य की। लंदन के 'क्रिस्टल पैलेस' में एक ऐसी ही दौड़ हुई थी, जिसमें C. W. Hart नाम का प्रसिद्ध दौड़नेवाला और 'हांसी लासी' नाम का एक घोड़ा, दोनों दौड़े थे। दोनों प्रति दिन १० घंटे तक दौड़ते थे। पाँचवें दिन की दौड़ समाप्त होने के बाद देखा गया कि हार्ट घोड़े से आठ मील आगे है। हार्ट ने ३२९ मील और घोड़े ने ३३७ मील की दौड़ लगाई थी। हार्ट की उम्र इस समय ५६ साल की है। भारतवर्ष के कितने मनुष्य इस उम्र में दौड़ सकते हैं?

मनुष्य और घोड़े की दौड़

× × ×

६. जुकाम की दवा

ऐसे बहुत कम मनुष्य होंगे, जिन्हें एक-दो बार जुकाम न हुआ हो। कुछ डॉक्टरों का मत है कि जुकाम की कोई दवा ही नहीं; वह अपने-आप जाता रहता है। किंतु यह बात कहने के लिये अब कोई ज़बान नहीं हिला सकता; क्योंकि जुकाम की एक ऐसी अव्यर्थ औषध
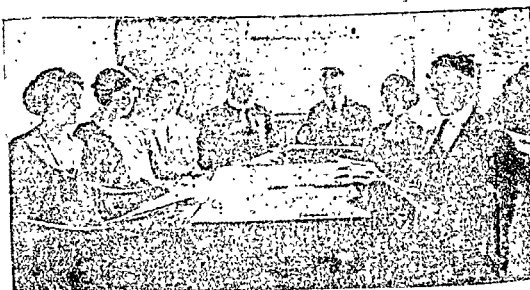
चिकित्सार्थ आए हुए रोगी

निकली है, जो बात-की-बात में उसे आराम कर देती है। आपको अगर कभी ज़ुकाम हो जाय, तो आप एक विशेष प्रकार के कमरे में प्रवेश कीजिए। वहाँ एक घंटे तक कोई पुस्तक या अख़बार पढ़ते या बातचीत करते रहिए। उसमें से जब आप बाहर आवेंगे, तब आपके ज़ुकाम का नाम भी न रह जायगा।

'यूनाइटेड-स्टेट्स-आर्मी' की 'केमिकेल-वारफ़ेयर-सोसाइटी' ने निश्चय किया है कि क्लोरिन-गैस श्वास-नली की सभी बीमारियों की महौषधि है। यह गैस बड़ी ही ज़हरीली है। इसका प्रयोग गत महायुद्ध में भी हुआ था। यह गैस सोडियम के साथ मिलकर नमक तैयार करती है।

वाशिंगटन-शहर में एक छोटी-सी कोठरी है, जिसमें प्रायः तीन-चार दर्जन मनुष्य एक बार बैठ सकते हैं। वहाँ पर उनके मनोरंजन के लिये उपन्यास, अख़बार, पत्रिकाएँ आदि रक्खी रहती हैं। जिन मनुष्यों को ज़ुकाम, इनफ़्लुएंज़ा, कुकुर-खाँसी, ब्रोंकाइटिस आदि श्वास-नली की बीमारियाँ होती हैं, वे उस कमरे में जाकर एक घंटे बैठते हैं। उसी समय एक पतली नली द्वारा थोड़ी-थोड़ी क्लोरिन-गैस कमरे में प्रवेश करती है। बिजली का पंखा उसे हवा में मिला देता है। गैस-मिली हवा में लोग श्वास लेते और थोड़ी देर बाद ही सेहत पाने लगते हैं। इस चिकित्सा के लिये प्रत्येक मनुष्य को छः सेंट देने पड़ते हैं। मामूली ज़ुकाम तथा इनफ़्लुएंज़ा में यह चिकित्सा इतनी सफल हुई है कि उक्त सोसाइटी के अध्यक्ष का कहना है, इनफ़्लुएंज़ा का प्रकोप अब हो ही नहीं सकता। कुछ लोग क्लोरिन-गैस को इसलिये सूँघने से डरते हैं कि कहीं विष शरीर में अधिक प्रवेश कर गया, तो उनकी मृत्यु हो जायगी। किंतु चिकित्सा-विशारदों का कहना है कि जिस परिमाण में क्लोरिन-गैस हवा में मिली रहती है, उसकी यदि सौगुनी गैस आदमी सूँघे, तब उसकी मृत्यु हो सकती है। इसलिये डरने की कोई बात नहीं है।

इस चिकित्सा से लाभ उठानेवाले मनुष्यों में बड़े-बड़े मनुष्यों के नाम लिए जा सकते हैं। यथा—प्रेसिडेंट कूलिज, मि० डेविस, युद्ध-मंत्री, Rear Admiral रोसो, श्रीमती निकोलस लांगवर्थ, यूनाइटेड-स्टेट्स के सिनेट के बीसियों सदस्य आदि।

क्लोरिन-गैस का प्रयोग

रमेशप्रसाद

---

१. साहित्य-सेविका राइनार्ट

श्चात्य देशों में साहित्य-सेवियों के समान कितनी ही महिलाएँ भी साहित्य-सेविका हैं। परतंत्र भारतवर्ष भी इन विदुषियों से वंचित नहीं है। फिर भी इनकी संख्या यहाँ उँगलियों पर गिनने लायक़ है। आजकल कुछ महिलाएँ हिंदी-साहित्य की थोड़ी-बहुत सेवा कर रही हैं। इनमें कोई तो स्वाभाविक शौक़ से, कोई ख्याति-लाभ की आशा से, और कोई द्रव्योपार्जन की दृष्टि से सेवा कर रही हैं। किंतु भारतवर्ष में (विशेष कर हिंदी-साहित्य में) एक-मात्र साहित्य-सेवा को ही जीविका का श्रेष्ठ उपाय समझना दुर्भाग्य से दुर्गति का लक्षण समझा जाता है। हिंदी में कितनी ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ हैं, जो लेखक या लेखिकाओं को यथेष्ट पुरस्कार दिया करती हैं? जो देती भी हैं, उनकी संख्या इनी-गिनी है। योरप-जैसे ख़र्चीले देश में पुरुष ही नहीं, कितनी ही महिलाएँ भी साहित्य-सेवा के बल पर घर का ख़र्च चला रही हैं। वे धनी भी हैं। साहित्य-सेवा ही उनकी एक-मात्र जीविका है। आज हम यहाँ एक ऐसी महिला का परिचय दे रहे हैं, जो विदुषी हैं। इनका नाम राइनार्ट है। आप अमेरिका की रहने-

राइनार्ट

वाली हैं। दस-बारह वर्षों से आप पुस्तकें लिखकर साल में दस हज़ार पौंड से अधिक पैदा करती हैं।

आपका कथन है कि "साहित्य-सेवा में प्रधान सहायक मेरे पति हैं। मुझे यह कहते बड़ा हर्ष होता है कि मेरे तीन पुत्र मुझे अच्छी लेखिका की अपेक्षा अच्छी माता कहने में तनिक भी संकोच नहीं करते। गृहस्थी के संपूर्ण कार्यों को करते हुए भी मैं साहित्य-सेवा का कार्य बराबर किया करती हूँ।"

आप जिस समय लिखने बैठती हैं, उस समय यही विदित होता है, मानो आप गृहस्थी के आय-व्यय का हिसाब लिख रही हैं। कितनी स्वाभाविकता है! आपका प्लॉट सुंदर होता है। आप सहज ही में कोई-न-कोई

उपन्यास तैयार कर लेती हैं। अब तक आपने कोई तीस या बत्तीस पुस्तकें लिखी हैं। सभी पुस्तकें सुंदर और उल्लेखनीय हैं।

आपने २६ वर्ष की उम्र से पुस्तक लिखने का कार्य आरंभ किया है। नित्य नियमित भाव से नियत समय पर आप अपना कार्य शुरू करती हैं। इसमें आपको किसी तरह की तकलीफ़ नहीं होती। आपका कहना है कि "छोटे बच्चे को गोद में लिए हुए मैं टाइप-राइटरी का काम सीखती हूँ। जिस समय वे बाहर घूमने जाते हैं, खेलते हैं, या निद्रादेवी की गोद में पड़े हुए सुंदर-सुंदर स्वप्न देखा करते हैं, उस समय मैं अपना अधिक समय लिखने में ही व्यतीत करती हूँ। आजकल मुझे अनेकों कार्य हैं। देश-विदेशों से कितने ही पत्र आते हैं। कोई उपन्यास के विषय में कुछ पूछता है, तो कोई नाटक, काव्य और अनुवाद के विषय में प्रश्न करता है। सिनेमा-कंपनियों के पत्र भी कुछ कम नहीं आते। सभी पत्रों का उत्तर अकेले मुझे ही देना पड़ता है। रोज़ाना ऐसे ही उत्साह के कार्य करते-करते मेरी कर्म-शक्ति भी खूब बढ़ गई है।"

विलायत के प्रसिद्ध समाचारपत्र 'डेली स्केच' ने आपके प्रसिद्ध उपन्यास 'The Breaking Point' को, पाँच हज़ार पौंड देकर, अपने पत्र में आदर के साथ प्रकाशित किया है। देश-विदेश में, सभी जगह, आपकी पुस्तकों का अच्छा आदर है। आप अमेरिकन महिला हैं। वाशिंगटन-शहर की रहनेवाली हैं। आपके पति गवर्नमेंट के स्वास्थ्य-विभाग में कार्य करते हैं। आप तो धन्य हैं ही, साथ ही आपके द्वारा आपका परिवार भी धन्य है।

गुलाबरत्न वाजपेयी

× × ×

२. इंदौर-नगर में स्त्री-शिक्षा

"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः"

(भगवान् श्रीकृष्ण)

अर्थात् संसार में जिस बात का अस्तित्व है, वह रहेगा, चाहे कहीं और किसी रूप में रहे। हाँ, संसार परिवर्तन-शील है। जो देश उन्नति के शिखर पर पहुँच जाता है, वह अवश्य धीरे-धीरे गिरने लगता है—

"ज्यों तपि-तपि मध्याह्न लौं अस्त होत है भानु।"

कभी भारत समुन्नत दशा में रहा है, तो कभी मिसर, कभी रोम, कभी यूनान। आजकल इँगलैंड, अमेरिका और जापान हैं। अभिप्राय यह कि उन्नति का अस्तित्व संसार में ज्यों-का-त्यों रहता है। इसी प्रकार मध्य-भारत में कभी उज्जैन और धारा-नगरी की समुन्नत दशा रही है, तो वर्तमान में उसका अस्तित्व लश्कर और इंदौर में है।

यह बात निर्विवाद है कि उन्नति का मूल-कारण शिक्षा है, और शिक्षा की सफलता तथा व्यापकता के लिये स्त्री-शिक्षा मुख्य है। इतिहासों से विदित होता है कि उपर्युक्त देशों की समुन्नत दशा के समय स्त्री-शिक्षा का सर्वदा महत्त्व रहा है। हर्ष है कि आजकल भारतवर्ष में फिर से स्त्री-शिक्षा की चर्चा आदर पाने लगी है। इंदौर भारत के उन्नतिशील राज्यों में से है, और प्राचीन राज्यों का निदर्शन-स्वरूप है। अतएव पाठिकाओं के मनोरंजनार्थ ऐसे राज्य की स्त्री-शिक्षा के विषय में चर्चा करनी उपयुक्त जान मैं अपने विचार संक्षेप से प्रकट करती हूँ।

वह माहिष्मती-नगरी (महेश्वर) इसी राज्य में है, जहाँ प्रसिद्ध पंडित मंडन मिश्र का निवास था। जिस समय दिग्विजयी स्वामी शंकराचार्य का शास्त्रार्थ मंडन मिश्र के साथ होनेवाला था, उस समय विचार किया गया कि इनकी हार-जीत का निर्णायक कौन बने? यह सुन बड़े-बड़े विद्वान् एक-एक करके वहाँ से खिसक गए। भला किसका साहस था, जो इनका निर्णायक बनता? फिर देवतों की प्रेरणा की सहायता से व्यास और नारद मुनि यह परामर्श देकर खिसके कि मंडन मिश्र की धर्मपत्नी श्रीमती भारतीदेवी के सिवा अन्य कोई इस महान् पद के योग्य नहीं है। अंत में भगवान् शंकराचार्य और अपने पति की हार-जीत में भारती ही मध्यस्थ हुई।

प्रतिपक्षी को भी भारती का विश्वास और उसके निर्णायक स्वरूप पातिव्रत के माहात्म्य से तत्कालीन स्त्री-शिक्षा के महत्त्व की परा काष्ठा सूचित होती है। जब शास्त्रार्थ के पश्चात् निर्णय के अनुसार मंडन मिश्र हार गए, तब स्वामीजी उन्हें चेला बनाने के लिये उद्यत हुए। इतने में साक्षात् सरस्वती के समान परम विदुषी भारती ने स्वामीजी के सामने आकर कहा—"जब तक आप पति की अर्द्धांगिनी को भी शास्त्रार्थ में नहीं जीत लेते, तब तक आपका मेरे पति पर पूरा अधिकार नहीं हो सकता।" भारती के साथ शास्त्रार्थ होने लगा। अब की बार भारती के पांडित्य-पूर्ण शास्त्रार्थ के आगे स्वामीजी अवाक् हो गए, और उत्तर

सोचने के लिये उन्हें अवधि बढ़ानी पड़ी । भारती के वाग्वैदग्ध्य को धन्य है ! उन्होंने नीति का यह वाक्य वास्तव में चरितार्थ कर दिखाया—

> उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः ;
> स्वभावेनैव तच्छास्त्रं स्त्रीणां बुद्धौ प्रतिष्ठितम् ।

अर्थात् शुक्र और बृहस्पति भी जिस शास्त्र को नहीं जानते, स्त्री को वह स्वभाव से ही विदित है । प्राचीन काल की कथाएँ कहाँ तक कहें । हाल ही में पुण्य-श्लोका अहल्याबाई-सरीखे नारी-रत्न ने इंदौर में सिंहासनासीन होकर ऐसे सुचारु रूप से राज्य का संचालन किया कि आज भी वह सहृदयों के स्मृति-पट पर अंकित है ।

इंदौर का अहल्याश्रम, चंद्रावती-महिला-महाविद्यालय आज भी भारत के प्रसिद्ध महिला-महाविद्यालयों में गिने जाते हैं । यहाँ से प्रति वर्ष अँगरेज़ी और देशी भाषा में उच्च शिक्षा प्राप्त कर समुचित संख्या में महिलाएँ उत्तीर्ण हो रही हैं ।

इनके अतिरिक्त नगर में सात राजकीय और तीन नगर के प्रतिष्ठित पुरुषों द्वारा संचालित कन्या-पाठशालाएँ हैं । इनमें से किसी-किसी में मिडिल-क्लास तक और शेष में प्राइमरी-कक्षा तक देशी भाषा द्वारा शिक्षा दी जाती है । पढ़नेवाली कुल लड़कियों की संख्या २,००० के लगभग है । प्रसन्नता की बात है कि सन् १९१६ ई० से लड़कियों की संख्या में उत्तरोत्तर द्रुत गति से वृद्धि हो रही है । यत्र-तत्र लड़कियों को स्कूल में भेजने की चर्चा ज़ोरों पर है । अधिकांश नागरिक प्रजा में यह भाव भर गया है कि लड़कों की ही भाँति लड़कियों को भी पढ़ाना चाहिए । सन् १९२१ ई० की मनुष्य-गणना की सरकारी रिपोर्ट से इस अनुमान की पुष्टि होती है ।

शिक्षा-पद्धति के अनुसार पढ़ानेवाली योग्य अध्यापिकाएँ तैयार करने के लिये 'लेडीरीडिंग ट्रेनिंग स्कूल' खोला गया है । यहाँ गवर्नमेंट-नार्मलस्कूलों की भाँति दो साल तक शिक्षा पाकर मिस्ट्रेस 'ट्रेन' होती हैं । कन्या-शालाओं में चित्र-कला और संगीत-कला की शिक्षा का भी प्रबंध है । वर्तमान श्रीमंत महाराजा साहब की २५वीं वर्षगाँठ के शुभ अवसर पर नागरिक पाठशालाओं के बालकों और बालिकाओं की बनाई हुई वस्तुओं की जो प्रदर्शनी खोली गई है, उसकी भावी उन्नति की शुभ आशा होती है ।

किसी कवि ने विद्या-प्रेमी राजा भोज का देहांत होने पर धारा-नगरी के विषय में कहा था—

> अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती ;
> पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवं गते ।

परंतु हर्ष है कि इन करुणा-जनक आँसुओं को पड़ोसी वर्तमान श्रीमंत होल्कर-नरेश पोंछने का प्रयत्न कर रहे हैं । इंदौर-नगर के शिक्षा-प्रचार की प्रगति देखकर दृढ़ आशा होती है कि यह नगर प्राचीन उज्जयिनी और धारा-नगरी के गौरव को वर्तमान में प्राप्त करेगा । यदि अवसर मिला, तो मैं आगामी किसी संख्या में स्त्री-शिक्षा के और इंदौर में स्त्रियों की सामाजिक, धार्मिक और नैतिक अवस्था पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करूँगी ।

सुंदरबाई

× × ×

३. महिलाओं का मताधिकार

भारतवर्ष में स्त्रियों को वोट देने का तथा निर्वाचन-उम्मीदवार बनकर खड़े होने का अधिकार सर्वप्रथम कोचीन के राजा ने ही अपने यहाँ दिया था । वहाँ पर स्त्री और पुरुष में कोई भेद-भाव देखने में नहीं आता । किंतु हाल ही में प्रकाशित एक सूचना के आधार पर जाना गया है कि वर्तमान समय में १८,००० वोट देनेवालों में स्त्रियों की संख्या केवल १,२०० है । इतनी कम वोट देनेवाली स्त्रियों की सहायता से और अधिक स्त्रियों के निर्वाचित होने की आशा बहुत कम है । इसलिये वहाँ पर स्त्रियों की उन्नति के अर्थ कौंसिल के लिये निर्वाचित प्रति १९ व्यक्तियों में कम-से-कम चार पद स्त्रियों के लिये रख छोड़ना अत्यंत आवश्यक है । कोचीन की तरह और किसी प्रदेश की स्त्रियाँ उतनी शिक्षित नहीं हैं । कोचीन की महारानी स्वयं शिक्षित हैं, और अपनी प्रजा की उन्नति के लिये बराबर चेष्टा करती रहती हैं । उनकी सहायता से स्त्रियों को इस अधिकार के पाने में विशेष सहायता मिलने की अत्यधिक संभावना है ।

भारतीय महिला-संघ की शाखा-सभा ने श्रीमती किरा-तने के नेतृत्व में तथा मिस सोराबजी के प्रस्ताव और श्रीमती कमलाबाई गांधी के समर्थन पर यह निश्चय किया है कि बड़ी व्यवस्थापिका-परिषद् तथा बिहार-कौंसिल के चुनाव में महिलाओं को भी समान अधिकार दिए जायँ ।

× × ×

४. बालिका-विद्यालय में बाइसिकिल-शिक्षा

मदरास-प्रांत के अधार-बालिका-विद्यालय में बालिकाओं को एक डच-महिला बाइसिकिल चढ़ना सिखलाती हैं। उन्होंने अपनी बाइसिकिल इस काम के लिये उक्त विद्यालय को दान कर दी है। गत दो महीनों में १५ विद्यार्थिनियाँ अच्छी तरह साइकिल पर चढ़ना सीख गई हैं। इससे उनके अनेक कामों में सुविधा हो गई है। और, विशेष लाभ तो यह है कि वे खुली हवा में स्वच्छंद रूप से विचरण कर सकती तथा साथ ही साइकिल-व्यायाम का लाभ भी उठा सकती हैं। हमें मालूम नहीं, भारतवर्ष के और किसी बालिका-विद्यालय में ऐसी व्यवस्था है कि नहीं। बालिका-विद्यालयों में ऐसी व्यवस्था का होना अति उत्तम है। साइकिल पर चढ़ने का अभ्यास कर लेने पर बहुधा स्त्रियाँ स्वतंत्रता-पूर्वक इच्छानुसार चल-फिर सकती हैं। थोड़ी दूर जाने के लिये भी उन्हें रेलगाड़ी के थर्ड क्लास में धक्के खाकर जाने के लिये बाध्य होना नहीं पड़ेगा।

× × ×

५. अफ़ग़ानिस्तान में स्त्री-शिक्षा

अफ़ग़ानिस्तान के वर्तमान अमीर अमानउल्ला अपने देश की और-और उन्नतियों के साथ-साथ स्त्रियों की उन्नति भी करते जा रहे हैं। दो वर्ष से स्वयं महारानी की निरीक्षकता में एक बालिका-विद्यालय खुला है। इसके पहले यहाँ कोई विद्यालय या पाठशाला महिलाओं के लिये नहीं थी। यद्यपि इस विद्यालय में पर्दा-प्रथा पर विशेष दृष्टि रक्खी जाती है, तथापि इससे देश को बहुत लाभ है। विद्यालय के चारों ओर कड़ा पहरा रहता है। इस समय इस विद्यालय में ३५० छात्री हैं। सभी देखने में सुंदरी तथा पढ़ने में बुद्धिमती हैं। इसमें पाँच वर्ष की पढ़ाई है। सात वर्ष की छोटी उम्र में ही बालिकाएँ पढ़ना शुरू कर देती हैं। विद्यालय में लिखना-पढ़ना, अंकगणित, भूगोल, इतिहास, चित्रकला, सिलाई और शिल्पकर्म आदि की शिक्षा दी जाती है। अध्यापिकाएँ भारतवर्ष से शिक्षित होकर वहाँ गई हैं। इस विद्यालय के खुलने के पहले वहाँ की बालिकाओं की शिक्षा का प्रबंध उनके पिता-माता की दया के ऊपर निर्भर था, वह भी क़ुरान पढ़ने तक ही परिमित था।

× × ×

६. स्त्रियों द्वारा परिचालित दैनिक पत्र

सुदूर चीन-देश के उचाऊ-नगर में स्त्रियाँ एक दैनिक पत्र निकालने की चेष्टा कर रही हैं। चीन में पुरुषों द्वारा परिचालित पत्रों से महिलाओं के अधिकारों की विशेष रक्षा नहीं होती, इसी कारण वे इस उद्योग में लगी हुई हैं। इस पत्र में स्त्रियों के संबंध की ख़बरों तथा समाचारों को छोड़कर और कुछ विशेष बातें नहीं निकलेंगी।

× × ×

७. जापान में नारी-श्रमिक-संघ

जापान में नारी-श्रमिकों का एक संघ स्थापित हुआ है। इस समय उनकी संख्या केवल १०० है। इसमें सब प्रकार की श्रमिक स्त्रियाँ हैं। यह संघ क्रमशः स्त्रियों की संख्या बढ़ाने के निरंतर प्रयत्न में लगा रहता है। बहुत संभव है कि निकट-भविष्य में वह संघ जापान की समस्त नारी-श्रमिकाओं का केंद्र-संघ हो जाय। उक्त संघ स्त्री-श्रमिकाओं की सब प्रकार की उन्नति की ओर दृष्टि रखने लगा है। भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों में भी इसी प्रकार के नारी-श्रमिक-संघों की विशेष आवश्यकता है।

गोपीनाथ वर्मा

× × ×

८. पतिपूजा

आशा के गंभीर गगन में तुम उज्ज्वल ध्रुव तारा हो;
चारु चंद्र हो नेत्र कुमुद के, जग में एक सहारा हो।
नैसर्गिक सौंदर्य तुम्हारा क्यों न हृदय से प्यारा हो;
हृदय-कमल के दिव्य दिवाकर, नेह-नीर की धारा हो।
स्वामी हो सर्वस्व हमारे देवतुल्य सबसे न्यारे;
मुझे न अपने वश कर सकते, हों हरि भी नर-तनु धारे।
यौवन-वन के तुम मधुकर हो, आशा हो इस जीवन की;
जन्मांतर के तप के फल हो, आत्मा हो मेरे तन की।
भाग्योदय के सूर्य हमारे, ताप-तिमिरहर, द्युति न्यारी;
हृदय-कंदरा करो प्रकाशित दुखहारी, अति सुखकारी।
इष्टदेव हो तुम ही मेरे, तीर्थराज अथवा काशी;
भक्ति-पुष्प-अंजलि चरणों में अर्पण करती है दासी।

श्रीनारायण मेहता
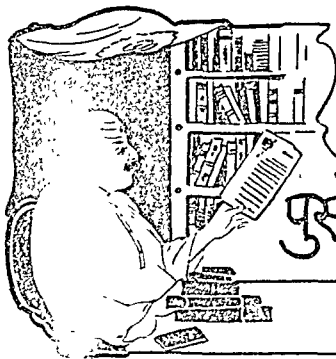
१. दर्शन

सम्मतितर्क-प्रकरणम्—मूल-ग्रंथकार, आचार्य श्रीसिद्धसेन दिवाकर। टीकाकार, श्रीमदभयदेव सूरि। प्रकाशक, गुजरात-पुरातत्त्व-मंदिर, अहमदाबाद। सुपररायल आकार; कागज़ अत्युत्तम। छपाई-सफ़ाई सुंदर। पृष्ठ-संख्या १६१। मूल्य १०) रु०।

हमें गुजरात-पुरातत्त्व-मंदिर की ओर भी एकआध पुस्तक देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। इस संस्था का साधु अध्यवसाय अत्यंत प्रशंसनीय है। प्रकृत पुस्तक इसी संस्था द्वारा प्रकाशित 'गुजरात-पुरातत्त्व-मंदिर-ग्रंथावली' का दशम ग्रंथ है। इसका मूल प्राकृत में है, और टीका संस्कृत में। इस प्रथम भाग में मूल की एक ही कारिका का व्याख्यान किया गया है, जिससे टीकाकार के सर्वशास्त्र-विषयक अगाध पांडित्य का पता चलता है। इसमें प्रामाण्यवाद, वेदों के अपौरुषेयत्व की परीक्षा, सर्वज्ञवाद, ईश्वर-स्वरूपवाद, आत्मा के परिमाण का विचार, और मुक्तिस्वरूपवाद, ये छः प्रकरण हैं। इनमें मीमांसक, नैयायिक आदि वैदिक दार्शनिकों के विचारों को पूर्वपक्ष में रखकर जैन-सिद्धांत के अनुसार उनका खंडन और अपने पक्ष का समर्थन किया गया है। आस्तिक दर्शनकारों में मीमांसक लोग स्वतः प्रामाण्यवादी हैं, और न्याय तथा वैशेषिक के अनुयायी परतः प्रामाण्यवादी। ये लोग अनुव्यवसाय के द्वारा ज्ञान का प्रामाण्य स्वीकार करते हैं। जैनी लोग भी परतः प्रामाण्यवादी हैं; परंतु इनका और नैयायिकों की प्रक्रिया में भेद है। इस ग्रंथ में इन सब मतों का निरूपण और विवेचन अत्यंत गंभीरता और विस्तार के साथ किया गया है। इसी प्रकार जैनी लोग आत्मा को देह के बराबर मानते हैं। खटमल की आत्मा खटमल के देह के बराबर और मनुष्य की आत्मा उसके देह के बराबर। इनके मत में आत्मा का कोई निश्चित (अणु या विभु) परिमाण नहीं है। और सिद्धांतों में भी इसी प्रकार मतभेद है। परंतु अब तक अधिकांश जैनी लोग अपनी पुस्तकों को प्रकाशित करना उचित नहीं समझते थे। इससे उनके दार्शनिक सिद्धांतों का परिचय बहुत कम लोगों को होता था। उक्त संस्था के प्रशंसनीय प्रयत्न से एक उच्च कोटि के प्राचीन ग्रंथ-रत्न को देखने का अवसर संस्कृतज्ञ दार्शनिक विद्वानों को प्राप्त हुआ है। हमारी सम्मति में, आजकल स्वतंत्रता के युग में, धार्मिक असहिष्णुता और पक्षपात छोड़कर गंभीर ज्ञान के पिपासुओं को यह ग्रंथ अवश्य देखना चाहिए। इसके संपादक महाशयों ने पारंपरिक जन-श्रुति के आधार पर मूल-ग्रंथ को विक्रम की प्रथम शताब्दी में और टीका को वि० दशम शताब्दी में बना बताया है। आप लोगों का यह भी कहना है कि आचार्य श्रीसिद्धसेन दिवाकर वैदिक धर्म के अनुयायी ब्राह्मण थे; परंतु पीछे उन्होंने किन्हीं जैन-आचार्य के संपर्क से जैन-धर्म स्वीकार किया। जो हो, प्रकृत ग्रंथ सर्वथा उपादेय और संग्रहणीय है।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

२. व्याकरण

लघु जूटिका—लेखक, छाता (जिला बलिया)-निवासी पं० श्रीरघुनाथ शास्त्री । प्रकाशक, चौखंबा संस्कृत-पुस्तकालय, बनारस । डिमाई साइज़ । पृष्ठ-संख्या ४२ । मूल्य लिखा नहीं । प्रकाशक से प्राप्य ।

पाणिनीय व्याकरण में शब्देंदुशेखर और परिभाषेंदुशेखर नव्य संदर्भों में चोटी के ग्रंथ माने जाते हैं । इनमें भी परिष्कार और शास्त्रार्थ के लिये परिभाषेंदुशेखर प्रसिद्ध है । इसकी टीकाएँ भी अनेक छपी हैं । कुछ प्राचीन ढंग की हैं, और कुछ नवीन परिष्कारों के ढंग की । परंतु वे विस्तार अधिक होने के कारण विद्यार्थियों के लिये दुर्गम हैं । पं० रघुनाथजी ने उन विद्यार्थियों के लिये, जो व्याकरणाचार्य-परीक्षा के लिये परिभाषेंदुशेखर का अभ्यास करते हैं, यह छोटी-सी, किंतु अत्यंत उपयोगी पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी है । क़रीब-क़रीब सभी परीक्षोपयोगी ग्रंथ-ग्रंथियाँ इससे हल हो जाती हैं । पुस्तक विद्यार्थियों, अध्यापकों और व्याकरण-प्रेमियों के बड़े काम की है । परिभाषाओं का पूर्ण रूप दिखलाकर और परिभाषेंदुशेखर की प्रतीक दे-देकर आपने अत्यंत विद्वत्ता-पूर्ण, सुंदर, सुगम टिप्पणी की है । पुस्तक के नाम (लघु जूटिका) में आपने 'जूटिका' के साथ 'लघु'-शब्द लगाकर वैयाकरणप्रिय अत्यंत लाघव का परिचय दिया है ।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

३. धर्म

वैदिक धर्म-रहस्य—लेखक, पं० सभापति उपाध्याय व्याकरणाचार्य । प्रकाशक, श्रीयुत जी० पी० शर्मा, लालघाट, काशी । स्कूली साइज़ । पृष्ठ-संख्या ८२ । छपाई आदि संतोष-जनक । मूल्य ।।)

काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और प्रतिष्ठित नेता श्रीयुत बाबू भगवान्‌दासजी ने 'हिंदुओं का संग्रथन और आत्म-रक्षण'-नामक कोई लेख लिखा है । यह पुस्तक उसके प्रतिवाद में लिखी गई है । अनेक शास्त्रीय प्रमाणों, युक्तियों और दृष्टांतों द्वारा सरल, सुबोध भाषा में अपने अभीष्ट विषय का ख़ूब प्रतिपादन किया गया है । पं० सभापतिजी के विचारों में प्राचीन ढंग के पंडितों के विचारों की पूरी-पूरी छाप मौजूद है ।

उक्त बाबू साहब के विचारों से सभी शिक्षित जनता सुपरिचित है । सभी देशों में नवीन विचारोंवाले सुधारक लोगों को प्राचीन विचारों के साथ घोर संघर्ष करना पड़ा है । आज भारतवर्ष में भी वही दिन उपस्थित है । हमारी सम्मति में सहिष्णुता के साथ किए गए विचार-परिवर्तन से बहुत कुछ लाभ हुआ करता है । परंतु एक समुदाय के ठीक-ठीक और पूर्ण विचारों को यथावत् प्रकाशित करने की क्षमता बहुत कम लोगों में होती है । हम समझते हैं, पं० सभापतिजी ने इस कार्य में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की है । आपने प्राचीन परिपाटी के लोगों के विचार सुचारु रूप से स्पष्ट किए हैं । नवीन विचारक लोगों को इस पुस्तक से विचार-परिवर्तन में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है । साधारण जनता भी दोनों ओर के विचारों को सुनकर कोई मध्य का श्रेयस्कर मार्ग निर्द्धारित कर सकती है । यदि इस पुस्तक के उपक्रम में आलोचनीय पुस्तक का संक्षिप्त, किंतु स्पष्ट विषय-परिचय और विवरण दिया गया होता, तो और अच्छा होता । भाषा में कहीं-कहीं अनावश्यक कटुता आ गई है ।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

धर्मवल्ल्यादिस्तवकः—राजगुरुकुलावतंसविद्वद्वरहरिदत्तशर्मनिर्मितः । प्रकाशक, दि प्राइवेट सेक्रेटरी टू हिज़ हाइनेस महाराजा साहब बहादुर टिहरी, गढ़वाल । मूल्य का पता नहीं ।

इस ग्रंथ में टिहरी के राजगुरु पंडित हरिदत्तजी शर्मा के रचित अनेक उपयोगी पद्य-बद्ध निबंधों का संग्रह है । सबसे प्रथम वल्ली में सात कुसुम हैं । इनमें धर्मशास्त्रों के आधार पर प्रथम तिथिनिर्णय, नक्षत्र, व्यतीपात, व्रतादि का विवेचन तथा एकोद्दिष्ट-श्राद्ध-निर्णय आदि मनोहर छंदों में किया गया है । फिर कर्मविपाक का प्रकरण है । स्वप्न-शकुन आदि का भी विचार किया गया है । बालग्रह-शांति, पंचक-मरण-शांति इत्यादि का उल्लेख होने के बाद गर्भाधानादि संस्कारों की समीचीन विवेचना है । तदनंतर प्रातरुत्थान से लेकर वैश्वदेवांत दिन-कृत्य का भी संक्षिप्त वर्णन है । अंत में प्रायश्चित्त-व्यवस्था तथा व्यवहार-प्रकरण हैं । संक्षिप्त होने पर भी विषय-विवेचन मनोरम है ।

दूसरे निबंध का नाम है 'एकविंशतिः' । इसमें प्रायश्चित्त का प्रकरण है । साथ में इन्हीं की रची हुई संस्कृत-टीका भी है । इससे पुस्तक की उपयोगिता और बढ़ जाती है । इसके बाद लघु रामायण, लघु भागवत, नक्षत्रमाला-स्तोत्र,

सभाभूषण-नाटक आदि अनेक निबंध हैं। पंडितजी का कविता पर आधिपत्य अच्छा है, और रचित श्लोक बड़े हृदयग्राही हैं। पुस्तक संस्कृतज्ञों के काम की है। छापे की अशुद्धियाँ बहुत हैं।

× × ×

गऊ-वाणी—अर्थात् समस्त धर्मशास्त्रों का वास्तविक रहस्य। लेखक, ऋषभचरण जैन, देहली। मूल्य १)

इस पुस्तक में गो माता के मुख से धर्म के रहस्य का व्याख्यान कराया गया है। सबसे प्रथम धर्म की व्याख्या इस प्रकार है—"धर्म एक विज्ञान या विद्या है, जिसका अभिप्राय मनुष्य को संसार के दुःख और आताप से निकालकर उत्तम सुख में स्थिर करने का है।" यह शब्दांतर में 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' है।

इसके अनंतर गो माता से प्रश्न किया गया है कि क्या आत्मा भी कोई पदार्थ है? इसका उत्तर गो माता से इस प्रकार दिलाया गया है—"आत्मा पुद्गल (matter) से विभिन्न जाति का एक द्रव्य है। चेतना उस आत्मद्रव्य का गुण है, इसी को जीवद्रव्य भी कहते हैं। पुद्गल में रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि होते हैं। ये आत्मद्रव्य में स्वभाव से नहीं होते; आत्मा अखंड द्रव्य है। जो पदार्थ अखंड है, वह अविनाशी भी अर्थात् अनादि, अनंत होता है।" पाश्चात्य विद्वान् मेकडूगल की पुस्तक—Physiological Psychology—में से भी कुछ अंश इस बात की पुष्टि में उद्धृत किया गया है।

आगे चलकर इसी प्रकार प्रश्नोत्तर-रूप में आत्मा का स्वभावतः अमर और सर्वज्ञ होना सिद्ध किया गया है। तदनंतर यह सिद्ध किया गया है कि आत्मा में इस बात की योग्यता है कि वह अनंत, अविनाशी सुख को प्राप्त कर सके। फिर जीव के आवागमन के सिद्धांत का प्रतिपादन है। उसके बाद वेदों के अस्तित्व, प्रमाण आदि की बात छेड़ी गई है। वैदिक धर्म तथा जैन-धर्म ही सबसे प्राचीन हैं, यह सिद्ध किया गया है। यहूदी और ईसाई-धर्मों की भी विवेचना है। इस पुस्तक में विशेषता यह है कि किसी धर्म अथवा संप्रदाय-विशेष को हेय तथा दूषित नहीं माना गया। सबके सिद्धांत सत्य और ग्राह्य हैं; परंतु उन सिद्धांतों के अर्थ भिन्न-भिन्न प्रकार से किए गए हैं। अन्य जैन-ग्रंथों में अपने धर्म की महत्ता बतलाकर प्रायः इतर धर्मों के सिद्धांतों पर बौछार रहती है। उससे रहित होने के कारण पुस्तक सब संप्रदायों समान रूप से ग्राह्य हो सकती है। अहिंसा, सत्य, अस आदि साधारण धर्म सब काल, सब देश और सब सं दायों के लिये समान भाव से स्वीकृत हो सकते हैं। इस किसी की विप्रतिपत्ति नहीं है। पुस्तक अच्छी है, अ लोगों को इससे लाभ उठाना चाहिए।

आद्यादत्त ठाकु

× × ×

४. ज्योतिष

विशदा—रचयिता, पं० श्रीमहावीर पांडेय, प्रधान ज्योति शास्त्राध्यापक, भारतेश्वरी मारवाड़ी संस्कृत-महाविद्याल छपरा। लेखक ही प्रकाशक भी हैं। मूल्य १)

राजकीय संस्कृत कॉलेज, मुज़फ़्फ़रपुर के प्रधान ज्योति शास्त्राध्यापक, ज्योतिषाचार्य पंडित दयानंद झा के चरण में यह समर्पित हुई है।

पं० नीलांबर शर्मा भारत के प्रसिद्ध ज्योतिषी हो ग हैं। उन्होंने ज्योतिष-विषयक अनेक उपयोगी ग्रंथों की रचना की है। उनमें से एक है गोल-प्रकाश का चापी त्रिकोणगणित। प्रस्तुत पुस्तक उसी नीलांबर झा-कृ चापीय त्रिकोणगणित की व्याख्या है। चापीय त्रिकोण गणित रेखागणित के एक भाग को बहुत अच्छे प्रकार स्पष्ट करता है। यह विहारोत्कल-संस्कृत-समिति तथा वंगी संस्कृत-परिषद् की परीक्षाओं में पाठ्य पुस्तक भी है। अत इसकी विशद टीका की छात्रों को अत्यंत आवश्यकता थी इस आवश्यकता की पूर्ति पांडेयजी ने अपनी 'विशदा' द्वारा कर दी है। पुस्तक परीक्षार्थी छात्रों के विशेष काम की है

आद्यादत्त ठाकुर

× × ×

५. कहानी-उपन्यास

दर्पचूर्ण—अनुवादक, श्रीभगवतीप्रसाद खेतान; प्रकाशक कलकत्ते की श्रीबड़ाबाज़ार-लाइब्रेरी तथा श्रीबड़ाबाज़ार-नवयुवक समिति का साहित्य-विभाग; पृष्ठ संख्या ५६; मूल्य चार आने

इस भाव-पूर्ण कहानी में एक पढ़ी-लिखी, किंतु प्रत्येक बात में पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त करने अथवा प्राप्त अधिकारों का दुरुपयोग करनेवाली स्त्री के दर्प का चूर्ण होना दिखलाया गया है। जब वह अपने पति के प्रेम को खो बैठी, तभी होश में आई। बाद को सँभल गई कहानी सचमुच मनोरंजक है; किंतु भाषा त्रुटि-पूर्ण है

यद्यपि अनुवादक ने भूमिका के अंत में 'बाबू गंगाप्रसादजी भोतीका एम्० ए०, बी० एल्० काव्यतीर्थ को यह पुस्तक देखने का कष्ट उठाने के लिये धन्यवाद दे दिए हैं। न-जाने भोतीकाजी ने इस पुस्तक का क्या देखकर धन्य-वाद की पात्रता प्राप्त कर ली ? अनुवादक महोदय ने यह पुस्तक अपने स्वर्गीय ज्येष्ठ भ्राता श्रीचंडीप्रसादजी को समर्पित की है। स्वर्गीय चंडीप्रसादजी का एक चित्र भी इसमें है। उस पर अध्यापक रामदास गौड़जी की ये पंक्तियाँ दी हुई हैं—

"अपूर्व मानसिक प्रतिभा और विलक्षण मस्तिष्क पर प्राण-शक्ति निछावर हो गई। साधारण जीवन के लिये यह भी एक शिक्षाप्रद उदाहरण है।"

गौड़जी से हमारी प्रार्थना है कि अपनी इस विलक्षण उक्ति का अर्थ हिंदी-संसार के सामने प्रकट करें, और सो भी सरल भाषा में, जिससे सब कोई समझ सकें। ऐसा अनुमान होता है कि आप विचार करते हैं अँगरेज़ी में, और उन्हें प्रकट करते हैं हिंदी में, सो भी असमर्थ शब्दों द्वारा। विना सोचे-समझे, लोगों के कहने में आकर या अपनी ही प्रवृत्ति से, भूमिका आदि लिख मारने की बीमारी हिंदी में बेतरह फैल रही है। जिसे देखिए, वही कुछ-न-कुछ लिख डालने के लिये उधार खाए बैठा है। गौड़जी को चाहिए कि स्वयं इस बीमारी से दूर रहते हुए दूसरों को भी दूर रहने की शिक्षा दें। अनुवादक ने कहानी के मूल-लेखक का नाम न देकर उसके और अपने स्वर्गीय भ्राताजी के साथ घोर अन्याय किया है। अस्तु। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, कहानी मनोरंजक और सबके पढ़ने-योग्य है। आशा है, दूसरे संस्करण में भाषा-संबंधी त्रुटियाँ दूर करा ली जायँगी, मूल-लेखक का नाम दे दिया जायगा, तथा गौड़जी की ये रहस्यमयी पंक्तियाँ फ़ोटो पर से हटा दी जायँगी, और इनके स्थान पर यदि आवश्यक ही हो, तो इनकी व्याख्या दे दी जायगी।

स्वयंप्रकाश सरस्वती

× × ×

गोरा—अनुवादक, श्रीयुत पंडित रूपनारायण पांडेय। प्रकाशक, प्रकाश-पुस्तकमाला, कानपुर। छपाई-सफ़ाई, साधा-रणतः अच्छी। पृष्ठ-संख्या ८१६। मूल्य ३)

इसके मूल-लेखक कवींद्र रवींद्र हैं। इलाहाबाद के इंडियन-प्रेस ने भी इसका एक अनुवाद प्रकाशित किया है। पर साहित्य-प्रेमी जनता की अधिक सुविधा के ख़याल से प्रकाशक ने इसका यह दूसरा सस्ता संस्करण निकाला है।

गोरा के माता-पिता आयर्लेंड के निवासी थे। पर वह बचपन ही से एक बंगाली दंपति के हाथ में पड़ गया था। उसी दंपति ने उसका पालन-पोषण किया, और उसको शिक्षा दी। गोरा उसी दंपति को अपना माता-पिता समझता था। अपनी असलियत से वह बिलकुल अनभिज्ञ था। पर वह चरित्र का चोखा और मन का विशाल था। उसको जो बात जँच जाती, उसमें वह आगा-पीछा और लोकापवाद का तनिक भी ख़याल न करता था। उसके रहन-सहन का उसकी जातीय दृढ़ता पर कुछ भी असर नहीं हुआ था। उसके प्रत्येक कार्य में वह प्रस्फुटित होती थी। वह कट्टर हिंदू था। सुशीला, ललिता और परेश बाबू तथा आनंदमयी के चरित्र भी आदर्श हैं।

आजकल के नवयुवकों को यह उपन्यास एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए। उनके मन की धर्म-संबंधी अनेक उलझनों के सुलझने में इससे बड़ी सहायता मिलेगी।

अच्छा होता कि प्रकाशक स्वयं इस पुस्तक को अपनी ही देख-रेख में प्रकाशित कराते। प्रेस के प्रेतों पर ही इसका भार छोड़ देने से यत्र-तत्र उनकी करामात नज़र आती है।

× × ×

कायापलट—लेखक, श्रीज्योतिप्रसाद जैन। प्रकाशक, प्रेम-पुस्तकालय, देवबंद। छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या २३६। मूल्य १)

इसका दूसरा नाम 'रामकली' है। आरंभ में लाला कन्नोमल ने एक-दो शब्द भी लिखे हैं। बाल और वृद्ध-विवाह के दुष्परिणामों का ख़ाका अच्छा खींचा गया है। चौधरी-ख़लीफ़ों का अंध स्वार्थ ही समाज की अनेक कुरीतियों का कारण है। ये ही जब अपने-अपने कर्तव्यों को जानने लगेंगे, तभी समाज की कुरीतियों का अंत हो सकता है। कन्याओं और स्त्रियों को यह पुस्तक पढ़कर समाज में प्रचलित कुरीतियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, और उनसे बचने की कोशिश भी करनी चाहिए। ऐसी पुस्तकों की भाषा अधिक सरल होनी चाहिए।

छन्नूलाल द्विवेदी

× × ×

चाहिए कि अपनी सारी शक्तियाँ अपने सुधार में लगा दें। रोगी जाति राजनीतिक उन्नति नहीं कर सकती। पहले सामाजिक व्यवस्था और शासन ठीक कीजिए, तब किसी की हिम्मत न होगी कि आपके राजनीतिक अधिकारों को दवा ले या हड़प जाय। पहले रोग की चिकित्सा कराइए, तब संसार की दौड़ में सम्मिलित होने की योग्यता प्राप्त हो सकेगी। आशा है, इस पुस्तक का घर-घर खूब प्रचार होगा।

संगठन-वादी

× × ×

संतान-संख्या-सीमा-बंधन—लेखक, पं० संतराम बी० ए०। प्रकाशक, सरस्वती-आश्रम, लाहौर। पृष्ठ-संख्या ३६८; मूल्य २॥)

लेखक पंजाब के प्रसिद्ध हिंदी-लेखक हैं। आपने भारतीय जनता के सामने एक नवीन सामाजिक समस्या रखने का प्रयास किया है, और उसके हल करने के उपाय भी बतलाए हैं। भारतवासियों में मृत्यु-संख्या जिस शीघ्रता से बढ़ रही और अवस्था का माध्यम जिस तीव्रता से गिर रहा है, उससे पठित समाज भली भाँति परिचित है। इसका मुख्य कारण अनिच्छित अधिक संतान की उत्पत्ति और दरिद्रावस्था में समुचित पालन-पोषण न हो सकने के कारण उनकी बालपन में ही असामयिक मृत्यु का होना है।

लेखक महाशय ने अपने ग्रंथ में इसी का विस्तृत वर्णन किया है। यह पुस्तक अधिकांश में योरपियन व अमेरिकन ग्रंथों के आधार पर लिखी गई है, और अंशतः भारतीय प्राचीन ग्रंथों के भी उद्धरण दिए गए हैं।

बहु-सन्तान के रोकने के जो उपाय लेखक ने बतलाए हैं, उनमें चाहे सब विद्वान् सहमत न हों, परंतु इसमें संदेह नहीं कि वे विचारणीय अवश्य हैं।

देश की दरिद्रावस्था और बच्चों की मृत्यु-संख्या की वृद्धि देखकर विद्वानों को लेखक की सम्मतियों पर अवश्य विचार करना चाहिए। पुस्तक परिश्रम से लिखी गई है। ग्रंथ के अंत में, परिशिष्ट-रूप में, न्यू साउथ वेल्स की सुप्रीम कोर्ट के जज का एक निर्णय भी इसी संबंध में ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर दिया गया है।

यथास्थान वैज्ञों आदि के चित्र देने से ग्रंथ और भी रोचक हो गया है। मैं इस ग्रंथ का हृदय से स्वागत करता हूँ। हिंदी में इस विषय की यह प्रथम पुस्तक है।

पुस्तक में कुछ प्रूफ आदि की अशुद्धियाँ रह गई हैं। मूल्य भी कुछ अधिक प्रतीत होता है, जो शायद पंजाब-प्रांत में अधिक व्यय होने के कारण हो। छपाई, सफ़ाई, काग़ज़ साधारणतः ठीक है। ग्रंथ में एक ही बातें कई बार दुहराई-सी गई हैं। आशा है, द्वितीय संस्करण में उक्त त्रुटियाँ दूर कर दी जायँगी।

ग्रंथ उत्तम और उपादेय है। हिंदी-संसार को इसका समुचित आदर करना चाहिए।

भागीरथप्रसाद दीक्षित

× × ×

७. पत्र-पत्रिकाएँ

मारवाड़ी अग्रवाल—सचित्र मासिक पत्र। आनरेरी संपादक, श्रीयुत तुलसीराम सरावगी। आकार माधुरी का। पृष्ठ-संख्या ७० ; छपाई-सफाई और कागज बढ़िया। मूल्य ३) वार्षिक। एक संख्या ।≈) में नं० ३ माधवसेठ लेन, कलकत्ता के पते पर मैनेजर के नाम पत्र लिखने से मिलती है।

यह अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी अग्रवाल-महासभा का मुखपत्र है। कार्त्तिक की संख्या हमारे सामने है। मुख-पृष्ठ पर मुरलीमनोहर का तिरंगा सुंदर चित्र है। भीतर श्रीकमला का तिरंगा और कई सादे चित्र हैं। इसमें कविता, वाणिज्य-व्यवसाय, विज्ञान, कहानी और उपयोगी विषयों पर अच्छे लेख रहते हैं। पत्र का संपादन अच्छे ढंग से होता है। जातीय पत्र होने पर भी यह सर्वोपयोगी है। इसमें व्यंग्य-चित्र भी रहते हैं। इस बार मथुरा में बाढ़ के इकरंगे चित्र भी बहुत अच्छे हैं। "कोयले का उद्योग" लेख में अनेक जानने-योग्य बातें हैं।

× × ×

कवींद्र—कविता-संबंधी सचित्र मासिक पत्र। संपादक और प्रकाशक, स्वामी नारायणानंद सरस्वती। सहा० संपा०, पंडित अनूप शर्मा बी० ए०। छपाई और कागज उत्तम। आकार मँझोला। पृष्ठ-संख्या ४८। वार्षिक मूल्य ३) ; प्रति संख्या ।-) ; पता—लाठीमुहाल, कानपूर।

यह पत्र की ७वीं संख्या हमारे सामने है। इसमें एक भिक्षा माँगनेवाली स्त्री और उसके पुत्र का तिरंगा चित्र बहुत हृदयग्राही है, और उस पर स्नेहीजी की कविता अँगूठी में नगीने का काम कर रही है। इस पत्र में समस्या-पूर्तियों के अलावा फुटकल कविताएँ, किसी नियत विषय पर भिन्न-भिन्न कवियों की कविताएँ, किसी कवि का परिचय, कविता के किसी अंग पर लेख, पुराने कवियों की

कुछ कविता और विनोद रहता है। कवींद्र उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है। ऐसे पत्रों की हिंदी में बड़ी ज़रूरत थी। हर्ष की बात है कि कवींद्र, कवि और कविता-कौमुदी इस दिशा में प्रशंसनीय उद्योग कर रहो है। हम कविता-प्रेमी सज्जनों से कवींद्र मँगाने के लिये सिफ़ारिश करते हैं।

× × ×

हिंदी-मनोरंजन—सचित्र मासिक पत्र। संपादक, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक। प्रकाशक, चंद्राफ़ैंसी-प्रेस, कानपूर। कागज़ और छपाई-सफ़ाई उत्तम। आकार माधुरी का। पृष्ठ ५०। मूल्य ३) साल। एक प्रति ।~) की।

मनोरंजन की सामग्री प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक होती है। विशुद्ध मनोरंजन के लिये यह पत्र बहुत उत्तम है। इसकी कहानियाँ सुंदर, कविताएँ हृदयग्राहिणी, संसार-वैचित्र्य कौतूहल-वर्द्धक, दुबेजी की चिट्ठी और हास्य-विनोद आमोद-जनक होता है। आशा है, कौशिकजी के हाथों इस पत्र की उत्तरोत्तर उन्नति होती रहेगी। मुख-पृष्ठ का चित्र बहुत भाव-पूर्ण है। पिता के कंधे पर एक बालिका प्रसन्नता प्रकट कर रही है। माता पास ही खड़ी मुग्ध दृष्टि से उसका आनंद देख रही है। भीतर गोदोहन का त्रिवर्ण चित्र भी सुंदर है। निशागामिनी का इकरंगा चित्र हमें उतना अच्छा नहीं जँचा। शायद रुचिवैचित्र्य ही इसका कारण है।

× × ×

सुवर्णमाला का दीपावली अंक—(१म वर्ष, ७७वाँ अंक) संपादक और प्रकाशक, पुरुषोत्तमविश्राम मावजी। मिलने का पता—मलाबार हिल, बंबई। इस संख्या का मूल्य २) है।

यह माला बहुत दिनों की है। बीच में बंद हो गई थी। अब फिर निकलने लगी है। यह वर्ष के प्रधान-प्रधान पर्वों पर निकलती है। इसमें किसी पौराणिक घटना पर चित्रावली दी जाती है। उसका परिचय भी गुजराती, मराठी और अँगरेज़ी में रहता है। पहले हिंदी में भी रहता था, अब नहीं रहता। शायद संपादक को हिंदी का सहायक न मिलता हो। हम संपादक व प्रकाशक महोदय से विशेष-रूप से यह प्रार्थना करते हैं कि वह हिंदी को अवश्य स्थान दें। हिंदी राष्ट्रभाषा है, और गुजराती भाइयों को हिंदी के प्रति उदासीनता कदापि न प्रकट करनी चाहिए। हम आशा करते हैं, अगली संख्या में हमें हिंदी में भी चित्रों का परिचय देखने को अवश्य मिलेगा। इस अंक में ४२ सादे और मुख-पृष्ठ को मिलाकर ८ तिरंगे मनोहर चित्र हैं। पृष्ठ ६४ हैं। मुख्य विषय कुमारसंभव की कथा है। राग-रागिनियों का परिचय और उनके चित्र क्रमशः दिए जा रहे हैं। चित्रों में नववर्ष, राजपूत ज़नाना, नूतन वर्ष-प्रभात, गौरीशंकर-शिखर, गंगोत्री, ध्यान, महाभारत-युद्ध की आत्मा श्रीकृष्ण, अजंता-गुफा में बुद्ध के चित्र और नूरमहल, ये चित्र बहुत सुंदर और संग्रह में रखने-योग्य हैं। राग-रागिनियों के चित्र भी शास्त्रोक्त रीति से बने हुए और बहुमूल्य हैं। हम प्रत्येक चित्रकला-प्रेमी पाठक से अनुरोध करते हैं कि इस सुवर्णमाला को अवश्य मँगाकर देखिए। फिर तो ग्राहक हुए बिना जी ही न मानेगा। क्या हिंदी में कोई माई का लाल ऐसा नहीं है, जो इस ढंग की माला निकालकर एक भारी अभाव की पूर्ति करे? आजकल नए-नए पत्रों की भरमार है। अनेक उद्देश्य-शून्य, विशेषता-विहीन पत्र निकलने से ऐसे एक पत्र का भी निकलना अधिक लाभदायक होगा। कम-से-कम हमारी तो यही धारणा है। आवश्यक, उपयोगी और विशेषता-पूर्ण वैचित्र्य रखनेवाले पत्र को ग्राहकों की कमी नहीं रह सकती, यह बात हम अपने अनुभव से ज़ोर देकर कह सकते हैं।

× × ×

हिंदी—दीवाली का सचित्र विशेषांक। संपादक, पंडित भवानीदयालु और श्रीमातावदल महाराज। प्रकाशक, पं० भवानीदयालुजी, जेकोब्स, नेटाल, दक्षिण आफ्रिका। अँगरेज़ी के पृष्ठ २८, और हिंदी के ४०। आकार बड़ा चौपेजी। इस विशेषांक का मूल्य नहीं लिखा। शायद ग्राहकों को वार्षिक मूल्य में ही दिया गया है।

हिंदी साप्ताहिक पत्र है, और प्रवासी भारतीयों की बहुत बड़ी और बहुमूल्य सेवा कर रहा है। पंडित भवानीदयालुजी एक कर्मवीर आत्मा हैं। आपने घाटा उठाकर भी इस पत्र को चलाया। अब भी इससे कोई लाभ नहीं उठा रहे हैं। यह विशेषांक देखने से ही आपकी कार्यदक्षता और उद्योगशीलता का पता लग जाता है। प्रवास में रहकर भी इतना अच्छा अंक निकाल सकना कम बहादुरी नहीं है। इस अंक में ४४ चित्र और अनेक सुंदर उपयोगी लेख हैं। अँगरेज़ी और हिंदी के सभी लेख सुपाठ्य, सारगर्भ और सुशिक्षित सज्जनों की रचना हैं। हम ऐसे अच्छे अंक को निकाल पाने की सफलता के लिये भाई भवानीदयालुजी को सहर्ष, सादर, सप्रेम साधुवाद देते हैं। ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि भाईजी चिरजीवी होकर हिंदी को उत्तरोत्तर उन्नत बनाते रहें, और उन्हें अपने निरक्षर,

निर्यातित, निरीह भाइयों की सहायता तथा सेवा करने का सौभाग्य सदा सुलभ हो। भारतवासी भाइयों को इस प्रवासी हिंदी-पत्र का ग्राहक बनकर प्रवासी भाइयों की सेवा का पुण्य प्राप्त करना अपना अत्यावश्यक कर्तव्य समझना उचित है। यह एक ही पत्र मँगाने से हम सब भारत-निवासी अपने प्रवासी भाइयों के संबंध की, उनके सुख-दुःख की, सभी बातें एकत्र पढ़ लेंगे, अन्यत्र यत्र-तत्र खोजने का कष्ट न उठाना पड़ेगा। इस पत्र के ग्राहक भारत-भर में सर्वत्र यथेष्ट संख्या में होने की अतीव आवश्यकता है। तथास्तु।

× × ×

धर्मवीर—साप्ताहिक। संपादक, श्रीचंद्रमाराय शर्मा। पता—धर्मवीर-प्रेस, मधुबनी दरभंगा। १२ पृष्ठ। मँझोला आकार। वार्षिक मूल्य ३)

पत्र नया निकला है। ढंग अच्छा है। हिंदू-जाति के उद्धार के लिये इसकी नीति प्रशंसनीय है। भाषा में बिहारी भाइयों का रंग पूरा है। कहीं-कहीं व्याकरण और महावरे ऐसे होते हैं कि दो घड़ी हँसने का सामान हो जाता है। हम पत्र की उन्नति हृदय से चाहते और प्रकाशक के उत्साह को सराहते हैं। बिहार में हिंदी-पत्र कम हैं। वहाँ जितने पत्र निकलें, उतना ही अच्छा। मगर पत्र उच्च कोटि के और यू० पी० के प्रताप आदि के रंग-ढंग के होने चाहिए। साधारण कोड़ियों पत्रों से एक अच्छा पत्र कहीं अधिक काम कर सकता है, अपने प्रांत को लाभ पहुँचा सकता है। बिहार में इस समय ऐसा उच्च कोटि का और वैचित्र्य एवं विशेषता रखनेवाला पत्र कोई नहीं निकलता।

× × ×

निर्भय—साप्ताहिक। संपादक (और शायद प्रकाशक भी), कविराज अमरनाथ औदीच्य वैद्यशास्त्री। देहरादून से ३) वार्षिक में मिलता है। आकार छोटा। पृष्ठ ४।

यह पत्र स्वामी विचारानंद की पार्टी के मुक़ाबले में निकला है। विचारानंद स्वामी ने महंत परशुरामजी के ख़िलाफ़ जिस बेहूदा ढंग से लेखनी चलाना शुरू किया था, उसके जवाब में इस ढंग का पत्र निकलना अवश्यंभावी था। स्वामीजी बहुत दिनों से भरत-मंदिर के महंतजी के विरोध में प्रबल आंदोलन कर रहे हैं; पर अब तक उनको स्थानीय जनता का ही प्रबल दल अपने पक्ष का समर्थक नहीं मिल सका। इसी से जान पड़ता है, महंत महाराज उतने दोषी या मनमाना आचरण करनेवाले नहीं हैं, जितना प्रसिद्ध किया जा रहा है। देवस्थानों की संपत्तियाँ भारत में सर्वत्र महंतों, पंडों या गद्दीधरों के अधिकार में हैं, और अधिकांश अधिकारी उस धन का उपयोग अच्छे कामों में नहीं करते, ऐसा सुना जाता है। मगर महंत परशुरामजी के बारे में यह शिकायत नहीं है। हाँ, उक्त महंतजी जिन लोकोपयोगी कार्यों में जितना धन जिस ढंग से ख़र्च किया करते हैं, उसमें मतभेद हो सकता है। उस धन की मात्रा, उपयोग के ढंग और ख़र्च की मदों में परिवर्तन, परिवर्द्धन, परिवर्जन आदि की गुंजाइश हो सकती है। पर इसके लिये उन्हें अधिकारच्युत करने का कुचक्र रचना, उन्हें बदनाम करना, उनके व्यक्तिगत कामों पर, उनके आचरण पर, उनके जन्म आदि पर अत्यंत अविचार-पूर्ण ढंग से, अशिष्ट शब्दों में अनवरत आक्रमण करना कदापि समर्थन-योग्य नहीं कहा जा सकता। हमें यह भी मालूम हुआ है कि महंतजी के विरोधी दल की भीतरी मंशा यह है कि महंतजी के हाथ से सारी संपत्ति निकालकर अपने हाथ में कर ली जाय, और पबलिक को तीर्थ-स्थान-सुधार का धोका देकर संरक्षक बनकर आप गुलछर्रे उड़ाए जायँ। अतएव हम सर्वसाधारण को सावधान होकर इस मामले की पूरी जाँच के बाद किसी पक्ष का साथ देने की सलाह देना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। हाँ, निर्भय के प्रकाशकों से भी हम इतना कहना चाहते हैं कि वे अपने पत्र को अशिष्टता की सीमा से बाहर ही रक्खें। गाली-गलौज और कटूक्तियों का उत्तर उसी रूप में देने के लिये एक पत्र निकालना उचित नहीं। उससे हिंदी-साहित्य कलुषित और बदनाम होगा। पत्र सर्वसाधारण की चीज़ समझे जाते हैं। उनमें व्यक्तिगत कलह की कुत्सित कीच उछलने से पाठकों के विचार-हीन होने की हानि का होना अक्षम्य अपराध की श्रेणी में माना जाता है। अतः अगर सर्वसाधारण को निर्भय का ग्राहक बनाना अभीष्ट है, तो उसमें व्यक्तिगत वाग्वितंडा तथा अशिष्ट अपशब्दों को स्थान न देना चाहिए। आशा है, हमारी यह सलाह निर्भय की नीति बदलकर उसे प्रीति की राह और नेकी का निबाह करने के लिये तैयार कर सकेगी। तथास्तु।

× × ×

शिक्षा-सेवक—त्रैमासिक पत्र। संपादक, पाँच सज्जन (भिन्न-भिन्न विषयों के संपादक अलग-अलग हैं); प्रकाशक, रघुवीरप्रसाद। आकार माधुरी का। पृष्ठ ५६। छपाई, कागज़ आदि अच्छा।

यह विहार वर्नाक्युलर टीचर्स एसोसिएशन का मुखपत्र होने के कारण शिक्षा के विषय से विशेष व्यापक संबंध रखता है। उक्त एसोसिएशन के सदस्यों को प्रवेश-शुल्क के १) रुपए के साथ पत्र का मूल्य भी वार्षिक १) देना पड़ता है। वाहरी लोगों के लिये कुछ मूल्य नहीं लिखा। लेख अच्छे हैं। चुनाव भी उत्तम है। शिक्षा-प्रचार के कार्य में इस पत्र की उत्तरोत्तर उन्नति के साथ ही इसे मासिक पत्र के रूप में देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।

× × ×

शिक्षामृत—मासिक। संपादक, श्रीआनंदिप्रसाद श्रीवास्तव्य। प्रकाशक, श्रीनाथूराम-फ़क़ीरचंद रेजा। पता—रेजा-प्रेस, नरसिंहपुर, मध्य-प्रदेश। आकार मँझोला। पृष्ठ ५६। मूल्य ३) वार्षिक। फ़ी कॉपी ।=) आने। छपाई आदि उत्तम।

यह भी शिक्षा-संबंधी उत्कृष्ट पत्र है। इसके सभी स्तंभ उपयोगी होते हैं। लेख, कविता आदि का चुनाव योग्यता का परिचायक है। विश्ववैचित्र्य, कृषिकार-विहार, प्रमदा-प्रमोद, वालचर-विभाग आदि स्तंभ इसकी विशेषता हैं। इस प्रकार यह विद्यार्थी, किसान, स्त्री-जाति, वालचर आदि सबके काम का है। हम इसकी उन्नति चाहते हैं। मध्य-प्रदेश में अच्छे-अच्छे पत्र जितने निकलें, उतना ही अच्छा।

× × ×

हिंदू—साप्ताहिक। संपादक एवं प्रकाशक, श्रीभैरवदत्त शर्मा। मिलने का पता—१६२ और १६४, हरीसन रोड, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य ३) और पृष्ठ १२।

इस पत्र का उद्देश्य हिंदू-संगठन में सहायता पहुँचाना और हिंदू-जाति के हक़ों की रक्षा के साथ ही उसका सुधार व उद्धार है। इसके लेख व टिप्पणियाँ ज़ोरदार होने के साथ ही मज़ेदार होती हैं। हम इसका बहुत प्रचार और उत्तरोत्तर उन्नति चाहते हैं।

× × ×

स्वास्थ्य—मासिक पत्र। प्रकाशक (शायद संपादक भी), श्रीमुरलीधर वर्मा, मेस्टन रोड, कानपूर। वार्षिक मूल्य २), और प्रति संख्या ≋) है। पृष्ठ २४ रहते हैं।

विषय नाम से ही प्रकट है। स्वास्थ्य की रक्षा और उन्नति से संबंध रखनेवाले लेख तथा कुछ चिकित्सा की बातें भी रहती हैं। पत्र में उन्नति की अधिक आवश्यकता है। फिर भी उपयोगी और उपदेशप्रद है।

× × ×

सनातनधर्म-पताका—मासिक पत्रिका। संपादक, श्री-रामचंद्र शर्मा गौड़, मुरादाबाद से ही १।) वार्षिक मूल्य देने पर प्राप्त होती है।

पत्रिका २५ वर्ष की पुरानी और सनातनधर्म का समर्थन करनेवाली है। इसके संस्थापक पं० रामस्वरूप शर्माजी इसको स्थायी बनाकर अपना नाम अमर कर गए हैं। हम इसमें अब नए ढंग के विशेष चित्ताकर्षक और रोचक धार्मिक लेख देने के लिये संपादकजी को सलाह देते हैं। पुराना रंग-ढंग अब जनप्रिय नहीं रहा। इसके रंग-ढंग में परिवर्तन, परिमार्जन करने से प्रचार भी बढ़ जायगा।

× × ×

आर्यजीवन—साप्ताहिक। संपादक, पं० जयदेव शर्मा। यह बंगाल-विहार की आर्यप्रतिनिधि-सभा का मुखपत्र ३) वार्षिक मूल्य में ३८, शिवनारायणदास लेन, कलकत्ता से मिलता है। इसमें १२ पृष्ठ रहते हैं। छपाई और काग़ज़ अच्छा होता है।

इसके लेख विचार-पूर्ण और टिप्पणियाँ पठनीय होती हैं। मीठी चुटकी में मनन करने लायक़ मसाला मिलता है। संपादन की रीति-नीति उत्तम है। हम इसके प्रचार और उत्कर्ष की सहर्ष आशा करते हैं।

× × ×

भारतभाल—साप्ताहिक। संपादक, ठाकुर प्रतापसिंह नेगी। हृषीकेश, देहरादून के पते से ३) वार्षिक मूल्य भेजकर मँगाया जा सकता है। ८ पृष्ठ रहते हैं।

अभी इसका जन्म हुआ है। इसके संपादक एक देश-भक्त आत्मा हैं। प्रथम अंक के अग्रलेख पदार्पण को पढ़ने से आशा होती है कि यह उस पहाड़ी प्रदेश की अच्छी सेवा करेगा। हम इसे सफलकाम तथा चिरायु होने का आशीर्वाद देते हैं।

× × ×

सुप्रभातम्—संस्कृत का मासिक पत्र। संपादक, श्री-विंध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री। पृष्ठ १२ रहते हैं। वार्षिक मूल्य संस्कृत-साहित्य-समाज, काशी के माननीय सदस्यों से १२), सहायक सदस्यों से ३) और साधारण सदस्यों से १) लिया जाता है। एक संख्या ≈) में मिलती है।

सुंदर, सहज, सरस संस्कृत की सूक्तियाँ तथा संदर्भ इस पत्र को सतत सुशोभित करते रहते हैं। सहृदय संस्कृत-साहित्य-सेवकों की रुचि के अनुकूल रुचिर रोचक रचनाओं ने इसको गौरव और गर्व की सामग्री बना दिया है। इसमें बहुज्ञ, बहुश्रुत विद्वान् बुद्धि-वर्द्धक, देशभक्ति के भावों से

भरे, प्रभावशाली लेख लिखा करते हैं। हमें आशा है, केवल काशी में ही इस पत्र के यथेष्ट ग्राहक हो जायँगे। इस स्वदेश के सौभाग्य-सूचक, स्वराज्य-सहचर, प्रीति-पूत सुदिन के अग्रदूत "सुप्रभात" का सुवर्ण-समुद्भासित प्रकाश सत्वर ही सर्वत्र स्वागत-सहित समादृत होगा। हम संस्कृत के *प्राणहीन, निष्पंद शरीर* में प्राणप्रतिष्ठा की चेष्टा और निष्ठा का सानंद अभिनंदन करते हैं। माधुरी के संस्कृतज्ञ प्रवीण पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे कम-से-कम एक वर्ष के लिये अवश्य ही इस सस्ते और सुंदर पत्र के ग्राहक बन जायँ।

× × ×

८. प्राप्ति-स्वीकार

बिशनोई—संपादक, शीतलप्रसाद बिशनोई, हटिया, कानपूर। वार्षिक मूल्य २॥); यह जातीय मासिक पत्र साप्ताहिक के-से कलेवर में निकलता है। अच्छा है।

× × ×

जिनवाणी—मासिक। बंगविहार-अहिंसा-धर्म-परिषद् का यह मुखपत्र आधा हिंदी में और आधा बँगला में निकलता है। वार्षिक मूल्य ३) देकर १७।१६, *श्यामबाज़ार* ब्रिजरोड, कलकत्ता के पते से मँगाया जा सकता है। इसमें जैन-धर्म के सिद्धांतों का विशद विवरण और मंडन रहता है। लेख अच्छे होते हैं; किंतु पक्षपात-पोषण का दोष होने के कारण साधारण जनता की संतुष्टि उनसे नहीं होगी। जैनों को अवश्य इसका ग्राहक बनना चाहिए।

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई और उत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "रामायण", टीकाकार, बाबू रामचरणदास ; फिर छपकर तैयार है। मूल्य १०)

(२) "नैतिक जीवन", श्री० चंद्रराज भंडारी-लिखित। मूल्य १)

(३) "भारत के हिंदू सम्राट्", श्री० चंद्रराज भंडारी-लिखित। मूल्य १॥)

(४) "उपदेशप्रद कहानियाँ", (बालकोपयोगी) लेखक, बा० कन्हैयालाल। मूल्य ॥)

(५) "मुद्राशास्त्र", श्री० प्राणनाथ विद्यालंकार-लिखित ऐतिहासिक पुस्तक। मूल्य २॥)

(६) "मेवाड़ का उद्धार", बाबू हरिदास माणिक-लिखित ऐतिहासिक उपन्यास। मूल्य ॥)

(७) "ईशप की कहानियाँ", (बालोपयोगी) मूल्य २)

(८) "हिंदू-संगठन", भाई परमानंदजी-लिखित। मूल्य १)

(९) "शैलकुमारी", पंडित रासकिशोरजी मालवीय-लिखित। महिलोपयोगी उपन्यास। मूल्य १॥)

(१०) "हिंदू-त्योहारों का इतिहास", श्रीशीतला-सहाय बी० ए०-लिखित। मूल्य ।॥)

(११) "रूपरत्न-भंडार", श्रीरूपराम (रूप)-लिखित। भजन-संग्रह। मूल्य =)॥

(१२) "कबीर-सुभाषित-रत्नमाला", टीकाकार, ला० कन्नोमल एम्० ए०। मूल्य =)॥

(१३) "विधवा", श्री० राजाराम शुक्ल-लिखित। मूल्य ॥)

(१४) "आरोग्यता", लेखक, शांतिप्रिय आत्माराम-जी। मूल्य ॥)

(१५) "हिंदी-महाभारत", रामजी शर्मा (मधुवनी)-कृत संस्कृत का संक्षिप्त अनुवाद। मूल्य २)

(१६) "भारतसंगीतसागर अथवा वर्तमान भारतीय लहर", श्री० धूपसिंह द्वारा संगृहीत। मूल्य =)॥

(१७) "श्रीमद्भगवद्गीता", भाषाटीका-सहित ; टीकाकार, पंडित कन्हैयालालजी मिश्र। मूल्य ॥)

(१८) "महाभारत", (सचित्र) पंडित महावीर-प्रसाद मालवीय वैद्य "वीर" द्वारा अनूदित। मूल्य ३)

(१९) "चित्रावली", (चित्रविहारी) मूल्य १॥)

(२०) "श्रीरामचंद्रजी का जीवन-चरित्र", श्री-विश्वंभरसहाय "प्रेमी"-लिखित। मू० ॥)

(२१) "लीलावती", श्रीजगदीश झा 'विमल'-लिखित सचित्र सामाजिक उपन्यास। मू० १॥), रे० २)

(२२) "विचित्र प्रबंध", श्रीडॉक्टर रवींद्रनाथ ठाकुर-लिखित। मू० २)

विविध विषय

१. "लखनऊ-विश्वविद्यालय में हिंदी का कार्यक्रम"

स मास की 'माधुरी' में इस विषय पर एक संपादकीय नोट निकला है, जिसको पढ़कर प्रिय हमारे पाठकों को यह विश्वास होना संभव है कि इस विश्वविद्यालय में अब तक हिंदी-प्रचार के संबंध में किसी विशेष महत्त्व के कार्य का प्रारंभ नहीं किया गया। नोट में यह भी कहा गया है कि—

(१) "लखनऊ-विश्वविद्यालय इस समय भी हिंदी के लिये कानों में तेल डाले पड़ा है;"

(२) "यहाँ अब तक हिंदी के प्रचारार्थ किसी संस्था का जन्म न होना केवल अधिकारिवर्ग की उदासीनता ही घोषित करता है;"

(३) "दैव-दुर्विपाक से हिंदी को यहाँ पूर्ण प्रोत्साहन नहीं मिल रहा ;" और

(४) "यहाँ हिंदी के ह्रास का प्रधान कारण अधिकारिवर्ग की उदासीनता-मात्र है।"

इस पर हमारे मित्र लखनऊ-युनिवर्सिटी के हिंदी-अध्यापक पं० बदरीनाथजी भट्ट बी० ए० ने हमें सूचित किया है कि "सन् १९२२ ईसवी में, माधुरी के जन्म से कई मास पहले, उर्दू के केंद्र समझे जानेवाले इस नगर के नवजात विश्वविद्यालय ने प्रत्येक बी० ए०-परीक्षार्थी के लिये, बी० ए० की अंतिम परीक्षा में बैठने से पहले, अपनी मातृभाषा में एक परीक्षा पास कर लेना अनिवार्य कर दिया, और हिंदी तथा उर्दू की शिक्षा दिलाने के लिये अध्यापक भी नियुक्त कर दिए थे। तब तक प्रयाग-विश्वविद्यालय में हिंदी का प्रवेश किसी भी रूप में नहीं हो पाया था। इस विश्वविद्यालय में हिंदी का इस प्रकार प्रवेश हो जाना बड़ी महत्त्व-पूर्ण घटना समझी गई, और इसके पश्चात् यह प्रयत्न किया जाने लगा कि हिंदी को स्वतंत्र विषयों में स्थान मिले। परंतु ऐसे प्रस्तावों को स्वीकृत करना तथा उनको कार्यरूप में परिणत करा देना किसी एक अधिकारी के हाथ में नहीं। जिन संस्थाओं के हाथ में यह अधिकार है, उनमें सभी भाँति के विचार रखनेवाले सज्जन हैं। हर्ष की बात है कि अब की बार यह प्रस्ताव उन संस्थाओं में स्वीकृत हो गया, और अगले वर्ष से कार्यरूप में परिणत भी हो जायगा। हमें इसका गर्व है कि अनेक अड़चनों पर धीरे-धीरे विजय प्राप्त करके यह विश्वविद्यालय थोड़े ही दिनों में हिंदी के लिये उतना कर सका, जितना उतने दिनों में हिंदू-विश्वविद्यालय भी न कर पाया था।

"जिन सज्जनों को वायस चांसलर महोदय के विचारों से

परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त है, वे स्वप्न में भी यह नहीं सोच सकते कि वायस चांसलर महोदय कभी हिंदी के प्रति उदासीन रहे हैं, या हैं; क्योंकि बात बिलकुल उलटी है। यदि उनकी सहानुभूति न होती, तो आज यहाँ हिंदी की क्या स्थिति होती, और कुछ होती भी या नहीं, यह वे ही जानते हैं, जो जान सकते हैं।

"रही हिंदी-प्रचार के लिये संस्थाएँ बनने की बात। सो ये छात्रों के हिंदी-प्रेम तथा उनकी रुचि के अनुसार बनती हैं। अध्यापक तथा अधिकारी भी अपनी रुचि के अनुसार उनमें योग देते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों की परिस्थिति भी एक-सी नहीं होती। लखनऊ की परिस्थिति देखते हुए यदि यहाँ हिंदी का कुछ भी काम न हुआ होता, तो भी यहाँ के विद्यार्थियों या अधिकारियों को उतना दोष नहीं दिया जा सकता था, किंतु हमें यह कहते हर्ष होता है कि यहाँ परिस्थिति के अनुसार कार्य हो रहा है, और विद्यार्थियों की रुचि इधर दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है। हमारे विश्वविद्यालय में हिंदी के नाटक खेले जाते हैं; युनिवर्सिटी-यूनियन में हिंदी में भी वाद-विवाद कराए जाते और बाहर के विद्वानों से भी व्याख्यान दिलाए जाते हैं। पिछले वर्ष एक कवि-सम्मेलन हुआ था; इस वर्ष और भी धूम से करने का आयोजन चल रहा है। विद्यार्थियों को हर प्रकार से प्रोत्साहन दिया जाता है, तथा हिंदी-साहित्य के अध्ययन की ओर उनकी रुचि बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। यहाँ एक हिंदू-यूनियन नाम की संस्था है, जिससे कथा आदि द्वारा हिंदी का प्रचार होता है। यहाँ के संस्कृत-विभाग में 'ज्ञानवर्द्धिनी सभा' की स्थापना हो चुकी है, जिसमें विश्वविद्यालय से संबंध न रखनेवाले विशेषज्ञों के व्याख्यान प्रायः हिंदी ही में होते हैं, और विद्यार्थियों को विचार-विनिमय का पूरा अवसर दिया जाता है। यदि इस पर भी यह कहा जाय कि यहाँ हिंदी का कुछ भी काम नहीं हो रहा, तो आश्चर्य की बात है।"

हमें जो सूचना पहले मिली थी, उसी के अनुसार हमने लिखा था। अब भट्टजी से वस्तुस्थिति मालूम होने पर उसे भी हम सहर्ष प्रकाशित करते हैं। हमें आशा ही नहीं, विश्वास है कि लखनऊ-युनिवर्सिटी में हिंदी-प्रेम विशेष व्यापक होता जायगा।

× × ×

२. कोहाट

कोहाट के संबंध में हिंदी के पत्रों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। कोहाट की समस्या अब तक सुलझी नहीं। सुलझने की कौन कहे, वह दिन-पर-दिन उलझती ही जाती है। इस दुर्घटना के संबंध में सरकार जो जाँच करवा रही थी, वह समाप्त हो गई; और उसके आधार पर जो रिपोर्ट लिखी गई है, वह भी प्रकाशित हो गई। इस रिपोर्ट का सारांश यह है कि श्रीजीवनदास ने इसलाम-धर्म पर एक पुस्तिका में आक्षेप किए थे। मुसलमानों को यह कार्य आपत्ति-जनक जँचा; उनमें धार्मिक जोश फैल गया। एक दिन कुछ हिंदुओं ने कुछ मुसलमान लड़कों को गोली से मार दिया। बस, उत्तेजना चरम सीमा को पहुँच गई, और बलवा हो गया। हिंदू बुरी तरह पिटे। उन्होंने कोहाट छोड़कर बाहर जाने की इच्छा की, और सरकार ने इस मामले में उनको सहायता दी। बलवा आरंभ होने का सारा दोष हिंदुओं पर है। सरकारी ऑफ़िसर यदि विशेष सावधानी न करते, तो स्थिति और भी भयंकर हो जाती। कुछ सिपाहियों ने सचमुच लूट में भाग लिया था। बस, सारी रिपोर्ट का सारांश यही है। रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही देश-भर में खलबली मच गई। चारों ओर से इस पर टीका-टिप्पणी होने लगी। सभी प्रतिष्ठित नेताओं ने इस पर अपनी राय ज़ाहिर की। हिंदुओं ने एक स्वर से रिपोर्ट को पक्षपात-पूर्ण और निंद्य बतलाया। महात्मा गांधी ने भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि रिपोर्ट में यथार्थ बात नहीं कही गई। उन्होंने हिंदुओं को यह भी सलाह दी कि उनको तब तक कोहाट नहीं जाना चाहिए, जब तक वहाँ के मुसलमान उनको आने के लिये निमंत्रित न करें। उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि बिना निमंत्रण के जाना हिंदुओं के आत्मसम्मान के विरुद्ध है। महामना मालवीयजी ने वायसराय को एक तार देकर यह प्रार्थना की थी कि सरकारी जाँच संतोष-जनक नहीं है, इसलिये सरकार फिर से जाँच करवावे, और जाँच करनेवालों में ग़ैरसरकारी आदमी भी रहें। सरकार ने मालवीयजी के इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया है। उसने यह भी साफ़-साफ़ बतला दिया है कि अब सरकार और कोई भी नई जाँच न करेगी। उधर मुसलमानी पत्र दुर्घटना का सारा दोष हिंदुओं के मत्थे मढ़ते हुए सरकारी रिपोर्ट की तारीफ़ कर

रहे हैं। एक ओर तो रिपोर्ट को लेकर इस प्रकार से वाद-विवाद हो रहा था, दूसरी ओर कुछ सज्जन, जिनमें सरकारी अधिकारियों का प्राधान्य था, यह चेष्टा कर रहे थे कि जो होना था, सो हो चुका, अब भविष्य के लिये हिंदू-मुसलमानों में समझौता हो जाय, और बाहर रावलपिंडी में जो हिंदू पड़े हैं, वे फिर आकर कोहाट में बस जायँ। समझौता करने के लिये कोहाट के हिंदू-मुसलमानों की एक समिति बनाई गई; कोई समझौते का मसविदा तैयार भी किया गया; कुछ लोगों ने उस पर हस्ताक्षर भी कर दिए; पर अंत में कोई परिणाम नहीं निकला। हाल ही में एक इस आशय की विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है कि समझौता नहीं हुआ। अब मुक़द्दमेबाज़ी की बात लीजिए। कोहाट के कई प्रतिष्ठित हिंदुओं और सिखों पर सरकार की ओर से मुक़द्दमा चलाया जा रहा है। हिंदू सभी प्रतिष्ठित हैं। अब तक ये सब लोग हवालात में सड़ रहे थे; पर अब श्रीजीवनदास को छोड़कर शेष लोग ज़मानत पर छोड़े गए हैं। सिखों के प्रतिष्ठित रईस सरदार माखनसिंह पर भी मामला चल रहा है। कुछ मुसलमानों पर भी मुक़द्दमे चलाए गए हैं; पर उनकी संख्या थोड़ी है, और अभियुक्त भी बिलकुल साधारण श्रेणी के हैं। इस प्रकार सरकारी रिपोर्ट, समझौते की असफलता तथा मुक़द्दमेबाज़ी के कारण स्थिति अधिक जटिल हो गई है। कोई नहीं कह सकता कि इसका नतीजा क्या होगा। पर इतना निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि कोहाट में सरकार जो हिंदुओं की रक्षा नहीं कर सकी, इसके लिये उसे कुछ भी खेद नहीं है। दुर्घटना की सारी ज़िम्मेदारी वह हिंदुओं के सिर पर पटक रही है। मुसलमानी पत्र और नेता कोहाट में अपने सहधर्मियों के अत्याचारों से उतना दुखी नहीं दिखलाई पड़ते, जितना वे इस बात से प्रसन्न हैं कि बलवा हिंदुओं के कारण हुआ। मुक़द्दमेबाज़ी में भी सर्वस्व खोनेवाले हिंदुओं की ही अधिक हानि होगी। हिंदू किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहे हैं। भगवान् के सिवा उनका रक्षक कोई नहीं दिखलाई पड़ता।

× × ×

२. अमीनाबाद में आ[illegible] सेट[illegible]

राम-राम करके लखनऊ में आरती-नमा[illegible] का अस्थायी फ़ैसला हो गया। इस फ़ैसले का सा[illegible] लखनऊ के अस्थायी डिपुटीकमिश्नर मिस्टर गुड्न साहब को है। आपने अनवरत उद्योग करके नगर के १४ प्रतिष्ठित हिंदू-मुसलमानों की एक समिति बनवाई। मिस्टर गुड्न इस समिति के १२वें सदस्य और सभापति थे। समिति ने यह निर्णय किया कि जब तक महात्मा गांधी आरती-नमाज़ के मामले का अंतिम फ़ैसला न कर दें, तब तक अस्थायी रूप से अमीनाबाद के महावीरजी के मंदिर में आरती इस प्रकार की जाय—आरती की सारी कारवाई २५ मिनटों में समाप्त कर ली जाय। प्रारंभ सूर्यास्त से १५ मिनट पूर्व हो, और १० मिनट बाद तक वह जारी रहे। अंत के ५ मिनटों को छोड़कर शेष २० मिनटों में शंख, घड़ियाल आदि सभी बाजों के साथ पूजन किया जाय; पर अंतिम ५ मिनटों में केवल एक घंटा बजता रहे। मुसलमान लोग यथापूर्व नमाज़ पढ़ें। नमाज़ १० मिनट में समाप्त हो जाय। नमाज़ का प्रारंभ ठीक सूर्यास्त के समय हो। नमाज़ के प्रथम ५ मिनटों में महावीरजी के मंदिर में शंख, घड़ियाल आदि सभी बाजे बजते रहें; पर अंतिम ५ मिनटों में केवल एक घंटा बजे। यह घंटा मिस्टर गुड्न ने मंदिर को भेंट किया है, और इसके बजाए जाने में हिंदू-मुसलमानों में से किसी को भी कुछ आपत्ति नहीं है। समिति के इस निर्णय के अनुसार पार्क में ११ दिसंबर को धूमधाम से आरती हुई। मिस्टर गुड्न और पुलिस के अन्य बड़े ऑफ़िसर तथा समिति के सदस्य मौजूद थे। शांति-रक्षा के लिये पुलिस के जवान भी काफ़ी तादाद में मौजूद थे। किसी प्रकार का विघ्न नहीं हुआ। मुसलमानों में कुछ जोश अधिक था; पर कोई दुर्घटना नहीं हुई। दो-तीन दिन तक नगर में बेचैनी रही; पर इसके बाद मामला ठंडा पड़ने लगा; अंत में बलवे के पहले की-सी स्थिति हो गई। अब तो बिलकुल सन्नाटा है। यदि कोई अज्ञात कारण न उपस्थित हो जाय, तो अब लखनऊ बिलकुल निरापद है। विश्वास है कि जब महात्मा गांधी यहाँ आवेंगे, तो वह रहा-सहा मन-मुटाव भी दूर कर देंगे। हाँ, इस बलवे के कारण नगर में कई नवीन बातें अवश्य दिखलाई पड़ने लगी हैं। हिंदुओं में कुछ चैतन्य होने के भाव अवश्य आ गए हैं; नगर के मंदिरों में ठीक समय पर आरती होती है, और शंख-ध्वनि भी सुनाई पड़ती है। सत्यनारायण की कथाओं का सिलसिला जारी है। अब जान पड़ता है कि लखनऊ में

मुसलमानों के सिवा हिंदू भी रहते हैं। हिंदुओं के नेताओं में इस समय डा० लक्ष्मीसहाय, पं० रासविहारी तिवारी, डॉ० पुरुषोत्तमदास कक्कड़, नारायण स्वामी और पं० हरिश्चंद्र वाजपेयी आदि बहुत लोकप्रिय हैं। श्रीमती सरस्वती देवी नाम की महिला का भी नाम आदर के साथ लिया जाता है। इस समय आरती, आनंद, प्रेत और शैतान नाम के चार हिंदी दैनिक पत्र यहाँ से निकलते हैं। इनमें हिंदू-दृष्टिकोण से विचार किया जाता है। हिंदुओं की ओर से उर्दू में भी कई पत्र निकलते हैं। पैट्रियट नाम का एक अँगरेज़ी साप्ताहिक पत्र भी निकलनेवाला है। मुसलमानों के भी कई पत्र चल रहे हैं। इनमें 'हमदम' सबसे अच्छा है। हिंदू और मुसलमानों के नरम-दल के नेताओं का भी कुछ प्रभाव बढ़ रहा है, और अब जनता उनके नाम से वैसा नहीं भड़कती, जैसा गत सितंबर के पहले भड़कती थी। स्वराजिस्टों की तो कोई बात भी नहीं पूछता। हिंदू-स्वराजिस्ट तो हिंदू-जनता की निगाह से बिलकुल गिर गए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि लखनऊ में अब उनका कोई प्रभाव नहीं रह गया। खुली सभाओं में लोग उन्हें झिड़क देते हैं। कल जो पूज्य थे, आदरणीय थे, आज उन्हीं को लोग गालियाँ देते हैं, उनके कष्ट और उनकी देश-सेवाएँ भुला दी गई हैं। ख़ैर, इस समय लखनऊ में संपूर्ण शांति है; और हिंदू-लोग मिस्टर गुइन से एक प्रकार से संतुष्ट हैं। यह संतोष इस बात का सूचक नहीं है कि वे समझौता ठीक समझते हैं—समझौते में तो उनके साथ न्याय नहीं हुआ—वरन् इस बात का सूचक है कि मिस्टर गुइन ने उनके भावों को समझने की चेष्टा की, और कुछ किया भी।

× × ×

४. चर्खे का प्रचार

जब असहयोग-आंदोलन ज़ोरों पर था, तो खद्दर का भी देश में खूब प्रचार था। ऐसा जान पड़ता था कि खद्दर मिल के कपड़ों को दबा देगा। पर महात्मा गांधी की गिरफ़्तारी के साथ असहयोग-आंदोलन को जो धक्का लगा, उससे वह अब तक नहीं सँभल पाया। खद्दर का भी प्रचार कम होने लगा, और इतना कम हो गया कि कुछ लोगों को उसके अस्तित्व तक के नष्ट हो जाने का संदेह हो गया था। पर कई महीने हुए, जब महात्माजी जेल से मुक्त हुए, तो उन्होंने खद्दर के आंदोलन को फिर नवीन उत्साह से उठाया। यद्यपि इस बार सर्वसाधारण में खद्दर के प्रति वैसी श्रद्धा नहीं उत्पन्न हुई, फिर भी महात्माजी के नेतृत्व में खद्दर-आंदोलन को काफ़ी प्रोत्साहन मिला। कई जगह स्वराजिस्टों की बदौलत म्युनिसिपलिटी और डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों के संचालित स्कूलों में चर्ख़ा-शिक्षा की व्यवस्था की गई, और कई जगह सरकार ने स्वयं चर्ख़े को अपनाया। कई प्रांतीय कौंसिलों में चर्ख़े के प्रस्ताव पास हुए। इस प्रकार चर्ख़े का प्रचार बढ़ रहा था कि महात्मा गांधी ने यह प्रस्ताव किया कि कांग्रेस के सदस्य वे ही हो सकें, जो दो हज़ार गज़ सूत कातकर दें। पहले इसका प्रयोग अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस-कमेटी के मेंबरों पर हुआ। महात्माजी के इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया गया; पर कुछ संकुचित रूप में वह पास हो गया। इसके बाद महात्माजी और स्वराज्य-दल के बीच समझौता हुआ। उसमें भी सूत की कताई को अधिक महत्त्व दिया गया। संभवतः कांग्रेस-सदस्यता की फ़ीस चार आने के बजाय अब कुछ कते हुए सूत के रूप में ही देनी पड़ेगी। कताई के प्रति महात्माजी के इतने प्रबल आग्रह को देखकर लोगों ने उसके विरोध में कमी कर दी। श्रीमती एनी बेसंट तथा और कई कांग्रेस के बाहर रहनेवाले नेताओं ने चर्ख़ा चलाना स्वीकार किया। उधर बंगाल में सर्वपूज्य, वयोवृद्ध नेता श्रीप्रफुल्लचंद्र राय ने तो चर्ख़ा-प्रचार को ही अपना जीवन अर्पण कर रक्खा है। वहाँ गाँवों में चर्ख़े का प्रचार ज़ोरों पर है। विहार में श्रीराजेंद्रप्रसादजी के उद्योग से खद्दर का काम बढ़ रहा है। हाल ही में, पटने में, एक चर्ख़ा-प्रदर्शिनी हुई थी। उसमें विहार के सभी चर्ख़ा-कुशल लोगों ने योग दिया था। कुछ लोगों ने उपस्थित होकर यह भी कहा कि वे अपनी रोटी का प्रबंध चर्ख़ा चलाकर ही कर पाते हैं। उन्होंने बतलाया कि सूत कातकर ६) मासिक की आमदनी मज़े में हो सकती है। विहार-सरकार के मंत्री श्रीफ़ख़रुद्दीन को भी चर्ख़े से प्रेम है। उन्हों[ने] स्कूलों में इसका प्रचार किया है। सारे विहार-प्रांत [के] करघों की संख्या का भी उन्होंने पता लगवाया। वह[ाँ] इस समय प्रायः ६८ हज़ार करघे हैं। हाल ही में कांग्रे[स] के जेनरल सेक्रेटरी ने जो विवरण प्रकाशित किय[ा] उससे भी पता चलता है कि कताई का काम [...] बढ़ रहा है। जहाँ अगस्त में कांग्रेस के दफ़्त[र] कातकर भेजनेवालों की संख्या २,७८० थी।

बर में वह ६,३०१ हो गई, और फिर ऑक्टोबर में ७,७४१। नवंबर में और भी वृद्धि हुई है, और अब ऐसे कातने-वालों की संख्या ७,६०४ है। उत्तरीय भारत में हिंदू-मुस-लमानों के दंगों और बाढ़ ने चर्खे के काम की प्रगति को रोक दिया था। पर अब समय ने पलटा खाया है। जातिगत वैमनस्य घट रहा है। बाढ़ का आतंक भी कम हो चला है। जान पड़ता है, बेलगाँव-कांग्रेस के बाद चर्खा-आंदोलन एक बार फिर ज़ोर पकड़ेगा। जब महात्मा गांधी, श्रीप्रफुल्लचंद्र राय और श्रीराजेंद्रप्रसाद-जैसे नेता चर्खे को अपनाने के लिये कहते हैं, तथा सरकार भी उसका विरोध नहीं कर रही है, तब इस आंदोलन को सफलता न होने का कोई कारण नहीं देख पड़ता। चर्खे के प्रचार से भारत का लाभ स्पष्ट ही है।

× × ×

५. नील और कपास

कुछ समय बीता, जब इस प्रांत में नील की खेती बड़े ज़ोरों पर होती थी। लोग नील का रोज़गार करके लखपती हो गए हैं। देश का नील विदेशों को जाता था, और इसका कारोबार बड़े फ़ायदे का समझा जाता था। पर कुछ समय के बाद ही देश में नक़ली नील आने लगा। तब से यहाँ के नील के कारख़ाने घाटा उठा-उठाकर बंद होने लगे। बीसों कोठीवालों की भलमंसी बिगड़ गई। जब इसके व्यापार में फ़ायदा न रहा, तो इसकी खेती भी कम होने लगी। फिर भी यहाँ से कच्चा नील विदेशों को जाता था। इसलिये खेती का सिलसिला बना रहा। पर अब तो देखते हैं, नील की खेती भी प्रतिदिन कम होती जाती है। हाल ही में, नील की खेती के संबंध में, कुछ अंक प्राप्त हुए हैं। उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। पाँच वर्ष पूर्व इस प्रांत में २०,९६० एकड़ भूमि में नील बोया जाता था। पर अब वह केवल १२,२६६ एकड़ भूमि में ही बोया जाता है। यह थोड़ी कमी नहीं है। औसत से प्रायः ४० प्रतिशत कमी पड़ जाती है। सबसे अधिक कमी गोरखपुर और बुलंदशहर के ज़िलों में हुई है। कमी का कारण यह बतलाया जाता है कि नील अब बहुत सस्ते भाव में बिकने लगा है। इस समय कुल प्रायः दो हज़ार मन नील तैयार हुआ है। इसमें कच्चा नील भी शामिल है।

ऊपर नील की खेती में जो कमी दिखलाई गई है, उससे चित्त को खेद होता है। हाँ, कपास की खेती में वृद्धि देखकर हर्ष होता है। इसके भी अंक देखिए। पहले यहाँ प्रायः साढ़े छः लाख एकड़ भूमि में कपास की खेती होती थी; पर अब १० लाख एकड़ में होती है। अर्थात् ४६ प्रतिशत वृद्धि हुई है। कपास की पैदावार में भी वृद्धि हुई है। पहले ४०० पौंड वज़नी २,१२,१३३ गाँठें तैयार हुई थीं, तो इस बार उनकी संख्या २,६६,१५५ है। अर्थात् माल में भी २६ प्रतिशत वृद्धि हुई है। कुल रुई प्रायः साढ़े अठारह लाख मन पैदा हुई। इसमें से ८ लाख मन मिलों में खप जाती है, तथा दो-ढाई लाख मन प्रांत के और कामों में लगती है। शेष ८ लाख मन बाहर भेजी जाती है। ऊपर जो हिसाब दिया गया है, उसमें रामपुर-रियासत में पैदा होनेवाली रुई भी शामिल है। वहाँ १४,०७१ एकड़ भूमि में कपास की खेती होती है; और गत वर्ष १,३१६ रुई की गाँठें एकत्रित की गई थीं।

इस प्रकार यह प्रांत नील की खेती में तो पिछड़ रहा है, पर कपास की खेती में बढ़ रहा है। ऊपर हमने जो अंक दिए हैं, उनसे यह बात स्पष्ट है कि इस प्रांत की आधी के लगभग रुई बाहर जाती है, जिससे हम पूरा लाभ नहीं उठा पाते। यदि प्रांत में कुछ पुतलीघर और खुल जायँ, तथा चर्खे और करघे का भी काफ़ी प्रचार हो जाय, तो यह रुई हम अपने यहाँ रोक सकें। प्रांतीय सरकार का यह कर्तव्य है कि वह इस ओर ध्यान दे। वाणिज्य-विभाग हस्तांतरित है, इसलिये आशा है कि हमारे सुयोग्य मंत्री भी इस ओर ध्यान देंगे। नील का व्यापार भी नष्ट न होने पावे, इसका उद्योग होना चाहिए।

× × ×

६. महात्माजी का भाषण

इस बार ३९वीं राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन करना-टक प्रदेश के बेलगाँव-नामक नगर में हुआ। उसके सभापति थे स्वयं महात्मा मोहनदास-करमचंद गांधी। सभापति की हैसियत से आपने जो भाषण दिया, वह अपूर्व है। राष्ट्रीय महासभा के इन ३९ वर्षों के इतिहास में सभापति के आसन से इतना सुंदर, मर्मस्पर्शी, सत्यता और अहिंसा के भावों से परिपूर्ण कोई भी भाषण नहीं दिया गया। इस भाषण को पढ़ते समय वक्ता की विशाल आत्मा का प्रतिबिंब प्रत्येक वाक्य में जगमगाता दिखलाई पड़ता है। जान पड़ता है, वक्ता जो कुछ कह रहा है, वह

उसके सच्चे विचार हैं, और उन्हीं को वह कार्यरूप में परिणत भी करना चाहता है। भाषण आरंभ से अंत तक प्रेम-रस में शराबोर है। इसकी सबसे बड़ी खूबी तो यह है कि इसके पूर्व होनेवाले सभी भाषणों से आकार में यह छोटा है। गत वर्ष मौलाना मोहम्मद अली ने जो भाषण दिया था, वह तो बहुत ही बड़ा था, कदाचित् उससे बड़ा भाषण महासभा में आज तक नहीं पढ़ा गया। पर महात्माजी का भाषण सबसे छोटा है। ऊपर से देखने पर तो जान पड़ता है कि इस भाषण में राजनीति की बातें बहुत कम हैं; परंतु जब उसको ध्यान से पढ़ते हैं, तो राजनीति की उलझनों को इसमें जिस गंभीरता से सुलझाया गया है, उसे देखकर दंग हो जाना पड़ता है। लीडर-पत्र के सुयोग्य संपादक श्रीचिंतामणिजी ने 'अपूर्व भाषण' शीर्षक एक अग्र-लेख लिखकर इस भाषण की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है कि इसकी प्रत्येक पंक्ति में वह गंभीर राजनीति भरी हुई है, जो साधारण बुद्धि के आदमी की समझ में नहीं आ सकती। महात्माजी का हिंदी-प्रेम भी इस भाषण में झलक गया है। एक स्थान पर आपने हिंदी-भाषा के सर्वस्व गोस्वामी तुलसीदासजी का नाम बड़े आदर से लिया है। दूसरे स्थान में राष्ट्रीय पाठशालाओं में देशी भाषाओं के ऊपर अत्यधिक ज़ोर देने की बात भी आपने कही है। फिर स्वराज्य-योजना की चर्चा चलाते हुए आपने कहा है कि सरकारी कारवाई प्रत्येक प्रांत में उसी प्रांत की भाषा में की जाय, पर इन प्रांतीय सरकारों के ऊपर जो सरकार हो, उसकी कारवाई हिंदुस्तानी-भाषा में होनी चाहिए। आपके भाषण का अत्यंत संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है। गांधीजी कहते हैं—

"मेरे लिये चर्खे का महत्त्व सर्वोपरि है। चर्खा एक बहुत ही बढ़िया यंत्र है। मेरे पास चर्खे से अच्छा और फलप्रद दूसरा कोई संदेश नहीं है। हिंदू-मुसलमानों की एकता में ही राष्ट्र का जीवन है। कोहाट से भगे हुए हिंदुओं को तब तक कोहाट लौटकर न जाना चाहिए, जब तक वहाँ के मुसलमान उन्हें प्रतिष्ठा के साथ वापस आने के लिये निमंत्रित न करें। अस्पृश्यता के भाव का बना रहना हिंदू-धर्म पर एक बड़ा लांछन है, और मनुष्यता के प्रति घोर अपराध। असल में पतित वे हैं, जो अपनेको उच्च मानते हैं। असहयोग-आंदोलन यद्यपि सफल नहीं हुआ, तथापि उसने बहुत बड़ा काम कर डाला है। वह इस देश में बना रहेगा। विदेशी कपड़े का बहिष्कार देश का कर्तव्य है। इससे भारत का भी कल्याण होगा, और इँगलैंड का भी। अँगरेज़ों के प्रति मुझमें बिलकुल द्वेष-भाव नहीं है। सब दल मिलकर जो स्वराज्य की नई योजना तैयार करेंगे, उसमें, मेरी राय में, निम्न-लिखित बातों का भी समावेश रहना चाहिए। वोट देने का अधिकार उन्हीं लोगों को होना चाहिए, जो देश की द्रव्योपार्जन-शक्ति अपने हाथ से काम करके बढ़ाते हैं। न्याय प्राप्त करने में जो अधिक द्रव्य ख़र्च होता है, उसमें कमी की जाय; अपील-दर-अपील आदि की सुविधा के द्वार जो अनेक अदालतें हैं, वे न रक्खी जायँ। नज़ीरों का क़ानून नष्ट कर दिया जाय। बड़ी-से-बड़ी अदालत हिंदुस्तान में रहे। अधिकांश मुक़द्दमे पंचायतों के द्वारा फ़ैसल कराए जायँ। अब तक जो प्रदेश बने हैं, उनमें भाषा की एकता पर ध्यान नहीं दिया गया। सो उनमें रद्दोबदल करके भिन्न भाषा बोलनेवालों के प्रांत भी भिन्न-भिन्न रहने चाहिए। अधिकारियों के पास जितने भी निरंकुश अधिकार हों, वे उनके पास न रहने चाहिए। प्रांतीय सरकार की भाषा उस प्रांत की भाषा होनी चाहिए, और प्रधान सरकार तथा बड़ी व्यवस्थापिका सभा की भाषा हिंदुस्तानी। मैं साम्राज्यांतर्गत स्वराज्य का पक्षपाती हूँ। कम-से-कम साम्राज्य से अलग हो जाने का अवसर हमारी ओर से न उपस्थित होना चाहिए। हाँ, यदि इँगलैंड अपने कार्य-कलाप से यह ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले, तो कोई बात नहीं। राष्ट्रीय स्कूलों को पूरी सहायता पहुँचानी चाहिए। उनके द्वारा हिंदू-मुसलमानों में प्रेम-भाव पैदा करना चाहिए, तथा अस्पृश्यता भी मिटानी चाहिए। इन स्कूलों में सूत की कताई, रुई की धुनकाई आदि की शिक्षा होनी चाहिए। मेरी राय में दमन से भयभीत न होना चाहिए। बंगाल में जो दमन आरंभ हुआ है, वह वास्तव में स्वराज्य-दल के ही विरुद्ध है। इन सबके मूल में वही पुराना सिद्धांत, योरप का प्राधान्य और एशिया की पराधीनता, है। इस समय देश असहयोग के लिये तै[illegible] नहीं है, इसलिये मैं चाहता हूँ कि वह कुछ समय के लि[illegible] स्थगित कर दिया जाय। स्वराज्यदल के साथ मैंने समझौता किया है, वह उचित है। इन लोगों को कौं[illegible] में कांग्रेस की ओर से बोलने का अधिकार मिलना[illegible] मेरी राय में कांग्रेस की सदस्यता की फ़ीस[illegible]

गाढ़ सूत ही होना चाहिए। स्वराज्य प्राप्त करने के लिये यदि हम सब लोग एक स्वर से बोल सकें, तो बड़ी बात हो, और यदि हम में यह शक्ति पैदा हो जाय कि हम विदेशी कपड़े का देश से बहिष्कार कर सकें, तो वह और भी मार्के की बात हो। हम सबको मिलकर काम करना चाहिए।"

ऊपर महात्माजी के भाषण का जो सारांश दिया गया है, पाठक समझ सकते हैं कि वह कितना महत्त्वपूर्ण है। पर उनके भाषण का अंतिम अंश तो बहुत ही बहुमूल्य है। अतः एव उसका सारांश कुछ विस्तार के साथ दिया जाता है—

"मैं कांग्रेस का एक सदस्य हूँ, इसलिये कांग्रेस की एकता को बनाए रखने के लिये असहयोग को स्थगित करने की सलाह देता हूँ। परंतु जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत संबंध है, वहाँ तक मैं असहयोग नहीं छोड़ सकता। भद्र अवज्ञा तथा असहयोग, ये दोनों ही सत्याग्रह-वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। सत्याग्रह से मुझे सब कुछ प्राप्त होता है; यह मेरा कल्पद्रुम और जामेजम है। सत्याग्रह सत्य का अन्वेषण है, और सत्य ईश्वर है। मुझे यह सत्य अहिंसा के प्रकाश में दिखलाई पड़ता है। स्वराज्य इसी सत्य का एक अंग है। दक्षिण आफ्रिका, खेड़ा, चंपारन तथा और भी कई स्थानों में मैं इस सत्याग्रह में असफल नहीं हुआ। सत्याग्रह में हिंसा और घृणा नहीं रह जाती। इसलिये मैं अँगरेज़ों से न घृणा कर सकता हूँ, और न करूँगा। पर मैं उनकी अधीनता का भार भी नहीं वहन करूँगा। यदि भारत के गले ब्रिटिश-संस्थाएँ और ब्रिटिश-कार्य-शैली मढ़ी जायगी, तो प्राणों की बाज़ी लगाकर मैं उनका विरोध करूँगा। पर यह विरोध अहिंसात्मक होगा। मेरा विश्वास है कि भारतवासी शासनकर्ताओं से अहिंसात्मक लड़ाई लड़ सकते हैं। इसकी जो परीक्षा ली गई थी, उसमें असफलता नहीं हुई। पर वह यथेष्ट सफलता भी नहीं कही जा सकती। मेरा विश्वास है कि सन्निकट भविष्य में एकमात्र सत्याग्रह के द्वारा भारत विजय प्राप्त करेगा। मैं यह बार-बार कह चुका हूँ कि सत्याग्रह कभी असफल नहीं हो सकता। अकेले एक सच्चे सत्याग्रही से सत्य की विजय हो सकती है। स्वराज्य के समान ही सत्याग्रह भी हमारा जीवनसिद्ध अधिकार है। हमें उसे पहचानना चाहिए।"

× × ×

७. हिंदू-मुसलमानों के विरोध पर लालाजी

पंजाब के प्रसिद्ध जननायक और भारत के सर्वमान्य नेता लाला लाजपतरायजी ने हिंदू-मुसलमानों के विरोध पर बहुत सुंदर, युक्ति-पूर्ण लेखमाला लिखी है, और वह प्रायः सभी हिंदी-पत्रों में छप चुकी है। आपने इस सांप्रदायिक लड़ाई-झगड़े के कारणों पर बहुत अच्छे ढंग से यथार्थ प्रकाश डाला है। लोगों की धारणा है कि लालाजी एक स्पष्टवादी, निर्भीक, निष्पक्ष, निस्स्वार्थ नेता हैं। इस लेखमाला में आपकी इस गुणावली का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। लालाजी ने केवल निदान ही नहीं निश्चित किया, उक्त रोग के प्रतिकार का उपाय भी बतलाया है। इस विषय में आपके वक्तव्य का निचोड़ यह है—

१—दोनों दलों को अपने हृदय से अबाध अधिकार की अधिकाधिक आकांक्षा (जिसे आपने एक भ्रांत धारणा *सिद्ध किया है*) *दूर करनी चाहिए।*

२—राजनीति के क्षेत्र में धर्म के नाम पर जो अत्याचार प्रचलित हैं, उन्हें निर्मूल कर देना आवश्यक है।

३—हिंदू और मुसलमान, दोनों अपने-अपने धर्म के नियमों अथवा आचारों को यथासंभव विवेक-बुद्धि-संगत बनाकर धर्म की मूल-नीति के सूत्रों को ही अधिक महत्त्व दें। अर्थात् बाहरी आडंबर, जो अक्सर झगड़े-बखेड़े की जड़ होता है, छोड़कर असली सिद्धांतों को ही मुख्य माना जाय।

४—जिन सामाजिक बाधाओं के कारण एक संप्रदाय दूसरे संप्रदाय से अलग हैं, और परस्पर शत्रुता रखते हैं, *उन्हें दृढ़ता के साथ अपने मार्ग से हटाना चाहिए।*

५—प्रत्येक भारतवासी, वह चाहे जिस धर्म और मत का अनुगामी हो, भारत को संसार के सभी देशों से बढ़कर प्यार करे, और अपनेको सब बातों में भारतीय मानते हुए भारत ही की भलाई करना और भारत के भाव, भाषा, भेष, भावना आदि को भजना अपना सर्वोपरि कर्तव्य समझे, और भारतीय कहकर अपना परिचय देने में गौरव का अनुभव करे।

६—स्वदेश में अपनी और सभी देशभाइयों की वर्तमान हीन अवस्था सुधारने के लिये, उद्धार के लिये, हिलमिलकर एक दिल से सिलसिलेवार प्रयत्न बराबर किया जाय। इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि ऐसा करने से कोई संप्रदाय अपने दल के लोगों के साथ

सहानुभूति न दिखलावे, या उसकी सहायता न करे। हाँ, इस तरह सहायता करने के समय इस बात पर ध्यान अवश्य रखना उचित है कि उससे स्वदेशवासी साधारण भाइयों के हित की हानि तो न होगी, अथवा स्वदेशवासियों के प्रति अपना जो कर्तव्य है, उसके विरुद्ध तो न होगा। इस मामले में यहाँ के मुसलमानों को (और हिंदुओं को भी) वर्तमान टर्की और मिसर की नीति को अपना आदर्श बनाना चाहिए।

७—शुद्धि-आंदोलन का विरोध करने से कोई लाभ नहीं है। वह तो स्थायी रूप से चलता रहेगा। उससे मुसलमानों को न डरना चाहिए। यह आंदोलन उनके विरुद्ध क्रुद्ध हिंदुओं की युद्ध-घोषणा नहीं; किंतु प्रबुद्ध जाति की शुद्ध आत्म-रक्षा-मात्र है।

८—मुसलिम-विद्वेष या हिंदू-द्रोह का प्रचार न करके भी हिंदू-संगठन और तंजीम का आंदोलन एवं कार्य चलाया जा सकता है, और ऐसा ही होना चाहिए। किंतु मैं यह भी कहूँगा कि दोनों जातियों की जैसी स्थिति और अवस्था है, उसमें इस आदर्श के अनुसार यह कार्य होना कष्टसाध्य अवश्य है। पर चेष्टा करने से सब कुछ हो सकता है।

९—भारत के सभी दल चाहें, तो व्यवस्थापक सभाओं में सब संप्रदायों के सदस्य जन संख्या के अनुसार, उचित संख्या में, भेजे जा सकने की व्यवस्था स्वीकृत हो सकती है। किंतु इसके लिये सब संप्रदायों की अलग-अलग निर्वाचक-मंडलियाँ रहना लाभदायक न होगा। सब वोटर मिलकर चाहे जिस संप्रदाय के मनुष्य को, उसकी योग्यता देखकर, अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार, वोट दें।

१०—पंजाब के लिये आपने ख़ास तौर पर यह सलाह दी है कि उस प्रदेश को दो हिस्सों में बाँटकर यह व्यवस्था करनी चाहिए कि संख्या में जो दल अधिक हो, उसका शासन स्थायी रहे।

११—ज़िला-बोर्ड और म्युनिसिपलिटी में जनसंख्या के अनुसार प्रतिनिधि भेजने की कोशिश करना किसी दल के लिये उचित नहीं है। मगर इच्छा हो, तो वह प्रचलित किया जा सकता है।

१२—इसके लिये पबलिक सर्विस कमीशन नियुक्त करनी चाहिए कि सरकारी नौकरियों में कई नीति-सूत्रों के आधार पर लोगों की भरती की जाय। किसी जाति का एक निर्दिष्ट संख्या में अपने लोगों को अवश्यमेव सरकारी नौकरियाँ मिलने का नियम बनवाने की मूर्खता न करनी चाहिए।

१३—विश्वविद्यालय और अन्य शिक्षा संस्थाओं में कोई किसी तरह का सांप्रदायिक निर्वाचन न हो। हाँ, जो जातियाँ शिक्षा और अन्य बातों में पिछड़ी पड़ी हैं, उनके लिये सर्वसाधारण के दिए राजकर से विशेष आर्थिक सहायता दिलाकर उनकी शिक्षा का यथेष्ट प्रबंध होना चाहिए।

लालाजी के बतलाए हुए ये ही १३ मूल-सूत्र हैं। इनके आधार पर अगर देश के समझदार हिंदू-मुसलमान भाई समझौता करके देशोद्धार का कार्य कंधे से कंधा मिलाकर करने का प्रण कर लें, तो सब वैर-विरोध मिट जाय, और प्रतिदिन दोनों जातियों की सुमति तथा उन्नति द्रुत गति से होती देख पड़े। ईश्वर से हम यही प्रार्थना करते हैं कि हिंदू और मुसलमानों का मनोमालिन्य मिट जाय, और दोनों सद्भाव के साथ सहानुभूति रखते हुए स्वदेश की सेवा कर सकें। इसी में उनका और देश का कल्याण है।

× × ×

८. ग्राम-संगठन

हम किसी पिछली संख्या में ग्रामों के संगठन और सुधार की अनिवार्य आवश्यकता पर लिख चुके हैं। हर्ष की बात है कि देश के सर्वमान्य नेताओं का ध्यान अब इधर जाने लगा है। बंगाल के देशबंधु दास ने इस कार्य को अपने हाथ में लेने का विचार कर लिया है। उन्होंने स्वराज्य-सप्ताह में इस कार्य के व्यय के लिये चंदा जमा करना शुरू किया था। यथेष्ट द्रव्य न मिलने से उसकी अवधि दो बार बढ़ा चुके हैं। आपने ३ लाख रुपयों की ज़रूरत बतलाई है। दो लाख से अधिक जमा भी हो गए हैं। बाक़ी रक़म भी मिल जाने की पूर्ण आशा है। हम अपने यू० पी०, सी० पी०, पंजाब, बिहार-उड़ीसा आदि प्रांतों के कर्णधारों को भी इस कार्य की ओर अग्रसर होते देखना चाहते हैं। देश का वास्तविक जीवन और शक्ति ग्रामों में ही सजीव एवं संचित हो सकती है। ग्रामों की उन्नति और उद्धार के बिना नगर-निवासियों की अधूरी कोशिश कभी अधिकारों को नहीं प्राप्त कर सकेगी

स्टर मिस्टर ए० पी० सेन थे, तथा ख़ास फ़िडरेशन के सभापति पूने के विख्यात नेता श्रीयुत परांजपेजी । फ़िडरेशन में प्रतिनिधियों की संख्या बहुत कम थी। प्रसिद्ध पुरुषों में डॉक्टर सर तेजबहादुर सप्रू, मिस्टर सी० वाई० चिंतामणि तथा सर प्रभासचंद्र मित्र आदि बाहर से आए थे। बंगाल के प्रतिनिधि दो ही चार थे, तथा मदरास से कोई भी न आया था। कुछ किसान भी दिखलाई पड़ते थे; पर वे यह नहीं जानते थे कि हम यहाँ क्यों बुलाए गए हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि वे फ़िडरेशन के किसी कार्यकर्ता की प्रजा हैं, और उन्हीं के हुक्म से आए हैं। फ़िडरेशन के कार्यकर्ताओं और प्रतिनिधियों में न तो कोई उत्साह दिखलाई पड़ता था, और न किसी प्रकार की जीवनशक्ति जान पड़ती थी। एकत्रित लोगों में अधिकांश अँगरेज़ी पोशाक में थे, जो विदेशी कपड़े की थी। कुछ महिलाएँ भी पधारी थीं। वे सब भी खूब लक-दक़ चमकदार और आकर्षक रंगीन विलायती साड़ियों से अपने स्वदेशी शरीर को ढके हुए थीं। पहले दिन की प्रायः सब काररवाई अँगरेज़ी में हुई। जिस समय सभापति महोदय रिफ़ाहआम सभा-भवन में पधारे, तो किसी प्रकार का जय-घोष नहीं हुआ। यहाँ तक कि 'वंदे मातरम्' की ध्वनि भी नहीं सुनाई पड़ी। प्रारंभ में आगत महिलाओं ने 'वंदे-मातरम्' गीत गाया। फिर मिस्टर राय ने एक गीत उर्दू में गाया, जिसको लोगों ने पसंद किया। फिर मिस्टर सेन का भाषण हुआ। आपका भाषण संक्षिप्त और सुंदर था; उसमें देश के प्रति सहानुभूति के भाव थे। इससे लोग प्रसन्न हुए। तदुपरांत सभापति का चुनाव हुआ, और फिर उन्होंने अपना भाषण पढ़ना आरंभ किया, जो फ़ुल्स्केप साइज़ के २६ पृष्ठों में समाप्त हुआ था। इस भाषण में सरकार के प्रति तो नम्रता के भाव थे, पर कांग्रेस के प्रति बहुत ही बेढंगे विचार प्रकट किए गए थे। सभापति की हैसियत से परांजपे महोदय ने असहयोगियों के प्रति जिन अपशब्दों और व्यंग्य-पूर्ण कथनों का आश्रय लिया, उनसे, हमारे विचार से, असहयोगियों की तो कुछ भी हानि न होगी; हाँ, उनकी उदारता और प्रतिष्ठा को अवश्य धक्का लगता है। और की कौन कहे, लिबरल-दल के मुखपत्र लीडर ने भी परांजपेजी के इस कृत्य की खुले शब्दों में निंदा की है। भाषण में वे ही बातें दुहराई गई हैं, जो लिबरल सदा से कहते आए हैं। 'बंगाल आर्डिनेंस' के संबंध में सभापति महोदय ने बहुत ही दबी ज़बान से सरकार के काम को औचित्य की सीमा के कुछ बाहर बतलाया। धर्म-परिवर्तन के संबंध में आपने एक अच्छी सलाह दी। आपकी राय में जब एक व्यक्ति धर्मविशेष छोड़कर दूसरे धर्म में दीक्षित हो, तो उसकी रजिस्टरी हो जाया करे, तथा इसके लिये क़ानून बनाया जाय। सब राजनीतिक दलों की एकता के संबंध में आपके विचार बहुत स्पष्ट हैं। आप असहयोगियों के साथ मेल करना वैसा ही समझते हैं, जैसा कि भेड़िया और भेड़ में मेल का होना। आपने देशबंधु दास पर बड़े ही कुत्सित व्यक्तिगत आक्षेप किए हैं। निस्संदेह परांजपेजी के ऐसे कु-कृत्य से समस्त लिबरल-समाज को लज्जित होना पड़ा है। दूसरे दिन श्रीचिंतामणिजी की वक्तृता बड़े मार्के की हुई। वह गंभीर और ओज-पूर्ण थी। कई स्थानों में वक्ता ने परांजपेजी के मतों के साथ अपना विरोध बड़ी खूबसूरती के साथ दिखला दिया था। यह भाषण श्रीचिंतामणिजी के सर्वथा उपयुक्त था। पं० गोकरणनाथजी मिश्र ने थोड़ी देर तक दिहाती बोली में किसानों के लिये भाषण किया। मनोरंजन के लिये वह भी अच्छा था। लिबरल फ़िडरेशन की शेष कारवाई में कोई महत्त्व-पूर्ण बात न थी। अगला अधिवेशन कलकत्ते में होगा।

× × ×

१२. डॉक्टर किचलू और हिंदू

डॉक्टर किचलू राष्ट्रीय विचार रखनेवाले मुसलमान माने जाते हैं। आपने जेल से लौटने पर हिंदू-मुसलमानों के झगड़ों पर खेद प्रकट करते हुए यहाँ तक कह डाला था कि मैं दोनों जातियों में मेल कराने के काम में जान तक दे डालूँगा। पर कुछ ही समय के बाद आपका रंग और ही देख पड़ने लगा। आप भी कट्टर धर्मांध मुसलमानों की श्रेणी में जा मिले। पिछली बातों का उल्लेख न करके हम आपकी अभी नई वक्तृता की ओर हिंदू-जाति की दृष्टि आकृष्ट करते हैं। २४ दिसंबर से बेलगाँव में आल इंडिया ख़िलाफ़त कानफ़्रेंस के अधिवेशन शुरू हो गए थे। स्वागत-समिति के सभापति मि० कुतबुद्दीन थे, और सभापति डॉक्टर किचलू। स्वा० स० ने कहा कि महायुद्ध के पहले की अपेक्षा अब इसलामी सल्तनत-वाले राष्ट्रों की स्थिति बहुत अच्छी और मज़बूत है। टर्की, अफ़ग़ानिस्तान, ईरान आज़ाद हैं। अरब को भी

इब्नेसऊद आज़ाद कर रहे हैं। मिसर होमरूल पा गया है इत्यादि। डॉ० किचलू ने अपने व्याख्यान में कहा कि बारडोली में असहयोग स्थगित करने से देश में जोश कम हो गया। मियाँ फ़ज़लेहुसैन की नीति को लोग पंजाब के हिंदू-मुसलमानों में विद्वेष बढ़ानेवाली बतलाते हैं। पर मियाँ साहब कुछ अनुचित नहीं कर रहे हैं। वह मुसलमानों के साथ न्याय-मात्र करते रहे। पंजाब के हिंदुओं की यह स्वार्थपरता है, जो वे उनका विरोध कर रहे हैं। आपने यह भी फ़रमाया कि सारे झगड़े की जड़ हिंदू-संगठन और शुद्धि का आंदोलन है (मगर आपका तंजीम और तबलीग का आंदोलन दूध का धोया है !), वह मुसलमानों के विरोध के लिये ही उठाया गया है। आपकी रायशरीफ़ में भी, सरकार की तरह, कोहाट-कांड की ज़िम्मेदारी हिंदुओं के ही सिर है; उन्होंने ही पहले उत्तेजनाजनक पुस्तक प्रकाशित की, और गोली भी चलाई। ये हैं विचार डॉक्टर किचलू-जैसे हिंदू-मुसलिम मेल के हामी नामी मुसलमान नेता के। इन पर टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं। इन किचलू-कथित वाक्यों से उनके हृदय का भाव स्पष्ट हो जाता है। हिंदुओं को किसी के कहने में आकर अपने संगठन का कार्य कदापि बंद न करना चाहिए। सम्मिलित हिंदू-मुसलिम-संगठन की आवाज़ उठानेवालों को भी सोचना चाहिए कि जब मुसलमानों के बड़े-बड़े नेताओं के ऐसे पक्षपात-पूर्ण पोच विचार हैं, तब साधारण श्रेणी के अपढ़, कट्टर, धर्मांध मुसलमानों के विचार कितने हिंदू-जाति को हानि पहुँचानेवाले होंगे, और ऐसी स्थिति में सम्मिलित संग-ठन कैसे संभव है ? हिंदू-जाति की रक्षा और उद्धार का एक-मात्र उपाय यही है कि मुसलमानों से द्वेष न रखकर, केवल अपनी शक्ति बढ़ाने के लक्ष्य को सामने रखकर, देश-व्यापी वृहत् संगठन किया जाय। शक्तिशाली होने पर ही हिंदू लोग मुसलमानों से आदर-प्रतिष्ठा पा सकेंगे, और तभी मुसलमानों की यह भ्रांत धारणा दूर होगी कि हम हिंदुओं को दबाकर, धमकाकर, मार-पीटकर भी मूछों पर ताव देते रहेंगे; क्योंकि हम यहाँ के बादशाह थे, और इस कारण वर्तमान सरकार भी हमारा पक्ष लेगी, हमारी ख़ास तौर से ख़ातिर करेगी।

× × ×

१३. अग्नि-पूजा, सोमयाग और सोमलता

अग्नि का व्यवहार संसार में सर्वत्र बहुत काल से हो रहा है। अग्नि के विना संसार का काम घड़ी-भर नहीं चल सकता। अग्नि की उपयोगिता देखकर ही कदाचित् वैदिक युग में अग्नि-पूजा प्रचलित हुई थी। उस युग में अग्नि-पूजा का प्रचार बहुव्यापक हो गया था। पूजा, सोमयाग और सोमलता के संबंध में बहुत-सी जानने योग्य बातें "मानसी ओ मर्मवाणी" पत्रिका में श्रीअमूल्यचरण विद्याभूषणजी ने प्रकाशित की हैं। पाठकों के लिये उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक जानकर हम उक्त लेख का सारांश यहाँ पर देते हैं। विद्याभूषणजी का मत है कि भारत से लेकर पेरू-देश तक सभी स्थानों के मनुष्यों में अग्नि-पूजा प्रचलित पाई जाती है। साग्निक जातियाँ अग्नि के स्थान में कोई अपवित्र वस्तु नहीं जाने देतीं। सभी जातियों ने अग्नि को सर्वश्रेष्ठ शक्ति का श्रेष्ठ आदर्श या रूप माना है। अग्नि ज्योतिर्मय ईश्वर की प्रतिकृति और उसका अंश है। विश्व के सभी पदार्थ अग्नि से उत्पन्न हैं। अग्नि विश्व को धारण किए हुए है। असीरिया, काल्डिया, फ़िनिशिया आदि देशों में रहनेवाले लोग प्रधान रूप से अग्नि के उपासक थे। भारत के हिंदू अब भी प्रत्येक शुभ-कार्य में हवन करके अग्नि की पूजा करते हैं। हिंदुओं के यज्ञ और अग्निहोत्र आदि कर्म अग्नि के विना हो ही नहीं सकते। पारसी लोगों की अग्नि-पूजा प्रसिद्ध ही है। बंबई में पारसियों के यहाँ अब भी अग्नि बराबर जलती रहती है। तुंगुज, मुग़ल और तुर्क लोग भी अग्नि की उपासना करते हैं। योरप में भी ग्रीक लोगों में वालकान (Vulcan), हेफ़ाइस्टस (Hephaistos) और हेस्टिया (Hestia) के नाम से अग्निदेव की पूजा प्रचलित है। प्राचीन प्रुशियन, रूसी और लिथुआनियन-जातियों के लोग अग्नि की पूजा करते थे। इस समय भी योरप में अग्नि-पूजा कुछ-न-कुछ किसी-न-किसी रूप में देख पड़ती है। भारतवासियों और ईरानियों के धर्म में अग्नि की उपासना उसका एक प्रधान अंश मानी ग[ई] है। उस समय जैसे भारतीयों के वैसे ही ईरानियों [के] देवता अग्नि थे। किंतु दोनों जातियों में अग्नि का ए[क] ही नाम नहीं है। ईरानियों के यहाँ अग्नि का नाम 'अतर'। स्लैव-जातियों में भी अग्नि की उपासना प्र[च]लित थी। उनके अग्नि और भारतीयों के अग्नि के

में विशेष अंतर नहीं है। हम अग्नि कहते हैं, स्लाव लोग Ogiin कहते हैं। प्राचीन स्लाव-रूप है Ogni, जो 'अग्नि' से बिलकुल मिल जाता है। भारतवासी और ईरानी, दोनों आर्य-संतान हैं। एक समय में ये सभी अग्नि के उपासक थे, और इनके अग्निदेव का नाम भी 'अग्नि' ही था। संस्कृत में 'अग्नि', लैटिन में ignis और लिथुआनियन भाषा में ugnis कहते हैं। अग्नि, ignis, ugnis, ogni, ये सब रूप एक ही साधारण शब्द के हैं, यह स्पष्ट जान पड़ता है। आर्यों के दल में से लोगों के भिन्न-भिन्न ओर प्रस्थान करने के पहले सभी अग्नि का बोध करानेवाले एक ही शब्द का प्रयोग करते थे। किंतु अग्नि-पूजा कब से प्रचलित हुई, इसका निर्णय करना कठिन है।

भारत के आर्यों और ईरानियों के एक प्रधान देवता का पता चलता है। उक्त देवता की उत्पत्ति खोजने पर वैदिक 'अपां नपात्'-शब्द पर दृष्टि जाती है। स्पीगेल (Spiegel) का कहना है कि 'अपां नपात्' एक अति प्राचीन और पूजनीय देवता का नाम है *। यह शब्द अति प्राचीन युग का है। इसका अर्थ है 'जल से उत्पन्न' †। बादलों में जो बिजली चमकती है, उसी के देवता का बोधक 'अपां नपात्'-शब्द है। पारसियों के अवस्ता-ग्रंथ में केवल एक बार अन्य एक अग्नि के देवता के साथ उक्त देवता का उल्लेख पाया जाता है, जिसका नाम है नाइरोसंघ (Nairosingh) अर्थात् देवदूत। पारसियों के जस्न-नामक ग्रंथ में इसे मनुष्य का निर्माण करनेवाला और रूप का देवता कहा गया है। वेद में भी एक शब्द है 'नाराशंस'। इसका भी व्यवहार देवदूत के अर्थ में किया गया है। नाइरोसंघ और नाराशंस एक ही जान पड़ते हैं।

पहले कह चुके हैं कि ईरानी लोग अग्नि को 'अतर' कहते हैं। अग्नि का यह नाम बहुत प्राचीन है। ईरानी लोग पुरोहित के अर्थ में 'अथ्रवन्'-शब्द का व्यवहार करते हैं। विद्याभूषणजी की राय में वेदोक्त अथर्वन्-शब्द अथ्रवन् का ही रूपांतर है। अथर्वन् का अर्थ अग्नि-पुरोहित होता है। इसी 'अथर्वन्' के अंश 'अथर' के साथ 'अतर' का संबंध संभव प्रतीत होता है। अतर-शब्द का अर्थ है भक्षक। कारण, अतर-शब्द का मूल है अद्-धातु, जिसका अर्थ है भक्षण करना। अग्नि को आर्य लोग 'सर्वभुक्' कहते हैं। अग्नि में जो डाला जाता है, उसी को वह खा डालते हैं। इस हिसाब से अग्नि के नाम अतर का अर्थ भक्षक मानना सार्थक भी है। किसी-किसी का अनुमान है कि प्राचीनतम युग में सम्मिलित आर्य-दल अग्नि को 'अतर' ही कहते थे। इस अनुमान का कारण यही है कि वेद में अग्नि-पुरोहित को अथर्वन् कहा गया है, और वेद में यह भी लिखा है कि अग्नि-पुरोहितगण अग्नि को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाए थे।

भारत के आर्यों में जैसे अग्नियाग और सोमयाग प्रचलित थे, वैसे ही ईरानियों में भी। भारतवासियों का सोमयाग और ईरानियों का हओम (Haoma) एक ही है। भारतवासी सोमरस को देवभोग्य अमृत कहते थे। ईरानियों के यहाँ भी एक देवभोग्य पीने का दिव्य पदार्थ था, जिसे अमेरतात (Ameretat) कहा जाता था। अमृत और अमेरतात् में बहुत कुछ शब्दगत सादृश्य पाया जाता है। ईरानियों के यहाँ देवों का भोजन एक और दिव्य पदार्थ था, जिसे वे हउरवतात् (Hauravatat) कहते थे *। हउरवतात् खाने की चीज़ थी, और अमेरतात् पीने की। ये दोनों केवल देवों के खाने-पीने की सामग्री ही नहीं हैं, ये स्वतः देवता हैं, और स्वर्गवासियों का पोषण करते हैं। भारतीयों के प्राचीन देवता विवस्वान्, यम, त्रित-आप्त्य सोम के उपासक थे। ईरानियों के भी विवन्हत्, यिम के पिता थ्रित और आथ्व्य (Athvya) प्राचीनतम हओम के उपासक पाए जाते हैं। सोमरस पीने से मन की जो अवस्था होती है, उसे वेद में 'मद' कहा है। अवस्ता में उसी अवस्था को 'मध' कहा है। अतएव अग्नि-पूजा का साधन सोमयाग अत्यंत प्राचीन है, यह स्वीकार करना पड़ेगा। यह भी सिद्ध होता है कि भारतीयों और पारसियों के पूर्वज जिस समय एक-साथ एकत्र रहते थे, तभी उनमें अग्नि की उपासना और सोमयाग का प्रचार था।

* Die arische periode, P, 313.

† "Fire that resides in water." (etc)

* ये दोनों शब्द पारसी-ग्रंथों में सर्वत्र एकसाथ प्रयुक्त हुए हैं। ये 'वर्तमान' और 'भविष्य' के वाचक तथा संपूर्ण शुद्धि का बोध करानेवाले हैं।

आर्यगण जब भारत में आए, तो यहाँ भी वे सोम-याग करते रहे। सोमयाग की उन्नति भारत में ही विशेष हुई; परंतु उसका आरंभ भारत में नहीं हुआ। भारत के लिये वह एक विदेशी अनुष्ठान ही था। इसके दृढ़ प्रमाण भी हैं। एक ख़ास प्रमाण यह है कि सोमलता, जो सोम-याग की मुख्य सामग्री है, भारत की चीज़ नहीं है। गांधार आदि देशों के सुदूरवर्ती पहाड़ों में सोमलता पैदा होती थी। पहले ज़माने में वहीं से यह लता लाकर सुखा रक्खी जाती थी। कुछ दिनों बाद भारतीय आर्यगण सोमलता का रूप ही भूल गए थे। अंत को यहाँ तक हुआ कि सोम के नाम से अन्य एक लता का व्यवहार होने लगा। वेद-मंत्रों में ही इसका उल्लेख है कि सोमलता पारस्य, गांधार आदि के पहाड़ी स्थानों में पैदा होती थी, भारत में नहीं मिलती थी। विशेषज्ञों का अनुमान है कि प्राचीनतम युग में पारस्य (ईरान) में ही सोमयाग का आरंभ हुआ था। सोमयाग की तरह अग्नियाग भी पारस्य में ही प्रथम प्रचलित हुआ था। परंतु भारत के अग्नियाग और पारस्य के अग्नियाग की विधि में कुछ भेद है। भेद यही है कि भारत के आर्य लोग आहुति अग्नि में छोड़ते थे, किंतु पारसी लोग बलि-पशु के हव-नीय मांस-खंड अग्नि को दिखाकर अन्य ओर फेंक देते थे। उनको विश्वास था कि अग्नि में मांस का स्पर्श होने से अग्नि अपवित्र हो जायगा। इस संबंध में अभी और भी लिखना है। आर्यों और दस्युओं में अग्नि का कैसा मान था, द्राविड़ और मुंडा अग्नि-पूजा करते थे या नहीं, और वेद में अग्नि के बारे में क्या लिखा है, इन विषयों पर अगली संख्या में लिखा जायगा।

× × ×

१४. जानने लायक़ बातें

१—कुछ दिन हुए, लंदन में अस्त्र-चिकित्सा करनेवालों की आंतर्जातिक सभा का त्रैवार्षिक अधिवेशन हुआ था। उसमें ७०० प्रसिद्ध अस्त्र-चिकित्सकों के सामने फ्रांस के डॉक्टर वेरोनक ने इस विषय पर व्याख्यान दिया था कि बंदर की कुछ ख़ास गाँठें बदलकर लगा देने से बूढ़े को जवान बनाया जा सकता है। इस संबंध में उन्होंने ख़ुद जो कुछ चेष्टा की थी, उसका भी उन्होंने वर्णन किया। आपकी वक्तृता के बाद उनके अँगरेज़ शिष्य डॉक्टर बेक ने व्याख्यान दिया। उन्होंने पेरिस जाकर यह अस्त्र-चिकित्सा सीखी थी। डॉक्टर बेक ने सबके सामने दो फ़ोटो उप-स्थित किए। एक फ़ोटो में एक बूढ़ा भेड़ा ऐसा जर्जर दिखाया गया था, जिसमें सिर उठाने की भी शक्ति न थी। उसके रोएँ झड़ पड़े थे। दूसरा फ़ोटो भी उसी भेड़े का था। वह उसकी चिकित्सा होने के चार वर्ष बाद का था। अगर अस्त्रोपचार न किया जाता, तो वह तब तक जीवित भी न रह सकता था। किंतु अब वह भला-चंगा जवान हो रहा था। डॉक्टर वेरोनक ने अनेक शिक्षित, प्रोफ़ेसर आदि वृद्धों को इस अस्त्रोपचार से युवा बना दिया है। इससे चेहरा-मोहरा, कार्य करने की शक्ति और फुर्ती जवानों की-सी हो जाती है। इस बारे में अभी और भी विशेष रूप से जाँच की जा रही है।

२—पशुओं के रोएँ काटकर भारत में भी प्रायः ओढ़ने के वस्त्र बनाए जाते हैं। योरप में अनेक पशुओं के रोएँ इस काम में लाए जाते हैं। वहाँ पशुओं के रोओं से पहनने के भी वस्त्र बनते हैं। परंतु ऐसे वस्त्रों का मूल्य इतना अधिक होता है कि साधारण दर्जे के लोग उन्हें नहीं ख़रीद सकते। अमेरिका में यह चेष्टा बहुत दिनों से की जा रही थी कि पशु-रोम से थोड़े ख़र्च में वस्त्र बनाए जायँ। बहुत परिश्रम और अनुसंधान के बाद अब अमे-रिका में एक कल का आविष्कार हुआ है। उसकी सहायता से बहुत कम ख़र्च में मनुष्य के सिर के बालों का एक प्रकार का वस्त्र बनाया जाने लगा है। वह सस्ता और टिकाऊ होता है। चीन से नर-केशों की बड़ी-बड़ी गाँठें इस वस्त्र की फ़ैक्टरियाँ (Factorys) चलाने के लिये अमेरिका-वाले मँगाते हैं। चीन में एक श्रेणी के कुली हैं, जो पैसे के लालच से अपने बाल बेच डालते हैं। यह केशों का कपड़ा आध इंच के लगभग मोटा होता है।

३—फ़्रांस के दो इंजीनियरों ने ऐसी मशीन बनाई है, जिसमें नाज का छिलका उतरता, वह धोया जाता, पीसा जाता और उसका गोला-सा बन जाता है। सब काम एकसाथ एक ही मशीन कर देती है। उस आटे को ज़रा हाथ से गूँदकर रोटी बना ली जाती है। यह मशीन सस्ती इतनी है कि हरएक आदमी उसे ख़रीद सकता है।

४—फ़्रांस के एक वैज्ञानिक की राय में वायु में मनुष्य के भोजन की यथेष्ट सामग्री है। केवल हवा खाकर ही आदमी तृप्त हो सकता और मोटा-ताज़ा रह सकता है। उक्त वैज्ञानिक इस विषय में और भी जाँच कर रहे हैं।

वायु से भोजन प्राप्त करने का यत्न हो रहा है। जैसे ऊख से शकर निकलती है, वैसे ही वायु से शकर निकलने की संभावना भी की जाती है। हमारे यहाँ के तपस्वी शायद इसी से वायु-भक्षण किया करते थे। भारतवासियों का इस समय इस आविष्कार से बड़ा उपकार होगा। वे केवल हवा खाकर अपने प्रभुओं के लिये परिश्रम कर सकेंगे।

५—वर्तमान समय में संसार-भर में सबसे लंबा आदमी आरमंड ग्रोनर है। वह ६ फ़ीट ५½ इंच लंबा है। उसका जूता १६¾ इंच लंबा होता है। जन्म के समय वह २½ सेर भारी था। अब वह १३-१४ मन का बोझ अनायास उठा सकता है। यह मांसाहार बहुत थोड़ा करता है, साग-भाजी, फल-मूल आदि अधिक खाता है। उसके कंधे की नाप लेने के लिये दर्ज़ी को एक सीढ़ी पर चढ़ना पड़ता है।

६—स्पेन के एक जहाज़ी ने सिर्फ़ रस्सी के रंग-बिरंगे टुकड़ों से एक रोशनी का झाड़ बनाया है। रस्सी के फंदों से इसमें उसने तरह-तरह के फल-फूल, बेलें और मूर्तियाँ बनाई हैं। यह झाड़ ५ फ़ीट लंबा है। इसे बनाने में एक साल लगा है। न्यूयार्क के एक कला-शिल्प-संबंधी क्लब ने इसे ख़रीदकर, इसमें बिजली की रोशनी करके, सर्वसाधारण को दिखलाने की व्यवस्था की है। इसी तरह एक संगीतज्ञ स्पेनिश पुरुष ने एक विचित्र एकतारा बनाया है। इसकी आवाज़ और मधुरकंठी कामिनी के स्वर में रत्ती-भर फ़र्क़ नहीं है। यह बेहाला की छड़ी से बजता है।

७—नार्वे के एक वैज्ञानिक ने अनिद्रा-रोग दूर करने-वाली एक टोपी बनाई है। यह टोपी मुँह तक ढक देती है। इसे पहनते ही थोड़ी देर में रोगी को नींद आ जाती है। नाक के पास इस टोपी में एक छिद्र रहता है, जिससे श्वास ली जा सकती है। इस टोपी या ख़ोल में भीतर रत्ती-भर भी प्रकाश की रेखा नहीं आ सकती। मुँह की गरम साँस आँखों की तरफ़ जाती है, और इसी से रोगी को नींद आ जाती है। यह ख़ोल किसी धातु का बना होता है। मालूम नहीं, बाज़ार में भी अभी यह बिकता है या नहीं।

८—पाँच युवक अँगरेज़ एक ६० फ़ीट लंबे हलके जहाज़ पर चढ़कर मेरु का आविष्कार करने जा रहे हैं। जाड़े में वे न्यूयार्क में पहुँचेंगे। वहाँ से सन् १९२५ में फिर यात्रा करेंगे। गत मई-मास में इनका जहाज़ इँगलैंड से चला था। जहाज़ का नाम है येलटाईं। लड़के सब २१ वर्ष से कम अवस्था के हैं। इनका साहस धन्य है।

९—विलायत की वेंबली-प्रदर्शिनी में एक ६ फ़ीट ऊँचा साँड़ दिखाया गया है। यह साँड़ कनाडा का है। इसके शरीर का घेरा १०½ फ़ीट और वज़न २,८३४ पौंड अर्थात् ४० मन के लगभग है। प्रदर्शिनी में यह साँड़ एक विशेष दर्शनीय वस्तु था।

१०—विलायत के एक गणितज्ञ ने एक हिसाब करने की कल बनाई है। इसकी सहायता से बड़े-बड़े जोड़, गुणा, भाग, बाक़ी आदि हिसाब आनन-फ़ानन में हो जाते हैं, और उनमें भूल भी नहीं होने पाती।

११—बेतार के तार की मशीन बड़े दामों की होने से सबके लिये उसका व्यवहार सुलभ न था। हाल में ग्रांट हेक्टर (Grant Hector) नाम के एक बेतार के तार की विद्या में निपुण मनुष्य ने एक नए ढंग की सस्ती मशीन ईजाद की है। इसकी क़ीमत सिर्फ़ ४५) है। इसके द्वारा कई सौ कोस तक बात की जा सकती है।

× × ×

१५. पं० मोहनलाल महत्तो "वियोगी"

पं० मोहनलाल महत्तो "वियोगी"जी अभी नवयुवक ही हैं। पर आपकी प्रतिभा प्रशंसनीय है। आपसे हमारे पाठक अच्छी तरह परिचित होंगे। माधुरी की प्रत्येक संख्या में आपके सुंदर व्यंग्य-चित्र अथवा कविता प्रकाशित होती रहती है। इस बार आपके चित्र को भी हम सहर्ष प्रकाशित करते हैं। आप गयावाल हैं, सज्जन हैं,

पं० मोहनलाल महत्तो "वियोगी"

[मृदु]भाषी, नम्र और शिष्ट होने के साथ ही शिक्षित भी [हैं]। यदि तीर्थ-स्थानों के पूज्य पंडे-पुरोहित इसी तरह [की] योग्यता और शिष्टता को अपनावें, तो उनकी बदनामी [बहु]त जल्दी दूर हो जाय। महंत्तोजी की कविताएँ सरस, [सह]ज, सुंदर होती हैं, और व्यंग्य-चित्रों में भी आपकी [अन]ोखी सूझ और कल्पनी झलकता है। हम आपकी इस उन्नति से बहुत संतुष्ट हैं, और आशा करते हैं कि आप [यों] ही उत्तरोत्तर अधिकाधिक उन्नति करते रहेंगे।

× × ×

[१]६. श्रीमती सरोजिनी नायडू और भाई भवानीदयालुजी

यह चित्र उस समय का है, जब भारत की बुलबुल, विदुषी, जननेत्री श्रीमती सरोजिनी नायडू प्रवासी भाइयों की कानफ्रेंस में सभानेत्री का कार्य करने के लिये दक्षिण आफ्रिका पधारी थीं। वहाँ आपने जो कार्य किया और व्याख्यान आदि दिए, सो सब पाठक पत्रों में पढ़ ही चुके हैं। आपके पास "हिंदी" के संपादक भाई भवानीदयालु-जी खड़े हैं। आप सुयोग्य देशभक्त प्रवासी भाई हैं। आप-का विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। यह चित्र हमें आप ही से प्राप्त हुआ है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह श्रीमतीजी को देश की सेवा करने के लिये चिरायु करें। भाईजी को भी हम उनके आत्मोत्सर्ग और निस्स्वार्थ देश-भाइयों की सेवा करने के लिये बधाई देते हैं

× × ×

"हिंदी" (नेटाल) के संपादक श्रीयुत भवानीदयालुजी और भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू

१७. पं० गौरीशंकरजी भट्ट

पं० गौरीशंकरजी भट्ट सुंदर नागरी वर्णों की संक्षिप्त लिपि और चित्र-लिपि के आविष्कारक और अपने काम में यकता हैं। आपका संपूर्ण परिचय हम दिल्ली के साहित्य-सम्मेलन के समय की माधुरी की संख्या में प्रकाशित कर चुके हैं। आप बड़े ही विनम्र, देश-प्रेमी और मातृभाषा के उत्साही सेवक हैं। आप हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के प्रायः प्रत्येक अधिवेशन में उपस्थित होकर अपनी कारीगरी का परिचय दिया करते हैं। खेद है कि आपकी योग्यता और परिश्रम की ओर अभी तक हिंदी-संसार ने यथेष्ट ध्यान नहीं दिया, और न आपका यथोचित सम्मान ही किया है। आशा है, इधर लोगों का ध्यान शीघ्र ही आकृष्ट होगा। इस बार भी देहरादून के सम्मेलन में आप उपस्थित हुए थे। हम आपकी कारीगरी का परिचय पूर्वोक्त पिछली संख्या में कुछ दे चुके हैं। इस बार भी दिल्ली के इंद्रप्रस्थ-पुस्तकालय को उसके उत्सव पर आपकी दी हुई भेंट का चित्र, जिसके लिये आप पदक देकर पुरस्कृत भी किए गए थे, प्रकाशित करते हैं।

पं० गौरीशंकरजी भट्ट

× × ×

१८. पं० अमरनाथजी औदीच्य वैद्यशास्त्री

गत संख्या में देहरादून के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का जो विवरण प्रकाशित किया गया था, उसमें कुछ बातों का उल्लेख नहीं किया जा सका था। पं० अमरनाथजी स्वागत-समिति के प्रधान मंत्री थे। आपका चित्र इस बार प्रकाशित किया जाता है। आप भिन्न भाषा-भाषी होने पर भी हिंदी के बड़े अनुरागी हैं। जिन लोगों ने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को देहरादून में सफल बनाने के लिये उद्योग किया था, उनमें आप भी हैं। आपका विशेष परिचय हमें अभी तक प्राप्त नहीं हो सका। अतएव यह संक्षिप्त परिचय और चित्र ही प्रकाशित किया जाता है।

× × ×

अखिल भारतवर्षीय पंचदश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, देहरादून की स्वागत-समिति के प्रधान मंत्री पं० अमरनाथ औदीच्य वैद्यशास्त्री

१९. माधुरी-पुरस्कार

माधुरी-पुरस्कार का निर्णय इधर श्रावण की संख्या से नहीं प्रकाशित किया जा सका, इसका हमें खेद है।

श्रावण की संख्या का पुरस्कार "जल-कण का जीवन-संगीत" कविता के लेखक श्रीमोहनलाल महत्तो "वियोगी" को दिया गया।

भाद्र की संख्या का पुरस्कार "बलिदान" कविता के लेखक श्रीयुत "भारत-भक्त" को दिया गया।

आश्विन की संख्या का पुरस्कार "प्रेम-पंथ" कविता के लेखक श्रीरामाज्ञा द्विवेदी एम्० ए० "समीर" को दिया गया।

कार्त्तिक की संख्या का पुरस्कार "विश्वबंधन" कविता के लेखक पं० रामनारायण मिश्र एम्० एस्-सी० को दिया गया।

मार्गशीर्ष की संख्या का पुरस्कार "अश्रु" कविता के लेखक पं० चंद्रकांत मालवीय "वारीश" को दिया गया।

स्थान की कमी से निर्णय-कर्ताओं के नाम नहीं दिए गए, और न प्रतिद्वंद्विता में रक्खी गई कविताओं का उल्लेख किया गया। इस प्रतिद्वंद्विता में बाबू जगन्नाथदासजी बी० ए०, पं० श्रीधर पाठकजी, पं० अयोध्यासिंह उपाध्यायजी, बाबू मैथिलीशरण गुप्तजी आदि प्रसिद्ध पुराने कवियों की रचनाएँ, उनकी इच्छानुसार, नहीं रक्खी जातीं। इतना जान लेने से ही पाठक समझ लेंगे कि किन कविताओं से पुरस्कृत कविताएँ चुनी गई हैं।

पहला रंगीन चित्र है प्रतीक्षा। इसके चित्रकार एक मुसलमान सज्जन हैं, जिनका नाम है श्रीयुत ए० आर० असग़र। कलकत्ते के सुप्रसिद्ध चित्रशिल्पी और चित्रकला के मर्मज्ञ श्रीअवनींद्रनाथ ठाकुर की शैली का यह चित्र बहुत ही भावपूर्ण बना है। एक सुंदरी अपने प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही है। उसकी दृष्टि में जो भाव अंकित किया गया है, वह अपूर्व है। चित्र दर्शनीय है।

दूसरा रंगीन चित्र है क्रोध और शांति। भाव स्पष्ट है। चित्रकार की कारीगरी दर्शनीय है।

तीसरा रंगीन चित्र है दूती। यह एक पुराने चित्रकार के चित्र की कापी है। राजपूताने के एक सज्जन से प्राप्त हुआ है। नायिका या राधाजी कृष्णचंद्र के आने में देर होने से अतीव उत्कंठित हो उठी हैं। उनके विरह-जनित अधैर्य को देखकर सखी दूती बनकर कृष्णचंद्र के पास गई है, और उनसे प्रियतमा के पास चलने के लिये कह रही है। यही इस चित्र का भाव है। नीचे बिहारी का दोहा देखिए।